HINDI NAV JIWAN

1927

G.K.U.


STOCK VERIFICATION
Central
Library

ता है। निश्चय ही, मूर्ति की मालिक
मूर्त्ति हटा देनी चाहिए।

मोहनदास करमचंद गांधी

गीत

में के एक भाषण का कुछ
खादी की अच्छी बिक्री
संपादक]
दी के नाम में
जा में राष्ट्रीय
ए आप

वहू
घर
-कार्य
उनके
है।
लडाई
न कष्ट
से ?
की
पुराने
उसी
रावर
है।
ले जब
होते।
के यहां
हूँ।
ते हैं।
क ठीक
बार बार

छोड कर
कर नहीं

गाह यदि
ी, इतने
है। पेट
ज्याभिषेक
जिए।'

बादशाह को यह बात न रुची, बादशाह ने राजवैद्य की सलाह मानने से इनकार किया। दूसरे दिन, तीसरे दिन, वह राजवैद्य फिर फिर कर आये और वही बात बोले, 'मेरी मानिये। गंभीर प्रसंग आया है। मौत होगी। अगर ऐसा कठिन अवसर न होता तो मैं यह ढिठाई न करता।' बादशाह का धैर्य टूटा। मिजाज हाथ में न रहा। दृढतापूर्वक जवाब दिया, 'मैं तुम्हारी बात न मानूंगा। सारे साम्राज्य की तैयारी यों ही न जायगी। तुम यहां से चले जाओ। मैं तुम्हारी बात सुनना नहीं चाहता।' बेचारा राजवैद्य लाचार हुआ। चला गया। उसके लिए राजमहल में जाने की इजाजत न रही। पर सच्चे सेवक से भी कहीं शान्त रहा जाय? इन्होंने फिर से चौखट खटखटाया। फिर अन्दर गया। पैरों पड कर, आजिजी से फिर प्रार्थना की, 'महाराज, आप नहीं जानते। मैं जानता हूँ कि सर्वनाश की घडी आयी है। आपको मेरी बात माननी ही चाहिए। मुझे नश्तर लगाने दीजिए। इतना धैर्य रखिए। फिर सब सुन्दर रीति से ही होगा।' बादशाह का दिल पिघला। उसे अनुमति मिली। उत्सव मुल्तवी रहा। नश्तर लगाया गया और थोडे ही दिनों में बादशाह चंगे हो गये। अच्छे हो कर इन्होंने अपने साम्राज्य की बहुत सेवा की थी।

खादी का आन्दोलन भी वैसा ही नश्तर है। उसके बिना हिन्दुस्तान जी नहीं सकता। प्रजा का प्राण आखों में अटका है। मरते समय आंख खोलें भी तो वह किस काम का होगा?

अकाल आवे और एक साथ आदमी मर जायँ तो यह आपत्ति शायद सही भी जाय। पर रोज आधे पेट रहने, निराशा में जीने, और रोज थोडा थोडा करके मरने की स्थिति तो इससे भी विषम है। ऐसा नहीं माना जा सकता कि अब तक यह स्थिति चली आयी इस लिए हमेशे चलेगी। अभी आपने जो आंकडे सुने वे कवियों की कल्पना ही भर नहीं हैं, बल्कि सच्ची वस्तु स्थिति हैं। ऐसी स्थिति में कोई राष्ट्र टिक नहीं सकता। आप चाहे जिस दल के हों, चाहे जो मत मानते हों, मगर स्वराज चाहिए तो खादी का प्रचार किये बिना, खादी को घर घर पहुँचाये बिना चल नहीं सकता। मैं यहां दलादली की बात में न पडूँगा, मगर इतना जरूर कहूँगा कि क्रान्तिकारी हरदयाल से लेकर अहिंसा वादी गांधी जी तक सभी कहते आये हैं कि स्वराज मिलेगा तो चतुर और पढे लिखे सुशिक्षित लोगों की बात से नहीं, मगर प्रजा की सुसंगठित सामर्थ्य से ही। स्वराज लेना कुछ हँसी खेल नहीं है। हिंदुस्तान की सच्ची शक्ति उसके दलित और गरीब आमवर्ग में ही है। जब तक यह शक्ति जाग्रत नहीं होती कुछ होने को नहीं है। स्वराज की बात भी छोड देवें। मान लो कि किसी को स्वराज नहीं चाहिए। तौभी इस कौम के तन में जान बनाये रखने के लिए खादी की जरूरत है। देश के गरीब ही हमारे हाथ पांव हैं। इन्हींके आधार पर हम जीते हैं। इन्हें न जिलावें तो हम कैसे जीनेवाले? शुद्ध स्वार्थी साहूकार भी जानता है कि किसान को न जिलावें तो हमारा धंधा चलने को नहीं है। हिन्दुस्तान की अपढ परन्तु संस्कारी प्रजा नसीब के नाम पर अब तक चुपचाप बैठी रही है, इस लिए यह स्थिति हमेशे कायम रहेगी सो बात नहीं है। यह सच है कि शहरों में और बडे गांवों में भूख मरी सीधे सीधे दिखलायी नहीं देती। और इसीसे क्या आप कह सकते हो कि रोजाना आठ आने छोड कर आठ पैसे का खादी काम कौन करे? आप को आठ आना मिलता होगा, मगर देश में ऐसे बडे २ प्रदेश पडे हुए हैं, जहां पर लोगों को रोजाना दो आना भी साल भर नहीं मिल सकता। खादी पहन कर इन प्रान्तों में फी आदमी दो दो आना पहुँचाने का पुण्य करो और आप भी बच जाओ। शहर के आठ आने की बात करते रहोगे और खादी का अनादर करोगे तो जिस दिन गांवों के २५, ३० करोड आदमी 'हमें आठ आना रोज दो,' कहते हुए शहर पर उलट पडेंगे उस दिन क्या दोगे? ये हमें खा जायँ तौभी इनकी भूख मिटनेवाली नहीं। यह प्रसंग टालना हो और अपने बालबच्चों को बचाना हो तो समय रहते ही चेत जाओ और खादी को अपनाओ। दूसरा एक भी धंधा नहीं जो करोडों की भूख दूर कर सके। खादी पहन कर गरीबों को जिलावो और उसके बाद आपको दूसरे जितने धंधे सूझें, उन्हें देश में दाखिल करके देश को धनी बनावो।

(नवजीवन)

साप्ताहिक पत्र

प्रलय का पैगाम

गुजरात के जल प्रलय का पैगाम तो पत्थर का भी हृदय पिघलाने वाला था। इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है कि तब गांधी जी की क्या हालत हुई होगी। श्री वल्लभभाई पटेल के साथ तार के जरिये उनका पत्रव्यवहार बराबर चलता रहा। वल्लभभाई की मौजूदगी के खयाल से उन्हें बहुत शान्ति मिली। मित्रों के पत्र और तार उन्हें गुजरात बुलाने को आये, मगर शायद उन मित्रों से भी अधिक, उन्होंने स्वयं इस पर विचार किया था। उन्होंने कहा था, 'वहां पर मदद देने के बदले, मैं तो बाधा बन जाऊंगा। मैं सहायता के लिए धन मांग सकूँगा, मगर वहां जाकर तो सब जगह घूम घूम कर देखे बिना मुझे कल नहीं पडने की, और मेरे शरीर से यह होना असंभव है। तब यह मोह किस लिए रक्खूँ कि मैं वहां होता तो अच्छा था!' तौभी संतोष उन्हें तभी हुआ जब वल्लभभाई का तार उन्हें मिला। बंगलोर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मान पत्र के जवाब में मामूली बातें कहते ही कहते, उनके मुँह में इस प्रलय की बात आगयी और फिर मानों वे भरी सभा में ही इस विचार में पड गये कि इस प्रलय को ईश्वर का कोप या करुणा मानना चाहिए। बंगलोर के गुजराती अपनी मदद भेज चुके हैं। दूसरे अभी धन इकट्ठा कर रहे हैं।

रजत महोत्सव

पिछले हफ्ते मैसूर के महाराजा के राज्य का रजत महोत्सव मनाया गया था। लोगों का उत्साह और संतोष देखकर मालूम होता था कि वे अपने महाराजा को अत्यंत प्रेम से देखते हैं। पंडित मोतीलालजी बंगलोर में गांधीजी से मिलने आये थे। उनसे मिलकर दीवान के निमंत्रण पर वे मैसूर गये। वहां से लौटने पर उन्होंने कहा कि 'अपने राजा का उत्सव मनाने में इतने मस्त आदमी तो मैंने कहीं नहीं देखे थे। यह कुछ बनावटी प्रेम भी नहीं मालूम होता था। दीवान भी वैसे ही लोकप्रिय हैं।'

पुरातत्व समाज

बंगलोर में एक स्वतंत्र पुरातत्व समाज भी है जो पौराणिक शोध वगैरह किया करता है, और उन्हें, अपने खास मासिक पत्र में छापता है। इस समाज में भी गांधी जी गये। मगर जिन्होंने पिछले पैंतीस वर्षों से पुस्तकालय वगैरह में लिखने पढने का छोड कर जीवन के विशाल क्षेत्र में जीवन का ही पाठ पढा है [illegible] गांधी जी यहां इन लोगों की कुछ प्रशंसा करने के [illegible] ही क्या सकते थे, मगर उन्होंने एक नयी [illegible] रोगियों की सेवा उन्होंने कहा, 'मैं चाहता हूं [illegible] इस [illegible] भाल का अवसर कभी हिन्दुस्तान को और दुनिया [illegible] की हिम्मत ने हमें निडर कर डाला। कि आपका समाज [illegible] करने को ही नहीं थी। उन्हें दवा देनी, अस्पृश्यता [illegible] पानी पिलाना, और उनका मैला साफ करने के [illegible] और कुछ करने ही को नहीं था।

चार जवानों की हाड तोड मिहनत और निडरता से मेरे हर्ष का पार न रहा।

निकला होगा। मगर मेरे जैसे सेवकों को शास्त्र पढने को कहां मिलता है। हम तो अपनी बुद्धि और मान्यता के ही बल पर कहते हैं कि हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता को स्थान नहीं है। आप तो हमें प्रमाणों के ऐसे शास्त्र ढूँढ कर दीजिए कि हम साहसपूर्वक कह सकें कि हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता नहीं है, और हमारे सामने पंडित लोग मुँह न खोल सकें। यह बीडा तो आपको ही उठाना चाहिए।'

शूद्रों के अधिकार

यहां पर और जगहों की अपेक्षा संस्कृत का प्रचार अधिक है। संस्कृत पढने के लिए राज्य ने भी सुविधाएँ की हैं। हर शहर में राज्य की ओर से संस्कृत पाठशालाएँ हैं। मैसूर की पाठशाला की ओर से गांधी जी को सरल सुबोध संस्कृत भाषा में मानपत्र दिया था। गांधी जी ने संस्कृत मानपत्र के लिए आभार मानते हुए कहा कि संस्कृत पढना हरएक हिन्दू बालक, बालिका का धर्म है। फिर पंडितों से कहा, 'मुझे यह जान कर दुःख हुआ है कि शूद्रों को संस्कृत पढाने से डरनेवाले, या इसे अधर्म माननेवाले पंडित मैसूर में पडे हैं। मुझे पता नहीं कि शूद्रों को संस्कृत पढने या वेद पढने का अधिकार न होने के प्रमाण कहां हैं, मगर सनातनी हिन्दू के रूप में मेरा दृढ मत है कि ऐसा प्रमाण हो भी तो हमें उसका शब्दार्थ करके उसके भाव को कुचलना नहीं चाहिए। मनुष्यों के जैसे शब्दों का भी विकास होता है और वेदवचनों का जो अर्थ बुद्धि और हृदय को न जँचने लायक हो, वह त्याज्य है। आपके ब्राह्मण बालकों जैसे ही संस्कृत का शुद्ध उच्चारण करनेवाले कितने ही अछूत बालक मैंने इसी मैसूर में देखे हैं, इस लिए अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म में स्थान हो ही नहीं सकता। आप को तकली चलाते देख कर मैं बहुत आनंदित हुआ। मेरी प्रार्थना है कि आप हाथ के सूत का सिर्फ जनेऊ भर ही बना कर सन्तुष्ट न हो जायँ। जनेऊ तो उसीका होना चाहिए, मगर कपडे भी उसीके होने चाहिए। विलायती कपडे पहने हुए ब्राह्मण-कुमारों का वेदपाठ करना मुझे बडा भोंडा सा लगता है। बाह्याचार में धर्म का रहस्य नहीं घुसा है, मगर बाह्याचार प्रायः ही अन्तर की भावना को प्रकट करता है। इस लिए जहां कहीं आर्य विद्या का अभ्यास चलता हो, वहां प्राचीन आर्यऋषियों की आर्यसंस्कृति और सादगी को देखने की मैं आशा रखता हूँ। मैं शिक्षकों और लडकों के माता-पिताओं से प्रार्थना करता हूँ कि वे यहां के विद्यार्थियों को आर्यसंस्कृति के अनुरूप खादी पहिनावें।'

हसन, होलेनरसीपुर

कलोझपेट और कनकनहल्ली, दो कसबे मैसूर के रास्ते में पडते हैं। यहां से ५५०) रु. की थैली मिली। श्री गंगाधर राव और राजगोपालाचार्य ने लोगों को खादी का महत्व समझाया।

इसके बाद हसन जिले में आये। यहां का सृष्टि सौन्दर्य तो त्रावणकोर की याद दिलाता है। मीलों तक आंखों को लुभावनी हरियाली ही छायी हुई है। खेती भी अच्छी होती है, फल खूब होते हैं, और किसान भी सुखी मालूम पडते हैं। पर तौभी यहां चर्खे का स्थान न होवे, ऐसी कोई बात नहीं है। होलेनरसीपुर में आज भी ५० चर्खे चलते हैं। दोनों स्थानों में ११००) रु. की खादी की बिक्री [illegible] हसन में १०००), और होलेनरसीपुर में ६००) की थैली [illegible] खादी कार्यकर्त्ता पहले शायद ही आया हो इसलिए [illegible] पहले ही श्री राजगोपालाचार्य और गंगाधर [illegible] से खादी का अर्थशास्त्र समझाते [illegible] पाठशाला में राजगोपाला- [illegible] उन्होंने खादी पर [illegible] थी था।

शिक्षक और विद्यार्थी सभी खुश खुश हो गये। आगे कभी हो सका तो यह पाठ भी दूँगा।

(नवजीवन और यं. इं. में से) **महादेव देसाई**

पादरियों से बातें

सेवा-कला

उस दिन यूनाइटेड थियोलोजिकल कौलेज में पादरियों से गांधी जी की कुछ बातें हुई थीं। कौलेज के ध्येय 'तुम सेवक हो सेव्य नहीं' पर गांधी जी ने भाषण किया। उन्होंने कहा कि "इस देश में सेवा का पहला अस्त्र है, हिन्दी का ज्ञान, इस लिए सेवाभिलाषी पादरियों को हिंदी सीखनी चाहिए। यह पुरानी पीढी का दोष है कि हमें अँगरेजी के जरिये ही काम करना पडता है मगर अगर आप विन्ध्याचल के उस पार भी सर्वसाधारण में प्रवेश करना चाहते हों तो आपको हिन्दी सीखनी ही पडेगी। आपने चर्खे का समर्थन करके मेरा काम कुछ सहज कर दिया है। आपने दलित जातियों का भी नाम लिया है। मगर आप जानते नहीं कि उनसे भी बुरी हालत में करोडों आदमी हैं, और सच्चा हिन्दुस्तान तो उन्हीं लोगों का है। आप रेलवे के रास्ते को छोड कर दीहातों में भीतर तक प्रवेश कीजिए तो उन्हें देखियेगा। उनकी सेवा करने का क्या रास्ता है? टाल्स्टाय ने एक रास्ता सुझाया है, 'अपने पडोसी के गलग्रह न बनो।' बस अगर इतना ही भर सब कोई कर लेवें तो फिर सारी बात बनी बनायी है। आप इसे छोड कर दूसरा रास्ता सोच सकें तो बतलावें, मैं सत्य का पुजारी होने से जिसमें सत्य देखूँगा उसीके पीछे चलूंगा।

"अमेरिका से किसी पादरी मित्र ने चर्खे के बदले अक्षर शिक्षा का प्रचार करने को मुझे कहा है। वे तहेदिल से लिखते हैं। इस लिए मुझे खेद होता है। साक्षरता है तो बडी अच्छी चीज, मगर लडके को अक्षर-ज्ञान देने के बदले ज्यादे जरूरी है, उसका बदन ढँकना, पेट भरना, और पेट भरने की शिक्षा देना। मेरे जानते तो खुद यीशू ख्रीष्ट भी कोई विशेष पढे लिखे नहीं थे। बाइबिल में कहीं अक्षर-ज्ञान पर विशेष जोर नहीं दिया गया है। मैं यहां पर अक्षर-ज्ञान के महत्व पर पर उचित से अधिक जोर देने का विरोध कर रहा हूँ।

" आपके 'खादी का संरक्षण करने' के शब्द को मैं पसन्द नहीं करता। इसमें बुरी बू बसी हुई है। आप संरक्षक बनेंगे या सेवक? जबतक खादी का संरक्षण होता रहेगा, वह सिर्फ फैशन की ही चीज बनी रहेगी। जब वह दिल की आग बनेगी तभी सेवा का चिह्न बनेगी और खादी पहनते ही आप सेवा करना शुरू कर देंगे। मैं अपने ३५ साल के अनुभव से कह सकता हूँ कि सेवा-कला अत्यन्त सहज है। वह स्कूल कौलेजों में तो नहीं सिखलायी जाती है, मगर वह जहां कहीं सीखी जा सकती है। मेरी प्रार्थना है कि भगवान् आपको योग्य सेवक बनावें।"

बाइबिल को फिर पढो

बंगलोर के पादरियों से दूसरी बार बातचीत में गांधीजी ने और बातों के साथ यह भी कहा था कि,

"मेरे और आपके काम में पहला अन्तर तो यह है कि मैं लोगों के विश्वासों, श्रद्धाओं को दृढ करता हूँ और आप उनकी जड खोदते हो। अगर लोगों के विश्वासों को आप एक निश्चित बात मान कर चलें तो आपकी सेवा अधिक लाभदायक होगी। इसे समझने के लिए आप बाइबिल को फिर एक बार पढिए, और जीवन के अनुभवों के प्रकाश में उनका अर्थ लगाइए। मैं यह बात अनुभव कर रहा हूँ कि मनुष्यों के जैसे शब्दों का भी विकास होता

है और उसीके अनुसार उनका अर्थ लगाना चाहिए। जैसे ईश्वर को सभी कोई एक ही अर्थ नहीं समझते। अगर कोई संथाल ईश्वर का एक अर्थ समझता है तो उसके पडोसी रवीन्द्रनाथ कहीं दूसरा ही। सनातनी भले ही ईश्वर की मेरी परिभाषा को इनकार करें, मगर ईश्वर तो सभी प्रकार की गालियों और गलतियों को सहता आया है, और सहता रहता है। अगर हम सबके आत्मिक अनुभवों को इकठ्ठा करें तो मनुष्य स्वभाव की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकेगी। हमारी बुद्धि समझ नहीं सकती इसलिए ईश्वर को ही पंगु न बना डालो। आपलोग यहां पर शिक्षक बन कर आये हैं। मगर यहां से बदले में कुछ लिए बिना आप दे नहीं सकते। अगर आपको अपने अनुभवों के सुन्दर फल देने है तो दिल खोल कर इस देश के ज्ञान रत्न लीजिए और आप निराश न होंगे, आपने बाइबिल का गलत अर्थ नहीं समझा होगा"

इसके बाद रोचक प्रश्नोत्तर हुए।

प्रश्न—तब हम कर क्या रहे हैं? क्या हम ठीक रास्ते पर हैं?

उत्तर—आप लोग गलत रास्ते सही काम करने जा रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि लोगों को अपने विश्वासों के अलावा आप कुछ और बतलावें, न कि उनकी जड खोदें। हम अगर हिंदू हैं तो हमें अच्छे हिन्दू बनाइए, यानी सच्चे मर्द और औरत बनाइए। ईसाई होने से ही कोई सबसे अलग क्यों हो जाय? लडकपन में मैं सुना करता था कि ईसाई होने के मानी हैं शराब पीना, और गोमांस खाना। अब वह हालत सुधरी है, मगर अब भी ईसाइयत के मानी हैं, अराष्ट्रीय बनना, यूरोपियन रंग में रँग जाना। क्या अच्छे होने के लिए हम अपनी सादगी छोड देवें? हमारी सादगी पर तो चोट न कीजिए।

प्र०—हमारे सामने, सेवा और शिक्षा के अलावा तीसरा काम ईसाइयत के प्रचार का भी है यानी ख्रीस्तख्रीष्ट के आगमन और हमारे पापों के लिए उनके आत्मबलिदान का शुभ संदेश सुनाने का भी है। इसे बतलाने का सही तरीका क्या है? लोगों की श्रद्धा को नष्ट न करते हुए भी हम छोटी चीजों में विश्वास को कम तो कर सकते हैं।

उ०—यह तो शास्त्र का अर्थ लगाने का मौका आ पडा, मगर मैं वह नहीं करूँगा। सिर्फ १९०० वर्ष पहले एक ही बार ईश्वर ने आत्मबलिदान नहीं किया था। वह तो रोज ही आत्मबलिदान कर रहा है। तब किसी ऐतिहासिक, दो हजार वर्ष पुराने ईश्वर के बदले, आप रोज रोज ईश्वर का दर्शन कराइए, धर्मभीरु जीवन का उदाहरण दिखलाइए। ऐन्ड्रयूज तो कभी धर्मोपदेश नहीं करते। वह चुपचाप अपना काम करते जाते हैं और आत्मबलिदान का गौरव भी नहीं लेते। मैं सैकडों सच्चे ईसाइयों को जानता हूँ मगर ऐन्ड्रयूज सा मुझे कोई नहीं मिला।

प्र० पर, पाषाण-पूजा का क्या करें? क्या उन्हें सुधारा न जाय?

उ० हम लोग इतने दिनों से अछूतों के बीच काम कर रहे हैं, मगर हमने कभी उनके विश्वासों की फिक्र नहीं की है। सही रास्ते पर चलना शुरू करते ही वहम वगैरह दूर हो जाते हैं। मैं तो इसीका खयाल रखता हूँ कि वे ठीक काम करें, चाहे विश्वास कुछ भी करें। विश्वास तो अपने आप ही दुरुस्त हो जाते हैं।

प्र० आप सादगी सिखलाते हैं। मगर मोटरकार के इस युग में हम क्या करें? मोटरकार के बिना तो आप भी यहां नहीं आ सकते थे।

उ० मोटरकार तो आवश्यक नहीं है। यीशू, और मह[illegible] तोडने में तो मोटरकार नहीं थी, मगर इससे उनका काम क[illegible] था। अटका क्या? अगर परमात्मा आपके द्वारा शुभ कार्य कराना चाहता है, तो उसके जरिये भी वही ढूँढ लेगा। नम्रता और सादगी, केवल ऊपरी चीजें ही नहीं हैं। वे अन्दर से आनी चाहिए। मैं अपनी बात कहूँ? द० अफ्रिका में जो १६,००० आदमी एक साथ उठ खडे हुए थे, उनमें अधिकांश ने तो मुझे देखा भी नहीं था, मेरा भाषण सुनना तो दूर की बात है और मैंने वहां भाषण भी तो बहुत ही कम किये।

प्र० मगर जब हमारा विश्वास है कि केवल ईसाई धर्म ही सच्चा धर्म है तो हम औरों का खंडन किये बिना कैसे रह सकते हैं?

उ० यह विचार मुझे सहनशीलता के सिद्धान्त पर लाता है। आप अगर दूसरों के धर्म को सच्चा नहीं मानते तो उन आदमियों को तो सच्चा मानो। ईसाई धर्म में पहले की असहनशीलता अब कम देखने में आती है नहीं तो ईसाई साहित्य समिति ने हिन्दू धर्म के क्या क्या न प्रहसन छापे हैं। उस दिन एक ईसाई औरत ने लिखा था कि तुम ईसाई हो जाओ नहीं तो तुम्हारा सारा काम बेकार जायगा। उसका ईसाई धर्म ऐसा ही होगा! मैं इतना ही कह सकता हूँ कि ऐसा मनोभाव ही गलत है।

(यं० इं० में से) **महादेव देशाई**

खादी प्रवृत्ति

पंजाब छोड कर हम दिल्ली प्रान्त में घुसे। सारे दिल्ली प्रदेश में खादी बनानेवाला एक ही केन्द्र 'हापुर' गांव में है। यह केन्द्र भाई चिरंजीलाल प्यारेलाल चलाते हैं। ३५००) रुपयों की पूँजी से वहां पर १५ मन खादी हर महीने तैयार होती है। ३६ इंच पनहे के ताने में १३०० तार डाल कर बुनी हुई खादी ८ आने गज बिकती है। खाड़ा, तौलिया दूसरी जगहों से यहां अच्छी और सस्ती बनती हैं। धुनने का काम तो यहां भी धुनिये से ही करा लेने का रिवाज है। पूनी छोड कर, सिर्फ धुनाई के यहां, २ आने सेर में लगते हैं। हापुर गांव में और आसपास के दो गावों में हम कातनेवालियों को देखने गये थे। इनमें कितनी कातनेवालियां पुराने गदेलों की रुई कातती हुई मिलीं। इसका सूत यहां पर रुपये में दो ढाई सेर के हिसाब से बिकता है। भाई चिरंजीलाल ने भी ऐसा सूत पहले ही देखना इकरार किया। ऐसी कताई देख कर हम यह बात और भी अधिक समझ सके कि कातनेवालियों के साथ खादी कार्यकर्ताओं का कितना अधिक संबंध होना चाहिए। कातनेवालियों ने धुनाई का काम देखा और सीखना कबूल किया। श्री. रघुवीर नारायण चौधुरी जी भी यहां के खादीकाम में पूरा हाथ बँटाते हैं और उनकी मदद से यहां पैदा होनेवाली खादी यहीं खपनी शुरु हो गयी है।

हापुर से हम उझानी आये। यहां भाई तुलसीराम चर्खासंघ की ओर से खादी बनवाते हैं। यहां के बाजार में भी एक रुपये में १४, १५ छटांक की दर से सूत बिकता है। धुनने का काम यहां भी, दूसरी जगहों जैसे धुनिये ही करते हैं। कातनेवालियां घर की कपास रखती हैं या बिकी की रुई खरीदती हैं। ९६ तोले के सेर से एक सेर रुई की धुनाई यहां ३ आने लगती है। केन्द्र के अधीन गांवों में भी हम घूमे। धुनाई, देरागियों की सेवा कातनेवालियां खूब इकठ्ठी होतीं [illegible] कहतीं [illegible]माल का अवसर कभी यह आवेगा सही, मगर [illegible] की हिम्मत ने हमें निडर कर डाला। अच्छी पूनी की [illegible] सेवा करने को ही नहीं थी। उन्हें दवा देनी, देख कर [illegible], पानी पिलाना, और उनका मैला साफ करने के [illegible]लावा और कुछ करने ही को नहीं था।

चार जवानों की हाड तोड मिहनत और निडरता से मेरे हर्ष का पार न रहा।

अमरसर

पीछे हम राजपूताने गये। राजपूताने में हमें पहले अमरसर जाना था। वहां जाने के लिए, हमें गोविंदगढ स्टेशन पर उतर कर रात में रहना पडा। गोविंदगढ में हमारा धुनने का काम खूब जोर शोर से चला। सबेरे हम बैलगाडी के रास्ते अमरसर को निकले। दोपहर में एक बजे पहुँचे। अमरसर में कातने की पुरानी चाल अभी चली ही जाती है। व्यापारी लोग कपास खरीद कर, हाथ ओटे से उसे ओटवाते और रुई रख छोडते हैं। धुननेवाले रुई खरीद कर, पूनियां बनाते और कातनेवालियों को बेंचते हैं। कातनेवालियां जुलाहों को सूत बेंचती हैं और जुलाहे सूत को बुन कर हमारे कार्यालय में बेंचते हैं। यों कहने से भी चल सकता है कि हमारा संबन्ध वहां पर केवल जुलाहों से ही है। जुलाहों को सूत खरीदने के लिए कार्यालय की ओर से अगाऊ रुपया दिया जाता है, जो कपडा खरीदते समय हफ्ते हफ्ते कटता जाता है। ८० तोले के सेर से वहां की कितनी चीजों की दर नीचे देता हूं:

१ रुपये में	कपास ५ सेर
,, ,,	रुई २ सेर १० छटांक
,, ,,	बिनौले ९ सेर
,, ,,	पूनी १ सेर ४ छटांक
,, ,,	सूत औसतन १ सेर

३० सेर कपास की ओटाई के १) रु. मिलता है। अमरसर के व्यापारी हमसे मिलने आये थे। तब उन्होंने ऊपर के भाव लिखाये थे। उन्होंने हमारे खादी कार्यालय की शाखा को कई शिकायतें भी कीं। वे फरियाद ये हैं:

हमारी शाखा खुलने बाद

१. धुनाई की दर बढी है और धुनिये पूनी महँगी बेंचते हैं।

२. कताई की दर बढी है और इस कारण सूत का परता महँगा पडता है।

३. बुनाई की दर बढी है, जिससे खादी महँगी हुई है।

४. व्यापारी अनुभव के बिना लोगों को व्यवस्थापक बनाने से व्यवस्थाखर्च बढा है।

इन कारणों को लेकर खादी महँगी पडती है और इसलिए हमलोग खादी नहीं पहनते।

पदार्थ पाठ

इन फरियादों के बाद, हमारे बीच ये बातें हुईं:

'आप के पास रुई है न?'

'हां।'

'आप के घर की स्त्रियां कातती हैं?'

'हां।'

'तब आप अपनी जरूरत, मुआफिक काफी रुई खुद धुन लेवें तो इसमें क्या बुरा? पैसा भी बचेगा और सूत सुधरेगा'

'हमसे यह कैसे बनेगा?'

'देखिए,' कह कर हम धुनने लगे। 'ओहो, यह इतना सहज और [illegible] इतना सुन्दर है! हम भी जरूर सीखेंगे और धुनेंगे।' वे बोल उठे। [illegible] हमने [illegible]नाई का यहां पर प्रचार न हो सकने का कारण, यहां के [illegible] खादी [illegible]तलाया कि लोग, तांत को छूने से घबराते हैं। [illegible] पहले ह[illegible] 'भल[illegible] तो दूस[illegible] पींजते ही होंगे।' तब [illegible] से खादी का [illegible] शुरु करेंगे। यहां [illegible] पाठशाला में राज[illegible] [illegible]न्होंने खादी पर [illegible] खा[illegible] [illegible]हीं था। अनुभव

'नहीं।'

'आज के जैसा कच्चा सूत, इतना घना बुनने में जुलाहों का गुजर कम मजदूरी से होगा?'

'नहीं।'

'आप अपने पहनने के लिए कैसा कपडा पसंद करेंगे? झांझर वा घना बुना हुआ?'

'घना बुना हुआ।'

'तब क्या आप यह नहीं मानेंगे कि बुनाई में सुधार करने से बुनाई की दर बढी है?'

'सच तो है।'

'अब व्यवस्था खर्च की फरियाद पर विचार करें। आप खादी के सिवाय कोई और भी रोजगार करते हैं?'

'हां।'

'क्या विलायती कपडा भी लाकर बेंचते हो?'

'हां।'

'इसका कारण क्या है?'

'खादी से हमारा गुजर नहीं होता।'

'ठीक। पर विलायती कपडा पहनता कौन है?'

'हमीं तो।'

'तब तो आप ही न विलायती कपडा पहिन कर खादी के रोजगार को गुजर न चलाने लायक बनाते हो?'

'हां, तो।'

'और आप के घर की स्त्रियों को इससे जो सहारा मिलता था वह भी छीन लिया?'

'यह भी ठीक ही है।'

'धुनिये की भी रोजी मारी।'

'हां।'

'कपास ओटने का धंधा भी नष्ट कर दिया।'

'हां।'

'परदेशी कपडे ने आपका पालन तो किया, मगर औरों का क्या हुआ?'

'सब का विचार हमने नहीं किया। आज तो सभी रोजगार मंदे हो पडे हैं। माल खरीदने के लिए लोगों के पास न पैसा है और न काम ही है।'

'तो फिर आप विलायती कपडे का रोजगार किस लिए छोडते नहीं और खादी क्यों नहीं पहनते?'

'खादी पहनना पार नहीं लगता और विलायती कपडा छोड देवें तो पेट कैसे भरे?'

'खादी का काम सीख लीजिए और दूसरों को भी सिखलाइए। अगर सिर्फ पेट ही भरने को चाहिए तो इतना तो खादी काम आप को जरूर ही देगा। क्यों सीखना है न?'

'सीखना ही पडेगा? दूसरा क्या करेंगे?'

'तब, जब तक आप सीखते हैं, तब तक बाहर के आदमियों को रख कर हम खादी बनवावें तो उसमें कुछ दोष नहीं है न?'

'नहीं।'

'आप क्या परदेश में भी उतने ही पर रह सकते हैं जितनी आमदनी पर कि यहां?'

'नहीं।'

'तो जो आदमी बाहर से आये हैं, उनका खर्च आप से अधिक पडता है तो इसमें नवीनता कैसी?'

'हम अपनी भूल समझ गये हैं और जब तक हम सी[illegible] बाहर के आदमियों को निभा ले चलेंगे, उन्हें मदद करेंगे।'

(नवजीवन) लक्ष्मीदास पुरुषो[illegible]



क्या यह विवाह है ?

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक २

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, भाद्रपद सुदि ५ संवत् १९८४ गुरुवार, १ सितम्बर १९२७ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय १५

महामारी—१

इस लोकेशन को म्युनिसीपैलिटी ने ले तो लिया मगर हिन्दुस्तानियों को वहां से तुरत हटाया न था। उन लोगों को दूसरी अनुकूल जगह देने की बात तो थी ही। वह जगह म्युनिसीपैलिटी ने ठीक नहीं की थी। इस लिए हिन्दुस्तानी उसी 'गंदे' लोकेशन में रहे। मालिक से बदल कर हिन्दुस्तानी शहर-सुधार विभाग के भाडेदार बने और गंदगी बढी। पहले जब हिन्दुस्तानियों की मिल्कियत गिनी जाती थी तब वे इच्छा से नहीं तो डर के मारे भी कुछ न कुछ तो सफाई तो रखते ही थे। अब 'सुधार' विभाग का डर किसे हो? मकानों में किरायेदार बढे और अव्यवस्था बढी।

यों चल रहा था। हिन्दुस्तानी भविष्यत की फिक्र में पडे हुए थे। इसी बीचमें प्लेग फैला। यह महामारी तो जीव लेनेवाली थी। यह फेफडे की महामारी थी। यह गिलटीवाली बीमारी से भी अधिक भयंकर गिनी जाती थी।

सद्भाग्य से रोग का कारण लोकेशन नहीं था। उसका कारण जोहान्सबर्ग के आसपास की सोने की कई खानों में से एक थी। वहां खास कर हबशी काम करते थे। वहां सफाई की जिम्मेदारी तो केवल गोरे मालिकों की ही थी। इस खान में कई हिन्दुस्तानी भी काम करते थे। उनमें तेईस को एका एक छूत लगी और एक सांझ को वे भयंकर रोग के भोग बन कर अपने स्थान पर लोकेशन में आये।

इस समय भाई मदनजीत 'इन्डियन ओपीनियन' के ग्राहक बनाने के लिए चंदा वसूल करने आये थे। वे लोकेशन में घूम रहे थे। उनमें निर्भयता का गुण खूब था। ये रोगी उनकी नजरों में पडे और उनका हृदय उबल उठा। उन्होंने पेन्सिल से लिख कर मेरे पास एक चिट भेजी। उसका आशय यह था: 'यहां प्लेग एकदम फूट निकला है। आपको तुरत आकर कुछ करना चाहिए, नहीं तो भयंकर परिणाम होगा। तुरत आइए।'

मदनजीत ने एक खाली मकान पाकर निडर होकर उसका ताला तोड कर, कब्जा कर लिया था और उसमें रोगियों को रक्खा था। मैं अपनी बाइसिकिल पर चढ कर लोकेशन में पहुंचा। वहां से टाउन कलार्क को पूरी खबर भेजी कि कैसी हालत में मकान पर कब्जा कर लिया गया था।

डाक्टर विलियम गोडफ्रे जोहान्सबर्ग में डाक्टरी करते थे। खबर पाते ही वे दौडे आये और रोगियों के डाक्टर और नर्स बने। पर तेईस रोगियों की सेवा सिर्फ हम तीन आदमियों से ही हो सकनेवाली नहीं थी।

मेरा यह विश्वास अनुभव के उपर से बना है कि शुद्ध दयानत हो तो सेवकों को संकट ही बुला देता है!

मेरे दफतर में कल्याणदास, माणिकलाल और दूसरे दो हिन्दुस्तानी थे। अखीरी दो के नाम इस समय मुझे याद नहीं हैं। कल्याणदास को तो उसके बाप ने मुझे सौंप दिया था। उसके जैसे परोपकारी और केवल आज्ञा माननेवाले सेवक मैंने वहां कम ही देखे होंगे। कल्याणदास तब ब्रह्मचारी थे। उन्हें जिस किसी जोखम के काम में डालते हुए मैंने कभी संकोच किया ही नहीं। दूसरे माणिकलाल मुझे जोहान्सबर्ग में ही मिले थे। मुझे याद आता है कि वे भी कुंवारे ही थे। इन चार मुंशियों को, साथी कहो या पुत्र कहो, उसमें होमने का मैंने निश्चय किया। कल्याणदास को पूछने का भी क्या होवे? दूसरे पूछते ही तैयार हो गये। 'जहां आप वहीं हम भी।' यही तो उनका छोटा मगर मीठा सा जवाब था।

मि. रीच का बडा परिवार था। वे आप तो काम करने को तैयार थे, मगर मैंने ही उन्हें रोका। उन्हें इस जोखम में डालने को मैं बिलकुल तैयार न था। मेरी हिम्मत ही नहीं थी। तौभी उन्होंने बाहर का सारा काम किया।

सेवा की यह रात भयंकर थी। मैंने बहुत से रोगियों की सेवा की थी, मगर प्लेग के रोगी की सेवा सँभाल का अवसर कभी नहीं मिला था। डाक्टर गोडफ्रे की हिम्मत ने हमें निडर कर डाला। रोगियों की अधिक सेवा करने को ही नहीं थी। उन्हें दवा देनी, आश्वासन देना, पानी पिलाना, और उनका मैला साफ करने के अलावा और कुछ करने ही को नहीं था।

चार जवानों की हाड तोड मिहनत और निडरता से मेरे हर्ष का पार न रहा।

डाक्टर गोडबोले की हिम्मत समझी जाय, मदनजीत की समझ में आवे, मगर इन जवानों की क्या कहें ? रात ज्यों त्यों कर बीती। मुझे याद है कि उस रात को हमने एक रोगी भी नहीं खोया।

पर यह प्रसंग जितना करुणाजनक है उतना ही रोचक और मेरी दृष्टि से धार्मिक है। इससे उसके लिए अभी दो और अध्याय चाहिए ही।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

कहीं भूल न जायँ

गुजरात की बाढ़ों की ओर सबका ध्यान खिंच जाने से उडिस्सा और सिंध की बाढ़ों के भूल जाने का कुछ भय है। शायद गुजरात से अधिक कष्ट सिंध में और सबसे अधिक उडिस्सा में उठाना पड़ा है क्योंकि वह तो सबसे गरीब, सबसे कम संगठित प्रांत है। गुजरात ने कार्यकर्त्ताओं की एक सेना पैदा कर डाली है, जिनकी संख्या कभी से वल्लभभाई को फेर में डालने लगी है। आखिर, सब जगह व्यापारी वर्ग ने ही हाथ खोल कर रुपये दिये हैं, और वे ही मुसीबत के दिनों में संकट निवारण का सब से अच्छा संगठन कर सके हैं। वे गुजराती, जिनकी गुजरात में काम के लिए जरूरत न हो, या जिन्हें गुजरात में से उबारा जा सकता है, उधर को नजर फेरें, जहां की जरूरत सबसे बड़ी हो। गुजरात की मुसीबत, और प्रान्तों की आवश्यकताओं की ओर से गुजरातियों को अन्धा न बनावे। मौजूदा विपत्ति का उपयोग, हमें कम प्रान्तीय, और अधिक राष्ट्रीय भावनाओंवाले बनाने में करना ही होगा। खुदा के तीस करोड़ बन्दों में से जो इस भारतभूमि में रहते हैं, छोटे से छोटे और दूर से दूर पर वाले के साथ हमें अपनापन अनुभव करना होगा।

वफादारी की कसौटी

अखिल भारत चर्खा संघ के सदस्यों की तायदाद का खाता देखने से एक तकलीफदेह बात मालूम होती है। 'अ' वर्ग के १९८० सदस्यों में से १२५५ ने सूत कात कर देने के अपने वचन के पालन में ढिलाई की है। कोई यह न सोचे कि बजाय खुद कात कर सूत देने के अगर यह महज मामूली सा, पैसे का चन्दा होता तो, नतीजा कुछ दूसरा होता। किसी वजह से लोग अपने ऊपर आप लिये हुए उन फरायज को अदा करने में लापर्वाई दिखलाते हैं, जिनको तोड़ने से तुरत ही सजा नहीं मिलती। मगर जब तक किसी कौम में ऐसे लोग अधिक नहीं होंगे जो बिना किसी भारी पड़नेवाली सजा के ही, स्वेच्छा से लिये गये कार्य को करें, तब तक उसकी उन्नति धीमे ही धीमे होगी। सदस्य तो किसी संस्था की सदस्यता छिन जाने की कोई पर्वा नहीं करते, अगर उससे उनका कोई माली या दूसरे किसी किस्म का नुकसान न होता हो, बल्कि कुछ लोग तो वैसी संस्था में शामिल होकर मानते हैं, कि हम इस पर अपनी छत्रच्छाया डालते हैं और जिसकी इस संस्था को पूरी हिफाजत करनी चाहिए। अगर ऐसे खयालवाले कोई अखिल भारत चर्खा संघ के सदस्य हों तो मैं उन्हें चेता देता हूँ। संघ में रहना तो एक बड़ा भारी गौरव समझना चाहिए क्योंकि सिर्फ आधे घन्टे के स्वतंत्र काम के जरिये, जिसे छोटे बड़े, मर्द औरत सभी कर सकते हैं, वे इस महान आन्दोलन में शरीक हो जाते हैं। इस लिए मैं पीछे पड़नेवाले मेम्बरों को कहूंगा कि वे सूत भेजने में समय का वैसा ही खयाल रक्खें जैसा कि वे रेलवे ट्रेन पर जाने या दफ्तर में जाने के लिए रखते हैं। वे याद रक्खें कि सूत की कीमत के अलावा, करोड़ों, गूँगे लोगों की याद रोज करने की आदत लगाने और रोज आधे घन्टे तक देश के लिए और अपने लिए एकसा बराबर सूत कातने में ध्यान लगाने की कुछ कम कीमत नहीं है। मैं समझता हूँ कि हर एक पीछे पड़नेवाले मेम्बर को याद दिलाने की चिट्ठी मिल गयी है। पीछे पड़नेवाले मेम्बर समझ लेवें कि हर यादगारी में पत्र लिखनेवाले लोगों के मुशाहरे के अलावा दो दो पैसे का खर्च पड़ता ही है। कहा जाता है कि डाक खर्च बचाने के लिए कुछ लोग कई कई महीनों तक सूत रोके रखते हैं और एक साथ भेजते हैं। डाक खर्च बचाने का खयाल उचित ही है। मगर जो डाक खर्च बचाना चाहते हैं, वे अपना सूत अगाऊ ही भेज देवें। यह सभी पाठकों की समझ में आ जायगा कि एक महीने में १२,००० गज सूत कात लेना कुछ उतना मुश्किल काम नहीं है। और एकबार बारह हजार गज भेज चुकने के बाद जो लोग रोज नियमित रूप से आधा घन्टा कातना करेंगे, उन्हें चाहे लाख भीड़ हो मगर कभी मुश्किल नहीं पड़ेगी। और अगर सजा का ही उन पर कुछ असर होवे तो वे याद रक्खें कि अ० भा० चर्खा संघ के पहले पांच वर्षों के बाद, जब इसका नियम, और विधान वगैरह बनाने का समय आवेगा, तब, सदस्यों को और अधिकार देने के समय, वह सजा उन्हें जरूर भोगनी ही पड़ेगी।

दीक्षा कौन ले?

जावरा रियासत में गुलाब बाई नाम की एक ओसवाल सौभाग्यवती बहिन है। उसने हिन्दी में एक पत्रिका छपवा कर बँट वायी है। उससे मालूम पड़ता है कि उसके पति ने जो अभी छोटी उम्र का है, दीक्षा लेने के इरादे से घर छोड़ा है और इस मतलब का पत्र अपनी १६ वर्ष की उम्र की पत्नी के नाम लिखा है: "आज दो वर्षों से दीक्षा लेने की मेरी इच्छा हो रही है। मैं बराबर कुटुंब की आज्ञा माँगता आ रहा हूं। यहां आकर भी ५,६ पत्र लिखे, मगर अभी आज्ञा नहीं मिली। अब मैंने आप ही दीक्षा लेने का विचार किया है।" इस पति की ६० साल की बूढ़ी माता है। उनके विषय में जिस सज्जन ने मुझे पत्र भेजा था, वे और बातें पूछने पर लिखते हैं, "गुलाब बाई ने साधारण शिक्षा पायी है। हिन्दी लिखना पढना जानती है। उसने जो भाव बतलाये उसके अनुसार उसके मित्रों ने पत्रिका लिख दी, और अपने भाई के साथ जा कर वह उसे आप छपा लायी। पति सामान्य हिन्दी पढ लिख लेना जानता है। कुटुंब की स्थिति नाजुक है। अब तक किसीने इसे दीक्षा नहीं दी है।"

मुझे उमेद है कि इस नवयुवक को कोई दीक्षा नहीं देगा, और इतना ही नहीं बल्कि वह आप ही अपना धर्म समझेगा। छोटी उम्र में बुद्ध या शंकराचार्य जैसे ज्ञानी दीक्षा लेवें तो यह सकता है, है, मगर अगर हर एक जवान दीक्षा लेने लगे तो वह अपने धर्म को शोभा देने के बदले लजावेगा। आजकल की ली जानेवाली दीक्षा में कायरता के सिवाय और कुछ दिखलायी पड़ता नहीं और इसीसे साधु लोग भी तेजस्वी होने के बदले, हमीं लोगों जैसे दीन और ज्ञान-हीन होते हैं। दीक्षा लेनी पराक्रम का काम है, और इसके पीछे पूर्वजन्म का महा संस्कार या इस जन्म की कमाई अनुभव-ज्ञान होना चाहिए। वृद्ध माता और तरुण पत्नी का कुछ भी विचार किये बिना, दीक्षा लेनेवाले को इतना वैराग्य होना चाहिए की आसपास का समाज उसे समझे बिना नहीं रहे। ऐसी कोई संपत्ति इस जवान के पास देखने में नहीं आती।

पर दीक्षा लेने को उत्सुक जवान, दीक्षा का अधिक विस्तृत अर्थ क्यों नहीं कर सकता? अभी तो संसार धर्म पालनेवाले भी बहुत कम देखने में आते हैं। घर बैठे दीक्षा पाये हुए जैसा जीवन

बिताने में कुछ थोडा पराक्रम नहीं चाहिए, और असल कसौटी तो उसी में होती है। बहुत से दीक्षा लिये हुओं को मैं जानता हूँ। वे बेचारे सरलता से कुबूल करते हैं कि उन्होंने न तो प्रमाद को जीता है, न पांच इन्द्रियों को जीता है। दीक्षा लेकर तो उन्होंने अपने खाने पीने की और भी अधिक सुविधा कर ली है। संतोषपूर्वक पवित्र रह कर सत्य का पालन करते हुए घर गिरिस्ती चलानी, परस्त्री को माया बहिन सी जानना, अपनी स्त्री के साथ भी मर्यादा में रह कर ही भोग भोगना, शास्त्रादि का अभ्यास करना और यथाशक्ति देश की सेवा करनी—यह कुछ ऐसी वैसी दीक्षा नहीं है। दीक्षा का अर्थ आत्मसमर्पण है। आत्मसमर्पण बाहरी आडंबर से नहीं होता, यह मानसिक वस्तु है। और उसके साथ कितने ही बाह्याचार आवश्यक हो पडते हैं, मगर वे शोभेंगे तो तभी जब वे अंतरिक त्याग के बाहरी चिह्न भर होवें। उसके बिना वह केवल निर्जीव पदार्थ है।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

वर्णसंकर प्रजा का क्या हो ?

फ्रेन्च अफ्रिका से आये हुए एक भाई का दुःखद पत्र मिला है। उसका मतलब यह है: "इस मुल्क में वर्णसंकर प्रजा बहुत है। इसकी उत्पत्ति में हिंदू मुसलमान सबका हाथ है। व्यापार के लिए यहां आकर, जिस किसी हबशी औरत को लेकर घर में बैठा लेते हैं। उससे जो संतान होती है, उसकी खोज खबर नहीं लेते। वे तो जैसे तैसे बडे होते हैं। जब ये व्यापारी घर लौटते हैं तो इन गरीब औरतों और अपने बच्चों को भूल जाते हैं। उनके भरण पोषण भर के लिए भी नहीं छोड जाते। और जब उनके भरण पोषण के लिए मेरे जैसे कोई आदमी कुछ करते हैं तो कोई मदद नहीं करता। ऐसी वर्णसंकर प्रजा के प्रति मेरा और दूसरे हिन्दुस्तानियों का क्या धर्म है? क्या आप मानते हैं कि पाप से उत्पन्न संतान का पालन पोषण करने से पाप का ही पोषण होता है? और इस लिए उनके प्रति हमारा कोई धर्म नहीं है? जो आप यह मानते हैं तो यह भी जरूर विचार करेंगे कि कोई न कोई तो इनका बेली बनेगा ही। ईश्वर उनको बिलकुल नेस्त नाबूद होने नहीं देगा और तब पीछे से यही लोग क्या हमारे दुश्मन नहीं बनेंगे? दुश्मन बनने के लिए उन्हें क्या कोई दोष दिया जा सकेगा? अथवा क्या यही नहीं कहा जायगा कि ऐसी संतान पैदा करने वाले और उन्हें रास्ते में भूखा छोडनेवाले, अपने और अपनी जाति के नाश के हथियार बना रहे हैं?"

जो हालत इन भाई ने लिखी है, वही हालत मैंने खुद डेलागोआ बे आदि शहरों में देखी है। जितनी देखी है उससे अधिक मित्रों और मुवक्किलों से सुनी है। बेशक यह स्थिति दुःखदायक है। मुसलमान भाई ऐसी स्थिति में दयाधर्म पालते हैं। धर्म के नाम पर या उसके बहाने हिन्दू बहुत कठोर बनते हैं।

परजाति की स्त्री के साथ संबंध जोडने में मुसलमान अधर्म मानते नहीं जान पडते। हिन्दू, ऐसे संबंध में अधर्म मानते हुए भी जोडते हैं और इससे विषयभोग करते नहीं डरते, मगर उसके परिणाम की जवाबदारी से डरते हैं, अपने ही बच्चों से घबराते हैं। कोई तो उन्हें मुसल्मानों को देता है तो कोई ईसाइयों को सौंप देता है और भले हुए तो किसी को न सौंप कर, एक पैसा भी दिये बिना, यों ही भाग आते हैं। अफ्रीका की हबशी जाति भोली और ज्ञान-हीन है, इससे उसे अपने हक का कोई खयाल नहीं होता। ऐसी स्थिति हमेशे तो नहीं रहेगी। उन्हींमें से कोई न कोई पढा लिखा जरूर निकलेगा ही। वह वैरभाव से लडेगा, गरीब औरतों को उनके हक का भान करावेगा, उनकी संतान से कानूनी या बेकानूनी झगडा करावेगा ही, और उस झगडे में सेर के माथे सवासेर के दुनियवी न्याय के अनुसार नीति अनीति का भेद न रखते हुए भी, संसार की राय अपनी ओर खींचेगा।

इस स्थिति में से निकलने के इलाज तो बहुत हैं। शुद्ध वस्तु तो यह है कि जो व्यापारी संयम न पाल सके वह अपनी स्त्री को साथ ले कर जावे। जो अकेला जाय, और किसी हबशी स्त्री के साथ सम्बन्ध करे तो विवेक का पालन करे, उस स्त्री के साथ प्रेम-भाव से बरताव करे, और उससे जो सन्तान उत्पन्न हो, उसका रक्षण करने का धर्म स्वीकार करे। वह समझे कि कानून के अनुसार तो उस गरीब औरत और उसके बच्चों का पालन करने को वह बँधा हुआ है। पर ऐयाश आदमी को धर्माधर्म या कानून का विचार नहीं रहता। विषय-भोग के नशे में वह पगला सा बना रहता है, और इसलिए ऐसे लेख ही वह किस लिए पढे? और पढे तो उनपर ध्यान तो आखिर देगा ही नहीं। इसलिए इस पत्र लेखक जैसे समाज-सुधारक को धर्म विचारना रहा। मुझे निश्चय है कि जब तक समाज में पापी आदमी हैं, तब तक समाज को उनके पाप का बोझ उठाना ही पडेगा, जैसे कि पुण्यशाली लोगों के पुण्य का लाभ समाज सुख से उठाया ही करता है। बिलकुल पापरहित तो कोई आदमी है ही नहीं। हम सभी पापी की टोली हैं। पर जो आचार की खास मर्यादा में रहते हैं, उनके पाप को समाज माफ कर के उन्हें पुण्यात्मा गिनता है, और जो उस मर्यादा का उल्लंघन करते हैं, उन्हें पापी गिना जाता है। इस तरह समाज की पापी और पुण्यात्मा की व्याख्या व्यवहार के अनुसार चलती है। ईश्वर के दरबार में तो हम सभी पापी गिने जानेवाले हैं और पाप के परिमाण में हमें सजा भी मिलेगी।

समाज की ऐसी दयावनी स्थिति होने से वर्णसंकर प्रजा का बोझ उसे उठाना ही पडेगा। इससे अफ्रिका में रहनेवाले समाज सुधारकों के पास दो रास्ते हैं: एक तो अदालत के जरिये, दूसरा अदालत के बाहर। दोनों रास्ते चलने का उन्हें अधिकार है। बाहर का मार्ग यह है कि वे दूसरे सुधारकों को इकट्ठा कर, धर्म का झगडा किये बिना, ऐसी प्रजा के पालन के लिए एक संस्था बनावें। बच्चे का बाप अगर उसे अपने पास रख कर अपने धर्मानुसार पालना चाहे तो लडके पर किया गया खर्च उससे वसूल कर सौंप देना चाहिए। जिस जिसके माबाप हाथ में आ जायँ, उनसे अपने लडके के पालन पोषण के लिए धन माँगना चाहिए और सहायता देने की शक्ति होते हुए भी अगर वे कुछ न देवें तो उन पर कानून के मुताबिक मुकदमा चलाना चाहिए। साथ ही नैतिक सुधार के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए। हबशी औरत के साथ रहनेवाला, अगर विवाहित हो तो उसे घर से अपनी स्त्री को बुलाने की विनती करनी चाहिए। पर ये भाई लिखते हैं: "हमारे भाइयों को ऐसी संस्था बनानी ही नहीं है। मेरी समझ में तो इस मुल्क का तीन चौथाई धन अनीति की कमाई है, और इस लिए वह पुण्य काम में नहीं लगाया जाता। या तो शराब में, या डाक्टर के बिल में, या सरकारी टैक्स में या इन तीनों में ही निकल जाता है।"

यह चित्र अगर हूबहू ठीक हो तौभी इस भाई को धीरज और शान्तिपूर्वक काम करने की मेरी सलाह है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, भाद्रपद सुदि ५ संवत् १९८४

क्या यह विवाह है ?

नीचे का पत्र मुझे तब मिला था, जब कि मैं पत्रव्यवहार करने लायक था ही नहीं, यानी मेरी बीमारी के शुरू के दिनों में। पत्र-प्रेषक ने ब्यौरे तो सभी दिये हैं, मगर मैंने लोगों के नाम निकाल डाले हैं :

"सदाशिवगढ, कारवार में, इस साल लग्न के दिनों में एक बहुत ही करुणाजनक विवाह समारोह हुआ है। लडकी १२ साल की है। उसके माता पिता, गोआ के रहनेवाले और बहुत गरीब हैं। वर ६० साल का है। उसकी पहली पत्नी तीन साल पहले, आठ नौ बच्चों में से दो लडके छोड कर मरी थी। वर एक अँगरेजी शाला का संस्थापक है। परसाल उसने कमउम्र दुलाहिन ढूँढने की कोशिश की थी, मगर उसके समाज में आन्दोलन होने से विचार छोड दिया गया। इस साल, लडकी के मा बाप को दासों रुपये देकर वह सफल हुआ है। अब इस मुआमले में क्या किया जाय? ......जैसे आदमी जो समाज सुधारक हैं, इस अमानुषिकता के विरुद्ध उँगली भी नहीं उठाते।"

जिस पत्र का यह सारांश है, उसमें कही गयी बात पर शक करने की कोई वजह मुझे नहीं मालूम होती। क्या ही अच्छा होता अगर मैं कह सकता कि यह तो एक विरला दाखिला है। इस तरह की घटनाएँ इतनी अधिक होती रहती हैं कि उनका कड़ा इलाज करना पडेगा। एक इलाज बेशक यह है कि हर ऐसी घटना का हाल प्रकाशित कर, भंडाफोड किया जाय और नारी जाति के विरुद्ध इस पाप के खिलाफ अच्छा लोकमत तैयार कराया जाय। मगर सबसे बाअसर तो होता है ऐसी घटनाएँ जब होने को हों, तभी वहां पर हलचल करना। इस पत्र-लेखक के लिखे मुताबिक, आठ बच्चों के इस बाप की पहली कोशिश बावक्त हलचल करने से बेकार गयी। कौन जाने, इस बार भी वैसा आन्दोलन क्यों नहीं खडा किया गया। जरूर ही मुहल्ले के कितने आदमी जानते होंगे कि यह बुड्ढा रंडुवा किसी कम उम्र की लडकी को हथियाने का प्रयत्न कर रहा है। पता नहीं कि लडकी को मुसीबत और तकलीफ की जिन्दगी से बचाने के लिए तुरत ही क्यों नहीं आन्दोलन शुरू किया गया। मगर, मेरी समझ में, अगर अब भी स्थानीय लोकमत तैयार किया जा सके तो, इस बाल पत्नी को सहायता देने की घडी बीती नहीं है। पत्र-लेखक के पत्र से मालूम पडता है कि यह रंडुवा किसी समय समाज-सेवक भी रहा था। क्या उसे समझाया नहीं जा सकता कि वह लडकी को सेवा-सदन में या किसी वैसी संस्था में शिक्षा के लिए भेज देवे, और जब लडकी पूरी उम्र को पहुँचे तो उसे अधिकार दिया जाय कि वह बूढे के साथ रहे या विवाह संस्कार को रद माने? समाज की इस गंदी हालत में यह संभव हो चाहे न हो, मगर यह तो जरूर हो सकता है कि उँगली न उठाये जाने लायक चारित्र के नवजवान दयामंडल बनावें और व्रत लेवें कि सभी न्याय्य और उचित उपायों से बाल-विवाह रोकेंगे और जहां हो सकेगा बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह करा देंगे। दोनों बातें, मेरी राय में साथ साथ चल सकती हैं। इन दया-मंडलों को अगर प्रभावोत्पादक काम करना है तो इन्हें अपना काम एक एक स्थान में करना होगा। तब वे देखेंगे कि कुछ वर्षों के भीतर, उनकी शक्ति अजेय हो जायगी। आखिर, हमारे अधिकांश शहरों की आबादी बहुत कम ही है, और यह पता लगाना असंभव नहीं है कि कब, इस भाई के बतलाये उदाहरण जैसे अनैतिक कामों की खिचडी पक रही है या यहां कौन कौन बाल विधवाएँ हैं। बेशक, इन मंडलों को बहुत अधिक सावधानी, होशियारी और आत्मसंयम से काम लेना पडेगा। उनके जरा भी अधैर्य या जोर जुल्म से लोग उनके विरुद्ध हो जायँगे और उन्हींका काम बिगडेगा।

(यँग इंडिया) मो० क० गांधी

नास्तिकता

अगर अमुक वस्तु पर आदमी को श्रद्धा न हो तो बेचारा क्या करे? श्रद्धा न होते हुए भी उसे कहना, करना क्या कायरता न कही जाय?

"जिस वस्तु पर आपकी श्रद्धा है, वह मेरे अन्तर को जरा भी स्पर्श नहीं करती। इससे मुझे सन्तोष नहीं है। मुझे इसका दुःख होता है। शायद आप मेरा समाधान करते तो मुझे संतोष होता। मुझपर तरस खाओ। मुझमें श्रद्धा का उदय होने के लिए प्रार्थना करो। मुझसे चिढते क्यों हो?

"आप तो मानते हो कि मुझमें भी आत्मा है। तब मेरे बारे में निराश कैसे हो सकते हो? आत्मा है तो उसका उदय जरूर होगा ही। मुझमें अगर अज्ञान है तो, उसका भी किसी समय नाश होना ही चाहिए।

"ज्ञान की शक्ति को तो आप मानते हैं न? अगर ज्ञान मेरे अज्ञान का नाश न कर सके तो, उसका पराभव ही न मानना पडेगा? जो आप मेरी नास्तिकता पर चिढो, मुझसे द्वेष करो, मुझे त्याज्य गिनो तो सनातन आत्मा और परम मंगलमय ज्ञान के बारे में आप निराश ही बने माने जाइएगा न? तब आप आस्तिक कैसे हुए? आप भी तो नास्तिक ही हुए न?"

नास्तिकता और आस्तिकता—इन दो शब्दों को हम उठते बैठते बिना सोचे विचारे बोलते ही रहते हैं। मगर ये इतने सहज नहीं हैं। है मानने वाले को आस्तिक और **नहीं है** मानने वाले को नास्तिक कहना ही इन शब्दों का मूलार्थ है। दुनिया में बहुत सी वस्तुएँ हैं, और इसी कारण कितनी नहीं भी हैं। अगर मैं मानता हूँ कि भूत नहीं हैं तो भूतों के विषय में मैं नास्तिक हूँ। अगर मेरा दृढ विश्वास हो कि हिंसा से मनुष्य-जाति का कल्याण नहीं होगा तो हिंसा के संबंध में मैं नास्तिक हूँ। सरकारी शिक्षा से ज्ञान चाहे जितना बढे, मगर अगर मैं मानता होऊँ कि उससे चरित्र की या देशभक्ति की वृद्धि नहीं हो सकती, बल्कि वह विघ्नरूप ही होती है, तो मैं सरकारी शिक्षा में नास्तिक हूँ। मुझसे जिनका विचार नहीं मिलता वे जरूर कह सकते हैं कि मेरे विचार में दोष है, विकार है। इनकी आस्तिकता के विषय में मेरा भी वैसा ही विचार हो सकता है, होना चाहिए।

आस्तिकता और नास्तिकता, दोनों शब्दों का ऐसा व्यापक अर्थ करने के बाद नास्तिक कहने से न गाली होती है, और न आस्तिक से तारीफ ही; दोनों शब्द तटस्थ हैं।

परन्तु भाषा में नास्तिक शब्द का अर्थ इतना व्यापक नहीं है। पुराने लोगोंने वेद को न मानने वाले को नास्तिक कहा था, 'नास्तिको वेद निन्दकः।' म्लेच्छ, काफिर, हीदन वगैरह शब्दों जैसी ही नास्तिक की कीमत थी। नास्तिक का अधिक शास्त्रीय शुद्ध और व्यापक अर्थ है—परलोक में विश्वास न करनेवाला।

न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्त मोहेन मूढम्।
अयं लोको, नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥

जो यह मानता है कि सांपराय यानी परलोक नहीं है, परम मंगल-तत्व नहीं है, इन्द्रियों के परे की वस्तुओं को जानने का कोई तरीका नहीं है, भोग ऐश्वर्य से परे संतोष प्राप्ति का दूसरा साधन नहीं है, वही नास्तिक है।

सामान्य व्यवहार में, जो कहता है कि ईश्वर नहीं है, जो समाज मान्य रूढियों को हिम्मत से तोडता है, उसीको नास्तिक कहा जाता है। जो इस व्याख्या के बाहर पडते हैं, वे सभी कोई आस्तिक कहे जाते हैं। इस व्याख्या से जितने लोग आस्तिक कहे जाते हैं, अगर वे सभी आस्तिक होते तो इस युग को सत्ययुग कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं होती। समर्थ रामदासस्वामी ने एक जगह कहा है,

देवा वेगळें कांहीं नाहीं। ऐसेचि बोलतीं सर्व ही।
परन्तु त्यांची निष्ठा कांहीं। तैसीच नसे।

कितने लोगों के लिए आज धर्मनिष्ठा और ईश्वरनिष्ठा, राजनिष्ठा सी ही औपचारिक बन पडी है। ईश्वर नहीं है कह कर समाज में नक्कू बनने, और अपने चित्त को अस्वस्थ करने के बदले तो ईश्वर को मानकर ही क्यों न चलें? इसमें हमारा क्या बिगडता है? यही भाव जहां तहां दिखलायी पडता है। ईश्वर को मान कर चलने से तो आदमी के जीवन में अमुक फेरफार तो दिखलायी पडने ही चाहिए। फलां जगह प्लेग है, उस कोठरी में सांप है, बंक में हमारे इतने रुपये जमा हैं या अदालत में जज साहेब बैठे हैं, इत्यादि मान्यताओं के साथ ही साथ हमारे आचरण में जैसे फर्क पडते हैं, अगर वैसे ही फर्क पृथ्वी पर के हमारे जीवन भर में, ईश्वर है, ऐसा मानने से पडें तो तभी हमारी श्रद्धा, निष्ठा या आस्तिकता सच्ची है।

कितनी वार, ईश्वर में विश्वास न रखने वाले ईमानदार और नम्र नास्तिक में साधारण आस्तिकों से अधिक निष्ठा होती है। शुद्ध नास्तिक जब कहता है कि ईश्वर नहीं है तो उसका इतना ही अर्थ होता है कि 'ईश्वर की खोज मैंने की है, उसका स्वरूप जाना नहीं जा सकता, उसकी माया अगाध है, उसका आकलन करने में मानवी शक्ति असमर्थ है। उसके विषय में मैं कुछ कह नहीं सकता।' ईश्वर की खोज में लगा रह कर जो इतना अनुभव कर सका है, उसे आस्तिक कहने में क्या बाधा है? यस्यामतं तस्य मतम्।

पर ईश्वर है कि नहीं, उसका स्वरूप कैसा है, इत्यादि की दार्शनिक चर्चा में पडने की जरुरत ही क्या है? हृदय में स्फुरण करने वाले अखंड आत्मतत्व पर जिसका विश्वास हो, वह आस्तिक है। हर एक के हृदय में आत्माराम का वास है, हर एक के हृदय में कमोबेश सज्जनता है ही, पापी से पापी आदमी भी पुण्य और पवित्रता को ही झँखता है—ऐसी ही श्रद्धा तो आस्तिकता है। दुनिया चाहे जितने कष्ट में हो, पग पग पर साधु लोग भले ही परास्त होते हों, दुर्जन उन्मत्त हो कर अधिकार पा गये हों, तोभी अंत में धर्म की ही विजय है, एक एक हृदय में सज्जनता का उदय होना ही है, ऐसी श्रद्धा का नाम आस्तिकता है। पवित्रता को पसंद करने, निखालसता की कद्र करने, सदाचार से प्राप्त हुई स्थिति में संतोष मानने को ही हृदय का धर्म मानने, यह मानने को कि इस धर्म को चाहे जितने दिनों से जैसा ग्रहण लगा हो, मगर संपूर्णग्रास तो होना ही नहीं है, और इस धर्म का संपूर्ण अस्त भी किसी काल में नहीं होने का, जिसको दृढ भरोसा है, उसी भरोसे को आस्तिकता कहते हैं। मा की गोद में बालक जैसे अपने को सुरक्षित मानता है, वैसे ही सत्य की गोद में अपने को सुरक्षित मानना ही आस्तिकता है। और हमेशे सत्य का द्रोह किसीसे हो ही नहीं सकता, सत्य अपंगु नहीं है, दुर्बल नहीं है, उसकी सदा विजय ही है, सत्य किसीके हाथों रक्षण की अपेक्षा नहीं करता, अपने अमोघ सामर्थ्य के कारण सत्य में अटूट शक्ति है, इन सब को मानना परम आस्तिकता है। यह श्रद्धा कि भेड-बकरी को मार खानेवाले बाघ में भी भूतदया सोयी हुई रहती ही है, आस्तिकता है। क्षणिक अथवा सहस्त्र युग तक टिकनेवाले स्वार्थ के वश होनेवाली मनुष्य जाति में भी मुक्ति प्रेरक तत्व प्रेम ही है, और अन्त में इसीका साम्राज्य सभी ओर फैलना है, ऐसी सूक्ष्म रीति से तपती हुई, मगर कडवे से कडवे अनुभवों से भी जल कर खाक न होनेवाली श्रद्धा ही मुख्य आस्तिकता है। यह हो जाय तो फिर सगुण ईश्वर को मानने या न मानने, ईश्वर की विभूति को एक मानने या अनेक मानने, शास्त्रों में बतायी गयी मूर्तिपूजा करने या उसे जला डालने का कोई विशेष महत्व रह नहीं जाता।

सच पूछो तो नास्तिकता और आस्तिकता का भेद करना व्यर्थ है। हर एक हृदय में आस्तिकता तो है ही। महत्व का सवाल यही है कि वह किस दर्जे तक सोयी हुई है, किस दर्जे तक जागती है, व्यापक है, क्रियमान है। शिक्षक जब विद्यार्थी को कहता है कि तुम्हें यह विषय आने का नहीं, तब शिक्षक नास्तिक बना। अगर शिक्षक वा मावाप मानें कि डर, लालच, या विद्यारोचक बनाने के सिवाय निरी ज्ञान पिपासा से लडके पढने को नहीं तो वे सब नास्तिक ही हैं। सिपाहियों की अगर तारीफ न की जाय, उन्हें रंगबिरंगी पेटियां न दी जायँ, तो उनमें शौर्य प्रकट ही नहीं होगा—ऐसा माननेवाला सेनापति नास्तिक है। सेनापति लडता है बडा सेनापति बनने के लिए, पर सिपाही लडते हैं देश के लिए, धर्म के लिए। यह बात सेनापति के ध्यान में नहीं आती। वह उपदेशक धर्म की जीविका से जीकर भी नास्तिक ही है जो मानता है कि बाहर के दंभ और आचार का आडम्बर दिखाये बिना हमारे धर्म का शौक लोगों को होगा ही नहीं। यह मूढ आग्रह भी नास्तिकता का ही एक रूप है कि अमुक लोगों में क्षात्र तेज कभी आने ही को नहीं; अमुक वर्ग या समाज तो गुलामी में ही रहने के लिए बना है।

अरे, मायावी नास्तिकता कितने रूप धारण करती है! बीमार आदमी जब अपथ्य को पहचान कर भी मन को मनाता है कि इससे कुछ भी नहीं होगा तो वह नास्तिकता पैदा करता है। यह माननेवाला प्रतिष्ठित पुरुष नास्तिकता की सेवा करता है कि गुप्त रीति से किया गया पाप किसीको हानि नहीं पहुँचावेगा। यह माननेवाले कृपण ने भी नास्तिकता का ही वरण किया है कि सद्गुण और लियाकत को पुरस्कर्त्ता न मिलें तो ये नष्ट हो जानेवाले हैं। और आज दुनिया में यही मानने की वृत्ति है कि नास्तिकता की फैलायी धूर्तता, लुच्चाई, कपट, धृष्टता, की ही विजय है। दुनिया की गरीब और सहनशील कौमें अनन्तकाल तक अन्याय सहन करती ही रहेंगी, कभी सामने वे खडी ही नहीं होंगी, ईश्वर के जो अवतार हो गये सो हो गये, ईश्वर अगर मर न गये हों तो अब कुंभकर्णी नींद तो ले ही रहे हैं, अब इनसे डरने का कोई कारण नहीं है, इस प्रकार की जो व्यवहारी मान्यताएँ सत्तावालों में घर कर बैठी हैं, यह भी नास्तिकता का ही अवतार है। सत्ययुग तो आना है ही, 'उसके लिए कुछ प्रयत्न न करना चाहिए,' का भाव भी दूसरे किस्म की भले ही हो, मगर है नास्तिकता ही।

ऐसी सूक्ष्म और शुद्ध दृष्टि से देखने पर इसका कुछ खयाल आवेगा कि मनुष्य-हृदय में नास्तिकता कितनी बढ गयी है। पर

यह संपूर्ण खयाल आने बाद भी अगर ब्रिटिश साम्राज्य से भी जबर्दस्त नास्तिकता के इस साम्राज्य का अंत होने का हमें भरोसा न होवे तो हम आस्तिकता की फौज के सिपाही नहीं बन सकते। नास्तिकता ईंधन के ढेर जैसी है और आस्तिकता आग की चिनगारी। लकडी तभी तक ठहरेगी जबतक वह गीली हो। मनुष्य-जाति की लापर्वाई नास्तिकता का गीलापन है। वह गयी नहीं कि यह जल कर खाक हुई। एक लकडी जली तो वह दूसरे को जलाती है, और यों अपने में से ही आग को पूरा भोजन दे कर खुद राख बन जाती है। श्रद्धा और धीरज ही अग्नि के घी हैं।

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

संयम का नियम

[डाक्टर कोवन की किताब 'Science of a New Life' में से कुछ उपयुक्त उतारे एक मित्र ने भेजे है। मैंने किताब नहीं पढी है, मगर उतारों में दी गयी सलाह जरूर ठीक है। मैंने उनमें से भोजन के बारे में कुछ फिकरे निकाल दिये हैं जो हिन्दुस्तानी पाठकों के बहुत काम के नहीं थे। शुद्ध, पवित्र, संयत जीवन बिताने की इच्छा रखने वाले यह मत सोचें कि चूंके इसका इष्ट फल तुरत ही नहीं मिल जाता, इस लिए इसका प्रयत्न करना ही फिजूल है। और कोई दीर्घ काल के सफल ब्रह्मचर्य के बाद भी शारीरिक पूर्णता की आशा न रक्खें। ब्रह्मचर्य के लिए हम प्रयत्नशील लोगों में से अधिकांश आदमियों को तीन कठिनाइयां झेलनी पडती हैं। अपने मातापिताओं से हमें निर्बल मन और तन की विरासत मिली है, और गलत तरीके के रहन सहन से हमने अपने शरीर और संकल्प को निर्बल कर दिया होता है। जब पवित्रता का समर्थक कोई लेख हमारे मन पर चढता है तो हम सुधार शुरू करते हैं। ऐसा सुधार शुरू करने का समय कभी हाथ से गया हुआ नहीं समझना चाहिए। मगर इन लेखों में वर्णित लाभों की हमें उमेद नहीं रखनी चाहिए क्योंकि ये लाभ तो उसीको होंगे जिसने बचपन से ही अत्यन्त संयत जीवन बिताया होगा। और तीसरी कठिनाई जो पडती, वह यह है कि सभी प्रकार के कृत्रिम और बाहरी संयम के रहते हुए भी, हम अपना संयम करने, अपने विचारों को काबू में रखने में असमर्थ होते हैं। और पवित्र जीवन के सभी इच्छुक मुझसे यह बात सुन लेवें कि कभी कभी बुरा विचार भी शरीर को उतना ही नष्ट करता है जितना कि बुरे काम। विचारों के उपर काबू करना बहुत दिनों के अभ्यास के कष्ट और परिश्रम के बाद ही आता है। मगर मेरा पक्का विश्वास है कि उस महान् फल की प्राप्ति के लिए कितना ही वक्त, कोई मिहनत, कोई कष्ट अधिक नहीं कही जायगी। विचारों की पवित्रता तो तभी आसकती है, जब प्रत्यक्ष अनुभव जैसा ईश्वर में विश्वास हो।

मो० क० गांधी]

"स्वर्ग में पवित्रता की इतनी कद्र है कि जब कोई सच्चा पवित्रात्मा पहुँचता है तो उसकी सेवा को हजारों देवदूत दौडते हैं।"

-- मिल्टन

"ब्रह्मचर्य का अर्थ है, स्वेच्छा पूर्वक, किसी तरह का विषयानन्द बिलकुल न करना, और उसकी शक्ति को जानबूझ कर उस पर पूरा कब्जा रखना और अगर आदमी का जीवन पवित्र और संकल्प सबल न हो तो वह इन भोगों में सिर्फ पड ही नहीं जा सकता है, बल्कि जरूर पडेगा ही।

* * * *

"पूर्ण ब्रह्मचर्य से ये लाभ होते हैं: स्नायु-मण्डल पुष्ट होता है और सबल बनता है। विशेष इन्द्रियाँ-जैसे कि दृष्टि और श्रवणशक्ति-मजबूत, सूक्ष्म और तेज होती हैं। मेदा ठीक ठीक काम करता है और आदमी बीमारी का तो नाम ही नहीं जानता। शरीर भरापूरा हो कर जहां तहां की हड्डियां छिप जाती हैं। आदमी आयु तो पूरी भोगता है, मगर बुढापा नहीं आता, क्योंकि अखीर के दिनों में तो लडकपन के जैसे देह और दिमाग ठीक तन्दुरुस्त रहते हैं। बुद्धि की वृद्धि हो कर वह परिपक्व होती है, याददाश्त बढती है, देखने समझने और सोचने की शक्ति बढती है, जैसा कि नयी योजनाएँ सोचने और काम में लाने की योग्यता, शान्त और आत्मनिर्भर सहनशक्ति, और मृदुता, साहस, उदारता और चारित्र महत्ता से मालूम पडता है। नैतिक भाव ऊँचे उठते हैं, प्रेम बढता और परिपक्व होता है, और आत्मा ऊँचे उठते उठते परमात्मा में लीन हो जाती है। पूरी उम्र तक उत्पादन शक्ति जैसी की तैसी ही बनी रहती है। उसकी जीवनोत्पादिनी शक्ति में कुछ भी कमी नहीं होती।

* * * *

जीवन का नियम:— जो ब्रह्मचारियों की गौरवशालिनी सेना में भर्ती होना चाहते हैं उन्हें अपने मन की कई मूर्त्तियों से संबन्ध तोडना पडेगा। उद्देश्य ऊँचा है और बीच में उनकी कितनी ही कडवी और कठिन परीक्षाएँ होंगी। मगर दृढ निश्चयता, पौरुष और साहस की ही अंत में विजय होगी और वे ब्रह्मचर्य का महान फल भोग सकेंगे।

"जो आदमी सच्चे मन से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है, उसे कोई सलाह कोई उपदेश, जिससे उसके उद्देश्य में जरा भी सहायता मिलती हो, छोटा समझ कर छोडना नहीं चाहिए। जो आदमी इसके अनुसार चलेगा, वह चाहे जितना बडा विषयी क्यों न हो और उसे बहुत ही अधिक शारीरिक और मानसिक मुसीबत भले ही उठाने पडें, मगर वह जल्द ही इसे पा सकेगा। अडिग श्रद्धा और निरन्तर प्रयत्न से इच्छित सुखकर फल जरूर मिलेगा।

"जो पवित्र और ब्रह्मचारी का जीवन बिताना चाहते हैं, उन्हें ये चीजें छोडनी ही पडेंगी: हर तरह का तंबाकू, सभी तरह की शराबें, चाय, कहवा, बहुत देर को खाना या अधिक खाना, मिठाइयाँ, चानी, गुड, वगैरह, मिर्च, सरसों, मसाला, सिरके, और तरह तरह के अचार, चटनियाँ, अधिक नमक, और सभी तरह के कुटे हुए, पिसे हुए मांस और दूसरी चीजें।

"सभी तरह के तंग कपडे, बहुत कोमल गद्दे, भारी रजाइयाँ, वैसे कमरे जिनमें हवा, रोशनी की गुजर न हो, सबेरे नींद खुलने के बाद भी बिस्तर पर पडे रहना, शरीर की गंदगी, टर्किश और रशियन स्नान।

"मन और शरीर का आलस्य, बेकारी, बुरे या संदिग्ध स्वभाव के साथी, अनिश्चयशील मन।

"दवाइयां और नीम हकीम।

"ऊपर की सूची में कितनी ऐसी चीजें हैं जिन्हें छोडने के पहले लोग बारबार सोचेंगे। मगर जो सच्चा जीवन बिताना चाहता है, उसे इनमें से एक एक कर के सभी चीजें छोडनी होंगी। ऊपर की बतलायी हुई चीजों में एक भी ऐसी नहीं है जो शरीर या आत्मा के पोषण, या वृद्धि के लिए जरा भी आवश्यक हो। मैं जोर दे कर कहता हूँ, इसका विरोध किये जाने की मुझे कुछ भी शंका नहीं है कि, कोई आदमी ऊपर की बतलायी सभी चीजों या कुछ

को ही छोडे बिना स्वस्थ, पवित्र, ब्रह्मचारी का जीवन नहीं बिता सकता। धर्मभीरु पुरुष नहीं बन सकता।

"ऊपर की गिनायी गयी चीजें आपको छोडनी ही पडेंगी। अगर आप रोगी, असन्तुष्ट विषयी और अल्पायु जीवन नहीं चाहते अगर आपको स्वस्थ ब्रह्मचारी का आनन्द और दीर्घायु जवीन विताना है तो आप नीचे की चीजें खूब बर्त्तिए, इनसे खूब आनन्द उठाइए :

"दृढ और निश्चयशील मन पाइए, धार्मिक भावनाओं को रोज सांझ सबेरे धार्मिक विचारों में गोता लगाइए।

"इन नियमों का सही सही, श्रद्धा से पालन करने वाले को संपूर्ण स्वास्थ्य, शरीर की पवित्रता, आत्मा की उच्चता, और सबसे बडी बात ब्रह्मचर्य की प्राप्ति के लिए सभी आवश्यक साधन मिले ही रहेंगे। इन नियमों का सही पालन करनेवाली स्त्री को सौन्दर्य—मुख, शारीरिक गठन, और चारित्र का सौन्दर्य—मिलेगा, उसे बना रहेगा। शक्ति शरीर, मन और आत्मा की शक्ति वह पायेगी, उसे रक्खेगी मगर सबसे बडी बात तो यह है कि वह पवित्र, प्रेममयी और सती होगी"

(यं० इं०)

साप्ताहिक पत्र

खादी कोष

इस हफ्ते मैसूर के ठेठ उत्तरी किनारे से मुसाफिरी शुरू हुई। बेलगांव से दक्षिण में जाते मैसूर राज्य का पहला शहर दावणगिरि पडता है। दावणगिरि के बाद तुंगभद्रा के किनारे किनारे हरिहर, होनाली, शिमोगा और सागर गये। इधर की प्राकृतिक शोभा का तो कहना ही क्या? इस हफ्ते की मुसाफिरी कई दृष्टियों से बडी सफल रही। खादी की ही थैली लगभग १३,०००) रुपयों की जमा हुई। दावणगिरि तो रुई और मूँगफली के व्यापार का बडा केन्द्र है। यहां से तब ५२००) रुपये मिले तो उसमें आश्चर्य ही क्या? मगर बडी बात तो यह है कि राजनीतिक दृष्टि से यह प्रदेश पहले से बिलकुल कोरा होने पर भी गांधी जी को अच्छा उत्तर मिल रहा है। शिमोगा में लगभग ३५००) रुपये मिले। दावणगिरि से शिमोगा जाते, और शिमोगा से सागर के रास्ते में छोटे छोटे गांवों में भी लोग छोटी २ थैलियां इकट्ठी कर के रास्ते के दोनों ओर शान्ति से गांधी जी की राह देखते बैठे रहते थे। इस प्रकार चालीस चालीस पचास पचास रुपयों की छोटी ही छोटी थैलियां मिला कर ६००) रुपये हो गये। अनंतापुर गांव की आबादी ३०० है। इस छोटे गांव से भी खादी के लिए २००) रु. की थैली और गुजरात संकट-निवारण के लिए ५०) रु. मिले। तब इस प्रदेश को गंगाधरराव जी सच ही सोने की खान कहते हैं।

इन सभी जगहों में खादी भी ठीक ठीक देखने में आयी। सरकारी नौकरों में से भी बहुत से खादी पहिननेवाले थे। दावणगिरि में भी सिरूर कुटुंब की बहिनों ने अपने काते सूत का ढेर रख दिया। उनमें दो बहिनें तो आप ही कात कर खादी पहिनती हैं, अगर्चे कि पुरुष कपास की दलाली करते हैं। तुंगभद्रा के किनारे होनाली अत्यन्त सुन्दर स्थान है। वहां पर एक सब रजिस्ट्रार; और उनका सारा परिवार खादी पहननेवाला और चर्खा चलानेवाला जान पडा।। नवाब शेरखां नाम के एक सज्जन ने स्वरचित कविता में मानपत्र पढा। आप किसी पुराने नवाबी खान्दान के हैं। आप भी बराबर खादी पहिननेवाले मालूम पडते थे। सागर में तो खादी की दूकान बहुत दिनों से चल रही है और राज्य ने चर्खा वर्ग खोला है। जिससे सर्व साधारण और विद्यार्थी लाभ उठाते हैं। शिमोगा में चर्खाक्लब है जिसके सभापति जिले के कलक्टर हैं। इसमें शाला के लडके काता करते हैं। हर जगह स्त्रियों की सभा में उपस्थिति का शुमार ही नहीं था और दावणगिरी और शिमोगा को छोड देवें—जहां पर हजारों बहिनों के आने से कुछ अधिक शोर था,—तो दो तीन जगह स्त्रियों की सभाएँ अतिशय शान्त थीं। दावणगिरि में जहां पर मुख्यतः लिंगायतों की बस्ती है, स्त्रियों ने दान देने में कोई रोक नहीं रक्खी। गहना तो सिर्फ एक बहिन ने दिया। मगर नकद रुपया सब मिला कर ५२५) रु. इस सभा में मिले। दावणगिरि और शिमोगा के सरकारी अफसरों ने अपनी ओर से अलग २००) और ५००) रुपये दिये। शिमोगा के वकीलों ने अलग ही ६००) रु. जमा किये। सहकारी बंक के रजिस्ट्रार ने खुद आकर बंक से ५००) रु. की थैली दिलवायी। एक बहिन ने अपने आप बहुत करकसर कर के सोने की एक माला बनवायी थी। उसने गुजरात संकटनिवारण के लिए वह माला दे दी। आज के जमाने में इससे अधिक और क्या सफलता मिलेगी? पर अभी और बडी सफलता की बात तो कहने ही को है। अछूतों के साथ गांधी जी की जो बातें हुईं, वे पहले नहीं हुई थीं। पर उसके पहले कई भाषणों का सारांश दे लेता हूँ।

धार्मिक और आसुरी अर्थशास्त्र

दावणगिरि व्यापारी मंडी है। यहां से ढेर की ढेर रुई विदेशों को जाती है। बहुत लोग यहां पर खादी की चर्चा कर गये थे, इसलिए गांधी जी ने वहां पर चर्खे का शास्त्र समझाया :

"हमारे वहां जब कातने बुनने की प्रथा का बोलबाला था, हम खुशी से या नाखुशी से, मगर अर्थशास्त्र के नियमों का पालन किया करते थे। इससे गांवों की रक्षा होती थी। जिस अर्थशास्त्र में गरीब को पहला स्थान है, जिसमें गरीबी का उपाय है, उसे धार्मिक अर्थशास्त्र कहते हैं। विरोधी अर्थशास्त्र शैतानी या राक्षसी कहा जायगा। यह अर्थशास्त्र करोडों रुपया करोडों में एक एक कर बांटने के बदले, एक अथवा दो चार के पास करोडों रुपये जमा करा देता है। इस अर्थशास्त्र को दूर करने की कोशिश में हिन्दुस्तान के आगे चर्खा रख कर कर रहा हूँ और इस धार्मिक अर्थशास्त्र की स्थापना करने में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सबकी मदद माँगता हूँ। आज का आपका व्यापार गांवों का सत्यानाश करनेवाला है; चर्खाशास्त्र पर स्थापित व्यापार गांवों की रक्षा करेगा। मैं उस शुभ दिन की प्रार्थना कर रहा हूँ कि जब यहां की सारी कपास लंकाशायर की मिलों में या यहीं की मिलों में जाने के बदले, हर गांव के हर घर की मिल में जायगी और हर घर में चर्खे और हर गांव में कर्घे की ही वह मिल होगी।"

हरिहरेश्वर की प्रतिष्ठा

यही अर्थशास्त्र हरिहर के मन्दिर पर दूसरी भाषा में कह सुनाया:

"अपने यहां कहावत है कि जैसे पुजारी, वैसे देवता। हम पत्थर से हो गये हैं, इसलिए हमारी मूर्त्तियाँ भी पत्थर बन गयी हैं। अगर इन मूर्त्तियों में प्राणप्रतिष्ठा करनी होवे तो हमें कितनी शुद्धियाँ करनी चाहिए। हम गरीबों को अपनावें, हिन्दू मुसलमान एक बनें, अछूतों को अपनावें। हरि का अर्थ विष्णु या पालक है। हर का अर्थ रुद्र या संहारक है। जब भगवान् देखते हैं कि धनिक गरीबों का पालन करना छोड देते हैं तो वे हर का रूप धारण कर संसार का संहार करते हैं। जब धनिक गरीबों का पालन करेंगे तभी हरि और हर का संगम होगा और यह संगम सिर्फ चर्खे के सूत से ही हो सकता है। मैं मानता हूँ कि हरिहरेश्वर की इसी संयुक्त मूर्त्ति को खडा करने के लिए आपने मुझे धन दिया

है और अगर आपको मेरा अर्थ स्वीकार हो तो आप इतना पैसा भर ही दे कर संतुष्ट न हो जायँगे, बल्कि सभी खादी पहिनेंगे, सभी चर्खे की प्रतिष्ठा करेंगे। मूर्त्ति की स्थापना के लिए यज्ञ की आवश्यकता होती है। हरिहरेश्वर की प्रतिष्ठा आप सिर्फ खादी का ही यज्ञ कर के कर सकते हो ?"

अंत्यजों की प्रतिज्ञा

अंत्यजों की सभाएँ तो इस हफ्ते की खास बात है। दावणगिरि में तो अंत्यजों की खास सभा थी। सभी गांधी जी के स्थान पर आ कर शान्ति से बैठे थे। १०) रुपयों की थैली भी लाये थे। म्युनिसिपैलिटी के भंगियों ने भी २५) रुपयों की थैली दी थी। इन लोगों के आगे गांधी जी ने जो भाषण किया, वह इतना मर्मभेदी था कि उसका असर तुरत ही पडा। आदिकर्णाटकों के आगे इतने विस्तार से यह पहला ही भाषण किया। उनकी छोटी सी थैली के लिए आभार मानते हुए गांधी जी ने कहाः "तुम्हारे पास में धन के लिए नहीं आता। तौभी तुममें से भी कोई अगर कुछ दे देता है तो खुशी से ले लेता हूँ, क्योंकि देश में तुमसे भी बहुत गरीब लोग पडे हुए हैं। तुम्हारा दुःख तो समाज के व्यवहार का है, तुम्हारा पेट नहीं जलता है। रोज रोज बढती हुई भूख का दुःख तो सामाजिक दुःख से बडा होता है। तुम ईश्वर का अनुग्रह मानो कि तुम्हें भूख का दुःख नहीं है।

"तुम्हारे मानपत्र में लिखा है कि तुम में से कुछ तो कपडा बुनने, कुछ शहनाई बजाने और कुछ मोची का काम करते हैं। मेरा विश्वास है कि ये तीनों धंधे उत्तम हैं। बुननेवालों को मैं कहना चाहता हूँ कि तुम्हें विलायती सूत से बुनना छोडना चाहिए और देशी मिल का भी सूत छोड देना चाहिए। इस विदेशी और मिल के सूत का भरोसा रक्खोगे तो किसी दिन हाथ पर हाथ रख कर बैठने का अवसर आवेगा। जबसे मिल का धंधा शुरु हुआ, तबसे हाथ बुनाई का धंधा घटता गया और आज बुनने-वालों की संख्या घट कर आधी रह गयी है। इसका कारण यह है कि मिलवाले कताई घटाते और बुनाई बढाते जाते हैं। यूरोप में भी मिल उद्योग के शुरू में यही हाल हुआ था, मगर यूरोप में तो बुननेवालों को दूसरे धन्धे मिल गये, जब कि यहांवालों को उसके बदले दूसरा धन्धा न मिला। इस लिए तुम अपने काम में लगे रहना और हाथ का सूत बुनना, अपने बालबच्चों को कातना सिखलाना। इससे तुम्हारी और तुम्हारे कुटुम्ब की स्वतंत्रता बनी रहेगी।

"मोची के धन्धे में भी दो पक्ष हैं। जिस तरह बुननेवाला विलायती या मिल का सूत काम में न लावे, उसी तरह मोची भी कत्ल किये गये जानवरों का हलाली चमडा काम में न लावे और मुरदार चमडे से काम लेवे। तुम्हें उत्साह देने के लिए कहता हूँ कि मैंने मोची का काम किया है और अब भी कर सकता हूँ। अब मैंने आश्रम में मुरदार चमडे का कारखाना खोला है और तुम्हारे जैसों को जरूरत पडे तो वहां से मरे जानवरों का चमडा मिल सकेगा। यह अपवित्र नहीं, बल्कि पवित्र धंधा है। गोरक्षा को मैं परम कर्त्तव्य समझता हूँ और मैं चाहता हूँ कि तुम भी मेरे ही जैसे गाय के पुजारी बन जाओ। पर दुःख की बात तो यह है कि मैं तुम्हें धर्म की बात समझा रहा हूँ और तुम यह धर्म मानते ही नहीं। हिन्दू होकर भी तुम गोवध करते, और गोमांस खाते हो। तुममें से बहुत जने मुरदार मांस भी खाते हो। दूसरे हिन्दुओं को जिन संस्थाओं का उपयोग करने का हक है, वह तुम्हें भी है, मगर तुम्हें भी तो शुद्ध हिन्दू बनना चाहिए। अपने को हिन्दू माननेवाला गोमांस नहीं खाता, मुरदार मांस नहीं खाता, गोवध कभी नहीं करता। श्रीमान् महाराजा साहे[ब] ने अपने राज्य के रजत महोत्सव पर कहा था कि आदमी आदमी के साथ कुछ हमदर्दी दिखलाता है, मगर उत्तम बात तो यह है कि जो गूँगे प्राणी हैं, उनपर और खास कर जिन्हें हम पवित्र प्राणी गिनते हैं उनपर प्रेम दिखलावें यह बडा धर्म है। महाराजा लोग तो थोडी बातें करते हैं, मगर हमें उसका पूरा अ[र्थ] समझना चाहिए। ये शब्द गोवध न करने या गोमांस न खानेवालों [से] जितने नहीं कहे गये, उससे कहीं अधिक गोरक्षा नहीं समझनेवा[लों,] खास कर तुम लोगों से कहे गये हैं। और साधारणतः ईसाई औ[र] मुसलमानों से कहे गये हैं। जो तुम सचमुच ही महाराज का उपकार मानते हो तो उनकी सलाह को तुम हृदय में धारण करो और गोवध और गोमांस छोडो।"

इन शब्दों का इतना असर पडा कि तुरत ही, धारासभा के एक सदस्य, एक विद्यार्थी, एक शिक्षक और एक जमींदार ने एक के बाद एक आगे आ कर गोमांस, गोवध और मुरदार मांस छोडने की प्रतिज्ञा लेने की आज्ञा माँगी। आज्ञा मिलते ही प्रणाम कर के प्रतिज्ञा ली, और आशीर्वाद के लिए मेज पर पडे हुए फल का प्रसाद मिला। बस पीछे तो प्रतिज्ञा लेनेवालों की लडी चली। सबको खूब समझाया गया और उन्होंने यह कह कर प्रतिज्ञा ली कि 'चाहे कुछ भी हो मगर हम इसका पालन करेंगे ही।' एक आदमी बोला, 'मैंने कल्ह ही गोमांस खाया था, पर आज से उसे छोड दिया।' आगे होनाली में भी यही दृश्य था। वहां खास सभा नहीं थी, तौभी गांधी जी ने सार्वजनिक सभा में ही आदि कर्णाटकों को भी कुछ उपदेश दिया और सभा के अंत में प्रतिज्ञा लेनेवालों की धारा चली। गंगाधरराव जी सबको प्रतिज्ञा का रहस्य समझाते जाते थे। एक आदमी प्रतिज्ञा लेने को आया, मगर रुक गया। उसने पूछा, 'क्या बकरे का मांस भी न खाऊँगा।' गंगाधरराव जी ने कहा 'उसे खा सकते हो ?' बस और क्या? उसने खुशी खुशी प्रतिज्ञा ली। एक ने पूछा, 'क्या चमडा छूना भी छोड देना पडेगा? मोची का धन्धा भी छोड दूंगा?' उसका भी समाधान किया गया।

सागर में तो आदि कर्णाटक गांधी जी के स्थान पर बेहिसाब भीड लगाये हुए थे। वहां भी ऐसी ही बातें कीं, महाराजा की बातें सुनायीं। पर बेचारों को इसका भी पता नहीं कि महाराजा कौन हैं! कितने तो यह भी नहीं जानते कि वे हिन्दू हैं। इनमें से भी कितनों ने प्रतिज्ञा ली। गोमाता का महत्व और गोमांस और मुरदार मांस न खाने की बातें चल रही थीं। इसी बीच एक ने उठ कर पूछा, 'हम मरे हुए जानवर उठायेंगे भी नहीं!' गंगाधरराव खिलखिला कर हँस पडे। गांधी जी ने खूब प्रेम से समझाया: "देखो, मरे जानवर को उठाने में पाप नहीं पुण्य है, पाप तो जानवर को मारने में है। हमारे घर में जब कोई मरता है तो हम उसे उठा कर कैसे श्मशान में ले जाते हैं, वैसे ही गोमाता मर जाय तो उसे उठा ले जाकर गाड देना भी धर्म कृत्य है। जूते बनाने में कोई बदनामी नहीं है। मरे जानवर के चमडे का उपयोग करना धर्म है।" इससे समझ में आयगा कि जिन्होंने प्रतिज्ञा ली, उन्होंने सिर्फ आँखें मूँद कर ही प्रतिज्ञा नहीं ली बल्कि समझ बूझ कर विचारपूर्वक ली थी। इनमें अधिकांश तो उनके मुखिया थे। आज यह कहना मुश्किल है कि सारी आदिकर्णाटक जाति पर इसका कैसा असर पडेगा।

(नवजीवन)

महादेव हरिभाई देसाई

सम्पूर्ण मद्यनिषेध

वार्षिक	मूल्य ४)
छः मास का	„ २)
एक प्रति का	„ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ३

मुद्रक–प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, भाद्रपद सुदि १२ संवत् १९८४ गुरुवार, ८ सितम्बर १९२७ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

रामराज्य बनाओ

[गांधीजी की विदाई की सभा बंगलोर में हुई थी। उसमें अभूतपूर्व भीड थी। मानपत्र पढे गये, ५५००) रु. की थैली दी गयी और मैसूर की कारीगरी की चंदन की सुंदर पेटी में मुख्य मानपत्र गांधी जी को दिया गया। इसके बाद गांधी जी का भाषण श्री राजगोपालाचारी ने पढ सुनाया। सभा में साधारण लोगों के साथ ही साथ सरकारी अफसर भी बैठे थे। सभी कमिश्नर, कई कलक्टर, कार्यकारिणी समिति के सदस्य वगैरह सभी गांधीजी का सन्देश सुनने को उत्कंठित बैठे थे। उन सबके लिए तैयार किया हुआ यह भाषण सिर्फ मैसूर ही नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान के सभी देशी राजाओं के लिए खूब ही ध्यान दे कर पढने लायक होगा।

महादेव देशाई]

मैसूर के महाराजा साहेब और उनके अफसरों से ले कर प्रजा में छोटे से छोटे आदमी तक, आप सभी किसीने मुझ पर अद्भुत और मेरी योग्यता से कहीं अधिक प्रेम बरसा कर मुझे इतना अपना लिया है कि आज जो आप मुझे थैली और मानपत्र दे रहे हैं, उसके लिए खूब आभार मानना तो लगभग अपमानकारक सा लगता है। आपके साथ चार महीने से अधिक रह कर, मेरी तबीअत को बहुत फायदा पहुँचा है। आपसे दूर होते हुए कष्ट तो होता ही है। महाराजा साहेब और उनकी प्रजा आप लोगों ने मेरा जो प्रेमभरा आतिथ्य किया है, उसका बदला मैं एक ही तरह से दे सकता हूँ। वह यह कि इस अत्यन्त सुन्दर राज्य के विषय में मेरे जो विचार हैं, वे आपको मैं बतला दूं।

आपको सभी ओर उन्नति करते देख कर मेरी आत्मा को संतोष होता है। बंगलोर में और दूसरी कई जगहों के विद्यालय मैंने देखे हैं। आदिकर्णाटकों के लिए खास विद्यालय देखे हैं। आपकी म्युनिसिपैलिटी का काम भी देखा है। कृष्णराजसागर और भद्रावती का लोहे का कारखाना देख कर मुझे सानंदाश्चर्य हुआ। ये दोनों सर विश्वेश्वरैया के उत्साह और कुशलता के भव्य स्मारक हैं। समय की कमी से प्रतिनिधि के जरिये, मैंने शिवसमुद्र भी देख लिया है। हमारी प्रगति में इन बडे कामों को भी स्थान है। जहां जहां मैं गया हूँ, मैंने अफसरों और प्रजाजन में मीठा संबंध देखा है। आपके यहां हिन्दू मुसलमान का झगडा नहीं है। उत्तर हिन्दुस्तान के झगडों का आप पर कोई गहरा असर नहीं पड सका है। इन सभी अच्छी चीजों और दूसरी चीजों के लिए मैं महाराजा को और आपको धन्यवाद देता हूँ। और महाराजा के राज्य के रजत महोत्सव में आपकी खुशाली में भाग लेने और महाराजा के प्रति आपके प्रेम को देखने के लिए मैं जो इस रमणीक भूमी में रहा, इसके लिए अपना सौभाग्य मानता हूँ।

अटूट प्रेमपाश

पर इस भारी ही सही मगर इतनी उन्नति से संतोष मान लेना अनुचित है। मुझे लगता है कि इस उन्नति की सीमा मध्यम वर्ग तक ही है और जो किसान मैसूर और वैसे ही सारे हिन्दुस्तान के प्राणस्वरूप हैं, उनकी ओर पूरा ध्यान नहीं दिया गया है। सभी जगहों से खादी कार्य के लिए मुझे मिली हुई थैलियां बतलाती हैं कि मैसूर वासियों को खादी और चर्खे में श्रद्धा है। मैसूर के भिन्न २ भागों में घूमने से मुझे संतोष हुआ है कि जो राज्य और प्रजा ठीक शास्त्रीय रीति से चर्खाकाम उठावें तो इसका भविष्य उज्वल है। मैं आपको साहस के साथ बतलाता हूँ कि भद्रावती जैसे महान् कार्य को करने के लिए जिस प्रबंध और शास्त्रीय ज्ञान की जरूरत है, चर्खे के लिए उससे जरा भी कम नहीं चाहिए। भेद तो सिर्फ प्रमाण का है। और जैसे भद्रावती जैसे कारखानों पर कुशल और जाग्रत लक्ष्य न रक्खा जाय तो वे छिन्न भिन्न हो जाएँगें, वैसे ही चर्खे के पीछे शास्त्रीय ज्ञान और निरन्तर परिश्रम न हो, तो वह भी चौपट ही हो जायगा। जो बडे बडे काम मैसूर के गौरव हैं, उनमें कितनों के लिए जो पुँजी चाहिए, उनके मिलान में कुछ नहीं सी पूँजी से हाथकताई और नहीं तो किसान की आमदनी में सैंकडे बीस की वृद्धि तो करेगी ही। अगर आप चर्खे को घर घर फैला दीजिए तो इसका लाभ गरीब से गरीब किसान उठा सकेगा। चर्खा आपको और उनको अटूट प्रेमपाश में बांधता है; और किसान को जो साल में कम से कम चार महीने की बेकारी रहती है, उसमें उसे काम देता है। यह देख कर मुझे बहुत आनंद हुआ है कि इस राज्य का उद्योग विभाग और सहकार विभाग इसके लिए

प्रयत्न करता है। कारण यह है कि इससे बडा धन्धा एक भी नहीं है और चर्खाप्रचार और इसके अंग उपांगों के विना सहकार का एक भी प्रयत्न संपूर्ण नहीं है। और आप में से हरएक आदमी सिर्फ खादी ही पहनें तो गांवों में आप अपना सहकार पहुँचा सकेंगे।

गोधन की रक्षा

पर अगर्चे कि चर्खा ही गांवों की आबादी का केन्द्र है, मगर सब कुछ इसी में नहीं आ जाता। अगर हमारे ढोर हम पर बोझ बन कर रहें तो हम टिक नहीं सकते। रजत महोत्सव के मानपत्र के उत्तर में महाराजा साहेब ने गूँगे प्राणियों के तरफ से जो उदात्त प्रार्थना की है उस पर पता नहीं आप सब ने ध्यान दिया है या नहीं। वे सुंदर शब्द मैं यहां उतारे देता हूँ:

"मेरी प्रार्थना है कि गूँगे प्राणियों के प्रति भी भ्रातृ-भाव की ऐसी ही वृत्ति उपजे। और हम खास कर जिन्हें पवित्र गिनते हैं, उन प्राणियों के प्रति, उनके मूक प्रेम के लिए, अधिक से अधिक दयाभाव वर्त्तने का ख्याल रक्खें।"

महापुरुष तो थोडे में बातें कह लेते हैं। इसमें महाराजा साहेब की यह इच्छा मैं देखता हूँ कि महाराजा की मुसलमान, ईसाई और आदिकर्णाटक प्रजा अपनी खुशी से गाय को और उसकी संतति को बचावे। पर मेरी नम्र सम्मति में कठिन परिश्रम और उससे भी कठिन मिहनत बिना, गाय का यह प्रश्न हल होने को नहीं है। मुझे संतोष है कि गोवध को आर्थिक दृष्टि से हानिकारक बनाया जा सकता है। आज तो गोवध आर्थिक दृष्टि से जरूर ही लाभदायक है। इस अनिष्ठ का पूरा उपाय, किसी खानगी व्यक्ति या संस्था के हाथों नहीं हो सकता। यह वस्तु मुख्यतः सरकार के ही हाथ की है। इसमें लोगों को पशुपालन, दुग्धालय चलाने और सांढ की पसंदगी की शिक्षा देना जरूरी है। मेरी नम्र सम्मति में सारी प्रजा के साथ दृढता और ज्ञान से काम ले कर गोरक्षा करनी राज्य का फर्ज है। मैं मानता हूँ कि राज्य के बालकों और लोगों को नीरोगी और सस्ता दूध मिलने का प्रबंध करना राज्य के प्राथमिक फर्जों में से एक है। ब्लेचफर्ड ने कहा है कि जैसे डाक के सभी तरह के टिकटों की कीमत एक ही सी है, वैसे ही दूध की कीमत और किस्म भी एक ही समान करना चाहिए। इससे मैं पूरा पूरा सहमत हूँ। मैं नहीं मानता कि आप में से अधिकांश लोग जानते होंगे कि मैसूर के मरे हुए जानवरों के चमडों का क्या होता है। मेरे जैसा आप भी इसका अभ्यास करें तो कितनी दुःखद बातें आप देखेंगे। हमारे जूते कत्ल किये गये जानवरों के चमडे के बनें और मरे हुए जानवरों का चमडा हर साल ९ करोड का परदेश जाय! क्या यह थोडी शर्म की बात है? इस प्रदेश में चमडा कमाने की कला की यथेष्ठ उन्नति करने का काम इतना पडा हुआ है कि इसी काम में सभी के सभी रसायनशास्त्रियों की फौज लग सकती है और वे अपना और देश का, दोनों का ही लाभ कर सकते हैं। यहां भी ढोर के सवाल के इस अत्यन्त महत्वपूर्ण विभाग का राज्य ही प्रबंध कर सकता है।

अस्पृश्यता और मद्यनिषेध

परन्तु दूसरे जिस विषय पर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ उस पर अब मुझे जल्दी ही आना चाहिए। और यहां भी मैं महाराजा के शब्दों का ही आधार लूँगा। ये हैं उनके शब्द:

"मेरी यह प्रार्थना है कि अब आनेवाले वर्षों में एक ही कल्याण के ध्येय के लिए हम सब मिल कर भाई भाई की तरह काम कर सकें कि जिससे अपने कुशल प्रबन्ध से, खेती, उद्योग और व्यापार के लिए बढी हुई सुविधाओं से और सब को उन्नति करने के लिए बराबर मौका दे कर हम सभों की शक्ति का उपयोग मैसूर को संसार में अग्रगण्य देशों की पंक्ति में बिठाने के लिए करें। मेरी यह उत्कट इच्छा है कि इस भ्रातृ-भाव का परिणाम जो लोग हमारे बनिस्बत बहुत कम सुख में दिवस बिताते है उनकी हालत सुधारने का प्रयत्न ही हो। और सभों को यह बात याद रखनी चाहिए कि सभी जाति के लोग मेरी प्रजा का अंग है और हमारे देश के बालक हैं।"

लोगों को ही यदि भ्रातृभाव रखने में कोई विश्वास न हो तो राज्य बलात्कार कर उसका प्रचार नहीं कर सकता है। इस राज्य में संस्कृत विद्या के ऐसे प्रौढ विद्वान पडे हुए हैं जो आदिकर्णाटकों को वेद पढाने के लिए तैयार नहीं और जो वंशपरंपरागत अस्पृश्यता को मानते हैं। पंडित मालवियजी को और मुझे यह जान कर बडा दुःख हुआ। आज यदि मुझे कोई यह यकीन करा सके कि अस्पृश्यता हिन्दु-धर्म का एक आवश्यक अंग है तो हिंदु धर्म का त्याग करने में मुझे एक क्षण का भी विलम्ब न होगा। परन्तु मैं अपने हिंदु भाइयों से यह कहने की हिम्मत कर सकता हूं कि मैंने हिन्दु धर्म को समझने का और उसके वचनों को और रहस्य को जीवन में गूंथने का प्रयत्न किया है और फिर भी मैं यह नहीं देख सका हूं कि अस्पृश्यता के पाप को उसमें कहीं जरा भी अवकाश हो। किसी भी मनुष्य-प्राणि को, उसने एक खास परिस्थिति में जन्म ग्रहण किया है इस कारण, अस्पृश्य मानने में हम ईश्वर का और मनुष्य का दोनों का द्रोह करते हैं।

अस्पृश्यता के प्रश्न के साथ अति निकट संबंध रखनेवाला शराब का प्रश्न है। इस रमणीय भूमि में से शराब का बहिष्कार तभी हो सकेगा जब कि ऊंच गिने जानेवाले लोग नीच कहे जानेवाले लोगों को अपनावेंगे ओर उन्हें अपना भाई बनावेंगे। किन्तु मद्यनिषेध का बरसों काम करके मुझे यहां भी यही दुःखद अनुभव हुआ है कि बिना राज्य की मदद के उसका कुछ अधिक परिणाम होना संभव नहीं। गरीब और अज्ञान लोगों के पास यदि शराब ले जाओगे तो वे उसे पीयेंगे। दुनिया में यदि कोई ऐसा स्थान है कि जहां शराब का बिल्कुल बन्द कराना आसान है तो वह हिन्दुस्तान ही हो सकता है और उसका मात्र यही कारण है कि मद्यपान को यहां कोई प्रतिष्ठा नहीं मिली है और उसे अब भी एक अधम व्यसन ही माना जाता है। मेरे सफर में मैं हजारों आदिकर्णाटकों को मिला हूँ। लंबानी लोगों के एक दल से भी मेरी मुलाकात हुई थी। मैंने उनसे सीधे प्रश्न पूछे। शराबखोरी के बचाव में किसीने भी हाथ नहीं उठाया। और एक बहुत बडे हिस्से ने तो गोमांस और शराब दोनों त्याग देने की प्रतिज्ञा ली है। परमात्मा उन्हें अपनी प्रतिज्ञा पर चलने की ताकत दे। परन्तु मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि आप और यह राज्य उन्हें इसमें मदद करो। इसमें कठिनाइयां अवश्य हैं। परन्तु कठिनाइयां झेलने के लिए, उनका सामना करने के लिए और उन पर विजय प्राप्त करने के लिए ही मनुष्य का जन्म हुआ है।

अन्त में बालविधवा और बालवधुओं के बारे में मैं कुछ कहूं। वे भी मूक प्राणियों की कोटि को प्राप्त है और यह हमारा दुर्भाग्य है और हमें इसके लिए शरम मालूम होनी चाहिए। जहां कहीं ऐसी पतित दशा हो वहां से उसे दूर न किया जायगा तो हमारा ज्ञान और शिक्षा सब वृथा गिना जावेगा। यह काम आपके 'नागरीक और सामाजिक प्रगतिमंडल' का है।

मैसूर सच्चा आदर्श राज्य बने और 'रामराज्य' नाम के लायक हो इसके लिए जितना करना मुझे आवश्यक मालूम हुआ है, उसके

प्रति मैंने आपका ध्यान दिलाया है । उसके लिए आप मुझे कृतघ्न तो नहीं गिनेंगे । यह बात नहीं कि मैंने जो त्रुटियां दिखायी हैं वे हिन्दुस्तान के दूसरे भागो में नहीं है । यह दुःख का विषय है कि दूसरे स्थानों भी वे सब बातें हैं और कुछ तो शायद यहां से भी अधिक उग्र रुप में होंगी । किन्तु मेरे सद्भाग्य से मैंने मैसूर में और स्थानों के बनिस्वत अधिक प्रगति पायी है और इसलिए यह प्रगति और भी आगे बढे यह इच्छा मेरे हृदय में हुई है । जो अधिक देता है उससे और भी अधिक की आशा रक्खी जाती है । मैंने इस राज्य में इतनी अधिक अच्छी बातें देखी हैं कि मुझे लगभग यही ख्याल होता है कि यदि तुम और महाराजा दोनों मिल कर चाहो तो इस राज्य को रामराज्य बना सकते हो ।

सचा श्राद्ध

चर्खे के प्रचार के लिए एक भाई २५) रुपये भेजते हुए लिखते हैं :

"तंजोर में गत १८ अप्रिल १९२७ को मेरे पिता जी का स्वर्गवास हुआ । मेरे सामने जब सोलहें का, श्राद्ध की बेमानी-मतलब की आंख मूँद कर की गयी नकल का सवाल आया, मैंने अपने रिश्तेदारों के मुआफिक चलने से इनकार कर दिया क्योंकि **आजकल के श्राद्ध में** मेरा विश्वास नहीं है । मैं नहीं मानता कि पितृ-लोक में या किसी दूसरे अदृश्य लोक में मृतात्माएँ पानी या चावल के गोलों के लिए ठहरी रहती हैं । फिर मैं उस संस्कार का भी कोई मतलब नहीं समझता जो पैसा लेकर पुरोहित ऐसी भाषा में कराता है जो न तो मैं समझता हूँ, और न खुद वही समझता है । सारांश यह कि यहं सारा खेल, लोगों की धर्मभावना से लाभ उठाने के लिए है । मगर, पवित्रता और भक्तिभाव से दान की नीयत से कुछ देने के श्राद्ध में मैं विश्वास करता हूँ । सामान्य बुद्धि की दृष्टि से तो इस संस्कार का मुख्य सिद्धान्त और मूल उद्देश्य दान होना चाहिए । जैसा कि २४ फरवरी १९२७ के 'हिन्दी नवजीवन' में आप कहते हैं कि, 'दान के पात्र केवल दो ही श्रेणियों के लोग हैं,—एक तो वह ब्राह्मण जिसे कुछ भी नहीं है और जिसका काम है पवित्र ज्ञान का प्रचार करना और दूसरे हैं अंधे और अपाहिज' हमारे महर्षि तिरुवल्लुवर ने कहा है : "ब्राह्मण वही है जिसका हृदय सब जीवों के लिए प्रेम से ओतप्रोत हो ।" चूंके मैं आप से अधिक सुपात्र और चर्खा-प्रचार से अधिक सदुद्देश्य नहीं सोच सकता, इसलिए आपको यह रकम भेजी है । अपने माता-पिता की यादगारी बनाये रखने का एक और भी तरीका है । उन्हीं महर्षि तिरुवल्लुवर ने फिर कहा है : 'पितृऋण से उऋण होने का यह रास्ता है कि पुत्र ऐसा आचरण करे कि लोग यह कहें कि इसके पिताने ऐसे पुत्र की प्राप्ति के लिए बडी भारी तपस्या की होगी ।' मैं यह भी जोड सकता हूँ कि यह आदर्श मेरे दिल में है ।"

जो कि मैंने युवावस्था में खुद श्राद्ध किये हैं, मगर मैं उनकी धार्मिक उपयोगिता नहीं समझ सका हूँ । इस तरह का यह पहला ही पत्र नहीं है । अब तक मैं इन पृष्टों में ऐसे रस्मों की जो हिन्दू-धर्म में सार्वत्रिक हैं, चर्चा इस लिए नहीं करता रहा हूँ कि इनके लिए स्थान नहीं निकाल सका था । पत्र-प्रषक ने जो नियम चुना है वह मुझे पसंद पडा है । यह सच है कि हम 'प्रायः' ही ऐसे लौकिक रीतिरिवाजों के आगे सिर झुका दिया करते हैं, अगर्चे कि उनमें हमें कोई श्रद्धा न हो, हमारे लिए उनका कोई मतलब न हो । छोटी छोटी बातों में जहां अपने आप या किसी दूसरे के धोखा खाने का डर न हो कभी कभी रुढियों के आगे झुकना ही अच्छा होता है और जरूरी जान पडता है । मगर धार्मिक बातों में खास कर तब जब कि भीतर से घृणा हो और पडोसियों के और अपने धोखा खाने का डर हो, झुकना तो अधोगति ही करावेगा । आज कई धार्मिक संस्कार हैं, जिनका पहले युगों में चाहे जो अर्थ और महत्व रहा हो, मगर अब की नयी पीढियों के लिए न कोई महत्व है, न मतलब । इसमें कोई शक हो ही नहीं सकता कि नयी पीढी के लिए जरूरी है कि वह पुरानी रुढियों को बदल कर नया ही रास्ता अख्तियार करे । अपने माता-पिता की यादगार बनाये रखने या उन्हें भक्तिभाव से स्मरण करने को छोड देने का खयाल नहीं है । मगर इसके लिए यह जरा भी जरूरी नहीं है कि पुरानी रुढियों, और रीतियों को ढोये चलें जो हमारे लिए बेमतलब हैं और इसलिए हम पर कोई असर नहीं करतीं । इसलिए मैं इस भाई का उदाहरण उनके सामने रखना चाहता हूँ जो ठीक रास्ते चलना और आत्म-भ्रान्ति से बचना चाहते हैं ।

(यंग इंडिया) **मो० क० गांधी**

अँगरेजी माल खपाओ

उस दिन रायटर कंपनी ने बहुत ही मनोरंजक समाचार हम लोगों के पास पहुंचाया था । इंगलैंड की तिजारत को बढाने के उपायों और रीतियों पर पार्लियामेन्ट में उस दिन बहस हुई थी । इसी बारे में श्रमिक दल के मि० टी० जौन्स्टन ने **खेती बारी के औजारों के रूप में इँगलैण्ड का माल हिन्दुस्तान में अधिक खपाने के लिए** कई आदमियों का मिल कर माल खरीदने को उत्तेजन देना सुझाया था । उन्होंने और भी कहा कि हम **भारत सरकार को हल और पानी के पंप** देवें जिनसे रैयत की उत्पादिका शक्ति बढेगी और **रैयत की क्रयशक्ति अगर हर हफ्ते दो पैसे भी बढती रही तो इँगलैण्ड के नियति में ४ करोड पाउन्ड की सालाना वृद्धि होगी और इससे यहां के कारखाने चलते रहेंगे** । इस पर मि० सैमुएल ने यह कठिनाई दिखलायी कि हिन्दुस्तान में हलों की मरम्मत के लिए कारखाने खोलना प्रायः असंभव ही होगा । मगर श्रमिक दल के सभ्य मि० हार्डी कब के पीछे रहनेवाले । उन्होंने प्रस्ताव किया कि **बेकार होशियार मिस्त्री इसके लिए हिन्दुस्तान में भेजे जायँ** ।

पार्लियामेन्ट की कार्यवाही के इस सारांश में हमारे लिए बहुत रहस्य भरा पडा है । इससे जान पडता है कि हिन्दुस्तानी रैयत की ब्रिटिश जनता सिवाय इसके कि वह बेजौड गाहक है, और क्या पर्वा करती है । सचमुच ही अगर इँगलैण्ड में किसी से पूछा जाय कि हिन्दुस्तानी आदमी की क्या परिभाषा है तो वह कहेगा कि 'ब्रिटिश माल खरीदनेवाले दोपाये को हिन्दुस्तानी आदमी कहते हैं ।'

फिर इससे इस संदेह की भी पुष्टि होती है कि हिन्दुस्तान में रायल कृषि कमीशन और इँगलैण्ड में बेकारी के बीच कार्य कारण का कुछ संबंध है । यह तो केवल समय ही बतला सकता है कि इस में कुछ तत्थ्य है या नहीं । इधर हिन्दुस्तान अगर अपना हित समझता है तो वह चर्खा आन्दोलन का समर्थन करके हिन्दुस्तानी रैयत की क्रयशक्ति हर हफ्ते २ पैसे और उससे भी अधिक बढा सकता है और साथ ही साथ अपने साथ ब्रिटेन के अनैतिक व्यापार की जड भी काट सकता है ।

(यं० इं०) **दे० वा० गां०**

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, भाद्रपद सुदि १२ संवत् १९८४

सम्पूर्ण मद्यनिषेध

"मेरा आपसे यह कहना है कि आप यह समझ लें कि वर्तमान आबकारी कानून में शराब बनाने, शराब रखने इत्यादि के सम्बन्ध में जो परिवर्तन होंगे उससे जरूर ही, एक बडी हद तक लोगों को तकलीफ होगी। शराबबन्दी की नीति का ऐसी तकलीफ होना यह एक अनिवार्य परिणाम है और आपको उसके लिए तैयार रहना चाहिए। तो मैं आपकी दी हुई निखालस मदद पर आधार रखता हूं। दुकानों पर पहरा भरने के लिए, शराब पीने की बुराइयों का उपदेश देने के लिए और ऐसे ही दूसरे काम करने के लिए मैं आपकी मदद नहीं चाहता। परन्तु मैं गैरकानूनन शराब बनाने के और ऐसे ही दूसरे जुर्मों को दबा देने के काम में आपसे मदद चाहता हूं।"

'हिन्दु' में छपे मद्रास के सार्वजनिक स्वास्थ्य और आबकारी के प्रधान के वक्तव्य से उपरोक्त अवतरण लिया गया है। उन्होंने लोगों से एक दूसरी भी मदद मांगी है और वह है अधिक कर देने पर राजी होना। इसके बारे में मैं यहां सिवा इसके और कुछ भी नहीं कहना चाहता कि जहां लोगों में शक्ति हो वहां सच्ची आवश्यकता होने पर उन्हें अधिक कर देने के लिए भी राजी होना चाहिए। सम्पूर्ण मद्यनिषेध सफल करने के लिए कितने ही रुपये क्यों न खर्च हों अधिक नहीं गिने जा सकते।

अभी तो मैं केवल मैंने ऊपर जो अवतरण दिया हैं उसी पर विचार करूंगा। मुझे भय है कि प्रधान ने मद्यनिषेध का गलत अर्थ किया है। मेरी राय में उसे टुकडे टुकडे नहीं किया जाना चाहिए। उसे सफल करने के लिए उसको उसके सम्पूर्ण रुप में ही लेना चाहिए। यह कोई एक जिले का प्रश्न नहीं है यह अखिल भारत का प्रश्न हैं। मुझे अपनी यह राय जाहिर करने में कभी हिचपिचाहट नहीं हुई कि आमदनी का यह अनीतिमय जरिया प्रान्तों को दे देने में और इस प्रकार कलुषित आमदनी को भारतीय युवकों की शिक्षा के खर्च का एक साधन बनाने में शाही सरकार ने बहुत बुरा किया है।

परन्तु इस प्रधान के इस वक्तव्य के सम्बन्ध में मुझे सबसे अधिक दुःख इस बात का है कि जो प्रश्न जनसमाज के कयाण का है उस पर वे इस तरह ऊपर ऊपर ही बिचार करते हैं। जब कि वे लोगों से अपनी पुलिस का काम लेना चाहते हैं तब वे अपनी योजना के बारे में अवश्य ही गंभीर न होंगे। और वे लोगों को यह कह कर डराते क्यों हैं कि मद्यनिषेध का प्रयत्न करने में लोगों को तकलीफ अवश्य ही होगी? चोरी और बारूद बनाना जुर्म करार दिया गया है इस लिए क्या लोगों को तकलीफ होती है? क्या बिना परवाने के शराब बनाना आज भी जुर्म नहीं है। इसलिए प्रधान के कहने का मतलब यही होना चाहिए कि जो लोग शराब बनाने और बेचने का आज परवाना रखते हैं वे मद्यनिषेध होने पर चोरी छुपे से शराब गलावेंगे और इसलिए सताये जावेंगे। इसमें लोगों को कुछ भी तकलीफ न होनी चाहिए।

परन्तु यदि प्रधान यह मानते हों कि सम्पूर्ण मद्यनिषेध करने में केवल उसका ऐलान कर देने के और कानून तोडे उसे सजा दिलाने के सिवा और कुछ भी न करना होगा तो उनमें कल्पना और लोगों के प्रति सहानुभूति का अभाव मालूम होता है। मैं यह कहने की हिम्मत करता हूं कि सजा देना मद्यनिषेध के कार्य का बहुत ही छोटा और नाशात्मक भाग है। और मैं यह कहता हूं कि उसका एक दूसरा बहुत बडा और रचनात्मक भाग भी है। लोगों का हाल आज जो गिरा हुआ है उसीके कारण वे मद्यपान करते है। कारखानों के मजदूर और वैसे ही दूसरे लोग मद्यपान करते हैं। वे निराधार हैं, उनकी कोई हिफाजत नहीं करता और इसलिए वे शराब पीने लगते हैं। स्वभावतः जैसे शराब न पीनेवाला साधु नहीं होता उसी प्रकार ये लोग स्वभावतः बुरे भी नहीं होते। लोगों की बहुत बडा संख्या तो अपनी परिस्थिति के हाथ में रहती है। कोई भी प्रधान यदि सचमुच ही मद्यनिषेध को सफल करना चाहता हो तो उसे अपने में सुधारक के गुण और उत्साह पैदा करना चाहिए। उस हालत में मद्रास के प्रधान ने जिस प्रकार की सहायता का तिरस्कार किया है उसी प्रकार की सहायता उसे दरकार होगी। मेरी नम्र राय में उन्हें पहरे भरनेवालों की और ऐसे स्त्री-पुरुषों की जरूर आवश्यकता है जो शराब पीने की बुराई के बारे में उपदेश दे सकें और ऐसे ही दूसरे काम कर सकें। इन्हीं कामों को करने के लिए उन्हें स्वयंसेवकों के मंडल की आवश्यकता होगी जो शराबी का जीवन सुधारने में उनका साथ देंगे। शराब की सारी दुकानें उन्हें भोजनगृह और संगीतगृह बना देने होंगे। गरीब मजदूरों को ऐसी जगहों की आवश्यकता होगी जहां वे इकट्ठे हो सकें और जहां ताजगी देनेवाला पथ्यकारी सस्ता और नशारहित पेय उन्हें मिल सके। उस समय यदि उन्हें कुछ अच्छा संगीत सुनने को मिले तो वह उनके लिए रसायण हो जावेगा और उन्हें वहां आकर्षित करेगा। यदि अच्छी व्यवस्था की जाय और लोगों का साथ हो तो राज्य के लिए ऐसी जगहें आमदनी का एक जरिया भी बन सकती हैं। परन्तु जो मद्यनिषेध के प्रश्न को हाथ में लेगा उसे इस प्रधान ने उसका जितना अध्ययन किया मालूम होता है उससे कहीं अधिक गंभीरता-पूर्वक उसका अध्ययन करना पडेगा। उसे अमेरिका ने जिन उपायों का अवलम्बन किया है उसका और संसार के बडे बडे मद्यनिषेध मण्डलों ने जिन उपायों से काम लिया है उनका अध्ययन करना चाहिए। इससे केवल कुछ मर्यादित मदद ही मिल सकेगी। क्योंकि भारत की दशा और पश्चिम के देशों की दशा में बडा अंतर है। और इसलिए हमारे उपाय भी जुदे जुदे होने चाहिए। जब कि पश्चिम में सम्पूर्ण मद्य-निषेध करना बडा ही मुश्किल हैं, मैं यह मानता हूँ कि इस देश में उसको सफल करना बडा ही आसान है। जब कोई बुराई, जैसे कि पश्चिम में शराब, सम्मान प्राप्त करती है तो फिर उसे दूर करना बडा ही मुश्किल होता है। ईश्वर को धन्यवाद है कि हमारे यहां शराब अब भी काफी बुरी गिनी जाती है और उसका आम लोगो में नहीं सिर्फ थोडे से गरीब लोगों में ही प्रचार है।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय १६

महामारी—२

इस तरह मकान का कब्जा ले कर रोगियों को सँभाल लेने के लिए टाउन कलर्क ने मेरा उपकार माना और यह ईमान्दारी से कबूल किया कि, 'हमारे पास ऐसी स्थिति का एकाएक कोई उपाय करने का साधन नहीं है। आपको जो मदद चाहिए, मांगना, और जहां तक हो सकेगा टाउन काउन्सिल देगी।' पर जरूरी उपाय करने के लिए सावधान बनी हुई इस म्युनिसिपेलिटी ने स्थिति के अनुसार उपाय करने में विलंब न किया।

दूसरे दिन एक खाली पडा हुआ गोदाम का कब्जा मुझे दिया गया और रोगियों को वहां ले जाने को कहा गया। उसे साफ करने का बोझा म्युनिसिपेलिटी ने नहीं उठाया। मकान मैला और गंदा था। हमने अपने आप ही उसे साफ किया। चारपाइयां वगैरह तो उदारहृदय हिन्दुस्तानियों की मदद से इकट्ठी कीं और तात्कालिक कामचलाऊ अस्पताल खडा किया। म्युनिसिपेलिटी ने एक नर्स भेजी और उसके साथ ब्रांडी (शराब) की बोतलें और रोगियों के काम की और चीजें भेजीं। डा. गोडफ्रे उसके चार्ज में कायम रहे।

नर्स को तो हम शायद ही रोगियों के पास जाने देते होंगे। नर्स आप तो तैयार थी। स्वभाव से भली बाई थी, मगर उसे जोखम में न आने देने का हमारा प्रयत्न था।

रोगियों को समय समय पर ब्रांडी देने की सूचना थी। हमें भी छूत से बचने के लिए थोडी ब्रांडी लेने को नर्स कहती और आप भी लेती थी। हममें से कोई ब्रांडी लेनेवाला ही नहीं था। मुझे तो रोगियों को भी ब्रांडी देने में श्रद्धा नहीं थी। तीन रोगी ब्रांडी बिना ही चलाने और मिट्टी का प्रयोग करने देने को तैयार थे। डाक्टर गोडफ्रे की इजाजत से मैंने उनके सिर और छाती में जहां जहां दर्द होता था, मिट्टी लगाने का प्रयोग किया। इन तीन रोगियों में से दो बचे और बाकी के सभी रोगी मर गये। बीस रोगी तो इसी गोदाम में चल बसे थे।

म्युनिसिपेलिटी की दूसरी तैयारियां चल रही थीं। जोहान्सबर्ग से सात मील पर एक लेजरेटो या छूत के रोगियों का अस्पताल था। वहां पर तंबू खडा कर के इन तीन रोगियों को ले गये। अगर दूसरे लोग बीमार हों तो उन्हें भी वहीं ले जाने का प्रबंध किया। हम इस काम से मुक्त हुए। थोडे ही दिनों में हमें खबर मिली कि उस भली नर्स को प्लेग हो गया और उसका देहान्त हुआ। यह कोई नहीं कह सकता के वे दो रोगी क्यों बचे और हम कैसे अछूते रह गये। पर मिट्टी के इलाज पर मेरी श्रद्धा और शराब के दवाई के उपयोग में अश्रद्धा बढी। मैं जानता हूँ कि यह श्रद्धा और अश्रद्धा दोनों ही निराधार गिने जायँगे। पर मेरे ऊपर उस समय की पडी हुई छाप को, जो अब तक चली आती है, मैं धो नहीं सकता, इसलिए इस प्रसंग को लिखना आवश्यक समझता हूँ।

महामारी के शुरू होते ही, म्युनिसिपेलिटी ने जब से लोकेशन को लिया था, तब से उसकी बढती हुई लापर्वाई के लिए और म्युनिसिपेलिटी को ही इस महामारी का कारण ठहराते हुए मैंने अखबारों में एक सख्त पत्र लिखा था। उस पत्र ने मुझे मि० हेनरी पोलक को दिया और वह पत्र स्व० जोसेफ डोक की मुलाकात का भी एक कारण हो पडा था।

पिछले अध्यायों में मैं लिख गया हूँ कि मैं भोजन करने एक निरामिषभोजी भोजनालय में जाता था। वहां मुझे मि० आल्बर्ट वेस्ट का परिचय हुआ। हमेशे ही हम इस घर में शाम को साथ खाते और घूमने जाते थे। वेस्ट किसी छोटे से छापाखाने में हिस्सेदार थे। अखबारों में उन्होंने महामारी के विषय में मेरा पत्र देखा और खाते समय मुझे भोजनालय में न देखा। इससे वे घबरा गये।

मैं और मेरे साथियों ने महामारी के दिनों में अपनी खूराक घटा ली थी। बहुत दिनों से मेरा नियम था कि जब बीमारियों के दिन हों तब पेट में जितना कम भार पडे उतना ही अच्छा। इस लिए मैंने शाम का खाना बंद कर दिया था। और दोपहर को, दूसरे खानेवालों को किसी किस्म का डर न रहे, इस लिए किसी के आने के पहले ही खा आता था। भोजनालय के मालिक के साथ तो मेरा गाढा परिचय था। उससे मैंने बात कर ली थी कि प्लेग के रोगियों की सेवा करते होने के कारण मैं दूसरे लोगों से कम से कम स्पर्श रखना चाहता हूँ।

यों मुझे भोजनालय में न देखने से दूसरे या तीसरे ही दिन सवेरे के समय, मैं बाहर जाने की तैयारी जैसे ही कर रहा था कि वेस्ट ने मेरे कमरे का दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खोलते ही वेस्ट बोले:

"आपको भोजनालय में न देख कर मैं घबराया कि कहीं आप भी तो नहीं बीमार पडे? इसलिए अभी तो आप मिलेंगे ही, इसी आशा से मैं यहां आया। अगर मुझ से कोई मदद हो सके तो आप कहिए। मैं रोगियों की सेवा करने को भी तैयार हूँ। आप जानते हैं कि मेरे ऊपर, पेट भरने के सिवाय, और कोई जवाबदारी नहीं है।

मैंने वेस्ट का आभार माना। ऐसा याद नहीं आता कि एक मिनट भी विचार करने को लिया हो। मैंने कहा:

"आप को नर्स के लिए तो मैं लूँगा ही नहीं। जो दूसरे रोगी न निकलें तो हमारा काम एक ही दो दिनों में पूरा होगा। पर एक काम है सही।"

"वह क्या।"

"आप क्या डरबन जाकर 'इंडियन ओपीनियन' प्रेस के बहीखाते का भार लेंगे? मदनजीत तो यहीं काम में लगे हुए हैं। वहां किसी के जाने की जरूरत तो है ही। आप अगर जाइए तो मेरी उस ओर की चिन्ता बिलकुल कम हो जाय।"

वेस्ट ने जवाब दिया:

"आप तो जानते हैं कि मेरे पास छापाखाना है। बहुत कुछ तो मैं जाने को तैयार हो जाऊँगा। अखीरी जवाब अगर आज सांझ को दूँ तो बस होगा न? टहलने चल सकिये तो उसी समय बातें करेंगे।"

मैं खुश हुआ। उसी दिन सांझ को थोडी बातचीत की। वेस्ट को हर महीने दश पाउन्ड का मुशाहरा और अगर कुछ नफा होवे तो उसका एक खास अंश देना ठहराया। वेस्ट तो मुशाहरे के लिए नहीं जाते थे, इस लिए उनके सामने यह सवाल नहीं था। दूसरे ही दिन रात की मेल में मुझे अपने लहनों की सूची देकर, वेस्ट रवाने हुए। तब से मेरे दक्षिण आफ्रिका छोडने तक वे मेरे सुख दुःख के साथी रहे। मैंने वेस्ट को हमेशे लाउथी के एक किसान परिवार के, स्कूलों में साधारण शिक्षा पाये हुए, मगर अपनी मिहनत से अनुभव की शाला में सीखे हुए, घडे हुए, शुद्ध, संयमी, ईश्वर से डरनेवाले, साहसी, परोपकारी अंगरेज के रूप में ही जाना है। उनका और उनके कुटुम्ब का और अधिक परिचय इन प्रकरणों में अभी देने को है।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

हमारी सभ्यता

किसान की बक्षिस

संयुक्त प्रांत के एक गरीब किसान ने मुझे मेरे प्रवास में नीचे का लिख कर दिया था। उसकी तारीख है ४-११-२४। तब से मैंने उसे आपने कागजपत्रों में संग्रह कर रखा था। मुझे यह जैसा मिला है वैसा ही यहां दे रहा हूँ। नाम भी नहीं छिपाता, क्योंकि इसमें यह भय नहीं कि यह रामचंद्र फूला न समायगा। यही अधिक संभव है कि वह कभी नवजीवन पढता ही न हो। और यदि पढता भी होगा तो जिसने तुलसीदास की ये सुन्दर चोपाइयां लिख मेजी है वह, मैं आशा करता हूँ कि अभिमान से न फूलेगा।

(संसार के जीवों को सुख पहुँचानेवालों की)

(नीति)

जननी जनक बन्धु सुतदारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा ॥
सबकै ममता तागबटोरी। मम पद मनहिं बांधि बरडोरी ॥
समदर्शि इच्छा कछु नाहीं। हर्ष, शोक, भय, न मन माहीं ॥
अस सज्जन मम उरवस कैसे। लोभी हृदय वसत धन जैसे ॥
तुम सरीखे सन्त प्रिय मोरे। धरहुँ देह नहिं आन निहोरे ॥

दो०

सगुण उपासक परहित, निरतनीति दृढनेम।
ते सज्जन मोहिं प्राणप्रिय, जिनके द्विज पदप्रेम ॥

जब तक सब नेता ऐसा न समझ लें तब तक यह संसार के पापी जीव तर नहीं सकेंगे। क्या करूं इस समय (ममत्व) के अहँ ने सब की मतियों पर अपना दबाव डाल कर अन्ध कर दिया है। जीव माया के जाल में पड बौराय रहे हैं। इससे हे महात्मन्, ईश्वर आपको दीर्घायू प्रदान करें, जिससे कलियुग के पाप दूर हों।

(प्रार्थि-नम्र-चिन्ता-जनक)

(रामचन्द्र)

—किसान अवध ४-११-२४-८१

बडोदादा की बक्षिस

इसी प्रकार की बडोदादा से प्राप्त एक अमूल्य वस्तु मेरे पास हमेशा रहती है। उनके जीवनकाल में जब मैं शान्तिनिकेतन में आखिरी दफा गया था उस समय नीचे दिया हुआ श्लोक उन्होंने मुझे अपने हाथ से लिख कर दिया था:

विपत् संपदिवाभाति मृत्युश्चाप्यमृतायते।
शून्यमापूर्णतामेति भगवज्जनसङ्गमात्।

इसका अर्थ है:

[भगवद्भक्त के सत्संग से दुःख सुखरूप होता है मृत्यु भी अमृत रुप बन जाता है और जड मनुष्य सम्पूर्ण ज्ञानी बन जाते हैं।]

एक जंगली गिना जानेवाला किसान भी समय आने पर तुलसीदास की ज्ञान और भक्तिरस पूर्ण चोपाइयां लिख सकता है और दूसरा महाकवि अपने को गूढ ज्ञान होने पर भी अहँभाव को छोड कर सत्संग की खोज में रहता है। उपरोक्त दोनों अवतरणों पर उसके साथ मेरा जो संबंध है उसे त्याग कर पाठक यदि तटस्थ दृष्टि से विचार करेंगे तो उन्हें मालूम होगा कि हमारी सभ्यता क्या है और उसके लायक हम कैसे बन सकते हैं।

मोहनदास करमचंद गांधी

साप्ताहिक पत्र

प्रवास

उत्तर से उतर कर दक्षिण में गये और फिर पश्चिम घाट के तरफ मुड गये। सागर की ओर के प्रदेश का वर्णन मैं ऊपर कर चुका हूं। इस सप्ताह में शिमोगा से तिर्थहल्ली गये। (तीर्थ-आवलि अथवा हल्ली अर्थात ग्राम) तुंग ओर भद्रा का रह सारा ही अति रमणीक प्रदेश है। तीर्थहल्ली तुंग नदी के किनारे पर बसा हुआ है। वहां से भद्रावती के तरफ लौटे। फिर दक्षिण में चिकमगलूर, बेलूर, आसिकेरी, टिप्टूर हो कर फिर बंगलोर आये। इस प्रकार मैसूर का यह मनोहर प्रवास पूरा किया। इस प्रवास में कुछ प्रदेश तो ऐसे थे कि उनसे ट्रावनकोर के सौन्दर्य का स्मरण होता था। परन्तु उस सौन्दर्य को देखने के लिए गांधी जी को दिल कैसे हो सकता था। सागर से १८ मील दूर जगप्रसिद्ध गेरसप्पा का जलप्रपात है। प्रसिद्ध भूभ्रमण करनेवाले इस ९०० फीट के जल-प्रपात को देखे विना नहीं लौटते। जो वहां जाते हैं वे वहां की अलौकिक शोभा का वर्णन करते करते थक जाते हैं। परन्तु गांधी जी वहां न गये। उन्होंने काका साहब से हंसते हंसते कहा: 'ओहो, ९०० फीट ऊंचे से ही गिरता है न? आकाश में मीलों ऊंचाई से पानी गिरता है उसकी बराबरी तो नहीं कर सकता न? उन्होंने दूसरी कितनी ही उपमायें दी। सारा मतलब यह था कि यह सब मेरे लिए नहीं है। बेलूर का भव्य मंदिर उन्हें देखना पडा और वह इसलिए कि बेलूर प्रवास के क्रम में आता था। हिन्दुस्तान में बारहवीं सदी की हिन्दी शिल्पकला का यह एक गौरवपूर्ण अनुपम नमूना है। यहां से ११ मील दूर हलेबिड हयसला राजाओं की पुरानी राजधानी है। वहां भी एक मंदिर है। दोनो मंदिरों की दिवालों पर जो शिल्पकला है उसे देख कर हमें अपने गौरवपूर्ण दिनों की याद आती है। यहां महाभारत और पुराणों के अनेक प्रसंग पत्थर में खुदे हुए हैं। हर एक कोने पर देवदासी की अनेक हावभाव दिखानेवाली मूर्तियां हैं। अंदर के स्थंभ तो ऐसे हैं कि मानो किसी चूडगर के यहां से ही तैयार हो कर आये हों। परन्तु इस वर्णन के लिए यह स्थान नहीं है। मेरा यह काम भी नहीं है। जो बात कहना है वह तो यह है कि गांधी जी को इस अद्भुत कलामंदिर के जुदे जुदे हिस्से जब दिखाये जाते थे तब उनकी आंखे कृत्रिम तौर पर एक से दूसरे पर दूसरे से तीसरे पर जाती थी। हां, एक दो स्थानो पर वे स्थिर अवश्य हुई क्योंकि वहां उन्होंने अपने आदर्श की पोषक आकृतियां देखीं। हलेबिड तो देखने भी नहीं गये। बेलूर की सभा में उन्होंने अपना मनोभाव व्यक्त किया:

'इस अद्भुत स्थान पर आने के लिए किसका मन न लुभायगा। लेकिन मेरे जैसे दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि के लिए यह सब नहीं है। मेरा सब समय और सामर्थ्य गरीबों की सेवा के लिए मैं दे चुका हूं इसलिए उस सेवा के निमित्त से जितना देखा जा सकेगा उतना देख लूंगा किन्तु सेवा के उस क्षेत्र के बाहर मैं नहीं जा सकता हूं। मुझे इस स्थान में लाने के लिए केशवदास ने ५००) की थेली का लालच न दिया होता तो मैं यहां भी न आता' (केशवदास एक कीर्तनकार हैं और नियमित खादी पहननेवाले हैं। उन्होंने गांधीजी की बेलूर की मुलाकात के निमित्त अपनी कीर्तन की आमदनी का १० वां भाग हमेशा देने की प्रतिज्ञा की है।)

इस हफ्ते में भी बडे रसपूर्ण अनुभव हुए। सब जगह सभायें शान्त और व्यवस्थित होतीं थीं। उसमें भी तीर्थहल्ली की सभा भूल नहीं सकते। और दूसरे स्थानों में तो श्री गंगाधरराव और

राजगोपालाचार आगे जाकर सभा का प्रबन्ध करते हैं परन्तु यहां यही प्रतीत हुआ कि मानो इस मनोहर स्थान के निवासी स्थान के अनुरुप मनोहर सभाएं करना भी सीखे हों। स्त्रीयों की और पुरुषों की दोनों ही सभायें चित्त को प्रसन्न और प्रफुल्ल करनेवालीं थीं। इस छोटे से गांव में खादी का भी ठीक प्रचार था। राज्य के तरफ से यहां एक चरखा-शाला है। यहां के लोगो ने १५००) की थेली भेट की।

भद्रावती से चिकमगलूर जाते हुए रास्ते में छोटे छोटे गांवो में से भी अच्छी रकमें मिलीं। रास्ते में तरीकेरे नामक एक गांव आता था। वहां सिर्फ पांच मिनिट ही ठहरना था। हजारों मनुष्य राह देखते हुए बैठे थे। उन्होंने ६००) की थेली दी और एक प्रौढ मानपत्र दिया। किसी मानपत्र में 'आरोग्य विषयक सामान्य ज्ञान' की प्रशंसा यदि मैने देखी हो तो वह इसीमें थी। मैंने एक सज्जन से पूछा 'मालूम होता है यह मानपत्र किसी ऐसे शख्स का लिखा है, जिसने यह पुस्तक पढी हैं।' उन्होंने कहाः 'यहां के पुस्तकालय में यह पुस्तक है और बहुतेरों ने उसे पढा है और बहुतेरे उसका लाभ लेते हैं।' यह सज्जन महकमे जंगल के एक अधिकारी थे और नखशीख खादी धारी थे। मैंने पूछा 'आप कबसे खादी पहनते हैं।' उन्होंने कहा 'बहुत साल हुए, मेरे घर में सब खादी पहनते हैं और कातते हैं। मुझसे जितना बन पडता है मैं उसका प्रचार करता हूँ।' मैंने फिर पूछा 'आप यंग इण्डिया नवजीवन पढते हैं?' कुछ शरमा कर बोले 'नहीं, कभी 'हिन्दु' में उसके लेख देखता अवश्य हूँ।' मैंने कहा 'तब तो आप अधिक धन्यवाद के पात्र हैं।'

चिकमगलूर में 'कोफी' के बागीचे हैं। बंगाल में जैसा जलपाइगुडी (चाय के बागीचों का स्थान) वैसा यह मैसूर में है। चिकमगलूर ने ५,००० की थेल दी। सारे प्रवास में कहीं भी वर्षा के कारण कोई तकलीफ नहीं हुई। काकासाहब अक्सर कहते कि 'मालूम होता है मेघराजा यहां के स्वागतमंडल के सभ्य बने हैं।' इस जगह तो उसने सच ही अच्छा स्वागत किया। सभा के आरम्भ में दोएक छींटे पड गये। परन्तु गांधी जी बोलते रहे और छींटे बन्ध हो गये और सभा के ऊपर मेघराजा भव्य इन्द्रधनुष तान कर स्थिर हो रहे! इस सभा का प्रबन्ध भी बडा अच्छा था। स्त्रियों के लिए एक अलग विभाग था। एक भद्र स्त्रियों का समूह बैठा था। और उनसे कुछ दूर कुछ अस्पृश्य बहनें बैठीं थीं। गांधी जी ने पहले उस मण्डल से पूछा 'यदि आपलोगों के बीच में ये बहनें आ कर बैठें तो आपको छूत लगेगी? जिनको छूत लगती हों वे अपना हाथ उठावें।' दो तीन मरतबा पूछा, किसी ने भी हाथ न उठाया। फिर गांधी जी ने पूछा 'तो मैं इन बहनों को बुलाता हूं?' एक दो बहनोंने कहा 'अच्छा बुलाइए।' सब बहनें आ कर उनके साथ मिल कर बैठ गयीं। कुछ कोलाहल भी न हुआ। पुरुष वर्ग तो हंसता हुआ यह तमाशा देख रहा था। कच्छ के कटु अनुभव के लिए मैं तैयार था किन्तु मैसूर में कटुता कहां पावें?

कलाशत्रु

बेलूर और हलेबिड के मंदिरों का उल्लेख ऊपर कर चूका हूं। विष्णुवर्धन राजा ने जैन धर्म छोड कर वैष्णव धर्म स्वीकार किया उसकी प्रशस्ति के निमित्त उन्होंने केशवेश्वर की मूर्त्ति की स्थापना कर बेलूर का मन्दिर बनवाया था। यह कहा जाता है कि १११७ ई.स. में वह बँधा था। हलेबिड भी इसी बारहवीं सदी का है। दक्षिण में बेलूर का ही एक मन्दिर है जहां रामानुजाचार्य के कारण साल में तीन दिन अंत्यजों को मन्दिर के गर्भ में प्रवेश करने दिया जाता है। हलेबिड का मन्दिर देखने में बेलूर के बनिस्बत अधिक अच्छा बँधा हुआ मालूम होता है और वहां महाभारत रामायण के प्रसंग दिखलानेवाली आकृतियों को भी बेलूर से बढ कर पाया। परंतु और प्रकार से बेलूर का सौन्दर्य बहुत बढा चढा है। केवल शिल्प और स्थापत्य के अभ्यासी ही नहीं प्राचीन भारत और शास्त्र के अभ्यासी भी चाहें तो यहां दिन के दिन बिता सकते हैं।

परन्तु इन पवित्र मंदिरो के उपर कला-शत्रुओं के हाथ पडे हैं। राज्य में एक पुरातत्त्व का बडा विभाग है। उसके द्वारा प्राचीन मंदिरो के शिला लेखों की शोध और अभ्यास भी खूब होता है। परन्तु इस भव्य मंदिर पर मालूम होता है बहुत कम ध्यान दिया जाता है। बेलूर के मंदिर के बाहर जो मंदिर है उनके अन्दर कभी सफाई नहीं होती और हलेबिड के ऊपर जो अत्याचार किये गये हैं उन्हें देख कर तो क्रोध आता है।

लेकिन इसमें राज्य के दोष के बनिस्वत लोगों का ही अधिक दोष है। सौन्दर्य को देख कर हृदय भक्तिमय और स्थंभित हो जाय यही तो सौन्दर्य का उपभोग है। उपासना ही उपभोग है। परन्तु हमारे इस देश में तो उपभोग और अत्याचार ने ही अधिकतर उपासना का स्थान ग्रहण किया हैं। यहां भी कला के शत्रु अपनी उच्छृङ्खल वृत्ति को नहीं रोक सके हैं। मंदिर के सामने नन्दी की दो अद्भुत मूर्तियां हैं। इन मूर्तियों के लिए इतना अच्छा पत्थर हूँढा गया था कि आज भी एक स्थान पर उसका स्वाभाविक नील मिश्रित श्वेत रंग चमक रहा है। इन पर कुछ लोगों ने अपने नाम खुदवायें हैं। और कुछ लोगों ने अपने को पसन्द आकृतियां खुदवायी हैं। और इन कला-शत्रुओं में हिन्दु, मुसलमान, ईसाई सभी समान दोषी है। संस्कारी मैसूर में भी कला-शत्रु!

भद्रावती

मैसूर की जाहोजलाली के बारे में बहुत कुछ लिखा गया। कावेरी नदी के कृष्णराज सागर बांध का उल्लेख उपर कर चुका हूँ अंजोनियरी शक्ति का वह एक भव्य नमूना है और दूसरा एक बांध मैसूर छोड कर आगे जाने पर शिवसमुद्र के पास जहां कावेरी का जलप्रपात है वहां है। उससे राज्य में बहुत से स्थानों में बीजली पहुँचायी जाती है। भद्रावती में पृथ्वी की आंतों में अंजीनियर लोग उतरे हैं। इस प्रदेश में लोहे की खानें है। उनका पता लगा कर सर एम. विश्वेश्वरैया ने जमशेदपुर की तरह लोहे का एक कारखाना खोला है। अभी उसे तीन चार साल ही हुए हैं इस लिए वह राज्य को लाभप्रद है यह सम्पूर्णतया सिद्ध नहीं हुआ है फिर भी यह कारखाना मैसूर के साहस का एक प्रमाण है। जंगल में से मनों लकडियां आती है और यहां की लोहें की भट्ठियां जलायी जाती हैं। लाकडियों में से जो शराब इत्यादि बनायी जाती है उसके लिए एक अलग कारखाना है। सर एम. विश्वेश्वरैया का स्वप्न तो गेरसप्पा के जलप्रपात से बीजली प्राप्त कर उससे इस कारखाने के साथ कागज बनाने का और दूसरे उद्योग भी चलाना है। यह स्वप्न तो जब सफल हो तब सही, किन्तु इस साधारण सफलता प्राप्त शुद्ध स्वदेशी साहस से लिए कोई भी अभिमान कर सकता है। ५००० मनुष्य वहां काम करते हैं। उनमें एक भी परदेशी नहीं है। बहुतेरे काम करनेवाले मैसूर के हैं, कुछ मद्रास या त्रावनकोर के होंगे।

यहां भी मजदूरों ने ५०० की थेली दी थी और यह कह सकते हैं कि गांधी जी उसीके लिए वहां गये थे यद्यपि मैसूर राज्य के इस साहस को देखना भी उनका अभिलाष था। गांधी जी ने इस साहस की बडी प्रशंसा की। जमशेदपुर से यहां

पर जो एक बडी विशेषता — स्वदेशीपन था उसके लिए धन्यवाद दिया। और कहा कि हिन्दियों पर जो यह आक्षेप है कि बुद्धि को कार्यक्षेत्र में उतारने की उनमें शक्ति नहीं उसका यह चोखा जवाब है। और अन्त में मध्यम वर्ग की आवश्यकताओं का खयाल करने में गरीबों को न भूल जाना यह प्रार्थना की। 'आप अपने उद्योग चलावें। खनिज सम्पत्ति का लोककल्याणार्थ अवश्य उपयोग करें परन्तु गरीबों का न भूलिएगा। यहां के गरीब मजदूरों को शराब की दुकानें और जुओं के अड्डों से दूर रखिएगा।'

कृष्ण जन्माष्टमी

जिस दिन आर्सिकेरे पहुंचे उस दिन कृष्णजन्माष्टमी थी। मानपत्र में उसका उल्लेख होना ही चाहिए। गांधी जी ने उसीको ले कर कृष्णजीवन पर व्याख्यान दिया। कृष्णजयन्ति का अर्थ हम आज नहीं समझते हैं और न हम अपने बालकों को भगवद्गीता पढाते हैं। शिमोगा में एक पादरी ने मुझसे कहा था कि भगवद्गीता क्या है यह भी इस देश के बहुत से बालक नहीं जानते हैं। भगवद्गीता ऐसा असामान्य ग्रंथ है कि उसे हरेक धर्म का मनुष्य आदर के साथ पढ सकता है और उससे अपने धर्म के तत्त्व निकाल सकता है। यदि हम लोग प्रति जन्माष्टमी को श्रीकृष्णचरित्र का स्मरण करते और गीता पाठ कर उसके अनुसार चलते तो आज जैसी हमारी शोचनीय स्थिति है वैसी कभी न होती। श्रीकृष्ण ने हमारे सामने—सारी पृथ्वी के सामने — जो आदर्श उपस्थित किया है उसके अनुसार चलने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। उन्होंने जीवन लोकसेवा में बीताया, लोगों का दासत्व किया। यदि वे चाहते तो सरदार बन सकते थे किन्तु उन्होंने ठकुराई बिसार दी और सारथी बनना ही पसन्द किया। उनका सारा जीवन एक कर्म की गीता है। संसार में उन्होंने बडे से बडे राजा की भी परवा न की। अभिमानी दुर्योधन का मेवा छोड कर विदुर की भाजी को ही उन्होंने पसंद किया। बचपन ही से वे गोसेवक थे, इसी लिए तो उन्हें गोपाल कहते हैं। परन्तु उनका नाम लेनेवाले हम अब मिथ्याचारी बन बैठे हैं। गोसेवा हम जानते नहीं। गायें और गोवंश को हम लोग कष्ट देते हैं। आदिकर्णाटक जैसे हिन्दुपन का दावा करनेवालों को भी गोवध करने और गोमांस खाने में कोई संकोच नहीं होता है। हम लोगोने ढोरों की स्थिति ऐसी गयीबीती कर दी है कि हमारे बच्चों को चाहिए उतना दूध नहीं मिलता, रोगी को भी दूध नहीं मिलता। श्रीकृष्ण के समय में गोपालन होता था इस लिए उस समय दूध और मक्खन की कोई कमी न थी।

"श्रीकृष्ण में आलस का नाम न था वे तो आठों पहर सदा जाग्रत और अतंद्रित रह कर काम करनेवाले थे। हम लोग आज आलसी और प्रमादी बन गये हैं। यदि हम तंद्रा का त्याग न कर सकें तो श्रीकृष्ण का नाम लेना निरर्थक है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने भक्ति का मार्ग बताया है और उसमें कहा है मेरे निमित्त कर्म करो। लोकमान्य ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि भक्त और ज्ञानी बनना चाहो तो कर्म ही एक मार्ग है। परन्तु भगवान ने यह दिखाया है कि वह कर्म स्वार्थ के वश हो कर नहीं पारमार्थ दृष्टि से ही करना चाहिए। स्वार्थ के लिए किया गया कर्म केवल बंधनरूप है। यज्ञार्थ किया गया कर्म बन्धनमुक्त करनेवाला है। ऐसा वह कर्म क्या हो सकता है जो मैं करूं, तुम करो, बालक करे, बालिका करे, हिन्दु करे, मुसलमान करे और फिर भी जो पारमार्थिक कर्म हो? मैंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि कलियुग में ऐसा यज्ञ केवल चरखे से ही हो सकता है, इस युग में केवल यही एक अपना सुदर्शन चक्र हो सकता है, क्योंकि उसीके द्वारा हम लोग कर्तव्यशील बन सकते हैं, परमात्मा का नाम ले सकते हैं और परमार्थ कर सकते हैं।

"आप इस यज्ञ में अपनी तरफ से जितना हिस्सा दे सकते हो दो। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने कार्य में और गीता में यह दिखाया है कि भक्त बनना हो तो हमें ब्राह्मण और भंगी के प्रति समबुद्धि रखना चाहिए। यदि यह सच है तो हिन्दु-धर्म में अस्पृश्यता हो ही नहीं सकती। आप, जो अस्पृश्यता का संग्रह किये हुए हो, आज, इस पुण्यतिथि को, उसे भूल जाओ और अस्पृश्यों की सेवा करने की प्रतिज्ञा करो। जो मनुष्य श्री कृष्ण की शरण में जाता है, भगवद्गीता को अपना मान्य ग्रंथ समझता है उसके सामने हिन्दु, मुसलमान इत्यदि भेद नहीं रहता, और रहना भी नहीं चाहिए। मनुष्य किसी भी भाव से ईश्वर की पूजा करे वह श्री कृष्ण को ही पहुंचती है। इस भक्तियोग, कर्मयोग, प्रेम मार्ग में किसी भी मनुष्य के प्रति द्वेष के लिए स्थान नहीं है और स्थान हो भी नहीं सकता है। परन्तु आप लोगों को हिन्दु मुसलमानों में प्रेम रखने को कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। आप तो यहां मिल जुल कर रहते हो। आपका यह मेल कायम रहे और हिन्दु सच्चे हिन्दु बनें।"

(नवजीवन)

महादेव हरिभाई देशाई

मई १९२७ में खादी की उत्पत्ति और ब्रिक्री का ब्योरा

प्रान्त	रु.	उत्पत्ति मइ '२७	मई '२६	अप्रैल '२७	ब्रिक्री मई '२७	मई '२६	अप्रैल '२७
अजमेर	,,	३,९७२	१,६६०	७,६४१	१५,७१६	३,४५८	६,५१९
आन्ध्र	,,	२७,५२७	१६,४७०	३२,२१८	५०,३६९	२८,६६३	४९,६७५
बिहार	,,	८,६५८	३२,३७३	८,३६९	१५,०२३	११,५३०	२१,८१८
बंगाल	,,	१६,८३८	३७,७२७	१३,५७९	२६,३९९	३१,०८५	३५,७३२
बम्बइ	,,	. .	. .	. .	२४,३५९	३०,२३२	३६,६५८
ब्रह्मा	,,	. .	. .	. .	२,२१९	१,३५७	२,९७४
दिल्ली	,,	१,३१९	८०१	९२६	१,६६१	१,६४७	२,१९७
गुजरात	,,	५,९१९	९,८५९	५,०९५	६,०१३	६,९५५	१४,२६४
कर्णाटक	,,	४,२१५	३,५२९	२,००१	५,५२४	५,२५३	४,८५८
महाराष्ट्र	,,	१,७७१	१,९१५	१,५०५	१०,९१०	१२,५५३	१९,१४६
पंजाब	,,	४,५८४	५,५६३	५,८०१	६,४०९	११,४५०	१०,७५१
तामिलनाड	,,	*६७,००१	४०,२०९	७१,७६८	*७७,५०१	६५,८९३	७८,०२०
युक्त प्रान्त	,,	११,०४८	५,८३४	७,११३	१६,०६२	६,६४८	१९,००४
उत्कल	,,	३,९४२	३,००१	४,१५२	२,२१६	१,८५०	३,२८४
कुल	रु.	१,५६,७८९	१,५८,९४१	१,६०,१६८	२,६०,३८१	२,२८,५४४	६,०४,९००

* तामिल नाडू के अंक अधूरे हैं, दो तीन स्वतंत्र और महत्व के भंडारोंने अपनी रिपोर्टें नहीं भेजी है।

मोरी परिदर्शक की राय

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ४

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद

अहमदाबाद, अश्विन बदी ५ संवत् १९८४
गुरुवार, १५ सितम्बर १९२७ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय १७

'लोकेशन' की होली

जो कि मैं और मेरे साथी रोगियों की सेवा से तो छूटे, मगर महामारी से पैदा हुए दूसरे काम तो सिर पर थे ही।

'लोकेशन' की स्थिति के बारे में म्युनिसिपेलिटी भले ही लापर्वा हो, मगर गोरे शहरातियों के आरोग्य के बारे में तो चौबीसों घण्टे जाग्रत थी और उसकी रक्षा के लिए खर्च में कुछ उठा नहीं रखती थी। इस प्रसंग पर महामारी को आगे बढने से रोकने के लिए तो उसने पानी सा धन बहाया। मैंने हिंदुस्तानियों के प्रति म्युनिसिपैलिटी के बहुत दोष देखे थे, मगर इस सावधानी के लिए उसे मान दिये बिना मैं नहीं रह सका और उनके इस शुभ प्रयत्न में मुझसे जहां तक हो सकी मदद दी। मेरा यह मानना है कि मैंने यदि वह मदद न दी होती तो म्युनिसिपैलिटी के काम में अडचन पडती, शायद उसे गोलीबंदूक का उपयोग करना पडता और वह करते वह हिचकिचाती नहीं, अपना ही निश्चित किया हुआ करती।

पर ऐसा कुछ हो न पाया। हिन्दुस्तानियों के व्यवहार से म्युनिसिपैलिटी के अफसर खुश हुए और उसके बाद के कितने काम सरल हो पडे। म्युनिसिपैलिटी की इच्छाओं पर बरतने के लिए, हिन्दुस्तानियों पर मेरा जो कुछ असर था वह सब मैंने डाला। यह सब करना हिन्दुस्तानियों को अखरता तो बहुत था, मगर मुझे याद नहीं कि एक ने भी मेरी बात उठायी हो।

लोकेशन के आसपास पहरा बैठा। इजाजत के बिना, न तो कोई आ और न कोई जा सकता था। मुझे और मेरे साथियों को मनमाना अंदर जाने का परवाना दिया था। म्युनिसिपैलिटी का मतलब था, लोकेशन के सब बाशिन्दों को जोहान्सबर्ग से तेरह मील दूर खुले मैदान में तंबू तान कर तीन हफ्ते तक रखना और लोकेशन का लंका-दाह कर देना। भले ही तंबू का हो, मगर नया गांव बसाने में, वहां खूराक वगैरह ले जाने में कुछ समय तो जाता ही है। इसी बीच में वह पहरा बैठाया गया।

लोग खूब घबराये। मगर मेरे पास में ही होने से उन्हें भरोसा था। इनमें के कितने गरीब अपने रुपये जमीन में गाड कर रखते थे। अब उसे खोदना पडा। उन्हें बंक नहीं मिलता। वे बंक जानते भी नहीं। मैं उनका बंक बना। मेरे यहां रुपयों का ढेर लगा। ऐसे समय मुझसे मिहनताना लेना तो पार लग सकता नहीं था। सुभीते से या असुविधा से यह काम पूरा किया। बंक के मैनेजर से मेरा पूरा परिचय था। मैंने उसे कहा कि मुझे बहुत रुपये जमा करने हैं। बैंकवाले तांबे या चांदी के सिक्के अधिक लेने को तैयार नहीं थे। इसके अलावा यह भी संभव था कि प्लेग वाले गांव से आने वाले रुपयों को छूने में किरानी लोग आनाकानी करें। तौ भी मैनेजर ने सारी सुविधाएँ कर दीं। रुपयों को कृमिनाशक पानी में धो कर भेजने का ठहराव हुआ।

मुझे याद है कि इस तरह कोई ६०,०००) पाउन्ड बंक में रक्खे गये। जिनके पास अधिक धन था, उन मुवक्किलों को मैंने अधिक व्याज के लिए बँधी मुद्दत के लिए रुपया जमा करने की सलाह दी। उन उन मुवक्किलों के नाम पर इस प्रकार कितने रुपये जमा हुए। इसका फल यह हुआ कि उन में कितनों को बंक में रुपया रखने की टेव लगी। लोकेशन के बाशिन्दों को क्लिपस्प्रुट नाम के मैदान में स्पेशल ट्रेन से ले गये। म्युनिसिपैलिटी ने अपने खर्च से रसद पहुँचायी। तंबुओं का यह गांव सिपाहियों की छावनी जैसा दिखता था। लोगों को यों रहने की आदत न होने से कुछ मानसिक दुःख हुआ, कुछ नया नया सा लगा, मगर कोई खास तकलीफ नहीं उठानी पडी। मैं हररोज बाइसिकल पर एक फेरी लगा आता। तीन हफ्ते यों खुले में रहने से लोगों का स्वास्थ्य अवश्य ही सुधरा। और मानसिक दुःख तो चौबीस घन्टा बीतते न बीतते तुरत ही भूल गये और उसे भूलने के पीछे आनंद से रहने लगे। मैं वहां जब जाऊँ, तभी उन का भजन कीर्त्तन, या खेल तमाशा चलता ही होता था। मुझे याद है कि जिस दिन लोकेशन खाली किया गया, उसके दूसरे ही दिन उसकी होली हुई। म्युनिसिपैलिटी ने उसमें से एक भी चीज बचा लेने का लोभ न रक्खा। इसी अर्से में और इसी कारण, म्युनिसिपैलिटीने अपने बाजार का लकडी काम जला कर दश हजार पाउण्ड का

नुकसान माथे लिया। बाजार में मरा चूहा पाया गया था। इसी लिए यह मुश्किल काम किया गया। बडा खर्च तो हुआ, मगर फल यह हुआ कि बीमारी आगे बढने ही नहीं पायी। शहर निर्भय बना।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

मैसूर से बिदा

मैसूर से बिदा होना बडा मुश्किल हो गया। जहां चार महीने रहे जहां लोगों का असीम प्रेम अनुभव किया वहां से बिदा होना यदि कष्टप्रद न मालूम हो तो वह आश्चर्य होगा। भारतका भू० पृष्ठ दिखानेवाला नकशा देखनेवालों को मालूम होगा कि पहाडों को छोड कर मैसूर जितना विशाल और ऊंचा दूसरा कोई प्रदेश नहीं है। परन्तु साधारण ऊंचाई पर रहनेवाले लोगों के बनिस्बत ३००० फीट ऊंचाई पर रहनेवाले ये लोग समृद्धि, सुख, शान्ति, और संस्कारिता में भी बढे चढे हैं ऐसा ही हमें अनुभव हुआ। बंगलोर के नागरिकों ने अपने तरफ से थैली भेट करना आखिरी दिन तक मुल्तवी रक्खा था। उन्होंने शाम को १०,००० से भी कुछ अधिक की थैली देने के लिए एक विराट सभा की। इस सभा में गांधीजीने उस राज्य को रामराज्य बनाने की अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए जो व्याख्यान दिया था वह तो पाठक पढ ही चुके हैं। परन्तु इस सभा से ही बिदा की समाप्ति नहीं होती थी। चार महीने में कुटुंबीजन बने हुए स्वयंसेवक मित्र इत्यादि वर्ग से बिदा लेना तो अभी बाकी था। इस बिदा का स्मरण तो सदा ही बना रहने के योग्य है।

स्वयंसेवक

इन स्वयंसेवकों का तो मैं प्रथम ही उल्लेख कर चुका हूँ। ८ वर्ष से ले कर २५-३० वर्ष तक की उम्र के ये विद्यार्थी, स्नातक, ग्रेज्युएट, शिक्षक, वकील, स्वयंसेवको ने न रात देखी न दिन, न कभी मुंह बिगाडा और कैसा भी काम क्यों न हो करने में कभी संकोच न किया था। हिन्दुस्तान में बहुतेरे स्थानों में स्वयंसेवकों की सेवा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हैं परन्तु इन स्वयंसेवकों की बराबरी कर सके ऐसे स्वयंसेवक कहीं भी नहीं देखे थे। उनकी मुसकुराते हुए कार्यपरायणता, उनकी प्रसन्नता, और नम्रता किसी भी प्रान्त के स्वयंसेवको को अनुकरणीय थी।

रातदिन गांधीजी के साथ रहने के कारण गांधीजी को क्या पसंद है उसकी जानकारी उन्हें प्राप्त थी। उन्हें कोई समय देने की आवश्यकता न हुई। उन्होंने तो स्वयं जान कर सुबह चार बजे का समय मांग लिया था। मंगल का दिन ठहराया था, परन्तु मंगल का हम लोग वहां से निकलने वाले थे इस लिए रविवार का दिन ठहरा और यह भी निश्चय हुआ था कि गांधीजी के हस्ताक्षर वाली खादी की जिल्द बंधी गीता का गुटका गांधी जी अपने हाथों बांटें। करीब करीब कोई साठ स्वयंसेवक अनेक स्थानों से रात को ही आ कर हमारे मुकाम पर सोये और सुबह की प्रार्थना में शामिल हुए। प्रार्थना खतम होने पर गांधीजी ने सबको गीता बांटी और फिर प्रवचन किया। श्री गंगाधररावने उस प्रवचन का कानडा में अनुवाद कर सुनाया। यह प्रसंग अनेक पदवीदान और पारितोषिकदान समारंभ से भी अधिक गंभीर था। गांधी जी के उस समय के आशीर्वचन ये हैं:

" इस संसार में कोई भी बात अनायास नहीं होने पाती हैं। आज हम शाम को नहीं, दो पहर को नहीं परन्तु प्रातःकाल को एकत्र हुए इसमें भी कुछ रहस्य है, सबको दूसरी कोई पुस्तक या चीज न दे कर गीताजी दी गई इसमें भी कुछ भेद है। और आज गीतापाठ किया गया वह भी तीसरे अध्याय का ही इसमें भी कुछ भेद है। दूसरे किसी दिन इकट्ठे मिलते तो उस रोज किसी दूसरे अध्याय की बारी होती इसलिए इसमें दिन का भेद भी समझ में आ सकता है। प्रत्येक सेवक दोपहर को या दिन चढने पर नहीं उठता है किन्तु सुबह प्रातःकाल में ही उठना है और वह अपनी सेवा का आरंभ ईश्वर प्रार्थना से करता है, प्रार्थना करने के पहले शौच, मुखमार्जन कर लेता है। आज से आप यही समझो कि आपकी सच्ची सेवा का आरंभ होता है। आप लोगोंने अनन्य भाव से जो मेरी सेवा की है वह इस सच्ची सेवा का निमित्त मात्र है और उसके लिए जो नियम होना चाहिए उसके निमित्त आपको यह भगवद्गीता मिली है। धर्मसंकट उपस्थित होने पर इस प्रमाण ग्रंथ को खोल कर देख लीजिएगा कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं, और सेवक भगवद्गीता का दूसरा अध्याय देखे उसके बदले तीसरा अध्याय देखे यही अधिक स्वाभाविक है। क्योंकि तीसरे अध्याय में जो बात कही है वह सब सेवकों को अनुकरणीय है। यह अध्याय यह दिखाता है कि ईश्वर ने मनुष्य को पैदा किया उसके साथ साथ यज्ञ को भी पैदा किया। यज्ञ का मूल धात्वर्थ 'पूजा' है। इसके लिए अंगरेजी शब्द 'सेक्रिफाइस' का होना हम बचपन से सीखे हैं। दोनों का वास्तविक विचार करने पर मालूम होगा कि ये दोनों एक ही बात है। पूजा और 'सेक्रिफाइस' दोनों का अर्थ पावक आर्थात पावन करना है। सुगंध जला कर हम सुगंध फैलाते हैं उसी प्रकार पूजा कर के हम सुगंधमय बनते हैं। यही भाव 'पूजा' में है। हमें पैदा करते समय ईश्वर ने कहा कि यह यज्ञ तुम्हारे लिए है। इसीसे तुम्हारी वृद्धि होगी। इन सबका विचार करने पर यज्ञ का एक ही अर्थ हो सकता है और वह सेवा। इस अध्याय का नाम कर्मयोग है और उसमें यह कहा है कि जो मनुष्य केवल पेट भरने के लिए मजूरी करता है वह चोर है, परन्तु जो सेवा के लिए यज्ञ करता है वह पुण्य का काम करता है। इस सेवा का फल हम नहीं नीपजाते है परन्तु वह ईश्वर ही देता है। क्यों कि इसी अध्याय में यह कहा है कि तुम देवों के लिए यज्ञ करो और प्रसन्न हुए देव तुम्हें उसका फल देंगे। एसी सेवा के लिए ही हम इस संसार में जीवित रह सकते हैं।

"सेक्रिफाइस' का दूसरा भी एक अर्थ है। उस पर विचार करके हम इसे पूरा करेंगे। 'सेक्रिफाइस' का सच्चा अर्थ यह है कि हम इसलिए मर जायं कि दूसरों को जीवन प्राप्त हो, हम कष्ट उठावें ता कि दूसरों को आराम मिले। और दूसरे के लिए प्राणार्पन करना प्रेम की परिकाष्ठा है और उसका शास्त्रीय नाम 'अहिंसा' है; अर्थात् यों कह सकते है कि अहिंसा ही सेवा है। संसार में हम देखते है कि जीवन और मृत्यु का युद्ध होता रहता है परन्तु दोनों का परिणाम मृत्यु नहीं किन्तु जीवन है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि 'अहिंसा' ही सर्वव्यापक धर्म हैं। यह कह सकते हैं कि हम मृत्यु के मुख में पडे है। जगत में सब नाश ही हो रहा है फिर भी जीव जीवित रहते हैं, और जब तक ईश्वर का अस्तित्व है तब तक उसकी माया-लीला-का भी अस्तित्व है। संसार में निर्लेप हो कर रहने का एक ही महा नियम है, वह तीसरे अध्याय में दिखाया गया है और वही प्रत्येक स्वयंसेवक का 'मंत्र' है। किसी भी जीव के प्रति द्वेष रख कर मनुष्य उसकी सेवा नहीं कर सकता है। और यदि आप मेरी सेवा के लिए भी यदि किसीका द्वेष करो तो वह सेवा नहीं होगी। इस प्रेम को अपनी भाषा में प्रेम नहीं कहते परन्तु मोह कहते हैं। मोह अर्थात मूर्खता और मूढता है। और मोह से मनुष्य अपना और जिस पर वह मोह करता है उसका नाश करता है। इस मोह के वश हो कर आपने यदि मेरी

सेवा की हो तो उससे मेरा और आपका कल्याण नहीं हो सकता परन्तु मैं यह जानता हूं कि आपलोगों ने मोह के वश हो कर मेरी सेवा नहीं की है, क्योंकि आप मुझे तो केवल नाम से ही जानते थे। आपने अखबारों में पढा होगा कि मैंने देश की बहुत कुछ सेवा की है इसलिए मेरी सेवा करना उचित है। मैंने तो आपकी ओर देखा भी नहीं है। आपके नाम जानने का भी मैंने प्रयत्न नहीं किया है। आपका उपकार मानने में एक शब्द का भी उच्चार नहीं किया है। इसलिए आपकी यह सेवा अनन्य सेवा है।

"फिर भी यदि आप मेरी सेवा का रहस्य न समझें तो यह झूठी मूर्तिपूजा हो जायगी। मुझे सच्चा सेवक जान कर यदि आपने मेरी सेवा की हो तो जिनकी मैंने सेवा की उन की सेवा करने का पाठ आप को समझ लेना चाहिए। और यह पाठ है दरिद्रनारायण की सेवा करना इसे सुलभ बनाने के लिए तकली चरखे की प्रतिष्ठा की गई है। इन्हें कोई भूले नहीं। गीता को कोई न भूले। चरखे के प्रति यदि आपको अश्रद्धा पैदा हो तो गीता में से आप श्रद्धा प्राप्त कर लेवें। गीता की प्रतिष्ठा हृदय में की गई है या होठों पर ही इसका तकली जवाब देगी। शास्त्र का मुख से उच्चारण करने में कोई लाभ नहीं है, उस पर अमल करने में ही लाभ है।

"आपके सामने मैंने यह गंभीर बात कह दी। आप उसे समझने का प्रयत्न करें ओर यदि न समझ सकें तो अपने बडों से पूछ लें। आपको मैं नहीं पहचानता परन्तु आप लोगों ने जो सेवा की है उसे मैं उत्तम प्रकार से जानता हूं। इसका फल देना मेरे हाथ की बात नहीं और यह ठीक भी है। ईश्वर ही उसका फल दे सकता है। और ईश्वर की तो यह प्रतिज्ञा है कि जो कोई शुद्ध भाव से किसी भी जीव की सेवा करता है वह ईश्वर की ही सेवा करता है ओर उसको वह फल देता है। यह श्रद्धा आपको हमेशा सेवा कार्य में परायण रक्खे।

सायं प्रार्थना

संध्या को सभा से आ कर रोजाना की तरह प्रार्थना हुई। बंगलोर में जिस दिन पहुंचे थे उस दिन के जितनी संख्या आज नहीं थी क्योंकि आज दूर भरी गई सभा में बहुतेरों का पहुंचना भी मुश्किल था। लेकिन जो लोग आये थे सब रोज के आनेवाले थे। आज नये आनेवालों में मि. और मिसिस बेरम तो थे ही और एण्ड्रयुझ भी थे। रोजाना गाये जानेवाले भजनों के अलावा इन तीन ईसाई मित्रों ने एक सुन्दर ईसाई भजन भी गाया। गांधीजी कहने लगे: 'इस भजन को मैंने पहली बार प्रिटोरिया में सुना था। यह भजन सुन कर मेरी आंखों के आगे प्रिटोरिया दिखाई देता है।' प्रार्थना हो जाने के बाद रोजाना की तरह सब उठ रहे थे कि गांधीजी ने गंगाधरराव से कहा कि 'सब को रोको, मुझे दो शब्द कहने हैं।' प्रार्थना में आनेवाले कितने हैं यह पूछ कर गांधीजी ने यह मालूम कर लिया कि बहुतेरे रोजाना के आनेवाले थे। गांधीजी राजी हो कर बोले:

"आपलोग नियमपूर्वक प्रार्थना में आते थे यह आपने अच्छा ही किया था। मेरे लिए तो अच्छा था ही, । क्योंकि मुझे तो आपके साथ प्रार्थना करने में आनंद मिला है और उससे मेरी उन्नति हुई है। अब आप प्रार्थना करना न छोडें। संस्कृत श्लोक न जानते हों, भजन गाना न जानते हों तो कुछ फीक की बात नहीं। हमारे प्राचीन ऋषियों ने हमारे लिए रामनाम का बडा सरल रास्ता दिखाया है।

"मनुष्य जीवन के दो विभाग है — एक व्यक्तिगत और स्वतंत्र और दूसरा सामाजिक। उसके स्वतंत्र विभाग की स्वतंत्र प्रार्थना चोवीसों घण्टे भले ही चलती रहे किन्तु समाज के अंग की हैसियत से उसे सामाजिक प्रार्थना भी करनी चाहिए।

इस लिए सुबह उठ कर और सायंकाल को दिन की सारी प्रवृत्तियां पूरी होने पर सब समाज में बैठ कर प्रार्थना करें।

मेरा अनुभव तो यह है, कि जब मैं अकेला होता हूँ तब भगवान का नाम ले लिया करता हूँ, किन्तु जब कोई नहीं होता तब सुहाता ही नहीं, निरालापन लगता है। आप यहां आते हैं उन्हें मैं पहिचानता नहीं, यदि आप कल मुझे रास्ते में मिले तो मैं पहिचानुं भी नहीं; फिर भी आप मेरे साथ प्रार्थना में शरीक थे इतना ही मेरे लिये काफी था, आप मेरा समाज बन गये हैं। जब मैं यहां से जाउंगा तब मुझे नाना तरह के दुःख होंगे उनमें से एक दुःख यह भी होगा कि प्रार्थना में सम्मिलित होनेवाले समाज का वियोग। परन्तु वेलोर पहुंच कर मैं एक नया समाज खडा कर दूंगा और यहां के समाज के विछोहका दुःख धो डालूंगा। जो मनुष्य मानव मात्र को अपने रिश्तेदार समझता है उसे जहां जाय वहां अपना समाज मिलना ही चाहिए। वियोग को वह अपना नहीं सकता।

"अतः यह प्रार्थना जारी रखें। यहां आ कर इसी समाज में प्रार्थना करें। ऐसा नहीं किन्तु आप अपना समाज अपने ही स्थान में तय्यार कर लेंगे। ज्यादे नहीं तो आप के कुटुंबी जन तो हैं ही, उन्हें समाज समझ प्रार्थना करेंगे; किन्तु इस प्रार्थना को न छोडें। यत्न से भजन, गीता सीखेंगे तो श्रेष्ठ है। जितना ज्यादे हो उतना हीं अच्छा होगा। कोई भी नाम लें और आत्मशुद्धि करें यही मुख्य हेतु है।"

डाक्टर और नोकरों से विदायगीरी

इस प्रार्थना में फुरसत न मिलने के कारण कभी न आनेवाले गांधी जी के डाक्टर साहब भी आज प्रार्थना में आये थे। प्रार्थना के अनन्तर आप कहते हैं 'मुझे दस मिनिट के लिये आप के पास बैठना है।' गांधीजी हँसते हँसते कहते हैं: 'आज, शरीर से तो अब स्वस्थ हूँ, किन्तु मन कई बार काम नहीं देता; चाहिए वैसा यह स्वस्थ नहीं हुआ।' 'गांधीजी, अब इसका भय न रक्खें। आपके मन को मैं पहिचानता हूँ। मैंने अनुभवा है कि यह प्रार्थना के समय कैसा उल्लासित होता है। हम तो आपके शरीर की रखवाली कर रहे हैं, पर आप तो हमारे आत्मा की; और इस ओर ध्यान देने से मुझे तो मालूम हुआ है कि आपका मन बराबर स्वस्थ है,' डाक्तर साहब ने कहा; और बराबर अपना गोत्रोच्चार वगैरा कर साष्टांग प्रणाम कर के विदाय ली। आखिर बाकी रहे बंगले के नोकरलोग। गांधीजी सवेरे जाने को तय्यार हुए कि सब कोई आपको घेर खडे हो गये — उसमें भंगी और उसका कुटुम्ब तक भी था। यह दृश्य हृदयद्रावक था। उन सभों ने तो सबसे आखिर विदा ली थी किन्तु गांधीजी के हृदय में उन लोगों के लिए अन्तिम स्थान थोडा ही था? गांधीजी ने कहा, तुमने तो मेरी भारी सेवा की है। तुम तो मेरे पास कभी आ कर खडे तक नहीं रहे, फिर भी मैं तुम्हारा काम भूलूं ऐसा नहीं है। मैंने तो अपनी जीन्दगी में किसे नौकर माना ही नहीं, सो तुम्हें कैसे मानूँ? सब मेरे भाई बहन हैं। तुम्हारी सेवा का बदला देने को मैं समर्थ ही नहीं परन्तु ईश्वर अवश्य इसका बदला देगा।

यों ता. ३० अगस्त को चार महीने के पश्चात् मैसूर से विदाय ली। विदाय तो ले ली किन्तु वहां की सुजनता की याद अब भी आती है।

(नवजीवन)

महादेव हरिभाई देसाई

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, अश्विन वदी ५ संवत् १९८४

मोरी परिदर्शक की राय

'सज्जन के मुख में दोष भी गुण हो जाता है और दुर्जन के मुख में गुण भी दोष। महामेघ तो खारा पानी पी पी कर सुन्दर मीठा पानी बरसाते हैं और सांप दूध भी पी कर महाविष ही उगलता है।'

'नदियां अपना जल आप ही नहीं पी लेतीं, और न अपने फल वृक्ष आप ही खाते हैं। मेघ भी जो फस्ल पैदा करते हैं, उसे खुद नहीं खाते। सज्जनों की सारी विभूति, संपत्ति और शक्ति परोपकार के लिए ही होती हैं।' *

कई भाईयों ने मिस मेयो की किताब 'भारत-माता' के विरुद्ध लेखों से की या उसकी अलोचनाओं की कतरनें भेजी हैं। इसके अलावा कुछ ने तो मेरी अपनी राय मांगी है। लंडन से एक भाई ने बिगड कर मुझ से कुछ सवालात पूछे हैं जो उन्हों ने उस किताब में मेरे लेखों के उद्धरणों पर तैयार गये हैं। खुद मिस मेयो ने भी मुझे अपनी किताब की एक प्रति भेजने की कृपा की है।

मैं इसे मुसाफिरी में पढने के लिए निश्चय ही समय नहीं निकालता और खास कर तब जब कि, मेरे पास थोडी ही शक्ति है और डाक्टर मित्र मुझे बराबर ही अधिक मिहनत करने से मने करते रहते हैं। मगर इन पत्रों ने तो उसे तुरत ही पढ जाना मेरे लिए लाजिमी बना डाला।

किताब बडी चतुराई से और ढंग से लिखी गयी है। सावधानी से चुने गये उतारे, इसे सच्ची किताब का रूप दे देते हैं। मगर मेरे दिमाग पर तो इसका यही असर पडा है कि यह मोरी परिदर्शक की रिपोर्ट है जिसे सिर्फ एक इस काम से भेजा गया था जो मोरियां को खोल कर देखे या खोली गयी मोरियों की बदबू का सुन्दर वर्णन लिखे। अगर मिस मेयो ने कबूल कर लिया होता कि वे हिन्दुस्तान में सिर्फ यहां की मोरियाँ देखने ही आयी थीं तो फिर उनकी किताब से किसी को शिकायत नहीं होती। मगर वे तो गर्व से कहती हैं, "ये मोरियां ही तो हिन्दुस्तान हैं।" यह सही है कि अखिरी अध्याय में कुछ चेतावनी दी गयी है, मगर, वह चेतावनी भी तो ऐसी होशियारी से गयी है कि वह सरसरी तौर पर निन्दा की पोषक हो जाती है। मुझे लगता है कि जो कोई हिन्दुस्तान को जरा भी जानता है वह यहां के आदमियों के जीवन और विचारों पर मिस मेयो के भयंकर इल्जामों को मान ही नहीं सकता।

यह किताब बेशक झूठी है, चाहे इसमें बतलायी गयी बातें सच क्यों न हो। अगर मैं लंडन की मोरियों की सारी बदबू का वर्णन लिखने लगूं और कहूँ, "देखो, यही लंडन है" तो मेरी बातों को कोई झूठा नहीं कह सकता मगर मेरा निर्णय तो बेशक सत्य का गला घोंटनेवाला होगा। मिस मेयो की किताब इससे अच्छी चीज नहीं है, बिलकुल यही है।

लेखिका कहती है कि वह हिन्दुस्तान के बारे में किताबें, लेख वगैरह पढ कर असंतुष्ट हो गयी थी और इसलिए यह जानने के लिए यहां आयी कि "एक स्वेच्छा से घूमनेवाली, जिसने किसी से रिश्वत नहीं ली है, जो पहले से मत बनाये हुए नहीं है, जिसका कोई पक्षपात नहीं है, लोगों के साधारण दैनिक जीवन में क्या देख सकती है।"

बहुत ध्यान से किताब पढ जाने के बाद मुझे खेद से कहना पडता है कि यह दावा मानना मुश्किल है। यह हो सकता है कि उसे धन से किसी ने खरीद न लिया हो। मगर पक्षपात से और पूर्वमत रहित से तो वह अपने को जरूर ही किसी पृष्ठ में नहीं दिखला पाती है। हमलोगों को यहां हिन्दुस्तान में पक्षीय पुस्तकों को सरकार से सहायता दी जाती देखने की आदत सी लग गयी है—'सहायता' के लिए दूसरा सुन्दर शब्द है 'संरक्षण'। अंगरेजों के आने के पहले से ही हमलोग समझते आ रहे हैं कि सरकार के और कामों में, विद्वान्, मान्य और ईमान्दार कहे जानेवाले लोगों से गुप्त रूप से काम लेने और उन्हें दूसरे संदिग्ध चरित्र के लोगों का भेद लेने या तात्कालिक सरकार के गुण गानेवाली किताबें लिखवाने की कला भी एक है और इस कला को अंगरेजों ने संपूर्णता पर पहुंचाया है। मुझे उमेद है कि ऐसा कोई सन्देह करने के लिए मिस मेयो बुरा नहीं मानेंगी। शायद उन्हें कुछ सान्त्वना हो कि हिन्दुस्तान के कुछ बडे से बडे मित्र अंगरेजों पर भी ऐसा सन्देह किया जा चुका है।

मगर शक की बात को अलग रख कर, देखें कि उसने ऐसी झूठी किताब लिखी किसलिए है। यह दुगुनी झूठी है। पहले तो यह झूठ है कि वह एक सारे राष्ट्र की निन्दा करती है, या उसके शब्दों में, 'हिन्दुस्तान की जातियां' (हमें वह एक कौम नहीं मान सकती) धर्म, नीति या सफाई की कोई पर्वा नहीं करतीं। फिर यह भी झूठ है कि वह ब्रिटिश सरकार के लिए ऐसे गुणों का दावा पेश करती है जिनको सावित नहीं किया जा सकता और जिन्हें देख कर कितने ही ईमान्दार ब्रिटिश अफसर शर्म से सिर झुका लेंगे।

अगर उसे अनुचित सहायता नहीं मिली है तो वह पक्की हिन्दुस्तानविरोधिनी और इंग्लिस्तानपक्षिणी है जो हिन्दुस्तान में अच्छी बातें देख ही नहीं सकती, और न अंगरेजों या अंगरेजी राज्य के बारे में कोई बुरी बात देख सकती है।

वह पश्चिम की समझदारी का कोई ऊँचा नमूना नहीं पेश करती। अगचें कि वह एक श्रेणी के लेखकों का नमूना है जो उत्तेजक बातें लिखा करते हैं, मगर मैं यह कह कर अपने को खुश करता हूँ कि इनकी तादाद घट रही है। अमेरिकनों में ऐसे लोगों की संख्या बढ रही है जो कुछ भी उत्तेजक या बनी बनायी, या टेढी मेढी बातों से घृणा करते हैं। मगर अफसोस तो यह है कि पश्चिम में अब भी हजारों पडे हुए हैं जो पैसे में तीन कर के, उत्तेजक बातों से खुश हुआ करते हैं। लेखिका के सभी उतारे या सभी बातें सही सही नहीं लिखी गयी हैं। मैं उन्हें चुन लेना चाहता हूँ जिन्हें मैं खुद जानता हूँ। सारी किताब ऐसे उतारों और बयानों से भरी पडी है, जो संदर्भ से तोड कर ले लिये गये हैं और जिनका प्रामाणिक रूप से विरोध हो रहा है।

महाकवि रवीन्द्र का नाम बाल विवाह के साथ जोड कर लेखिका ने औचित्य की सभी सीमाएँ तोड दी है। महाकवि ने सचमुच ही लिखा है कि विवाह कम उम्र विवाह की संस्था अनभीष्ट—न चाहने लायक—नहीं है। मगर कम उम्र के विवाह

---

* गुणायन्ते दोषाः सुजनवदने, दुर्जनमुखे
गुणा दोषायन्ते तदिदमपि नो विस्मयपदम्।
महामेघः क्षारं पिवति कुरुते वारि मधुरं
फणी क्षीरं पीत्वा वमति गरलं दुःसहतरम्॥
पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः परोपकाराय सतां विभूतयः॥

में और बाल विवाह में जमीन आसमान का फर्क है। अगर उसने शान्तिनिकेतन की स्वतंत्र और स्वतंत्रता-प्रिय लडकियों और स्त्रियों से परिचय करने की तकलीफ गवारा की होती तो वह महाकवि का विवाह का अर्थ जान पाती।

अपनी दलीलों के समर्थन में वह बार बार मेरे उतारे देती है। किसी सुधारक के रोजनामचे से, संदर्भ छोड कर, उतारे ले ले कर कोई उन लोगों की निंदा करे, जिनमें वह सुधारक काम करता है तो निष्पक्ष पाठक या श्रोता उस पर ध्यान नहीं देंगे। मगर हर हिन्दुस्तानी चीज को बुरे रूप में देखने की उतावली में उसने न सिर्फ मेरे लेखों से ही बडी स्वच्छंदता से काम लिया है, बल्कि मेरे बारे में उसने या औरों ने जो कई बातें कही हैं, वे भी मुझसे पूछ नहीं ली हैं। सच पूछो तो हम लोग जिन्हें हिन्दुस्तान में न्यायाधीश और शासक के काम समझते हैं; वे दोनों ये खुद अकेले कर रही हैं। वह खुद परोकार और काजी बनी है। उसने मुझसे मुलाकात का वर्णन दिया है और अपने पाठकों को बतलाती है कि मेरे पास दो 'सेक्रेटरी' बराबर बैठे रहते हैं जो मेरे मुँह से निकला हर शब्द लिखते जाते है। मैं जानता हूँ कि यहां जान बूझ कर सत्य को तोडा मरोडा नहीं गया है। तोभी यह बात सच नहीं है। मैं उसे बतला देना चाहता हूँ कि मेरे नजदीक ऐसा कोई नहीं रहता जिसका यह काम हो या जिससे उमेद की जाय कि वह मेरे मुँह से निकला हर लफ्ज लिखता जाय। मेरे साथ महादेव देशाई नामके एक सहकारी हैं जो मेरी बातें लिखने में हद कर देना चाहते हैं और उनके सामने अगर मैं उनकी समझ में कोई खास अक्लमंदी की बात कहता हूँ तो वे लिख लेते हैं। मैं उन्हें रोक भी नहीं सकता क्योंकि हमारे और उनके बीच तो हिन्दू-विवाह के जैसा, अटूट संबंध है। मगर मेरे विरुद्ध सबसे बडा इल्जाम तो अभी कहने को ही है। पृष्ठ ३८७-८८ पर वह महाकवि का मत लिखती है, "उन्होंने बहुत जोरों से कहा है कि आयुर्वेद के किसी अंग में पश्चिमी बढ नहीं सकता' (यहां पर अपने समर्थन में कोई उतारे नहिं दिये हैं। तब मेरी राय लिखती है कि अस्पताल तो पाप फैलाने की संस्थाएँ हैं और एक पवित्र घटना को अंगरेज डाक्टरों और मैं उमेद करता हूं कि मेरे लिए भी, सामान्य है, इतना तोडा मरोडा है उसे पहचान के काबिल नहीं छोडा है। पाठक उस किताब में से पूरा उतारा लेने के लिए, आशा है कि मुझे क्षमा करेंगे:

"चूंके उस समय वे जेल में थे, एक सरकारी नौकर अंगरेज डाक्टर उनके पास सीधे पहुँचा। और बोला, जैसा कि उस समय अखबारों में निकला था, 'मि० गांधी, बडे खेद की बात है, आपको अपेन्डिसाईटिज हो गया है। अगर आप मेरे मरीज होते तो मैं तुरत ही नश्तर देता। मगर आप शायद अपने आयुर्वेदिक वैद्य को बुलाना चाहें।'

"मगर गांधीजी का दूसरा ही इरादा था।

"डाक्टरने फिर कहा, 'मैं नश्तर देना नहीं चाहता क्योंकि अगर इसका फल बुरा हुआ तो आप के सभी मित्र हमीं पर बुरी नीयत का इल्जाम लगावेंगे जो आपकी संभाल रखने के लिए हैं।'

"गांधीजी ने कहा, 'अगर आप सिर्फ नश्तर देने को राजी हों तो मैं अपने मित्रों को बुला कर समझा दूँगा कि आप मेरे कहने पर नश्तर दे रहे हैं।'

"इस तरह मि० गांधी खुशी व खुशी एक ऐसी 'संस्थामें गये जो पाप फैलाती है,' उन पर 'बुरों से बुरों' में से एक सरकारी डाक्टरने नश्तर लगाया, और अच्छे होने तक एक अंगरेज बहिनने सावधानी से उनकी शुश्रूषा की जिसे अन्त तक उन्होंने इतना ही कहा कि 'काम का आदमी' है।"

यह तो सत्य का गला घोंटना है। मैं केवल वे ही बातें ठीक करने की कोशिश करूंगा जो निन्दात्मक हैं, और भूलें छोड दूंगा। यहां पर कोई आयुर्वेदिक वैद्य को बताने की बात ही नहीं थी, कर्नल मैडोक को, जिन्होंने नश्तर लगाया था, मुझ से बिना पूछे, बल्कि मेरे विरोध करने पर भी अगर वे चाहते तो नश्तर लगाने का अधिकार था। मगर उन्होंने और सर्जन जेनरल हूटन ने मेरे प्रति नाजुक ख्याल दिखलाया, और मुझ से पूछा कि क्या मैं अपने डाक्टरों के लिए ठहरूंगा जो डाक्टर खुद पश्चिमी चिकित्सा और जर्राही का इल्म पढे हुए थे और उन के जाने हुए थे। उनकी शालीनता और शिष्टता का जवाब देने में मैं क्यों पीछे रहूं? मैंने तुरत ही कहा कि 'मेरे डाक्टरों को आपने तार किया है परन्तु उनके लिए ठहरे बिना आप नश्तर लगा सकते हैं और मैं खुशी से एक पत्र लिख दूंगा जिसमें अगर नश्तर असफल हो तो आप पर इल्जाम न आवे।' मैंने यह दिखलाने की कोशिश की कि उनकी योग्यता या नीयत में मुझे कोई सन्देह नहीं था। मेरे लिए तो अपनी व्यक्तिगत सदाशयता दिखलाने का यह बडा अच्छा सुअवसर था।

जहांतक अस्पतालों वगेरह के संबंध में मेरा मत है, वह तो खुद अपने आश्रितों को अनेकों बार हिंदुस्तानी और यूरोपियन डाक्टरों के इलाज में रखने के बाद भी है ही। रेलवे और मोटरों की निन्दा पर पहले जैसा कायम रहते हुए भी, मैं उन्हें भी इस्तैमाल करता हूँ। मैं तो खुद शरीर को ही दूषित और मेरी उन्नति के पथ में बाधा मानता हूँ। मगर जबतक यह चलता है, इससे काम लेने और इसी के नाश के लिए इसका जो अच्छा से अच्छा तरीका मैं जानता हूँ, उस मुताबिक काम लेने में कोई असंगति नहीं देखता। यह तो सत्य के तोड मरोड का ऐसा नमूना है जिसे मैं खुद जानता हूँ। मगर किताब तो ऐसी घटनाओं के वर्णनों से लबालब भरी हुई है जिन्हें कम से कम साधारण औसत हिन्दुस्तानी तो नहीं जानता। जैसे कि वह युवराज के स्वागत का एक वर्णन देती है, जिसे हिन्दुस्तानी तो नहीं जानते, मगर अगर वह हुआ होता तो जरूर ही जानते। कहा जाता है कि युवराज की मोटर तक भीड को लड के जाना पडा। मिस मेयो कहती हैं, "पुलिस ने तो युवराज की मोटर के चारों ओर घेरा बनाने की नाकामयाब कोशिश की जो अब अरक्षित हो कर चारों ओर से आदमियों के ठोस सागर में घिर गयी और धीरे धीरे चल कर स्टेशन पर पहुँची।" तब रेलवे स्टेशन पर जब गाडी खुलने को तीन मिनट रहे तब, वकौल मिस मेयो युवराज ने साधारण जनता के लिए रास्ते खोल देने को कहा। फिर लेखिका लिखती है, "नदी की बाढ जैसी जनता की भीड बढी, और लोग शोर करने लगे, हँसने लगे, रोने लगे। जब गाडी खुली तो उसके साथ जहां तक दौड सके दौडते गये।" यह सब २२ नवंबर १९२१ की संध्या को हुआ सा माना जाता है, जब कि दंगे की बुझती चिनगारियां अभी गर्म ही थीं। इस कल्पनाओं से भरे परिच्छेद में इसी तरह का सामान अभी बहुत भरा पडा है और इसका शीर्षक है—"प्रकाश को देखो।"

१९वां परिच्छेद तो ब्रिटिश सरकार के कारनामों की तारीफ के लेखों का संग्रह है, जिनमें प्रायः एक एक का विरोध अंगरेज और हिन्दुस्तानी लेखकों ने जिनके चरित्र पर सन्देह नहीं किया जा सकता बराबर किया है। सतरहवां परिच्छेद यह दिखलाने को लिखा गया है कि हम 'दुनिया के लिए खतरे' हैं। अगर मिस मेयो के

करते राष्ट्र-संघ यह घोषित कर देवे की हिन्दुस्तान अलग छोडा हुआ देश है जो लूट के नाकाबिल है तो मुझे कोई शक नहीं है कि पूर्व और पश्चिम दोनों का ही लाभ होगा। हमारी तब आन्तरिक लडाइयां होंगी। जैसा कि वह डराती है, मध्य एशिया की जमायतें हिन्दुओं को खा जायँगी—यह स्थिति भी रोज बरोज अधिकाधिक नामर्द बनाये जाने से लाख दर्जे अच्छी होगी। जैसे कि बिजली के धक्के से क्षणभर में मार डालना, जीते तेल में तलने की अपेक्षा दयालुता है, वैसे ही एक बार्गी ही, मध्य एशिया की जमायतों का एक झोंका आकर अविरोधी, गंदे, वहमी और बकौल मिस मेयो विषयी हिन्दुओं का खा जाना इस जीवन्त और शर्मनाक मौत से जो हमें रोज ही मिल रही है, दयालु मुक्ति होगी।

दुर्भाग्य से मिस मेयो का यह उद्देश्य नहीं है। उनका तो कहना है कि हिन्दुस्तानी अपना शासन करने के नाकाबिल हैं, इस लिए उन पर गोरों की सत्ता बनी रहे।

जो सचोट बातें यह चतुर लेखिका भिन्न लोगों के मुँहों से कहलाती है, वे तो किसी सनसनीदार उपन्यास से लगते हैं जिसमें सत्य की कोई पर्वा ही नहीं की गयी हो। मुझे तो उसके कई बयान बिलकुल ही विश्वास के लायक नहीं मालूम पडते और जिन पुरुषों या स्त्रियों ने उन्हें कहा है, वे उसमें भले रूप में नहीं दिखते। लीजिए किसी देशी राजा के मुँह से कहलाया जाता है।

"उनमें से एकने मुझे बडी शान्ति से कहा, 'हमारी संधियाँ तो इंगलैण्ड के बादशाह से हैं। हिन्दुस्तान के राजों ने उस सरकार से कोई संधि नहीं की जिसमें बंगाली बाबू हों। हम लोग इन नये पदाधिकारियों से तो कोई व्यवहार ही नहीं करेंगे। जब तक ब्रिटिश हिन्दुस्तान में हैं वे, इंगलैण्ड के राजा की ओर से बातें करने के लिए अंगरेज भले मानुसों को भेजेंगे और मित्रों में जैसा चलता है, सब ठीक ही चलेगा। अगर ब्रिटेन चला गया तो हम यह देख लेंगे कि कैसे हिन्दुस्तान को सीधा किया जाता है कि जैसा कि राजाओं को जानना चाहिए।" पृष्ट ३१६

हिन्दुस्तानी राजे चाहे जैसे गिरे क्यो न हों, मगर यह मानने के लिए कि उन में कोई इतना गिरा होगा कि जो ऐसी बात कहे, असंदिग्ध प्रमाण चाहिए। यह तो कहना ही बेजरूरी है कि लेखिका राजा का नाम नहीं देती हैं। इससे भी बुरी बात तो पृष्ठ ३९४ पर आती है। वह यह है :

"दीवान ने कहा, 'महाराजा साहेब यह नहीं मानते कि ब्रिटेन हिन्दुस्तान को छोडने जा रहा है। मगर तौ भी इस नयी हुकूमत में शायद उन्हें ऐसी बुरी सलाह मिले। इसलिए महाराजा साहेब अपनी सेना ठीक कर रहे हैं, गोली बारुद जमा कर रहे हैं, और चांदी के सिक्के ढाल रहे हैं। और अगर अंगरेज चले गये तो बंगाल में न एक रुपया और न एक कुमारी लडकी बचने पावेगी।"

पाठक को इन महाराजा साहेब या बुद्धिमान् दीवान का नाम नहीं बतलाया जाता। हिन्दुस्तान में रहनेवाले अंगरेज स्त्री पुरुषों के मुखों से भी कितनी बातें कहलायी जाती हैं। मैं उनके बारे में यही कह सकता हूँ कि अगर सचमुच किसीने ऐसी बात कही हो तो उसमें जो विश्वास दिखलाया गया है, वह उसके लायक नहीं है, और वह अपने आश्रितों और मरीजों के प्रति अन्याय करता है, अपनी जाति के प्रति भी अन्याय करता है। यह सोच कर मुझे जरूर खेद होगा कि यहां बहुत से अंगरेज स्त्री पुरुष हैं जो अपने हिन्दुस्तानी मित्रों से एक बात कहते हैं और अपने गोरे साथियों से दूसरी ही। जिन अंगरेज स्त्री पुरुषों की मिस मेयो की मैलागाडी और लीपा पोती पर नजर पडेगी वे समझ जायंगे कि किन बातों से मेरा मतलब है। हिन्दुस्तान को जलील देखने के लिए अनजानते ही मिस मेयो ने अपनी बातें साबित करने के लिए जिन्हें वह 'अटल या जो अप्रमाणित नहीं किये जा सकते' कहने का दम भरती है, जिनका उपयोग किया है, उन लोगों को ही जलील कर डाला है। मैं उम्मीद करता हूँ कि मैंने काफी ऐसे सबूत दे दिये हैं जिनसे उसकी कई बातों की अलग अलग भी जड ही कट जाती है और सब कुछ मिला कर तो अत्यन्त ही झूठी तसवीर आ खडी होती है।

मगर मैं यह लेख लिख ही क्यों रहा हूं। हिन्दुस्तानी पाठकों के लिए नहीं, मगर उन यूरोपियन और अमेरिकन पाठकों के लिए जो हर हफ्ते सहानुभूति और गौर से 'यंग इन्डिया' को पढा करते हैं। मिस मेयो ने मुझ से जो संदेश कहलाया है, वह कहने की याद मुझे नहीं है। सिर्फ एक आदमी जो वहां पर हाजिर था, और अगर कुछ बातें लिखी भी गयी थीं; तो जिसने लिखी थीं; उसे भी ऐसी कोई बात याद नहीं है। मगर मैं जानता हूं कि हर अमेरिकन को कि जो मुझे देखने आता है, मैं क्या कहता हूँ. "अमेरिका में आपको जो अखबार या रोचक किताबें मिलती हैं, उन पर यकीन मत कीजिए। मगर अगर आप हिन्दुस्तान का कोई हाल जानना चाहते हैं तो हिन्दुस्तान में विद्यार्थी बनकर जाइए और हिन्दुस्तान का खुद अध्ययन कीजिए, अगर आप हिन्दुस्तान में नहीं जा सकते तो उसके पक्ष और विपक्ष की सब किताबें पहले पढ लीजिए और तब कोई नतीजा कायम कीजिए क्योंकि आप को जो किताबें मामूली तौर पर मिलती है, वे या तो हिन्दुस्तान की अत्यधिक निन्दा की होती हैं, या तारीफ की।" मैं अमेरिकनों को और अंगरेजों को मिस मेयो की नकल करने से सावधान करता हूँ। जैसा कि उसका दावा है, वह पक्षपात रहित होकर नहीं आयी, बल्कि अपने पहले के बनाये विचारों और पक्षपातों को लेकर आयी, जिनका पता हर एक पृष्ठ में मिलता है, यहां तक कि प्रारंभिक प्रस्तावना के परिच्छेद में भी, जहां पर वह यह दावा पेश करती है। वह हिन्दुस्तान को आप देखने के लिए नहीं आयी बल्कि मसाला जमा करने आयी, जिसका तीन चौथाई तो वह अमेरिका बैठे ही इकट्ठा कर सकती थी।

मिस मेयो की किताब जैसी किताब का बहुत प्रचार होना तो पश्चिम के साहित्य और संस्कृति पर बहुत बुरी आलोचना है।

मैं यह लेख भी इसी आशा में लिखा रहा हूँ, चाहे वह कितनी ही दूर क्यों न होवे, कि, मैं आशा करता हूँ कि अनजाने, एक प्राचीन जाति के प्रति महा अन्याय करने और अमेरिकनों के प्रति भी वैसा ही बडा अन्याय करने के लिए, जिनके मन हिन्दुस्तान के विरुद्ध भडकाने में अपनी शक्ति का उपयोग किया है खुद मिस मेयो को दुःख और पश्चात्ताप होगा।

व्यंग और दुर्भाग्य तो इसमें है कि यह किताब 'हिन्दुस्तान के लोगों' को समर्पित की गयी है। अवश्य ही सुधारक बन कर प्रेम से उसने यह किताब नहीं लिखी है। अगर मेरा खयाल गलत होवे तो वह हिन्दुस्तान लौट आवे। वह जिरह करने देवे और अगर उसकी कही बातें जिरह और बहस की आंच से जैसी की तैसी निकल जावें तो वह हमारे बीच रहे और हमारे जीवन का सुधार करे। इतना भर तो मिस मेयो और उसके पाठकों के लिए हुआ।

अब इसका दूसरा पहलू भी देखना होगा। जब कि मैं इस किताब को किसी अंगरेज या अमेरिकन के हाथों में रखने के लायक

नहीं समझता इसे पढ कर हर एक हिन्दुस्तानी लाभ उठा सकता है। उसके इल्जामों का हम विरोध कर सकते हैं, मगर उसके भीतर के तत्व का विरोध तो नहीं कर सकते। जैसे दूसरे हमें देखते हैं, उस प्रकार अपने को देखना अच्छा होता है। किताब लिखने के उद्देश्य को हम भूल जा सकते हैं। सावधान सुधारक उसका कुछ उपयोग कर सकता है। इसमें ऐसी बातें भी हैं जिनकी जांच होनी चाहिए। जैसे कि लिखा है कि वैष्णव तिलक का अश्लील अर्थ है। मेरा तो जन्म ही वैष्णव परिवार में हुआ है। वैष्णव मन्दिरों में जाने की मुझे पक्की याद है। मेरे घरवाले कट्टर वैष्णव थे। बचपन में खुद मैं तिलक किया करता था, मगर न तो मैं न, मेरे घर का और ही कोई जानता था कि इस सुन्दर चिह्न में भी कोई अश्लील रहस्य है। मद्रास में जहां यह लेख लिखा जा रहा है, मैंने एक वैष्णव दल से पूछा। इस कहे जानेवाले अश्लील रहस्य की बात वे भी नहीं जानते। इस लिए मैं यह नहीं कहता कि इसका कोई अश्लील अर्थ कभी था ही नहीं मगर मैं यह जरूर कहता हूँ कि इसके पीछे जो अश्लीलता कही जाती है, उससे लाखों आदमी अजानकार जरूर हैं। हमारे पश्चिमीय दर्शकों के लिए अब यह रहा है कि वे हमारे कई कामों में अश्लीलता दिखायें जिन्हें हम आज तक निर्दोष समझते आ रहे थे। पहले पहल किसी पादरी की किताब में मैंने जाना कि शिवलिंग में अश्लीलता है मगर अब भी जब कभी मैं कहीं शिवलिंग देखता हूँ न तो उसका रूप न उसके आसपास की चीजें ही अश्लीलता का कोई भाव सुझाती हैं। फिर किसी पादरी की किताब में ही मैंने देखा कि अश्लील मूर्त्तियों के द्वारा उडिस्सा के मंदिर कुरूप बना डाले गये हैं। जब मैं पुरी गया था तो सहज ही वे चाजें नहीं देख सका था। मगर मैं यह जरूर जानता हूँ कि इन मंदिरों में दर्शन के लिए जो हजारों आदमी जाते हैं, उनके चारों ओर की अश्लीलता के बारे में कुछ नहीं जानते। लोग इसके लिए तैयार तो होते नहीं और वे मूर्त्तियाँ आंखों के आगे आ खडी नहीं होतीं। मगर हमारा बुरा पहलू चाहे जहां होवे, उसे दिखलाना हम बुरा न मानें। हमारी गंदगी, बालविवाह वगैरह के चित्र उसने बेशक बढा कर खींचे हैं। मगर हमें समाज के दोष दूर करने में ये चित्र उत्साहित ही करें। जो कुछ भली बातें विदेशी यात्री हमारे बारे में कह जायँ, उनके लिए उनका उपकार मानते हुए हम अगर अपने गुस्से पर काबू रक्खें तो हम अपने आलोचकों से ही, संरक्षको की बनिस्वत कहीं अधिक बातें सीखेंगे, जैसा कि मैंने जरूर ही सीखा है। मिस मेयो की निन्दाओं के विरुद्ध उचित और न्याय्य क्रोध, हम दिखलावेंगे ही, मगर उससे हमारी आंखें हमारे स्पष्ट दोषों और त्रुटियों की ओर से मुंद न जायँ। हमारे क्रोध से तो मिस मेयो का बाल भी बांका न होगा, मगर वह उलट कर हमारा ही बुरा करेगा। पश्चिम के जैसे अपने यहां भी तो विचारहीन पाठक हैं ही और मिस मेयो की एक एक बात गलत साबित करने में हम पाठकों को विश्वास दिलायेंगे कि हम संपूर्णता को पहुँचे हुए मनुष्य हैं जिनके विरुद्ध कोई एक शब्द भी नहीं कह सकता। इस किताब के विरुद्ध जो आन्दोलन उठ खडा हुआ है, उसमें मर्यादा के उल्लंघन का डर है। क्रोध करने का कोई कारण नहीं है। मैं यहां यह आलोचना, जो कि मैंने बहुत ही अनिच्छा से और काम की बहुत भीड में लिखी है, तुलसीदास का एक दोहा दे कर समाप्त करूंगा।*

(यंग इंडिया)

मोहनदास करमचंद गांधी

* जडचेतन गुणदोषमय विश्व कीन्ह करतार
संत हंस गुण गहहिं पय परिहरि वारि विकार।

क्या करें ?

एक सज्जन पूछते हैः

'रेलगाडी के डब्बे के किसी खाने में मैं चढने जाता हूँ। भीतर एक आदमी है जो जगह रहते हुए भी दरवाजा बंद किये हुए है और मुझे चढने नहीं देता। इस स्थिति में मैं क्या करूँ?'

तीन रास्ते हैंः (१) स्टेशन अफसर से फरियाद करना; (२) शरीर में बल और हिम्मत हो तो बलपूर्वक दरवाजा खोल कर अंदर दाखिल होना, और भीतर बैठा हुआ मुसाफिर लडाई करे उसके साथ लडना; (३) जो हिम्मत हो और आत्मबल हो तो उस जालिम को सगा भाई मान कर विनय करनी, विनय न माने तो अपना हक छोड कर दूसरी जगह ढूँढनी और वह न मिले तो ट्रेन खोनी। विश्वास रखना चाहिए कि इसमें अपना और उस जालिम का दोनों का लाभ है। यह विचार करने का हमारा अधिकार नहीं है कि वह जालिम कब समझेगा।

तीनों रास्ते ग्राह्य हैं। पर तीसरा केवल धार्मिक है। पहले दो व्यावहारिक हैं, मगर अधर्म नहीं हैं।

चौथा रास्ता भी सोच सकता हूँ। आप कायर हो कर, लडने जाने में मार खाने के डर से दूसरी जगह, ढूँढ सकते हैं। यह अधर्म है, इससे इसे ग्राह्य रास्तों में स्थान नहीं है।

दूसरा प्रश्न यह रहाः

'मैं रेलगाडी में बैठा हूँ। किसी स्टेशन पर मैं पानी पीने नीचे उतरा, और इसी बीच कोई आदमी मेरी जगह पर बैठ गया। अब वह जगह छोडने को राजी नहीं होता। तब भला मैं क्या करूँ?'

मुझे लगता है कि पहले सवाल के जवाब में ही इसका भी जवाब आ जाता है।

ऐसे प्रसंग तो रेलगाडी में बराबर आया ही करते हैं। मेरे उपर ऐसी आपत्तियां अनेकोंबार आयी हैं। हरजगह मैंने तीसरा ही रास्ता लिया है, और मुझे उससे संतोष हुआ है। कितनी बार तो उससे जालिम का हृदय पिगलने की मुझे याद है। कोई पाठक ऐसा न समझें कि मैं रहा 'महात्मा' इससे लोग मुझे पहचान कर सीधे हो जाते हैं। मेरे अनेक अनुभव जो मुझे याद हैं, महात्मा बनने के पहले के ही हैं।

पर तीसरे रास्ते में एक शर्त तो है ही। यह रास्ता लेने वाले में धर्म जागृति होनी चाहिए और इस में अनुकरण नहीं होना चाहिए। जो उस जालिम के उपर क्रोध आवे तो समझना चाहिए कि तीसरा रास्ता पचा नहीं है। धर्म तो अंतर की बात है। दूसरे की नकल करने जाने में धर्म के पालन के बदले पतन ही अधिक संभव है। गुजरात की अहिंसा को कायरता और नामर्दी का रूप पकडे हुए मैंने अनेकों वार देखा है, इस भिए तीसरे रास्ते की चर्चा करते हुए मुझे संकोच होता है और पहले दो रास्तों की चर्चा की जरूरत नहीं जान पडती। यह बतलाने का भी नहीं है कि ये रास्ते सपाट और विशाल हैं। तीसरा विकट, सकरा, और इतना ऊंचा है कि चढने में आदमी हांफने लगे, इस लिए उसकी चर्चा जितनी की जाय वही कम है। गुजरात में विशेष कर और साधारणतः सारे हिन्दुस्तान में जहां हम चौथा अधर्म का ही रास्ता लेते देखे जाते हैं, पहले दोनों बताने को रहे। दो में से एक लेने वाले को किसी दिन तीसरा सिखलाया भी जा सकता है। मगर इसमें मुझे शंका है कि चौथे रास्ते चलनेवाला तीसरा रास्ता कभी सीख सकेगा।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

साप्ताहिक पत्र

अंग्रेजी राज्य में फिर दाखिल हुए। हिन्दु-मुसलमान झगडे का नाम मैसूर में न था परंतु यहां जहां जाते उसकी भनक कानों में पडती थी। कृष्णगिरी में यह खबर मिली: 'यहां झगडों के कारण कोई मुसलमान स्वागत-समिति में शामिल नहीं हो सका है न किसी ने शामिल होने की इच्छा ही की है।' गुडिआतम के मानपत्र में लिखा था: 'आप बीमार पड गये यह मानों ईश्वर ने भलाई के लिए ही किया था। क्योंकि यदि आप पहले के निश्चित समय पर यहां आते तो हमलोगों को आप लडते झगडते ही पाते। हम आपका स्वागत न कर सकते। आज हम में मेल हो गया है।

और मैसूर की ठंडक जाने के साथ साथ मैसूर की शान्ति और व्यवस्था भी जाती रही। घाम और गरमी बेहिसाब थीं। और च्यूंटियों की कतारों की तरह लोग जमा होते थे। ३० वीं तारीख को हम लोग बंगलोर छोड कर दक्षिण में वेलोर पहुंचे। उसके पहले दो दिन होसूर और कृष्णगिरी (सेलम जिले के), ये दो गांवों में हो आये थे। ३० वीं तारीख के बाद वेलोर, आर्काट आर्नी इत्यादि स्थानों में गये। कर्णाटकविग्रह का इतिहास जानने-वालों को इन नामों का स्मरण होगा। इन स्थानों का नाम सुन कर किस प्रकार हम विदेशी प्रजाओं के नचाये नाचे और अंग्रेजों को यहां कायम किया इसका भी स्मरण होगा। आज ये गांव उस समय के शरमभरे स्मारक के तौर पर खडे है।

गुडिआतम एक गांव हैं। वहां लोगों की भीडने हद कर दी। गांधीजी जिस घर में ठहरे थे उसको उसने घेर लिया, खिडकियों पर चढ गये, किंवाडो पर चढ गये। घरमें दिन को भी अंधेरा हो गया, बत्तियां जलानी पडी। अंधेरे का उपाय किया जा सकता है, किन्तु उससे जो हवा रुक गई और घाम लगने लगा उसका क्या उपाय हो सकता था। आखिर दो पहर को तो गांधीजी उकता कर मोटर में बैठ कर गांव के बाहर निकल गये और एक वृक्ष के नीचे मोटर खडी रख वहीं बैठ कर काम किया। सभी का भी वही हाल था। कोई २५ हजार की भीड थी। उसमें पांच-छ हजार के करीब तो स्त्रीयां होंगी। गांधीजी के आने पर सब बहने खडी हुयीं, प्रणाम किया और फिर थोडी देर में शान्त बैठ गयीं। लेकिन जब गांधीजीने बोलना शुरु किया ये बहने उठ कर चलने लगीं। मानों गांधीजी से कहतीं थीं: 'आप अपना काम कीजीए, हमारा दर्शन करने का काम हो गया है अब हम जाती हैं!' परन्तु बोले कौन और कौन किसे सुने! राजगोपालाचार हार कर कहने लगे कि यदि हाल ऐसा ही रहा तो यह प्रवास बन्द करना होगा क्योंकि इतने बडे त्रास का जोखिम हम नहीं ले सकते हैं। परन्तु दूसरे ही दिन आर्नी ने इस त्रास को भुला दिया। वहां तीस हजार के करीब लोग होंगे। उनमें बडी ही शान्ति थी। उन्होंने दो हजार की थैली के सिवा सभा के चन्दे में भी अच्छी रकम दी और जब गांधीजी गये तो उन्हें चन्दा देने के लिए लोग इतने उतावले हो गये कि एक दूसरे पर गिरने लगे थे। गांधीजी के जाने के बाद चार पांच अन्त्यज, मैलेकुचैले, अर्धनग्न अवस्था में पांच रुपये का एक नोट ला कर खडे रहे। वे बेचारे गांधी जी के पास पहुंच न सके थे। उन्हें कौन आने देता? पैसा दो पैसा इकट्ठा कर के उन्होंने पांच रुपये जमा किये थे। ये पांच रुपये ५०००) के बराबर थे। राजगोपालाचारने रुपये ले कर उन्हें आश्वासन दिया 'मैं खुद ये रुपये महात्माजी को पहुंचाऊंगा तुमलोग गोमांस और शराब का त्याग करोगे तो तुम्हारे ये रुपये ले कर गांधीजी और भी अधिक खुश होंगे! वे खुश हो कर चले गये।

वेलोर की कुछ सभायें तो बडी यादगार रहीं। उनमें भी विद्यार्थियों की सभा तो तब तक की विद्यार्थियों की तमाम सभाओं में प्रथम स्थान प्राप्त करने योग्य थी। कालेज के प्रिन्सीपाल की लडकी की मृत्यु कोई आठ दिन पहले ही हुई थी। उन्हे खबर हुई कि गांधी जी आ रहे हैं। उन्होने कहा: 'मैं अवश्य ही गांधी जी को यहां आने के लिए निमंत्रण दूंगा और सभा का सभापति भी बनूंगा। गांधी जी पर इस धीर वीर कृत्य का बडा असर पडा। गांधी जी ने अपने भाषण का आरंभ और उपसंहार इसका उल्लेख करके ही किया। उनका यह सारा ही व्याख्यान इससे उत्पन्न असर से रंगा हुआ था।

दगा

सार्वजनिक सभा में गांधीजी ने १९२१ की याद दिलायी। छह साल पहले मौ. शौकतअली के साथ वहां गये थे उस दिन को याद किया और एक निश्वास छोडा। परन्तु उन्होंने अपनी यह अटल श्रद्धा भी प्रगट की कि हिन्दु-मुसलमान-ऐक्य के बारे में मेरा विश्वास जरा भी कम नहीं हुआ है, और एक दिन ऐसा आवेगा जब दोनों कौमें एक-दूसरे का गला काटना छोड कर स्वातंत्र्य-युद्ध में एक-दूसरे की मदद करेगी। और फिर कहा: "लेकिन जिस प्रकार हिन्दु और मुसलमानों में मेल होने से स्वराज साधा जा सकता है उसी प्रकार खादी के सार्वत्रिक होने पर आमप्रजा और अमीरवर्ग का सम्बन्ध भी सध जाता है। हिन्दु मुसलमान एकदूसरे के गले काटते हैं उस तरह हम अमीरवर्ग के लोग आमप्रजा के गले तो नहीं काटते परंतु उनका लहू जरूर चूसते हैं। विदेशी कपडा मंगा कर उसे बेचने में बेपारियों ने भूखों मरते मूक गरीब लोगों को बडा दगा दिया है। और जो लोग उस विदेशी कपडे का उपयोग करते हैं वे भी इस दगा करने के दोष के हिस्सेदार हैं।

हमारे मंदिर और हमारा ईश्वर

इन प्रदेशों में गांधीजी अस्पृश्यता पर बहुत कुछ कहें तो इसमें आश्चर्य ही क्या हो सकता है? यदि आप यह मानते हों कि 'ईश्वर मनुष्यों के स्पर्श से अपवित्र हो जाता है—जो ईश्वर सारे जगत का पालन करता है और उसको पावन करता है वही उसके पैदा किये लोगों के स्पर्शसे अपवित्र हो जायगा, तो आप और आपका ईश्वर कैसा कहा जावेगा?' एक दूसरी जगह में यह कहा: 'आप मंदिर में जा कर प्रसाद पाने के लिए एक दूसरे पर गिरते पडते हो। जिस श्रद्धा से आप यह करते हैं खादी के प्रति भी वैसी ही श्रद्धा पैदा करो तो क्या ही अच्छा हो। यह खादी दरिद्रनारायण के पवित्र मंदिर में पैदा हुई है। हम लोग अपने मंदिरों के जरिये अपने भाइयों — अन्त्यजों को अपना नहीं सकते तो इन मंदिरों को समाज में और धर्म में कोई स्थान नहीं हैं।

मौनी स्वामी

इस प्रदेश में एक कार्यकर्ता ने हम पर बडा प्रभाव डाला। वह एक छोटा सा पंचिया पहनता है और इस गांव से उस गांवमें, इस तरह फिरता रहता है। गांव के लोग जो दे वही खाकर पानी पी सो रहता है। रोज बीस बीस या पचीस पचीस मील चलता है। कांतने का उसे व्रत है, और यह खादी का प्रचार करता है। यह मौनी स्वामी एक आश्चर्यजनक व्यक्ति हैं। उसे मौन ग्रहण किये ३५ वर्ष हुए। वह किसीको भी अपना नाम या पता नहीं बताता। कोई भी उसका नाम या पता जानने की फीकर नहीं करता। वह जहां जाता है लोग उसका कहना मानते हैं, लडते हों तो शान्त हो जाते हैं और उसके चरनों में पडते हैं। उसका दर्शन कर मैं पावन हुआ। हम सब जो बोलने से ही संतोष मानते हैं यदि ऐसे मौनी बन जायं तो फौरन हीं बेडा पार हो।

महादेव हरिभाई देशाई

'रंगीला रसूल'

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ५

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद	अहमदाबाद, अश्विन वदी १२ संवत् १९८४ गुरुवार, २२ सितम्बर १९२७ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय १८

एक पुस्तक का जादुई असर

इस महामारी ने गरीब हिंदिओं पर का मेरा कावु, मेरा रोजगार और मेरी जवाबदारी को और बढा दिया। तदुपरांत यूरोपियन लोगों के साथ मेरी बढती हुई पहिचानें इतनी घनिष्ट होती गई कि जिससे मेरी नैतिक जिम्मेवारी विशेष बढने लगी।

जैसे वेस्ट की पहिचान निरामिषाहारी भोजनगृह में हुई वैसा ही पोलाक के विषय में हुआ। एक रोज मैं जिस मेज पर बैठा था वहां से कुछ दूरी पर आई हुई मेज पर एक नोजवान जिम रहा था उन्होंने मुझे मिलने की इच्छा से अपना नाम मेरे पास भेजा। मैंने उन्हें अपनी मेज पर आने को उन्हें बुला भेजा। वे आये।

"मैं 'क्रिटिक' का उपसम्पादक हूँ। आपका महामारी सम्बन्धी पत्र पढने पर मुझे आपको मिलने की तीव्र इच्छा हुई। आज मुझे वह असवर प्राप्त हुआ।"

मि. पोलाक के सच्चे दिली व्यवहार से मैं उनके तरफ आकर्षित हुआ। उसी रात को हम परस्पर पहचानने लग गये, और जीवन सम्बन्धी हमारे विचारों में हमको बहुत साम्य दिखलायी पडा। उन्हें सादगी पसंद थी। अमुक सिद्धांत को उनकी बुद्धि स्वीकार कर ले फिर तो उसको अमल में लाने की शक्ति उनमें अजीब थी। अपने जीवन में कई एक परिवर्तन तो उन्होंने एकदम कर डाले।

'इंडियन ओपीनियन' का खर्च बढता ही जाता था। मि. वेस्ट की पहली कैफियत मुझे भडकाने वाली थी। उन्होंने लिखा था: "आपने कहा था वैसा मुनाफा इस काम में नहीं है। मैं तो हानि देखता हूँ। बहियें बेतरतीब हैं। उगाही बहुत है लेकिन वह बेसिरपैर की हैं। बहुत रदोबदल करना होगा किन्तु इस कैफियत से आपको नाहिंमत न होना चाहिए। मेरे से होगा उतना इन्तजाम जरूर करूँगा। नफा नहीं है इसलिए इस काम को छोड दूँ ऐसा न समझिये।"

नफा नहीं है ऐसा मालूम होने पर वेस्ट काम को छोडना चाहते तो छोड सकते थे, और ऐसा करने पर मैं उन्हें कोई दोष नहीं दे सकता था। उलटा उन्हें मेरे सिर पर दोष देने का अधिकार था कि मैंने विना सोचे समझे काम को फायदेमंद बतलाया। ऐसी हालत होने पर भी उन्होंने मुझे कोई तीखी बात नहीं कही। परन्तु मेरा मानना है कि इस नई जानकारी से मैं वेस्ट की निगाह में उतावली में भरोसा कर लेने वालों में गिना गया हूँगा। मदनजीत की मान्यता के विषय में पूरी चोकसी किये बिना ही उनके कहने पर विश्वास ला कर मैंने वेस्ट को मुनाफे की बात कही थी। मुझे मालूम होता है कि सार्वजनिक काम करनेवाले को उचित है कि ऐसा भरोसा न रखते जिसकी जाँच स्वयं की हो वैसी हो वस्तु कहना चाहिए। सत्य के पुजारी को तो बहुत चोकन्ना रहना चाहिए। किसी के मन पर बिना पक्की खातरी के ज्यादे असर डालना यह भी सत्य को छुपाना है। मुझे कहने में दुःख होता है कि यह वस्तु जानते हुए भी जल्दी से विश्वास कर काम लेने की मेरी आदत को अभी तक ठीक नहीं कर पाया हूँ। उसमें मैं अपनी शक्ति के उपरांत काम साधने का लोभ रखनेका दोष देखता हूँ। इस लोभ से मुझे हेरान होना पडा है उससे भी मेरे साथियों को ज्यादे हेरान होना पडा है।

वेस्ट का ऐसा पत्र मिलने पर मैं नाताल जाने को रवाना हुआ। पोलाक तो मेरी तमाम बातें जानने लग गये ही थे। मुझे बिदा करने स्टेशन पर आये थे ही। 'यह पुस्तक रास्ते में पढ सकें वैसी हैं उसे पढेंगे। आपको पसन्द आयेगी' ऐसा कह कर उन्होंने 'अन्टु धिस लास्ट' नामक रस्किन की किताब मेरे हाथ में दी।

इस पुस्तक को ले कर फिर मैं उसे अलग कर ही न सका। उसने मुझ पर अपना अधिकार जमा लिया। जोहान्सर्ग से नाताल चोविस घण्टे का मार्ग था। आगगाडी रात को डरबन पहुंचती थी। वहां पहुंचने पर सारी रात निंद न लगी। पुस्तक में प्रस्तावित किये हुए विचारों को अमल में रखने का इरादा किया।

इससे पहले मैंने एक भी किताब रस्किन की नहीं पढी थी। विद्याभ्यास के समय में पाठ्य पुस्तकों के सिवाय मेरा वाचन नहीं जैसा ही गिनना चाहिए। कर्मभूमि में प्रवेश करने पर तो समय बहुत ही थोडा मिलता है। यानि आज तक भी ऐसा कहा जा सकता है कि मेरा किताबी ज्ञान बहुत ही थोडा है। इस अनायास से या जबरदस्ती से पाले गये संयम से मुझे नुकसान नहीं हुआ है, ऐसा मेरा मानना है। लेकिन जो कुछ थोडी सी पुस्तकें मैंने पढी

हैं उन्हें मैं ठीक हजम कर सका हूँ ऐसा कह सकता हूँ। ऐसी पुस्तकों में जिसने मेरी जीन्दगी में तत्काल महत्व का रचनात्मक परिवर्तन कराया है। वैसी तो यही किताब कही जा सकती है। बाद में मैंने उसका उल्था किया, और वह 'सर्वोदय' के नाम से छपा भी है।

मेरी ऐसी मान्यता है कि जो वस्तु मेरे अन्तःकरण में भरी पडी थी उसीका स्पष्ट प्रतिबिंब मैंने रस्किन के इस ग्रन्थरत्न में देखा, और यही कारण है कि उसने मेरे पर अपना साम्राज्य जमाया और उसमें के विचारों का अमल मेरे पास कराया। हमारे में जो सद्भाव सोये हुए हों उन्हें जाग्रत करने की शक्ति जिसमें है वही कवि है। सब कवियों का असर सबों पर एकसा नहीं होता, क्योंकि सबमें तमाम सद्भावनाएँ समान परिमाण में नहीं होतीं।

'सर्वोदय' के सिद्धान्त मैं ऐसे समजा:

१. सबके भले में अपना भला है।

२. वकील एवं नाई दोनों के काम की कीमत एकसी होनी चाहिए, क्योंकि आजीविका का हक सब को एक समान है।

३. सादा, मजदूरी का, किसान का जीवन ही वास्तविक जीवन है। पहली वस्तु मैं जानता था। दूसरी का आभास देखता था। तिसरी का मैंने विचार ही नहीं किया था। पहली में दूसरी दोनों आई हुई हैं यह 'सर्वोदय ने' मुझे साफ साफ बता दिया। सवेरा हुआ कि मैं उस को अमल में लाने की चेष्टा करने लगा।

मोहनदास करमचंद गांधी

धार्मिक प्रवचन

[गांधीजी को आज कल इतने भाषण करने पड रहे हैं कि पाठक उनसे कई लेखों की आशा न रक्खें। मगर वे भाषण भी तो लेखों से कुछ कम नहीं होते, बल्कि उनसे बहुत कुछ बढ कर ही। यंगमेन क्रिश्चियन ऐसोसियेशन में दिया उनका भाषण नीचे दिया गया है. म० ह० दे०]

सभापति महोदय ने मुझे धार्मिक प्रवचन करने को कहा है। मुझे तो पता नहीं कि मैंने कभी धार्मिक प्रवचन किया हो या उलटे तौर पर कहें तो कभी कोई बात कही हो, कोई भाषण किया हो, जो कि धार्मिक चर्चा न हो। मेरा ख्याल है कि जब से मैंने जाना है कि सार्वजनिक जीवन क्या कहलाता है, मैंने कोई ऐसी बात नहीं कही है, कोई ऐसा काम नहीं किया है, जिसकी जड में धार्मिक चेतना न हो, जिसका उद्देश्य धार्मिक न हो। मेरे काम या लेख मेरे श्रोताओं या पाठकों को शायद राजनीतिक, आर्थिक या और कुछ लगे होंगे। मगर आप विश्वास करें कि उनका उद्देश्य तो जरूर ही, और मुख्यत: धार्मिक ही रहा है।

मैंने जब पूछा कि मुझ से क्या क्या बोलने की उमेद की जाती है तो मुझे कहा गया कि मैं जो चाहूं बोल सकता हूं। खैर, रास्ते में मुझे वह सन्देश मिला और मैं आपके साथ साथ प्रकट रूप से विचार करना चाहता हूं।

वेल्लोर में एक पादरी मित्र के साथ मेरी बडी ही बहुमूल्य घडी बीती थी। उस दिन विद्यार्थियों के साथ मेरी दिल खोल-कर बातें हुईं और दूसरे दिन मुझे कहा गया, 'आपका भाषण तो बडा सुन्दर था। आपने आध्यात्मिकता की बातें कीं। मगर इसके क्या मानी कि भाषण के बीच में आध्यात्मिकता की बात में आपने खादी ला घुसेडी। आप समझायेंगे कि आध्यात्मिकता के साथ खादी का क्या लेना देना है?" इसके बाद वे मित्र फिर आगे बढे, "आपने संयम की बात की। इससे हमें बडा आनंद मिला। यह बेशक आध्यात्मिकता की बात थी। फिर आपने दलितोद्धार पर बातें कीं यह विषय बेशक आध्यात्मिक श्रोतृवर्ग या आध्यात्मिक वृत्ति के भाषणकर्ता के लिए बहुत ही उपयुक्त है। मगर ये दोनों ही बातें तो आपके भाषण में खादी के संदेश के बाद ही आयीं। खादी तो हममें से कुछ के कानों में खटकी।" उस समय जो जवाब सूझा मैंने उन्हें दे दिया। अभी तो वही जवाब फिर से जरा विस्तार से सुनाऊँगा।

कताई बिलकुल आध्यात्मिक संदेश है

यह बात बिलकुल सही है कि पहले मैं खद्दर को जगह देता हूँ और तब बाद में ही मद्य-निवारण या दलितोद्धार को। ये सब बातें वेल्लोर में विद्यार्थियों के आगे भाषण में आयी थीं। मैंने जीवन की पवित्रता की महत्ता समझाते हुए उन्हें कहा था कि पवित्र जीवन के बिना उनकी सारी शिक्षा बेकार है, शायद संसार की सच्ची उन्नति में बाधक भी है। तब मैंने ये तीन चाजें और दूसरी कई बातें भी बतौर उदाहरण के समझायीं, दुनिया के भिन्न भिन्न हिस्सों में लगा तार ३५ साल तक सार्वजनिक सेवा करने के बाद भी मैंने अबतक नहीं समझा है कि काम से अलग ही कोई नैतिक या आध्यात्मिक चीज है। मैंने ऐसे श्रोताओं को वह महान मंत्र बारंबार सुनाया है कि "हर कोई जो प्रभु प्रभु रटता है स्वर्ग के राज्य में नहीं घुसने पावेगा। वहां तो उसीको जगह है जो मेरे स्वर्ग-वासी पिता की आज्ञाओं का पालन करता है।" मुझे दो प्रसिद्ध अंगरेज सज्जनों की याद आती है जो बडे भारी सुधारक और आध्यात्मिकता के स्तंभ माने जाते थे। अब मैं आप से १८८९, और १८९० की बातें कर रहा हूं। मैं उन दिनों मद्य-निवारण की सभाओं में जाया करता था। इस सुधार में मेरी रुचि थी। ये दोनों आध्यात्मिकता के स्तंभ मद्य-निवारण के बडे भारी कार्यकर्त्ता समझे जाते थे, मगर वे तो केवल भाषणों के ही वीर थे। मुझे यह कहते हुए कष्ट होता है कि उनका पतन मैंने देखा। दोनों का भंडा फूटा। वे कार्यकर्त्ता नहीं थे। प्रभु, नाथ, स्वामी, भगवान् वगैरह शब्द उनके मुंह में हमेशे भरे ही रहते थे, मगर उनसे सिर्फ उनके मुंहों की ही शोभा होती थी, हृदयों की नहीं। मद्य-निवारण सभा का उपयोग वे अपने नीच स्वार्थ के लिए करते थे। उनमें एक तो सट्टेबाज था और दूसरा नैतिक कोढी। शायद अब आप समझ रहे हैं कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। हिन्दुस्तान में भी, मैं यह नहीं कहना चाहता कि मद्य-निवारण की हर सभा या अस्पृश्यतानिवारण की हर एक सभा आध्यात्मिकता की ही सभा होती है। मैंने पहले जाना है, जैसा कि आज आप से बातें करते हुए मैं जानता हूँ कि इन दोनों सभाओं का कई आदमी इसी देश में दुरुपयोग कर रहे हैं। दूसरे उनका सदुपयोग भी कर रहे हैं। आपके सामने मैं यह शिक्षा रखना चाहता हूँ कि सभी काम आध्यात्मिक दृष्टि से सोचे और किये जा सकते हैं और संभवतः उनमें से आध्यात्मिकता बिलकुल ही गायब भी हो सकती है। मैं आज आपके सामने यह दावा रखना चाहता हूँ कि चर्खे और खादी का संदेश मूलतः और मुख्यतः आध्यात्मिक है और चूंके इस देश के लिए आध्यात्मिक संदेश है इसी लिए इसके बहुत बडे आर्थिक और राजनीतिक अर्थ भी हैं।

अर्थशास्त्र और धर्म

अभी उस दिन एक अमेरिकन मित्र प्रो० सेम हिगिनबौटम ने मेरे पास एक पत्र लिखा था। वह पत्र ऐसे विषय पर था जो हम दोनों को ही अत्यन्त प्रिय है। उनके पत्र का सारांश यह है — "मैं उस धर्म में विश्वास नहीं करता जिसे अर्थशास्त्र से

कोई संबन्ध न होवे। अगर धर्म की कोई कीमत लगनी है तो वह ऐसा होना चाहिए जो जरूरत पडने पर अर्थशास्त्र के जरिये समझा जा सके।" मैं थोडी शर्तों के साथ इस बात से अक्षरशः सहमत हूँ वह शर्त यह है कि धर्म को अगर कीमती बनने के लिए ऐसा होना चाहिए जो अर्थ-शास्त्र के जरिये समझाया जा सके तो अर्थशास्त्र की भी तभी कोई कीमत होगी जब वह ऐसा हो जो धर्म के तराजू पर तौला जा सके। इसलिए इस धर्मशास्त्र में लूट खसोट के लिए या जिसके लिए खास शब्द है अमेरिकनपना, उसकी जगह नहीं है। जैसा कि हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध पुत्र सर एस. विश्वेश्वरय्याने कहा था, अगर एक अंगरेज के ३० या ३६ गुलाम होते हैं तो एक अमेरिकन के ३३। मैं, खुद सोचता हूँ कि उस अर्थशास्त्र में जो धर्म का पर्यायवाची है, गुलामों के लिए कोई जगह नहीं है, ख्वाह वे गुलाम आदमी हों, या ढोर या कलें। तब मैं आप से कहता हूँ कि खादी से आप बच नहीं सकते और इसका क्षेत्र अधिक से अधिक आदमियों तक फैला हुआ है। मद्य-निवारण में केवल कुछ ही लोगों की सेवा की जा सकती है। दलितोद्धार से तो इस देश में अधिक से अधिक सिर्फ सात करोड तक की ही सेवा होती है और सब कोई सिर्फ यही काम कर भी नहीं सकते। आप अवश्यही अछूतों को शिक्षा दे सकते हैं, उनके लिए कुँएँ खोद सकते है, और मन्दिर बना सकते हैं। मगर जब तक ये नामधारी ऊँची जातिवाले अपना औद्धत्य और घमंड छोड कर, इन अछूतोंसे भाईचारे का व्यवहार नहीं करते तब तक इन कामों से अछूतों की अस्पृश्यता कुछ दूर नहीं हो जायगी। इस तरह आप देखेंगे कि हर किसीके सुलझाने के लिए यह जरा उलझा हुआ मामला है। और, चाहे वह जितना ही छोटा धंधा क्यों न करता हो, मगर उस आदमी की हैसियत से जिसके जीवन का एक मात्र उद्देश्य है सत्य को ढूँढना, मैं सोच रहा था कि वह कौन सा काम है जिसे सब कोई, बिना, अपवाद के, एक एक आदमी करके कर सकें और जिससे हिन्दुस्तान की सबसे बुरी बीमारी भी अच्छी होवे।

खादी का क्षेत्र

और हिन्दुस्तान की सब से बुरी, गहरी बीमारी बेशक शराब-नहीं है, अस्पृश्यता नहीं है, चाहे ये बीमारीयां कितनी ही बडी क्यों न होवें और इनके रोगियों के लिए तो जरूर ही बहुत बडी होंगी। मगर अगर आप रोगियों की गिनती देखें, अगर मर्दुम-शुमारी की रिपोर्ट देखें या इतिहास पर कोई प्रामाणिक ग्रन्थ जैसे कि सर विलियम हंटर की किताब देखें या मि० डिगिनबौटम की दी हुई दो साल पहले की गवाही देखें तो आपको असल हाल मालूम होगा। मि० डिगिनबौटम ने कहा था कि यहां के अधिकांश लोग गरीबी के मारे हुए हैं, सर विलियम हंटर ने लिखा है कि यहां फी सदी दश आदमी शायद ही दिन रात में एक बार भी खाना पाते हैं और वह भी एक बासी रोटी और चुटकी भर मैला नमक भर ही मिलता है जिसे हम आप शायद छुवेंगे भी नहीं और हिन्दुस्तान में आज यही हालत चल रही है। अगर आप रेलवे लाइन को छोड कर मेरे साथ गांवों में चलेंगे तो देखेंगे, वे आज स्मशान हो रहे हैं, वहां पर चीलें मंडरा रही हैं क्योंकि गांववाले अपना पेट आप नहीं पाल सकते, और कंकाल प्राय हो रहे हैं।

हिन्दुस्तान का रोग भूख है। अगर आप इसका कुछ इलाज करना चाहते हैं, भूखों मरने वाले करोडों को कुछ देना चाहते हैं तो खादी के सिवा आपके लिए दूसरा काम नहीं है। अगर आप में आध्यात्मिक वृत्ति है, और आप अपनी अपेक्षा अभागों की सहायता करने का विचार करते हैं, जो बेचारे अपनी लाज नहीं ढँक सकते, जो अपने पेट नहीं भर सकते, अगर आप उनके और अपने बीच अटूट संबन्ध जोडना चाहते हैं तो मैं फिर कहता हूँ कि आपके लिए खादी के सिवाय दूसरा रास्ता नहीं है। मगर यह तो कानों को खटकता है, और खटकने का कारण यह है कि यह नया चीज है, स्वप्न की चीज है, और कितनों को तो सिर्फ खाम-खयाली सा ही मालूम पडती है। वेल्लोर के पादरी मित्र ने कहा था, 'मगर क्या आप वर्त्तमान सभ्यता की चाल रोक सकते हैं? क्या आप समय की धारा पलट सकेंगे और सिर्फ नाम मात्र की मजदूरी के लिए क्या कोई सूत कातेगा? आप लोगों को खादी पहना सकेंगे?" मैं तो इतना ही जवाब दे सका कि आप हिंदुस्तान को नहीं जानते। वेल्लोर की सभा के बाद मैं आरकाट और आर्नी गया था। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने वहां बहुत आदमी, गांववाले अपने से अधिक कपडे पहने नहीं देखे। मैंने वहां दश पांच नहीं, बल्कि दश दश हजार आदमी देखे। वे चिथडे पहने हुए थे, और साल में उन्हें चार महीने कुछ कमाई नहीं होती। उन्होंने अपना हीर मुझे दिया। मैं उनके दान की और भूखी आंखों से देख रहा था। उन्होंने मुझे पैसे नहीं दिये। उन्होंने पाइयां दी, जो आने में बारह आती हैं।

खुदा का काम

आप मेरे साथ नवंबर में उडिस्सा चलिए। वहां पर आप गर्मी के दिनों में गवर्नर के और सिपाहियों के मकानात पावेंगे। पुरी से दश मील के भीतर ही आप केवल हाड और चाम के नर कंकाल देखेंगे। इन्हीं हाथों से मैंने गांठें खुलवा कर उनके मैले पैसे जमा किये हैं। गांठें खोलते समय उनके हाथ, कोल्हापुर में मेरी बीमारी के दिनों में मेरे हाथों से भी कमजोर थे। उनके सामने वर्त्तमान प्रगति और उन्नति की बातें कीजिए। उनके सामने ईश्वर का नाम बेकार ही ले कर उन्हें अपमानित कीजिए। अगर उनसे हम ईश्वर की बातें करें तो हमें शैतान कहेंगे। अगर वे किसी खुदा को पहचानते हैं तो वह भयंकर बदला लेनेवाला और बेरहम जालिम है। वे नहीं जानते कि प्रेम किस जानवर का नाम है। उनके लिए आप क्या करोगे? इन उपस्थित बहिनों को सुन्दर रेशमी साडियां बदलवा कर इन्हें उनके निर्बल लकवा के मारे हाथों से बुने खद्दर पहनाना आप मुश्किल पाइयेगा! खादी रुखी होती है! खादी बहुत भारी होती है! ये बहिनें रेशम को नर्म पाती हैं और नौ नौ गज की रेशमी साडियां पहन लेंगी, मगर इनसे नौ गज खादी नहीं सहन होती। उडिस्सा की गरीब बहिनों के साडी है ही नहीं, वे तो चिथडे लपेटती हैं। मगर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सभ्यता और लज्जा के सभी खयाल उनसे दूर नहीं हो गये हैं, हां, हमसे जरूर दूर हो गये हैं। कपडे पहन कर भी हम नंगे हैं, और बिना कपडों के भी उनकी लाज ढँकी हुई है। इसीके लिए मैं जगह जगह मारा मारा फिरता हूँ, अपने लोगों को खुश करता हूँ, अमेरिकनों को बहलाता हूँ। हारवर्ड के दो नवयुवकों का मन मुझे बहलाना पडा। वे मेरे हस्ताक्षर चाहते थे। मैंने कहा कि अमेरिकनों के लिए मेरे हस्ताक्षर नहीं है। आखिर हमने सौदा तो किया। उन्होंने खादी पहनने का वचन दिया है और मैं अमेरिकनों का बात में विश्वास करता हूँ। उनमें कितने यह काम कर रहे हैं। भूलना मत— इसमें उनका मन लगता है।

मगर जब तक हिन्दुस्तान में हर एक स्त्री पुरुष अपना चर्खा नहीं चलाता तब तक मैं संतुष्ट नहीं हो सकता। अगर चर्खे से कोई अच्छी चीज आपको मिले तो चर्खे को जला डालो। यही वह एक काम है जो करोडों की जरूरियात उन्हें घर से हटाये बिना पूरी कर सकता है। यह बहुत बडा काम है और मैं जानता हूँ कि मैं इसे

पूरा नहीं कर सकता। मैं यह भी जानता हूँ कि परमात्मा इसे कर सकता है। जब उसकी मर्जी हो तो बडेसे बडा काम उसके लिए बाएँ हाथ का खेल है। वह तो पलक मूँदते भर में ही सब कुछ नष्ट कर सकता है जैसा कि उसने अभी गुजरात में हजारों घर नष्ट कर दिये हैं और कुछ साल पहले द० भारत में किया था। खादी और चर्खे का यह संदेश मैं, उसमें और इसलिए उसकी सृष्टि मनुष्य में पूरा विश्वास रख कर के सुनाता फिरता हूँ।

मैं जानता हूँ कि आप दलीलों से मुझे हटा सकते हैं, मेरा मुँह बंद कर सकते हैं। मगर जब तक ईश्वर में मेरी श्रद्धा कम नहीं होती, आप पर से मेरा विश्वास उठ नहीं सकता। मेरे लिए उस विश्वास का उठना असंभव है और इस लिए खादी और चर्खे में भी मेरा विश्वास नष्ट नहीं हो सकता।

अगर अब तक मैं आपके सामने अपना दिल नहीं खोल सका हूँ, खादी के मूल में आध्यात्मिकता नहीं बतला सका हूँ तो मेरा खयाल है कि फिर मैं यह कभी नहीं कर सकता। बस मैं इतना ही भर कह सकता हूँ कि मैं समझाना चाहता हूँ। मेरा मुँह भले ही सच्चा संदेश न सुनावे। जिस परमात्मा के नाम पर आप को मैंने यह संदेश सुनाया है, वही उसे सुनावेगा। परमात्मा आपका भला करे।

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, अश्विन वदी १२ संवत् १९८४

'रंगीला रसूल'

इस पत्रिका पर जो वादविवाद छिडा है उसमें शामिल होने की लालच को मैं आकिल या दूसरे पत्र-प्रेषकों के तरफ से प्रेरणा होने पर भी अबतक रोक सका हूं। मैंने ऐसे पत्रलेखकों को खानगी तौर पर जवाब देने का प्रयत्न किया था, परन्तु अभी अभी इतने पत्र आने लगे हैं कि उन सबका खानगी तौर पर जवाब देना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। अखिर अखिर में बिहार के एक मुसलमान प्रोफेसर का पत्र मिला है। उन्होंने मुझे किसी अखबार की कतरन भेजी है, जिसमें मुझ पर यह आक्षेप करता हुआ एक पत्र छपा है कि साधारण तौर पर हिन्दु नेताओं ने खामोशी अख्त्यार करने की जो साजिश की है, मैंने भी उसमें शामिल होना पसंद किया है। प्रोफेसर साहब कहते हैं कि मैं इसका खरा जवाब दूं। मैं खुशी से इसका जवाब दूंगा, इस आशा से कि मेरे पत्रलेखकों को मेरे शुद्ध विश्वास से संतोष हो और वे मेरी खामोशी का कारण समझ लें। क्योंकि मैं किसी एक स्थानिक अखबार के सिवा दूसरे अखबार नहीं पढता हूं, हिन्दु नेताओं की 'खामोशी की साजिश, के बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।

अभी मैं 'हिन्दु' (मद्रास) को अक्सर पढता हूं, और मुझे स्मरण है कि मैंने उसमें 'रंगीला रसूल' के विरुद्ध एक सख्त लेख पढा था। जहांतक इससे मेरा संबंध है, जब बहुत से मुसलमानों को उसके अस्तित्व की खबर भी नहीं थी, उसकी एक नकल मुझे मिली थी। मेरे संवाददाता की सचाई की परीक्षा करने के लिए मैंने उसे पढा और १९ वीं जून १९२४ के 'यंग इन्डिया' में उस पर यह टिप्पणी लिखी।

"एक मित्र ने मुझे 'रंगीला रसूल' नाम की एक उर्दू पुस्तिका भेजी है। उसपर लेखक का नाम तो नहीं दिया गया है पर वह मैनेजर आर्यपुस्तकालय, लाहौर, की तरफ से प्रकाशित की गई है। पुस्तक का खुद नामही दिल दुखाने के लिए काफी है, और जो बातें उसमें लिखी गई हैं वे भी वैसी ही हैं। मैं शिष्ट-सभ्य पाठकों का दिल दुखाये बिना उसके कुछ वाक्यों का अनुवाद पेश नहीं कर सकता। मैंने अपने दिल से पूछा कि सिवा लोगों को उभाडने के ऐसी पुस्तकें लिखने और छपाने का दूसरा क्या मतलब हो सकता है? मुसलमानों के नबी को बुरा कहने से या गालियां देने से क्या एक भी मुसलमान अपना मजहब छोड देगा और उस हिन्दू को भी जिसका यकीन ही पक्का नहीं है इससे क्या फायदा हो सकता है? इसलिए धर्म-प्रचार के कार्य में—तो ऐसी पुस्तक से कोई लाभ नहीं। पर इससे जो हानि होती है वह साफ है।

एक दूसरे मित्र ने पब्लिक प्रिन्टिंग प्रेस लाहौर में छपी एक पत्रिका भेजी है। इसका नाम "शैतान" है। उसमें मुसलमानों की ऐसी बुराई की गई है कि जिसका अनुवाद मैं यहा दे ही नहीं सकता। मुझे ऐसी पत्रिकाओं का भी पता है जिसमें मुसलमानों की तरफ से भी ऐसी ही गाली-गलौज की गई है। किन्तु इससे हिन्दुओं और आर्य-समाजियों की तरफ से प्रकाशित गालियों का समर्थन नहीं हो सकता और न यह उसका कोई जवाब ही है। यदि मुझे ऐसी खबर न मिलती कि ऐसी पत्रिकायें या पुस्तकें लोग चाव से पढते हैं तो मैं इनपर जरा भी ध्यान न देता। ऐसे साहित्य के प्रचार को रोकने या कम से कम उसके घटाने के उपाय स्थानिक नेताओं को ढूंढ निकालने चाहिए और उसके बजाय एक दूसरे के धर्म के प्रति सहिष्णुता प्रकट करने वाला शुद्ध साहित्य लोगों में फैलाना चाहिए।"

इस पर आर्यसमाजियोंने विरोध किया और उन्होंने आर्य-समाजियों के और उसके संस्थापक ऋषि दयानंद के खिलाफ लिखी और भी बदत्तर पत्रिकाएं और पर्चे भेजे। उनका यह कहना था कि 'रंगील रसूल' और दूसरे ऐसे लेख ऊपर जिनका जिक्र हुआ है ऐसे मुसलमानों के पर्चे और लेखों के जवाब में लिखे गये थे। उस पर मैंने १०वीं जोलाई १९२४ के यं. इं. में यह दूसरी टिप्पणी लिखी।

"'रंगीला रसूल' नामक न पढने लायक पुस्तिका तथा 'शैतान' नामक निन्दनीय पर्चे के संबंध में मैंने जो उद्गार प्रकट किये थे उसके सिलसिले में आर्य-समाजियों की तरफ से ढेर के ढेर पत्र आये हैं। वे मेरी बात की सचाई के ते कायल हैं पर कहते हैं, कुछ मुसल्मान पर्चों का भी यही हाल है और पहले उन्होंने यह गाली-गलौज शुरू की तब आर्य-समाजी उसका वैसाही जवाब बतौर बदले के देने लगे। पत्र-लेखको ने मेरे पास ऐसे कुछ पर्चे भेजे भी हैं। उनके कुछ हिस्सो के पढने की व्यथा मैंने सहन की है। उनके कुछ हिस्सों की भाषा ते दिल को दहला देती है। उन्हें यहां उद्धृत करके मैं इन पन्नो को कलंकित नहीं करना चाहता। एक मुसल्मान-लिखित स्वामी दयानन्द के एक जीवन चरित की प्रति भी मुझे मिली है। मुझे कहते हुए दुःख होता है कि यह बहुतांश में उन महान् धर्म-सुधारक का तोडा-मरोडा चरित है। उनके किये हर काम पर लेखक ने जहर उगला है। एक पत्र-लेखक इस बात की बडी बुरी तरह शिकायत करते हैं कि मेरे लेखों ने मुसल्मान लेखकों और वक्ताओं का हौसला इतना बढा दियां है कि वे अब आर्य-समाज और समाजियों को और भी ज्यादह गाली-गलौज करने लगे हैं। एक ने हाल ही हुई लाहौर की एक सभा का हाल लिख कर भेजा है जिसमें आर्य-समाज पर ऐसी ऐसी गालियां की वृष्टि की गई कि जिनके लिखते हुए लेखनी कांपती है। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि ऐसी कार्रवाइयों के

साथ मेरी कुछ हमदर्दी नहीं हो सकती। मैंने जो कुछ अपनी राय आर्य-समाज के बारे में प्रकाशित की है, उसके होते हुए भी मैं आर्य-समाज के संस्थापक के एक नम्र प्रशंसक होने का दावा रखता हूं। उन्होंने कितनी ही कुप्रथायें हमें दिखाई हैं जो हिन्दू-समाज को भ्रष्ट कर रही थीं। उन्होंने संस्कृत विद्या के पठन-पाठन का शौक बढाया। उन्होंने अन्धविश्वास को ललकारा। अपने शुद्ध चरित्र के द्वारा उन्होंने अपने काल के समाज का स्वर ऊंचा कर दिया। उन्होंने निर्भयता सिखाई और कितने ही निराश होने वाले युवकों में नई आशा का संचार किया। और न मैं उनकी राष्ट्रीय सेवा से बेखबर हूं। आर्य-समाज ने राष्ट्रीय-सेवा के लिए कितने ही सच्चे और स्वार्थत्यागी कार्यकर्ता दिये हैं। उसने हिन्दुओं में स्त्री शिक्षा का जितना प्रचार किया है उतना ब्रह्मसमाज को छोड कर शायद ही किसी हिन्दू संस्था ने किया हो। कुछ अनजान लोगों ने यहां तक कह डाला है कि मैंने श्रद्धानन्दजी के विषय में वे बातें इसलिए लिखी है कि वे मेरी बातों की आलोचना किया करते हैं। परन्तु उनका यह दोषारोपण मुझे उनके गुरुकुल में किये मार्ग-दर्शक कार्य को फिरसे स्वीकार करते हुए नहीं रोक सकता। ऐसी हालत में मैं जहां एक ओर समाज, सत्यार्थप्रकाश, ऋषि दयानन्द तथा स्वामी श्रद्धानन्दजी के विषय में प्रकाशित अपने उद्गारों का एक भी शब्द वापस लेना नहीं चाहता, वहां दूसरी ओर मैं फिर दुहराता हूं कि मैंने बिलकुल मित्रभाव से वह आलोचना की है और इस अभिलाषा से की है कि समाज उन त्रुटियों से मुक्त होकर जिनकी ओर मैंने उसका ध्यान दिलाया है, अधिक सेवा कर सके। मैं चाहता हूं कि वह समय के साथ कदम बढाते हुए चले, खण्डन-मण्डन वृत्ति को छोड दे और अपनी राय पर कायम रहते हुए दूसरे संप्रदाय वालों के साथ उसी सहिष्णुता का परिचय दे जिसका दावा वह खुद अपने लिए करता है, मैं चाहता हूं कि वह अपने कार्य कर्त्ताओं पर निगाह रक्खे और तमाम कलंक लगाने वाले लेखों-पत्रों आदि को बंद कर दे। यह कोई जवाब नहीं है कि मुसल्मानों ने पहले इस निन्दा-कार्य को शुरु किया है। मुझे पता नहीं कि उन्होंने ऐसा किया या नहीं। पर मैं इतना जरूर जानता हूं कि अगर उनकी बातों के जवाब में वैसी ही बातें न कहीं जातीं तो थक कर वे अपने आप चुप हो जाते। मैंने तो सामाजियों से शुद्धि तक को छोड देने का नहीं कहा है। पर मैं उनसे और मुसल्मानों से भी यह प्रार्थना जरूर करूंगा कि वे अपने शुद्धि के वर्तमान खयाल पर फिर से जरूर विचार करें।

उन मुसल्मान लेखकों और वक्ताओं से जिनके निस्बत मेरे पास खत आये हैं, यह कहना चाहता हूं कि अपने प्रतिपक्षी को मनचाही गालियां देकर वे न तो अपनी नेकनामी को बढाते हैं और न अपने मजहब की। आर्य-समाज और समाजियों को गालियां देकर वे न तो कुछ अपना फायदा कर सकते हैं और इस्लाम की खिदमत कर सकते हैं।"

इस प्रकार मैंने मुसलमानों के क्रोध का अनुमान पहले से ही कर लिया था। परन्तु इस आन्दोलन में हमारा और उनका मेल यहीं तक है। इस आन्दोलन ने जो रुप धारण किया है उसको मैं पसंद नहीं कर सकता हूँ। मैं उसे जरूरत से बहुत ज्यादा और उभाडने वाला मानता हूँ। जस्टीस दिलीपसिंह पर आक्षेप करने की कोई जरूरत न थी। यह अनुचित और पागलपन था। यह नहीं कि न्यायखाते पर सरकार का असर न पडता हो, परन्तु उस र लोगों के आक्षेप अपमान और भय का भी असर होता हो तो फिर वह न्याय का काम करने योग्य नहीं है। जहांतक न्यायाधीश की प्रामाणिकता से संबंध था, इससे किसी भी मुसलमान को संतोष होना चाहिए था कि उन्होंने पत्रिका की काफी निंदा की थी। परन्तु उन्होंने कानून की उस दफे का जो अर्थ किया उसके कारण उनपर ऐसे सख्त आक्षेप नहीं होने चाहिए थे। दूसरे न्यायाधीशों ने उसका दूसरा अर्थ किया है यह कहना यहां कोई सुसंगत बात नहीं है। इससे पहले भी न्यायाधीशों ने प्रामाणिकता के साथ एक ही दफे के जुदे जुदे अर्थ किये मालुम हुए हैं। इस दफे को मजबूत करने का आन्दोलन अक्लमंदी का काम हो सकता है। परन्तु मुझे इसमें शक है। इस दफे को अधिक शक्तिशाली बनाने से उसका उपयोग अपने ही खिलाफ होगा और पहले की तरह ब्रिटिश अधिकार को दृढ करने में उसका इस्तेमाल होगा। परन्तु हिन्दु मुसलमान ऐसे लेखों को जाप्ते फौजदारी में लाना चाहते हो तो इन्हें ऐसा आन्दोलन करने का अधिकार है।

सरकार से रक्षा पाने के संबंध में मेरे विचार बडे सख्त हैं। ऐसा समय था कि जब हम कुछ विशेष जानते थे और ऐसे मामलों में अदालतों से रक्षा पाने को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। 'रंगीला रसूल' जैसे मुस्लिम-विरोधी लेखों को बन्द करना हिन्दुओं का काम है और और हिन्दु-विरोधी लेखों का बन्द करना मुसलमानों का। नेताओं का तो कीचड उछालनेवाले इन लोगों पर कुछ ही प्रभाव नहीं रहा है या उन्हें उनके साथ सहानुभूति है। कुछ भी हो सरकार से रक्षा पा कर हम एक दूसरे के प्रति सहिष्णु बन नहीं सकते हैं। दूसरे के धर्म को तिरस्कार की दृष्टि से देखने वाला शख्स कानून अधिक व्यापक और सख्त होने पर दूसरे के धर्म पर बुरे आक्षेप करने के लिए या क्रोध भडकाने लायक लेख लिखने के लिए, कानून के पन्जे से बच कर मार्ग ढूँढेगा। और मैं यह भी देखता हूँ कि आजकल हम बुद्धिमान राष्ट्रवादी की तरह या धार्मिक मनुष्य की तरह काम नहीं कर रहे हैं। हम लोग तो धर्म के बहाने एक दूसरे पर पागलों की तरह वैर लेना चाहते हैं।

मेरे को पत्र लिखनेवालों को— हिन्दुओं को और मुसलमानों को दोनों को 'यह समझना चाहिए कि आजकल वर्तमान वायुमण्डल से मैं बाहर हूं। मैं यह पूरी तरह जानता हूं कि हिन्दु हो या मुसलमान इन लडनेवालों पर मेरा कुछ भी प्रभाव नहीं पडता है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि इसके लिए मेरा बताया उपाय समय के अनुकूल नहीं है। इसलिए खामोश रह कर ही मैं देश की उत्तम सेवा कर सकता हूं। सच्ची हिन्दु-मुस्लिम-एकता की आवश्यकता और उसके संभव होने में मुझे जितना अटल विश्वास है उतना ही अटल विश्वास मुझे अपने बताये इसके उपाय में हैं। इसलिए जो कि इसमें मेरी लाचारी तो स्पष्ट है परन्तु मैं निराश कतई नहीं। और क्योंकि मैं यह मानता हूं कि चुपचाप प्रार्थना करना अक्सर प्रकट काम से अधिक परिणामजनक होता है, मैं हमेशा इस श्रद्धा के साथ प्रार्थना किया करता हूं कि शुद्ध हृदय की प्रार्थना कभी निष्परिणाम नहीं होती। मै अपनी शक्तिभर यह प्रयत्न करता हूं कि मैं प्रार्थना का ऐसा शुद्ध साधन बनूं कि मेरी प्रार्थना का स्वीकार हो।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

आश्रम भजनावलि का नवीन और संशोधित संस्करण छप गया; कीमत =) पोस्टेज –)।; बिना जवाबी कार्ड या टिकट के जवाब नहीं दिया जायगा। दस से कम प्रतियों की वी. पी. नहीं भेजी जायगी। वी. पी. मँगानेवालों को आधा दाम पेशगी भेजना चाहिए।

व्यवस्थापक,
हिन्दी-नवजीवन

विद्यार्थियों का भाग

पचियप्पा कॉलेज में बोलते हुए गांधीजी ने कहा :

थैली के मानी

"दरिद्रनारायण के लिए आपकी भेंटों के लिए मैं आप को धन्यवाद देता हूँ। यह मैं पहले ही पहल इस मकान में नहीं घुस रहा हूँ। पहले पहल तो मैं यहां पर १८९६ की सालमें दक्षिण अफ्रीका के युद्ध के संबंध में आया था। उस सभा की याद दिलाने की वजह यह है कि उसी बार पहले पहल मैंने हिन्दुस्तान के विद्यार्थियों से परिचय किया था। जैसा कि शायद तुम जानते होगे, मैंने सिर्फ मेट्रिक्यूलेशन परीक्षा भर पास की है इसलिए कॅलेज की शिक्षा तो हिन्दुस्तान में मुझे नहीं सी ही मिली थी। उस बार सभा समाप्त होने बाद, मैं विद्यार्थियों के पास गया जो मेरा रास्ता देख रहे थे। उन्होंने मुझ से उस हरी चौपतिया की सभी प्रतियां लेलीं जो उन दिनों मैं यहां बांट रहा था। उन विद्यार्थियों के ही लिए मैंने स्व० मि. जी. परमेश्वरन पिल्ले को जिन्होंने सबसे अधिक प्रेम मेरे और मेरे काम के प्रति दिखलाया था उसकी और प्रतियां छाप कर बांटने को कहा। उन्होंने बडी खुशी से १०,००० प्रतियां छापीं। दक्षिण अफ्रिका की स्थिति समझने के लिए विद्यार्थी इतने आतुर थे इसे देख कर मुझे बडा आनंद हुआ और मैंने अपने मन में कहा, "हिन्दुस्तान को अपने लडकों पर गर्व हो सकता है और उन पर वह अपनी सभी उमीदें बांध सकता है।" तबसे विद्यार्थियों के साथ मेरा परिचय दिन दिन बढता ही गया है, घनिष्ठ होता गया है। जैसा कि मैंने बंगलोर में कहा था, जो अधिक देते हैं उनसे और अधिक की आशा रक्खी जाती है। और चूंके तुमने मुझे इतना दिया है, तुमसे और अधिक की उमेद रखने का मुझे हक मिल गया है। जो कुछ तुम दो, मैं संतुष्ट नहीं हो। सकता मेरे कुछ कामों का तुमने समर्थन किया है। मानपत्र में तुमने दरिद्रनारायण का नाम प्रेम और श्रद्धा से लिया है। और आप (मुख्याध्यापक) ने चर्खे की ओर से मेरे दावे का समर्थन किया है और इसमें मुझे कोई शक नहीं है कि सच्चे दिल से किया है। मेरे कई प्रतिष्ठित और विद्वान देश-बंधुओं ने उस दावे को इनकार किया है। वे कहते हैं कि इस चर्खे को अलग हटा कर हमारी मा बहिनों ने ठीक ही किया है और इससे स्वराज कमी नहीं मिल सकता। मगर तौभी आपने मेरा दावा मान कर मुझे बहुत आनंद दिया है। अगर्चे कि तुम विद्यार्थीयों ने इसके बारे में बहुत कुछ नहीं कहा है मगर इतना जरूर कहा है, जिससे वह आशा की जा सके कि तुम्हारे दिल के किसी कोने में चर्खे को सच्ची जगह है। इस लिए तुम चर्खे के लिए अपना सारा प्रेम इस थैली से शुरू कर के इसी पर खत्म न कर दो। मैं तुम्हें कह देता हूँ कि अगर चर्खे के लिए तुम्हारे प्रेम का यही अखिरी चिह्न होवे तो यह मेरे लिए भार होगा क्योंकि अगर तुम खादी पहनोगे ही नहीं तो इन रुपयों को करोडों गरीबों में बांट कर और खादी बनवा कर ही मैं क्या करूँगा। आखिर चर्खे से जबानी प्रेम दिखलाने और मेरे आगे कुछ रुपये घमंड से फेंक देने से स्वराज नहीं मिलेगा, भूखों मरते हुए और सख्त परिश्रम करते हुए करोडों की दिन दिन बढती हुई गरीबी का सवाल हल नहीं होगा। इस वाक्य को सुधारना होगा। मैंने कहा था सख्त परिश्रम करते हुए करोडों। क्या ही अच्छा होता अगर यह वर्णन सही होता। मगर दुर्भाग्य से हमने कपडों के लिए अपनी पसंदगी बदली नहीं है, इन भुक्खड करोडों के लिए साल भर तक काम करना असंभव कर दिया है। उनके ऊपर हमने साल में कम से कम चार महीनों की छुट्टी जबर्दस्ती लाद दी है जो उन्हें नहीं चाहिए। इसलिए अगर यह थैली लेकर मैं जाऊं और भूखी बहनों में बांट दूं तो सवाल हल नहीं होता। इसके उलटे उनकी आत्मा का नाश होगा। वे भिख मंगिनें बन जायँगी। हम और तुम तो उन्हें काम देना चाहते हैं जो वे घर पर महफूज बैठी कर सकें और सिर्फ यही काम हम उन्हें दे सकते हैं। मगर जब यह किसी गरीब बहिन के पास पहुँचता है, इसके सोने के फल लगते हैं। **अगर तुम आगे से सिर्फ खादी ही खादी पहनने का इरादा न कर लो तो तुम्हारी यह थैली मेरे लिए भार रूप ही बन जायगी।**

अगर चर्खे में आपका जीवन्त विश्वास न हो तो उसे छोड दीजिए, तुम्हारे प्रेमका यह अधिक सच्चा प्रदर्शन होगा। और तुम मेरी आंखें खोल दोगे, मैं गला फाड फाड कर चिल्लाता फिरूंगा कि "तुमने चर्खे को त्याग कर दरिद्रनारायण को ठुकरा दिया है।"

ब्राह्मणत्व या पशुत्व

आपने बालविवाह और विधवा बालिकाओं का जिक्र किया है। एक प्रतिष्ठित तामिल मित्र ने मुझे बालविधवाओं पर कुछ कहने को लिखा है। उन्होंने कहा है कि हिंदुस्तान के और हिस्सों से, यहां की बालविधवाओं के कष्ट कहीं अधिक हैं। मैं अब तक इस बात की जांच नहीं कर सका हूँ। मगर, ऐ नवजवानों, मैं चाहता हूँ कि तुममें कुछ वीरता हो। अगर तुममें वह है तो मुझे बहुत बडी सूचना करनी है। मैं आशा करता हूँ कि तुममें से अधिकांश अबतक अविवाहित हों और बहुत से ब्रह्मचारी भी हों। मुझे 'बहुत से' इसलिए कहना पडता है कि जो विद्यार्थी अपनी बहिन पर विषय की नजर डालता है, वह ब्रह्मचारी नहीं है। मैं चाहता हूँ कि तुम यह पवित्र प्रतिज्ञा लो कि तुम बालविधवा लडकी से ही विवाह करोगे और अगर कोई बालविधवा न मिली तो विवाह ही नहीं करोगे। मैं उन्हें विधवा लडकी सुधारके साथ कहता हूँ कि उस लडकी को मैं विधवा ही नहीं मानता जो १०, १५ साल की उम्र में बिना पूछेताछे व्याह दी जाय और जो उस नामधारी पति के साथ कभी रही भी न हो, मगर एक बएक विधवा करार दी जाय। हिन्दूधर्म में 'विधवा' शब्द पवित्र गिना जाता है। मैं स्व० श्रीमती रमाबाई रानडे जैसी सच्ची विधवाओं का, जो जानती हैं कि वैधव्य क्या है, पूजक हूँ। मगर ९ साल की बच्ची कुछ नहीं जानती कि पति क्या कहलाता है। मेरा यह वहम सा है कि अपने इन सभी पापों का फल राष्ट्रों को भोगना पडता है। मैं विश्वास करता हूँ कि हमारे ऐसे सभी पाप हमें गुलाम बनाये रखने को इकट्ठे हुए हैं पार्लियामेन्ट से अच्छे से अच्छे सुधार या सरकार के तुम सपने देख सकते हो, मगर उससे काम लेने को अगर योग्य मर्द और औरतें न हुई तो वह कौडी काम का न होगा। क्या तुम समझते हो कि जबतक एक भी विधवा ऐसी है जो अपनी मुख्य जरूरियात पूरी करनी चाहती है। मगर जबरन रोकी जाती है अपने उपर या दूसरों के ऊपर शासन करने या इन करोड आदमियों के भाग्य विधाता बनने लायक हैं? यह धर्म नहीं अधर्म है। हिन्दूधर्म मेरी नस नस में घुसा हुआ होने पर भी मैं यह कहता हूँ। यह मत भूल करो कि मुझसे पश्चिमी भावनाएँ ये शब्द कहला रही हैं। हिन्दूधर्म में ऐसे वैधव्य को स्थान नहीं है।

जो कुछ कि मैंने बच्ची विधवाओं के बारे में कहा है, वह बालिका-पत्नियों पर भी वैसा ही लागू है। तुम अपनी विषयेच्छा का इतना संयम तो जरूर कर लो कि १६ साल से कम उम्र लडकी से विवाह ही न करो। अगर मेरी चलती तो मैं उम्र की हद कम से कम २० साल रखता। हिन्दुस्तान में भी २० साल की उम्र तक जल्दी ही कहीं जायगी। लडकियों के जल्दी सयानी जाने के लिए तो हिन्दुस्तान की आबहवा भी नहीं, बल्कि हैं

जिम्मेवर हैं। मैं २० २० साल की ऐसी लडकियों को जानता हूँ जो शुद्ध और पवित्र हैं और अपने चारों ओर की इस तूफान को सह रही हैं। कुछ ब्राह्मण विद्यार्थी मुझ से कहते हैं कि, हम इस असूल से नहीं चल सकते, हमें १६ साल की ब्राह्मण लडकियां मिलती ही नहीं हैं क्योंकि ब्राह्मण तो अपनी लडकियों का विवाह १०, १२ या १३ साल की उम्र से भी पहले कर देते हैं। तब मैं उन ब्राह्मणों से कहता हूँ, 'अगर अपना संयम नहीं कर सकते तो तुम ब्राह्मण कहलाना छोड दो। अपने लिए तुम सोलह साल की लडकी ढूँढ लो, जो बचपन में ही विधवा हो गयी होवे अगर तुम्हें इस उम्र की ब्राह्मण बालिका नहीं मिलती है तो जाओ और ऐसी किसी लडकी से विवाह कर लो। और मैं तुम्हें कहता हूँ कि हिन्दुओं का परमात्मा उस लडके को जरूर ही क्षमा करेगा जो १२ साल की लडकी पर बलात्कार करने के बदले अपनी ज्ञाति के बाहर शादी कर लेता है। ब्राह्मणत्व की मैं पूजा करता हूँ। वर्णाश्रम धर्म का मैंने समर्थन किया है मगर जो ब्राह्मणत्व अस्पृश्यता को प्रश्रय दिये हुए है, अखंडिता विधवाओं को सहन करता है, विधवाओं पर अत्याचार करता है, वह ब्राह्मणत्व मुझे मान्य नहीं है। यह तो ब्राह्मणत्व का प्रहसन है, तमाशा है। यहां ब्रह्म का कोई ज्ञान छिपा हुआ नहीं है। इसमें शास्त्रों का सही अर्थ नहीं है। यह तो निरी पशुता है। ब्राह्मणत्व तो इससे बडी चीज होती है।

तंबाकू के दोष

सलिकट के एक अध्यापक की प्रार्थना के मुताबिक मैं अब सिगरेट पीने और चाय, कहवा वगैरह पीने के दोषों पर कुछ कहूँगा। जीने के लिए ये चीजें कुछ जरूरी नहीं हैं। अगर जगे रहने के लिए चाय या कहवा पीना जरूरी होवे तो वे इन्हें न पीकर भले सो जायें। हमें इनका गुलाम नहीं बनना होगा। मगर चाय, काफी पीनेवाले अधिकांश लोग तो इनके गुलाम बन जाते हैं। चाहे देशी हों या विलायती, मगर सिगार, या सिगरेट को तो छोडना ही होगा। सिगरेट पीना तो अफीम खाने जैसा है, और सिगार में तो सचमुच ही जरा सी अफीम होती है। ये चीजें स्नायुओं पर असर करती हैं और फिर इनसे पीछा छुडाना असंभव है। अगर तुम सिगार, सिगरेट, चाय, काफी पीने की आदत छोड दो तो तुम आप ही देख सकोगे कि तुम कितने की बचत कर लेते हो। टाल्सटाय की एक कहानी में कोई शराबी खून करने से तभी तक हिचक रहा था जब तक उसने सिगरेट नहीं पीया। मगर सिगरेट की फूँक उडाते ही वह उठ खडा होता है और कहता है, मैं भी क्या ही कायर हूँ' और खून कर बैठता है। टाल्सटाय ने तो जो लिखा अनुभव से ही लिखा है। उसने स्वयं अनुभव लिये बिना कुछ भी नहीं लिखा है। और वे शराब से कहीं अधिक विरोध सिगार और सिगरेट का करते हैं। मगर यह भूल मत करो कि शराब और तंबाकू में, शराब कम बुरी है। नहीं। सिगारेट अगर तक्षक है तो शराब असुरों का राजा।

हिन्दी

उत्तर हिन्दुस्तान के लोगों की मदद से यहां हिन्दी प्रचार कार्यालय भी चलता है! उन्होंने कोई एक लाख रुपये खर्च किये हैं और हिन्दी शिक्षक अपना काम नियमित रूप से किये चले जाते हैं। कुछ काम तो हुआ है, मगर हमें अभी कुछ खासा काम करना है ही, अगर तुम १ घन्टा रोजाना समय दो तो सालभर में तुम सब कोई हिन्दी सीख ले सकते हो। साधारण हिन्दी तो तुम छह महीनों में ही समझ सकते हो। मैं तुमसे हिन्दी में नहीं बोल सकता क्योंकि तुम में से अधिकांश तो हिन्दी जानते ही नहीं। हिन्दी तो हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय भाषा बननी चाहिए। तुम्हें संस्कृत भी जानना चाहिए क्योंकि तब तुम भगवद्गीता पढ सकोगे। आदर्श हिन्दू विद्यालय के विद्यार्थी होकर तुम्हें गीता तो जरूर ही पढायी जानी चाहिए। मैं तो मुसलमान लडकों को भी यहां पढाने की उमेद रक्खूंगा। (एक आवाजः अछूत जाति के लडके यहां नहीं लिये जाते।) यह तो मुझे नयी बात मालूम हुई है। यह विद्यालय मुसलमानों और पंचमों के लिए भी खोल दिया जाना चाहिए। कोई सबब नहीं यह कि यह एक हिन्दू संस्था है, इसलिए यहां पर मुसलमान या पंचम विद्यार्थी नहीं पढ सकते। मैं समझता हूँ कि ट्रस्टियों को इसके नियम दुहराने का समय आ गया है। ट्रस्टियों के आगे यह मेरी ओर से जो धर्म-भीरु हिन्दू हूँ, हिन्दू धर्म की अच्छी से अच्छी बातों का पालन करने की कोशिश करता हूँ, दरख्वास्त है। आचार्य महोदय, आप उचित स्थान पर मेरी दरख्वास्त पहुँचा देंगे और इस प्रान्त की मुसाफिरी में ही यह सुनना कि मेरी दरख्वास्त सुन भी गयी है, मेरे लिए बडे आनंद की बात होगी। इस भाषण को सुनने के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।"

(यं० इं०)

साप्ताहिक पत्र

मद्रास

प्रान्त के कुछ गांवों में १०, १० हजार आदमियों की सभा में बोल कर गांधीजी ३ सितम्बर को मद्रास पहुँचे। खास कर मैसूर में इतने महीने रहने के बाद, जहां पर कि अब भी दीहात की कुछ सादगी बची हुई है, दीहात और शहर का अन्तर और भी खुलासा दिखलायी पडा। गाँव तो अधिक से अधिक दे कर कम से कम पाते हैं और शहर अधिक से अधिक ले कर कम से कम चुकता देते हैं। दरिद्रनारायण का प्रतिनिधि, हिन्दुस्तान के गांवों का स्वेच्छा वकील भी उससे कुछ अच्छी हालत में नहीं रहता। गांवों में कौतूहलप्रिय लोग दर्शन के लिए परेशान करते हैं तो शहरों के प्रतिष्ठित कौतूहलप्रिय लोग जबर्दस्ती मुलाकात कर ही लेते हैं। सभी तरह की मामूली से मामूली बात पर सभाएँ कर ली जाती हैं, मगर कोई यह कहीं देखता कि बेचारे व्याख्याता का क्या हाल होता है। इस प्रकार मद्रास के तीन चार दिनों में सभाओं और व्याख्यानों की तो धूम मच गयी और बेचारे गांधीजी का तो हाल ही न पूछिए! विद्यार्थियों, मजदूरों, नवयुवक ईसाइयों, स्त्रियों, मद्यनिवारकों, वगैरह वगैरह की पूरी सतरह सभाएँ हुईं। इनके अलावा नील का पुतला हटानेवाले नवयुवक तो थे ही। दो बार दिल खोल कर दो घन्टों से भी अधिक बातें कर के गांधीजी ने उन्हें समझाया, डांटा, उत्साहित किया, चेताया, सत्याग्रह का रहस्य समझने को कहा, और सभी प्रकार की धोखेबाजी दूर कर के सत्य, सम्मान और गौरव के साथ काम करने को कहा।

इन सब बातों का उचित चुकता मद्रास करे वा नहीं मगर उसके साथ मुझे अन्याय तो नहीं करना चाहिए। स्थानीय सरकार के खादी का विरोध करते रहने पर भी बीस हजार से भी अधिक रुपयों की थैली देनी कुछ बुरी बात तो नहीं कही जायगी। विद्यार्थी भी और अधिक दे सकते थे मगर दो हजार से अधिक की थैली देनी कुछ छोटी बात नहीं है। पता नहीं बंबई प्रान्त के किसी कॉलेज को खादी के लिए थैली देने का साहस हुआ है या नहीं। मजदूरों ने कोई एक हजार दिये। मैसूर रेलवे यूनियन ने खादी सहकार समिति बना कर खादी लेनी शुरू कर दी है। उससे अभी १०० आदमी लाभ उठा रहे हैं। स्थानीय खादी की दूकानों की बिक्री ठीक है और विद्यार्थियों ने बरदाचारी को अपनी खादी गाडी ले कर बुलाया था। वे गये और उनकी बिक्री भी अच्छी हुई। हमारी दयालु गृहस्वामिनी श्रीमती श्रीनिवास आयंगर ने शिमले में अपने पति की गैरहाजरी की कमी खूब पूरी कर दी है। उनके यहां श्रीमती मीठू बहिन पेटिट के बंबई के सुन्दर माल खरीद ने के लिए लोग बराबर ही आया करते हैं। एक

पेन्शनयाफ्ता अफसर हगेशे जैसे इस बार भी अपना सुन्दर सूत और गरीबों के लिए भेंट ले कर आये। इस बार गुजरात संकट-निवारण के लिए ५० और अधिक लाये थे। इनके अलावा, खादी में अचल श्रद्धा के साथ श्रीयुत भाष्यम ऐयंगर तो अपना खादी-काम चलाये ही जाते हैं। मद्रास में काम से भरे हुए इन तीन चार दिनों में गांधीजी ने अपने श्रोताओं को आगे अपना जीवनरक्त ही ढाल दिया है, हृदय डाल दिया है। उनके साथ वे इस शीघ्रता से मिल जाते थे, अपने जीवन की कई घटनाएँ उन्हें सहज ही सुनाते थे और उनका अपूर्व ही प्रेम, उत्साह, भावुकता और दिल की आग देखने में आयी। नवयुवकों के ईसाई संघ की सभा है और सभापति ने धार्मिक भाषण के लिए प्रार्थना की। वहां पर वे उनके सामने ही विचार करने लगे और उन्हें अपने पवित्र से पवित्र अनुभव सुनाये। उन्होंने बाइबल का एक प्रसिद्ध वाक्य चुन लिया और उसीपर भाषण किया। अगर श्रोताओं ने दिल लगा कर सुना होगा तो वह भाषण उन्हें बहुत दिनों तक याद रहेगा। इसके बाद मद्यनिवारकों की सभा हुई। वहां पर बडे ही जोरों से वे ऐसे विषय पर बोलते हैं जिसके बारे में धैर्य धारण किया ही नहीं जा सकता। उन्होंने कहा, 'किसी शराबी की औरत से धैर्य धरने को कहो और देखो कि आपके बारे में वह क्या समझती है। खैर मैं हजारों पियक्कडों की औरत हूँ और मैं धीरज नहीं धर सकता। देश में हजारों पियक्कड, होवें, इसकी बनिस्बत तो मैं देश का कंगाल हो जाना ज्यादे पसंद करूँगा। अगर शराबखोरी बन्द कर देने से हिन्दुस्तान की शिक्षा रुक जाय तो कोई पर्वा नहीं, शिक्षा रोक कर भी मैं शराबखोरी बन्द करूँगा' विद्यार्थियों को एक ही सभा से सन्तोष नहीं हुआ। उनकी नैतिक जागृति और उन्नति के लिए जलते हुए हृदय से तीन बार गांधीजी ने भाषण दिये। कितने बडों बूढों को जरूर ही डाह हुआ होगा, 'हम भी नवजवान न हुए। अहा-नवजवानी भी कैसी स्वर्गीय वस्तु होती है।"

विद्यार्थी कुछ भाषणों को फिर फिर से पढें और कम से कम कुछ वाक्यों को तो अपने हृदय पटलों पर अंकित कर लेवें:

"जब कभी तुम्हारे ऊपर शैतान सवार हो जाय और तुम अपने देश की नहीं, सिर्फ अपनी ही सोचने लगो, तब याद करना कि आज मैंने तुम्हें क्या कहा था। शिक्षा पाते हुए तुम जो अपने ऊपर कर्ज बढा रहे हो, उसे याद रक्खो और उसकी याद तुम्हें सभी प्रलोभनों से बचावे।"

"अगर अर्थशास्त्र की कोई कीमत लगती है तो वह ऐसा होना चाहिए जो धर्म और आध्यात्मिकता के तराजू पर तौला जा सके।"

"अगर तुम्हें 'हिन्दू' नाम की लाज रखनी है तो तुम्हारे हर एक काम में हिन्दू संस्कृति को अच्छी से अच्छा झलक दिखलायी पडनी चाहिए।"

"और कुछ नहीं तो सिर्फ गीता पढने के लिए ही संस्कृत पढो।"

"किसी गरीब औरत के पवित्र हाथों से कते हुए खादी का एक इतिहास है और मखमल का कोई नहीं।"

"अगर तुम अपने मन पर काबू करना नहीं सीखते तो क्या तुम्हारी शिक्षा ठीक है?"

"सत्याग्रह के लिए कुछ भी पोशीदा नहीं। इससे अधिक खुली लडाई मैं दूसरी नहीं जानता। इसी तरह सत्याग्रह को कातरता से घृणा है। जो स्वार्थ से इसका उपदेश करता है, वह अपने को जलील करता है।"

सब से बडी बात तो यह है कि सब कोई जबानी गर्वोक्तियों से बचें। 'भ्रातृत्व', 'परमात्मा का काम करना,' 'हिन्दुत्व,' 'ब्राह्मणत्व,' वगैरह बडे २ शब्दों को बोलते समय जरा सोच लिया करें और सब कोई गांधीजी के इन ज्वलन्त, भावभरे शब्दों को याद रक्खें, "मैं चाहता हूं कि आप जो कहें सो करें। मैं यह कहा जाना नहीं चाहता कि मुझे खुश करने के लिए आपने धन दिया था, मगर आप खद्दर पहनना नहीं चाहते, खद्दर में आपका विश्वास नहीं है। उस महान् तामिल मित्र की भविष्यद् वाणी आप पूरी न करें कि मेरे मरने पर मेरी चिता के लिए मेरे बाँटे चर्खों की ही लकडी काफी होगी, दूसरी नहीं चाहिए।

चमारों के साथ

छोटे, नम्र लोगों की कई सभाओं में गांधी जी गये! उन में से सबसे अधिक महत्व पूर्ण तो चमारों की सभा थी। उन को किसी तरह पता चल गया कि गांधीजी टूटे हुए चप्पल पहनते हैं क्योंकि उनके लिए मरे हुए जानवर के चमडे की दूसरी जोडी चप्पल अभी बन ही नहीं पायी है। दो ने बहुत सुन्दर चप्पल बनाये और उसे ले कर गांधीजी के पास आये। उनके साथ बहुत देर तक बातें हुईं और उन्होंने केवल मुरदार चमडे का काम करने का वचन लेने की रजामंदी दिखलायी और दूसरे को भी इसके लिए तैयार करने को कहा। इसलिए गांधीजी उनके महल्ले में गये। उनके साथ बहुत देर तक बातें कीं और देखा कि उनकी परिस्थिति ऐसी है कि सिर्फ मुरदार चमडे का ही काम करना उनके लिए मुश्किल होगा। उन्होंने यह नैतिक कठिनाई देखी। मालूम हुआ मानों खुद परमात्मा ही इस बीच में आ पडे हैं। उन्होंने उन चमारों को वचन न लेने को कहा, मगर केवल मुरदार चमडे से ही काम लेने को अपना अन्तिम उद्देश्य बना कर हलाली चमडे बिना ही काम चलाने को कहा। ये लोग जो प्रतिज्ञा लेना चाहते थे, उसका रहस्य समझाने में देर लगी और इस कारण वे अन्तर्राष्ट्रीय बंधुत्व संघ की सभामें समय पर पहुँच नहीं सके। उन्होंने समझाया, 'खेद है कि मैं समय पर नहीं आ सका। मगर जो मैं बतलाऊँ कि मुझे देर क्यों हुई तो आप शायद खुश होंगे। आपका समय ले कर, मैं चमार भाइयों को एक प्रतिज्ञा लेने से रोक सका हूँ, जिसे वे उतावली में लेना तो चाहते थे, मगर पूरा नहीं कर सकते थे।"

तिरुवल्लूर और कंजीवरम

मद्रास के कुछ कार्यक्रमों के बीच में तिरुवल्लूर और कंजीवरम के लिए समय निकालना था। तिरुवल्लूर में पादरी मिस ट्रीडल ने हमारा आतिथ्य किया। एक शिल्पशाला की वे अध्यक्ष हैं। इस शाला में आसपास के स्त्री पुरुषों को कपडा बुनना, लेस बनाना, सुईकारी, कसीदे वगैरह के काम सिखलाये जाते हैं। इससे वहांवालों को बडी मदद मिलती है मगर अभी सभी कामों का केन्द्र चर्खा नहीं बना है। यहां की एक खास बात यह कही जाती थी कि अपना धर्म छोडे बिना लोग उससे लाभ उठा सकते हैं और कई धर्मों और जातियों के आदमी वहां पर देखने में आये। यह बात कुछ जान-बूझ कर नहीं की गयी है, बल्कि आवश्यकतानुसार यह हेरफेर किया गया है। मुझे कहा गया था कि और तरह यहां कोई आता ही नहीं था। क्या ही अच्छा होता अगर पादरी लोग यह सहिष्णुता और संयम जान-बूझ कर खुशी से अख्तियार करते। पूनामाल्ली में एक पादरी ने गांधीजी से शिकायत की कि लोग सहयोग नहीं करते। गांधीजी ने उससे छूटते ही कहा

"ताज्जुब का तो इसमें कोई बात नहीं है। हिन्दुओं को शक है कि आप उनके लडकों को क्रिस्तान बनाना चाहते हैं। जबतक आप धर्म-प्रचार का खयाल छोड कर काम नहीं करें आप सहयोग की आशा नहीं रख सकते। आप अपने काम का उदाहरण पेश कीजिए और वही आपका पुरस्कार होवे।"

(यं० इं०)

महादेव हरिभाई देशाई

नैल का पुतला

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ६

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, अश्विन सुदी ३ संवत् १९८४ गुरुवार, २९ सितम्बर १९२७ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

वेदों में गो-बलि

[२ री जून के 'यंग इंडिया' में श्रीयुत चिन्तामणि विनायक वैद्य का एक लेख गोरक्षा पर निकला था। उसमें लेखक ने लिखा था कि वैदिक काल में गाय की बलि दी जाती थी और गोमांस खाया जाता था। पंडित सातवलेकर जी ने हिन्दी में मेरे पास उसका खंडन लिख भेजा था। चूंके मेरा उद्देश्य तो केवल सच्ची बात को जाहिर करना था न कि अखवारू बहस मुवाहिसा कराने का, इसलिए मैंने वह लेख श्रीयुत वैद्य के पास भेज दिया। उन्होंने तुरत ही उसका जवाब लिख भेजा। मैंने वह जवाब भी पंडित सातवलेकर जी को भेज दिया। उन्होंने भी अपना प्रत्युत्तर भेजा है। नीचे मैं पंडित सातवलेकर जी के लेख और श्रीयुत वैद्य के जवाब का अनुवाद देता हूँ। अपने मत के समर्थन में पंडित सातवलेकर जी ने 'वैदिक धर्म' के दो अंकों में अधिक विस्तार से प्रमाण दिये हैं और वेदों से काफी उतारे दिये हैं। जिज्ञासुओं को मैं वे मूल्यवान् लेख पढने को कहूँगा। मूल ग्रंथों को जाननेवाला विशेषज्ञ विद्वान् न होने के कारण, मैं यह अच्छा नियम मानता हूँ कि जब जरा भी शक हो तो सही ओर ही झुकना चाहिए और इस मुआमले में सही पहलू यह है कि जिन लोगों ने हमें वेद दिये हैं, वे यज्ञ अथवा आहार के लिए गाय मारने के काम के जो आज हमें पाप मालूम पडता है, दोषी न होंगे। वर्त्तमान युग से इस वाद का कोई संबंध नहीं है क्योंकि हिन्दुओं के हृदयों में गोभक्ति इतनी गहरी जमी हुई है कि वैदिक काल में गोबलि या गोमांस खाने के चाहे जैसे प्रामाणिक सबूत क्यों न दिये जायँ मगर उस भक्ति में कोई कमी नहीं होगी। मगर इसका महत्व उनके लिए भी है जो समझते हैं कि पुराने जमाने की हर बात में हर तरह से संशोधन करने की कोशिश करनी ही चाहिए। वे मेरे बतलाये, पंडित सातवलेकर जी का लेख और श्रीयुत वैद्य के प्रकाशित ग्रंथों को पढ सकते हैं जो अंगरेजी और हिन्दी दोनों में छप चुके हैं। **मो० क० गांधी**]

गत "यंग इंडिया" में श्री. म. चिंतामणराव वैद्य जी ने "वैदिक काल में गोमांस भक्षण की प्रथा थी और यज्ञ के लिए गौ मारी जाती थी" ऐसे दो विधान किये हैं। मेरे विचार में ये विधान बडे आक्षेपणीय हैं। श्री. वैद्य जी जैसे सुयोग्य विद्वान के ये विधान थे, इसलिए मैं पहिले भ्रम में पडा और ग्रंथ भी देखे, परंतु मुझे एक भी प्रमाण इस गोमांस भक्षण की प्रथा सिद्ध करने के लिए मिला नहीं, परंतु गोमांस की प्रथा नहीं थी ऐसे ही बहुत से प्रमाण मिले। यदि श्री. वै[illegible] जो अपने मत के पोषण के लिए एकाध प्रमाण देते तो अ[illegible]ा होता, परंतु उनके लेख में वैसा कोई प्रमाण नहीं है। इसलि[illegible] हम उनका खण्डन भी करें तो किस प्रकार करें? क्योंकि उन्होंने [illegible]ल विधान किया है प्रमाण दिये नहीं हैं।

मांस भक्षण की प्रथा प्राची[illegible] काल में थी या नहीं इस विषय में निम्न लिखित प्रमाण विचार करने योग्य है—

१. आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालंभनीया बभूवुः। नारंभाय प्रक्रियन्ते स्म ॥

२. ततो दक्षयज्ञप्रत्यवरकालं मनोः पुत्राणां मरीचनाभागेक्ष्वाकुकुविडचर्येत्यादीनां च क्रतुषु पशूनामेव अभ्यनुज्ञानात् पशवः प्रोक्षणमवापुः ॥

३. अतश्च प्रत्यवरकालं पृषध्रेण दीर्घसत्रेण यजमानेन पशूनामलाभाद्गवामालंभः प्रावर्तितः। तं दृष्ट्वा प्रव्यथिता भूतगणास्तेषां चोपयोगादुपकृतानां गवां गौरवादौष्ण्यादसात्म्यत्वादशस्तोपयोगाच्चोपहताग्नीनाम् उपहतमनसाम् अतीसारः पूर्वमुत्पन्नः पृषध्रयज्ञे ॥

चरकसंहिता चिकित्सा० अ. १९

यद्यपि चरकसंहिता वैद्यशास्त्र का ग्रंथ है तथापि गोमांसभक्षण की प्रथा का इतिहास इसमें लिखा होने से हमें पता लग सकता है कि कब से गोमांस लोग खाने लगे और उस विषय में सज्जनों की संमति क्या थी। इस चरकसंहिता के वचनों का अर्थ यह है—

१. आदि काल में यज्ञ में पशु (समालंभनीयाः कुंकुमादिना लेपनीयाः) कुंकुम आदि से पूजे जाते थे। परंतु वध के लिए नहीं लिये जाते थे।

२. पश्चात् दक्षयज्ञ के अनंतर मरीचि आदि मनु के पुत्रों के समय में यज्ञमें पशुओं का प्रोक्षण होने लगा।

३. इसके पश्चात् के काल में जिस समय पृषध्र ने दीर्घसत्र आरंभ किया उस समय अन्य पशु न मिलने की अवस्था में उन्होंने गौ का आलंभन शुरू किया। यह देख कर सब प्राणि मात्र अति दुःखी हुए क्यों कि गौ जैसे उपयोगी प्राणी की हिंसा उन से सही नहीं गई। (इस पृषध्र से चली गोहिंसा से) जिन लोगों ने गोमांस खाया उस मांस के उष्ण होने से, लोगों को अभ्यास न होने से तथा मांस के अप्रशस्त उपयोग के कारण अतिसार रोग उत्पन्न हुआ।

अतिसार रोग का प्रारंभ किस प्रकार हुआ यह लिखते हुए चरकसंहिता में यह लिखा है। गोमांस भक्षण शिष्टसंमत और धर्मसंमत था ऐसा कहने वालों को इस इतिहास पर अवश्य विचार करना चाहिए।

प्राचीन वैदिक काल में यज्ञ में गौ आदि पशुओं की पूजा की जाती थी, पशुओं को स्वच्छ और निर्मल बना कर, उनको कुंकुम-तिलक लगा कर, पुष्पमाला से सुशोभित करके यज्ञ में उनकी पूजा होती थी। यहां तक उनका सत्कार होता था कि गोप उनको लकडी से मारते भी नहीं थे, प्रत्युत गोपाल लोग कोमल पत्रों से युक्त कोमल शाखा को हाथ में लेकर उससे उनको स्पर्श करके इधर उधर जाने का इशारा देते थे। यहां तक उनका सत्कार होता था। इस विषय के निर्देश हम मंत्रों में देखते हैं जिसको हम वेद का शिष्टसंमत वैदिक धर्म कह सकते हैं।

इसके पश्चात् के समय में यज्ञ में पशुओं का प्रोक्षण शुरू हुआ। इस समय में भी दो पक्ष हुए। एक पक्षवाले लोग विशेष विधि के पश्चात् पशुओं को छोड देते थे, और दूसरे पक्षवाले लोग मारने भी लगे थे। इतना होने पर भी गो का वध शुरू नहीं हुआ था।

इन दो युगों के पश्चात् पृषध्र से तीसरे युग का प्रारंभ हुआ, जिसमें उन्होंने गौ को मारना शुरू किया, परंतु गौ अति उपयोगी पशु होने के कारण सज्जनों ने उसका विरोध ही किया। अर्थात् इस तीसरे युग में भी गोवध शिष्टसंमत नहीं हुआ। कई लोगों ने शुरू किया था, इसमें संदेह नहीं; परंतु वह शिष्टसंमत नहीं हुआ था। और इसी यज्ञ में गोमांस भक्षण होने से अतिसार रोग की उत्पत्ति भी हुई। अर्थात् विचारवान् लोगों के सन्मुख इस गोयज्ञ की हानि स्पष्ट सिद्ध हुई।

यह गोमांस भक्षण का इतिहास देखने से स्पष्ट हो जाता है कि आदिवैदिक काल में अथवा शुद्धवैदिक काल में गोमांस हवनादि की प्रथा नहीं थी। और जिस काल में जिसने यह प्रथा आपद्धर्म करके शुरु की, उस समय भी गोवध शिष्टसंमत नहीं हुआ था, सब लोग गोवध को हीन दृष्टि से ही देखते थे, अर्थात् उसको पसंद नहीं करते थे। इतना ही नहीं परंतु अतिसारादि रोग उत्पादक भी समझते होंगे क्योंकि जिस यज्ञ में पहिली गौ मारी गई उसी यज्ञ के स्थान से अतिसार का प्रारंभ हुआ और वहां से ही यह रोग फैल गया था।

प्राचीन पुस्तकों में किसी बात का केवल उल्लेख होने से ही वह प्रथा शिष्टसंमत थी ऐसा सिद्ध नहीं हो सकता। वेद में कई ऐसे मंत्र हैं कि जिससे गर्भ खानेवाले लोग थे ऐसा भी पता चलता है, यहां प्रश्न पूछना चाहिए कि क्या वेद ने इन गर्भ खानेवाले लोगों की गणना धार्मिक लोगों में की थी या नहीं। हम स्पष्ट देखते हैं कि वेद में गोघातक, मनुष्यघातक आदि को कठोर से कठोर दंड का विधान है। फिर किस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक काल में गोमांसभक्षण का सार्वत्रिक प्रचार था। इस विषय में कौनसा प्रमाण है? क्या कोई वेद में ऐसा एक भी मंत्र है कि जिससे गौ काट के उसके मांस का हवनादि किया जाय ऐसा स्पष्टता से सिद्ध हो सके या श्री. वैद्य जी आधुनिक ग्रन्थों के चलाये मत वेद पर मढना चाहते हैं?

वेद की प्रथा यह है कि सबसे पहले उस पदार्थ के नाम से ही उस पदार्थ के गुणधर्म बोधित होते हैं, पश्चात् सन्देह न रहे इस लिये वेद मंत्रभाग से तथा पूर्ण मंत्र से वही बात स्पष्ट करता है। इन तीनों से जिसकी सिद्धी होगी वही शिष्टसंमत वैदिक धर्म की मर्यादा कही जा सकती है। अब गौ के विषय में हमें उक्त रीति से देखना चाहिए कि वेद मन्त्रों से गौ वध्य ठहरती है वा नहीं। यह बात हम पहिले गौ के वैदिक नामों से देखेंगे, तत्पश्चात् मन्त्र भागों से देखेंगे और पूर्ण मंत्र से भी देखेंगे।

गौ के वैदिक नामों में "अघ्न्या, अही और अदिति" ये तीन नाम गौ अवध्य है यही भाव बता रहे हैं—

१. अ-घ्न्या (अघ्न्या अहंतव्या भवति। निरुक्त ११।४४)—गौका नाम अ-घ्न्या इसलिए है कि वह अवध्य है। (सा हि सर्वस्यैव अहंतव्या) वह सब के लिए ही अवध्य है ऐसा निरुक्त की टीका में दुर्गाचार्य का कथन है, महाभारत में भी—

अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति।
महच्चकाराकुशलं वृषं गां वाऽलभत्तु यः॥
महा० शांति० अ० २६३

"गौका नाम ही अघ्न्या है फिर कौन इनके मारने का अधिकारी हो सकता है? जो बैल या गौ का हनन करते हैं वे बडा अनारोग्य का कर्म करते हैं।"

२. अ-ही—(न हन्तव्या) अवध्य होने से गौ का नाम अ-ही है।

३. अ-दिति—(अ खंडनीया) जिसको काटना योग्य नहीं। "दिति" का अर्थ "खंडित" है और "अदिति" का अर्थ "अखंडित" है।

गौ वाचक वैदिक शब्द गौ को अवध्य बता रहे हैं। वेद के गौ वाचक शब्द में एक भी उसको वध्य नहीं बताता है। अब वेद मंत्रों में यही भाव देखिए—

गां मा हिंसीः॥ यजुर्वेद १३–४३

"गाय की हिंसा न कर।" पाठक यहां देखें की जो गौ के अवध्य होने का भाव गौवाचक शब्दों में हमने देखा वही भाव इस मंत्र भाग में है। अब इसी विषय का पूर्ण मन्त्र देखिये—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां
स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय
मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥
ऋग्वेद ८–१०–१५

"रुद्रों की माता, वसुओं की दुहिता, आदित्यों की बहिन यह गौ है, अमृत की खान है, मैं समझदार मनुष्य से कहता हूँ कि तू निरपराध गौ का वध मत कर।"

जो भाव शब्द में है, वही मन्त्र भाग में है और वही पूर्ण मन्त्र में है और यह भाव "आज्ञा" रूप वाक्य से स्पष्ट बताया है। यह वेद की आज्ञा है कि "किसी भी कारण गौ का वध कोई मनुष्य न करे।"

इस प्रकार हम कई मंत्र बता सकते हैं कि वेद के शिष्टसंमत धर्म में गोवध तथा गोमांस भक्षण के लिए थोडा भी स्थान नहीं है।

यदि हम मध्यकालीन ग्रंथों के मत वेद मंत्रों पर मढने लगेंगे तो फिर वाद करने का कोई प्रयोजन नहीं रहेगा, क्योंकि भारतवर्ष में धर्म के नाम पर बुरे भले अनेक संप्रदाय चले हैं। परंतु विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या वेद के मंत्रों में इस विषय के कुछ स्पष्ट मंत्र हैं कि जो वैद्य जी का मत सिद्ध कर सकें?

ऊपर दिये हुए मंत्र में वेद कहता है कि (चिकितुषे जनाय प्रवोचं) "विचारशील समझदार मनुष्य को ही कहता हूँ" कि वह गाय का वध न करे। इससे स्पष्ट होता है कि जो लोग विचारशील या समझदार नहीं हैं वे जो चाहे सो करें, परन्तु समझदार लोगों को तो कभी गौ का वध करना ही नहीं चाहिए। पाठक विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि इसी मंत्र के उपदेश के

अनुसार वैदिक धर्म का यही मत सिद्ध होगा कि जो गोवध करते हैं वे बेसमझी से करते हैं अर्थात् कोई विचारी मनुष्य गौ जैसे उपयोगी जानवर का वध कभी करेगा नहीं, और यदि किसीने गोवध किया तो वह समझदार नहीं होगा । क्या कभी बेसमझ और अविचारी लोगों के आचार धर्माचार हो सकते हैं ? इसलिए वैदिक धर्म के अनुकूल गोवध कभी धार्मिक हो ही नहीं सकता ।

अन्यान्य आधुनिक ग्रंथों में कई कथाएं बेशक ऐसी हैं कि जिन में कई स्थानों पर गोवध होने की बात सिद्ध हो सकती हो, परंतु हमें देखना चाहिए कि क्या वह शिष्टसंमत धर्म की रीति थी या नहीं । बेसमझी से लोग जो व्यवहार करेंगे वह धर्म नहीं कहा जायगा । आज भी नवशिक्षित हिंदु जो विलायत से अधिक शिक्षा पाकर आये हैं, उनमें से कई मांस अथवा गोमांस भी खाते हैं, परंतु क्या यह नवशिक्षितों का आचरण सच्छील हिंदुओं को मान्य हुआ है । इसी प्रकार वेद के पढने से पता लगता है (चिकित्वस्) विचारी और (अचिकित्वस्) अविचारी दो प्रकार के लोग होते हैं और धर्म वही वस्तु है कि जो (चिकित्वस्) विचारी मननशील लोगों के आचरण में दिखाई देती है ।

स्वाध्याय मंडल
औंध

श्री० दा० सातवलेकर

श्रीयुत वैद्य का जवाब

मैं श्रीयुत सातवलेकर जी के लेख का खंडन नहीं करता । मगर यह तो वे भी दिखलाते हैं कि चरक मानते हैं कि पृषध्र के समय में गायों की बलि दी जाती थी और प्राचीनकाल में गोमांस खाया जाता था । साधारणतः गोवध निःसन्देह वैदिक काल में निंदित था मगर यज्ञ के लिए गोबलि में पाप नहीं माना जाता था । वह इस बात से जाना जा सकता है कि गोमेध कलिवर्ज्य वस्तुओं में से एक है । अगर कलियुग में गवालंभ की मना है तो इससे सिद्ध होता है कि पिछले युगों में यह जायज था और इसे सिर्फ बुरे लोग ही नहीं करते थे । जैसा कि महात्मा जी ने कहा है, मेरा विचार है कि यह सोचने में कोई लाभ नहीं है कि आदि काल में आर्य लोग क्या करते थे क्योंकि यज्ञ में भी गोवध और गोमांस भोजन को आर्यों ने ऐतिहासिक काल में सदा ही महा पाप गिना है ।

सातवलेकर का प्रत्युत्तर

चरक आचार्य ने कहा है कि पृषध्र के समय से गोवध शुरू हुआ, उससे पहिले के वैदिक समय में नहीं था । इसी प्रमाण से म० वैद्य जी " प्राचीन काल में गोमांस भक्षण होता था " । यह वाक्य कैसे लिख सकते हैं यह नहीं समझ में आता । " राजा पृषध्र के समय में पहिला गोवध हुआ, उस समय कईयों ने गोमांस खाया जिससे अतिसार रोग हुआ, " इससे इसके पहिले गोमांस की प्रथा न थी यह सिद्ध होता है । पृषध्र ने जो गोवध किया था वह भी बकरियों के अभाव के कारण ही किया था । इसलिए पृषध्र के पश्चात् गोवध की प्रथा शुरू हुई ऐसा भी मानना, थोडे प्रमाण से बहुत मानने के समान दोषयुक्त होगा ।

श्री वैद्य जी लिखते हैं कि ' साधारणतः गोवध निःसंदेह वैदिक काल में निन्दित था मगर यज्ञ के लिए गोबलि में पाप नहीं माना जाता था । ' इस वाक्य की सिद्धि के लिए कम से कम एक वेद मंत्र के प्रमाण की आवश्यकता है । वैदिक संहिताओं की कौनसी संहिता का कौनसा मंत्र है कि जिस से यज्ञ में गोवध सिद्ध हो सकता है । वेद मंत्र नहीं है इसीलिए म. वैद्य जी लिखते हैं कि यह इस बात से जाना जा सकता है कि गोमेध कलिवर्ज्य वस्तुओं में से एक है ।

म. वैद्यजी का कहना है कि "चूंकि गोमेध कलिवर्ज्य प्रकरण में है इसलिए पूर्वकाल में जायज था". क्या इससे यही सिद्ध करना है कि जितनी जितनी बातें कलिवर्ज्य प्रकरण में लिखी हैं वे सब की सब बातें " प्रारंभिक वैदिक काल से कलिवर्ज्य प्रकरण लिखा जाने तक अबाधित शुरू थीं । " काल इतने हैं—

१ वेदमंत्रों का समय — वेदधर्म का काल
२ ब्राह्मण ग्रंथों का ,, — यज्ञधर्म ,,
३ उपनिषदों का ,, — तत्वज्ञान के ग्रंथों ,,
४ सूत्र ग्रंथों का ,,
५ यज्ञ प्रयोग ग्रंथों का ,, — बढे हुए यज्ञ प्रयोगों का ,,
६ स्मृतिग्रंथों का ,,
७ कलिवर्ज्य प्रकरण का ,,

पहिले समय से सातवें समय तक चार पांच हजार का समय कम से कम व्यतीत हुआ है यह बात म. वैद्यजी भी मानते हैं । अब यह कितना साहस है कि कलिवर्ज्य प्रकरण लिखने के समय की सब की सब बातें वैदिक समय में थीं ऐसा मानना । यदि काल-विपर्यय का कोई उत्तम उदाहरण हो सकता है तो यही है ऐसा मेरा मत है ।

कलिवर्ज्य प्रकरण में गोमेघ बँद करने का लिखा होने से उस समय के पूर्व गोमेध था इतना मानने पर भी वेद से इस समय तक के कौनसे समय में वह प्रचलित था यह देखना चाहिए । और यह सिद्ध करने के लिए उस उस समय के ग्रंथों के प्रमाण देना आवश्यक है ।

यदि म. वैद्यजी ऐसा कोई वेदमंत्र पेश करेंगे तभी उनका कथन मानने योग्य सिद्ध होगा । यदि वे प्रयत्न करके ऐसा मंत्र निकाल देंगे तो फिर देखा जायगा । यदि वेदमंत्र वे दे नहीं सके तो यह सिद्ध होगा कि वेदमंत्रों के धर्म में गोवध के लिए स्थान नहीं । अन्य ग्रंथों में जो कुछ लिखा हो, उसका विचार यहां करने की आवश्यकता नहीं है ।

वैद्यजी कहते हैं कि पिछले युगों में यह (गोमेध) जायज था और इसे सिर्फ बुरे लोग ही नहीं करते थे ।

यदि यह सब " कलिवर्ज्य " प्रकरण के बल से ही लिखना है तो धर्मग्रंथों के विषय में इतना कालविपर्यय का दोष क्यों ये करते हैं यह कहना कठिन है । कई ऐसी बातें हैं कि जो हरएक समय की जनता के कुछ हिस्से में—जाति के कुछ हिस्से में—प्रचलित होती हैं, करनेवालों को बुरे लोग भी नहीं कहा जा सकता, परंतु वह शिष्टसंमत धर्म नहीं कहा जा सकता । उदाहरण के लिये भारत वर्ष में शराब-मद्य पीना है । इस समय अंग्रेज, शिक्षित हिंदु मुसलमान, पार्सी, शिख आदि में से कई मद्य पीते हैं । पीनेवालों को हम बुरे लोग नहीं कह सकते, परंतु मद्यपान शिष्टसंमत धर्म भारतवर्ष का नहीं है । [मद्य न पीनेवाले अल्प संख्या वाले होने पर भी मद्यपान शिष्टसंमत धर्म नहीं हो सकता ।] अब कुछ काल के बाद कानून द्वारा मद्यपान बंद किया (जैसा कलिवर्ज्य प्रकरण में किया था) । क्या इस कानून के बल से यह कहा जा सकता है कि मद्यपान निषेधक कानून सन १९२८ में हुआ इस लिए सन १९२८ से पूर्व काल के सब समयों में भारतवर्ष में मद्य-पान जारी था ? पहले सब समयों में जारी था या किसी एक पूर्व काल में जारी था इसका क्या विचार नहीं करना चाहिए ? कलिवर्ज्य प्रकरण में और इस उदाहरण में समानता है ।

बुरे लोगों और अच्छे लोगों का भी विचार यहां समान ही है । इसलिए धार्मिक शिष्ट लोग क्या मानते थे यह बात मैंने अपने पहिले लेख में पूछी है । गोवध करनेवाला बुरे लोगों में न हो, परन्तु धार्मिक शिष्ट था या नहीं इसका विचार करना चाहिए ।

श्री० दा० सातवलेकर

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, अश्विन सुदी ३ संवत् १९८४

नैल का पुतला और अहिंसा

एक गुजराती मित्र अपने मित्र को, जो मेरे भी मित्र हैं, लिखे हुए अपने ऐक पत्र में इस प्रकार दलीलें करते है: "कभी कभी बापू की अहिंसा को मैं समझ नहीं सकता हूं। लारेन्स के पुतले को हटाने के लिए पहले जैसा कि उन्होंने किया था आज वे नैल के पुतले को हटा देने की हलचल को प्रोत्साहन दे रहे हैं। मेरी दृष्टि में तो यह हिंसा सी मालूम होती है। क्योंकि इस हलचल से अंग्रेजो के प्रति तिरस्कार उत्पन्न होगा ही। और बापू उसीसे दूर रहना चाहते हैं। और जहां मुझे हिंसा नहीं दिखाई देती उन्हें हिंसा नजर आती हैं। हथियारबन्दी के कानून को दूर करने के लिए हथियार उठाने में जैसा कि उन्हें मालूम हुआ था। मेरे ख्याल से तो पहले मामले में अहिंसामय नजर आनेवाले साधनो से हिंसा की मनोवृत्ति पैदा होने का बहुत बडा खतरा है और दूसरे मामले में एक उत्तम उद्देश को सिद्ध करने में थोडी सी हिंसा-मारकाट हो जाने का भय है। मेरा ख्याल था कि बापू ऐसे कामों की हिंमत जरूर ही करेंगे।"

उनकी दलील को इन्साफ करने के लिए और पाठक उसे आसानी से समझ सकें इसलिए मैंने मूल-गुजराती में लिखी उनकी इस दलील को बढा कर लिखा है।

अहिंसा तेज तत्त्व की बनी है। इसमें कोई शक नहीं कि नैल का पुतला हटाने की और ऐसे ही दूसरी हलचलों में अंग्रेजो के प्रति तिरस्कार बढने का भय है। जो सुधारक अहिंसा का प्रचार करना चाहता है उसे इस बात को ध्यान में रखना चाहिए और उससे बचत रहना चाहिए। परन्तु इसके कारण तिरस्कार के कारणो को अन्दर दबाये रखने की वह हिम्मत नहीं कर सकता है।

प्रेम के रूप में अहिंसा जगत में सबसे अधिक कार्यकारी शक्ति है। गुजरात के कवि शामलदास कहते हैं 'भलाई के बदले भलाई करना कोई बडी बात नहीं। बहुतेरे ऐसा करते है, बुराई के बदले भलाई करना ही बडी बात है, यहां यह स्पष्ट है कि अहिंसा के गुण ही गाये गये हैं। संसार में जहां कहीं देखो तिरस्कार पैदा होने के कारण दिखाई देंगे। प्राचीन ऋषियों ने देखा कि इस स्थिति का एक ही उपाय हो सकता है और वह है तिरस्कार को प्रेम के जरिये नष्ट कर देना। इस लिए जहां तिरस्कार का कारण होता है वहीं यथार्थतः प्रेम शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। सच्ची अहिंसा तिरस्कार के कारण के तरफ से आंख नहीं मूंद ले सकती है, परन्तु उनके अस्तित्व का ज्ञान होने पर उनको बाहर लाकर मनुष्य पर अपना असर डालती है। अगर यह बात न होती तो अहिंसात्मक साधनो के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने की हलचल असंभव हो जाती, क्योंकि कदम कदम पर स्वराजवादी को विदेशी सरकार और उनके कारिन्दो के दोषों को दिखाना पडता है। अहिंसा के नियम — बुराई के बदले भलाई करना अपने शत्रु से भी प्रेम करना — में शत्रु के दोषों का ज्ञान भी जरूरी होता है। इसलिए शास्त्रों में यह कहा गया है 'क्षमा वीरस्य भूषणम्।'

अब शायद यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि अहिंसा में विश्वास रखनेवाले को नैल के पुतले को हटाने की या वैसी ही दूसरी हलचल का क्यों समर्थन करना चाहिए। परन्तु अहिंसा को माननेवाले के लिए हथियार उठाने की इजाजत नहीं हो सकती है। और मेरी राय में हथियार बन्दी के कानून को सर्वथा उठा देने का उद्देश कोई उचित उद्देश भी न होगा। इसलिए शस्त्रबन्दी के कानून को मिटाने के लिए हथियार उठाना अहिंसा की योजना में नहीं हो सकता है। नैल के पुतले के संबंध में इस हलचल की कुछ बारीक परीक्षा करना अब आवश्यक मालूम होता है। पुतले के आगे के भाग पर यह खुदा हुआ है

जेम्स ज्यार्ज स्मीथ नैल
महारानी के ए. डी. सी.
मद्रास फ्यूजीलर्स के लेफ्टनंट कर्नल
भारत में ब्रिगेडियर जनरल
बहादुर, निश्चयी, स्वावलम्बी सीपाही
बंगाल की बलवे की लहर को
शान्त करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ
लखनौ को बचाने में जिनकी ४७ वर्ष की
उम्र में २५ सितंबर १८५७ को मृत्यु हुई।

पीछे के तरफ यह खुदा हुआ है:

१८६० में सार्वजनिक चंदे से खडा किया गया।

मैं यह कह सकता हूँ कि यह बात असत्य है, यह झूठी तवारिख है। यह लिखते समय मेरे पास काये और मालेसन की पुस्तकें नहीं हैं परन्तु एक मित्र ने थोमसन की 'ध अधर साइड ओफ धी मेडल' (पदक की दूसरी बाजू) ला देने की कृपा की है। उससे मालूम होता है कि शाला और कालेजों में हमें कैसा गलत इतिहास पढाया जाता है। उस किताब से नीचे का अवतरण लिया गया है:

"कानपुर की रिहाई के लिए जब वे जल्दी आगे बढे जा रहे थे जनरल नैल ने मेजर रेनोड को यह सूचनायें दी थी:

"कुछ दोषी गांव नाश करने के लिए ठहराये गये हैं और उनमें रहनेवाले तमाम लोग कत्ल किये जायं। बलवाखोर रिजमण्टों के तमाम सिपाही जो अपनी सफाई पेश न कर सकते हो फांसी पर लटका दिये जायं। फतेपुर का शहर जिसने बलवा किया था उसपर हमला किया जाय और पठानो का वास उसके वासिन्दो के साथ नाश कर दिया जाय। बलवाखोरों के नेताओं को, खास कर फतेपुर के, सबको फांसी पर लटका दिया जाय। यदि डिप्टी कलेक्टर पकडा जाय तो उसे फांसी दे दो और उसका शिर काट कर शहर के एक मुख्य (मुसलमान) मकान पर लटका दिया जायं।" काये के मतानुसार.

'और इसमें कोई संदेह नहीं कि नैल के कार्यों के अलावा, जब नैल ने कानपुर की ओर एक मेजर को भेजा था, लोगों को बडी बेदर्दी के साथ मार डाले गये थे। और बाद को नैल ने ऐसे कार्य किये थे जो कत्लेआम से भी बढकर थे। जानबुझ कर लोगों को कष्ट दे कर मारे गये और वह भी इस तरह के कष्ट दे कर कि यहां के वासिन्दों के खिलाफ ऐसा कष्ट दे कर मारना कभी साबीत नहीं हुआ है।'

"सर ज्यार्ज केम्पबेल कहते हैं! 'नैल उन लोगों में से है जो खूनामरकी के बल पर वीर बनाया गया है और उस समय उसकी मृत्यु के कारण उसके कार्य की बहुत कुछ आलोचना होती हुई रुक गई। लेकिन अब जब कि यह भूतकाल के इतिहास की बात हो गई है, बहुत ही निष्पक्ष प्रमाणों से जो मैं जान सका हूँ उस पर से मैं यह कह सकता हूँ कि उनमें एसी कोई विशे

बात नथी । . . . में नैल को उनके खूनी कामों के लिए और खास कर उस अव्यवस्था में उनके हिस्से के कारण कि जिसकी वजह से लुधियाना का रिजमंट हमने खोया था कभी माफ नहीं कर सकता हूँ । अल्हाबाद में उनके खूनामरकी और अविश्वास के कारण फतेपुर रिजमंट अपने से बदल गया (यह रिजमंट लुधियाना रिजमंट के सिवाय अपनी भक्ति में प्रथम था)। बाद को इसी रिजमंट ने अच्छी सेवायों की थी ।"

इस वीर की सचा पहचान कराने के लिए, जिसके कि मान में सार्वजनिक चन्दे से यह पुतला खडा किया गया है, बहुत कुछ अवतरण दिये जा सकते हैं । ऐसे पुतले कुछ खास बात सूचित करते हैं । ब्रिटिश सरकार जिन तत्त्वों—भय और असत्य — की पोषक है उनके ये स्पष्ट प्रमाण हैं । ये शब्द सख्त हैं लेकिन उतने ही सचे हैं । इसी लिए प्रत्येक भारतीय और अंग्रेज का इस भय और असत्य का अपनी शक्तिभर सामना करना कर्तव्य हो जाता है । परन्तु इनका सामना करने की रीति वैसे ही भय और झूठ के द्वारा बदला लेना नहीं है परन्तु उसके विरुद्ध भय का अहिंसा से और असत्य का सत्य से सामना करना है । यह रास्ता मुश्किल हो सकता है परन्तु यदि भारत ओर संसार जीवित रहना चाहते है तो यही एक रास्ता है । इस लिए जिन युवकों ने यह युद्ध शुरू किया है वे यदि प्रामाणिकता और अहिंसा के साथ उसको जारी रक्खेंगे तो वे सहानुभूति के पात्र हैं और यह ठीक ही है कि स्थानिक महासभा समिति ने इस मामले को उत्साह से अपने हाथ में ले लिया है ।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय १९

फिनिक्स की स्थापना ।

सुबह में पहिले तो मैंने वेस्ट से बात की । 'सर्वोदय' का जो प्रभाव मेरे पर पडा था मैंने उन्हें कह सुनाया और सुचित किया कि 'इन्डीयन ओपीनियन' को एक खेत पर ले जाना होगा । वहां सब कोई एकसा भोजन खर्च ही लें, सभी अपनी अपनी काश्त करें और अपने फुरसत के समय में 'इन्डीयन ओपिनियन' का काम करें । वेस्ट ने इस सूचना को स्वीकार किया । प्रत्येक व्यक्ति का भोजन खर्च कमसे कम तीन पौंड होगा एसा अन्दाजा लगाया गया । इसमें काले गोरे का कोई भेद नहीं रक्खा गया था । इसी विचार से मैंने कारन्दों में बात शुरू की । मदनजीत को यह ठीक लगी ही नहीं । उनको डर लगा कि मेरी मुर्खता से यह कार्य जिसमें उन्होंने अपनी जान डाल दी थी एक मास में ही धूल में मिल जायगा । 'इन्डीयन ओपीनियन' निभेगा ही नहीं, प्रेस की भी यही दशा होगी और कारन्दें भाग जायँगे ।

किन्तु प्रेस में कोई दश कारन्दे थे । सबों को जंगल में बसना माफक हो या नहीं यह भी एक सवाल था । और दूसरा प्रश्न यह भी था कि सभी काम करने वाले समान खर्चा से काम करने को तय्यार हैं या नहीं । हम दोनों ने तो यह तै कर ही लिया कि जिस किसी को यह योजना पसन्द न आय, अपनी तनख्वाह ले, परन्तु आहिस्ता आहिस्ता सभी संस्थानवासी हो कर रहे यह अपना आदर्श रखना चाहिए ।

मेरे भतीजे छगनलाल गान्धी इस प्रेस में काम करते थे । उन्हें भी वेस्ट के साथ साथ मैंने बात कही । उन पर कुटुंब की जिम्मेवारी थी । परन्तु उन्होंने बाल्य काल से ही मेरी निगरानी में तालीम पाना और काम करना पसन्द किया था । मेरे पर उनका पूरा भरोसा था । इस लिये कोई आगा पिछा किये ही बिना वे तो शरीक हो गये और आज दिन तक मेरे साथ ही हैं । हमारे में तीसरे एक गोविन्द स्वामी नाम के मशीनियर थे उन्हें भी यह बात मञ्जूर हुई । बाकी के दूसरे संस्थानवासी तो न हुऐ । किन्तु उन्होंने मैं जहां कहीं प्रेस ले जाऊँ वहां आना कुबूल किया ।

इस माफिक कारन्दों के साथ बातचित करने में दो दिन से ज्यादे लगे हों ऐसा मुझे याद ही नहीं, तुरत ही मैंने डरबन के नजदिक किसी भी स्टेशन के पास जमीन के लिये अखबारों में एक विज्ञापन दिया । इसके जवाब में फिनिक्स की जमीन की बिक्री का संदेश आया । वेस्ट और मैं उसे देखने गये । सात दिन के अंदर अंदर मैंने २० एकड जमीन खरीद ली । उसमें एक छोटासा पानी का नाला था । कितनेक नारंगी और आम के वृक्ष थे । पडोस में ही ८० एकड का एक दूसरा टुकडा था । उसमें फल वृक्ष विशेष थे और एक झोंपडी भी थी । कुछ दिनों बाद उसे भी खरीदा । दोनों की कीमत कुल १००० पौन्ड देना हुई ।

शेठ पारसी रुस्तमजी मेरे ऐसे साहसी तमाम कामों में हिस्सेदार थे । उन्हें यह तजवीज पसन्द आयी । उन्होंने एक बडे असबाब खाने के टीन वगेरा जो उनके पास फालतु पडे हुए थे बिना मूल्य दे दिये । उससे तामीर काम शुरू किया गया । कितनेक हिन्दी सुतार और सिलावट जो मेरे साथ लडाई में आये थे मिल गये । उनकी मदद से कारखाना बांधना शुरू किया । एक महीने में मकान तैयार हो गया । वह मकान ७५ फिट लम्बा और ५० फिट चौडा था । वेस्ट वगेरा शारीरिक कष्टों की कुछ परवाह न करते सुतार सिलावटों के साथ वहां के बाशिन्दे हुए ।

फिनिक्स में घास खूब थी, वस्ती ही नहीं थी । इस लिये सर्पो का उपद्रव था और यह जोखिम था । पहिले तो सभी तम्बु खडे करके वहां रहे थे । मुख्य मकान तय्यार हुआ कि एक सप्ताह में बहुत कुछ सामान बैल गाडी के जरिये फिनिक्स पहुंचाया गया । डरबन और फिनिक्स के दरमियान १३ मील का फासला था । फिनिक्स स्टेशन से ढाई मील दूर था । सिर्फ एक ही सप्ताह के लिए 'इन्डियन ओपिनियन' मर्क्युरी प्रेस में छपाना पडा था ।

मेरे साथ मेरे जो रिश्तेदार वगेरा आये थे और व्यापार में लग गये थे उनको मेरे मत में मिलाने और फिनिक्स में दाखिल करने का मैंने प्रयत्न शुरू किया । ये तमाम तो द्रव्य संपादन करने की उमंग से दक्षिण आफ्रिका आये थे । उनको समझाने का काम मुश्किल था । परन्तु कितनेक समझे । इन सबों में से आज मैं मगनलाल गांधी का नाम चुन सकता हूँ । क्यों कि दूसरे जो समझे थे कुछ समय के लिए फिनिक्स में रह कर पीछे पैसा इकट्ठा करने के कार्य में लग गये । मगनलाल गांधी अपने धन्धे को समेट मेरे साथ आये हैं तभी से बराबर मेरे साथ रहे हैं; और अपने बुद्धि-बल से, त्यागशक्ति से तथा अनन्य भक्ति से उन्होंने मेरे आंतरिक प्रयोगों के मेरे असली साथियों में प्रथम स्थान प्राप्त किया है । और स्वयंशिक्षित कारीगर के लिहाज से मेरी निगाह में उनका स्थान अद्वितीय है ।

इस प्रकार १९०४ के वर्ष में फिनिक्स की स्थापन हुई और विघ्नों के होते हुए भी फिनिक्स संस्था एवं 'इन्डियन ओपिनियन' दोनों निभ रहे हैं । परन्तु इस संस्था के आरंभ काल की मुसीबतें और उसमें होनेवाली आशा निराशाओं का हाल भी जांचने योग्य है । उसका विचार अगले अध्याय में करेंगे ।

मोहनदास करमचंद गांधी

साप्ताहिक पत्र

९ तारीख को हमने मद्रास छोडा। वहां से दक्षिण में कुड्डालोर होते हुए प्रान्त के मध्य में मन्नारगुडी तक चले गये। यहां हम मद्रास के धान के पानी भरे प्रदेश के बीचोबीच में हैं। इस प्रदेश में अस्पृश्यता के पुराने सवाल, देवदासियों की प्रथा के अभिशाप और ब्राह्मण अब्राह्मणों के झगडों के प्रश्न के जैसा ही सफाई का सवाल भी है ही। मुल्क में जागृति ठीक समय पर आयी तो है मगर जैसा कि गांधीजी ने मायावरम में कहा था, इस समय यह जागृति गलत रास्ते जा रही है। अपने अंधेपन में हम सोचते हैं कि हर जाति, हर समाज को अपने ही रास्ते चलना चाहिए, अपना ही स्वार्थ देखना चाहिए।' मगर जागृति तो है ही। रूढिप्रिय ब्राह्मण भी अपने आधार को डगमग होते पाता है, आनेवाले तूफान के भनकारे को सुनकर आंखें मलता है। पारस्परिक संदेह और बदले का जो वातावरण फैला हुआ है, उससे भिन्न २ वर्गों के बीच फर्क को मिटाने का काम और भी मुश्किल हो रहा है। अगर गांधीजी रात को सोते समय कौतूहलियों के शोरोगुल की तकलीफ से बचना चाहते हैं या गडबड करनेवालों को तब आने नहीं देते तो यह भी ब्राह्मण रक्षकों का ही षड्यंत्र है। कुड्डालोर के अपने सार्वजनिक भाषण में गांधीजी ने दोनों दलों से प्रार्थना की थी कि 'मुझ से आप लोग दोनों ही काम लीजिए और जहां कहीं अब्राह्मण लोग वर्णाश्रम धर्म के नाम वाले आज के असुर से लडना चाहते हैं मैं उनके साथ हूँ मगर वे मर्यादा से आगे न बढ जायें।' इस भाषण से तूफान उठ खडा हुआ। पचियप्पा कौलेज के भाषण का संक्षेप बुरे तौर पर किया गया था और उसके शीर्षक भी बाल-विधवाओं और बाल विवाह के बारे में बुरे तौर पर दिये गये थे। फलतः रूढिप्रियों में शोर होता है, वे घबरा उठते हैं और अन्त में स्थिति की गंभीरता पर विचार करने के लिए वे सभा करते हैं। हाय, मनुष्य अगर मनुष्य के बीच का पर्दा उठा सकता! लाख करो मगर दिलों के बीच पर्दा तो रही जाता है और कोई आदमी दूसरे का भाव पूरा पूरा समझ नहीं पाता। गांधीजी ने अपने श्रोताओं से इतनी खुलासगी से कभी बातें नहीं की हैं मगर वे सब बेकार जाती सी दीखती हैं। मगर गांधी जी तो दिनों दिन अधिकाधिक धीर होते जाते हैं और विश्वास करते हैं कि समय के पलटा खाते ही, प्रेम और समझदारी के दिन लौटते ही, हम सब कोई एक एक बूँद जैसे मिल कर नदी नाले बनाते हुए अंत में मनुष्य सागर में मिल जायँगे, दुई का फर्क रही नहीं जायगा।

मगर चर्खे के संदेश पर तो कोई असर नहीं पडा है। चर्खे के लिए अपना हिस्सा चुकाने में ब्राह्मणों से कुछ कम फिक्र अब्राह्मण नहीं दिखलाते हैं। ऐयरों और ऐयंगरों जैसे ही हमारे गृह-स्वामी चेट्टी, मुडालियर और पिल्ले भी रहे हैं। सभी जगह सभाएँ बहुत अधिक लोगों के आने पर भी प्रायः ही अत्यन्त शान्त रही हैं। कहीं भी प्रबंधकों को मानपत्र बिना पढे ही, पढा हुआ सा मान लेने में कोई उज्र नहीं हुआ है। यह खयाल सभी जगह रक्खा गया है और आशा है कि यह उदाहरण और लोगों को भी जँचेगा। दान भी संतोषजनक मिला है। विद्यार्थी सभी जगह अपनी अलग थैली देते आये हैं। और तो और, मन्नारगुडी के पादरी प्रधानाध्यापक तक ने अलग थैली देने को अपने विद्यार्थियों को उत्साहित किया था।

पादरी प्रधानाध्यापक की बातें करते हुए मैं गांधीजी के महत्वपूर्ण भाषण का उल्लेख कर देना चाहता हूँ जिसमें उन्होंने अध्यापक महोदय के कहने पर कि हम लोग आप ही जैसे रोज बाइबिल पढते हैं, गांधीजी ने हिन्दू विद्यार्थियों को गीता पढने की सलाह दी थी। वह भाषण अन्यत्र दे रहा हूँ।

चिदम्बरम्, मीनाक्षी कौलेज के लडकों ने गांधीजी को अपने कौलेज में जाकर भाषण करने के लिए जिद न करके बडा अच्छा उदाहरण दिखलाया। उन्होंने अपनी थैली सार्वजनिक सभा में ही दे दी। कुंबाकोनम् से मन्नारगुडी के रास्ते में छोटे २ गांवों में लोग गांधीजी को जरा जरा देर के लिए रोक कर थैली देने की कोशिश करते थे। इनमें विशेष उल्लेखनीय गांव था श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्री की जन्मभूमि वलंगीमन।

चिदम्बरम्

चिदम्बरम् तो विशेष उल्लेखनीय है। पहले तो इस लिए कि यह स्थान संत नंदनार की चरण धूलि से पवित्र है। इनके विषय में गांधीजी ने अपने भाषण में कहा था जो अन्यत्र छपा है। दूसरे, यहाँ अब भी उस सत्याग्रही भावना की कुछ झलक देखने को मिलती है। नंदनार मठ खोलने के लिए स्वामी सहजानंद ने गांधीजी को बुलाया था। स्वामी सहजानंद जन्म से अछूत हैं। आजन्म ब्रह्मचारी हैं। इनका सत्संग सचमुच ही पावन है। यहाँ एक और अब्राह्मण मठ स्वामी परमज्योति चलाते हैं। वे भी अपनी सेवावृत्ति और चारित्र के लिए विख्यात हैं। उन्होंने गर्व से कहा, 'मैंने प्रतिज्ञा ली है कि स्वराज मिलने पर अगर सारे देश के साथ स्वयं महात्माजी भी खादी को छोड देवें तो भी मैं तो खादी को नहीं छोडूंगा। इस प्रदेश में वे सबसे अच्छे खादी-सेवकों में से एक हैं। उन्होंने अपना अलग ही खादी कोष का हिस्सा दिया। गांधीजी को उनके मठ के शान्त वातावरण में बडा आराम मिला'।

दुःख के दिन

मायावरम् की सार्वजनिक सभा में गांधीजी ने कहा, "मुझे देवदासियों और शहरगंदगी के दो सवालों ने बहुत ही बेचैन कर रक्खा है और अपने दिल का कुछ भार कम करने के लिए ही मैं आपको ये बातें सुना रहा हूँ।" इसके लिए कुछ मायावरम् खास दोषी नहीं था। शहरगंदगी की सब बातें मालूम होने पर और देवदासियों से बातें करके उनका हाल जानने से ही गांधीजी इतने दुःखित हुए थे। उनका सारा भाषण ही शहरसफाई और नैतिक गंदगी के प्रति उदासीनता पर जबर्दस्त कटाक्ष था। नदी के खराब करने पर उन्होंने कहा, 'मुझे इससे बडा कष्ट हुआ है। मुझे जान पडता है मानों किसीने मुझ पर चोट की हो। इसके लिए तो आप को नगरसफाई के अपने कर्त्तव्य का पूरा भान होना चाहिए। कोई आदमी झाडूवाले की भावना को छोडकर कोई दूसरी भावना लेकर शहर में घुस ही नहीं सकता'

मगर नैतिकगंदगी का तो उन्हें गहरा घाव लगा है। स्त्रीयां और उनके संबन्धी पुरुष एकसाथ बैठे थे मगर कोई यह नहीं समझता था क्योंकर इस कठिनाई से पार पावें जिसमें रिवाज के भूत ने उन्हें डाल दिया है। यह बडा ही दुःखद दृश्य था। सभी विवशता से कहते थे, 'हममें से कोई इसे नहीं चाहता, पर करें क्या?' गांधीजी ने पूछा, 'मान लो मैं तुम्हें ले जाऊँ, पूरा खाना और कपडा दूँ, पढाऊँ लिखाऊँ और स्वच्छ वातावरण में रक्खूँ तो क्या तुम यह पाप की जिन्दगी छोड नहीं दोगे?' सब ने कहा 'हां' मगर गांधीजी इससे भूलनेवाले नहीं थे। उन्होंने अपने भाषण में इसका उल्लेख किया और आगभरे शब्दों में दोषियों को उनके पाप सुनाये। उन्होंने कहाः "जैसे जैसे मैं उनकी बातें सुनता गया, नाबालिग लडकियों को पाप के जीवन में डालने के लिए समर्पित करने के विरुद्ध मेरी आत्मा उबल उठी। उन्हें देवदासी कह कर हम धर्म के नाम पर साक्षात् भगवान् का अपमान

करते हैं और दुहरा पाप यह करते हैं कि अपनी इन बहिनों से विषय-तृप्ति करते हुए हम साथ साथ भगवान् का भी नाम लेते जाते हैं। यह सोच कर कि एक ऐसा भी समाज है जो इस पाप के लिए अलग छांट दिया गया है और दूसरा भी समाज है जो इसे सहता है, भला आदमी तो जीवन से निराश हो उठता है। मैंने उनसे बातें करते समय देखा कि उनकी आंखों में पाप नहीं है और उनमें भी दूसरी सभी स्त्रियों जैसी ही ऊँचीं भावनाएँ आ सकती हैं। हमारी सगी बहिनों में और उनमें भला क्या अन्तर हो सकता है? और अगर हम अपनी सगी बहनों से ऐसा काम नहीं लेने दे सकते तो फिर उन्हें पाप में हम किस हिम्मत पर ढकेलते हैं? जिन हिंदुओं का इससे किसी प्रकार का संबन्ध है, वे समाज को इस पाप से मुक्त करने की कोशिश करें। अगर मैं उनसे अपना वचन पूरा करा सकूं तो उनमें से अधिकांश ने यह जीवन छोड देने का वचन दिया है। मगर अगर वे अपना वचन पूरा नहीं कर सकीं तो मैं उन्हें दोष नहीं दूँगा। यह दोष तो समाज के गले मढा जायगा। इन बहनों को पापगर्त से निकालना आपका काम है, उन्हें लज्जामय जीवन से बचाना आपका धर्म है। मैं जानता हूँ कि सामने प्रलोभन आने पर उन्हें उसे जीतना मुश्किल होगा, मगर अगर मर्द अपनी विषयवासना को जीत सकें, समाज अगर इस पाप का विरोध करे तो समाज से इस पाप को दूर करना सहज होगा।

(यं० इं०) **महादेव हरिभाई देसाई**

दो भाषण

महान सत्याग्रही

चिदम्बरम् के अपने भाषण में गांधी जी ने महान् अछूत संत नंदनार के विषय में यह कहा था:

'मैं जानता था कि चिदम्बरम् मेरे लिए तीर्थस्थल होगा। मैंने एक मात्र मौलिक सत्याग्रही होने का दावा नहीं किया है। मेरा दावा तो इसका सिर्फ सार्वजनिक रूप से प्रयोग करने भर का है और यह अभी देखना ही है और सिद्ध करना है कि यह सिद्धान्त सभी जमाने के सभी देशों के हजार हा हजार आदमी अपने जीवन का एक अंग बना सकते हैं। इसलिए मैं जानता हूँ कि मेरा प्रयोग अभी बन ही रहा है और इसलिए मैं नम्र रहता हूँ, आकाश पर चढ नहीं जाता। नम्रता की इस हालत में सत्याग्रह का जो हरएक उदाहरण मेरे सामने आता है, उससे मैं उसी प्रकार चिपट जाता हूँ जैसे कि बच्चा मा की गोद में चिपटता है और जब मैंने नंदनार की, उसके महान् सत्याग्रह की और उसकी सफलता की कथा सुनी, उसकी आत्मा के आगे मेरा सिर झुक गया, सारे दिन मुझे लगता रहा है कि मैं नंद के पदरज से पवित्र स्थान पर आकर ऊँचे पहुँच गया हूँ और कुछ मिनटों बाद यहां से जाते हुए मुझे कष्ट जरूर होगा।

'मगर इससे मुझे बडी खुशी हुई, मैंने इसे बडी भारी प्रतिष्ठा समझी कि मुझे पहला काम जो दिया गया था, वह था उस महान् संत की यादगार में बनाये गये मंदिर का दरवाजा खोलना। मैं कितना चाहता हूं कि चिदम्बरम् के लोगों के बारे में कहा जा सकता होता कि कम से कम वे तो ब्राह्मण और पंचम का फर्क नहीं जानते और अगर वे इतने ऊँचे उठ सकते होते तौभी उन्होंने उससे अधिक कुछ नहीं किया होता जिसकी गीताजी में हर हिन्दू से उमेद रक्खी गयी है। परमात्मा की नजर में छूत अछूत कोई नहीं है। ब्राह्मण अपने बडप्पन से या दूसरों पर प्रभुता दिखलाने की योग्यता से ब्राह्मण नहीं कहे जाते बल्कि, अपने ज्ञान से, मनुष्य जाति की सेवा करने की योग्यता से, अपने आपको सेवार्थ मिटा देने की योग्यता से ब्राह्मण कहे जाते हैं। यह उन्हीं का अधिकार है, उन्हीं का कर्त्तव्य है कि वे मनुष्यजाति की सेवा करें और सभी पार्थिव पुरस्कारों का लोभ छोडे बिना यह हो नहीं सकती। अपने अदम्य साहस से, ईश्वर में अगाध श्रद्धा से नंद अहंकारी ब्राह्मणों को झुका सका था और दिखला सका था कि अपने अत्याचारियों से, जो अपने को मनुष्यजाति का सिरमौर समझते थे, वह कहीं महान् था। मगर पंचम आदि द्राविड भाई, नंद के उदाहरण से लाभ उठाते हुए, अपनी विरासत के इस भाव तक ऊँचे उठें तो क्या ही अच्छा हो!

नंद ने सभी बंधन तोड कर मुक्ति पायी, मगर शोरोगुल से नहीं, वाग्वितंडा से नहीं, किन्तु सच्चे स्वार्थत्याग से। उसने अपने अत्याचारियों को शाप नहीं दिया, बल्कि वह तो उनसे अपना हक माँगने को भी झुकने को तैयार न था। परन्तु उसके चारित्र की महत्ता से, उच्चता से, शर्माकर उन्हें उससे न्याय करना ही पडा। और अगर मनुष्यों की भाषा में हम कहें तो उसने नटराज भगवान् को पृथ्वी पर बुलाकर अपने अत्याचारियों की आंखें खुलवायीं। और अपने जमाने में नंद ने अपने आप जो किया वह हम आप सभी कर सकते हैं। और मैं चाहता हूँ कि मेरे श्रोताओं, आप में नंद का कुछ भाव आ जाता, अगर हम में से इतने आदमी नंद का, अनुकरण कर सकते, उसका कुछ भाव हृदयंगम कर सकते तो यह देश फिर भी पुण्यात्माओं का देश हो जाता। मैं आशा करता हूँ, प्रार्थना करता हूँ कि जिस मंदिर से मेरा नाम आज जोडा गया है, उस मंदिर के आस पास का वातावरण शुद्ध रख कर नंद की याद ताजी बनी रहेगी। इस समय नंद के भावों से वातावरण को ऐसा ही भरा हुआ छोड कर मैं जाना चाहूँगा!'

खादी भावना

इसी ढर्रे पर वे खादी की भावना और खादी का गुह्य रहस्य समझाते गये:

'मगर अगर मैं यह न बतलाऊँ कि नंद की भावना रोजमर्रे के जीवन में कैसे दिखलायी जा सकती है तो यह शायद मेरी भूल होगी। मेरी नम्र सम्मति में 'खादी-भावना' में मग्न होने से ज्यादे अच्छी तरह वह भावना दिखलायीं ही नहीं जा सकती। मेरे बतलाये अंतर का ख्याल रखिये। सिर्फ खादी पहनने से ही नंद का अनुकरण होता है यह मैं नहीं कहता मगर 'खादी-भावना' में मग्न होने से होता है। खादी पहनने की उमेद तो किसी चोर से भी, वेश्या से भी रखनी होगी क्योंकि वे जैसे चावल खाती हैं वैसे ही उन्हें कुछ पहनना भी तो जरूर है, मगर खादी भावना के अर्थ होते हैं, कि हम खादी पहनने का अर्थ भी जरूर जानें। हररोज जब हम खादी की पोशाक पहन कर बाहर निकलते हैं, हमें याद करना चाहिए कि यह हम दरिद्रनारायण के लिए कर रहे हैं। अगर हमारे भीतर खादी-भावना है तो हम जहां जायँगे हमारे चारों ओर सादगी ही सादगी होगी। 'खादी-भावना' के अर्थ हैं अपार धैर्य। जो खादी बनाने का कुछ भी हाल जानते हैं, उन्हें पता है कि कतवैयों और जुलाहों को किस धैर्य से काम करना पडता है। उसी प्रकार स्वराज का धागा कातते हुए हम में भी धैर्य होना चाहिए। 'खादी-भावना' का एक अर्थ अपार श्रद्धा भी है। जैसे कि कतवैये को विश्वास होता है कि उसका अकेले का सूत कितना ही कम क्यों न हो, मगर सब का सूत मिला कर हम सारे हिन्दुस्तान को कपडे पहना सकते हैं, उसी प्रकार हमें अपार श्रद्धा होनी चाहिए कि सत्य और अहिंसा के सामने सभी बाधाएँ टूटेंगी ही।

'खादी भावना का अर्थ है पृथ्वी पर के सभी जीवों से बंधुभाव। इसके मानी हैं उन सभी वस्तुओं का संपूर्ण त्याग जिनसे हमारे पास के जीवों को हानि पहुँचे और हमारे करोडों देशवासियों में

अगर यह भाव आ जाय तो फिर यह देश क्या न हो जाय ! देश में मैं जितना ही अधिक घूमता हूँ, जितना ही अधिक मैं अपनी आंखों से चीजें देखता हूँ, चर्खे की शक्ति में मेरा विश्वास उतना ही बढता जाता है । अगर हम बुद्धि से केवल रामनाम रटने की शक्ति का तर्क करें तो हमारी बुद्धि से हमारे हृदय को संतोष नहीं होगा मगर मुझे आशा है कि इतने लोगों में एक भी ऐसा आदमी न होगा जो सोचता हो कि जिन ऋषियों ने हमें ये नाम दिये वे मूर्ख या जडभरत थे । उसी तरह मैं कहता हूँ कि खादीभावना में यह सारी शक्ति है । मगर इसमें सिर्फ एक शर्त है । मैं सिर्फ एक ही शर्त कबूल करता हूँ जो इसके साथ जुडी हुई है । वह यह कि जैसे राम नाम की हमारे मनों में ऐसी जीवन्त शक्ति इसीलिए हो गयी है कि उसके पीछे उनकी अतुलनीय तपश्चर्या थी जिन्होंने हमें यह नाम दिया था, वही दशा खादी आन्दोलन की है । इसके पीछे इसके समर्थकों की तपश्चर्या होनी चाहिए । मैं हर क्षण में यह समझता रहा हुँ, कि जिन्होंने खादी पर प्राण न्यौछावर किया है, वे अगर पवित्रता पर हमेशे मरते न रहेंगे तो हमारे देशवासियों को खादी बुरी लगेगी ही । मैं यह भली भांति जानता हूँ कि और व्यापारी चीजों के साथ उन्हीं के ढंग पर खादी बाजी नहीं ले जा सकती । जैसे कि सत्याग्रह निराला ही अस्त्र है, लोगों के और अस्त्रों से अलग है वैसे खादी भी व्यापार की एक अनोखी ही वस्तु है जो दूसरे व्यापारिक पदार्थों से बाजी नहीं लेगी, ले ही नहीं सकती । जितनी निश्चयता से, दृढता से मैं जानता हूँ कि मैं यहां बैठा हूँ, उसी प्रकार मैं यह भी जानता हूँ कि खादी निराली वस्तु है और आज यह हिन्दुस्तान में और सभी चीजों से आगे बढ जायगी । इस लिए आप समझ सकियेगा कि इन खादी थैलियों पर फूल क्यों नहीं जाता हूँ । मैं जानता हूँ कि खादी में अगर आपको मेरे विश्वास का दशवाँ हिस्सा भी होता तो आप अपने धन में से दो सौ, या दो हजार न देते बल्कि इतने रुपये देते कि फिर खादी के लिए और की जरूरत ही नहीं रह जाती ।'

हिन्दू विद्यार्थी और गीता

(मन्नारगुडी के विद्यार्थियों के आगे दिये गांधी जी के भाषण का एक अंश)

'तुम अपने मानपत्र में कहते हो कि मेरे जैसा तुम रोज ही बाइबिल पढते हो । मैं यह नहीं कह सकता कि मैं रोज बाइबिल पढता हूँ मगर यह कह सकता हूँ कि मैंने नम्रता और भक्ति से बाइबिल पढी है । और अगर तुम भी उसी भाव से बाइबिल पढते हो तो यह अच्छा ही है । मगर मेरा अनुमान है कि तुम में से अधिकांश लडके हिन्दू हो । क्या ही अच्छा होता अगर तुम कह सकते कि तुम में से हिन्दू लडके रोज ही गीता का पाठ आध्यात्मिकता पाने के लिए करते हैं । क्यों कि मेरा विश्वास है कि संसार के सभी धर्म कमोबेश सच्चे हैं । मैं कमोबेश इस लिए कहता हूँ कि जो कुछ आदमी छूते हैं, उनकी अपूर्णता से वह भी अपूर्ण हो जाता है । पूर्णता तो केवल ईश्वर का ही गुण है और इसका वर्णन नहीं किया जा सकता, तर्जुमा नहीं किया जा सकता । मेरा विश्वास है कि हर एक आदमी के लिए ईश्वर जैसा ही पूर्ण बन जाना संभव है । हम सबके लिए पूर्णता की उत्ताभिलाषा रखनी जरूरी है मगर जब उस धन्य स्थिति पर हम पहुँच जाते हैं, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वह समझायी नहीं जा सकती । और इस लिए पूरी नम्रता से मैं मानता हूँ कि वेद, कुरान और बाइबिल ईश्वर के अपूर्ण शब्द हैं और हम जैसे अपूर्ण प्राणी हैं, अनेक विषयों से इधर उधर डोलते रहते हैं, हमारे लिए ईश्वर का यह शब्द पूरा पूरा समझना भी असंभव है और मैं इसी लिए हिन्दू लडके से कहता हूँ कि तुम जिस परंपरा में पले हो उसे उखाड मत फेंको जैसा कि मैं मुसलमान या ईसाई बालकों से कहूँगा कि तुम अपनी परंपरा से संबंध न तोड डालो । इस लिए जब कि मैं तुम्हारे कुरान या बाइबिल पढने का स्वागत करूंगा, मैं तुम सब हिन्दू लडकों पर गीता पढने के लिए जोर डालूंगा, अगर मैं जोर डाल सकता हूँ तो । मेरा विश्वास है कि लडकों में हम जो अपवित्रता पाते हैं, जीवन की आवश्यक बातों के बारे में जो लापर्वाही देखते हैं, जीवन के सबसे बडे और परमावश्यक प्रश्नों पर वे जिस ढिलाई से विचार करते हैं उसका कारण है उनकी वह परंपरा नष्ट हो जानी जिससे अब तक उन्हें पोषण मिलता आया था ।

'मगर कोई गलतफहमी न होने पावे । मैं यह नहीं मानता कि केवल पुरानी होने से ही सभी पुरानी बातें अच्छी हैं । प्राचीन परंपरा के सामने ईश्वर की दी हुई तर्कबुद्धि का त्याग करने को मैं नहीं कहता । चाहे कोई परंपरा हो मगर नीति के विरुद्ध होने पर वह त्याज्य है । अस्पृश्यता शायद पुरानी परंपरा मानी जावे, बाल-वैधव्य, बाल-विवाह और दूसरे कई बीभत्स विश्वास तथा वहम शायद पुरानी परंपरा में माने जायँ । अगर मुझमें ताकत होती तो मैं उन्हें धो बहाता । इसलिए तुम शायद अब समझ सकोगे कि मैं जब पुरानी परंपरा की इज्जत करने को कहता हूँ तो मेरा क्या मतलब है । और चूंकि मैं उसी परमात्मा को भगवद्गीता में देखता हूँ जिसे बाइबिल और कुरान में, मैं हिन्दू बालकों को गीता पढने को कहता हूँ क्योंकि गीता के साथ उनका मेल और किसी दूसरी पुस्तक से कहीं अधिक होगा ।'

(यं० इं०)

जुन १९२७ में खादी की उत्पत्ति और ब्रिक्री का ब्यौरा

		उत्पत्ति			बिक्री		
प्रान्त	रु.	जुन '२७	जुन '२६	मई '२७	जुन '२७	जुन '२६	मई '२७
अजमेर	,,	५,३११	४,०३०	४,४११	६,२८०	५,३३४	१७,४०७
आन्ध्र	,,	१३,९५९	१६,३६७	२७,५२७	३८,२५०	२१,३२०	५०,३६९
बिहार	,,	१२,४७९	२४,६३२	८,६५३	१४,२१३	१२,२७३	१५,०२३
बंगाल	,,	१९,३५५	४५,६६०	१६,८३८	२३,०१५	३५,१६७	२६,३९९
बम्बई	,,	. .	. .	. .	२०,७५२	२९,९२६	२४,३५९
ब्रह्मा	,,	. .	. .	. .	१,३४०	१,५९३	२,२१९
दिल्ली	,,	१,२१८	१,३४७	१,२१८	१,८९३	१,५३६	१,६६१
गुजरात	,,	३,५३६	९,२०३	५,९१९	९,९९०	९,४४८	६,०१३
कर्णाटक	,,	५,२९३	३,५२५	४,२१५	६,२३६	७,०९६	५,५२४
महाराष्ट्र	,,	२,२४१	२,०१७	१,७७१	१०,५५९	८,४७३	११,१७२
पंजाब	,,	५,६७४	८,९४८	४,५८४	६,५०४	५,६०८	६,४०९
तामिलनाड	,,	७७,११४	५३,००९	६७,०३२	९९,९८७	७२,८३६	७७,५०१
युक्त प्रान्त	,,	१०,०६३	९,१८७	७,८००	१२,३६७	८,५३२	२१,९२९
उत्कल	,,	४,६२७	१,२७९	३,९४२	२,६६१	२,३७४	२,२१६
कुल	रु.	१,६०,८१६	१,७९,२०४	१,५३,९१०	२,५४,०४७	२,२१,५१६	२,६८,२०१

तामिल नाडू के अंक अधूरे हैं, दो तीन स्वतंत्र ओर महत्व के भंडारोंने अपनी रिपोर्टें नहीं भेजी है ।

रोषभरा विरोध

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ७

मुद्रक–प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, अश्विन सुदी १० संवत् १९८४ गुरुवार, ६ अक्तूबर १९२७ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय २०

पहली रात

फीनिक्स में पहला अंक निकालना सहज नहीं निकला। अगर दो सावधानियां मुझे नहीं सूझी होती तो या तो एक हफ्ते अखबार बंद रहता या देर से निकलता। इस संस्था में अमानुषी शक्ति [illegible] यंत्रों की शक्ति से चलनेवाली कलें रखने की मेरी कम ही इच्छा थी। मन में तो यह था कि जहां खेती भी हाथ से ही करने की हो, वहां पर छापे की कल भी हाथ से ही चले तो अच्छा हो। पर इस समय तो ऐसा लगा कि वह नहीं बन सकेगा। इस लिए वहां आयल इंजिन ले गया था। मैंने मिस्टर वेस्ट से कहा था कि यह तेल की कल कहीं बंद हो जाय तो उस समय के लिए कोई दूसरा कामचलाऊ उपाय भी हो तो अच्छा है। इससे उन्होंने हाथ से चलाने के एक चक्र का ऐसा प्रबंध किया था, जिससे छापे की कल चलायी जा सकती थी। किन्तु अखबार तो खूब लंबा चौडा था। इस जगह पर यह सुविधा भी नहीं थी कि बडी कल रुके तो उसे तुरत सुधारा जा सके। इससे भी अखबार रुकता। इस असुविधा के लिए अखबार का कद साधारण साप्ताहिकों जैसा छोटा कर दिया, जिसमें अडचन पडने पर थोडे पृष्ठों में पैरसे चलाकर भी अखबार निकला जा सके। शुरू शुरू में 'इंडियन ओपीनियन' निकालने के दिन की पिछली रात को तो सभीको थोडा बहुत जागरण पडता ही। पन्ने मोडने के काम में छोटे बडे सभी लग जाते और रात को दश बारह बजे वह पूरा होता। पर पहली रात तो भूलने लायक ही नहीं है।

छापने का चौखटा तो बांधा मगर इंजिन ने चलने से साफ [illegible] कर दी। इंजिन बैठाने और चालू कर देने के लिए एक इंजिनियर को बुलाया था। मिस्टर वेस्ट ने और उन्होंने बडी मिहनत की पर इंजिन चलता ही नहीं। सभी चिन्तायुक्त हो बैठे। अन्त में निराश होकर भीगी आंखें ले वेस्ट मेरे पास आये और बोले, 'अब इंजिन तो आज चलेगा नहीं। इस हफ्ते हम समय पर अखबार नहीं निकाल सकेंगे।'

'अगर ऐसी ही बात हो तो हम लाचार हुए। पर आंसू गिराने का कोई कारण नहीं है। मिहनत में कमी रही हो तो हम रोवें। पर उस चक्र का क्या करें?' यों मैंने उन्हें आश्वासन दिया।

वेस्ट ने कहा, 'इस कल के घोडे को चलाने लायक हमारे पास आदमी कहां है? जितने हमलोग हैं, उनसे तो चलेगा नहीं। इसे चलाने के लिए बारी बारी से चार चार आदमी चाहिए। हम तो सभी थक गये हैं।'

लकडी का सारा काम अभी खतम नहीं हुआ था। इसलिए बढई अभी नहीं गये थे। वे छापाखाने में ही सोये हुए थे। उनकी ओर इशारा कर के मैंने कहा, 'पर ये इतने मिस्त्री किस दिन के लिए हैं? और आज की रात को हम सभी अखंड जागरण करेंगे। मुझे लगता है कि इतना भर करने को बाकी रह जाता है।'

'मिस्त्रियों को उठाने और उनकी मदद मांगने की मेरी हिम्मत नहीं है। और अपने थके हुए आदमियों को कैसे कहें?'

मैंने कहा, 'यह मेरा काम।'

मैंने मिस्त्रियों को जगा कर उनकी मदद मांगी। मुझे उनकी चिरौरी विनती नहीं करनी पडी।

उन्होंने कहा, 'ऐसे मौके पर भी अगर हम आपके काम न आवें तो हम आदमी कैसे हुए? आप आराम कीजिए। हम चक्कर चलावेंगे। हमें इसमें मिहनत नहीं लगेगी।'

छापाखाने के आदमी तो तैयार ही थे। वेस्ट के हर्ष का पार न रहा। वे काम करते हुए भजन गाने लगे। चक्र चलाते समय मिस्त्रियों के सामने मैं खडा रहा। यों बारी बारी से सब कोई खडे रहे और काम चलने लगा।

सबेरे कोई सात बजे होंगे। मैंने देखा कि अभी काफी काम बाकी है। मैंने वेस्ट से कहा, 'क्या इंजिनियर को अब नहीं जगाया जा सकता। दिन के उजाले में वह फिर मेहनत करे और शायद इंजिन चल निकले तो हमारा काम समय पर पूरा हो जायगा।'

वेस्ट ने इंजिनियर को उठाया। वह तुरत ही उठ निकला और इंजिन की कोठरी में घुसा। शुरू करते ही इंजिन चलने लगा। प्रेस खुशी की पुकार से गूँज उठा। 'ऐसा क्यों हुआ!

रात इतनी मिहनत करने पर भी कुछ नहीं हुआ और आज हाथ लगाते ही यों चलने लगा, मानों इस में कुछ हुआ ही न होवे !'

वेस्ट ने या इंजिनियर ने जवाब दिया, 'इसका जवाब देना मुश्किल है। क्या जाने, कलों को भी हमीं लोगों जैसे आराम की जरूरत होती हो और ऐसा तो कितनी ही बार कलों में होता देखा गया है।'

मैंने तो माना कि इस इंजिन का न चलना हम सभी की कसौटी थी और उसका ठीक मौके पर चल निकलना हमारी शुद्ध मिहनत का शुभ परिणाम था।

अखबार ठीक समय पर स्टेशन पहुँचा और सभी निश्चिन्त हुए।

ऐसे आग्रह के परीणाम में अखबार की नियमितता की छाप पडी और फीनिक्स में मिहनत का वातावरण पैदा हुआ। इस संस्था में एक युग यह भी आया जब कि इरादा कर के इंजिन चलाना बंद किया और हाथ के घोडे से ही काम चलाते थे। मेरी मान्यता है कि फीनिक्स में यह ऊँचा से ऊँचा नैतिक काल था।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

ब्राह्मण-अब्राह्मण

कुडालोर में गांधी जी ने ब्राह्मण-अब्राह्मण प्रश्न पर विस्तार से भाषण किया:

'मगर म्युनिसिपेलिटी के मानपत्र के महत्वपूर्ण हिस्से पर मुझे तुरत ही पहुँचना चाहिए। ब्राह्मणों और अब्राह्मणों के झगडों की ओर आपने मेरा ध्यान दिलाया है। मैंने इसका उपाय अपने मन से पूछा। स्वयं अब्राह्मण होते हुए अगर मेरे प्राण देने से भी यह दूर हो सकता तो मैं खुशी से अभी प्राण दे देता। मगर परमात्मा बहुत ही कठिन मालिक है। वह तो आतिशबाजी के तमाशे से कभी खुश होता नहीं। अगर्चे कि उसका काम होता है निश्चय ही और निरंतर मगर अत्यन्त धीरे धीरे, उतावली से जान देने से उसे संतोष नहीं होता। वह तो पवित्रतम लोगों की बलि मांगता है और इसलिए हमें और आपको नम्रता से बढे ही जाना है, उसके दिये जीवन को भोगना ही है। मद्रास में मैंने हाल में ही कहा है कि आप जब कभी मुझ से काम लेना चाहें, सलाह लेना चाहें, मैं आपकी सेवा में हाजिर हूँगा। इस कठिन सवाल के लिए मेरे पास कोई बना बनाया उपाय नहीं है। आप से मैं कबूल करता हूँ कि मैं अब भी दोनों के बीच विरोध के कारण नहीं जानता। नंदी दुर्ग पर मेरे पास कुछ अब्राह्मण मित्र आये थे। उनसे कुछ पता लगाने की मैंने कोशिश की थी। उन्होंने मेरी मुसाफिरी में मुझ से मिलने का वायदा किया था। ब्राह्मण पक्ष से भी मुझे वैसी ही अजानकारी कबूल करनी पडेगी। और ब्राह्मण जैसे चतुर हैं उन्होंने मुझे अब तक झगडे नहीं बतलाये हैं क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसे सवालों के बारे में मेरा क्या मत होगा। जैसा कि आप जानते हैं, स्वयं अब्राह्मण होते हुए भी मैं ब्राह्मणों के ही साथ अधिक रहा हूँ और इसलिए कुछ अब्राह्मण मित्रों को इस संदेह के लिए माफ करना होगा कि मुझ पर ब्राह्मणों का ही सारा रंग चढा है। मुझे शक है अब्राह्मण मित्र समझते हैं कि मुझसे इस झगडे का उपाय निकालने की आशा नहीं रखनी चाहिए और इसलिए मैं अपने आपको दोनों ही दलों से छांटा हुआ पाता हूँ और यह स्थिति मेरे स्वास्थ्य की मौजूदा हालत में मेरे लिए बिलकूल मौजूं है। मगर तौभी मैं यह भरोसा देता हूँ कि मैं अपनी ओर से दोनों दलों की बातें सुनने को तैयार हूँ। और यह भी विश्वास दिलाता हूँ कि मैं शारीरिक अस्वस्थता का बहाना पेश नहीं करूँगा।

पक्की सलाह

'मगर मेरे पास दोनों दलों के लिए दो पक्की सलाहें हैं। ब्राह्मणों से मैं कहूँगा: "यह देखते हुए कि आप ज्ञान के भांडार हैं, स्वार्थत्याग की मूर्त्ति हैं और आपने अपने आप ही भिक्षाव्रत लिया है, आप अब्राह्मणों के लिए वे जो कुछ चाहें छोड दीजिए और आपके लिए वे जो कुछ छोडें उसी पर संतोष कीजिए।" मगर मैं जानता हूँ कि आधुनिक ब्राह्मण, धर्म के मेरे अब्राह्मण अर्थ को तुरत इनकार कर देगा। अब्राह्मणों से मुझे कहना है: "आपके पास संख्या है, धन है, फिर आपको तरद्दुद किस बात की है? जैसे कि आप अछूतपने का विरोध कर रहे हैं और आपको करना ही होगा, आप अपने बीच एक नयी ही अस्पृश्यता पैदा करने का पाप मत बटोरें। आप अपनी उतावली में, अंधेपन में, ब्राह्मणों के प्रति क्रोध में प्राचीनकाल की सारी संस्कृति को पैरों तले कुचलने की कोशिश कर रहे हैं। कलम की एक झोंक में, शायद तलवार की नोक के जरिये आप हिन्दू धर्म का आधार ही खोद फेंकने की उतावली कर रहे हैं। हिन्दू धर्म के अतथ्य, बेजरूरी बातों से असंतुष्ट होकर और उचित ही असंतुष्ट होकर आप उसकी मूल बातों, तथ्य को ही नष्ट करने पर तुले हुए हैं। आपको अपनी उतावली में यह मालूम होता है कि वर्णाश्रम धर्म के पक्ष में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। आप में से कुछ तो यहां तक सोचते हैं कि वर्णाश्रम का समर्थन करते हुए मैं भूल कर रहा हूँ। आप भ्रम में न पडें। जो ऐसा कहते हैं उन्होंने यह जानने का भी कष्ट नहीं उठाया है कि मैं वर्णाश्रम धर्म के क्या मानी समझता हूँ।

मेरा वर्णाश्रम धर्म

'यह तो सार्वदेशिक नियम है जिसे हिन्दू धर्म में इतने शब्दों में कहा गया है। यह आध्यात्मिक अर्थशास्त्र का नियम है। पश्चिम के देशों और इस्लाम को अनजाने उसका पालन करना पड रहा है। इसमें बडपन, छुटपन की कोई बात नहीं है। खाने पीने, और विवाह के रसूम वर्णाश्रम धर्म के आवश्यक अंग नहीं हैं। मेरे और आपके पूर्वजों, ऋषियों ने यह नियम ढूंढा था। उन्होंने देखा कि अगर अपने जीवन का सबसे अच्छा भाग ईश्वर की सेवा में, दुनिया की सेवा में लगाना है, अपनी सेवा में नहीं तो उन्हें वंश परंपरा का नियम मानना ही पडेगा। मनुष्य की शक्तियों को ऊँचे कामों में लगाने के लिए यह नियम बनाया गया है। इसलिए सच्चे अब्राह्मणों को अपने नीचे की ज[illegible] नहीं खोदनी चाहिए बल्कि उस पर जमी हुई धूल, गर्द को झा[illegible] कर उसे स्वच्छ बनाना चाहिए। आप उस असुर से भरपूर लडि[illegible] जो वर्णाश्रम धर्म के नाम पर प्रचलित है और मैं आपका सा[illegible] दूँगा। मेरे वर्णाश्रम के अनुसार हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी ज[illegible] कोई मुझे स्वच्छ भोजन दे सके उसके साथ मैं खा सकता हूँ। मेरे वर्णाश्रम के अनुसार मेरे ही मकान में मेरी लडकी के तौर [illegible] एक अंत्यज बालिका के लिए जगह है। मेरे वर्णाश्रम में कई अछू[illegible] परिवारों को भी जगह है जिनके साथ मैं खाना खाता हूँ, अ[illegible] उनके साथ खाना बडी बात है। मेरा वर्णाश्रम संसार के बडे बडे राजा के आगे सिर झुकाने से इनकार करता है मगर जहां क[illegible] मैं ज्ञान देखता हूँ, पवित्रता पाता हूँ, जिस किसी आदमी में [illegible] ईश्वर के दर्शन होते हैं, वहां पर मुझे नम्रता से सिर झुकाने [illegible] मेरा वर्णाश्रम मुझे लाचार करता है। इसलिए वैसे शब्द न क[illegible] जो आज बिलकुल बेमानी और मतलब के हो गये हैं। ब्राह्मणों [illegible] पेट भर के गालियां दीजिए मगर ब्राह्मणत्व को कभी नहीं। [illegible] आशंका के होते हुए भी कि आप मेरा मतलब गलत समझेंगे

मेरा भाव समझेंगे ही नहीं मैं आप से यह कहने का साहस करता हूँ कि ब्राह्मणों को कई पापों के लिए प्रायश्चित्त करना भले ही है, और उनमें कितनों के लिए उन्हें भरपूर सजा भी मिलेगी, मगर तौभी आज हिन्दुस्तान में ऐसे ब्राह्मण हैं जो हिन्दू धर्म की प्रगति को देख रहे हैं और अपनी सारी पवित्रता, तपश्चर्या से उसकी रक्षा करने की कोशिश कर रहे हैं। उन्हें आप शायद नहीं जानते हैं। वे शुहरत की पर्वा भी नहीं करते। वे इनाम की आशा नहीं रखते, मांगते भी नहीं। वे तो अपने काम से ही संतुष्ट हैं। वे इस प्रकार काम करते हैं क्योंकि उन्हें करना ही होगा। यह उनका स्वभाव ही है। हम और आप उन्हें लाख गालियां देवें मगर उन पर कोई असर नहीं होता। इस ख्याल को लेकर आप चले मत जाइए कि मैं ब्राह्मण वकीलों, मंत्रियों और हाईकोर्ट जजों की हिमायत कर रहा हूँ। उनका तो मेरे मन में ख्याल भी नहीं आया है। इस लिए ब्राह्मणों, अब्राह्मणों और सभी किसी को जो करना है वह तो अपने ही घर में दिया जलाना है। इस लिए मैं उन अब्राह्मणों से कहता हूँ जिनकी बुद्धि अभी ठिकाने है कि आप सोचें कि आपकी शिकायतें क्या हैं और उन्हें दूर करने के लिए जी जान से लडिए। मैं मानता हूँ कि इस समय मैं खाली किताबी बहस भर ही कर सका हूं। उनके झगडे न जानने से मैं और कुछ नहीं करता। पर अपनी नम्र राय में मैं दोनों के ही लिए रास्ता बतला चुका हूँ और इसका आप जैसा चाहें उपयोग कर सकते हैं।

'मगर इस बडे भारी सवाल को हल करने में उन छोटी २ बातों को मत भूल जाना जिनके लिए मैं तामिल नाड में चक्कर लगा रहा हूं। आपको वे छोटी लग सकती हैं मगर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप हर एक का ध्यान खींचने लायक वे बडी हैं।

(यं० इं०)

स्वामी श्रद्धानंद

स्मृतियाँ

१

हिन्दुस्तान आने के बाद तुरत ही १९०४ में मुझे दिल्ली में अपने शुरू शुरू के दिनों में स्वामी श्रद्धानंद की याद आती है। उस समय संसार उनको गुरुकुल, काँगडी, हरिद्वार के संस्थापक और आचार्य महात्मा मुंशीराम के रूप में जानता था।

वैदिक दर्शन और आर्य संस्कृति के पंडित के रूप में वे अक्सर दिल्ली आया करते थे। वे किसी खुले मैदान में शामियाने के नीचे व्याख्यान दिया करते थे। वे हिन्दी में भाषण करते थे और उन्हें समझना मेरे लिए बडा मुश्किल होता था। मगर खुद महात्मा मुंशीराम के चुम्बकीय व्यक्तित्व ने तुरत ही मुझे बहुत जोरों से आकर्षित किया। मुझे आज भी उनकी एक रोचक दलील याद है जिस पर मेरा ध्यान खिंचा था। उन्होंने कहा, "देखिए, ये यूरोपवाले किस तरह रात रात भर पालियामेन्ट में बैठ कर और आधी रात के बाद तक पार्टियों और नाच जारी रख कर रात को दिन बना बैठते हैं। वैदिक काल की आर्य सभ्यता में किसी ऐसी अस्वाभाविक और बनावटी स्थिति को जगह नहीं थी। वे ब्रह्ममुहूर्त में सूर्योदय के पहले उठ कर भगवद् भजन से दिन का काम शुरू करते थे और सूर्यास्त के बाद तुरत ही रात में शांति और सुख के लिए प्रार्थना करके काम खतम करते थे। हमारे आर्य पूर्वजों को ईश्वर के नियमानुसार चलने का ढंग मालूम था। मगर इस आधुनिक युग ने सभी बातें उलट पुलट डाली हैं।"

महात्मा मुंशीराम की यह दलील अपनी सादगी के कारण ही मुझे जँची। मगर मुझ पर तो सबसे अधिक असर उनके चेहरे की दयालुता का ही पडा।

मुझे सन् संवत् ठीक याद नहीं है। उस समय मैं हिन्दुस्तान में अभी बिलकुल नया आदमी था और जैसा कि मैंने कहा है, उर्दू या हिन्दी में कोइ बात मेरे लिए ठीक ठीक समझनी मुश्किल थी। मगर मैं भाषण कर्त्ता के भलेपन से इतना खिंचा कि मैं साहस कर के उनके मकान पर पहुँच गया और उनसे खुद मिलने की प्रार्थना की, मुझे उनकी वह खुशी अब तक याद है जिससे उनका चेहरा खिल उठा जब उन्होंने घर में मेरे घुसते ही बडे प्रेम से मेरा स्वागत किया। पहले वे कुछ नहीं बोले मगर हम दोनों एक दूसरे की आंखों को कुछ देर तक देखते रहें। मेरा विश्वास है कि 'प्रथम दर्शने प्रीतिः' का यह एक उदाहरण था। उनकी पवित्रता, दिल के अच्छेपन, गंभीर धार्मिक प्रवृत्ति और हिन्दुस्तान के ज्वलंत प्रेम से मैं उनके पास खिंच गया।

पहले वे हिन्दी में बोले मगर मेरी मुश्किल देखते ही उन्होंने मेरी कमजोरी पर तरस खाते हुए शुद्ध अंगरेजी में बोलना शुरू किया।

अगर दिल्ली की उस पहली मुलाकात का मैं सही चित्र दे सकता! उसी समय मेरे मन में दिल्ली के पढे लिखे लोगों के बीच अराष्ट्रीयता के विरुद्ध भाव पैदा होने लगे थे। कैम्ब्रिज से ताजे ताजे आये हुए होने से मुझे उसमें कुछ झुठाई भी मालूम पडी। सिर्फ हिन्दुस्तानी ईसाइयों में ही नहीं बल्कि पढे लिखे गौर ईसाई हिन्दुस्तानियों में भी, जिन्हें मैं रोज ही सेंट स्टिफेन कौलेज में पढाया करता था, पोशाक और रहन सहन का बिलकुल परिवर्त्तन देख कर मुझे घृणा हो आती थी।

यहां इनके विरुद्ध महात्मा मुंशीराम थे जो मुझे वही वस्तु दे रहे थे जिसकी प्यास मेरे अन्तस्तल को थी यानी सच्चे हिन्दुस्तान की जीती जागती तसबीर। इसके कुछ दिनों बाद मैंने मुंशी जकाउल्ला के पास से भी हिन्दुस्तान के आत्मा की वही छाप पायी और उनका भी मैं वैसा ही भक्त बन गया। एक विचित्र ही रूप से उन्होंने मुझे वही चीज दी जो मैंने महात्मा मुंशीराम से पायी थी, यानी, भारतवर्ष की आत्मा का सही सही चित्र।

(यं० इं०) **सी. एफ. एन्ड्रयूज**

सच्ची सेवा

'जिसे मेरी सेवा करनी है, वह रोगियों की सेवा करे।'

[बुद्ध के जीवन की यह घटना विनयपिटक में मिलती है। **दे० वा० गो०**]

उस समय एक भिक्षु को मेदे की कोई बीमारी हुई थी। वह अपने ही मलमूत्र में लिपटा हुआ पडा था। इसी बीच में बुद्ध भगवान्, अपने सहचर आनंद के साथ कहीं रहने का ठौरठिकाना ढूँढते २ उसी भिक्षु के मठ के पास पहुँचे। बुद्ध भगवान् ने उसे मलमूत्र में लिपटा पाया। यह देख कर वे भिक्षु के पास गये और उससे पूछा, "भिक्षु, तुम्हें क्या रोग है?" "भगवन्, मेदे का गडबड है।" "मगर तुम्हारी सेवा में क्या कोई भिक्षु है?" "भगवन्, मैं भिक्षुओं के किसी काम लायक नहीं हूँ और इसलिए कोई भिक्षु मेरी सेवा नहीं करता।"

इस पर भगवान् ने आनंद से कहा, "आनंद, जाओ पानी लाओ। इस भिक्षु को हम स्नान करावेंगे।" "जो आज्ञा" कह कर आनंद गया और पानी लेकर आया। भगवान् ने पानी गिराया और आनंद ने उसे नहलाया। भगवान् ने उसका सिर पकडा और आनंद ने पैर थामे, और उसे बिस्तर पर लिटा दिया।

इसके बाद भगवान् ने इस उदाहरण का उपयोग पाठ देने के लिए करते हुए भिक्षुओं की सभा बुलायी और भिक्षुओं से प्रश्न पूछे :

"भिक्षुओ, क्या उस मकान में कोई बीमार भिक्षु है ?"

"हां, भगवान् ।"

"भिक्षुओ, उसे क्या बीमारी है ?"

"भगवान्, उसे मेदे की बीमारी है ।"

"पर क्या कोई भिक्षु उसकी सेवा भी करता है ?"

"नहीं, भगवान् ।"

"भिक्षु लोग उसकी सेवा क्यों नहीं करते ?"

"वह भिक्षु और भिक्षुओं के लिए किसी काम का नहीं है, इसीसे कोई भिक्षु उसकी सेवा नहीं करता ।"

"भिक्षुओ, तुम्हारी सेवा को तुम्हारे मातापिता नहीं हैं । अगर तुम परस्पर एक दूसरे की सेवा न करो तो फिर कौन तुम्हारी सेवा करेगा ? भिक्षुओ, जो मेरी सेवा करना चाहता है, वह रोगियों की सेवा करे ।" (यं० इं०)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, अश्विन सुदी ३ संवत् १९८४

रोषभरा विरोध

एक बंगाली स्कूल के हैड मास्टर लिखते हैं:

"आपने मद्रास के विद्यार्थियों को विधवा लडकियों से ही शादी करने की सलाह देते हुए जो भाषण किया है उससे हम भयभीत हो रहे हैं, और मैं उससे अपना नम्र परन्तु रोषभरा विरोध जाहिर करता हूं ।

विधवाओं के जिस आजन्म ब्रह्मचर्य के पालन के कारण भारत की स्त्रियों को संसार में सबसे बडा और उंचा स्थान प्राप्त हुआ है, उसके पालन करने की वृत्ति को ऐसी सलाहें नष्ट कर देगी और भौतिक सुखों के दुष्ट मार्ग पर उन्हें चढा कर एक ही जन्म में ब्रह्मचर्य के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने की उनकी सुविधा को मिटा देगी । इस प्रकार विधवाओं के प्रति ऐसी तीव्र सहानुभूति दिखाना उनकी अ-सेवा होगी और कुंवारियों के प्रति जिन के विवाह का प्रश्न आज बडा पेचीला और मुश्किल हो गया है, बडा अन्याय होगा । विवाह संबंधी आपके इन विचारों से हिन्दुओं के पुनर्जन्म, और मुक्ति के विचारों की इमारत गिर जायगी और हिन्दु समाज भी दूसरे समाजों के वैसा हो, जिन्हें हम पसंद नहीं करते, बन जायगा । इसमें संदेह नहीं कि हमारे समाज का नैतिक पतन हुआ है, परन्तु हमें हिन्दु आदर्श के प्रति हमारी दृष्टि खुला रखना चाहिए और उसे उस आदर्श के अनुकूल मार्ग दिखाना चाहिए । हिन्दु समाज को अहल्याबाई, रानी भवानी, बहुला, सीता, सावित्री, दमयंति के उदाहरणों से शिक्षा मिलनी चाहिए और हमें भी उन्हीं के आदर्श के मार्ग पर उसे चलाना चाहिए । इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इन विषम प्रश्नों पर अपनी ऐसी राय जाहिर करने से रुक जायं और समाज को जो वह उत्तम समझे वही करने दें ।"

इस रोषभरे विरोध से न मेरे विचार बदले हैं और न मुझे कोई पश्चाताप ही हुआ है । कोई भी बिधवा जिसमें इच्छा बल है और जो ब्रह्मचर्य को समझ कर उसका पालन करने पर तुली हुई है मेरी इस सलाह से अपना इरादा छोड न देगी । परन्तु यदि मेरी सलाह पर अमल किया जावेगा तो उस से उन छोटी ऊम्र की लडकियों को जरूर राहत मिलेगी जो शादी के समय शादी किसे कहते हैं यह भी समझती न थी । उनके संबंध में विधवा शब्द का उपयोग इस पवित्र नाम का दुरुपयोग है । मुझे पत्र लिखनेवाले इन महाशय के मन में जो खयाल है उसी खयाल से तो मैं देश के युवकों को या तो इन नाम मात्र की विधवाओं से शादी करने की या बिलकुल ही शादी न करने की सलाह देता हूँ । इसकी पवित्रता की तभी रक्षा हो सकेगी जब कि बाल-विधवाओं का अभिशाप उससे दूर कर दिया जायगा । ब्रह्मचर्य के पालन से विधवाओं को मोक्ष मिलता है इसका तो अनुभव में कोई प्रमाण नहीं मिलता है । मोक्ष प्राप्त करने के लिए केवल ब्रह्मचर्य ही नहीं परन्तु और भी विशेष बातों की आवश्यकता होती है । और जो ब्रह्मचर्य जबरदस्ती लादा गया है उसका कुछ भी मूल्य नहीं है । उससे तो अकसर गुप्त पाप होते हैं जिससे उस समाजकी नैतिक शक्ति का ह्रास होता है । पत्रलेखक महाशय को यह जान लेना चाहिए कि मैं यह जाती अनुभव से लिख रहा हूं ।

यदि मेरी इस सलाह से बालविधवाओं से न्याय किया जावेगा और उस कारण कुंवारियों के मनुष्य की विषयलालसा के लिए बेची जाने के बदले उन्हें वय और बुद्धि में बढने दिया जायगा तो मुझे बडी खुशी होगी ।

विवाह के मेरे विचारों में और पुनर्जन्म और मुक्ति में कोई असंगति नहीं है । पाठकों को यह मालूम होना चाहिए कि करोडों हिन्दु जिन्हें हम अन्यायतः नीच जाति के कहते हैं, उनमें पुनर्लग्न का कोई प्रतिबंध नहीं है । और मैं यह भी नहीं समझ सकता हूँ कि वृद्ध विधुरों के पुनर्लग्न से उन विचारों को क्यों नहीं बाधा पहुंचती है और लडकियों की — जिन्हें गलत तौर पर विधवा कहा जाता है — शादी से इन भव्य विचारों को क्यों कर बाधा पहुँचती है ? पत्र लेखक की पुष्टि के लिए मैं यह भी कहता हूँ कि पुनर्जन्म और मुक्ति मेरे विचारों में केवल विचार ही नहीं है परन्तु ऐसा सत्य है जैसा कि सुबह को सूर्य का उदय होना । मुक्ति सत्य है और उसे प्राप्त करने के लिए मैं भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ । यही मुक्ति के विचार ने मुझे बाल-विधवाओं के प्रति किये जानेवाले अन्याय का स्पष्ट भान कराया है । अपनी कायरता के कारण हमें जिनके प्रति अन्याय किया गया है उन वर्तमान बाल विधवाओं के साथ सदा स्मरणीय सीता और दूसरी स्त्रियों के नाम ज़ो पत्र-लेखकने गिनाये हैं नहीं लेना चाहिए ।

अन्तमें यद्यपि हिन्दु धर्म में सच्चे विधवापन का गौरव किया गया है और ठीक किया गया है, फिर भी जहां तक मेरा खयाल है इस विश्वास के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि वैदिक काल में विधवाओं के पुनर्लग्न का सम्पूर्ण प्रतिबन्ध था । परन्तु सच्चे विधवापन के विरुद्ध मेरी यह लडाई नहीं है । वह उसके नाम पर होनेवाले अत्याचार के खिलाफ है । अच्छा रास्ता तो यह है कि मेरे खयाल में जो लडकियां हैं उन्हें विधवा ही नहीं मानना चाहिए । और उनका यह असह्य बोझ दूर करना प्रत्येक हिन्दु का जिसमें कुछ भी वीरत्व है, स्पष्ट कर्तव्य है । इस लिए मैं फिर जोर देकर हरएक नवजवान हिन्दु को यह सलाह देता हूँ कि इन बाल विधवाओं के सिवा दूसरी लडकियों से शादी करने से ही इन्कार कर दें ।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

वर्णाश्रम धर्म

[तंजोर में गांधी जी के भाषण का ब्राह्मण-अब्राह्मण-प्रश्नवाला अंश नीचे दिया जाता है। यह केवल द० भारत के ही लिए नहीं बल्कि सभी हिंदुओं के लिए महत्वपूर्ण है।

महादेव देसाई]

बडप्पन का दावा

तंजोर आने पर मैंने उम्मेद की थी आज ब्राह्मण-अब्राह्मण-मसले पर में कुछ बातें कर सकूँगा और कुछ मित्रों से मेरी थोडी चर्चा हुई भी है। हमारी उस बातचीत का सारांश बतलाने की मुझे स्वतन्त्रता नहीं है और उसे बतलाना कुछ जरूरी भी नहीं है। मगर इस चर्चा से मुझे अजहद खुशी हुई है। अब मैं, इस बातचीत से शायद कुछ अधिक अच्छी तरह इस हलचल को समझने लगा हूँ। उन मित्रों के सामने मैंने अपनी नम्र सम्मति रख दी है। उससे वे जो चाहें, लाभ उठा सकते हैं। मगर मैंने शुरू से अखीर तक देखा कि उनके मन में एक बात घुसी हुई तकलीफ दे रही थी। मालूम होता था कि उनका खयाल है कि मैं जन्मगत बडप्पन और छुटपन में विश्वास रखता हूँ। मैंने उन्हें भरोसा दिलाया कि मैं स्वप्न में भी ऐसा नहीं मानता और बडी खुशी से वर्णाश्रम धर्म के बारे में अपने खयालात और भी अधिक विस्तार से समझाऊँगा जिसमें जरा भी गलतफहमी न रह जाय। मेरी समझ में कोई मनुष्य न जन्म से और न कर्म से ही बडा बन जाता है। मेरा विश्वास तो अद्वैत के मूलाधार पर टिका है और मेरे अद्वैत के अनुसार कभी कोई किसी दशा में बडा नहीं बनता, जन्म के समय सभी समान, बराबर होते हैं। चाहे हिन्दुस्तान में पैदा हो, या इँग्लैण्ड या अमेरिका में, और चाहे जिस स्थिति में मगर सभी आदमियों में एक ही आत्मा है। और चूंकि मैं इस समानता में विश्वास रखता हूँ, मैं बडप्पन की इस खामखयाली से लडता हूँ जो हमारे कितने ही शासक अपनाये हुए हैं। द० अफ्रिका में मैंने इस बडप्पन की लडाई एक एक जौ करके लडी थी और इसी लिए मुझे अपने आपको झाडू देनेवाला भंगी, सूत कातने, कपडा बुननेवाला जुलाहा, किसान और मजदूर कहने में आनंद आता है। और जहां कहीं ब्राह्मणों ने विद्याबल या जन्म के नाम से बडप्पन का दावा किया है, मैंने उनसे लोहा लिया है। **मेरी राय में दूसरे किसी आदमी से बडप्पन का दावा करना नामर्दी है।** भगवद्‌गीता में मेरे विचार का यथेष्ट समर्थन है और इसलिए हर एक अब्राह्मण का साथ जो बडप्पन के इस असुर से लडता है, चाहे वह ब्राह्मणों का दावा हो या और किसी का, बराबर हूँ। जो बडप्पन का दावा करता है, वह आदमी रही नहीं जाता, मेरा यही मत है।

सच्चा वर्णाश्रम धर्म

मगर इन सब विश्वासों के होते हुए भी वर्णाश्रम धर्म में मेरा दृढ विश्वास है। वर्णाश्रम धर्म एक नियम है जिसे हम आप लाख इनकार करें मगर मिटा नहीं सकते। उस नियम को मानना क्या है कि जीवन में जो एक मात्र काम करने को हम पैदा हुए हैं, उसे करने की स्वतंत्रता पा लेना। वर्णाश्रम धर्म नम्रता है। जब कि मैंने यह कहा है कि सभी स्त्री पुरुष समान हैं, तब मेरा यह मतलब नहीं था कि मातापिता के गुणदोष भी विरासत में नहीं मिलते। मेरा विश्वास है कि जिस प्रकार सभी किसी को जैसे एक खास प्रकार का शरीर मिलता है, वैसे ही अपने मातापिता के गुणदोष भी मिलते हैं और इस बात को मानना क्या है कि अपनी शक्ति का संचय करना है। अगर इस बात को कोई खुलासा कबूल कर के इसके अनुसार चले तो इस से उसकी भौतिक अभिलाषाओं पर लगाम लग जायगा और इस प्रकार आध्यात्मिक शोध और आध्यात्मिक विकास के लिए हमारी शक्तियां मुक्त हो जायँगी। मैंने वर्णाश्रम धर्म के इसी अर्थ को बराबर माना है। आप यह कह सकते हैं कि वर्णाश्रम का यह अर्थ आज नहीं समझा जाता है। मैंने खुद अनेकों बार कहा है कि आज जो वर्णाश्रम धर्म समझा और अमल किया जाता है, वह असल वर्णाश्रम की अत्यंत बुरी नकल, हज्वो है और इस तोड मरोड को दूर करने में हमें असल को तोडफोड नहीं देना चाहिए। और अगर आप मेरे बतलाये आदर्श वर्णाश्रम को ठीक समझें तो फिर मेरी सभी बातें आपने मान लीं। मैं आपको यह विश्वास करने को भी कहूँगा कि कोई राष्ट्र, कोई व्यक्ति, उचित आदर्शों के बिना जी नहीं सकता। और अगर आप आदर्श वर्णाश्रम में मेरे जैसा विश्वास रक्खें तो फिर आप उसे जहां तक हो सके प्राप्त करने के लिए भी कुछ उठा नहीं रक्खेंगे। दर हकीकत, दुनिया इस कानून से कहीं लड नहीं सकी है। बात यह हुई है, और होगी भी जरूर यही कि इस कानून से लडने में हम अपना ही सिर पत्थर से टकराते हैं और मैं आपसे कहता हूँ कि आपकी लडाई और भी सफल होगी अगर आप वे सब बातें समझ लेवें जो हमारे पूर्वजों से हमें विरासत में मिली हैं और उनके चारों तरफ जमा सभी कूडा करकर, वहमों से भी हम लोहा लेवें। अगर आप मेरी बातों को मानें तो आप देखेंगे कि जहां तक धर्म से संबंध है ब्राह्मण-अब्राह्मण प्रश्न बहुत सहज ही हल हो जाता है। खुद अब्राह्मण हो कर मैं जहां तक होगा, ब्राह्मणत्व को शुद्ध करने की कोशिश करूँगा, उसे नष्ट करने की नहीं। ब्राह्मणों के बडप्पन के औद्धत्य और लाभ को मैं नष्ट करूँगा। ब्राह्मण जहां पैसा पैदा करने की कल बनता है कि वह ब्राह्मण ही नहीं रह जाता। मगर जहां कहीं मैं उसकी महा विद्वता देखूंगा, उससे नहीं लडूँगा। और जब कि अपनी विद्या के बल पर वह बडप्पन का दावा नहीं करेगा, मैं तो विद्या का आदर करने से रुक नहीं सकूँगा। मुझे तो उसके सामने सिर झुकाना ही पडेगा। मगर इस तरह के इतने अधिक श्रोताओं के सामने मैं इस विषय में और गहरे नहीं उतर सकता।

रामबाण दवा

आखिर मुझे जीवन के सभी रोगों की उस एक रामबाण दवा का सहारा लेना ही पडेगा। वह यह है कि हम चाहे जो लडाई लडें मगर लडाई साफ और सीधी होनी चाहिए, उसमें अहिंसा और सत्य के पथ से जरा भी हटना नहीं चाहिए। और अगर हम अहिंसा और सत्य पर अडे रहे तो चाहे हम लाख भूलें करें मगर हमारी लडाई भली ही लगेगी, सहज ही हो लेगी। जैसे कि पटरी पर से गिरने पर रेलगाडी आफत में पडती है, उसी प्रकार हम अपने इन दो रास्तों से चूकने पर आफत में पडेंगे। जो आदमी सच्चा है, और अपने विरोधी का बुरा नहीं चाहता वह अपने शत्रु के विरुद्ध इल्जामों में भी जल्दी यकीन नहीं लावेगा। वह अपने विरोधियों का दृष्टिबिन्दु समझने की कोशिश हमेशे करेगा, अपनी भूल सुधारने को हमेशे तैयार रहेगा, और अपने विरोधियों की सेवा करने का मौका ढूँढता रहेगा। मैंने द० अफ्रिका में और यहाँ हिन्दुस्तान में भी अँगरेजों के साथ अपने संबंध में इस नियम का पालन करने कोशिश की है और इसमें मुझे थोडी सफलता मिली भी है। तब भला अपने घरों में, अपने सगेसंबंधियों के साथ, अपने घरेलू मामलों में, हमें इस नियम का कितना अधिक पालन करना चाहिए!

(यं. इं.)

'खद्दर' का आदर्श

इस साल जब कि मैं द० अफ्रिका में था, मैंने देखा कि डच लोग हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन में बहुत रुचि ले रहे हैं। अब इनकी तायदाद अंगरेजों से अधिक है और राष्ट्रीय सरकार में ये शक्तिशाली हैं। केपटाउन के निकट स्टेलेनबौश विश्व विद्यालय के विद्यार्थियों ने मुझे दो बार भाषण करने को बुलाया था। उन्होंने आप ही चुन कर मेरे लिए विषय रक्खा, 'महात्मा गांधी के आदर्श।' एक भाषण का सारांश नीचे देता हूँ। दूसरा भाषण अहिंसा पर था। पाठक इतना समझ लेंगे कि मुझे ये विषय बहुत ही सहज और सुगम ढँग से समझाने पडे थे जिसमें मेरे भाषण उन लोगों पर असर कर सकें जिन्होंने विषय पर पहले से बहुत कम विचार किया था और जो दूसरे देश के रहनेवाले थे।

खद्दरवाले भाषण का संक्षेप यह है :

"'खद्दर' शब्द के मानी हैं हाथकता और हाथबुना कपडा जिसे बनाने में शुरू से अखीर तक कहीं कल कांटों से काम नहीं लिया गया हो। इसलिए खद्दर आदर्श तो बडे साहस से घोषित करता है कि यंत्रयुग मनुष्यों को गलत रास्ते ले गया है और उसके साथ शुरू के नैतिक संघ टूटफूट गये हैं। यंत्रयुग तो हमें सीधे सर्व-नाश की ओर लिये जा रहा है। इसलिए गांवों की ही सीधीसादी सभ्यता जरूर ही सबसे अच्छी है। महात्मा गांधी की दृष्टि में सादगी का और प्रकृति के निकट से निकट रहने का आदर्श, हमारे आज के शहरों की और उनके साथ दूधपानी से घुले हुए कारखानों के जीवन की सभ्यता से कहीं ऊँचा है।

महर्षि कन्फ्यूशियस के एक शिष्य के बारे में चीन देश में एक कथा प्रचलित है। यह चेला गरीब होने पर भी विद्वान और सज्जन था। वह बेचारा माली का काम करता था। एक दिन पालकी पर चढ कर कोई धनी आदमी आया और बाग की शाया में आराम करने लगा। वह धनी आदमी भी विद्वान और सज्जन था। उसने कन्फ्यूशियस के धर्म की किताबें पढी थीं। वह बाग में बैठ कर पंखा झलने लगा। किसी बांस की झाडी के नीचे बैठे बैठे उसने देखा कि वह माली फूलों को सींचने के लिए पानी ला रहा है।

धनी बोला, "देखो भाई, मैं तुम्हें एक यंत्र बतलाता हूँ जिससे तुम इतनी मिहनत किये बिना ही कुँए से पानी खींच सकोगे।"

मगर माली ने जो खुद पढा लिखा था और भला मानुस था जवाब दिया, "साहेब, मैंने प्राचीन ग्रंथों में पढा है कि जो आदमी बराबर ही कलों से काम लेता रहता है, अन्त में उसका दिमाग भी यांत्रिक ही बन जाता है। अब यांत्रिक दिमाग से और प्रकृति से मेल तो बैठता नहीं। माली के अपने धन्धे में मैं बराबर ही प्रकृति से एकात्म्य चाहता हूँ। इसलिए मैं डोल के जरिये धीरे २ पानी खींचना और साथ साथ प्रकृति की शोभा देखना पसंद करता हूँ और दिमाग को यांत्रिक न बनने देने के लिए यंत्रों को इस बाग में नहीं आने देता।"

इस जवाब से वह धनी आदमी इतना खुश हुआ कि उसने इसकी खबर खुद बादशाह को दी। वह बादशाह खुद बहुत बडा विद्वान और प्रकृति का प्रेमी था। इसलिए उसने माली को बुलवाया और उसे अपने एक शाही बाग का माली बना दिया।

मैंने चीन देश की एक पुरानी कथा सुनाने या वहां के बादशाह, शाही दरबार और शाही बागों का वर्णन करने के ही लिए यह कथा नहीं सुनायी है, बल्कि इसके अंदर खद्दर का आदर्श छिपा हुआ है। देश में जिस हाथकताई और हाथबुनाई के धंधे का प्रचार किया जा रहा है, बडे शहरों में प्रचलित यंत्र के हानिकारक धंधे के विरुद्ध यह उसका चिह्न होगा।

इसी विषय पर अब दूसरे दृष्टिकोण से विचार करें।

हिन्दुस्तान में बडी भारी आफत पडी थी। पूर्वीय देशों में ऐसे प्रलय आये दिन हुआ ही करते हैं, जिनको रोकना मनुष्य की शक्ति के बाहर का काम होता है। दो दिनों के भीतर हिमालय में ४८ इंच पानी बरसा। इधर बंगाल में, जो पहले से ही झील सा बना हुआ था, प्रलय आ गया। सारा देश डूब चला। धान की फस्ल मारी गयी। ढोर मर गये। नये हल बैल खरीदने को लोगों के पास रुपये न रहे। हम लोगों ने देखा कि बैल न होने से अगले साल की खेती भी मारी जायगी। दूसरे पानी के पहले ही खेतों को जोत लेना जरूरी था। बडी मुश्किलों से हमने फल के हल का प्रबंध किया। जमीन जोत ली गयी। यह कल बडी मजबूत थी और जो काम ५० हलों से होता, वह अकेले करती थी। अगले साल की फस्ल भी बडी अच्छी हुई। दूसरे साल खेत वाले फिर वही इंजिनवाला हल मांगने आये।

हम सब ने बैठ कर खूब बहस मुबाहिसे बाद निश्चय किया कि हम इंजिनवाला हल नहीं मँगावेंगा।

दर असल यह निश्चय इस दलील से हुआ : अगर हम इंजिन वाले कई हल मँगाते तो बहुत से किसान बेकार हो जाते। गांवों में उनका जीवन सादा, शुद्ध और कुछ हद तक पारिवारिक सुखोंवाला था। मगर अगर वे शहरों में कारखानों के मजदूरों से लडकर रोटी पैदा करने को लाचार किये जाते तो उनकी क्या हालत होती? उनके घरों का क्या होता?

सब मिला कर उस चीनी माली की राय पर ही हमें पहुँचना पडा। प्रकृति के साथ मिल कर रहने और परमात्मा के दिये प्रकाश और वायु का आनंद उठाने देना तो शहरों के गंदे चौलों को भरने से, मजदूरों को ऐसी हालत में रखने से जब कि उन्हें बराबर काम भी नहीं मिलता, कहीं अच्छा था।

द० अफ्रिका से २० वर्षों बाद हिन्दुस्तान लौट कर महात्मा गांधी का हृदय गांववालों के दुःख से भर आया, जो बेचारे कल की बनी चीजों की बाढ से अपने खेतों से बेदखल किये जा रहे हैं। हिमालय की वर्षा से बाढ की बनिस्बत कहीं अधिक जबर्दस्त प्रलय तो यही है। उन्होंने गांवों को दर असल विदेशी मालों से भरा पाया, जिनके सस्तेपन के कारण गांवों के कताई और बुनाई के धंधे बिलकुल नष्ट हो गये हैं। एक बाद दूसरा गांव गिरता ही गया और पहले जहां सारा का सारा कपडा हाथों ही से बनता था, अब वह सिर्फ सैंकडे २० ही बनने लगा और अभी घटता था। थोडे ही दिनों में गांवों में हाथबुनाई के धंधे का नाम निशान भी नहीं रह जाता। गांवों में ही रह कर इन धंधों को करने के बदले घर घर के नवयुवकों को गरीबी के कारण शहरों की मिलों में जाकर काम करना पडा।

महात्मा गांधी ने यह धारा ही पलट देने की तुरत ही कोशिश की। उन्होंने देखा कि गर्मी के दिनों में गांव के किसानों को साल में कोई पांच महीने हाथ पर हाथ धरे ही बैठे रहना पडता है। वे बेकार और लापर्वा बने बैठे रहते थे। अपने कपडे आप ही इस बीच में बुन लेने की न तो उनमें शक्ति रही और न उन्हें उसका ढँग ही आता था। इस तरह घर घर समय और मिहनत इस भयंकर रूप से जाया होते थे।

इसलिए महात्मा गांधी हिंदुस्तान के कोने कोने में खद्दर का अपना आदर्श बतलाते हुए घूम गये। चूंके हिन्दुस्तान में आगे पीछे सब कुछ धर्म में ही मिल जाता है, उन्होंने धनी, गरीब, शिक्षित, अशिक्षित सबके लिए खद्दर पहनना धार्मिक कर्त्तव्य बना डाला। यूरोप के छपे हुए कपडों की जगह सुन्दर उजला घर का बना कपडा धीरे धीरे दखल करने लगा। जहां कहीं चर्खा ग

नकली विलायती कपडों पर लगनेवाला धन बचने लगा। परिश्रम और किफायतशाही की आदत ने गांववालों को शहर के प्रलोभनों और पापों से बचाया।

अब देखना है कि अफ्रीका के मूल निवासियों के लिए भी क्या खद्दर के आदर्श की कोई कीमत है। ये गरीब दिनों दिन और भी गरीब होते जा रहे हैं और इनकी गरीबी इस युग की सब से बुरी बातों में से एक है।"

(यं. इं.) सी. एफ. एन्ड्रयूज.

साप्ताहिक पत्र

एक वाक्य का गडबड

ट्रिचिनापोली का कार्यक्रम बहुत मुश्किल था और इससे बचने के लिए गांधी जी केवल यही कर सके कि हर सभा में वे चुप रह जायँ और दो चार वाक्यों में अपना लिखित संदेश दे देवें। यह कहने के लिए कि सारा काम खत्म कर लेना मेरे लिए असंभव है उन्होंने कहा, 'मुझसे अब और कुछ नहीं हो सकता।' यह सूत्र रूप में लिखा गया वाक्य सारे देश में फैल गया और चतुर उपसंपादकों ने बडे बडे और मोटे मोटे हरूफ में घबरानेवाले शीर्षकों के नीचे इसे छापा, हमेशे जैसे रिपोर्टरों ने अपनी कल्पना शक्ति को खुला खेलने दिया और कुंबाकोनम से फ्री प्रेस का तो एक तार यह भी छपा कि सफर बंद कर दिया जायगा। अगर रिपोर्टरों के दिमाग से सनसनी फैलाने का यह रोग दूर हो जाय तो बहुत से मित्र चिन्ता और तरद्दुद से छूट जायँ और तारों के जरिये खबर पूछने में बहुत सा सार्वजनिक धन नष्ट होने से बच जाय। दर असल, मद्रास के बाद से श्रीयुत राजगोपालाचार के एक सभा और बहुत कम मुलाकात का नियम कडाई से पालन करने के कारण, गांधी जी का स्वास्थ्य बंगलोर जैसा ही है।

एक पंडित जी

मैंने लिखा है 'बहुत कम मुलाकातें, क्योंकि कुछ मुलाकातें तो ऐसी होती हैं जिनके लिए खुद गांधी जी जोर देते हैं और जिन्हें रोका नहीं जा सकता। उन्होंने एक बार कहा, 'जिन दलीलों का मैंने कभी विचार नहीं किया था, उनका जवाब देने से मेरा विचार तो और भी दृढ हो जाता है। और मैं बराबर ही सच्चे मतभेद का स्वागत करता हूँ क्योंकि मैं हमेशे सत्य की ही खोज करता हूँ और मेरा कोई अपना स्वार्थ नहीं होता। और फिर मुझे ऐसा कोई अवसर भी याद नहीं है जब खुले दिल से चर्चा करने के बाद कोई मुझे अपने विचार से डिगा सका हो।' ऐसे ही भावों को लेकर उन्होंने तंजोर में कुछ अब्राह्मण मित्रों से मिलना खुशी से स्वीकार किया था। इस मुलाकात से फायदा ही हुआ और वर्णाश्रम धर्म के बारे में और मनुष्य के ऊपर मनुष्य की उच्चता के बारे में उन्हें अपने खयालात जाहिर करने में मदद मिली। भाषण का वह अंश मैंने अन्यत्र दिया है।

मन्नारगुडी में एक पंडित का अनुभव मगर ठीक इसके उलटे था। कुंबाकोनम के पंडितों का विचार प्रशंसनीय था। उन्होंने कहा, 'अगर आप यह कहें कि समाज के लिए अस्पृश्यता हानिकारक है तो हमें आप से कोई झगडा नहीं है, मगर कृपा कर यह तो मत कहा कीजिए कि शास्त्रों में अस्पृश्यता के लिए कोई प्रमाण नहीं है।' पर मन्नारगुडी के पंडित दूसरे ही ढब के थे। उन्हें जो समय मिला था, उसका अधिकांश तो आपने गांधी जी की तारीफ में लगा दिया और बाद शास्त्रों का अपना पाण्डित्य दिखला कर गांधी जी को चक्कर में डालना चाहा। मगर इसमें तो बेईमानी इतनी साफ झलकती थी कि गांधी जी को तुरत ही डांटना पडा। गांधी जी ने अनुवादक से कहा, 'इन्हें कहिए कि आप प्रस्तुत विषय से असंबद्ध श्लोक पढ पढ कर विषयान्तर करते जाते हैं। यह ढंग तो पंडितों के लिए अयोग्य है। अदालत में जो वकील इनके जैसा बहस करेगा उसे अत्यंत स्वार्थी कहा जायगा। और मेरे लिए ब्राह्मणों और अब्राह्मणों का अन्तर मिटाना अत्यंत कठिन हो जाता है क्योंकि इस चाल से तो सब किसी का जी जल उठेगा। अगर आपको अस्पृश्यता के विषय में कोई ऐसी बात कहनी हो जो समझ में आवे तो कहिए। आप समझ लीजिए कि यहां आप वकीलों के सामने नहीं बैठे हैं बल्कि सीधे सादे आदमियों के सामने जो सत्य के रास्ते चलना चाहते हैं।'

उनके होश ठिकाने लाने के लिए यह काफी था। अब वे विषय पर आने लगे।

उन्होंने पूछा, 'क्या हमें पराशर स्मृति को कलियुग में अचूक प्रमाण ग्रन्थ नहीं मानना चाहिए?'

गांधी जी बोले, 'नहीं, मैं कोई प्रमाण, कोई शास्त्र अचूक नहीं मानता।'

'मगर आप क्या किसी स्मृति का एक अंश मानकर दूसरा छोड देंगे?'

गांधी जी ने उसी सख्ती से कहा, 'मैं इसी को नहीं मानता कि अंश को मानने से संपूर्ण ग्रन्थ को मानना ही चाहिए।'

'तब आप अपने सुभीते की मानियेगा और असुविधा की छोड दीजिएगा क्या?'

'यह अच्छा सवाल है। हिन्दूधर्म नियमों से जकडा हुआ नहीं है। मैं हिन्दूधर्म को क्या समझता हूँ, यह बतलाता हूँ। 'शास्त्र' के छोटे से नाम से प्रचलित हमारे यहां सैकडों हजारों किताबें हैं जिनका हम नाम भी नहीं जानते। तब जब मुझे यह जानना होता है कि फलां काम भला है या बुरा तो मैं किसी खास ग्रन्थ को नहीं देखता बल्कि मैं हिन्दूधर्म के शास्त्रों के योगफल को देखता हूँ। हिन्दूधर्म में हमारे पास सभी शास्त्रों, सभी आचारों की कसौटी मिली है और वह कसौटी है सत्य। जो सत्य की कसौटी पर खरा न उतरे वह चाहे जिस ग्रन्थ में हो त्याज्य है और इसलिए उसका पालन करनेवाले के ही ऊपर यह सिद्ध करने का भार है कि वह बात सत्य के अनुकूल है। इसलिए अगर कोई आदमी अस्पृश्यता का समर्थन करना चाहता है तो यह सिद्ध करना उसीका काम है कि अस्पृश्यता सत्य के अनुकूल है। जब तक वह यह न दिखलावे, मेरे लिए उसके पक्ष के सभी प्रमाण बेमतलब हैं।'

इसके बाद फिर कुछ इधर उधर के सवाल पूछे गये मगर पंडित जी का समय तो बीता जा रहा था। गांधी जी ने उन्हें कह दिया कि 'जो कहना सुनना हो पांच मिनट में समाप्त कर लीजिए, उसके बाद मैं मौन ले लूँगा।'

पंडित जी ने पूछा, 'तब अस्पृश्यता सत्य के विपरीत क्यों कर है?'

'खैर, मैं आपको बतलाता हूँ। क्या आपको अछूत गिनना सत्य के अनुकूल होगा?'

पंडित जी ने आश्चर्यचकित हो कर कहा, 'मैं कैसे अछूत बनूँगा? आदमी आदमी में अन्तर होता है जैसे कि घर की आग में और चिता की आग में फर्क होता है।'

'हां, तब बतलाइए कि आप कैसे स्पृश्य हैं और मैं या राजगोपालाचारी जी अस्पृश्य?'

'मुझ में और चाण्डाल में आकार, आचार-विचार, और चारित्र का फर्क है।'

मगर इनका समय तो बीत चुका था। इन्होंने अपने आप ही बातें खत्म कीं। 'मैं आपसे कुछ तर्क करने नहीं आया हूँ। मैं तो केवल बातें भर करना चाहता था। यों तो मैं बडे बडे तर्क शास्त्रियों का चुटकी बजाते मुंह बंद कर देता हूँ, मगर आपके सामने?'

सिर्फ सीधे बेहयामन और शोखी में तो इसकी जोड मिलना मुश्किल है। तीन साल पहले काठियावाड में एक धोखेबाज का, जो अछूतों का नेता और गुरु बन कर उन्हें ठगता फिरता था, गांधीजी को भंडाफोड करना पडा था। मगर इनके पाखंड के सामने तो उसकी क्या गीनती होगी? यहां तो जितना गहरा इनका शास्त्रीय ज्ञान था, उतना ही पक्का पाखंड भी। उस अज्ञान अछूत ने तो सिर्फ अपने भाइयों को ठगा भर था, मगर इन विद्वान पंडित में तो लोगों की आत्माओं को काला करने की शक्ति थी।

डाक्टरों और अस्पतालों पर

ट्रिचिनापाली के कई समारोहों में मुझे दो तो खास कर याद आते हैं:—डाक्टर राजन के अस्पताल का रेडियो-विभाग खोलना और यंग मेन्स क्रिश्चियन ऐसोसियेशन की छोटी सी सभा।

पहला तो डाक्टर राजन और गांधीजी, दोनों के लिए धर्म-संकट का अवसर हो पडा था। अपने घनिष्ठ मित्रों से विचार कर लेने बाद डाक्टर राजन ने गांधीजी से अस्पताल का नया विभाग खोलने की प्रार्थना करने की असंगति समझ ली। मगर अनजाने सारी तैयारी कर लेने बाद, इसे छोड देना भी मुश्किल था। जैसा कि गांधीजी ने अपने भाषण में समझाया था, उनके लिए तो यह सहज सवाल था। उन्होंने पहले भी ऐसे समारोहों में जाने से इन-कार नहीं किया था। और अब भी उन्हें अपनी चेतावनी सुनाते हुए और डाक्टर राजन के विषय में अपने विचार बतलाते हुए जाने में कोइ उज्र नहीं था। उन्होंने कहा, 'डाक्टर राजन मेरे साथ काम करनेवाले हैं, और मैं मानता हूँ कि राष्ट्र के लिए बहुत बडा त्याग करने की उनमें शक्ति है। मेरा विश्वास है कि अगर्चे कि अस्पताल से कुछ व्यक्तिगत खानगी लाभ भी होगा, मगर डाक्टर राजन और उनकी संस्था तक गरीबों की भी गुजर होगी।' अंत में उन्होंने कहा, 'हमें शरीर के बदले आत्मा के चिकित्सकों की जरूरत है। अस्पतालों और डाक्टरों की वृद्धि कुछ सच्ची सभ्यता की निशानी नहीं है। अपने शरीर को हम अच्छी चीजों से जितना ही कम ठेसे उतना ही अच्छा है।'

मैं जानता हूँ कि डाक्टर साहेब इस संदेश में जरूरी फेरबदल किये बिना तो रहेंगे नहीं। दर हकीकत इसकी उमेद तो इसीसे होती है कि अस्पताल में कपडे का अगर कोई टुकडा भी इस्तैमाल करते हैं, तो वह खद्दर का ही होता है, उनके यहां अछूत, और सछूत का कोइ फर्क नहीं है और दवा के तौर पर भी उनके अस्पताल में अलकोहल या शराब की गुजर नहीं है।

नवयुवक ईसाई संघ को संदेश

नवयुवक ईसाई संघ के यहां का समारोह बडा ही रोचक था। ऐसे सभी संघों के लाभ के लिए गांधी जी का छोटा सा संक्षिप्त संदेश दिया जा सकता है। 'आज सबेरे इस सभा में आते समय मैं सोच रहा था कि हिन्दुस्तान में नवयुवक ईसाई संघों को मैं कैसा बनना चाहूँगा। जैसा कि तुम जानते होगे, ईसाई मित्रों से मेरा परिचय दिनों दिन बढ रहा है। आज हिन्दुस्तानी ईसाई मित्रों से जिस घनिष्ठता का सौभाग्य मुझे प्राप्त है, दश साल पहले वह न था। उनसे संपर्क बढने से मैंने देखा है कि अक्सर इसाई के मानी होते हैं यूरोपियन, और मैंने अपने मन में कहा कि क्या ही अच्छा होता, अगर नवयुवक ईसाई संघ, नवयुवक यूरोपियन संघ न बने होते। दूसरे लाखों लोगों के समान, मेरे यूरोपियन और ईसाई शब्दों के एक ही अर्थ या मानी नहीं हैं, और मुझे मालूम होता है कि जब ईसाइयत यूरोपियनपने से मिल जाती है तो अक्सर संकुचित हो जाती है। मेरी नाचीज राय में किसी हिन्दुस्तानी के लिए, चूंकि वह अपने को ईसाई कहता है, हिन्दुस्तानीपना छोडना लाजिमी नहीं है। ईसाई बनना या धर्म बदलना, नया जीवन स्वीकार करना है, और इसलिए जो कोई सच्चे दिल से धर्मपरिवर्त्तन करता है, उससे मैं उमेद करता हूँ कि वह अपनी राष्ट्रीयता भी विस्तृत करेगा। अगर वह अपने पडोसियों का ख्याल रखना छोड देता है तो वह शायद पडोसियों की सीमा के बाहर, और किसी का ख़याल रख भी नहीं सकेगा। यह बात मैं ईसाई मित्रों, मुसलमान मित्रों से और उन सभी किसी से कहता हूँ जो हिन्दुस्तान में आकर बस गये हैं या हिन्दुस्तान जिनकी जन्मभूमि है। इसलिए इन संघों को तोडफोड करनेवाली शक्ति मत बनने दो, बल्कि इनके जरिये मुल्क में जो कुछ अच्छा और ऊँचा है उसे बचाओ।'

काम

तंजोर में स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के न होने से काम ठीक ठीक नहीं हुआ। मगर सभा का दृश्य तो यह बात साफ जाहिर कर रहा था कि अगर सच्चे कार्यकर्ता होवें तो क्या नहीं हो सकता है। साफ ही वहां पर कितने आदमी थे जिनसे खादी के लिए कभी कुछ मांगा ही नहीं गया था। वे अपना अपना चन्दा ले कर मंच पर आने में एक-दूसरे से होड कर रहे थे। नीलाम का जवाब तो बडा ही सुन्दर मिला। गांधीजी को दी गयी सूत की मालाओं तक का नीलाम करने की प्रार्थना की गयी!

ट्रिचिनापोली की हालत अच्छी रही अगर्चे कि श्री. राजगोपाला-चारी जी यहां से अधिक की उमेद रखते थे। पुदुकोटा राज्य में हम २१ तारीख को दाखिल हुए और राजनीतिक जागृति के अभाव को देखते हुए वहां बहुत अच्छा काम हुआ। मगर ऊपरी सहानुभूति के दिन अब चले गये हैं। पुदुकोटा और सभी जगह के लोग गांधीजी की यह चेतावनी याद रक्खें जिसे दुहराते हुए गांधीजी कभी थकते नहीं।

'प्रस्ताव करना और विश्वास रखना तो बहुत ही सहज काम हैं क्योंकि इससे प्रस्ताव करनेवालों या विश्वास रखनेवालों को कुछ करना धरना नहीं पडता। मगर उसीका अमल करने में तो संगठन करना पडता है, काम करने का ढंग सीखना पडता है, लोगों के पास जाना पडता है, ऐसे ही और कितने काम करने पडते हैं। हम, आप और सब कोई अपने विश्वासों और इरादों को अमल में लावें।

मानपत्रों के बारे में

मानपत्रों के बारे में भी दो शब्द। स्वागत समितियों के सौजन्य से कई जगहों पर मानपत्र पढे हुए से मान लिये गये हैं। तब मानपत्रों को छपाने की आदत बिलकुल छोड क्यों नहीं दी जाय? ६, ८ नकलें तैयार करायी जायें और एक नकल गांधीजी को पहले से ही दे दी जाय। शब्दों की जितनी किफायत हो सके की जाय, और तारीफों के पुल भी न बांधे जायँ बल्कि सच्ची बातें और आंकडे दिये जायँ, सलाहें मांगी जायँ या अपनी टीका दी जाय इससे समय की बचत होगी और रुपया भी बचेगा और हम अधिक व्यावहारिक बन सकेंगे।

फिर मानपत्रों के फ्रेम भी छोड दिये जा सकते हैं। पहले तो वे सुन्दर नहीं होते, दूसरे उन्हें ढोना मुश्किल होता है और तीसरे उनमें रुपया भी जाया जाता है। अगर्चे कि कई जगह हम लोग कुछ फ्रेमों को उनकी असली कीमत से कहीं अधिक दाम पर बेंच सके है, और ट्रिचनापोली जैसी जगहों में, जहां नीलाम के लिए इतना अधिक उत्साह दिखलाई पडा, उनका खूब दाम आ सकता है मगर मैं तोभी यही कहता हूं। नीलाम तो सिर्फ गहनों और दूसरी वैसी भेंटों का ही करें तो ठीक है।

(यं० इं० में से)

महादेव देशाई

खादी-प्रेमी

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ८

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद	अहमदाबाद, कार्तिक वदी ३ संवत् १९८४ गुरुवार, १३ अक्तूबर १९२७ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय २१

पोलाक कूद पडे

मुझे हमेशे इस बात का दुःख रहा है कि फिनिक्स जैसी संस्था की स्थापना करने के वाद, मैं उसमें बहुत ही कम समय के लिए रह सका था। उसकी नींव डालते समय मेरी अभिलाषा तो यही था कि मैं वहीं स्थायी होकर रहूंगा और उस से अपनी आजीविका के लिए भी कुछ लूंगा, धीरे धीरे वकालत छोड दूंगा, फिनिक्स में रह कर जो कुछ सेवा बन पडेगी करूंगा और फिनिक्स की सफलता को ही मैं अपना सेवाकार्य मानूंगा। परन्तु इन विचारों पर जैसा मैं चाहता था वैसा अमल न हो सका। मैंने कई बार इस बात का अनुभव किया है कि हम चाहते कुछ हैं और होता कुछ है। परन्तु मैंने साथ ही साथ इस बात का भी अनुभव किया है कि जहां सत्य की साधना और उपासना की जाती है वहां भले ही परिणाम हमारी इच्छा के अनुसार न हो तो भी जो उसका अनपेक्षित परिणाम होता है वह भी अकुशल नहीं होता और कभी कभी तो वह परिणाम हमारी कल्पना से कहीं अधिक अच्छा होता है। मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि फिनिक्स ने जो अनपेक्षित रुप ग्रहण किया और जो अनपेक्षित परिणाम हुआ वह अकुशल न था। वह अधिक अच्छा था या नहीं यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता।

इस ख्याल से कि हम सब मिहनत करके ही अपना निभाव करेंगे, फिनिक्स के आसपास जो जमीन थी उसके वहां के निवासियों के हरएक के लिए तीन तीन एकड के टुकडे किये गये। मुझे भी एक ऐसा टुकडा दिया गया था। उन पर हम लोगों ने अपनी इच्छा के विरुद्ध टीन के छप्पर बांधे, हमारी इच्छा तो यह थी किसान को शोभा दे ऐसे घास मिट्टी या ईंटो के छप्पर बांधे। परन्तु वह न हो सका। उसमें खर्च अधिक होता और समय भी अधिक लगता। सब जल्दी जल्दी मकानवाले बन कर काम में लग जाने को आतुर थे।

'इंडियन औपियन' के सम्पादक तो मनसुखलाल नाजर ही गिने जाते थे। वे इस योजना में शामिल नहीं हुए थे। वे डरबन में ही रहते थे। डरबन में 'इंडियन औपिनियन' को एक छोटी सी शाखा भी थी।

कंपोज का काम करने के लिए तो वेतन पानेवाले लोग थे, परन्तु हमारा विचार यह था कि कंपोज जैसे काम को जिसमें समय अधिक लगता है परन्तु जो करने में आसान है सब संस्थानवासियों को सीख लेना चाहिए और करना चाहिए। इसलिए जो इस काम को न जानते थे सीख गये। मैं अन्ततक इस काम में सबसे पीछडा रहा और मणिलाल गांधी सब से आगे बढ गये। उनको भी अपनी इस शक्ति का पता न होगा यह मैं हमेशा मानता आया हूं। उन्होंने छापाखान का काम कभी नहीं किया था फिर भी कुशल कंपोजीटर बन गये और वेग बढाने में भी अच्छी प्रगति की थी, यही नहीं थोडे ही समय में छापाखाने के सारे कामों का अच्छी जानकारी प्राप्त कर उन्होंने मुझे आश्चर्यचकित भी कर दिया।

अभी यह काम ठिकाने न लगा था, मकान भी तैयार न हो सके थे कि मैं इस नये वनाये कुटुम्ब को छोड कर जोहानिसबर्ग भाग गया। वहां का काम मैं बहुत दिनों तक मुल्तवी नहीं रख सकता था।

जोहानिसवर्ग से लौट कर मैंने इस महत्व के परिवर्तन के संबंध में पोलाक से बात की। उनके दिये पुस्तक का यह परिणाम देख कर उनके आनन्द की सीमा न रही। उन्होंने बडे उत्साह से पूछा: 'क्या मैं इसमें किसी प्रकार भी भाग नहीं ले सकता?'

मैंने कहा: 'अवश्य आप इसमें भाग ले सकते हैं और चाहें तो इस योजना में भी शामिल हो सकते हैं।'

'मुझे दाखिल करें तो मैं तो तैयार ही हूँ' पोलाक ने उत्तर दिया।

इस दृढता पर में मुग्ध हो गया। पोलाक ने 'क्रिटिक' में से अपने को मुक्त करने के लिए अपने सेठ को एक महिने की नोटिस दी और वे महिना पूरा होते ही फिनिक्स पहुँच गये। अपने सबसे हिलमिल कर रहने के स्वभाव के कारण उन्होंने सबके दिलों पर अपना अधिकार जमा लिया और एक कुंटुबी जन की तरह रहने लगे। सादगी तो उनके स्वभाव में थी ही इसलिए उनको फिनिक्स का जीवन नवीन और कठिन न मालूम हुआ किन्तु स्वाभाविक और रुचिकर ही मालूम हुआ।

परन्तु वहां उन्हें बहुत दिनों तक मैं ही न रख सका। मि. रिच ने कानून की पढाई विलायत जा कर समाप्त करने का निश्चय किया। अकेले मुझ से आफीस का बोझ उठाया नहीं

जा सकता था। इस लिए मैंने पोलाक को आफ़ीस में रहने की और वकील बनने की सलाह दी। मेरे दिल में यह ख्याल था कि उनके वकील बनने पर आखिर हम दोनों फिनिक्स में पहुंच कर रहेंगे।

यह सब कल्पना गलत साबित हुई। परन्तु पोलाक के स्वभाव में ऐसी सरलता थी कि जिस पर उनका विश्वास बेठा हो उसके साथ दलीलें न करते हुए वे उसके अनुकूल होने का ही प्रयत्न करते। पोलाक ने मुझे लिखा: "मुझे तो यही जीवन अच्छा लगता है, मैं यहां सुखी हूं। इस संस्था को हम लोग बढा सकेंगे। परन्तु यदि आप यों मानते हों कि मेरे वहां आने से हमारे आदर्श शिघ्र सफल होंगे तो मैं आने को तैयार हूं।

मैंने इस पत्र का स्वागत किया। पोलाक फिनिक्स छोड कर जोहानिसबर्ग आये और मेरी आफीस में क्लर्क की हैसियत से काम करने लगे।

इसी समय मैंने एक स्काच थियोसोफिस्ट को जिसे मैं कानून की परीक्षा के लिए तैयार होने में मदद कर रहा था, पोलाक का अनुकरण करने का निमन्त्रण दिया और वह भी शामिल हुए। उनका नाम था मेकिनटायर।

इस प्रकार फिनिक्स के आदर्श पर शिघ्र पहुँचने के शुभ संकल्प से मैं उसके विरोधी जीवन में अधिकाधिक धंसता गया। और यदि ईश्वर का संकेत ही जुदा न होता तो सादे जीवन के बहाने बिछायी अपनी मोहजाल में मैं खुद ही फंस जाता।

मेरी और मेरे आदर्श की रक्षा हमारी किसी की भी कल्पना के विरुद्ध कैसे हुई इसका ब्यान करने के पहले अभी कुछ अध्याय और लिखने होंगे।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

पुनर्निमाण का आधार

१

[गुजरात में जलप्रलय के बाद अब पुनर्निमाण का जो काम हो रहा है, उसीको ध्यान में रख कर श्री. कालेलकर ये लेख लिख रहे हैं। केवल गुजरात ही नहीं और प्रान्तो के लिए भी वे उपयोगी हैं इसलिए जैसे जैसे इस विषय पर उनके लेख गुजराती नवजीवन में प्रकाशित होंगे वैसे वैसे हिन्दी-नवजीवन में भी उनका अनुवाद दिया जावेगा। उप. सं. हिं. न.]

प्रलय के बाद नयी सृष्टि का होना तो दुनिया का नियम ही है। ऐसा कभी नहीं हुआ है कि महाप्रलय के बाद भी कभी विश्व रुका हो। तब पांच दिनों के प्रलय की क्या बात? ऐसा प्रलय तो हमेशे चला ही करता है। दवाओं की नयी नयी खोज कर के जब डाक्टर शरीर में के करोडों कीडों को मारता है तो कीडों की सृष्टि में यह महाप्रलय ही कहा जायगा। इत्र तैयार करने के लिए जब हम हजारों फूलों का नाश करते हैं, तब फूलों को कहां खबर होती है कि यह असह्य संहार किस लिए हुआ है? हर साल गर्मी के दिनों में जब घास और वनस्पति सूख कर भस्म हो जाती है तब कुदरत में जरा भी ऐसी निशानी नहीं दिखलायी पडती कि इस विनाश में से या विनशन में से थोडे ही दिनों में हरी सृष्टि तैयार होने को है। आदमी का भी यही हाल है। 'सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः'। बारह बारह वर्ष के दुष्काल से सारे देश के उजाड, वेचिराग हो जाने के बाद भी आदमी ने नयी बस्ती बनायी है और आबादी फिर से पैदा हुई है। कुदरत की संहारशक्ति से आदमी की जीने की शक्ति प्रबल है।

हमारे लिए जो घटना 'न भूतो न भविष्यति' जैसी बन गयी थी, वैसे कांड तो मिसर देश के लिए आये दिन की बातें हैं। नाइल नदी में बाढ न आवे, सारा देश जलमय न हो जाय तभी वहांवाले घबराते हैं। संकट एक बार आता है तो आदमी दीन बन जाता है; बार बार आता है तो उससे लडने का उपाय ढूंढ निकालता है। और संकट जो आम बात हो जाय तो उसे जीवन का नियम समझ कर अपने जीवन में ही कायम का फेरफार कर लेता है। और तब संकट संकट न रह कर विकास का साधन बन जाता है।

विकास-प्रधान मनुष्य जाति का यह सर्वसामान्य नियम हुआ। बंदर हर साल जाडे में कांपते हैं और घर बनाने का निश्चय कर रात रात भर योजनाएं बनाते हैं। सबेरे धूप निकली और ठंड भागी नहीं कि वे अपना दुःख भूल कर पेट में जगी हुई जठराग्नि को तृप्त करने के लिए रोज के समान एक पेड से दूसरे पेड पर कूदते फिरते हैं। इससे हमेशे कष्ट सहते रहने पर भी बंदरों ने अब तक घर बनाने या अपना गांव बसाने तक की प्रगति नहीं की है। संकट घटते ही विचार का भी निर्बल हो जाना और अनुभव को भूल कर स्वाभाविक वृत्तियों के वशवर्त्ती होना जडता की निशानी है। मनुष्यत्व का लक्षण इससे जुदा है।

आज का मुख्य सवाल यही है कि अगले साल के लिए अनाज कैसे पैदा किया जाय, बालबच्चों के माथे पर छाया कैसे खडी की जाय।

जानवर बह गये, खेती के औजार नष्ट हो गये। उन्हें फिर जमा करना है। पर इन सब का मुख्य आधार तो रहने की जमीन ही है। इसका प्रथम विचार होना चाहिए।

गुजरात के बहुत से गांवों में बस्ती के खयाल से जमीन बहुत कम है। इसके कितने कारण हो सकते हैं। मूल गांव छोटा हो और बस्ती बढ जाय तो गांव की सीमा बढाने के बदले गांव के भीतर ही भीड कर के रहने का लोगों का स्वभाव है। इस कारण दिनों-दिन गांव की बस्ती घनी होती जाती है। दूसरा कारण यह है कि गांव की रचना एसी होती है कि जिसमें विकास का अवकाश ही नहीं होता। ब्राह्मण, बनिये, जमीन्दार बगैरह लोग अपनी जमीन चुन कर हद बाँध देते हैं और इसलिए समाज सेवा में जिनकी जरूरत अधिक से अधिक होते हुए भी समाज में जिनकी अधिक प्रतिष्ठा नहीं है, उन जातियों को गांव के बाहर झोंपडी लगा कर रहना पडता है और इस प्रकार वे भी गांव को एक घेरा डाल देते हैं। समाज के किनारे रहनेवाली इन कौमों को यह ढंग लाभकारक भी पडता है। उनका काम मुख्यतः मैदानों, और जंगल में रहने के कारण वे गांव के किनारे रहना ही पसंद भी करते हैं। ऐसा इन्तजाम हो गया कि गांव की प्रतिष्ठित बस्ती को विकास का अवकाश नहीं रहता। शहर के बाहर रहनेवाले के पडोस में रहना इन्हें रुचता नहीं और बहुत दूर खेतों में जा रहना सुरक्षित नहीं गिना जायगा। इसलिए बस्ती की भीड सह कर, बेडौल ऊंचे मकान बना कर चलने में ही छुटकारा है। बस्ती को संकडे में रखने के लिए राज्य व्यवस्था भी जिम्मेवर है। जहां डाकुओं का डर हो वहां पर लोग खुले मैदान में दूर दूर पर घर बना कर रहने की हिम्मत ही नहीं करते। यह सार्वत्रिक अनुभव है कि राज्य-व्यवस्था की नीति जहां तक उच्च न होवे, इन डाकुओं का डर ही नहीं मिटता। राजा जो डाकुओं का दमन कर सके तो प्रजा जरूर ही छूटे छवाह चोरों को अपनी बहादुरी से देख लेगी और हर एक बडा किसान अपने खेत में ही अपना महल बना कर सुख से रह

सकेगा । राज्यव्यवस्था ढीली या गैरजिम्मेवर होती है तो प्रजा को आत्मरक्षा के लिए कोट बांध कर और कोट के अन्दर भी घिरे हुए महल्ले या पोल बना कर जैसे तैसे रहना पडता है । ऐसी परिस्थिति में भी अस्पृश्य जैसी बिरादरियों को तो कोट या शहर-पनाह के बाहर ही रहना पडता है । प्रतिष्ठित और मालदार जातियां तो कोट के भीतर ही रहेंगी ।

अविश्वास के आधार पर हथियार-बंदी का कायदा बना कर उसका अमल बडी सख्ती से शुरू हुआ और इस कारण भी लोग भेडों के झुंड के माफिक धक्काधुक्की से रहने लगे और निर्भय उदारता भूल कर अदालत की संकुचित मन की लडाई लडने लगे । इस कारण जमीन के छोटे से टुकडे पर मीनार जैसे मकान बने । ऐसे मकान भला कुदरत के कोप के आगे कैसे टिक सकें ?

प्रजा में इस प्राथमिक सिद्धान्त का अमल करने के जितनी भी शिक्षा या उत्साह नहीं है कि जीने के लिए शुद्ध पौष्टिक खूराक, स्वच्छ यथेच्छ पानी, और हवा, उजियाले और काफी शारीरिक व्यायाम की जरूरत है । इसलिए इसका ख्याल कि ऊपर के बतलाये कारणों से सँकडी जगह में रहने से प्रजा अपने आप ही, अपने को कितनी निःसत्व बनाती है, उसे कहां से आवे ? सुधरी हुई सरकार के लिए प्रजा को विस्तृत जीवन की ओर ले जाना उचित था । पर जमीन महसूल के लोभ में पड कर सरकार ने भी गांव को घेर डाला ।

शरीर के सुख के लिए जैसे विस्तृत जगह चाहिए, वैसे ही मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी विशाल अवकाश की जरूरत है । बंबई के घरों में कबूतर के जैसे रहनेवालों की मनोभूमिका भी वैसी ही होगी । वहां व्यास वाल्मीकि जैसा कोई महाकाव्य प्रणेता नहीं पैदा होगा । आंख के डाक्टर भी कहते हैं और समाजशास्त्री भी कहते हैं कि संकडे में रहने से अदूरदृष्टि होती है ।

आज पुनर्रचना करनी हो तो इसका पाया विशाल होना चाहिए । जहां थोडे ही घर गिरे हैं और जहां अधिक फेरफार करना अशक्य हो वहां की वात छोड देवें । पर जहां बहुत से घर गिर गये हैं, अथवा गिराने लायक हो गये हैं वहां सरकार को चाहिए कि वह मूल गांव के क्षेत्रफल का हिसाब निकाल कर कम से कम उसके तिगुनी जमीन लोगों को मुफ्त देवे । और इसके साथ ही साथ पुनर्रचना के कुछ नियमों को उनके पालन के लिए जरूरी कर देवे तो प्रजा का पुनरुद्धार होगा, और सरकार को तंदुरुस्त, उद्यमी, उदार मनवाली और सुधरी हुई प्रजा मिलेगी । सारे प्रान्त में यह फेरफार भले ही न हो सके, मगर जहां जहां संभव हो वहां वहां तो तुरत ही अमल में लाना चाहिए । सरकार को अपने अफसरों को जना देना चाहिए कि सरकार ने इसमें अपना हित ही देखा है और इससे वे अफसर उत्साहपूर्वक यह नीति अमल में लावेंगे । अफसरों को अगर ऐसा खयाल आता है कि सिर्फ लोगों के दबाव को कम करने लायक भर ही सरकार यह करनेवाली है और यों हमेशे की कंजूसी की ही नीति चलनेवाली है तो सरकार अगर एक कंजूसी करे तो 'वफादार' अफसर दश कंजूसी करेंगे । शिमले में, हवाखोरी के पहाडों में, लश्कर की छावनियों में और कोलार जैसी सोने की खानों में गोरे लोग जो अवकाश भोगते हैं, उसके प्रमाण में हिन्दुस्तान की गरीब प्रजा को भी कुछ अवकाश मिलना चाहिए । प्रजा वैभव में भले ही न रहे मगर ईश्वर की दी हुई जमीन, हवा और उजियाले की बाबत में तो कमी होनी ही नहीं चाहिए ।

(नवजीवन)

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

दुहरा पाप

एक भाई मेरे 'क्या यह विवाह है ?' शीर्षक लेख पर लंबा पत्र भेजते हैं । अगर्चे कि मेरे जानने के लिए उन्होंने अपना नाम लिखा है, मगर वे 'ब्रह्मचारी' के गुप्तनाम से ही वह पत्र प्रकाशित कराना चाहते हैं । उनके लंबे पत्र का सारांश यह है:

"१ ली तारीख का आपका 'क्या यह विवाह है ?' वाला लेख मैंने बडे मन से पढा है । अगर्चे कि लोगों के नाम नहीं दिये गये हैं मगर कारवार के गौड सारस्वत ब्राह्मणों में से एक एक आदमी उन्हें जानते हैं । जिस समाज में यह विवाह हुआ है, उसी समाज में होने के कारण, मैं सर्व साधारण और सारे भारतवर्ष के गौड सारस्वत ब्राह्मणों के विचारार्थ कुछ बातें कहता हूँ ।

"बेशक, लडकी खरीदनी बहुत बडी जलालत है । मगर हम लोगों में इतनी ही और ऐसी ही बुरी एक और रीति है — लडकी के बाप को लडकी के लिए लडका खरीदना पडता है और इसे तिलक कहते हैं । यह रकम लडकी के मावाप की माली हालत के मुताबिक नहीं ठीक होती, बल्कि, वर की खान्दानी, आमदनी या शिक्षा पर निर्भर करती है । जो लडका जितना ही पढा लिखा है, जिसने जितनी ही ऊँची डिग्रियां पायी हैं, उसे विवाह के बाजार में उतना ही अधिक दाम मिलेगा ।

"कुछ ही महिने पहले बंबई में एक उच्च शिक्षित, ऊँचे सरकारी अफसर का विवाह हुआ । कहा जाता है कि इस विवाह में उन्हें रु. २०,०००) की भेंट चढायी गयी । यह सचमुच ही अफसोस की बात है कि जो लोग जितने ही पढे लिखे होते हैं, वे उन्हीं कामों को करके, जिन्हें निर्मूल करने की उनसे आशा रक्खी जाती है, उतने ही नीचे गिरते जाते हैं ।"

उसी बिरादरी के एक दूसरे भाई का पत्र भी मेरे सामने पडा है । उससे जान पडता है कि जिन्हें लडकी खरीदनी होती है, वे गोआ में जाते हैं । वहां के गरीब सारस्वत ब्राह्मणों को, अपने बाबा दादा की उम्र के बूढों के हाथ अपनी लडकियां बेंच कर धनी बनने में लाज नहीं आती । इस प्रकार यह समाज दुहरा पाप करता है । पढा लिखा नवयुवक विवाह के बाजार में सब से अधिक बोली बोल कर खरीद लेनेवाले के लिए एक ओर खडा रहता है तो गरीब पिता को भी अपनी बच्चियों को, जो शायद ही अभी बीस साल की भी होंगी, सब से अधिक दाम देनेवाले सबसे बडे बूढों, और कभी कभी पढे लिखे बूढों के हाथ बेंचने की बात चलाने की स्वतंत्रता होती है । अगर सारस्वत समाज को किसी सान्त्वना की जरूरत हो और वह किसी न किसी बहाने यह सुधार दिनों दिन टालता जाना चाहेगा तो उसे एक यही सान्त्वना मिल सकती है कि और 'जातियां' भी इस ऐब से बरी नहीं हैं । मगर अगर सारस्वत समाज इस सुधार में आगे बढेगा तो वह इस संदिग्ध बहाने की पर्वा नहीं करेगा कि 'आप भी तो वैसे ही हैं' और अब जब कि यह दोष उघाड दिया गया है, इस दुहरे पाप को दूर करने की कोशिश में लग जायगा ।

(यंग इंडिया)

मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, कार्तिक वदी ३ संवत् १९८४

खादी-प्रेमी

डाक्टर कैलाश नाथ कटजू प्रयाग हाइकोर्ट के नामी ऐडवोकेट हैं। कुछ दिन पहले उन्होंने मेरे पास कई बातों के संबंध में एक पत्र लिखा था, और उस पत्र में खादी के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया था और अ० भा० चर्खा संघ को अपने दान की पहली किश्त भी भेजी थी। मैंने समझा कि दूसरे धनी लोगों और खास कर वकीलों के प्रोत्साहन के लिए उस पत्र का खादी संबंधी अंश प्रकाशित करना चाहिए। मैंने इस लिए उनकी इजाजत मांगने का पत्र लिखा, जिसमें विदेशी अलपाका कपडे का भी विरोध किया था और यज्ञार्थ कातने का महत्व समझाने की कोशिश की थी। अब मैं उनके दोनों पत्र, जहां तक खादी से संबंध है, नीचे दे रहा हूँ।

'यं. इं. मैं बराबर पढा करता हूँ। आप के मैसूर में भ्रमण का हालचाल मैं बडे ध्यान से पढता हूँ। खादी में, और खादी जिन जिन चीजों का चिह्न है, उन सभी में मेरा दृढ विश्वास है। १ ली अगस्त १९२१ से ले कर आज तक मैं नियमित रूप से केवल खादी ही पहनता आ रहा हूँ। खादी में मेरा विश्वास दिनों दिन बढता जा रहा है। आपके नेतृत्व में चलते हुए चर्खा संघ को अब मैं समझता हूँ कि अपनी तुच्छ सहायता दे सकता हूँ। इसलिए मैंने खादीकोष के लिए हर महीने १००) रुपये देने का निश्चय किया है। सितंबर के लिए १०० रु. का चेक भेज रहा हूँ। मैं आपके पास चेक भेज दिया करूंगा, जिसमें उसमें से आप जहां जितना देना ठीक समझें, दे सकें।

"आपको मैं यह भी कहूँगा कि अगर्चे कि मैं बराबर हाथकती और हाथबुनी खादी ही पहनता हूँ, न मैं सूत कातना जानता हूँ और न चर्खासंघ का सभ्य हूँ। मेरे घर पर एक चर्खा है जरूर मगर मेरी अनिश्चयता से उसका कोई विशेष उपयोग नहीं हो सका है। फिर मैं यह भी सोचता हूँ कि सूत कातना दूसरों के लिए बडा अच्छा उदाहरण होगा और इसलिए बहुत इष्ट है मगर हर एक खादी-प्रेमी के लिए परमावश्यक नहीं है। . . . . इस देश में आज जो शोरोगुल और गडबड मचा हुआ है, उन सबके बीच में मैं खादी को ही धनी वर्ग और जनता के बीच संबंध जोडनेवाला समझता हूँ। और इस विषय में आपके एक एक शब्द का असर मेरे दिल और दिमाग दोनों पर पडता है। इस अत्युच्च महान् प्रयोग में भगवान आपको सफलता की शक्ति देवें।"

"मेरे पहले पत्र से तो खादी-आन्दोलन में मेरा विश्वास बहुत कम ही स्पष्ट हुआ था। मैं आपके पास लिख रहा था और खादी के सुन्दरता, सादगी और गरीबपरवरी पर कुछ लिखना मेरे लिए गुस्ताखी होती। अगर आप इसमें लाभ देखें तो उस पत्र का खादी संबन्धी हिस्सा छाप सकते हैं। खादी सभी जातियां, वर्गों को एक में मिला सकती है क्योंकि दुर्भागिनी गरीबी तो हिन्दू-मुसलमान का अन्तर नहीं जानती है। मुझे इसका दृढ विश्वास है कि इस देश के आदमी खादी का सन्देश सुनेंगे ही।

"मेरे न कातने का कारण समय का अभाव नहीं है बल्कि अनिश्चयता। सबसे बडा कामकाजी आदमी भी दुनियाभर के कामों के लिए आखिर समय बचा सकता है और बचा ही लेता है। रोज ही कितनी बार कई आधे घन्टे मैं नुकसान करता हूँ, और आखिर लोगों के मजाक उडाने से भी मैं कुछ मर तो जाऊँगा नहीं। पता नहीं, इलाहाबाद में मुझे तकली मिल सकेगी या नहीं। मिलते ही मैं कातना शुरू कर दूँगा। अगर आप कृपा कर मेरे पास एक तकली भिजवा देवें तो वह मेरे लिए अनमोल वस्तु हो जायगी।

"आप बडी मिहरबानी से लिखते हैं कि अदालत की चपकन के लिए आप बडी अच्छी काली खादी मंगा दे सकते हैं। मुझ पर इतना खयाल रखना सचमुच ही आपकी मिहरबानी है। मैं तो लाचार हो कर ही अलपाका पहनता रहा हूं। मगर अब मैं वह भी छोड दूंगा। मैं समझता हूं कि मुझे १० गज सुन्दर काली खादी का एक थान सहज ही मिल जायगा। मैं सत्याग्रह आश्रम, साबरमती के पास लिखुंगा। और शायद वे भेज देंगे।"

वकील और दूसरे पेशेवर लोग और कुछ भले ही न कर सकें मगर खादी को अपना कर और अ. भा. चर्खा संघ को सहायता दे कर डाक्टर कटजू के भले उदाहरण का अनुकरण तो सभी कर सकते हैं। और अ भा० चर्खा संघ को अधिकाधिक गांवों का संगठन करते जाने की आवश्यकता के कारण, हमेशे रुपयों की कमी बनी ही रहती है। पूंजी बढाये बिना अधिकाधिक खादी तैयार की नहीं जा सकती और जब तक खादी का हिदुस्तान में घर घर प्रचार नहीं हो लेता, चर्खा-संघ का खर्च तो हर साल देना ही पडेगा।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

जुन १९२७ में खादी की उत्पत्ति और बिक्री का ब्यौरा

प्रान्त	रु.	उत्पत्ति जुलाई '२७	उत्पत्ति जुलाई '२६	उत्पत्ति जून '२७	बिक्री जुलाई '२७	बिक्री जुलाई '२६	बिक्री जुन '२७
अजमेर	,,	५,७५५	५,१९६	५,३११	६,२७६	२,०५३	६,२८०
आन्ध्र	,,	२८,८७७	२८,७९२	१३,९३९	३२,९१३	२६,६२५	३८,०५०
बिहार	,,	१५,२९८	२६,५८२	१२,४७९	९,२४७	११,०५८	१४,३९३
बंगाल	,,	२१,८२९	४७,०६५	१९,७८७	१८,९९५	२४,९४७	२४,७७९
बम्बई	,,	. .	. .	. .	२९,७६३	७८,३६३	२०,७५२
ब्रह्मा	,,	. .	. .	. .	१,७१३	२,२४८	१,३४०
दिल्ली	,,	१,९३८	१,१४६	१,८९०	१,३५८	१,१५१	२,०२१
गुजरात*	,,		७,४६०	३५,३६		५,३४६	९,९९८
कर्णाटक	,,	६,९३४	३,५६४	५,२९३	४,७९३	३,८८२	६,२३६
महाराष्ट्र	,,	२,४५१	१,८६७	२,२४१	१०,५४९	१०,२१९	१०,५५९
पंजाब	,,	६,२९८	१२,२५९	५,६७४	५,१६८	४,१९८	६,६२९
तामिलनाड	,,	९८,८८०	५८,५४८	८३,९०९	७५,९६९	५५,४२२	१,००,८०४
युक्त प्रान्त	,,	६,७३८	८,७४७	१०,००९	६,६२६	८,२७५	१२,३६७
उत्कल	,,	५,४४७	१,२७९	३,९४२	३,२७९	२,३७४	२,२१६
कुल	रु.	२,००४४५	१,९३,७६६	१,६०,५३२	२,०६,६४९	२,२८,४४१	२,४४,४१०

* गुजरात के अंक नहीं मिले हैं।

साप्ताहिक पत्र

चेट्टीनाड

दक्षिण में नाट्टुकोटाई चेट्टियर नामकी एक जाति है। ये चेट्टियर लोग हमारे मध्य-भारत के मारवाडियों से बहुत कुछ मिलते हैं या यों कह सकते हैं कि ये दक्षिण भारत के मारवाडी हैं। इन लोगों के रहने के विशेष प्रदेश को चेट्टीनाड कहते हैं। यह चेट्टीनाड कई गांवों का प्रदेश है जो तंजोर, मदुरा, और ट्रिचिनापोली के तीन शहरों के त्रिकोण के मध्य में हैं। इन चेट्टियों का दूसरा नाम धनवैश्य भी है। इनका मुख्य काम मारवाडियों जैसा कोठी चलाने यानी सूद पर रुपया चलाने का है। मगर मारवाडियों के उलटे इन्होंने धन की खोज में पृथ्वी का कोना कोना नहीं छान डाला है। इनकी फस्ल तो खास कर बर्मा, लंका और सिंगापुर में ही होती है। गांधी जी को इनका परिचय पहले पहल रंगून में मिला था जब कि डाक्टर प्राणजीवन मेहता ने उन्हें चेट्टियों की कतारों का दर्शन कराया था। इनके मकानों की कतार ही थी। हर बरामदे में एक चेट्टी बैठे २ छोटे से डेस्क पर अपना हिसाब किताब लिखते या रुपया गिनते रहते थे। डाक्टर मेहता ने गांधीजी को बतलाया कि "इन्हें आप टुटपुँजिया महाजन मत समझिए, इनका लाखों का व्यौहार चलता है और कुछ तो बेशुमार धनी हैं।" शायद मारवाडियों की अपेक्षा ये चेट्टी लोग अधिक आरामतलब होते हैं। मगर साथ ही साथ मारवाडी स्त्रियां अगर गहनों से ही अपने शरीर को ढँक लेती हैं तो चेट्टी स्त्रियां बहुत सादगीपसंद होती हैं क्योंकि रिवाज के मुताबिक ये अपने पतियों के साथ बाहर नहीं जा सकतीं। उस दिन मैंने सीधी, सादी, बहुत कम गहने पहनी हुई, २० साल से भी कम उम्र की एक चेट्टा लडकी से बातें की थीं। किसी मित्र ने पूछा, "क्या आप इस नहीं सी औरत के धन का अंदाजा लगा सकते हैं?" मुझे क्या पता था? मगर बडी ही चतुराई से उसने स्वयं कहा, "मेरा स्त्रीधन कोई ३०,०००) रुपयों का होगा।"

चेट्टीनाड में घुसते ही बडे २ मकान, महल देखने में आते हैं। ये सब बडे ही बेतरतीब, बेढंगे तौर पर इधर उधर चारों ओर फैले हुए होते हैं। ऐसे मकान कहीं हिन्दुस्तानी गांवों में देखने में नहीं आते। इन्हें देख कर मालूम होता है मानों ये अपने बगल के झोंपडों की ओर बडी उद्धतता से देख रहे हों। जो कोई बर्मा या लंका से धन कमा कर देश लौटता है, वह गांव में सब से बडा, ऊँचा मकान बनाने की फिक्र सब से पहले करता है। वे कीमती मोटरगाडियां, कुर्सी टेबुल वगैरह में रुपया लगाते हैं। जवाहिरातों की तो बात ही क्या? मगर दानखाते में कुछ खर्च नहीं करते हों, सो बात भी नहीं है? मगर उनका दान तो हमेशे ही विशाल मंदिर बनाने में ही होता है। एक जगह रास्ते में हमने पत्थरों के ढेर देखे। एक मित्र ने बतलाया कि 'यहां पर बडा भारी मंदिर बनने वाला है। उसका खर्च १२ लाख कूता गया है, मगर उसमें सहज ही २५ लाख तक लग सकते हैं।' अपनी सारी शक्ति केवल धन पैदा करने में ही लगा देने के कारण, चेट्टियों को नगर-स्वच्छता या सामाजिक जीवन का कुछ भी इल्म हासिल करने का अवसर नहीं मिला है। उनकी सुन्दर, बडी मोटरों के ठिकाने से चलने के लिए सडकें ही नहीं हैं। और बडे से बडे घरों में भी एक लोटा स्वच्छ पानी की आशा रखना भूल है। एक गांव में उनके यहां बिजली की कलें वगैरह बैठायी गयी हैं, मगर यहां भी स्वच्छ और शुद्ध पानी मिलने का कोई प्रबंध नहीं है। उनके और उनके पडोसी गरीबों के जीवन में कोई समता नहीं है। इन धनियों के संसर्ग से लाभ उठाने के बदले डर है कि इन गरीबों में भी 'ऐशो आराम की बुरी और निर्बल करनेवाली छूत लग जायगी।'

चेट्टी परिषद

गांधी जी उनके बीच में कोई एक सप्ताह रहे। उनकी कडी आलोचना करने में कुछ उठा नहीं रक्खा, मगर अपने प्रेम सागर में उन्हें डुबाये रक्खा, उनसे प्रेम की भीख ले ही ली। पहले तो समझ में नहीं आता है कि गांधी जी चेट्टियों के बीच जाकर उन्हें केवल गालियां ही सुनाते रहें और उनका धन लेते रहे तो उनकी चेट्टियों के साथ कैसे निभेगी! मगर अभी तक तो हम इस चित्र का केवल एक ही पहलू देख सके हैं। उसका सुन्दर पहलू भी तो है ही। सिर्फ आज ही नहीं बल्कि १९२१ में भी चेट्टियों ने गांधी जी को बुलाया था और सोने चांदी से उनकी झोली भर दी थी। सुधार की इच्छा वहां है और कम से कम नयी पीढी के लोगों में तो दिनोंदिन बढ ही रही है और अगर हो सकता तो वे गांधी जी को अपने यहां कुछ हफ्ते ही नहीं बल्कि कई महीनों तक जरूर रखते। जहां कहीं वे जाते उनके पास हजारों आदमी आ जुटते थे। कराईकुडी और पगनेरी में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की संख्या के बराबर थी। सच पूछिये तो चेट्टीनाड में गांधी जी के पांच दिनों के भ्रमण को चेट्टीनाद परिषद् कह सकते हैं, जिस में गांधी जी ने न सिर्फ खादी पर ही बातें की बल्कि उनके संबंध के हर एक विषय पर बातें कीं, उनकी कमजोरियों को खोल कर दिखलाया, प्रेम की मोहनी में डाल कर उन में जबर्दस्त परिवर्त्तन करने की कोशिश की। कनाडुकठन के एक धनी सज्जन के यहां हम लोग ठहरे थे। सैकडों आदमियों को खिलाते हुए, और श्रीमती गांधी की कुछ सेवा करते हुए उनकी पत्नी की खुशी का पार न था। और गांधी जी ने उनके इस प्रेम का बदला, कोरे शाब्दिक धन्यवाद से न दे कर उन्हें अप्रिय परंतु मनोहारी और हितकर सलाह दे कर दिया। गांधी जी ने उनके घर की साधारण से साधारण बातों पर भी टीका टिप्पणी करते हुए, उसे एक उदाहरण मान कर, सारे चेट्टी समाज को कहा:

"मैंने १९२१ में क्या देखा था और अब क्या देख रहा हूँ। आपके घरों में बिलायती माल ठसाठस भरा हुआ है, आपके घर बिलायती सुन्दर चीजों से सजे हुए हैं। आपके घरों में कितनी चीजें हैं जिनके लिए हमारी इस पुण्यभूमि में कोई स्थान ही नहीं है। मैंने आपको कहा था कि यहां आने में मुझे खुशी और अफसोस दोनों हुए थे। मैंने आपको कहा था कि घर में इतने अधिक बेजरूरत सामान से मैं दब जाता हूँ। इन कुर्सी टेबुलों के बीच तो बैठने की, सांस लेने की भी जगह नहीं है। आपके कुछ चित्र बडे बदसूरत, देखने लायक नहीं हैं। महाभारत के युग में धनियों ने भी कई व्रत ले रक्खे थे। मैं उसकी याद करता हूँ। आपके जैसे हम लोग अपने धन को न भोगें। अपने देश की यह मार्तदिल आबोहवा, इतने अधिक कुर्सी टेबुलों की जरूरत ही नहीं रहने देती। इनसे शुद्ध हवा नहीं आ जा पाती, इन पर दुनिया भर की गर्द जम जाती है, जिसमें, हवा में उडने वाले कीटाणु आकर इकट्ठे होते हैं। अगर आप मुझे चेट्टीनाड के सभी धनी घरों को सजाने का ठीका देवें तो जितना धन आपने खर्च किया है, उसके दशवें हिस्से से ही चेट्टीनाड को सजा दूँ जिसमें आपको अधिक आराम मिले, अधिक स्वच्छ हवा मिले और अच्छे से अच्छे कला-विशेषज्ञों से प्रमाणपत्र दिलवा दूँ कि इससे अधिक सुन्दर तरीके से इन मकानों को सजाना असंभव है। मेरा खयाल है कि आपके सभी महल जैसे तैसे किसी तरह, बिना किसी ढंग या तरतीबके, सामाजिक हित की पर्वा किये बिना ही बनाये गये हैं। अगर आप आपस में सबके लाभ के लिए और अपने बीच रहनेवाले किसानों के हित के लिए कोई चेट्टीसंघ खोलें तो आप

इस चेट्टीनाड को स्वर्ग बना लेंगे, जहां पर आपके सुखशान्ति को देखने के लिए हिन्दुस्तान के सभी हिस्सों से लोग आकर्षित होकर दौडे आवेंगे।"

पाठकों, इस भाषण का आपकी समझ में क्या असर पडा होगा? क्या चेट्टियों ने इसे बुरा माना? बिलकुल नहीं। इसे तो सबने भला ही समझा और दूसरी जगहों में जिनके जिनके यहां गांधीजी ठहरनेवाले थे, उन लोगों के लिए अपनी मुख्य मुख्य कोठरियों में से अधिक सामान निकाल देने की यह चेतावनी थी। कांडीकारन में जिनके यहां हमलोग ठहरे थे, उन्होंने मुझसे माफी मांगते हुए कहा था, 'हम क्या करें? हम तो जमाने के गुलाम हैं। ये तसवीरें हमें कुछ पसंद नहीं हैं, मगर एक आदमी कहीं से कुछ लाता है और सबको उसीकी बराबरी करनी पडती है। कुर्सी टेबुल रखना भी जरूरी समझा जाता है। इसी गांव में दो तो सरकार की ओर से 'सर' या 'नाइट' की पदवी पाये हुए लोग हैं। इसी गांव में खुद गवर्नर साहिब कई बार आ चुके हैं।'

मगर गांधीजी का यही भाषण अखीरी नहीं था। बल्कि यहां से तो शुरू ही हुआ था और गालियां सुनने की भूख इसने और भी जगा दी थी। दूसरी जगह मैं चेट्टीनाड में गांधीजी के भाषणों में से चुने हुए उतारे दे रहा हूँ। गांधीजी के भाषणों को उन्होंने जिस भाव में सुना, उसका सुन्दर परिचय कराइकुडी की सभा में, चेट्टीनाड से गांधीजी की बिदाई के समय उनके उत्साह को देख कर मिला। अहमदनगर को छोड कर, और कहीं, इस साल के सफर में नीलाम के लिए उत्साह देखने में नहीं आया था। चोक्कलिंगम् के काते सुन्दर सूत की बुनी हुई मलमल का कम से कम दाम १०००) पहले से ठीक था। हमें इसकी बिलकुल आशा नहीं थी कि इसपर कोई डाक बोलेगा, मगर जब एक मित्र ने आगे बढ कर १००१ की बोली बोली और अपने धनी मित्रों से और भी डाक बोलने को कहा तो सब कोई हैरत में आ गये। एक मित्र ने ३०० की अपनी हीरे की अंगूठी दे दी। दूसरे ने उसे ३५० में खरीद लिया। उस रात के बिके सारे सामान की कीमत में रु. ३१२५ मिले।

दूसरे दिन पगनेरीमें कोई बडी डाक नहीं बोली गयी। मगर स्त्रियों ने तो छल्लों की बारिश बरसायी। छोटे गांवों में मिली, गरीबों और धनियों और अछूतों की भी थैलियां वहां के उत्साह का परिचय देती है। अमरावतीपुर में खादी खूब देखने में आयी। कोई सैंकडे ८५ आदमियों ने इस हफ्ते में खादी पहिन ली थी।

आदमी और चीजें

वह दृश्य अब भी मुझे याद आया करता है। लोगों की बढती हुई, समुद्र की लहरों जैसी लहरें लेती हुई भीडें, सादे कपडे पहनी हुई सुन्दर स्त्रियां जिनके चेहरे गांधीजी को पुरुषों को पवित्रता का और स्त्रियों को जीवनसंगिनी बनानेका पाठ देते देख कर खिल उठते थे,—भूलने वाला दृश्य नहीं है। उत्साह से भरे हुए अपने ढंग पर सुधार का काम अमरावतीपुर और दूसरे स्थानों में करनेवाले युवकों के साथ गांधीजी की पूरी सहानुभूति थी। खादीपोश नव युवकों का एक दल गांधीजी के पास आया। ये अपना एक आश्रम चला रहे हैं। इन्होंने बहुत ही खुले तौर पर अपना ब्राह्मण-विरोधी, और संस्कृत-विरोधी मत सुनाया। मगर इससे भी गांधीजी विचलित नहीं हो सके। वे तो सिर्फ हँसते रहे। उन्होंने कहा, "तब तुम राम को भी अपना आदर्श, पुरुषोत्तम नहीं मानते। मानो ही क्यों? वे तो उत्तर हिंदुस्तान के थे न!" "क्यों साहेब, हम तो आपको अपना आदर्श वीर मानते हैं और आप तामिलनाड के तो नहीं हैं!" गांधीजी ने हंसते हुए कहा, "वाह, मैं क्या अच्छा आदर्श वीर हूं।" जिन नव युवकों ने गांधीजी से दो दिनों तक वर्णाश्रम धर्म पर बातें की थी और जो फिर एक बार और बात करने के लिए मदुरा भी आये हैं, अगर वे उन से लाभ उठा कर काम करें तो चेट्टीनाड स्वर्ग भले ही न बने, मगर रहने लायक स्थान तो जरूर ही बन जायगा। बडे खेद की बात है कि वहां एक भी स्त्री कार्यकर्त्री नहीं है।

अब कुछ खास आदमियों का भी परिचय देना ही होगा। उस दिन श्रीयुत चोक्कलिंगम् आये थे। इन्होंने १०० अंक से अधिक का अपना सूत दिया है और अपने सूत की बुनी मलमल भेट की है जिसका दाम १,००१) रुपये मिले थे। उन्होंने एक तोले से भी कम रुई ली और उसे धुनने में वह कला दिखलायी कि एक एक रेशा अलग अलग कर दिखलाया। उन्होंने जिस संपूर्णता से अपना काम किया, इस पर जो ध्यान और समय दिया, जिस ढंग से अपने औजार रक्खे, उनके चर्खे पर भगवान् मुरुगन का चित्र, वगैरह सब बातें देख कर गांधी जी को कहना पडा "भला, इस सूत के बुने कपडे का दाम १०००) रुपये निश्चित करने में मैंने क्या कोई भूल की थी?"

कराईकुडी की सभा में गांधी जी जब कपडे के सौन्दर्य पर बलि बलि जा रहे थे, श्रीयुत चोक्कलिंगम् ने कहा, 'कृपा कर यह न कहिए कि मैंने यह सूत काता है। यह तो भगवान् मुरुगन ने किया है।" किसी कन्या पाठशाला में ये चोक्कलिंगम अध्यापक हैं। वे गांवों में घूम घूम कर खादीप्रचार का काम किया करते थे मगर पीछे से उन्होंने एक जगह बैठ कर छोटे बच्चों पर अपनी सारी शक्ति लगाने का निश्चय किया। अब वे अपना समय उस पाठशाला में कातना और धुनना सिखलाने में दे रहे हैं। मगर यह तो उनकी छोटी से छोटी बात हुई। गांधी जी को पता लगा कि वे ब्रह्मचारी हैं। इस पर उन्होंने पूछा:

"आपने यह ब्रह्मचर्य क्यों धारण किया?"

"परमात्मा के आदेश से।"

"कब आदेश मिला?"

"दो साल पहले मैंने जन्मभूमि की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य लेने का निश्चय किया।"

"तब उसके पहले ब्रह्मचर्य पालन करने का कारण क्या था?" बेचारा घबरा गया। गांधीजी ने और खुलासा पूछा:

"क्या इन तीस वर्षों तक आपका जीवन पवित्र रहा है?"

"नहीं" चोक्कलिंगम् ने सत्य और दृढता से कहा, "जी नहीं मैं पिछले सिर्फ छह साल से ही पवित्र जीवन बिता रहा हूँ।"

"हां, तो आप अविवाहित होते हुए भी विवाहित जीवन बिता रहे थे।"

"जी, हां। यही बात है।"

"कोई पर्वा नहीं। अब से अपने व्रत का पालन कीजिए और अपने ध्येय की ओर बढे जाइए।

वहां बैठे हुए किसी आदमी पर चोक्कलिंगम् की इस सचाई का प्रभाव पडे बिना नहीं रहा। गांधीजी ने मुझसे पीछे कहा "इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं है। जो आदमी अपने पिछले जीवन से संबंध तोड बैठता है, वह आदमी ही बदल जाता है। वह अपने पिछले पापों का स्वीकार करने में शर्मायेगा नहीं क्योंकि अब वे पाप उसे छू नहीं सकते।"

अब श्रीयुत सन्मुखम् चेट्टियर और, श्रीयुत चेटियप्पा चेट्टियर को कैसे छोड दिया जाय? श्रीयुत् सन्मुखम् ने चोक्कलिंगम् की मलमल का चेट्टीनाड से निकल जाना, शर्म की बात समझी और उसके १,००१) रुपये दिये। श्रीयुत चेट्टियप्पा तो चेट्टीनाड में काम के मूल में थे। चिदम्बरम् में संत नंदनार की स्मृति में

मंदिर बना था और जिसे गांधीजीने खोला था, उसके लिए भी सभी रुपया इन्हींने दिया था। फिर स्वीडिश मिशन अस्पताल वालों को ही कैसे भूला जायगा जिन्होंने रास्ते में गांधीजी को पकडा तो मगर भाषण के लिए जिद किये बिना ही उन्हें अपनी थैली भेंट कर दी।

महादेव देशाई

(यं० इं० में से)

चेट्टीनाड को संदेश

[नीचे मैं चेट्टीनाड में दिये गये गांधी जी के कई भाषणों में से चुने हुए उतारे देता हूँ। इससे सिर्फ उन्हीं का नहीं, बल्कि देश की सभी धनी जातियों का लाभ हो सकता है।

म० ह० दे०]

खादी को अपनाओ

"आपने खादी को जितना अपनाया है, उससे अधिक अपनाने की मैं प्रार्थना करता हूँ। अगर आप चाहें तो तामिलनाड बल्कि सारे भारतवर्ष के खादी कार्य का खर्च उठाने की आप में ताकत है। अलग अलग चेट्टियों में भी ताकत है। उत्तर भारत के चेट्टी, मारवाडी मित्रों से मैंने कहा था, और आपसे कहता हूँ कि आप अपनी जरूरत से जो अधिक खर्च करते हैं उतने से आप खादी आन्दोलन का संगठन कर सकते हैं। अपनी आश्चर्यजनक चतुरता से आप खादी की तैयारी का भी संगठन कर सकेंगे और इसी लिए यह कहना क्षमा करेंगे कि आज सबेरे से मुझे जो थैलियां दी गयी हैं, उनसे मुझे किसी तरह का संतोष नहीं मिला है। अगर्चे कि आपने हजारों की रकमें दी हैं, मगर आपके धन वैभव की तुलना में तो वह समुद्र की बूँद है। . . . आज मेरी समझ में किसी हिन्दुस्तानी के लिए जो बडा से बडा दान हो सकता है, वह है खादी कार्य को बढाना। हमारे धनी नामधारी गरीबों को मुफ्त में खिलाने के शौकीन होते हैं। मैं इन भोजों की उपयोगिता में शंका करता हूँ। अंधों अपाहिजों को या उनको जो अपनी रोजी पैदा नहीं कर सकते खिलाना उचित होगा। मगर मैं यह कहने का साहस करूँगा कि अगर आप सब कोई मिल कर सलाह कर के ५० हजार गांवों को खिलाने के लिए कोष इकट्ठा करें तो यह बहुत बडी बात होगी।"

धनका सदुपयोग करो

"मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि आप बहुत धन खर्च करते हुए भी उसका उपयोग बुद्धिमानी से नहीं करते हैं। आपने बडे बडे महल बनाये हैं, मगर अपने आसपास की परिस्थिति पर गौर नहीं किया है। इस लिए मैं चाहता हूं कि आप अपने ही लिए नहीं बल्कि अपने बीच सभी रहनेवालों के लिए शुद्ध पानी मिलने का बंदोबस्त करें। आपकी सडकें बिलकुल दुरुस्त होनी चाहिए। आपके पोखरे सुंदर, साफ दिखलायी पडने चाहिए, उनमें से सचमुच ही सुगंध निकलनी चाहिए, उनमें स्वच्छ, अच्छे और चमकते हुए शुद्ध पानी के सिवाय और कुछ नहीं होना चाहिए। आपकी मोरियों का इन्तजाम बिल्कुल ठीक होना चाहिए। सचमुच ही ये सब सादी चीजें बेहद सहज हैं और एक बार जहां आपने इन पर दिल लगाया कि फिर इसमें आपको कुछ भी खर्च लगता हुआ सा नहीं मालूम पडेगा। अगर आप ये बातें ठीक ठिकाने से करना चाहते हैं तो इनके जानकारों की सलाह लेनी पडेगी। मगर इसमें कुछ व्यक्तिगत इच्छा, आराम का त्याग करना पडेगा। इसके लिए सामाजिक जीवन केवल स्वार्थ का नहीं बल्कि समाज और देश के लिए जीवन बिताने की इच्छा होनी चाहिए। इसके लिए अपने गरीब से गरीब पडोसी के प्रति भी सहानुभूति होनी चाहिए। और अपनी ऐसी प्रवृत्ति बनाने के साथ ही आप देखेंगे कि इसमें बहुत कम श्रम लगता है, उससे भी कम धन और मैं आपको भरोसा देता हूं कि आपको अपनी मिहनत का भरपूर बदला मिल जायगा।

"अब तक मैं चेट्टीनाड में देखता आ रहा हूं कि जहां तक बाहरी सामाजिक स्वच्छता से मतलब है, वह यहां पर नहीं है। अगर आप सब कोई मिल कर काम करें तो आप अपनी गलियां, पोखरे और अगलबगल की जगह बेदाग, साफ बना सकते हैं। चेट्टीनाड के कई मित्रों के पत्र भी मिले हैं कि भीतर भी कोई सफाई नहीं है। यहां गलियों और गढों में मैं जो गंदगी देखता हूं उससे भी बुरी गंदगी भीतर की है। अगर आप संगठित हों, कुछ स्वयंसेवक और कार्यकर्ता मिलकर अपनी गलियों और पोखरों को बिलकुल साफ रक्खें तो यह बाहरी गंदगी थोडे ही दिनों में सचमुच दूर की जा सकती है। सामुदायिक जीवन की पहली परमावश्यक शर्त यह है कि नगर में रहनेवाले सभी आदमियों को स्वच्छ पानी पूरा पूरा मिल सके और बस्ती साफ होवे। जब मैं नंदीदुर्ग पर था, मैंने देखा कि जिस जलाशय से लोगों के पीने का पानी आता था, उसे विकार से बचाने के लिए सारे दिन कडा पहरा रहता था। नहाने के पोखरे, पानी पीने के पोखरों से अलग ही होने चाहिए। मैं जानता हूं कि जिस आन्तरिक सफाई की मैंने बात की है, वह इस ऊपरी सफाई से कहीं मुश्किल बात है। अपने जमाने में कभी कुछ रकम हाथ में रखने के कारण, मैं आपको अपना नुस्खा बतलाता हूं, जिससे धन होते हुए भी आदमी अपने को कैसे स्वच्छ रख सकता है। वह नुस्खा कुछ नया नहीं है। यह हमारे धर्म का एक अंश है। वह यह है कि हमने चाहे जितना धन क्यों न कमाया हो, मगर हम अपने आपको, अपने सभी पडोसियों के हित के लिए उस धन का रक्षक भर मान लेवें। गीता में कहा है

"यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥"

अर्थात् जो यज्ञ किये बिना या दिये बिना खाता है वह घोर है, पापी है। अगर परमात्मा हमें शक्ति और धन देता है तो इसलिए कि हम उसका उपयोग मनुष्यों की सेवा के लिए करें न कि अपने शारीरिक स्वार्थ के लिए।"

चेट्टीनाड को स्वर्ग बना लो

"आप अपनी नगर सफाई और जल पर जरूर ध्यान देवें। गंदी गलियों और गंदे पानी से भरे गढों के बीच आपके महल शोभते नहीं हैं। मैं आपको बतलाऊँगा कि आप किस प्रकार अपने सरमाये के जरिये नहीं, बल्कि बचत से, बहुत ही थोडे खर्च पर इन्हें साफ कर सकते हैं। मैंने सुना है कि आपके कई विवाह संबंधी रसम बहुत बुरे हैं। अक्सर किसी किसी दुलहन की कीमत ३०,०००) तक लग जाती है। आप को फी विवाह में शायद ५०,०००) भी खर्च करते हुए हिचक नहीं होती। मगर मैं इस चाल को अनैतिक समझता हूँ। विवाह जैसे पवित्र संबंध में किसी पक्ष से दाम नहीं रक्खा जा सकता। गरीब आदमी के लिए भी सती पत्नी पाना उतना ही सहज होना चाहिए जितना कि धनी के लिए। विवाह के लिए तो केवल योग्यता और पारस्परिक प्रेम ही विचार्य विषय होने चाहिए। विवाह संस्कार में के खर्चों को मैं अनैतिक नहीं मानता हूँ, मगर बहुत बेकार खर्च मानता हूँ। जनता के सामने धन का तमाशा दिखलाना, जैसा कि आज होता है, किसी धनी आदमी के लिए शोभनीय नहीं है। **अगर धन का सदुपयोग करने की महान कला न सीखी जाय तो धन जमा करने की कला अधोगति लानेवाली, घृणाजनक हो जाती है।** सो केवल इस विवाह-सुधार के ही बल पर,

ऐसे अवसरों पर जरा हाथ रोक कर चलने से आप इस चेट्टीनाड को स्वर्ग बना सकते हैं। अगर आप चाहें तो बिना विशेष प्रयत्न के सार्वजनिक बाग, खेलने के मैदान, पानी की कल, और लाभकारक गोशालाएँ चला सकते हैं जिनसे आपके बीच रहनेवाले गरीब आदमियों को सस्ता और शुद्ध दूध मिलेगा। मैं तजुर्बेकार आदमी और खुद एक चेट्टी सा होकर कह सकता हूँ कि अगर आप अपने स्वास्थ्य की रक्षा नगरसफाई, और धनी गरीब सब को शुद्ध दूध देकर करें, तो आपकी आमदनी तिगुनी बढ जायगी।"

जीवन पवित्र बनाओ

"एक डाक्टर की बहिन मेरे पास लिखती हैं कि मुझे चेट्टीनाड में फैली हुई उस कुप्रथा के विषय में भी कुछ कहना चाहिए जिसके कारण आप दूसरी उपयोगी बातें सोच ही नहीं सकते। वे कहती हैं कि बाला उम्र की लडकियों को पापमय जीवन में धर्म के नाम पर ढकेल देने की कुप्रथा को जारी रखने में चेट्टीनाड के धनकुबेरों का भी हाथ है। वे बतलाती हैं कि आपलोगों में बहुत सी देवदासियां हैं। अगर यह सच हो तो हमें शर्म से सिर झुका लेना चाहिए। **धनी होने का अर्थ नीचे गिरना, पापपंक में फँसना और ऐयाश बनना न लगने दीजिए।** और यह क्या महान् दुःख की बात नहीं है की इन पापों के होते हुए भी आप मन्दिर बनाने में, आप को विश्वास है कि जिनमें देवता रहेंगे, रुपया पानी सा बहाते हैं? ईंट और सुर्खी चूने का बना हुआ हरएक मकान जिसे मन्दिर का नाम दे दिया जाय, कुछ जरूरी नहीं कि परमात्मा का निवास हीं बन जाय। मुझे कहते अफसोस होता है कि हमारे यहां कितने मन्दिर हैं जिन्हें वेश्यालय कहना ही ठीक होगा। क्या आपको मालूम है कि हमारे धर्मानुसार जब तक मकान की आन्तरिक शुद्धि नहीं हो ले और कोई पवित्रात्मा भक्त देवता की प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर लेवें, कोई मकान मन्दिर नहीं कहा जा सकता? इसलिए मैं आपको जोरों से कहूँगा कि आप अपने को रोक कर चलिए, मंदिर बनाने में इतना धन पानी सा मत बहाइए, किन्तु पहले तो अपने आपको ही परमात्मा की सेवा में अर्पण कर दीजिए और इसी लिए मेरे बतलाये दोषों को दूर कर अपने को शुद्ध कीजिए। मगर मुझे आप से यह कहते हुए खुशी भी होती है कि आज ही मुझे एक पत्र मिला है जिसमें लेखक मेरे अभी के बतलाये सभी दोषों को कबूल करते हुए कहते हैं कि आप लोगों में कितने ही ऐसे चेट्टी भी हैं जो केवल धनकुबेर ही नहीं है बल्कि पवित्रात्मा भी हैं। उनका कहना है कि आप लोगों में कई एक ब्रह्मचारी हैं जो शान्ति से चुपचाप अपना संतजीवन बिताये चले जा रहे हैं। आशा और गर्व से वे यह भी लिखते हैं कि बडी बडी कठनाइयां रहने पर भी नवयुवक सुधार का आन्दोलन चलाये जा रहे हैं। उन नवयुवकों को भरोसा दिलाता हूँ कि अगर्चे कि सुधार के रास्ते में फूल ही फूल नहीं बिछे हैं बल्कि काँटे ही बिखरे पडे हैं मगर अगर वे शुद्ध हृदय से और नम्रता से अपने काम में लगे रहेंगे तो सफलता उन्हें मिली मिलायी है। मैं समझता हूँ कि वे आपके सन्मुख आये हुए एक बहुत ही मुश्किल सवाल को हल करना चाहते हैं। मुझे बतलाया गया है कि आप में यह अटल प्रथा चल निकली है कि बर्मा, सिंगापुर या लंका को जानेवाला कोई चेट्टी अपने साथ अपनी पत्नी को नहीं ले जा सकता। इसे मैं आपकी स्त्रियों के विरुद्ध बहुत बुरी रोक मानता हूँ, यह दो दृष्टियों से कठिनाई ही है और बहुत बुरी है, मेरी समझ में यह बहुत बडा पाप है। इससे घर छोडने पर आपके सामने वैसे प्रलोभन आने लगते हैं, जिन्हें हटाया जा सकता था और इससे आप की जीवनसंगिनियों को कई वर्षों तक आप के साथ से वंचित रह[ना] पडता है और दूर दूर देशों में जा कर, आपके साथ रह क[र] अपनी दृष्टि विशाल बनाने का उन्हें अवसर नहीं मिलने पाता। [मैं] इन नवयुवकों की भली लडाई में उनकी सफलता मानता हूँ, औ[र] बडे बूढों से जहां तक मेरी बात पहुंच सके प्रार्थना करता हूँ कि आप उन्हें आवश्यक सुधार करने के श्लाघ्य प्रयत्न में सभी तरह [की] मदद दीजिए।"

शिक्षित बनो

"मुझे यह सुन कर आश्चर्य हुआ कि आप अपने ही बच्चों [को] अच्छी शिक्षा देने की भी पर्वा नहीं करते। मुझे कहा गया है [कि] आप की एक ही उच्चाभिलाषा होती है, और वह यह कि अ[ति] कम उम्र में ही आपके लडके धन पैदा करने की कलें बन जायँ। बेशक उन्हें आप अपने धंधे में अपने योग्य उत्तराधिकारी बना[इए] मगर इस दुनिया के प्रपंच में डालने के पहले उन्हें हमारी संस्कृ[ति] का तो कुछ ज्ञान हो जाने दीजिए, उनका चारित्र तो गठित [हो] जाने दीजिए, हमारे इतिहास और देश के बारे में तो वे कुछ जा[न] जायँ। मुझे बतलाया गया है कि जो कोई शास्त्रज्ञान का दावा क[र] के आपको कहीं से संस्कृत श्लोक सुना देता है, आप को भ्रम [में] डाल देता है। मगर मैं आपको कहूंगा कि चाहे संस्कृत में हो [या] तामिल में, हर एक मंत्र शास्त्रवाक्य नहीं है। **मेरी सम[झ] में शास्त्र वे ही चुने हुए शब्द हैं जिनसे हमें जीव[न] मिलता है।** इस लिए कोई वाक्य, चाहे वह कितना ही पुरा[ना] क्यों न होवे, मगर जो हमें नरक के रास्ते ले जाय, और इसलि[ए] सत्य के विरुद्ध है वह शास्त्र नहीं है। इसी लिए हमें सिखलाया गया है कि शास्त्र के प्रणेता सच्चे पुण्यात्मा ही हो सकते हैं न [कि] अपने को संत कहनेवाला हर एक आदमी जो गेरुआ पहन कर, सा[रे] शरीर में छापा और तिलक लगा कर शास्त्रों के नाम पर श्लोक प[र] श्लोक पढता जाय। **सच्चा पुण्यात्मा तो वह है जो अप[ने] को किसी दूसरे जीव से ऊँचा नहीं समझता औ[र] जिसने जीवन के सभी सुख त्याग दिये हैं।** म[गर] इस कलियुग में हमें सहज ही ऐसे पुण्यात्मा नहीं मिलते। इस लि[ए] अपने बच्चों को उचित शिक्षा देना हमारा दुहरा कर्त्तव्य हो जात[ा] है जिसमें वे भले बुरे की पहिचान कर सकें। और मैं जो बा[त] दूसरी जगह कहता आ रहा हूँ और इन तीन दिनों में भी कह [रहा] रहा हूँ, वह बात मैं तुम नवयुवकों से कहता हूँ जो अभी शि[क्षा] पा रहे हों कि चाहे तुम जो काम करो, मगर अपने जीवन [की] पवित्रता मत नष्ट होने दो। मुझे सभी तरह की बातें सुना[यी] पडती हैं जो मैं उमेद करता हूँ कि बढायी चढायी हुई हैं मगर मैं जानता हूँ कि दुनिया का साधारण तजुर्बा यही है कि [धन] और पवित्रता दोनों का साथ नहीं चलता है, मगर अगर्चे दुनिया का ऐसा ही दुःखद अनुभव है तौभी यह नियम अटल [तो] किसी तरह नहीं है। हमारे यहां विदेह जनक का उदाहरण ब[हुत] प्रसिद्ध है। महाराज जनक को वैभव और अधिकार अपार थे म[गर] तौभी वे अपने युग के सबसे बडे योगियों में, सबसे [बडे] पुण्यात्माओं में से एक थे। और अपने ही जमाने के कई मि[त्रों] का उदाहरण मैं बतला सकता हूँ, जिनसे परिचित होने का [मुझे] सौभाग्य है जो धन रहते हुए भी पवित्र जीवन बिताना गैरमुम[किन] नहीं पाते। जो उन थोडे से आदमियों के लिए संभव है, वह [आप] में हर एक के लिए निश्चय ही संभव है। मैं मनाता हूँ कि [ये] शब्द आपके दिलों में गड जायँ, और मैं जानता हूँ कि तब उ[न्हें] आपको और आपके समाज को कितना अधिक लाभ पहुँचेगा।"

(यं० इं०)

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

मद्रास का सत्याग्रह

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ९

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, कार्तिक वदी १० संवत् १९८४ गुरुवार, २० अक्तूबर १९२७ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

साप्ताहिक पत्र

मदुरा

इस हपते हमलोग और भी दक्षिण, मदुरा, रामनाड और तिन्नेवेली के एक हिस्से से होते हुए ठेठ, तूतीकोरिन तक चले गये। मदुरा पहुंचने पर वहां की दो स्मृतियां गांधीजी को याद आ गयीं — ६ साल पहले वाल्टेयर में उनसे मौलाना मुहम्मद अली का छीन लिया जाना, मौलाना साहेब की गैरहाजिरी का सब को अखरना और वह स्थिति जिससे उन्होंने पहले पहल लंगोटी धारण की। मगर सार्वजनिक स्मृति तो बहुत निर्बल होती है और खास कर आन्तरिक झगडे के इन दिनों में जब कि जो चीजें हमें ऊँचे उठाती थीं, जो हमसे त्याग करातीं, हमारे त्याग को महान और मंगलमय पुण्य कर्म बनातीं, वे ही चीजें हम आज भूल गये हैं और केवल झगडे की ही बातें उपर आ गयी हैं।

मगर, परमात्मा की कृपा है कि सदा कुछ लोग ऐसे रहते हैं जो शोरोगुल और तूफान में भी अपना दिमाग ठंडा रखते हैं और अगर अपने चारों ओर के वातावरण को संभाल नहीं सकते तो चुपचाप, उतावली किए बिना निरंतर काम करते ही जाते हैं। मदुरा को कुछ ऐसे आदमी पाने का सौभाग्य है और जिस जगह पर ऐसे आदमी होवें उसके लिए निराशा की कोई बात नहीं है। श्रीयुत वैद्यनाथ ऐयर ने अपनी वकालत छोड दी थी और वे इस संग्राम में तीन साल तक जूझते रहे। पीछे लाचार होकर उन्हें वकालत फिर शुरू करनी पडी है, मगर अब भी वे वही गौरव अक्षुण्ण बनाये रखने की कोशिश जी जान से करते रहते हैं। वे चर्खासंघ के सदस्य हैं और खादी आन्दोलन में बहुत दिलचस्पी लेते हैं। मगर चर्खासंघ के सब से बडे कामकाजी सदस्य तो श्रीयुत ए. वैद्यराम ऐयर हैं जो आज दक्षिण के सब से बडे वकीलों में से एक हैं। अदालत से फुरसत के सभी समयों में वे कातते हुए ही पाये जायँगे। मदुरा की थैली को मद्रास के बाद दूसरे ही नम्बर पर लाने के लिए उन्होंने दिन रात एक कर दिया था। चर्खासंघ को जीती जागती संस्था बनाने के लिए वे कोई बात उठा नहीं रखते हैं। गांधी जी से उनकी यही शिकायत थी कि 'चर्खासंघ का केन्द्रीय दफ्तर ऐसी संस्थाएँ क्यों नहीं खोलता जो सदस्यों से नियमित समय पर सूत लेने का प्रयत्न करता रहे? ऐसी कोई संस्था न होने से ही मेरे मित्र श्रीयुत वैद्यनाथ ऐयर तक सूत चुकाने में पीछे पड जाते हैं।' गांधी जी ने जवाब दिया 'मैं इसे कुबूल करता हूँ मगर संघ किसी दूसरे ही भाव से स्थापित हुआ था। वह मैं आपको समझाता हूँ। हम भूखे मरते हुओं पर चाहे लाखों खर्च करें, यानी उन्हें कातना सिखलाने, कातने की आदत लगाने के लिए लाखों खर्च करें, मगर स्वेच्छा से कातनेवालों के लिए हम एक पैसा खर्च नहीं कर सकते। जो संघ के सदस्य बनते हैं वे यज्ञार्थ कातते हैं और और जिस यज्ञ के लिए पीछे से जोर देना पडे, वह यज्ञ ही क्या रहा? मैं जानता हूँ कि उनमें सुस्त आदमी हैं, मुझे पता है कि उनमें बहुत लोग पीछे पडते हैं, मगर उन्हें जगाने के लिए मैं कोई संस्था नहीं बनाऊंगा। जो लोग विरोधी वातावरण के होते हुए भी नियमित रूप से चर्खा यज्ञ करते जायेंगे, और अपना अंश मातृभूमि को देते जायेंगे, वे तो राष्ट्रीय आन्दोलन के हीर होंगे, सत्त्व होंगे और उनकी श्रद्धा मेरे बाद भी, आन्दोलन के न रहने पर भी बनी रहेगी। मगर कोई स्वेच्छा से एसी संस्था बनावें तो मैं उन्हें अलग नहीं करता। जैसे कि आप अपने मित्रों को जितना उत्साहित कर सकें करें, बल्कि सच पूछें तो चर्खा संघ के हर एक सदस्य का यह धर्म है कि वह संघ के सदस्यों की संख्या बढावे और इसकी कोशीश करें कि नियमित समय पर लोग अपना चंदा देते जाते हैं। और आप जैसे वकीलों के लिए यानी जिन्हें इसमें श्रद्धा है, यह सबसे सहज बात है। आप अपने मुंशी के जिम्मे यह काम लगा सकते हैं। हर सदस्य के पास समय समय पर उसे आप भेज सकतें हैं, और उन्हें वह याद दिला सकता है कि आपका चंदा बकाया है। द० अफ्रिका में मैं कोंग्रेस का बहुत सा काम तो अपने मुंशियों से ही लेता था। और यह कुछ मेरा ही हक नहीं था। बल्कि हर

एक वकील को जो सार्वजनिक काम करता हो, इसमें अपना हिस्सा चुकाना ही पडता है। लडाई के जमाने में वहां के सभी मुख्य मुख्य वकील अपनी वकालत छोड कर सेना में भर्ती हो गये थे और मैं तो मैजिस्ट्रेट की आंखों से मेरे वहां तब तक ठहर जाने के लिए गुस्सा झलकता देखता था। और मैं आपको बतलाता हूँ कि सहज शर्म के मारे मैंने वकालत करनी असंभव पायी। मुझे लगा कि अगर वकील के तौर पर मेरी स्थिति बनी रहनी है तो मुझे जरूर जाना पडेगा।"

श्रीयुत वेदराम ऐयर जो निष्कपट और विद्या के अभिमान से कोरे हैं, मदुरा के बाद दो तीन जगहों तक हम लोगों के साथ रहे। उन्होंने कभी गांधीजी से कोई समय नहीं लिया, वे हमेशे भीड में ही सब के साथ बैठते थे, और हर एक छोटी से छोटी चीज के निलाम में बोली बोल कर लोगों का उत्साह बढाते थे। ठीक ही गांधीजी ने उनके जैसे लोगों को 'इस आन्दोलन का हीर' कहा है।

इस वर्णन से मुझे श्रीयुत जोसेफ की सच्ची जीवनसंगिनी की याद आ जाती है। मगर उनके बारे में मैं उनकी मित्रता के कारण बिना हिचक के कुछ कह नहीं सकता। अगर मैं यह कहूँ कि मिस्टर जोसेफ में अब तक खद्दर के लिए जो कुछ प्रेम बचा हुआ है उसका प्रधान कारण श्रीमती जोसेफ हैं तो इससे मिस्टर जोसेफ बुरा नहीं मानेंगे। श्रीयुत वेदराम ऐयर ने सार्वजनिक थैली के लिए जो किया वही काम श्रीमती जोसेफ ने स्त्रियों की थैली के लिए किया और यहां की स्त्रियों की थैली प्रान्त में सबसे बडी थी। मगर वह तो उनके काम का सब से छोटा अंश है। उन्होंने चर्खे का प्रचार स्त्रियों में करने के लिए बहुत काम किया है और इसके लिए गरीब से गरीब, नीच से नीच, और जलील से जलील लोगों से मित्रता की है। स्वीटजरलैण्डवासिनी कुमारी एलेन की मजदूरपेशा स्त्रियों के लिए सभा समितियां वगैरह खोला करती थीं जिसमें वे अपने से अधिक सौभाग्यशालिनी बहिनों के संसर्ग में आ कर संस्कृति-लाभ करें। श्रीमती जोसेफ को तो इससे भी अधिक सफलता मिली है। उन्होंने अपना काम केवल मजदूरपेशा लोगों तक ही महदूद नहीं कर दिया है बल्कि हमारी सब से अभागिनी बहिनों, देवदासियों को भी बाहर निकाला है, उनके पापमय जीवन से बचाया है और यहीं तक नहीं बल्कि सब से बडी बात तो यह है कि ऊँचे वर्ग की स्त्रियों को भी उनसे मिलाया जुलाया है, उनकी भलाई में दिलचस्पी पैदा की है। मगर तौभी उनके साथ तो दहने हाथ का काम बायां हाथ नहीं जानता। सच्ची उदारता की वे सच्ची मूर्ति हैं।

ऐसे लोगों के लिए जो अब भी झन्डा खडे किये हुए हैं, साधुवाद है। मदुरा में श्रीयुत चेल्लम ऐयंगर जैसे आदमी हैं जिन्होंने अपने सूत के तीन खादी के थान बुनवा कर गांधीजी को सबसे पहेले भेट किये थे। खेद की बात है कि उनका बिक्री का कम से कम दाम निश्चित कर देने के कारण, उनका कोई खरीदार नहीं मिला।

सौराष्ट्रों का जिक्र किये बिना, मैं मदुरा का वर्णन खत्म नहीं कर सकता। ये लोग मूलतः राजकोट से आये हुए होने के कारण उन्होंने गांधीजी से खास संबन्ध का दावा किया था। उन्होंने गांधीजी से अपने आन्दोलन में देशी मिलों से और विलायती सूत से हाथ-करघे पर कपडा बुनने के उद्योग को भी शामिल कर लेने की प्रार्थना की थी। उन्होंने एक अच्छी रकम की थैली दी थी और उनके मानपत्र की बदौलत गांधीजी ने लंबा सा भाषण किया था जिसका सारांश मैं अन्यत्र, उनके लाभ के लिए दे रहा हूँ जो हाथ-कताई को छोड कर हाथ-करघे पर जोर देने की भूल नहीं समझते हैं।

नादर

मदुरा से राजपालयम जाने के पहले मुझे संक्षेप में रास्ते में के स्थानों का यानी तिरुमंगलम, परमाकुडी और विरुधुनगर का वर्णन कर देना पडेगा। उन सबने जो कुछ बन पडा किया और अगर दक्षिण भारत का भ्रमण सफल हुआ तो ये खादी की उत्पत्ति और कताई के केन्द्र बनाये जाने के लिए खास उपयुक्त हैं। विरुधुनगर में कुछ साल पहले तक हजारों आदमी कातते थे और अब हाथकते सूत के ग्राहक नहीं मिलने के कारण बेकार बैठे हैं। इस जगह पर जो नादरों का मुख्य स्थान है, हमारा इन नादरों से परिचय हुआ। ये मितव्ययी और परिश्रमी होते हैं। हम लोग एक सुन्दर चाल्ट्री में ठहराये गये थे जिसे किसी दानी नादर ने बनवाया था। गांधी जी से उसे खोलने को कहा गया। मगर उनकी एक खास कठिनाई के विषय में गांधी जी ने कहा, "यह साहसी जाति है। ये उन्नतिशील हैं और उन्होंने अपनी रुचि सुधारी है। ये अत्यन्त सुव्यवस्थित हाईस्कूल चला रहे हैं जिस में नादर गैरनादर सबको मुफ्त शिक्षा मिलती है। उनके मंदिरों में सब कोई जा सकते हैं। सार्वजनिक उपयोग के लिए इन्होंने बाग लगवाये हैं। ये सब बातें अनुकरणीय हैं। तब आप मेरे दुःख की सहज ही कल्पना कर सकते हैं जब कि मैंने सुना कि ये पवित्र जीवन बितानेवाले भी मदुरा और तिनेवली के बीच मंदिरों में नहीं जा सकते। इस दुःखद बात को सुन कर मुझे हिन्दू धर्म के नाम पर लज्जा आयी। और अगर्चे कि समय की कमी से मैं मदुरा में मीनाक्षी मंदिर में नहीं जा सका, तौभी इस बात को सुन कर मैंने इसे परमात्मा की कृपा मानी कि मेरा पैर कभी उस मंदिर में नहीं पडा। किसी मंदिर में जाते हुए मैं अपने को बहुत जलील सा लगता हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि उस मंदिर में अछूत नहीं जा सकते। अपने आप तो मैं किसी नायाडी (अछूत) और अपने में कोई अन्तर नहीं देखता। मैं कोई अधिकार भोगना नहीं चाहता जो किसी नायाडी को अप्राप्त हैं। इसलिए जब मैं दक्षिण में जाता हूँ, मुझे अपने आपको नायाडी कहने में आनंद मिलता है अगर आदत की बदौलत मैं समझ गया हूँ कि ये अछूत, जो हमारे पास फटक भी नहीं सकते जिन्हें देखना भी पाप माना जाता हैं, इन मंदिरों में नहीं जा सकते। इसलिए नहीं कि खुदा के घर में जाने से एक आदमी को भी रोकने का कोई कारण है बल्कि इसलिए कि नादरों के विरुद्ध इस बेमतलब रोक को सहना मेरे लिए असंभव था।"

राजपालयम

मगर अब राजपालयम की बात करें। राजपालयम को जाना तो गांधीजी के लिए दवा साबित हुई क्योंकि वे तो दर असल खादी कार्य, और खादी वातावरण देखने के भूखे थे। कई दिनों तक महज चंदा इकट्ठा करने के बाद हम लोग कतवैयों और बुनवैयों के मशगूल मंडल में पहुंचे। यहां पूरे एक हजार कतवैये और सौ बुनवैये हैं जो सिर्फ हाथकता सूत ही बुनते हैं। एक सुन्दर झोंपडी में कोई सौ कतवैये चर्खे चला रहे थे। इतने सीधे और सच्चे तकुवे मैंने पहले नहीं देखे थे। एक कोने में उनके घरवाले बैठे हुए उनके लिए रुई धुनकर पूनियां बना रहे थे। ये २० से ६० अंक तक का सूत कातते थे और गांधीजी को यह जानकर सानंदाश्चर्य हुआ कि इनमें कुछ तो चार रुपये महीने तक पैदा कर लेते हैं। इसका कारण यह है कि और जगहों से यहां के कतवैये

अधिक निपुण, और परिश्रमी हैं और ये अधिक समय लगाते हैं और इनकी रुई उनके रिश्तेदार धुन देते हैं ।

पर्दानशीन औरतों की भी एक सभा हुई । ये स्त्रियां आन्ध्र के प्राचीन क्षत्रिय राजाओं के वंशधर राजुओं के परिवार की हैं। दक्षिण भारत में भी ये अपना पर्दा रक्खे ही हुई हैं और जहां तक किसीको याद है उनकी यह पहली ही सभा थी। उनके समाज का कोई मित्र सौ चर्खे लेकर पहुंचा कि जो कातना चाहें उनमें ये चर्खे बांट डाले जायं। उनमें से एक सब से धनी वहिन ने उसी दिन से खादी पहिनने और चर्खा चलाने का वचन दिया ।

गांधीजीने कहा, 'मगर तुम तो विवाहित हो ।'

'जी हां।'

'मगर क्या तुम्हारे पति खादी पहनते हैं ?

उसने शर्माते हुए कहा, 'नहीं ।'

'तब क्या वे तुम्हें खादी पहनने देंगे ?'

'वे जो चाहेंगे, मैं करूँगी ।'

'तब तुम्हारी प्रतिज्ञा का क्या हाल होगा ?'

अब तो बेचारी कैद में पडी ।

'मगर क्या तुम अपने पति पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती हो ?'

उसने कुछ हिचक के साथ कहा, 'हां'।

'और अगर वे तुम्हें खादी न पहनने को कहें तो तुम क्या उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर सकती हो ?

अब तो बिलकुल चुप रही ।

'क्या तुम जानती हो कि सीता ने राम का हुक्म तोडा था ।

वह उस कथा को याद नहीं कर सकी ।

'खैर, मैं तुम्हें बतलाता हूँ ।

जब राम ने उन्हें वन में जाने से मना किया था तो उन्होंने राम की बात क्या मानी थी ? नहीं । क्योंकि वे जानती थीं कि राम के पीछे जाना उनका धर्म है । उसी प्रकार तुम अपने पति में श्रद्धा रक्खो, भक्ति रक्खो, उनसे प्रेम करो, मगर जब वे तुम्हारे धर्म के रास्ते में बाधा दें तो उनकी बात मानने से इनकार कर सकती हो।'

इस बात का असर पडा हुआ सा मालूम पडा ।

थैली भी काफी बडी थी और सार्वजनिक सभा में नीलाम भी काफी सफल रहा । इसके लिए सत्तूर के जमींदार को धन्यवाद देना पडेगा जो नीलाम में सबसे आगे बढे हुए थे । ये सज्जन मद्रास काउन्सिल के स्वतंत्र दल के मुख्य प्रचारक हैं । मदुरा की थैली में भी इन्होंने काफी बडी रकम दी थी और यहां भी ये सबसे आगे रहे और स्वागत समिति के अध्यक्ष थे । स्वतंत्र दल के इस धनी जमींदार की खादी में दिलचस्पी उनके वर्ग के सभी जगह के लोगों के लिए अनुकरणीय है ।

मगर राजापालयम की मुख्य बात तो थी वहां के कोई बीस धनी आदमियों का मिल कर खादी बनानेवालों का संघ बनाना । उन्होंने अपने मानपत्र में कहा था, 'यहां के भिन्न २ खादी बनानेवालों के बीच थोडी चढाऊपरी है और इस लिए हम लोगों ने खादी बनाने के लिए सिर्फ एक ही संस्था रखने का निश्चय किया हैं जिसमें सभी खादीप्रेमी हिस्सा खरीद सकें । हम लोग बहुत जल्द इस संस्था की रजिस्ट्री करा लेंगे और आप कृपा कर इसको खोल देवें ।' यही तो गांधी जी के मन का काम था और उन्होंने इस संस्था की सफलता के लिए कई अत्यन्त सुन्दर सलाहें दीं । उन्होंने कहा, 'याद रखिये कि दुनिया की बडी से बडी संस्थाएँ बहुत बडे नफा का भरोसा नहीं करती बल्कि वे काम के अधिकाधिक फैलाव पर निर्भर करती हैं । दुनिया में बैंक औफ इंगलैण्ड सब से बडा आर्थिक संघ है और सब से अधिक प्रभावशाली भी है । इसकी जितनी बडी साख है, वह दुनिया की किसी दूसरी संस्था की नहीं है और इसका इतिहास तो जादू की कहानी सा लगता है । कुछ अच्छे से अच्छे अंगरेजों ने इसे आज का उन्नत स्वरूप देने के लिए अपनी जान दे डाली है । और इसने अपने प्रति बहुत बडा विश्वास पैदा कर लिया है क्योंकि यह थोडे काम पर बहुत अधिक नफा उठाने की नीति नहीं मानता । लाभ तो यह उठाता ही है, मगर काम के फैलाव के बदौलत । इस लिए मैं आशा करता हूं कि आप बहुत बडे नफे का उद्देश्य न रक्खेंगे मगर आपकी पहली फिक्र होगी कतवैयों की भलाई। आप आपस में झगडा नहीं करेंगे और अगर आप सच्चा संघ बना सकें तो इसकी कोई वजह नहीं कि आप भी बैंक औफ इँगलैण्ड से भी बडी साख की आशा क्यों न रक्खें । आखिर बैंक औफ इंगलैण्ड के मुवक्किल बडे और धनी आदमी हैं और उनका नाम धाम हिसाब किताब बहुत बडी बडी बहियों में ही रक्खे जा सकते हैं, मगर आपके मुवक्किलों का नाम तो किसी बही में नहीं अंट सकता । मैं आपसे जो बात कहता हूँ उसके लिए जरा दूर दृष्टि चाहिए और आपको लग सकता है कि मैं मानों ख्वाब देख रहा होऊं । मगर मैं कहता हूं कि यह बात नहीं है । अगर हिन्दुस्तान के लोगों का मुझमें विश्वास हो गया तो मैं अ० भा० चर्खा संघ को दुनिया का सबसे बडा सहयोग संघ बनाने की आशा रखता हूं । वह समय दूर भले ही हो मगर मैं निराश नहीं होता । आपके लिए इससे कम या अधिक और कुछ नहीं चाहिए कि आपकी साख आपके मुवक्किलों और आपके आसपास के लोगों में बनी रहे । और अगर आप सोने के अंडे देनेवाली चिडिया को ही मार न डालें तो यह बात हो सकेगी । आप को सीधे सादे, समझ में आने लायक नियम, अपने संघ के कम से कम लाभ उठाने के बारे में बनाने चाहिए और उन्हें संघ के लिए लाजिमी बनाना चाहिए । मुझे आशा है कि आप मेरी उमेदें पूरी करेंगे ।'

एक और सच्चे क्रिस्तान

इस भ्रमण में कई जगह तो हम लोग पहले ही पहल पहुँचे हैं । गांधीजी के स्वागत में जो जबर्दस्त भीड खडी होती है उसमें से आदमियों को चुनकर पहचान लेना बडा मुश्किल होता है । कोविलपट्टी में एक बूढी ईसाई महिला, भीड में से होकर गांधीजी के पास आ पहुँची । वे गांधीजी के पैरों पर गिर पडी ' और आँखों में आंसू भर कर उन्होंने अपनी नम्र थैली भेंट की । गांधीजी को केवल इतना भर कह कर 'मेरी पाठशाला में दश लडकियां चर्खा चलाती हैं ' वे बडे भक्तिभाव से लौट गयीं । शरीर में वे खादी का केवल एक बे सिया हुआ टुकडा पहने हुए थी और उनके धर्म का पता तो उनका नाम ' राचेल-अम्मा ' सुनकर ही चला । उन्होंने १०१) की थैली दी थी जो कोविलपट्टी की सार्वजनिक थैली का दशवां हिस्सा था ।

(यं० इं०)

महादेव देशाई

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, कार्त्तिक वदी १० संवत् १९८४

मद्रास का सत्याग्रह

नीलपुतले के सत्याग्रह के स्वयंसेवकों ने मुझ को जो वचन दिया था उसके मुताबिक उन्होंने मुझे मैंने जो बातें जानना चाहीं थीं उनके कागजपत्र भेजे हैं। उस पर से यह मालूम होता है कि जब मुझे ये कागजपत्र भेजे गये तब उस हलचल को शुरु हुए कोई डेढ महिना हुआ था। इतने में ३० स्वयंसेवकों को जेल मिली है। २९ हिन्दू, १ मुसलमान १ पेंतीस साल का बहन और १ उनकी ९ साल की लडकी है। इन ३२ जनों में से दो शख्सो ने माफी मांग ली और छूट गये। यह माफी मांगना यदि छूत के रोग सा साबित न हो तो कुछ थोडे लोगों के माफी मांगने से डरने का कोई कारण नहीं है। हरएक युद्ध में कुछ ऐसे लोग तो होते ही हैं। जो लोग जेल गये है वे कोई प्रसिद्धिप्राप्त मनुष्य नहीं है। सत्याग्रह के युद्ध में यह बात कोई हानिकर नहीं बल्कि लाभकारक है। सत्याग्रह में सत्य से मिलनेवाली प्रतिष्ठा के सिवा दूसरी किसी प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं है, तपश्चर्या के बल के सिवा दूसरे किसी बल की आवश्यकता नहीं है। यह बल अपने युद्ध के प्रति अटल श्रद्धा होने से और सम्पूर्ण अहिंसावृत्ति से मिलता है। स्वयंसेवक अधीर न हों। धैर्यहीनता हिंसा का अंग है। सत्याग्रही विजय का विचार तक नहीं करता। उसे तो विजय के बारे में कुछ भी शंका नहीं होती, परन्तु वह यह भी जानता है कि विजय देनेवाला तो एक ईश्वर ही है, उसका अपना काम तो सिर्फ संकट सहन करना है।

मुझे जो कागज पत्र भेजे गये हैं उनमें आमदनी और खर्च का हिसाब दिया गया है। आमदनी का हिसाब ब्यौरेवार है और कुल रु. २२८-२-६ बताये गये हैं। खर्च का हिसाब यों दिखाया गया है। भोजन खर्च रु. ७१-७-९; गाडी भाडे के रु. ५३-२-६; सभा के विज्ञापनों की छपाई रु. ३९-४-०; डाक खर्च रु. २१-८-९; सभा में बत्ती वगैरह का खर्च रु.२२-८-०। मुझे इस हिसाब से संतोष नहीं होता है। यह हिसाब इससे भी अधिक ब्यौरेवार होना चाहिए था। और सत्याग्रही भोजन खर्च, गाडीभाडा, और बत्ती इत्यादि पर कम खर्च करे तो अच्छा हो। इसमें यदि मेरी कोई भूल होती हो तो वे सुधारें। मैं यह जानता हूँ मेरी अपनी सभाओं के पीछे भी इस प्रकार अमर्यादित खर्च होता है। महासभा सप्ताह में भी अत्यधिक खर्च होता है ऐसा अवश्य आक्षेप किया जा सकता है। परन्तु दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि के नाम से अपनी पहचान देनेवाले मेरे जैसों के संबन्ध में भी क्या होता है यह कह कर इस विषय में क्या होना चाहिए यह दिखाना चाहता हूँ। जहां ६ संतरे की जरूरत होती है वहां ६० मँगाये जाते हैं, जहां एक मोटर से काम चलता है वहां ६ तैयार रक्खी जाती हैं, और जहां एक लालटेन से काम चल सकता है वहां एक बडी किटसन लाइट रक्खी जाती है। सत्याग्रहियों को यह समझना चाहिए कि उनको जो धन मिलता है उसमें से एक एक पाई को भी एक कंजूस आदमी की तरह खर्च करना उनका फर्ज है। मेरी सूचना तो यह है कि वे किसी प्रसिद्ध स्थानिक मनुष्य को अपने तमाम रुपये सौंप दे और किसी परोपकारी ओडिटर के पास अपने हिसाब की जांच कराया करें। सार्वजनिक रुपये खर्च करने में बडी प्रामाणिकता और ध्यान की आवश्यकता है। शुद्ध, दृढ, सार्वजनिक जीवन के विकास के लिए भी यह अत्यावश्यक है।

तीसरे कागज में सत्याग्रहियों ने लोगों से प्रार्थना की है। सत्याग्रही के निवेदन में विनययुक्त भाषा होनी चाहिए। इस प्रार्थना-पत्र में ऐसी कोई अनुचित बात नहीं लिखी गयी है परन्तु उसकी भाषा तो बहुत कुछ सुधारी जा सकती थी। 'नील ही नहीं परन्तु उसकी अधम प्रजा का नाश करना चाहिए।' यह वाक्य उस प्रार्थना पत्र को शोभा नहीं देता। जनरल नील तो बेचारा ईश्वर के दरबार में है। आज तो हमें उसके पुतले से काम है; और वह उस पुतले के साथ नहीं, परन्तु जिस सिद्धान्त के कारण यह पुतला खडा किया गया है उसका हम नाश करना चाहते हैं। हम किसी भी मनुष्य को नुकसान पहुँचाना नहीं चाहते। और हमें तो अपने ध्येय को पहुँचना है, और वह भी संकट सहन करके लोकमत और बन सके तो अंगरेजों का भी मत अपने पक्ष में ले कर। ऐसे कार्य में क्रोध और तिरस्कार की भाषा के लिए स्थान नहीं हो सकता।

इतना स्वयंसेवकों के प्रति।

अब लोगों के प्रति। इन स्वयंसेवकों को मदद करना उनका स्पष्ट कर्तव्य है। लोग भले ही जेल न जायं परन्तु वे इस हलचल की अनेक प्रकार से निगरानी कर सकते हैं, उस पर अंकुश रख सकते हैं, रास्ता दिखा सकते हैं और मदद कर सकते हैं। इस पुतले को हटाने की हलचल एक भयंकर रोग के बाह्य चिह्न का नाश करने की हलचल के बराबर है। और यह पुतला हटाया जायगा तोभी रोग का नाश न होगा। फिर भी रोग का दुःख कुछ कम होगा और रोगनिवारण का रास्ता मिलेगा।

अक्सर गहरे रोग के मूल उसके बाह्य चिह्नों पर प्रहार करने पर मालूम किये जा सकते हैं। इसलिए सत्याग्रही स्वयंसेवक जब तक शुद्ध युद्ध करेंगे और सत्याग्रह की शरतों का पालन कर युद्ध किये जावेंगे, तब तक वे लोगों की मदद और सहानुभूति के अधिकारी बने रहेंगे।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

कांगडी गुरुकुल से मदद

गुजरात ने संकटनिवारणार्थ जो प्रार्थना की थी उसका बहुत ही संतोष प्रद उत्तर मिला है। जिन्होंने आरंभ में ही मदद भेजी थी उनमें दो संस्थाऐं थीं; कांगडी गुरुकुल और शांतिनिकेतन। उनके इस दान से मुझे कितनी प्रसन्नता होगी यह जान कर उन्होंने दान तो सीधा श्री वल्लभभाई को भेज दिया और मुझे उसकी सूचना तार से दी। गुरुकुल के तरफ से जो दान चार हफ्तों में मिला उसका ब्यौरा भी श्री आचार्य राम देवजी ने लिख भेजा है। वे और भी अधिक भेजने की आशा रखते हैं।

"शिक्षकों ने अपने वेतन से कुछ हिस्सा दिया है। ब्रह्मचारियों ने अपने कपडे हमेशे की तरह धोबियों से न धुलाकर अपने हाथों से धोये और इस तरह बचत की है। कन्या गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों ने कुछ समय के लिए घी दूध छोड कर बचत की है।"

गुजरात में मदद प्राप्त करनेवाले और मदद पहुंचानेवाले यह स्मरण रक्खें कि जो दान प्राप्त हुए हैं उनमें कितनों के पीछे कितना त्याग रहा है। स्वामी श्रद्धानंद जब गुरुकुल के संचालक थे तब दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह के युद्ध के समय उन्होंने प्रथम जो त्याग की प्रथा दाखिल की उसका आज गुरुकुल के हर लडके लडकियों के त्याग से मुझे स्मरण होता है। अर्थात् गुरुकुल की परंपरा में पले हुए लडके लडकियों से प्रसंग आने पर ऐसे आत्मत्याग की आशा हमेशे रखनी चाहिए।

(यं. इं.) **मो० क० गांधी**

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय २२

'जाको राखे साइयां'

अब तो मैंने देश लौटने या वहां जाकर स्थिर होने की आशा छोड दी थी। मैं तो पत्नी को एक वर्ष की आशा देकर दक्षिण अफ्रिका लौट आया था। वर्ष तो बीता और हमारा पीछे लौटना दूर गया, इसलिए वालबच्चों को बुलाने का निश्चय किया।

लडके आये। उनमें मेरा तीसरा लडका रामदास भी था। वह रास्ते में स्टीमर के खलासी से खूब हिल गया था और उसने उसके साथ खेलते हुए हाथ तोड लिया था। कप्तान ने उसकी सेवा संभाल खूब की थी। डाक्टर ने हड्डी सीधी की थी और जब वह जोहान्सबर्ग पहुँचा, उसका हाथ लकडी की पट्टियों में बांध कर रुमाल से गले में लटकाया हुआ था। स्टीमर के डाक्टर की सलाह थी कि जखम का इलाज किसी डाक्टर से कराया जाय।

पर मेरा यह जमाना तो खूब जोरों से मिट्टी का प्रयोग करने का था। मेरे जिन मुवक्किलों का ऊँटवैद्य या नीमहकीम पर विश्वास था, उनसे भी मैं मिट्टी का ही प्रयोग कराता था। रामदास के लिए दूसरा और क्या किया जाय? रामदास की उम्र आठ वर्ष की थी। मैंने उससे पूछा कि 'अगर मैं तुम्हारा इलाज खुद करूँ तो घबरावोगे तो नहीं?' रामदास ने हँस कर मिट्टी का प्रयोग करने की मुझे इजाजत दे दी। जोकि इस उम्र में उसे भले बुरे का ज्ञान न था, मगर तौभी वह ऊँटवैद्य और भले डाक्टर का फर्क तो भले प्रकार जानता ही था। तौभी उसे मेरे प्रयोगों की खबर थी और मुझ पर विश्वास था, इसलिए निर्भय बना।

कांपते कांपते मैंने पट्टी खोली, जखम को साफ किया, और साफ मिट्टी की तह बांध कर, पहले जैसी पट्टी बांध ली। यों मैं खुद ही बराबर पट्टी खोलता और घाव साफ करता था। एक महीने में घाव बिलकुल चोखा हो गया। किसी दिन कोई विघ्न नहीं आया और दिनों दिन घाव भरता गया। स्टीमर के डाक्टर ने यह कहलाया था कि डाक्टरी मलहमपट्टी से भी इतना समय तो जायगा ही।

इन घरेलू दवाओं के विषय में मेरा विश्वास और उनका अमल करने की मेरी हिम्मत बढी। इसके बाद मैंने प्रयोग का क्षेत्र खूब बढाया। जखम, बुखार, अजीर्ण, कमला इत्यादि रोगों के लिए मिट्टी के, पानी के और उपवास के इलाजों का प्रयोग छोटे बडे स्त्री पुरुषों पर मैंने किये और कितने ही सफल भी हुए। ऐसा होने पर भी मेरी जो हिम्मत दक्षिण अफ्रिका में थी वह यहां नहीं रही और मैंने देखा है कि इन प्रयोगों में भी जोखम तो है ही।

इन प्रयोगों का वर्णन करने का मतलब मेरे प्रयोगों की सफलता दिखलाने का नहीं है। ऐसा दावा नहीं किया जा सकता कि एक भी प्रयोग सर्वांश में सफल हुआ था। डाक्टर भी ऐसा दावा नहीं कर सकते। पर यह कहने का मतलब यही है कि जिन्हें नये अपरिचित प्रयोग करने हों उन्हें अपने से ही शुरू करना चाहिए। यों हो तो सत्य जरा पहले ही प्रकट होता है और वैसे प्रयोग करनेवाले को उबार लेता है।

मिट्टी के प्रयोगों में जो जोखम थे वे ही यूरोपियनों के निकट परिचय में थे। भेद तो केवल प्रकार का ही था। पर इन जोखमों का खुद मुझे तो विचार तक नहीं आया।

पोलाक को मैंने अपने साथ ही रहने को निमंत्रण दिया और हम सगे भाई जैसे रहने लगे। पोलाक ने जिस स्त्री के साथ विवाह किया उसके साथ तो उनकी बहुत दिनों की मैत्री थी। दोनों ने समय आने पर विवाह कर लेने का निश्चय भी कर लिया था। पर मुझे याद आता है कि पोलाक कुछ द्रव्य संग्रह कर लेने की राह देख रहे थे। रस्किन का अध्ययन तो उन्होंने मुझसे बहुत पहले शुरू किया था मगर पश्चिम के वातावरण में रस्किन के विचारों का पूरा अमल करने का खयाल उन्हें सूझ नहीं सकता था। मैंने दलील की, 'जिसके साथ हृदय की गांठ बँधी, उसका वियोग केवल धन की कमी से सहना, अनुचित समझा जायगा। आपके हिसाब से तो कोई गरीब आदमी विवाह कर ही नहीं सकेगा। परन्तु अब तो तुम हमारे साथ रहते हो। इसलिए घरखर्च का सवाल नहीं है। तुम शीघ्र ही विवाह कर लो। यही मैं इष्ट मानता हूँ।

पोलाक के साथ मुझे दो बार बहस कभी नहीं करनी पडी है। उन्होंने तुरत मेरी दलील मान ली। भावी श्रीमती पोलाक तो विलायत में थीं। उनके साथ पत्रव्यवहार चलाया। वे राजी हुई और विवाह करने के लिए कुछ ही महीनों में जोहान्सबर्ग आ पहुँची।

विवाह में खर्च तो कुछ किया ही नहीं था। विवाह की कोई खास पोशाक भी नहीं थी। इन्हें धर्म-विधि की गर्ज नहीं थी। मिसेज पोलाक जन्मसे ईसाई और पोलाक यहूदी थे। दोनों के बीच जो समान धर्म था वह नीतिधर्म था।

पर इस विवाह का एक मनोरंजक प्रसंग तो लिख डालूं। ट्रांसवाल में गोरों के विवाह को लिखनेवाले कालों के विवाह नहीं लिखते थे। इस विवाह में ×अणवर या उपवर तो मैं ही था। गोरे मित्र को हम ढूँढ सकते थे मगर यह बात पोलाक को सहन हो तब तो। इससे हम तीनों जने अफसर के पास हाजिर हुए। जिसमें मैं अणवर होऊँ उस विवाह में दोनों पक्ष के गोरे होने का अफसर को कैसे भरोसा हो? उसने खोज करने के लिए विवाह मुल्तवी रखना चाहा। दूसरे दिन नेटाल का त्योहार था। जामा जोडा पहन कर घोडे चढे वरवधू के विवाह की रजिस्ट्री की तारीख का यों बदलना हम सब को असह्य लगा। बडे मैजिस्ट्रेट को मैं पहचानता था। वह इस विभाग का ऊपरी अफसर था। मैं इस दंपति को लेकर उनके आगे हाजिर हुआ। वह हंसा और मुझे चीट्ठी लिख दी। यों यह विवाह रजिस्टर हुआ।

आज तक थोडे बहुत परिचित गोरे पुरुष मेरे साथ रहे थे। अब एक अपरिचित अँगरेज महिला कुटुम्ब में दाखिल हुई। मुझे तो याद नहीं कि इसके लिए मुझे कभी खेद हुआ हो। पर जहाँ अनेक जाति के और स्वभाव के हिंदुस्तानी आवाजाही करते, जहाँ मेरी पत्नी को ऐसे अनुभव बहुत कम थे, वहाँ इन दोनों को कभी उद्वेग का प्रसंग आया होगा। पर एक ही जाति के कुटुम्ब में ऐसे प्रसंग जितने आते हैं, उसकी अपेक्षा इस विजातीय कुटुम्ब में तो अधिक आये ही नहीं। बल्कि जिनके आने की मुझे याद है वे भी नहीं से गिने जायेंगे। सजाति विजाति तो मन की तरंगे हैं।

वेस्ट का विवाह भी यहीं मना लूं। जिंदगी के इस काल में ब्रह्मचर्य के विषय में मेरे विचार पक्के नहीं हुए थे। इससे मेरा धंधा था अपने कुँवारे साथियों का विवाह करा देना। वेस्ट को जब पितृयात्रा करने जाने का समय आया तो मैंने उन्हें भरसक हो सके तो विवाह करके ही आने को सलाह दी थी। फिनिक्स

×अणवार या Best man का कुछ हद तक शहबाले से परिचय दिया जा सकता है।

में हम सब के घर बन गये थे और हम सब किसान हो बैठे थे इस लिए विवाह या वंशवृद्धि का भय नहीं था।

वेस्ट, लेस्टर की एक सुन्दर कुमारिका को व्याह लाये। लेस्टर में जूतों का जो बडा कारखाना चलता है उसमें इस बाई का कुटुम्ब काम करता था। मिसेज वेस्ट ने भी जूते के कारखाने में थोडा समय लगाया था। मैंने उन्हें 'सुन्दर' कहा है क्योंकि मैं उनके गुणों का पुजारी हूँ और खरा सौन्दर्य तो गुण में ही होता है। वेस्ट अपनी सास को भी साथ लाये। वह भली बूढी माई अभी जीती है। वह अपने उद्यम और हँसमुख स्वभाव से हम सबको हमेशे शरमाती। जिस प्रकार इन गोरे मित्रों का विवाह कराया, उसी प्रकार हिन्दुस्तानी मित्रों को अपने कुटुम्ब को बुलाने को उत्साहित किया। इससे फिनिक्स एक छोटा सा गांव हो पडा और वहां पांच सात हिन्दुस्तानी परिवार बसने लगे और वृद्धि पाते गये।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

हाथ करघे की भ्रान्ति

सौराष्ट्र के मानपत्र के उत्तर में गांधी जी ने मदुरा में कहा :

"मेरे बचपन के घर राजकोट से आपके संबंध के उल्लेख का मुझ पर बडा असर पडा है। मगर कृपा कर याद रखिए कि मेरे साथ ऐसे निकट संबंध का दावा करना मुश्किल काम है। क्योंकि इससे तुमने मेरे सभी कामों के मुताल्लिक जो तुम्हें पसंद पडे, अपनी जिम्मेवारी बढा ली है। इतने अधिक रिश्तेदारों के होने का फायदा ही क्या है जब आदमी आपत्ति के समय उनसे मदद ही नहीं मांग सके। मगर अगर तुम चाहो तो मुझसे इससे भी निकट के संबंध का दावा कर सकते हो। क्योंकि अगर्चे कि मैं एक ऐसे पिता का पुत्र होने से गौरवान्वित हूँ जो एक रियासत के मंत्री थे तो अब अगर और भी गौरवान्वित होना संभव हो तो मैं तुम्हारे साथ जुलाहा बन कर और भी गौरवान्वित हुआ हूँ। क्योंकि अगर मेरे पिता जी एक छोटी सी रियासत का भाग्य संवार रहे थे जो उनके हाथों में थी, तो तुम और मैं एक वैसे पेशे से जो तुम्हारा मौरूसी है और जिसे मैंने अपनी ख्वाहिश से अख्तियार कर लिया है, इस महान देश का भाग्य संवार सकते हैं। और तुम्हें इस बडे संबंध की याद दिलाने में अधिक गौरव का अनुभव करने में मैं पूज्य पिताजी की स्मृति की अवमानना नहीं करता हूँ क्योंकि जनसेवा के रास्ते में मैं उन्हीं के पीछे चल रहा हूँ। और तुम से इस निकटतर संबंध का दावा करने के बाद मुझे तुम्हारे मानपत्र की एक महत्वपूर्ण बात पर आना पडता है।

"तुम मुझे देशी मिलों का या विलायती सूत ले कर भी हाथ करघे का प्रचार करने को कहते हो क्यों कि तुम जैसा महीन और जितनी मिकदार में सूत चाहते हो, हाथकता सूत नहीं मिलता। अब मेरे इस सलाह के नहीं मानने के कारण मैं बतलाता हूँ। मैं बतला दूँगा कि अगर यह सलाह मैं मान लूँ तो इससे तुम्हारा भी बुरा होगा, और जो लोग मेरी दृष्टि में हैं, और जिनका खयाल तुम्हें भी रखना चाहिए, उनका भी बुरा होगा। जैसे कि तुम समझते हो कि हर एक जुलाहा जो मिल का या विलायती सूत बुनता है, उसे मिलें जो नाच चाहें नचा सकती हैं। बतौर जुलाहे के तुम्हें समझना चाहिए कि जिस दिन दुनिया की मिलें वह कपडा बुनने लगेंगी जो केवल तुम्हीं आज बुनते हैं, उस दिन तुम्हारे हाथों से हाथ करघे का व्यवसाय निकल जायगा। अगर तुम यह बात न जानते हो तो मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि दुनिया के कितने ही चतुर मिल-मालिक उस कपडे को बुनने का प्रयोग कर रहे हैं जो आज केवल तुम्हारा ही इजारा है। अगर मिल-मालिक या मिलें तुम्हारे उद्योग हथियाने की कोशिश करती हैं तो यह उनका दोष नहीं है। अपने कलपुर्जों में बराबर उन्नति करते जाना और दुनिया के हाथशिल्प पर निरंतर हाथ बढाते जाना — यही तो इन व्यवसायियों का उद्देश्य है। सचमुच उनकी जिन्दगी के लिए यह जरूरी है कि वे यह उद्योग भी हथिया लेवें। अगर जुलाहे मेरी बात न मानें तो हाथबुनाई के भाग्य में भी वही बात जरूर लिखी है जो हाथकताई को भुगतनी पडी है। तुम्हें मैं बतलाता हूँ और तुम्हें यह बात मालूम नहीं है और हिन्दुस्तान में बहुत कम लोग यह बात जानते हैं कि मैंने तुम्हारे ही जैसा काम शुरू किया। मैंने पहले पहल १९१५ में कपडा बुनना शुरू किया। मैंने पहले कपडा बुनना शुरू किया और पीछे से सूत कातना। मैंने इन्हीं हाथों से विलायती और देशी मिलों का सूत भी बुना है। मगर मेरे इस दावे को तुम माफ करोगे कि मैं इस धंधे को तुमसे अधिक जानता हूँ। अपने करघे के आगे बैठे हुए — और मैं वही जगह बतला सकता हूँ जहां मैं बैठा हुआ था — कपडा बुनते हुए मैं सोच रहा था कि अगर जो कपडा हम बुनते हैं, उसे बुनने का संगठन मिलें कर सकें तो फिर मेरा, हजारों, लाखों दूसरे बुननेवालों का क्या हाल होगा? और जब कि मैं यह सोच कर रहा था, मुझे रास्तों में भूखों मरनेवाली लाखों बहिनों की याद आयी और बुनते हुए ही मैं उनके दुर्भाग्य का विचार करने लगा। मैं उदास हो गया। और मैं अपने साथियों के साथ मिल कर बडे परिश्रम से किसी ऐसे कर्तव्य को ढूँढने लगा जो हमें कातना सिखलावे। मैं यह भी पता लगाने लगा कि क्या हिन्दुस्तान में एक भी गांव है जहां पर हाथकताई अभी प्रचलित हो? उन दिनों मुझे इसकी कोई खबर नहीं थी कि पंजाब में अभी कुछ बहिनें चर्खे चला रही थीं। मगर निराशा के गढे में डूबते डूबते मैंने गुजरात की एक बहादुर विधवा बहिन का आश्रय पकडा। वे अछूतों के लिए काम करती थीं। मैंने उनसे अपना यह दुःख कहा और उन्हें कहा कि 'तुम गुजरात के गांव गांव में धूम कर देखो और जब तक तुम्हें ऐसी बहिनें नहीं मिलें, जिनके हाथों में अब तक सूत कातने की कला है, तब तक चैन मत लो।' और उसीने बिजापुर में कुछ मुसलमान औरतों को ढूँढ निकाला जो सूत कातने को तैयार थीं, अगर उनका सूत खरीद लिया जाता। उसी क्षण से वह महाजागृति शुरू हुई जो आज १५०० गांवों में फैली हुई है। इसीके बाद, आश्रम में जो मेरे हाथों में था, एक भी मिल का या विलायती धागा नहीं बुनने का निश्चय किया।

"तुम्हारे विचार के लिए मैं एक और महत्वपूर्ण बात कहता हूँ। अगर तुम हाथ-बुनाई के उद्योग का इतिहास पढो तो तुम्हें पता चलेगा कि आज कई हजार जुलाहे अपना धन्धा छोडने को लाचार हुए हैं। यही सौराष्ट्रों को ही धन्धा करनेवाले कितने जुलाहे आज बम्बई में झाडू लगा रहे हैं। पंजाब के जुलाहों में कुछ तो फौज में हैं और कसाई बन गये हैं। और इसलिए तुम समझ सकोगे कि मैं क्यों तुम्हारी सलाह नहीं मान सकता। इसके मानी यह नहीं है कि तुम आज से ही कपडा बुनना छोड दो। हां, तुम्हें मेरी ओर से प्रोत्साहन की जरूरत नहीं है। मगर मैं कहूँगा कि इसमें तुम्हारा ही भला है कि मैं मिल के सूत के कपडे को इस आन्दोलन से मिला नहीं हूँ जिसे मैं चला रहा हूँ। इसके समर्थन करने में तुम्हारा भी उतना ही स्वार्थ है क्योंकि अगर यह जम जाय, उन्नतिशील और स्थायी हो जाय तो तुम में से हर एक को प्रतिष्ठित रोजगार मिलेगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि अगर यह हाथ-कताई का आन्दोलन आगे बढेगा तो तुम्हारे भी काम आ सकता है।"

(यं० इं०)

पुनर्निर्माण का आधार

२

मन और शरीर में जैसा संबंध है वैसा ही लोक-स्वभाव और लोगों की बस्तियों में है। जैसे पूर्वजन्म के और आनुवंशिक संस्कार होते हैं वैसा ही मनुष्य को शरीर प्राप्त होता है। और एक बार शरीर धारण किया कि फिर उस शरीर का उसके मन पर असर पडता रहता है। इसलिए यह कह सकते हैं कि जैसी नगररचना होती है वैसी ही समाज की मनोरचना भी होती है। समाजशास्त्री किसी संस्कृति का अध्ययन करते समय प्राचीन नगरों की रचना देख कर उसकी रचना के समय लोकस्थिति और लोक-स्वभाव के बारे में निश्चयपूर्वक अनुमान करते हैं। काशी की गोल और संकडी गलियां और कांची की विशाल राजवीथियां दो भिन्न संस्कृतियों की सूचना देती है। नर्मदा के किनारे थोडी जगह में बसा हुआ भडोंच और मंदगति बहनेवाली झेलम नदी की शाखा-प्रशाखाओं के किनारे किनारे फैला हुआ श्रीनगर जितना प्रकृति की हुक्मबरी सूचित करते हैं उतना ही वे मनुष्य-स्वभाव दर्शक हों तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जयपुर और अल्मोडा के बीच भी ऐसा ही भेद मालूम होता है।

प्राचीन अनुभव और प्राचीन इतिहास के अनुकूल गुजरात के शहरों ने और गांवों ने एक विशिष्ट रूप धारण किया था। आज नये अनुभव और नयी परिस्थिति के कारण हमें कुछ नयी बात सूझती है या नहीं यही महत्त्व का प्रश्न है। राजा को विष्णु का अवतार मान कर उसके छत्र के नीचे व्यक्तिगत या ज्ञाति संबंधी उन्नति का प्रयत्न करनेवाले लोग एक प्रकार की रचना करेंगे और लोकसत्ता को माननेवाली राष्ट्रीयता का विचार करनेवाली पचरंगी प्रजा अपने नगरों की और गावों की दूसरे प्रकार से रचना करेगी। सुखभोग के साधनों के कारण भी उसकी रचना में आवश्यक परिवर्तन होता है। पानी के नल देखने में तो बडे ही सादे दिखाई देते हैं परन्तु उसकी एक अलग ही संस्कृति होती है। शहर में जो नल हैं उन की शरीर की शिराओं के साथ तुलना की जा सकती है। जहां कहीं नल पहुंचे वहां का एकाकी स्वावलंबन मिट गया और परस्परावलंबी नागरिक जीवन का आरंभ हुआ।

गुजरात में यदि पुनर्निर्माण के युग का आरंभ करना हो तो गुजरात के हृदय में पुनर्निर्माण का स्मृतियों के नियमों की तरह निश्चित रूप होना आवश्यक है। अब तक हमलोग अनेक प्रकार की कठिनाइयां उन्हें अनिवार्य समझ कर सहन करते आये हैं। उन कठिनाइयों के विरुद्ध चाहे कितनी ही बातें क्यों न कही गयी हों उन्हें अनिवार्य मान कर निभा लेने के सिवा और कोई उपाय न था। परन्तु अब जब प्रकृति की अराजकता ने हमलोगों को स्वतंत्रता अनुभव करने का मौका दिया है तब हमारे में उससे लाभ उठाने की कितनी हिम्मत है यह देखना होगा।

हमारे सामने उदाहरण के तौर पर दो तीन सवाल स्पष्ट हैं। जब ज्ञाति और काम धन्धे लगभग समान थे उस जमाने में नगरों में और गांवों में ज्ञाति के हिसाब से जुदे जुदे महोल्ले और विभाग किये गये थे। परंतु जब परिस्थिति के बदल जाने के कारण ज्ञाति का यही भाव पुरुषार्थ को नष्ट करनेवाला और क्लेश बढानेवाला प्रतीत हो तो समान शील, चारित्र्य, और कार्य का विचार कर के लोगों की बस्ती के नये विभाग बनाना उचित है या नहीं यह एक प्रश्न है। एक ज्ञाति के लडकों को एकत्र रखने के लिए छात्रालय बनाना जैसे सर्वांश में चाहने योग्य बात प्रतीत नहीं होती उसी प्रकार बस्ती के विकास में अथवा पुनर्निर्माण में ज्ञाति के हिसाब से महोल्ले बनाना इष्ट है या नहीं इसका प्रथम विचार होना चाहिए। देशसेवा के लिए अथवा सामाजिक पुरुषार्थ करने में जिनका जीवन परस्पर सहकार से संयुक्त है वे जातपांत का विचार किये विना ही पास पास रहना पसंद करें तो यह केवल स्वाभाविक और अपरिहार्य है। जहां मीलें हैं वहां पास ही में अच्छी हवा उजाले की जगह देख कर मिलों पर निभनेवाले कारीगर या अधिकारी रहें यह यदि चाहने योग्य है तो उनके ज्ञाति के हिसाब से विभाग नहीं किये जा सकते हैं। अधिक से अधिक दो विभाग करने की आवश्यकता रहेगी; एक मांसाहारी महोल्ला और दूसरा निरामिषाहारी। दूसरे क्षुद्र भेद तो छोड ही देने होंगे।

आज यह कह सकते हैं कि नगरों के पुनर्निर्माण का सवाल हमारे सामने नहीं है। गांवों का और खेती से संबंध रखनेवाले कस्बों का ही विचार करना यहां प्रस्तुत है। क्योंकि नुकसान वहीं अधिक हुआ है। जो बस्तीयां खेती के साथ संबंध रखती हैं उन्हें यदि हम गांव का नाम देंगे तो उसमें छोटे छोटे शहरों में गिनी जानेवाली बस्तियां भी शामिल होंगी। ऐसी बस्तियों का पुनर्निर्माण करना चाहने योग्य है और संभव भी है। लोगों में से यदि डरपोकपन दूर हो जायगा तो खेत का मालिक अपने खेत में घर बांध कर रहेगा और खेत का काम करेगा। यह स्थिति स्वाभाविक है और लोगों को वह पसंद भी होगी। लूट और डकैती के भय से और जातपांत के कुछ नियमों के कारण ही तो हम गांवों में भी घनी बस्ती में रहने के आदी हो गये हैं। एक दूसरे से सटा कर कतारों में घर बांधने की व्यवस्था करके हमने घर बनाने का बहुत कुछ खर्च घटा दिया है। एक दूसरे के आश्रय से घरों को चाहे जितना ऊंचा बनाना आसन हो गया है। उससे पडोसी के जीवन में ओतप्रोत हो जाने की सुविधा भी प्राप्त हुई। हर एक का खानगी जीवन पडोसी की दृष्टि के सामने खुला रहने के कारण सामाजिक निगरानी अनायास ही होने लगी। ऐसे ऐसे लाभ अवश्य हुए परन्तु हर एक लाभ का दूसरा पहलू भी होता है। स्वतंत्रता, हिम्मत पौरुष, कल्पकता, और तन्दुरस्ती के विकास के लिए जिस मानसिक विशालता की आवश्यकता है वह कतारों में बनाये गये घरों में प्राप्त नहीं होती। घनी बस्ती में रह कर एक प्रकार से हम लोगों ने आत्मरक्षा की, सहीसलामती हासिल की और उसके लाभ भी पाये। परन्तु ऐसी सलामती पुरुषार्थ का ह्रास करनेवाली है। मनुष्य सलामती ढूंढने लगता है कि उसकी कितनी ही कीमती वृत्तियों का और शक्तियों का ह्रास होता है। उसमें जोखम उठाने की बहादुरी नहीं रहती। घनी वस्ती में रहने से क्लेश बढता है। स्वतंत्र विकास के लिए अवकाश नहीं रहता और 'भेडिया धसान' की वृत्ति से बचना मुश्किल हो जाता है। अपने ढंग से अपने जीवन का विकास करने की वृत्ति नष्ट हो जाती है। और वह वृत्ति कायम भी रहे तो उसके अनुसार काम करने की अनुकूलता नहीं होती। इससे तो प्रत्येक मनुष्य अपने ही खेत में घर बांध कर रहे तो घर के आसपास खुली जमीन होने के कारण शारीरिक तथा सामाजिक आरोग्य, दोनों की रक्षा हो सकती है। झगडे भी कम हो जायं और स्वाभिमान और परस्पर आदर-वृद्धि की पुष्टि के लिए अवकाश रहे। और सबसे अधिक लाभ तो यह होगा कि कुटुम्ब के प्रत्येक व्यक्ति को फुरसद के थोडे से थोडे समय के सदुपयोग करने की सुविधा होगी। घर के चारों ओर बागीचा लगा हो, तुलसी के पौधे हो, शाकभाजी बोयी हो, देव-कपास के या दूसरे कपास के पांच सात पौधे हों, गाय या बकरी भी बंधी हो तो कुटुम्ब के लोगों को अनेक प्रकार से उद्यमी जीवन बिताने का मौका मिलेगा और घर के लोगों को अत्यन्त आवश्यक ऐसी निरक्षर शिक्षा मिलेगी। साक्षर शिक्षा की कृत्रिमता घटाने का इससे अच्छा उपाय और क्या हो सकता है?

तो हम क्या करेंगे ? घरों की दिवालें बनावेंगे या उसका बागीचा बनावेंगे ? इस प्रश्न का निर्णय आज ही किया जा सकता है। गांवों में और छोटे शहरों में तो सिर्फ बाजार की दूकानें ही कतारों में बांधना बस होगा। बाकी के मकान दूर दूर बनाये गये हों तभी तो बढनेवाली बीमारी से और समाज का नाश करनेवाले झगडों से मुक्ति मिलेगी।

जमीन के लगान के वर्तमान कानून के मुताबिक भी हरएक सच्चे किसान को अपनी जमीन पर अपनी आवश्यकता के अनुसार पक्का मकान बना कर रहने की इजाजत होती है। ऐसा मकान बनाने से उसे कोई अधिक लगान नहीं देना होता। परन्तु इस नियम से लाभ उठाने की हिम्मत और ज्ञान लोगों के अबतक न था। लोक-जागृति के युग में यदि वे चाहें तो ये दोनों गुण प्राप्त कर सकते हैं। कुछ ही हिम्मतवान् और चतुर किसान चाहें तो ऐसा आदर्श गांव बसा सकते हैं। एक ऐसा गांव सफल हुआ तो उसके चारों ओर दूसरे गांव बसेंगे वे भी वैसे ही होंगे। गांवों की व्यापक आवश्यकताओं को पूरा करने के मूल से ही तो शहरों की उत्पत्ति होती है। किसी प्रदेश में ऐसे आदर्श और बहादुर गांवों का समूह जम जाय तो फिर आप ही उनके बीच में एक शहर बस जायगा। अथवा पास ही में कोई ऐसा शहर हो जो इनके अनुकूल हो तो उस पर इन गांवों का असर पडे बिना न रहेगा। परन्तु यह तो भविष्य की बात है।

चाहे जैसी छोटी बस्ती नयी बसानी हो तो उस के लिए स्टेशन के रेल की लाइन जैसी घरों की कतारें बांधने से काम न चलेगा। कुछ बस्तियां तो बिच में एक बडा तालाब रख कर उसके चारों ओर बसी हुई होती हैं। कुछ बस्तियां एकाध छोटी सी पहाडी के या किले के चारों ओर बसी हुई होती है। मैं जहां से यह लिख रहा हूँ वह मदुरा मीनाक्षी के मंदिर को मध्य में रख कर उसके चारों और चौकोन फैला हुआ है। मीनाक्षी का बडा ऊंचा और चौडा रथ उत्सव के समय सारे शहर में जाता है इसलिए उस के रास्ते भी काफी चौडे हैं। और चौकोन के चारों कोनों पर रथ पहुंचाना हो तो रथ को खींचनेवाले सैंकडो लोगों के लिए काफी जगह रखनी चाहिए इस लिए हरएक रास्ते का सिरा एक बडा मैदान सा है। यह थी मूल रचना। अंगरेजी राज्य के आरंभ के बाद हमारा सामाजिक जीवन बहुत कुछ बिगड गया और बेजवाबदार बना इसलिए इस व्यवस्था को भी बहुत कुछ बिगाड दिया गया है। हम यदि फिर से ग्रामरचना या नगररचना का विचार करें तो अपनी नयी रहनसहन के अनुकूल ऐसी रचना कर सकेंगे। बस्ती के प्रत्येक विभाग में एक बडा चौडा खुला मैदान रक्खा हो तो वह उसके फेफडे का काम करेगा। बालक बालिकायें सुबह शाम उसमें खेला करेंगे। सामाजिक उत्सव के समय पर अथवा सभा के लिए लोग वहां इकट्ठे हो सकेंगे। ज्ञाति-भोजनों में आज जिस प्रकार रास्ते पर शौचकूपों की गन्दगी में नाक और मन को उसके आदी बना कर बैठना पडता है वैसा यदि ज्ञाति-भोजन जारी रखना हो तो फिर न करना होगा। रोजाना अथवा अमुक दिन को सब लोग ऐसे स्थानों में इकट्ठे हो ऐसा यदि नियम किया जाय तो सामाजिक जीवन का बहुत कुछ विकास होगा। परन्तु सिर्फ अपनी जवाबदारी को जो समझते हैं वे ही उनके नेता बनें तभी ऐसा हो सकता है। ऐसा स्थान मन्दिरों जितना ही पवित्र रखना चाहिए। परन्तु यह कहते समय हमलोग अपने मन्दिरों को कैसे रखते हैं इसका विचार होता है। नये मन्दिर बनाने हों तो उसके चारों ओर भी खुली जमीन होनी चाहिए। परन्तु मन्दिरों का विचार तो अलग ही करना होगा।

तीसरा प्रश्न है शौचकूपों (पाखानों) का। स्मृतिकार कहते हैं कि शौचाचार से ही प्रारंभ करना चाहिए। स्वच्छता के आग्रह के कारण हमारे समाज में उच्चनीच का भाव भी दाखिल किया गया फिर भी सामाजिक अबुद्धि के कारण शौच का प्रश्न ज्यों का त्यों है। लोगों को गंदे शौचकूपों में आध आध घन्टे तक बैठे रहने और वहां बीडी सीगरेट पीने में कुछ भी लज्जा नहीं होती। पर शौच के प्रश्न की चर्चा मात्र से वे नाक भों सिकोडने लगते हैं। इस विवेक के बारे में क्या कहें? पुराने घरों को और नये को भी देखो। शौचकूपों की और मोरियों की उत्तम व्यवस्था भी हो सकती है इसका शायद ही कहीं विचार किया गया होगा। हारे मनुष्य की तरह लोग इस विषय पर हमेशा मौन ही धारण करते हैं। मिट्टी, पानी, धूप, हवा और खुलापन इन पंच महाभूतों में प्रत्येक वस्तु को शुद्ध करने की अमर्याद शक्ति है। उसका उपयोग करने में रुपयों के बनिस्बत ज्ञान की ही अधिक आवश्यकता है। लोकशिक्षा के बिना यह ज्ञान प्राप्त न हो सकेगा। इन सब बातों का ज्ञान लोगों को बार बार कराना समाज सेवकों का कर्तव्य है।

लोकशिक्षा के बिना लोगों की मनोरचना में परिवर्तन न होगा। समाज-सेवकगण पूरा विचार और चर्चा करके पुनर्निर्माण के बाद सुधरा हुआ जीवन कैसा होना चाहिए इसका निर्णय करें और उसे समाज में प्रचार करें और उसके अनुकूल आवासों की रचना करें। यही सफलता का एक उपाय है।

(नवजीवन) **दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर**

खादी के नमूने

अ० भा० चर्खासंघ के शिक्षण विभाग की ओर से मुझे खबर मिली है कि सभी खादी डिपोओं से उनके नमूने के साथ पूछी गई सूचनाएँ नहीं मिली हैं और कुछ ने तो अब तक अपने नमूने भी नहीं भेजे हैं। जिन कोई ४० जगहों से नमूने आये हैं, उनमें से लगभग २० ने सभी सूचनाएँ नहीं दी हैं। इसलिए मैं वे सूचनाएँ नीचे देता हूँ:

हर एक टुकडा चार वर्गगज का होना चाहिए जिसके साथ एक पुर्जा इन सूचनाओं के साथ होना चाहिए:

१. (इंचों में) अरज या चौडाई;

२. थान की लंबाई;

३. तानी में सूतों की संख्या, भरनी के सूत का अंक और भरनी में फी इंच सूतों की संख्या;

४. फी वर्गगज का तौल (तोलों में);

५. फी गज लागत;

६. फी गज बिक्री की कीमत।

खादी डिपोओं को समझना चाहिए कि ये बातें उनके उतने ही लाभ के लिए पूछी जाती हैं जितने की साधारण खादी आन्दोलन के। शिक्षण विभाग के लिए कुछ निश्चय करके खादी केन्द्रों को सलाह देनी असंभव है अगर खादी डिपो और उनके कार्यकर्त्ता उसे सहायता न देवें। और जब तक प्रधान कार्यालय के हुक्म की तुरत ही उसके नीचे की सब संस्थाएँ तामील न करें संयमन का पैदा करना असंभव होगा और जब तक सभी जगह स्वेच्छा संयमन न हो अ. भा. चर्खा संघ अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर सकता।

(यंग इंडिया) **मो० क० गांधी**

मैं हिन्दू क्यों हूँ?

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक १०

मुद्रक–प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, कार्तिक सुदी २ संवत् १९८४ गुरुवार, २७ अक्तूबर १९२७ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

ट्रावंकोर को संदेश

(नागरकोइल के भाषण में से

बीभत्स सिद्धान्त

" हिन्दुस्तान के इस स्वर्ग–सुन्दर हिस्से में दुहरा कर आने से [मु]झे बडा आनंद होता है सही, मगर मैं आप से यह नहीं छिपा [स]कता कि इस सुन्दर देश में अस्पृश्यता का वह स्थान देख कर [जो] उसे सारे हिन्दुस्तान में और कहीं नहीं मिला है, मैं बडा दुःखी हो जाता हूँ। हिन्दू हो कर, यह देख कर मुझे बडी जलालत [मह]सूम होती ह कि इस प्रगतिशील हिन्दू राज्य में अस्पृश्यता अपने [...] से वीभत्स रूप में विराज रही है। मैं अपनी जिम्मेवारी खूब [सम]झते हुए कहता हूँ कि यह अस्पृश्यता हिन्दू धर्म पर एक [अ]भिशाप है जो उसका जीवन खाये जाता है और मुझे कभी कभी [ल]गता है कि अगर हम चेत न गये, यह अस्पृश्यता नष्ट न कर दी [गई] तो हिन्दू धर्म की ही जान के लाले पडनेवाले हैं। यह तो [मेरी] समझ के बाहर की वात हो जाती है कि तर्क के इस युग में [औ]र परिभ्रमण के इस युग में, भिन्न भिन्न धर्मों का मिलान कर के [अध्य]यन करने के इस जमाने में भी पढे लिखे ऐसे लोग मिलें जो [इस] वीभत्स सिद्धान्त का समर्थन करते हैं कि एक भी मनुष्य अपने [जन्म] के कारण, न छूने लायक, न देखने लायक, पास न फरकने [लाय]क है। हिन्दू धर्म का नम्र विद्यार्थी हो कर, उसका पद और [उस]का पालन करने का अभिलाषी हो कर मैं कहता हूँ कि इस [क्रू]र उसूल के समर्थन में मुझे कोई प्रमाण नहीं मिला है। हम [इस] भूल में न पडें कि कुछ भी संस्कृत में लिख कर छप जाने से शास्त्र हो जाता है और हमारे लिए उसका पालन करना परमावश्यक [है।] जो नीति के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध हो, जो बुद्धि के विरुद्ध [हो] वह चाहे कितना ही पुराना क्यों न हो मगर शास्त्र नहीं हो [सक]ता। मैंने अभी जो कहा है, उसका यथेष्ट समर्थन वेदों से, [महाभा]रत से और भगवद्गीता से होता है। इस लिए मैं आशा [करता] हूँ कि ट्रावंकोर की बुद्धिमती महारानो साहिवा के लिए अपने [राज्य]काल में इस अभिशाप को इस देश से दूर कर देना संभव [होगा]। और इससे बडी वात, किसी स्त्री के लिए और क्या होगी [कि व]ह कह सके कि मेरे राज्य काल में युग युग से गुलामी में पिसने-[वालों] को मुक्ति मिल सकी है?

धर्माध्यक्षो, पुरोहितो, जागो

" मगर मैं उनकी और उनके मंत्रियों की कठिनाइयों को भी जानता हूँ। चाहे कोई सरकार कितनी ही मनमानी क्यों न हो, ऐसे सुधार करने में डरती ही है, फूंक फूंक कर ही पांव रखती है। ऐसे सुधारों के संबंध में चतुर सरकार आन्दोलन को चाहेगी। मूर्ख सरकार, लोकमत से अधीर होकर ऐसी हलचल को जोर जबर्दस्ती से रोकने की कोशिश करेगी। मगर वाइकोम के अपने जाती अनुभवों से मैं जानता हूँ कि आपकी सरकार न सिर्फ ऐसे आन्दोलनों को चलने ही देगी बल्कि, उनका स्वागत करेगी। इस लिए शुरू करने का पहला काम तो जरूर ही है ट्रावंकोर के लोगों के सिर और वह भी नामधारी अछूतों या जिन्हें भूल से 'अवर्ण' हिन्दू कहा जाता है उनके सिर नहीं। मेरे लिए तो अवर्ण हिन्दू शब्द ही बेमानी है और हिन्दूधर्म पर कलंक है। कई बार तो आगे बढने का काम उनका नहीं होता, बल्कि नामधारी सवर्ण हिन्दुओं का होता है जिन्हें अछूतपने के पाप से अपने को मुक्त करना होता है। मुझे आप यह कहने देवें कि आपके लिए हाथ पर हाथ धरे यह विश्वास रखना ही काफी नहीं है कि अछूतपना पाप है। जो कोई गुनाह होते देखता रहता है, वह भी उसमें हिस्सेदार है और कानून उसे भी गुनाह करने में शामिल मानता है। इस लिए आपको आन्दोलन जरूर शुरू करना होगा और सभी वैध और कानूनी उपायों से करते जाना होगा। अगर मेरा स्वर उन तक पहुँच सके तो मैं ब्राह्मण धर्माध्यक्षों तक जो इस सुधार को रोक रहे हैं, अपनी आवाज पहुँचाऊँगा। यह दुःखद बात है, मगर ऐतिहासिक सत्य है कि जो धर्माध्यक्ष धर्म के सच्चे रक्षक होने चाहिए थे, वे ही अपने धर्म के नाशक सिद्ध हुए हैं। मैं अपनी आंखों के आगे देख रहा हूँ कि ट्रावंकोर में और दूसरी जगहों पर जो ब्राह्मण पुजारी धर्म के सच्चे रक्षक होने चाहिए थे, वे ही अपने अज्ञान या उससे भी बुरी बातों से अपने धर्म का सत्यानाश कर रहे हैं। उनका सारा पाण्डित्य अगर एक वीभत्स वहम के, महान् अन्याय के समर्थन में लगाया जाय तो वह खाक में मिल जाता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि वे समय रहते, समय की रंगत पहचान जायं, और जमाने के साथ बढे चलें, जो हम चाहें या नहीं, मगर हमें सत्य के रास्ते की ओर लिये चला जा रहा है।

संसार के सभी धर्मों में और चाहे जो जो तफर्का हों, मगर सभी इस बात को मिल कर कहते हैं कि 'सत्यमेव जयते;' संसार में केवल सत्य ही रहता है ।

सुधारक का रास्ता

मैं अधीर सुधारक को भी चेता दूँ कि जब तक वह सीधे, संकडे और सच्चे रास्ते पर नहीं रहेगा, वह अपनी हानि करेगा और उसी सुधार में रोडे अटकावेगा जिसके लिए वह उचित ही अधीर है । मैं यह दावा करने का साहस करता हूं कि सुधारक के हाथों मैंने सत्याग्रह के रूप में एक अतुल और अनमोल अस्त्र दे दिया है । मगर सत्याग्रह की शर्तें भी काफी मुश्किल हैं । अगर उसे परमात्मा में विश्वास हो, अपने में यकीन हो और अपने उद्देश्य के औचित्य में श्रद्धा हो तो वह कभी जोर जबर्दस्ती नहीं कर सकता, अपने सबसे बडे भयंकर विरोधी के साथ भी नहीं कर सकता, जिस पर वह ठीक ही, अन्याय अज्ञान और हिंसा का भी इल्जाम लगावेगा । मैं यह कहने का भी साहस करता हूं कि कभी सत्य की विजय हिंसा से नहीं हुई है । इस लिए सत्याग्रही अपने विरोधी या नामधारी शत्रुको हिंसा की शक्ति से जीतने की आशा नहीं रखता बल्कि वह प्रेम के बल से, शत्रु का स्वभाव बदल कर उसे जीतने की उमेद रक्खेगा । उसके तरीके हमेशे ही नम्र और भलमंसाहत के होंगे । वह अतिशयोक्ति या मुबालगा कभी नहीं करेगा । और चूंकि अहिंसा का अर्थ प्रेम भी है, इसके हाथों में आत्मत्याग के सिवाय और कोई अस्त्र नहीं है । और सबसे बडी बात तो यह है कि अस्पृश्यतानिवारण जैसे आन्दोलन में, जो मेरी राय में तत्त्वतः धार्मिक ही है, घृणा की कोई जगह नहीं है, उतावली, अविचार या मुबालगे को कोई ठौर नहीं है । चूंकि सत्याग्रह ही प्रत्यक्ष विरोध का सबसे शक्तिशाली अस्त्र है, इस लिए सत्याग्रह करने के बदले सत्याग्रही और सब उपाय किये हुए होता है । इस लिए वह बराबर ही और बार बार अधिकारियों के पास जावेगा, वह लोकमत को समझावेगा, लोकमत तैयार करेगा. जो कोई उसकी बातें सुनना चाहे, उसे अपना कार्य शान्ति और ठंडे दिमाग से समझावेगा और जब ये सब उपाय थक जायेंगे, तभी सत्याग्रह करेगा । मगर अगर उसने अन्तर की पुकार सुन कर सत्याग्रह शुरू कर दिया तो फिर पीछे लौटने का रास्ता नहीं रहा, वह पीछे पैर नहीं हटा सकता । मैं आशा करता हूं कि इस प्रदेश में, ऐसे प्रकट अन्याय को दूर करने के लिए आपको सब कष्ट उठाने पडेंगे ।

पुलीस कमिश्नर के साथ

"आप को यह जान कर खुशी होगी कि मेरे यहां आते ही, मेरे पास पुलीस कमिश्नर आये थे और इस बडे मसले पर हम लोगों ने बातें की । जहां तक मैं जानता हूं, इस घडी दो मुआमिले फैसल होने को पडे हैं: एक तो थिरुवर्पू की सडक के बारे में और दूसरा सुचिन्द्रम के बारे में । जहां तक मुझे पता है, इन दोनों मुआमिलों में सत्य तो सुधारकों की ही ओर है । कहा जाता है कि पहली जगह तो सत्याग्रहियों ने अपना संग्राम शुरू भी कर दिया है । मेरी समझ में यह उतावली का काम हुआ है । इस लिए मैंने उन्हें अभी के लिए रुक जाने और कल्ह मुझसे ट्रिवांड्रम में मिलनें को बुलाया है । और जैसी की मुझे आशा है, अगर मुझे मौका दिया गया तो मैं इन प्रश्नों पर अधिकारियों से बातें करना चाहता हूं । अगर्चे कि मैं ट्रावंकोर में केवल खादी का ही काम करने के लिए आया था, मगर भाग्य तो दूसरी ही ओर अस्पृश्यता की लडाई में मुझे खींच ले गया । जो थोडे दिन मैं यहां हूं, मैं राज्य का और प्रजा को इस मसले को हल करने में मदद देने में कुछ उठा नहीं रक्खूंगा"

नास्तिकता

मनुष्य को किसी बात पर श्रद्धा न हो तो वह बेचारा क्या करे? श्रद्धा न होने पर भी यों कहे कि है? यह भययुक्त दंभ न गिना जायगा?

जिस बात पर आपको श्रद्धा होती है वह बात मेरे हृदय को जरा भी स्पर्श नहीं कर सकती है । इससे मैं राजी नहीं होता । मुझे इसका दुःख है । आपके मन का जैसे उससे समाधान होता है वैसे यदि मेरा भी होता तो मैं खुश होता । आपको मुझ पर दया आनी चाहिए । मेरे दिल में श्रद्धा का उदय हो इसके लिए आप प्रार्थना भी करें, परन्तु मुझ पर क्रोध किस लिए करते हैं ?

आपका तो यह विश्वास है न कि मुझमें भी अमर आत्मा है । तो फिर आप मेरे विषय में निराश कैसे हो सकते हैं ? आत्मा है तो उसका उदय होगा ही होगा । यदि मुझमें अज्ञान है तो वह कभी न कभी दूर होना ही चाहिए ।

आपको ज्ञान की शक्ति में विश्वास है ? सर्वरूप ज्ञान यदि अज्ञान का नाश न कर सके तो ज्ञान का पराभव हुआ ही गिना जावेगा न ? यदि आप मेरी नास्तिकता पर क्रोध करेंगे, मेरा तिरस्कार करेंगे और मुझे त्याज्य मानेंगे तो सनातन आत्मा और परम ज्ञान के विषय में आप निराश ही हुए गिने जावेंगे ? आप नास्तिक ही हुए न ?

नास्तिकता और आस्तिकता, इन दो शब्दों का हम चलते फिरते बिना विचारे उपयोग करते हैं, उतने वे आसान नहीं है । 'है' मानता है वह आस्तिक जो 'नहीं है' मानता है वह नास्तिक । यह इन दो शब्दों का मूल अर्थ है । संसार में बहुत सी चीजें हैं और उससे भी अधिक नहीं है । यदि मैं मानता हूं कि भूत नहीं है तो भूतों के बारे में मैं नास्तिक हूँ । यदि मुझे दृढ विश्वास हो कि हिंसा से मनुष्य जति का कुछ भी कल्याण नहीं होगा तो हिंसा के विषय में मैं नास्तिक हूं । सरकारी शाला कॉलेजों में जो शिक्षा दी जाती है उससे ज्ञानभार कितना ही क्यों न बढे उससे चारित्र शक्ति और देश प्रेम को दृढ करने में जरा भी मदद नहीं मिलती है, उलटा वह शिक्षा विघ्न रूप होती है, यदि मेरा पक्का विश्वास हो तो मैं उस शिक्षा के विषय में नास्तिक हूं । जिनका अभिप्राय इससे विरुद्ध है वह जरूर यह कह सकते हैं कि मेरे विचार सदोष हैं, उनमें विकृति है । उनकी आस्तिकता के बारे में मेरा भी वैसा ही अभिप्राय होगा और होना भी चाहिए ।

आस्तिकता और नास्तिकता इन दो शब्दों की ऐसी व्याख्या करने से फिर नास्तिक कहने से कोई निंदा नहीं होती और न आस्तिक कहने से कोई प्रशंसा ही होती है । दोनों तटस्थ बने रहते हैं ।

परन्तु भाषा में नास्तिक शब्द का अर्थ इतना व्यापक है । प्राचीन लोगों ने इसका यों अर्थ किया था कि वेदों को न माननेवाला नास्तिक । 'नास्तिको वेदनिन्दकः ।' म्लेच्छ, काफिर, इत्यादि शब्दों के जैसी ही नास्तिक शब्द की कीमत थी । 'न' का अधिक शास्त्रशुद्ध और व्यापक अर्थ परलोक के विषय में अश्रद्धा रखनेवाला होता है ।

न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥

सांपराय अथवा परलोक नहीं है, परममंगल तत्त्व नहीं है, इन्द्रियातीत वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने का कोई साधन नहीं है, भोग से भिन्न सन्तोष प्राप्त करने के लिए कोई दूसरा प्राप्तव्य तत्त्व नहीं है, यह जो मानता है वह नास्तिक है ।

सामान्य व्यवहार में जो खुले तौर पर यह कहता है कि ईश्वर नहीं है और जो समाजमान्य रूढियों को हिम्मत से तोड डालता है उसे नास्तिक कहा जाता है । इस व्याख्या में जिन

समावेश नहीं होता वे सब आस्तिक गिने जाते हैं। इस मान्यता के अनुसार जितने आस्तिक गिने जाते हैं उतने सभी सच्चे आस्तिक होते तो आज सत्ययुग है यह कहने में जरा भी अतिशयोक्ति न होती। समर्थ रामदास स्वामी ने जैसे एक जगह कहा है:

देवा वेगळें काहीं नाहीं। ऐसेंचि बोलतीं सर्वही।
परंतु त्यांची निष्ठा कांही। तैसींच नसे॥

कितने ही लोगों के लिए आज धर्मनिष्ठा और ईश्वरनिष्ठा, राजनिष्ठा जितनी ही औपचारिक बन गई है। 'ईश्वर नहीं है' यह कह कर समाज में बदनाम होने से और अपने चित्त को अस्वस्थ बना देने से तो वह है यह मान कर ही चलना अच्छा है। उसमें अपना क्या बिगडता है? जहां तहां इस प्रकार की वृत्ति ही देखी जाती है। 'ईश्वर है' यह मानने पर उस मनुष्य के जीवन में कुछ परिवर्तन तो होना ही चाहिए। उस गांव में महामारी का रोग फैला हुआ है, इस कमरें में सांप है, बेंक में मेरे इतने रुपये हैं अथवा अदालत में न्यायाध्यक्ष बैठे हैं इत्यादि बातें मानने पर उन उन स्थानों में जैसे हमारे व्यवहार में फरक दिखाई देता है वैसा ही फरक 'ईश्वर है' यह मानने से अपने जीवन में इस पृथ्वी पर के अपने निवास के दरम्यान हो तो यह श्रद्धा, निष्ठा अथवा आस्तिकता सची है। अवसर 'ईश्वर नहीं है' यह कहनेवाले प्रामाणिक और नम्र नास्तिक में सामान्य आस्तिक के बनिस्बत अधिक निष्ठा होती है। ऐसा घोर परन्तु शुद्ध नास्तिक जब यह कहता है कि 'ईश्वर नहीं है' तब उसका केवल इतना ही अर्थ होता है कि 'ईश्वर की मैंने खोज की है, उसका स्वरूप अगम्य है, उसकी माया अगाध है, उसका ज्ञान प्राप्त करने में मनुष्य की शक्ति असमर्थ है, मैं उसके बारे में कुछ भी नहीं कह सकता हूँ।' इश्वर की खोज में जो इतना अनुभव प्राप्त कर सका है उसको आस्तिक कहने में क्या हानि है? 'यस्यामतं तस्य मतम्।'

परन्तु ईश्वर है या नहीं उसका स्वरूप क्या है, इस बारे में दार्शनिक विवाद में उतरने की क्या आवश्यकता है? हृदय में अखंड स्फूरने वाले आत्मतत्त्व में जिसका विश्वास है वह आस्तिक है। हरएक के हृदय में आत्मा-राम का वास है, हरएक के हृदय में न्यूनाधिक सज्जनता रहती ही है, पापियों में जो पापी है वह भी अपने अंतर की गहराई में पुण्य और पवित्रता को चाहता है; ऐसी श्रद्धा का होना ही आस्तिकता है। दुनिया कितना ही दुःख क्यों न भोगें, कदम कदम पर साधुओं का पराजय क्यों न हों, दुर्जन मनुष्य उन्मत्त हो कर अधिकार भोग क्यों न करते हों, परन्तु तोभी आखिर धर्म की जय होगी, प्रत्येक हृदय में सज्जनता का ही उदय होगा, ऐसी श्रद्धा का होना ही आस्तिकता है। पवित्रता को पसंद करना, स्वच्छता की कदर करना, सदाचार से प्राप्त होनेवाली स्थिति में संतोष मानना यह प्रत्येक हृदय का धर्म है और इस धर्म का चाहे कितने काल तक ग्रास क्यों न हुआ हो उसका सम्पूर्ण ग्रास नहीं हो सकता है और उस धर्म का सम्पूण अस्त भी कभी न होगा। ऐसा जो दृढ विश्वास वही तो आस्तिकता है। मां की गोद में बालक अपने को सुरक्षित समझता है वैसे ही हम भी सत्य की गोद में हमेशा सुरक्षित हैं, ऐसी श्रद्धा ही आस्तिकता है। और सत्य का द्रोह किसी से भी न हो सकेगा, सत्य पङ्गु नहीं है, दुर्बल नहीं है, उसकी सदा विजय ही होगी, सत्य को किसीके हाथों अपने रक्षण की आवश्यकता नहीं है। अपने अमोघ सामर्थ्य के कारण सत्य में अटल धैर्य है। इसी धैर्य में उसकी विजय है, ऐसी सत्य के प्रति दृढ भक्ति का होना ही परम आस्तिकता है। यह श्रद्धा कि भेड बकरियों को मार कर खानेवाले शेर में भी भूतदया सुप्त रहती है अस्तिकता है। क्षणिक और सहस्र युग पर्यन्त स्थिर रहनेवाले स्वार्थ को वश रहनेवाली मानवजाति में भी मुख्य प्रेरक तत्त्व प्रेम ही है और अन्तमें चारों दिशाओं में उसीका साम्राज्य होगा, एसी सूक्ष्म प्रकाशवान् श्रद्धा ही, जो कटु से भी कटु अनुभव की परम्परा के होने पर भी बुझ नहीं जाती, मुख्य आस्तिकता है। यदि यह श्रद्धा है तो, सगुण अथवा निर्गुण ईश्वर को मानो या न मानो; ईश्वर एक मानो या अनेक मानो; शास्त्रों की मूर्तिपूजा करो या उसे जला डालो, कोई अधिक महत्त्व की बात नहीं है।

सच पूछो तो आस्तिकता और नास्तिकता का भेद करना ही व्यर्थ है। प्रत्येक हृदय में आस्तिकता तो होती ही है। वह किस हद तक सुप्त है, और किस हद तक जाग्रत है, व्यापक है और तेज है, यही महत्त्व का प्रश्न है। शिक्षक जब विद्यार्थी को यह कहता है कि 'यह तुम कभी नहीं सिख सकते।' तब वह नास्तिक बन जाता है। डर, लालच या रस का स्वाद लिये बिना लडके केवल अपनी ज्ञानपिपासा से कभी पढनेवाले नहीं यह शिक्षक अथवा माबाप मानते हों तो वे भी नास्तिक ही हैं। सैनिकों की तारीफ न की जाय और उन्हें रंगबिरंगी फीते न दिये जायँ तो उनमें शौर्य प्रकट न होगा यों जो सेनापति मानता है वह भी नास्तिक ही है। (सेनापति लडता है तो वह उससे भी उच्च पद पाने की आशा से परन्तु सैनिक अपने देश के लिए, स्वधर्म पालन के लिए लडता है यह बात सेनापति के ध्यान में नहीं आती) बाह्य दम्भ और आचार का आडम्बर दिखाये बिना लोगों पर उसकी धार्मिकता का असर न पडेगा यों माननेवाला धर्मोपदेशक धर्मजीवी होने पर भी नास्तिक है। अमुक लोगों में कभी क्षात्रतेज नहीं आ सकता है, अमुक प्रजा अथवा वर्ग हमेशां गुलामी में रहने के लिए ही बनाये गये हें, यह मूढग्राह भी नास्तिकता का ही एक रूप है।

मायावी नास्तिकता कितने ही रूप ग्रहण करती है! बीमार मनुष्य अपथ्य को जानने पर भी जब उसका सेवन करने के लिए अपने मन को यों समझाता है कि इतने से कुछ भी न होगा तब वह नास्तिकता अखत्यार करता है। वह प्रतिष्ठित मनुष्य भी नास्तिकता का सेवन करता है जो यह मानता है गुप्त किये गये पाप का फल उसे या किसी दूसरे को भोगना नहीं होगा। जो कृपण यह मानता है कि सद्गुण और लियाकत का यदि कोई पुरस्कर्त्ता न होगा तो वे व्यर्थ जावेंगे तो वह भी नास्तिकता अखत्यार किये हुए है। और आज सारी दुनिया में सर्वत्र फैली हुई नास्तिकता यह मानने की वृत्ति है कि धूर्तता, कपट, धृष्टता और लुचपने का ही विजय होता है। दुनिया की गरीब और सहनशील प्रजा अनंतकाल तक अन्याय हो सहन करती रहेगी, कभी सिर न उठावेगी, इश्वर के अवतार जो हो गये सो हो गये, अब ईश्वर यदि मर नहीं गया है तो कुंभकर्ण की निद्रा में अवश्य पडा है, अब उससे डरने का काई कारण नहीं है; ऐसी जो व्यवहारिक मान्यताएं सत्ताधारियों में घर किये बैठी है वह भी नास्तिकता का ताजा अवतार ही है। सत्ययुग स्वयं पैदा होगा, उसके लिए कुछ भी प्रयत्न की आवश्यकता नहीं, इस प्रकार की आशा बांधना भी तो, अलग प्रकार की होने पर भी नास्तिकता ही है यह भूलना न चाहिए।

ऐसी सूक्ष्म अर्थात शुद्ध दृष्टि से देखने पर मनुष्य के हृदय में नास्तिकता कितनी व्याप्त है उसका सम्पूर्ण ख्याल हो सकेगा। परन्तु उसका सम्पूर्ण ख्याल होने पर भी बृटिश साम्राज्य से बडी इस नास्तिकता का भी अन्त होगा ऐसा विश्वास यदि हम लोगों में नहीं है तो हम आस्तिकता की फौज के सैनिक नहीं बन सकते हैं। नास्तिकता इंधन का ढेर है और आस्तिकता आग की चिनगारी है। इंधन गिला है तबतक कुछ टिक सकेगा। मनुष्य जाति की लापरवाही नास्तिकता का गिलापन है। उसके दूर होते ही वह होली की तरह जल उठेगी। एक लकडी जलने पर दूसरी को जलाती है और इस प्रकार अपने में से ही अग्नि को खाद्य दे कर अपने को भस्मसात करती है, श्रद्धा और धैर्य इस अग्नि को दिया जानेवाला घी है।

(नवजीवन)

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, कार्त्तिक सुदी २ संवत् १९८४

मैं हिन्दू क्यों हूँ ?

एक अमेरिकन बहिन जो अपने को हिन्दुस्तान का यावज्जीवन मित्र कहती हैं, लिखती हैं :

"चूंकि हिन्दू धर्म पूर्व के मुख्य धर्मों में से एक है, और चूंकि आपने ईसाई धर्म और हिन्दूधर्म का अध्ययन साथ साथ करके अपने आप को हिन्दू घोषित किया है, मैं आप से अपने इस हिन्दू धर्म की पसन्दगी का कारण पूछने का साहस करती हूँ। हिन्दू और ईसाई दोनों ही मानते हैं कि मनुष्य की प्रधान आवश्यकता है ईश्वर को जानना और भावना और सत्य में उसकी पूजा करना। ईसा ख्रीष्ट को परमात्मा का प्रकाश मानते हुए अमेरिका ने अपने हजारों पुत्रों और पुत्रियों को हिन्दुस्तानवालों को ईसा के बारे में बतलाने के लिए भेजा है। क्या आप कृपा कर के ईसा की शिक्षाओं के साथ साथ हिन्दू धर्म का अपना अर्थ देंगे? इस कृपा के लिए मैं आपका बहुत बहुत उपकार मानूँगी।"

कई मिशनरी सभाओं में अंगरेज और अमेरिकन मिशनरीयों से मैंने यह कहने का साहस किया है कि अगर वे इसा के बारे में हिन्दुस्तान से 'कहने' से बाज आते और गिरिशिखर पर के उपदेश के मुताबिक बताये जीवन का महज पालन करते तो, हिन्दुस्तान उन पर शक करने बदले, उनकी कीमत समझता, उनसे लाभ उठाता। इस विचार को रखते हुए बतौर 'बदले' के मैं अमेरिकन मित्रों को हिन्दू धर्म के बारे में कुछ 'कह' नहीं सकता। दूसरों से अपने धर्म के बारे में, धर्मपरिवर्त्तन के लिए कुछ कहने में मेरा विश्वास नहीं है। श्रद्धा के लिए कहना नहीं पडता। उसके अनुसार तो जीवन बनाना पडता है और तब वह स्वयं प्रचार बन जाता है।

और सिवाय अपने जीवन के और जरिये, मैं अपने आप को हिन्दूधर्म को समझाने के लायक भी नहीं मानता। और अगर मैं लिख कर हिन्दूधर्म को समझा नहीं सकता तो ईसाई धर्म से उसका मिलान भी नहीं कर सकूँगा। इस लिए मैं तो सिर्फ इतना ही कर सकता हू कि मैं हिन्दू क्यों हूँ।

वंशानुगत गुणों के प्रभाव पर विश्वास रखते हुए, हिन्दू परिवार में जन्म ग्रहण करके मैं हिन्दू बना हुआ हूँ। अगर मुझे यह अपनी नैतिक वृत्ति या आध्यात्मिक उन्नति के विरुद्ध लगा तो मैं इसे छोड दूँगा। विचार करने पर मैंने इसे अपने जानते सभी धर्मों से अधिक सहनशील पाया है। स्थिर सिद्धान्तों का इसमें न होना मुझे बहुत आकर्षित करता है क्योंकि इस कारण इसके अनुयायी को आत्म-प्रकाश का अधिक से अधिक अवसर मिलता है। स्वयं सबसे अलग बंधा बंधाया धर्म न होने के कारण, इसके अनुयायियों को न सिर्फ दूसरे धर्मों की इज्जत करने की आजादी होती है बल्कि वे सभी धर्मों की अच्छी बातों को अपना सकते हैं। अहिंसा सभी धर्मों में है मगर हिन्दूधर्म में इसका सबसे अधिक विकास और प्रयोग हुआ है। (मैं जैन और बौद्ध धर्मों को हिन्दू धर्म से अलग नहीं गिनता।) हिन्दू धर्म न सिर्फ सभी मनुष्यों की एकात्मता में विश्वास करता है बल्कि सभी प्राणियों का ऐकात्म्य और इस लिए जीव की पवित्रता में इसके विश्वास का यह व्यावहारिक रूप है। भिन्न योनियों में जन्म लेने का महान् विश्वास, इसी श्रद्धा का सीधा नतीजा है। अन्त में वर्णाश्रम धर्म के नियम का पता तो सत्य की निरंतर खोज का अत्यन्त सुन्दर परिणाम है। ऊपर की बतलायी बातों की परिभाषा देकर मैं इस लेख को भारी नहीं बना सकता। मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि गोभक्ति और वर्णाश्रम के आज के खयालात मेरी समझ में मूल गोभक्ति और वर्णाश्रम के हज्जो भर हैं। जो चाहें, वे इस पत्र के पिछले अंकों में वर्णाश्रम और गोभक्ति की परिभाषा देख सकते हैं। मैं निकट भविष्य में ही वर्णाश्रम पर कुछ कहने की आशा रखता हूँ। इस अत्यन्त संक्षिप्त खाके में तो मैंने सिर्फ हिन्दूधर्म की वे विशेषताएँ बतलायी हैं जो मुझे हिन्दू बनाये हुई हैं।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

गोरक्षा पर पुरस्कार लेख

पाठकों को याद होगा कि २९ अक्तूबर १९२५ के 'यंग इंडिया' में मैंने सूचना निकाली थी कि श्रीयुत रेवाशंकर जगजीवन झवेरी की ओर से गोरक्षा पर हिन्दी, संस्कृत या अंगरेजी में सबसे अच्छे लेख के लिए १००० रुपये का पुरस्कार दिया जायगा। १३ दिसंबर १९२५ के 'नवजीवन' में भी श्रीयुत तुलसीदास खीमजी की ओर से इसी विषय पर गुजराती में सर्वोत्तम लेख के लिए २५१ रुपयों के पुरस्कार की विज्ञप्ति निकली थी। शर्तें निम्न लिखित थीं।

"लेख ३१ मार्च १९२६ (पीछे ३१ मई तक समय बढा दिया गया था) तक मंत्री, अ० भा० गोरक्षा परिषद के पास सत्याग्रहाश्रम, साबरमती में पहुँच जाना चाहिए। . . . इसमें गोरक्षा की उत्पत्ति, अर्थ और रहस्य पर विचार किया हुआ होना चाहिए और समर्थन में प्रमाण उद्धृत करने चाहिए। इसमें शास्त्रों की परीक्षा होनी चाहिए और इसका पता लगाया हुआ होना चाहिए कि क्या शास्त्रों में गोरक्षक संस्थाओं के लिए दुग्धालय और चर्मालय चलाने की मुमानियत है? इसमें हिन्दुस्तान में गोरक्षा का इतिहास और समय समय पर उसके लिए किये गये तरीके दिये जाने चाहिए। हिन्दुस्तान में ढोरों की संख्या देनी चाहिए और चरावर भूमि के मसले पर और हिन्दुस्तान में चरावर भूमि के प्रश्न पर सरकार की नीति के असर पर विचार होना चाहिए और गोरक्षा के उपाय सुझाये जाने चाहिए।'

आचार्य आनंदशंकर बापुभाई ध्रुव, श्रीयुत चिन्तामणि विनायक वैद्य और श्रीयुत बालजी गोविन्दजी देसाई परीक्षक नियत हुए थे। मुझे यह प्रकाशित करते हुए खेद होता है कि सभी परीक्षकों का स्वतंत्ररूप से अलग अलग मत है कि कोई लेख, शर्तों के मुताबिक पुरस्कार के योग्य नहीं है। परीक्षाफल प्रकाशित करने में कई कारणों से देर होने का मुझे खेद है, मगर उन कारणों पर विचार करने की कोई जरूरत नहीं है। मगर जिन लोगों ने इस विषय पर विचार किया है, और इस महत्वपूर्ण सवाल में जिन्हें दिलचस्पी हो, वे इस विषय के योग्य लेख लिखने का प्रयत्न करें। जिन्होंने पुरस्कार के लिए लेख लिखे थे वे फिर कोशिश करें। परीक्षक मुझे बतलाते हैं कि कुछ लेखकों के काम से परिश्रम झलकता है मगर उन्होंने भी विषय के अनुरूप परिश्रमपूर्वक खोज नहीं की है, और पुरस्कार की शर्तों का पालन तो शायद ही किसीने किया हो।

अगर्चे कि यह पुरस्कार अब मंसूख मान लेना चाहिए मगर कोई योग्य लेख तैयार हो और वे मंत्री के पास भेजे जायं तो मैं परीक्षकों को उनकी जांच करने के लिए तैयार करने में या उनके योग्य साबित होने पर पुरस्कार फिर से देने के लिए दाता को राजी करने में कठिनाई की आशा नहीं रखता हूं। अगर यथेष्ट लेखक लेख लिखने या फिर से नया लेख लिखने का इरादा जाहिर करते हुए पहले से ही अपनी योग्यता और नाम लिख भेजें तो मैं उमीद करता हूं कि मैं पुरस्कारों के लिए फिर से सूचना निकाल सकूंगा और शर्तें तो आखिर वही रहेंगी।

(यंग इंडिया) **मो० क० गांधी**

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४
अध्याय २३

घर में फेरफार और बालशिक्षा

डरबन में जो घर गिरिस्ती शुरू की उसमें फेरफार तो किये थे ही। खर्च बडा होते हुए भी झुकाव सादगी की ही ओर था। पर जोहान्सबर्ग में 'सर्वोदय' के विचारों ने बडे फेरफार कराये।

बारिस्टर के घर में जितनी सादगी रक्खी जा सकती थी उतनी तो दाखिल की ही। तौभी कितने ढाठबाट के बिना चलाना मुश्किल था। सच्ची सादगी तो मन की बढी। हर एक काम अपने हाथों करने का शौक बढा और इसमें लडकों को भी लगाना शुरू किया।

बाजार की रोटी लेने के बदले घर पर बिना खमीर की, क्यूने के बतलाये मुताबिक रोटी हाथ से बनानी शुरू की। इसमें मिल का आटा काम में नहीं आता था। मैंने ऐसा माना कि मिल का पिसा आटा लेने की बनिस्बत हाथ का पिसा आटा लेने में सादगी, आरोग्य और रुपये का अधिक बचाव होता था। इस लिए सात पाउन्ड खर्च कर के हाथ से चलाने की चक्की खरीदी। इसकी चक्की भारी थी। उसे दो आदमी सहज में चलाते थे मगर एक को कष्ट होता था। इस चक्की को पोलाक, मैं और लडके खास कर चलाते थे। कभी कभी कस्तूरबाई भी आतीं, अगर्चे कि उनका वह समय रसोई बनाने में लगा हुआ था। मिसेज पोलाक भी आने पर उसी काम में लग गयीं। यह कसरत लडकों के लिए बडी लाभदायक निकली। उनसे मैंने यह या कोई दूसरा काम बलात्कार से कभी नहीं कराया है, पर वे भी खिलवाड समझ कर उसे चलाने आते थे। थकने पर छोड देने की उन्हें छूट थी। पर कौन जाने क्या कारण होगा कि इन बालकों ने और जिनका परिचय हमें अभी आगे चल कर मिलेगा, सबने मुझे खूब काम दिया है। मन्दे बालक भी तो मेरे नसीब में थे ही पर बहुत से दिये हुए काम को उत्साह से करते। इस युग के थोडे ही बालक मुझे याद हैं जो कहते थे कि 'अब थक गये।'

घर साफ रखने के लिए एक नौकर था। वह कुटुंबी हो कर रहता। और उसके काम में लडके खूब हाथ बँटाते। पायखाना उठा ले जानेवाला तो म्युनिसिपैलिटी का नौकर आता था, मगर पायखाने का घर साफ करने, बैठक धोने वगैरह का काम नौकर को नहीं सौंपा जाता था, वैसी आशा भी नहीं रक्खी जाती थी। यह काम हम खुद करते और इसमें भी बालकों को तालीम मिलती थी। फल यह हुआ कि शुरू से ही मेरे एक भी लडके को पायखाना साफ करने में कष्ट नहीं रहा है और उन्होंने आरोग्य के सामान्य नियम भी सहज ही सीख लिये। जोहान्सबर्ग में बीमार तो कोई शायद ही पडता था। पर जो कोई बीमारी का प्रसंग आता तो सेवाकाम में बालक होते ही और वे यह काम खुशी से करते।

यह तो नहीं कहूँगा कि उनकी किताबी तालीम के बारे में मैं लापर्वा रहा। पर मैंने उसे छोड देने में कभी संकोच नहीं किया। और इस कमी के लिए मेरे सामने शिकायत करने का कारण मेरे लडकों को रहा ही है। उन्होंने कितनी बार अपना असंतोष भी प्रकट किया है। मैं मानता हूँ कि इसमें मुझे कुछ अंश तक अपना दोष कुबूल करना चाहिए। उन्हें शिक्षा देने की इच्छा बहुत थी, प्रयत्न भी करता, पर इस काम में हमेशे कुछ न कुछ विघ्न आ पडता था। उनके लिए घर पर दूसरी शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं किया था, इसलिए उन्हें अपने साथ पैदल औफिस में ले जाता। औफिस ढाई मील होगी। इसलिए सबेरे और सांझ को मिला कर उन्हें और मुझे कम से कम पांच मील की कसरत मिल जाती। रास्ते चलते हुए भी उन्हें कुछ सिखलाने का प्रयत्न करता मगर वह तो तभी जब दूसरा कोई साथ चलनेवाला न होता। औफिस में मुवक्किलों और मुंशियों से मिलते, कुछ पढने को मिला हो तो पढते, इधर उधर चक्कर काटते और बाजार की सामान्य खरीदी हो तो वह करते। सबसे बडे हरिलाल के सिवाय सब लडके इसी तरह पले। हरिलाल देश में रह गया था। अगर मैं उन्हें किताबी शिक्षा देने के लिए एक घंटा भी बचा सका होता तो मानता कि उन्होंने आदर्श शिक्षा पायी है। यह आग्रह न रखने का दुःख मुझे और उनको रही गया है। सबसे बडे लडके ने अपने दिल की जलन अनेक बार मेरे सामने और प्रकट रूप से भी निकाली है, दूसरों ने हृदय की उदारता दिखला कर इस दोष को अनिवार्य समझ कर दरगुजर किया है। इस कमी के लिए मुझे पश्चात्ताप नहीं है, अथवा है तो इतना ही कि मैं आदर्श बाप न निकला। पर मेरा मत है कि भले ही अज्ञान से हो तो भी सद्भाव से मानी हुई सेवा के लिए मैंने उनकी किताबी तालीम की बलि दी है। मैं कह सकता हूँ कि उनका चारित्र गढने में जो करना उचित था उसे करने में मैंने कुछ उठा नहीं रक्खा है। और मैं मानता हूँ कि यह प्रत्येक मा बाप का लाजिमी फर्ज है। मेरा यह दृढ मत है कि मेरी मिहनत के होने पर भी उन बालकों के चारित्र में जहां त्रुटियां देखने में आयी है वह हम दंपति की त्रुटियों का प्रतिबिंब है।

लडकों को मा बाप की आकृति की विरासत जैसे मिलती है वैसे ही उनके गुण दोष की भी मिलती ही है। उसमें आसपास के वातावरण के कारण अनेक प्रकार की घटबढ होती है सही, मगर मूल सरमाया तो बाप दादा इत्यादि की ओर से ही मिली हुई होती है। मैंने देखा है कि ऐसे दोषों की विरासत से भी कितने बालक अपने को बचा लेते हैं। यह आत्मा का मूल स्वभाव है, उसकी बलिहारी है।

पोलाक और मेरे बीच, इन लडकों की अंगरेजी तालीम के बारे में, कितनी बार तीखी बातें हुईं। मैंने शुरू से ही माना है कि जो मा बाप अपने बच्चों को बचपन से ही अंगरेजी बोलनेवाला बना देते हैं वे उनके और देशके साथ द्रोह करते हैं। मैंने यह भी माना है कि इससे बच्चे अपने देशकी सामाजिक और धार्मिक बिरासत से वंचित रहते हैं और उस अंश तक देश की और उसी प्रकार जगत की सेवा करने के कम योग्य बनते हैं। इस मान्यता के कारण मैं बालकों के साथ हमेशे इरादापूर्वक गुजराती में ही बात करता था। पोलाक को यह न रुचता था। उनकी दलील थी कि मैं बालकों का भविष्य बिगाड रहा हूँ। वे मुझे आग्रह और प्रेमपूर्वक समझाते कि अगर अंगरेजी जैसी व्यापक भाषा अगर बचपन से ही लडके सीख लेवें तो जगत में चलती जिन्दगी की होड में वे एक बडी कठिनाई सहज में ही लांघ जायँगे। मेरे गले यह दलील न उतरी। मुझे अब याद नहीं कि अंत में मेरी दलील उन्हें जँच गयी या मेरा हठ देख कर उन्होंने शान्ति धारण की। इस संवाद को लगभग बीस वर्ष हुए। तौभी मेरे विचार जो उस समय बँधे वे अनुभव से और भी दृढ ही हुए हैं। और जो कि मेरे लडके किताबी शिक्षा में कच्चे रह गये हैं मगर तौभी मातृभाषा का सामान्य ज्ञान सहज ही पा सके और इससे उन्हें और देश को लाभ ही हुआ है और वे अब परदेशी जैसे नहीं बन रहे हैं। वे दुभाषिये तो सहज ही हो गये क्योंकि अंगरेजों के बडे मित्र मंडल के सहवास से और जिस देश में खास कर अंगरेजी ही बोली जाती है वहां रहने से अंगरेजी बोलना और सामान्य लिखना भी उन्हें आ गया।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

साप्ताहिक पत्र

इस हफ्ते हम और भी दक्षिण में बढते चले गये और तिन्नेवेली तक जाकर फिर ट्रावंकोर राज्य के उत्तरी किनारे अल्लेप्पे तक चले गये । ट्रावंकोर पर अलग ही लेख लिखना पडेगा । इस बीच तामिलनाड के इन दक्षिणी हिस्सों की खास बातों पर मैं लिख लूँ ।

हिन्दी तो ठहर गयी

मुझे यह बात किसी पिछले ही पत्र में लिख देनी चाहिए थी कि प्रचारकों की बदौलत शायद ही कोई स्थान हो जहां पर कुछ हिन्दी जाननेवाले न मिलते हों । कुम्बकोनम्, तंजोर, त्रिचनापोली, मदुरा, विरुधनगर और राजपालयम में हिन्दी प्रचारकों और उनके काम को देख कर बडा आनंद हुआ । हिन्दी जाननेवाले स्वयंसेवक सभी जगह पहले मिलते थे और हमें घर का अनुभव होता था । ५,७ वर्ष पहले श्रीमती कस्तूर बाई गांधी को हिन्दी में बोलनेवाली महिला ढूँढे नहीं मिलती और वे अपने को परदेश में पडा पातीं । मगर इस सफर में तो करीब करीब हर जगह पर उन्हें हिन्दी बोलनेवाली महिलाएँ मिलती थीं । टूटीकोरिन में लडकियों ने सार्वजनिक सभा में एक हिन्दी गाना गाया और स्त्रियों ने हिन्दी में मानपत्र पढा और एक लडकी ने तो गुजराती का मीठा भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' वाला गाया था । हिन्दी का और अधिक प्रचार होने से हम आशा कर सकते हैं कि एक दिन अंगरेजी न जाननेवाले श्रीयुत रविशंकर और लक्ष्मीदास जैसे कार्यकर्त्ता तामिलनाड में जाकर हिन्दी में बोलेंगे और अंगरेजी न जाननेवाले श्रीयुत रामस्वामी नेकर जैसे तामिल कार्यकर्त्ता, गुजराती जनता के आगे हिन्दी में भाषण करेंगे । और हिन्दी का और गहराज्ञान होने पर तामिलवाले गुजराती, बँगला और मराठी आदि साहित्यो से भी परिचय पाने की आशा रख सकते हैं ।

ईसाइयों का हिस्सा

इस सफर की एक और विशेषता है । मैं प्रायः हर एक पत्र में ईसाई हिन्दुस्तानियों की खादी में सच्ची मगर सचेत दिलस्पी के बारे में लिखता आया हूं । तिन्नेवेली में उन्होंने गांधीजी को एक खास मानपत्र दे कर कहा था कि 'पहले हमने राष्ट्रीय आन्दोलन से बहुत सम्पर्क न भी रक्खा हो तो हो, मगर अब हमने उसमें लग जाने का निश्चय कर लिया है । गांधीजी ने इस भरोसे को कीमती समझा और उन्हें कहा, 'ईसाई या कोई धर्म मान लेने का अर्थ अराष्ट्रीयता नहीं है । राष्ट्रीयता संकीर्ण या धार्मिक विश्वास के विरुद्ध नहीं होनी चाहिए । वह राष्ट्रीयता जिसकी जड में सिर्फ दूसरे देशों को लूटना खसोटना ही हो, एक दोष है, जिससे हमें बचना चाहिए मगर भली, और इष्ट राष्ट्रीयता के विना मैं अन्तर्राष्ट्रीयता की कल्पना भी नहीं कर सकता । मदुरा और टूटिकोरिन में हम ईसाईयों के यहां ठहरे थे और खादी के लिए सबसे पाक भेट कह जायगी एक स्विडिश मिशनरी का 'क्रौस' जिसे वह ३० साल से पहनती आयी थी और जिसे उन्होंने पुण्य कार्य में दिया क्योंकि वह उसे अपनी सबसे अधिक कीमती चीज समझती थी । इस बारे में टूटिकोरिन के बिशप की एक भेट का जिक्र भी करना पडेगा ! उन्होंने शंख और सोने का बना हुआ एक 'क्रौस' भेट किया । यह खादी के लिए न था मगर गांधीजी के कामों की पसंदगी का चिन्ह तो जरूर ही था ।

उल्लेखनीय प्रयत्न

अगर्चे कि इन हिस्सों में बहुत खादी देखने में नहीं आती और ब्राह्मण-अब्राह्मण सवाल ने रचनात्मक काम के लिए कोई जगह नहीं छोडी है, मगर तौभी कहीं कहीं खादी आन्दोलन में विश्वास रखनेवाले और इसके लिए काम करनेवाले मिल ही जाते हैं । नंगनेरी के श्रीयुत गुप्त १०० चर्खों और २५ करघों से खादी बना रहे हैं और अपना काम और अधिक बढाने की आशा रखते हैं । उन्होंने १०१) की थैली दी और उनके छोटे से गांव से ५००) रुपये और मिले । तिन्नेवेली से कुछ ही मील की दूरी पर कुलशेखर पटनम् नाम का गांव है जहां पर के सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल में, श्रीयुत अलम वर्धनाथन पिल्ले के स्वार्थ-त्याग से, कोई १५० लडके लडकियां न सिर्फ कताई के आधे घन्टे में तकली पर सूत कातती हैं, बल्कि छुट्टी के आधे घन्टे में भी कातती रहती हैं । श्रीयुत पिल्ले उनके पांच महीने के सूत का बुना ८५ गज कपडा ले कर आये थे । श्रीयुत पिल्ले की बदौलत यह स्थान सारे प्रान्त में प्रसिद्ध हो गया है । श्रीयुत विश्वनाथन पिल्ले जो कातना और बुनना दोनों जानते हैं, इस स्कूल में समय समय पर निरीक्षण करने और इस प्रयोग में मदद देने के लिए आया करते हैं । अगर्चे कि पालमकोट्टा और तिन्नेवेली की थैलियों की रकम उन बडे शहरों के लिहाज से कुछ अधिक नहीं है मगर यह कहते हुए तो मुझे खुशी ही होती है कि गांधीजी के उस तकली के सूत के कपडे नीलाम करने पर उसका सौन्दर्य पहचान कर उसके लिए डाक बोलनेवाले काफी आदमी मिले ।

कुछ औरतें

पहले पहल टूटीकोरिन में ही गांधी जी ने ईसाई औरतों को भारी भारी गहने पहने देखा । कानों में छेद कर के भारी भारी गहने लटके हुए थे । उन्होंने कई औरतों को समझा कर उनके गहने उतरवा दिये । ट्रिवेंड्रम में स्त्रियों की एक सभा टिकट से कर रक्खी हुई थी । उसमें वे ही स्त्रियां जा पाती थीं जो टिकट खरीदती थीं । जब गांधी जी से सभा की प्रबंधिका बहिनों ने कहा कि हम लोग टिकट में दाम खर्च कर चुकी हैं और इसलिए अब और अधिक कुछ नहीं दे सकतीं तो गांधी जी को यह सुन कर बडा कष्ट हुआ और उन्होंने कहा कि "एक भी औरत का बाहर रोका जाना मेरे लिए दुःख की बात है । जो टिकट नहीं खरीद सकती वे भला मेरा संदेश सुनने से क्यों रोकी जायँ ? अगर सब किसी को मुफ्त में आने दिया जाता और मुझे एक पैसा भी नहीं मिलता तो मैं खुशी खुशी लौट जाता । मुझे यह जान कर कष्ट होता है कि तुम सब किसी अजायब घर के जानवर को देखने के लिए पैसा दे कर आयी हों । क्या यह कोई तमाशा है ? अगर तमाशा है तो तुम्हें अपने पैसे का फल मिल गया । मगर अगर दरिद्रनारायण के लिए तुम्हारे मन में कोई दया माया हो तो इस चेतावनी दी जाने पर भी मैं तुम से कहूँगा कि दरिद्रनारायण के लिए तुमसे जो हो सके दो । यों खुशी से मिले एक पैसे की भी कीमत मेरे लिए टिकट के जरिये जमा की गयी फीस से कहीं अधिक है ।" पैसा जमा करने निकलने में प्रबंधिकाएँ पहले तो हिचकती थीं, मगर परिणाम तो आश्चर्यजनक हुआ । सिर्फ जेबें ही नहीं खालीं हुईं कीमती हारें और अंगूठियां भी मिलीं । यह तो इसका सच्चा सबूत था कि वे तमाशे के लिए नहीं बल्कि सच्ची सहानुभूति से आयी थीं ।

ट्रावंकोर में

मगर ट्रावंकोर के भ्रमण में जो बात सबका मध्यबिन्दु बन गयी उस पर भी मुझे अब आना ही चाहिए । बंगलोर में गांधीजी ने एक ट्रावंकोरी मित्र से मजाक में कहा था, 'आपको तो खादी न पहनने का सबसे कम बहाना है आपको सबसे कम कपडा चाहिए । आपकी स्त्रियां उजली छोटी सी साडियां पहनती हैं । हिन्दुस्तान के और हिस्सों की औरतों में रंगीन साडियों के लिए जो शौक है वह भी उनमें नहीं है । तौभी आप अगर खादी न पहनें तो मैं आपसे सत्याग्रह क्यों न करूँ ? यही प्रेम की धमकी देने के लिए इस बार वे ट्रावंकोर भी चले गये । मगर ट्रावंकोर पहुँच

पहले ही उन्हें काम का पता चल गया था । राज्य के पुलीस कमिश्नर ने उनसे नागरकोइल में भेंट की और सत्याग्रह के शुरू होने के बारे में उनकी सहायता मांगी । ट्रिवेंड्रम पहुँचने पर उन्होंने महारानी साहेब से भेंट की, दिवान से मिले, देवाश्रम कमिश्नर से मिले और मुख्य एछुआ कार्यकर्ता से बातें की, और ट्रावंकोर की चार जगहों के चारों भाषणों में इसी ज्वलन्त प्रश्न पर भाषण किया। उनमें उनका राज्य को संदेश है, ऊँची जाति के हिन्दू और अछूतों को संदेश है मगर उनमें वह भावना और आग है जो केवल उन्हीं में हैं पर साथ ही साथ वह विचार और सतर्कता है जो केवल उन्हीं के समान धीर पुरुष सब स्थिति समझ कर पा सकता था ।

क्योंकि ट्रावंकोर एक पहेली है । देश की मन मोहिनी सुन्दरता, शिक्षा, सडकें और सफाई वगैरह में हिंदुस्तान के सभी राज्यों से अधिक प्रगति, इसका प्राचीन हिन्दू राज्य होना, हिन्दू विद्वता का भांडार होना — ये बातें ऐसी हैं जिनकी चमक दमक में इसके दोष असावधान दर्शक को नहीं सूझेंगे । इसकी ऊपरी प्रगति के होते हुए भी इसकी आधी से अधिक आबादी अछूत करार की गयी है, और ये अछूत हिन्दुस्तान के और सभी अछूतों से अधिक संस्कृत, अधिक उन्नतिशील हैं, और इन्हीं को सबसे अधिक कठिनाइयाँ झेलनी पडती हैं । हिन्दू धर्म के सबसे बडे पूजक शंकराचार्य को देने के बाद, आज इसी रियासत में हिन्दू धर्म की कुछ सब से बुरी सूरतें दिखलायी पडती हैं । गांधी जी दुःख और खेद से बोल उठे, "मेरे लिए यह सबसे अधिक दुःख की बात रही है और है कि ऐसे सुन्दर मनोरम देश में आदमियों में परस्पर द्वेष हो । बाहरी दुनिया को इस रियासत में हिन्दू धर्म को देख कर उसका माप लगाने का अधिकार है । यह इस रियासत का दुर्भाग्य है, और सारे हिन्दुस्तान का भी दुर्भाग्य है कि अछूतपने में राज्य की कोई तारीफ नहीं की जा सकती ।"

और तौभी उनका विचार था कि, 'जब तक हिन्दू प्रजा राज्य की पूरी मदद नहीं करती, इस दोष को दूर नहीं किया जा सकता ।' यह भी जोड देना अच्छा होता कि, 'जब तक राज्य अपनी परंपरा के बोझ से मुक्त नहीं होता ।' कुछ ही साल पहले इस राज्य में अहिन्दू दीवान की बात कोई सोच भी नहीं सकता था । और इसके सबसे बडे दीवान सर टी माधवराव भी, जिन्होंने हर एक रैयत के लिए दो घन्टे के रास्ते के भीतर ही डाक्टर, स्कूल मास्टर, मैजिस्ट्रेट, रजिस्ट्रार और डाकखाने की सुविधा का प्रबंध किया, इन अछूतों को भूल गये । कोई सत्तर साल पहले यहां के राजा मार्तंडवर्मा के लिए हाथीदांत का मनुष्य का कंकाल बना था । वे शरीरशास्त्र पढना चाहते थे, मगर हड्डियां नहीं छू सकते थे । लॉर्ड रॉबर्टस का कहना है कि एक और राजा को बहुत कठिन प्रायश्चित करना पडा, था क्योंकि वे श्रीमती राबर्ट्स से छू गये थे । इस खियालत की बुरी प्रथा को जारी रखने की शक्ति का पता इसी से चलता है कि कुछ ही साल पहले तक कई जाति की औरतें कमर से ऊपर कोई कपडा पहन ही नहीं सकती थीं । ऐसी स्थिति में गांधी जी के लिए महारानी साहिबा से यह कहला लेना कि 'मैं केवल सुधारक ही नहीं हूं बल्कि शीघ्र से शीघ्र इस अन्याय का दूर होना चाहती हूँ,' कोई छोटी बात नहीं कही जायगी ।

वाइकोम सत्याग्रह से ब्राह्मण धर्माध्यक्षों ने कोई लाभ नहीं उठाया है । ऊँची जाति के हिन्दुओं से गांधीजी ने अस्पृश्यता के अभिशाप को दूर करने के लिए १९२५ में कहा था । अगर उन्हें इसकी याद कभी उत्पन्न भी हुई तो वे कान में तेल डाले सोये रह गये और बेचारे 'अवर्ण' हिन्दुओं को कार्यकर्त्ताओं की कमी का दुःख उठाना पडा है । इस लिए गांधीजी के भाषण रियासत, और दूसरे सभी किसी के लिए हुए ।

नागरकोइल का पहला भाषण, ट्रावंकोर में अछूतपने का जबर्दस्त विरोध था और सारी स्थिति का साधारण वर्णन था । ट्रिवेंड्रम का दूसरा भाषण गांधीजी के महारानी से मिल लेने के बाद हुआ था, इसलिए उसमें हिन्दू धर्म का रहस्य, हिन्दू रियासत और उसकी हिन्दू प्रजा के लिए, विचारपूर्वक समझाया गया था और जो लोग सत्याग्रह के लिए अधीर थे उन्हें सत्याग्रह का शास्त्रीय विवेचन सुनाया गया था । ऊँची जाति के हिन्दुओं से निवेदन तो क्विलोन की सभा में और भी जोशीला हो गया और अल्लेप्पे का आखीरी भाषण, एछुआ कार्यकर्त्ताओं से मिलने के बाद होने के कारण राज्य के लिए चेतावनी और आश्वासन दोनों था । मैं इन सभी भाषणों के मुख्य मुख्य अंश अवकाश के अनुसार दे रहा हूँ ।

ट्रावंकोर में खादी काम के लिए क्षेत्र और अवसर तो बहुत है मगर काम अब तक प्रायः कुछ भी नहीं हुआ है । भिन्न २ जगहों की थैलियां उनके लायक थी ही नहीं । अल्लेप्पे जैसे ट्रावंकोर के मुख्य बंदरगाह से भला ४२०) रुपयों की थैली मिले । इससे तो ४००) रुपयों की एछुआ लोगों की थैली कहीं अधिक प्रशंसनीय थी । बात यह है कि ट्रावंकोर में सार्वजनिक जीवन कुछ है ही नहीं और धनी लोगों ने भी राष्ट्रीय कामों के लिए हाथ खोल कर धन देना अभी नहीं सीखा है ।

(यं० इं०) **महादेव देशाई**

हिन्दू लॉ और मैसूर

बंगलोर के श्रीयुत भाष्यम ऐयंगर लिखते हैं:

"आज के प्रचलित हिन्दू लॉ (कानून) का सिद्धान्त दकियानूसी और न्याय और समता के सिद्धान्तों के विरुद्ध हो रहा है । मैं नीचे थोडे से उदाहरण देता हूँ:

१. बहिन की बेटी, पतोहू, भाई की पत्नी, और सौतेली मा जैसी निकट संबंधिनी वारिस नहीं बन सकतीं । अगर किसीके परिवार में उसकी विधवा पतोहू के सिवाय और कोई न होवे तो उसकी सम्पत्ति सरकार की हो जाती है और अपने पति के परिवार पर जिस बेचारी ने सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था, उसे दर दर भटकना पडता है ।

२. जो निकट बंधु वारिस हो भी सकते हैं, उन्हें भी दूर के सपिण्डों और समानोदकों के पहले हक के कारण मौका नहीं मिलने पाता । जैसे, बहिन भाई की वारिस हो सकती है मगर अगर मृत व्यक्ति के दादा के दादा का कोई पाँच पीढी अलग का वंशज जीता होवे तो वही मृत व्यक्ति की सम्पत्ति पावेगा और बहिन को कुछ नहीं मिल सकता, यही हालत लडकी का बेटा, बहिन के बेटे और भाई की लडकी की भी होती है ।

३. स्त्रियों को जो सम्पत्ति दान स्वरूप या विरासत में मिलती है, उसमें भी वे मिलकियत का पूरा हक इस्तैमाल नहीं कर सकतीं । कीसी विधवा को अपने पति की सम्पत्ति का खर्च सावधानी से करना चाहिए और अगर वह सिर्फ अधिक खर्च करे या उस सम्पत्ति की जमानत पर कर्ज लेवे तो ख्वाह वह उसके खोरिश खर्चे के लिए ही क्यों न हो, कोई दूर का दायाद भी उसे अदालत में घसीट ला सकता है और उससे अपने अधिकार छुडवा सकता है । इस विषय के मुख्य प्रमाण ग्रंथ मिताक्षरा में स्पष्ट और निश्चयात्मक रूप से कहा है कि स्त्री को किसी प्रकार मिला हुआ धन स्त्री-धन होता है, और उसे वह जैसे चाहे खर्च कर सकती है । प्रिवी काउन्सिल ने इसे मानने से यह कह कर इनकार कर दिया कि हिन्दुस्तानी अपनी स्त्रियों को हमेशा अयोग्य मानते रहे हैं और मिताक्षरा का लेखक तो लडाका टीकाकार था ।

४. गूंगे और बहरे वारिस नहीं हो सकते। यहां तो हम लंगडे की ही लकडी से उसे पीटते हैं।

५. ब्रिटिश भारत के समान मैसूर में विधवा-विवाह जायज नहीं माना जाता।

६. यह कहना मुश्किल है कि लडकी के रजस्वला होने के पहले का विवाह जायज है या नहीं। लडकियों के लिए सहवास सम्मति की उम्र १४ वर्ष तक बढा दी जानी चाहिए।

७. अगर लोग राजी हों तो तलाक करने देना चाहिए। पहले हिन्दुस्तान में यह जारी था। पराशर स्मृति में हम उन हालतों को पाते हैं जब कि पत्नी पति के जीवन-काल में दूसरे से विवाह कर सकती हैं।

८. मौजूदा कानून में अन्तर्जातिय विवाहों को जगह नहीं है। उन्हें कानून की रू से जायज बनाना होगा। इस संस्था को हमारे पूर्वज पसन्द करते थे। वशिष्ठ, व्यास, नारद और पराशर जैसे हमारे कितने ही ऋषि मुनि असवर्ण विवाह की ही सन्तति थे। अगर में कानून के मुताबिक किसी ईसाई औरत से विवाह कर सकता हूँ तो दूसरी सवर्ण हिन्दू स्त्री से क्यों नहीं?

९. अनाथ या दूसर या जिसके माबाप मर गये हों, ऐसे लडके को गोद लेना मना है और अगर कोई लडका गोद लेने के सचमुच काबिल होता है तो ऐसा ही। तौभी मना तो है ही।

१०. बिधवाएँ तब तक गोद नहीं ले सकती, जब तक उन्हें पति की अनुमति न मिल चुकी हो या उन्होंने सपिण्डों की अनुमति न ले ली हो। होना तो चाहिए कि उन्हें इसकी अनुमति मिली हुई मान ली जाय जब तक के इसके विरुद्ध स्थिति न हो। यही कानून बम्बई में है।

ऐसे कई उदाहरण हैं मगर मैंने कुछ थोडे से ही चुने हैं। सोचने समझनेवाले लोगों को यह भारी लगता है और वे सुधार चाहते हैं। कानून को बदलने का एक मात्र रस्ता है धारासभा के जरिये। लोकमत को पूछे बिना धारासभा कोई कानून बना नहीं सकती। और लोकमत को पूछने का एक मात्र रास्ता है एक समिति बनाकर चलना। इसलिए मैंने, हमारी धारासभा में, इस प्रश्न पर विचार करने, गवाहियां लेने, कानून बनाने के लिए सलाहें देने के लिए एक समिति नियत करने का प्रस्ताव किया था। उसे सभा ने एक मत हो कर स्वीकार किया था।

अगर्चे कि राज्य के सभी कोई इसे चाहते हैं, मगर वह समिति अभी बनी नहीं है। इसमें डर यह मालूम पडता है कि अभीतक ब्रिटिश सरकार ने इस मुआमले में कुछ नहीं किया है, इस लिए मैसूर के किसी काम पर शायद लोग हंसें। जैसा कि आपने कहा है, यह असंभव है। मैसूर को यह काम करने की खास योग्यता है जब कि ब्रिटिश भारत के साथ सची कठिनाइयां हैं। मैसूर को खास सुविधाएँ हैं, जिनकी ओर से लापर्वा हो जाना हमारे लिए मूर्खता होगी। हमें सौभाग्य से अत्यन्त उंचे ख़यालात के महाराजा मिले हैं और वैसे ही सच्चे और प्रगतिशिल दीवान भी। अगर आज ही हम इष्ट सुधार न कर लेवें तो फिर कभी न कर सकेंगे। क्या आप इस बात की चर्चा 'यंग इन्डिया' में शुरू कर सकते हैं?"

इस लेख को ऐसी महत्व पूर्ण जगह देने का यह मतलब नहीं होना चाहिए कि मैं लेखक के सुझाये हर एक सुधार का समर्थन करता हूं। बेशक कुछ पर तुरत ही ध्यान देने की जरूरत है। मुझे भी मुझे कोई शक नहीं है कि जो लोग हिन्दू समाज को इन असंगतियों से छुडाना चाहते हैं, उन्हें इन सब पर गौर करना चाहिए।

अंगरेजी जमाने के पहले लाखों, करोडों के भाग्य का फैसला करनेवाली हिन्दू लॉ जैसी कोई अटल चीज नहीं थी। स्मृतियों के नाम से प्रसिद्ध नियम ग्रन्थ के अटल कानून नहीं थे बल्कि **पथ-प्रदर्शक** मात्र थे। उन्हें कानून की वह अपरिवर्त्तनीयता नहीं प्राप्त थी जो आज के वकील देखते हैं। स्मृतियों की आज्ञाओं का पालन कानून के बदले समाज की स्वीकृति से अधिक होता था। स्मृतियों में परस्पर विरोधी वाक्य तो मिलते हैं, उनसे पता चलता है कि हमारे जैसे स्मृतियों में भी विकास से बराबर परिवर्त्तन होते जाते थे और समाज-विज्ञान के नये सिद्धान्तों का पता लगते जाने के साथ साथ उन्हें उनके अनुकूल बनाया जाता था। बुद्धिमान राजाओं को नयी परिस्थिति के उपयुक्त शास्त्रों का अर्थ लगाने की स्वतन्त्रता थी। हिन्दू धर्म और शास्त्र कभी अटल और अपरिवर्त्तनीय नहीं थे जैसा कि आज उन्हें बतलाया जा रहा है। बेशक उस समय में वैसे राजा और मन्त्री होते थे जिन्हें समाज की श्रद्धा पाने की बुद्धिमानी और योग्यता होती थी। मगर अब तो यह सोचने की चाल निकल पडी है कि शास्त्र के नामवाली स्मृतियां और दूसरी सभी चीजें बिलकुल अटल हैं। जिन श्लोकों पर चलना हमारे लिए असम्भव होता है या जो हमारी नैतिक प्रवृत्ति के विरुद्ध मालूम होते हैं, उनकी ओर से हम मजे में लापर्वा हो जाते हैं। अगर हिन्दू समाज को सारे संसार के साथ साथ उन्नति करनी है तो यह अत्यन्त असन्तोषजनक स्थिति एक न एक दिन बदलनी ही होगी। अंग्रेज शासक अपना दूसरा धर्म और आदर्श होने के कारण वे फेरबदल नहीं कर सकते। उनका आदर्श है अपनी व्यापारिक महत्ता बनाये रखना और इस आदर्श की प्राप्ति के लिए सभी नैतिक या दूसरे हितों का तिलाञ्जलि दे देना। इस लिए जब तक हिन्दू जनता खुब खुलासा तौर पर इसकी माँग नहीं करती, और उस माँग की पूर्त्ति उनके आदर्श की कोई हानि किये बिना की नहीं जा सकती हो, वे हमारे रीति रिवाज या नामधारी कानूनों में कोई बडा परिवर्त्तन नहीं करेंगे, करना पसंद नहीं करेंगे। और एक बात पर हिन्दुस्तान जैसे बडे देश में जहाँ कि भिन्न २ विचारों और कानूनों के माननेवाले लोग हैं, हिन्दू लोकमत को एक करना कठिन है। और जो कुछ लोकमत है भी, वह स्वाभाविक ही आवश्यकतानुसार राजनीतिक स्वतंत्रता के संग्राम में दत्तचित्त हैं। मैसूर जैसी रियासत को न तो ये कठिनाइयाँ हैं और न ऐसा कोई संग्राम ही है। मेरी नम्र सम्मति में, ब्रिटिश भारत में आगे होनेवाले हिन्दू धर्म की असंगतियों को दूर करने के काम में, मैसूर को उससे आगे ही रहना चाहिए। ऐसे परिवर्त्तन करने लायक मैसूर राज्य काफी बडा और महत्वपूर्ण है। यह तो प्रगतिशील वैध एकाधिपत्तिक राज्य बना है। इसकी धारा सभा, सामाजिक परिवर्त्तन करने लायक काफी प्रतिनिधिक है। हिन्दू लॉ में यदि परिवर्त्तन जरूरी हों तो उन पर विचार करने के लिए समिति नियुक्त करने का प्रस्ताव किये बैठा मालूम पडता है। अगर रूढिप्रेमी और प्रगतिशील, दोनों प्रकार के प्रतिनिधिक हिन्दुओं की एक जबर्दस्त समिति बनायी जाय, तो उसकी सलाहों से जरूर फायदा होगा, और आगे परिवर्त्तन करने के लिए रास्ता तैयार होगा। ऐसी समितियों के संचालन के लिए मैसूर धारासभा के नियमादि से मैं परिचित नहीं हूँ मगर वे ऐसे जरूर होने चाहिए कि उन समितियों में मैसूर के बाहर के लोग भी शामिल किये जा सकें। खैर कुछ भी हो, श्रीयुत भाश्यम ऐयंगर ने यह दिखला दिया है कि कई बातों में हिन्दू लॉ को बदलना परमावश्यक है। इस बहुत देर से किये जानेवाले सुधार को शुरू करने में मैसूर से अधिक योग्य दूसरा कोई नहीं है।

(यं॰ इं॰)

मोहनदास करमचंद गांधी

कपास की खेती

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ११

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, कार्तिक सुदी ९ संवत् १९८४ गुरुवार, ३ नवम्बर १९२७ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

साप्ताहिक पत्र

कोचीन राज्य

"जहां पर अंधकार का अखंड राज्य है, वहां यह कहने से क्या लाभ कि कितना अंधेरा है? मैं कुबूल करता हूं कि हाल के कई सालों के भीतर अछूतों की दशा बहुत सुधरी है। मैं यह भी जानता हूँ कि श्रीमान् महाराजा साहेब और उनके अधिकारी, इस दिशा में सुधार की चाल तेज करना चाहते हैं। मुझे यह जान कर बडी खुशी हुई कि राज परिवार के एक सज्जन पुलया भाइयों के लिए किसी संस्था के लिए काम करते हैं। मगर इस प्रगति से संतुष्ट होना मेरे लिए असंभव है और मैं चाहता हूँ कि महाराजा साहेब और उनके अधिकारी भी इस युग के पाप को हटाने में मेरे जैसे ही अधीर बन जायं। राज्य के शासक के रूप में वे इस प्रगति को माप सकते हैं और उसी में खुश हो सकते हैं, मगर बतौर हिन्दू धर्म के रक्षक के, जैसा कि हर एक हिन्दू को होना चाहिए, हिन्दू धर्म के कलेजे को ही खा जाने वाले इस को हटाने में उन्हें अधीर हो जाना चाहिए।"

यह दिखलाने के लिए कि कोचीन में भी गांधीजी के आगे वही सवाल आया जो ट्रावंकोर में आया था, मैंने एरनाकुलम के उनके भाषण का एक अंश ऊपर दिया है। सार्वजनिक सभा में महाराजा साहेब से प्रार्थना के साथ साथ, श्रीमती महारानी साहिबा से भी गांधीजी ने खानगी तौर पर वही प्रार्थना की थी जब वे गांधीजी से मिलने आयी थीं। दोनों प्रार्थनाओं का कारण राज्य की और प्रजा की ओर से किया गया गांधीजी का हार्दिक स्वागत ही था। जितने दिन गांधीजी रहे, राज्य के मेहमान रहे। दीवान साहेब, महाराजा का स्वागत संदेश लेकर, और रियासत के खजाने से ५०० रुपये खादी से प्रेम के चिह्न स्वरूप लेकर आये थे। महाराजा साहेब खुद कुछ दिनों से बीमार हैं। महारानी साहिबा अपनी लडकी की ओर से जो विलायत में पढ रही हैं, ३००) की भेट और उनका और अपना काता सूत लेकर आयी थी। उनके साथ राजवंश के एक और सज्जन भी आये थे जो हमेशे खादी ही पहनते हैं और नियमित कातते हैं। तब कोचीन में खादी का वातावरण होने में अचरज ही क्या है? कई महिलाऐं उस दिन आयीं। कुछ तो स्कूलों में शिक्षिकाऐं थीं और वहां के सरकारी अस्पताल में एक ऊंचे पद पर थीं; और इन में तकरीबन सभी बराबर खादी पहनती हैं। विद्यार्थियों पर भी स्वभावतः ही इसका असर पडा है। उन्होंने अपनी सभा अलग ही की और ५००) की थैली भेट की। स्त्रियों की सभा में भी गहनों की माँग उसी तरह तुरत उत्साह से पूरी की गयी। इस तरह जो कि सार्वजनिक थैली बहुत छोटी थी मगर नयी पीढीवालों ने उसकी कमी बहुत कुछ पूरी कर दी। इन्हीं शिक्षित लोगों से गांधीजी ने अछूतपना हटाने में राज्य की सहायता करने को कहा:

"जब आसमान साफ हो और भली हवा चलती हो तो भले ही जहाज का कप्तान मौज से धीरे २ जहाज ले चले और यह भरोसो रक्खे कि समय पाकर वह अपनी जगह पर पहुँच जायगा। मगर हमारे हिन्दू धर्म का जहाज तो जरूर ही बुरे और तूफानी दिनों में चल रहा है। संसार के दूसरे धर्मों के साथ साथ इसकी भी जाँच हो रही है। संसार की आंखें हिन्दुस्तान के लाखों लोगों पर लगी हुई हैं। वे यह देखने के उत्सुक हैं कि हम इस सवाल को कैसे हल करते हैं और इस तूफानी हवा में थोडा सा ही बढ कर संतोष मानने में मुझे बेवकूफी जान पडती है। अगर हम तूफान से निकल जाना चाहते हैं तो हमें खतरे की पर्वा न करके सारी शक्ति लगा कर जहाँ तक हो सके तेजी से बढे चलना होगा। नहीं तो तूफान अभी हम पर फट पडनेवाला है। हिन्दू धर्म के रक्षक बने हुए पंडों, पुरोहितों और महन्तों के वहमों और पक्षपातों की भावनाओं को ठीक ठीक तौलना असंभव है। विपत्ति सामने खडी होने पर, जिसे सभी कोई पहचानते से नजर आते हैं, वहम और पक्षपात के न होने तक ठहरना असंभव है।"

त्रिचुर में भी विद्यार्थीयों की थैली ५००) से अधिक थी। विवेकोदय पाठशाला के विद्यार्थियों ने सूत कातने का बडा भारी दृश्य दिखलाया था। कोई एक हजार लडके चर्खे पर या तकली पर सूत कात रहे थे। गांधीजी को लडकों ने दो लाख और लडकियों ने एक लाख गज सूत भेट किया। यह सब ठीक था मगर इसके लिए राज्य की या पाठशाला की कोई तारीफ नहीं की जा सकती। यहां पर पाठशालाओं में सूत कातना अनिवार्य है। और ढाई साल पहले जब हमलोग यहां आये थे, हमलोगों ने इसी स्कूल में लडकों का सूत कातना देखा था और तब में और अब में कोई फर्क नहीं है। खादी तब भी दूज का चांद थी और अब भी है। यहां बरबस मन में यह खयाल आ ही जाता था कि यहां भाव के बदले शब्दों की पूजा की जाती है। त्रिचुर के भाषण का

अधिकांश इसलिए यही समझाने में लगा कि जो लोग कातने की न तो क्रिया जानते हैं और न उसका भाव ही समझते हैं, उनके कताई का प्रचार करने में, उसकी बदनामी का ही डर है, और वे एक कीमती चीज को गडबड कर दे सकते हैं। उन्होंने राज्य के अधिकारियों से इधर जरा अधिक ध्यान देने को कहा और अहमदाबाद की मजूरशालाओं में श्रीमती अनुसूयाबहन के काम से बहुत बातें सीखने को कहा। उन्होंने कहा, "आपको एक बडा भारी प्रयोग करते देख कर मैं आपको इसे वैज्ञानिक रीति से और होशियारी से चलाने को कहूँगा और आपको भी खादी में थोडा बहु विश्वास है जो मुझे है तो आपको जरूर ही लडकों और लडकियों को खादी पहनने के लिए उत्तेजित करना होगा। आप मेरी बात का मतलब समझे कि आपके यह कहते ही कि लडके खादी नहीं पहनते, सारे प्रयोग की असलियत जाती रहती है।"

मगर लडकों के भी चरित्रगठन की सलाह दिये बिना वे कैसे रह सकते थे: "सिवाय चरित्रगठन के धार्मिक और नैतिक शिक्षा का कुछ मतलब नहीं है। इसलिए मैं लडकों और लडकियों से कहता हूँ कि परमात्मा का कभी भरोसा न छोडो और इस लिए अपना भी नहीं और याद रक्खो कि अगर तुमने अपने मन में एक भी बुरे विचार को जगह दी तो तुम में विश्वास की कमी है। असत्य, अनुदारता, हिंसा, विषयविकार—ये सब बातें वह विश्वास न होने पर ही आती हैं। श्री भगवद्गीता में यही बात हर श्लोक में कही गयी है। अगर मैं ईसा के गिरिशिखर पर के उपदेश का सारांश दूँ तो वह भी यही है। कुरान में भी मैंने वही बात देखी है। हमारे अपने आप से अधिक हमारा और कोई कुछ नहीं बिगाड सकता। इसलिए अगर तुम बहादुर लडके, लडकी हो तो इस प्रकार के सभी विचारों से जूझना। इस दुनिया में कोई पापकार्य बुरे विचारों के उकसाये बिना नहीं किया गया है। तुम्हारे दिल में उगनेवाले हर एक विचार की जांच तुम्हें सावधानी से करनी है। कई विद्यार्थियों ने, लडके और लडकियों दोनों ने, मुझ से कहा है कि जो कि उनकी बुद्धि मेरी बातों को कुबूल करती है मगर अपने विचारों को काबू रखना वे असंभव पाते हैं और इसलिए अंत में वे हार मानते हैं, निराश हो जाते हैं और तब कुछ बुरी किताबों से उकसाये जा कर बुरे विचार रखने लगते हैं। हम सभी के बीच दो क्रियाएँ चलती हैं। उनका भेद मैं साफ साफ समझा देना चाहता हूँ। सिवाय सिद्धों और संतों को छोड कर सब के मन में बुरे विचार उठेंगे ही। इसलिए ईश्वर से प्रार्थना करनी जरूरी है कि 'हे परमात्मन्, हमें बुरे विचारों से बचा।' यह क्रिया हमारा लाभ ही करती है। दूसरी क्रिया है बुरे विचारों को सोचना और उन्हीं में मस्त रहना। यह अत्यन्त खतरेनाक और हानिकारक क्रिया है और मैं तुम्हें सारी शक्ति लगा कर इसी को मार भगाने को कहता हूँ। हम सभी यह निश्चय कर सकते हैं कि कैसे मेहमान हमारे दिलों में आवेंगे। हम शत्रु की चोट भले ही न बच सकें मगर उसे रोकने में मर जाना तो हमारे हाथ है। यह एक नुस्खा है। दूसरा नुस्खा है, भूखों मरनेवाले करोडों लोगों के लिए रोज आधा घंटा सूत कातना, मैं अपने और अपने कई साथियों के अनुभव से तुम्हें बतलाता हूँ कि हिन्दुस्तान के करोडों आदमियों के लिए काम करने का यही एक विचार मुझे और उनको बुराई से बचाये रहता है। चर्खे का यही आत्मिक रहस्य है।"

पालघाट

मलाबार में पालघाट भी एक और जगह है जहां पर अछूतोद्धार के लिए कई लडाइयां लडी गयी हैं और लडी जा रही हैं। यहां पर हमें एक नायाडी भाई आमने सामने देखने को मिला परन्तु हम उससे हाथ नहीं मिला सके। ट्रिवेन्ड्रम में गांधीजी खास तौर प[र] कुष्टाश्रम में कोढियों को देखने गये थे। उनके घाव उन्होंने हा[थ] से छू छू करके देखे थे। मगर यह नायाडी तो जिसे समाज [ने] उनसे भी बुरा कोढी बना दिया है, हमारे पास तक नहीं [आ] सका। बीच में झाडी पडती थी। यह भला चंगा, तग[डा] मथमुंडा जवान भीख के लिए आसमान सर पर उठाये हुए था। श्रीयुत राजगोपालाचार ने गांधीजी को दिखलाया। वहां के आदमि[यों] के लिए इसमें कोई अजूबी बात नहीं थी। हमें बतलाया गया [कि] वह हर शनिवार को चावल के लिए आता है, और जैसे स[ब] नायाडी चिल्लाते हैं, वह भी चिल्लाता है।' झाडी के उसी पार ए[क] अंगौछा बिछा कर बेचारा नायाडी कई गज दूर हट जाता है। अगर किसीने दया की तो उस अंगौछे पर कुछ चावल फेंक आ[ये]। गांधीजी ने उससे पूछा, 'क्या तुम मजदूरी करके कमा खाना चा[हते] हो?' वह अपने समाज में सुखी गिना जाता होगा क्योंकि उ[से] चार आने और उसकी स्त्री को तीन आने रोज की मजदूरी मिल[ती] थी। गांधीजी ने पूछा, 'तब भीख क्यों मांगते हो?' 'क्यों[कि] यही रिवाज है और इससे हमें थोडी प्राप्ति भी हो जाती है।' 'मगर हम तुम्हें अगर अच्छा काम देवें, और मुशाहरा बांध [दें] तब भीख मांगना क्यों न छोडोगे?' उसने कुछ हिचकिचाहट [से] कहा 'छोड दूंगा।' 'कल्ह आवोगे?' वह यह कह कर पल्ला छु[डा कर] भागा, 'मुझे अपने लोगों से पूछना होगा। अगर पूछ भी लूँ [तो] कल्ह नहीं, अगले शनिवार को आ सकता हूं।' जिस रास्ते पर ह[म] खडे थे, उस पर वह कभी नहीं चला था और पीटे जाने के ड[र] से उस पर आने का साहस भी नहीं करता था, और इतना ह[ी] नहीं बल्कि अपने हाल से संतुष्ट मालूम पडता था। इसी प्रक[ार] तो हिन्दू धर्माध्यक्षों ने मनुष्यजाति के एक अंश को नीचे गिरा[या] है, खुद नीचे गिरे हैं, इन अभागों के आगे दो दाने चावल फें[क] कर अपनी अन्तरात्माओं का हनन किया है।

एझुआ और चेरुमा लोगों का एक मंडल गांधीजी से मिल[ने] तीसरा पहर आया था। ये एझुआ और चेरुमा भी अछूतों में [की] उपजातियां हैं। हम में से अच्छों से अच्छों के समान वे स्वच्[छ] और शिक्षित थे। उनकी कितनी शिकायतें थीं। वे कई सड[कों] पर चल ही नहीं सकते हैं और अब उनमें से कितने ईसाई [या] मुसलमान बनते जा रहे हैं। एकने पूछा, 'हम इस बुराई को कै[से] दूर करें?' हम हिन्दू रहें या नहीं?' गांधीजी ने जवाब दिय[ा] 'अपने अधिकारों के लिए लडना एक बात है और हार जाने प[र] हिन्दू धर्म को छोड देना दूसरी बात है। तुम्हें हिन्दू ध[र्म] में कोई खूबी मिलती है या नहीं। अगर खूबी मिलती है तो उ[से] छोडने का कोई सवाल ही नहीं है। वह ईसाइयत, ईसाइयत ही नह[ीं] जिसमें बहुत से ईसाई पाशविक शक्ति पर आधार रखनेवाली सरकार [मे]ं विश्वास करते हों। मगर जो ईसाई हिंसा से लडते हैं वे ईसा[ई] धर्म को छोड नहीं देते। उसी तरह अस्पृश्यता और बडपन [का] भाव हिन्दू धर्म के अंग नहीं है। और तुम्हारा यह फर्ज हो जात[ा] है कि तुम हिन्दू बने रह कर इस बुराई से दुगुने जोर से लडो। मगर तुम यह कहो कि हम लडेंगे मगर हार गये तो हिन्दू ध[र्म] को छोड देंगे तो तुम्हारे लिए हिन्दू धर्म की कोई कीमत नहीं है।'

किसीने पूछा, 'क्या आप कुछ दिनों में इन बुराइयों से मु[क्त] हिन्दू धर्म की उमेद कर सकते हैं?'

'हां। इसी उमेद के बल पर तो मैं जीता हूँ।'

'आजकी मौजूदा हालत में हम सत्याग्रह करने के लायक नह[ीं] हैं और रूढिपंथी लोग सत्याग्रह किये जाने के योग्य नहीं हैं।'

'नहीं । सत्याग्रह तो बुराइयों के समूह से तभी किया जा सकता है जब हिंसा ही एक मात्र रास्ता दिखलायी पड़े क्योंकि यह हिंसा की जगह काम में लेने का हथियार है

'हड़ियपंथियों के इस मरुभूमि में भी आखिर एक झरना है ही । श्रीयुत टी. आर. कृष्णस्वामी, पालघाट से दो माइल शबरी आश्रम चला रहे हैं जिसमें ब्राह्मण और नायर लडकों के साथ साथ कुछ अछूत लडके भी रहते हैं । उन्होंने कहा कि मैंने नायडियों को भी लाने की कोशिश की मगर सफलता नहीं मिली । मगर यह भी तो बहुत है कि उन्हें कुछ ब्राह्मण मिल गये जो अपने लडके भेजने को राजी हैं । मुख्यतः धुनाई, कताई, और बुनाई सिखलाई जाती है । स्थानिक सहायता बहुत कम रहने पर भी श्रीयुत कृष्णस्वामी ऐयर हिम्मत से आश्रम को चलाये जा रहे हैं ।

कोयम्बटूर

इसके बाद हम तामिलनाड में फिर कोयम्बटूर पहुँचे जहां की गंगा उलटी ही बहती हैं । पाठकों को शायद याद होगा, यहीं पर श्रीमती डाक्टर एनीबेसेन्ट, अपने दो साथियों के साथ नजरबन्द थीं और यहां इतना अधिक हलचल देखने में आया कि गांधीजी ने सत्याग्रह का एकमात्र अस्त्र लोगों के सामने रक्खा था । मगर यही वह स्थान भी है जहां पर ग्यारह साल हुए जब कि पहली अब्राह्मण सभा हुई थी और जो अब्राह्मणों का मुख्य गढ है । हमारे गृहपति श्रीयुत सन्मुखम चेट्टियर अब्राह्मणों के प्रधान नेताओं में से हैं।

तब इसमें आश्चर्य ही क्या कि यहां की म्युनिसिपैलिटी के मानपत्र में भी, जहां कि सब से कम उमेद थी, वर्णाश्रम-धर्म पर गांधीजी के विचारों की टीका की गयी थी । इस भाव में कि 'हमने तो पहले ही कहा था' इस मानपत्र में गांधीजी को स्कूलों और सरकारी नौकरियों से असहयोग की असफलता की म्युनिसिपैलिटी की भविष्यद्वाणी की याद दिलायी गयी । इसीके साथ वर्णाश्रम-धर्म के बारे में गांधीजी की भूलों की ओर भी उनका ध्यान खींचा गया । इस जिक्र का यहां कोई मतलब ही नहीं था मगर गांधीजी ने तो अपने स्वाभावानुसार इस टीका को भी शिष्ट गिना और इसका ब्यौरेवार जवाब दिया जो मैं फिर कभी दूँगा । सब हिन्दू उसे दुहरा तिहरा कर बार बार पढें और एक ही आवश्यक काम, अछूतोद्धार में अपनी सारी शक्ति लगा देवें । अगर हम जगे नहीं तो स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान यों ही बेकार जायगा ।

एक विद्यार्थी

अभी यहां कुछ लोग हैं जो इन सबसे पाक साफ रह कर, होश हवास दुरुस्त रखते हुए अपना काम करते हैं । श्रीयुत बालाजी-राव ने असहयोग के दिनों में वकालत छोडी थी और फिर शुरू नहीं की है । वे खादी और गांवों के अर्थशास्त्र का अध्ययन कर रहे हैं । यं. इं. के पाठकों को उनके भेजे कुछ कतरनों की याद होगी । वे गांधीजी को कितनी एक किताबें भेंट करने आये । गांधीजी ने कहा, 'इन किताबों के लिए मैं आपका उपकार मानता हूँ । मुझे डर है कि आपके लेखों से यह जाहिर होता कि आपने खादी का उस ज्ञान या समझ से काम नहीं लिया है, जिसकी मैं आपसे उमेद करता हूँ ।' 'जी हां, वह तो नहीं हुआ है । मैं तो नौसिखुआ हूँ और मेरा यह धंधा भी नहीं है ।' गांधीजी ने जवाब दिया, 'हां, ग्लैडस्टोन (इंगलैण्ड के एक प्रधान मंत्री) भी तो गैरपेशेवर ही लकडहारे थे मगर जानते थे कि कौन सी लकडी काटनी चाहिए और कहां पर कुल्हाडी मारनी चाहिए । बैडला भी गैरपेशेवर वकील थे मगर उन्होंने कानून पर जो किताब लिखी है, उसे कम ही वकील लिख सकते थे । उन्हें जब समुद्र के किनारे व्याख्यान देने से मना किया गया था तो वे नाव पर चढ कर बोलने लगे और कानूनदां लोगों के करते कुछ नहीं हुआ । अपने देश में भी तो गोखले गैरपेशेवर वकील थे और श्रीयुत शास्त्री हैं, भले ही कानून का उनका ज्ञान कुछ नहीं होवे, मगर वे प्रस्तावों वगैरह पर जो टीका करते हैं, वह तो बडे से बडे वकीलों के लिए तारीफ की बात होगी । मैं आपसे ये सब बातें इस लिए कहता हूँ कि आपको खादी में विश्वास है और उसी विश्वास को लेकर आपने ये किताबें पढी हैं । अब आप उस विश्वास से पढिए और इन किताबों से यह न ढूँढिए कि कहां चर्खा चलता था—वह तो हम सब जानते हैं कि यंत्रयुग के पहले घर घर चर्खा चलता था—मगर यह ढूँढिए कि वह कैसे मरा उसके मरने का क्या असर पडा और उसे कैसे जिलाया जा सकता है । आप और भी अधिक ध्यान से एक उद्देश्य लेकर, चुनी हुई चीजें पढिए ।'

यं. इं. **महादेव देसाई**

स-वर्ण हिन्दुओं से विनय

(किलोन के भाषण में से)

गांधी जी ने किलोन में कहा "जिस प्रकार एक रत्ती संखिया से लोटा भर दूध बिगड जाता है उसी प्रकार अस्पृश्यता से हिन्दूधर्म चौपट हो रहा है ।" इसके बाद उन्होंने ऊँची जाति के हिन्दुओं से भावनामय विनय की:

"दूध का गुण और इस्तैमाल और संखिया का गुण जानते हुए हम जिस प्रकार एक आदमी को दूध के लोटे के पास बैठे हुए संखिया तोडते देख कर घबरायँगे और दूध फेंक देंगे उसी तरह मैं बतौर हिन्दू के अनुभव करता हूँ कि अस्पृश्यता का अभिशाप हिन्दू धर्म के दूध को जहरीला और अशुद्ध बना रहा है । इसलिए मैं मानता हूँ कि ऐसी बाबत में धैर्य के लिए तारीफ नहीं की जा सकती । ऐसे मामलों में अपने को रोक रखना असंभव है । बुराई के साथ धैर्य रखने के मानी हैं, बुराई के और अपने साथ खिलवाड करना । इस लिए यह कहने में मैं झिझका नहीं हूँ कि ट्रावंकोर के राज्य को इस सुधार के मामले में सब से आगे रहना चाहिए और एक बारगी ही इस बुराई को नष्ट कर देना चाहिए । मगर मैं जानता हूँ कि जब तक हिन्दू जनता इसमें पूरी सहायता न देवे, किसी हिन्दू राज्य के लिए भी इस बुराई को दूर करना असंभव है । और इस लिए मेरी विनय महारानी साहिबा के बदले खास कर आप लोगों से होगी और इस सभा में बैठे हुए हर एक हिन्दू से मैं व्यक्तिगत विनय करना चाहता हूँ । आपने और मैंने, अछूतों के प्रति अपने कर्तव्य से बहुत दिनों तक लापर्वाही दिखायी है और इस हद तक हम और आप हिन्दू धर्म के झूठे प्रतिनिधि रहे हैं । मैं बिना किसी हिचक के आपको सलाह देता हूँ कि जो कोई अस्पृश्यता का समर्थन करने आवे, आप उसकी बात तुरत इनकार कर देवें । आप याद रखिए कि इस युग में एक आदमी या कई आदमियों की कोई मंडली कोई काम करती है तो वह काम अधिक दिनों तक छिपा नहीं रहता । हमारी जांच रोज ही होती रहती है और जब तक हम अस्पृश्यता को रक्खे हुए हैं, हम में कमी बनी हुई है । संसार के सभी धर्मों की जांच आज हो रही है । हमीं लोग शुतुर्मुर्ग जैसे अपने अज्ञान में खतरे की ओर से आंखें मूँद लेते हैं । मुझे इसमें जरा भी शक नहीं है कि आज के इस झगडे में या तो अस्पृश्यता का नाश हो जायगा या हिन्दू धर्म ही गायब हो जायगा । मगर मैं जानता हूँ कि हिन्दू धर्म नष्ट हो नहीं रहा है, मरने भी नहीं जा रहा है क्योंकि मैं देखता हूँ कि अस्पृश्यता तो एक मुर्दा है जो अपनी अखीरी सांस से थोडी देर और रहने के लिए लड रहा है ।"

(यं. इं.)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, कार्तिक सुदी ९ संवत् १९८४

कपास की लाभकारक खेती

एक सज्जन की राय है कि कपास बोनेवाले किसानों को अपनी कपास जमा रखने और उसीका सूत कात कर अपने लिए खादी बुनवा लेने को कहने के लिए सार्वत्रिक आन्दोलन होना चाहिए। उनका यह भी कहना है कि जहां पर कपास पैदा नहीं होती वहां के किसानों को शाकभाजी के जैसे अपने निजी इस्तैमाल के लिए थोड़ी कपास भी पैदा करने को उत्साहित करना चाहिए। उनका दावा है कि अगर यह चाल चल निकले तो किसानों को खादी सस्ती पड़ेगी। वे कहते हैं कि खादी आन्दोलन शुरू होने के पहले दक्षिण में कुछ किसान यही किया करते थे। पत्र-लेखक का खयाल है कि देशी रियासतें इस तरह कपास की खेती को सबसे अधिक उत्तेजन दे सकती हैं।

पत्र-लेखक की सूचना बड़ी जोरदार है। बिजौलिया (राजपूताना), बारडोली और काठियावाड में किसानों को अपनी जरूरत के लिए कपास जमा रखने के लिए कहने का प्रयोग चल रहा है। मगर काठियावाड में जब रुई का दाम चढ़ा, किसानों के लिए उसे बेंच देने का लोभ जीतना मुश्किल पाया गया है। यह तब तक संभव नहीं है जब तक वे खादी का अर्थशास्त्र नहीं समझ जाते और यह नहीं बूझते कि बुनाई के पहले रुई पर जो मिहनत फ़ुरसत की घड़ियों में की जाती है, उससे भी वही लाभ होगा जो अधिक दामों रुई बेंच देने से होता है और ऊपर से वे फाटकेवाले के पंजों से छूट जायंगे। इसके मानी हैं कि अ० भा० चर्खा-संघ को किसानों को खादी का अर्थसास्त्र बतलाना होगा। इसमें तो कोई शक ही नहीं है कि खादी कार्य की सभी शाखाओं में सफलता पाने के लिए खादी कार्यकर्त्ताओं को कपास पैदा करनेवालों के निकट सम्पर्क में आना होगा क्योंकि शहर के काम की खादी के लिए भी कपास लेनेवाले किसानों के साथ संबंध जोड़ना और जैसा कि आज चलता है बाजार में खरीदने के बदले उनसे रुई खरीदनी जरूरी है। अगर हमें फाटकेवाले और बाजार भाव की घटती बढ़ती से स्वतंत्र होना है और खादी का मूल्य स्थिर करना है तो हमें किसान से सरोकार पैदा करना होगा और उसे भी हमारे साथ व्यौहार करने को आकर्षित करना होगा। खादी की जितनी ही अधिक उन्नति होगी, हम देखेंगे कि व्यापारी संसार में प्रचलित तरीकों से हमारे तरीके अलग होंगे। व्यापारी संसार का विश्वास है कि अधिक से अधिक दाम पर माल बेचा जाय, और सस्ता से सस्ता खरीदा जाय। आज संसार का व्यापार न्याय के नियम पर नहीं चलता है। उसका मूल मंत्र है, 'खरीदारो चेत जाओ।' खादी का अर्थ-शास्त्र है, 'सब के लिए एकसा न्याय।' इस लिए खादी में आज की आत्मा का हनन करनेवाली चढाऊपरी को कोई जगह नहीं है। खादी का अर्थशास्त्र गरीब से गरीब और असहाय को सहायता देनेवाला है। खादी उतनी ही सफल होगी, उसके कार्यकर्त्ता जनता में जितने ही अधिक प्रवेश करके उनका विश्वास प्राप्त कर सकेंगे। उनका विश्वास पाने का एक मात्र रास्ता है स्वार्थरहित होकर उनकी सेवा करना।

पत्र-लेखक की यह बात बेशक सच्ची है कि किसान के कपास जमा कर रखने में और दूसरे किसानों के अपने घरखर्च की कपास पैदा करने में देशी रियासतों को ज्यादा सुविधाएँ हैं। म[गर] आखिरश सवाल तो यह है कि आगे कौन बढ़े? अधि[कांश] रियासतों को किसानों के भले बुरे की पर्वा ही नहीं है। उन[के लिए] तो उनके जीवन का एक यही उद्देश्य मालूम पड़ता है कि जैसे हो राज्य की आमदनी बढ़ायी जाय और उसमें से अधिक अधिक अपनी मौज में उड़ाया जाय। और दूसरे पूँजीपतियों [की तरह] खादी के अर्थशास्त्र में उनका विश्वास बहुत कम है। मैसूर [में] ग्रामीण उद्योग के रूप में खादी की उपयोगिता की जाँच करने [के] लिए बहुत सतर्कता से एक प्रयोग चल रहा है। हम आशा [करते हैं] कि अगर वह प्रयोग शास्त्रीय रीति से धैर्यपूर्वक किया जाय [और] सफल निकले तो उसका अनुकरण सभी करने लगेंगे।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय २४

ज़ूलू बलवा

घर गिरिस्ती ठीक कर स्थिर होकर बैठना भी मेरे नसीब [में] कभी रहा ही नहीं है। जोहान्सबर्ग में ज्योंही मैंने अपने [को] स्थिर हुआ पाया कि एक अनसोची घटना घटी। नेटाल [में] ज़ूलू बलवा होने का समाचार पढ़ा। मेरा ज़ूलू लोगों से कु[छ] वैर नहीं था। उन्होंने एक भी हिन्दुस्तानी का नुकसान नहीं कि[या] था। पर उस समय अंगरेजी सल्तनत को मैं जगत का उपकार कर[ने]वाली मानता था। मेरी वफादारी हार्दिक थी। उस सल्तनत [का] क्षय मैं नहीं चाहता था। इस लिए बल इस्तेमाल करने की नी[ति] अनीति का विचार मुझे रोक नहीं सकता था। नेटाल के ऊप[र] आपत्ति आवे तो उसकी रक्षा के लिए स्वयंसेवकों की लश्कर थी और आपत्ति के समय पर उसमें जरूरत के मुताबिक भरती भी होती। मैंने पढ़ा कि स्वयंसेवकों की लश्कर, इस बलवे को शान्त करने के लिए निकल पड़ी है।

मैं अपने को नेटाल का बाशिन्दा गिनता था और नेटाल [के] साथ मेरा नजदीकी सरोकार तो था ही। इसलिए मैंने गवर्नर [को] चिट्ठी लिखी कि जरूरत हो तो घायलों की सेवा करने के लिए [मैं] हिन्दुस्तानियों की टोली ले कर सेवा करने जाने को तैयार हूँ। गवर्नर ने स्वीकृति का जवाब फौरन ही भेज दिया। अनुकूल जवा[ब] की या इतनी जल्दी जवाब पा जाने की आशा मैंने नहीं की थी। तौभी यह पत्र लिखने के पहले मैंने अपना इन्तजाम तो कर [ही] लिया था। यह निश्चय किया था कि अगर गवर्नर इस प्रार्थ[ना] को स्वीकार कर लेवें तो जोहान्सबर्ग का घर उठा दूँगा, मिस्ट[र] पोलक अलग छोटा सा घर लेकर रहें और कस्तूर बाई फिनिक्[स] जायँ। इस योजना में कस्तूर बाई की पूरी सम्मति मिली। मु[झे] यह याद नहीं कि मेरे ऐसा कोइ काम करने में उनकी ओर [से] कभी कोई विरोध हुआ हो। गवर्नर का जवाब पाते ही मैंने घर [के] मालिक को एक महीने की सूचना दी। कितना सामान फिनिक्[स] गया और कितना मि० पोलक के पास रहा।

डरबन पहुंचते ही मैंने आदमियों की मांग शुरू की। ब[ड़ी] टुकड़ी की जरूरत नहीं थी। हम बीस आदमी तैयार हुए। उन[में] मेरे सिवाय चार गुजराती थे, बाकी मद्रास इलाके के गिरमिट [से] मुक्त हिन्दुस्तानी थे और एक पठान था।

जिसमें स्वाभिमान की रक्षा हो और काम ज्यादे सुविधा से च[ले] इस लिए और ऐसा रिवाज होने के कारण चिकित्साविभाग के मुख्या[धि]कारी ने मुझे 'सारजंट मेजर' का मुद्दती ओहदा दिया और मे[रे] पसंद किये तीन हिन्दुस्तानियों को 'सारजंट' और एक को 'कॉर[पोरल']

पोरल ' का ओहदा दिया । पोशाक भी सरकार की ही ओर से मिली । यह कह सकता हूं कि हमारी इस टुकडी ने छह हफ्ते सतत सेवा की ।

बलवे की जगह पर पहुंचते ही मैंने देखा कि बलवे जैसा तो कुछ नहीं कहा जा सकता । कोइ सामने आता हुआ नहीं दिखलायी पडा । बलवा मानने का कारण यह था कि एक जूलू सरदार ने जूलू लोगों के ऊपर लगे हुए एक नये कर को न देने की सलाह उन्हें दी थी और कर उगाहने गये हुए एक सारजंट को उन्होंने काट डाला था । चाहे जो हो, मेरा हृदय तो जूलुओं के तरफ था । और वहां पहुंचते ही जब हमारे हिस्से खासकर जूलू जख्मियों की ही सेवा करने का काम आया तो मैं बहुत खुश हुआ । डाक्टर अफसर ने हमारा स्वागत किया । उन्हों ने कहा, “ कोई गोरा इन जख्मियों की सेवा करने को तैयार नहीं होता । मैं अकेले किसका क्या करूं ? उनके जख्म सडते हैं अब आप जो आये सो मैं उन पर ईश्वर की कृपा मानता हूं । ” यह कह कर मुझे पट्टियां, कृमिनाशक पानी वगैरह दिये और रोगियों के पास ले गये । रोगी हमें देखकर खुश हो गये । गोरे सिपाही खिडकियों की जाली में से झांक झांक कर हमें जख्म साफ करने से रोकने का प्रयत्न करते, हमारे न मानने पर चिडते और जूलुओं के लिए जिन अपशब्दों को बोलते, उनसे तो कान के कीडे भी कांप उठते थे ।

धीरे धीरे इन सिपाहियों के साथ भी मेरा परिचय हुआ और उन्होंने रोकना बन्द किया । इस लश्कर में सन १८९६ में मेरा सख्त विरोध करनेवाले कर्नल स्पार्कस और कर्नल वायली थे । वे मेरे इस काम से आश्चर्यचकित हो गये । मुझे खास बुला कर मेरा उपकार माना । मुझे जेनरल मैकेन्जी के पास ले गये, और उनके साथ मेरा परीचय कराया ।

पाठक यह न समझें कि इनमें कोई सिपाही का धन्धा करता था । कर्नल वायली तो नामी वकील थे और कर्नल स्पार्कस कत्ल-खाने के नामी मालिक । जेनरल मैकेन्जी नेटाल के नामी किसान थे । ये सभी स्वयंसेवक थे और स्वयंसेवक के रूप में ही इन्होंने फौजी तालीम और अनुभव पाये थे ।

जिन रोगियों की सेवा का काम हमें मिला था, उन्हें भूल से भी कोई लडाई में जख्मी हुआ न मानें । इनमें एक भाग तो शक से पकडे गये कैदियों का था । जेनरल ने उन्हें कोडे मारने की सजा दी थी । चाबुकों की मार के ये घाव सेवा-संभाल बिना पक उठे थे । दूसरा भाग उन जूलुओं का था जो मित्र गिने जाते थे । मित्रता बतलानेवाले निशान पहने रहने पर भी इन मित्रों को सिपाहियों ने भूल से घायल किया था ।

इसके बाद मुझे अपने गोरे सिपाहियों के लिए भी दवा लाने और उन्हें दवा देने का काम सौंपा गया था । डाक्टर बूथ के अस्पताल में मैंने यह काम एक वर्ष तक किया था, इसलिए यह सहज काम था । इस काम की बदौलत मुझे बहुत से गोरों से काफी परिचय हुआ ।

परन्तु लडाई में लगी हुई सेना कहीं एक जगह नहीं बैठी रहती । जहां से भय के समाचार आते, वहीं दौडी जाती । बहुत से तो घोडे सवार ही थे । हमारी छावनी उठी और हमें उसके पीछे पीछे अपनी डोलियों को कन्धे पर उठा कर चलना रहा । दो तीन अवसर तो एक दिन में चालीस चालीस मील की कूच करने के आये थे । यहां भी हमें तो प्रभु का ही काम मिला । जूलू मित्र भूल से घायल हो गये थे । उन्हें डोली में उठा कर छावनी में पहुँचाना था, वहां उनकी सेवा संभाल करनी थी ।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दूधर्म का रहस्य

(ट्रिवेन्ड्रम के भाषण में से)

हिन्दूधर्म और अस्पृश्यता

“ नागरकोइल के जैसे यहां भी अस्पृश्यता के सवाल को ही हल करने में सारा दिन बीता है । अगर्चे कि मैं दीवान साहेब से यों ही व्यक्तिगत रूप से मिलने गया था, मगर हम स्वभावतः ही इस सवाल पर बातें करने लगे । और अगर इस सभा में आने में मुझे चंद मिनटों की देर हुई तो उसकी भी वजह यही थी कि महारानी साहिबा से मिलने गया था और वहां भी यही सवाल छिड गया । पहले पहल ट्रावंकोर आने के बाद मैं इस मनोहर प्रदेश में बार बार आने की आशा करता रहा हूँ । इसका सबसे सुन्दर दृश्य, कन्याकुमारी का ट्रावंकोर में होना और यहां की बहिनों की सादगी से मैं जब यहां पहले पहल आया था तभी मुग्ध हो गया था । मगर इन सभी विचारों, खयालात से मुझे जो आनंद मिला, वह सब इस विचार से चौपट हो गया कि ट्रावंकोर में अस्पृश्यता ने सबसे विकराल रूप धारण किया है । इस खयाल से मुझे हमेशे तकलीफ पहुँची है कि एक अत्यन्त प्राचीन हिन्दू राज्य में जो कि शिक्षा में हिन्दुस्तान के सभी स्थानों से आगे बढा हुआ है, यह पाप मौजूद है । और अस्पृश्यता की इस मौजूदगी से मुझे इतना कष्ट इस कारण पहुँचा है कि मैं अपने को हिन्दूधर्म के रहस्य से ओतप्रोत, सच्चा से सच्चा हिन्दू मानता हूँ । आज जैसी अस्पृश्यता मानी और बरती जाती है, उसके लिए मुझे हिन्दू शास्त्र कहे जानेवाले ग्रन्थों में कोई प्रमाण नहीं मिलता । मगर जैसा कि मैंने दूसरी जगहों में बार बार कहा है, अगर मैंने देखा कि हिन्दूधर्म में सचमुच ही अस्पृश्यता का आदर है तो मुझे हिन्दूधर्म को ही त्याग देने में कोई हिचक नहीं होगी । क्योंकि मैं मानता हूँ कि अगर धर्म के नाम तक की भी लाज रहनी है तो वह धर्म नीतिशास्त्र के मौलिक सत्यों के विरुद्ध नहीं जाना चाहिए । मगर चूंके मेरा विश्वास है कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंश नहीं है, मैं इस धर्म का पल्ला पकडे हुए हूँ किन्तु इस विकराल पाप से दिनोंदिन अधिकाधिक अधीर होता जाता हूँ । इसलिए जब मैंने देखा कि ट्रावंकोर में इस सवाल ने हलचल पैदा कर दिया है, मुझे इसमें पडने में कोई उज्र नहीं हुआ । अगर मैंने इस सवाल को अपने हाथ में लिया है तो राज्य को किसी प्रकार कठिनाई में डालने की नीयत से नहीं । क्योंकि मेरा विश्वास है कि श्रीमती महारानी साहिबा अपनी प्रजा की हितचिन्तना किया करती हैं । वे इन बातों में सुधारक भी होने का दावा करती हैं, और यह कहना कोई गुप्त बात प्रकट करनी नहीं होगा कि वे चाहती हैं कि जितना जल्द हो सके यह पाप दूर हो जाय ।

राज्य और प्रजा के कर्त्तव्य

मगर सरकार के लिए सुधार की बातों में अगुआई करनी पार नहीं लग सकती । सरकार तो अपने स्वभाव से ही प्रजा की प्रकट इच्छा का अर्थ लगा कर उसे पूरा करनेवाली है और अत्यन्त निरंकुश सरकार भी अपनी प्रजा पर वे सुधार नहीं लाद सकती जिसे प्रजाजन स्वीकार न कर सकते हों । इस लिए अगर मैं ट्रावंकोर राज्य की प्रजा होता तो मैं इसीसे पूरा पूरा संतुष्ट हो जाता कि मेरी सरकार इस सुधार को उतनी ही जल्दी स्वीकार करने को तैयार है जितनी कि प्रजा । मगर इस एक बात में संतोष प्राप्त कर के मैं तब तक चैन नहीं लेता जब तक मैं इस सुधार की बात को गांव गांव में, एक एक आदमी तक नहीं पहुँचा देता । सुव्यवस्थित और अविराम आन्दोलन ही तो सच्ची उन्नति का प्राण है और

अगर आपकी जगह मैं होता तो जब तक यह सुधार हो नहीं लेता सरकार को चैन फी नींद सोने नहीं देता । सरकार को चैन न लेने देने का मतलब यह नहीं है कि उसे कठिनाई में डालता । बुद्धिमान सरकार तो ऐसे किसी आन्दोलन के सहारे, सरगर्मी और प्रोत्साहन का स्वागत करती है, और किसी ऐसे सुधार को करने में जिसे सरकार चाहती हो, उसकी सरकार को जरुरत भी है । मैं जानता हूँ कि पिछली वार जब मैं यहां आया था मुझे कहा गया था कि सभी सवर्ण हिन्दू सभी प्रकार की अस्पृश्यता को दूर करने का सुधार करने के लिए अत्यन्त आतुर हैं । मगर मुझे भय है कि वे कान में तेल डाल कर ही सोते रह गये । उन्होंने अपनी इच्छा को काम का रूप नहीं दिया है, और मेरा विश्वास है कि राज्य में के हर एक हिन्दू का कर्त्तव्य है कि वह अपने फर्ज को समझे और अपने दूसरे भाइयों को भी समझावे । और मुझे इसमें जरा भी शक नहीं है कि अगर सवर्ण हिन्दू एक स्वर से कहें तो अस्पृश्यता का यह असुर क्षणमात्र में दूर हो जायगा । अपनी सुस्ती और आलस्य का दोष सरकार के मत्थे मढना अनुचित होगा ।

सत्याग्रह का रहस्य

"मगर सभी समाजों और देशों में अंगुलियों पर गिनने लायक ही सुधारक हुए हैं, और मैं जानता हूँ सभी सुधारों की चोट सुधारकों के छोटे से दल पर ही पडती है । तब इतनी प्राचीन कुप्रथाओं के विषय में सुधारकों का फर्ज ही बडा मुश्किल सवाल हो जाता है । सारे संसार के सुधारकों ने दो में से एक रास्ते को जरूर पकडा है । उनमें से अधिकांश ने जोर शोर से आन्दोलन करके, और हिंसा का रास्ता पकड करके, इन कुप्रथाओं की ओर जनता का ध्यान दिलाया है । उन्होंने ऐसे आन्दोलन किये हैं जिनसे सरकार कठिनाई में पडी है, लोग फेर में पडे हैं और नागरिकों के धारावाहिक जीवन में खलल पडा है । दूसरे ढंग के सुधारक जिन्हें मैं अहिंसा के रास्ते को माननेवाला कहूँगा, नम्र आन्दोलन करते हैं । वे तो विचार, वचन या कार्य किसी में हिंसा का भाव रख कर जनता का ध्यान खींचने से बाज आते हैं, मगर वे सिर्फ खुद कष्ट उठा कर ध्यान खींचते हैं । वे कभी मुबालगा— अतिशयोक्ति नहीं करते । सत्य से बाल भर भी नहीं टलते । पाप को हटाने के लिए अधीर होते हुए भी उसे करनेवाले का भी बुरा नहीं चेतते । मैंने इस काम का एक छोटा सा नाम रक्खा है और वह द० अफ्रिका के सामने और इस देश के सामने सत्याग्रह है । एक क्षण के लिए भी सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा में गडवड न कीजिए । सविनय अवज्ञा जरूर ही सत्याग्रह का अंग है । वह शुरू में नहीं आता, बल्कि वही अखीरी अस्त्र है । सविनय अवज्ञा करने का ही अर्थ है कि बहुत सुन्दर व्यवस्था और संयमन होना चाहिए । इसकी जड में तो उदारता है और अपने विरोधियों के उद्देश्य का भी यह खिलाफ या अनुचित मतलब नहीं लगाता, क्योंकि यह किसी पर जब्र करना नहीं बल्कि उसका मत परिवर्त्तन करना चाहता है । इस लिए आप मेरी उस समय की तकलीफ का अन्दाजा सहज ही लगा सकते हैं जब कि मैंने देखा कि एक मित्र ने जो मुझसे विरुधुनगर में मिलने आये थे, मेरे सारे सिद्धान्त और बातों का उलटा ही अर्थ लगाया था । मैंने 'ट्रिवेन्ड्रम एक्सप्रेस' में उनकी दी हुई हमारी बातो की रिपोर्ट देखी । उसमें शुरू से अखीर तक हमारो बातचात को तोड मरोड कर दा गयी है (एक आवाज 'शर्म')। मगर 'शर्म' 'शर्म' कहने का कोई कारण नहीं है । जो सज्जन 'शर्म' 'शर्म' बोल उठे, वे स्पष्ट ही उदारता का अर्थ या कीमत नहीं जानते । क्योंकि मैं एक क्षण के लिए भी यह कहना नहीं चाहता कि उन्होंने जानवूझ कर या सोच समझ कर गलत रिपोर्ट लिखी है । उन्होंने आज सवेरे जो कैफियत दी है उस पर विश्वास करने को मैं तैयार हूँ । मगर मैंने खास इसकी ओर आपका ध्यान सत्याग्रह को और इससे अनजान लोगों का इससे खिलवाड करने के खतरे को समझाने के लिए, खींचा है । मैं यह उदाहरण सिर्फ इस लिए दे रहा हूँ कि जिसमें सुधारक बननेवाले उद्देश्य की सचाई का निश्चय किये बिना और अपने में संयम की सामान्य से कुछ अधिक मात्रा लाये बिना इस रास्ते को पकडने से चेत जाएँ और यह देखते हुए कि मैं सत्याग्रह पर मुग्ध हूँ, जिसे मैं लासानी हथियार मानता हूँ, जहां तक मैं रोक सकूं मैं इसका दुरुपयोग या बुरा उपयोग होना नहीं देखना चाहता । इस लिए मैंने इस मित्र को सलाह दी है कि जब तक आप सत्याग्रह का सच्चा स्वरूप और रहस्य हृदयंगम नहीं कर लेते, इस मसले से दूर ही रहीए ।

"मगर एक भी सुधारक को निरुत्साहित करना इसका उद्देश्य नहीं है । मैं इस सवाल का इतना अधिक ब्यौरेवार विचार इस लिए कर रहा हूँ कि आप जिसमें इसके लिए प्रयत्न कर के इसे जल्दि हल कर लेवें । इस लिए मैं बडी नम्रता से सुझाता हूँ कि आपमें जिन लोगों को सार्वजनिक जीवन का कुछ अनुभव होवे वे इस मसले को अपने हाथों में ले कर अपना लेवें और नवयुवकों का संगठन करें जो इसमें दिलचस्पी तो लेते हैं मगर इसे हल करने का ढंग नहीं जानते । आप अधिकारियों से भी मीलिए और जब तक सुधार हो नहीं लेता उनका नाक में दम कर दीजिए, क्योंकि मैं आपको यह बतला सकता हूँ कि न सिर्फ महारानी साहिबा ही सुधार के लिए इच्छुक हैं बल्कि दीवान साहेब भी हैं । मगर वे दूसरे धर्म के माननेवाला होने के कारण, हम आप हिन्दू लोग उनकी कठिनाई को समझ सकते हैं । मेरी राय में जहां तक सरकार से मतलब है, वह सुधार के पक्ष में है; सिर्फ शुरू आपको करना होगा, सरकार को नहीं । मुझे अगर समय होता तो मैं कुछ नेताओं को बुला कर इस सवाल के सभी अंगों पर उनके साथ चर्चा करता । परन्तु दूसरा समय पास में न होने से इस महत्वपूर्ण विषय पर ऐसी बडी सभा में विचार करने को आप क्षमा करेंगे ।

वर्ण और आश्रम

"आज सवेरे मुझसे एक सवाल पूछा गया था कि अस्पृश्यता के साथ वर्णाश्रम धर्म का क्या संबंध है ? यानी वर्णाश्रम धर्म पर मैं अपने कुछ विचार कहूं । जहांतक मुझे हिन्दू धर्म से जरा भी परिचय है मेरे जानते 'वर्ण' का अर्थ अत्यंत सहज है । इसका अर्थ है कि हम सब अपने वंश और परंपरा गत काम को सिर्फ जीविका के लिए करें अगर वह नीति के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध न होवे तो करें । अगर हम सभी धर्मों में बतलाये मनुष्य के लक्षण को मानें तो हमारे जीवन का नियम है । परमात्मा की सारी सृष्टि में एक मनुष्य ही ऐसा बनाया गया है जो उसे पहचाने । इसलिए मनुष्य का उद्देश्य दिनों दिन अधिकाधिक धन जमा करना नहीं है उसका प्रधान काम है दिनों दिन अपने बनानेवाले के और भी पहुंचना और इसी परीभाषा से हमारे प्राचीन ऋषियों ने हमारे का यह नियम ढूंढ निकाला था । आप समझ सकेंगे कि अगर सभी इस वर्ण धर्म का पालन करें तो हमारी सांसारिक अभिलाषाएं मर्यादित हो जायेंगी और हमारी शक्ति उस काम के लिए मुक्त जायगी जिसके जरिये हम परमात्मा की खोज कर सकते हैं । तुरत ही देखेंगे कि आज दुनिया में होनेवाले कामों के, जो ध्यान खींच रहे हैं, दश में नौ हिस्सों का कोई मतलब ही रहेगा, वे छूट जायेंगे । तब आप यह कह सकियेगा कि आज हम वर्ण धर्म पाल रहे हैं, वह मेरे बतलाये वर्ण धर्म का भ्रष्ट स्वरूप है । और वह बेशक है ही, मगर जिस तरह

को ही सत्य बना घूमते देख कर हम सत्य से घृणा नहीं करने लगते बल्कि हम असत्य में से सत्य को ढूंढ निकालते हैं और उसे पकडे रहते हैं उसी तरह 'वर्णधर्म' के नाम से प्रचलित उसके भ्रष्ट स्वरूप को नष्ट कर के, हिन्दू समाज की इस बुरी स्थिति से शुद्धि कर सकते हैं ।

"मैंने आप को जो बतलाया है, उसमें से 'आश्रम' का आना जरूरी है मगर आज अगर 'वर्ण-धर्म' भ्रष्ट हो गया है तो आश्रम धर्म' तो नष्ट ही हो गया है । 'आश्रम' का अर्थ है मनुष्य के जीवन के चार विभाग और मैं चाहता हूँ कि आज जिन विद्यार्थियों ने थैली दी है वे कह सकते कि हम पहले आश्रम के नियमों का पालन करते हैं, हम मन, वचन, काया से ब्रह्मचारी हैं । ब्रह्मचर्य आश्रम का नियम है कि वे दूसरे यानी गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सकते हैं, जिन्होंने कम से कम पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया हो । और चूंकि हिन्दूधर्म की सारी कल्पना ही मनुष्य को अच्छा बनाने की, उसे अपने सृष्टि कर्त्ता के निकट पहुंचाने की है, इसलिए ऋषियों ने गृहस्थाश्रम की भी एक मर्यादा बांध दी और हम पर वानप्रस्थ और संन्यास का बन्धन रक्खा । मगर आज सारे हिन्दुस्तान में एक भी सच्चे ब्रह्मचारी, सच्चे गृहस्थ को ढूँढ निकालना असम्भव है, वानप्रस्थ और संन्यासी की तो कोई बात ही नहीं है । हम अपनी बुद्धिमत्ता में भले ही इस योजना पर हँस लेवें । मगर मुझे तो इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दू-धर्म की सफलता का यही एक कारण है । हिन्दू-सभ्यता के देखते देखते मिसर, असीरिया और बेबिलोनिया की सभ्यताएँ मर मिटीं । ईसाई सभ्यता तो अभी सिर्फ दो हजार वर्ष की ही है । इस्लामी सभ्यता तो अभी कल्ह की है । दोनों महान हैं, मगर मेरी नम्र मति में अभी बन ही रही हैं । ईसाई यूरोप ईसाई बिलकुल नहीं है मगर अंधेरे में टटोल रहा है, और मेरी राय में उसी तरह इस्लाम को अपने गुप्त रहस्य का पता नहीं चला है, और आज इन तीनों धर्मों में एक तरह की बडी लाभकारक और साथ ही साथ अत्यन्त हानिकारक भी, होड चल रही है । जैसे जैसे साल पर साल बीतते जाते हैं, मेरा विश्वास बढता जाता है कि वर्ण धर्म ही मनुष्य का जीवन धर्म है और ईसाई और इस्लाम धर्म के लिए भी उतना ही जरूरी है जितना कि हिन्दू, जिसकी रक्षा इसीसे हुई है । इस लिए आज जैसा कि दक्षिण में कहने की कुछ लोगों के लिए चाल पड गयी है, मैं यह विश्वास करने से इनकार करता हूँ कि 'वर्णाश्रम' हिन्दू धर्म का काल साबित हुआ है । मगर इसका यह अर्थ जरा भी नहीं है कि हम या आप 'वर्णाश्रम धर्म' के इस भ्रष्टाचार को एक क्षण के लिए भी सहन करें या उस पर रहम करें । वर्णाश्रम और जाति में कोई मेल नहीं है । जाति तो जरूर ही हिन्दूधर्म पर एक बोझ है और जैसा कि मैंने बतलाया है, अस्पृश्यता वर्णाश्रमधर्म पर लगी हुयी जँग है, यह तो उसमें जंगली घास है जिसे हमें उसी प्रकार नोंच फेंकना चाहिए जैसे कि हम जौ या मकई के खेतों में से जंगली घास को उखाड फेंकते हैं । वर्ण के इस विचार में बडप्पन, या छुटपन का कोई खयाल ही नहीं है । अगर मैं हिन्दू धर्म का ठीक अर्थ समझता हूँ तो सभी जीव समान हैं और एक हैं । इसलिए यह ब्राह्मणों की शोखी है कि वे अपने को और तीनों वर्णों से ऊँचा मानते हैं । यह तो प्राचीन काल के ब्राह्मण नहीं कहते थे । उनका आदर इस लिए नहीं होता था कि वे अपने मुँह मियां मिठ्ठू बने फिरते थे, बल्कि इस लिए कि बिना किसी बदले के जरा भी आशा के वे सेवा करते जाने का दावा पेश करते थे । वे धर्माध्यक्ष जो आज ब्राह्मण बने फिरते हैं और धर्म का भ्रष्टाचार करते हैं, हिन्दू धर्म के, ब्राह्मण धर्म के पालक नहीं हैं । जान बूझ कर या अनजाने, वे उसी पेड की जड में कुल्हाडी मार रहे हैं जिस पर वे बैठे हैं और जब वे कहते हैं कि शास्त्रों में अस्पृश्यता की आज्ञा है, इतनी दूरी पर अन्त्यज के आ जाने से सवर्ण हिन्दू अपवित्र हो जाते हैं तो मुझे यह कहने में कोई उज्र नहीं होता कि वे अपने धर्म को झूठा बना रहे हैं, वे हिन्दू धर्म का उलटा अर्थ बतला रहे हैं । शायद अब आप हिन्दू सज्जन समझ सकेंगे कि आप को क्यों कमर कस कर खडे हो जाना चाहिए और इस पाप को दूर करना चाहिए । आप को एक प्राचीन हिन्दू राज्य की प्रजा होकर सुधार में आगे रहने का गर्व करना चाहिए । जहां तक मैं वातावरण को समझ सकता हूँ, अगर आप इस सुधार को सच्चे दिल से जीजान लगा कर करें तो यह घडी बडी मंगलमय है ।"

(यं० इं०)

हमारे कुल में तरुण पुरुष मरते नहीं

नहि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति ।

राजा ब्रह्मदत्त बराणसी में राज्य करते थे । उस समय काशी राष्ट्र के किसी ग्राम में एक ब्राह्मण रहता था । वह बहुत सदाचारी था । इसलिए उसे सभी धर्म्मपाल कहते थे । उसके घर का नौकर भी दान देता, शील रखता तथा उपवास करता था ।

धर्म्मपाल के घर पुत्र जन्मा । पुत्र बडा हुआ इसलिए पिता ने उसे एक सहस्र मुद्रा दे कर तक्षशिला को पढने के लिए भेजा । वह वहाँ जा कर एक दिग्विजयी आचार्य के पाँचसौ शिष्यों में मुखी बन कर रहा ।

अब आचार्य का एक लडका मर गया । इस लिए आचार्य, उनके सगासम्बन्धी और सभी विलाप करने लगे, सिर्फ एक धर्म्मपाल कुमार नहीं रोता था । स्मशान से लौटने पर सभी शिष्य कह रहे थे, "ऐसा सदाचारी जवान बूढे मा बाप को छोड कर चलता बना ।" इस पर धर्म्मपाल कुमार बोला "सचमुच क्या तुम उसे तरुण कहते हो ? तरुणावस्था में ही वह क्यों मरा ? जवानी में मरना ठीक नहीं ।"

दूसरे ने कहा "क्या तू नहीं जानता कि मरना तो मनुष्य का स्वभाव ही है ?"

"जानता हूँ । पर जवानी में नहीं, बूढे हो कर मरना ठीक है ।

"धर्म्मपाल, तुम्हारे घर में कोई मरता नहीं है क्या ?"

"बचपन में कोई नहीं मरता सब बुढापे में मरते हैं ।"

"क्या यह तुम्हारे कुल की रीति है ?"

"हां ।"

शिष्यों ने यह बात आचार्य से कही । आचार्य ने धर्म्मपाल को बुला कर पूछा, "सत्य ही, तात धर्म्मपाल । तुम्हारे कुल में बचपन में कोई नहीं मरता ?"

"सच महाराज !"

आचार्य ने विचारा, "यह तो भारी आश्चर्य है । इसके बाप के पास जा कर पूछताछ करें, अगर यह बात सच्ची हो तब इसी के जैसा मैं भी धर्म्म पालूंगा ।"

यह विचार कर सात आठ दिनों बाद धर्म्मपाल को बुला कर कहा, "देखो मैं प्रवास में जाता हूँ । जब तक मैं लौट न आऊँ तब तक तुम इन शिष्यों को पढाना ।"

बाद में आचार्य ने बकरे की कुछ हड्डियां मँगाईं । उन्हें धो धा कर सुवासित किया और अपनी झोली में डाल लिया । और एक छोटे लड़के को साथ ले कर तक्षशिला से काशी को रवाना हुए ।

धर्म्मपाल के गांव में पहुंचकर महा धर्म्मपाल का घर पछ पाछ कर ढूंढ निकाला और दरवाजे के आगे जाकर खडे हुए।

ब्राह्मण के जिस नोकर ने आचार्यो को पहले पहल देखा, उसने आ कर उनके हाथ से छाता लिया, जूता संभाला और ब्राह्मण के छोटे लडके ने उनके हाथ में से झोली ले ली।

आचार्य ने नोकर से कहा, "जाकर कुमार के पिता से कहो कि आप के पुत्र धर्म्मपाल कुमार के आचार्य द्वार पर खडे हैं।" नौकर ने जाकर ब्राह्मण को खबर दी। ब्राह्मण वेग से बाहर आया और, "इधर पधारिये" कह कर आचार्य को घर में लाया, ऊंचे आसन पर बैठाया और पग पखारने आदि की सत्क्रिया की।

आचार्य ने खा पी चुकने के बाद ब्राह्मण से कहा, "हे ब्राह्मण! आप का लडका धर्म्मपाल कुमार तीन वेद और अठारह कला का पारगामी हुआ पर अकस्मात् मर गया। यह संसार ही ऐसा है। इसलिए शोक मत कीजिये, धीरज धरिये।"

ब्राह्मण ने ताली बजायी और खिलखिला के हँस पडा।

"हँसे क्यों, भूदेव?"

"मेरा पुत्र नहीं मर सकता, दूसरा कोई मर गया होगा।"

"हे ब्राह्मण! तुम्हारा ही पुत्र मर गया है। यह देखो उसके फूल" यह कह कर ब्राह्मण को हड्डियां दिखायीं।

"ये तो बकरे या कुत्ते की हड्डियां होंगी। पर मेरा लडका कदापि नहीं मर सकता, हमारे कुल में सात पीढी से कोई बचपन में मरा ही नहीं है। आप झूठ बोलते हैं।" यह कह कर ब्राह्मण फिर हँसा और ताली बजाने लगा।

यह देख कर आचार्य तो स्तब्ध ही हो गये और बोले, "हे ब्राह्मण, आपके कुल में तरुण पुरुषों के न मरने का कारण क्या है? आप ऐसा कौन ब्रह्मचर्य या व्रत पालते हैं कि जिसके प्रताप से

किं ते वतं किं पन ब्रह्मचर्यम्।
किस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको।
अक्खाहि मे ब्राह्मण एतमत्थम्।
कस्मा हि तुम्हं दहरा न मीयरे॥

आप ऐसे सुखी हैं?"

ब्राह्मण ने जवाब दिया

धम्मं चराम न मुसा भणाम।
पापानि कम्मानि विवज्जयाम।
अनारियं परिवज्जेमु सब्बम्।
तस्मा ति अम्हं दहरा न मीयरे॥

"हम धर्म का आचरण करते हैं। झूठ नहीं बोलते। पाप कर्ममात्र से दूर रहते हैं। इस लिए हमारे कुटुम्ब में तरुण पुरुष नहीं मरते।

सुणोम धम्मं असतं सतं च।
न चापि धम्मं असतं रोचयाम।
हित्वा असन्ते न जहाम सन्ते। तस्मा०॥

"हम सज्जन और दुर्जन दोनों की बातें सुनते हैं मगर दुर्जन के प्रति उपेक्षा करते हैं और सज्जन का संग कभी नहीं छोडते। इस लिए०

पुब्बे व दाना सुमना भवाम।
ददं पि चे अत्तमन्त भवाम।
दत्वापि चे नानुतप्पाम पच्छा। तस्मा०॥

"दान देने का विचार करते हुए हम प्रसन्नचित्त रहते हैं, दान करते हुए भी प्रिय वचन बोलते हैं, कडवा मुँह नहीं करते और दान देने के बाद पछताते नहीं इसलिए०

समणे मयं ब्राह्मणे अद्धिके च।
वनिब्बके याचनके दलिद्दे।
अन्नेन पानेनऽभितप्पयाम। तस्मा०॥

"श्रमण, ब्राह्मण, प्रवासी, याचक, दरिद्र, इत्यादि सब को अन्न-जल से तृप्त करते हैं। इसलिए०

मयं च भार्यां नातिक्कमाम।
अम्हे च भार्या नातिक्कमन्ति।
अञ्ञत्र ताहि ब्रह्मचर्यं चराम। तस्मा०॥

"हम अपनी स्त्रियों के साथ पत्नीव्रत का पालन करते हैं, और हमारी स्त्रियां हमारे साथ पतिव्रत पालती हैं। परस्त्री हम को माता के समान है। इसलिए०

एतासु वो जायरे सुग्गवासु।
मेधाविनो होन्ति पहूतपञ्ञा।
बहुस्सुता वेदगुणा च होन्ति। तस्मा०॥

"इन सती स्त्रियों को जो पुत्र होते है वे बुद्धिशाली, प्रज्ञावान, बहुश्रुत और वेद जाननेवाले होते हैं। इसलिए०

माता पिता च भगिनी भातरो च।
पुत्ता च दारा च मयं च सब्बे।
धम्मं चराम परलोकहेतु। तस्मा०॥

"मा, बाप, भाई, बहिन पुत्र, स्त्री, हम सब निजधाम पाने की आशा से धर्म का आचरण करते हैं। इसलिए०

दासा च दस्सो अनुजीविनो च।
परिचारिका कम्मकरा च सब्बे।
धम्मं चरन्ति परलोकहेतु। तस्मा०॥

"हमारे घर के दास दासी, नौकर चाकर, परिचारिका, कर्मकर, सभी सदाचारी हैं। इसलिए०

धम्मो हवे रक्खति धम्मचारिम्।
धम्मो सुचिण्णो सुखमावहाति।
एसा निसंसो धम्मे सुचिण्णे।
न दुग्गतिं गच्छति धम्मचारी॥

"धर्म धर्मचारी की रक्षा करता है। आचरित धर्म मनुष्य को सुख कर होता है। धर्माचरण का यह फलादेश है कि धर्मचारी दुर्गति नहीं पाता।

धम्मो हवे रक्खति धम्मचारिम्।
छत्तं महन्तं विय वस्सकाले।
धम्मेन गुत्तो मम धम्मपालो।
अञ्ञस्स अट्ठीनि सुखी कुमारो॥

"वर्षा ऋतु में बडे छाते जैसा धर्म धर्मचारी की रक्षा करता है मेरे धर्मपाल को धर्म की रक्षा है। ये हड्डियां किसी दूसरे की और कुमार तो भला चंगा है। भूखा नहीं, प्यासा नहीं, वह चैन कर रहा है।"

(जातक १०-९) **देसाइ वालजी गोविन्दजी**

आत्मपरिवर्तन

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक १२

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, मार्गशीर्ष वदी १ संवत् १९८४ गुरुवार, १० नवम्बर १९२७ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय २५

हृदय मंथन

‘जूलू बलवे’ में मुझे बहुत से अनुभव हुए और बहुत विचार करने को भी मिले। बोअर युद्ध में मुझे लडाई की भयंकरता इतनी नहीं लगी थी, जितनी यहां मालूम पडी। यह बात मुझी को नहीं बल्कि कितने अंगरेजों को भी, जिनसे मेरी बातें हुई, लगी थी कि यहां लडाई नहीं मगर आदमियों का शिकार होता था। गांव में लश्कर जा कर मानों पडाके छोडती हो, इस तरह उनकी बन्दुकों की आवाज हम दूर पर रहनेवालों को सुनायी पडती थी। ये अवाजें सुननी और इस बीच रहना मुझे बहुत दुःखद लगा। पर मैं कडवा घूंट पी गया और जो काम मेरे हाथ आया, वह तो जूलू लोगों की सेवा करने भर का ही था। यह तो मैं देख सका कि अगर हम न आते तो दूसरा कोई यह सेवा नहीं करता। इससे मैंने अपनी अन्तरात्मा को शान्त किया। यहां बस्ती बहुत कम थी। पहाडों और कन्दराओं में भले सादे और जंगली माने जानेवाले जूलू लोगों के कुनबों के सिवाय और कोई न था। इससे दृश्य भव्य मालूम पडता था। लगातार मीलों तक बिना बस्ती के प्रदेश में जब हम घायलों को लेकर चले जाते तो मैं विचार में पड जाता था।

यहीं मेरे ब्रह्मचर्य के बारे में विचार पक्के हुए। अपने साथियों के साथ भी मैंने कितनी बातें कीं। यह तो मुझे अब तक प्रत्यक्ष नहीं हो सका है कि ईश्वर के दर्शन के लिये ब्रह्मचर्य अनिवार्य वस्तु है, मगर यह मैं साफ देख सका कि सेवा के लिए जरूरी है। मुझे लगा कि इस प्रकार की सेवा तो मेरे पल्ले अधिक से अधिक पडेगी ही, और जो मैं भोगविलास में, प्रजोत्पत्ति में, बालकों को पालने पोसने में लग गया तो मुझसे पूरी सेवा नहीं हो सकेगी; मैं दो नावों पर नहीं चढ सकता। अगर पत्नी सगर्भा होती तो मैं निश्चिन्त होकर इस सेवा में न कूद पडता। ब्रह्मचर्य के पालन बिना, कुटुम्ब वृद्धि और समाजवृद्धि, ये दो विरोधी वस्तुऐं बन जाती हैं। विवाहित होकर भी ब्रह्मचर्य पाला जाय तो कुटुंब सेवा, समाज सेवा की विरोधिनी न बने। ऐसे विचारों के भंवर में पड गया और व्रत लेने को कुछ अधीर भी हो गया। इस विचार से मुझे एक तरह का आनंद हुआ और मेरा उत्साह बढा। कल्पना ने सेवा का क्षेत्र बहुत विशाल कर डाला।

ये विचार अभी मन में गढ रहा था और शरीर को कस ही रहा था कि इसी बीच में कोई अफवाह लाया कि लडाई खत्म होने को आयी है और हमें छुट्टी मिलनेवाली है। दूसरे दिन तो हमें घर जाने की छुट्टी मिली और उसके बाद थोडे ही दिनों में सभी अपने अपने घर पहुँचे। इसके बाद थोडे समय में गवर्नर ने मेरी सेवा के लिए आभार दिखलाने का खास खत भेजा।

फिनिक्स में पहुँच कर मैंने तो ब्रह्मचर्य की बात बडे शौक से छगनलाल, मगनलाल, वेस्ट इत्यादि से कही। यह बात सभी को रुची। सभीने उसकी जरूरत कबूल की। सभी को उसके पालन की कठिनाई भी मालूम पडी। कितनों ने प्रयत्न करने की हिम्मत भी की और मैं मानता हूँ कि उसमें कुछ आदमी सफल भी हुए।

मैंने व्रत ले लिया कि अब से जब तक जिऊँगा ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा। इस व्रत का महत्व और कठिनाई उस समय में संपूर्णता से नहीं समझ सका था। उसकी कठिनाई का अनुभव आज तक भी किया ही करता हूँ। उसका महत्व दिनों दिन अधिक ही देखता हूँ। उसके बिना जीवन मुझे सूखा और जानवर के जैसा लगता है। जानवर स्वभाव से निरंकुश है। मनुष्य का मनुष्यत्व स्वेच्छा से अंकुशित बनने में है। धर्म ग्रंथों में ब्रह्मचर्य की जो स्तुति देखने में आती है और उसमें पहले जो अतिशयोक्ति मालूम पडती थी उसके बदले अब यह बात दिनों दिन अधिक स्पष्ट होती जाती है कि वह योग्य और अनुभव के आधार पर लिखी हुई है।

जिस ब्रह्मचर्य के ऐसे फल हो सकते हैं, वह ब्रह्मचर्य सहज न होगा, केवल शारीरिक वस्तु न होगा। शारीरिक अंकुश से ब्रह्मचर्य का आरंभ होता है। पर शुद्ध ब्रह्मचर्य में तो विचार की मलिनता भी नहीं होनी चाहिए। संपूर्ण ब्रह्मचारी को स्वप्न में भी विकारी विचार नहीं होते, और जहाँ तक विकारी विचार पैदा होवें, वहाँ तक ब्रह्मचर्य को बहुत अपूर्ण मानना चाहिए।

मुझे शारीरिक ब्रह्मचर्य के पालन में भी बहुत कठिनाइयां उठानी पडी हैं। अब कह सकता हूँ कि इसके मुतल्लिक बेडर बना हूँ। पर अपने विचारों पर मुझे जो जीत मिलनी चाहिए, वह अब तक नहीं पा सका हूँ। मुझे यह नहीं लगता है कि मेरी कोशिश में कोई खामी रही हो। पर यह अब तक मैं जान नहीं सका

कि कहां से और किस तरह हम पर वे विचार चढाई करते हैं, जिन्हें हम नहीं चाहते। मुझे इसमें शंका नही है कि विचारों को भी रोकने की चावी मनुष्य के पास है। पर अब मैं इस नतीजे पर आया हूँ कि उसे हर एक आदमी को अपने आप ढूँढना पडता है। महापुरुष हमारे लिए अपने जो अनुभव छोड गये हैं वे मार्ग-दर्शक हैं। वे संपूर्ण नहीं हैं। संपूर्णता तो सिर्फ प्रभु की प्रसादी है और इसीसे भक्तगण अपनी तपश्चर्या से पुनीत किये गये और हमें पावन बनाने वाले रामनामादि मंत्र छोड गये हैं। संपूर्ण ईश्वरार्पण बिना, विचारों पर संपूर्ण विजय मिल ही नहीं सकती। यह वचन सभी धर्मग्रन्थों में मैंने पढा है और इस ब्रह्मचर्य के सूक्ष्मतम पालन के बारे में उसका अनुभव कर रहा हूँ।

पर मेरी छटपटाहट का थोडा बहुत इतिहास तो आगे के प्रकरणों में आने वाला ही है। इस प्रकरण के अंत में कह दूँ कि अपने उत्साह में मुझे पहले तो व्रत का पालन सहज मालूम पडा। एक फेरफार तो मैंने व्रत लेने के साथ ही कर डाला। पत्नी के साथ एकशय्या या एकान्त का त्याग किया। यों जिस ब्रह्मचर्य का पालन मैं इच्छा या अनिच्छा से १९०० के साल से करता आया हूँ, उसके व्रत का आरंभ १९०६ के साल के मध्य में हुआ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

कोयम्बाटूर का भाषण

[मैं कोयम्बाटूर में गांधी जी के भाषण में से महत्वपूर्ण अंशों को नीचे देता हूँ। म० ह० दे०]

क्या यह असफल रही?

"मैं सबसे पहले म्युनिसिपैलिटी का मानपत्र लूँगा। मैं म्युनिसिपैलिटी को अपने विचार न सिर्फ खुलासा, शिष्टता से और दृढतापूर्वक प्रकट करने के लिए ही, बल्कि कोयम्बाटूर में मेरे पिछले दौरे के समय के मानपत्र की याद दिलाने के लिए भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। अपनी सारी जिन्दगी में मैंने बराबर ही अपने आलोचकों से, प्रशंसकों की बनिस्बत कहीं अधिक लाभ उठाया है और खास कर तब जब कि वह मानपत्र शिष्ट और दोस्ताना जबान में लिखा गया हो। इस म्युनिसिपैलिटी से मुझे जो पहला मानपत्र पाने का सौभाग्य हुआ था, उसमें असहयोग की खास कर स्कूलों और सरकारी नोकरी से असहयोग की उपयोगिता पर शंका की गयी थी। असहयोग की पैदाइश के बाद, और पिछले दो सालों में खास कर कितनी ही दुःखद घटनायें घटी हैं। १९२१ में पहले पहले मैंने देश को जो सलाह दी थी उस पर मैंने दो साल तक विचार किया था। असहयोग के विरुद्ध जितनी बातें लिखी गयी हैं, प्रायः सब की सब मैंने पढी हैं, और बडे गौर से निष्पक्षता से पढी हैं और इस पढने का नतीजा यह हुआ है कि १९२१ में मेरे जो खयालात थे और जो मैंने आप को बतलाये थे वे न सिर्फ नहीं बदले हैं बल्कि और भी अधिक पक्के हो गये हैं। यह मेरी नम्र सम्मति है कि पिछली दो पीढियों में देश को जितना लाभ नहीं हुआ था, उतना उसे असहयोग शुरू होने के बाद से हुआ है। मुझे इसका जरा भी डर नहीं है कि इतिहास असहयोग पर क्या फैसला देगा। मेरा यह भी पक्का यकीन है कि जिस किसी विद्यार्थी ने सरकारी स्कूल या कोलेज छोडा या जिस सरकारी नोकर ने अपनी नौकरी छोडी, उसको इससे बहुत फायदा हुआ है, घटी कुछ भी नहीं हुई है। यह कहने से मेरे उसूल की असफलता साबित नहीं होती कि लोगों ने सरकारी नौकरीयाँ नहीं छोडीं और हमारे लडकों ने सरकारी स्कूल नहीं छोडे जैसे कि सभी मर्द औरत सच के हामी नहीं हैं इसलिए कोई सचाई को गलत या बुरा नहीं कह सकता। मगर मैं एक कदम और आगे जाऊँगा और कहूँगा कि जो लोग निष्पक्ष हो कर सावधानी से आजकल की घटनाओं का अध्ययन करेंगे वे पावेंगे कि बहुत से सरकारी नौकर और विद्यार्थी जिन्होंने अपनी नौकरी और पढना छोडा था, आज अच्छा काम कर रहे हैं। यही क्या छोटी बात है कि लाखों आदमी, जादू की छडी से छूए से, एक मन हो कर असहयोग के नाम पर उठ खडे हुए थे? अगर सहयोग कर्त्तव्य है तो मेरा दावा है कि खास मौकों पर असहयोग भी कर्त्तव्य हो सकता है। मैं और आगे जाऊँगा और कहूँगा कि अगर हमारे देश को शान्तिमय उपायों से स्वतंत्र होना है तो हमारे लिए एक न एक दिन असहयोग करने के सिवाय दूसरा रास्ता नहीं है। आप मेरा विश्वास करें। अगर आज मैं असहयोग का नाम नहीं लेता तो इसके मानी यह नहीं हैं कि इस में मेरा विश्वास कम हो गया है, बल्कि व्यावहारिक पुरुष होने से आज मैं उसके लिए जरूरी वातावरण नहीं पा कर ही चुप बैठा हूँ।

हमारे जीवन का नियम

"इस मानपत्र में विनय से मगर दृढता से, वर्णाश्रम-धर्म के बारे में मेरे विचारों का विरोध किया गया है। मुझे मालूम होता है कि मानपत्र पर हस्ताक्षर करनेवाले या उसके लिखनेवाले वर्णाश्रम धर्म में सिर्फ बुराई ही बुराई देखते हैं। मैं अपना यह विश्वास फिर दुहराता हूँ कि वर्णाश्रमधर्म न सिर्फ नहीं बुरा है बल्कि हिन्दू धर्म का एक आधार है। मेरी समझ में मानपत्र लिखनेवालों ने छाया को ही पदार्थ मान लिया है। इसलिए, मेरी राय में यह भयंकर भूल करने के बदले, अगर वे वर्णाश्रमधर्म के नाम पर प्रचलित भ्रष्टाचार को दूर करने में साथ देने के लिए मुझे बुलाते तो मैं बडी खुशी से उनका साथ देता। मैं तो इसे मनुष्य-जीवन का अटल नियम मानता हूँ और ऐसे नियमों को हम जानें या भले ही न जानें मगर हम वैसे ही पालते हैं जैसे कि आकर्षण शक्ति के नियम का पता चलने के पहले भी हमारे पुरखे उसका पालन करते ही थे। प्रकृति के नियम अटल होते हैं। उनको तोड कर हम दंड से बच नहीं सकते। मेरा यह विश्वास दिनों दिन बरबस बढता जा रहा है कि हमारा हिन्दुस्तान और दुनिया आज वर्णाश्रमधर्म का पालन न करने से ही तकलीफ उठा रही है। अगर आज मुझे हिन्दूधर्म गिरा हुआ सा मालूम होता है तो वर्णाश्रमधर्म के कारण नहीं बल्कि उसे तोडने के कारण। वर्णाश्रम धर्म मनुष्य के जीवन का उद्देश्य बतलाता है। मनुष्यजन्म, रोज रोज धन कमाने के नये कायदे निकालने, और ऐशोआराम के ढँग सोचने के लिए नहीं है, बल्कि इसके उलटे आदमी अपने बनानेवाले को पहचानने की कोशिश में अपनी शक्ति का कण कण खर्च करने के लिए पैदा होता है। इसलिए शरीर और प्राण की रक्षा के लिए, यह वर्णाश्रमधर्म आदमी को उसके पूर्वजों के धंधे में रोक रखता है। यही वर्णाश्रमधर्म है। वर्णाश्रमधर्म इसके सिवाय और कुछ है ही नहीं, मगर चूंके अधिकांश हिन्दू अपने जीवनों में इसका पालन नहीं करते इसलिए मेरे लिए भी न यह संभव है, न जरूरी और न इष्ट ही है कि मैं भी वर्णधर्म की पर्वा न करूँ। इस दृष्टि से देखने पर वर्णधर्म में और की जातियों में कोई मेल ही नहीं है। इसलिए अछूतपना धर्म का अर्थ कभी हो ही नहीं सकता, और अछूतपने को वर्णधर्म में कभी जगह नहीं रही है। वर्णधर्म में, इसलिए, बडप्पन छुटपन का भी कोई भाव नहीं है। चूँके करोडों आदमी बेकार परमात्मा का नाम लेते हैं, और स्वयं ईश्वर के नाम पर उनका मनुष्यों का अपमान करते हैं, क्या हम भी परमात्मा को न और उनके लिए दूसरा नाम ढूँढ निकाले? इसलिए मैं नम्रता

मानपत्र के लेखकों को और इस सभा में उपस्थित हर एक आदमी को जाति और अछूतपने की बुराई को नष्ट करने में मेरा साथ देने को निमन्त्रण देता हूँ और मैं आप से वायदा करता हूँ कि अगर आप इस युद्ध में मेरे साथ रहे तो अन्त में आप देखेंगे कि हिन्दूधर्म में ऐसी कोई बात ही नहीं है कि जिससे आप लडें। मैं बडी नम्रता से ब्राह्मण-अब्राह्मण मसले का अध्ययन करता रहा हूं और मैं रोज ही इस नतीजे पर बरबस पहुंचता हूं कि जहां तक यह अब्राह्मण मसला है, यह भी अस्पृश्यता की ही लडाई का एक अंग है।

सच्चा नेतृत्व

"अब मैं कांग्रेस के मानपत्र का जवाब देता हूँ। उसमें मुझे फिर से नेतृत्व करने का निमंत्रण दिया जाता है। स्पष्ट ही उनका १९२० के कार्यक्रम में कुछ विश्वास बचा हुआ है। वे समझ लेवें कि मैंने नेतृत्व करना कभी छोडा ही नहीं है। मैं अभी उनका नेतृत्व कर रहा हूँ, अब भी उन्हें अपनी ओर बुला रहा हूँ, मगर मुझे जो पीछे चलनेवाले ही न मिलें तो मैं क्या करूँगा? मगर इस जवाब से अच्छा एक और जवाब हो सकता है। मैं आपको बतलाता हूँ कि मैं नेतृत्व कर रहा हूं तो इसके क्या मानी हैं। जेल जाने के पहले भी मैंने यही कहा था कि किसी अहिंसा-वादी के लिए एक ही बात कहनी संभव है और वह है रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा कर देना। महासभा का सबसे अधिक बाअसर काम तो चर्खे का हो सकता है और मैं उसकी रजामंदी, और इजाजत से अ० भा० चर्खासंघ के सभापति की हैसियत से रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने में देश का नेतृत्व कर रहा हूँ। और चर्खासंघ तो महासभा की ही सृष्टि है, मगर ऐसी सृष्टि है जो अध्यवसाय, और उचित रीति से काम करते करते अंत में अपने बनानेवाले को ही अपने में जज्ब कर लेने का इरादा रखता है। जिन्हें अहिंसा में सच्चा विश्वास है कि उससे मुल्क को सच्ची आजादी हासिल हो सकेगी, वे खादी में विश्वास किये बिना रह नहीं सकते। वे इसमें अपना कंधा लगावेंगे ही जिसमें चर्खा घर घर फैल जाय। जब तक यह काम हो नहीं लेता, वे दूसरे नेतृत्व की बात नहीं करेंगे। अगर कोई मुझ से नेतृत्व करने को कहता है, मगर मेरा बतलाया काम नहीं करता तो मैं हैरत में पड जाता हूँ कि आया इसने अहिंसा का या इस लडाई का मर्म समझा है या नहीं। याद रखिए कि चर्खा संघ के लिए, जो गरीब से गरीब लोगों को मिला कर ३० करोड आदमियों की सेवा करना चाहता है, बडी से बडी शासन-योग्यता और अधिक से अधिक लोगों की सहायता की जरूरत है, इसकी सफलता के लिए खादी-कार्यकर्त्ताओं में निरंतर पहरेदारी, निरंतर अध्यवसाय, लोगों के खिल्ली उडाने पर भी, विरोध करने पर भी, जानबूझ कर गलतफहमी फैलाने पर भी इसमें अटल विश्वास चाहिए। इसके लिए कार्यकर्त्ताओं में अटल और बिना जोश का गंभीर और अतुलनीय त्याग चाहिए, और अगर परमात्मा ने हिन्दुस्तान को ऐसी संस्था संगठित करने की और इसका काम दूर दूर के गांवों में भी फैलाने की शक्ति दी तो हम सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि उसके बाद देश को स्वतंत्र करने के लिए बहुत ही कम काम करना बाकी रह जाता है। मेरा विश्वास दिनों दिन बढता जाता है कि हिन्दुस्तान में इस प्रयत्न का उत्तर देने की शक्ति है और असहयोग में वर्णाश्रम धर्म में और मेरे और कई दूसरे कामों में आप विश्वास करें या न करें, मगर मैं आप सबसे कहता हूँ कि दरिद्रनारायण के लिए आप जरूर कुछ करें।

(यं० इं०)

संधि

(अलेप्पे के भाषण में से)

मेरी आशा

"आज तीसरे पहर एझुआ समाज के कई नेताओं से मैंने बातें की थीं। और बात यह है कि अगर मुझे बतलाया नहीं जाता कि ये एझुआ हैं तो मैं उन्हें पहचान ही नहीं सकता था। उनमें और अपने को सवर्ण कहनेवाले हिन्दुओं में मैंने कोई अन्तर नहीं पाया। उनकी माली हालत तो सवर्ण हिन्दुओं से कहीं अच्छी है। शिक्षा दीक्षा भी उन्होंने पूरी पायी है और व्यक्तिगत सफाई में मैं उन्हें अपने सारे हिन्दुस्तान के दौरों में देखे हुए अनेक ब्राह्मणों से कहीं ऊँचा मानता हूँ। इस लिए इन मित्रों के आमने सामने होने पर, उनका मानपत्र पढने पर मैंने शर्म से अपना सिर झुका लिया क्योंकि येही वे अछूत हैं जो कई सार्वजनिक सडकों पर चलने नहीं पाते, इन्हीं के जाने से हमारे मन्दिर, हमारे देवता अपवित्र हो जायंगे, और धारासभा में बडे से बडे के समान कर देने पर भी इनके लडके कमसे कम कई सरकारी पाठशालाओं में भी पढने नहीं जा पाते। आप यह याद रक्खें कि इस अमानुषिक व्यवहार के होने पर भी सवर्णों के बराबर ही कर देने से वे मुक्त नहीं किये जाते। मेरी समझ में तब यह एक काम है जिसमें अपना जीवन उत्सर्ग कर देना प्रेमी हिन्दुओं का कर्त्तव्य है। मैं यह आशा जरूर करता हूँ कि श्रीमती रानीसाहिबा जैसी कि शिक्षिता हैं, इस बुराई को दूर किये बिना कल नहीं लेंगी, और उनके साथ, दीवान साहेब के साथ, पुलीस कमिश्नर और अखीर में देवस्वामी कमिश्नर से मेरी जो बातें हुई हैं, उनसे मैं यही आशा ले कर जा रहा हूँ कि कमसे कम सडकों का सवाल तो हल हो ही जायगा। इसी आशा में सत्याग्रह स्थगित करने की सलाह देने में भी नहीं हिचका हूँ। आज मुझे इस सभा में यह कहते हुए बडी खुशी होती है कि सत्याग्रहियों के प्रतिनिधियों ने मेरी सलाह सुनी है, और जब तक इस सवाल का समझौता होता है, सत्याग्रह स्थगित करने पर राजी हो गये हैं। भगवान न करें कि मेरी आशा माया मरीचिका निकले। मगर मैंने इन मित्रों को कहा है कि अगर समुचित समय में आपकी शिकायतें दूर न की जायं, और उन्हें दूर करने में 'आप सब उपाय करके थक जायं तो, सत्याग्रह शुरु करने का आपको न सिर्फ अधिकार ही रहेगा, बल्कि अपने अधिकारों को जीतने के लिए सत्याग्रह शुरु करना आपका परम कर्त्तव्य होगा।

आशा का अर्थ

"अब आप मेरी इस आशा का अर्थ समझें। एक तौर से वायकोम के समझौते को मैं बुरा भले ही कहूँ, मगर वह दूसरे तौर पर राज्य और अवर्ण हिन्दुओं, दोनों के लिए ही समान रूप से प्रतिष्ठापात्र है। इसे मैं स्वतंत्रता की नींव कहता हूँ। मैं इसे स्वतंत्रता की नींव इस लिए कहता हूँ कि यह समझौता राज्य में और प्रजा में हुआ है और कम से कम एक तौर पर तो यह मुक्ति की ओर बहुत बडा कदम जरूर है। मगर जहाँ तक अवर्ण हिन्दुओं से सरोकार है, यही अखीरी नहीं है, बल्कि यही उनकी कमै से कम माँग थी, जिससे वे तब उसी समय के लिए संतुष्ट हुए थे। हाँ, सरकार के लिए यह समझौता ऐसा जरूर है, जिस से वह पीछे पाँव नहीं हटा सकती। उसके जरिये सरकार ने वह मंत्र बनाया जिससे वह आगे बढे। इसलिए उसका अर्थ हमेशे ही अवर्ण हिन्दुओं के ही पक्ष में लगाया जायगा। और अ-हिन्दुओं के अधिकार कम करने के लिए भी इसका अर्थ नहीं किया जा सकता। थिरुवर्पु के मौजूदा झगडे में इस उसूल से सरकार को ईसाइयों और दूसरे गैरहिन्दुओं का, सडकों को इस्तैमाल

रने का कोई हक कम करना या छीनना सरकार के लिए गैर मुमकिन है। इस लिए सरकार का यह फर्ज है कि वह ये सडकें अवर्ण हिन्दुओं के लिए खोल देवें और इसमें अगर कोई कठिनाई पडे तो उसे दूर करना सरकार का काम है न कि उसके लिए अवर्ण हिन्दुओं को ही कुछ सहना चाहिए। सुचन्द्रम मंदिर के बारे में भी अगर हूबहू यही नहीं तो ऐसा ही दूसरा मामला पेश है। मुझे उमेद है कि बहुत जल्द ही सरकार मेरे सुझाये काम करने की कठिनाइयों को दूर कर सकेगी।

"इन बातों की शर्त के साथ मैंने एझुआ मित्रों को सत्याग्रह स्थगित करने की सलाह दी है। मैं यह भी कहने का साहस करता हूँ कि ऐसी दशा में सरकार ने श्रीयुत माधवन् पर जो हुक्म निकाला है, उसे वह वापिस कर लेगी। तुरत कम से कम अब तो मैं उस हुकूम को और थिरुवर्पु से कुछ मील की दूरी तक सभा करने की मनाही के हुकूम को भी बिलकुल बेजरूरी समझता हूँ।

(यं. इ.)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, मार्गशीर्ष बदी १ संवत् १९८४

आत्मपरिवर्तन

चार सादे शब्दों में ही लोकमान्य ने अपना संदेश दिया है। फिर भी जैसे ईश्वर के अस्तित्व के बारे में शंका उठानेवाले लोग हैं वैसे ही स्वराज हमारा जन्मसिद्ध हक है इस सूत्र के विषय में शंका उठानेवाले लोग भी हैं। यह समझना ही स्वराज की हलचल का उद्देश है कि स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इस आत्मपरिवर्तन की आवश्यकता का स्मरण हमें कई प्रसंगों से हुआ है और नील के पुतले के सत्याग्रह के ऊपर मद्रास की धारासभा में जो बहस हुई थी उसने इस आवश्यकता का और भी अधिक स्मरण दिलाया है। इस पुतले को हटाने का निर्दोष प्रस्ताव बहुत बडी बहुमति से उड गया।

धारासभा के, कुछ जवांमर्द सभ्यों के सिवाय, तमाम हिन्दुस्तानी सभ्यों ने प्रस्ताव के विरुद्ध अपना मत दिया था। स्वराज पक्ष की और दूसरे लोगों की मनोवृत्ति में जो तीव्र भेद है उसे इस प्रस्ताव ने दिखा दिया है। इस निर्णय और बहस पर से हमें फिरसे यह बात दिखाई दी है कि जितना हमारे अपने हक को पहिचानने और उसके लिए प्रयत्न करने से इन्कार करने से स्वराज रुकता है उतना अंग्रेज राज्यकर्ताओं के दुराग्रह के कारण नहीं। मेरे नम्र अभिप्राय में नील का पुतला हटाने की हलचल हमारे ध्येय की प्राप्ति की प्रथम सीढी है। हमारे राष्ट्रीय स्वमान के लिए तो यह आवश्यक है कि केवल नील का पुतला ही नहीं परन्तु हमारी गुलामी का प्रत्येक चिह्न हटा दिया जाय। इस पुतले को मैं अपनी गुलामी का ही चिह्न मानता हूँ। इस हलचल का उद्देश कुछ आर्थिक लाभ प्राप्त करना नहीं है इसी से उसे अधिक बल प्राप्त होता है। जब लाखों भारतवासी केवल अपने स्वमान की रक्षा के लिए आत्मबलि देंगे तभी स्वराज नजदीक आ सकेगा। यूनियन जेक का अपमान अंग्रेज अपना अपमान क्यों समझते हैं और उसके लिए मरने को क्यों तैयार हो जाते हैं? यह भाव दबा देने और तिरस्कार करने योग्य नहीं है। यह सच है कि यूनियन जेक के अपमान का विरोध करने के लिए जिन साधनों से वे काम लेते हैं वे अक्सर जंगली होते हैं परन्तु यदि वह इस भाव को ही भूला दे तो उसके राष्ट्र की राष्ट्रीय दृढता और राष्ट्र के लिए आत्मत्याग करने की उसकी शक्ति दोनों का नाश हुए बिना न रहे। यदि हमें अपने जन्मसिद्ध हक का ज्ञान होता तो यह जान कर हमें अभिमान होता कि ऐसे नवजुवान पडे हुए हैं जो राष्ट्र को अपमानकारक ऐसे पुतलों का खडा रहना सहन नहीं करते हैं। धारासभा की बहस में भाग लेनेवाले हिन्दी सभ्यों ने न ऐसा ज्ञान ही दिखाया और न अभिमान ही। राष्ट्र के लिए लडनेवाले ये युवक उनकी दृष्टि में अज्ञान हैं और उनका यह काम तिरस्कार ही के योग्य है। जिन स्थानों पर राष्ट्र को प्रेरणा देनेवाले और उसे उदात्त बनानेवाले राष्ट्रीय वीरों के पुतले होने चाहिए थे ऐसे राजमार्ग पर ही नील का पुतला खडा हो इसमें उन्हें कुछ भी अनुचित नहीं मालूम होता।

यह सत्याग्रह जनरल नील नामक व्यक्ति के खिलाफ नहीं है यह स्पष्ट ही किया गया है। 'भय' का साम्राज्य कायम रखने के लिए खडा किया पुतला जनरल नील के बदले जनरल वीरसींग का होता तो भी उसके खिलाफ सत्याग्रह करना उतना ही उचित और आवश्यक गिना जाता।

धारासभा में यूरोपियन सभ्यों ने भी पुतले का बचाव किया था। उनके शब्दों में सावधानता, मर्यादा और सत्य का आभास था। फिर भी उससे यूरोपियन मनोवृत्ति का पता चल गया। जिसके लिए जनरल नील का पुतला खडा किया गया था वह साम्राज्य को बचाने के लिए आवश्यक था।

जनरल नील के कुकर्मों पर पडदा डालने के लिए उन्हें 'ढाल का दूसरा पहलू' नामक पुस्तक के लेखक मि. टामसन को खफ्ती कहना पडा और बलवे के दो बरस बाद मद्रास के ११० हिन्दुओं के जनरल नील की टुकडी को दिये खुशामदी मानपत्र को ढूँढ निकालना पडा। कैसी परिस्थिति में यह मानपत्र दिया गया था यह निश्चय करने का मेरे पास कोई साधन नहीं है परन्तु इसमें मुझे कुछ भी विचित्रता नहीं मालूम होती कि ऐसा मानपत्र दिया गया था। क्योंकि ऐसे उदाहरण आज भी तो दिये जा सकते हैं। जनरल डायर को क्या अमृतसर में ऐसा मानपत्र नहीं मिला था। और आज भी यदि सर माइकेल आडवायर हिन्दुस्तान में लौट आवें और राज के अच्छे इन्तजाम के लिए उसे मानपत्र देने की आवश्यकता मालूम हो तो ऐसा मानपत्र देनेवाले ११० भारतीय न निकलें तो यही आश्चर्य की बात होगी। अपने इस समय में भी लोगों के दिल से उतरे हुए वाइसरायों को भी क्या ऐसे मानपत्र और विजयचिह्न नहीं मिले हैं?

अंग्रेजों के जिन भावों के दिखाने से अंग्रेजो को शर्म मालूम होती है वही भाव यदि हमारे में हो तो उसका वे हर्ष से स्वागत करते हैं। यह स्थिति दयाजनक है। एक परिषद में वफादारी के प्रस्ताव पर बोलते हुए एक विद्वान यह बोले कि 'प्रत्येक अंग्रेज मेरा गुरु है और मेरे में जो कुछ भी है वह विलायत के कारण ही है।' इन शब्दों के कारण जो हर्षध्वनि हुई उसमें एक गवर्नर की पत्नी ने मुझे स्मरण है कि अग्रभाग लिया था। मद्रास की धारासभा का प्रसंग भी ऐसा ही था और इससे मुझे दुःख हुआ।

परन्तु जो नवयुवक जुल्म के इन स्मारकों के खिलाफ लड रहे हैं उन्हें धारासभा के इस विरुद्ध मत के कारण हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। इस हलचल का विरोध करनेवाले अंग्रेजों पर या भारतीयों पर वे क्रोध न करें। वे अपने में और अपने उद्देश में श्रद्धा रक्खें। इससे वे उनका भी मत परिवर्तन करा सकेंगे जो आज उनका विरोध कर रहे हैं। यदि वे दृढ अहिंसा बनाये रक्खेंगे और मर्यादा का उल्लंघन न करेंगे तो जिस हलचल की नींव उन्होंने डाली है वह सफल हुए बिना न रहेगी।

(यं० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी

एक सच्ची सेविका का प्रयाण

सन् १९२१ में बेजवाडा की बात है । स्त्रियों की एक बहुत बडी सभा में मैंने सिर्फ एक लडकी को खादी पहनी हुई पाया जो सभा का प्रबंध कर रही थी, शान्ति रखती थी, और फुर्ती और निश्चयता से इधर उधर घूमती थी । जहांतक मुझे याद है, उसीने पहले पहल अपने सभी कीमती गहने, चूडियां, और सोने की एक भारी जंजीर दी थी । जब कि वह अपने सब गहने दे रही थी, मैंने पूछा, 'क्या तुमने अपने मा बाप से इजाजत ले ली है?' उसने कहा 'मेरे मा बाप मेरे किसी काम में दखल नहीं देते और मैं जो चाहती हूं मुझे करने देते हैं ।' अन्नपूर्णा देवी अंगरेजी तेजी से बोलती थीं । उन्होंने कलकत्ते के बेथून कौलेज में शिक्षा पायी थी । वह स्त्रियों की उस बडी भीड में चंदे के लिए चली गयी और गहने और रुपये लायी । तब से बराबर, इस आन्दोलन से उसने संबंध रक्खा और सच पूछो तो इसमें अपने को उत्सर्ग कर दिया । कोकोनाडा में वह स्त्री स्वयं-सेविकाओं की सेनापति थी और उस समय उसके काम की कितनों ने ही बडी तारीफ की है । दुर्भाग्य से तब भी उसका स्वास्थ्य बिलकुल अच्छा न था । उसका विवाह श्रीयुत मगुन्नी बापीनीडु बी. एस. सी. से हुआ था । कोयम्बाट्टर में मुझे उसकी मृत्यु के कई दिनों बाद सहसा तार मिला कि वह कूच कर गयी । और अब श्रीयुत नीडु का पत्र आया है जिसमें से कुछ उतारे मैं नीचे दे रहा हूं:

"आखिर जिसका डर था, वही हुआ । यह मेरा दुर्भाग्य है कि मेरे पहले पत्र में ही आपकी प्रिय सेविका और मेरी जीवन संगिनी अन्नपूर्णा का दुःखद मृत्यु-संवाद आपके पास जाय । मुझे उसकी सेवा करने, उसे अपने स्वास्थ्य का खयाल रखने और हिम्मत बनाये रखने की आपकी आज्ञाओं का हमने अक्षरशः पालन किया । जो कुछ कि आदमी से हो सकता था मैंने किया, मगर होनी होकर ही रही ।

"आपके असहयोग आन्दोलन के नष्ट किये हुओं में से वह एक थी । उसने देश को अपना सर्वस्व दे दिया था—अपने जवाहिरात दिये, मेरी दी हुई विवाह की अंगूठी भी दी—विवाह की भेंटें दीं, अच्छे से अच्छे कपडे दिये, पढना लिखना छोडा, स्वास्थ्य दिया और अन्त में प्राण तक दे दिया ।

"आप में अटल विश्वास होने से ही उसने आप के 'स्वास्थ्य विषे सामान्य ज्ञान' को आंख मूंद कर पाला । आपके बतलाये बेहिसाब फलाहार को उसने छह महीने चलाया जिससे उसका शरीर जो टूटा सो टूटा, फिर नहीं जुडा ।

"मैं आप पर इल्जाम लगाने की क्रूरता नहीं करूंगा । मगर सच्ची बात तो कहनी ही पडेगी । उसने असहयोग का प्रचार कार्य करने में अपने स्वास्थ्य की पर्वा नहीं की और तब चेती जब कि खेती सूख गयी थी । आपने लिखा था कि 'मैं जानता हूँ, तुम खादी का काम खूब उत्साह से करोगी ।' हां, उसने खूब उत्साह से खादी का काम किया । मेरे अमेरिका से लौटने पर उसने अपनी पहली प्रार्थना मेरे पैरों पर गिर कर यह की कि 'खद्दर पहनने का वायदा करो ।' उसने आजीवन खद्दर पहनने का व्रत लिया था और उसे पूरा कर दिखाया । मोटी खद्दर की सारियों से जब उसके मांस रहित, सिर्फ हाड और चाम के शरीर में फोडे हो गये, तब भी उसने खद्दर नहीं छोडा और उसका यह सौभाग्य है कि वह खद्दर के ही कफन में जलायी भी गयी । शायद वह परलोक में भी खद्दर का प्रचार करने को अत्यंत उत्सुक थी!

"अमेरिका जाते समय उसने मुझसे यही कहा था कि 'मुझे भूल जाना, मगर देशको न भूलना ।' एक बार वह कहती थी कि, 'अगर इस बीमारी से उठ खडी होना चाहती हूँ तो सिर्फ देश की सेवा की खातिर ।' पतिकी खातिर नहीं । अभिलाषा के कारण वह कई महीनों तक जीती रही जब कि हम सबने आशा छोड दी थी । अन्त तक वह डाक्टर से झगडती रही, 'मैं नहीं मरूँगी, हां ।' वह मरने को जीती रही और देश के लिए जीने को ही मरी ।

"उसकी कुछ किताबों और पत्रों को हम छपाने का इरादा करते हैं ।

"हमारी तो नन्हीं सी झांसी ही हमारा एकमात्र आशा भरोसा और सान्त्वना है । उसे आशा थी कि इसके जन्म से वह अच्छी हो जायगी । हाँ उसके स्वास्थ्य में सदा के लिए परिवर्त्तन हुआ, वह चली गयी ।

"अगले २३ अक्तूबर को उसका श्राद्ध है, जब कि उसके स्मरण में उसके लेख और पत्र पढे जायँगे । वह स्त्रियों के लिए एक राष्ट्रीय संस्था खोलना चाहती थी । उसे पूरा करने के लिए एक स्मारक समिति बनायी जायगी । क्या हम आपका नाम उस में शामिल करें? कृपाकर अपना आशीर्वाद और अनुमति २० तारीख तक जरूर दे देंगे ।

"आप को ऐसी सच्ची सेविका की हानि हुई है । मैंने ऐसी आदर्श जीवन-संगिनी खोयी है । मेरा अच्छा आधा अंग तो दूसरे निराश, दुःखी, और कमजोर अंग को जो उसकी कमी कभी भी पूरी नहीं कर सकता, छोडकर चला गया है ।"

यह सच है कि मैंने अनेक भक्त अनुयायी खोये हैं । मुझे हिन्दुस्तान में जो अनेक लडकियों को अपनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उनमें से किसीके खो जाने का सा दुःख हो रहा है । और उनमें सबसे अच्छी लडकियों में से वह थी । उसका विश्वास अटल रहा और इनाम या तारीफ की उमेद बिना उसने काम किया । अन्नपूर्णा देवी ने अपने पतिपर पवित्रता और एकनिष्ठ भक्ति से जो नम्र मगर अधिकारपूर्ण प्रभाव पाया था, वह प्रभाव कई पत्नियां प्राप्त करें तो क्या अच्छा हो! मैं उनके मीठे आक्षेप को समझता हूँ कि अन्नपूर्णा देवी ने मातृभूमि की सेवा में अपना शरीर गला दिया । मुझे इसमें जरा भी शक नहीं है कि अगर हिन्दुस्तान को एकबार और पवित्र और स्वतंत्र बनना है, जैसा कि लाखों आदमी आज भी मानते हैं कि वह प्राचीनकाल में था तो, यह जरूरी है कि कितने ही नवयुवक नवयुवतियों को इस भली स्त्री का अनुकरण करना पडेगा, और हिन्दुस्तान के लिए फर्ज अदा करने में शहीद होना पडेगा ।

ऊपर के उतारे में उल्लिखित समिति का सदस्य मैं नहीं बन सका । क्योंकि मेरे पास कई काम हैं, और मैं सैंकडों समितियों की सदस्यता का बोझ उठा नहीं सकता । मेरा विश्वास इसमें कभी नहीं रहा है कि समितियों के सदस्य शोभा के लिए या सिर्फ नाम लिखाने के लिए हम बनें । इसमें कोई शक नहीं कि अन्नपूर्णा देवी जैसी बहादुर और पवित्र देशभक्त की यादगार बनाये रखने के लिए स्थानिक समिति बननी चाहिए । मगर सबसे अच्छी यादगार बनानी तो उनके योग्य पति के लिए यह है कि वे अपनी पत्नी के रास्ते चलें, और अपनी भूली हुई संगिनी को देशकार्य में ही पाकर उसकी याद बनाये रक्खें क्योंकि उन्हीं के कथनानुसार अन्नपूर्णा देवी ने इसी काम में अपने आपको भुला दिया, खो दिया था ।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

क्षमा प्रार्थना

शोक है कि 'नास्तिकता' शीर्षक श्री दत्तात्रय बालकृष्ण कालेलकर का लेख ता. २७ अक्तूबर के अंक में दुबारा छप गया है । यह लेख गुजराती नवजीवन में छपने के पहले ही हिन्दी में छप चुका था । पाठक इस भूल के लिए क्षमा करें ।

उप. सं. हि. न.]

साप्ताहिक पत्र

इस सप्ताह काम की बडी भीड रही। कुछ तो इसलिए कि उन जगहों पर भी जहां गांधीजी के स्वास्थ्य के विचार से जाने का विचार ही छोड दिया गया था, लोग उन्हें ले जाने के लिए बडे उत्सुक थे और कुछ इसलिए कि स्वयं गांधीजी भी, 'बहुत ही जरूरी और महत्त्व के काम' के लिए देल्ही आने के लिए श्री वायसराय के निमन्त्रण का ख्याल करके दक्षिण भारत का अपना प्रयास बहुत शीघ्र पूरा करने के लिए उत्सुक थे। इसलिए इस सप्ताह में जिनसे कमज्यादे असंतोष रहा ऐसे कामों की और मुलाकातों की बडी भीड रही। मौप्ला हुल्लड की दुःखदायी स्मृतियों से भरे हुए स्थानों में गांधीजी कुछ अधिक दिन रहना पसंद करते। मंगलूर की स्त्रियों ने सभा में और उनके ठहरने के मकान पर भी अपने गहनों की सप्रेम भेंट दे कर गांधीजी को मुग्ध कर दिया था। उनके साथ कुछ समय रहने से उनके दिल को अच्छा लगता। और उत्साह और हार्दिक स्वागत की आशा दिलानेवाले निलेश्वर, उडुपी, कसारगड और करकाल में कुछ अधिक दिन रहने से उन्हें बडा आनन्द होता। परन्तु यह बात न होनी थी। गांधीजी ने कहाः 'राष्ट्र की सेवा करने की उमेद ही से मैं देल्ही जाता हूँ, मेरा ख्याल है कि वायसराय के निमन्त्रण का स्वीकार न करना अनुचित होगा' किसी कवि ने कहा है। ईश्वर के दरबार में तो तमाम सेवायें समान है। न कोई पहले है न कोई पीछे।'

पुदुपलायम

मैं पुदुपलायम को तो भूल ही गया। पुदुपलयम को छोड देना बडे कष्ट की बात थी। श्री सन्तानम ने हमारे स्वागत के लिए बडी तैयारियां कर रक्खीं थीं। उन्हों ने आस पास के गांवो में से बुला कर १०० कांतनेवालियों को इकट्ठा करना चाहा था और बुनवैयों की भी सभा रक्खी थी और भी बहुत सी तैयारियां की थी। परन्तु आश्रमवासी चुप चाप सेवा करने की अपनी प्रतिज्ञा के प्रति सच्चे थे। उन्होंने अपनी बडी मिहनत की कमाई से बचा कर एक छोटी सी थैली भेजी और अपने काम का ब्यौरा भी भेजा। इसमें दिये गये अंक बडे महत्व के हैं और वहां के कामों के सूचक हैं। उनका सार निकाल कर देना बडा मुश्किल काम है परन्तु वे सब अंक नहीं दिये जा सकते। उसका सार ही नीचे दिया जाता है। पाठक उसे देख कर यह समझ सकेंगे कि हिन्दुस्तान के गांवों में भूखों मरनेवाले भाई बहनों को खादी कैसे आशीर्वादरूप हुई है और कैसे आशीर्वादरूप हो सकती है। आश्रम के रजीस्टर में कुल १७७२ कांतनेवाले है। वे कोई १३९ गांवों से आते हैं। कातनेवालों ने चरखे से जोलाई अगस्त और सीतम्बर के तीन महिनों में रु. ५३२९-७-० कमाये। कुछ कातनेवालों की कमाई के अंक नीचे दिये गये हैं।

गांव	कातनेवाली का नाम	जोलाई	अगस्त	सीतंबर	तीन महीने का कुल
नटमपालयम	पावक्का	३-९-०	२-९-०	३-१५-०	९-१-०
नीह्लीपालयम	पवयी	४-३-०	४-७-०	३-१५-०	१२-९-०
चदयकोंदनपलयम	सेह्लई	३-६-०	२-१४-०	४-६-०	१०-१०-०
सेंबपालयम	पेरुमयी	४-८-०	२-७-०	२-१२-०	९-११-०
थलक्करई	अलीअक्का	३-२-०	३-२-०	३-३-०	९-७-०
पुदुपालयम	करुप्पइ	६-५-०	३-५-०	३-४-०	१२-१४-०

हां, इसमें नाम एक होने पर भी कांतनेवालियां दो भी हो सकती हैं।

आश्रम के लिए सूत बुननेवाले १५० हैं। ऊपर दिये गये महीनों में जुलाहो की कमाई के अंक नीचे दिये गये है।

गांव	नाम	तीन महिने की कमाई
चित्तलंदुर	पालनीअप्पा	रु. ६७-१०-०
वनयक्कमपालयम	नागमुथ	,, १००-१४-०
उपुपालयम	गुरुनाथन	,, १३४-१०-०
नदन्दई	मुथुस्वामी	,, १११—३-०
कलोयपन्दुर	वाडीवेलु (दो करघे)	,, २१३—६-०
मनती	नह्लयप्पन	,, ६५—९-०

कुछ समय हुआ जुलाहों की बचत की रकम आश्रम में रक्खी जाती है। वह रकम अब तक २,६७५ के करीब हुई है। आश्रम के खादीकाम में ४ धोबी भी लगे हुए हैं। उनकी कमाई के अंक नीचे दिये गये है।

नाम	तीन महीने की कमाई
कह्री	रु. २६-०-०
वीरन	,, ४३-१२-३
वेंकटन	,, ३१-१२-०
रामन	,, ४२-१२-६

धोबियों की बचत रकम भी जमा होती है। उन्होंने दूसरे खर्च निकाल कर आश्रम में रु. ९९-८-६ जमा किये हैं।

आश्रम के आरंभ से ३० सितम्बर १९२७ तक अर्थात कुल २॥ वर्ष में आश्रम में कुल २,२६,०६४) की खादी पैदा की गई और २,०२०,०१८) की खादी बिकी। गत वर्ष में १,२८,०१५ की खादी उत्पन्न हुई थी।

कातनेवाले, बुननेवाले और धोबी को ढाई साल में कुल १,२२,९२९) दिये गये अर्थात खर्च का फी सैंकडा ८५ उन्हें मिला।

आश्रमवासियों पर और नौकरों पर इतने समय में ९४,०९३) खर्च हुए, अर्थात ९॥ प्रति सैंकडा खर्च हुआ।

आफीस और दूसरे खर्च में ७,९७६) खर्च हुए अर्थात ५॥ प्रति सैंकडा खर्च हुआ।

उत्पन्न की गयी खादी की कुल कीमत के हिसाब से कातनेवाले, बुननेवाले, और धोबी को दी गयी मजदूरी में ५४ प्रति सैंकडा खर्च हुए। ६ प्रति सैंकडा काम करनेवाले आश्रम के सभ्य और नौकरों में खर्च हुए। ३ प्रति सैंकडा दूसरे जरूरी खर्च में और ३७ प्रति सैंकडा रुई की कीमत हुई।

३० सितम्बर तक के हिसाब का जो ब्यौरा दिया गया है उस पर से मालूम होता है कि आश्रम अपने खादीकार्य की कमाई से अपना तमाम खर्च चला सकता है।

जिन्हें कोई डाक्टरी मदद नहीं मिल सकती उन्हें आश्रम की तरफ से डाक्टरी मदद भी दी जाती है। पिछले ११ महीनों में १०,१४५ शख्सो ने आश्रम के इस मुफ्त अस्पताल से लाभ उठाया। २,३८४ बीमारों की दवा की गयी और कोई १४८ आपरेशन किये गये।

आश्रम ने ११ अस्पृश्य नवयुवकों को धुनाई के काम में तैयार किया है। इसी वर्ग की २० औरतें नियमित कातने लगी हैं और आश्रम को अपना सूत देती हैं।

खादीनगर

तिरुपुर के नागरिक उसे 'खादीनगर' कहते है। तीन साल पहले जब गांधीजी वहां गये थे, लोग दुष्काल से पीडित थे और इस लिहाज से उन्होंने जो छोटी सी थैली उस समय दी थी संतोषजनक कही जा सकती थी। परन्तु 'खादी राजा' उस थैली के लिए वहां नहीं गये थे। उन्होंने कुछ भी न दिया होता और

गांधीजी को सिर्फ यही यकीन न दिलाया होता कि हमारे नगर में एक भी विदेशी कपडे की दुकान नहीं, एक भी शराब की दूकान नहीं, एक भी ऐसा घर नही जहां विदेशी कपडा हो और यहां यह नहीं घर घर में चरखा न हो तो उन्हें बडा ही संतोष होता। परन्तु वहां तो थोडी खादी की दुकानों के— जो बाहर को खादी भेजने का ही काम करती है— पडौसमें ही विदेशी कपडें की बहु संख्यक दुकाने हैं। ३५ हजार गांसडी अच्छी रूई जो वहां पैदा होती है उसमें से सिर्फ एक हजार गांसडी रूई ही खादी के काम में आती है और तिरुपुर के आसपास रहनेवाले कातनेवाले और जुलाहों में से बहुत ही थोडी संख्या को खादी का काम मिलता है। यदि तिरुपुर के नागरिक यह जानना चाहते हैं कि खादीनगर कैसा होना चाहिए तो उन्हें वाल्मिकी रामायण के प्रथम अध्याय के इस श्लोक को पढना चाहिए।

नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः।

इसी एक चरण में खादीनगर का आवश्यक लक्षण दे दिया गया है 'लोग अपनी संपत्ति से ही सन्तुष्ट थे, किसीको किसी से ईर्ष्या न थी, दूसरे के धन का लोभ न था और सत्यवादी थे।' उनमें ये सब गुण इसलिए थे कि वे 'एक अत्यावश्यक वस्तु' पर बडा ध्यान देते थे।

ऊंच और नीच

परन्तु इस नगर में तो लोग बहुत सी बातों की चिन्ता और विचार करते है। कुछ नवयुवको ने 'वर्णधर्म' पर बहस करने के लिए गांधीजी से मुलाकात की और दोपहर का उनका बहुत सा समय ले लिया। वे यह नहीं समझ सके थे कि जबतक ब्राह्मण ब्राह्मण रहेगा वह अपने ऊंचेपन का ख्याल कैसे छोड सकेगा। गांधीजी ने उन्हें समझाने के लिए ठेठ का उदाहरण दे कर कहा "सीताजी भी व्यभिचारिणी स्त्री से ऊंची नहीं गिनी जा सकतीं। अब आपको संतोष हुआ" उस मित्र ने विस्मित हो कर कहा 'नहीं।' गांधीजी ने कहा "मुझे इससे संतोष होता है, क्यों कि सीताजी को अपने ऊंचेपन का ख्याल न था। यदि उनको उसका अभिमान होता तो वह कहीं की भी न रहतीं। परन्तु उन्हें तो उसका ज्ञान भी न था। वे पवित्र थी क्योंकि पवित्र न होना उनके लिए असंभव था। क्या हिमालय को उसके सबसे अधिक ऊंचे होने का ख्याल है? जरा भी नहीं। यदि उसको इसका ज्ञान होता तो उसके टुकडे २ हो जाते। इसी तरह वर्ण भी ऊंचनीच के भाव का, उसके अभिमानका, पर्याय वाची हो जाय तो वह गले की फांसी हो पडेगा। मेक्सम्यूलर ने हिन्दूधर्म के तत्त्व को थोडे में कहा है" हिन्दुस्तान जीवन को एक कर्तव्य समझता है और दूसरे उसे कर्तव्य और भोग का मिश्रण" वर्ण और कुछ भी नहीं है, वह सिर्फ अपने बापदादों से मिला हुआ अपना जीवन कर्तव्य है। पश्चिम में जब लोगों की स्थिति सुधारने की बातें की जाती हैं तब जीवन के आदर्श को ऊंचा करने की बातें की जाती है। लेकिन हमें ऐसी बातें करने की कोई जरूरत नहीं है। जब आदर्श हमारे अन्दर ही है तो कोई बाहर का मनुष्य उसे कैसे ऊंचा बना सकता है? हम तो केवल उनको अपना कर्तव्य समझने के लिए और ईश्वर के निकट पहुंचने के लिए अधिक सुविधायें मिले इतना ही कर सकते हैं। परन्तु आप तो आज पेड को ही उखाड फेंकने का अशक्य काम करना चाहते हैं। मैं यह स्वीकार करता हूं कि कुछ पत्र और डालियां सड गयी हैं। चाकू ले कर हम उन्हें काट डालें। पर हमें उसकी जड ही नहीं काटनी चाहिए यदि आप ऐसा करेंगे तो बुरे माली कहलावेंगे और उसी वृक्ष का आप नाश करेंगे जिसके नीचे आप रहते हैं और इतने बडे हुए हैं। अनावश्यक भाग को काट डालो। जड के साथ केवल ठूंठ रह जाय तो भी कुछ नहीं। जड अगर ज्यों की त्यों है और उसको बराबर सींचोगे तो वह बढ कर बडा वृक्ष हो जावेगी।

परन्तु जैसा कि मैंने कहा है इस वृक्ष का नाश नहीं किया जा सकता है। सच्चे ब्राह्मण तमाम कुठाराघातों को सहन करेंगे और अपने आत्मत्याग के गौरव से सीधे डटे रहेंगे। मैं इस बात का स्वीकार करता हूँ कि आज ऐसे ब्राह्मण बहुत ही कम है, सच्चे क्षत्रिय वैश्य और शूद्र भी बहुत ही कम है। शूद्रो में भी विशेषता होती है। आज तो हम सब गुलाम हैं। आज डायर जैसों की उद्धत शक्ति के सामने हम सब कांप जाते हैं। हम सब अपने अपने कर्तव्यों का पालन करें। हम में से बहुतेरों को वैश्य बनना होगा क्योंकि आज हम सब वैश्यों के पैरों नीचे रौंदे जा रहे है।

हम ब्राह्मण का आदर करेंगे परन्तु वह इसलिए नहीं कि वह हम से ऊँचा है परन्तु इसलिए कि वह हमारी ऊँचे प्रकार की सेवा करता है। आज हम इतने गिर गये हैं कि ऊँच नीच के भाव के विना हम विचार ही नहीं कर सकते।

गीता का वर्ग

यद्यपि तिरुपुर आदर्श स्थिति पर नहीं पहुँच सका है, वह हिन्दुस्तान में और जगहों के बनिस्वत अच्छा है। उसके आसपास के गांवों में बनी खादी को बाहरवाले खरीदते हैं इस कारण भी वह बहुत से लोगों को काम दे सकता है। और प्रगति कितनी ही धीरे क्यों न हो वहां वह पायी जरूर जाती है। १९२४ से १९२७ तक चार वर्षों में कपडे छापनेवालों को जो मजदूरी मिली है उसके अंक देखें:

१९२३-२४	रु. ५,५३७-१२-१०
१९२४-२५	,, ११,७७०—५—१
१९२५-२६	,, १३,१०३—३—५
१९२६-२७	,, १३,६६८-११—१

चरखा संघ के खादी वस्त्रालय और कोंगु खादी कंपनी में खादी की फुटकर बिक्री भी अच्छी हुई। और मुझे यह भी समाचार दिये गये कि दुष्काल के दिनों में भूख के रोग को दूर रखने में कताई ही एक मुख्य साधन था।

इसके अलावा तिरुपुर की मुलाकात के संबंध में और भी संतोषजनक बातें थीं। पडोष के गांव से एक शिक्षक १२० अंक का सूत लेकर आये थे और वे कहते थे कि उस सूत से बनी धोतियां उन्हें चार साल चलीं। स्थानिक शाला के हैड मास्टर हमेशा खादी ही पहनते थे, परन्तु उन्हें उसमें जीवन्त श्रद्धा न होने से उन्होंने मील के कपडे का सम्पूर्ण त्याग नहीं किया था। उन्होंने अपनी शंकायें उपस्थित कीं। जब उनके उत्तर दिये गये तब उन्होंने वचन दिया कि वे खादी के सिवा और कुछ भी नहीं पहनेंगे। और दूसरे शिक्षकों के साथ विचार करके उन्होंने सभा में ही जाहिर किया कि दूसरे दिन से वे सब खादी पहन कर ही शाला में जावेंगे।

हैड मास्टर ने इतने से ही संतोष न माना। आप संस्कृत के विद्वान थे। वे शाला के चालीस लडकों को जिन्होंने गीता पढने की इच्छा प्रकट की थी इकट्ठा करके गांधीजी के पास एक रोज सुबह को चार बजे आये और उन्हें उनका गीता का वर्ग खोल देने को कहा। इस पवित्र काम से बढ कर गांधीजी को और क्या आनन्ददायी बात हो सकती था। उन्होंने उस संध्या को अपने व्याख्यान में कहाः

"भगवद्गीता के आदरपूर्वक क्रिये गये अध्ययन से बढ कर और कोई रक्षक वस्तु का मैं विचार ही नहीं कर सकता हूँ। और विद्यार्थी यदि इस बात का स्मरण रक्खेंगे कि उन्हें अपना संस्कृत का ज्ञान प्रकाशित करने के लिए अथवा भगवद्गीता का ज्ञान प्रकाशित करने के लिए ही वह नहीं पढना है तो वे यह जान सकेंगे कि वे उसे आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त करने के लिए और जिन नैतिक कठिनाइयों

का उन्हें सामना करना पडता है उनको हल करने के लिए ही पढते हैं। जो आदमी इस किताब को आदरपूर्वक अध्ययन करता है वह राष्ट्र का और उसके जरिये मनुष्यत्व का सच्चा सेवक बनता ही है।"

और सद्भाग्य से यह दिन रविवार का ही था। उस दिन हम तीसरा अध्याय जिसमें सेवा मार्ग अथवा कर्मयोग का उपदेश दिया गया है पढते हैं। गांधीजी ने कहा "गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग की शिक्षा दी गयी है। जीवन में इन तीनों का सुसंवाद होना चाहिए। परन्तु कर्मयोग ही सब का आधार है और जो लोग देश की सेवा करना चाहते हैं उनके लिए जिसमें कर्म का उपदेश किया गया है उस अध्याय से आरंभ करने से और क्या आवश्यक बात हो सकती है। परन्तु आपको पांच साधनों से युक्त होकर ही उसका आरंभ करना चाहिए जैसे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अस्तेय। तभी आप उसका सत्य रहस्य समझ सकोगे, तब आप उससे हिंसा नहीं किन्तु अहिंसा ढूंढने के लिए ही उसे पढेंगे। आप उसे आवश्यक साधनों से युक्त होकर पढेंगे तो मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि आपको वह शान्ति प्राप्त होगी जिसका आपको पहले कभी ख्याल भी न था।

(यं. इं.)

महादेव देशाई

टिप्पणियां

अस्पृश्यता-निवारण

श्रीयुत एस. डी. नाडकरनी कारवार से १० सितंबर के अपने पत्र में लिखते हैं:

"पिछले हफ्ते मैं और मेरे भाई ने कुछ नवयुवकों की सहायता, से बहुत सी अनसोची कठिनाइयों के होते हुए भी 'खरा सार्वजनिक गणेशोत्सव' (यानी जिसमें सब कोई शामिल हो सकें) का प्रबंध किया था। इस नाम का अर्थ यह है कि इसमें हमने अछूतों को भी शामिल किया था। इसमें और सब हिन्दुओं ने भी हाथ बँटाया था। जुलूस के अलावा हमने पूजा, भजन, आरती, कीर्त्तन, पुराणपाठ, और अंत में इसी अवसर के लिए खास तौर पर लिखे गये नाटक का प्रबंध भी किया था जो इस बीच दो बार खेला गया। इस नाटक का आधार हमारे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के एक अछूत सदस्य का सच्चा अनुभव है। एक बार वे एक दूसरे मुसलमान सदस्य के साथ पडोस के गांव के मंदिर में पाठशाला का निरीक्षण करने गये थे और उन्हें भीतर नहीं जाने दिया गया जब कि उनके साथी मुसलमान भीतर जाकर स्कूल का निरीक्षण कर सके! क्या आप इस पर विश्वास कर सकेंगे? उन्हीं अस्पर्श्य या 'मुझे न छुओ' वाले हमारे ही भाइयों ने नाटक का खेलना रोकने के लिए मुसलमानों से झूठी दरखास्त दिला दी थी कि यह नाटक मुसलिम-विरोधी है। हमारे समाज में परमावश्यक सुधार करने के आन्दोलन के विरुद्ध क्या इस से भी अधिक आत्मघाती रास्ता कोई हो सकता था? मगर न्याय और बुद्धि की बलिहारी है कि उनकी कोशिश बेकार गयी!

"पूने के चित्रे शास्त्री (महाराष्ट्र हिन्दू महासभा के सभापति) की सहायता से जो खास इसी मौके के लिए बुलाये गये थे, हमने हिन्दू महासभा की स्थानिक शाखा खोली। इसका प्रधान उद्देश्य है अस्पृश्यता का निवारण करना और हमारे सार्वजनिक मंदिरों में अछूतों को प्रवेश का अधिकार दिलाना।"

जैसे कि श्रीयुत नाडकरनी उन्हें 'मुझे न छुओ' वाला कहते हैं, उन अपने आप रूढिपंथी बने हुए हिन्दुओं का, सुधारकों के एक निर्दोष नाटक का प्रबंध करने पर अछूतों के उसमें आने का विरोध करना और विरोध करने का ढंग, उनके या उनके हिन्दूधर्म के लिए प्रशंसा की बात नहीं है। उससे यह भी जाहिर होता है कि धर्म के पवित्र नाम पर आंख मूँद कर रूढियों का कहाँ पालन किया जा सकता है। मैं श्रीयुत नाडकरनी और [उनके] मित्रों को सफलतापूर्वक अछूतों को अपने जुलूस में शामिल [करने] और नाटक के खेल में दाखिल करने पर साधुवाद देता [हूं।] अस्पृश्यता को दूर करने का एक मात्र रास्ता यही है कि हर सुधारक ऐसा कोई न कोई, चाहे कितना ही छोटा क्यों न [हो,] रचनात्मक काम करे और नम्रता के साथ दृढता को मिला कर [जुल्म] और पक्षपात की दुहरी दीवारों को तोडे। मैं आशा करता हूं कारवार के सुधारकों को, अछूतों को मंदिरों में दाखिल करने [के] प्रयत्न में सफलता मिलेगी।

अनुकरणीय

चांदा (मध्य प्रान्त) की म्युनिसिपैलिटी के उप-सभा[पति] लिखते हैं:

"मध्य प्रान्त और बरार में हमारी ही म्युनिसिपैलिटी ने [सब से] पहले खादी पर से जकात उठा दिया है। इसके अलावा १९[..] से यह म्युनिसिपैलिटी हर साल ५००) रुपये खादी के लिये [देती] आयी है जिससे यहां एक शुद्ध खादी कार्यालय चलता है। [यह] कार्यालय अब अ० भा० चर्खासंघ से स्वीकृत हो गया है। [यहां] का सूत महाराष्ट्र में समानता, मजबूती और अंक में सबसे अ[च्छा] निकला है। १९२२ से अब तक म्युनिसिपैलिटी अपने काम [के] लिए 'चांदा खादीकार्यालय की बनी केवल शुद्ध खादी ही खरीद[ती] रही है। अब अपने स्कूलों में खादी दाखल कराने की [एक] योजना पर विचार हो रहा है।"

ऊपर का उल्लिखित प्रस्ताव यह है:

"निश्चय किया जाता है कि अ० भा० चर्खासंघ से जि[स] कपडे पर यह प्रमाणपत्र मिला हो कि यह हाथकती, हाथबुनी खा[दी] है, उस पर जकात नहीं लिया जायगा।"

इस उदाहरण का अनुकरण सभी म्युनिसिपैलिटियां कर सक[ती] हैं। खादी के लिए इस म्युनिसिपलिटी को कुछ नया ही न[या] प्रेम नहीं जन्मा है बल्कि उसके लिए यह बहुत का[म] कर चुकी है। दूसरी कई बडी छोटी म्युनिसिपैलिटियों के जै[से] इसने अपना काम नहीं बन्द किया, वह बढता ही गया है। इ[स] म्युनिसिपैलिटी को इतनी सफलता इसलिए मिली है कि इसके [क]सदस्य चर्खे में सिर्फ विश्वास ही नहीं करते बल्कि अपने जीवन [में] उसे ला उतारते हैं। खादी का विकास इस म्युनिसिपैलिटी [में] स्वाभाविक रीति से ही हुआ है। पहले उसने रुपयों की मदद दी तब अपने नौकरों के लिए खादी की वर्दियां बनवायीं। उसके बा[द] खादी पर जकात उठाया गया और अंत में अपने स्कूलों में [व] कताई को दाखिल करने का विचार कर रही है। मैं आशा करता हूं कि स्कूलों में कताई का प्रचार शास्त्रीय रीति से किया जायगा और कातने के पहले लडके लडकियों को खादी पहनने को कहा जायगा और उन्हें बतलाया जायगा कि और काम हाथों से करने के बदले, उन्हें कातने को क्यों कहा जाता है। मैं यह सलाह भी देता हूँ कि चर्खे के बदले तकली पर उन्हें कातना चाहिए। जो लडके कताई में विशेष उत्साह और लियाकत दिखलावें, उन्हें स्कूल में नहीं; घर पर कातने के लिए चर्खे मंगनी दिये जावें और जो लडके एक साल तक लगातार उन्नति करते जायँ चर्खे उन्हें बिलकुल दे दिये जायँ। लडकों और लडकियों दोनों को कातने के पहले धुनना सिखलाना चाहिए और उनके सूत की परीक्षा रोज रोज करनी चाहिए और समय समय पर उनके आंकडे तैयार करने चाहिए।

(यं. इं.)

मो० क० गांधी

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

असहयोग निष्फल हुआ ?

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक १३

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, मार्गशीर्ष बदी ८ संवत् १९८४ गुरुवार, १७ नवम्बर १९२७ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय २६

सत्याग्रह की उत्पत्ति

इस प्रकार मैंने अपनी एक प्रकार से आत्मशुद्धि की और वह न मालूम सत्याग्रह के लिए ही क्यों न की गयी हो, ऐसी ही एक घटना मेरे लिए जोहानिसबर्ग में तैयार हो रही थी। आज मैं यह अनुभव करता हूँ कि ब्रह्मचर्य का व्रत लेने तक मेरे जीवन की मुख्य घटनायें मुझे छुपे तौर से इसी के लिए तैयार कर रही थीं।

'सत्याग्रह' शब्द की उत्पत्ति हुई उसके पहले ही उस वस्तु की उत्पत्ति हुई थी। उसकी उत्पत्ति के समय वह क्या है यह मैं खुद भी नहीं पहचान सका था। उसे गुजराती में 'पेसिव रिजिस्टन्स' के अंगरेजी नाम से सब जानते थे। गोरे लोगों की एक सभा में जब मैंने यह देखा कि 'पेसिव रिजिस्टन्स' का संकुचित अर्थ किया जाता है, उसे निर्बल का हथियार समझा जाता है, उसमें द्वेष भी हो सकता है और उसका अन्तिम स्वरूप हिंसा के रूप में भी प्रकट हो सकता है तो मुझे उसका विरोध करना पडा और हिन्दियों की लडाई का सच्चा स्वरूप समजाना पडा। और तब हिन्दियों को अपने इस युद्ध का परिचय देने के लिए नये शब्द की आवश्यकता प्रतीत हुई।

परंतु मुझे उसके लिए वैसा स्वतन्त्र शब्द प्रयत्न करने पर भी न मिला। इसलिए मैंने उसके लिए एक छोटा सा पुरस्कार निकाला और 'इन्डियन आपिनियन' के पाठकों को उसके लिए प्रयत्न करने को कहा। परिणाम में श्री मगनलाल गांधी ने सत्+आग्रह—इन दो शब्दों को मिला कर सदाग्रह शब्द बना भेजा। उनको पुरस्कार दिया गया, परन्तु सदाग्रह शब्द को अधिक स्पष्ट बनाने के लिए उसके मध्य में 'य' अक्षर जोड कर मैंने सत्याग्रह शब्द बनाया। यह युद्ध अब इसी नाम से गुजराती में पहचाना जाने लगा।

इस युद्ध का इतिहास ही मेरे दक्षिण आफ्रिका के जीवन का और खास कर मेरे सत्य के प्रयोगों का इतिहास कहा जा सकता है। इस इतिहास का बहुत बडा हिस्सा तो मैं येरवडा की जेल में ही लिख चुका था। जो बाकी रहा बाहर आ कर पूरा किया। वह सारा ही 'नवजीवन' में छप चुका है और फिर 'दक्षिण आफ्रिका का इतिहास'* इस नाम से पुस्तकाकार भी प्रकट हो चुका है। 'करन्ट थॉट' के लिए श्री वालजी गोविंदजी देसाई उसका अंगरेजी अनुवाद कर रहे हैं। परन्तु मैं उसे अंगरेजी में जल्दी ही पुस्ताकाकार प्रकाशित कराने का प्रयत्न कर रहा हूँ। उससे दक्षिण आफ्रिका के मेरे बडे से बडे प्रयोगों को, जो उन्हें समझना चाहें समझ सकेंगे। गुजराती जाननेवालों से जिन्होंने दक्षिण आफ्रिका का इतिहास न पढा हो मैं उसे पढ लेने की सिफारिश करता हूँ। अब आनेवाले कुछ अध्यायों में उपरोक्त इतिहास में आये हुए मुख्य कथाभाग को छोड कर मेरे जीवन के कुछ खानगी प्रसंग जो रह गये हों उन्हींको देने का मेरा विचार है। और उनके पूरा होते ही मैं अपने हिन्दुस्तान के प्रयोगों का पाठकों को परिचय देना चाहता हूँ। इसलिए जो पाठक प्रयोगों के प्रसंगों का क्रम अविच्छिन्न रखना चाहते हों उन्हें अब दक्षिण आफ्रिका के इतिहास के अध्यायों को अपने सामने रखना चाहिए।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

---

* **दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह** हिन्दी में सस्ता साहित्य प्रकाशक मण्डल अजमेर से प्रकाशित हुआ है।

साप्ताहिक पत्र

मैंगलोर से बम्बई

मैंगलोर से बम्बई की समुद्र यात्रा बडी सुहावनी थी। जहां जहां जहाज टिकता था भीड की भीड महात्मा जी के दर्शनों को आती ही थी परन्तु उससे हम लोगों को कुछ कष्ट अथवा असुविधा नहीं होती थी। गान्धीजी तो जहां होते हैं कुछ न कुछ अपना रोजगार कर ही लेते हैं। यहां भी उन्होंने जहाज़ पर अपनी एक भेंट में पाई हुई वस्तु को १२५) में बेंच लिया। जहाज के मुसाफिरों में तो अधिक खद्दरधारी नहीं थे परन्तु जो लोग गान्धी जी के दर्शन करने बन्दरगाहों पर आते थे उनमें अधिकतर खादी पहिने होते थे। दो नवयुवक हमारे साथ जहाज में थे। उनमें से एक ने मुझसे पूछा 'आप संध्याकाल की प्रार्थना किस समय करेंगे?' मैंने कहा, 'सोते समय।' उन्होंने कहा, 'हम भी आप की प्रार्थना में शरीक होना चाहते हैं।' उनकी बातों से मालूम हुआ कि वे गान्धीजी के कार्य्यक्रम सम्बन्धी जरा २ सी बात जानते थे और खादीमण्डल के—जिसकी कि भगवान की कृपा से अब कोने २ में शाखायें फैलती आती हैं—भी सदस्य थे। उनमें से एक ने असहयोग में सरकारी पाठशाला से सम्बन्ध छोडा था और तब से खादी ही का काम करता था। वह लगभग ५००) महीने की खादी बेचता था परन्तु उसने अभिमान से कहा कि मैं खादी से कुछ कमाता नहीं हूँ। मैंने उत्सुकता से पूछा, भाई। तब गुजर कैसे होती है? क्या कुछ और धन्धा करते हो?" उसने कहा, 'नहीं मैं अपना सारा समय खादी कार्य में लगाता हूँ। घर का अमीर भी नहीं हूँ। परन्तु किसी न किसी प्रकार काम चला ही लेता हूँ। मेरे पिता को मेरे ढँग अच्छे नहीं लगते परन्तु इतनी कृपा हैं कि खादी पहिनते हैं'। इतने में दूसरा लडका जो जरा छोटा और चंचल था बोल उठा, 'यह हमारे यहां के सब से अच्छे कार्यकर्ता हैं। बडे दुःख की बात है कि हमारे यहां का खद्दर भण्डार इनके सुपुर्द नहीं किया गया। जिस मनुष्य के सुपुर्द है उसे कुछ खादी से प्रेम नहीं है। यह बडी सरलता से कुछ ही दिन में खादी की बिक्री दुगनी कर सकते हैं।' मैंने उनसे कहा कि यह बात श्री गङ्गाधरराव जी से कहना। फिर मैंने उस लडके से पूछा, 'और आप क्या करते हैं?'

"मैं धारवाड में पढता हूं और सदा खादी पहिनता हूं".

"आपके से और आपके कोलेज में कितने हैं?"

"काफी हैं। पहिले से बहुत ज्यादा हैं। बहुत से विद्यार्थी खादी पहिनते और हिन्दी सीखते हैं। हमारे यहां हिन्दी प्रचार कार्य्यालय की एक शाखा है।"

"आप भी हिन्दी सीखते हैं?"

"मुझे दुख है मैं तो नहीं सीखता। हां, सीखने की इच्छा तो बहुत है।"

"फिर आपको बाधा सीखने में क्या है।" उत्तर से पता चला कि बेचारे के पिता उसको हिन्दी नहीं पढने देते थे।

मैंने कहा कि यह तो मैं समझ सकता हूं कि तुम्हारे पिता तुम्हारे कालिज छोडने के विरुद्ध हों परन्तु तुम्हें हिन्दी पढने और तकली चलाने से भी क्यों रोकते हैं?

बेचारा आज्ञाकारी पुत्र बाप को बचाने के लिये कहने लगा, 'उनका विचार है कि इससे अध्ययन में बाधा होती है।"

"तुम यह सब काम करते हुए अपनी परिक्षाओं में उत्तीर्ण हो कर दिखाओ फिर उन्हें अपने आप विश्वास हो जायगा कि इनसे कुछ अध्ययन में बाधा नहीं होती।"

उसने सब भण्डा फोड कर कहा कि, "सच बात तो यह है कि मेरे पिता को यह सारी बातें पसन्द ही नहीं हैं। न उन्हें मेरा खादी पहिनना अच्छा लगता है। न मुझे वह यंग इन्डिया पढने देते हैं। मैं करूं तो क्या करूं? फिर उस बेचारे ने बच्चों की शिक्षा में मातापिता के अनुचित हस्तक्षेप की सारी कहानी इतनी नम्रता और शील से सुनायी कि घमण्डी से घमण्डी पिता उसकी बातें सुन कर पिघल जाता। यह समझकर कि शायद इस लडके के पिता की नजर यह पंक्तियां पड जाय और वह हमारे नीचे के उदाहरण से कुछ सीख सकें हम एक उदाहरण उद्धृत करते हैं। अहमदाबाद के सेठ अम्बालाल साराभाइ की ज्येष्ठ पुत्री बिलकुल खद्दर पहिनती हैं और गांधीजी की भक्त हैं। उनके और सब भाई बहिन सरकारी परीक्षाओं के लिये तय्यारी कर रहे हैं परन्तु वह विद्यापीठ के लिये तय्यारी कर रही हैं। घर में वही अकेली खादी पहिनने वाली हैं परन्तु उनके पिता जो उनके सिद्धान्तों को नहीं मानते हैं न केवल अपनी पुत्रीपर दबाव ही डालते हैं बल्कि अपने सिद्धान्तों पर चलने को उन्हें उत्साहित करते हैं।

बम्बई में

समाचार पत्रवालों को तो अपने पत्र के लिये मसाला चाहिए। यदि कहीं आग लग जाये तो कोई और तो बुझाने की धुन में लगे परन्तु यह अपना केमरा निकाल कर तस्वीर खींचने में लगेंगे। चाहे आग से जल २ कर लोग तडफ रहे ही हों इन्हें निष्काम भाव से अपना काम करना। किसी न किसी प्रकार एक खबर ढूँढ कर ले आने में एक समाचार पत्रवाले को वैसा ही आनन्द आता है जैसा किसी तैराक को किसी डूबते हुये को बचा लाने में होता है। बस हम लोगों के बम्बई पहुँचते ही यह आ धमके। गान्धी जी ने उन लोगों से जो कुछ कहा उसका सार यह था, 'यह हाल समाचार पत्रों के लिये नहीं है। लेकिन यदि आप लोग खद्दर में मेरे पास आया करें तो मुझे आप जितना कष्ट देतें है वह कम से कम कुछ यही सोच कर कम हो जाया करे कि चलो बेचारे गरिबों के लिये कुछ न कुछ त्याग तो करते हैं।'

परदा कान्फ्रेन्स

जिस समाचार पत्र ने वायसराय की कान्फ्रेन्स को 'परदा कान्फ्रेन्स' का नाम दिया वह उपयुक्त ही दिया। बहुतसे नेता जों वायसराय के बुलाने पर उनसे मिलने चले गये केवल नम्रता के कारण चले गये। उन्हें कोई और आशा या विचार न था। परन्तु फिर भी यह उनकी नम्रता का अनुचित लाभ उठाना है कि बिना उन्हें यह बताये कि क्या काम है बुला भेजा गया। जिस बात को वायसराय बहुत आवश्यक समझते हैं नेता उसे आवश्यक न समझते हों तब? सारे वैयक्तिक और सामाजिक कार्यों में यों भीतर २ चुपचाप बातें नहीं होनी चाहियें।

एक खादी मण्डल

पिछली ऐतिहासिक घटनाओं के बाद गांधीजी ने पहिले पहिल ही दिल्ली में कदम रक्खा था। गांधीजी का दिल भरा हुआ था। पिछली ऐक्य परिषद् की असफलता और उसके बाद की भयंकर घटनाओं की याद करके किसका हृदय नहीं बैठता। गांधी जी भी अपना दुःख न छिपा सके। मित्र लोग इस बात पर जोर डालने लगे कि गांधी जी को यहां तीन चार दिन ठहरना चाहिये और जनता

के सामने एक व्याख्यान भी देना चाहिये ! गांधीजी बोले, मैं आवश्यकता से एक क्षण अधिक नहीं ठहर सकता। न मैं व्याख्यान दूँगा। मेरा तो इस शहर में लज्जा और दुःख से सिर झुका जाता है और मेरे हृदय में असीम वेदना होती है। मेरा तो यहां आने का इरादा ही नहीं था।

परन्तु गांधीजी ने दो कामों में भाग लिया। एक तो यहां खादी मण्डल बना है जिसके ७० सदस्य हैं जिन्होंने सदा खादी पहिनने और हर प्रकार से खादी का प्रचार करने का वचन लिया हुआ है। यह सब पहिली नवम्बर को डाक्टर अन्सारी के घर पर गान्धी जी की सलाह लेने के लिये एकत्र हुये। गांधीजी ने उन लोगों से पूछा कि क्या आप में से हरएक एक २ रोजनामचा रखते हैं? यदि ऐसा नहीं करते तो फिर मण्डल के कार्य्य का हिसाब कैसे रक्खा जाता है? जो खादी बेचते हैं उन्हें रोज रोजनामचे में चढा लेना चाहिये कि आज मैंने इतनी खादी बेची। इसी प्रकार जो चरखों की मरम्मत करते अथवा कातना और धुनना सिखाते हैं वह भी रोज लिखें और आप सब लोग फिर आपस में मिल कर एक दूसरे के कार्य्य से मिलान किया करें। 'एक सदस्य ने पूछा,' खद्दर का प्रचार ऐसे कैसे हो सकता है? क्या आप नहीं समझते कि साथ २ कुछ न कुछ राजनैतिक आन्दोलन भी आवश्यक है? हम लोग खादी पहिनेंगे और दूसरों से भी पहिनने को कहेंगे। परन्तु जब कि विदेशी कपडा इतना सस्ता बिकता है, हमसे खादी खरीदेगा कोन? इस त्याग के लिये देश प्रेम की आवश्यकता है और जब तक कोई आन्दोलन न हो देशप्रेम लोगों में जागृत नहीं होता।' आशा तो यही की जाती थी कि खादी मण्डल का प्रत्येक सदस्य कम से कम यह तो अवश्य ही समझता होगा कि मण्डल का प्रथम उद्देश देशप्रेम जागृत करना ही है। राजनैतिक आन्दोलन और क्या होता है? देशप्रेम यही तो है कि सब देश के प्रति अपना २ कर्तव्य समझें। खादी प्रचारक का सबसे पहिला काम तो यही है कि लोगों को यह समझाये कि हमारा यह कर्तव्य है कि अधिक व्यय करके भी विदेशी कपडा न पहिन कर अपनी देश की बनी खादी ही पहिने। मालूम नहीं गांधीजी की बात लोगों की समझ में आई कि नहीं परन्तु मण्डल को यदि काम करना है तो अपना कार्य अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। जब हम लोग कोयम्बटूर में थे तब भी कुछ खादी प्रेमियों ने आ कर यही प्रश्न उठाया था और उन्हें गांधीजी ने जो उत्तर दिया था वह यह था: 'जैसे आप हिन्दू धर्म की रक्षा, बिना पक्के हिन्दू बने नहीं कर सकते उसी प्रकार आप खादी को भी बिना खद्दर में पक्का विश्वास हुए नहीं बचा सकते, जरा अपने दिल पर हाथ रख कर पूछो कि क्या तुम्हारे घरों में कपडे का टुकडा २ खद्दर का है? क्या तुम्हारे घरों में बच्चा खद्दर पहिनता है? यदि नहीं, तो देखो तुम्हारे घरों में ही कितना काम करने को पडा है। देखिये, वह उधर कपडे का टुकडा पडा क्या कहानी कह रहा है। मैं टहल कर लौटा तो मुझे पैर साफ करने को एक कपडे की आवश्यकता पडी। श्रीमती गांधीजी ने जल्दी में वह कपडे का टुकडा उठा कर मुझे दे दिया। मैंने बिना देखेभाले उससे काम ले लिया। यदि मैं खद्दर का वैसा ही कट्टर पक्षपाती होता जैसा मैं आप को बनने को कहता हूँ तो मुझे उस कपडे को प्रयोग में नहीं लाना चाहिये था। जब हम लोग खद्दर के इतने कट्टर पक्षपाती बन जायँगे तब खादी अवश्य ही पहिनने लगेंगे। हम लोगों को अपने में विश्वास तो हो। खादी मण्डल का प्रत्येक सदस्य ऐसा होना चाहिये। और मैं आप सब लोगों को इतना कदर बनने को क्यों कहता हूँ? मुझे विदेशी कारीगरों के प्रति कोई घृणा नहीं है। परन्तु दिन २ मैं देखता हूँ कि जो पैसा विदेश को जाता है वह मेरे भूखे पडोसी की गांठ काट कर भेजा जाता है और जो पैसा देश में खादी बनानेवालों को दिया जाता है वह दरिद्रों की जेब में जाता है।

जामियामिलिया

दूसरा कार्य जो गांधी जी ने किया वह जामिया को जाना था। उनके पास बहुत थोडा समय था और काम बहुत करना था परन्तु उन्होंने तुरन्त जामिया का न्योता स्वीकार कर लिया। वहां अपने व्याख्यान में गांधी जी ने कहा, जैसा आप से अभी हकीम जी ने कहा मुझे दिल्ली में रहना भारी है परन्तु मैं आप से सच कहता हूँ कि आपलोगों के पास आने में मुझे आनन्द होता है। मैं यहां आज आप को आनन्द देने नहीं आया बल्कि स्वयं आनन्द लूटने और आप से यह कहने आया हूँ कि बाहर कुछ भी होता रहे आप अपनी जामिया में विद्वेष का विष न फैलने देना।

फिर हकीम जी ने एक छोटी सी वक्तृता दे कर गांधी जी को बताया कि जामिया किन २ मुसीबतों का सामना कर रही है। परन्तु साथ २ विश्वास भी दिलाया कि आपका लगाया यह पौदा बढ ही रहा है। सब अध्यापक खादी पहिने थे और लडकों में भी खादी का प्रचार बढता जाता था। लडकों ने गांधी जी को १००) रु. की एक थैली और तकलियों पर कते हुये सूत के बुने हुये कपडे पर छपा हुआ एक मानपत्र भेंट किया। वहां कुछ दक्षिण अफ्रिका से आये हुये बच्चे और देशभक्त कछालिया के पौत्र भी थे। उनको देख कर गांधी जी को दक्षिण अफ्रिका का स्मरणीय इतिहास की याद आ गयी और उस समय उनके हृदय से जो वचन निकले वह सुनने योग्य थे। गांधी जी की वह वक्तृता मैं पूरी २ दूसरी जगह पर लिखूँगा।

(यं॰ इं॰) महादेव देसाई

कलीकट और मंगलूर

मुझे 'कालीकट' के बारे में कुछ लिखना चाहिए। वहां की थैली उस प्रान्त के एक बडे शहर की हैसियत से उसे शोभा देने-वाली नहीं थी। मुझे यह भी कहा गया था कि उस थैली का एक बडा हिस्सा तो गुजरातियों ने दिया था। यह नहीं कि गुजरातियों ने इसमें अपने कर्तव्य से कुछ अधिक किया है। परन्तु मलबार के लोग अब तक यह नहीं समझ सके हैं कि राष्ट्र के काम में उनका अपना हिस्सा क्या होना चाहिए। हमको इस बात की बडी खुशी थी कि हम एक ऐसे गुजराती के मिहमान रहे जो सदा खादी पहिननेवाले ही न थे बल्कि जिन्होंने खादी के रहस्य को समझ कर उसीके अनुकूल अपना जीवन बताया था। श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम जिन्होंने बरसों पहले खादी व राष्ट्रीय कार्य करने के लिए अपना कालीकट का व्यापार छोड दिया था उनकी प्रेरणा से कालीकट में आज आधे दर्जन ऐसे गुजराती हैं जो केवल खादी ही पहनते हैं।

अस्पृश्य कहे जानेवाले लोगों की सभा भी कुछ कम महत्व की न थी। अपने दुःखो के गिनाने में उन्होंने अपना यह दुःख भी गिनाया था कि उनके लिए शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। गांधीजी ने इस पर से सवर्ण हिदुओं को जो वहां इकट्ठे हुए थे प्रार्थना की कि वे आदिकेरल बालकों के लिए पाठशालायें, जिनमें उनके रहनेका भी प्रबन्ध हो, खोलने के लिए एक फंड करने का आरंभ करे। उसी जगह कुछ ही मिनटों में ३००) इकट्ठे हो गये। श्री वथ्यन नंबुद्रीपाद का चन्दा महत्त्व के चन्दो में से एक था। वे अपने दूर के गांव से खादी के लिए अपना चन्दा देने को आये थे। क्या दूसरे नंबुद्री उनका अनुकरण करेंगे।

(यं. इं.) महादेव देसाई

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, मार्गशीर्ष बदी ८ संवत् १९८४

क्या असहयोग निष्फल हुआ ?

समाचार पत्रों में बार बार यह पढने को मिलता है कि असहयोग निष्फल हुआ है। कितने ही विवेकशील आलोचक बातचीत करने समय माफी मांगते हुए इस सवाल को छेड देते हैं और कहते हैं कि यदि मैं बेबूझे असहयोग का आरंभ न करता और देशको उलटे रास्ते न ले जाता तो आज भारत ने बडी भारी प्रगति की होती। इस विषय का, यह कह सकते हैं कि वर्तमान राजनीति के साथ कोई संबंध नहीं है। फिर भी मैंने उसका उल्लेख इसलिए किया है कि मेरा तो यह विश्वास है कि असहयोग एक प्राणवान शक्ति है जो हमें प्राप्त हुई है और जो किसी भी समय विराट्रूप धारण कर सकती है, और मुझे जो लोग टीकायें और शंकाशीलता के विरुद्ध भी उसके प्रति श्रद्धा रखते हैं उनको हिम्मत भी देना है। मैं इस भयंकर अर्धसत्य को कुबूल कर लेता हूँ कि जिस समय असहयोग हिंसात्मक बना उसी समय वह सर्वथा निष्फल हुआ। सच पूछो तो हिंसा और असहयोग यहां परस्पर विरोधी हैं। हिंसा आत्मघाती है और उसके सामने यदि प्रतिहिंसा न हो तो वह जिन्दा नहीं रह सकती इस श्रद्धा से ही तो अहिंसात्मक असहयोग का जन्म हुआ है। इसलिए जिस समय असहयोग में हिंसा दाखिल हुई कि उसी समय उसका बल और राष्ट्र को बनाने की उसकी शक्ति नष्ट हो गये। परन्तु जहां तक यह अहिंसात्मक बना रहा वहां तक यह स्पष्ट है कि वह सम्पूर्ण सफल हुआ था। १९२० में यकायक जनसमाज में जो जाग्रति आयी थी वही अहिंसा की शक्ति की सर्वोत्तम परिचायक थी। उस समय सरकार की प्रतिष्ठा टूट गयी और वह कभी फिर जुडने की नहीं। अदालत, शाला पाठशालायें और सरकारी खिताबों का १९२० में जो प्रभाव पडता था वह अब नहीं है। भारत के प्रथम श्रेणि के कुछ वकीलों ने वकालत हमेशे के लिए छोड दी है और वे गरीबी अख-त्यार करके अपने को सुखी मानते हैं। जो थोडी बहुत राष्ट्रीय शाला और विद्यालयें आज है वे भी अपनी सेवा का अच्छा हिसाब दे रहे हैं। उसका प्रमाण है गुजरात के हरे भरे बागीचे को जब जल-प्रलय ने नष्टभ्रष्ट कर दिया तब संकटनिवारण के काम के लिए खडा किया गया कार्यकर्ताओं का तंत्र। राष्ट्रीय विद्यालयों के विद्यार्थी, शिक्षक और दूसरे असहयोगी कार्यकर्त्ता न होते तो गुजरात के कष्ट पीडित किसानों को मदद की जो अत्यधिक आवश्यकता थी और जो मदद उन्हें समय पर मिली वह न मिलती। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दे कर यह सिद्ध किया जा सकता है कि हिन्दुस्तान में जहां कहीं सच्चा राष्ट्रीय जीवन दिखाई देता हैं जहां उच्च वर्ग और आमलोगों में अनुसंधान हुआ दिखाई देता है वहां असहयोग ही उसका एक कारण है।

और अब उसके कार्यक्रम के तीन रचनात्मक कार्यों पर विचार करें। राष्ट्र के पुनरुद्धार में खादी का हिस्सा बड रहा है और वह आज अपने २००० सैनिकों (कार्यकर्ताओं) के द्वारा १५०० गांवों की सेवा कर रही है। कोई ५०००० से भी अधिक कातनेवालों को और कम से कम दस हजार जुलाहे, रंगरेज, धोबी और छापनेवाले और दूसरे कारीगरों को इससे कमाई होने से राहत भी मिलती है। अस्पृश्यता का ह्रास हो रहा है, उसके जीवन के लिये केवल अंत-काल के अंतिम प्रयत्न हो रहे हैं। १९२०-२१ की हिन्दू मुस्लिम ऐकताने ऐक्य में कितनी शक्ति है यह दिखा दिया था। आज इन दो कौमों में जो फूट, परस्पर हिंसा, दगा और झूठ दिखाई देते हैं वह बुरे अवश्य है परन्तु वह हमारी आरंभिक आत्म-जाग्रति के चिह्न हैं। असहयोग की हलचल एक प्रकार की मंथनक्रिया थी और इसलिए मंथन के कारण सारा कचरा ऊपर उठ आया है। यदि अहिंसात्मक असहयोग प्राणवान और पवित्रकरणी शक्ति होगी तो आज ऊपर जो कचरा दिखाई देता है और हमारी दृष्टि को रोक रहा है उसके नीचे जो एकता का निर्मल नवनीत तैयार हो रहा है वह हमें थोडे ही दिनों में दिखाई देगा। मैं तो यह स्पष्ट देख रहा हूं कि सच्चा स्वराज जब कभी भी मिले वह लंडन की कृपा के कारण नहीं मिलेगा परन्तु बुराई की व्यवस्थित शक्ति के विरुद्ध दृढ ओर आरोग्यप्रद असहयोग कर के ही हम उसे प्राप्त कर सकेंगे।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

हिन्दुमुसलमान

(दिल्ली के जामिया मिलिया इस्लामिया में गांधीजी का दिया भाषण।)

अहमद महमद काछलिया

अभी जिन बालकों का आपसे परिचय कराया गया है वे मेरे मित्र, साथी, और मेरे सगे भाई से, स्वर्गस्थ अहमद महमद काछलिया के पौत्र हैं। इन लडकों को देख कर मुझे उनका स्मरण होता है और उनके बारे में मैं आपको कुछ कहूँ ऐसा खयाल भी होता है। दक्षिण आफ्रिका में सत्याग्रह के समय जो हिन्दू और मुसलमान रहते थे उनमें एक भी ऐसा हिन्दी न था जो बहादुरी में और प्रामाणिकता में उनकी बराबरी कर सके। देश की इज्जत के लिए उन्होंने अपने सर्वस्व का त्याग किया था। उन्होंने अपने व्यापार धनदौलत, और मित्र किसी की भी कुछ पर्वा न की और युद्ध में कुद पडे थे। उन दिनों में भी कभी कभी हिन्दु-मुसलमानों में दुःखदायी मतभेद दिखाई देते थे। परन्तु काछलिया ने दोनों तराजू बराबर रक्खी थी। मुझे यह स्मरण नहीं है कि कभी किसीने उन पर यह आक्षेप किया हो कि उन्होंने मुसलमानों के प्रति कभी कोई पक्षपात दिखाया है।

स्वदेश प्रेम और सहिष्णुता का यह महान गुण वे शाला में या विलायत जा कर नहीं सीखे थे। परन्तु अपने घर में ही सीखे थे। वे गुजराती भी बडी मुश्किल से लिख सकते थे। तो भी वे वकीलों की दलील का जो जवाब देते और उन्हें उलझन में डाल देते थे उसे देख कर उन्हें भी आश्चर्य होता था। उनकी असाधारण व्यवहार कुशलता से वकीलों को भी अक्सर बहुत मदद मिलती थी। सत्याग्रहियों के वे नेता थे और उस युद्ध में लडते लडते ही उन्होंने देह त्याग दिया था। उनका अली नाम का एक लडका था। उसे वे मेरे पास छोड गये थे। ११ वर्ष का वह बालक बडा भाविक मुसलमान और अद्भुत संयमी था। रमजान में वह एक भी रोजा न छोडता था। इतना होने पर भी उसे हिन्दू लडकों के प्रति कोई द्वेष न था। आज हिन्दुओं में और मुसलमानों में धर्मनिष्ठा के मानी दूसरे धर्मों के प्रति यदि तिरस्कार का होना नहीं तो उसके प्रति नापसन्दी दिखाना आवश्य है। अली में ऐसी तिरस्कार की या नापसन्दी दिखाने की कोई भावना न थी। मैं इन पिता पुत्र के नामों को अपने लिए बडे पवित्र मानता हूँ और चाहता हूं उनके दृष्टान्तों से आपको भी प्रेरणा मिले।

विद्यार्थियों का त्याग

उन दिनों में जब हिन्दु-मुसलमान एकदिल हो रहे थे और एकदूसरे के लिए अथवा देस के लिए खून बहाने को तैयार थे,

मैंने विद्यार्थियों से शाला और विद्यालय छोड देने की प्रार्थना की थी, उनसे ऐसी प्रार्थना करने के कारण आज इतने बरसों बाद भी मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं हुआ है। मेरा यह दृढ अभिप्राय है कि जिन्होंने उस पुकार को सुना उन्होंने देश की बडी सेवा की है और मेरा विश्वास है कि हिंदुस्तान के भावी इतिहासकारों को विद्यार्थी के इस त्याग की कदर करना होगी।

यह देख कर मुझे बडी खुशी हुई है कि उस गौरवभरे समय के कुछ चिह्न यहां दिखाई देते हैं। मुझे यह देख कर भी बडा आनन्द होता है कि युद्ध का ध्वज फहराता रहे इसलिए आप जीजान से कोशिश कर रहे हैं। यह सच है कि आपलोगों की संख्या बहुत थोडी है परन्तु अच्छे और सच्चे मनुष्यों से दुनीया कभी भी भर नहीं जाती है। मैं कहता हूँ कि आप अपनी थोडी संख्या के लिए कभी कोई चिंता न करें। परन्तु आप यह सदा स्मरण रक्खें की संख्या में कितने ही थोडे क्यों न हों तो भी देश के स्वातंत्र्य का आधार आपलोगों पर ही है।

दो आवश्यक बातें

स्वातंत्र्य का, आपके अक्षरज्ञान से और आप यांत्रिक रूप से तकली चलावें उससे बहुत ही थोडा संबंध है। हिंदुस्तान के स्वातंत्र्य के लिए आवश्यक बातें यदि आप में ही न होंगी तो किनमें होंगी यह मैं नहीं जानता। ये बातें हैं, ईश्वर से डरना, और किसी भी मनुष्य का और जो साम्राज्य के नाम से पहचाना जाता है उस मनुष्यसंघ का डर न रखना। यदि इन दो आवश्यक बातों की शिक्षा आपको इस संस्था में न मिल सकती हो तो फिर मैं यह नहीं जानता कि वह आपको कहां मिलेगी। परंतु मैं आप के शिक्षकों को जानता हूँ, हकीम साहब को पहचानता हूँ। इस लिए मुझे यकीन है कि ये दो बातें यहां बडे ध्यान से पढायी जाती होंगी।

आपकी आर्थिक मुश्किलों की मुझे कोई चिन्ता नहीं है। मेरे लिए तो यही आनंद की बात है कि आप ज्यों त्यों अपना निभाव करते रहें। क्योंकि इस प्रकार हम अपने बनानेवाले से डरते रहेंगे और उसे अधिक याद करेंगे।

दिमाग को ठंडा रक्खें

हकीम जी ने कहा है कि दिल्ली आना मेरे लिए कठिन बात थी परन्तु आपके पास आने में मुझे आश्वासन और आनंद मिलता है। मैं यहां आपको राजी करने नहीं आया हूँ परन्तु खुद अपने को राजी करने को आया हूँ। मैं अपने मन में स्वार्थ ले कर आया हूँ। मैं आपको यह कहने के लिए आया हूँ कि आपकी मिलिया के बाहर भले ही द्वेष और ईर्ष्या की आग सुलगती रहे, हिन्दू और मुसलमान भले हो एक दूसरे के गले काटें, किन्तु आप जो यहां के विद्यार्थी हैं अपने दिमगों को ठंडा रखेंगे, आपके बनाने वाले के प्रति बेवफा न होंगे, आपके दिलो में द्वेष को स्थान न देंगे। देश और उस में रहेनेवाले धर्मो की पामाली होती देखकर जरा भी राजी न होना।

खादी की सेवा

आपने यह देखा होगा कि मैने अबतक खादी और तकली के बारे में कुछ भी नहीं कहा है। इसका कारण यह है कि मैं ने जो आवश्यक बातें कहीं हैं उनके सामने तकली और खादी कुछ चीज नही हैं। आप भले ही तकली चलावें, भले ही खादी पहनें परन्तु जो दो बातें मैंने आपको कहीं हैं उन पर आप अमल न करते होंगे तो तकली और खादी का कुछ भी लाभ न होगा। परन्तु मुझे विश्वास है कि हकीम साहब ने आपको खादी पहनने की आवश्यकता के बारे में जो कुछ कहा है उसे आप भूल न जावेंगे। आप को यह याद रहना चाहिए कि खादी के कारण ही तो आज ५०००० कतवैये और सैंकडों जुलाहे, धोबी और बढइयों को रोजी मिलती है। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इसका बहुत बडा हिस्सा तो मुसलमानों का है। चरखे के बिना बहुतेरे स्थानों पर मुसलमान औरतें भूखों मरती होती। हिन्दू और मुसलमान गरीबों के साथ ऐक्य करने के लिए खादी के सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं है।

इन सब बातों के अलावा आप सदा पवित्र और शुद्ध रहें। प्राण दे कर भी वचन पालना सीखें और जिन उदाहरणों को मैंने आपके समक्ष रक्खा है उन्हें सदा आपके हृदय में जीवित रक्खें।

विशाखा और उसका दहेज

विशाखा के पिता धनंजयश्रेष्ठी प्रथम मगधराज बिम्बिसार के राज्य में अंगदेश के भद्दियनगर में रहते थे। एक बार वहां बुद्ध-भगवान के आने पर वे सहकुटुम्ब उनके शिष्य हुए थे। धनंजय सेठ अत्यन्त धनाढ्य और सुखी थे और इसलिए उन्हें अमितभोग कहते थे।

मगधराज बिम्बिसार और कोसलनरेश पसेनदि परस्पर साले-बहनोई लगते थे। कोसलराज को एक बार विचार आया कि 'बिम्बिसार के राज्य में छह 'अमितभोग' रहते हैं और मेरे राज्य में एक भी नहीं। बिम्बिसार के पास जा कर एक महा-पुण्यशाली आदमी मांग लाऊँ।'

बिम्बिसार के कान में जब यह बात डाली तो उन्होंने जवाब दिया, 'मेरे किये तो कोई बडा कुटुम्ब नहीं बदला जा सकता।'

पसेनदि ने कहा, 'और मैं किसी को लिए बिना उठूँगा ही नहीं।'

मगधराज ने मंत्रियों के साथ विचार कर देखा और मेंडक महाश्रेष्ठी के पुत्र धनंजय सेठ को समझा-बुझा कर पसेनदि के साथ भेजा। पसेनदि की राजधानी श्रावस्ती नगरी में थी। पर राजधानी की तंगी में अपना बडा परिवार नहीं अंटेगा, इसलिए राजा की सम्मति ले कर धनंजय ने श्रावस्ती से सात योजन दूर साकेत नाम की नगरी बसायी और वहां जा रहा।

× × ×

धनंजय ने विशाखा का विवाह श्रावस्ती के जैन मिगार सेठ के पुत्र पुण्यवर्धन के साथ किया। अपने राज्य में नये आये हुए महाजन को सम्मानित करने के लिए कोसलराज स्वयं बरात में गये। मिगार ने धनंजय से पहले ही पुछवाया, 'राजा और उनकी सेना बरात में आनेवाली है। आप इनका सेवा-सत्कार तो कर सकेंगे न?' धनंजय ने चटपट जवाब दिया, 'एक नहीं, दश राजाओं को बुलाते आइएगा।' श्रावस्ती में चौकीदारी के लिए जितने आदमियों की जरूरत थी, उतने को छोड कर, श्रावस्ती के सभी आदमियों को बरात में मिगार भी लेते आये। इस महाजन मंडली को एक जगह जमा करानेवाली तो विशाखा थी। धनंजय ने बरात को चार महीने रोक रक्खा।

दायजे में धनंजय ने ५०० गाडी सोना, ५०० गाडी सोने की चीजें, ५०० गाडी चांदी के बरतन, ५०० गाडी तांबे के बरतन, ५०० गाडी खादी, ५०० गाडी घी, ५०० गाडी चावल और ५०० गाडी हल, कुदाली वगैरह हथियार दिये। ५०० रथ और १५०० दासियां दीं।

अब धनंजय के मन में हुआ कि 'लडकी को गायें दूँ।' अपने आदमियों से उन्होंने कहा, 'जाओ छोटा व्रज (गोशाला) खोल दो। एक-एक गांव के अन्तर पर तीन नगारे ले कर खडे रहो। १४० हाथ की जगह बीच में छोड कर दोनो किनारे खडे रहो। इससे आगे गायों को मत जाने देना। जब तुम लोग ठीक खडे हो जाओ तो नगारे बजाना।' आदमियों ने ऐसा ही किया। चौडाई में १४० हाथ से अधिक नहीं फैलने दिया। यों लंबाई से तीन गांव और चौडाई में १४० हाथ के मैदान में एकदूसरे से देह रगडती हुई गायें ठसाठस भर गयीं। धनंजय ने कहा, 'मेरी बेटी के लिए इतनी गायें बहुत हैं। अब दरवाजा बन्द कर दो।' यह कह कर सेठ ने दरवाजा बन्द करा दिया। कथाकार लिखते हैं कि दरवाजा बन्द करते करते भी दूसरी ६०,००० और गायें, ६०,००० और बैल और ६०,००० और बछडे निकल पडे।

विशेष में, इस धन के दहेज के अलावा सेठ ने अधिक महत्वपूर्ण दहेज के रूप में लडकी को दश सिखावन दिये: 'देख बेटी, ससुराल की हो कर अपने अंदर की अग्नि बहार मत निकालना (ससुरालवालों का दोष दिखाई दे तो दूसरों के आगे उसकी बात मत चलाना;) बाहर की आग भीतर मत लाना (पडोसी अगर ससुरालवालों को उलटी सीधी कहें तो घर आ कर यह न कहना कि फलां तो आपके बारे में यह कहता था;) जो दे उसी को देना (कोई कुछ मँगने आवे तो तभी देना जब वह फिर लौटा दे जाय;) जो न दे उसे न देना (मँगनी की चीज जो न लौटावे उसे न देना;) जो दे या न दे उन्हींको देना (सगे संबन्धी फिर कर लौटावें या न लौटा सकें, मगर तौभी उन्हें देना,) ठिकाने से बैठना (सासससुर को देख कर उठने के मौके पर बैठना नहीं;) ठिकाने से खाना (बडों के खा लेने बाद खाना;) ठिकाने से सोना (बडों के सोने बाद सोना;) अग्नि की परिचर्या करना (बडों की सेवा करना;) गृहदेवता को प्रणाम करना (बडों को देवता के समान समझना)।'

× × ×

किसी दिन मिगार सेठ भोजन कर रहे थे। विशाखा ने उसी समय कहा:

'बाबूजी, आप रोज रोज बासी खाना क्यों कर खाते होंगे?'

'इसे बासी कौन कहेगा बहू? यह तो तुम मुझे गर्मागर्म रोटी के फुलके बना बना देती हो। यह बासी कैसे हुआ?'

'देखिए बाबूजी, पूर्वजन्म के पुण्यफल से इस जन्म में आप सुखी हैं, मगर इस जन्म में कोई दानपुण्य करते नहीं। इस लिए मैं कहती हूँ कि आप पुराना ही पुण्य भोग रहे हैं।'

विशाखा ने एकसौ बीस वर्ष का आयुष्य भोगा। श्रावस्ती के पूर्वद्वार के आगे नौ करोड देकर जमीन ली और दूसरे नौ करोड लगा कर उसने पूर्वाराम नाम का बहुत बडा विहार बनवाया। विहार दो मंजिला मकान था। ऊपर और नीचे की मंजिलों पर पांच पांच सौ खंड थे। विहार के वस्तु-उत्सव में विशाखा ने तीसरा तीन करोड खर्च किया। बुद्ध की श्राविका मात्र में कोई ऐसी न थी जो उदारता में विशाखा को पा सके। और बौद्ध संघ की छह मुख्य भिक्षुणियों में उसकी गिनती होती है।

(नवजीवन) **देसाई वालजी गोविन्दजी**

कल के हल

श्रीयुत एस. डी. नाडकर्णी ने दक्षिण अफ्रिका के स्टेलेन बोश के विद्यार्थियों के आगे 'खादी आदर्श' के मेरे भाषण पर मुझे कृपा कर पत्र लिखा है। उनकी आलोचना में बुद्धि की तीव्रता साफ झलकती है। इस लिए उसका जवाब देने में भी आनंद मालूम होता है।

बंगाल में बाढ पीडित स्थानों में हमने मोटर के कल के हलों से जमीन जोतवायी थी, मगर मामूली वक्त पर उसका इस्तैमाल करने से इन्कार किया था। मैंने इसका उदाहरण दिया था। इस पर नाडकर्णी जी कहते हैं:

"अगर मिहनत बचानेवाली कलों का उपयोग इस नामधारी प्रकृति या प्राकृत जीवन के विरुद्ध हो तो मैं कहूँगा कि उस एक बार भी कल का उपयोग करना गलत था। 'जौभर चूके तो क्या कोस भर चूके तो क्या।' मान लीजिए कि वह कल न बनी होती तब क्या आप उसके न होने से बाढ को रोक लेते या उससे नुकसानी का ज्यादे अच्छा उपाय कर पाते? मुझे तो इसमें शक है।"

मुझे इस आलोचना की पूरी उमेद थी और इसमें जोर बहुत है। क्योंकि अगर एक बार कलों का प्रयोग आखिर शुरु हो गया तो फिर यह कहना कि कहां हद बँधेगी साफ ही बडा मुश्किल काम हो जायगा। आदमियों के संबंध के सभी कामों में विरले तर्कसम्मत बात सचमुच में सही निकलती है। जीवन का अलग ही तर्कशास्त्र है जो बुद्धि के बनाये तर्कशास्त्र से जब कि ज्ञान के दूसरे रास्तों से अलग हो प्रायः ही आगे बढ जाता है।

अब मैं एक उदाहरण से नाडकर्णी जी को जवाब दूँगा। मैं डरबन से मोम्बासा को जा रहा था। मेरे साथ एक हठी, व्यापारी दिमाग के, व्यावहारिक अमेरिकन इंजीनियर थे जो एशिया में कलें बेंचने जा रहे थे। मैंने स्टेलेनबोश के विद्यार्थियों को जो सुनायी थी, वही उन्हें भी बतलायी। अन्त में मैंने पूछा, "आप उत्तर बंगाल के या मध्य चीन के किसी ऐसे गांव में कल के हल बेंचेंगे?" "नहीं, मि० ऐन्ड्रयूज, ऐसा करना दिल ही नहीं गवारा करेगा।" फिर सहसा उन्होंने कहा, "कम सौ साल तक तो बिलकुल ही नहीं।"

मैं व्यक्तिगत रूप से कलों का समुचित स्थानों पर प्रयोग के विरुद्ध नहीं हूँ। मैं कलों की कल्पना कर सकता हूँ जैसे जल के बल से बिजली बना कर जो कारखाना मैसूर में बनाया गया है। मैं खुद चर्खे को ही कल समझता हूँ और मैं उपयोग के लिए अगर हो सके तो उसमें सुधार करूँगा।' मेरे अंदाज से तो मनुष्यों की सच्ची भलाई के सामने कलों को स्थान ही देना पडेगा। आखिर यही बात भंडारिन के चीनी ने बतलायी थी। जहां कि साफ ही कलों के आगे मनुष्यता नाश होता हो, मैं मनुष्यता को बचाऊँगा, कलों को छोड दूँगा।

श्रीयुत नाडकर्णी ने पीछे से कवि ठाकुर के 'चर्खा' के लेख का उल्लेख किया है। मेरे पास वह लेख तो नहीं है। जब कि कलें मनुष्यता का रक्त चूसती हों, तब उनका कवि का विरोध मैं बखूबी जानता हूँ। उन्होंने अपने खयालात सुन्दर तौर पर अपने नाटक 'रक्तकवरी' में लिखे हैं।

मैं खुद तो नहीं मानता कि कलों के बारे में कवि और महात्मा गांधी के खयालात में कोई खास फर्क है। मैं तो यह सिर्फ अन्दाज का अन्तर जान पडता है। और लोगों से मेरा मतभेद भी हो सकता है।

अब खुद चर्खे पर आइए । मुझे घटनाओं और हकीकतों ने बरबस यह मनाया है कि हिन्दुस्तान में चर्खे को उत्तेजन देना नैतिक भी है और दया से भरा हुआ भी है । यही वह अखीरी सहारा मालूम पडता है जो हिन्दुस्तान के गांवों के जीवन की रक्षा कर सके । हम लोग बडी शान्ति और आराम से हाथ पैर हिलाये बिना यह नहीं सोच सकते कि कलकत्ता, रंगून और बंबई में गांवों के मरभुक्खे लाचार जमा होकर कारखाना युग की क्रान्ति के सभी गड्ढों में पडे जिसने कि इँग्लेण्ड को एक सदी पहले अवनत किया था।

इस समय तो मैं उडिस्सा से कलकत्ते की भगदड को रोकने की कोशिश जीजान से कर रहा हूँ क्योंकि कलकत्ते के चौलों की नीतिनाशकता को भली भांति जानता हूँ । और फिर इसी के साथ साथ मैं यह भी सोच रहा हूँ कि किस कल से इस सुन्दर देश का उजडना रोका जायगा, उडिस्सा में फिर बाढों का आना रुकेगा । मेरे मन में महानदी के ऊपरी हिस्सों में जलबल से बिजली कलों की और भाफ से चलनेवाले शक्तिशाली कलों की ओर जाता है जो चिलका झील की तह में जमा मिट्टी को साफ कर डाले । इससे दोनों ही दृष्टियों से कलों की ओर मेरी प्रवृत्ति जाहिर होती है ।

उत्तर बंगाल में व्यावहारिक अनुभव के बाद कितनी ही बार इसी मसले पर मैंने सभी तरह के लोगों से बातें की हैं जैसे कि मैंने उस अमेरिकन मित्र से बातें की थीं । जब कि हम सब बातें कर चुके, उनमें से हर एक आदमी जो पहले मेरा विरोध करते थे, अन्त में मेरी ओर हो गये । मेरा विश्वास है कि अगर श्रीयुत नाडकर्णी के साथ मुझे इस विषय पर व्यावहारिक रूप से काम करने का मौका मिलता तो उन्हें भी मैं इसका यकीन करा देता ।

उपसंहार में मैं इतना कह दूँ कि खद्दर आदर्श को समझाने के लिए दक्षिण अफ्रिका में दिये गये मेरे उदाहरण, केवल उसका एक अंश भर ही हैं । यह समझने की भूल न की जाय कि उन्हीं से पूरी कैफियत मिल जाती है ।

(यं० इं०) सी. एफ. एन्ड्रयूज

खादी के तैयार कपडे

एक पारसी मित्र खादी के तैयार कपडे के संबंध में कुछ सूचनायें भेजते हैं जो इस प्रकार हैं.

"जैसे बाजार में खादी की तैयार टोपियां बेचने के लिए रखी जाती हैं वैसे ही हिन्दुस्तानी और अंगरेजी फेशन के बने कुडते, कमीज और बन्डियां भी क्यों न रक्खी जायँ ? बेशक खादी के दुकानदारों को इतना बुद्धिमान अवश्य होना चाहिए कि वे यह मालूम कर सकें कि किस किस्म के कपडे तैयार करा कर बेचने से जल्दी बिक सकते हैं और उन्हें वे खादी से तैयार करा लें ।"

यह सूचना खादी के दुकानदारों के सोचने लायक है । खादी सस्ता बनाने का और शहरोंमें रहनेवालों को कमाने का एक साधन पैदा कर देने का यह एक मार्ग है । खादी को सीनेवाला दरजी यदि देशभक्त हुआ और वह बाजार भावसे कुछ कम ही मज्दूरी ले तो इस प्रकार जो बचत हुई उससे उस कपडे में लगी खादी की कीमत घट जायगी । श्री मीठु बहेन पिटिट ने खादी के जुदा जुदा के कपडे तैयार करवाये है और वे उसकी जो कीमत कहती ग्राहक यह जान कर खुशीसे दे देते है कि उससे वे केवल खादी को ही मदद नहीं करते है परन्तु उन लडकियों को मदद करते हैं जिन्हें उसके अभाव में शुद्ध और अच्छा काम के अपने गुजारे के लायक कमाने का कोई दूसरा साधन नहीं था । मैसूर और तामिल नाड में मैंने ऐसे दरजी देखें हैं जो खादी ही सीया करते हैं । इसका कोई कारण नहीं है कि शिक्षित लोग भी खादी सेवा करने के विचार से दरजी का काम क्यों न करें और इस प्रकार अपनी भी सेवा करें । (यं० इं०) मो० क० गांधी

अखिल भारतीय गोरक्षा-मंडळ

चन्दा और दान

नाम	स्थान	रकम
छोटालाल एच. श्रोफ	वंबई	१०
वाय. एन. परनेरकर	साबरमति	५
अमृतलाल मोहनलाल	वंबई	३००
बनार्सीलाल बजाज	धुलीआ	५
श्री दखीदेवी बजाज	रानीगंज	१०
हरगोविन्ददास गोरधनदास	बम्बई	५
अमृतलाल चुनीलाल	खेडा	२१
शान्तिकुमार	बम्बई	२५०
मट्ठुबेहन	करांची	५
मनीबाई जगजीवन	"	५
जयकुंवरबाई रायचन्दभाई	"	५
भगवानलाल रनछोडदास	"	५
राम आश्रेलाल श्रीवास्तव	बस्ती	०-८
धीरजबेहन	मान्डवी	१
रामेश्वरप्रसाद झवेरमल	धुलीआ	४७-८-०
कनैयालाल परमानन्द	"	२-८-०
शीवुमल शादीराम जैन	लुधीआना	१०
चुनीलाल यु. शाह	बम्बई	५
करमचंद नथुभाइ	"	२०
जुपीटर मिल के कारीगर	अहमदाबाद	४१-६-०
डॉ. पुरंदरे	बम्बई	२०
श्री. लीलावती लक्ष्मीदास हरिदास	नासिक	५०
किस्तारचंदजी	धंदुका	२०
श्री विजलीवाई हरगोविंददासदास	वंबई	१०
शंकर सखाराम डोले के तरफसे	पुना	२५
श्री. किडाई नट्ठु	लाहोर	५
कुंदनलाल	चमन	११
प्राणिदया संघ	टुमकुर	२००
श्री, प्रभावति पुरुषोत्तम	बम्बई	५
चंद्रशंकर जगन्नाथ जेटली	नैरोबी	५
मोची मडला पिताम्बर	"	०-१०-०
मोदी लालजी लाधा	"	३-४-६
जानी कल्याणजी नरसिंह	"	३-४-६
महाबिरप्रसाद पोद्दार	गोरखपुर	५
बाइ सवकुंवर	मुंबइ	१०१
एक बहेन	साबरमती	१५
गुरुचरणदास रावत	बियावर	१
नारणभाइ जी. पटेल	दारेसलाम	१५
व्रजदास हीराचंद	रंगुन	१२
शंभुदयाळ	रेवाडी	५
गांधीजी को मिले	बेंगलोर	११
मगनभाइ छोटाभाइ पटेल	कंपाला	३३-४-०
अमृतलाल चुनीलाल शाह	मुंबई	५०-८-०
मणिलाल कोठारी	अहमदाबाद	२५
गंगादेवी	धूळिया	०९
गौरीप्रसाद पोद्दार	रंगुन	११
छोटालाल हरगोविंददास	सुरत	५
सी. जे. जेटली के जरिये	नाइरोबी	१७-९-०
हरि बेचर		शि. ५
अंबालाल भीखाभाइ पटेल		३
जादवजी धनजी		३
[illegible] वालजी		२/५०

केशवजी बोघा		२
वेलजी गंगजी		१
वेलजी रणछोड		१
मावजी नरसी		१
गोपाळजी शामजी		१
गोपाल मोरार		१
रणछोड जादव		१
पीतांबर विश्राम		१
पोपट तुळसीदास		१
गोकुळ लाधा		१
सोनी दयाळजी केशवजी		१
विद्यादेवी के जरिये	बीरुआ	१४५
विरेन्द्रबहादुरसिंह		रु. २५
सरजीतसिंह		२५
मिसीस आनंदबख्तसिंह		१०
राधादेवी		५
देववती		५
मैयासाहेबा		५
फकीरबख्तसिंह		५
मिसीस गांधर्वसिंह		२
विमळादेवी		१
करायाका चन्दा		६२
अलगुरम	त्रिशूली	१
पी. सुब्बराव	साबरमती	०-४-०
लीलावती विठ्ठलदास देसाइ	मुंबई	५
लीलावती बहेन	बम्बइ ,,	५
शंकर श्रीकृष्ण देव	धुलिया	७०
जी. पी. मोदी	बम्ब	२५
के. चीनाराजा रेडी	गुटी	२
कनैयालाल छोटालाल महेटा	पाटण	५
ए. वेडारमीर	मदुरा	१००
गोसाई गोविन्दगीर ईश्वरगीर	अन्कलाव	५
रघुनाथसिंह दलजीतसिंह	गाजापुर	५
शामलदास चुनीलाल वोरा	हृषीकेश	५
सुंदरदास वल्लभदास	कराची	१,००१
चुनीलाल डाह्याभाइ	बम्बई	२५

सूत का दान

		गज
भट्टापोरलु गनपतीराव	गन्तुर	३,०००
पी. गोविन्दराव गरु	,,	१,०००
वल्लामुदी आदिलक्ष्ममां	अरवपल्ली	१,०००
ईतिकला सूर्यनारायन गरु	टेनाली	१,८००
ईश्वरदास नगीनदास बेन्गाली	सुरत	१,५८७
एक महाशय		१५,०००
एम. सी. गोविन्दन नायर	मानुर	१०,०००
गिरिजाबाई सदाशीव मोघे	झांसी	१,०३६
जीवराज गोकलदास	माटुन्गा	७,०००
रामेश्वर झवेरमल तरफ से	धुलीआ	१,१५०
बहन तुलसांबाई	करांची	१,०००
बहन मट्ठबाई	,,	४,०००
श्री. के. लक्ष्मयामेंगु	गन्तुर	२००
बी. गणपतिराव	,,	४,०००
बापुभाई नारायणजी वशी	पिप्लगभान	२,४००
शीवनारायण	सखापुर	२,६४४
एस. वेंक	गन्तुर	१५,०००

श्री. गिरिजाबाई सदाशीव मोघे	वेट	१,५००
पी. सत्यनारायण	पारेकुडी	२,०००
भगवानजी पुरुषोत्तम	प्रोम	२०,०००
आत्माराम एस. गयटोन्डे	अंधेरी	२,०००
रुपनारायण	साबरमती	१,०००
एस. सुंदरशान	कुम्बाकोनम	१,०००
जी. अनन्तचारी	,,	म,०००
एस. राजम	,,	१,०००
नारणदास खु. गांधी	साबरमती	४८,०००
छीबुभाई के. पटेल	अब्रामा	२,०४[illegible]
बी. गणपतिराव	गंतुर	७,००[illegible]
जी. सीताराम शास्त्री	,,	२,३०[illegible]
एम. वेंकटराव	,,	१,००[illegible]
आर. रयौवा	रेपाली	१,००[illegible]
जे. रेणमय्या	,,	३,४०[illegible]
अंबाराम खेंगार	मुंबई	१,००[illegible]
झवेरचंद मगनलाल दोशी	भावनगर	१०,०[illegible]
चीमनलाल माणेकलाल परीख	वडोदरा	२,०[illegible]
व्रजकृष्ण	दिल्ली	२६,०[illegible]
एम. वी. राजगोपालम	धोन	१,०[illegible]
चीमनभाई हरिभाई अमीन	वरणामा	१,०[illegible]
सेवासमाज	,,	३,५[illegible]
मांजरेकर ब्रधर्स	संकेरी	३,०[illegible]
छीबुभाई केशवजी पटेल	रंगुन	२,[illegible]
धनप्रसाद चंदुलाल मुनशी	वीलेपारले	१,०[illegible]
भाई जी. देसाई	रंगुन	१,०[illegible]
दो खादी प्रेमी	गन्तुर	५,०[illegible]
बी. गणपतिराव	,,	६,०[illegible]
जी. सिताराम शास्त्र	,,	३,५[illegible]
वी. नारायनमूर्ति	,,	[illegible]
डाह्याभाइ मोतीभाई पटेल	साबरमती	१७,[illegible]
रामेश्वरदास झवेरमल वगैरा	धूलिया	३,[illegible]
डुंगरदास रामचंद्र नायक	कलकत्ता	१२,[illegible]
मिसि विजयालक्ष्मी नायक	,,	१२,[illegible]

सभ्यों का सूत

		ग[illegible]
१ डाह्याभाई मोतीभाई पटेल	साबरमती	२४[illegible]
२ टी. एम. कनाल	हलीयाल	२४[illegible]
३ ईश्वरलाल ठाकोरदास नानावटी	सुरत	१[illegible]
४ नानालाल नाथुभाई जोशी	बीजापुर	२[illegible]
५ पुनाभाई मामैया	करांची	१[illegible]
६ मीरांबेहन	साबरमती	१[illegible]
७ डी. वी. नरसिंहराव	चेब्रोल	[illegible]
८ वाडीलाल जीवनलाल राण	बीजापुर	[illegible]
९ शंकरभाइ भिखाभाइ	साबरमती	[illegible]
१० गोपालदास पुरुषोत्तम देसाई	महेमदाबाद	[illegible]
११ डी. वी. नरसिंहराव	चेब्रोल	[illegible]
१२ मगनलाल गांधी	साबरमती	[illegible]
१३ नारणदास खु. गांधी	,,	[illegible]
१४ व्रजकृष्ण	देल्ही	[illegible]
१५ मो. क. गांधी	साबरमती	[illegible]
१६ दिनकर कृष्णलाल महेता	अहमदाबाद	[illegible]
१७ पूनाभाई मामैया	करांची	[illegible]
१८ रुपनारायण बइजल	साबरमती	[illegible]

वर्णाश्रम

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक १४

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, मार्गशीर्ष बदी १५ संवत् १९८४ गुरुवार, २४ नवम्बर १९२७ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

बौद्धों को संदेश

कोलम्बो में, अखिल सिलोन बौद्ध परिषद के मानपत्र के उत्तर में गांधी जी ने जो भाषण दिया था, उसका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है:

आपके मानपत्र के लिए में आपको तहेदिल से धन्यवाद देता हूँ। आपके इस शील का भी मैं आदर करता हूँ कि आपने उसका अनुवाद मुझे पहले से ही दे दिया था। मैं श्रीमान् महाथेर और भिक्षुओं का भी उनके आशीर्वाद के लिए वैसा ही आभारी हूँ और आज इस सभा में उन्हें भरोसा दिलाना चाहता हूँ कि मैं उस आशीर्वाद के योग्य बनने की कोशिश हमेशे करता रहूँगा। आपके मानपत्र में हिन्दुस्तान के बुद्धगया मन्दिर का जिक्र आया है। श्रीमान् महाथेर ने भी उसका उल्लेख अभी किया। बहुत जमाने से उस मन्दिर के बारे में मैं दिलचस्पी लेता रहा हूँ और जो कुछ कि महासभा के लिए करना संभव था, बेलगांव में अ० भा० राष्ट्रीय महासभा के सभापति की हैसियत से मुझे वह करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मेरे पास सीलोन के किसी अज्ञात मित्र ने, मेरे काम पर जो कुछ चर्चा हुई थी, वह सब भेजा था। उस समय उस झगडे में पडना मैंने ठीक नहीं समझा था। अब भी पडना नहीं चाहता। मैं आपको सिर्फ यही भरोसा दिला सकता हूँ कि मेरे लिए जो कुछ करना संभव था, मैंने किया और अब भी करूँगा। मैं आपको केवल इतना ही कह सकता हूँ कि महासभा का वह प्रभाव नहीं है जो होना मैं चाहूँगा। उस मंदिर कि मालकियत हक के रास्ते में कितनी कानूनी मुश्किलें भी उठ खडी होती हैं। महासभा के पास इसके लिए जो अच्छे से अच्छे आदमी थे, उन लोगों की उसने एक समिति इस पर विचार करने और अगर हो सके तो मन्दिर के वर्तमान मालिक महंत से कोई समझौता भी कर लेने के लिए बनायी। उस समिति ने अपनी रिपोर्ट दे दी है और मैं यह मान लेता हूँ कि आपमें से कुछ लोगों ने उसे देखा भी है। समिति ने पंचायत के जरिये फैसिला कराने की कोशिश की मगर इसमें वह असफल रही। मगर निराश होने की तो कोई वजह ही नहीं है। खैर मैं आप को यह कह सकता हूँ कि मेरी व्यक्तिगत सहानुभूति बिलकुल आपके साथ है और अगर यह मेरे बस की बात होती तो मैं आज ही आपको मन्दिर दे देता। आपके मानपत्र में सिलोन के किसी और मन्दिर का भी जिक्र था। इस मन्दिर के बारे में किसी विवाद की बात मैं नहीं जानता। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप में से कोई उस मन्दिर की हकीकतें मुझे बतलावें और यह भी बतलावें कि जब तक मैं यहां हूँ, उस बीच में मैं उसके लिए कौन सी सहायता कर सकता हूँ। आप इस बारे में खातिर जमा रक्खें कि अगर मुझे ऐसा लगा कि इसके बारे में मैं कुछ कर सकता हूँ तो मैं इसके लिए वह करूँगा और यह आपको कुछ खुश करने के लिए नहीं, बल्कि अपने मन के सन्तोष के लिए।

क्या मैं बौद्ध हूँ?

आप को शायद पता नहीं है कि मेरे बडे लडके ने मुझ पर बौद्ध होने का इल्जाम लगाया था और मेरे कुछ हिन्दू देशवासी भी यह कहने में नहीं हिचकते कि मैं सनातन हिन्दू धर्म के भेस में बौद्ध धर्म का प्रचार कर रहा हूँ। मेरे लडके के अभियोग से और हिन्दू मित्रों के इल्जाम से मेरी सहानुभूति है। और कभी कभी मैं बुद्ध का अनुयायी होने के इल्जाम में ही, गर्व का अनुभव करता हूँ और इस सभा में मुझे आज यह कहने में जरा भी हिचक नहीं है कि मैंने बुद्ध भगवान् के जीवन से बहुत कुछ पाया है। कलकत्ते के नये बौद्ध मंदिर में किसी वार्षिकोत्सव पर मैंने यही ख्याल जाहिर किये थे। उस सभा के नेता थे अनागारिक धर्मपाल। वे इस बात पर रो रहे थे कि उनके प्रिय कार्य की ओर लोग मुतवज्जह नहीं होते और इस रोने के लिए मैंने उन्हें बुरा भला कहा था। मैंने श्रोताओं से कहा कि बौद्ध धर्म के नामवाली चीज भले ही हिन्दुस्तान से दूर हो गयी होवे, मगर बुद्ध भगवान् का जीवन और उनकी शिक्षाएँ तो हिन्दुस्तान से दूर नहीं हुई हैं। यह बात तीन साल पहले की है और अब भी मैं उसमें कोई फेरबदल करने की वजह नहीं देखता। मेरी यह सम्मति गहरे विचार के बाद हुई है कि बुद्ध की शिक्षाओं के प्रधान अंग हिन्दूधर्म के आज अटूट अंग हो रहे हैं। आज हिन्दू संसार के लिए, गौतम के किये सुधारों के पीछे पग हटाना असंभव है। अपने महान् त्याग, वैराग्य और निर्मल पवित्रता से गौतम बुद्ध ने हिन्दू धर्म पर अमिट छाप डाली है और हिन्दू धर्म उस महान् शिक्षक से कभी उऋण नहीं हो सकता। और अगर आप मुझे क्षमा करें और कहने देवें तो मैं कहूँगा कि हिन्दू धर्म ने आज के बौद्ध धर्म का जो अंश नहीं लिया है, वह बुद्ध के जीवन और शिक्षाओं का मुख्य अंश ही नहीं था।

हिन्दू और बौद्ध धर्म

मेरा यह दृढ विश्वास है कि बौद्ध धर्म या बल्कि बुद्ध की शिक्षाओं को हिन्दुस्तान में ही पूरी सफलता मिली, और दूसरा कुछ हो भी नहीं सकता था क्योंकि गौतम भी तो स्वयं सच्चे से सच्चे हिन्दुओं में से ही एक थे। उनकी नस नस में हिन्दू धर्म की खूबियां भरी पडी थीं। उस समय वेदों की बेकार बातों के नीचे गडी हुई कुछ खास शिक्षाओं में उन्होंने जान डाल दी। उनकी हिन्दू भावना ने बेमानी मतलब के शब्दों के जंगल में दबे हुए वेदों के अनमोल सत्यों को जाहिर किया। उन्होंने वेदों के कुछ शब्दों से ऐसे अर्थ निकाले जिनसे उस युग के लोग बिलकुल अपरिचित थे और उन्हें हिन्दुस्तान में सबसे अच्छा क्षेत्र मिला। जहां कहीं बुद्ध भगवान् गये उनकी चारों ओर अहिन्दू नहीं, बल्कि वेदों की भावना को अपनी नस नस में भरे हुए, हिन्दू विद्वान ही घिरे रहते थे। मगर उनके दिल के जैसा उनकी शिक्षा भी अत्यंत विस्तृत थी और इसी लिए उनके मरने बाद भी वह बनी रही, पृथ्वी के एक किनारे से दूसरे तक छा गयी, और बुद्ध का अनुयायी कहे जाने का खतरा होते हुए भी मैं इसे हिन्दूधर्म की ही विजय कहता हूँ। उन्होंने हिन्दूधर्म को कभी इनकार नहीं किया, केवल उसका आधार विस्तृत कर दिया। बुद्ध भगवान् ने इसमें एक नयी जान फूँक दी, इसको एक नया ही रूप दे दिया। मगर अब आगे जो कुछ मैं कहूँगा उसके लिए आप क्षमा करेंगे। मैं आप से यही कहना चाहता हूँ कि बुद्ध की शिक्षाएँ पूरी पूरी किसी देश के जीवन में, चाहे तिब्बत, सिलोन या बर्मा कोई देश क्यों न हो, जज्ब नहीं हुईं। मैं अपनी मर्यादा जानता हूँ। मैं बौद्ध धर्म के पाण्डित्य का दावा नहीं रखता। बौद्ध धर्म पर प्रश्नोत्तर में शायद नालंद विद्यालय का कोई छोटा लडका भी मुझे हरा देगा। मैं जानता हूँ कि यहां मैं बहुत बडे विद्वान् भिक्षुओं और गृहस्थों के सामने बोल रहा हूँ मगर मैं आपके सामने और अपनी अन्तरात्मा के सामने झूठा ठहरूँगा अगर मैं अपने दिल का विश्वास आप से न कहूँ।

आस्तिकता

आप लोगों और हिन्दुस्तान के बाहर के बौद्धों ने बेशक बुद्ध की बहुत सी शिक्षाएँ ग्रहण की हैं। मगर जब मैं आपके जीवन की जांच करता हूँ और सिलोन, बर्मा, चीन या तिब्बत के भी मित्रों से प्रश्न पूछता हूँ तो मैं आपके जीवन में, और बुद्ध के जीवन का जो मैं मुख्य भाग समझता हूँ, उसमें अन्तर देख कर फेर में पड जाता हूँ। अगर मेरी बातें आपको थका न देती हों तो मैं आपके सामने तीन खास बातें रखना चाहूँगा। पहली चीज है सर्वान्तर्यामी सर्वशक्तिशाली नियति में विश्वास करना। मैंने यह बात अनगिनत बार सुनी है और बौद्ध धर्म के भाव को प्रकट करनेका दावा करनेवाली किताबों में पढी है कि गौतम बुद्ध परमात्मा में विश्वास नहीं करते थे। मेरी नम्र सम्मति में बुद्ध की शिक्षाओं के मुख्य बात के यह बिलकुल विरुद्ध है। मेरी नम्र सम्मति में यह भ्रान्ति इस बात से फैली कि गौतमबुद्ध ने अपने जमाने में ईश्वर के नाम से गिनी जानीवाली सभी मामूली चीजों को इन्कार किया था और यह उचित ही किया था। उन्होंने बेशक ही, इस खयाल को इनकार किया कि ईश्वर नाम का कोई जानवर है जो द्वेष— विकार से विचलित होता हो, जो अपने कामों के लिए पछताता हो, जो दुनियवी राजों, महाराजों जैसे घूस लेता हो, जो लालची हो, या जिसे कुछ खास मनुष्य ही प्रिय हों। उनकी आत्मा इस विश्वास के विरुद्ध जोरों से जग उठी कि कोई ईश्वर नाम का जीवधारी है जो अपनी ही सृष्टि पशुओं का खून पी कर खुश होता है। इस लिए उन्होंने परमात्मा को उनके सच्चे आसन पर विठाया और उस आसन पर बैठे हुए लुटेरे को गिरा दिया। उन्होंने इस संसार के शाश्वत और अटल नैतिक नियमों पर जोर दिया, और उसकी घोषणा फिर फिर से की। उन्होंने बिना किसी हिचक के कहा है कि नियम ही परमात्मा है।

निर्वाण क्या है?

परमात्मा के नियम शाश्वत और अटल हैं। वे परमात्मा से अलग नहीं किये जा सकते। उनकी सम्पूर्णता की यह शर्त अनिवार्य है। इसीलिए यह भ्रान्ति फैली कि गौतम-बुद्ध का परमात्मा में विश्वास नहीं था और वे सिर्फ नैतिक नियमों में ही विश्वास करते थे और ईश्वर के बारे में यह भ्रान्ति फैलने से ही, 'निर्वाण' के बारे में भी मतिभ्रम हुआ है। निर्वाण का अर्थ 'सम्पूर्ण रूप से अनस्तित्व' तो बेशक नहीं है। बुद्ध के जीवन की एक मुख्य बात जो मैं समझ सका हूँ, वह यह है कि निर्वाण का अर्थ है, हममें से सभी बुराइयों का बिलकुल नष्ट हो जाना, सभी विकारों का नेस्त नाबूद हो जाना, जो कुछ कि भ्रष्ट है या भ्रष्ट हो सकता है उसकी हस्ती मिट जानी। निर्वाण कब्र की मृत शान्ति नहीं है बल्कि वह तो है उस आत्मा की जीवन्त शान्ति, जीवन्त सुख जिसने अपने आपको पहचान लिया हो, अनन्त के भीतर अपना निवास ढूँढ निकाला हो।

बुद्ध का सबसे बडा काम

तीसरी बात यह नीचा खयाल है कि नीची श्रेणी के जीवधारिओं के जीवन का महत्व हिन्दुस्तान के बाहर ही समझा गया है। परमात्मा को उनके शाश्वत आसन पर पहुँचाने में बुद्ध की जो बडी भारी सेवा था, उससे भी उनकी बडी सेवा मैं यह मानता हूँ कि उन्होंने मनुष्यों के ही बराबर दूसरे प्राणियों के भी जीवन का आदर करना सिखलाया, चाहे वे कितने ही छोटे क्यों न हों। मैं जानता हूँ कि उनका अपना भारतवर्ष उस हद तक ऊँचे नहीं चढा, जो देख कर उन्हें खुशी होती, मगर जब उनकी शिक्षाएँ दूसरे देशों में बौद्ध धर्म के नाम से पहुँचीं, तब उनका यह अर्थ लगने लगा कि पशुओं के जीवन की वही कीमत नहीं है जो मनुष्यों के जीवन की है। मुझे सिलोन के बौद्ध धर्म के रिवाजों का ठीक पता नहीं है मगर मैं जानता हूँ कि चीन और बर्मा में उसने कौन सा रूप धारण किया है। खास कर बर्मा में कोई बौद्ध एक भी जानवर नहीं मारेगा मगर, दूसरे लोग उसे मार और पका कर लावें तो उसे खाने में कोई झिझक नहीं होगी। संसार में अगर किसी शिक्षक ने यह सिखलाया है कि हर एक कार्य का फल अनिवार्य रूप से मिलता है तो गौतम बुद्ध ने ही मगर तौभी, आज हिन्दुस्तान के बाहर के बौद्ध अपने कामों के फलों से बचने की कोशिश करते हैं। मगर मुझे आपका धैर्य नष्ट नहीं करना चाहिए। मैंने कुछ बातों का थोडा जिक्र भर किया है, जिन्हें आप के सामने लाना मैं अपना कर्त्तव्य समझता था और मैं बडी नम्रता के साथ आपसे आग्रहपूर्वक उनपर ध्यान से विचार करने की प्रार्थना करता हूँ।

गौतमबुद्ध के देशवासियों का ऋण

बस एक और बात कह कर मैं भाषण समाप्त करूँगा। कल रात को स्वागत समिति के सभ्यों ने किसी सभा में खादी और सिलोन के संबंध पर कुछ कहने के लिए मुझसे कहा था। इस विषय पर बोलने के लिए मेरे पास अधिक समय नहीं बचा है। मगर मैं उसका संक्षेप दो ही वाक्यों में देने की कोशिश करूँगा। एक बात तो यह है कि आपके हृदयों के अधिष्ठाता बुद्धदेव की जन्मभूमि और उनके वंशजों के प्रति भी जिनके लिए वे जिये और मरे। आपका कुछ ऋण है, आज अपने ही देश में उनके वे वंशज मुसीबत की जिन्दगी गुजार रहे हैं। उनकी भूखमरी क

मिटती नहीं । मैं तब यह कहने का साहस करता हूँ कि खादी के जरिये आप अपने हृदयों के अधिष्ठातृ देव और अपने बीच संबंध जोड सकेंगे । अगर आप उनकी शिक्षा की मुख्य बात के अनुसार चलें और सभी प्रकार के जीवन को क्षणिक मानते हुए जीवन को त्याग-क्षेत्र मानें तो आप तुरत ही खादी के संदेश की खूबसूरती को समझ सकेंगे, जिसका कि दूसरा अर्थ है सादा जीवन और ऊँचे विचार । ये दो विचार लेकर मैं आप में से हरएक से कहूँगा कि आप अपने लिए खादी के सन्देश का अर्थ खुद ही लगा लीजिए । आपने मानपत्र देकर और आशीर्वाद देकर मुझ पर जो बडी भारी मिहर्बानी दिखलायी है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि आप मेरे नम्र संदेश को उसी प्रकार ग्रहण करेंगे जिस तरह कि वह दिया गया है । इसे आलोचक की आलोचना न समझ कर दिली दोस्त का संदेश मानना । (यं० इं०)

साप्ताहिक पत्र

लंका में

आखिर लंका में आप पहुँचे। यह वही लंका है, जिसके नाम से हर एक हिन्दुस्तानी लडका सिलोन को पहचानता है, जहां की हमारी पहली याद रावण की आती है जिसका गर्व चूर्ण करके भगवान् रामचंद्र ने पृथ्वी का उद्धार किया था । जिसके बारे में इतिहास सिखलाता है कि उसका सम्बंध भारतवर्ष के साथ अटूट है, जहां कि भगवान् बुद्ध की शिक्षाएँ कुमार विजयबाहु के द्वारा फैल कर सफल हुईं और अब भी प्रचलित हैं, जिस लंका का भारतवर्ष से सांस्कृतिक साम्य बहुत अधिक है क्योंकि उसकी और हमारी कितनी एक परम्पराएँ एक ही हैं, जिस लंका के मौजूदा बाशिन्दे यूरोपियन सांचे में ढल कर भी अभी हिन्दुस्तानियों के भाई ही मालूम पडते हैं, उसी लंका को देखने के लिए, अपनी मुसाफरी के पिछले दश वर्षों से भी अधिक से गांधीजी बराबर उत्सुक रहते थे । कनकपुरी के नाम से विख्यात प्राकृतिक शोभाओं के इस अपूर्व भाण्डार को जो पृथ्वी का अनमोल हीरा कहा जाता है, देखने के लिए वे जितने उत्सुक थे उससे कम वहां पर जाकर बौद्ध धर्म का सीधा ज्ञान प्राप्त करने के लिए नहीं थे और अगर संभव हो तो पश्चिमीय सभ्यता की चक्की में पिसते हुए उस देश के भी अभागे लोगों को अपना रास्ता बताने की फिक्र भी उन्हें कुछ कम न थी ।

मगर आखिर जब हम यहां पहुँच गये हैं तब यह यात्रा, गांधीजी के अनुसार 'पैसे के लिए' ही है ।

मगर तौभी १२ ता. को कोलोम्बो में जहाज से उतरने के बाद से उनका जैसा स्वागत हुआ है, वह हिन्दुस्तान में कहीं के स्वागत से उतरा हुआ नहीं कहा जा सकता । यहां की म्युनिसिपैलिटी बहुत कुछ सरकारी ही संस्था कही जायगी । उसका सुंदर मानपत्र उसके चेयरमैन ने पढा जो सिविल सर्विस में सरकारी नौकर हैं । गवर्नर साहेब ने भी अपने मंत्री के द्वारा स्वागत संदेश भिजवाया और गांधीजी को दोस्ताना बातचीत के लिए बुलाया । गांधी जी इनमें किसीके लिए तैयार नहीं थे । तब इसमें ताज्जुब क्या है कि लोगों के उत्साह और प्रेम से भरे स्वागत पर वे चकित रह गये ! जिस जिस रास्ते उन्हें जाना था उन उन पर हजारों आदमी खडे थे । कई जगहों पर तो भीड कम करने के लिए टिकट लगा कर तब लोगों को भीतर जाने दिया जाता था । बौद्ध और ईसाई लंकावासियों ने हिन्दू लंकावासियों और हिन्दुस्तानियों के साथ गांधी जी के प्रति और उनके काम के प्रति प्रेम दिखलाने में होड लगायी है । वे तो यह मानते ही नहीं कि यह यात्रा 'पैसे के लिए ही' है बल्कि वे तो इसे सिर्फ बन्धुत्व का ही चिंह भर मानने को तैयार हैं । खादी कोष में सब ने अपना हिस्सा चुकाया है । इसमें लंकावासी तामिलों के पीछे न रहे, सरकारी नौकरों ने स्वतंत्र गृहस्थों को अपने से आगे नहीं बढने दिया, साधारण दूकानदारों के पीछे काउन्सिल के मेम्बर न रहे, लडके और विद्यार्थी अपने मातापिता से कब के पीछे रहनेवाले थे, और किरानी, रसोइये, हज्जाम और मजदूरों ने भी इस काम को उतना ही अपनाया, जितना कि उनके दूसरे धनी भाइयों ने । जिस घर में हम ठहरे हैं, उसका एक अंश खादी की दूकान बन गया है और उस दूकान से खादी ले जाने के लिए सभी समाज और वर्गों के लोगों की भीड सबेरे से शाम तक लगी ही रहती है । गांधी जी का ऐसा अभूतपूर्व स्वागत कर के सिलोनवालों ने गांधी जी को अपना लिया है और अगर यह संभव है तो 'भारतमाता' से अपना नाता और भी दृढ बना लिया है । मजदूरों के मानपत्र में आये हुए इस 'भारतमाता' शब्द की गांधीजी के दिल पर बहुत गहरी छाप पडी थी ।

सभाएँ

भिन्न २ सभाओं का वर्णन और भाषणों का सारांश देने की कोशिश करनी बेकार है । मैं तो सिर्फ कुछ खास खास बातें ही भर लिख सकता हूँ । चेट्टीनाड में हमारा परिचय श्रीयुत काशीविश्वनाथ चेट्टियर और पिचप्पा सुब्रह्मण्यम से हुआ था । उन्होंने लंका में आकर वहां के चेट्टी व्यापारियों का संगठन करने का वचन दिया था । सिलोन की पहली सभा, यानी चेट्टियों की सभा की सफलता उनके परिश्रम का जीता जागता उदाहरण है । चेट्टी मुनीमों का मालिकों से अधिक दान उनके लिए प्रशंसा की बात है । वहां के विद्यार्थियों ने भी भारत के विद्यार्थियों से कुछ कम नहीं दिया । मजदूरों की सभा तो मनुष्यों का समुद्र बनी थी । उसमें दो दुभाषियों को साथ साथ गांधीजी का भाषण समझाना पडता था । मगर उसके सुप्रबन्ध, और संगठन की जितनी तारीफ की जाय थोडी है । उनकी सुंदर थैली और स्वयंसेवकों के शान्त काम के लिए श्रीयुत गुणीसिंह की ही तारीफ करनी पडेगी । हिन्दुस्तान में कम ही जगहों पर हम मजदूरों का ऐसा अच्छा संगठन पाते हैं । मरुतवकुला यानी हज्जामों की संख्या सिर्फ बीस ही है और ये गांधीजी के निवासस्थान पर ४००) रु. की अपनी थैली लेकर आये !

मद्रास के जैसे कोलोम्बों के पढे लिखों ने भी गांधीजी से भाषणों का कर लिया ही । मगर यह तो लाचारी थी । हां, मद्रासवालों को कोई बहाना नहीं था क्योंकि वे तो गांधीजी को कितनी ही बार देख चुके थे और कोलम्बो में तो गांधीजी पहले ही पहल आये थे । बौद्ध महासभा का स्वागत अपूर्व ही था । कोई पांच सौ बौद्ध भिक्षुओं ने विद्योदय कौलेज के बहुत बडे कमरे में अपने पीले कपडे पहने हुए बैठ कर गांधीजी के लिए आशीर्वचन पढा । गांधीजी का जवाब बुद्ध भगवान् के प्रति उनकी श्रद्धाञ्जलि और बौद्ध और हिन्दू धर्म की अन्तिम एकता के बारे में उनके विचारों का स्पष्टीकरण था । उन्होंने अपनी समझ में बौद्ध धर्म की तीन भ्रान्तियों को बतलाया और इसीमें बौद्धों के लिए अपना संदेश भी सुनाया । वह भाषण अक्षरशः अन्यत्र दिया जा रहा है ।

नवयुवक ईसाई संघ के सामने दिया गया गांधी जी का भाषण केवल सिलोन के ईसाइयों के लिए ही नहीं था बल्कि वह सारे संसार के ईसाइयों के लिए उनका संदेश था । इस भाषण में जो दिल की आग जाहिर हुई, वह पिछले कई वर्षों में देखने में नहीं आयी । वह तो अन्तरात्मा पर ही निर्भर रहने, आत्म परीक्षण करने की विनय थी । इस भाषण का मूल उद्देश्य था सत्य के शोध में श्रोताओं की सहानुभूति प्राप्त करनी, और अपने उस काम के लिए भी सहानुभूति पैदा करनी जिसके लिए वे जीते हैं, और मरना भी उन्हें प्रिय होगा । मगर पहले बात की ही चर्चा इतनी अधिक लंबी हो गयी कि खादी के साथ ईसा के संदेश के संबंध पर कुछ कहने का समय ही नहीं मिला । यह भाषण अगले हफ्ते में देने की कोशिश करूँगा ।

(यं० इं०) महादेव देशाई

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, मार्गशीर्ष वदी १५ संवत् १९८४

वर्णाश्रम और उसकी विडम्बना

पाठकों को अन्यत्र श्रीयुत नाडकर्णी का एक पत्र ब्राह्मण और अब्राह्मण प्रश्न पर मिलेगा। तामिलनाड की मुसाफिरी में वर्णाश्रम धर्म पर अपने विचार मैंने प्रकट किये थे जो इस पत्र में बहुत कुछ निकल चुके हैं। अब मैं बडी खुशी से श्रीयुत नाडकर्णी के आग्रह को मान कर उन्हें और भी अधिक स्पष्ट करता हूँ।

पहले तो मैं इसी प्रसिद्ध कथा को इनकार कर के शुरू करता हूँ कि श्रीराम ने एक शूद्र को संन्यास धारण करने के कारण मारा था। मैं शास्त्रों का अक्षरशः अर्थ नहीं लगाता — उन्हें इतिहास के रूप में तो निश्चय ही नहीं पढता। शम्बूक-वध राम के साधारण चरित्र के अनुकूल ही नहीं है। और भिन्न भिन्न रामायणों में चाहे जो कहा जाय मगर मेरे हृदय के राम तो किसी शूद्र को या किसी आदमी को इसके लिए मार ही नहीं सकते। शम्बूक की कथा से अगर कोई बात साबित होती है तो यही कि जिस जमाने में यह कथा शुरू हुई, उस समय कुछ खास काम करना शूद्रों के लिए मृत्यु-दंड के कुसूर समझे जाते थे। यहां हमें शूद्र शब्द का कोई अर्थ मालूम नहीं होता है। मैंने तो इस सारी कथा का अर्थ रूपक के रूप में भी सुना है। मगर उससे यह बात बदल नहीं सकती कि हिन्दू धर्म के विकास के किसी दर्जे पर शूद्रों के लिए कुछ बेमानी मतलब के रोक थे। हां, मुझे सिर्फ इसकी जरूरत नहीं है कि मैं शम्बूक-बध के लिए प्रायश्चित्त करने में श्रीयुत नाडकर्णी का साथ दूँ क्योंकि मैं नहीं मानता कि शम्बूक नाम के किसी ऐतिहासिक व्यक्ति को राम नामक दूसरे ऐतिहासिक पुरुष ने मारा था। नीची श्रेणी के और खास कर अछूत नामधारियों पर अत्याचारों के लिए मैं बतौर हिन्दू के अपने जीवन के प्रतिक्षण में प्रायश्चित्त कर ही रहा हूँ। वर्णाश्रम धर्म पर धार्मिक दृष्टि से विचार करते हुए मेरी सम्मति में शम्बूक-बध जैसे उदाहरणों का कोई खयाल ही नहीं किया जायगा। इस लिए मैं सिर्फ यही कहना चाहता हूँ कि मुझे इस वर्णाश्रम को छोडने में जरा भी उज्र नहीं होगा, अगर मुझे यकीन दिलाया जाय कि मेरा इसका अर्थ हिन्दूधर्म नहीं मानता। जैसा कि श्रीयुत नाडकर्णी कहते हैं, वर्ण और आश्रम दो चीजें हैं। चार आश्रमों की संस्था से मनुष्य को अपने जीवन का उद्देश्य पूरा करने में सहायता मिलती है, जिसके लिए वर्णधर्म परमावश्यक है। वर्णधर्म के अनुसार हरएक आदमी को अपने पूर्वजों का न्याय्य पेशा पकडना चाहिए। मैं इस नियम को जो मनुष्यजाति का नियंत्रण करती है सार्वत्रिक मानता हूँ। इसको तोडने का भयंकर फल होता है जो हमें आज मिल रहा है। मगर बहुत अधिक लोग तो बेसोचे अपने पूर्वजों का वंशगत पेशा ही अख्तियार करते हैं। हिन्दूधर्म ने इस नियम का पता लगा कर और इसका पालन करके मनुष्य-जाति का बहुत बडा उपकार किया है पशुओं से अलग, अगर मनुष्य का मुख्य काम ईश्वर को ढूँढना है तो यही नतीजा निकलता है कि उसे अपने जीवन का मुख्य अंश इसी प्रयोग में नहीं लगाना होगा कि किस पेशे से उसे अच्छी से अच्छी रोजी मिलती है। इसके उलटे वह पहचान लेगा कि उसके लिए अपने पूर्वजों का ही पेशा अख्तियार करना सब से अच्छा है और अपनी फुरसत के समय और शक्ति को मनुष्यजाति के उद्देश्य को खोजने में लगाना चाहिए।

तब, यहां मेरे पत्र-लेखक की सुझायी कठिनाई उपस्थित नहीं होती। क्योंकि स्वेच्छापूर्वक सेवा का काम करने में और उसकी काबलियत पैदा करने में किसीका हाथ बँधा हुआ नहीं है। इस प्रकार ब्राह्मण माता पिता की संतान श्रीयुत नाडकर्णी और ... माता पिता की मैं — हम दोनों निश्चय ही वर्ण धर्म के अनुसार अवैतनिक राष्ट्रीय स्वयंसेवक या अवैतनिक परिचारक या अवैतनिक झाडूवाले के रूप में जरूरत के मौके पर सेवा कर सकते हैं ... कि इसी वर्णधर्म के अनुसार उन्हें ब्राह्मण हो कर अपनी आजीविका के लिए अपने पडोसियों के दान पर ही निर्भर रहना चाहिए और ... दवा या मसाले बेंच कर अपना गुजर करना चाहिए। जब ... वे सेवा का पुरस्कार नहीं मांगते, सभी किसीको सेवा करने का हक ...

वर्णधर्म की इस कल्पना में कोई किसी से ऊंचा नहीं है। ... पेशे, जब तक कि वे व्यक्तिगत या सामाजिक धर्मनीति के विरुद्ध न हों, समान हैं और आदरणीय हैं। सफाई का काम करने वाला ... और ब्राह्मण, दोनों की एक ही स्थिति है। मैक्समूलर ने ही कहा था कि सबसे अधिक हिन्दू धर्म में ही कर्त्तव्य से कम अधिक कीमत जिन्दगी की नहीं मानी गयी है।

बेशक, अपने विकास के किसी दर्जे पर हिन्दू धर्म भ्रष्ट ... और बडप्पन, छुटपन का विकार इसमें घुसा और इसे जहरीला कर डाला। मगर हिन्दू धर्म में स्वार्थत्याग की जो भावना घुसी हुई है यह असमानता का भाव मुझे उसके बिलकुल बरक्स मालूम पडता है। जीवन की उस योजना में जिसका आधार अहिंसा हो, क्रियात्मक रूप में जीवमात्र के लिए प्रेम हो, एक वर्ग के लिए ... के ऊपर बडप्पन के औद्धत्य के लिए कोई जगह नहीं है।

इस वर्णधर्म के विरुद्ध यह बात पेश न की जाय कि यह ... को नीरस बनाता है और उसकी सारी उच्चाभिलाषाएँ ... डालता है। मेरा सम्मति में केवल एक वर्णधर्म ही ... को खुशनुमा बनाता है और उच्चाभिलाषा के लिए केवल वही ... छोडता है जो उसके योग्य है यानी आत्म-ज्ञान। आज हम ... भौतिक चीजों की ही सोचते हैं, सिर्फ उसीके लिए मिहनत ... हैं जो कि स्वभाव से ही क्षणिक हैं और यह सब हम उस ... आवश्यक वस्तु को प्रायः छोड कर ही करते हैं।

अगर मुझे यह कहा जाय कि वर्णधर्म के मेरे अर्थ का ... स्मृतियों में नहीं है जो कि लिखित हिन्दू आचार हैं तो ... जवाब है कि जीवन के अटल सिद्धान्तों के आधार पर बना ... आचार के नियम समय समय पर जैसे जैसे हमें नये अनुभव ... हैं, हम नयी बातें देखते हैं, बदलते रहते हैं। स्मृतियों के ... नियम दिखलाये जा सकते हैं जिन्हें हम अब लाजिमी नहीं ... या माननेलायक भी नहीं गिनते। अटल सिद्धान्त तो बहुत ... होते हैं और वे सभी धर्मों में एक हैं। इनके प्रयोग में ... पडता रहता है। और किसी धर्म में सभी संभव प्रयोगों का ... नहीं कर दिया गया है। नये विचारों के विकास और नयी ... के पता चलने से उनमें विस्तार होगा ही। सचमुच ही, ... विश्वास है कि मनुष्य-जाति के अनुभव की वृद्धि के साथ ... शब्दों के अर्थ में भी वृद्धि होती जाती है। जाने हुए ऐति... भूतकाल की अपेक्षा आज 'स्वार्थ त्याग', 'सत्य', 'अहिं... 'वर्णाश्रम', इत्यादि शब्दों का अर्थ लाखगुणा अधिक बढा ... यही सिद्धान्त 'वर्ण' शब्द के साथ लगाते हुए, हमारे लिए ... प्रचलित अर्थ को ही पकडे रहना यह जानते हुए लाजिमी ... कि वह अर्थ इस युग की आवश्यकताओं के या नीति धर्म के ... खयालात के विरुद्ध है। इससे उलटे चलना तो ... करना होगा!

ऊपर बतलाये गये ढंग पर विचार करने पर जान पडता है कि वर्ण में और आज जिसे हम 'जाति-प्रथा' जानते हैं, कुछ भी समता नहीं है और न सहभोज और सहविवाह की रोक ही वर्णधर्म का कुछ आवश्यक अंग है। यह संभव है कि वर्ण की रक्षा के लिए ये प्रतिबंध लगाये गये हों। आत्म-संयम के आधार पर बनी हुई जीवन की किसी योजना में अनयमित विवाह के संबंध लिए रोक होगी ही। सब के साथ खाने पीने में रोक की उत्पत्ति सफाई के खयाल से या आदतों में अन्तर होने के कारण हुई है। पहले इन नियमों को तोडने से किसी को सामाजिक या कानूनी दंड नहीं मिलता था या खास बात तो यह है कि अब तोडने से नहीं मिलना चाहिए, उसका वर्ण नहीं नष्ट होना चाहिए।

मूलतः चार ही वर्ण थे। यह विभाग बुद्धिपूर्वक किया गया था। यह समझ में भी आने लायक है। मगर यह संख्या कुछ वर्ण धर्म का अंग नहीं है। दर्जी को लोहार बनना जरूरी नहीं है जोकि दोनों ही वैश्य गिने जा सकते हैं और गिने जाने चाहिए।

तामिलनाड में जो सबसे जबर्दस्त उज्र मेरे सामने रक्खा गया था वह यह था कि मेरे अर्थ के अनुसार वर्णधर्म भले ही चाहे जितना सुन्दर और निर्दोष क्यों न मालूम होवे, मगर या तो उसे दूसरे ही नाम से चलाना होगा या उसके साथ जो बुरी गंध लग गयी है, उसके कारण उसे नष्ट ही कर देना पडेगा। विरोधियों को भय था कि मेरे अर्थ की तो उपेक्षा की जायगी और साथ ही मेरे नाम का उपयोग वर्ण की आड में आज हिन्दू धर्म में प्रचलित भयंकर असमानता और अत्याचारों के समर्थन में किया जायगा। उन्होंने यह भी कहा कि सर्व साधारण की नजर में जाति और वर्ण दोनों ही एकार्थवाची हैं और वर्णधर्म के संयम का पता अगर्चे कि कहीं नहीं है मगर जातिप्रथा के जुल्म सभी कहीं हैं। बेशक ये सभी विरोध बहुत जोरदार हैं मगर ये ऐसे हैं जो कई ऐसी अपभ्रष्ट संस्थाओं के विरुद्ध पेश किये जा सकते हैं जो कभी अच्छी थीं। सुधारक का तो काम है संस्था की जांच करनी और अगर उसके दोष उससे दूर किये जा सकें तो उन्हें सुधारना। वर्ण धर्म तो केवल आदमी की बनायी संस्था ही भर नहीं है, बल्कि यह तो उसका ढूँढा ईश्वर का नियम है। इस लिए इसे दूर नहीं किया जा सकता। इसके छिपे हुए अर्थ और इसकी संभवताओं को ढूँढना और समाज के हित के लिए काम में लाना चाहिए। हम लोगों ने देखा है कि यह दोष खुद इस नियम में या संस्था में ही नहीं है बल्कि बडप्पन और छुटपन के उसूल में है जो उस पर ऊपर से जोडा गया है।

यह सवाल भी दरपेश होता है कि इस युग में यह धर्म क्यों कर पाला जाय, जब कि चारों वर्णों के लोग सभी प्रकार के बंधन तोड कर, उचित अनुचित सभी उपायों से अपनी भौतिक उन्नति करना चाहते हैं, कुछ लोग दूसरों पर अपना बडप्पन जतलाते हैं और वे दूसरे उनके इस दावे का विरोध उचित ही करते हैं। अगर हम इसकी उपेक्षा भी करें तौभी यह नियम तो अपने आप ही पूरा हो लेगा। मगर वह तो दंड के रूप में होगा। अगर हम नष्ट नहीं हुए तो उसके आगे सर झुकाना ही पडा होगा। और यह देखते हुए कि इस समय हम अपने साथ योग्यतम की रक्षा का पाशविक नियम, यानी 'जो शरीर से अधिक मजबूत हो वही जिये' को लागू करने में लगे हुए हैं, यह अच्छा होगा कि हम सब अपने को एक ही वर्ण यानी शूद्र समझें अगर्चें कि कोई शिक्षक का काम करते हों, कुछ लोग सैनिक हों और कुछ व्यापार में लगे हों। मुझे याद है कि १९१५ में नेल्लोर में समाज परिषद के सभापति ने कहा था कि पहले हम सभी ब्राह्मण थे और अब भी सब किसी को ब्राह्मण ही मानना चाहिए और दूसरे सभी वर्ण उठा दिये जाने चाहिए। यह तो मुझे उस समय भी विचित्र सूचना लगी थी और अब भी विचित्र ही मालूम पडती है। अगर शान्त सुधार होना है तो नामधारी उच्चवर्णवालों को ही नीचे उतरना पडेगा। जो लोग युगों से अपने को समाज में सबसे नीचा समझने की शिक्षा पाते आये हैं, उनमें ऊँचे वर्गों की योग्यता अचानक नहीं आ सकती। वे तो केवल खून खराबी के ही जरिए यानी समाज को ही नष्ट कर के ताकतवर बन सकते हैं। मेरी योजना में अछूतों का उल्लेख कहीं नहीं आया है क्योंकि वर्ण धर्म में या हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता के लिए मैं कोई जगह नहीं देखता। और सब लोगों के साथ शूद्रों में वे भी दाखिल हो जायँगे। इनमें से फिर दूसरे तीनों वर्ण शुद्ध हो कर, समान स्थिति मगर अलग अलग पेशे ले कर निकलेंगे। ब्राह्मण बहुत ही कम होंगे। ये क्षत्रिय आज के जैसे भाडे के टट्टू या निरंकुश शासक न होंगे बल्कि राष्ट्र के सच्चे रक्षक होंगे और उसकी सेवा में अपनी जान लडा देंगे। सबसे कम शूद्र होंगे क्योंकि सुव्यवस्थित समाज में मनुष्यों से कम से कम सेवा ली जायगी। सबसे अधिक वैश्य होंगे—जिनमें सभी पेशेवाले किसान, तिजारती, कलाविद्, शिल्पी सभी कोई होंगे। यह योजना शायद हवाई किला ही सा लगे। मैं उस समाज के निरंकुश स्वेच्छाचार जीवन बिताने से जिसे मैं टूटता हुआ देख रहा हूँ, अपने इसी कल्पना राज्य में ही रहना ज्यादे पसंद करता हूँ। अगर समाज उनके विचार न भी माने तौभी व्यक्तियों के लिए अपने कल्पना राज्य में रहना तो संभव है। हर एक सुधार की शुरूआत व्यक्तियों से ही हुई है, और जिस सुधार में आन्तरिक शक्ति हो और जिसके पीछे किसी सबल आत्मा का सहारा हो, उसे सुधारक का समाज स्वीकार कर ही लेता है।

(यंग इंडिया) मोहनदास करमचंद गांधी

ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर

श्रीयुत एस डी. नाडकर्णी लिखते हैं:

"ब्राह्मण-अब्राह्मण प्रश्न पर आपके सभी उद्गार और खास कर द० भारत की मुसाफिरीवाले तो मैं बराबर ही दिलचस्पी से पढता आया हूँ। इसके अलावा मैंने स्वतन्त्र रूप से भी इस प्रश्न पर विचार किया है। इसलिए मैं आपकी की हुई मीमांसा के बारे में कुछ कठिनाइयाँ और शंकाएँ पेश करने का साहस करता हूँ।

"वर्णाश्रम धर्म का ही एक जीवन्त प्रश्न आप इसे समझते हैं। मैं इसमें आप से सहमत हूँ। हमें तो सिर्फ 'वर्णाश्रम' के बदले 'वर्ण' शब्द इस्तेमाल करना चाहिए क्योंकि इसमें आश्रम का तो सवाल ही नहीं है। मगर ऐसी चर्चाओं में, अखबारी लेखों और भाषणों में वर्ण के साथ आश्रम शब्द को जोड रखने की चाल इतने दिनों से चल गयी है कि इसमें फेरफार करने की अब जरूरत नहीं मालूम पडती है।

"मैं इस विषय पर यं. इ. में २२ और २९ सितम्बर (देखिए हिन्दी नवजीवन ६ अक्तुबर) के भाषणों को लेता हूँ। आपका इस पर अखीरी भाषण तंजोर में हुआ था। वहां आपने 'सच्चे वर्णाश्रम धर्म' की व्याख्या बतलानी बन्द कर दी क्योंकि, 'इस विषय पर ऐसे बडे श्रोतृवर्ग के सामने गहरा विचार नहीं किया जा सकता।' मैं चाहता हूँ कि अब इस पत्र के जरिए आप यं. इ. के पाठक वर्ग के आगे 'वर्णाश्रम' की व्याख्या करने को प्रेरित हों। उस भाषण में मूल आदर्श वर्णाश्रम के बारे में आपने कहा था कि 'सच पूछो तो दुनिया में मनुष्य समाज इस नियम के सामने कहीं नहीं अड सका है।' इसी तरह कुडालोर में आपने कहा था, 'पश्चिमवालों और इस्लाम धर्म को भी इस नियम का बेसोचे पालन करना ही पडा है।'

"अब अगर आपके ये वचन अलग स्वतंत्र रूप में होते तो जाति-प्रथा के कट्टर से कट्टर विरोधी को भी वर्ण का नाम मौजूद रखते हुए भी उससे कोई शिकायत न होती। क्योंकि आपके इन वचनों का अर्थ केवल यही है कि दूसरे देशों और धर्मों में जो नियम स्वाभाविक रूप से ही चलता है और जिसे बहुत कर के वंश परंपरागत 'श्रमविभाग' कहते हैं, वही वर्णधर्म है। अगर हमारा वर्ण भी वही चीज होता तो फिर कोई ब्राह्मण-अब्राह्मण या छूत-अछूत प्रश्न हमारे सामने नहीं पेश होता। मगर वर्ण तो वह चीज नहीं है। जो वस्तु वर्णव्यवस्था के नाम से लगभग हमेशे प्रचलित रही है वह है कृत्रिम रीति से टिका हुआ और अत्यन्त कडा सामाजिक भेद। उसीका दूसरा नाम जातिप्रथा है। चाहे इसमें चार विभाग हों जैसा कि पहले था, या चालीस हजार हों, मगर दर असल चीज तो वह एक ही है। यह तो है महज पैदाइश के ऊपर किया हुआ अधिकार और बंधन का बँटवारा।

"अगर इसका दृष्टान्त देखना हो तो अयोध्यापति राजा रामचंद्र के दिन याद कीजिए। आपको मालूम होगा कि इन प्रसिद्ध क्षत्रिय नरेश ने अपनी ही प्रजा, एक चसके हुए ब्राह्मण के कहने पर एक शूद्र का सिर सिर्फ इस लिए काट डाला था कि उसने शूद्रों के लिए निषिद्ध चौथे यानी सन्यास आश्रम के योग्य तप और आचरण करके ब्राह्मणों के 'आध्यात्मिक' इजारे पर हमला किया था! रामायण की सुंदर कथा में इस कलंक को आप केवल रूपक कह कर ही नहीं दूर कर सकते। यह भी आप नहीं कह सकते कि रामायण में यह क्षेपक है क्योंकि यह कथा कई सदियों से रामायण में जैसी की तैसी चली ही आती है और किसीने इस पर कभी कोई उज्र नहीं किया। इसके कडवेपन को कम करने की कोशिश किये बिना, हमें साफ़ साफ मान लेना चाहिए कि वर्णाश्रम पर आपके मौलिक और 'आदर्श' वर्णाश्रम पर यह एक कलंक है। अब महात्माजी, अगर आप और मैं, वैश्य और ब्राह्मण ही न बने रह कर (क्योंकि मैं ब्राह्मण-संतान हूँ) हिन्दू होना चाहते हैं तो हमें इस 'शूद्र' मुनि शंबूक को धार्मिक स्वातंत्र्य का प्राचीन से प्राचीन रक्षक और हिन्दुस्तान का, बल्कि शायद सारी दुनिया सब से पहला ऐतिहासिक धर्मवीर मान कर उसकी पूजा करनी चाहिए। महात्मा जी, क्या आप इसमें हमारा साथ देंगे? यही करने से आज के ब्राह्मण-विरोधी हलचल में से जहरीला डंक निकल जायगा और इस युग युग के पुराने झगडे की राख में से एक दिन बने हुए हिन्दू धर्म का जन्म होगा। मैं कहता हूँ कि अगर हिन्दू धर्म को अभी जीना और फूलना फलना है तो शंबूक को इन्साफ मिलना ही चाहिए।

"आप वर्ण को मनुष्य-समाज में चलता हुआ एक नियम भर मानते हुए, उसी सांस में तंजोर के भाषण में यह भी कहते हैं कि, 'मेरा विश्वास है कि जैसे मनुष्य को मातापिता से सूरत और शक्ल की विरासत मिलती है उसी प्रकार वह उनके खास गुण दोषों को भी पाता है और यह बात मानने में ही, हम अपनी शक्ति का संचय करने लगते हैं। इस बात को खुलासा मान कर उस पर चलने से ही हमारी भौतिक उच्चाभिलाषाओं पर लगाम लग जाती है और इस तरह आध्यात्मिक शोध और विकास के लिए हमारी शक्ति को फुर्सत मिल जाती है।' अगर बात यही हो तो फिर सभी गांधियों को पंसारी की दूकान और रामनाम को छोड कर और कुछ सोचना ही नहीं चाहिए। और भूल कर भी अपने देश के सामाजिक और राजनीतिक सुधार की ओर नजर नहीं डालनी चाहिए, जबतक कि शायद उन्होंने ७५ साल की उम्र में संन्यासाश्रम विहित रूप से धारण न कर लिया हो। नहीं तो, राजनीति की बात सोचनी तो, ब्राह्मणों और क्षत्रियों के हक पर हमला करना होगा! मगर यह नियम क्या कल्याणकारी होगा? तब वंशविरासत के इस नियम का ठिकाना कहां लगेगा?

"अगर हम इस पर फिर फिर विचार करेंगे तो हमें साफ दिखलायी देगा कि हमने इस नियम के साथ धर्म के जोड कर इस पर जरूरत से अधिक जोर डाला है। इसका इतिहास है। हिन्दुओं को इसने कितनी बार दगा दिया है। अकबर के राज्य के शुरू में ही हेमू के बहादुरी के प्रयत्न से हिन्दू राज्य करीब करीब फिर से कायम ही हो चुका था मगर यदि मुझे ठीक कारण याद है तो उसके शत्रुओं ने उसका साथ उसके साथियों से यह समझा कर छुडवाया था कि वह क्षत्रिय नहीं था और इस प्रकार वह असफल रहा। यह सोचते शर्म आती है कि छत्रपति शिवाजी और महान् बाजीराव (पहले) के देश महाराष्ट्र में यह ब्राह्मण-अब्राह्मण प्रश्न इस लिए शुरू हुआ कि ब्राह्मणों ने उस समय के राजाओं को क्षत्रिय मानने से भी इनकार कर दिया था, यानी वैदिक मंत्रों से धार्मिक क्रियाएँ करने का हक उन्हें नहीं दिया। जैसा कि आपने तंजोर में कहा था, आप भले ही कहें कि 'आज का वर्णाश्रम तो असल वर्णाश्रम का हज्जो भर है' मगर अगर हम मनु के जमाने तक देखते जायँ तो मालूम होगा कि तब भी अनुलोम प्रतिलोम विवाहों से चार वर्णों की चालीस जातियां बन चुकी थीं। अगर्चे कि उस समय तक भिन्न २ वर्णों में सह भोज और [illegible] विवाह की मनाहट नहीं हुई थी मगर असवर्ण विवाह उस समय में इतने कम होते थे और ऐसे बुरे गिने थे जाते कि असवर्ण-विवाह की संतति को लाचार अपनी दूसरी जाति बनानीपडती थी। (इस से यह सवाल उठता है कि उदाहरण के तौर पर आप कायस्थों को किस वर्ण में गिनेंगे?) और उस समय भी शूद्रों के लिए तो कडे ही नियम थे। शूद्रों के लिए जवाहिरात या सोने चांदी रखने की मनाहट थी, और अगर भूल से भी उनके कानों में कोई वेदमंत्र पड जाय तो उनके कानों में शीशा गला कर डाला जा सकता था। बेशक, आप 'मौलिक' वर्णाश्रम की भी इन बातों को सत्य और अहिंसा की विरोधी समझ कर इनकार करेंगे। पर चाहे जो हो, मगर यहां आपको आपके वर्णाश्रम का पूर्वरूप मिलता है, जिसका 'हज्जो' आप आज के वर्णाश्रम को कहते हैं।

"सो, चाहे वर्ण चार हो या आज जैसे चालीस हजार, मगर सब में ये बातें समान हैं: पेशे वंशपरंपरा पर ही जरूर निर्भर होंगे। अगर ब्राह्मण का लडका योग्य पुरोहित न निकला मगर होशियार कारीगर बन सकता है तौभी उसे पुरोहित ही बने रहना होगा। कारीगर बनने में उसकी जाति मारी जायगी। इसके उलटे अगर लोहार का लडका अच्छा मिस्त्री न हो, मगर योग्य पंडित हो तौभी उसे लोहार ही बने रहना पडेगा, वह पुजारी बन कर समाज सेवा करने की उच्चाभिलाषा कभी नहीं रख सकता। दूसरे समाजों में पुरोहित का लडका अपनी प्रकृति के अनुसार जिस तरह हो समाज की सेवा कर सकता है। भला बुरा पुरोहित ही बने रहने को लाचार नहीं है, और दूसरी तरफ किसी सिपाही या मिस्त्री का लडका बडा भारी धर्मशास्त्री बन जा सकता है। दर हकीकत इतिहास के अधिकांश प्रतिभाशाली पुरुष बहुत ही साधारण स्थिति में पैदा हुए हैं और प्रतिभाशाली पुरुषों के लडके अकसर या तो सबके ही जैसे औसत दर्जे के या किसी काम लायक नहीं हुए हैं। सिपाहियों के लडके बडे भारी गणितज्ञ और गणितज्ञों के लडके उपन्यास लेखक या कुछ भी नहीं हुए हैं। इस वंशपरंपरापर ही सब कुछ निर्भर नहीं है। परिस्थिति और दूसरी कितनी चीजें मिल कर समाज में मनुष्य की स्थिति का निश्चय करती हैं।

"सो, मैं उस ब्राह्मण-अब्राह्मण प्रश्न के बारे में इस नतीजे पर आया हूँ। जैसे कि आप वैश्य-सन्तान होकर, हिन्दुस्तान की आर्थिक अवनति के लिए वैश्यों को दोषी मानते हैं, उसी प्रकार जन्म से ब्राह्मण होकर मुझे यह कहने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं है कि मैं हिन्दुस्तान की आध्यात्मिक और आर्थिक, दोनों ही प्रकार की

गुलामियों के लिए जाति के रूप में ब्राह्मणों को ही जिम्मेवर मानता हूँ। जिन्हें अधिक मिला था, उनसे अधिक की आशा थी। मगर अफसोस, अदूरदृष्टि स्वार्थ से पैदा हुई धर्मान्धता के कारण वे अपना उत्तमांश देश को नहीं दे सके। फल यह हुआ कि सभी ब्राह्मण-धर्मियों और ब्राह्मणों का भयंकर पतन हुआ।" (यं० इं०)

चर्खासंघ के बारे में

एक बिहारी सज्जन जो कलकत्ते में रहते हैं, हिन्दी में तीन प्रश्न पूछ कर उनके उत्तर 'नवजीवन' में मांगते हैं। वे प्रश्न ये हैं:

"१. अखिल भारतीय चर्खासंघ के टूट जाने के बाद उसके संचित कोष का क्या होगा? जिन लोगों ने इस कोष में चन्दा दिया है, देते हैं, अथवा देंगे, उनका तो इस पर कोई स्वत्व नहीं रह जायगा। तो इस कोष के अन्तिम उपयोग का निर्णय करते समय चन्दा दाताओं की सम्मति ली जायेगी अथवा नहीं?

२. मेरे प्रान्त (बिहार) में साढे तीन रुपये में आठ हाथ की एक जोडी मजबूत धोती मिल जाती है। पर यहां अभय आश्रम अथवा खादी प्रतिष्ठान में सवा चार रुपये से कम में वैसी ही धोती नहीं मिलती। तो क्या इससे मेरे इस सन्देह की पुष्टि नहीं होती कि इन संस्थाओं के संचालक दलाली का नफा उठाते हैं क्योंकि इन पर अखिल भारतीय च० संघ का नियंत्रण नहीं है और बिहार का भी काम सीधे च० संघ के नियंत्रण में है।

३. निरंतर चेष्टा करते रहने पर भी खादी के दाम में कमी क्यों नहीं हो रही है? कम से कम बंगाल में तो गत दो वर्षों में कुछ भी नहीं हुई है। हां, कपडे की जाति में कुछ उन्नति अवश्य हुई है। मैंने खादी-आन्दोलन के कट्टर पक्षपाती होने की हैसियत से ही ये उपर्युक्त प्रश्न पूछे हैं।"

पहले प्रश्न में चर्खासंघ के बारे में कुछ अश्रद्धा है और दानियों के सामान्य अधिकार के बारे में अज्ञान है।

कितने एक मित्र भी जो मुझे भले प्रकार पहचानते हैं और चर्खासंघ के सभ्यों को भी खूब जानते हैं, मानते हैं कि मेरे मरने के बाद चर्खासंघ टूट जायगा और खादी प्रवृत्ति सो जायगी। एक आलोचक ने तो यहां तक भविष्य भाखा है कि मेरा शव भी चर्खे की ही लकडी से जलाया जायगा। ऐसी स्थिति में इस खादी के पक्षपाती को अगर शंका उठी है तो उनका क्या दोष निकाला जाय? पर उन्हें और उन जैसों को मैं इत्मीनान कराना चाहता हूँ कि मेरी लाश को कोई चर्खे की लकडी से नहीं जलायेगा। चर्खासंघ के सदस्य आज जो काम करते हैं, मेरे मरने बाद उसका ठेका करनेवाले हैं। खादी के ऊपर अनन्य श्रद्धा का मैंने ही इजारा लिया है! मैं ऐसा एक भी चिह्न नहीं देखता कि देश में यह प्रवृत्ति नेस्तनाबूद होवे मगर ऐसे चिह्न जरूर देखता हूँ कि खादी में विश्वास बढता जाता है। इसके अलावा चर्खासंघ की समिति के सदस्य खादी के भक्त हैं। वे स्वतंत्र विचार करनेवाले हैं। उनमें कइयों ने तो खादी के लिए अपना सर्वस्व अर्पण किया है, उसीके लिए जीते हैं। मैं ऐसी कल्पना कर ही नहीं सकता कि ऐसे लोग संघ को टूटने देंगे। विशेष में जो किसी संस्था में रहें उन्हें वृत्ति पैदा करनी चाहिए कि अगर दूसरे लोग बेवफा निकलें तो अपने आप तो अपनी संस्था में अश्रद्धा न रखते हुए अंत तक वफादार ही रहें और उसे चलाते जावें। इसमें तो मुझे लेश भी शंका नहीं है कि चर्खासंघ में ऐसे सेवक हैं।

पर जो उत्पन्न होता है, उसका नाश है ही। इस न्याय से किसी दिन चर्खासंघ का नाश भी संभव है। नाशमात्र हानिरूप नहीं है। जो शुद्ध प्रवृत्ति हो, उसका नाश महान परिवर्त्तन रूप है। जब हम छोटा मन्दिर तोड कर बडा बनाते हैं तो मानते हैं कि मन्दिर का उद्धार हुआ है और बात है भी यही। इसी प्रकार मेरी अनन्य श्रद्धा है कि जब चर्खासंघ लय होगा तो किसी महान संस्था में लय होगा।

चर्खासंघ में एक कौडी भी देनेवाले का हक शाश्वत है। चर्खासंघ को दानियों की सम्मति के बिना बन्द नहीं किया जा सकता, यानी अगर चर्खासंघ के द्रव्य का उपयोग खादी छोड कर किसी दूसरे काम में किया जाय तो इसके लिए दानियों की सम्मति होनी चाहिए। अगर कोई कार्यकर्त्ता स्वेच्छापूर्वक चर्खासंघ के द्रव्य या नाम का दुरुपयोग करे तो चाहे जो दानी उसका हाथ पकड सकता है। जो संस्था दान से चलती है वह सार्वजनिक है और उसकी सुव्यवस्था के लिए सिर्फ दानियों का ही नहीं बल्कि हर आम व खास का हक है। यह सहज बात सभी नहीं जानते और जाननेवाले आलसी या बेपरख होते हैं। इसलिए बहुत सी संस्थाओं में बेईमानी चलती है और पैसे का दुरुपयोग होता है। पर इसकी जवाबदेही केवल सर्वसाधारण पर है। जहां समाज सोया हुआ, आलसी, बेफिक्र या स्वार्थी है वहां पर दंभी, लुच्चे वगैरहों की बन आती है और वे अपने मन से चलते हैं।

अब दूसरा सवाल लेवें।

यह बात बिलकुल ठीक है कि बिहार की खादी और बंगाल की खादी के दाम में फर्क है। पर उसका कारण यह नहीं है कि दलाल नफा खा जाते हैं। बिहार और बंगाल की कार्यपद्धति में कुछ फर्क है और इससे बंगाल में खादी पैदा करने का खर्च अधिक है। पर मुख्य कारण तो यह है कि बंगाल में बुननेवालों और कातनेवालों को कुछ अधिक देना पडता है। बंगाल की संस्थाओं के ऊपर भी चर्खा संघ की देखरेख और अंकुश है ही। खादीकार्य ही ऐसा है कि जिसमें प्रान्त प्रान्त में अभी हाल में तो अलग अलग भाव रहेंगे ही। गुजरात की खादी शायद बंगाल से भी महँगी होगी। बिहार से तो महँगी है ही। इसका यह कारण नहीं है कि बीच में कोई दलाली खा जाता है। राजपूताने की खादी शायद बिहार से भी सस्ती है। तामिलनाड की कितनी खादी तो सस्ती है ही। मैं इसमें कोई अडचन नहीं देखता। खादी की मारफत हम गरीबों को उनकी अपनी ही जगह पर निभाना चाहते हैं। इसमें किसी जगह कम खर्च आवेगा और किसी जगह अधिक। हमें ख्याल इसीका रखना चाहिए कि सारा धन बहुत कुछ गरीबों की ही टेंट में जाय। जितनी सावधानी से यह ख्याल रक्खा जा सके, रखना चर्खा संघ का काम है और रक्खा जाता है। यह भी याद रखना चाहिए कि बंगाल ही एक प्रान्त है जो अपने यहां पैदा होनेवाली लगभग सारी खादी अपने ही प्रान्त में यानी बंगाल में ही खपा लेता है।

अब अखीरी सवाल देखें।

मैं जानता हूँ कि खादी की कीमत सारे हिन्दुस्तान में घटी है। यही नियम बंगाल की खादी को भी लागू पडता है। जहां खादी की जाति सुधरी है और कीमत वही की वही रही है, वहां भी घटी ही हुई कही जायगी। सामान्य रीति से सारे भारतवर्ष के लिए यों कहा जा सकता है कि कम से कम औसतन सैकडे पचीस की कमती हुई है। कई जगहों पर कई जाति के कपडों में तो सैकडे पचास की घटी हुई है। अभी हाल में मुख्य ध्यान तो खादी की जाति सुधारने की ओर दिया जाता है।

यह बात चाहनेलायक है कि ये बिहारी खादीभक्त खादी में जो दिलचस्पी लेते हैं वही दिलचस्पी सभी खादीभक्त लेवें और उस दिलचस्पी को बढाने में शंका-निवारण मददगार बन जाता है। इस लिए मैं चाहता हूँ कि जिन्हें सच्ची और ठीक शंकाएँ हों वे 'नवजीवन' के द्वारा अपनी शंकाओं का निवारण करावें।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय २७

खूराक के और प्रयोग

मनवचन काया से ब्रह्मचर्य का पालन कैसे हो—यह एक फिक्र, और सत्याग्रह के युद्ध के लिए अधिक से अधिक समय कैसे बच सके और अधिक शुद्धि कैसे हो—यह दूसरी फिक्र थी। इन दो फिक्रों ने मुझे अधिक संयम और अधिक फेरफार करने को उकसाये। पहले जो प्रयोग मैं मुख्यतः आरोग्य की दृष्टि से करता था वे अब धार्मिक दृष्टि से होने लगे।

इनमें उपवास और अल्पाहार ने अधिक स्थान लिया। जिनमें विषयवासना घर किये रहती है उनमें जीभ का स्वाद भी खूब होता है। यह स्थिति मेरी भी थी। जननेन्द्रिय और स्वादेन्द्रिय पर काबू करने में मुझे कितनी मुश्कलें दरपेश आयी हैं और मैं यह दावा नहीं कर सकता कि अब दोनों पर पूर्ण विजय मिल गयी है। मैंने अपने आपको अल्पाहारी माना है। मित्रों ने जिसे मेरा संयम माना है, मैंने उनसे आप कभी संयम माना ही नहीं है। जो अंकुश रखना मैंने सीखा, अगर उतना भी न रख सकता तो मैं पशु से भी गया बीता बनता और कब का न नष्ट हो गया होता। यों कहा जा सकता है कि अपनी खामियों का मुझे ठीक पता होने से मैंने उन्हें दूर करने का भारी प्रयत्न किया है और इससे आज तक इस शरीर को टिका सका हूँ।

यह भान होने से और अनायास ही एसा प्रसंग मिल आने से मैंने एकादशी का फलाहार या उपवास शुरू किया। जन्माष्टमी इत्यादि दूसरी तिथियां रखनी भी शुरू की। फलाहार से आरंभ किया मगर संयम की दृष्टि से फलाहार या अन्नाहार में मैं कोई अन्तर देख नहीं सका। मैंने देखा कि जिसे हम अनाज जानते हैं और उसमें से जो रस लेते हैं वे रस फलाहार में से भी मिलते हैं और टेव पड़ जाने पर तो फलाहार में से ही अधिक मिलते हैं। इसलिए पर्व तिथियों के दिन अखंड उपवास या एक भोजन को अधिक महत्व देने लगा। इसके अलावा प्रायश्चित्तादि का भी कोई अवसर मिलता तो भी एक भोजन का उपवास कर डालता।

इसमें मेरा अनुभव हुआ कि शरीर अधिक स्वच्छ होने से रस बढे, भूख ज्यादे अच्छी हुई और मैंने देखा कि उपवासादि जिस हद तक संयम के साधन हैं उसी हद तक भोग के साधन भी बन सकते हैं। यह ज्ञान होने के बाद तो उसके समर्थन में इसी प्रकार के मेरे और दूसरों के कितने ही अनुभव हुए हैं। मुझे तो, जो कि शरीर ज्यादे अच्छा और कसा हुआ बनाना था तौभी अब मुख्य उद्देश्य तो संयम साधने का—रस जीतने का—ही था। इसलिए खूराक की वस्तु में और उसके माप में फेरफार करने लगा। पर रस तो पीछे पीछे लगे ही हुए थे। जिस वस्तु का त्याग करता और उसके बदले दूसरा लेता, उसमें से दूसरा ही और अधिक रस छूटता!

मेरे इस प्रयोग में कितने एक साथी थे। इनमें हरमन कॅलनबैक मुख्य थे। इनका परिचय 'द० अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास' में दे चुकने के कारण, इन प्रकरणों में फिर नहीं देता हूँ। उन्होंने मेरे हर एक उपवास में, एक भोजन में और दूसरे फेरफारों में मेरा साथ दिया था। जब कि लडाई खूब जमी हुई थी मैं उन्हींके मकान में रहता था। हम दोनों अपने फेरफारों की चर्चा करते, और नये फेरफारों में पुराने फेरफारों से अधिक रस खींचते। उस समय तो ये संवाद मीठे भी लगते। यह नहीं लगता था कि इनमें कुछ बुराई है। अनुभव ने सिखाया कि ऐसे रसों में डूबना भी अयोग्य है। यानी आदमी स्वाद के लिए नहीं बल्कि शरीर को निभाने के लिए ही खावे। जब प्रत्येक इन्द्रिय केवल शरीर के लिए और शरीर के द्वारा आत्मा के दर्शन के लिए ही काम करता है तब रस शून्यवत् हो जाते और तभी कहा जा सकता है कि वे स्वाभाविक रीति से चलते हैं।

ऐसी स्वाभाविकता पाने के लिए जितने प्रयोग किये उतने ही कम हैं। और यह करते हुए अनेक शरीरों की आहुति दी जाय तो उसे भी हम तुच्छ गिनें। अभी तो प्रवाह उलटा चल रहा है। नाशवंत शरीर को चमकाने, उसकी आयु बढाने के लिए हम अनेक प्राणियों का बलिदान देते हैं, और तौभी शरीर और आत्मा दोनों का नाश होता है। एक रोग को मिटाते हुए, अनेक नये रोग उत्पन्न करते हैं, इन्द्रियों के भोग भोगते हुए अन्त में भोग भोगने की शक्ति को भी खो बैठते हैं और इस क्रिया को आंखों के आगे चल रही है, देखने से इनकार करते हैं।

खूराक के कुछ प्रयोगों का वर्णन करने में कुछ समय लेने की मेरी धारणा है। जिसमें वे समझ पड़ें, इस लिए उनका उद्देश्य और उनके पीछे रही हुई विचार सरणी को दे देने की जरूरत थी।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

पवित्र बनाम अश्लील

श्रीयुत एस. डी. नाडकर्णी लिखते हैं:

"मिस मेयो की किताब 'भारत माता' में वैष्णव तिलक के अश्लील अर्थ के उल्लेख के संबंध में मैं स्वामी विवेकानंद के लेख में से यह उतारा देता हूँ:

'एक सम्प्रदाय के लोगों की एक खास क्रिया होती है उसे वे पवित्र समझते हैं मगर दूसरों की क्रियाओं को महज्ज मानते हैं। अगर एक समाज किसी खास चिह्न की पूजा करे तो दूसरा उसे अत्यंत घृणाजनक बतलाता है। उदाहरण के लिए एक साधारण चिह्न ले लीजिए। लिंग मूर्ति बेशक है तो लिंग मगर क्रमशः उसका वह अर्थ भूल गया है और अब वह स्रष्टा का चिह्न है। जिन जातियों में वह चिह्न प्रचलित है, वे उसे लिंग नहीं समझते; उनके लिए तो वह बस एक चिह्न भर है, और मामला खत्म हुआ। दूसरे धर्म या जाति का आदमी उसमें लिंग चिह्न के सिवाय और कुछ नहीं पाता है और उसकी निन्दा करने लगता है जब कि उन लोगों की दृष्टि में संभवतः उसीका कोई काम अत्यन्त बीभत्स मालूम होता हो। उदाहरण के लिए हम दो चिह्न, लिंग मूर्ति और ईसाइयों के 'सैक्रामेन्ट' की क्रिया को ले लेवें। ईसाइयों की दृष्टि में लिंग अत्यन्त बीभत्स है तो हिन्दुओं की दृष्टि में उनकी 'सैक्रामेन्ट' घृणाजनक है। हिंदू कहते हैं कि ईसाई 'सैक्रामेन्ट' यानी एक आदमी को मार कर इस लिए उसका मांस खाना और खून पीना जिसमें उसके गुण अपने में भी आवें, सरासर नर मांस भक्षण है। यही तो कुछ जंगली जातियां करती हैं। अगर कोई बहादुर आदमी हो तो वे उसकी बहादुरी अपने में पैदा करने के लिए उसे मार कर उसका मांस खा जाती हैं। सर जौन लबक जैसे भक्त ईसाई भी मानते हैं कि 'सैक्रामेन्ट' चिह्न के मूल में यही रिवाज है। मगर ईसाई तो यह बात नहीं मानते और उनकी इस की क्रिया में शराब में रोटी का टुकडा डुबा कर उसे ईसा का रक्त और मांस मान कर खाने में यह खयाल उनके मन में नहीं आता। यह तो एक पवित्र वस्तु का चिह्न है, और उनके लिए इतने ही से मतलब है। इस प्रकार धार्मिक क्रियाओं में कोई सार्वदेशिक चिह्न नहीं है जिसे सभी माने और स्वीकार करें।'"

(यं० इं०) **मो० क०**

खादी का अर्थशास्त्र

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक १५

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, मार्गशीर्ष सुदी ७ संवत् १९८४ गुरुवार, १ डीसम्बर १९२७ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

वर्णाश्रम धर्म

(प्रश्नोत्तर)

[गांधीजी के द० भारत के भ्रमण में स्थान स्थान पर अब्राह्मण मित्रों ने उनसे मिल कर ब्राह्मण-अब्राह्मण प्रश्न पर बातें कीं। भिन्न २ जगहों पर कभी कभी एक ही प्रकार के सवाल बार बार पूछे जाते थे, मगर हर जगह प्रश्नकर्त्ता की योग्यता के ख्याल से ही जवाब मिलता था। मैंने उन सभी चर्चाओं को यहां इकट्ठा करके प्रश्नोत्तर का रूप दे दिया है। तंजोर, चेट्टीनाड, विरुधनगर और टिन्नेवेल्ली की सभी बातचीत इसमें आ गयी है। मदुरा की बातचीत के समय मैं वहां हाजिर नहीं था मगर मेरा ख्याल है कि सभी बातचीत के इस संग्रह में वहां के प्रश्नों का मतलब भी आही गया होगा। इस पत्र में प्रकाशित सार्वजनिक भाषणों में जिन प्रश्नों का जिक्र आ गया है, और जिन बातचीतों का सारांश भी मैं दे चुका हूँ, और जो बातें उत्तर भारत के लिए खास तौर पर लागू नहीं हैं उन्हें छोड देता हूँ।

महादेव देशाई]

वर्णधर्म

प्र० आखिर आप वर्णधर्म पर इतना जोर क्यों देते हैं? क्या आप वर्त्तमान जाति प्रथा का समर्थन कर सकते हैं? वर्ण की आप क्या परिभाषा करेंगे?

उ० वर्ण के मानी हैं किसी आदमी के पेशे का पहले से ही निश्चय हो जाना। वर्णधर्म यह है कि हर एक आदमी अपनी आजीविका के लिए अपने बापका ही पेशा अख्तियार करे। हर एक लडका स्वभाव से ही अपने बाप के ही वर्ण या रंग का होता है और अपने बाप का ही पेशा चुनता है। इस तरह से वर्ण एक प्रकार से वंशानुक्रम का नियम है। वर्णधर्म कुछ हिन्दूधर्म पर ऊपर से लादा नहीं गया है बल्कि हिन्दूधर्म के रक्षक मुनियों ने इसे ढूँढ निकाला है। यह कुछ आदमी की ईजाद की हुई चीज नहीं है बल्कि जैसे कि न्यूटन साहेब के पता लगाने के पहले भी संसार के जरें जरें में परस्पर आकर्षण जारी था और न्यूटन साहेब ने केवल प्रकृति की इस प्रवृत्ति का पता भर लगाया था उसी तरह यह भी प्रकृति का एक नियम है जिसका हमें पता भर लगा है और जो गुरुत्वाकर्षण के नियम के जैसे निरन्तर चालू है और पता लगने के पहले भी चालू था। इसका पता लगाना हिन्दुओं के भाग्य में बदा था। प्रकृति के कुछ नियमों का पता लगा कर और उनका प्रयोग कर के पश्चिमवालों ने सहज ही अपनी माली मिल्कियत बढा ली है। उसी तरह हिन्दुओं ने इस अबाध सामाजिक झुकाव का पता लगा कर आध्यात्मिक क्षेत्र में वह सफलता पायी है, जो दुनिया के किसी राष्ट्र के भाग्य में बदी नहीं थी।

वर्ण का जातिप्रथा से कोई संबन्ध नहीं है। ठीक अस्पृश्यता के ही समान, जातिप्रथा भी हिन्दूधर्म में एक विकार ही है। वे सभी विकार जिन पर आज इतना जोर दिया जा रहा है, हिन्दूधर्म के अंग कभी नहीं थे। मगर क्या वैसे ही विकार इस्लाम और ईसाई-धर्म में भी नहीं मिलते?

आप से जितना हो, उनका विरोध कीजिए। वर्ण के नाम पर प्रचलित इस जाति प्रथा के असुर का नाश कीजिए। वर्ण के इस भ्रष्ट स्वरूप ने ही हिन्दू धर्म और भारतवर्ष को नीचे गिराया है। हमारी आर्थिक और आध्यात्मिक अवनति का मुख्य कारण वर्ण धर्म का पालन नहीं करना हो है। बेकारी और गुर्बत की यही एक वजह है और अछूतपने और हमारे धर्म में भी हानि की जिम्मेवर यही जातिप्रथा है।

मगर मूल नियम के इस भ्रष्ट स्वरूप और भ्रष्टाचार से जूझने में कही उस नियम से ही न जूझ पडना।

प्र० वर्ण कै होते हैं?

उ० चार वर्ण होते हैं जो कि चार विभाग होना कुछ वर्ण धर्म का ही अंग नहीं है। निरंतर प्रयोग और शोध करने के बाद ऋषिगण इन चार विभागों पर यानी रोजी पैदा करने के चार तरीकों पर आये।

प्र० तब तो तर्क के अनुसार जितने पेशे हैं, उतने ही वर्ण भी होने चाहिए।

उ० कुछ जरूरी नहीं है। अलग अलग पेशों को सहज ही इन चार विभागों में बाँटा जा सकता है — विद्यादान का, देश-रक्षा का, धनोत्पादन का और सेवा का। जहां तक दुनिया से मतलब है, सबसे बढा चढा मुख्य विभाग है धन पैदा करनेवालों का, जैसे कि सभी आश्रमों में मुख्य है गृहस्थाश्रम। सभी वर्णों का मध्यस्थ वैश्य है। अगर धन और मिल्कियत न होवे तो रक्षक चाहिए ही नहीं। पहले और चौथे वर्ण भी इस तीसरे के लिए ही जरूरी हैं। पहले वर्ण में जरूर ही बहुत कम आदमी होंगे क्योंकि उसमें बहुत कठिन संयम की जरूरत है और सुसंगठित समाज में दूसरे और चौथे वर्ण स्वाभाविक ही कम होंगे।

प्र० अगर कोई आदमी ऐसा पेशा अख्तियार करता है जो उसका जन्मगत नहीं है तो वह किस वर्ण में गिना जायगा?

उ० हिन्दू धर्म के अनुसार उसका वर्ण तो वही है जिसमें उसका जन्म हुआ है मगर अपने वर्ण का धर्म-पालन नहीं करने से वह अपने प्रति अन्याय करता है और पतित हो जाता है।

प्र० अगर शूद्र ब्राह्मण का कर्म करे तो क्या वह पतित हो जायगा?

उ० शूद्र को भी विद्या पढने का वही हक है जो ब्राह्मण को है, मगर शूद्र अगर विद्या-दान से रोजी पैदा करेगा तो वह पतित हो जायगा। प्राचीन काल में व्यापारिक संघ अपने आप ही चलते थे और किसी पेशे के सब आदमियों का पालन करने का अलिखित नियम था। सौ वर्ष पहले बढई का लडका वकील होना कभी नहीं चाहता था। आज वह चाहता है क्योंकि वकालत के जरिए धन चुराना उसे सबसे सहल मालूम पडता है। वकील समझता है कि अपने दिमाग से काम करने के लिए उसे १५ हजार रुपये लेने ही चाहिए और हकीम साहेब जैसे चिकित्सक अपनी सलाह के लिए एक हजार रुपये रोजाना लेना जरूरी समझते हैं!

प्र० मगर क्या कोई अपने मन का पेशा अख्तियार ही न करे?

उ० मगर उसका मन तो अपने बापदादों के ही पेशे की ओर चलना चाहिए। उसे अख्तियार करने में कोई बुराई नहीं है, उलटे यह बडा ही अच्छा होगा। आज तो हम केवल अस्वाभाविकता ही देखते हैं और इसीलिए समाज में इतना जोरो जुल्म, और बैर फूट है। हमें ऊपरी उदाहरणों में नहीं भूलना चाहिए। आज बढइयों के हजारों लडके हैं जो अपने बापदादों का काम कर रहे हैं मगर बढइयों के सौ लडके भी आज वकालत नहीं कर रहे होंगे। पुराने जमाने में दूसरों के धन माल पर कब्जा जमाने का लोभ नहीं था। उदाहरण के लिए सिसरो के जमाने में वकालत का काम अवैतनिक था। और किसी बुद्धिमान् बढई के लिए, रुपया कमाने के लिए नहीं बल्कि सेवार्थ वकालत करनी हमेशे योग्य होगी। पीछे जाकर नाम और धन की उच्चाभिलाषा आयी। पहले के चिकित्सक समाज की सेवा करते थे और उन्हें समाज जो कुछ दे देता उसी पर संतुष्ट रहते थे, मगर अब वे तिजारती बन गये हैं, बल्कि समाज के लिए खतरेनाक भी हो रहे हैं। जब कि असल मकसद खिदमत की ही होती थी, वकालत और डाक्टरी को उचित ही उदार पेशा कहा जाता था।

प्र० मगर यह सब कुछ तो आदर्श परिस्थिति की बातें हैं। मगर आज जब कि सब कोई धन कमाने पर कमर कसे हुए हैं, आप कौनसा रास्ता सुझाते हैं?

उ० यह तो आपने बहुत बढा कर बात कही है। जरा स्कूलों और कौलेजों में पढनेवाले लडकों की तायदाद देखिए और फिर पढे लिखों के पेशे अख्तियार करनेवालों का अनुपात तो निकालिए। सभी कोई डाकेजनी नहीं कर सकते। और आज की हलचल तो डाकेजनी के लिए ही है। आखिर कितने आदमी वकील या सरकारी नौकर बन सकते हैं? जो लोग उचित तरीकों से धन पैदा करने में लगे हुए हैं, वे वैश्य हैं और उनका भी पेशा जब डाकेजनी का हो जाता है तो घृणित बन जाता है। लाखों करोडपति तो हो नहीं सकते।

प्र० जहां तक तामिलनाड से सरोकार है, सभी अब्राह्मण अपने बापदादों के पेशे छोड कर दूसरों में लगना चाहते हैं।

उ० मैं सवा दो करोड तामिलों को ओर से बोलने के आप के हक को इनकार करता हूँ। मैं आपको एक मन्त्र बतलाता हूँ— "हम वह बनने की कोशिश न करें जो सब कोई नहीं बन सकते।" और आप इस मन्त्र का पालन केवल मेरी परिभाषा के अनुसार वर्ण के आधार पर ही कर सकते हैं।

प्र० आप कहते रहे हैं कि वर्णधर्म हमारी भौतिक इच्छाओं पर अंकुश रखता है। यह किस प्रकार होता है?

उ० जब मैं अपने बाप का ही धन्धा करता हूँ तो मुझे उसको सीखने के लिए स्कूल में जाने की भी जरूरत नहीं है और यों मेरी मानसिक शक्ति आध्यात्मिक खोजों के लिए मुक्त हो जाती है क्योंकि मेरी रोजी निश्चित हो जाती है। जब मैं दूसरे धंधों में मन लगाता हूँ तो आत्म-प्राप्ति की अपनी शक्ति को बेंच देता हूँ, यानी एक कानी कौडी में अपनी आत्मा को बेंच देता हूँ।

प्र० आप आध्यात्मिक अभ्यासों के लिए शक्ति मुक्त कर देने की बात करते हैं। उधर जो लोग अपने बापदादों का धन्धा कर रहे हैं, उनमें कोई आध्यात्मिक संस्कृति है ही नहीं। उनका धन्धा ही उन्हें इसके अयोग्य बना डालता है।

उ० हम वर्ण की विकृत भावनाओं को लेकर बातें कर रहे हैं। जब वर्णधर्म का पालन सचमुच में होता था, हमें आध्यात्मिक अभ्यासों के लिए काफी समय था। अब भी आप दूर दूर के गांवों में जाइए और देखिए कि शहरवालों की बनिस्बत उनमें कितनी अधिक आध्यात्मिक संस्कृति है। ये शहरवाले तो आत्मा का नाम ही नहीं जानते।

मगर आपने तो इस युग का प्रधान दोष ही ढूँढ निकाला है। हम वह बनने की कोशिश न करें जो सब कोई नहीं हो सकते। अगर जो कोई वह चाहे गीता नहीं पढ सकता तो मैं गीता पढना भी नहीं चाहूँ। इसीलिए मेरा सारा हृदय धन पैदा करने के लिए अंगरेजी पढने के विरुद्ध उबल उठता है। इसलिए हमें अपना सामाजिक जीवन इस ढब का बनाना होगा जिसमें देश के करोडों आदमियों को वह फुर्सत मिल सका करे जो हम आज मुट्ठी भर आदमी ही भोगते हैं और जब तक हम वर्णधर्म का पालन नहीं करते यह होने को नही हैं।

प्र० अगर हम एक ही सवाल बार बार पूछें तो आप हमें क्षमा करेंगे। हम इसे ठीक ठीक समझना चाहते हैं। अलग अलग समयों पर अलग अलग धन्धा करनेवाले का कौन वर्ण होगा?

उ० जब तक वह अपने बाप के धन्धे से ही अपना पेट पालता हो, इससे कोई फर्क नहीं पड सकता। जब तक वह सेवा के लिए करता हो, वह जो चाहे कर सकता है। मगर जो धन के लिए अपना पेशा बार बार बदलता हो, वह वर्ण से पतित हो जाता है।

प्र० किसी शूद्र में ब्राह्मण के सभी गुण हों, मगर: वह क्या ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता?

उ० इस जन्म में वह ब्राह्मण नहीं कहला सकता। और जिस वर्ण में उसका जन्म नहीं हुआ हो, उसका दावा नहीं करना उसके लिए अच्छा ही होगा। यह सच्ची नम्रता का चिह्न है।

प्र० आप क्या यह मानते हैं कि वर्ण संबन्धी गुण केवल विरासत से मिलते हैं, खुद पैदा नहीं किये जा सकते?

उ० वे पैदा किये जा सकते हैं। विरासत में मिले गुणों की वृद्धि की जा सकती है और नये पैदा किये जा सकते हैं। मगर धनप्राप्ति के नये रास्ते हमें नहीं ढूँढने चाहिए, ढूँढने की जरूरत ही नहीं है। हमें तो अपने बापदादों से जो मिला है उसीमें तब तक संतुष्ट रहना चाहिए जब तक कि वह पवित्र हो।

प्र० क्या अपनी कुल परंपरा की प्रवृत्ति के विरुद्ध स्वभाव और गुणवाले आदमी नहीं दिखायी पडते?

उ० यह मुश्किल सवाल है। हम अपने संबंध की सभी पिछली बातें नहीं जानते। मगर वर्ण को जिस तरह मैंने समझाने की कोशिश की है, उसके लिए उसे समझने के लिए हमें और गहरे उतरने की जरूरत नहीं है। अगर मेरे पिता व्यापारी हैं और मुझमें सैनिक के गुण मौजूद हैं तो मैं बिना किसी पुरस्कार के सैनिक बन कर देशसेवा कर सकता हूँ मगर अपनी रोजी के लिए मुझे व्यापार का ही आसरा रखना होगा।

प्र० आज की जातिप्रथा तो सिर्फ रोटी बेटी के संबंध में बंधन की ही देखने में आती है। तब क्या वर्णरक्षा के मानी हैं, इन बंधनों को बनाये रखना।

उ० नहीं बिलकुल नहीं। इसके शुद्ध स्वरूप में तो ऐसे कोई बंधन हो ही नहीं सकते।

प्र० क्या उन्हें हम छोड सकते हैं?

उ० हां, छोड सकते हैं और दूसरे वर्णों में बेटी व्यवहार करने में भी वर्णरक्षा हो सकती है।

प्र० तब माता का वर्ण तो नष्ट होगा न?

उ० पत्नी पति के वर्ण में मिल जाती है।

प्र० वर्णधर्म का सिद्धान्त जिस प्रकार आप ने प्रतिपादित किया है, शास्त्रों में मिलता है या यह केवल आपका ही है।

उ० मेरा नहीं है। मैंने इसे भगवद् गीता से लिया है।

प्र० मनुस्मृति में दिये गये सिद्धान्त को क्या आप पसंद करते है?

उ० सिद्धान्त तो वहां ठीक है, मगर उसके प्रयोग मुझे पूरे पूरे नहीं जँचते। उस ग्रन्थ के कई अंशों पर कई तरह के उज्र किये जा सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि वे पीछे के क्षेपक होंगे।

प्र० क्या मनुस्मृति में बहुत अन्याय नहीं है?

उ० हां, स्त्रियों और नामधारी नीच जातियों के प्रति अन्याय है। शास्त्र के नाम से प्रचलित सभी कुछ शास्त्र ही नहीं है। इस लिए नामधारी शास्त्रों को खूब संभाल कर पढना चाहिए।

प्र० मगर आप तो भगवद्गीता का आधार रखते हैं न? उसमें तो वर्ण को गुण और कर्म पर माना है। आप यहां जन्म को कहां से ला रखते हैं?

उ० मैं भगवद्गीता का ही प्रमाण देता हूँ क्यों कि मैं एक यही पुस्तक पाता हूँ जिसके विरुद्ध कोई उज्र नहीं उठाया जा सकता। यह सिर्फ सिद्धान्त निश्चित कर देती है और प्रयोग आप खुद ढूँढ लीजिए। गीता में गुण और कर्म के अनुसार वर्ण का होना लिखा जरूर है, मगर गुण और कर्म जन्म से मिलते हैं। भगवान् कृष्ण ने कहा है, 'चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं' यानी 'चारों वर्ण मैं ने बनाये हैं,' और मैं समझता हूँ कि जन्म से। अगर वर्ण धर्म जन्म पर निर्भर न हो तो यह है ही क्या?

प्र० मगर वर्ण में कोई बडप्पन, छुटपन तो नहीं है?

उ० नहीं, जरा भी नहीं, अगर्चे कि मैं कहता हूँ कि ब्राह्मण दूसरे वर्णों का ऊपरी है जिस प्रकार कि शरीर का ऊपरी सिर है। इसके मानी हैं ऊँची सेवा करने की योग्यता न कि ऊँची स्थिति। जिस घडी ऊँची स्थिति का घमंड शुरू हो जाता है, यह पैरों तले कुचलने के काबिल बन जाता है।

प्र० 'कुरल' को तो आप जानते हैं। क्या आपको मालूम है कि इस तामिल नीति ग्रन्थ में लिखा है कि जन्म से कोई जाति नहीं होती। जन्म से तो सभी जीव बराबर होते हैं।

उ० आज के मुबालगों के जवाब में वे यह कहते हैं। जब किसी वर्ण ने बडपन का दावा किया उन्हें उसके खिलाफ अपनी आवाज उठानी पडी थी। मगर इससे जन्म से वर्ण का निश्चय होने के सिद्धान्त की जड नहीं ही कटती। असमानता की जड काटने के लिए यह सुधारक का वार है।

प्र० आज की चाल तो इतनी बिगडी हुई है कि क्या यह सब छोड कर नये सिरे से ही शुरू करना ठीक न होगा?

उ० बेशक, अगर हम परमात्मा होते। हम कलम के एक झटके से ही हिन्दू जाति का स्वभाव बदल नहीं सकते। हम इस नियम का पालन करने का रास्ता ढूँढ निकाल सकते हैं, इसे नष्ट करने का नहीं।

प्र० जब शास्त्रकर्त्ताओं ने नयी स्मृतियां बनायी हैं तो आप क्यों नहीं एक नयी स्मृति बना सकते?

उ० अगर मैं नयी सृष्टि बना सकता? तब तो मेरी हालत विश्वामित्र से कहीं बिगडी हुई होगी और विश्वामित्र मुझसे कितने बडे थे।

प्र० जब तक आप वर्ण को नष्ट नहीं करते, अस्पृश्यता नहीं नष्ट हो सकती।

उ० मैं ऐसा नहीं समझता। अगर अस्पृश्यता को दूर करने में वर्णाश्रम नेस्त नाबूद हो जाय तो मैं कुछ भी शोक नहीं करूँगा। मगर मेरे बतलाये 'वर्ण' का अस्पृश्यता से क्या सरोकार है?

प्र० मगर सुधार के विरोधी लोग आपके ही प्रमाण उद्धृत करते रहते हैं!

उ० यह तो सभी सुधारकों के भाग्य में बदा होता है। स्वार्थी लोग उसके वचनों को गलत रूप में उतारेंगे। और कुछ लोग तो यह भी चाहते हैं कि मैं हिन्दू धर्मको छोड दूं। अगर उनके हाथ की बात होती तो उन्होंने मुझे हिन्दूधर्म में से अब तक निकाल दिया होता। मैं आज तक वर्णधर्म के समर्थन के लिए कहीं दौडा नहीं गया हूँ, अगर्चे कि अस्पृश्यता-निवारण के लिए मैं वैकोम गया था। कांग्रेस के उस प्रस्ताव का बनानेवाला मैं ही हूँ जो स्वराज्य के तीन स्तंभों खादी प्रचार हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के संस्थापन और अछूतोद्धार, के संबंध में था। मगर मैंने वर्णाश्रम धर्म की स्थापना को चौथा स्तंभ कभी नहीं बनाया है।

प्र० क्या आप जानते हैं कि आपके बहुत से अनुयायी आपकी शिक्षाओं को तोडते मरोडते हैं?

उ० क्या मैं ही नहीं जानता? मैं जानता हूँ कि मेरे बहुत से अनुयायी सिर्फ नाम ही के हैं।

प्र० बौद्ध धर्म हिन्दुस्तान से भगाया गया क्योंकि उसमें ब्राह्मण मुखी हो गये। उसी तरह अगर हिन्दू धर्म से उनका मतलब न सधा तो इसे भी वे मार भगावेंगे।

उ० करने तो दीजिए। मगर मेरा तो दृढ विश्वास है कि बौद्धधर्म हिन्दुस्तान से गया नहीं है। हिन्दुस्तान ही वह देश है, जिसने बुद्ध की शिक्षाएँ सबसे अधिक ग्रहण कीं। बौद्ध धर्म को बुद्ध के भावों से अलग ही गिनना होगा, और उसी प्रकार जिस तरह कि ईसा की शिक्षाओं से ईसाई धर्म अलग है। वे बौद्ध धर्म को इस लिए भगा सके कि उन्होंने बुद्ध की मूल शिक्षा को अपने में जज्ब कर लिया था।

प्र० उन्हीं ब्राह्मणों ने जिन्होंने बौद्धधर्म की अच्छी बातें लीं, बुरे से बुरे गुनाह भी किये हैं, अमृतसर काण्ड से भी बुरा गुनाह अछूतों को मंदिरों में प्रवेश न करने देकर और उन पर क्रूर बंधन लगा कर किया है।

उ० कुछ हद तक आपका कहना सही है। मगर ब्राह्मणों के मत्थे दोष देकर आप भूल करते हैं। इसके लिए सारा हिन्दूधर्म दोषी है। वर्णधर्म के बिगडने पर उससे अस्पृश्यता पैदा हुई। इसमें जान बूझ कर कोई बदमाशी नहीं थी, मगर फल तो बडी करुणाजनक दुर्घटना थी।

प्र० मगर जबतक आप वर्णाश्रम धर्म शब्द पर अडे रहते हैं, इसके साथ ये दुःखदायी प्रसंग आ ही जाते हैं।

उ० इससे तो यही शिक्षा मिलती है कि बुरे प्रसंगों को ही नष्ट कीजिए और वर्णधर्म को पहले जैसा शुद्ध कर लीजिए।

मेरा कार्यक्रम

प्र० आज तो सभी ओर गडबड है। हम किस तरह पीछे लौटेंगे?

उ० मुझे आप से इतना ही कहना है कि नींव को मत खोद फेंकिए, उसे शुद्ध करने का ही प्रयत्न कीजिए। इसके बदले आप एक नया धर्म ही देना चाहते हैं, जिसे स्वीकार करने को कोई तैयार नहीं है। ब्राह्मण धर्म और हिन्दूधर्म एकही मानी के शब्द हैं।

(अनुसन्धान पृष्ठ १२० पर)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, मार्गशीर्ष सुदी ७ संवत् १९८४

खादी का अर्थशास्त्र

मेरे सामने इस समय खादी पर दो छोटी छोटी किताबें पडी हैं। एक है बिहार के श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद की लिखी 'खादी का अर्थशास्त्र' जो बिहार चर्खा संघ कार्यालय मुजफ्फरपुर से तीन आने में मिलती है। चर्खासंघ की बिहार शाखा एक ग्रन्थमाला निकालना चाहती है, और उस माला की यह पहली किताब है। दूसरी किताब है गांधी आश्रम टिरूचेनगोडु की रिपोर्ट। यह आश्रम श्रीयुत चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की व्यवस्थापकता में चलता है। यह रिपोर्ट मंत्री, गांधी आश्रम, टिरूचेनगोडु से एक आने का पोस्टेज स्टैम्प भेजने से मिल सकती है।

पहली किताब की शैली ऐसी सुगम है और वह संक्षेप में लिखी गयी है जिसमें कि कामकाजी साधारण आदमी भी उसे पढ कर खादी का अर्थशास्त्र समझ सके। मैं यहां उसकी दलील का संक्षेप नहीं दूँगा जो कि खुद ही चर्खे के पक्ष में दलीलों का संक्षेप-मात्र है। मगर यह कहा जा सकता है कि पक्ष विपक्ष की सभी दलीलों के बतलाने के बाद राजेन्द्र बाबू ने यह दिखलाया है कि केवल चर्खे के ही जरिए विदेशी कपडे को दूर करने में सफलता मिल सकती है और, बाईस करोड चालीस लाख किसानों को चर्खे के सिवाय दूसरा सहायक धंधा नहीं दिया जा सकता, जिसके बिना वे अधभूखे रहते हैं और रहेंगे क्योंकि उन्हें साल में कमसे कम १२० दिन तो बेकार बिताने ही पडते हैं, और पडेंगे।

श्रीयुत राजगोपालाचारी की रिपोर्ट तो सच्ची बातों और आंकडों का वैज्ञानिक विवेचन है, और राजेन्द्रबाबू की दलीलों का पूरा पूरा उदाहरण है और उनमें जोर डालता है। पाठक के लिए यह जानना रोचक होगा कि आश्रम के खर्च का सैकडे ८५ तो कतवैयों बुनवैयों के पास जाता है, सेंकडे ९½ कार्यकर्त्ताओं को मिलता है और सेंकडे ५½दूसरे खर्चों में जाता है। रिपोर्ट में ऐसे रोचक और शिक्षाप्रद आंकडे हैं जिनसे मालूम होता है कि कतवैयों, बुनवैयों और धोबियों की आमदनी दी हुई है, जिनमें औरों को शायद खर्चे के बिना यह आमदनी नहीं होती, मगर कातनेवालों को तो निश्चय ही नहीं होती। इस रिपोर्ट में आश्रम के आमद खर्च का भी जांचा हुआ हिसाब दिआ हुआ हैं। एक पेज में यह दिखलाया गया है कि खादी का दाम किस तरह बंटता है। वह हिसाब यह है :

किसान के घर सैकडे	३७
कातने, बुननेवालों के पास सैकडे	५४
कार्यकर्त्ताओं "	६
मुतफरकात "	३

और यह कहा है :

"कपडे तो आप पहिनेंगे ही, पर अगर आप खादी लेते हैं तो हिन्दुस्तान के पुनःसंगठन में हाथ बँटाते हैं।

अकेले आश्रम ने ही पिछले ढाई वर्षों में आसपास के गांवों के गरीब आदमियों में १,२४,५३६) रु. बांटे हैं, और वह कुछ खैरात नहीं बल्कि घर बैठे काम के बदले में। आश्रम मुफ्त दवाखाना भी चलाताहै जिसमें पिछले ११ महीनों में १०,१४५ रोगी आये, और १४८ रोगियों को नश्तर दिया गया। रोगियों में अछूत नामवाले भी थे।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय २८

पत्नी की दृढता

कस्तूरबाई के ऊपर तीन घात लगे थे और तीनों से वह खरबिरौंआ यानी घरेलू इलाज से ही बच गयी। उनमें पहली बीमारी तो तब हुई थी जब सत्याग्रह का युद्ध चल रहा था। उसे रक्तस्राव हुआ करता था। एक डाक्टर मित्र ने चीरा देने की सलाह दी थी। कितनी आनाकानी के बाद पत्नी राजी हुई। शरीर तो बहुत ही क्षीण हो गया था। डाक्टर ने बिना क्लोरोफौर्म के (बेहोश किये बिना) नश्तर दिया। नश्तर देते वक्त तकलीफ खूब ही होती थी मगर जिस धैर्य के साथ कस्तूरबाई ने उसे सहन किया, उससे मैं तो आश्चर्यचकित हो गया। नश्तर की क्रिया निर्विघ्न पूरी हुई। डाक्टर और उनकी पत्नी ने कस्तूरबाई की भली सेवा बरदास की।

यह बात डरबन की है। दो या तीन दिनों बाद डाक्टर ने मुझे निश्चिन्त होकर जाने की इजाजत दी। थोडे ही दिनों बाद खबर मिली कि कस्तूरबाई का शरीर बिलकुल ही नहीं जुटता है और वह बिस्तरे से उठ बैठ भी नहीं सकती। एक बार बेहोश भी हो गयी थी। डाक्टर जानते थे कि दवा में या भोजन में शराब नहीं दी जा सकती। डाक्टर ने मुझे जोहान्सबर्ग में टेलीफोन किया, "आपकी पत्नी को मैं मांस का शोरबा या 'बीफ टी' देने की जरूरत देखता हूँ। मुझे देने की इजाजत दीजिए।"

मैंने जवाब दिया, "मैं यह इजाजत नहीं दे सकता पर कस्तूरबाई स्वतंत्र है। अगर उसकी स्थिति पूछने लायक हो तो पूछिए और वह लेना चाहे तो बेशक दीजिए।"

"रोगी से ऐसी बातें मैं नहीं पूछ सकता। आपके खुद यहां आने की जरूरत है। मैं जो चाहूँ, खिलाने की इजाजत मुझे आप नहीं देते तो मैं रोगी की जान के लिए जिम्मेवार नहीं हूँ।"

मैं उसी दिन डरबन को रवाना हुआ। डरबन पहुँचा। डाक्टर ने समाचार दिया, "मैंने तो शोरबा पिला कर ही आपको टेलीफोन किया था।"

मैंने कहा, "डाक्टर, मैं इसे दगा मानता हूँ।"

डाक्टर ने दृढतापूर्वक जवाब दिया, "दवा करते समय मैं दगा वगा कुछ नहीं समझता। हम डाक्टर लोग ऐसे समय पर रोगी या उसके संबंधियों को धोखा देने में पुण्य मानते हैं। हमारा धर्म है, चाहे जिस तरह हो रोगी को बचाना।"

मुझे बहुत दुःख हुआ। मैं शान्त रहा। डाक्टर मित्र थे, भले थे। उनका और उनकी पत्नी का मुझ पर अहसान था। मगर मैं ऐसा वर्ताव सहने को तैयार न था।

"डाक्टर, अब साफ साफ कहो। क्या करना चाहते हो? मैं अपनी पत्नी को उसकी मर्जी के खिलाफ कभी मांस नहीं देने दूँगा। मांस न खाने से अगर उसकी मृत्यु हो जाय तो उसे सहन करने को मैं तैयार हूँ।"

डाक्टर बोले, "आपकी फिलसुफी मेरे घर में तो चल नहीं सकती। मैं कहता हूँ कि जबतक आप अपनी पत्नी को मेरे घर पर रहने देंगे, मैं उन्हें तब तक जरूर मांस अथवा जो कुछ देना होगा दूँगा। जो आपको यह मंजूर न हो तो अपनी पत्नी को ले जाइए। अपने ही घर में अपने ही हाथों मैं उनका मरण नहीं होने दूँगा।"

"तब क्या आप यह कहते हैं कि मैं अपनी पत्नी को अभी अभी ले जाऊँ?"

"मैं कहां कहता हूँ कि आप ले जाइए, मैं तो कहता हूँ कि मेरे ऊपर किसी तरह का अंकुश न रखिए तो हम दोनों, जहां तक हो सकेगा, उनकी सेवा-संभाल करेंगे और आप बेफिक्र जाइए। मगर ऐसी सीधी बात आप न समझ सकें तो लाचार मुझे कहना पडेगा कि मेरे घर में से आप अपनी पत्नी को ले जाइए।"

मुझे याद है कि मेरा कोई लडका वहां साथ था। मैंने उससे पूछा। उसने कहा, "आपका कहना हमें कबूल है। मा को मांस तो दिया ही नहीं जा सकता।"

बाद में मैं कस्तूरबाई के पास गया। वह बहुत अशक्त थी। उससे कुछ भी पूछना मेरे लिए तकलीफदेह था। पर धर्म समझ कर थोडे में मैंने ऊपर की बात कह सुनायी। उसने दृढतापूर्वक जवाब दिया, "मुझे मांस का शोरवा नहीं लेना है। मानुख का देह बार बार नहीं मिलता। भले ही मैं आपकी गोद में मर जाऊँ मगर मुझसे यह देह बिगाडना पार नहीं लगेगा।"

जितना समझाया जा सकता था मैंने समझाया और कहा कि "तुम मेरे विचारों के अनुसार चलने को बँधी हुई नहीं हो।" मैं कितने हिन्दुओं को जानता था जो दवा के लिए मांस और मद्य लेते थे। उनकी बात भी कह सुनायी। पर वह एक से दो न हुई और बोली, "मुझे यहां से ले चलो।"

मैं बहुत खुश हुआ। ले जाने में घबराहट हुई। पर निश्चय कर लिया। डाक्टर को पत्नी का निश्चय सुनाया। डाक्टर गुस्सा हो कर बोले:

"तुम तो घातकी पति मालूम पडते हो। ऐसी बीमारी में उस बेचारी से ऐसी बात करते आपको शर्म भी नहीं आयी? मैं आपको कहता हूँ कि आपकी पत्नी अभी यहां से ले जाने लायक नहीं है, जरा भी हिलना डोलना बरदाश्त करने लायक उसका शरीर नहीं है। उनकी जान रास्ते में ही निकल जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। तौभी आप हठ से न मानें तो अपने मालिक आप खुद ही हैं। अगर मैं शोरवा नहीं दे सकता तो अपने घर में उन्हें एक रात भी रखने का जोखम नहीं ले सकता।"

इधर झरमर झरमर पानी बरस रहा था। स्टेशन दूर था। डरबन से फीनिक्स को रेल का रास्ता और फीनिक्स से लगभग ढाई मील का पैदल का रास्ता था। जोखिम तो खूब था। पर मैंने मान लिया कि ईश्वर सहाय होगा। मैंने एक आदमी फीनिक्स में पहिले से भेजा। फीनिक्स में मेरे पास 'हैमक' था। जालीदार कपडे की झोली या झूले को 'हैमक' कहते हैं। उसके किनारे बांस बांधा जाता है, इसलिए रोगी आराम से झूलता रह सकता है। मैंने वेस्ट को एक कटोरी गर्म पानी, एक कटोरी गर्म दूध, हैमक और छह आदमी लेकर स्टेशन पर आने को कहलाया।

दूसरी ट्रेन आने के समय मैंने रिक्शा मँगवाया और ऐसी भयंकर स्थिति में पत्नी को लेकर चलता बना।

पत्नी को तो हिम्मत दिलानी भी नहीं थी। उलटे उसने मुझे हिम्मत दिला कर कहा, "मुझे कुछ नहीं होगा। आप चिन्ता मत कीजिए।"

इस हाडपिंजर में बजन तो कुछ रही न गया था। खूराक कुछ खिलायी नहीं जाती थी। ट्रेन के डब्बे तक तो स्टेशन के विशाल प्लैटफॉर्म पर दूर तक पैदल चल कर जाना था। वहाँ रिक्शा जा नहीं सकता था। मैं उसे उठा कर गाडी तक ले गया। फीनिक्स में तो झोली आयी थी। उस में हम रोगी को आराम से ले गये। वहाँ सिर्फ पानी के इलाज से धीमे धीमे शरीर जुडा। फीनिक्स में पहुँचने के दो ही तीन दिनों बाद कोई स्वामी महाराज पधारे। उन्होंने हमारे हठ की बात सुनी, हम पर तर्स खाया और हम दोनों को समझाने आये। मुझे याद है कि जब स्वामीजी आये, मणिलाल और रामदास भी हाजिर थे। स्वामीजी ने मांसाहार की निर्दोषिता पर व्याख्यान चलाया। मनुस्मृति के श्लोक सुनाये। पत्नी के सामने यह संवाद चलाना मुझे नहीं रुचा। मगर विनय की खातिर मैंने यह संवाद चलने दिया। मुझे मांसाहार के समर्थन में प्रमाण नहीं चाहिए थे। उसके श्लोकों की मुझे खबर थी। मैं जानता था कि उन श्लोकों को प्रक्षिप्त माननेवाला भी एक पक्ष है। पर वे प्रक्षिप्त न भी हों तौभी अन्नाहार के बारे में मेरे विचार स्वतंत्र रूप से घड चुके थे। कस्तूरबाई की श्रद्धा काम कर रही थी। वह बेचारी शास्त्र के प्रमाण क्या जाने? उसके लिए बापदादा की रूढि ही धर्म था। बालकों को बाप के धर्म पर विश्वास था, इस लिए वे स्वामी के साथ विनोद करते थे। अंत में कस्तूरबाई ने यह कह कर यह संवाद बंद किया:

"स्वामीजी, आप चाहे जो कहें, मगर मुझे मांस का शोरवा खाकर अच्छा होना नहीं है। अब आप मेरा माथा न दुखावें तो आप की कृपा! बाकी बातें आपको करनी हों तो लडकों के पिताजी से पीछे कर लीजिएगा। मैंने अपना निश्चय आपको जना दिया।"

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

साप्ताहिक पत्र

स्वर्गसुन्दर देश

मैंने अपना पिछला पत्र कोलम्बो से भेजा था। वहां का सुन्दर बंदर, जो संसार में छठां बडा बंदर गिना जाता है और जहां पर कि दो करोड टन का माल ढोनेवाले जहाज खडे थे और शहर के कुछ हिस्सों को छोडकर जो मुझे मद्रास के माइलापुर और कलकत्ते की चौरंघी की याद दिलाते थे, मैंने तबतक और कुछ नहीं देखा था। और आज दिन के शहरों में सभी जगह ऊँचे ऊँचे मकानों और ऊपरी सभ्यता को छोड कर कोई देख ही क्या सकता है? कोलम्बो, जहां तो पश्चिमी सभ्यता की यह एकताकारिणी क्रिया और भी अधिक चालू है, किसी दूसरे आधुनिक शहर सा दिखता है। मगर जरा भीतर घुसिए तो लंका की 'चटपटी हवा' लगने लगती है। हम लोग समुद्र के किनारे किनारे उत्तर में चिलाव जिले तक चले गये और वहां से कुरुनेगल के निकट पहाडी जिलों में घुसे और रास्ते में कई जगहों से होते हुए कैन्डी पहुँचे। रबर और दालचीनी के बडे ऊँचे दरख्तों के बीच बीच में चाय, काफी वगैरह की लताओं के जंगल में से होकर बडी ही सुंदर सडक कैन्डी के शहर में जो पहाडों के बीच उनकी थली में बसा है, जाती है। ज्यों ही आप रास्ते की शोभा पर मुग्ध हो कर उसका बखान शुरू करते हैं, कोई गर्वीला कैन्डीवासी सुनाता है कि अभी तो आपने कुछ देखा ही नहीं। दूसरे दिन जब हम बादुल्ला और वहां से नुवारा एलिया, और फिर हैट्टन और दूसरे चायबागानों को होते हुए कन्डी लौटे और फिर कैन्डी से कोलम्बो गये तब मैंने उनकी इस बात की सचाई का पता पाया। यूरोपियन यात्रियों ने लंका के इस स्वाभाविक बाग की सुन्दरता के वर्णन में पेज के पेज रंग डाले हैं। कुछ तो वहां के दृश्यों का मिलान यूरोप के सुन्दर दृश्यों से करते हैं और कुछ यूरोप के दृश्यों से इन्हें बढा चढा पाते हैं। सब देख कर आखिर कहना पडता है कि सचमुच में मैंने कुछ देखा नहीं, यह तो सिर्फ जादू का खेल था। भला ऐसा सुन्दर भी कोई देश हो सकता है! बस बात दर असल यह है

कि बडे से बडे लेखक और कवि के कलम से भी इसका यथेष्ट वर्णन नहीं हो सकता और उनकी कविताओं की भी वही कीमत होगी जो किसी छोटे लडके के यह कहने की कि 'यह देख कर बडी खुशी हुई थी,' और इस लिए काहे को कोई असंभव काम को करने में हाथ लगावे? इससे तो अच्छे वे हैं जो चुपचाप श्रद्धा से खडे रह जाते हैं क्योंकि वे सर्वशक्तिमान् परमात्मा की शक्ति, सुन्दरता और विशालता तथा अपनी क्षुद्रता और छोटेपन का वर्णन करने के लिए यथेष्ट शब्द ही नहीं पाते।

गांधी जी के लिए तो हर एक लता, झाडी या वृक्ष, एक एक पाठ दे रहा था। उन्हें इस पर आश्चर्य हो रहा था कि मनुष्यों को प्रकृति के बनाये इन मन्दिरों से क्यों नहीं सन्तोष होता है, वे इन्हीं में अपने ईश्वर को क्यों नहीं पाते कि ईंटे और चूने के मन्दिर बना कर उनमें परमात्मा को ढूँढते हैं! बादुला का अपना लंबा भाषण उन्होंने शराबखोरी के बारे में यह जिक्र कर के समाप्त किया: "कैन्डी से यहां आते समय मैंने अपने जीवन में कुछ सबसे सुन्दर दृश्य देखे। जहां प्रकृति ने इतना किया है, जहां प्रकृति आपको मस्त बना देने के लिए ऐसे सुन्दर और ऊँचे चढानेवाले साधन तैयार किये हुई है, और जहां वह पुनरुज्जीवन लानेवाली वायु बहा रही है वहां पर किसी मर्द या औरत के लिए उस चमकते हुए विष, मदिरा को पी कर मस्त होना गुनाह है।"

लंकावासियों के बारे में

अब यहां के आदमियों के बारे में भी कुछ लिखना चाहिए। यहां की कुल आबादी ४५ लाख आदमियों में से २९ लाख सिंहली है, और १० लाख तामिल होंगे, जिनमें आधे से अधिक चाय, रबर या दूसरे बागानों में मजदूरी करते हैं। इसलिए सिलोन के सामने तामिलों और सिंहलियों के बीच भला संबन्ध स्थापित करने का ही एक प्रश्न नहीं है बल्कि उसे बागानों में मजदूरों की दुरदशा के भी प्रश्न को हल करना है। यहां के अधिकांश लोग खेती करते हैं और उनका गुजर होता है धान और नारियल की फस्ल पर। यहां सब मिला कर ४० लाख एकड की जो खेती होती है, उसमें १० लाख एकड में तो नारियल फैला है। चाय बागान का काम बहुत ही बढ गया है — हर साल १७ करोड पाउन्ड चाय यहां से बाहर भेजी जाती है — और यह धन्धा मुख्यतः गोरे किसानों के ही हाथों है। यहां का एक और मुख्य धन्धा है रबर की खेती। १९०४ में यहां रबर के जंगल जितने थे आज उसके सोलह गुने अधिक हैं और आज सिलोन में सारे संसार के रबर का आठवां हिस्सा पैदा होता है। मगर यह धन्धा भी मुख्यतः यूरोपियनों के ही हाथों में है। खनिज में ग्रेफाइट का व्यापार भी यथेष्ट है और उससे १ लाख सिंहली मर्द औरतों को रोजगार मिलता है। मगर अधिकांश मजदूर तो हिन्दुस्तान में तामिलनाड से ही आते हैं। बेशक तामिलनाड से वे इसलिए आते हैं कि वहां उनका पेट नहीं भरता और वहां कभी कभी लगातार कई सालों तक अकाल पडता रह जाता है। मगर इसमें भी कोई शक नहीं है कि तामिल तो स्वभाव से ही सिंहली की बनिस्बत अधिक मिहनती होता है और बागानवाले उन्हीं को अधिक पसन्द करते हैं। काम न करने का यह स्वभाव बेशक प्रकृति के दानों के ही कारण है।

बौद्धों ने हिन्दुओं के सिर्फ जातिभेद को ही नहीं बल्कि अस्पृश्यता को भी बचाये रक्खा है। बुद्ध भगवान् की पहली आज्ञा के होने पर भी वे मांस खाते हैं, और गोमांस तक खाते हैं। उनकी पांचवीं आज्ञा की पर्वा न करके 'सभ्य' लोग तो शराब पीना प्रतिष्ठित काम समझते हैं, और उनकी अन्तिम आज्ञा का भंग करके उन्होंने एक दांत को सोने के बकसों में जिनमें लाल जडे हैं यह समझ कर रक्खा है कि यह बुद्ध भगवान् का असली दांत है। कुछ दिन हुए अनागारिक धर्मपाल ने ऐसी स्थिति पर शोक प्रकट करते हुए लिखा था कि, 'देश की आशा भरोसा, सिंहली युवक आज ईसाई प्रचारकों के प्रभाव में पड गये हैं। . . . जो बातें पुराने शरीफ सिंहालियों के जमाने में असंभव होते वे आज के पश्चिमीय सभ्यता के कारण जारी हैं। . . . सिंहली राजाओं के युग में शराब नहीं बिकती थी, जानवर नहीं मारे जाते थे।' नयी पीढी के अंगरेजी पढे युवक युवतियों के बारे में सिंहली लेखकों ने ही इन विशेषणों का व्यवहार किया है: 'पश्चिम की नकल करने वाले बंदर,' 'दुनिया की किसी जाति से अधिक अराष्ट्रीय,' 'अपने ही देश में विदेशी।'

और उस सरकार के बारे में कोई क्या कहेगा जिसकी आमदनी दश साल में दुगुनी से भी अधिक बढ गयी है, मगर जो तिस पर भी शराब ताडी वगैरह से १ करोड १० लाख की आमदनी पैदा करती है, और वह भी अपनी १२ करोड ६० लाख की कुल आमदनी के होते हुए? इस टापू के एक ईमानदार गवर्नर सर विलियम ग्रेगरी ने सन् १८७५ ई. में ही कहा था कि "अंगरेजी राज्य से सिलोन को बहुत से लाभ हुए हैं, जिन्हें यहां के बाशिन्दे मानने को हमेशे तैयार हैं, मगर दूसरी ओर हमने इस टापू में शराबखोरी के शाप को भी फैला दिया है। कुछ साल पहले शराब पी कर धदमस्त कैन्डीवासी अपने को अपनी बिरादरी के बीच जलील पाता मगर अब तो यह दृश्य इतनी बार दिखायी पडता है कि इसकी जलालत ही, शर्म ही मिट गयी है। इस विषय पर मेरे पास कई दरखास्तें आयी हैं। उनमें कहा है 'दया करके शराब की दूकानें कम कीजिए और इस प्रकार बदमस्ती को घटा कर इससे पैदा होनेवाली महान् नैतिक और सामाजिक हानि को कम कीजिए।' इन सिफारिशों से मैं बराबर सहमत रहा। शराब की दूकानें कम करने में कुछ आमदनी तो घटेगी, मगर प्रार्थना करनेवालों के शब्दों में, समाज की साधारण उन्नति से और जुर्म की खोज के खर्च में कमी से, वह कमी बखूबी पूरी हो जायगी।" मगर आज तक इसका कोई असर नहीं पडा है। वे गवर्नर साहब अपना कर्त्तव्य पहचानते थे, और इनकी अक्लमंदी के ये बातें हर एक दिलदार और ईमानदार सरकार को याद रखनी चाहिए।

उत्तर

सिंहालियों की और जो कुछ कमजोरियां होवें, मगर उनका दिल बडा है और जहां कहीं हम गये, हमें उनकी उदार हृदयता ही देखने में आयी। अपनी यात्रा में हम वैसी जगहों में भी आये, जैसे कि ट्रावंकोर, जहां के धनियों को अभी देना धर्म के मानी सीखने हैं। सिलोनवाले मालूम पडता है कि देना सीख चुके हैं। यह पत्र लिखते समय यहां के सब चंदे कोई ६० हजार तक पहुँच गये हैं और बहुत संभव है कि यहां से रवाने होते होते तक यह रकम सहज ही ७५ हजार तक पहुँच जाय। इस ६० हजार में कैन्डी और बादुला जैसे शहरों की थैलियां, विद्यार्थियों की थैलियां, खास व्यक्तियों के दान और दूसरे छोटे छोटे स्थानों की थैलियां शामिल हैं। विद्यार्थियों के उल्लेख से मुझे धर्मराज कॉलेज की याद आ जाती है। यहां के पारसी मुख्याधापक ने अपने विद्यार्थियों से चंदा वसूल कर गांधीजी को थैली भेंट की। मुसल-मान लडकों के लिए जाहिरा कॉलेज के मुख्याध्यापक ने अपने विद्यार्थियों की थैली भेंट करते समय, द० अफ्रिका में मुसलमानों के प्रति गांधीजी की सेवा का वर्णन किया, और इसी के साथ

आलम के गांधीजी पर घातकी वार की कथा भी सुनायी। हिंदु-
स्तान में इस्लाम के लिए गांधीजी की सेवाओं का वर्णन खास तौर
पर सरस था और उनकी ४००) रुपयों की थैली भी सुंदर ही
कही जायगी। यहां के चंदों में तामिल और पारसी संघों के भी
चंदे शामिल हैं। पारसियों ने जो कि कोलम्बो की साधारण थैली
में चंदा दे दिया था, मगर उन्होंने अपने समाज की ओर से गांधीजी
को बुलाने और उन्हें एक खास थैली देने की रूजरत महसूस की।
गांधीजी ने वहां छोटा सा भाषण दिया। उसमें पारसियों के दिल के
वडप्पन, और उनके स्वार्थत्याग और उनके प्रति गांधीजी के ऋण की
ही कहानी थी। पारसियों के वीच में गांधीजी को घर सा आराम
मिलने लगता है और एक वार उनके बारे में बोलना शुरू करने
पर उनके लिए अपने आपको रोकना मुश्किल हो जाता है।

असल मेरुदण्ड

मगर अब मुझे उस उत्तर का भी वर्णन करना ही चाहिए जिसे मैं सबसे अधिक कीमती समझता हूँ यानी मजदूरों के। इनके बारे में यही खयाल हो आया करता है कि अफसोस है कि गांधीजी इन्हें अधिक समय नहीं दे सके। मैंने अपने पिछले पत्र में कोलम्बो के विशाल मनुष्य सागर का उल्लेख किया था। इस हफ्ते में हमने बादुल्ला, नुवारा एलिया और हैट्टन के चायबागानों में ऐसी और कई वडी सभाएँ देखी हैं। इन में क्या ही श्रद्धा और क्या ही अज्ञान है! मैंने उनके कुछ झुन्डों से बात की जो बेचारे गांधीजी को मनुष्यों के सागर में देखने की बेकार कोशिश कर रहे थे।

मैंने पूछा, 'तुम यहाँ किस लिए आये हो?'

एक औरत जो इस सवाल से चिढ गयी बोली, 'तुम्हीं किस लिए आये हो?'

इसी बीच दूसरे ने बातें शुरू कीं, 'तुम नहीं जानते? हम अपने देवता को देखने आया हैं!'

मैंने पूछा, 'तुम्हारा देवता! उसे जानते हो?'

'बेशक, गांधी तो।'

'तुमने उन्हें देने के लिए थैली में कुछ दिया है?'

'हां तो, एक दिन की मजदूरी ४५ सेन्ट (कोई ७ आने)।'

'क्या जानते हो कि वे इस पैसे का क्या करेंगे?'

'नहीं तो। मगर जरूर ही वह कोई भला काम करना चाहता होगा।'

हमने उससे खादी के लिए चंदे जमा करने का मतलब समझाया।

मैंने पूछा, 'क्या जानते हो कि वे तुम्हें क्या करने को कहते हैं? वे कहते हैं कि तुम हाथों से काम करने का महत्व समझो, तुम पवित्र जीवन बिताओ, वैसे काम न करो, जिनसे तुम्हें लाचार बुराई में पडना पडता है, और सब से बडी बात तो यह कि जैसे सांप को देख कर भागते हो, उसी तरह शराब से भागो, सांप के काटने से तो केवल शरीर ही नष्ट होता है मगर शराब तो आत्मा को भी कलुषित करती है।' मगर उनका ध्यान दूसरी ओर था। हमने वे मतलब ही उनका ध्यान खींचा था। वे तो गांधीराज को देखने आये थे! और वहां से लौटते समय हमने कुछ बचेखुचों को अब भी शराब के नशे में चूर नाचते हुए पाया और भला वे कहते क्या थे, 'महात्मा गांधी की जय!'

यह बात तो हैट्टन की है। पाठक यह न समझ लेवें कि सब जगह यही हालत थी। बादुल्ला में आश्चर्यजनक रूप से शान्त सभा हुई जिसमें गांधीजी ने पौन घंटे से भी अधिक देर तक भाषण किया। और भाषण होते समय भी बहुत ही शान्ति से पैसे भी बरस रहे थे। वह दृश्य भूलने लायक नहीं है। उस ठौर पर ही कोई तीन सौ रुपये जमा हुए थे। नुवारा एलिया में भी वही बात फिर हुई और ४,०९७) रु. की थैली के अलावा सभा में और ५००) रु. मिले।

और सबसे अधिक गांधी जी को इस बात का दुःख हुआ कि वे इन सरल लोगों के बीच अधिक समय तक नहीं रह सके, उनके घरों में उनका पारिवारिक जीवन नहीं देख सके, उनके दुःख सुख में उनका हाथ नहीं बँटा सके। वे वहां के बागानवालों और उनके एजेन्टों से मिल कर मजदूरों की दशा सुधारने के प्रस्ताव करते। मगर यह कहां हो सका? उनके लिए वे केवल पवित्रता और संयम का उपदेश छोड जा सके। हम तो सिर्फ यही आशा और प्रार्थना कर सकते हैं कि यह उन तक पहुँचेगा, और वे इस टापू के मेरुदंड मजदूरों को नष्ट न होने देंगे। यह तो उनकी भी रीढ है और जब तक यह सीधी है, तभी तक वे भी सीधे और मजबूत रह सकते हैं।

पवित्र घटना

गांधीजी ने यहां जो कई भाषण किये हैं, उनमें, हमेशे जैसे, कुछ न कुछ घरेलू बातें जरूर कही हैं। एक आदमी ने एक जगह पूछा कि 'क्या श्रीमती कस्तूर बा गांधीजी की माता हैं?' एक यूरोपियन महिला भी इसी खयाल में गांधीजी की मोटर के साथ कुछ दूर तक चलती गयीं।' गांधीजी ने हँसते हुए कहा, 'हां, वह मेरी मा है।' दूसरे दिन सबेरे एक सभा में श्रीमती कस्तूर बा नहीं गयी थीं। इस पर लोग पूछने लगे कि 'माताजी' क्यों नहीं आयी हैं? गांधीजी ने कहा, "कल्ह एक आदमी ने भूल से उन्हें मेरी मा समझ लिया था। यह भूल हमारे और उनके बीच न सिर्फ क्षम्य ही है बल्कि तारीफ की बात है क्योंकि बहुत वर्षों से वह हम दोनों की सलाह से मेरी पत्नी नहीं रह गयी है। चालीस साल हुए मैं बेमाबाप का हो गया और तीस वर्षों से वह मेरी मा का काम कर रही है। वह मेरी मा, सेविका, रसोइया, बोतल धोनेवाली सब कुछ रही है। अगर वह इतने सबेरे आपके दिये सम्मान में हिस्सा लगाने आती तो मैं भूखा ही रह जाता और मेरे शारीरिक सुख की कोई पर्वा नहीं करता। इस लिए हमने आपस में यह समझौता कर लिया है कि सभी सम्मान मुझे मिले और सभी मिहनत उसे करनी पडे। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि उसके बारे में जो जो अच्छी २ बातें आपने कहीं हैं वे सब मेरे कोई साथी उससे कह देंगे और उसकी गैरहाजिरी के लिए आप मेरा जवाब मंजूर कर लेंगे।

"आप मुझे ऐसी मामूली व्यक्तिगत बात में अपना समय लेने के लिए क्षमा करेंगे। मगर अगर मर्द और खास कर मेरे सामने बैठी हुई वे स्त्रियां इसका गंभीर अर्थ समझें और उसे पसंद करें तो हम सब सुखी होंगे। क्योंकि मैं नहीं समझता कि बुद्ध भगवान के जीवन से उत्साहित लोगों को मुझे यह समझाने की जरूरत है कि जीवन कुछ सुखों का ढेर नहीं बल्कि कर्त्तव्यों का ढेर है। मनुष्य और पशु में यही फर्क है कि मनुष्य अपने सांसारिक सुखों में संयम से काम लेता है।" इसी के बाद वे शराबखोरी के अभिशाप पर पहुँच गये। यह सवाल तो हर जगह उनके भाषणों में आग सी लगा देता है।

मगर आखिर यह वर्णन भी खत्म तो करना ही है। सिंहली महिलाओं की भी सभा थी मगर इस हफ्ते उसका वर्णन देने की जगह नहीं है। सिलोन राष्ट्रीय महासभा का भाषण मैं अगले हफ्ते संपूर्ण दूंगा।

(यं० इं०) **महादेव देशाई**

(पृष्ट ११५ का अनुसन्धान)

यानी हिन्दूधर्म के लिए हमारे पास जो एक मात्र शब्द था, वह था ब्राह्मण धर्म या ब्रह्म विद्या और उसे नष्ट करके आप हिन्दूधर्म को ही नष्ट करना चाहते हैं। ब्राह्मण लोग जब कभी आपके अधिकारों पर हमला करें, आप उनसे एक एक जौ करके लडिए, और उन्हें सुधारने का प्रयत्न कीजिए। मगर हर एक ब्राह्मण को गाली देने में तो कोई लाभ नहीं है। ब्राह्मण भी तो सब तरह के हैं एक तो शुरू से अखीर तक सुधारक ही है और दूसरा है सुधार-विरोधी। आपको अपनी ओर सुधारक ब्राह्मणों में से अच्छे से अच्छों को लाना और उनके सहारे रचनात्मक कार्य करना ही होगा, जिससे ब्राह्मणों अब्राह्मणों दोनों का ही उद्धार होगा।

सुधार-विरोधियों से लडिए और उन्हें खुलासा कह दीजिए, 'अगर आप धन और अधिकार का लोभ नहीं छोडते, अगर आप विद्या नहीं पढते और हमें हमारा धर्म नहीं सिखलाते तो हम आपको ब्राह्मण नहीं मानेंगे।' तब आपका विरोध वे नहीं करेंगे। सुधार के लिए आप खूब जोरदार हलचल कीजिए, जिन स्कूलों वा मंदिरों में किसी अब्राह्मण के साथ दूसरा व्यवहार किया जाता हो, उनका त्याग कीजिए। आप पवित्र चरित्रवाले विद्वान् और सांसारिक लोभों से रहित ब्राह्मण पुरोहितों को ही पूछिए। अगर पुराने मंदिरों में नामधारी अछूतों को प्रवेश न करने दिया जाय तो आप नये मंदिर बनवाइए।

तब सहभोज का सवाल आता है। मैं इसपर किसी से झगडा नहीं करूँगा। मगर जहाँ कहीं भेद भाव होवे वहाँ मैं जाने से इनकार कर सकता हूँ।

इसके बाद मैं अछूतों के साथ भाईचारा करूँगा और उनके साथ सगा भाई जैसा व्यवहार करूँगा और जाति उपजाति के भेदों को तोड फेंकूँगा। इस लिए अगर मुझे अपने लडके का विवाह करना है तो मैं अपनी उपजाति को छोड कर दूसरी उपजाति में से ही लडकी चुनूँगा। भद्दे रिवाज के कारण हम आज इतने बँधे हुए हैं कि आप न तो मुझे गुजरात में बसाने के लिए एक लडकी दीजिएगा और न तामिलनाड में बसने के लिए गुजरात की कोई लडकी लीजिएगा।

तब मैं अछूतों को धार्मिकशिक्षण दूँगा। उनका हिन्दूधर्म और नीतिशास्त्र के मूलतत्वों से परिचय कराऊँगा। आज तो वे बिल्कुल पशु के जैसा जीवन बिता रहे हैं। मैं उन्हें निषिद्ध भोजन खाने से रोकूँगा और पवित्र जीवन बिताने को उत्साहित करूँगा। आप सहज ही सवालों का विस्तार कर सकते हैं और एक बहुत बडा रचनात्मक कार्यक्रम तैयार कर सकते हैं।

हिन्दूधर्म ने हमारा कौन सा भला किया?

प्र० हम देखते हैं कि आप सब कुछ हिन्दू धर्म के नाम पर करते हैं। क्या हमें बतलाइएगा कि हिन्दू धर्म ने हमारे भले के लिए क्या किया है? क्या यह बुरे वहमों और आचारों की विरासत नहीं है?

उ० मैंने समझा था कि मैं यह स्पष्ट कर चुका हूँ। खुद वर्णाश्रम धर्म ही संसार को हिन्दू धर्म की अपूर्व भेंट है। हिन्दूधर्म ने हमें भय से बचा लिया है। अगर हिन्दूधर्म मेरे सहारे को नहीं आता तो मेरे लिए आत्महत्या के सिवाय और कोई चारा नहीं होता। मैं हिन्दू इस लिए हूँ कि हिन्दूधर्म ही वही चीज है जो संसार को रहने लायक बनाता है। हिन्दू धर्म से बौद्ध धर्म पैदा हुआ था। आज जो हम देखते हैं, वह शुद्ध हिन्दू धर्म नहीं है बल्कि वह अक्सर उसकी हँसी होती है। नहीं तो इसकी ओर से मुझे वकालत करने की जरूरत नहीं पडती जैसे कि अगर मैं पूर्ण पवित्र होता तो मुझे आपसे बात करने की जरूरत नहीं होती। परमात्मा अपनी जबान से नहीं बोलता है और जो उसके नजदीक पहुंचता है वह उसीके समान बन जाता है। हिन्दू धर्म मुझे सिखलाता कि मेरी अन्तरात्मा की शक्ति की मर्यादा, मेरा यह शरीर है।

जैसे कि पश्चिम में भौतिक वस्तुओं के संबंध में आश्चर्यजनक शोध हुए हैं, उसी प्रकार, धर्म संबंधी, आत्मा के संबंध में हिन्दू ने उससे भी आश्चर्यजनक शोध किये हैं। मगर इन महान सुन्दर शोधों को देखने के लिए हमें आँखें ही नहीं हैं। पश्चिमी सभ्यता ने जो भौतिक उन्नति की है, उसी से हमारी आँखें चौंधिया गयी हैं। मैं उस उन्नति पर मुग्ध नहीं हो गया हूँ। सच पूछिए तो यह ऐसा मालूम पडता है कि मानों परमात्मा ने भारतवर्ष को उस रास्ते उन्नति करने से रोका हो जिसमें भौतिकता की धारा को रोकने का अपना विशेष उद्देश्य पूरा कर सके। आखिर हिन्दू धर्म में वह कोई शै है जो इसे अब तक जिलाये हुए है। इसने बैबिलोन, सीरिया, फारस और मिसर का पतन देखा है। अपनी चहार तर्फ नजर डालिए। कहाँ है रोम और कहां है यूनान? क्या आप कहीं गिब्बन की इटली या प्राचीन रोम को ही, क्योंकि रोम ही इटाली था, ढूँढ सकते हैं? जरा यूनान जाइए। संसार-प्रसिद्ध ग्रीक सभ्यता कहां है? फिर भारत को लौटिए और पुराने से पुराने लेखों को देखिए और फिर अपनी सभी ओर नजर डालिए और आपको लाचार कहना पडेगा कि 'हां, मैं यहां प्राचीन भारत को अभी जिन्दा देखता हूँ।' बेशक यहां वहां कूडे के ढेर हैं, मगर उनके नीचे लाल रत्न छिपे हैं। और इसकी वजह कि आज तक हिन्दू जिन्दा क्यों रह गया, यह है कि इसने अपने सामने भौतिक उन्नति के बदले आध्यात्मिक उन्नति का उद्देश्य रक्खा था।

इसकी कई भेंटों में यह अपूर्व ही है कि मनुष्यों और पशुओं में एक ही आत्मा बसती है। मेरे लिए गो-पूजा एक बडा विचार है, जिसका विस्तार किया जा सकता है। आज धर्म-प्रचार का इसमें न होना भी मेरे लिए एक बहुमूल्य ही है। इसे उपदेश देने की जरूरत नहीं है। यह सिखलाता 'ऐसा जीवन बनावो।' यह काम मेरा है, आपका है कि 'ऐसा जीवन बितावें' और फिर उसका असर युग युग तक जायगा। इसने आदमी भी कैसे पैदा किये? रामानुज, चैतन्य, राम जैसे — हिन्दूधर्म पर अपनी छाप छोड जानेवाले और आधु नामों को तो छोड ही दीजिए। किसी प्रकार भी हिन्दूधर्म की समाप्त नहीं कही जा सकती, यह मरा हुआ धर्म नहीं है।

तब चार आश्रमों की भी भेंट तो है ही! यह भी अपूर्व भेंट है। इसके समान तो संसार में कुछ भी नहीं है। कैथो ईसाइयों में ब्रह्मचारियों का संघ है सही मगर वह कोई संस्था है, मगर यहां हिदुस्तान में तो हरएक लडके को ब्रह्मचर्याश्रम पालन करना ही पडता था। क्या ही उदात्त कल्पना है। हमारी आँखें मैली हो रही हैं। विचार गंदे हो रहे हैं और सबसे गंदा क्योंकि हम हिन्दूधर्म को इनकार कर रहे हैं।

इसके अलावा एक और चीज है जिसका जिक्र मैंने नहीं है। मैक्समूलर ने चालीस साल पहले कहा था कि यूरोप को खयाल अब आ रहा है कि पुनर्जन्म और भिन्न २ योनियों जन्म कुछ खामखयाली नहीं है बल्कि सत्य घटना है। हां, संपूर्णतः हिन्दूधर्म की ही भेंट है।

आज इन्हीं के अनुयायी वर्णाश्रम धर्म और हिन्दू धर्म का अर्थ लगाते हैं, उन्हें इनकार करते हैं। इसकी दवा विनाश है, सुधार है। हम अपने में सच्ची हिन्दू भावना पैदा करें तब पूछें कि इस धर्म से आत्मा को पूरा पूरा संतोष होता है या नहीं।

(यं० इं०)

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)

हिन्दू-मुसलिम ऐक्य

हूगा । पहली बात है असत्य या जोर
भी भागे फिरना । मेरी समझ में कोई
पर नहीं हुआ है । क्योंकि जबर्दस्ती से
कभी कभी दिखलायी पडे मगर इससे कई ऐसी
हैं जो पहली बुराई से भी अधिक बुरी होती
समझने में आप भूल न करें । मैं शराब
नून बनाने को किसी किस्म का जोरोजब्र
कि सच्चा लोकमत स्पष्ट रूप में शराब की
में जाहिर हो तब यह प्रजा का न सिर्फ
वित्र कर्त्तव्य है कि वह शराबबंदी का कानून
को काम में लाने के लिए कोई बात उठा

जाफना तो उससे भी आगे बढ गया । सारी लंका से कुल रकम १,०४,६०८, रुपये ४ आने की मिली है । दरिद्रनारायण की सहायता के लिए जिस किसी ने इस भ्रमण में सहायता की है, वह दरिद्रनारायण के धन्यवाद का भागी है ।

कोलम्बो के समान जाफना में विदाई की कोई सार्वजनिक सभा नहीं थी, मगर तौभी दोनों शहरों में मित्रों की बिदाई तो एकसी ही हृदय-स्पर्शी थी । गांधीजी ने कहा, "आप लोग यकीन करें, मैं हलके दिल से सिलोन से बिदा नहीं हो रहा हूँ । अगर मैं ऐसा प्रबंध कर सकता तो जरूर ही यहां कुछ देर और अधिक ठहरता ।" गांधीजी की बडी इच्छा थी कि वे यहां के कार्यकर्त्ताओं को कुछ और अधिक समय देते, यहां के बडे नेताओं से और अधिक

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक १६

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, मार्गशीर्ष सुदी १५ संवत् १९८४ गुरुवार, ८ डिसम्बर १९२७ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

साप्ताहिक पत्र

पर्दा बदलता है, दूसरा दृश्य सामने आता है, मगर पहले की याद बार बार आकर उसी मनोहर, हरे भरे जंगलों में हमें ले जाती है । हम लंका घूम आये । अब तो मद्रास के रास्ते में हैं ।

वहां केवल जंगल का ही दृश्य मनोमोहक नहीं था उनसे अधिक वहां के आदमियों के सागर याद पडते हैं । यहां पर ये गरीब तामिल लोग अपने घर बार छोड कर सुख की खोज में आये हैं । मगर वह सुख क्या उन्हें मिला है? नहीं । वे तो गुलाम बन कर आते हैं, और गुलामी की ही जिन्दगी उन्हें बितानी पडेगी । मगर उनकी जिन्दगी ही कै दिनों की होती है? यहां की ठंढी पहाडी हवा, कपडों की कमी, और भोजन में कमी से उनकी जिन्दगी के बीतने में देर नहीं लगती । उन्हें तुरत ही कोई न कोई श्वास रोग हो जाता है और फिर चित्रगुप्त महाराज के यहां हिसाब साफ होने में तब क्या देर लगे?

बेचारों को सिर्फ तीन आने रोज की मजदूरी पर गुजर करना पडता है और उस पर चाय बागानवालों को आश्चर्य होता है ! एडवर्ड कार्पेन्टर ने ठीक ही कहा है: "इसी तरह तो हमारी प्रिय चाय सिलोन में और दूसरी जगहों में तैयार होती है । व्यापारिकता में कोई ऐसा गुण मालूम पडता है कि वह जिस देश में जाती है, वहां के प्राकृतिक सौन्दर्य को नष्ट कर डालती है । यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य नष्ट हो गया है । पहाड नंगे कर दिये गये हैं, जंगल उजाड दिये गये हैं । . . . . और यह सब किस लिए? इतनी मनुष्य-शक्ति किस काम में लगायी जाती है? शराब और चाय तैयार करने में । अगर इन वस्तुओं की तयारी बंद हो जाय तो क्या ही अच्छा हो !"

यह तो २५ वर्ष पहले की बात है । तब से यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य घटा ही है, कुछ बढा नहीं है ।

सन् १९२४ में सिर्फ ६ लाख की आबादी में १८,७०० मौतें लिखी गयीं और इनके खास कारण थे फेफडे और श्वासनली के रोग और आंव । फिर काल के इतने शिकार थे भी तो कैंडी और नुवारा एलिया, इन दो सबसे अधिक स्वस्थ जिलों के रहनेवाले । अब इसके बाद क्या यह भी कहा जाय कि यह सब हुआ है मजदूरों की दशा के सुधार के बारे में कई कई कमिशनों के बैठने और सरकार के यह रिपोर्ट लिखने के बाद कि मजदूरों के निवासस्थानों में उन्नति हुई है । जब तक इन चीजों की तैयारी नहीं रुकेगी और मांग के जारी रहते तैयारी रुक नहीं सकती, तब तक यह हालत बदलने को नहीं है ।

दक्षिण को

मगर अब आगे तो बढना ही होगा । हम लोग दक्षिण में ठेठ सिलोन के अखीरी शहर तक गये । रास्ते में हर जगह सिंहलियों की भी वैसी ही भीड लगती थी जैसी कि तामिलों की । न मालूम कहां से इनमें एकाएक इतना उत्साह, इतनी श्रद्धा जग उठी है । रास्ते में इधर ईसाई पादरी रोकते हैं तो उधर बौद्ध महिलाएँ । तिरनगम के बौद्ध महिला संघ ने जबरन गांधीजी को रोक कर अपना मानपत्र सुनाया और थैली भेट की । मानपत्र का पहला ही वाक्य था, "युग युग के बाद तो आज आपकी पवित्र चरण-रज से यह लंका पुनीत हो रही है ।" इसके आगे है, "हम आपके खादी के संदेश और हम सब की एक समान माता भारत माता की दुःखी संतान के लिए आप के भीख के खप्पर को नहीं भूलेंगी ।" उधर बालापितिया के मानपत्र में था, "इस टापू के स्थायी निवासी आप के देश-वासियों के साथ संबंध भूले नहीं है ।" इसीके बाद मानपत्र में इस पर ताज्जुब जाहिर किया जाता है कि आखिर बौद्धों को उनका बुद्ध गया का मंदिर हिन्दुस्तानी लोग दे क्यों नहीं देते । गैल का स्वागत प्रबंध विद्यार्थियों ने किया तो मतारा के मोटर ड्रायवरों के संघ ने सौ मोटरें अनोखे अनोखे ढंग से सज कर, उनका जुलूस निकाला, गांधी जी को मानपत्र दिया, थैली भेट की और यों बाजी मार ली । वहां के हिन्दुस्तानी जिला जज की पत्नी ने गांधी जी को निमंत्रण दे कर अपने यहां ठहराया था ।

गांधीजी के आक्षेप

हम दक्षिण से फिर कोलम्बो लौटे । यहां फिर कई एक सभाएँ करनी थीं, थैलियां भी थीं, मगर सच पूछिए तो विशाल सामूहिक सभा एक भी नहीं थी । यहां के धनी लोग जन-समूह से इतनी दूर अलग अलग रहते हैं कि मजदूरों की सभाएँ छोड कर, यहां विशाल सामूहिक सभाओं का कोई नाम ही नहीं जानता । कोलम्बो में सिंहली स्त्रियों की सार्वजनिक सभा की घोषणा की गयी थी । मगर धनियों की सार्वजनिक सभा ही कैसी । गिन गिना कर आठ या दस स्त्रियां आयी थीं । गांधी जी को तो हिन्दुस्तान में हजारहां हजार बहिनों को सभा में इकट्ठा देखने का अभ्यास था । वे बेचारे ऐसी सभा में क्या बोलें? मगर यह तो स्त्रियों का दोष नहीं था । इस लिए उन्होंने सभा के प्रबंधकों को वह फटकार सुनायी जो उन्होंने आजीवन कभी नहीं सुनी होगी ।

(पृष्ठ ११५ का अनुसन्धान)

यानी हिन्दूधर्म के लिए हमारे पास जो एक मात्र शब्द था, वह था ब्राह्मण धर्म या ब्रह्म विद्या और उसे नष्ट करके आप हिन्दूधर्म को ही नष्ट करना चाहते हैं। ब्राह्मण लोग जब कभी आपके अधिकारों पर हमला करें, आप उनसे एक एक जौ करके लड़िए, और उन्हें सुधारने का प्रयत्न कीजिए। मगर हर एक ब्राह्मण को गाली देने में तो कोई लाभ नहीं है। ब्राह्मण भी तो सब तरह के हैं एक तो शुरू से अखीर तक सुधारक ही है और दूसरा है सुधार-विरोधी। आपको अपनी ओर सुधारक ब्राह्मणों में से अच्छे से अच्छों को लाना और उनके सहारे रचनात्मक कार्य करना ही होगा, जिससे ब्राह्मणों अब्राह्मणों दोनों का ही उद्धार होगा।

आशा दूसरों से रखते हैं। इस तरह से विचार करते हुए मैंने हिन्दुस्तान में रहनेवाले गुजराती भाइयों को यह बात बार बार कही है कि आप जिन लोगों में रहते हैं, पहले उनका हित देखिए और तब अपना। किसीने इस सलाह की योग्यता में संदेह नहीं किया है। यह हो ही नहीं सकता कि अपने यहाँ आनेवाले विदेशी शासकों से हम एक व्यवहार की आशा रक्खें और हम आप विदेश में जायँ तो हमारे लिए दूसरा ही नियम हो। अगर्चे कि मैं यह नहीं मानता कि हमारे लिए लंका परदेश है, और मुझे यह सुनकर बड़ी खुशी हुई है कि सिंहली लोग भारतवर्ष को मातृ-भूमि मानते हैं, मगर उनके साथ व्यवहार करने में हमें तो अपने आपको विदेशी ही मानना चाहिए। सबसे अच्छा नियम यह है कि जब हम सेवा करना चाहें तभी बिरादरी का दावा करें, न कि हक माँगने के समय। सचमुच मैंने इसी सुनहरे नियम से हिन्दुस्तान में अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार में भी काम लिया है। जैसे कि जब कभी मैं पंजाब, बंगाल या गुजरात के बाहर किसी दूसरे प्रान्त में गया हूँ मुझे गुजरातियों को यह सलाह देने में कभी हिचक नहीं हुई है कि पहले आप उस प्रान्त के लोगों का भला देखिए, पीछे अपना। दुनियवी व्यवहार में मीठा संबंध बनाये रखने के लिए इससे अच्छा कोई उपाय नहीं है और मेरे निष्कर्ष का समर्थन मेरे लंबे अनुभव से यों होता है कि मैंने देखा है कि जहाँ कहीं, इस सुनहरे नियम के पालन में ढील ढाल हुई है, वहीं लोगों में परस्पर झगड़ा तकरार हुआ है, और सिर टूटे हैं। मुझे इस में रत्तीभर भी शक नहीं है कि अगर आप इस नियम का पालन करेंगे तो आप जिस देश से आये हैं, उसकी प्रतिष्ठा बढायेंगे और अपनी भी।"

फिर एक दूसरी सभा में उन्होंने कहा था कि, "मैं चाहता हूं कि आप उसी तरह यहाँ रहें जिस तरह दूध में शक्कर। दूध का कटोरा लबालब भरा हुआ होने पर भी उसमें चीनी मिलाने से दूध गिरता नहीं, बल्कि दूध में ही चीनी अपने लिए जगह बनाकर घुल जाती है, दूध को मीठा बना देती है। उसी तरह आप यहाँ लुटेरे बन कर मत रहिए बल्कि ऐसे रहिए कि जिससे आपके जरिए यहाँ के धनधान्य में वृद्धि हो, मगर आपके जरिए हिन्दुस्तान की बुराइयां यहां घुसने न पावें, आप अपने यहाँ से लाकर अस्पृश्यता का अभिशाप यहाँ भी मत फैलाइए।"

जाफना में

कोलम्बो से हम लोग सीधे जाफना गये। जाफना की कई विशेषताएँ हैं। पहले तो यहां सिंहालियों के बदले तामिलों की ही अधिक बस्ती है और इस लिए यह स्थान दक्षिण भारत सा लगता था। दूसरे यहां एक हिन्दू शिक्षण मंडल है जो अछूतोद्धार का काम भी करता है। तीसरे यहीं के विद्यार्थियों ने पहले पहल गांधीजी को निमंत्रण दिया था और बाद में और लोगों ने उसीके

है वह उसीके समान बन ...

कि मेरी अन्तरात्मा की शक्ति की मर्यादा ...

जैसे कि पश्चिम में भौतिक वस्तुओं ... शोध हुए हैं, उसी प्रकार, धर्म संबंधी, ... ने उससे भी आश्चर्यजनक शोध किये हैं ... सुन्दर शोधों को देखने के लिए हमें आ... सभ्यता ने जो भौतिक उन्नति की है, ... चौंधिया गयी हैं। मैं उस उन्नति पर ... सच पूछिए तो यह ऐसा मालूम पड़ता है ... भारतवर्ष को उस रास्ते उन्नति करने ... भौतिकता की धारा को रोकने का अपना ... सके।

... में पड़नेवाले अनुराधापुर ... हजार वर्ष तक ... २५० वर्ष पुराना बोध... स्थानों में गांधीजी नहीं ... किसी प्रतिनिधि की आंखों ... र ये जगहें भक्त और ...

... लेकर अनुराधापुर आये ... जगाकर ट्रेन में ही ...

आखिर जाफना भी पहुँचे। यहीं के निवासी नागाओं के बारे में लिखा है कि इनके बुने सूती कपड़ों की उपमा सांप की केंचुल हवा का कपड़ा, दूध के फेन वगैरह से दी जाती थी। ये कपड़े इतने बारीक होते थे कि इनका ताना बाना पहचानना कठिन होता था। आज भी आशा होती है कि जाफना के नवयुवक कुछ कर जायँगे। वे शराबखोरी रोकना चाहते हैं, गांवों का पुनरुद्धार करने की कोशिश में लगे हैं और कोलम्बो के उलटे यहां इन लोगों ने गांव में घूम घूम कर थैली के लिए चन्दा जमा किया था। यहां के विद्यार्थियों की सभा भी बहुत बड़ी चीज थी। गांधीजी ने वहां पर चर्खे को मध्यबिन्दु मानकर प्राचीन संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने का संदेश दिया। यह भाषण फिर कभी दूंगा। इसके बाद गांधीजी यहां के विद्यालयों में घुमाये गये। रामनाथन कॉलेज की पुरानी छात्राओं ने ११११) रुपयों की थैली दी और वचन दिया कि "इस दिन को जब कि हमें आपके दर्शनों का सौभाग्य हुआ, हम कभी नहीं भूलेंगी। आपके आने से हमें बड़ा उत्साह मिला है और हम इस दिन की याद बनाये रखने के लिए खादी प्रचार के लिए स्त्रियों का संगठन करना चाहती हैं। इस दिन का वार्षिकोत्सव भी हम खादी प्रचार के लिए कोष जमा करके मनाया करेंगी।" क्या ही अच्छे भाव हैं, और किस तरह प्रकट भी किये गये हैं!

सब जगह के जैसे यहां भी मजदूरों ने सबसे अधिक उत्साह दिखलाया और थैली भेट की। हिन्दुस्तानी समाज भी किसी से पीछे नहीं रहा। नीलाम से भी कोई ८००) रुपये मिले।

मादक-निवारकों के लिए

जाफना में गांधीजी ने अपने सार्वजनिक भाषण में शराबबंदी के सही और गलत तरीके बतलाये। उस भाषण का सारांश नीचे देता हूँ:

"मुझे यह देख कर बड़ी खुशी हुई है कि आपके यहां शराबखोरी बिलकुल बन्द हो जाने पर है। आपने शराब की दूकानें बन्द कर के बहुत बड़ा काम किया है और आप न सिर्फ यहीं के, या सिलोन के, बल्कि मातृभूमि के सभी लोगों के धन्यवाद के भागी हैं। यह देख कर मेरी खुशी और भी बढ़ गयी है कि आप शराबखोरी बिलकुल बन्द कर देने पर तुले बैठे हैं। मगर मुझे पता लगा है कि आपके रास्ते में आन्तरिक कठिनाइयां भी हैं। किसी भाई ने शराबबंदी के विरुद्ध मेरे पास एक छोटी सी किताब भेजी है। अगर वह किताब किसी हिन्दुस्तानी की लिखी है तो उसने अपनी बात ऊँची करने के लिए अपने देशभाइयों की खिल्ली उड़ाने में कुछ रख नहीं छोड़ा है, हालाँ कि उससे और शराबबन्दी से कोई सरोकार नहीं है।

"मगर मैं तो हमेशे ही आलोचकों से भी कुछ न कुछ सीखने लायक बात सीखने में ही विश्वास करता हूँ। मैं आपसे इस बारे

में केवल दो सूचनाएँ कहूँगा। पहली बात है असत्य या जोर जबर्दस्ती की छाया से भी भागे फिरना। मेरी समझ में कोई सुधार जोरोजब्र के बल पर नहीं हुआ है। क्योंकि जबर्दस्ती से भले ही ऊपरी सफलता कभी कभी दिखलायी पडे मगर इससे कई ऐसी बुराइयां उठ खडी होती हैं जो पहली बुराई से भी अधिक बुरी होती हैं। मगर मेरा मतलब समझने में आप भूल न करें। मैं शराब की बिलकुल रोक का कानून बनाने को किसी किस्म का जोरोजब्र नहीं मानता। और जब कि सच्चा लोकमत स्पष्ट रूप में शराब की बिलकुल रोक के पक्ष में जाहिर हो तब यह प्रजा का न सिर्फ अधिकार ही है बल्कि पवित्र कर्त्तव्य है कि वह शराबबंदी का कानून बनवावे और उस कानून को काम में लाने के लिए कोई बात उठा नहीं रक्खे।

"इस किताब में असत्य के ऐसे उदाहरण दिये गये हैं कि खुद शराब पीने वाले लोग शराबबंदी की सभाओं में शामिल होते हैं। अगर ऐसे कई पाखण्डी लोग इस शराबबंदी के आन्दोलन में हों तो बेशक वह असफल होगा। ऐसे न्याय्य, भले और दयालुता के कार्य में मैं आशा करता हूँ कि पाखण्डियों से बचने के लिए भरपूर कोशिश की जायगी।

"दूसरी बात यह है कि कानून बनवा लेने के बाद आप चुपचाप मत बैठें, बैठने का साहस ही नहीं कर सकते। उसके लेखक का कहना है कि अमेरिका में शराबबंदी असफल रही है। मगर मैंने खुद अमेरिकनों के ही मुँह से दूसरी ही बात सुनी है। अमेरिका जैसे देश में शराबबंदी होनी हम लोगों को कितनी ही मुश्किल बल्कि प्रायः असंभव ही क्यों न लगे, मगर वह असफल नहीं हुई है, धीरे धीरे सफल हो रही है। अमेरिका के सुधारकों की बनिस्बत आपके सामने बहुत मामूली कठिनाइयां हैं। मगर आप उनसे थोडा सबक सीखिए। वे न सिर्फ कानून बनाने के बाद कान में तेल डाल कर सोये ही नहीं हैं, बल्कि वे बहुत बडा रचनात्मक काम कर रहे हैं। क्योंकि जब शराब का भूत सिर पर सवार हो जाता है तब आदमी को उससे पीछा छुडाना बडा मुश्किल होता है। इस लिए ऐसे लोगों के लिए अमेरिकन सभी किस्म के उपाय सोच रहे हैं। शराबी के लिए शराब की इच्छा एक तरह की बीमारी है। और जिस तरह आप अपने रोगी भाई या बहिन से व्यवहार करते हैं, वैसा ही व्यवहार आपको उनके साथ भी करना होगा। भट्ठियों के बदले आपको उनके लिए विश्रामगृह या सुन्दर भोजनालय बनाने होंगे, सभी तरह के निर्दोष मनबहलाव देने होंगे। जिनमें वह व्यस्त रहे। आपको यह सुधार करने के लिए सभी तरह की सुविधाएँ प्राप्त हैं। और अगर आप सफल हुए तो आप हिन्दुस्तान के आगे बहुत अच्छा नमूना रख सकेंगे।

"और यह भी याद रखिए कि आपको अपने विरोधियों से अधीर या क्रुद्ध नहीं होना होगा। मुझे पता नहीं कि जो हालत हिन्दुस्तान में है और दुनिया के और हिस्सों में है, वही जाफना में भी है या क्या। मगर मैं जानता हूँ कि हिन्दुस्तान में, इंगलैण्ड में, और अमेरिका में शराबबंदी के विरोधियों के पक्षमें न सिर्फ योग्य और बिना किसी सिद्धान्त के लेखक ही हैं, बल्कि उनकी सहायता को भट्ठीवाले की थैली भी है। मगर आप अगर सत्य और अहिंसा पर अडे रह गये तो फिर आप इन सभी चतुर लेखकों से बाजी मार ले जायँगे।"

बिदाई

लंका ने गांधीजी को उनकी आशा से कहीं अधिक दिया। जब हम कोलम्बो से चले तो चंदे की रकम ८६,०००) के लगभग थी। हमें डर था कि जाफना एक लाख पूरा नहीं कर सकेगा, मगर जाफना तो उससे भी आगे बढ गया। सारी लंका से कुल रकम १,०४,६०८, रुपये ४ आने की मिली है। दरिद्रनारायण की सहायता के लिए जिस किसी ने इस भ्रमण में सहायता की है, वह दरिद्रनारायण के धन्यवाद का भागी है।

कोलम्बो के समान जाफना में बिदाई की कोई सार्वजनिक सभा नहीं थी, मगर तौभी दोनों शहरों में मित्रों की बिदाई तो एकसी ही हृदय-स्पर्शी थी। गांधीजी ने कहा, "आप लोग यकीन करें, मैं हलके दिल से सिलोन से बिदा नहीं हो रहा हूँ। अगर मैं ऐसा प्रबंध कर सकता तो जरूर ही यहां कुछ देर और अधिक ठहरता।" गांधीजी की बडी इच्छा था कि वे यहां के कार्यकर्त्ताओं को कुछ और अधिक समय देते, यहां के बडे नेताओं से और अधिक परिचय करते मगर लाचार थे। मैं आशा करता हूँ कि ये सभी मित्र उनकी इच्छा को जान कर ही संतुष्ट हो जायँगे। मुझे निश्चय है कि वे सभी सत्य और अहिंसा और उनके व्यावहारिक स्वरूप खादी के संदेश का अर्थ समझेंगे।

जैसे कि श्रीयुत डी. बी. जयतिलक ने कहा था, इस भ्रमण की सफलता सिर्फ सिलोनवालों के सत्य, अहिंसा और आत्म-त्याग के आदर्श के प्रति भक्ति-प्रदर्शन में ही है। इस लिए आइए हम आशा करें कि गांधीजी का अन्तिम संदेश बौद्धधर्म के इस देश में जड पकडेगा, फूलेगा और फलेगा। मैं अस्पृश्यता और शराबखोरी के संबंध का अंश छोड देता हूँ। चर्खे के बारे में उन्होंने यह कहा:

"मैं जानता हूँ और मुझे जान कर इसकी खुशी है कि आप इस देश में रहनेवाले भारत की मारक भूखमरी से अपरिचित हैं, जिससे वहां करोडों आदमी दुःख उठा रहे हैं। इस लिए शायद चर्खे का आपके लिए कोई आर्थिक महत्व नहीं है। पर इस महान देश के लिए उसके बडे भारी सांस्कृतिक महत्व में तो मुझे कुछ संदेह है ही नहीं। इसका जीता जागता सादगी का संदेश तो सभी देशों के लिए उपयुक्त है और आप यह जरूर कबूल करेंगे कि अगर आप के लडके लडकियां या स्याने ही आदमी एक घंटे सूत कात कर कपडे के बारे में देश को स्वावलंबी बनावें तो, इससे आपकी कोई हानि नहीं होगी, उलटे आपका गौरव बढेगा और आत्मविश्वास बढेगा। मैं नवयुवकों में फेशन का शौक बढता देख कर काफी तरद्दुद में पड जाता हूं। वे यह बात जरा भी नहीं जानते कि पश्चिम की इस चमक दमक में पड कर वे अपने ही देश के गरीबों से अलग जा पड रहे हैं जो उन फेशनों को कभी शुरू ही नहीं कर सकते। मैं समझता हूँ कि राष्ट्र का यह बडा भारी दुर्भाग्य होगा, उसके हक में दुर्घटना होगी, अगर आप अपनी सादगी को उस नकली चमक दमक से बदल लेवें। मगर आप चर्खे का यह सांस्कृतिक महत्व समझें या न समझें तौभी इतना तो है ही कि आपने अपनी खुशी से यह बात बार बार कही है कि हम भारतमाता के प्रति भक्ति रखते हैं उसके प्रति अपना कर्त्तव्य स्वीकार करते हैं। आपने उदारता के साथ थैलियां भर भर कर अपने इस संबंध का पक्का सुबूत दिया है। तब मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस संबंध को और भी दृढ करें और इसके लिए खादी के कपडे भी काफी व्यवहार कीजिए। आपकी मिहर्बानियों का जरा भी बदला चुकाने की मुझमें ताकत नहीं है। मगर मुझे तो इसमें शक ही नहीं है कि वे गूँगे, दीन हीन, भूखे करोडों आदमी अपनी थैलियां खोल कर उनकी सहायता करने के कारण आपको असीसेंगे और उनके प्रतिनिधि का हैसियत से मैं परमात्मा से यही प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको वे सब बातें देवे जिनके कि आप योग्य हों।

(यं० इं०)

महादेव देशाई

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, मार्गशीर्ष सुदी ३० संवत् १९८४

हिन्दू-मुसलिम ऐक्य

हाल में जब मैं दिल्ली गया था डाक्टर अंसारी ने मुझे कहा कि 'मैंने कलकत्ते में विश्वस्त आदमियों के मुँह से सुना था कि आपको हिन्दू-मुसलिम ऐक्य में न तो विश्वास रहा है और न दिलचस्पी ही और आप अली बिरादरान जैसे मुसलमान दोस्तों से अलग ही अलग बचे फिरते हैं।' इसलिए डाक्टर अंसारी ने सुझाया कि मैं दिल्ली की किसी सार्वजनिक सभा में अपना विश्वास जाहिर करूँ। मैं इस सलाह को और नहीं तो इसी लिए नहीं मान सका कि हकीम साहेब अजमलखां और स्वामी श्रद्धानंद की दिल्ली आज गुंडों की दिल्ली हो रही है जहाँ मेरे लिए ठहरना भी मुहाल है, भाषण की तो कोई बात ही नहीं। खेर मैंने डाक्टर अंसारी से वायदा किया कि जितनी जल्दी हो सकेगी मैं अपनी स्थिति साफ करने की कोशिश करूँगा। अब मैं वह करता हूँ।

हिन्दू-मुसलिम एत्तहाद और दूसरे सभी समाजों में एकता में मेरा विश्वास पहले ही जैसा दृढ है। हाँ, उसे सफल करने का मेरा तरीका बदल गया है। पहले मैं सभाएँ करने, प्रस्ताव करने में शामिल होता था, और इस तरह एकता करना चाहता था। अब इन बातों में मेरा विश्वास नहीं रहा गया है। उनके लिए हमारे यहाँ वातावरण नहीं है। अविश्वास, शक, डर और असहायपने से भरी हुई हवा में, मेरी समझ में इन तरीकों से एकता होने के बदले, उसमें बाधा पडती है। मैं, इसलिए परमात्मा से प्रार्थना और ऐसे दूसरे व्यक्तिगत दोस्ताना कामों पर भरोसा रखता हूँ। इसलिए एकता पैदा करने के लिए की गयी सभाओं में जाने की मुझे कोई ख्वाहिश नहीं रही है। तौभी इसके मानी यह नहीं है कि मैं ऐसे प्रयत्नों को बुरा समझता हूँ। इसके उलटे, जिन्हें वैसी सभाओं में विश्वास है, वे उन्हें जरुर करें। मैं उनकी पूरी सफलता चाहूँगा।

दोनों ही जातियों की मनोवृत्ति से मेरा मेल नहीं बैठता। अपने खयाल से दोनों ही कह सकते हैं कि मेरा तरीका असफल रहा है। मैं जानता हूँ कि जिनकी राय की कुछ कीमत है, उन लोगों के बीच में अत्यन्त ही लघुसंख्यक दल में हूँ। इन सभाओं वगैरह में शामिल होकर मैं कोई उपयोगी सेवा तो कर नहीं सकता। और चूंकि सच्ची एकता को स्थापित देखने के सिवाय मेरा दूसरा स्वार्थ नहीं ह, इसलिए जहाँ मैं हाजिर होकर सेवा नहीं कर सकता, वहाँ मैं न जाना ही कुछ सेवा समझता हूँ।

मेरे लिए तो सत्य और अहिंसा को छोड कर और किसी जरिए आशा नहीं है। मैं जानता हूँ कि जब सब कुछ असफल होगा, तब वे सफल होंगे। इस लिए चाहे मैं एक की लघुसंख्या में हो जाऊँ या मेरी ओर बहुमत हो मगर मैं तो वही रास्ता चलूँगा जो मुझे जान पडता है कि ईश्वर दिखलाते हैं। महज सामयिक नीति के तौर पर तो आज अहिंसा किसी काम की नहीं है। यह वैसी नीति के तौर पर तभी कारगर हो सकती है जब कि हमारे बीच इसके विरुद्ध चलनेवाली शक्तियां न होवें। मगर जब कि हमारा उनसे मुकाबिला पडता है जो हिंसा से खास हालतों में काम लेना अपना ध्येय मानते हैं तो, काम चलाऊ नीति के तौर पर अहिंसा का सहारा टूट जाता है। अहिंसा में पूर्ण विश्वासी के विश्वास की कसौटी का समय तभी आता है। इस लिए मैं और मेरे विश्वास, दोनों की ही आज कसौटी हो रही है। और अगर हम सफल होते माल[...] न पडें तो आलोचक मेरे ध्येय को दोष देने के बदले मुझे दो[...] देवें। मैं जानता हूँ कि कभी कभी मैं अपने ध्येय के विरुद्ध ल[...] को लाचार हो जाता हूँ। अब तक मैं ऐसा नहीं बन सका हूँ [...] अहिंसा का विचार भी न कर सकूँ। मगर परमात्मा की दी हुई सा[...] शक्ति लडा कर मैं प्रयत्न कर रहा हूँ।

अब शायद पाठक समझ गये होंगे कि मैं पहले जैसा अली बिरादरा[न] के साथ क्यों नहीं रहता। अब भी मैं उनकी मुठी में हूँ। वे अ[...] भी मुझे सगे भाइयों जैसे प्रिय हैं। मुसलमानों के गाढे दिन [...] उनका साथ देने के लिए मुझे अफसोस नहीं है। अगर फिर अव[सर] आया तो मैं वही करूँगा। परन्तु अगर्चे कि हम दोनों का उद्दे[श्य] एक ही है मगर रास्ते एक नहीं हैं। वे तो मुझे शिमले औ[र] कलकत्ते की सभाओं में ले जाते। कोहाट के दंगे के बाद [...] घटनाओं को समझने में हम लोग एक राय नहीं हो सके हैं। म[...] वह दोस्ती ही किस काम की जो इसी पर निर्भर हो कि हर [...] में हमारी रायें मिलती रहें। सच्ची दोस्ती ऐसी होनी चाहिए [...] सच्चे मतभेद को, चाहे वह कैसा ही तीव्र क्यों न हो, बरदाश्त क[...] मैं मानता हूँ कि हमारे मतभेद सच्चे हैं और इस लिए जो मेरे औ[र] अलीबिरादरान तथा दूसरे मुसलमान मित्रों के बीच, जिनका न[...] पाठक सहज ही बूझ सकते हैं, जिन्हें दोस्ती के टूटने या उस[...] कमी का शक था, जान जायँ कि वह पहले जैसी ही अब भी प[...] बनी हुई है।

(यंग इंडिया) **मोहनदास करमचंद गांधी**

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय २९

घर में सत्याग्रह

जेल का पहला अनुभव मुझे १९०८ में हुआ। उस बीच [...] देखा कि जेल में जो कितने एक नियमों का कैदियों से पा[लन] कराया जाता है, उनका पालन ब्रह्मचारियों और संयमियों को स्वे[च्छा] से करना चाहिए*। जैसे कि कैदियों को सूर्यास्त के पहले सांझ [...] पांच बजे तक खा लेना चाहिए। उन्हें — हिन्दुस्तानी और ह[...] दोनों को ही — चाय या कॉफी नहीं दी जाती थी। स्वाद के लि[ए] तो कुछ खाना ही नहीं था। मैंने जेल के डाक्टर से 'क[री] पाउडर (शोरबे का मसाला) माँगी और भोजन बनाते ही स[...] नमक डालने को कहा था। इस पर वह बोला, 'यहां तुम लोग स्[वाद] के लिए नहीं आये हो। आरोग्य की दृष्टि से 'करी' पाउडर [...] कोई जरूरत नहीं है। नमक उपर से लो या पकाते ही स[...] डाल लो, आरोग्य की दृष्टि से इनमें कोई अन्तर नहीं है। [...] तो बहुत मिहनत से हम जरूरी फेरफार करा सके, परन्तु के[...] संयम की दृष्टि से तो दोनों प्रतिबंध सुन्दर ही थे। दूसरे [...] ओर से जब्रन ऐसे रोक रहने से कोई लाभ नहीं होता, [...] स्वेच्छा से पालने पर ये रोक बडे उपयोगी हो पडते हैं।

---

* मेरे जेल के अनुभव भी पुस्तकाकार छप चुके हैं। मूल पु[स्तक] गुजराती में लिखी गयी थी और उसका अंगरेजी अनुवाद भी [...] था। मुझे ख्याल है कि दोनों मिल सकती हैं। **मो० क० गां[धी]**

ये पुस्तकें नवजीवन कार्यालय में नहीं मिलतीं। शायद हि[न्दी] अनुवाद प्रकाश पुस्तकालय, कानपुर से मिल सकेगा।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

इसलिए जेल से निकलने के बाद मैंने दो फेरफार तुरत किये। जहां तक हो सके चाय लेना बंद किया और सांझ को दिन रहते खाने की टेव डाली जो आज स्वाभाविक बन गयी है।

पर ऐसा भी एक प्रसंग आ पडा कि नमक का भी त्याग किया और यह त्याग दश वर्ष तक अखंड कायम रहा। अन्नाहार संबंधी कई किताबों में पढा था कि आदमी के लिए नमक खाना जरूरी नहीं है और न खानेवाले को आरोग्य की दृष्टि से लाभ ही होता है। यह तो मुझे सूझ ही गया था कि उससे ब्रह्मचारी को लाभ होता है। यह भी मैंने पढा और अनुभव किया था कि निर्बल शरीरवालों को दाल वगैरह नहीं खानी चाहिए। पर मैं उसे तुरत नहीं छोड सका था। दोनों वस्तुएँ मुझे प्रिय थीं।

उस नश्तर के बाद गोकि कस्तूरबाई को रक्तस्राव होना कुछ समय के लिए बंद रहा था, पर पीछे वह उखड पडा। वह किसी तरह छूटता ही नहीं था — पानी के इलाज बेकार निकले। पत्नी को अगर्चे कि मेरे उपचारों पर बहुत आस्था नहीं थी, मगर तिरस्कार भी नहीं था। दूसरी दवा कराने का आग्रह नहीं था। इसलिए जब मेरे दूसरे उपचारों में सफलता नहीं मिली तो मैंने उससे नमक और दाल छोडने की विनय की। बहुत मनाने, अपनी बात के समर्थन में कुछ कुछ पढ कर सुनाने पर भी वह मानती ही नहीं थी। अंत में उसने कहा, "दाल और नमक छोडने को कोई आपसे कहे तो आप भी न छोडेंगे।" मुझे दुःख हुआ और हर्ष भी हुआ। मुझे अपना प्रेम ढलकाने का अवसर मिला। उस हर्ष में मैंने तुरत ही कहा, "तुम्हारी धारणा गलत है। मैं बीमार होऊँ और वैद्य यह वस्तु या और दूसरी कुछ छोडने को कहे तो जरूर छोड दूं। पर जा, मैंने तो एक वर्ष के लिए दाल और नमक, दोनों ही छोड दिये। यह तो दूसरी ही बात है कि तुम छोडो या न छोडो।"

पत्नी को भारी पश्चात्ताप हुआ। वह बोली, "मुझे माफ करो। तुम्हारा स्वभाव जान कर भी, यह बात मुंह से निकल गयी। अब तो मैं नमक या दाल नहीं खाऊँगी। पर आप तो अपना वचन लौटाइए। यह तो मेरी बहुत बडी सजा हुइ।"

मैंने कहा, "तुम दाल और नमक छोडो तो बहुत ही अच्छा। मुझे पूरा विश्वास है कि इससे तुम्हें फायदा ही होगा। पर ली हुई प्रतिज्ञा मुझसे नहीं लौटती। मेरा तो लाभ ही होना है। चाहे जिस निमित्त से आदमी संयम का पालन करे तौभी उसमें लाभ ही लाभ है। इसलिए मुझसे आग्रह मत करना। इसके अलावा मुझे भी मेरी परीक्षा हो जायगी और तुमने दो वस्तुएँ छोडने का जो निश्चय किया है, उसपर कायम रहने में तुम्हें भी मदद मिलेगी।" इसके बाद तो मेरे लिए मनाना भी तो रहा ही नहीं। "तुम तो बहुत हठीले हो। किसीका कहना तो मानना ही नहीं है।" यह कह कर छै छै पाँती आंसू ढाल कर शान्त रही।

इसे मैं सत्याग्रह कहना चाहता हूँ और अपनी जिन्दगी के मीठे संस्मरणों में से एक गिनता हूँ।

इसके बाद कस्तूरबाई की तबीयत खूब सँभली। यह मैं नहीं कह सकता कि इसमें नमक और दाल का त्याग कारणभूत था या किस अंश तक कारणभूत था अथवा उस त्याग के कारण भोजन में होनेवाले कई एक फेरफार कारणरूप थे, या उसके बाद दूसरे नियमों का पालन कराने में मेरी चौकसी निमित्त थी, या ऊपर के किस्से से होनेवाला मानसिक उल्लास कारण था, मगर कस्तूरबाई का शरीर जुटना शुरू हुआ, रक्तस्राव बन्द हुआ और वैद्यराज के रूप में मेरी साख कुछ बढी।

खुद मेरे ऊपर तो इन दोनों त्यागों का अच्छा ही असर पडा। छोडने बाद नमक या दाल की तो इच्छा सी भी न रही। वर्ष तो बात की बात में बीत गया। इन्द्रियों की अधिक शान्ति का अनुभव करने लगा, और संयम की ओर मन अधिक दौडने लगा। वर्ष के अन्त के बाद भी कहा जायगा कि ठेठ देश में आने तक वह त्याग कायम रहा। सिर्फ एक ही बार विलायत में सन् १९१४ ई० में नमक और दाल खायी थी। पर यह कि वह किस्सा देश में आने बाद फिर कैसे पलटा अभी पीछे कहूँगा।

नमक और दाल छोडवाने के प्रयोग मैंने दूसरे साथियों पर भी खूब किये और द० अफ्रिका में तो उसका परिणाम भी अच्छा ही हुआ। वैद्यक की दृष्टि से दोनों वस्तुओं के त्याग में भले ही मतभेद होवे पर संयम की दृष्टि से तो इसमें लाभ ही लाभ है। भोगी और संयमी की खूराक जुदा, उनका रास्ता भी जुदा ही होना चाहिए। ब्रह्मचर्य पालन की इच्छा रखनेवाले भोगी का जीवन बिता कर ब्रह्मचर्य को कठिन और कितनी बार अशक्य कर डालते हैं।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

लंका महासभा को संदेश

[लंका राष्ट्रीय महासभा ने सार्वजनिक सभाभवन में गांधीजी का स्वागत किया था। सभापति के स्वागत अभिभाषण के उत्तर में दिये गये गांधीजी के भाषण का अनुवाद नीचे दिया जाता है।

म० दे०]

आपने जिन शब्दों में मुझे याद किया है, उनके लिए और प्राचीन काल में भारत और लंका का संबंध जब स्थापित था, तब की उस सुखद स्मृति की याद दिलाने के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं उस संबंध पर अपना मत प्रकट करने में आपका समय लेना नहीं चाहता। मगर इतना मैं कहूँगा कि गौतम बुद्ध की शिक्षाएँ कोई नया धर्म नहीं थीं। जहां तक मैं उन उच्च शिक्षाओं का अध्ययन कर सका हूँ, मैं इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ, और वह आज नहीं बल्कि बहुत दिन पहले ही पहुँच चुका था। हिन्दू धर्म के सबसे बडे सुधारकों में से गौतमबुद्ध एक थे और वे अपने जमाने के लोगों पर और आगे की पीढियों पर वह छाप छोड गये हैं जो कभी मिट नहीं सकती। मगर मेरा समय इतना कम है कि इस अत्यन्त रोचक विषय को लाचार छोड ही देना पडेगा। इस लिए मैं महासभा संबंधी दुनियबी बातों पर अब आता हूँ।

महासभा की नींव

आज हिन्दुस्तान की महासभा के नाम में जादू भरा हुआ है। इस संस्था के पीछे ४० वर्ष के अनवरत काम का इतिहास है। आज हिन्दुस्तान में इसकी जितनी इज्जत है, उतनी किसी दूसरी राजनीतिक संस्था की नहीं है और वह कितने उतार चढाव के होते हुए भी बनी हुई है। इस लिए मैं यह मान लेता हूँ कि अपनी सभा का भी नाम कांग्रेस ही रखते हुए आप से जहां तक हो सके आप उसी संस्था की परंपरा का पालन करते हैं। इसी आधार पर मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि कँाग्रेस कैसी होनी चाहिए और भारत की राष्ट्रीय महासभा कैसे इतनी प्रतिष्ठा पैदा कर सकी है। मैं जानता हूँ कि मेरा, उसके साथ १० साल का — या अब तो १२ साल का भी कह सकता हूँ — संबंध है। मगर जैसा कि आपको मालूम है, इन १२ सालों तक कँाग्रेस के साथ मेरा इतना निकट संबंध रहा है, मैं उससे इतना मिला हुआ रहा हूँ कि अब कुछ प्रामाणिकता के साथ उसके बारे में आपसे बातें कर सकता हूँ। मगर दूसरी दृष्टि से मेरा उसके साथ ३० साल का पुराना संबंध कहा जायगा। सन् १८९३ में द० आफ्रिका जाने पर मेरे मन में महासभा स्थापित करने का ख्याल उठा। मैं महा सभा के बारे में थोडा बहुत जानता था मगर

उसकी एक भी सालाना बैठक में शामिल नहीं हुआ था । आप लोगों के समान ही मैंने नवयुवक के रूप में वहां नेटाल-हिन्दुस्तानी महासभा स्थापित करने में हाथ बँटाया । वह सभा भारतीय राष्ट्रीय महासभा के ढंग पर बनी थी, मगर स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार जरूरी फेरबदल भी कर लिये थे । इस लिए मैं १८९३ से बाद से अपने सार्वजनिक जीवन का अनुभव आपको बतला सकता हूँ । मैं उसी समय १८९४ में ही यह समझ सका था कि किसी सभा को सचमुच में राष्ट्रीय कहलाने के लिए जरूरी है कि उसके कार्यकर्ता काफी स्वार्थ त्याग करें या मैं तो कहूँगा कि उसके मुख्य कार्यकर्त्ता खूब स्वार्थ त्याग करें । मुझे आपके सामने यह कबूल करने में कोई हिचक नहीं है कि हमारे उस छोटे समाज में भी इस सिद्धान्त से काम लेना मैंने बहुत मुश्किल पाया । हमारे समाज में गिन गिना कर ६० हजार आदमी तो थे ही, उनमें भी अधिकाश को महासभा में मत देने का अधिकार नहीं था । खैर, तौभी महासभा पूरी प्रतिनिधिक थी और लोगों के सभी हितों की पर्वा रखती थी क्योंकि उसने अपने को उन लोगों के हिताहित का रक्षक बना लिया था । मगर उस सभा का इतिहास तो यहां कहना नहीं है । उस छोटी सभा में भी मैंने देखा कि आपस में झगडे होते ही थे, सेवा से अधिक इच्छा अधिकार पाने की लोग करते थे, अपने को बडा बनाने की जितनी चाह थी, उतनी अपने को मिटा देने की नहीं और इस मूल महासभा में भी इन १२ वर्षों से मैं लगातार देखता आ रहा हूँ कि अधिकारप्राप्ति की ही कोशिश की जाती है । हमारे जैसे आप के लिए भी जो अपने पैरों आप खडे होना चाहते हैं, स्वराज्य, और आत्म-प्रकाश की योग्यता दिखलाना चाहते हैं, और अगर आप जीते रहना और आगे बढना चाहते हैं स्वार्थ का त्याग करना, अपने आप को नष्ट कर देना और अपना संयम करना परमावश्यक है ।

स्वराज्य का अर्थ

मैं यह दावा नहीं करता कि यहां आने पर इन दो चार दिनों में ही मैंने आपकी महासभा की भीतरी कार्यवाही समझ ली है । मुझे पता नहीं कि वह कितनी सबल और लोकप्रिय है । मैं तो यही आशा कर सकता हूँ कि वह सबल और लोकप्रिय होगी । मुझे आशा है कि मेरे बतलाये दोष आप में न होंगे । मुझे यह बखूबी मालूम है कि सरकार से, और खास कर जब वह विदेशी हो, अपने पूरे विस्तार, आत्म-प्रकाशन के लिए झगडना बडा ही रोचक मन बहलाव है और आप को मालूम है कि मैं इसका मजा खूब उठा चुका हूँ । लेकिन आखिर मैं इस नतीजे पर भी आया हूँ कि स्वराज्य और आत्म-प्रकाशन कोई ऐसी चीजें नहीं हैं जो दूसरा कोई हमसे ले सके या हमें दे सके । यह बिलकुल सच है कि अगर वे लोग जिनके हाथों में शक्ति और अधिकार हो, जिनके हाथों हमारे भाग्य की कुंजी पडी मालूम पडती हो, अगर सहानुभूति रक्खें, हमारी महत्वाकांक्षाओं को समझें, हमारी ओर भले प्रकार मुतवज्जह हों तो बेशक हमारे लिए उन्नति करनी सहज होगी । मगर आखिर स्वराज्य निर्भर करता है हमारी ही आन्तरिक शक्ति पर, कठिनाइयों से जूझने की ताकत पर । सच पूछो तो वह स्वराज्य जिसे पाने के लिए अनवरत प्रयत्न और बचाये रखने के लिए अविश्राम जागृति नहीं चाहिए, स्वराज्य कहलाने के काबिल ही नहीं है । जैसा कि आपको मालूम है, इस लिए मैंने यह वचन और कार्य से दिखलाने की कोशिश की है कि राजनीतिक स्वराज्य या बहुत से आदमियों का स्वराज्य, एक एक शख्स के अलग अलग स्वराज्य से कोई ज्यादा अच्छी चीज नहीं है और इस लिए उसे पाने का तरीका वही है जो एक एक आदमी के आत्म-स्वराज्य या आत्म-संयम का है । यही बात मैंने हिन्दुस्तान में, मौके बे मौके हर जगह कहने की कोशिश की हैं, जिससे अकसर महज राजनीतिक प्रवृत्तिवाले आदमी चिढ भी जाते हैं ।

राजनीति को धार्मिक बनाइए

मैं उस राजनीतिक दल का हूँ जिसके प्रधान गोखले थे । मैंने उन्हें अपना राजनीतिक गुरु कहा है, और वह इस लिए नहीं कि उनकी हर एक बात को मैं स्वीकार करता हूँ या उनके हर एक विचार से सहमत हूँ, बल्कि इस लिए कि उनके जीवन की मुख्य चालिका शक्ति थी, 'राजनीति को धर्म-प्रधान बनाने' की उनकी उत्कट अभिलाषा । मैं उनके निकट सबसे अधिक पहुँचा था और मैं यही समझ सका था । भारत सेवक संघ के विवरण की भूमिका में उन्होंने ये शब्द लिखे थे । उन्होंने खूब समझ बूझ कर लिखा है कि मैं राजनीति को धार्मिक बनाने के लिए ही यह संघ स्थापित करता हूँ । उन्होंने केवल अपने ही आसपास, सिर्फ अपने ही देश की राजनीति का अध्ययन नहीं किया था, बल्कि वे इतिहास के गंभीर विद्यार्थी थे । उन्होंने संसार के भिन्न २ देशों की राजनीति का मनन किया था, और उन्हें यह देख कर बडा कष्ट होता था कि धार्मिकता या धर्मनीति और राजनीति में कहीं कोई सरोकार ही नहीं है । इस लिए उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा कर राजनीति में धर्मनीति को घुसाने का प्रयत्न किया और मैं कहूँगा कि इसमें उन्हें कुछ सफलता मिली भी । इसी लिए उन्होंने अपनी सभा का नाम भारत-सेवक-संघ रक्खा था । आज वह संघ अनेकों प्रकार से देश की सेवा कर रहा है । पता नहीं आपको ये बातें रुचती हैं या नहीं मगर मुझे अगर आपकी मिहरबानियों का कोई बदला देना है तो मैं वही कह सकता हूँ जो मुझे सच मालूम होता है और आपको महज खुश करने के लिए इधर उधर की बातें नहीं कह सकता । आपको पता होगा कि यह खास चीज—सत्य—हमारी महासभा के मंतव्य का अनिवार्य अंग है । इस लिए हमारा मंतव्य है वैध और शान्तिमय तरीकों से स्वराज्य प्राप्त करना ।

आप देखेंगे कि यह बात कहने में मैं कभी नहीं थकता कि चाहे जो हो जाय मगर सत्य और अहिंसा पर दृढ रहना चाहिए । मेरी नम्र सम्मति में अगर ये दोनों शर्तें पूरी हो जायँ तो आप दुनिया की किसी शक्ति का मुकाबला कर सकते हैं और अंत में न तो आप का कुछ बिगड़ होगा । और न आपके उस नामके विरोधी का बाल भी बांका हुआ होगा । उस समय हो सकता है वह कि वह आपके अहिंसामय बातों का मतलब न समझ सके, वह आपके बारे में गलतफहमी फैलाये मगर जबतक आप सत्य और अहिंसा पर डटे खडे हैं आपको उसकी राय या भावों की पर्वा करने की जरूरत नहीं है । तब आपके लिए यह ठीक ही होगा और आप और तरीकों से कहीं अधिक तेजी से आगे बढ सकेंगे । यह रास्ता देखने में लंबा मालूम पड सकता है, मगर आप अगर मेरे ३० साल के निरंतर अनुभव पर यकीन करें तो मैं कहता हूं कि यही रास्ता सफलता के लिए सबसे छोटा है । मैंने इससे छोटा रास्ता नहीं सुना है । मैं जानता हूँ कि अकसर इसके लिए बहुत अधिक विश्वास और धैर्य की जरूरत पडती है, मगर जब वह एक चीज दिल में पैठ गयी तो फिर जो राजनीतिक, अपनी नहीं, देश की सेवा करना चाहता है, उसके लिए दूसरा रास्ता नहीं रह जाता । एक बार वह निश्चय कर लेने के बाद मन में विश्वास पैदा होता है और क्योंकि आप जान जाते हैं कि इससे छोटा रास्ता दूसरा नहीं है ।

साम्प्रदायिकता का रोग

मुझे भय है कि हिन्दुस्तान के जैसे आप भी सम्प्रदायों और समाजों में बँटे हुए हैं । आज ही मैंने साम्प्रदायिकता के सम्बन्ध में कहीं कुछ पढा था । हिन्दुस्तान में भी हमें यह रोग है ।

हम इसे रोग समझते हैं, इसकी तारीफ नहीं करते। जो साम्प्रदायिकता में विश्वास करते हैं वे भी खुलासा कहते हैं कि यह अनिवार्य दोष है, इससे जितनी जल्दी हो पिण्ड छुडाना ही होगा। हिन्दुस्तान में हमें तीस करोड आदमियों से काम लेना है, मगर यहाँ तो आप लोग इतने कम आदमी हैं कि मुझे साम्प्रदायिकता का जोरदार समर्थन सुनकर कष्ट और आश्चर्य दोनों हो रहा है। पर मैं जानता हूँ कि यह राष्ट्रीयता के बिलकुल बरक्स है। और आप को स्वराज्य की इच्छा है और होनी ही चाहिए। स्वराज्य कुछ एक ही देश का जन्मसिद्ध अधिकार नहीं है बल्कि सभी देशों का — मुझे लाचार होकर कहना पडता है कि जंगलियों का भी जन्मसिद्ध अधिकार है। तब उनके बारे में क्या कहा जाय जिन्हें प्रकृति ने सब कुछ दिया है जो वह दे सकती थी, जिस दान से आप संसार की शक्तियों में से एक बन सकते थे, मगर तौभी आप स्वराज्य से बहुत दूर पडे मालूम पडते हैं। मैं यह नहीं मानता कि आप में कोई ऐसे होंगे जो इसपर खुश होंगे कि उन्हें वह शासन मिल गया है जिसे मैं स्वराज मानता हूँ। और जब तक आप एक स्वर से नहीं बोलते, ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, हिन्दू, यूरोपियन, सिंहली, तामिल और तेलुगु का भेद भूल कर एक राष्ट्र के एक स्वर से नहीं बोलते वह स्वराज्य नहीं मिलेगा, नहीं मिल सकता है।

कार्यकर्त्ताओं को सारा समय देना होगा

जैसा कि आपने कहा था आप सभी जातियों और धर्मों के प्रतिनिधि हैं। अगर आप इस दावे को साबित कर सकें तो आप प्रशंसा पात्र हैं और न सिर्फ आपकी महासभा की ही, बल्कि आपकी भी नकल हमें करनी चाहिए। हमारी संस्था पुरानी है तौभी मुझे शर्म से कबूल करना पडता है कि हम यह दावा नहीं कर सकते। हम प्रयत्न कर रहे हैं, हम अंधेरे में टटोल रहे हैं, हम प्रान्तीयता को दबाने की कोशिश करते हैं, जातीयता को दबाते हैं, और अगर मैं नया शब्द बनाऊँ तो धर्मपना को दबाते हैं, और राष्ट्रीयता का विकास करने की कोशिश करते हैं, मगर तौभी हम इससे दूर ही पडे हुए हैं। मगर आप दौड में हमसे आगे बढ जा सकते हैं। आपके लिए यह सहज है, हमारी निस्बत तो बहुत ही अधिक सहज है। मगर एक शर्त लाजिमी है, और वह यह है कि आप में से कुछ लोगों को इसमें अपना सारा समय देना होगा — सिर्फ समय ही भर नहीं बल्कि अपने आपको पूरा पूरा दे देना होगा, और अपनी इच्छाओं का दमन करना होगा, अपने आपको भुला देना पडेगा। जैसा कि गोखले कहते थे, राजनीति तो आज फुर्सत का खिलवाड बन रही है जब कि उसे कुछ लोगों का एकमात्र काम, देश के कुछ योग्यतम आदमियों का एकमात्र कार्य होना चाहिए था। कोई आदमी राष्ट्र की सेवा में स्वार्थ त्याग कर तभी लग सकता है जब वहां सत्य, निर्भयता और अहिंसा की मुख्यता हो।

मैं आशा करता हूँ कि आपकी महासभा में ऐसे स्त्रीपुरुष होंगे। स्त्रियाँ भी होंगी क्योंकि उन्हें भी पुरुषों के साथ साथ चलना ही है। जैसा कि मैंने हिन्दुस्तान में कहा है, हमारे एक अंग को लकवा मारे हुए है। स्त्रियों को पुरुषों के बराबर उठना है। मैंने आज स्त्रियों की एक सभा में कहा था कि तुम पुरुषों की वहशियत या जंगलीपने में नकल मत करो मगर उनमें जितनी अच्छी चीजें हैं उन सबमें उनकी बराबरी करो। तब आपके इस टापू में बडा ही सुन्दर मेल बैठेगा, आपको प्रकृति ने जो दान दिये हैं, आप उनके योग्य तब बनिएगा।

दुहरे कलंक को पोंछो

कैन्डी से आज सबेरे कोलोम्बो आते समय मैं सोच रहा था। कि लंका को उस आग, उस जहरीले पानी यानी मदिरा से बचाने के लिए महासभा क्या करने जा रही है? मैं आपको एक नम्र सूचना देता हूँ। अगर महासभा को पूरा पूरा राष्ट्रीय बनना है तो वह इस महत्वपूर्ण सामाजिक मसले को यों ही नहीं छोड सकती। यहां-जहां कि बनावटी मस्ती की कोई जरूरत नहीं है, आपके लिए यह शर्म की बात है कि आपकी आमदनी का एक काफी बडा हिस्सा शराब से आवे। संभव है आप यह नहीं समझते हों कि मजदूरों का, जिनके आप रक्षक हैं, और जिनका मत केवल एक बार आपके पक्ष में मत देने में जाहिर होता है, इससे क्या बिगड रहा है। मैंने हजार हाँ हजार मजदूरों को हैटन में देखा। मैं तो गंध बिलकुल ही नहीं पहचान सकता, मगर एक मित्र ने मुझे बतलाया कि उनमें कुछ के शरीर से शराब की महक आ रही थी। वे तो इस पर धूम मचा रहे थे कि उनका कोई साथी शराब के नशे में पगला हो रहा था। खैर मुझे मालूम है कि आप क्यां कहेंगे। आप यही न कहेंगे कि ज्यादा पीना बेशक बुरा है, मगर थोडी सी शराब पीने में कोई हर्ज नहीं है? वह हालत तो अधिक पीने से हुई थी। मैं जानता हूँ कि कई आदमियों ने यही दावा किया और वे बडे बुरे तौर पर असफल हुए। मैं दक्षिण अफ्रिका के शहरों में हो आया हूँ। मैंने वहां हबशियों, यूरोपियनों और हिन्दुस्तानियों को शराब के नशे में चूर नालियों में पडा पाया है। मैंने वकीलों, बारिस्टरों को शराब के नशे में मोरियों में पडे हुए देखा है। उन्हें पुलिस के सिपाही उनकी लाज ढँकने के लिए उठा ले जाते थे। मैंने शराब के नशे में पागल हो गये कप्तानों को देखा है कि जो अपने मुसाफिरों के रक्षक होकर भी अपनी ही कोठरी बिगाडते हैं। जैसा कि आप हिन्दुस्तान में भक्ति का दावा रखते हैं, रामायण की कथा के जरिये, हिन्दुस्तान से अपना संबंध जोडते हैं, आपको रामराज्य से कम में जिसमें कि स्वराज भी शामिल है संतुष्ट नहीं होना चाहिए। आज यह अभिशाप इस देश के कोने कोने में फैला हुआ है। आपको इस लिए इस प्रश्न को हल करने में पूरे मनोयोग से लग जाना चाहिए और देश को सर्वनाश से बचाना चाहिए।

तब फिर अस्पृश्यता है। आप रोडियों को अछूत मानते हैं और उनकी स्त्रियाँ अपने शरीर के ऊपरी अंग ढांक नहीं सकतीं। महासभा को तो अब तक रोडियों का मसला अपने हाथ में ले लेना चाहिए था, उनकी उन्नति के लिए उनमें से स्वयं सेवक बनाने शुरू कर देना चाहिए था। जब तक अधिकार में सबको हिस्सा नहीं मिलता, प्रजातंत्र असंभव है, मगर आप सबके राज्य या प्रजातंत्र को हुल्लडशाही मत बनाइए। किसी अछूत को, मजदूर को भी जो आपको रोजी पैदा करने में सहायता देता है, उस स्वराज्य में हिस्सा मिलना चाहिए। मगर आपको उनके जीवन से संबंध जोडना पडेगा, उनके साथ हेल मेल पैदा करना होगा, वे जिन झोंपडों में ठसाठस भरे रहते हैं, उनमें जाना होगा, उनको देखना भालना आपका कर्त्तव्य होगा। आप उनका जीवन बना सकते हैं और बिगाडना भी आपके ही हाथ में है। भारतीय राष्ट्रीय महासभा इन दोनों सवालों को हल करने की कोशिश कर रही है। हमारे कार्यक्रम में उनका स्थान महत्वपूर्ण है। अगर आप अपनी महासभा को सचमुच ही राष्ट्रीय बनाना चाहते हैं, अगर आप लंका के सबसे गरीब और दीन हीन लोगों के भी प्रतिनिधि बनना चाहते हैं तो मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि अगर आपने अबतक इन बातों को अपने कार्यक्रम में नहीं

जोडा है तो अब तुरत जोड लीजिए, अपनी राजनीति में धर्मनीतिको मिलाइए और उसके बाद सब कुछ अपने आप ही हो जायगा। तब स्वराज्य जो कि आपका जन्मसिद्ध अधिकार है, पके हुए फल के समान आपके हाथों में आप ही आप टपक पडेगा। भगवान् ऐसी कृपा करें कि इस संदेश का आप पर पूरा प्रभाव पडे और यह आपके हृदयों में घर करे।

(यं० इं०)

सत्य की विकृति

एक भाई किसी हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक की सहायता से उसके विद्यार्थियों में गीता पढाना शुरू कराने की कोशिश कर रहे हैं। हाल में गीता पाठ का प्रबंध करने के संबंध में एक सभा हो रही थी, जब कि बीच में ही किसी बैंक के कोई मैनेजर यह कहते हुए आ कूदे कि "लडकों को भला गीता पढने का क्या अधिकार है? यह कुछ खिलौना थोडे है जो लडकों को खेलने के दिया जाय?" इस घटना के बारे में इन भाई ने एक लंबा युक्तिपूर्ण पत्र लिखा है। अपने पक्ष के समर्थन में उन्होंने परमहंस रामकृष्ण के कुछ उपयुक्त वचन भी दिये हैं, जिनमें से मैं चुन कर कुछ नीचे देता हूँ।

"मैं नवयुवकों से इतना प्रेम क्यों करता हूँ। इसी लिए न कि वे अपने मन के सोलहों आने मालिक हैं जो कि उनकी उम्र बढने के साथ साथ हिस्सों में बँटने लगता है। घर गिरिस्ती वाले का आधा मन तो अपनी औरत में चला जाता है। जब बालबच्चे पैदा होते हैं तो चार आना मन तो उनमें चला जाता है और बाकी चार आना मा बाप, धन दौलत, वगैरह में बँट जाता है। इसलिए नवयुवक परमात्मा को सहज ही जान सकते हैं। बडे बूढों के लिए यह बहुत ही मुश्किल है।

"जब तोते का गला उम्र पाकर कठिन हो जाता है, तब उसे गाना नहीं सिखलाया जा सकता — उसे तो बचपन में ही सिखलाना पडेगा। इसी तरह बुढापे में ईश्वर में मन लगाना मुश्किल हो जाता है। मगर बचपन में यह सहज ही हो सकता है।

"जब सेर भर दूध में सिर्फ एक छटांक पानी मिलाया गया हो तो थोडी ही लकडी के खर्च से सहज ही दूध का पानी जलाया जा सकता है, मगर जब तीन पाव पानी हो तब ईंधन भी अधिक लगेगा और दूध सहज ही गाढा नहीं हो सकता। नवयुवकों के मन में दुनियवी विकार कम होने के कारण, वे सहज ही ईश्वर की ओर झुक सकते हैं। बडे बूढों के साथ यह बात नहीं हो सकती क्योंकि उनके मन में सांसारिक इच्छाओं का बहुत अधिक विकार मिला हुआ होता है।

"नया बांस सहज ही झुकाया जा सकता है, मगर पुराने बांस को मोडने की कोशिश करने पर वह टूट जाता है। नवयुवकों के हृदयों को ईश्वर की ओर झुकाना सहज है, मगर बूढों का दिल झुकाने पर भी छूट भागता है।

"मनुष्यों का मन सरसों के बीज जैसे होता है। जिस तरह सरसों के बीज फैल जाने पर उन्हें इकट्ठा करना मुश्किल होता है उसी तरह कई ओर जब मन बँट जाता है और दुनियवी जंजालों में फँस जाता है तब उसे एकाग्र करना बहुत कठिन होता है। नवयुवकों का मन कई ओर बँटा हुआ नहीं होने के कारण किसी वस्तु पर सहज ही एकाग्र किया जा सकता है जब कि बूढे आदमी का मन दुनियवी बातों में लगा हुआ होने के कारण, उसके लिए उसे खींच कर परमात्मा में लगाना बहुत ही कठिन होता है।"

मैंने वेद-पाठ के संबंध में अधिकार की बात सुनी थी, मगर मैं यह बात कभी नहीं जानता था कि गीता पढने के लिए भी बैंक मैनेजर की धारणा के अनुसार योग्यता की जरूरत है। अगर मैनेजर साहेब उन योग्यताओं को बतलाते तो बडा अच्छा होता। गीता में स्पष्ट कहा है कि खिल्ली उडानेवालों को छोड कर सभी को गीता पढने का अधिकार है। अगर हिन्दू विद्यार्थियों को गीता पढने का अधिकार नहीं है तो उन्हें कोई धार्मिक-ग्रन्थ पढने का अधिकार नहीं है। सच पूछो तो हिन्दूधर्म की मौलिक कल्पना यह है कि विद्यार्थी को ब्रह्मचारी का जीवन बिताना चाहिए और धर्म के ज्ञान और आचरण के साथ साथ जीवन शुरू करना चाहिए जिससे वह धर्म के ज्ञान को पचा भी सके और धर्माचरण को अपने जीवन में मिला सके। प्राचीनकाल के विद्यार्थी धर्म को जानने के पहले धर्म का आचरण शुरू कर देते थे, और आचरण के बाद जो आवश्यक ज्ञान होता था जिससे वे अपने लिए विहित कर्तव्य का कारण समझते थे।

अधिकार तो वहां निश्चय था ही। मगर वह अधिकार पांच यमों या संयमों—अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य—का था। जो कोई धर्म का अध्ययन करना चाहता था उसे इन नियमों का पालन करना पडता था। धर्म के इन आधारों को सिद्ध करने के लिए धार्मिक ग्रन्थों तक दौडे जाने की जरूरत नहीं है।

मगर दूसरे कई अर्थ भरे शब्दों के समान 'अधिकार' शब्द की भी विकृति हो रही है और कोई पुरुष केवल ब्राह्मण कहे जाने के कारण शास्त्रों को पढने और उनका अर्थ समझाने का अधिकार दिखलाता है, जब कि दूसरा कोई आदमी अगर केवल अपने जन्म के कारण अछूत कहा जाता है तो वह चाहे जैसा पवित्र क्यों न हो मगर शास्त्र नहीं पढ सकता।

मगर गीता जिस महाभारत का एक अंश है, उसके लेखक ने इस व्यर्थ के उज्र का जवाब देने के लिए ही वह महाग्रन्थ लिखा और जाति का विचार न करते हुए उसे सबके लिए, मैं मानता हूँ कि जो मेरे बतलाये पांच यमों का पालन करते हैं उनके लिए उसे सुलभ बनाया। मैं यह भी जोड देता हूँ कि 'मैं मानता हूँ' क्योंकि लिखने के समय मुझे याद नहीं है कि महाभारत पढने के पहले पांच यम नियमों का पालन आवश्यक शर्त थी या नहीं। खैर अनुभव से मालूम होता है कि धार्मिक ग्रन्थों को ठीक समझने के लिए हृदय की पवित्रता और श्रद्धा की आवश्यकता है।

छापायुग ने सभी बन्धन तोड दिये हैं और खिल्ली उडानेवालों को भी धार्मिक ग्रन्थ पढने की अगर अधिक नहीं तो कम से कम वह स्वतन्त्रता तो धार्मिक पुस्तकें पढने की है ही जो धार्मिक प्रवृत्तिवालों को है मगर हम तो यहां पर लडकों को धार्मिक शिक्षण और अभ्यास के रूप में गीता पढाने के औचित्य पर विचार कर रहे हैं। और मैं यह सोच नहीं सकता कि ऐसे होंगे जो ऐसी शिक्षा के लिए आवश्यक संयम को अधिक खुशी से पालेंगे। मगर अफसोस के साथ यह कहना पडता है कि न तो अधिकांश विद्यार्थी ही और न उनके ही पांच यमों के अधिकार का विचार करते हैं।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद**

आश्रम भजनावलि का नवीन और संशोधित कीमत ≈) पोस्टेज ‒)।; बिना जवाबी कार्ड या जवाब नहीं दिया जायगा। -दस से कम प्रतियों की नहीं भेजी जायगी। वी. पी. मँगानेवालों को आधा भेजना चाहिए।

व्यवस्थापक
हिन्दी-नवजीवन

अहिंसा का जुर्म

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक १७

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद

अहमदाबाद, पौष बदी ७ संवत् १९८४
गुरुवार, १५ डिसम्बर १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

साप्ताहिक पत्र

'तू आराम क्यों चाहता है? तेरा तो जन्म ही परिश्रम करने के लिए हुआ है। अगर तुझे चाहिए तो धैर्य न कि आराम, भगवान् के काम में कष्ट सहना न कि ऐश करना।' भला गांधीजी ईसा की इस शिक्षा को कब भूलनेवाले? जाफना छोडने पर क्षण भर की भी विश्रान्ति लिये बिना, उनका हिन्दुस्तान का भ्रमण शुरू हो गया।

भारतवर्ष में आने पर हम पहले पहल रामनाड जिले में गये थे। तामिलनाड का यह अंश पहले छोड दिया गया था पर इसकी मांग थी कि गांधी जी सिलोन से लौटने पर पहले वहीं जायँ। फिर वही भक्तों की भीड लगने लगी जिनमें पुरुषों से अधिक स्त्रियाँ थीं। स्त्रियों की भी एक सभा थी। मगर गांधीजी के अपने आसन तक पहुँचने के पहले ही उन बहिनों ने उन्हें घेर लिया, हर एक ने अपनी गांठ खोल कर अपने पैसे दिये, और पैसे देकर वे धीरे २ चलती बनीं! यहां भला गांधी जी को उनसे कुछ कहने का अवसर कहां से मिलता?

मगर और सार्वजनिक सभाएँ, मानपत्र वगैरह तो थे ही। वहां पर गांधी जी से नेतृत्व करने को कहा गया। गांधी जी ने जवाब में बहिनों की सभा का ही वर्णन यों किया:

"मैं समझता हूँ कि इन बहिनों ने मुझे जो पैसे दिये वे आपके दाताओं के सौ बार सोच कर दिये गये दानों से कहीं अधिक बडी भेंटें हैं। मुझे आशा है कि यह कहने के लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। यह घटना या यह मिलान मैं आपकी थैली का महत्व कुछ घटाने की नीयत से नहीं सुनाता हूँ। मुझे हिन्दुस्तान में ऐसे सैकडों दृश्य देखने का सौभाग्य मिला है, जिनसे यह साबित होता है कि यह आन्दोलन मुख्यतः गरीबों का ही है। यह बात दिखलाने के लिए भी मैंने यह उदाहरण आपको सुनाया है। मैं चाहता हूँ कि इसे सुन कर आपमें भी वही अटल श्रद्धा होवे जो इन बहिनों में है। आपके मानपत्र के पहले अंश के जवाब में भी यह सुनाया गया है। आप चाहते हैं कि मैं राजनीतिक संग्राम का नेतृत्व करूँ, उसमें आध्यात्मिकता लाने का प्रयत्न करूँ। जैसा कि मैंने कोयम्बाटूर में कहा था मुझे मालूम पडता है कि चर्खे के लिए काम कर के ही मैं राजनीतिक संग्राम में अपनी यत्किंचित सहायता पहुँचा रहा हूँ। मगर राजनीति का जो अर्थ आप समझते हैं, वह अर्थ लेने पर राजनीति में तब तक आध्यात्मिकता नहीं घुसायी जा सकती है, जब तक कि आप में इन बहिनों कि श्रद्धा न आवे। श्रद्धा तो नफा घटी नहीं सोचती, डरती नहीं, झिझक का नाम नहीं जानती। जब बच्चा मा की गोद में जा छिपता है, तब अपने को सुरक्षित ही समझता है, वह यह नहीं पूछता कि मेरी मा की कितनी ताकत है, वह मेरी रक्षा कर सकेगी या नहीं। और हम में जिनकी मानसिक प्रवृत्ति राजनीतिक है, जिन्हें सभाओं में जा कर व्याख्यान झाडने की आदत होती है, उन्हें भी अगर भारतवर्ष के उज्वल भविष्य में वही विश्वास होता, नन्हें से चर्खे में वही श्रद्धा होती, तो मुझे कोई शक नहीं है कि स्वराज कब का न मिल गया होता। अगर यह मान भी लेवें कि चर्खे से भारतवर्ष का आर्थिक प्रश्न हल नहीं होगा, तौभी इसे कम से कम हमारी श्रद्धा की कसौटी तो होने दीजिए। मैंने चर्खे का बेजोड, लाजवाब अर्थशास्त्र अपने देश के फूँक फूँक कर पैर रखनेवाले देशभक्तों के आगे रक्खा है। मगर हममें जो श्रद्धा होती तो फिर चर्खे का अर्थशास्त्र दिखलाने की जरूरत ही नहीं पडती। यही काफी होना चाहिए था कि जो लोग चर्खा चलाते हैं उससे उनका कुछ बिगडता नहीं और करोडों गरीबों को कुछ सहायता मिल जाती है। किसी मर्द या औरत के लिए यह समझना सहज होना चाहिए कि अगर हम करोडों आदमी किसी एक ऐसी चीज में विश्वास करें तो फिर राष्ट्र की वह बडी शक्ति मुक्त हो जाती है जिसकी गति कोई रोक नहीं सकता। मुझे चर्खे में वही विश्वास है और तब तक मैं सन्तोष से बैठा हूँ जब तक इस महान् किन्तु दुःखी देश के लोगों में वह श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती।"

चिकाकोल में

मगर हमें उडिस्सा के लिए जल्दी करनी थी। आन्ध्र के कृष्णा, गोदावरी और दूसरे जिलों के स्टेशनों पर पहले ही जैसी भीड खडी था। गांधीजी ने कहा, 'यहां तुम झूठा दिखावा करने के लिए तो आये नहीं हो। मुझे तो काम करना है, और अगर तुम दरिद्रनारायण के लिए कुछ देते नहीं हो तो अच्छा होता कि घर लौट जाते।' फिर सब की जेबें खाली हो चलीं। बेजवाडा

में अल सुबह यह धंधा शुरू हुआ और ठेठ चिकाकोल तक चलता रहा, जहां कि हम शाम को उतरे । हिसाब जोडने पर पता चला कि कुल ७०० रुपये स्टेशनों पर एक दिन में जमा हुए थे ।

खैर, अभी उडिस्सा का भ्रमण शुरू नहीं हुआ है । मद्रास के सबसे उत्तरी जिले गंजम में उडिया और तेलुगु दोनों हैं । दोनों की ही संयुक्त स्वागत समिति ने पहले दोनों भाषाओं वाले स्थानों में ही घुमाने का प्रबंध किया था । मेरा ख्याल था कि कमसे कम उस रात को तो गांधीजी को कुछ आराम मिलेगा । मगर आसपास के गांवों से कत्तिनें, अपना अपना चर्खा और धुनकी वगैरह ले ले कर हाजिर थीं । मगर इस दृश्य को तो बार बार देखने में भी थकावट नहीं आती है । ये बहिनें अपनी २ मचिया पर बैठ कर इस शान से सूत निकालती थीं कि उनका चित्र खींच कर कोई चित्रकार अपने को धन्य मानता । हर एक के पास एक एक मोटी पूनी और कागज में लपेटा हुआ एक रुपया, गांधीजी को भेट करने के लिए रक्खा हुआ था । गांधीजी ने अपना चर्खा और अपना कातना दिखलाना चाहा, मगर उन्हें इसका जरा भी शौक नहीं था । उनका भाषण सुनने का तो उन्हें इससे भी कम शौक था । वे सुन्दर आन्ध्र सारियां पहने हुई थीं । बदन पर सोने के गहने भी चमकते थे जिससे मालूम पडता था कि वे काफी खुशहाल थीं । महीन और अच्छा सूत कातने से काफी प्राप्ति होती है और वे अपनी कृतज्ञता की भेट उनके चरणों पर रखने आयी थीं, जिन्होंने इस म्रियमाण धंधे को जिलाया है ।

यह खत्म होने पर दो सुन्दर, शानदार मगर औरों से कुछ दूसरे ढंग की औरतें आयीं । कपडे इन्होंने बहुत सादे पहने थे, गहनों का तो नाम ही नहीं था। उन्होंने सौ रुपये और कुछ गहने दिये। गांधी जी ने उन्हें धन्यवाद दिया और उनका परिचय पूछा। उनके रुपयों के साथ एक कागज पर तेलुगु में कुछ लिखा हुआ था। उसके मानी यह थे कि, "हमारा जन्म सबसे पापी जाति में हुआ है। हम चिडियों और पशुओं से भी अधम हैं। हम प्रतिज्ञा करती हैं कि हम सिर्फ खादी ही पहनेंगी, अबसे खादी छोड और कुछ नहीं पहनेंगी।' जब तक गांधी जी को उनका परिचय नहीं दिया गया तब तक किसी को उनकी जाति के बारे में कोई गुमान भी नहीं हो सका था। मालूम हुआ कि वे नाचनेवाली जाति की लडकियां थीं, मगर इन्होंने अपना पेशा बिलकुल ही छोड दिया है।

चिकाकोल की सभा और थैली अच्छी थी। मगर उडिस्सा में भी हम आंधी की चाल से दौडे फिरे। गांधी जी को उडिस्सा के गांवों में जा कर शान्ति से बैठने की जो लालसा थी, वह पूरी नहीं हुई।

जुलाहों के गांवों से

तिलारु, परलाकीमेडी, बरुवा और दूसरे कई गांव मिले जहां अब भी अच्छा सूत काता जाता है। रास्ते से होते हुए हमने देखा कि जुलाहों के घर सुन्दर, साफ और अच्छे बने हुए थे। यहां के आदमियों से कुछ बातें करने की बडी इच्छा होती थी, मगर यह मुसाफरी तो पैसे के लिए ही थी, इस लिए लाचार उडते ही चले गये। पुन्डी में रात बीती। वहां के जमीन्दार श्रीयुत कामेश्वर राय नायडू ने सभा का विशेष प्रबन्ध किया था और थैली में आसपास के गांववालों से ४००) रुपये इकट्ठे कर के खुद १००१) रु. दिये थे। इसी तरह तो चर्खे के भक्त और भी मिलते ही जाते हैं। तिलारु में हम सिर्फ दश पन्दरह मिनट ही ठहरे। वहां ६५०) रु. की थैली भेट की गयी और स्त्रियों की सभा में, भेट में मिले हुए कुछ गहने, और एक धोती नीलाम करने पर रु. ३४०) मिले।

तेलुगु और उडिया

बहुत सी जगहों में तो गांधी जी के भाषणों के तेलुगु और उडिया दोनों ही भाषाओं में अनुवाद करने पडे। छत्रपुर में उडियों की बस्ती ज्यादा थी। अनुवादक के खडे होते ही वहां उडिया, उडिया का शोर हुआ। इन द्विभाषी जिलों में भाषाओं की प्रतिद्वन्द्विता है, बहुत संकीर्ण प्रान्तीयता फैल रही है। उदाहरणार्थ चिकाकोल में कविठाकुर का प्रसिद्ध गान 'जन-गण-मन-अधिनायक जय हे भारत-भाग्य-विधाता' गाया गया था। जिन पदों में प्रान्तों के नाम गिनाया गया है, वहां पर आंध्रों ने उत्कल का नाम हटा कर आन्ध्र जोड दिया था। इतनी सभाओं के बाद पहले पहल छत्रपुर की ही सभा शान्त सभा थी। वहां गांधीजी ने संकीर्णता पर कुछ कहने का अवसर मिला था।

"मैं उस दिन के लिए मर रहा हूँ जब इन सभी प्रान्तीय भाषाओं का आपस की प्रतिद्वन्द्विता मिट जायगी। क्या कोई भाई अपनी कई बहिनों में से क्या किसी को कम और किसी को अधिक प्यार करता है? तब फिर हम इन सभी भाषाओं से एक समान प्यार क्यों न करें? इस बुरी प्रतिद्वंद्विता का फल यह होता है कि हम अपनी भाषाएँ तो भूल जाते हैं, एक दूसरे से द्वेष करने लगते हैं और यह विश्वास करने लगते हैं एक दिन अँगरेजी ही हिन्दुस्तान की सार्वदेशिक भाषा होगी, बल्कि सभी प्रान्तीय भाषाओं की भी जगह दखल करेगी। मुझसे तो यह भी कहा गया था कि मैं अंगरेजी में ही आज की सभा में बोलूँ। बस इसी तो मैं मातृभूमि की दूसरी भाषाओं से द्वेष, और अँगरेजी से अनुचित प्रेम का चिह्न मानता हूँ। मैं अंगरेजी से नफरत नहीं करता, पर मैं हिन्दी से अधिक प्रेम करता हूँ, इसी लिए मैं हिन्दुस्तान के शिक्षितों से हिन्दी को अपनी भाषा बनाने को कहता हूँ। हम सिर्फ हिन्दी के जरिए ही और प्रान्तीय भाषाओं से परिचय प्राप्त कर सकते हैं, उनकी उन्नति कर सकते हैं। अगर विदेशी भाषा सीखने में हमारे दिल और दिमाग पथरा गये नहीं होते तो फिर हमें ५, ६ देशी भाषाएँ न जानने का कोई कारण ही नहीं होता। मैं जो बात भाषाओं की चढा ऊपरी के बारे में कहता हूँ, वही संकीर्ण प्रान्तीय भावों के बारे में भी लागू है। इसी प्रान्तीयता ने हमें राष्ट्रीयता का पूरा विकास नहीं होने दिया है। राष्ट्रीयता के विकास के लिए सबसे अच्छा नियम यह है कि सबल लोग दुर्बलों के लिए जहां तक हो सके त्याग करें उनकी मदद करें। अब आप खादी का रहस्य समझ सकेंगे। यह राष्ट्रीयता के विकास के लिए है, इसमें धनी, गरीब, ऊंचे, और पतितों सब के लिए जगह है।"

छत्रपुर की स्वागत समिति के मंत्री ने मुझे वहां के चंदे की तफसील बतलायी थी। छत्रपुर में अधिकांश बस्ती सरकारी नौकरों की ही है और वे कुछ दे नहीं सकते थे। इस लिए रु. ७६०-२-० की शहर की भेट कम नहीं कही जायगी। पास पडोस के गांवों से रु. १०४३-१०-१½ मिले थे। सभा में रु. ३९-५-२½ जमा हुए और गांवों में सारा काम पैदल घूम घूम कर किया गया था। फलस्वरूप खर्च कुल मिला कर रु. १३-११-० का ही हुआ है। इसके अलावा स्वागत समिति को ५०) रु. और भी खर्च के लिए दिये गये थे।

नया ढंग

आश्रम से बाहर आने पर हमने यह ढंग अख्तियार किया था कि सबेरे की प्रार्थना ४ बजे होती थी और शाम की सोने के पहले किसी वक्त हो लेती थी। शाम की प्रार्थना आश्रम के समय ७ बजे नहीं हो सकती थी क्योंकि अकसर तो हम लोग उस समय रास्ते में ही होते थे या कभी कभी सभी साथियों का इकट्ठा ही होना मुश्किल

होता था । आखिर नतीजा यह हुआ कि एक रात गांधीजी थक कर सो गये । उस दिन रात की प्रार्थना वे नहीं कर सके । आध रात को नींद खुलने पर उन्हें प्रार्थना की याद आयी और वे बहुत ही दुःखी और क्षुब्ध हुए थे । दूसरे दिन सबेरे इसकी चर्चा हुई और निश्चय हुआ कि शाम की प्रार्थना जरूर जारी रहे, और ७ बजे जो जहां होवे, वह अपनी प्रार्थना आप ही कर लेवे, जिसमें आश्रम के भाइयों के साथ जो उस समय प्रार्थना कर रहे होंगे हमारा आध्यात्मिक संबंध बना रहे । जिस दिन हम छत्रपुर से ब्रह्मपुर पहुँचे विद्यार्थियों की सभा ७ बजे शाम को रक्खी गयी थी । गांधीजी ने प्रबंधकों को कह दिया कि प्रार्थना करके सभा की कार्रवाई शुरू होगी । अगर्चे कि हम सात बजे सभा में नहीं पहुँच सके, और हमें चलते ही चलते अपनी प्रार्थना करनी पडी, तौभी गांधीजी ने तो सभा में सामूहिक प्रार्थना करने का निश्चय किया ही । आखिर प्रार्थना हुई । विद्यार्थियों ने पूरी शान्ति रक्खी । अब सभा में भाषण के लिए प्रार्थना का बडा अच्छा विषय मिल गया । गांधीजी ने पहले हमारी प्रार्थना का अर्थ समझाया और फिर कहा :

"जैसे शरीर के लिए भोजन जरूरी है, उसी तरह आत्मा के लिए भी जरूरी है । बिना खाये आदमी बहुत दिनों तक रह सकता है, आयरलैन्ड का प्रसिद्ध वीर मैकिस्वीनी बिना खाये ७० दिनों से अधिक जिया था, मगर परमात्मा में विश्वास रखते हुए आदमी एक क्षण भी बिना प्रार्थना के नहीं जी सकता, नहीं जीना चाहिए । तुम कहोगे कि बहुत से आदमी कभी प्रार्थना नहीं करते और जिन्दा ही हैं । मैं मानता हूँ कि वे जीते हैं, मगर वह जिन्दगी पशु की जिन्दगी है जो मौत से भी बदतर है । मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि आज हमारा वातावरण जिस वैर फूट और द्वेष की आग से भरा हुआ है, उसका कारण प्रार्थना के सच्चे भाव का न होना ही है । तुम इसे इनकार करोगे और कहोगे कि करोडों, मुसलमान, ईसाई और हिन्दू प्रार्थना करते हैं । मैंने सोचा था कि तुम यह उज्र पेश करोगे इसी लिए मैंने कहा था 'सच्ची प्रार्थना ।' बात यह है कि हम मुँह से तो प्रार्थना करते आये हैं, मगर दिल से शायद ही कभी करते हों, और इसी पापण्ड से बचने के लिए आश्रम में हम रोज भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के पिछले श्लोकों का पाठ करते हैं । उन श्लोकों में स्थितप्रज्ञ के जो लक्षण बतलाये हैं, उन पर अगर हम रोज विचार करें, ध्यान करें तो हमारे दिल परमात्मा की ओर जरूर झुकेंगे ही । अगर तुम विद्यार्थियों शुद्ध चारित्र और सच्चे दिल की नींव पर शिक्षा का भवन खडा करो तो तुम्हें रोज सच्चे दिल और धार्मिक भावना से प्रार्थना करने से अधिक और किसी चीज से सहायता नहीं मिलेगी ।"

श्रीमती जोगिया के प्रबंध में महिलासभा बडी अच्छी हुई थी । अगर उडिया और तेलुगु बहिनों की ओर से अलग अलग थैलियां न दी जाकर एक ही थैली दी जाती तो क्या ही अच्छा होता ! दूसरा उल्लेखनीय काम था, गांधीजी के हाथों एक मंदिर का खोला जाना । इसे एक भक्त पुरुष ने घर घर पैसे माँग कर बनवाया है और इसमें अछूतों के लिए भी पूरी आजादी दी है । इस मित्र ने गांधीजी को अपनी खादी की भेट उस मंदिर में ही दी और कहा कि "गांधीजी देवता को कहां कुछ देंगे कि आप ही वहां से भी लिये जा रहे हैं ।" गांधीजीने हंस कर कहा, "मुझे दरिद्रनारायण का सच्चा प्रतिनिधि समझ कर देवता को भी अपना हिस्सा देना ही पडेगा ।"

रोगी कतवैये

इसके बाद हम खाल्लीकोट की रियासत में पहुंचे । यहां के दो दिनों के कार्यक्रम के लिए हम वहां के राजा साहेब के मेहमान थे। यहां काम इतना अधिक था कि हम बैरनी में जहां ३४० कतवैये हैं, कताई का काम जा कर नहीं देख सके । खैर, कोडल में कुछ जुलाहे दिखायी पडे । उनसे बोलते हुए ही गांधीजी ने उन्हें सूत कातना दिखलाना चाहा और इसलिए अपना चर्खा मांगा । श्रीयुत राजकृष्ण वसु यहां के भ्रमण के प्रबन्धक श्रीयुत निरंजन पट्टनायक की मदद कर रहे हैं । वे अभी बडे उत्साही नवयुवक हैं । राजकृष्ण बाबू दौडे गये और उन्होंने गांधीजी के (मोडनेवाले बक्स) चर्खे को अपने जानते ठीक करके उनके सामने ला रक्खा । गांधीजी ने पूछा, 'चर्खे को किसने ठीक किया है ?' राजकृष्ण बाबू ने स्वीकार किया । गांधीजी बोले, 'क्या आप देखते हैं कि चर्खा चलता ही नहीं है ? अगर आप इसे ठीक करना नहीं जानते हैं तो इसे हाथ ही नहीं लगाते या किसी से सीख लेते ।' फिर दिल्लगी के तौर पर उन्होंने कहा, 'यह कुछ 'स्टार ऑफ उत्कल' का संपादन करना नहीं है ।' गांधीजी खुद चर्खा सुधारने लगे । इसमें देर लगी । श्रीयुत वेंकटप्पय्या जो पास में हो खडे थे बोले, 'यही तो कलों की जटिलता का तरद्दुद है ।'

गांधीजी बोले, 'नहीं, यह तो इसकी तकलीफ है कि अनजान आदमी ने इसमें हाथ लगा दिया । मुझे तो घडी घडी में नाकाबलियत का उदाहरण मिलता रहता है ।'

श्रीयुत वेंकटप्पय्या ने देखा कि समय बीता जा रहा है । इस लिए फिर रोका, 'तब आप इसे अभी छोड क्यों नहीं देते ?'

'छोड दूं ? और फिर कब करूँगा ?'

'पीछे कभी, या दूसरा कोई ठीक कर देगा । आप को और भी जरूरी काम करने हैं, और आपको समय नहीं है ।'

'खैर, जिसे बेकार कामों में बर्बाद करने को समय नहीं रहता है उसे जरूरी कामों के लिए हमेशे वक्त बचता है ।'

फिर राजकृष्ण बाबू से उन्होंने पूछा, 'क्या आपने कभी चर्खा चलाया है ?'

'जी हां,महात्मा जी । मैं सूत कातता हूँ, पर मेरा चर्खा दूसरे ढब का है ।'

'आप कातते हैं ? रोज कितना कातते होंगे ?'

'कभी १५ मिनिट, कभी आधा घन्टा, कभी कभी एक घन्टा हां मैं नियमित रूप से नहीं कातता हूँ ।'

'क्या आप रोज खाना खाते हैं ? मुझे आशा है कि आप खाते होंगे । जो रोज नहीं खाते वे रोगी कहे जाते हैं और अनियमित कतवैया रोगी कतवैया है । ठीक है न ?' अब तक चर्खा ठीक हो गया था और तब श्रीयुत वेंकटप्पय्या की बारी आयी । उनकी ओर फिर कर गांधी जी ने कहा, 'क्या अब आप समझते हैं कि अगर मैं चर्खे को सुधारता नहीं तो यह नहीं जा[illegible] पाता कि चर्खा कहां बिगडा है, और उसे कैसे सुधारना होगा ?' इसके बाद उन्होंने जुलाहों से बातें कीं । उनकी मजदूरी पूछी । उन्हें कहा कि और अधिक काम सीखने के लिए तुममें से एक [illegible] दो आदमी चाहें तो वे साबरमती आश्रम में जा कर काम सी[illegible] आ सकते हैं, पर शर्त यह है कि वे अपनी विद्या से औरों [illegible] भी लाभ उठाने देवें । वे बेचारे भले आदमी, शराब और गोम[illegible] से दूर दूर रहनेवाले मालूम पडे । उन्होंने गांधी जी को सलाह[illegible] लाभ उठाने की कोशिश करने का वचन दिया ।

रम्भा से हम चिलका झील के सुन्दर दृश्यों से होते [illegible] उडिस्सा के सरकारी प्रान्त में लंका के बाद सात दिनों की अवि[illegible] दौडधूप के बाद पहुँचे । पर अब इसके बारे में अगले स[illegible] लिखूँगा ।

(यं० इं०)

महादेव देसा[illegible]

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, पौष वदी ७ संवत् १९८४

अहिंसा का जुर्म

"क्या आप मानते हैं कि खलों का दमन और संतों का रक्षण हरएक आदर्श सरकार और महात्मा जनों का कर्त्तव्य है? अगर आप इसे स्वीकार करते हैं तो फिर इस युग युग के पुराने सिद्धान्त से आपके राजनीतिक आदर्शवाद से कहां मेल बैठता है? क्या कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में अर्जुन को कृष्ण के उपदेश का सार यही नहीं है?

"क्या अवतारों की भी यही नीति नहीं थी जिससे राजा बली का राज्य छीना गया, वालि मारा गया और जरासंध का नाश हुआ?

"आप साधारण आदमियों से और वह भी बहुतों से, यह आशा कैसे रखते हैं कि वे अपने अविवेकी शत्रुओं के वार बिना किसी तरह का बदला लिये सहते जायँगे? इस दृष्टि से क्या हम आपकी भावनामय शिक्षाओं और उपदेशों को अव्यावहारिक और मामूली आदमियों के लिए अशक्य गिनने में भूल करते हैं? द० अफ्रिका में आपकी अस्थायी और थोडी थोडी करके मिली हुई सफलता को बहुत बढा दिया गया है और साधारण बुद्धि के हिन्दुस्तानी आंख मूंद कर भेडों के जैसे यह भूल करके कि दक्षिण अफ्रिका का उदाहरण हिन्दुस्तान जैसे विशाल देश पर जिसमें बहुत सी भाषाएं और धर्म हैं, लागू नहीं पडता, आपके पीछे चल कर मुश्किलों में पड गये हैं। बहुत से देशभक्तों का जीवन बर्बाद करने के बाद क्या आपने अबतक यह नहीं समझा है कि एक वर्ष में स्वराज्य की आपकी घोषणा गलत साबित हुई है? क्या आप यह नहीं कबूल करते कि बारडोली में आपके पीछे हटने से गुन्टूरवालों के बीच बडी घबराहट फैल गयी जो आपके कार्यक्रम के अनुसार बडी वीरता और मर्दानगी से कर देना बंद किये हुए थे?

"क्या हम पूछ सकते हैं कि खिलाफत आन्दोलन में आपके [illegible]डने और उसके फल स्वरूप थोडे से धर्मांध मुसलमानों के हाथ में [illegible]हासभा के पड जाने का क्या फल हुआ है? जिस हिन्दू-मुसलिम [illegible]कता के बारे में आपने इतना लिखा है, हिन्दुओं से इतनी अपील [illegible]ी है, मुसलमानों के संकट की घडी टलते ही क्या वह बालू के [illegible]ले सी गिर नहीं गयी है? क्या आप अपनी पवित्र शिक्षाओं से [illegible]की कभी आशा रखते हैं कि धर्मान्ध और बहादुर मुसलमानों [illegible]र जाति रोग से रोगी और भीरु हिन्दुओं में कभी मेल होगा? [illegible]या आपको कभी इसका भान हुआ है कि जब से अहिंसा के [illegible]द्धान्त की बदौलत कांग्रेस में आप मुखिया बने तभी से साम्प्र[illegible]यिक झगडे बराबर बढते ही गये हैं?

"क्या आप इसे कबूल नहीं करेंगे कि आपकी राजनीति चाहे [illegible]े के नाम में जितनी ही क्यों न ढँकी होवे, मगर उससे पंडित [illegible]लवीय, देशबन्धु दास, लाला लजपतराय, श्रीयुत विजयराघवाचार्य, केलकर, डाक्टर मुंजे और दूसरे अखिल भारतीय नेता आजिज [illegible] गये थे?

"क्या आपने महात्मा तिलक का नेतृत्व, कमसे कम शुरु में ही [illegible], स्वीकार नहीं किया है? तब इसकी क्या वजह है कि आप [illegible] राष्ट्र के हित के विरोधी, गहन सामाजिक और धार्मिक झगडे [illegible]ड रहे हैं? क्या आपको यह नहीं भासता है कि पहले से ही [illegible]वृत्तिवाले हिन्दुओं में इससे और भी अधिक फूट फैलता है? [illegible] आप हमारे शत्रुओं का ही काम, अप्रत्यक्ष रूप से नहीं साध रहे हैं क्या? जिनकी एक मात्र दलील यह है कि हम अपनी सामाजिक निर्बलताओं के कारण राजनीतिक स्वतंत्रता के अयोग्य हैं।

"क्या ऊँची जाति के हिन्दुओं के मंदिरों में, जिन्हें ऊँची जातिवालों ने केवल अपने ही लिए बनाया था, घुसने को आप पंचमों को उत्तेजित करके ठीक काम करते हैं? आप क्या अपने को त्रिनेत्ररुद्र समझते हैं कि युग युग से चले आनेवाले रीतिरस्मों को एकबारगी तोड डालें? हाल में हमें यह जान कर आश्चर्य हुआ है कि आपने विधवा-विवाह का समर्थन करना शुरू किया है और अपरिपक्व बुद्धि के नवयुवकों को विधवाओं से विवाह करने की सलाह बेधडक दी है? क्या आप यह नहीं मानते कि स्वामी विवेकानंद और दूसरे लोगों ने विधवा-विवाह का समर्थन न करके चतुराई ही की क्योंकि आज कुमारी कन्याओं के भी विवाहों में होनेवाली कठिनाइयों को वे जानते थे? क्या हम पूछ सकते हैं कि इन सब अत्यन्त विवादग्रस्त सवालों को स्वराज के साथ मिला देने से कहां तक मेल होगा जो शुद्ध राजनीतिक है और जिस पर आशा की जाती है कि हम सब एक मत होंगे?

"विज्ञान की उन्नति के इस युग में आपका चर्खा लोकप्रिय नहीं हो सकता। क्या आप अपने अनुभवों के आधार पर यह नहीं सोचते कि अगर आप केवल मजदूरों के संगठन के काम में लगे रहें तो अच्छा होगा?

"अहिंसा-धर्म में सच्चा विश्वासी होने के कारण क्या आपका यह कर्त्तव्य नहीं है कि आप उन म्युनिसिपैलिटियों से मानपत्र स्वीकार न करें जिनके यहां कसाई खाने चलते हैं।"

बरहमपुर में मुझे किसी भाई ने एक लंबा पत्र भेजा था। ऊपर उसीका सारांश दिया गया है। चूंकि मुझे यह मानने का कारण है कि इस पत्र-लेखक ने वे बातें खुलासा कहने का साहस किया है जो दूसरे लोग मन में छिपाये हुए हैं, मुझे जान पडता है कि इस इल्जाम का जवाब देना जरूरी है।

इन सवालों का ब्यौरेवार जवाब देना जरूरी नहीं है। हममें से बहुत लोग यह बडी भारी भूल करते हैं कि शास्त्रों का वे अक्षरशः अर्थ लगाने लगते हैं। वे भूल जाते हैं कि शब्दों के पीछे चलने वाला मरता है और भावों के, जी उठता है। महाभारत और पुराण न तो बिलकुल इतिहास ही हैं और न धर्मशास्त्र ही। मुझे लगता है कि मनुष्य के धार्मिक इतिहास को भिन्न २ रूपों में समझाने के लिए वे विचित्र रूप से लिखे गये हैं। उनमें वर्णित सभी नायक हम लोगों जैसे असंपूर्ण, नश्वर प्राणी हैं, अगर अन्तर है तो असंपूर्णता की मात्रा में ही। उनके कहे गये कामों का हम आंख मूँद कर अनुकरण नहीं कर सकते। महाभारत की सारी शिक्षा का सार इतने में दिया हुआ है, 'सत्यं जयते नानृतं' यह सच है कि सत्य सभी वस्तुओं को अवश्य ही जीत लेता है।

मगर मैं शास्त्रों में लिखी हर एक बात का औचित्य सिद्ध करने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ। इन ग्रन्थों को श्रद्धा के साथ पढने पर मुझपर सब मिला कर जो असर पडता है, मैं उसी को मानता हूँ। हर एक आदमी को, जो सच्चा होना होना चाहता है, यही करना पडेगा। इस तरह मेरा दावा है कि अहिंसा और सत्य में मेरा विश्वास उन्हीं ग्रन्थों के पढने से जमा है, पैदा हुआ है जिनमें से ये भाई मेरे सामने ये विरोधी बातें ला रखते हैं। नहीं, यही नहीं, बल्कि मेरा विश्वास आज मेरे जीवन का परमावश्यक अंग हो हो रहा है, और इस लिए इन किताबों के या किन्हीं और किताबों के बिना सहारे के स्थिर रह सकता है। निश्चय ही, हर एक धार्मिक प्रवृत्तिवाले आदमी के जीवन में वह समय आता ही है जब उसे अपने ही सहारे खडा रहना पडता है। इस लिए यह भले ही सिद्ध

किया जाय कि अवतारों ने फलां काम किया था, फलां काम नहीं किया था, मगर इसका मुझपर कोई असर नहीं पड सकता। दिनों दिन बढता और सबल होता हुआ मेरा अनुभव मुझे कहता है कि जहां तक आदमी के लिए संभव हो, उस हद तक सत्य और अहिंसा का पालन किये बिना, न तो व्यक्तियों को और न जातियों को ही शान्ति मिल सकती है। बदला लेने की नीति को कभी सफलता नहीं मिली है। बदला लेने से, जिसमें अक्सर धोखे बाजी और जोर जबर्दस्ती भी शामिल होती है, कभी कभी अस्थायी और दिखाऊ सफलता मिलने के इक्के दुक्के उदाहरणों से हम घबरा न जायँ। संसार आज इस लिए खडा है कि यहां पर घृणा से प्रेम की मात्रा अधिक है, असत्य से सत्य अधिक है। इसकी जांच हर कोई जो सोचने की तकलीफ उठावे कर सकता है। धोखेबाजी और जोरजब्र तो बीमारियां हैं, सत्य और अहिंसा स्वास्थ्य हैं। यह बात कि संसार अभी तक नष्ट नहीं हो गया है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि संसार में रोग से अधिक स्वास्थ्य है। इस लिए जो इसे समझ लेवें, वे अत्यन्त विरोधी स्थितियों में भी स्वास्थ्य के नियमों का पालन करें।

मेरे उपदेश और शिक्षाएँ, भावुकतामय या अव्यावहारिक नहीं हैं क्योंकि मैं वही सिखलाता हूँ जो पुराना है और जो कहता हूँ वह करने की कोशिश करता हूँ और मेरा यह दावा है कि जो मैं करता हूँ वह हर एक आदमी कर सकता है क्योंकि मैं एक बहुत मामूली आदमी हूँ, मेरे सामने भी वही प्रलोभन हैं, मुझमें भी वही कमजोरियां हैं, जो हममें से निर्बल से निर्बल मनुष्य में हैं।

दक्षिण अफ्रिका में उस समय के लक्ष्य की सफलता के अंदाज के हिसाब से पूरी सफलता मिली थी। जो बात छोटे समाजों पर लागू है, वही बडे समाजों पर भी, केवल उसी तरह का काम और ज्यादे पैमाने पर करना पडेगा।

मुझे अपनी पद्धति में इतना अधिक विश्वास है कि मैं यह भविष्य कथन कर सकता हूँ कि आनेवाली पीढियां १९२० और १९२१ काल को भारतवर्ष के इतिहास में से सब से चमकदार पृष्ठ समझेंगी और उनमें भी 'बारडोली का पीछे हटना' सबसे महान् काम समझा जायगा। बारडोली के निश्चय ने हिन्दुस्तान को इस लायक बनाया कि वह दुनिया के सामने आंखें सीधी रक्खे, सिर ऊँचा रखे। कांग्रेस का वर्तमान मन्तव्य रहते हुए, राष्ट्र के लिए यही मात्र सच्चा, बहादुरी का और प्रतिष्ठित रास्ता था। स्वराज की लडाई कुछ खेल नहीं थी। और अगर किसीको बिना चाहे तकलीफ उठानी पडी तो इसलिए पडी थी कि वे आग के साथ खेल रहे थे।

खिलाफत आन्दोलन में पडने से दोनों जातियाँ सबल हुई हैं और वह सामूहिक चेतना उत्पन्न हुई है जिसके इस तरह से होने में एक जमाना लग जाता। अगर एकता कभी होगी तो मेरी ही शिक्षाओं के मानने से होगी। आज के हिन्दू-मुसलिम झगडे, हिन्दुओं के आपस के और मुसलमानों के अपने घर के झगडे सामूहिक चेतना के हैं। आज जो चीज हम देख रहे हैं वह तो आत्मशुद्धि की क्रिया में मैल का ऊपर निकल आना है। लेखक महोदय चीनी साफ करने के किसी कारखाने में चीनी का साफ किया जाना देखें और तब वे मेरा मतलब समझ जायँगे। यह मैल सिर्फ फेंक दिये जाने के लिए ही ऊपर सतह पर आ गया है। मुझे इसका कोई दुःख नहीं है कि पंडित मदनमोहन मालवीय और लेखक के गिनाये हुए नेता मेरी राजनीति से ऊब गये हैं। कुछ के बारे में तो मैं जानता हूँ कि उनके साथ बात इसकी उलटी ही है। मगर वे ऊब भी गये हों तौभी मुझे आशा है कि मेरा विश्वास मेरे उन मित्रों का मतभेद भी सह सकेगा जिनकी सम्मति का मेरे सामने कुछ मूल्य है।

लोकमान्य के बारे में लेखक अपना अज्ञान तब प्रकट करते हैं जब वे उनकी वे नीतियाँ बतलाते हैं जो लोकमान्य की कभी थीं ही नहीं। मैं जानता हूँ कि मेरे और उनके बीच मौलिक अन्तर थे, मगर लेखक जिनकी कल्पना करते हैं, वे अन्तर नहीं थे। हमें अपने नेताओं से यह सीखना चाहिए कि हम उनके कामों की बेजाने, बेसमझे बूझे आंख मूँद कर नकल न करें। हमें उनसे उनकी बहादुरी, उनका महान् स्वार्थ त्याग, उनकी परिश्रमशीलता, उनका देश-प्रेम, और अपने आदर्शों पर दृढ रहने की प्रवृत्ति सीखनी चाहिए। हम जब बिना किसी कारण के या यथेष्ठ ज्ञान के उनके इक्के दुक्के कामों की नकल करने लगते हैं तब बडी भारी भूल करते हैं।

मेरा दावा है कि जो समाज-सुधार के काम मैं कर रहा हूँ, और जिनमें परमात्मा की कृपा से मेरे कई प्रसिद्ध देशवासी भी मेरा साथ देते हैं, उनके बिना हिन्दूधर्म के नष्ट हो जाने का खतरा है।

लेखक के अविश्वास के होते हुए भी चर्खा बराबर प्रगति करता ही जा रहा है। मजदूरों के हित के सागर में चर्खे का काम मेरा हिस्सा है।

म्युनिसिपैलिटियों से मानपत्र स्वीकार करते समय मेरा दावा होता है कि उनके कसाईखानों में होती हुई हत्याओं से मैं छू नहीं जाता हूँ। इसके उलटे उन मानपत्रों से मुझे उन्हें अपने सिद्धान्त का उपदेश देने का अवसर मिलता है। और मुझे यह लिखते हुए खुशी होती है कि वे इससे कभी बुरा नहीं मानते और कभी कभी उसे स्वीकार भी कर लेते हैं।

(यं० इं०) **मोहनदास करमचंद गांधी**

जीवन-कण

लंका में दिये गये कुछ भाषणों और दूसरे लेखों में से गांधी जी के चुने हुए उद्गारों के अनुवाद नीचे दिये जाते हैं:

सच्ची शुद्धि

"मेरा दावा है कि मेरा एक मात्र सहारा भक्ति और प्रार्थना हैं और अगर मेरे शरीर के टुकडे टुकडे भी कर दिये जायँ तौ भी परमात्मा मुझे वह शक्ति देंगे कि मैं उन्हें इनकार न करूँगा, यही जोरों से कहूँगा कि **वे हैं**। मुसलमान कहता है कि एक वही है, दूसरा कोई नहीं है। ईसाई भी वही कहता है। हिन्दू भी वही मंत्र पढता है। मैं तो कहूँगा कि बौद्ध भी दूसरे शब्दों में ही सही, पर वही कहता है। परमात्मा का राज्य कुछ हमारी ही छोटी सी गेंद पृथ्वी तक परिमित नहीं है। उसका साम्राज्य ऐसे ऐसे करोडों, शंखों, महाशंखों गोलों तक विस्तृत है। हम सब परमात्मा का अपना अपना अलग ही अर्थ समझ सकते हैं। हमारे जैसे न कुछ, तुच्छ, निर्बल, असहाय, कीडे उसका बडप्पन, उसका अपार प्रेम, उसकी अनन्त क्षमा क्या समझ सकेंगे। उसकी क्षमाशीलता ऐसी है कि वह मनुष्यों को स्वयं परमात्मा की ही हस्ती से इनकार करने देता है, उसके नाम पर झगडने देता है, अपने ही भाइयों का गला काटना भी क्षमा कर देता है! ऐसे क्षमाशील, दिव्य भगवान् की महिमा समझने की मजाल हमें कहाँ? इस लिए भले ही हम सब एक ही शब्द पुकारें, मगर हम सब के लिए उनका एक ही मतलब नहीं है। और इस लिए मैं कहता हूँ कि हमें भाषण या लेख के जरिए धर्म-प्रचार, या शुद्धि या तबलीग करने की कोई जरूरत ही नहीं है। यह शुद्धि का काम तो हम अपने जीवन के जरिए ही कर सकते हैं। हमारा जीवन खुली किताब हो जिसे सभी कोई पढ सकें। अगर मैं धर्म-प्रचारकों यह बात सुझा सकता, समझा सकता! तब

तो न तो कहीं अविश्वास होता, न होता संदेह, न विद्वेष, न फूट का नामोनिशां होता।"

अपनी संस्कृति

"मैं चाहता हूँ कि तुम लंका-निवासी नवयुवको, पश्चिम की चकाचौंध में पड कर अपनी अक्ल मत खो बैठो, और तुम यूरोप से आनेवालो, तुम जान कर या अनजाने भी लंकावासियों के उन रीतिरस्मों, आदतों, चालढालों पर वार मत करो जो नीति और सदाचार के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध न होवें। ईसा की शिक्षा वही मत समझो जो आज की सभ्यता समझी जाती है। जिन लोगों में जा बसो, उनका दिल अनजाने भी मत दुखावो। मैं तुम्हें भरोसा दिलाता हूँ कि यह ईसा मसीह का हुक्म नहीं है कि तुम पूर्व के रहनेवालों का जीवन जड से उखाड फेंको। जो कुछ उनमें अच्छी बातें हों, उनका सहन करो और अपने पुराने खयालों को ही लेकर उनके बारे में अपना मत कायम मत करो। दूसरों की परीक्षा मत करो क्योंकि तुम्हारी भी कोई कर सकता है। अपनी पश्चिमीय सभ्यता की महत्ता में विश्वास करते हुए, अपने कामों का गर्व करते हुए भी, तुम नम्र बनो और संदेह के लिए भी थोडी जगह रहने दो, जिसमें कि सत्य का बहुत अधिक अंश होता है। हम सब अपना जीवन सुधारने की कोशिश करें और उचित जीवन अगर हम बिता रहे हैं तो फिर उतावली किस बात की? उसका असर तो पडेगा ही।"

पश्चिम और पूर्व

"बुद्ध भगवान् ने कहा है कि यह जीवन एक छाया भर है, तुरत ही मिट जानेवाली वस्तु है और अगर आप सभी दृश्य जगत् की शून्यता को, समझ जायं, अगर यह आपके दिल में घुस जाय कि हमारी देहों की कोई वकत नहीं है तो फिर आपके लिए ऊपर अक्षय्य भाण्डार रक्खा है और नीचे वह शान्ति और सुख जिसका आज हम स्वप्न भी नहीं देख पाते हैं। मगर इसके लिए अत्यन्त श्रद्धा चाहिए, अपने सर्व्वस्व का त्याग करना होगा। बुद्ध ने क्या किया था? ईसू और मुहम्मद ने भी क्या किया था? उनके जीवन तो आत्मत्याग और स्वार्थ-त्याग के जीवन थे। बुद्ध ने अपने दुनियवी ऐशोआराम इस लिए छोड दिये जिसमें सत्य के शोध में त्याग करने और कष्ट सहनेवालों का परम सुख सारे संसार को सुलभ होवे। अगर गौरी शंकर की चोटी पर चढकर कुछ सामान्य ज्ञान के लिए कई जानें दी जा सकती हैं, अगर दोनों ध्रुवों में जाकर एक झंडा गाड देने के लिए कई आदमियों का प्राणोत्सर्ग करना समुचित है तो फिर अमर, अविनश्वर, शाश्वत् सत्य की खोज में एक नहीं, दो नहीं, लाखों नहीं बल्कि करोडों, अरबों जीवनों का उत्सर्ग क्या महान् कार्य नहीं है? इस लिए आप निराधार मत हो जाइए, अपने पूर्वजों की सादगी को छोड मत भागिये। वह समय भी आनेवाला है जब वे भी पीछे लौट कर कहेंगे कि 'हा, हमने यह क्या किया?' जो आज अपनी जरूरियातें बढाने में ही अपने को धन्य मानते हैं। सभ्यताएँ आयीं और गयीं और हमारी उन्नति की इतनी धूम होने पर भी मैं आप से कहता हूँ कि 'आखिर इस उन्नति से होना क्या है?' डारविन समसामयिक प्रसिद्ध वैज्ञानिक वैलेस ने भी यही बात कही थी। उसने कहा था कि ५० वर्षों के महान् आविष्कारों से मनुष्यों के सदाचार में जौ भर भी उन्नति नहीं हुई है। उस स्वप्नद्रष्टा और भविष्यद्रष्टा टाल्सटाय ने भी यही कहा था। यही राग ईसा, मुहम्मद और बुद्ध ने भी अलापा था — और आज उन्हीं के धर्मों का नाम ले लेकर, उनके उलटे आचरण हमारे ही देश में हो रहा है।"

प्रकृति के मंदिर

"प्रकृति का नीला, नित नया शामियाना फैला हुआ है। वह हम सबको धर्म के नाम पर झगड कर परमात्मा को गाली देने के बदले, सच्ची पूजा करने को नित निमंत्रण देता है। उसे देख के बाद तो ये गिर्जेघर, मसजिदें और मन्दिर, जिनमें इतना पा और आडम्बर छिपा हुआ रहता है, और जिनमें गरीबों की गुजर ही नहीं, परमात्मा और उसकी पूजा के हज्जो भर पडने लगते हैं।"

चर्खे के तीन संदेश

"जिनके पास और कोई काम न होवे, उन्हें चर्खा कह कि, 'मुझे घुमावो। तुम्हें रोटी का एक टुकडा मैं ला दूँ' यह तो हुआ उसका आर्थिक संदेश पर उसका सांस्कृतिक क्या है? वह हमसे कहता है, 'पृथ्वी पर करोडों आदमी मु हैं। और मैं ही वह एक चीज हूँ जो करोडों के हा घुमाया जा सकता हूँ और तौभी एक भी आदमी की रोजी मारी जायगी, इस लिए तुम क्या करोडों आदमियों के लिए इस से मिहनत करने का, स्वावलंबन का और आशा का वा भगवान् की इस दुनिया में पैदा करने के लिए मुझे फिराओगे?" चर्खे का यही सांस्कृतिक संदेश है, और वह लिए है, चाहे कोई किसी धर्म, देश या जाति का क्यों न मैं आपको भरोसा दिलाता हूँ कि यह संदेश पृथ्वी के दूर कोनों में भी लोगों के दिलों पर कब्जा कर रहा है। इसक तीसरा भी संदेश है और वह रूपकात्मक है। यह सादे जीव ऊँचे विचारों का चिह्न है। ऐशो आराम में दिन दूनी रात वृद्धि करने की प्रवृत्ति का विरोध करता है, जो मनु अपने परमात्मा को पहचानने लायक ही नहीं छोडती कहता है, 'मुझे फिराओ और अगर तुम सब मि मुझे फिराते गये तो तुम अन्त में देखोगे कि चाहे मैं नाचीज और छोटा क्यों न मालूम पडता होऊँ मगर उन्मत्त पूजा का मैं सफलतापूर्वक विरोध कर सकूँगा। की खातिर तुम दूसरों की सभी चालों की आंख मूंद मत करो। उससे तुम्हारी हानि ही होती है। परमात्मा पर तुम वह बनने की कोशिश मत करो, ख्वाहिश मत तुम्हारे देश के सभी कोई नहीं बन सकें।"

गौतमबुद्ध अर हिन्दू शास्त्र

"याद रक्खो कि गौतमबुद्ध बडे से बडे हिन्दुओं में हिन्दू भावना, वैदिक भावना उनकी नसनस में भीनी उनका जन्म ही हुआ था हिन्दू वातावरण में और आत्मा लाभकारक उसी वातावरण में वे पले थे। जहां तक मुझे उन्होंने वेदों को कभी इनकार नहीं किया था। उन्होंने किया था कि अपने चारों ओर मृत-प्राय पडे हुए धर्म सुधार को ला घुसाया। इस लिए मैं आपसे कहूँगा कि जब उन मूल ग्रन्थों को नहीं पढ लेते जिन्हें पढ कर उस महापु प्राप्त किया था, यानी संस्कृत में हिन्दू शास्त्रों को नहीं प बौद्ध धर्म का ज्ञान अधूरा ही कहा जायगा।"

धर्मग्रन्थ पढने की शर्तें

"धार्मिक अध्ययन के लिए हिन्दू-धर्म में कुछ रक्खी हैं। वे सभी धर्मों पर लागू हैं। कोई मनुष्य अध्ययन करना चाहता था, उसे इन शर्तों के मुताबिक का पहले पालन करना चाहिए। वे पांच यम हैं पांच नियम। पहला यम है ब्रह्मचर्य; दूसरा है सत्य; अहिंसा यानी बिलकुल निर्दोषिता, एक चींटी को भी पहुँचाना; चौथा है अस्तेय या चोरी न करना, पर दुनियवी अर्थ में चोरी से बचना ही भर नहीं है बल्कि की चीजों पर लालच की नजर भी नहीं डालनी और अपरिग्रह और जो आदमी दुनियवी धन-दौलत की

है, वह कभी बुद्ध भगवान् की शिक्षाएँ समझने के काबिल हो ही नहीं सकता। जब तक आप खुद इन यमों का पालन कर के उनकी शिक्षा को समझने का प्रयत्न नहीं करते उसे नहीं समझ पावेंगे। देखिए इस्लाम के कितने आलोचकों ने उसी कुरान की धज्जियां धज्जियां उडा दी हैं, जिसके नाम पर करोडों मुसलमान मरते हैं। क्या वे आलोचक झूठे हैं? क्या वे सत्यशोधक नहीं हैं? वे सच्चे हैं, सत्यशोधक हैं मगर धार्मिक अध्ययन करने के पहले उसकी जरूरी शर्तें नहीं जानते। हिन्दू धर्म के आलोचकों ने क्या उसकी मिट्टी कम पलीद की है? ईसाई धर्म का कितने ही हिंदुओं ने क्या ही गलत अर्थ नहीं लगाया है? हिंदुओं ने ही क्यों, अंगरेजों ने ही क्या नास्तिकता के जोश में बाइबिल का उलटा मतलब लगा कर बहुत खराबी नहीं की है? इस लिए मैं चाहता हूँ कि आप धर्म का अध्ययन करके संसार के आगे नया जीवन्तधर्म रखिए न कि वह पुराना ही धर्म जिसे संसार स्वीकार करने को तैयार नहीं है।"

अ० भा० चर्खा-संघ की आन्ध्र शाखा की सालाना रिपोर्ट

१९२६-२७

यह आन्ध्र शाखा की दूसरी रिपोर्ट ३० सितम्बर १९२७ को खत्म होनेवाले साल की है। १ ली अक्तूबर १९२६ तक इस शाखा के अधीन १५ केन्द्र, १० बिक्री और ५ उत्पादन के थे। अब केवल १४ हैं।

कार्य

इसका हिसाब दो मद्दों में है। पहली मद्द में केन्द्रीय कार्यालय का सीधा काम और दूसरी में उसके अधीन संस्थाओं का काम है।

(क) पिछले साल में रु. ६०५१-०-११ की खादी बिकी थी और रु. ९,९७०-१३-९ की खरीदी गयी थी। इस वर्ष रु. १,०३,९०५-८-९ की खादी खरीदी और रु. ८३,५९७-११-७ की बेंची गयी थी। पिछले साल जब कि सिर्फ रु. ६७४-१५-३ का सूत खरीदा गया था, इस साल रु. १३,६०३-१२-१० का खरीदा गया। उस साल रुई बिलकुल ही नहीं खरीदी गयी थी मगर इस साल रु. ६,३७५-९-३ की खरीदी गयी। इस उन्नति का खास कारण है सभी काम एक केन्द्रीय कार्यालय के जरिए चलाने की कोशिश करते जाना।

(ख) उत्पत्ति केन्द्रों ने रु. ५९,२९५-४-६ की खादी बनायी जब कि पिछले साल सिर्फ ३४,२४३) की ही बनायी थी। इसमें सैकडे ७३ की वृद्धि हुई है। सिस्टला और टूनी केन्द्रों का काम खूब ही बढा है। कानूपुर अपने बराबर और मजबूत सूत के लिए सारे प्रान्त में प्रसिद्ध हो गया। कैलाशपटनम में और काम बढाया जा सकता है। नागलपुरम के सूत की बहुत मांग है।

बिक्री केन्द्रों ने रु. १,४१,९०९-१०-४ की खादी बेंची और पिछले साल रु. १,३६,२२७) की बेंची थी। बिक्री में रु. ५६८२-१०-४ की बढती हुई है। गुन्टूर डिपो की बिक्री दुगुने से भी अधिक हो गयी है। नेल्लोर और निडाडावोले में भी बिक्री बढी है। और दूसरी सब जगहों में घटी है। सब मिला कर सैकडे ४ की बढती है।

हिसाब की जांच

सभी शाखाओं के हिसाब साल में दो बार जांचे गये हैं।

उत्पत्ति केन्द्रों को सभी जगह नफा हुआ है और ताडपत्री को छोड कर सभी जगह बिक्री केन्द्रों को थोडी थोडी घटी लगी है जो उत्पत्ति केन्द्रों के नफे से पूरी हो जाती है।

कुल ५२ वैतनिक कार्यकर्त्ता है जिनका औसत वेतन ३०) रुपये माहवार पडता हो जो उनकी योग्यता और त्यागों को देखते हुए कम ही है।

सारे प्रान्त की सभी संस्थाओं की कुल उत्पत्ति रु. ३,८३,०३७-२-१० है और कुल बिक्री रु. ४,०३,७३७-१-० की है जिनमें स्थानीय बिक्री रु. २,७७,९४१-१-१० की है। पिछले साल से मिलान करने पर इस साल उत्पत्ति में रु. ३२,९२६-१४-९ और स्थानीय बिक्री में रु. ११,८६७-६-४ की वृद्धि हुई है।

खादी की कीमत

विदेशों में रुई के दाम की घटी बढी से यहां भी रुई की दर चढती उतरती है, जिसका असर खादी के दाम पर भी पडता है। मगर संतोष का बात है कि हमारी खादी का दाम घट रहा है। अधिकांश संस्थाओं में मामूली खादी का दाम १ आने गज और बढिया का २ से ४ आने गज तक घटा है। १९२२ में ५० इंच पनहे की जो खादी रु. १-६-० गज बिकती थी वह अब कपडे में उन्नति होने पर भी रु. ०-१२-० गज बिकती है और यह कुछ थोडी कमी नहीं है।

खादी प्रदर्शन

इस साल ३ प्रदर्शनों में हम शामिल हुए थे। सभी जगह बिक्री अच्छी रही। बंगलोर प्रदर्शन में तो सारे प्रदर्शन में और लोगों की जितनी कुल बिक्री हुई उतनी एक हमारी हुई थी। मैसूर में केवल एक हमीं को खादी के लिए चांदी का तमगा मिला था।

दरिद्रनारायण को सेवा

हमने गरीब कतवैयों, धुनियों, जुलाहों, रंगरेजों, छपेरों वगैरह को रु. ४८,०२२) दिये। वीरन्ना कानूपुर में तो गरीबों को दिये गये की रुपये में केवल डेढ आने हमारे कार्यालय पर खर्च होता था। खादी बिक्री में फी रुपये हम सवा आना कार्यालयों पर खर्च करते हैं।

'अ'वर्ग के सदस्य

खेद की बात है 'अ'वर्ग के अ. भा. चर्खा-संघ के सदस्यों की संख्या घट गयी है। पिछले साल ४५७ सदस्य थे और इस साल सिर्फ ३१९ हैं, जिनमें उस साल ९६ ने पूरा चंदा दिया था और इस साल सिर्फ ६८ ने दिया है।

फेरी

९९ फेरीवालों ने रु. ६,२२४-१२-११ कमाये, कुल खादी उन्होंने रु. ७९,९८५-१०-१० की बेंची, इस विभाग में खास तौर पर उन्नति हुई है। दीहातों की बिक्री फी सदी ३० बढी है और शहरों की ४८ और कुल मिला कर ३४।

खादी और अकाल निवारण

पिछले साल गुन्टूर जिले के ओंगोल तालुके की फस्ल नष्ट हो गयी थी। लोग घरबार छोड कर मजदूरी की खोज में भागे जा रहे थे। हमने वहां पर एक शाखा खोली। उसमें खूब काम हुआ और लोगों को उससे बडा सहायता मिली। अब उस शाखा को स्थायी बनाने का विचार हो रहा है।

अपने कपडे के लिए

तिरुपति में अपने कपडे के लिए आप कातनेवालों का संगठन किया गया है। वहां के कुछ वकील और व्यापारी अपना सूत आप कात कर कपडा बुनवाते हैं।

सूत की जांच

एक खादी निरीक्षक ने कई केन्द्रों में जा जा कर सूत के नमूनों की जांच की। उनमें सूत के सभी तरह के नमूने १५ से १५० अंक तक के थे। बहुत से नमूने तो, खास कर बोंटले कोडुर, और पोण्डुर के, मिल के सूत को मजबूती और एकसारगी या समानता में मात करते थे। सबसे अच्छा सूत बोंटलकोडुर की एक लडकी का १५० अंक का था। उसकी समानता पूरे १०० और मजबूती फी सदी १५९ थी।

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ३०

संयम की ओर

पिछले अध्याय में मैं कह आया हूँ कि खूराक के कितने एक फेरफार कस्तूरबाई की बीमारी के कारण हुए। पर अब तो ब्रह्मचर्य की दृष्टि से उसमें दिनोंदिन फेरफार होते गये।

उनमें पहला परिवर्तन था दूध का छोडना। यह बात मैंने पहले रायचन्दभाई से समझी कि दूध से इन्द्रियविकार पैदा होता है। अन्नाहार के बारे में अंगरेजी पुस्तकें पढने से इस विचार की वृद्धि हुई। पर जहां तक ब्रह्मचर्य का व्रत नहीं लिया था, वहां तक दूध छोडने का खास इरादा नहीं कर सका। यह तो मैं कब का समझ चुका था कि शरीर के निर्वाह के लिए दूध की जरूरत नहीं है। पर वह ऐसी चीज ही नहीं थी जो झट छूट जाय। इन्द्रियदमन के लिए दूध छोडने की जरूरत मैं अधिकाधिक समझ रहा था जब कि कलकत्ते से मेरे पास ग्वालों के गाय और भैंस के ऊपर किये जानेवाले अत्याचारों का कुछ साहित्य आया। इस साहित्य का मुझ पर गजब का असर पडा। मैंने उसके बारे में मि० कैलनबैक से बातें की।

जो कि मैं सत्याग्रह के इतिहास में मि० कैलनबैक का परिचय करा गया हूँ और पिछले किसी प्रकरण में उनका सहज ही उल्लेख कर चुका हूँ तौभी दो बात और कहने की जरूरत है। उनका मिलाप मुझे अनायास ही हुआ था। ये मि० खां के मित्र थे। मैं समझता हूँ कि मि० खां ने उनमें गहरी वैराग्यवृत्ति देखी और इसलिए मुझसे परिचय कराया। जब परिचय हुआ तब उनका शौक और शाहखर्ची देख कर मैं भडक गया था। पर पहले ही परिचय में उन्होंने मुझसे धर्मविषयक प्रश्न पूछे। उसमें बुद्ध भगवान् के त्याग की बात सहज ही निकली। इस प्रसंग के बाद हमारा सरोकार बढता ही गया। यह सरोकार यहां तक बढा कि उनके मन में निश्चय हो गया कि जो काम मैं करूँ वह उन्हें भी करना ही चाहिए। वे अकेले थे। वे अपनी एक देह पर ही घरभाडे के अलावा १२००) रु. महीने का खर्च करते थे। उसके बाद अन्त में उनमें इतनी सादगी आयी कि एक बार उनका मासिक खर्च १२०) रुपयों पर आ अडा। मेरे घरबार तोडने और पहली बार जेल जाने के बाद हम दोनों साथ रहने लगे थे। उस समय हम दोनों का जीवन — अपेक्षाकृत — सख्त था।

हम लोगों के साथ रहने के इसी जमाने में दूध के बारे में यह चर्चा हुई। मि० कैलनबैक ने कहा, 'तब हम दूध क्यों न छोड देवें? दूध के दोषों की बातें तो हम अकसर किया करते हैं। इसकी जरूरत तो है ही नहीं।' मुझे इस विचार से सानन्दाश्चर्य हुआ। मैंने इस सलाह को खुशी से मान लिया और हम दोनों ने टाल्सटाय फार्म में उसी क्षण दूध का त्याग किया। यह घटना १९१२ साल की है।

इतने त्याग से शांति न हुई। दूध के त्याग के थोडे ही दिनों बाद केवल फलाहार ही पर निर्भर रहने का भी निश्चय कर लिया। फलाहार में भी धारणा यह थी कि जो सस्ता से सस्ता फल मिले उसी पर गुजर करना चाहिए। हम दोनों की ख्वाहिश थी कि हम गरीब से भी गरीब आदमी का जीवन वितावें। फलाहार की सुविधा का भी हमें खूब अनुभव हुआ। फलाहार में बहुत कर के चूल्हा जलाने की तो जरूरत पडती ही नहीं। वेभूँजी मूँगफली, केला, खजूर, नींबू और जेतून का तेल—यही हमारा सामान्य आहार बन गये थे।

ब्रह्मचर्य-पालन की इच्छा रखनेवाले को यहां एक चेतावनी देने की जरूरत है। जो कि मैंने बतलाया है कि ब्रह्मचर्य के साथ खूराक का निकट संबन्ध है मगर तौभी यह बिलकुल ठीक है कि उसका मुख्य आधार तो मन पर है। मैला मन उपवास से
शुद्ध होता। खूराक उस पर असर नहीं करती। मन का
विचार से, ईश्वर-ध्यान से, और अन्त में ईश्वर की कृपा से
जाता है। पर मन का शरीर के साथ निकट संबन्ध है
विकारी मन विकारी ही खूराक खोजता है। विकारी मन
प्रकार के स्वादों और भोगों को ढूँढता है। और पीछे से
खूराकों और भोगों का असर मन पर होता है जिससे उस
तक खूराक पर अंकुश और निराहार की आवश्यकता उत्पन्न
है। विकारी मन शरीर के ऊपर, इन्द्रियों के ऊपर काबू पैदा
के बदले शरीर और इन्द्रियों के वश में चलता है, इसलिए
शरीर को शुद्ध और कम से कम विकारी खूराक की मर्यादा
प्रसंगोपात्त निराहार—उपवास की आवश्यकता रही है। इसलिए
यह कहते हैं कि संयमी को खूराक की मर्यादा या उपवास
जरूरत नहीं है वे भी उतनी ही बडी भूल में पडे हैं जो
और उपवास को ही सर्वस्व मानते हैं। मेरा अनुभव तो मुझे
सिखलाता है कि जिनका मन संयम के प्रति झुक गया है,
खूराक की मर्यादा और उपवास से बहुत मदद मिलती है।
मदद के बिना मन की निर्विकारता असंभव जान पडती है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गां

एक हजार रुपये का इनाम

श्रीयुत रेवाशङ्कर जगजीवन झावेरी की ओर से हिन्दी, सं
या अँगरेजी में गोरक्षा के बारे में उत्तम निवंध लिखने के
१०००) रुपयों के इनाम की घोषणा की गयी थी परन्तु कोई
जनक निवंध नहीं आने से उसी इनाम की घोषणा फिर से
का निर्णय हुआ है। नीचे लिखे शर्त्तों पर इनाम दिया जायगा

ताः ३० वीं जून १९२८ तक सत्याग्रहाश्रम, सावरमती में,
अखिल भारतवर्षीय गोरक्षामण्डल के पास निवंध पहुँच जाना चा
उसमें गोरक्षा की उत्पत्ति, उसका रहस्य, और उसके संवंध के प्र
चर्चा होनी चाहिए। प्रतिपाद्य विषय के समर्थन में शास्त्रों के
भी देने चाहिए। साथ ही शास्त्रों की ऐतिहासिक पर्यालोच
साथ इसकी खोज पडताल भी होनी चाहिए कि गोरक्षा का
करनेवाली संस्थाएँ अगर दुग्धालय के साथ चर्मालय भी चला
शास्त्रों में इसका निषेध कहीं है या नहीं। इसके अलावा भा
गोरक्षा का इतिहास देना चाहिए और इसका विवेचन करना
कि भिन्न २ कालों में गोरक्षा के लिए कौन कौन सी पद्धति
की गयी। देश के ढोरों की संख्या के आंकडे और गोचर के
की और इसकी भी चर्चा कि उसके बारे में सरकार की नी
क्या असर पडता है, होनी चाहिए। और यह भी बतलाना
कि गोरक्षा की सफलता के लिए कौन कौन से उपाय करने चा

आचार्य आनंदशंकर बापुभाई ध्रुव तथा श्री चिन्तामणि वि
राव वैद्य ने कृपा कर निवंधों की परीक्षा करनी कबूल की है।

निवंध की लंबाई के बारे में कोई मर्यादा नहीं है क्योंकि
आधार प्रतिपादन की रीति पर होगा। पर साधारणतः निवंध
ही छोटा हो, उतना ही अच्छा है। यह लिखने की तो
जरूरत ही नहीं है कि केवल लंबाई का कोई प्रभाव नहीं प
इस लिए हर एक लेखक इस विषय में स्वयं विचार कर लें
जहां जरूरत मालूम होवे, खुद ही काट छांट कर लेंगे।

निवंध (१) कागज के एक ही बाजू (२) स्याही से सुवाच्य, और
अक्षरों में और (३) अच्छी तरह सिये हुए मोटे कागज पर लि
चाहिए और उसमें लेखक का पूरा नाम पता देना चाहिए।

नामंजूर निवंध लौटाये नहीं जायँगे। इस लिए जिन्हें अपने
की नकल चाहिए, वे भेजने के पहिले ही उनकी नकल कर रख

घालजी गोविन्दजी दे

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हमारा कलंक

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक १८

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद

अहमदाबाद, पौष बदी १४ संवत् १९८४
गुरुवार, २२ डिसम्बर १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ३१

उपवास

जब दूध छोड कर फलाहार शुरू किया, उसी अरसे में संयम के हेतु से उपवास भी शुरू किये। इसमें भी मि० कैलनबेक आ जुटे। पहले भी मैं उपवास करता था मगर सिर्फ आरोग्य की दृष्टि से ही। यह एक मित्र की प्रेरणा से समझा कि देहदमन के लिए उपवास करने की आवश्यकता है। वैष्णव कुटुम्ब में जन्म होने और माता के कठिन व्रतों की पालनेवाली होने के कारण मैंने देश में एकादशी वगैरह व्रत रक्खे तो थे, पर या तो सिर्फ देखादेखी से या मातापिता को खुश करने के लिए ही। यह उस समय नहीं समझा था, मानता भी नहीं था कि ऐसे व्रतों से कोई लाभ होता है। पर उस मित्र को देख कर और अपने ब्रह्मचर्यव्रत को सहारा देने के लिए मैंने उनका अनुकरण शुरू किया। सामान्यतः लोग एकादशी के दिन दूध और फल लेकर एकादशी रखनी मानते हैं। पर अब फलाहार तो मैं हमेशे ही करता था। इस लिए मैंने पानी की छूट रख कर पूरे उपवास शुरू किये।

उपवास के प्रयोगों के आरंभ में ही श्रावण मास आया। उस साल रमजान और श्रावण मास साथ ही पडे थे। गांधी कुटुम्ब में वैष्णव व्रतों के साथ ही शैवव्रत भी पाले जाते थे। कुटुम्बी लोग जिस प्रकार वैष्णव मन्दिर में जाते उसी तरह शिवालयों में भी जाते थे। श्रावण मास के प्रदोष तो कुटुम्ब में कोई कोई हर साल रखते थे। इस लिए मैंने इस श्रावण मास का व्रत उठाने का निश्चय किया।

इस महत्व के प्रयोग का आरंभ टॉल्सटाय फॉर्म में हुआ। वहां सत्याग्रही कैदियों के कुटुम्बियों को सँभाल कर मैं और कैलनबेक रहते थे। इनमें बालक और नवयुवक भी थे। उनके लिए स्कूल चलता था। इन जवानों में पांच मुसलमान थे। उन्हें इस्लाम के नियम पालने में मैं मदद करता और उत्तेजन देता था। निमाज वगैरह की सुविधा कर देता। आश्रम में पारसी और ईसाई भी थे। इन सबको अपने अपने धर्म के अनुसार चलने को उत्तेजन देने का नियम था। इस लिए इन मुसलमान युवकों को रोजा रखने में मैंने उत्तेजन दिया। मुझे प्रदोष तो रखने थे ही। पर हिन्दुओं, पारसियों और ईसाइयों को भी मैंने मुसलमान युवकों का साथ देने की सलाह दी। मैंने उन्हें समझाया कि संयम में सबका साथ देना स्तुत्य है। बहुत से आश्रमवासियों ने मेरी बात मान ली। हिन्दू और पारसी मुसलमानों की हूबहू नकल नहीं करते थे, करने की आवश्यकता थी भी नहीं। मुसलमान सूरज डूबने का रास्ता देखते तो दूसरे उसके पहले ही खा लेते जिसमें वे मुसलमानों को खाना परोस सकें और उनके लिए खास चीजें तैयार कर सकें। इसके अलावा मुसलमान सरगही या व्रत के दिनों में सबेरे सूर्योदय के पहले का भोजन करते तो उसमें दूसरे हिस्सा नहीं लेते थे। मुसलमान तो दिन में पानी नहीं पीते थे, पर दूसरों को पानी पीने की छूट थी।

इस प्रयोग का एक फल यह हुआ कि उपवास और एक बार भोजन करने का महत्व सभी समझने लगे। एक दूसरे के प्रति उदारता और प्रेमभाव बढे। आश्रम में अन्नाहार का नियम था। यहां मुझे आभारपूर्वक कबूल करना चाहिए कि यह नियम मेरी खातिर स्वीकार किया गया था। रोजा के दिनों में मुसलमानों को मांस का त्याग शायद भारी लगा होगा, मगर नवयुवकों में से किसीने मुझे इसका पता नहीं लगने दिया। वे आनंद और स्वादपूर्वक अन्नाहार करते थे। आश्रम में अशोभन या भद्दा न लगने लायक रसोई भी उनके लिए बनती थी।

अपने उपवास का वर्णन करते समय यह विषयान्तर मैंने जानबूझ कर किया है क्योंकि इस मधुर संस्मरण का वर्णन मैं किसी दूसरी जगह नहीं कर सकता था। और यह विषयान्तर करते हुए मैंने अपनी एक आदत का भी वर्णन कर दिया है। वह यह है कि जो काम करना मुझे भला जान पडता है उसमें अपने साथ रहनेवालों को मिलाने का प्रयत्न हमेशे करता हूँ। इन उपवासों और एकाहारों का प्रयोग नयी वस्तु थी, मगर प्रदोष और रमजान के बहाने मैंने उनमें सबको ला घुसेडा।

इस तरह आश्रम में संयमी वातावरण सहज ही बढा। दूसरे उपवास और एकाहारों में भी आश्रम में रहनेवाले मिलने लगे। मैं मानता हूँ कि इसका परिणाम शुभ ही आया। यह मैं निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकता कि सबके हृदय पर संयम का कितना असर पडा, सबके विषयों को रोकने में उपवासादि ने कितना बडा

भाग लिया। पर मेरा अनुभव है कि मुझ पर तो आरोग्य और विषय की दृष्टि से बहुत ही अच्छा असर पडा था। तौभी मैं जानता हूँ कि यह कोई अनिवार्य नियम नहीं है कि सब पर वैसा ही अच्छा असर पडे। विषयों को रोकने का असर उसी उपवास का पडता है जो विषयों को रोकने के लिए ही किया जाय। कितने एक मित्रों का ऐसा अनुभव भी है कि उपवास के अन्त में विषयेच्छा और स्वाद तीव्र हो जाते हैं। बात तो यह है कि उपवास के दर्म्यान विषयों को रोकने की, स्वाद को जीतने की सतत भावना अगर हो, तभी उसका शुभ फल आता है। यह मानना केवल भूल है कि निरुद्देश्य, बिना हेतु के, वे मन के उपवास से विषय रोकने में स्वतन्त्र परिणाम पैदा होता है। गीताजी के दूसरे अध्याय का यह श्लोक बहुत विचारने योग्य हैः

> विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
> रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

'उपवासी के विषय उपवास के दर्म्यान शान्त होते हैं; पर उनका रस या स्वाद नहीं जाता है। रस तो ईश्वर-दर्शन से ही-ईश्वर प्रसाद से ही शान्त होते हैं।'

यानी उपवासादि संयमी के मार्ग में साधनरूप में आवश्यक हैं। मगर वे ही सब कुछ नहीं हैं। और अगर शरीर के उपवास के साथ मन का भी उपवास न होवे तो वह दंभ में बदल जाता है और हानिकारक होता है।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

लंका-निवासी हिन्दुओं को

[यह भाषण जाफना के हिन्दुओं की एक सभा में दिया गया था। भारतवर्षीय हिन्दुओं के लिए भी इसे लाभदायक समझ कर इसका अनुवाद नीचे दिया जाता है।]

आज मुझे कई सभाओं में भाषण देना पडा है और यह अखीरी है। मुझे वे सभी सभाएँ प्रिय थीं; मगर यह सबसे अधिक प्रिय है क्योंकि आपने मेरे बोलने के लिए खास हिन्दुओं की यह सभा की है। इसके मानी मैं यह समझता हूँ कि मैं आपसे बतौर एक हिन्दू के हिन्दू से बातें करूँ। और इससे मुझे बडी खुशी हो रही है। आपको मालूम होगा कि मेरा दावा है कि मैं कट्टर हिन्दू हूँ। मगर दूसरे जो लोग अपने को कट्टर हिन्दू कहते हैं, वे मेरे इस दावे को नहीं मानते हैं। खैर मैं आपको भ्रम में डालना नहीं चाहता। अगर कट्टर हिन्दुत्व के मानी हों मुसलमानों, ईसाइयों से वैर करना, अगर कट्टर हिन्दूपना सिखलाता हो कि इस आदमी को छुओ मगर उससे मत छुलाओ, उसका छुआ भोजन अपवित्र है, उसे मत खाओ तो मैं कहूँगा कि मैं कट्टर हिन्दू नहीं हूँ। मगर अगर कट्टर हिन्दू होने का अर्थ है, इसका सतत शोध करते रहना कि दर असल हिन्दूधर्म का सच्चा स्वरूप कौन सा है, हिन्दूधर्म का जो सच्चा स्वरूप समझ में आवे, उसीके अनुकरण का यथाशक्ति पूरा प्रयत्न करना तो मैं दावा करता हूँ कि मैं सच्चा कट्टर हिन्दू हूँ। इसके अलावा महर्षि व्यास के मतानुसार भी मैं कट्टर हिन्दू हूँ। महाभारत में कहा है कि तुला के एक पलडे पर दुनिया के सभी दानपुण्य रक्खो और दूसरे पर केवल अकेला सत्य तौभी सत्य का ही पलडा भारी रहेगा और सभी दानपुण्यों, राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का पलडा ऊँचा ही रहेगा। अब अगर महाभारत को पंचमवेद माना जाय तो मैं जरूर कट्टर हिन्दू हूँ क्योंकि अपने जीवन के क्षण क्षण में मैं सत्य का ही अनुसरण करने की कोशिश करता हूँ, इसमें आनेवाले त्यागों, कठिनाइयों की कभी पर्वा नहीं करता।

विस्तृत हिन्दुत्व

अब अपना दावा साबित कर चुकने के बाद मैं आप से कहूँ कि बतौर हिन्दू के आपका यहां क्या कर्त्तव्य होना चाहिए। सबसे पहले तो आपको उनका ख्याल करना होगा, जिनकी बस्ती यहां आप से अधिक है। मैं आपको यह सुझाना चाहता हूँ कि वे आपके सहधर्मी, हम मजहब हैं। वे अगर चाहें तो इस बात से इन्कार कर सकते हैं क्योंकि वे कहेंगे कि बौद्धधर्म हिन्दूधर्म का अंग नहीं और बहुत अंशों तक उनका कहना सही भी होगा। कितने हिन्दू भी यह नहीं मानेंगे कि बौद्धधर्म हिन्दूधर्म का अंग है। बल्कि वे इसी में अपना गौरव मानेंगे कि बौद्धधर्म को हिन्दुस्तान से उन्होंने मार भगाया। मगर बात दर असल यह है कि स्वयं बुद्ध भी बडे से बडे हिन्दुओं में से थे और उन्होंने हिन्दूधर्म को सुधारने की कोशिश की थी। इसमें उन्हें सफलता भी मिली थी। उस समय हिन्दूधर्म ने भी यही किया कि बुद्ध की शिक्षाओं में जो सब से अच्छी और भली थीं, उन्हें अपने आप में जज्ब कर लिया। इसी लिए मैं कहता हूँ कि हिन्दूधर्म का यों बुद्ध की शिक्षाएँ अपने में जज्ब कर लेने से विस्तार हुआ। हिन्दूधर्म ने काम इतना ही किया कि बुद्ध की शिक्षाओं के आसपास जो मैल आ जमा था उसे साफ करके दूर कर दिया। इसलिए यह बात आप बौद्धों को इसी तरह दिखला सकते हैं कि आप इस विस्तृत हिन्दूधर्म का पालन करें। बुद्ध ने जो एक बात सिखलायी थी वह यह थी कि परमात्मा कोई वैसा जीव नहीं है जो निर्दोष प्राणियों की बलि से खुश होवे। इसके उल्टे उनका तो कहना था कि परमात्मा को खुश करने के लिए बलि-प्रदान करनेवाले दुहरा पाप बटोरते हैं। इसलिए अगर आप अपने धर्म का सच्चा पालन करना चाहते हैं तो आपको अपने एक भी मंदिर में निर्दोष प्राणियों की बलि नहीं चढानी होगी। मैं तो भारतवर्ष के विरुद्ध यह कहने को तैयार हूँ कि चाहे जिस मतलब से हो, या परमात्मा को खुश करने के लिए ही क्यों न हो, एक भी जानवर की बलि चढानी बुरा काम है, पाप है, गुनाह है।

वर्ण और जाति-प्रथा

दूसरी बात जो गौतम बुद्ध ने सिखलायी वह यह थी कि आज-या उनके जमाने में भी वही बात थी--जिस चीज को जाति कहा जाता है, वह सरासर गलत है यानी उन्होंने अपने जमाने में बडप्पन छुटपन का जो ख्याल हिन्दू धर्म को नष्ट कर रहा था, उसे दूर कर दिया। मगर उन्होंने वर्णाश्रम को इनकार नहीं किया। वर्णधर्म और जातिप्रथा एक ही चीज नहीं हैं। जैसा कि मैं ने दक्षिण भारत में कई बार कहा है और यं० इं० में विस्तार से लिखा है, वर्णधर्म और जातिप्रथा में कोई समानता नहीं है। जब कि वर्णधर्म प्राणदाता है, जाति-प्रथा प्राण लेनेवाली है। और जातिप्रथा का सबसे घृणित स्वरूप है अस्पृश्यता। आप अपने बीच से अस्पृश्यता को दूर करें। अगर आप बौद्ध बन्धुओं के बीच में सच्चे हिन्दू बना रहने चाहते हैं तो एक आदमी को भी, भूल कर भी अस्पृश्य मत मानिए। अफसोस तो यह है कि लंका के खुद बौद्धों ने भी हिन्दुओं से यह अभिशाप लिया है। जिनके बीच में जातिप्रथा होनी ही नहीं चाहिए थी, उनमें भी आज जातियां हैं। परमात्मा के लिए यह भूल जाइए कि कोई बडा और कोई छोटा है। बस यही याद रखिए कि आप सब हिन्दू हैं, और एक दूसरे के सगे भाई हैं।

मन्दिरों को सुधारो

जाफना के किसी मित्र ने मुझे लिखा है कि यहां हिन्दुओं के कुछ मन्दिरों में वेश्याओं का नाच कराया जाता है। अगर यह बात सच हो तो आप देवता के आवास मन्दिरों को वेश्याओं के अड्डे बना रहे हैं। अगर मन्दिर को पूजास्थान होना है, देवस्थान रहना है तो उसे कुछ मर्यादाओं का पालन करना होगा। मन्दिर

में जाने का एक वेश्या को भी वही अधिकार है जो किसी संत को है। मगर वह अधिकार तो उसे तब है जब वह अपने पाप धोने जाती हो। मगर जब किसी मन्दिर के रक्षक धर्म या देवपूजन की आड में वेश्या को वहां ले जाते हैं तब वे देवस्थान को बदल कर दाल की मंडी बनाते हैं। और जब आपके पास कोई आ कर यह साबित करने की कोशिश करे कि आपके मन्दिरों में रंडियों को नाचने या किसी ऐसे ही काम के लिए बुलाना उचित है तो वह कितना ही बडा आदमी क्यों न हो आप उसकी बात इनकार करें, और मेरी ही बात पर अडे रहें। अगर आप हिन्दू बनना चाहते हैं, अगर आपको परमात्मा की पूजा मंजूर है तो आप अपने मन्दिरों के दरवाजे अछूतों के लिए भी खोल देवें। परमात्मा के दरबार में उसके भक्तों में कोई फर्क नहीं किया जाता। वह तो इन अछूतों और नाम मात्र के सछूतों, सब की पूजा एक सी स्वीकार करता है। उसके यहां सिर्फ एक शर्त है—प्रार्थना सच्चे दिल से होनी चाहिए।

दूसरे धर्मों से मेल रखिए

आज कल आपको ऐसी दुनिया में रहना है जिसमें मुसलमान और ईसाई भी रहते हैं। इनका धर्म भी बहुत बडा है। आपके जाफना में मुसलमानों की आबादी फी सैकडे २ या ३ है और ईसाइयों की १०। ख्वाह ये फी सदी दो हों या बीस, मगर रहना है आपको इन्हींके साथ। और अगर मैं हिन्दूधर्म को जरा भी जानता हूँ तो सच्चा हिन्दूधर्म वही है जो दूसरे धर्मों के साथ उदारता और सहनशीलता का व्यवहार करे। और चूंके वे भी इस अन्तरीप और इस टापू के वैसे ही बाशिन्दे हैं जैसे कि आप, इस लिए उन्हें भी अपना भाई मानना आपका फर्ज है। जब तक आप यह नहीं करते, आप में सच्ची हिन्दू और मानुषिक भावना का विकास नहीं होगा।

आपको अपने लडकों की शिक्षा दीक्षा का प्रबंध करने का अधिकार है। मुझे इसकी खुशी है कि आपके अपने शिक्षा मण्डल सी हैं। आप उन्हें ठीक तौर पर सबल बनाइए। मगर इसके मानी यह नहीं होने चाहिए कि आपकी और दूसरे धर्मवालों की संस्थाओं के बीच कोई खटपट रहे। अगर आपके यहां योग्य शिक्षक हैं और आप हिन्दू विद्यार्थियों को यथेष्ट सुविधा देते हैं तो फिर सब हिन्दू लडके आपके ही यहां पढने आवेंगे। और शिक्षा के बारे में मैं ईर्ष्या की तो कोई जगह ही नहीं देखता। मुझे यह सुन कर खुशी हुई थी कि अभी हाल तक हिन्दू, मुसलमान और ईसाई यहां मेल से रहते थे। अभी हाल में ही आपके और ईसाइयों के बीच कुछ मनमुटाव हो रहा है। और चूंके आप की संख्या उनसे बहुत अधिक है, उनसे मिल कर अपने झगडे ते कर लेना आपका कर्त्तव्य है और अगर आप इस अभागी जाति-प्रथा के भाव को दूर कर सकेंगे तो आप देखेंगे कि सभी कठिनाइयां दूर हो गयी हैं।

और फिर चूंके आपकी ही संख्या सबसे अधिक है, ज़ाफना में और जाफना के ज़रिए लंका में शराबखोरी रोकनी, आपका कर्त्तव्य है। हिन्दूधर्म आपको शराब पीने की इजाजत नहीं देता है।

संस्कृत शिक्षा

अगर शिक्षा मण्डल अपने कर्त्तव्य का पालन करे तो उसे आपकी पाठशालाओं में संस्कृत-शिक्षा को उत्तेजन देना चाहिए। संस्कृत का कुछ ज्ञान प्राप्त किये बिना, मैं किसी हिन्दू लडके की शिक्षा अधूरी समझता हूँ। और जहां तक मुझे पता है हिन्दूधर्म में श्रीमद् भगवद्गीता के समान कोई किताब सर्वत्र सुलभ, और सर्वग्राही नहीं है। इसलिए अगर आप अपने में और अपने लडकों में हिन्दू भावना घुसाना चाहते हैं तो आपको गीता की शिक्षाओं का रहस्य समझने की कोशिश करनी होगी। आपको रामायण और महाभारत का भी सामान्य ज्ञान पैदा करना पडेगा।

अखीर में मैं यह कहूँगा कि मनुष्यजाति की सभी कठिनाइयों का मैं दो उपायों के अलावा और कोई उपाय नहीं जानता। उन उपायों की तो मैं हमेशे माला ही जपता रहता हूँ। वे हैं, सत्य बोलना, और हर हालत में अहिंसा का पालन करना। जैसे कि मैं यह जानता हूँ कि आपके सामने मैं बैठा हुआ हूँ, उसी प्रकार मुझे विश्वास है कि अगर मैं आपको इन दो चीजों में विश्वास दिला सकूँ तो आपकी हर एक मुश्किल उसी तरह उड जायगी जैसे कि हवा के आगे तिनका और स्वयं भगवान् आपके आगे प्रत्यक्ष आकर कहेंगे कि तुम हिन्दुओं ने भला ही किया है।

(यं० इं०)

खादी की उत्पत्ति और बिक्री का ब्यौरा

प्रान्त	रु.	उत्पत्ति १९२४-२५	उत्पत्ति १९२५-२६	उत्पत्ति १९२६-२७	बिक्री १९२४-२५	बिक्री १९२५-२६	बिक्री १९२६-२७
अजमेर	”	२६,४७४	६७,१९४	१,३१,४८०	२५,६७८	४६,९७८	१,२८,२७८
आन्ध्र	”	३,८८,९४०	३,५०,१००	३,८३,०३७	६,३६,५३९	६,९७,८०९	४,०३,७३७
आसाम	”	. .	१,२०९	. .	. .	. .	. .
बिहार	”	१,६८,४६४	२,२४,६९०	१,८४,३४७	२,४२,४२१	१,८५,६२७	२,६७,३०२
बंगाल	”	२,४७,६२६	४,५३,३७८	२,४४,५९७	२,११,०७७	३,३६,४१०	४,४०,१२७
बम्बई	”	. .	. .	. .	४,२४,१७९	३,९४,८१७	२,८५,८५८
ब्रह्मा	”	. .	. .	. .	२३,१६५	१४,३०३	२५,४३८
मध्यप्रान्त हिन्दी	”	३,३८०	. .	. .	१६,७९३	२,८८४	. .
दिल्ली	”	१०,८०७	१२,३८०	१४,६४१	२०,८२७	१७,३९१	१९,८११
गुजरात	”	४२,४२३	८९,८७२	५२,२५०	३,७६,१४१	१,००,५८८	८९,४१०
कर्णाटक	”	७९,५६४	५३,८११	५५,८४४	१,२०,०४१	६७,१८१	७८,११५
महाराष्ट्र	”	९,५६५	१५,२११	१८,७९४	९४,५५६	१,२७,४८२	१,६६,७७४
पंजाब	”	६५,५७६	१,०४,६८८	७५,६७१	८०,९७४	९३,४६८	१,६६,८२४
सिंध	”	. .	. .	. .	१५,०६१	. .	. .
तामिलनाड-केरल	”	८,१६,६६४	८,९४,१३२	१०,९४,६३३	९,७८,५५६	९,४२,४४६	१०,७३,०२१
युक्त प्रान्त	”	२७,४९८	७७,४५५	९९,७५५	६६,९०६	१,३९,८३२	१,६२,५०४
उत्कल	”	४,७०३	३२,५००	५१,३२१	२९,११७	२८,९२७	४१,४८६
कुल	रु.	१९,०३,०३४	२३,७६,६७०	२४,०६,३७०	३३,६१,०६१	२८,९९,१४३	३३,४८,७९४

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, पौष वदी १४ संवत् १९८४

हमारा और उनका कलंक

उडिस्सा की मुसाफिरी बहुत दिनों से मुल्तवी चली आती थी, और जब वह आयी भी तो मेरे संताप और जिल्लत को बेहद बढा देने के लिए ही। नजदीक से नजदीक के रेलवे स्टेशन से ३१ मील दूर, बोलगढ में मैं दीनबंधु ऐन्ड्रयूज के साथ बैठा बातें कर रहा था। उसी समय सिर्फ एक मैली सी लँगोटी पहने कमर झुकाये एक आदमी झुकता हुआ मेरे सामने आया। उसने जमीन पर से एक तिनका उठा कर मुँह में डाल लिया, और मेरे आगे साष्टांग लोट गया, फिर उठ कर प्रणाम किया, तिनका निकाल कर बाल में रख लिया और जाने लगा। यह दृश्य देखते हुए मैं तकलीफ से ऐंठ रहा था। यह खत्म होते ही मैंने किसी दुभाषिए को पुकारा और इस भाई को बुला कर बातें करने लगा। वह बेचारा अछूत था। थोलगढ से छह मील पर रहता था। बोलगढ में लकडी बेंचने आया था। वहां आने पर मेरे बारे में सुन कर मुझे देखने आया था। मेरे पूछने पर कि मुँह में तिनका क्यों लिया था उसने कहा कि 'आपका आदर करने के लिए।' शर्म से मैंने सिर झुका लिया। इस 'आदर' की कीमत मुझे बहुत भारी, असह्य जान पडी। मेरी हिन्दू भावना को गहरी चोट लगी थी। मैंने कहा, "मुझे कुछ दोगे?" वह बेचारा एक पैसे के लिए कमर टटोलने लगा। मैंने कहा, "मुझे तुम्हारे पैसे नहीं चाहिए पर मैं उससे भी अच्छी चीज मांगता हूँ।" उसने कहा "दूंगा"। मैंने उससे पूछ लिया था कि वह शराब पीता था, मुरदार मांस खाता था — बल्कि यह तो रिवाज ही था।

"मैं तुमसे यह माँगता हूँ कि तुम जबान दो कि दुनिया में किसी आदमी के लिए आगे से मुँह में तिनका नहीं लूंगा, यह तो आदमी के लायक काम नहीं है; फिर कभी शराब नहीं पीऊँगा क्योंकि वह आदमी को पशु बना देती है; मुरदार मांस नहीं खाऊँगा क्योंकि यह हिन्दूधर्म के विरुद्ध है और कभी कोई सभ्य आदमी मुरदार मांस नहीं खायगा।"

उस गरीब ने जवाब दिया, "मगर मैं शराब न पीऊँ और मुरदार मांस न खाऊँ तो बिरादरी वाले मुझे जाति से निकाल देंगे।"

"तब अजात होने को तकलीफ सहो, और जरूरत पडे तो गांव छोड दो।"

इस पददलित गरीब आदमी ने वचन दिया। अगर वह अपनी बात पर कायम रह गया तो उसकी यह भेट, मेरे धनी देशवासियों के दिये धन से अधिक बहुमूल्य होगी।

यह अस्पृश्यता हमारा सबसे बडा कलंक है। इसकी जलालत दिनों दिन बढती जाती है।

मगर यह अविस्मरणीय घटना तो उस बडे भारी शर्म और दुःख का एक अंश भर थी। १९१६ में चम्पारण के बाद मैंने फिर कभी वह मृत-शान्ति नहीं देखी थी जो बाणपुर से इस उडिस्सा में प्रवेश कर देखी है। शायद उडिस्सा की शान्ति चम्पारण की शान्ति से भी बुरी है। वहां के रैयतों के बीच थोडे ही दिनों तक रहने के बाद उनमें उत्साह आ गया था। मगर उडिस्सा में इतनी जल्दी उत्साह आने में मुझे शंका है। मुझे कहा गया है कि जमीन्दारों, राजाओं और स्थानिक पुलिस ने रैयतों को मेरे पास आने से बहुत डरा दिया है। मैं तो इस विश्वास में फूला हुआ था कि अब जमीन्दारों, राजाओं और छोटे से छोटे पुलिस अफसरों ने मुझ से डरना छोड दिया है। मगर यहां आकर मेरा खयाल ब... है। खुद इधर उधर घूमने में बहुत कमजोर होने से मैंने कि... को लोगों के बीच भेजा और इसके कारण का पता लगवाया। ... लोग यह खबर लाये कि लोगों को कहा गया है कि "गांधीजी के पास मत जाओ। उनके सम्मान में किये गये किसी उत्... शामिल मत होवो नहीं तो सजा मिलेगी।" ऐसी सूचनाएँ दू... प्रान्तों में भी दी गयी हैं, मगर ऐसे साधारण दिनों में उनका ... कोई असर नहीं पडा है। उडिस्सा के रैयत ऐसे मालूम पडे ... सर्व्वदा भयभीत रहते हैं और इसलिए जरा सा में उन्हें विचलि... किया जा सकता है।

यह ऐसा कलंक है जो हमारे और हमारे शासकों दोनों ... सिर पर है। यह सच है कि राजा और जमीन्दार और पुलिस ... छुटभैये, सभी हमारे अपने ही भाई, अपने ही खून हैं। म... इस भीति के, डर के मूल तो हमारे शासक हैं। उनके शासन ... आधार ही है 'भीति।' अपनी प्रतिष्ठा के नाम पर उन्होंने ह... बडे से बडों को भी किसी न किसी तरह झुकने पर लाचार किया ... है। जहां उन्होंने यह कायरता खुद पैदा नहीं की है, वहां ... बहुत बढा दिया है। उन्हें रैयतों में इस अधम भीति के ... का पता था। मगर जहां कहीं उन्होंने अपने राज्य के हित ... नाम पर उसे और उसके कारणों की अपनी जान के सम... रक्षा नहीं की है, वहां उसे दूर करने का भी कोई प्रयत्न नहीं किया है। इसलिए अगर्चे कि वे इन दुःखद दृश्यों के लि... प्रत्यक्ष रूप से दोषी नहीं भी हो सकते हैं, मगर तौभी इस... उनका बहुत बडा हाथ होने के इल्जाम से वे बरी नहीं हो सकते।

मगर हमारा कलंक तो और भी बडा है। अगर हम सब... स्वाभिमानी, और निडर होते तो फिर विदेशी शासक कुछ बु... कर ही नहीं सकते थे। जो लोग डरपोंक होते हैं, सिर्फ वे ही दूसरों से डरते हैं। और इसे तो कुबूल करना ही होगा कि अँगरेजों के आने के बहुत दिन पहले से हम अपने जमीन्दारों और राजाओं से डरने के आदी थे। वर्त्तमान शासकों ने तो सिर्फ उसीका एक शास्त्र सा बना लिया है जो पहले भी न्यूनाधिक स्थूल रूप में था ही। इसलिए उडिस्सा के कार्यकर्ताओं को लोगों को सिखलाना है कि इस भीरुता को जो करीब करीब कायरता ही है, छोड दो। और जमीन्दारों, राजाओं या पुलिसवालों को गालियां देने से यह नहीं होगा। ये सब तो जब देखते हैं कि रैयतों ने अपनी बुरी नामर्द आदतें भुला दी हैं तब खुद दबने लगते हैं या कभी कभी दोस्त भी बन जाते हैं।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

गोरक्षा के बारे में लेख

श्री वालजी देसाइ ने जो लेख गुजराती या अंगरेजी में गोरक्षा पर लिखे हैं, उन्हें पुस्तकरूप में प्रकाशित करने की मांग कई पाठकों की ओर से आयी है। उसके खर्च के लिए धूलिया के श्री रामेश्वर दास ने २५) देने का लिखा है। इस पुस्तक को प्रकाशित करने में जो खर्च पडेगा, उसके निकल आने में शंका है, और इस लिए दूसरे गोभक्त अगर सहायता देवें तभी पुस्तक प्रकाशित की जा सकती है। बिना सहायता के आगे बढने लायक हालत 'नवजीवन' की नहीं है। अखिल भारतवर्षीय गोरक्षा मण्डल के पास जो धन है वह रचनात्मक कार्य के लिए ही काफी नहीं है। इस लिए उसमें से घटी पूरी करने का साहस नहीं होता है। अगर थोडी थोडी सहायता पाठक गण दे देंगे तो पुस्तक तुरत प्रकाशित की जायगी। उसमें अगर कुछ नफा हुआ तो वह गोरक्षा मण्डल को दिया जायगा। सहायता के प्रमाण में यह पुस्तक गुजराती, अंगरेजी और हिन्दी में प्रकाशित की जायगी।

(नवजीवन) **मो० क० गांधी**

साप्ताहिक पत्र

श्मशान की शान्ति

एक सभा में गांधीजी बहुत ही थके थकाये पहुँचे । उन्होंने कहा, 'मुझे बडी खुशी है कि मानपत्र बे पढे ही, पढा हुआ मान लिया गया है । अगर मेरा भाषण भी दिया हुआ मान लिया जाता, जो कि थैली बिना दिये, दी हुई नहीं मानी जाती तो मुझे और भी खुशी होती ।' शायद उनके आसपास और आमने सामने बैठे हुए लोगों ने इसका गंभीर करुणा-जनक रहस्य नहीं समझा । अगर गांधीजी की चलती तो वे बिना किये हुए सिर्फ भाषण भर ही किया हुआ नहीं मान लेते, बल्कि घर बैठे ही भ्रमण भी किया हुआ मान लेते, मगर अफसोस, हम लोग समझते बहुत धीरे धीरे हैं।

इस भ्रमण के प्रबंधक मित्रों ने भी आखिर समझा कि अगर गांधीजी को अपने कार्यक्रम का कुछ भी हिस्सा पूरा करने देना है तो जरा धीरे धीरे चलना चाहिए । इस लिए उत्कल यात्रा का एक अंश छोड दिया गया । मगर तौभी चैन कहां ? अभी हम लोग बोलगढ जा ही रहे थे, जहां कि गांधीजी को कुछ आराम देने का विचार था, कि बाणपुर से लोग दौडे आये कि पुलिस हमें परेशान कर रही है, गांधीजी की सभाओं में जानेवालों को पहले से ही बहुत डरा धमका रही है, अगर महात्मा जी वहां खुद न चलें तो फिर पुलिस का ही बोलबाला रह जायगा, लोग डर जायँगे, वगैरह वगैरह । अब भला इसका क्या जवाब था ? आखिर वहीं जाना पडा । बाणपुर, पुरी जिले का सबसे दक्खिनी किनारा है । हम लोगों ने गंजम में भी उडियां को देखा था, और अब बाणपुर में भी देखा । गंजम में तो उडियों की वैसी ही भीड लगती थी, वैसा ही असह्य शोरोगुल होता था, सब कुछ वही रंगढंग था जो हिन्दुस्तान में सब कहीं होता है, मगर यहां तो दूसरी ही दुनिया थी । यहां आते ही मालूम पडा कि ये भी हैं तो वे ही उडिया सही, मगर शायद किसी दूसरी दुनिया के । सभा बिलकुल ही शान्त थी, कहीं कोई शोरोगुल नहीं था, और न था दर्शन या पैर छूने के लिए धक्कम धक्का । बाबू गोदावरीश मित्र एम. एल. सी. ने सभा का प्रबन्ध किया था । आप देश के पुराने सेवक हैं । आपने ही मानपत्र भी पढा । मगर एक बात खटकती थी । मानपत्र में जो भावनाएँ, जो विचार प्रकट किये गये थे, उनका बाहर बाहर लोगों में कहीं पता भी नहीं मिलता था । और वे भावनाएँ भी, बेबसी के खयालात से बरी नहीं थीं, जिन्हें कोई आदमी जनता के किसी मुखिया से सुनने की उमेद नहीं रखता है।

गांधीजीने कहा "तुम डरते क्यों हो ? साँच को आंच क्या ? जिसने कोई कसूर ही नहीं किया, उसे डर कैसा ? याद रक्खो कि अगर तुम डरो नहीं तो तुम्हें कोई डरा ही नहीं सकेगा । आखिर पुलिसवाले भी तो हमारे ही भाइबंद हैं न ? वे तुम्हें धमकाने आवें तो पूछो कि भाई तुम क्या करना चाहते हो । इससे क्या होगा ? अगर वे जेल में पकड ले जायँ तो तुम उनका कोई विरोध मत करो, चले जाओ । अगर वे गाली देवें, तो तुम भी गाली मत दो, बल्कि गाली को हँस कर उडा दो । अगर वे तुम पर हाथ छोडें तो तुम भी बदले में उन्हें पीटो मत । बल्कि सबसे नजदीक के सार्वजनिक कार्यकर्ता के पास जाकर, 'रिपोर्ट' लिखावो । मैं तुम्हें ऐसी बातों के लिए मुकदमे लडने से चेताना चाहता हूँ क्योंकि आखिर हम पुलिस को सजा दिलाना नहीं, बल्कि उनमें पछतावा पैदा करना चाहते हैं । मगर अगर तुम्हें मुकदमा लडना जरूरी ही जान पडे तो मुकदमा भी कर सकते हो । किसी हालत में डरो मत । डर तो बीमारी से भी बुरी चीज है । जो आदमी दूसरे आदमी से डरता है, वह आदमियत से गिर जाता है । केवल एक परमेश्वर से डरो । मैं यहां कल्ह दो बजे दिन तक ठहरा हूँ । तुम्हें जो कुछ कहना हो, मुझ से आकर कह सकते हो ।"

दूसरे दिन हम लोग चर्खा संघ के उत्पत्ति केन्द्र बोलगढ में आये । वहां भी वही श्मशान की शान्ति विराजमान् थी । लोग तो थे, मगर गांधी जी से आ कर बात करने की किसी को हिम्मत ही नहीं होती थी । डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के बँगले में हम लोग दो दिन ठहरे थे, मगर उसे भी किराये पर लेने में बहुत काफी मुश्किलें पडी थीं।

बाणपुर में श्रीयुत गोदावरीश मिश्र ने तो किसी प्रकार एक छोटी सी थैली जमा कर ही ली थी, मगर बोलगढ में तो इसका विचार भी नहीं किया जा सकता था । मगर सभा में दोनों ही जगहें चन्दे की उगाही हुई और पैसे अधेले खूब मिले । बाणपुर में कांध—एक आदिम जाति—और अछूत गांधी जी के लिए कुछ बैंगन और कद्दू लाये थे । उनको नीलाम कर दिया गया । मगर यहां के लोगों की गरीबी का पता इसी से लग सकता है कि सिर्फ दो आदमियों ने एक एक रुपये पर एक एक कद्दू या बैंगन लिये। बाकी सब दो २ तीन २ आनों में यानी बाजार भाव पर ही बिके।

गांवों की झांकी

यों गांधी जी को दो तीन दिनों तक लाचार आराम करना पडा । इस लिए हमें भी गांवों में सैर करने का कुछ मौका मिला। हमने तीन चार गांव देखे । यहां हमें वे गरीब तो नहीं दिखलायी पडे जिनके लिए दौडे फिरना गांधी जी ने अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया है । इनमें ब्राह्मणों का एक मामूली सा गांव था। यह वह ब्राह्मण-शासन नहीं था जो सुन्दर स्थान पर बडा ही सुन्दर बनाया गया हो, बल्कि एक महज मामूली गांव था । इनके मकानों की कुर्सी मिट्टी की थी, दीवालें नरकट और मिट्टी की थीं । दो तीन छोटी छोटी कोठरियाँ, जिनमें खिडकी का नाम नहीं, और गोरू के लिए एक छोटी सी पलानी, और बीच में आँगन या चौपाल सा होता था । बस इतना ही तो उनका घर था । इनमें बहुत से घर तो कला-सौंदर्य की दृष्टि से बडे ही सुन्दर थे । दीवारों पर उजली मिट्टी से भांति भांति की चित्रकारी की हुई होती थी । सिर्फ एक घर को छोड कर, स्त्रियों को पर्दा छोड कर बाहर नहीं ही बुलाया जा सका । मगर, हां, वे श्रीमती मीराबहिन को भीतर बुला कर उनसे बातें करने को हमेशे तैयार थीं । गोरू तो सभी के सभी नन्हें नन्हें, शायद देश भर में सबसे गये बीते थे । डाक्टर हन्टर अपनी उडिस्सा नामकी किताब में चार चार सेर दूध देनेवाली मगर १५), १५) रुपयों की गायों की बातें करते हैं और यहां हमने जो गायें देखीं, उनके बारे में कहा जाता था कि वे रोज आधा सेर भी दूध नहीं देतीं । हमने पूछा, 'क्या आप गायों को नाज या बिनौले नहीं देते ?' 'नाज और बिनौले ! हमें अपना पेट भरने को तो नाज मिलता ही नहीं ।' यह जवाब एक ब्राह्मण ने दिया जिसे दो जोडी बैल, १० गायें और २० एकड की खेती थी । 'आखिर आपको एक एकड में कितना धान होता है ?' '४०) रुपयों का ।' 'तब क्या आप यह कहते हैं कि ८००) रु. का धान पैदा करने पर भी आप कुछ दिन फाका मस्ती करते हैं ? क्या आपके ऊपर कुछ कर्ज है ?' 'नहीं तो ।'

तब आश्चर्य ही क्या कि डाक्टर हन्टर कहें कि, 'लोग गरीब हैं, और जितने गरीब हैं, उससे भी अधिक गरीब दिखायी पडते हैं ।'

दूसरा गांव चर्खे का गांव था । वहां घर घर में चर्खा चलता है, और घर घर के चर्खे बाहर सज कर बरामदे में रक्खे गये थे क्योंकि वहां तो गांधीजी को आना था न ? चर्खासंघ की ओर से औरतों को एक सेर सूत के बदले डेढ सेर रुई दी जाती है यानी सेर भर सूत की कताई आधा सेर रुई होती है । यह देख कर सन्तोष होता है कि ये औरतें उस रुई को बेंच कर पैसा नहीं बना

लेतीं, बल्कि उसी रुई को खुद कात कर अपने कपडे बनवाती हैं। सच पूछिए तो हर एक घर में — मुसलमान या हिन्दू सबके यहां— मजदूरी में मिली रुई के सूत का कपडा था। इस चर्खा-जागृति के पहले भी यहां चर्खा चलता था, और सिर्फ बोलगढ के आसपास कोई पांच हजार चर्खे चलते हैं। चर्खे तो वही पुराने थे, पूनियां भी जैसी ही तैसी धुनी रुई की बनी थीं और तकुवा तो शायद ही किसीका सीधा हो। हमने पूछा, 'आप अच्छे चर्खे और अच्छी धुनकी क्यों नहीं लाते?, जवाब मिला, 'औरतें अपना पुराना ढंग बदलना ही नहीं चाहतीं।'

हम फिर एक तीसरे बडे गांव में गये। यहां लोगों के घर भी बडे बडे थे, और सफाई भी खूब थी। यह किसी देशी रियासत में पडता था। जान पडता था कि गांवों का प्राचीन काल का संगठन बिलकुल जैसा का तैसा अभी बना हुआ है — मगर अफसोस सिर्फ एक चर्खे का ही पता नहीं है। हमें एक कोई अस्सी साल का बूढा जुलाहा, बुनता हुआ मिला। वह बोला, 'पच्चीस साल पहले हम सर्व सुखी थे। मिल के सूत ने तो हमें मार डाला है।' हमने पूछा, 'अब तुम कितना कमाते हो?' 'चार आने रोज।' 'और तब रोज कितना कमाते थे?' 'दश आने रोज।' उसने हमें बतलाया कि उस समय मजदूरी कुछ अधिक नहीं मिलती थी बल्कि उसके काम की इतनी पूछ थी कि सारा काम पूरा करना मुश्किल होता था, और अब तो मिल के सूत के उसके बुने कपडों को कोई नहीं पूछता है क्योंकि भांति भांति के विलायती कपडे सस्ते मिलते हैं। रास्ते में हमें चमार मिले। वे कटक के किसी ठीकेदार के लिए चमडे लिये जा रहे थे, जिसने राज्य भर के सभी जानवरों का चमडा १०,०००, रुपयों में खरीद लिया था, यानी जहां कोई जानवर मरा कि किसान का उस पर कोई अधिकार नहीं रह गया, वह बेचारा, अपने लिए एक इंच भी चमडा नहीं काट सकता है! सारा का सारा चमडा, वही ठीकेदार लेगा। हमें कहा गया कि यह रिवाज यहां के सभी रियासतों में प्रचलित है। इसी गांव में अफीम की भी एक दूकान थी। जिसमें ४०), ५०) रुपयों तक की अफीम रोज बिकती है। हमने पूछा, 'तुम अफीम लाते कहां से हो?' 'खजाने में से।' इतना कह कर वह दूसरे सवालों का जवाब देने में आनाकानी करने लगा। अब जब कि यह खबर फैल गयी कि हम गांधी के आदमी हैं, गांव का पटवारी भी कोई बात नहीं बतलाता था। एक आदमी ने हमें अपने घर में बुलाया। उसने हमसे कान में कहा कि 'लोगों को गांधीजी के पास जाने से मना किया गया है।' गांव के चौकीदार से हमने पूछा, 'तुम गांधीजी को जानते हो?' वह बोला, 'जब बडे लोग उनके बारे में कुछ नहीं जानते तो मैं क्या जानूंगा?' यों इस प्रगतिशील धनी गांव में भी पुलिस की छाया से भी लोग बेहद डरते थे, और गांधीजी का नाम भी उन्हें डराने को बहुत था।

असुल रोग

यहां की असल बीमारी है डर। इसी डर से लोगों में यह मनोभाव आ गया है कि बे मतलब कौन रगडा झगडा मोल लेवे, जो होता है, होने दो। इसीसे तो लॉर्ड कर्जन ने यहांवालों को यह प्रशंसापत्र दिया था कि "ये आन्दोलन करनेवाले नहीं हैं।" एक दूसरे शासक ने कहा था, "ये कानून के माननेवाले, शोरोगुल, शिकायत करनेवाले आदमी नहीं हैं।" उडियों के इस दावे से बढ कर दूसरे का दावा नहीं था कि हम एक ही शासन में रहें मगर जब कि बंगाल के आन्दोलन कारियों की बदौलत बंग-भंग रद्द हो गया, तब बेचारे उडिये जो अलग किये गये सो अलग ही रह गये। दीनबन्धु ऐण्ड्रयूज ने कहा था, 'गुजरात ने अपने बल पर, अपने कार्यकर्ताओं के बल पर इतना शोर किया कि आखिर सरकार का भी ध्यान खींचा और सब मिला कर दो करोड से भी अधिक रुपये जमा कर लिये जब कि उडिस्सा को सब मिला कर चार पांच लाख की छोटी सी रकम के सिवाय और कुछ नहीं मिला और इधर उडिस्सा का संकट गुजरात की एक तिहाई से कम नहीं था।' लोगों में स्वावलम्बन का नाम-निशान भी नहीं है, लोग अपने आप कोई काम कर ही नहीं सकते, और कार्यकर्ता भी नहीं हैं। ये सब बातें डर के कारण पैदा हुई हैं। और यह डर भी तो उसी ढर्रे का फल है जो विदेशी शासन के नीचे इतने दिनों से चल रहा है। उडिस्सा की बीमारी यही डर है, और यह बीमारी बाढ और अकाल से भी अधिक संकटकर है। गांधीजी ने बोलगढ में कहा था, "डर मलेरिया और कालाजार से भी बुरी बीमारी है। इन बीमारियों से शरीर ही मरता है, मगर डर तो आत्मा को मार डालता है। डरपोक आदमी परमात्मा को कभी नहीं जान सकता है, और जिसने परमात्मा को जान लिया है, वह कभी आदमी से डरेगा नहीं। तुम लोग डर छोड दो नहीं तो तुम्हारी जिन्दगी का नाश है।" इस जले दिल की ये बातें, इस कान में आ कर उस कान से वहां निकल गयीं। यहां एक या दो दिनों में कोई काम नहीं हो सकता था। गांधीजी ने कहा, "मुझे यहां तीन दिन या तीन महीने नहीं बल्कि तीन वर्ष रहना चाहिए।"

साखी गोपाल

उत्कल के एक पुराने मँजे हुए सेवक बाबू गोपबन्धु दास का घर साखी गोपाल है। आप यहां पुरी जिले के आसपास के गांवों में खादी के जरिये बाढपीडितों को सहायता पहुँचा रहे हैं। हमें इसका खेद रहा कि हम इस गांव में नहीं जा सके मगर वहां के खादी डिपो में उनके यहां बननेवाले सभी प्रकार के खद्दर के नमूने रखे हुए थे। अभी तो उनके तीन केन्द्र हैं, जिनमें ३७ गांवों के ३०० कातनेवालियां हैं। इनकी महीनेवारी आमदनी रु. १-१५-० से लेकर रु. ५-११-३ तक पडती है। २९ जुलाहे हैं, जिनकी महीने में अधिक से अधिक आमदनी १९) रु. की है। गत नवंबर तक खत्म होनेवाले साल में इस डिपो ने ११,६६० की खादी बेंची थी।

सार्वजनिक सभा में एक छोटी सी थैली भी भेट की गयी। स्त्रियों की सभा में भी थैली मिली थी, और उन्होंने अपने मानपत्र में यह भी कहा था कि 'पुरुषों को कपास की खेती करने की आप सलाह दीजिए।'

पुरी की कथा

पुरी, जिसके कारण उडिस्सा को सर्वपापहरण देश कहते हैं और जहां पर कि भगवान् जगन्नाथ गरीब अमीर सबको एक बना देते हैं, वही जगह है, जहां कि गांधीजी ने जाने से इनकार कर दिया। वहां तो अब सिवा शर्म से सिर झुकाने या दुःखी होने के और क्या है?' उन्हें कहा गया कि पुरी के मंदिर में अछूत नहीं जाने पाते हैं। उन्होंने काका साहेब को पुरी का मंदिर खुद देख आने के लिए भेजा। काका साहेब ने वहां जा कर केवल गंदगी ही गंदगी देखी। मंदिर के पंडे ने कहा कि, 'जब तक कोई अपने को अछूत न कहे, जो चाहे जा सकता है। मुझे इसकी क्या पर्वा कि कौन है?' काका साहेब ने मंदिर का एक सूचीपत्र भी खरीद कर ऊपर किया जिसमें मंदिर से सम्बद्ध लोगों (या मैं मंदिर के सेवक कहूँ?) की सूची भी थी। उसमें 'पेशेवर रंडियां जो भगवान के आगे नाचतीं और उनकी सेवा करती हैं' शामिल थीं!

मगर पुरी म्युनिसिपैलिटी के एक सदस्य ने बहुत उत्साह से निमंत्रण दिया। उन्होंने बहुत कडा विरोध होने पर भी

तरह गांधी जी को मानपत्र देने का प्रस्ताव स्वीकार करा ही लिया था। वे बोले, 'अब आप नहीं चलेंगे तो बडी बुरी बात होगी।' गांधीजी ने कहा, 'अच्छा मेरी और शिकायतें छोड भी दीजिए तो क्या वहां मुझे खादी के लिए कुछ मिलेगा?' इन्होंने कुछ दिलाने का वचन दिया और गांधीजी पुरी में भाषण करने को राजी हुए। सभा का समय चार बजे था। हमारे जाने पर शायद ही वहां दश बाहर आदमी भी होंगे। आखिर जब लोग आये भी तो फूल माला वगैरह लेकर आये, थैली नहीं। गांधीजी ने कहा, 'आखिर यहां बंगाली और मारवाडी भी तो हैं। वे क्या उडिस्सा के गरीबों के लिए कुछ नहीं दे सकते?' इस का भी उत्तर शायद ही मिला हुआ कहा जाय। गांधीजी को बाढ-सहायक समिति की ओर से एक सुन्दर आसन और बिस्तरे की चादर भेट की गयी थी। गांधीजी इन्हें वहां नीलाम करने को लेते गये थे, मगर कोई बोली बोलनेवाला ही नहीं था।

आखिर, बालासोर आने पर ही एक मारवाडी भाई ने आसन का पहले से हा निश्चित सौ रुपये दाम देकर उसे लिया। यहां पर गुजरातियों और मारवाडियों ने भी अच्छी रकम दी।

खैर, उडिस्सा तो दूसरे प्रान्तों का मुँह सिर्फ धन के ही लिए नहीं, बल्कि कार्यकर्त्ताओं के लिए भी जोहता है जो वहां के निवासियों को निर्भयता और स्वावलंवन का पाठ पढाने के लिए उन्हींमें जा डूबें, अपने आपको उन्हींमें भूल जायँ।

(यं० इं०)

महादेव देशाई

बिहार में खादी-कार्य

यह रिपोर्ट गत १ अक्तूबर १९२६ से ३० सितम्बर १९२७ के साल की है। साल के शुरू में हमारे पास खादी का बहुत बडा स्टॉक जमा था। फल स्वरूप हमारी चलती पूंजी घट गयी थी। ऊपर से गांधी कुटीर के उत्पत्ति केन्द्रों का भी काम ले लिया गया। इस लिए इस साल हमारे काम में जितना फैलाव नहीं हुआ है उतना पुरानी नींव ही पक्की करने की कोशिश की गयी है। पिछले साल १,४७,८०३) रु. की खादी बनी थी और इस साल १,५८,०११) रु. की। देखने में कोई १०,०००) रु. की बढती मालूम तो पडती है मगर अगर गांधी कुटीर का भी पहले का काम जोड लिया जाय तो बहुत बडी कमी ही कही जायगी।

इस कमी के दो कारण कहे जा सकते हैं। एक तो ऊपर कही गयी पूँजी की कमी। महात्माजी की दूसरी बिहार-यात्रा से जो जनवरी १९२७ में हुई थी, खादी का फालतू स्टॉक तो बिक [illegible]ी गया, साथ ही लोगों में खादी के लिए प्रेम बहुत बढा। जो [illegible]ग खादी के प्रति उदासीन थे, उन्होंने खादी से प्रेम करना [illegible]रू किया है। इस तरह हमारी बिक्री न सिर्फ उन्हीं दिनों बढी थी, बल्कि सदा के लिए बढ गयी है। हमें अपना बचा स्टॉक पूरा न पडा [illegible]ा बाहर से २३,८३९) रु. की खादी मंगानी पडी। इस साल हमारे [illegible]पाओं में २,२३,९३४) रु. की खादी बिकी। इधर शुरू में पूँजी की [illegible]मी से हमने सूत लेना कम कर दिया था। बाद में चर्खे का [illegible]र शुरू करना ही मुश्किल होने लगा। और हमारे सबसे बडे उत्पत्ति [illegible]न्द्र दरभंगे जिले में हिन्दू-मुसलिम झगडों ने भी इसमें कठिनाई पैदा [illegible]र दी। हमने चित्र लैन्टर्न वगैरह के प्रचार के जरिए इसे [illegible]तेजित करने की कोशिश की और खुशी है कि इसमें काफी [illegible]फलता भी मिली।

खादी के प्रचार में एक और कठिनाई जो पडती है। वह यह कि कुछ खादी-प्रेमी ऐसे स्थानों पर भी रहते हैं जहां हमारी दुकानें नहीं हैं। वे खादी पा नहीं सकते, और इधर शहरों में हमारा माल बेकार पडा रहता है। हमने इसके लिए यह अच्छा उपाय सोचा है कि समय समय पर खादी-प्रदर्शिनियां करते फिरें। पिछले साल यह प्रयोग किया गया था। इस साल भी किया गया। मगर उससे थोडे पैमाने पर इसमें यथेष्ट सफलता भी मिली। फेरी की प्रथा भी हम शुरू कर रहे हैं। इस साल हमने ५,०७३) रु. की खादी गांवों में फेरी के जरिये बेंची।

साल के शुरू में हमने कपडे का दाम फी सैकडे १०) घटाया था। मगर अब कपास की दर चढ जाने से वही दाम बनाये रखना मुश्किल जान पडता है तौभी अभी तो हम वही दर रक्खे चले जाते हैं। यों बाहर से देखने पर तो ताने बाने में अधिक सूत घुसाने के कारण दाम अधिक ही मालूम पडता है। अगर कपास का दाम यों ही चढा रहा तो शायद दाम बढाना भी पडे।

अ. भा. चर्खासंघ के नियंत्रण में कतवैयों, बुनवैयों और धुनियों की संख्या गिनने की कोशिश की गयी है। मगर इसमें बडी कठिनाई पडी। कहीं तो सूत और रुई का बदलौवल करते हैं, कहीं बाजार में जाकर सूत खरीद लाते हैं, कहीं अपने डिपो में ही दाम देकर सूत खरीद लेते हैं। इसलिए जहां सूत से रुई बदली जाती है या जहां हमारे ही यहां सूत आकर बिकता है वहां की संख्याएँ तो हम निकाल सके हैं, मगर जहां बाजार में खरीदना पडता है, वहां की संख्या नहीं निकाली जा सकी है। धुनिए तो हम कहीं रखते ही नहीं। कत्तिनें खुद धुन लेती हैं। धुनियों की संख्य सिर्फ एक जगह की है। बुनकरों की संख्या सही है।

	संख्या	कुल आमदनी	औसत महीनेवारी आमदनी	अधिक से अधिक आमदनी
धुनिये	१९	रु. २७७)	२-१४-६	१२-०-०
बुनकर	५४०	,, ४५,४९८)	३-७-१	४६-१४-०
कत्तिनें	१४,९४४	,, ४१,६६४)	०-३-७½	६-४-०

खादी के पुनरुज्जीवन से दूसरे सहायक कामों में लगे हुओं को बहुत सहायता मिल रही है। सिलाई, सुईकारी वगैरह के जरिए मध्यम वर्ग की गरीब विधवा बहिनों को भी बहुत सहायता पहुँच सकती है। इस साल हमने यह काम शुरू किया और ७ विधवा बहिनों को सहायता मिली थी।

	संख्या	कुल आमदनी
सुईकार	१	रु. ४४२-९-०
धोबी	२९	रु. ३,९३४-०-०
रंगरेज	५	रु. ५,३७५-०-०
छपेरे	१६	रु. ७,५५७-०-०
दर्जी	१२	रु. १,२५२-०-०
विधवाएँ	७	रु. १०६-५-०

रँगाई का सारा काम हमने अपनी रंगशाला में की जो थोडे पैमाने पर शुरू की गयी है और हमें संतोष है कि वह स्वावलंबी है।

हमारे यहां कुल ८७ कार्यकर्त्ता हैं, जिनको इस साल कुल रु. २२,७७५) मुशाहरे में दिये गये यानी फी आदमी रु. २१-१२-० का माहवारी औसत पडता है। और १,५८,०११) की खादी की तैयारी और रु. २,२३,९३३) की बिक्री के काम के हिसाब से हमारे कार्यकर्त्ताओं पर खर्च सैकडे ५.९ या फी रुपये १ आने से भी कम पडा।

हमने सूत में उन्नति करने के लिए एक सूत परीक्षक को [illegible] के पास जाकर चर्खा सुधारने, अच्छी पूनियां

बनाने वगैरह पर जोर देते थे, और उसका ढंग सिखलाते थे। उनका अनुभव है कि पहले जो कत्तिनें सिर्फ १०-१२ अंक का सूत कातती थीं वे दो महीने में २०-२४ अंक का कातने लगीं। इसी प्रकार हमने ताने और बाने में भी अधिक सूत घुसाने पर जोर देना शुरू किया है। मगर खास उन्नति तो हमारे रँगाई में और छपाई काम में हुई है। पहले हम थोड़ी रुई महाराजगंज और दलसिंगसराय के बजारों में लेते थे, बाकी सब कानपुर के बाजार में। अब हमने गांवों में किसानों से ही रुई लेने का प्रयोग शुरू किया है। इससे जान पडता है कि हमें रुई भी सस्ती मिलेगी, किसानों से हमारा सरोकार भी जुटेगा, और हम अच्छी चुनाई पर भी जोर दे सकते हैं। शायद आगे चल कर अच्छी जमीन में रुई की अच्छी जाति का भी प्रवेश करा सकें। इस साल इस प्रकार रु. ३१,१४२) की रुई खरीदी गयी थी।

प्रान्तीय धारासभा में स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार कई डिस्ट्रिक्ट बोर्डों ने अपने स्कूलों में कताई का प्रचार करने के लिए अलग चर्खा शिक्षक रक्खे और उसके लिए खर्च मंजूर किये। जब सरकार ने इस प्रस्ताव के अनुसार काम होते देखा तो एक आज्ञा पत्र निकाला गया जिसमें प्रस्ताव के शब्द तो माने गये, मगर उसके अनुसार काम होना मुश्किल कर दिया गया। खैर तौभी कुछ डिस्ट्रिक्ट बोर्डों ने लडकों में खादी के लिए कुछ दिलचस्पी पैदा की ही। मुजफ्फरपुर बोर्ड ने अपने स्कूलों में २,००० तकलियां बटवायी थीं, और कताई की बाजियां भी करायी थीं। शाहाबाद में लोग जरा सँभल सँभल कर चलते हैं, और कताई कुछ ही स्कूलों में शुरू करायी गयी है। पलामू का भी यही हाल है। हजारी बाग में बहुत से शिक्षकों को कताई सिखलायी गयी थी, मगर काम यहीं पर रुका रहा। साधारणतः कहा जायगा कि सरकारी अफसरों के बीच में आ पडने के कारण यथेष्ट सफलता नहीं मिली, और शिक्षकों में भी यह फालतू बोझ उठाने की अनिच्छा तो थी ही।

कई स्थानिक संस्थाओं ने अपने नौकरों के लिए खादी पहनना इष्ट माना है। मुजफ्फरपुर जिले में अस्पताल में बैन्डेज या घाव के पट्टों के लिए भी खादी इस्तैमाल की जाती है। धारासभा में सरकार के विरोध करने पर भी यह प्रस्ताव स्वीकार तो हुआ है कि जहां तक हो सके प्रान्तीय सरकार खादी खरीदे, मगर देखना है कि वे करते क्या हैं।

प्रान्त के सभी राष्ट्रीय विद्यालयों में कताई अनिवार्य विषय मानी जाती है। तौभी कुछ जगहों में अभी सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं है। यह सन्तोष की बात है कि राष्ट्रीय महाविद्यालय के विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए एक हजार गज सूत फी महीना देना अनिवार्य है। जो विद्यार्थी अपना सूत नहीं देता है, वह परीक्षा में बैठने नहीं पाता।

हम अपना काम और भी [illegible]ने की कोशिश कर रहे हैं। हमने गया जिले के नवीनगर में और भागलपुर के जगदीशपुर में उत्पत्ति केन्द्र खोले हैं। ४ महीनों में नवीनगर में रु. २,२६३) की खादी बनी है, और जगदीशपुर में २४२) रु. की जिनमें १९८) रु. की पिछले महीने बनी थी। हमने कुछ सूत केन्द्र यानी जहां सूत ही बदला या खरीदा जाता है, खोले हैं। उनमें सबसे उल्लेखनीय कमतौल है जहाँ १॥ मन महीने से शुरू करके ३० मन महीने तक सूत खरीदते हैं! इधर हमने झरिया में एक दुकान भी खोली है जो संतोषजनक काम कर रही है। अगर उसमें घटी लगी तो उसे पूरा करने का बोझ स्थानीय कँग्रेस कमिटी ने ले लिया है।

बंगाल खादी-प्रतिष्ठान का अहवाल

१९२६-२७

खादी की जाति

इस साल सूत की जाति और बुनाई में सुधार करने पर खा[स] तौर पर जोर दिया गया था। फल यह हुआ कि प्रतिष्ठान [का] विरोध कत्तिनें और जुलाहे सभी करने लगे। उत्पत्ति में भी क[मी] हो चली। मगर कुछ ही महीनों में इससे उन्नति दिखलायी प[ड़ने] लगी। आज रिपोर्ट लिखने के समय को खादी, प्रतिष्ठान के [कुछ] महीने पहले की खादी से कहीं अच्छी हो रही है। औसत द[र्जे की] अच्छी खादी के सूत का अंक १२ से १४ होता है और मज[बूती] फी सैकडे ४५ से ६५ तक।

अक्तूबर १९२६ से सितंबर १९२८ तक १२ महीनों में प्रति[ष्ठान] ने ८५३ मन ३२ सेर यानी रु. १,११,१३०) की खादी [तैयार] की। इस साल बिक्री रु. २,३२,९७७-१२-६ की हुई। इस[में] उत्पत्ति के १२ और बिक्री के १८ केन्द्र हैं।

इनमें तीन उत्पत्ति केन्द्रों में कत्तिनों का खाता रक्खा जाता [है]। वहां पर १,३८३ कत्तिनें हैं। इनके अलावा सूत के परिमाण [के] हिसाब से ५,४१७ कत्तिनें उन्हें कातने के लिए और होनी चा[हिए]। इस तरह कुल ६,८०० कत्तिनें हैं।

प्रतिष्ठान के कुल १६० कार्यकर्त्ता हैं।

शिक्षण विभाग

सोदेपुर की कलाशाला गांधीजी ने २ जनवरी १९२७ को [खोली] थी। तब से प्रतिष्ठान का शिक्षण विभाग बराबर खूब उन्नति [करता] जा रहा है।

रँगाई

रँगाई में भी काफी प्रगति हुई है। अब कुछ कपडे सुन्द[र] स्थायी रँग में भी रँगे जाते हैं।

क्रोम खाकी

अब तो क्रोम खाकी की रँगाई भी सफलतापूर्वक की जाती [है।] उसके लिए आवश्यक यंत्र आदि मँगा लिये गये हैं।

शिक्षण विभाग में विद्यार्थी भर्त्ती किये जाते हैं। इ[स समय] उत्कल का एक विद्यार्थी रँगाई सीख रहा है।

सचित्र भाषण और प्रदर्शन

चित्र लैन्टर्न के साथ प्रचार और बिक्री बढाने के [लिए] सचित्र भाषण किये गये। दुर्गापूजा की छुट्टियों में और [भी] खास प्रदर्शन किये गये और फेरीवालों के दल जिले जिले [में भेजे] गये। अग्रवाल सभा के समय कलकत्ते में एक प्रदर्शन किया [गया] था। प्रतिष्ठान ने बंगाल के बाहर निम्न लिखित प्रदर्शनों [में] अपने सामान भेजे थे:

१. गोहाटी प्रदर्शन (आसाम)
२. कुम्भ मेले के अवसर पर हरद्वार प्रदर्शन (युक्त[प्रान्त])
३. गांधी जी का खोला हुआ बंगलोर प्रदर्शन (मैसूर)

खास चित्र

चित्र लैन्टर्न के लिए निम्न लिखित विषयों पर [चित्र] बनवाये गये हैं जो खादी-प्रचार के लिए उपयुक्त होंगे:

१. बंगाल और खादी ११२ चित्र
२. दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह ११४ चित्र
३. जलियानवाला बाग काण्ड २३ चित्र

राजनीतिक कैदी

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक १९

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, पौष सुदी ५ संवत् १९८४ गुरुवार, २९ डिसम्बर १९२७ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ३२

'मास्टर साहेब'

अगर पाठक यह याद रक्खें कि 'दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह' के इतिहास में जो बात नहीं आ सकी है, या थोडे ही अंश में आयी है, वही बात इन प्रकरणों में आती है, तो इनका आगे पीछे का संबंध वे समझ सकेंगे।

टॉलस्टॅाय आश्रम में लडकों और लडकियों के लिए भी कुछ शिक्षा का प्रबंध आवश्यक था। मेरे साथ हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई नवयुवक थे, और कुछ हिन्दू लडकियां भी थीं। खास शिक्षक रखना अशक्य था और यह मुझे अनावश्यक भी लगा। अशक्य इसलिए था कि योग्य हिन्दुस्तानी शिक्षकों का अभाव था और अगर वे मिलें तौभी बिना बडे मुशाहरे के डरबन से २१ माइल दूर आवे कौन? मेरे पास कुछ खजाना तो रक्खा था नहीं। बाहर से शिक्षक लाना अनावश्यक माना क्योंकि शिक्षा की चालू पद्धति मुझे पसन्द नहीं थी। सच्ची और ठीक पद्धति का मैंने अनुभव नहीं कर देखा था। इतना समझता था कि आदर्श स्थिति में सच्ची शिक्षा तो केवल मा बाप के ही अधीन मिल सकती है। आदर्श स्थिति में बाहरी मदद कम से कम होनी चाहिए। मैंने समझा कि टॉलस्टॅाय आश्रम एक कुटुम्ब है और उसमें पितास्वरूप मैं हूँ, इसलिए मुझे इन नवयुवकों की शिक्षा दीक्षा की जिम्मेवरी जहां तक हो सके आप उठानी चाहिए।

इस कल्पना में बहुत से दोष तो थे ही। सभी जुदा जुदा वातावरण में पले थे। सब एक ही धर्म के भी नहीं थे। ऐसी स्थिति में रहे हुए बालकों और बालाओं को मैं पिता बन कर भी कैसे न्याय दे सकता था?

पर मैंने हृदय की शिक्षा या चरित्रगठन को हमेशे से पहला पद दिया है। और यह विचार करके कि इसका परिचय चाहे जिस उम्र के और जिस वातावरण में पले बालकों और बालिकाओं को दिया जा सकता है, मैं इन लडके, लडकियों के साथ दिन रात पिता के रूप में रहता था। चारित्र को मैंने उनकी शिक्षा का पाया माना। अगर पाया पक्का होगा तो बाकी और सब कुछ अवकाश पाकर लडके मदद लेकर या अपने बल से पा लेंगे।

तौभी यह मैं समझता था कि अक्षर-ज्ञान तो थोडा बहुत कुछ देना ही चाहिए। इस लिए वर्ग शुरू किये और उनमें मि० कैलनबैक और प्रागजी देशाई की मदद ली।

शारीरिक शिक्षा का महत्व मैं समझता था और वह उन्हें सहज ही मिल जाती थी। आश्रम में नौकर तो थे ही नहीं। रसोई से लेकर पायखाना साफ करने तक सभी काम आश्रमवासियों को ही करने थे। फल झाड खूब थे। नयी खेती भी करनी ही थी। मि० कैलनबैक को खेती का शौक था। वे आप सरकारी खेती-विभाग में कुछ दिन सीख भी आये थे। रोज निश्चित समय पर बडे छोटे सब को, जो रसोई के काम वझे हुए न हों, बगीचे में काम करना ही पडता था। इसमें बालकों का बडा हिस्सा था। बडे गड्ढे खोदने, पेड काटने, बोझा उठा ले जाने वगैरह कामों में उनका शरीर खूब कसता था। उसमें उन्हें आनंद आता और उसके कारण उन्हें दूसरी कसरत या खेल की जरूरत नहीं रह जाती थी। काम करने में कई एक अथवा कभी कभी सभी नखरा करते, आलस करते। बहुत बार तो मैं इस पर ध्यान नहीं देता था। कई बार उनसे सख्ती से काम लेता। मैं देखता था कि सख्ती करने पर वे घबराते भी थे। पर तौभी मुझे यह याद नहीं है कि बालकों नें कभी सख्ती का विरोध किया हो। जब जब सख्ती करता तब तब उन्हें समझाता, और उनसे कबूल करवाता था कि काम के समय खेलना कुछ अच्छी आदत नहीं है। वे उस क्षण समझते, दूसरे ही क्षण भूलते। यों हमारी गाडी चली जाती थी। पर उनके शरीर बनते जाते थे।

आश्रम में बीमारी तो शायद ही होती हो। यह कहना चाहिए कि उसमें अच्छे हवा पानी और नियमित खूराक का भी बहुत बडा हिस्सा था।

शारीरिक शिक्षा के संबंध में शारीरिक धंधे की शिक्षा भी गिनाता हूँ। इरादा यह था कि सब को कुछ न कुछ उपयोगी धंधा सिखलाया जाय। इस लिए मि० कैलनबैक ट्रेपिस्ट मठ में चंपल बनाना सीख आये। उनसे मैंने सीखा और फिर जो लडके सीखने को तैयार हुए उन्हें मैंने सिखलाया। मि० कैलनबैक को बढईगीरी का कुछ अनुभव था और यह काम जाननेवाले एक साथी और थे।

इस लिए यह काम भी थोडा सा सिखलाया जाता था। रसोई बनानी तो तकरीबन सभी लडके सीख गये ।

ये सब काम लडकों के लिए नये थे । उन्हें तो स्वप्न में भी ये काम सीखने नहीं थे । जो कुछ थोडी सी शिक्षा दक्षिण अफ्रिका में हिन्दुस्तानी बालकों को मिलती, वह प्राथमिक अक्षर-ज्ञान की ही होती थी । टॉल्सटॉय आश्रम में शुरू से ही रिवाज रक्खा गया था कि लडकों से वे काम न लिये जायँ जो शिक्षक न करें और हमेशा एक न एक शिक्षक उनके साथ ही साथ काम करता रहे। इस लिए लडकों ने उत्साह से सीखा ।

चारित्र और अक्षर-ज्ञान के बारे में, अभी पीछे ।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

हिन्दू विधवाएँ क्या करें ?

अजमेर से एक सज्जन हिन्दी में लिखते हैं:—

"मैं चाहता हूँ कि आप मेरे निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर नवजीवन में दें ।

"हिंदू विधवाओं को जो पुनर्विवाह नहीं करना चाहतीं अपना शेष जीवन किस प्रकार व्यतीत करना चाहिए ?

"महर्षि दयानंद ने तो लिखा है कि उनको ब्रह्मचर्यपूर्वक रहते हुए स्वयं पढना और बालिकाओं को पढाना चाहिए ।

"क्या आप इस बातसे सहमत हैं ? इस को मानते हुए और भारत की वर्तमान स्थिति को देखते हुए आप और कौन कौन सी बातों को इसके साथ जोड देना चाहते हैं ?"

महर्षि दयानंद का अभिप्राय यह नहीं है कि केवल सीखने, सिखलाने में ही विधवा अपना सारा समय लगावे, पर यह बात तो केवल दृष्टान्त स्वरूप ही हो सकती है । शिक्षा का अर्थ इस जगह तो केवल अक्षर-ज्ञान ही है। अक्षर-ज्ञान एक खास हद तक जरूरी है । पर मेरी दृष्टि में इससे अधिक जरूरी शिक्षा भूखमरी दूर करने की है । और मेरा यह निश्चय दिनों दिन बढता जाता है कि वह चर्खे की शिक्षा है । अगर हम पढे लिखे अपने को ऊँचे वर्ण के माननेवाले मध्यवर्ग के आदमी अपने वर्ग के बाहर रहनेवाले कंगालों का विचार करें तो किसीको चर्खे के सिवाय और कुछ सूझे ही नहीं । चर्खा मुख्यतः स्त्रियां ही चलावेंगी । मुख्यतः समय भी उन्हींके पास है । इस लिए मैं जगह जगह पर दिन रात यही बात पुकार पुकार कर कह रहा हूँ कि उनके जरिए हिन्दुस्तान के करोडों रुपये बाहर जाने से बचावो और सच्चा स्वराज—रामराज्य—स्थापित करो ।

स्त्रियों में प्रवेश तो स्त्रियां ही अच्छी तरह कर सकती हैं । यहां उत्कल देश में जहां मैं यह लिख रहा हूँ, गरीब स्त्रियां भी पर्दे में रहती हैं । उनका पर्दा तोड कर उनके बीच कौन जा सकता है ? मेरे साथ मीराबाई हैं । उन्हें मैंने एक गांव में भेजा । कोई पचास स्त्रियां आसपास आ जमीं और उनके हर्ष का पार नहीं रहा । वे अनेक बातें पूछने लगीं । चर्खे की बात निकली । ये स्त्रियां एकदम भोली, सादी और अनजान थीं । सच्ची शिक्षा तो ऐसी असंख्य स्त्रियों को मिलनी चाहिए। स्वच्छ चरित्रवाली विधवाएँ यह शिक्षा सहज ही दे सकती हैं; वे अपना काम साधें और हिन्दुस्तान का बेडा पार हो । पर इसमें बडी बात तो यह है कि उनमें, गांवों में जाने का उत्साह हो, और वहां जाकर वे उकतायँ नहीं । ब्रह्मचर्य का व्रत लेनेवाली विधवा अबला नहीं है, अपंगु नहीं है । अगर वह अपने को पहचाने तो बलवती है । स्वाश्रयी है, सुरक्षित है। ऊपर के काम की अपेक्षा मैं आजकल लडकियों को दी जानेवाली शिक्षा के सवाल को तुच्छ गिनता हूँ । पर जो वि[illegible] गांवों में नहीं ही जाय, आलस्य में दिन बिताती रहे, अथवा ध[illegible] भ्रम में सालहां साल तीर्थक्षेत्रों के नाम से माने जानेवाले स्था[illegible] भ्रमण करती फिरे, उसके लिए तो इन सब की अपेक्षा यही अच्छा [illegible] वह शहरों में रह कर बाल-शिक्षण देती रहे । उसके पास रोगि[illegible] सेवा का भी विशाल क्षेत्र पडा हुआ है । हिन्दू स्त्रियां नर्स परिचारिका के रूप में बहुत थोडा ही दिखलायी पडती हैं। म[illegible] में विधवाएँ नर्स का काम सीखती हैं । पर महाराष्ट्र के बाहर [illegible] थोडी ही विधवाएँ यह काम सीखने को तैयार होती हैं ।

पर मेरे बतलाये ये काम भी दृष्टान्त रूप से ही [illegible] चाहिए । प्रत्येक समझदार विधवा को जो ब्रह्मचर्य-पालन [illegible] चाहती है चाहिए कि वह अपने लायक कोई परोपकारी वृत्ति [illegible] उसी में अपना जीवन बितावे ।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गां[illegible]**

अ० भा० चर्खा-संघ तामिलनाड शाखा की रिपोर्ट

१९२६-२७

भूमिका

इस साल सभी ओर उन्नति ही उन्नति हुई है । पिछले [illegible] ६४ खादी-संस्थाएँ थीं और अब ६७ हैं । पर इनमें ३३ को अ० [illegible] चर्खा-संघ खुद चलाता है जब कि पिछले साल उसकी केवल [illegible] संस्थाएँ थीं । इस साल छह उत्पत्ति के और दो बिक्री के नये [illegible] खोले गये हैं । स्वतंत्र संस्थाओं में तिरुचेनगोडु के गांधी [illegible] और कोंगु कंपनी ने अपना काम बहुत बढाया है ।

उत्पत्ति

पिछले दो वर्षों के हिसाब से उत्पत्ति में बडी बढती हुई [illegible] इसका खास कारण यह है कि अवनासी, उत्तुकुली, [illegible] पुलियम्पट्टी और वेल्लकोइल केन्द्रों में खादी के लिए जो [illegible] प्राप्त हैं, उनसे पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न किया गया है। अभी उत्पत्ति और भी बढायी जा सकेगी ।

खादी कितनी बनी

साल	अ. भा. च०-संघ रु.	स्वतंत्र और सहायता प्राप्त संस्थाएँ रु.	[illegible]
१९२३-२४	२,९०,१४८	१,८२,२१६	४,७२[illegible]
१९२४-२५	३,९६,९६२	३,०८,८२६	७,०५[illegible]
१९२५-२६	३,०२,९०७	५,८०,३१३	८,८३[illegible]
१९२६-२७	३,७२,८२६	७,२४,२०१	१०,९५[illegible]

अगर हम सिर्फ १९२६ और २७ सालों में सबसे कम [illegible] के दिनों के काम का ही मिलान करें तो पता चलेगी कि [illegible] वृद्धि हो रही है । १९२६ के अप्रिल में १९,०११) रु. की और [illegible] में २२,४७९) रु. खादी बनी और १९२७ के अ[illegible] २२,५३८) रु. की तथा सितंबर में बढ कर ५४,९२२) [illegible] खादी बनी थी । यह हिसाब केवल चर्खा-संघ का है । [illegible] संस्थाओं में से कोंगु कंपनी और गांधी आश्रम ने भी नये [illegible] खोल खोल कर अपनी उत्पत्ति बढायी है । इनमें गांधी आ[illegible] १,२७,१६१) रु. की और कोंगु कंपनी ने १,५६,८०२) [illegible] खादी इस साल बनायी है ।

जहां तक हिसाब मिल सका है, और कहीं कहीं सही [illegible] दिये भी नहीं जा सके हैं, वहां तक पता चला है कि [illegible] और बुननेवालों की संख्याएँ ये हैं:

संस्था	कतवैयों की संख्या	बुनवैयों की संख्या
अ. भा. चर्खा-संघ तिरुपुर	४,९००	५९०
,, ,, वेलाइकोइल	१,४६२	३१
,, ,, पडियारु	१,१५०	३५
,, ,, कोइलपालयम	१,०९८	४०
,, ,, उत्तुकुली	९१२	४१
,, ,, एरोड	६४३	४१
,, ,, कल्लाकुरुची	७५०	३२
,, ,, सेयुर	५०१	४७
,, ,, अवनासी	४१८	८४
,, ,, मुथुपेट	४००	१९
,, ,, पलियमकुरुची	३५६	७
,, ,, मन्नारकुडी	३१	९
,, ,, गोपी चेट्टीपालयम	२४	२३
जोड	१२,८२९	१,००२
स्वतन्त्र संस्थाएँ		
गांधी आश्रम पुदुपालयम	१,७७२	१२३
राजपालयम केन्द्र	१,२४३	९२
गांधी खद्दर आलयम	७००	७०
एस. टी. ए. मुरुगेश मुडालियर	९००	८५
अनंगुर	४७९	२३
टिसायानवलाइ	२२०	२५
कल्लाकुनीची	२००	२५
जोड	५,५१४	४४३
कुल	१८,३४३	१,४४५

खादी से गरीबोंकी सहायता

यम्बाटूर और सेलम जिलों को गरीब लोगों को, खास कर पिछले दो सालों की कहत के जमाने में खादी से बहुत सहायता मिली है। गांधी आश्रम की रिपोर्ट से पता चलता है कि ढाई साल में उसने कत्तिनों, बुनवैयों और धोबियों के बीच १,२२,९२९) रु. बांटे और वहां कत्तिनों की औसत माहवारी आमदनी दो से तीन रुपयों तक रही। अ. भा. चर्खासंघ, तामिलनाड ने कत्तिनों को ७३,८३९) रु. बुनवैयों को ९०,५८४) रु. और धोबियों को ५,४७८) रु. दिये। मगर यही कुल अंक नहीं है। क्योंकि तिरुपुर वस्त्र-विद्यालय के लिए कुछ एजेन्ट स्वतंत्र रूप से खादी तैयार करते हैं। उनका हिसाब मालूम नहीं। इस लिए यह सहज ही कहा जा सकता है कि इस साल के कोई ११ लाख रुपयों की तैयार खादी के ६ लाख से अधिक ही रुपये गरीब गांववालों की टेंट में पहुँचे होंगे।

कपडे की जाति और कीमत

रुई के दाम में घटी बढी के कारण इस साल खादी की कीमत दो बार बदलनी पडी, जिस कारण आज कल पिछले साल की ही दर जारी है। खादी अधिक बनने के साथ ही साथ अच्छी भी बनने लगी है। पिछले साल के ५४,६६१) रु. की महीन खादी बढ कर इस साल ७२,४३६) रु. की बनी है।

बिक्री

यह संतोष की बात है कि तामिलनाड में खादी की माँग बराबर बढती गयी है। पिछले वर्ष के खत्म होते समय जो नये केन्द्र खोले गये थे, वे अब खूब जोर शोर से संतोषजनक काम कर रहे हैं। इससे उत्साहित होकर कुछ दूसरी संस्थाओं ने भी मद्रास और नेगापटम में अपनी दूकानें खोली हैं।

साल	कुल बिक्री रु.
१९२४–२५	७,३७,३५६)
१९२५–२६	८,७७,६२९)
१९२६–२७	१०,७३,०२१)
इस साल	रु.
चर्खासंघ की खुदरा बिक्री	४,१५,५५९)
स्वतंत्र संस्थाओं की ,,	१,२९,५८६)
तामिलनाड में अ-प्रामाणिक व्यापारियों के हाथ बिक्री	१,१३,५०६)
दूसरे प्रान्तों में बिक्री	३,७९,५३५)
विदेशी व्यापारियों के हाथ बिक्री	३४,८३५)
कुल रु.	१०,७३,०२१)

इनमें सौ में ६० से अधिक रुपयों की बिक्री तामिलनाड में हुई है जब कि बाकी की खादी दूसरे प्रान्तों में या विदेश को गयी है।

इस साल फेरी के जरिए ६४,०००) रु. की खादी बिकी। पिछले साल सिर्फ ५०,८००) रु. की बिकी थी। अ० भा० चर्खा संघ की ओर से उन गांवों ओर शहरों में खादी बेंचने के लिए जहां खादी सुलभ नहीं है, खादी ले जाने के लिए एक मोटर लौरी रक्खी गयी है। मद्रास में कुछ संस्थाएँ चिट-प्रथा से खादी खरीदने के लिए संगठित हुई हैं। उनमें मुख्य है मजदूरों की संस्था। दोसौ मजदूर हर महीने आठ आठ आने देते हैं। महीना खत्म होने पर चिट्ठा लगा कर २० आदमियों को ५) ५) रुपये की खादी दे दी जाती है। इस प्रकार १० महीने में सभी ५), ५) रुपयों की खादी पा लेंगे। दूसरे छोटे शहरों में भी इस विधि का प्रयोग कर के देखना चाहिए।

दक्षिण भारत खादी-प्रदर्शिनी

गांधीजी के बंगलोर में होने के अवसर से लाभ उठाने के लिए वहां पर दक्षिण भारत खादी-प्रदर्शन संगठित किया गया था। भारतवर्ष के भिन्न २ भागों से कतवैयों और बुनवैयों ने आकर खुद अपना काम दिखला कर खादी की संभवता दिखलायी था। अ० भा० चर्खा संघ के शिक्षण विभाग ने भी कई प्रकार के नये यंत्र दिखलाये थे।

खादी के लिए कोष

गांधीजी १९२७ के शुरू में ही यहां आनेवाले थे, मगर उनकी अस्वस्थता के कारण यह यात्रा रुक गई। वे आये भी तो कई महीने बाद और तब भी सब जगह नहीं घूम सके। तौभी १,६३,०००) रु. तो मिले ही थे।

विद्यालयों और दूसरी संस्थाओं में खादी

उन सभी म्युनिसिपैलिटियों और ताल्लुक बोर्डों का हिसाब नहीं रक्खा जा सका है जिन्होंने अपने विद्यालयों में कताई शुरू की है। अधिकांश जगहों में बहुत ही मामूली काम हुआ और इसका कारण है, सीखे हुए कार्यकर्त्ताओं की कमी। जहां तहां कुछ विद्यालयों में कताई के लिये खूब अच्छा प्रबंध भी हुआ है। कुलशेखरपटनम स्कूल के सूत का बुना कपडा गांधीजी को भेट किया गया था। यहां के सभी विद्यार्थी तकली चलाते हैं। यहां का काम संतोषजनक है। इस संबंध में एक बात याद रखनी चाहिए। शिक्षकों में से कुछ के धुनाई का काम जाने बिना काम खराब होगा ही।

अगर कुछ सीखे हुए खादी कार्यकर्त्ताओं को रखकर शिक्षकों को कातना और धुनना दोनों सिखला दिये जायँ तो उनके विद्यालयों में कताई की यथेष्ट उन्नति हो सकेगी।

मद्रास कार्पोरेशन, मदुरा म्युनिसिपेलिटी, जैसी कुछ संस्थाओं ने वर्दी बनवाने के लिए खादी खरीदी है। मद्रास कार्पोरेशनने अभी हाल में ही भिक्षुकों के लिए और दूसरे कामों के लिए ३,०००) रु. की खादी खरीदी है। हमें यह बात फिर कहनी पडती है कि जो म्युनिसिपैलिटियां या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड खादी खरीदने का निश्चिय करें वे 'टेन्डर' या नमूने न माँग कर सीधे अखिल भारत चर्खा संघ की दूकानों से या प्रमाणपत्र-प्राप्त व्यापारियों से खरीदें नहीं तो नकली खादी के व्यापारियों से धोखा खाने का डर है।

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, पौष सुदी ५ संवत् १९८४

राजनीतिक कैदी

लाला दुनीचंद ने भारतवर्ष के अलग अलग जेलों में कैद राजनीतिक कैदियों की एक तालिका इँगलैन्ड में छपवायी थी। उसकी एक प्रति उन्होंने मेरे पास भेजी है। इसमें हिन्दुस्तानी पाठकों के लिए तो कोई नयी बात नहीं है और लेखक जो काम इससे साधना चाहते हैं, उसके लिए यह सहज ही और भी अधिक पूरी और सही बनायी जा सकती थी। साथ के पत्र में वे मुझसे नर्मियत से शिकायत करते हैं कि मैं राजनीतिक कैदियों के बारे कुछ नहीं लिखता। मगर मैं तो जान बूझ कर इस विषय पर चुप हूँ। मुझे आशा है कि 'यंग इन्डिया' के पृष्ठों में बहुत बेकार बातें नहीं रहतीं। यहां जो कुछ लिखा जाता है, वह एक खास मतलब से ही लिखा जाता है। एक समय वह भी था जब मैं इन मुआमलों पर विचार करता और अधिकांश में किया गया अन्याय दिखलाया करता था। मगर यह बात तो उस जमाने की है जब कि ब्रिटिश सरकार में मेरा विश्वास था और इसकी अच्छाई का मुझे गौरव था। मगर जब वह विश्वास नष्ट हो गया तब मेरी यह ताकत भी न रही कि उस सरकार के शासकों से कुछ कह कर उन पर असर डाल सकूँ। मैं अब फिर ब्रिटिश न्याय-प्रियता और सचाई का गुण नहीं गा सकता। इसके उलटे मुझे यह लगता है कि उनका तरीका ही ऐसा है कि जब कभी उनका राज्य खतरे में हो या उन्हें खतरे में पडा हुआ मालूम होवे, वे बेचारे सचाई या न्याय से काम ही नहीं ले सकते। मैं कबूल करता हूँ कि अगर उनके राज्य को किसी तरह का खतरा न होवे तो अब भी उनसे न्याय मिल सकता है। मगर जब कभी उनका राज्य खतरे में हो या वे समझें कि खतरे में है, तब न सिर्फ वे न्याय और सत्य को ही भूल जाते हैं बल्कि उनकी बुद्धि ही ठिकाने नहीं रहती, उस राज्य को बचाने के लिए उनकी दृष्टि में कोई काम नीच या जघन्य नहीं रह जाता। डायरशाही या ओडयरशाही कुछ एक अकेली घटना नहीं है। बस, सिर्फ जलियांवाला बाग घटना के पहले मुझे उसका पता नहीं था। सच पूछो तो, हर देश में, हर काल में जब कभी उन्हें जरूरत पडा है, उन्होंने डायर और ओडायरशाही से काम लिया है।

मेरा विश्वास है कि जो कोई राजनीतिक कैदी, विचार के तमाशे या प्रहसन के बाद या उसके बिना ही सही, कैद है, वे इसी सरकार के हित-साधन के लिए कैद हैं। ये शासक मौके पर के गये खूनी को, जो व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए किसी को मारे, छोड देवें, मगर ये उस राजनीतिक कैदी को छोडने को जिसके बारे में इन्हें शक हो कि वह इनके राज्य का विरोधी और खास कर अगर उसका तरीका हिंसामय हो।

इस लिए मुझे यह स्वाभिमान के विरुद्ध मालूम होता है लाला दुनीचंद के बताये, राजनीतिक कैदियों के लिए कोई अफसरों से कुछ कहे या सुने। और उनकी नजर है गदरपार्टी पंजाब फौजी कानून के और बंगाल के नजरबंद कैदियों पर। फिर श्रीयुत सुभाष बोस जैसे एक दो आदमियों को छोड ही से हमें भूल नहीं जाना चाहिए। अगर उनका बुरा स्वास्थ्य आड़े आ पडता तो शायद इतना सब आन्दोलन करने पर भी वे नहीं जाते। आखिर उन्होंने क्या यह खूब साफ साफ खुलासा कह दिया है कि ये लोग केवल स्वास्थ्य खराब होने के कारण छोडे जा रहे हैं? क्या अर्ल विन्टर्टन ने यह प्रार्थना करने पर सुधार-जाँच कमीशन के लिए अच्छा वातावरण बनाने के बंगाल के नजर बंदों को छोड दीजिए, उन्हें छोडना साफ नहीं कर दिया है?

खैर, जिन्हें ब्रिटिश न्याय-प्रियता, और सचाई में अब विश्वास हो, वे उनसे प्रार्थना करें।

मेरा रास्ता साफ है। जो स्वतंत्रता हम चाहते हैं, उसके हमने अभी कुछ भी काफी कीमत नहीं दी है। इस लिए मैं तो म हूँ कि ये कैदी उसी कीमत का एक छोटा अंश हैं जो हमें म का जन्मसिद्ध अधिकार पाने के लिए देनी चाहिए। और सब अत्याचार स्वेच्छा से सहने होंगे न कि भेड बकरियों असहाय होकर। यह काम हम हिंसा और अहिंसा किसी के ज कर सकते हैं। हिंसा का रास्ता तो हमें आखिर ऐसी जगह ला छोड देगा जहां से आगे हम कहीं जा नहीं सकते और बहुत अनिच्छुक स्त्रीपुरुषों के कष्टों की सीमा नहीं रहने देगा जो न जानते हैं कि स्वतंत्रता क्या चीज है और न उस बहुमूल्य वस्तु खरीदने का जिन्हें कोई शौक ही है। अहिंसा का रास्ता सबसे और छोटा है और इसमें कम से कम कष्ट सहना पडता है, वह भी सिर्फ उन्हींको जो कष्ट सहने को तैयार हों, बल्कि उसीकी खोज में हो। मगर हर हालत में बहुत ही कठिन और बहुत से लोगों को सहना पडेगा ही। अब तक तो जो भुगतना पडा है, वह आगे आनेवाले कष्टों का तो भर है।

इसलिए जिनका मेरे समान यह विश्वास है कि इस शासनपद्धति में ही दोष है, उनका यह काम है कि वे शासकों से प्रार्थना करना छोड देवें और अपने उद्देश्य में और तरीके में अटल विश्वास साथ वे राष्ट्र से ही निरंतर अपील करते रहें। जब तक कि में कैदखाने खोल देने की ताकत न आवे, तब तक ये कैदी सम्मान और शान के साथ नहीं छुडाये जा सकते। तब तक हम इसके धैर्य और साहस के साथ इनका कैद सहन करें और आप भी सजा भोगने के लिए खूब खुशी से तैयार हों। हम मुर्दा जंगल में दया का रोना रोकर स्वतंत्रता के दिन और भी निकट निश्चय ही नहीं लावेंगे और जनता में कैद और फांसी से डरने मनोभाव बेकार ही पैदा करेंगे। स्वतंत्रता के प्रेमियों को तो सीखना है कि इनका स्वागत मित्र और मुक्तिदाताओं के सम करना चाहिए।

(यं० इं०)

मोहनदास करमचंद गांधी

जीवन-कण

[इस स्तंभ में गांधीजी के अँगरेजी और गुजराती लेखों, और भाषणों में से चुने हुए उद्गारों के सारानुवाद दिये जायँगे । उप० सं०]

वसुधैव कुटुम्बकम्

"मैं चाहता हूँ कि सिर्फ हिन्दुस्तान के ही नहीं बल्कि सारी दुनिया के भिन्न २ धर्मों के माननेवाले आदमी, परस्पर के सम्पर्क से अच्छे बनें, और जब यह हो जायगा तब दुनिया आज से कहीं अच्छी रहने लायक जगह होगी । मैं अत्यन्त उदार सहिष्णुता का प्रचार चाहता हूँ और उसके लिए काम कर रहा हूँ । मैं यह आशा नहीं करता हूँ कि मेरे स्वप्न के आदर्श भारत में केवल एक ही धर्म रहेगा, यानी वह संपूर्णतः हिन्दू या ईसाई या मुसलमान बन जायगा बल्कि मैं तो चाहता हूँ कि वह संपूर्णतः उदार और सहिष्णु बने, ये धर्म साथ साथ चलें ।"

गीता और बाइबिल

"मुझे बाइबिल में गिरिशिखर पर का उपदेश पढने पर उसमें कोई नयी बात नहीं मालूम हुई थी । मैंने जो कुछ लडकपन में सीखा था वही तो वहां साफ साफ कहा हुआ था कि 'उपकारी के प्रति उपकार करने में, पानी पिलानेवाले को पानी पिलाने में कोई खास खूबी नहीं है । मगर पुण्य तो है अपकारी का उपकार करने में, अपना बुरा चेतनेवाले का भला चेतने में ।' मैं तो बाइबिल में गिरिशिखर पर के इन उपदेशों और गीता में कोई फर्क नहीं देखता । जो कुछ सुन्दर भाषा में गिरिशिखर पर के उपदेश में कहा हुआ है, वही बात शास्त्रीय या वैज्ञानिक सिद्धान्त के रूप में गीता में प्रतिपादित हुई है । वैज्ञानिक रीति के आज के सर्वमान्य अर्थ में गीता भले ही वैज्ञानिक ग्रन्थ न होवे, मगर उसमें प्रेम के नियम का, त्याग के नियम का वैज्ञानिक रीति से विवेचन किया हुआ है । वही बात गजब की भाषा में गिरिशिखर पर के उपदेश में कही गयी है । आज अगर मान लिया जाय कि मेरे पास से गीता छीन ली जाय और उसे सारा का सारा मैं भूल जाऊँ तौभी अगर मेरे पास गिरिशिखर पर के उपदेश की एक प्रति रहे तो मुझे उससे वही सान्त्वना मिलेगी जो गीता से मिल सकती थी । आप जानते होंगे कि मेरी आदत है कि मैं हर एक वस्तु की सुन्दरता ही देखना चाहता हूँ, कदर्यता नहीं । इसलिए मैं किसी धर्म के किसी महान् ग्रन्थ से सान्त्वना पा सकता हूँ । शायद मैं गीता का एक भी श्लोक, गिरिशिखर पर के उपदेश का एक भी वाक्य न दुहरा सकूँ और हिन्दू या ईसाई लडकों को गीता और बाइबिल मुझसे ज्यादे अच्छी तरह याद होवें मगर इस कारण श्री गीताजी के और गिरिशिखर पर उपदेश के अध्ययन और मनन से मैंने जो सीखा है, वह तो मुझसे कोई नहीं छीन सकता ।"

वकालत का पेशा

"आपने वडा भला किया जो यह सवाल पूछा कि 'वकालत को कैसे धार्मिक बनाया जा सकता है ?' । क्योंकि अगर इस सवाल पर भी मैं प्रामाणिकता से न बोल सकूँ तो फिर और किस पर बोलूँगा ? अपनी सारी वकालत में मैं एक बार भी सत्य और इमान्दारी के सीधे और सँकरे रास्ते से अलग नहीं गया । अब अगर आप कानून या वकालत के पेशे को धार्मिक बनाना चाहते हैं तो आपके लिए सब से पहले यह आवश्यक है कि आप अपने इस पेशे को धन बटोरने का नहीं, बल्कि देशसेवा का एक साधन मानिए । सभी देशों में ऐसे बहुत ही योग्य वकीलों के उदाहरण मिलेंगे जिन्होंने बहुत बडे स्वार्थ-त्याग का जीवन बिताया, अपने कानूनी ज्ञान को देश-सेवा में लगाया जो कि इससे उनके पल्ले गरीबी ही गरीबी पडी । दूसरे देशों में क्यों जाइए, अपने हिन्दुस्तान में ही स्वर्गीय श्रीयुत मनमोहन घोष का उदाहरण है । उन्होंने अपने मुवक्किलों के लिए निलहे गोरों से लोहा लिया, और इसमें मिहनत उनका स्वास्थ्य जो खराब हुआ सो तो हुआ ही, मगर उनकी जान का भी खतरा था और इस पर भी उन्होंने एक फूटी कौडी भी फीस में न ली । ऐसे ही उदाहरण आपको अपने सामने रखने चाहिए । रस्किन ने कहा है, 'क्यों कोई वकील दो दो सौ रुपये अपना मिहनताना लेगा जब कि दूसरे बढई को उतने पैसे भी नहीं मिलते ?' वकीलों की फीस उनके काम के हिसाब से होती है थोडे ? मैंने भी बडी बडी फीसें ली हैं । मगर इतना तो कहना ही चाहिए कि वकालत करते समय भी उसके कारण मेरा कोई सार्वजनिक काम रुका नहीं है ।

"मगर एक और बात है । दक्षिण अफ्रिका में, इँग्लैण्ड में, बल्कि सभी कहीं मैंने देखा है कि चाहे जानबूझ कर या अनजाने वकीलों को अपने मुवक्किलों की खातिर झूठ बोलना पडता है । एक प्रसिद्ध अँगरेज वकील ने तो यहां तक लिख मारा है कि अपने मुवक्किल को अपराधी जानकर भी उसका बचाव करना वकील का धर्म है, कर्त्तव्य है । मेरा मत दूसरा है । वकील का तो काम यह है कि वह हमेशे जजों के आगे सच्ची बातें रख देवे, सच की तह तक पहुँचने में मदद करे, मगर अपराधी को निर्दोष साबित करना उसका काम कभी नहीं है । अगर आप अपने कर्त्तव्य में चूकें तो और दूसरे पेशों का क्या हाल होगा ? तुम नवयुवकों का दावा है कि कल्ह देश के कर्त्ता धर्त्ता हमी होंगे । अब तुम्हें तो देश के सार पदार्थ देश के रत्न होना चाहिए । मगर अगर रत्नों की ही चमक जाती रहे तो फिर उन्हें कौन चमकावेगा ?"

साप्ताहिक पत्र

आराम कैसा ?

इस हफ्ते का कार्यक्रम बहुत हलका कर दिया गया था । बालासोर के दो दिनों में सिर्फ एक सार्वजनिक सभा रक्खी गयी थी । बाढ पीडित क्षेत्रों में दीहातियों के साथ दो दिन बीते । इसमें जितना आराम दिया जा सकता था देने की कोशिश की गयी थी । कटक में रक्त का भार अधिक जान पडा । वहां पर सारा कार्यक्रम वहीं का वहीं छोड दिया गया । चंपापुर हाट में श्रीयुत गोविंद मिश्र गांधीजी के स्वागत की बडी तैयारियँा कर रहे थे, मगर खुद उन्हींके कहने पर वहां का जाना छोड दिया गया । श्रीयुत गोपबन्धु चौधरी कब यह सुननेवाले कि गांधीजी ऐसी हालत में उनके खादी के उत्पत्ति केन्द्रों में न जायँ ।

हालत तो यह थी मगर आराम कहां का और कैसा ? ये दिन भी बडी मिहनत और थकावट से बीते । सभी कोई गांधीजी को आराम देने की तदबीर कर रहे थे, मगर उनके मन में तो दूसरी ही बात थी । वे मानों मन ही मन कहा करते थे कि 'मनुष्य-जन्म ही काम के लिए है, आराम के लिए नहीं ।' उन्हें इसका जरा भी खयाल हुआ नहीं कि फलाँ कार्यकर्त्ता ने उनके एक भाषण का मतलब गलत समझा है कि वे उससे और दूसरे कार्यकर्त्ताओं से बडे उत्साह से उस विषय पर बातें करने लग जाते थे । उडिस्सा में आखिर आये ही हैं तो फिर यहांवालों को जो कुछ बतलाया जा सके, सब बतलाये बिना भला कैसे लौटें ? डाक्टर मना करते हैं, मगर तौभी वे एक घन्टे तक बात करते ही हैं । थक जाते हैं । बातचीत एक घन्टे के लिए मुल्तबी कर देते हैं । फिर घन्टे भर बाद बात शुरू कर देते हैं । और अब

पहले से भी अधिक थक जाते हैं। मगर तौभी उन्हें संतोष कैसा? उनकी नजर किसी कार्यकर्त्ता पर पडी। आपने देखा कि उसके चेहरे पर कुछ निराशा झलकती है। बस निश्चय कर लिया कि फिर एक बार चलने चलाने के दिन और बातें कर लूंगा। वे जानते थे कि यहां एक कुष्ठाश्रम है क्योंकि दो साल पहिले उसे देख चुके थे। बस अब बेचारे उन रोगी भाइयों से भेंट तो करनी ही चाहिए। किसी मित्रने कलकत्ते से एक गुलदस्ता भेजा था। उसे भेंट करने को ले चले। कुष्ठाश्रम के सुप्रिन्टेन्डेन्ट को तो स्वभावतः यह इच्छा होगी ही कि गांधी जी फिर यहां एक बार आवें। और गांधी जी एक दूसरे मित्र की भेजी नारंगियों की एक टोकरी लेकर वहां जा पहुँचते हैं। उन्होंने रोगियों से कुछ बातें कीं, उन्हें उत्साहित किया। इधर सुप्रिन्टेन्डेन्ट उन्हें सभी ओर घुमा फिरा कर दिखलाना चाहते थे। इस लिए उन्हें घुमाने ले चले। आधे घन्टे तक धूप में चहल कदमी करनी पडी जो उनका बुरा स्वास्थ्य बरदाश्त नहीं कर सकता था। संध्या में डाक्टर आये। लहू का भार नापा। बेचारे ने घबरा कर कहा कि 'महात्मा जी, आप तो हद कर देते हैं। देखिए सवेरे से इस समय लहू का भार बढा हुआ है।' इधर गांधी जी ने डाक्टर के लडके के साथ खेलना शुरू किया। उसका सोने का गहना माँग लिया, और कहा, 'देखो भाई, मेरे ऊपर लहू का भार बहुत बढा हुआ है, इस लिए तुम मुझे प्रणाम आदि तो ठीक ठिकाने से करो।' सब हँस पडे। यों ही गांधी जी अपनी तकलीफ हँसी में उडाये जाते हैं। डाक्टर की बात तो दिल्लगी में उड जाती है। करते वे वही हैं जो उन्हें करना है, चाहे डाक्टर की कुछ भी सलाह क्यों न होवे। शायद ऐसे ही लोगों के लिए कहा है कि, 'अपने स्वभाव का दमन कौन कर सकता है?'

एक गांव

बालासोर का पूर्वी हिस्सा भी उडिस्सा का बाढ-क्षेत्र है। यहीं हम लोगों ने पहले पहल उडिस्सा की भीड देखी जो 'हरि बोल' 'हरि बोल' की गगन-भेदी ध्वनि कर रही थी, और स्त्रियाँ 'उलुलु' ध्वनि से स्वागत कर रही थीं। गांधी जी छरवतिया गांव में ठहरे। आसपास के कोई सौ गांवों के लोग आ जुटे। बडी अच्छी सभा हुई। वहां का चंदा वहीं के काम में लगाया जानेवाला था। वहां पर सबने चंदे की माँग पूरी की। कोई ऐसी स्त्री नहीं आयी थी, जिसने चंदे में एकाध पैसे न दिये हों। अलग अलग गांवों के प्रतिनिधियों से हमारी बातें हुईं। उनके पास तो एक ही कहानी थी। 'बाढ आयी। बडे से छोटे सभी के मकान, सभी जगह सब की फस्ल, सब कुछ बहा ले गयी, मैदान साफ कर दिया। जानवर या तो डूब गये या भूखों मर गये। उधर ऊपर से अकारण ही लगान बढने की मार पडी। लोग लाचार हो हो कलकत्ते की ओर भागने पराने लगे।' वगैरह, वगैरह। उनमें से एक आदमी की भी बात वहां का दृश्य पाठकों के आगे ला देने को समर्थ होगी। सामने एक आदमी जरा साफ कपडे पहने दिखलायी पडा। पूछने पर मालूम हुआ कि वह गांव का 'गुरुजी' या गांव की पाठशाला का शिक्षक है। उसे दश रुपये महीना मिलता था। मगर तौभी वह उस ऊजड गांव में धनी गिना जाता था! 'मगर आखिर दश रुपये में आप अपना गुजर चला ही नहीं सकते होंगे? आपके कितने लडके बाले हैं?'

'एक पत्नी और दो लडके।'

'तब आप दश रुपये में कैसे अपना खर्च चलाते हैं? आप खाते क्या हैं?'

'भात और मछली।'

'दाल या शाक नहीं? और दूध, घी?'

'कभी कभी दाल, शाक भी मिल जाता है। मगर जब दा[l] बनती है तो तरकारी नहीं, और तरकारी तो दाल नहीं। दू[ध] घी कहां मिलेगा?'

'तब आप केवल उबाली तरकारी खाते होंगे?'

'जी नहीं, सरसों का तेल देते हैं — महीने में कोई ए[क] रतल (४० तोला) तेल लगता है।

'नहीं, आप बतलाइए कि आपको ऊपरी आमदनी क्या है! कोई बात घटाने बढाने की जरूरत नहीं है। क्या गांववाले लडकों की पढाई के लिए आपको कुछ देते हैं?'

'जी ना, बिलकुल नहीं। पहले मेरे पिताजी मुझे कलकत्ते से सात आठ रुपये महीने भेजा करते थे, मगर उनके मरे दो सा[ल] हो गये।'

'यह बात है? मगर अब आप दो साल से कैसे चलाते हैं!'

'बडी मुश्किल से किसी तरह चला लेता हूँ।'

गांधीजी ने कुछ और भी सवाल पुछवाये जिनसे किसी तरह य[ह] बात निकली कि वह कभी कभी स्कूल के मंत्री और गांव के जमीन्दा[र] के पास भोजन कर लिया करता है। गांधीजी ने कहा, 'हां, अ[ब] मैं समझा। आप और आपके घरवाले मंत्रीजी के यहां भोज[न] करते हैं?'

उस बेचारे ने इसका विरोध किया, 'जी नहीं। सिर्फ एक मैं और वह भी कभी कभी उनके यहां खा लेता हूँ।'

'खैर, मैं अब समझा। मगर अब यह बतलाइए कि गांव [में] कितने आदमी आप से अधिक खुश हाल हैं, और कितने आपसे [भी] बुरी हालत में हैं?' बेचारे ने कुछ देर तक सोचा, और फिर क[हा] 'जमीन्दार के बाद तो मैं ही खुशहाल गिना जाऊँगा। गांव में [को]ई ६० घर हैं, जिनमें ४० की हालत तो मेरी ही जैसी है। ब[ाकी] बीस तो बहुत ही रद्दी हालत में हैं। उन पर मेरा कुछ प्रभाव [है] क्योंकि मैं उनका अर्जी नवीस हूँ। उन्हें जब कोई अर्जी लिख[नी] होती है, वे मेरे पास आते हैं।'

गांधीजी ने दुभाषिये से कहा, 'इन्हें मेरी बात समझा दीजि[ए] — मैं बाढ को तो नहीं रोक सकता हूँ। न तो मुझ में बाँ[ध] बंधवा देने, और न नहर को उपटने से रोकने की ताकत है। मगर आपमें अगर ताकत होवे तो आप इस नीचे प्रदेश को छो[ड] कर ऊंची जगह में जा बसिए। मगर इस तरह मत जाइए जैसे लोग कलकत्ते जाते हैं। बल्कि बडे छोटे, जमीन्दार को साथ लेकर, और उन बीस गरीब गरिवारों को भी जरूर ही लेक[र] आप सब कोई मिल कर एक साथ देश-परिव न कीजिए। मगर आप[में] अगर वह ताकत न होवे — और मैं जानता हूँ कि वह नहीं है — आपको अपनी हालत सुधारने के लिए मैं सिर्फ यही सलाह [दे] सकता हूँ कि चर्खे को अपनाइए। आप के यहां सिर्फ एक फस्ल होती है, और साल में बाकी के आठ महीने लोग बेकार बैठे रहते हैं। आप फुरसत के समय बराबर चर्खा चलाइए। [आप] में कुछ आदमी बुनना सीख लेवें। फिर अपने गांव को सब त[रह] से स्वयं-संपूर्ण बना डालिए। चर्खे के जारी होने से ही कर्घा [भी] चल निकलेगा, गांव के लुहार, बढई और धोबी भी फिर जी उठेंगे। लोगों पर अपना सारा प्रभाव डाल कर आप लडकों से सूत कतवाइए और लडकों के जरिए बडों से भी। यह बात सब किसीसे कहिए। अगर आप सब कोई कातने को राजी होवें तो मैं आपके [पास] होशियार कतवैये आपको सिखलाने के लिए भेज दूँगा।'

इस मित्र ने बडे धैर्य और ध्यान से यह बात सुनी जो उसे उडिया में समझायी गयी। सब किसीने चर्खा चलाने की खुशी जाहिर की।

आशा की झलक

दूसरे दिन हम लोग मतई नदी पर नाव से आगे चले। नदी के दोनों किनारों पर भीड लगी थी। 'हरिबोल' की ध्वनि गूँज रही थी। ये लोग तो बिलकुल दूसरी तरह के थे। इनमें तो उत्साह और आशा दोनों की झलक थी। मालूम हुआ कि ये कनिका राज की प्रजा थे। उन्होंने राज के विरुद्ध बहुत सी शिकायतें गांधी जी के आगे पेश की थीं। गांधी जी वे शिकायतें राजा साहेब कनिका को बतलाना चाहते हैं, इस लिए उन्हें यहा छोड देता हूँ।

एक जगह आशा की झलक तो थी पर गांधी जी वहां नहीं जा सके। बदले में मीरा बहिन, काका साहेब और मुझ को वहां जाना पडा। वह जगह थी चम्पापुर हाट। श्रीयुत गोविन्द चन्द्र मिश्र को किसी देशी रियासत में बडी तकलीफें और जुल्म सहने पडे थे। अब वे दो साल से चंपापुर हाट के पास के एक गांव में, कटक से कुछ ही दूर, बस गये हैं और आसपास के गांववालों की हालत सुधारने की कोशिश करते रहते हैं। उनके पैर वहां जम गये हैं। वे वहीं पर एक स्थायी आश्रम भी स्थापित करना चाहते हैं जिसकी नींव वे गांधी जी से दिलवाना चाहते थे। आसपास से हजारों आदमी आये हुए थे। यह तो स्पष्ट ही मालूम हुआ कि अगर कोई नहीं जाता तो उन्हें बहुत ही अधिक निराशा होती। गोविन्द बाबू को बहुत कठिनाइयों से जूझना पडा है। लोगों की लापर्वाई, सरकार की नजरें नेक वगैरह क्या क्या न कठिनाइयां उनके आगे आयीं, मगर अब उन्होंने इधर उधर के जमीन्दारों से कुछ सहायता पायी है, और उनके यहां ८७ कतवैये और ४ बुननेवाले हैं। वे किसानों को कपास बोने को कह रहे हैं। गांवों में वे मुफ्त दवा बाँटते हैं जिससे स्वाभाविक ही उनका प्रभाव खूब बढ गया है। उमेद है कि वे आगे बढते ही जायँगे।

कार्यकर्त्ताओं से बातें

गांधीजी ने कार्यकर्त्ताओं से कई बार बातें कीं। उडिस्सा के मसले पर और साथ मिल कर काम करने के सवाल पर उन्होंने बहुत कुछ बतलाया।

पहली बात तो श्रीयुत गोपबन्धु दास से हुई। उन्होंने एक काम में गड कर लगे रहने, और इधर उधर मन को भटकने न देने पर बातें कीं। गोपबन्धु बाबू ने कहा, 'मुझे आपस के झगडे और मतभेद पर बडा कष्ट होता है। कभी कभी मैं सोचता हूँ कि किसी दूर के गांव में जा बसूँ और वहीं पर अपने आपको गाड डालूँ, दुनिया के झगडे से पाक और साफ रहूँ।' गांधीजी ने जवाब दिया, 'जरूर। अपने को गाड डालिए, मगर जिन्दा ही। आप क्षेत्र-संन्यास ले लीजिए और चाहे बाढ भी क्यों न आवे, अपनी जगह से एक जौ भी विचलित मत होइए। आप महाराज जनक का पौराणिक उदाहरण तो जानते ही हैं। उनका कहना था कि अगर मथुरापुरी में भी आग लग जाय तो मुझे क्या? आप अपनी मर्यादा समझिए। अपने लिए काम का निश्चय कर लीजिए। उसके बाहर भूल कर भी मत जाइए। मैं मानता हूँ कि यह बहुत मुश्किल है। यह मनोवृत्ति तो अत्यन्त परिश्रमी और धर्म-भीरु पुरुषों के सिवाय और किसकी हो सकती है? नहीं तो और लोग महाराज जनक होने के बदले रोम के सम्राट् नीरो या भारतवर्ष के वेण होंगे।'

एक भाई ने बाणपुर में का गांधीजी का भाषण ठीक नहीं समझा था। उन्होंने कहा, 'आपने इन लोगों को चोट सह लेने की शिक्षा क्यों दी? बेतिया में १९२० साल में तो आपने लोगों को लकडी उठाने की शिक्षा दी थी। ये लोग तो आप ही डर से मर रहे हैं। आप की शिक्षा से तो इनकी और भी दुर्गति होगी। यह उपदेश सुन कर मुझे बडा आश्चर्य हुआ था।' गांधीजी ने जवाब दिया:

'यह बडा अच्छा किया कि आप ने यह सवाल पूछा मगर आपको यह सब वहीं सभा में ही पूछना चाहिए था। इस सवाल के तीन पहलू हैं। पहली बात तो यह है कि क्या मुझे यह नहीं सिखलाना चाहिए था कि तुम मार का जवाब मार से दो? आपको यह समझ लेना चाहिए कि अगर्चे कि अहिंसा ही मेरा धर्म है मगर मैं हिंसा का भी सिद्धान्त और प्रयोग समझने का दावा रखता हूँ। बाणपुर में जैसे आदमी थे, अगर वैसे लोगों को बदला देने की ही शिक्षा देनी हो तौभी उन्हें सिर्फ जबानी यह कह देने से ही नहीं होगा कि बदला लो। हिंसा के सिद्धान्त और प्रयोग के किसी अभ्यासी से आप पूछिए कि वह इन्हें बदला लेना कसे सिखलावेगा। अगर उन्हें यह कहा जाय कि वे सोचे विचारे हर किसीके मुक्के का जवाब घूंसे से दिया करो, तो वे तुरत ही कुचल दिये जायँगे। फिर वे उठ भी नहीं सकेंगे। पहले तो उन्हें अपनी शक्ति का भान कराना होगा। अभी तो ये नेताओं के पास जाने का भी साहस नहीं कर सकते।

"मगर मुझे तो हिंसा का पाठ पढाना नहीं था। इस लिए मैंने दो एक रास्ते बतलाये, जिनसे वे, हिंसा बिना किये भी अपना कुछ बचाव कर सकते थे। यहां मेरे सामने चंपारण का उदाहरण था। अगर मैं चम्पारण की रैयत से बदला लेने को कहता तो वह जरूर पिस जाती। मैं जो कुछ वहां कर सका, उसका कारण यह था कि मैं उन्हें हिंसा से दूर रख सका था। हां, मुझे अहिंसा के संपूर्ण सिद्धान्त का विवेचन बाणपुर वालों के आगे करने की जरूरत नहीं थी, जैसे कि किसी योग्य डाक्टर को अपनी दवा के गुणदोषों पर रोगी से बहस करने की जरूरत नहीं है। वह तो उसे दवा सिर्फ दे भर देता है।

"अब बेतिया की स्थिति से यहां का मिलान कीजिए। वहां और यहां में जमीन आसमान का अन्तर है। (यहां पर गांधीजी ने अपने चंपारण जाने और सन १९१६ में वहां काम शुरू करने की पूरी कथा कह सुनायी।) जब मैं १९२० में बेतिया गया था, लोगों ने मुझे कहा कि 'पुलिस ने हमारी औरतों के गहने लूटे हैं, कहीं कहीं उनके बदन पर भी हाथ लगाया है और हमलोग यह हाल देख कर बाल बच्चों, और घरबार को छोड कर भाग गये।' मैंने पूछा, 'तुम लोग भागे क्यों?' जवाब मिला, 'आपने ही तो अहिंसा का पाठ पढाया है। हम पुलिस के जोर जुल्म का जवाब कैसे देते?' मुझे इससे चोट लगी। मैंने उन्हें अहिंसा का मर्म समझाया। मैंने कहा, 'अहिंसा कायरता नहीं है। यह सब से बडी वीरता है। अगर तुम अपने को रोक नहीं सकते थे तो तुम्हें भागना नहीं चाहिए था, बल्कि पुलिस से लडना, और अपने बाल-बच्चों की जान और इज्जत को बचाने में मर जाना चाहिए था।' मैं वहां पर उन लोगों से बातें कर रहा था जो मुझे और मेरी शिक्षा को जानते थे। बाणपुर में तो मुझे यह भी पता नहीं था कि लोगों को हुआ क्या है? मैंने सुना था कि पुलिस ने लोगों को मेरी सभाओं में आने से मने किया था, सजा देने की धमकी दी थी। मैंने लोगों से कहा कि 'अगर तुम्हें कुछ कहना हो तो

मुझसे आ कर कहो ।' मेरे पास कोई कहने नहीं आया। इस हालत में उन्हें दूसरी कोई सलाह नहीं दे सकता था।"

यह तो उस लंबी बातचीत का सारांश भर है, दूसरी बार सहयोग और मेल से काम करने पर बातें हुईं। यहां पर खादी बनानेवाली चार संस्थाएँ हैं। एक है अ. भा. चर्खासंघ की शाखा, दूसरी है अकाल-पीडित-सहायक संघ, तीसरी श्रीयुत गोपबन्धु चौधरी की सहयोग-संस्था, और फिर चौथी चंपापुर हाट में श्रीयुत गोविन्द मिश्र का काम। इन सब के बीच कुछ गलत फहमी और चढा ऊपरी तो थी ही। यों कह सकते हैं कि और चाहे जो कुछ हो मगर मेल और सहयोग की तो कमी ही थी। कार्यकर्ताओं ने भी कई सवाल पूछे थे। उन्हें भी जवाब देना था ही।

जो लोग खादी बनाने के लिए संयुक्त-कंपनी खोलना चाहते थे उन्हें गांधीजी ने सलाह दी कि, 'इस संस्था के संचालक उतने ही सचेत और अपनी संस्था के हितचिन्तक होने चाहिए, जैसे कि 'बैंक ऑफ इंग्लैंड' के हैं, और यह बैंक दुनिया का सबसे बडा सहयोग-संघ है। बल्कि उस बैंक के संचालकों से भी अधिक निःस्वार्थ हमारे संचालकों को होना चाहिए क्योंकि खादी कंपनी तो स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि गरीबों की सेवा के लिए ही खोली जायगी। उनकी योग्यता इसी में होगी कि वे मामूली से मामूली बात पर भी खूब ध्यान देंगे, चर्खा-शास्त्र में निष्णात बनेंगे। जब तक ये चर्खा-शास्त्र के अच्छे जाननेवाले और योग्य संगठनकर्ता नहीं बनते, वे कुछ भी नहीं कर सकेंगे।

"आपके कुछ सवालों से पता चलता है कि आप कैसे अव्यावहारिक आदमी हैं। आपका पूछना है कि क्या लँगोटी पहननी और कुछ खास चीजें खानी भी जरूरी हैं। नहीं भाई, मैं आपके कपडे और भोजन का ढंग निश्चित नहीं करना चाहता। मैं तो यही चाहता हूँ कि आप इस आन्दोलन का रहस्य समझें और वैसा ही अपना जीवन बनावें।

"आप लोगों से जो उडिस्सा की सेवा करना चाहते हैं, मैं यह कहूंगा कि आप उडिस्सा को सारे भारत वर्ष की खादी दूकान बना लीजिए। जब तक आप में चढा ऊपरी का भाव है, आप सब मिल कर केवल खादी तैयार करने में नहीं लग जाते, यह नहीं हो सकता। खादी में कैसी चढा ऊपरी? मैं यह बात समझ सकता हूं कि दूसरे प्रान्तों से खादी मँगाने का आप विरोध करें, मगर उडिस्सा के ही ही भिन्न २ हिस्सों में बननेवाली खादी में तो आपको कोई तफर्का नहीं करना चाहिए। आप सब कोई मिल कर काम करने, खादी बेंचने में लग जाइए।

"किसी दिन मैंने कुछ नवयुवकों को खेती का सुधार करने की बातें करते हुए सुना था। अगर कोई मेरे सामने सिद्ध कर देवे कि खेती का सुधार करने से सभी गरीबों की गरीबी दूर हो जायगी और यह योजना व्यावहारिक है, और हमारे करोडों आदमियों के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है, तो मैं चर्खे के बारे में अपना मत बदल डूंगा। मगर मैं आपको चेताता हूँ कि आज की स्थिति में आपको सफलता नहीं मिल सकती। मैं एक आदर्श खेत तैयार करने की कोशिश कर रहा हूं। मेरे कुछ ऐसे ना समझ मित्र भी हैं जो प्रयोग करने के लिए मुझे रुपये दिया करते हैं। और मैं उन प्रयोगों पर पानी जैसा रुपया बहाता हूँ। मैं ने स्वर्गीय सर गंगाराम से भी बातें कर के उनके सामने अपने खेतों की पूरी स्थिति रक्खी मगर वे भी हमारी खेती को सुधारने की कोई बनी बनाई योजना नहीं बतला सके। आप गांवों में जाइए और अपने आपको दफना दीजिए मगर गांववालों के मालिक मत बनिए, उनके नम्र सेवक बनिए। आप अपना ऐसा जीवन बिताइए कि उसीको देख कर वे अपना जीवन सुधारें। केवल भावना से ही कुछ न होगा जैसे कि भाफ जब तक एंजिन में नहीं लायी जाती, कोई काम नहीं करती है।

"आप इसकी फ़िक्र जरा भी न करें कि आपकी बनायी खादी क्या होगी। अगर जरूरत पडे तो उसे आपसे खरीद लेने का भार मैं ले लूँगा। खद्दर बनाने के लिए उडिस्सा से बढ कर और कौन क्षेत्र हो सकता है? खद्दर की आवश्यकता और शक्ति को तो केवल एक उडिस्सा ही साबित कर सकता है। मुझे तो इसका मन में भान सन् १९०८ में ही हो गया था, मगर अब उसे साबित कर दिखलाना तो आपका काम है। दुनिया को दिखला दीजिए कि हम खादी के बिना नहीं जी सकते।

"आप अपना विश्वास मुझसे मत लीजिए, बल्कि अपने मन में इतना पक्का विश्वास पैदा कीजिए कि अगर गांधीजी का भी खयाल बदल जाय तो बदल जाय, मगर मैं तो इसी पर डटा रहूँगा। लोगों को आप दिखला दीजिए कि अगर भर पेट खाना चाहिए तो उसके लिए काम करना होगा, और वह काम केवल आप ही लोग और अपनी ही शर्तों पर दे सकते हैं। लोगों की देशभक्ति पर ही आप बराबर निर्भर नहीं कर सकते। आपको ऐसी अच्छी खादी बनानी पडेगी, जो सभी किस्म के कपडों से बाजी ले सके।

"याद रखिए कि जब तक लोगों को यह विश्वास नहीं होता कि हम खादी के बिना नहीं जी सकते तब तक आपको सफलता मिलने से रही। आप जान लीजिए कि मैं यह आन्दोलन कुछ विदेशी कपडे का बहिष्कार भर ही करने के लिए नहीं कर रहा हूँ। बल्कि यह तो हमारे जीवन के लिए ही परमावश्यक है।

"आप गांवों में जाइए। गांववालों में ही हिलमिल जाइए। उनसे अपने को अलग मत समझिए। उनके सुख दुःख में शामिल होइए। उन्हें कातना सिखलाइए, धुनने का ढंग बतलाइए। उनके रहन सहन के दोष उन्हें सुझाइए। सफाई के प्राथमिक नियम उन्हें बतलाइए। इसी प्रकार की कताई से स्वराज्य मिलेगा। आप हर एक गांव को स्वयं-संपूर्ण बनाइए, हर घर का कपडा वहीं पर कतवा कर बुनवाइए। मगर इसके अलावा भी आपके पास कुछ खादी बच ही जाय तो आप मुझसे अभी ठीक लिखवा लीजिए कि अगर वह खादी ठीक हुई तो फिर मैं उसे बेंच लूंगा। याद रखिए कि वही कार्यकर्ता योग्य गिना जायगा जो जहां रहता है, उस गांव को संपूर्ण स्वावलम्बी बना डाले। मगर ये सब बातें तो आदमी आदमी पर निर्भर रहेंगी। इसके लिए प्रेम की पाठशाला को छोड कर और कहीं की विद्या दरकार नहीं है। क्या हमारे पास सच्चे, ईमानदार, वीर और देश-प्रेम से भरे हुए कार्यकर्ता हैं?"

परिशिष्ट—डाक्टर अंसारी ने गांधी जी के शरीर की पूरी परीक्षा की है। उनकी सम्मति है कि चिन्ता की कोई बात नहीं है। उनकी परीक्षा में रक्त का भार, सामान्य से कुछ ही अधिक निकला और इस कारण गांधीजी को आराम और कम काम करना जरूरी है, मगर चिन्ता की कोई बात नहीं है।

(यं० इं०)

महादेव देशाई

राष्ट्रीय महासभा

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, ‒)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक २०

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद } अहमदाबाद, पौष सुदी १३ संवत् १९८४ गुरुवार, ५ जनवरी १९२८ ई० { मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

स्मृति में

हकीम साहेब अजमल खां के स्वर्गवास से देश का एक सब से सच्चा सेवक उठ गया। हकीम साहेब की विभूतियाँ अनेक थीं। वे महज कामिल हकीम ही नहीं थे जो गरीबों और धनियों, सबके रोगों की दवा करता है। मगर वे थे एक दरबारी देशभक्त, यानी अगर्चे कि उनका वक्त राजों महाराजों के साथ में बीतता था, मगर थे वे पक्के प्रजावादी। वे बहुत बडे मुसलमान थे, और उतने ही बडे हिन्दुस्तानी। हिन्दू और मुसलमान दोनों से ही वे एक सा प्रेम करते थे। बदले में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही एकसमान उनसे मुहब्बत रखते थे, उनकी इज्जत करते थे। हिन्दू-मुसलिम एकता पर वे जान देते थे। हमारे झगडों के कारण उनके अन्तिम दिन कुछ दुःखजनक हो गये थे। मगर अपने देश और देशबन्धुओं में उनका विश्वास कभी नष्ट नहीं हुआ। उनका खयाल था कि आखिर दोनों सम्प्रदायों को मेल करना ही पडेगा। यह अटल विश्वास लेकर उन्होंने एकता के लिए प्रयत्न करना कभी नहीं छोडा। अगर्चे कि उन्हें सोचने में कुछ समय लगा, मगर आखिर वे असहयोग आन्दोलन में कूद ही पडे थे, अपनी प्रियतम और सब से बडी कृति तिब्बी कॉलेज को खतरे में डालते वे झिझके नहीं। इस कॉलेज से उनका वह प्रबल अनुराग था जिसका अन्दाजा सिर्फ वे ही लगा सकते हैं जो हकीमजी को भलीभांति जानते थे। हकीमजी के स्वर्गवास से मैंने न सिर्फ एक बुद्धिमान और दृढ साथी ही खोया है बल्कि वैसा एक मित्र खोया है जिस पर मैं आडे अवसरों पर भरोसा कर सकता था। हिन्दू-मुसलिम एकता के बारे में वे हमेशे ही मेरे रहबर थे। उनकी निर्णय शक्ति, गंभीरता और मनुष्य-प्रकृति का ज्ञान ऐसे थे कि वे बहुत करके सही फैसला ही किया करते थे। ऐसा आदमी कभी मरता नहीं है। अगर्चे कि उनका शरीर अब नहीं रहा, मगर उनकी भावना तो हमारे साथ बराबर रहेगी, और वह अब भी हमें अपना कर्तव्य पूरा करने को बुला रही है। जब तक हम सच्ची हिन्दू-मुसलिम एकता पैदा नहीं कर लेते, उनकी याद बनाये रखने के लिए हमारा बनाया कोई स्मारक पूरा हुआ नहीं कहा जा सकता। परमात्मा ऐसा करें कि जो काम हम उनके जीते रहते नहीं कर सके, वह उनके निधन से करना सीखें।

मगर हकीम जी कोरे स्वप्नद्रष्टा ही नहीं थे। उन्हें विश्वास था कि मेरा स्वप्न एक दिन पूरा होगा ही। जिस तरह तिब्बी कॉलेज के जरिए उनका देशी चिकित्सा का स्वप्न फला, उसी तरह अपना राजनीतिक स्वप्न भी उन्होंने जामिया मिल्लिया के जरिए फलाने की कोशिश की। जब कि जामिया मरने मरने हो रहा था, उस समय हकीम साहेब ने प्रायः अकेले ही उसे अलीगढ से दिल्ली लाने का सारा भार उठाया। मगर जामिया को हटाने से खर्च भी बढा। तब से वे अपने को जामिया की आर्थिक स्थिरता के लिए खास तौर पर जिम्मेवार मानने लगे थे। उसके लिए धन जमा करने में अब से वे ही मुख्य मनुष्य थे, चाहे वे अपने ही पास से देवें या अपने दोस्तों से चन्दे दिलवावें। इस समय जो स्मारक देश तुरत ही बना सकता है, और जिसका बनाया जाना अनिवार्य है, वह है जामिया मिल्लिया की आर्थिक स्थिति को पक्की कर देना। हिन्दू और मुसलमान, दोनों को इसमें एक समान दिलचस्पी है और होनी चाहिए। अब तक देश में चार राष्ट्रीय विद्यापीठ किसी तरह अपने को चलाये जाते हैं। उनमें से जामिया मिल्लिया एक है। दूसरे तीन हैं, विहार, काशी और गुजरात विद्यापीठ। जामिया के स्थापित होते समय हिन्दुओं ने दिल खोल कर सहायता दी थी। इस मुसलिम संस्था में राष्ट्रीय आदर्श जैसा का तैसा बना हुआ है। पाठकों का ध्यान मैं श्रीयुत रामचंद्रन के लेख की ओर आकर्षित करता हूँ जो १२ महीने के अनुभव पर लिखा गया है। इसके आचार्य मौलाना जाकिर हुसैन उदार विचारवाले बडे विद्वान पुरुष हैं और उनकी उदार राष्ट्रीयता में कोई शक हो ही नहीं सकता। मौलाना जाकिर हुसैन के सहायक कई चुने हुए योग्य अध्यापक हैं जिनमें कई एक विदेशों में घूमे हुए और वहां की पदवियां लिये हुए हैं। दिल्ली में ले जाने बाद संस्था की उन्नति ही हुई है और अगर सहायता मिले तो वह बडे सुन्दर परिणाम दिखला सकती है। इसमें कोई शक ही नहीं हो सकता कि जो हिन्दू और मुसलमान हकीम साहेब की स्मृति का आदर करना चाहते हैं, जो असहयोग के रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वास रखते हैं, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य में विश्वास करते हैं, उनका यह कर्त्तव्य है कि उनसे जितनी हो सके, इस संस्था को आर्थिक सहायता देवें। डाक्टर अंसारी, श्रीयुत श्रीनिवास ऐयंगर, श्रीयुत जमनालाल बजाज और पंडित जवाहरलाल नेहरू इस संबंध में एक अपील निकाल चुके हैं। मैं

आचार्य जाकिर हुसैन के जरिये संस्था की असली हालत का पता लगाने की कोशिश कर रहा हूँ और डाक्टर अंसारी से पत्रव्यवहार कर रहा हूँ। ज्यों ही मुझे काफी खबरें मिल जायँगी, मैं उन्हें पाठकों के सामने रख दूँगा। इस बीच में जिसमें वक्त जाया न जाय इसलिए मेरी प्रार्थना है कि लोग सहायता भेजनी शुरू कर देवें। मगर जब तक कि एक समुचित समिति नहीं बन जाती और चन्दे का बिलकुल समुचित प्रबन्ध पक्का नहीं हो लेता, किसी को इस सहायता का धन खर्च करने के लिए नहीं दिया जायगा। मैं आशा करता हूँ कि चन्दा देने में हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे से चढा ऊपरी करने लगेंगे।

(यं० इं०) **मोहनदास करमचंद गांधी**

राजस्थान में जमनालालजी की खादी-यात्रा

पिछले जून में जब श्री जमनालालजी बिजोलिया में खादी-यात्रा कर रहे थे, यह तय पाया था कि दिवाली के बाद वे राजस्थान के अन्य उत्पत्ति बिक्री केन्द्रों की यात्रा करें। तदनुसार गत ८ नवंबर से २५ नवंबर तक आप खादी-कार्य के निमित्त राजपूताना में रहे और १३ नवंबर से १७ नवंबर तक आपने गोविंदगढ, वांसा, मनोहरपुर, अमरसर इन चार उत्पत्ति-केन्द्रों का दौरा किया। इन छः दिनों में कोई ५० मील ऊँट पर यात्रा करनी पडी। ऊँट राजपूताने का राष्ट्रीय वाहन है। इस मरुस्थल के हवाई जहाज की शरण गहे बिना राजपूताना के ग्रामों में यात्रा करना सुगम नहीं। बैलगाडी का इन्तजाम हो सकते हुए भी साहसप्रिय सेठजी ने राष्ट्रीय वाहन को ही पसंद किया।

इन उत्पत्ति केन्द्रों में अब तक दो काम खास तौर पर ध्यान खींचने योग्य हुए हैं — एक तो उत्पत्ति का बढना, जो कि पिछले डेढ साल में ६०० रु. मासिक से ६-७ हजार रुपये मासिक तक पहुँच गई और दूसरे कपडे की किस्म सुधरी तथा खेस, तौलिये, चेक इत्यादि नये नये कपडे बनने लगे। खादी सस्ती भी हुई। इस प्रगति का अच्छा असर सेठ जी के दिल पर हुआ। वे यह तो पहले ही से मानते हैं कि राजपूताना, यदि धन-जन की काफी सुविधा हो तो, खादी-संगठन में सब प्रान्तों से आगे बढ सकता है और यदि वहां के देशी-नरेश इस गृह-उद्योग की ओर सुदृष्टि डालें तो उनकी अनेकांश में बेकार और गरीब प्रजा को बडा लाभ पहुँचे। अब चरखा-संघ के प्रत्यक्ष काम को देख कर आप की यह धारणा और दृढ हो गई। इस तरफ के केन्द्रों में अब तक चरखा-संघ एक तरह से मध्यस्थ का काम कर रहा है। बंजारों से खादी ली जाती है और बाहर भेज दी जाती है। वह कतवारियों और गांववालों के सीधे सम्पर्क में कम आता है। स्वयं सूत खरीदने तथा स्थानिक बिक्री बढाने की ओर उसका ध्यान जा चुका है और इस दिशा में उसने कुछ तरक्की भी की है; परन्तु जब तक जहां का बना कपडा प्रायः वहीं न खप जाय तब तक काम को अधूरा समझना चाहिए।

जून में जब से मैंने सेठजी के साथ बिजोलिया का काम देखा, मेरी बुद्धि कह उठी कि यह है असली काम; और एक हद तक जयपुर के केन्द्रों में बिजोलिया से भी अधिक सुविधायें हैं। सेठजी के दुबारा राजपूताना आने के पहले ही हमलोग जयपुर के केन्द्रों में वस्त्र-स्वावलंबन की पद्धति पर काम शुरू करने का संकल्प कर चुके थे। बिजोलिया में जहां खादी के लिए किसानों की मनोभूमिका प्रायः तैयार मिली, खादी-संबंधी विविध क्रियाओं का ज्ञान तथा सामग्री की कमी थी, जहां जयपुर की ओर ज्ञान और सामग्री प्रायः मौजूद है — मनोभूमिका तैयार करने के लिए कुछ उद्योग करना होगा। यहां खादी अन्न-जल की तरह परिचित वस्तु तो है; पर खुद अपने घर का कता कपडा पहनने का भाव अभी जाग्रत नहीं है। सेठजी तथा अ. भा. चरखा संघ के मंत्री जी ने भी हमारे इस विचार को पुष्ट किया। अतएव सेठजी के समक्ष में यह तय हुआ कि जयपुर के केन्द्रों में उत्पत्ति बिक्री के साथ ही फिलहाल प्रयोग के रूप में वस्त्र-स्वावलंबन का काम शुरू किया जाय। उत्पत्ति जो संघ की मार्फत होती है, उसकी बिक्री जहां तक हो वहीं आस पास अथवा राजपूताने में करने का प्रबल उद्योग हो और स्थानिक पूंजीवाले उत्पत्ति-बिक्री के काम को हाथ में लेने के लिए उत्साहित किये जायँ, जिससे धीरे धीरे संघ के पास सिर्फ वस्त्र-स्वावलंबन का ही काम रह जाय, संघ का धनजन खादी के इसी असली काम में लगे।

सेठ साहब की इस यात्रा के फल-स्वरूप न केवल खादी कार्यकर्ताओं का उत्साह बढा और उनकी कठिनाइयां दूर हुईं; बल्कि केन्द्रों की जनता में भी खादी के प्रति काफी जागृति फैली। और इससे भी बडा काम जो हुआ वह है जयपुर राज्य के अधिकारियों की सहानुभूति का खादीकार्य के प्रति बढना। दो साल पहले जब सेठजी ने इस तरफ यात्रा की थी तब कई देशी-नरेशों और अधिकारियों ने खादीकार्य के प्रति अपनी सहानुभूति दिखाई थी। अब जयपुर-राज्य में इतना प्रत्यक्ष कार्य हो चुकने के बाद यह जरूरी और स्वाभाविक था कि जयपुर के अधिकारियों की हमदर्दी अमली रूप धारण करे। कौन्सिल के अध्यक्ष श्री लारेन्स तथा प्रमुख सदस्यों से मिल कर सेठजी की आशायें बढ तो गईं; आगे जो ईश्वर को मंजूर हो। एक तरह से देखा जाय तो ऐसे रचनात्मक और राजा-प्रजा के लिए सब तरह लाभदायक कामों के लिए देशी-राज्यों में बहुत सुविधायें हो सकती हैं; परन्तु देशी नरेशों और अधिकारियों की कुछ तो कमजोरियों और कुछ अन्य उलझनों के कारण दिल खोल कर वे ऐसे कामों का स्वागत करने में समर्थ नहीं होते हैं। उनकी यह विषम स्थिति कार्यकर्ताओं पर भी कुछ न कुछ बुरा असर डाले बिना नहीं रह सकती। फिर भी, सेठ जी की इस यात्रा ने, जयपुर के खादी कार्य की प्रगति का रास्ता बहुत दूर तक साफ कर दिया है, इसमें सन्देह नहीं।

सेठजी के आगमन के उपलक्ष्य में तथा वस्त्र-स्वावलंबन के कार्यारम्भ की दृष्टि से, अमरसर में एक खादी-प्रदर्शिनी की योजना की गई थी। उसमें जयपुर के खादी-केन्द्रों के बने तरह तरह के बढिया नमूनों के अलावा आन्ध्र, विहार के अच्छे महीन नमूने भी रखे गये थे। जयपुर की रँगाई, छपाई की बढिया कारीगरी भी दिखाई गई थी। १००-१५० वर्षों के पुराने हाथ-कते हाथ-बुने मोटे और बडे लम्बे अर्ज के कपडे भी रखे गये थे। तौलिये, खेस, साफे, धोती-जोडे, गाढे आदि बुनते हुए दिखाये गये थे। कतवारियों का एक दंगल भी रक्खा गया था, जिसमें गांव के महाजनों और ब्राह्मणों के घर की स्त्रियों ने काफी दिलचस्पी ली थी। जिन बंजारों ने नये नमूने तैयार किये तथा जिन कतवारियों ने सूत सुधारने में तरक्की की उन्हें पदक और नकद इनाम १०१) रु. सेठजी के हाथ से प्रदान किया गया। प्रदर्शनी में गांव के प्रमुख महाजनों तथा दूसरे लोगों ने काफी दिलचस्पी ली। काफी संख्या में लोग देखने आये और खादी की तरक्की का बहुत अच्छा असर लेकर गये। स्त्रियां भी अच्छी तादाद में देखने आईं। प्रदर्शिनी का उद्घाटन सेठ जी ने किया। भाषण में आपने प्रदर्शिनी के लाभ बताते हुए वस्त्र स्वावंलन की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। आपके आगमन के उपलक्ष्य में अमरसर के कुछ महाजनों ने खादी भी धारण की तथा आपके भाषण के बाद लोगों ने खादी-काम में सहयोग देने की तैयारी जाहिर की। प्रदर्शिनी

एक खास विशेषता थी। 'खादी' शब्द बहुत बडे अक्षरों में प्रदर्शिनी भवन की दीवार पर लिखा गया था और उनके बीच में खादी के गुण यथा—सरलता, स्वावलम्बन, परोपकार, राष्ट्रीयता, आदि लिखे हुए थे और उसका नाम रक्खा गया था 'खादी का विराट् दर्शन'। इसके द्वारा यह दिखाया गया था कि खादी केवल सीधा, प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ पहुँचानेवाली वस्तु ही नहीं है, बल्कि हमारे गुणों और शक्तियों को बढानेवाली भी है।

खादी-केन्द्रों के साथ ही यहां अछूत पाठशालायें भी हैं, जो खादी-कार्यकर्ताओं की देखरेख में चलती हैं। यहां के बंजारे—बलाई अछूत हैं और आज उन्हींके बच्चे इन पाठशालाओं में पडते हैं। विद्यार्थियों की स्वच्छता, पढाई, भजन, कवायद तथा तेज-तर्रारी पर सेठजी खुश हुए। कुछ विद्यार्थियों ने तो अपने माँबाप से मुरदार मांस खाने पर सत्याग्रह तक किया था। विद्यार्थियों और पाठशालाओं के कारण उनके घरों में मद्यमांस का प्रचार कम हुआ है और सफाई की मात्रा बढ गई है। पुराने संस्कार होने के कारण कुछ गांववालों को हमारे इस कार्य से असन्तोष है, जो कि स्वाभाविक है। शुरू में तो हमारे शिक्षक का नाम गांववालों ने बलाई मास्टर रख दिया था और गांववाले उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। अब तो गांववालों की यह शिकायत है कि हम उनके लडकों को अपनी पाठशालाओं में क्यों नहीं लेते और गांववालों को सफाई आदि क्यों नहीं सिखलाते! ४ केन्द्रों में ३ पाठशालाएँ हैं और उनमें लगभग ६० विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। पाठशालाओं को खुले अभी पूरा एक साल भी नहीं हुआ है — फिर भी विद्यार्थी दूसरे दर्जे की पढाई पढने लग गये हैं।

चारों केन्द्रों में गांववालों की और बुनकरों या बुननेवालों की अलग अलग सभायें हुईं। गांववाले प्रायः सभी जगह खादी को पसंद करते थे। स्थानिक बिक्री में गोविंदगढ का नंबर पहला है। लगभग एक हजार मासिक की उत्पत्ति में प्रायः १५० मासिक स्थानिक बिक्री बिना विशेष प्रयास के हो जाती है।

बांसा में लोगों का झुकाव और प्रेम खादी और खादी—कार्य-कर्ताओं की तरफ विशेष मालूम हुआ। गोविंदगढ रेलवे स्टेशन है और बांसा एक छोटासा देहात कस्बों की बुराइयों से दूर है। यहां १३००) के लगभग मासिक उत्पत्ति होती है। यहां प्रकृति हरियरी सुहावनी और जलवायु भी अच्छा है। यहां के एक-दो बंजारों ने खेस तौलिये, चेक आदि के नमूने तैयार करने में अच्छी तत्परता दिखाई है।

मनोहरपुर में खादी-काम से कुछ कपडे के व्यापारी असन्तुष्ट थे। सेठजी ने उन्हें समझाया कि किस तरह खादी से देश को, गरीबों को लाभ है और उन्हें गरीबों के लाभ के लिए अपने थोडे लाभ को क्यों भूल जाना चाहिए। उन्होंने यह भी बताया कि सच्चे व्यापारी का बचा एक काम में धक्का बैठ जाय तो दूसरे काम से उसे संभाल लेता है। उन्होंने यह भी कहा कि यदि आज आप लोग खादी के रहस्य और तात्पर्य को समझ कर खादी-काम में पड जायँ तो हम अपने कार्यकर्ताओं को नये केन्द्रों में भेज देंगे। कुछ लोगों को उन्होंने उत्साहित भी करना चाहा; पर इसमें एकाएक सफलता तबतक न मिल सकेगी जबतक व्यापारियों को यह यकीन न होगा कि उनका माल बिला दिक्कत बिक जाया करेगा, और खादी-काम को उनसे भी तभी फायदा पहुँचेगा जब वे खादी के आन्दोलन को अच्छी तरह समझ लें।

अमरसर पुराना केन्द्र है और यहां के गाढे अच्छे होते हैं। यहां १७००) मासिक के लगभग उत्पत्ति होती है। मनोहरपुर महीन सूत के लिए इस तरफ विख्यात है। इस तरफ की रुई से १५ अंक से ऊपर का सूत अच्छा और काम लायक नहीं निकलता। मनोहरपुर की उत्पत्ति १३००) मासिक के लगभग है।

गोविंदगढ और अमरसर के कुछ लोगों ने इस बात की शिकायत की कि खादीवाले अछूतों से राहरस्म रखते हैं। उन्हें बताया गया कि बंजारे सब अछूत हैं और उन्हींसे हमारा दिन-रात काम पडता है। फिर भी चरखा संघ का काम तो खादी का प्रचार है और संघ आप सब से इसी काम में सहयोग चाहता है। अछूतपन दूर करने, अछूतों को सुधारने का कार्य पृथक् और स्वतंत्र है और उससे चरखा संघ का संबंध नहीं। कुछ कार्यकर्त्ताओं और आपके बीच यह स्वतंत्र प्रश्न है। हम अछूतपन को बुरा समझते हैं; पर उस प्रश्न को लेकर हम आपके पास नहीं आये हैं।

एक और बहुत महत्वपूर्ण कार्य हुआ — कार्यकर्ताओं की छोटी सी परिषद्। सेठजी का इधर के केन्द्रों में यह पहला ही दौरा था। दो-चार को छोड कर प्रायः सब कार्यकर्ता सेठजी के लिए नये थे। सेठजी उनसे और वे सेठजी से मिलने और एक-दूसरे को समझने के लिए उत्सुक थे। कोई २० कार्यकर्ता एकत्र हो पाये थे। यहां सब से जटिल सवाल देशी राज्यों की परिस्थिति का है। कार्यकर्ताओं का रास्ता बडा विकट है। एक ओर वहां की बुराइयों को देख कर उनका हृदय दुःखी होता है। दूसरी ओर वे मन मसोस कर रह जाते हैं, संघ के नियम के अनुसार कार्यकर्त्ता राजा-प्रजा के झगडों में नहीं पड सकता। अपनी अन्तरात्मा को दबा कर वे एक ओर फूंक फूंक कर चलते हैं और इसलिए, दूसरी ओर, 'कोरे खादीवाले', 'चरखापन्थी', 'इकरंगी' इन बातों को सहते हैं। पर जब वे देखते हैं कि खादी ही 'जनता के स्वराज्य का सब से बडा साधन है और उसके द्वारा देहात की गरीब जनता की कुछ सेवा हो रही है तो वे इन सब बातों को प्रसन्नता से सहने की चेष्टा करते हैं। सेठजी ने देशी राज्यों की इसी विषम अवस्था की गंभीरता को ओर और भी ध्यान खींचा। उन्होंने कहा — देशी राज्यों में तभी खादीकार्य फैलावें जब राज्याधिकारी हमारे साथ सहयोग करते हों अथवा सहानुभूति रखते हों। सन्तोष की बात है कि अब तक तो राज्याधिकारियों की सुदृष्टि ही खादी और खादी वालों पर है। हम आशा करें कि आगे उनकी ओर से अमल प्रोत्साहन भी मिलना संभव है।

परिषद में दूसरा काम हुआ—वस्त्रस्वावलम्बन के काम का ढांचा तैयार करना। फिल हाल ३००) मासिक का बजट एक साल के लिए बनाया गया और तय हुआ कि अमरसर, मनोहरपुर तथा बांसा में इस नयी पद्धति के लिए क्षेत्र तैयार कर के कार्यारंभ किया जाय।

सेठजी ने दो तीन बातें का कर्ताओं के सामने खास तौर पर रक्खीं। एक तो यह कि अछूतों का, कथा का, दवा बांटने या दूसरी सामाजिक सेवाओं का काम इस उद्देश से न किया जाय कि इसका फायदा खादीकाम में उठावेंगे; बल्कि इस भाव से कि जायँ कि वे भी आवश्यक सेवा और सुधार हैं। खादी तो अपने ही पांवों पर खडी रहे। खादी के गुण, लाभ और शक्ति लोगों को अपनी ओर आकर्षित करे। दूसरी बात यह कि खादी काम की हानि होते हुए कार्यकर्ता दूसरे सेवाकार्यों में अधिक समय और शक्ति न लगावें। तीसरे उन्होंने बताया कि महाराष्ट्र और बिहार में कार्यकर्ता यहां से थोडे खर्च में अपना काम चलाते हैं, उन्हींका अनुकरण यहां होना चाहिए। यहां अभी स्थानीय कार्यकर्ताओं के अभाव से दूर दूर से कार्यकर्ता बुलाने पडते हैं इसलिए स्वभावतः वेतन ज्यादह देना पडता है। कार्यकर्ताओं पर सेठजी की बातों का बहुत अच्छा असर हुआ और उन्होंने

(शेष पृष्ठ १६० के अंत में)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, पौष सुदी १३ संवत् १९८४

राष्ट्रीय महासभा

एकता

डाक्टर अंसारी के भाषण की विशेषता थी, एकता के लिए उनकी प्रबल इच्छा । वे जानते थे कि एकता स्थापित करने की उनसे आशा की जाती थी । और अगर यह काम किसी सिर्फ एक आदमी के बूते की बात थी तो, वह आदमी अवश्य डाक्टर अंसारी ही थे । राष्ट्र का दिया हुआ सर्वश्रेष्ठ सम्मान उन्होंने इसलिए स्वीकार किया कि उन्हें राष्ट्र में, इस कार्य में और अपने आपमें विश्वास था । उन्होंने इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए उठा तो अवश्य ही कुछ नहीं रक्खा था । भाग्य ने भी उनका साथ दिया । श्रीयुत श्रीनिवास ऐयंगर ने भी अपनी असम साहसिकता से उन्हें सहायता पहुँचायी । शिमले की आंशिक विफलता के बाद कोई सभापति उनके जैसा काम करने का साहस नहीं कर सकता था । मगर श्रीनिवास ऐयंगर तो पीछे हटनेवाले आदमी नहीं हैं । उन्होंने अली बिरादरान, डाक्टर अंसारी और मौलाना अबुल कलाम आजाद को अपनी ओर कर लिया और अपने स्वाभाविक जोरोशोर से अपना प्रस्ताव स्वीकार करा ही लिया । उन्होंने कोई एक ही हठ नहीं पकड लिया था । जब आखिर उनके प्रस्ताव का बाजों और गोकुशीवाला भाग उन्हें दिखलाया गया, जिसके कारण प्रायः सारी की सारी ही बात बिगडी जा रही थी, और उन्हें उसके बदले में दूसरी बात सुझायी गयी, तो उन्होंने सच्चे मन से, खूब खुलासगी से और उदारता के साथ वह दोष स्वीकार कर लिया और कहा कि इस संशोधन से मूल प्रस्ताव बहुत ही अधिक अच्छा हो जाता है । मुसलमानों ने भी अवसर को सँभाल लिया । शुरू में उन्हें कुछ हिचकिचाहट और झिझक थी ही, मगर अन्त में उन्होंने भी बिना किसी उज्र के इस सुधार को मान लिया । जहां तक हो सके लोगों की साधारण इच्छा को मानने की पूरी नीयत से ही मालवीय जी आये थे । वे यह बात जानते थे, और सब कोई समझते थे कि अगर वे चाहें तो एकता का रास्ता बन्द हो सकता है । मगर उन्होंने ऐसा नहीं किया । बेशक, कई संशोधन जो वे जरूरी समझते थे उन्होंने पेश किये, मगर अगर उनके संशोधन स्वीकृत होते तौभी वे मूल प्रस्ताव का विरोध करनेवाले नहीं थे । शायद पंडित मालवीयजी से पुराना दूसरा कोई देशसेवादी नहीं है । महासभा के प्रति उनकी भक्ति अतुलनीय है । उनका देश-प्रेम ऊँचे से ऊँचे प्रकार का है । मगर अब तक मेरे मुसलमान मित्र बराबर ही साम्प्रदायिकता बनाम राष्ट्रीयता के संबंध में उनके सदुद्देश्यों में मेरे विश्वास की कीमत घटाया करते थे । यद्यपि कहीं हिन्दू-मुसलिम प्रश्न पर मेरा उनका मतैक्य नहीं हुआ है, तो भी मैं उन्हें शक की निगाह से नहीं देख सका हूँ । इसलिए मेरे लिए यह बहुत बडी खुशी की बात थी कि अलीभाइयों ने महासभा के प्रस्ताव पर उनके उस महान् भाषण को स्वीकार किया । जब तक हिन्दू और मुसलमान नेता एक दूसरे की नीयतों, भाषणों, और कामों में अविश्वास करते हैं, तब तक सर्व संपूर्ण प्रस्तावों के स्वीकृत होने पर भी सच्ची एकता नहीं हो सकती । आइए हम आशा करें कि महासभा में जो विश्वास पैदा हुआ, वह कायम रहेगा और एक दूसरे से फैल कर बढता जायगा । मालवीयजी के भाषण की खुशी में मौलाना महम्मदअली ने कहा कि अब मुसलमान लार्ड विन्टरटन से लघु-संख्याओं की हिफाजत की प्रार्थना नहीं करना चाहते क्योंकि यह काम मालवीयजी ज्यादा अच्छी तरह कर सकते हैं । अगर कोई एक हिन्दू अकेले ही मुसलमानों को हिन्दुओं की ओर से ऐसी रक्षा का वचन दे सकता है तो वह केवल मालवीयजी ही हैं । मालवीयजी यह कर दिखा सकें या नहीं मगर मौलाना साहेब और दूसरे मुसलमान और दूसरी लघु-संख्याएँ हमेशे के लिए यह खयाल छोड देवें कि कोई तीसरा हमारी रक्षा करेगा या करने की उससे उमेद रखनी चाहिए । अगर बहु संख्याएँ यह रक्षण न देवें तो उनसे यह जब्रन छीनना इसकी बनिस्बत कहीं अच्छा होगा कि कोई तीसरा बुलाया जाय जो दोनों को कमजोर करे, जलील करे, और राष्ट्र को गुलाम बनाये रक्खे । इसलिए मेरे लिए तो महासभा का सब से बडा काम था हार्दिक भावना का यह परिवर्त्तन ।

जहां तक अधिकांश हिन्दुओं से मतलब है । सिर्फ बाजा और गाय के सवाल से उनका संबंध है । इस प्रस्ताव का मूल रूप तो बिलकुल ही बुरा था । अन्त में विषय-समिति से स्वीकृत होकर वह जिस रूप में निकला, उसके बारे में सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि वह निर्दोष है, और हमारे राष्ट्रीय विकास की इस स्थिति में उसका सबसे अच्छा वही रूप स्वीकृत हो सकता था । कम से कम मैं तो उस पर खुशियां नहीं मना सकता हूँ । मैं तो उसे सिर्फ कामचलाऊ प्रस्ताव के ही रूप में रहने दे सकता हूँ, मगर तौभी उससे बहुत कुछ हो सकता है । अगर महासभा की अपील हिन्दुओं और मुसलमानों के दिलों में घर कर सके और दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे के भावों की उसी प्रकार रक्षा करें जैसे कि वे अपने दावे पेश करते हैं, तो शान्ति तुरत हो सकती है, स्वराज सहज ही मिल सकता है । राष्ट्र के सामने अँगरेजी साम्राज्य की ताकत की जो शेखी बडी उद्धतता से लॉर्ड बरकेनहेड बघार रहे हैं, उसका सबसे अच्छा और गौरवपूर्ण जवाब यही होगा कि हम परस्पर सिरफुडौवल की बेवकूफी समझ कर उसे छोड देवें ।

इसलिए महासभा की अपील की जांच करने से लाभ होगा । मैं जानता हूं कि गायों के बारे में हिन्दुओं के भावों की रक्षा करने के लिए क्या करना होगा । जब तक मुसलमान स्वेच्छापूर्वक खूराक या बकरीद दोनों के ही लिए गोवध बिलकुल ही बंद नहीं कर देते, यह होने को नहीं है । अगर कोई जालिम शस्त्र के बल पर गाय को कसाई के हाथ से बचाये रहे तो इससे हिन्दू धर्म को संतोष नहीं होगा । हिन्दुस्तान में हिन्दू धर्म को इस्लाम इससे अच्छा उपहार नहीं दे सकता कि वह गोवध इस तरह स्वेच्छापूर्वक बंद कर देवे । और मैं इस्लाम से इतना अधिक परिचित हूँ कि मैं यह दावा करता हूँ कि इस्लाम गोबध को अनिवार्य नहीं बताता मगर अपने अनुयायियों को इसके लिए लाचार जरूर करता है कि वे अपने पडोसियों के भावों का जहां तक संभव होवे, सम्मान करें । मेरे लिए मस्जिदों के आगे बाजे का सवाल गोकुशी के बराबर महत्वपूर्ण नहीं है । मगर इसका भी महत्व इतना बढ गया है कि उसकी उपेक्षा करनी बेवकूफी होगी । यह तो मुसलमानों के कहने की बात है कि उनके भावों की रक्षा के लिए क्या करना चाहिए । और अगर मस्जिदों के आगे बाजे बजाना कतई बंद करने से ही मुसलमानों के भावों की रक्षा हो सकेगी तो बिना एक क्षण भी सोचे हुए ऐसा करना हिन्दुओं का कर्त्तव्य है । अगर हमें हार्दिक एकता चाहिए तो हम में से हर एक को यथेष्ट स्वार्थ त्याग करने को तैयार रहना चाहिए ।

अगर यह अत्यन्त इष्ट फल होना है तो डाक्टर अंसारी को शान्तिदल भेजने होंगे जो इस संदेश का प्रचार करें और जनता से ही इसे स्वीकार करावें। क्या हमारे पास इस संदेश का प्रचार करने के लिए काफी ईमान्दार, मिहनती और इच्छुक प्रचारक हैं? आइए, हम आशा करें कि हैं।

निरंकुशता

गोकि मैं विषय-समिति के एक भी अधिवेशन में शामिल नहीं हो सका था, मगर यह तो मैंने जरूर ही देखा कि निरंकुशता और अनियमित बातें और काम तो वहां की आम बातें हो रही थीं। बहुत ही महत्वपूर्ण प्रस्ताव विषय-समिति के आगे सहसा पेश किये जाते और वह महत्वपूर्ण समिति भी बिना कुछ विचार या चर्चा किये सहज ही उन्हें स्वीकार कर लेती थी। स्वतंत्रता वाला प्रस्ताव पिछले साल नामंजूर हुआ था, मगर इस साल वह स्वीकार कर लिया गया और उसका विरोध भी प्रायः नहीं ही सा हुआ। मैं जानता हूँ कि इसकी शब्दावलि में कोई दोष नहीं है मगर मेरी नम्र सम्मति में वह उतावली में सोचा और बिना विचारे स्वीकार किया गया था। मैं इस प्रस्ताव पर शीघ्र ही एक स्वतंत्र लेख में विचार करने की उमेद रखता हूँ।

ब्रिटिश या अँगरेजी माल के बहिष्कार का प्रस्ताव भी उसी तरह लापर्वाई से स्वीकार किया गया था। महासभा ऐसे प्रस्ताव जो हर साल स्वीकार करके जिनके बारे में वह जानती है कि उन्हें सफल नहीं कर सकती, अपनी भद उडाती है। ऐसे प्रस्ताव स्वीकार करने से हमारी नामर्दी ही जाहिर होती है, हम पर आलोचक हँसते और हमारे विरोधी हमें हकीर नजर से देखते हैं।

मगर मेरे मतलब का अनर्थ न होवे। अगर महासभा चाहे तो ब्रिटिश माल का बहिष्कार करने का उसे संपूर्ण हक है। मगर भारतवर्ष में सबसे अधिक प्रतिनिधिक संस्था होने के कारण, उसे ऐसी धमकियां देकर जिन्हें वह पूरी नहीं कर सकती, अपनी भद उडाने का कोई अधिकार नहीं है। महासभा के स्वीकार किये हुए प्रस्तावों में से मैंने दो बतौर नमूने के चुन लिये हैं।

महासभा का विधान इस खयाल से बनाया गया था कि जिसमें वह अखिल भारतवर्ष में सब से अधिक प्रतिनिधिक तथा प्रामाणिक संस्था बने और करोडों सर्व साधारण लोग उसकी आज्ञाएँ स्वेच्छा-पूर्वक मानें जिससे वह अपने आप ही, बल्कि अज्ञात गति से, हमें गुलाम बनानेवाली, झूठी, नकली और प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं के नामवाली काउन्सिलों और ऐसेम्बलियों और दूसरी सरकारी संस्थाओं की जगह ले लेवे। मगर तब तक तो महासभा वह अबाध शक्ति नहीं बन सकती है, जो वह पहले थी, या जिसके होने की हम इससे आशा रखते हैं, जब तक इसके प्रस्ताव सर्व साधारण के माने नहीं होते, प्रस्ताव सहज स्वीकृत तो होते हैं मगर जब सर्व साधारण की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से उनका कोई संबंध नहीं होता, और अगर उसके सभ्य नियम का पालन नहीं करते, शिष्टता भूल जाते हैं और साधारण ईमानदारी का भी बर्त्ताव नहीं करते। अगर अ० भा० राष्ट्रीय महासभा की महासमिति के सदस्यों को इसका सिर्फ ज्ञान हो जाय, वे यह मानने लगें कि वे राष्ट्र के सेवक हैं तो फिर सेवा के उन्हें वे मौके और अधिकार प्राप्त हों जो संसार के किसी देश की राष्ट्रीय सभा के सदस्यों को हैं। फिलहाल तो हम स्कूली लडकों के वादविवाद सभा की बराबरी कर रहे हैं।

कार्यसमिति तो राष्ट्रीय मंत्रिमंडल है। उसे महासभा और महासमिति के प्रस्तावों के अनुसार कार्य कराना है। इसलिए महासभा के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सहायक प्रस्तावों को महासमिति में लाने का भार उस पर है। महासमिति में अगर कोई दूसरा सदस्य अचानक कोई प्रस्ताव कर बैठे तो उसकी बड़ी सावधानी से परीक्षा करनी चाहिए, और अगर कार्यसमिति उसका विरोध करे तो उस प्रस्ताव के स्वीकृत होने की संभावना बहुत ही कम होनी चाहिए। चाहे कार्य-समिति का हो, या किसी दूसरे सदस्य का मगर हरएक प्रस्ताव के साथ काम की योजना तो होनी ही चाहिए। इसलिए अगर कोई दूसरा सदस्य प्रस्ताव करे तो उसे इसके लिए तैयार होना चाहिए कि प्रस्ताव के स्वीकृत होने पर वह बतला सके कि काम की कौन सी योजना होगी। अगर कोई यह प्रस्ताव करें कि हिन्दुस्तान के गांव गांव में बडी उम्रवालों के लिए निःशुल्क रात्रि पाठशालाएँ खोली जाय तो, महासभा के लिए यह प्रस्ताव सभी तरह से पसन्द करने लायक है। मगर अगर प्रस्तावक के पास काम की कोई निश्चित और व्यावहारिक योजना न होवे तो वह प्रस्ताव अस्वीकार करना महासभा के लिए उचित होगा, अस्वीकार करना ही पडेगा। इसलिए अगर महासभा की प्रतिष्ठा और उपयोगिता बनी रहनी है, तो महासमिति के सदस्यों को अपना मनोभाव बदलना पडेगा, अपनी बहुत बडी जिम्मेवारी समझनी पडेगी।

हाथी और चींटी

मेरी नम्र सम्मति में मद्रास की स्वागत समिति ने यह बडी भारी भूल की कि उस नाम मात्र के अखिल भारत प्रदर्शन को अपनी आड, अपनी छत्रच्छाया में करने दिया। उस प्रदर्शन में अगर कोई खूबी रही भी हो तो सरकारी छत्रच्छाया और स्वीकृति ने उसे नष्ट ही किया होगा, उसे रौनक नहीं बख्शी। बहुत दिनों से महासभा ने सरकारी कृपा और कोप दोनों की पर्वा छोड दी है अगर और पहले नहीं तो कम से कम १९१८ से महासभा जिन आदर्शों के लिए काम कर रही है, इस प्रदर्शन में प्रायः वे सब के सब भुला दिये गये थे। अखिल भारत प्रदर्शन में था क्या? दूकानों में कई एक तो विलायती कम्पनियों को अपने माल सजाने के लिए दी गयी थीं — एक मिली थी कल कांटों की दूकान को, कुछ मकानों में विलायती सूत के कपडे चमक रहे थे तो कुछ विलायती घडियों वाले सजाये हुए थे। वहां प्रदर्शन में स्वदेशी सामान तो बहुत कम था, मगर विलायती और अंगरेजी माल की भरमार थी और वह भी कहां? उस महासभा की छत्रच्छाया में जो स्वदेशी धर्म सिखलाता है और जिसके कार्यक्रम में अंगरेजी माल का बहिष्कार भी शामिल है। उसमें शायद ही कोई चीज होवे जिसमें गांववालों का मन लगे या उनसे वे कुछ सीख सकें। इस प्रदर्शन में भारतवर्ष की ग्रामीण सभ्यता की नहीं परन्तु पश्चिम की लूटनेवाली नागरिक सभ्यता की झलक थी। यह महासभा के भावों को इनकार करना था, यह पिछले छह सालों के खादी और स्वदेशी प्रदर्शनों के तो बिलकुल बरक्स था। कपडे का बाजार तो मानों खादी की मखौल उडाने के लिए ही बनाया गया था जो कि महासभा अब भी सूत मताधिकार को मानती है और अखिल भारत चर्खा संघ के कार्य का समर्थन करती है। सभी विज्ञप्तियां अंगरेजी में छपी थीं, मानों उसे सिर्फ अंगरेज ही देखने आनेवाले थे। खादी का महत्व कम करनेवाली एक विज्ञप्ति नीचे दी जाती है:

> "गरीबों को खिलाओ और सशक्तों के लिए
> चर्खे से तो भरनी का सूत कातो,
> ताने का सूत मिलों से लेना,
> बस, इसी मेल से उद्धार होगा।"

अगर इस विज्ञापन के लेखक की नीयत ही सोच समझ कर हानि पहुँचाने की नहीं है तो उसने खादी के विकास का अपना अज्ञान ही प्रकाशित किया है। इन पृष्ठों में हाथ के सूत का बाना और मिल के सूत का ताना बनाने की भूल कितनी ही बार दिखलायी जा चुकी है। यहां इतना ही कहना काफी होगा कि

अगर चर्खे के सूत का केवल बाना ही भर बनता तो चर्खा कब का न कुदरती मौत मर गया होता। अनुभव से पता चलता है कि यह जोडी हर तरह से बुरी ही है।

अब यह दूसरी विज्ञप्ति अगर उससे बढ चढ कर नहीं तो कम बुरी भी नहीं है:

"जुलाहे से ताना भी हाथ कते सूत का बनवाना
मानों उसे एक छुरी लेकर लडाई के जहाज से लडने को भेजना है।
उसके काम का अच्छा से अच्छा तरीका छुडवाना तो
मानो उसका अंगूठा ही काट डालना है।"

इस विज्ञप्ति से तो खादी के विरुद्ध जहरीला पक्षपात और बुनाई कला तथा जुलाहों की स्थिति का अज्ञान ही टपकता है। लेखक यह बात भूल जाता है कि दुनिया में एक दिन वह भी था, जब कि सारे संसार में ताना और बाना, दोनों के लिए ही हाथ कता सूत इस्तैमाल करने में जुलाहों को उल्लास होता था और उन्होंने उस समय जो कला दिखलायी थी, उससे अब तक आगे कोई नहीं बढ सका है। इस सुंदर अ० भा० प्रदर्शन के बाहर ही खादी-प्रदर्शन में जाकर लेखक अपनी भूल तुरत ही सुधार सकते थे। वहां वे देखते कि जुलाहे उसी आराम और आफियत से चर्खे के सूत के ताने, बाने का अत्यंत सुंदर कपडा बुन रहे थे, जो आफियत उन्हें मिल के सूत से मिलती। यह साबित करना मुश्किल नहीं है कि जहां मिल का सूत अन्त में, और वह भी बहुत देर के बाद नहीं, शीघ्र ही जुलाहे को मार डालेगा, यह चर्खे का सूत उसे जरूर ही जिलावेगा, और अभी कितनों को कसाई का काम करने या पायखाना साफ करने के काम से बचा भी चुका है। हर एक दश कतवैये के मानी हैं कि एक बुननेवाला जरूर ही दिन भर बुनने में लगा रहता है, एक धुनिये को रोज सारे दिन करने को काम मिल जाता है,— धोबियों, दर्जियों, बढई लुहारों, रंगरेजों, छपरों वगैरह को अधिक काम जो मिलता है, उसका तो जिक्र ही नहीं।

इस विदेशी और अस्वदेशी भावनावाले प्रदर्शन का महासभा के अधीन होना ही, ऊपर बतलायी निरंकुशता का एक प्रत्यक्ष और जबर्दस्त प्रमाण है। मेरा यह खयाल नहीं है कि किसी महासभा-वादी ने यह बला सोच समझ अपने सिर ली। मैं इसे तो बहुत ही निन्द्य और गर्हित कहे बिना रह नहीं सकता और इसके कारण हैं, विचार की कमी, लापर्वाई, और निरंकुशता।

बेशक खादीप्रदर्शन की चींटी का इस हाथीसाल के बाहर फेंक दिया जाना बडा ही अच्छा हुआ था। अफवाह तो है कि मद्रास सरकार को अ. भा. प्रदर्शन के भीतर खादीप्रदर्शन का किया जाना मंजूर नहीं था। मुझे तो इससे जरूर ही सुविधा हुई। क्योंकि इस प्रदर्शन की असलियत का कुछ पता पा लेने बाद मेरे लिए खादीप्रदर्शन खोलने के लिए भी उस प्रदर्शन में जाना जो कि मुख्यतः विदेशी ही था, हमारी राष्ट्रीय जिल्लत का परिचायक था, बहुत मुश्किल लगता। दूसरी ओर खादीप्रदर्शन चींटी के समान होते हुए भी स्वदेशी कला का नमूना था। यह तो खादी और उससे हो सकनेवाले कामों को प्रत्यक्ष दिखलाने के लिए था। इसके पास एक भारतीय कोमल कला प्रदर्शन भी था जो डाक्टर जेम्स एच. कजिन्स के परिश्रम का फल है। बेशक इस नामधारी अ. भा. प्रदर्शन में कुछ भारतीय या सोलहो आने भारतीय साहस का फल भी तो था ही मगर वह तो सिर्फ असावधान लोगों को फँसा लेने, और विलायती माल के लिए जिसकी वहां पर मुख्यता थी, एक ढाल मात्र था।

भविष्य की स्वागत-समितियां चेत जायँ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

स्वामी श्रद्धानन्द*

२

कुछ स्मृतियां

ये स्मृतियां नियमित रूप से नहीं छप सकेंगी। इसका खेद है, मगर फुरसत की कमी के कारण मैं लाचार हूँ और उतावली में लिखना भी नहीं चाहता क्योंकि उतावली में ... धुँधली हो जाती है और मैं चाहता हूँ कि मैं स्वामी जी का ... और हूबहू चित्र उतारूँ। ये स्मृतियां लगातार लेख नहीं हैं और ... कारण एक लेख को समझने के लिए पीछे का लेख पढना ... जरूरी भी नहीं है।

मुझसे यह सवाल कई सज्जनों ने पत्र लिख कर पूछा है कि क्या स्वामीजी की पूरी जीवनी लिखना चाहता हूँ। अगर ... सकता तो मुझे जरूर खुशी होती मगर खेद है कि उसके ... मेरे पास मसाला नहीं है। इन लेखों से यह जाहिर होगा ... स्वामी जी के प्रति मेरा कितना प्रेम, और उनके बडप्पन के ... मेरे मन में कितनी श्रद्धा थी। मगर मैं उनके साथ बहुत कम ... बिता सका हूँ। हां हमारा पत्रव्यवहार खूब चलता था मगर ... उनके पत्र बचा नहीं रखे हैं। पर तौभी मुझे आशा है कि ... जीवनी के भविष्य-लेखक को मेरे इन लेखों से सहायता ... मिलेगी। और अगर उनके प्रेमी कोई सज्जन मेरे इन लेखों ... अनुवाद देशी भाषाओं में करें तो मुझे बडा संतोष होगा ... जो लोग उनसे सबसे अधिक प्रेम करते थे, और इस लिए ... बारे में कुछ जानने को जो सबसे अधिक इच्छुक होंगे उन्हें ... पढने की जरूरत ही कभी नहीं जान पडी थी। इस लिए ... लिखना तो बेकार ही है कि इन लेखों को उद्धृत करने या इनका ... से उल्था करने के लिए अनुमति मांगने की कोई जरूरत नहीं ...

बीस साल से भी पहले की वह स्मृति, जब कि मैंने ... मुंशीराम को उनकी प्रौढता की शोभा में देखा था, फिर ... ताजा करने में भी सुख है। उस समय उनसे मिलने पर ... ओजस्विता और ज्ञान से तुरत खिंचे बिना कोई नहीं रह सकता ... मेरे साथ तो उनकी पहली मुलाकात में ही वह एक बात ... जो मैं पीछे जब कभी उनसे फिर मिलता, वह फिर फिर ... पडती थी। जैसा कि मैं कह चुका हूँ वह था, पहले ही दर्शन ... बल्कि वह उससे भी कुछ अधिक चीज थी। आज अभी चन्द्रमा ... है, इसके ऊपर सिर्फ एक तारा चमकता है। ब्राह्ममुहूर्त्त की ... में जहां तक होगा, मैं इसका विश्लेषण करूँगा। उस ... और गंभीर प्रातःकाल के तारे से मुझे उनका कुछ चित्र ... है, मगर पूरा चित्र नहीं मिलता। कम से कम इसने उनको ... मेरे सामने ला खडा कर दिया है। इसलिए मैं अभी ... बातें लिख लूँ क्योंकि अभी अन्तर का दर्पण साफ है, ... सब कुछ स्पष्ट दिखलायी पडेगा। सबसे पहले तो ... भव्य पुरुषत्व था जो प्रौढता के साथ साथ आत्म-संयम ... इतना गंभीर और पवित्र बन गया था। स्वामी दयानन्द ... धार्मिक जीवन बिताने के पहले उन्होंने यह आन्तरिक शक्ति ... की थी। वे उन दिनों की बात मुझसे इस सच्चाई ... से कहते थे कि बदले में उनके प्रति मेरा प्रेम और ... बढ जाता था। वे भगवान् के उन संतों में से थे जो ... छिपाना या अपनी जीवन-कथा परमात्मा के आगे ... साथियों के आगे न कहना बर्दाश्त ही नहीं कर सकते। ... तरह नम्रता से और अपने बडप्पन को भूल कर मेरे ...

* इस माला का पहला लेख ६ अक्तूबर १९२७ के हि... में पा था।

करते थे, उनसे मुझे उस सच्चे संत का पता चला। वे बहुत कडी आँच के तपाये हुए कुन्दन थे।

आध्यात्मिक जीवन में सब से मुश्किल बात है, समय आने पर अपनी कमजोरियों को इस तरह कबूल करना। साधारण आदमी के लिए ऐसी बातों में पाषण्ड से काम लेना बहुत ही सहज है। यह तो एक प्रकार का रोग है जो आत्मा को दूषित कर देता है। मगर महात्मा मुंशीराम तो, पाषण्ड चाहे जिस रूप में हो, उससे घृणा ही करते थे। इसलिए उन्होंने मुझसे सभी बातें बिना किसी भेदभाव के कही थीं। हमारे बीच कोई दुराव था ही नहीं।

मगर मेरे लिखते ही लिखते वह प्रातःकाल का तारा नीचे आसमान में छुपा जा रहा है। दुनिया की धूल और धक्का अभी अभी शुरू होने को है। अफसोस, आखिर यह संस्मरण आधा ही लिख कर छोड देना पडेगा क्योंकि आखिर आज का काम अभी से सिर पर सवार होना शुरू हो गया है।

(यं० इं०) **सी. एफ. एन्ड्रयूज**

खादी प्रदर्शिनी मद्रास

मुझे याद आता है कि बहुत बचपन में मैंने बंबई और प्रयाग में क्रमशः १९०४ और १९१० में महासभा के साथ होनेवाले प्रदर्शन देखे थे। मुझे यह भी याद है कि प्रदर्शन देख कर घर लौटने पर मैं बाइसिकल और मोटर के तमाशों और दर्शकों के मन बहलाव के लिए बनाये भुल भुलैया को याद कर चकित हो जाता था। इस साल मद्रास में महासभा के अधीन जो अखिल भारत शिल्प प्रदर्शिनी हुई है शायद उसकी भी अधिकांश लोगों पर यही छाप पडी होगी। उसमें स्वदेशी सामान तो बहुत ही कम था, भारतवर्ष के कुटीर उद्योगों के नमूने तो बहुत ही कम थे, पर अधिकांश जगह विलायती इंजिनियरिंग कम्पनियों ने घेर रक्खी थी। गांधीजी ने इस प्रदर्शन को हाथी और खादी प्रदर्शन को चींटी कहा था। अपनी अपनी जगह पर चींटी और हाथी दोनों ही निर्दोष हैं मगर यहां हाथी तो चींटी को कुचल देने के लिए ही रक्खा हुआ जान पडता था। एक अमरीकन मित्र ने कहा कि एक तरफ तो धर्मराज हैं और दूसरी ओर कुबेर महाराज। एक ओर धनियों का मन लुभाने की कोशिश थी जिसमें वे कल कांटे का सामान खरीद कर विदेशी सौदागरों की जेबें भरें तो दूसरी ओर गरीबों को हिन्दुस्तान का एक मात्र जीवन-दाता गृह-उद्योग सिखलाने और गरीबों को सहायता देने के लिए धनियों को ललचाने की कोशिश थी।

खादी प्रदर्शिनी तो बंगलोर की प्रदर्शिनी जैसी ही थी मगर उससे बडे पैमाने पर। बंगलोर प्रदर्शन का वर्णन इन पृष्ठों में पहले आ चुका है। इस प्रदर्शन में बंगलोर प्रदर्शन की रानी वीरम्मा तो नहीं दिखलायी पडती थीं मगर कर्णाटक की अंधी कत्तिन दिन भर, दर्शकों की ओर से आंखें मूद कर कातती ही रहती थी। बंगलोर की बनिस्बत लोगों के ज्ञान और प्रचार के लिए यहां अधिक चित्र और नकशे टंगे थे, जिनकी ओर ध्यान देना हरएक विद्यार्थी और आलोचक के लिए जरूरी था और कपास ओटने से लेकर कपडा बुनने तक की सभी क्रियाओं का प्रदर्शन भी ज्यादह अच्छा था। मिस मिठुबेन पेटिट इस बार केवल अपने अत्यन्त सुन्दर कपडे, और रोजाना के काम की और दूसरी चीजें ही नहीं लायी थीं, बल्कि अपने स्कूल से दो बहिनों को भी लायी थीं जो इन वस्तुओं पर सुईकारी का काम करके दिखलातीं थीं।

हमेशे जैसा इस बार भी तेज कताई, महीन कताई, तकली कताई और धुनाई की बाजियां थीं, और यह खुशी की बात है कि बंगलोर से भी ज्यादह सुन्दर काम यहां देखने में आये। कुछ इनाम लेनेवाले इस बार नये भी थे। इन क्रियाओं में दिलचस्पी लेनेवालों के लिए नीचे के अंक रोचक होंगे।

तेज कातनेवालों में श्रीयुत केशव गांधी का काम पहले के सभी कामों को मात कर गया। और उन्होंने दो घन्टे में सैकडे ८७ समानता और ७४ मजबूतीवाला २१ अंक का १४०० गज सूत कात कर पहला इनाम लिया। दूसरा इनाम मिला श्रीयुत देवधर को १४½ अंक का १४२६ गज सूत कातने पर।

महीन सूत कातने में पहला इनाम लिया श्रीमती मीनाक्षी सुन्दरम ने १५० अंक का ३१९ गज सूत दो घन्टे में कात कर। दूसरा श्रीयुत चोक्कलिंगम को १४५ अंक का २१४ गज सूत कातने पर मिला। तेज कातने में सबसे आगे बढनेवाले केशव गांधी को तीसरा इनाम ११७ अंक का ३४६ गज सूत कातने पर मिला। इससे अधिक अच्छे अंक किसी वार्षिक प्रदर्शिनी की प्रतियोगिता में अब तक देखने में नहीं आये थे।

तकली चलानेवालों में श्रीयुत राजगोपाल गणपति शास्त्री का फिर भी ४५ अंक का १६० गज सूत कातने में बोलबाला रहा। दूसरे और तीसरे आनेवालों ने क्रमशः ३२ अंक का १४० और ४० अंक का १२३ गज सूत काता था। धुनाई में श्रीयुत कान्ति पारेख ने एक घंटे में २६ तोले कात कर पहले के अपने ही कामों को मात कर डाला। मगर श्रीयुत पंडित और गोविन्दभाई पटेल भी २४ और २३ तोले कात कात कर उनके पीछे ही पीछे लगे हुए थे।

स्वभावतः ही दूकानों की संख्या बंगलोर प्रदर्शन से कहीं अधिक थी और एक एक दूकान की अधिक से अधिक बिक्री १,५००) रुपये रोजाना से भी अधिक थी। यह बात तो खद्दर की लोकप्रियता की बढती का और खादी बनानेवालों की सभी तरह के शौकों और ख्वाहिशों को पूरा कर सकने की ताकत का सुबूत है। सबसे सुन्दर दूकान मिस पेटिट की थी, मगर सबसे आकर्षक तो पंजाबवाली ही कही जायगी जो अपने सुन्दर नकशोंवाली और रंगीन दरियों और टेबलक्लोथ के कारण सबको आकर्षित करती थी। इससे कुछ कम रोचक दूकान एक कुर्सीवाले की नहीं थी जिसने सुन्दर महीन खादी की गद्दियां वगैरह लगा कर सुन्दर सुन्दर कुर्सियां वगैरह सजायी थीं और सारी दूकान को देख कर यह खयाल होता था कि खादी से ही किस प्रकार ठाटबाट से कमरा सजाया जा सकता है।

यह तो देखने की ही बात थी कि किस प्रकार खादी की किस्मों की ओर दर्शक आकर्षित होते थे और न सिर्फ बर्मा और सिलोनवालों की ही बल्कि यूरोपियों की भी कलादृष्टि और शौक के लायक कीमती और सन्तोषजनक कपडे मिलते थे। पंडित मालवीय जी ने काम की लाख भीड रहने पर भी प्रदर्शन में आने का समय बचा ही लिया था। वे एक एक दूकान और प्रदर्शन के एक एक विभाग में गये। वहां काम देख कर उन्हें अत्यन्त खुशी हुई और उन्होंने कहा, 'देखिए, जगह जगह पर ऐसे प्रदर्शन करने चाहिए। खादी के बारे में जो कुछ लिखा गया है, वे सब पर्चे हजारों, लाखों की संख्या में बांटने चाहिए और हर एक विद्या-केन्द्र में खादीप्रदर्शन करना चाहिए।' उस अंधी कत्तिन को चर्खा चलाते देख कर मालवीय जी का दिल भर आया। उन्होंने कहा था, 'ओह, अगर मैं इस अंधी बुढिया माता को देश देश अपने साथ लिए जा सकता तो जो लोग खादी के साथ सहानुभूति नहीं रखते उन्हें कहता फिरता कि देखिए, यही खादी है, और खादी से यही काम होता है।' प्रदर्शन खोलते समय गांधीजी ने भी हर एक महासभावादी को उडिस्सा के नर कंकालों की याद दिला कर यही बात कही थी। इन दोनों ही अपीलों में गांधीजी और पंडित जी के जले दिलों की करुण और वेदना भरी हुई थी, जो कि मानों अपने देशबन्धुओं से कहते थे कि, 'देखो अगर मेरे जले दिल से भी अधिक किसीका दिल जला हो तो ढूँढो, देखो, मुझसे अधिक दुःखी आज कौन है ?'

(यं० इं०) **महादेव देसाई**

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ३३

अक्षर-शिक्षा

पिछले प्रकरण में हम कुछ कुछ देख आये हैं कि टॉलस्टॉय आश्रम में शारीरिक शिक्षा और उसके साथ साथ हाथ कारीगरी सिखलाने का काम कैसे आरंभ हुआ। जोकि यह काम ऐसे तो नहीं ही किया जा सका जिसमें मुझे संतोष होवे, परन्तु तौभी उसमें न्यूनाधिक सफलता मिली थी। पर अक्षरज्ञान देना तो कठिन लगा। मेरे पास उसके लिए यथेष्ट सामग्री नहीं थी। जितना मैं चाहता था खुद मुझे उतना समय नहीं था, और न उतना ढंग ही आता था। सारे दिन शारीरिक काम करते हुए मैं थक जाता और जब जरा आराम लेने की इच्छा होती, तभी वर्ग लेना होता था। इसलिए मैं तरोताजा होने के बदले बलात्कार से जागृत रह सकता था। सबेरे का समय खेती और घर के काम में जाता था। इसलिए दोपहर को खाने के बाद तुरत ही पाठशाला चलती थी। इसके सिवाय दूसरा कोई समय अनुकूल नहीं था।

अक्षर-ज्ञान के लिए अधिक से अधिक तीन घंटे का समय रक्खा था। तौभी वर्ग में हिन्दी, तामिल, गुजराती और उर्दू सिखलायी जाती थी। हरएक लडके को उसकी मातृभाषा के द्वारा ही शिक्षा देने का हमारा आग्रह था। अंगरेजी भी सबको सिखलायी ही जाती थी। इनके अलावा गुजराती हिन्दुओं को संस्कृत का कुछ परिचय कराया जाता था; और इतिहास, भूगोल, और अंक-गणित सबको सिखलाने का पाठ्य क्रम था। तामिल और उर्दू शिक्षा मेरे हाथ में थी।

मैं तामिल उतनी ही जानता था जितनी कि स्टीमर में और रेल में सीख सका था। उसमें भी पोप-लिखित 'तामिल स्वयं-शिक्षक' से मैं आगे नहीं बढ सका था। उर्दू लिपि का ज्ञान तो उतना ही था जितनी कि स्टीमर में सीखी थी; और खास अरबी, फारसी के शब्दों से भी तो उतना ही परिचय था जितना कि मुसलमान मित्रों की संगत से सीख सका था। संस्कृत भी बस वही जो हाईस्कूल में पढी थी। गुजराती भी स्कूलवाली ही।

इतनी पूँजी से मुझे काम लेना था। और इसमें मेरे मददगार मुझसे भी कम जाननेवाले थे। पर मेरा मददगार साबित हुए, देश की भाषाओं पर मेरा प्रेम, अपनी शिक्षण-शक्ति में मेरी श्रद्धा, विद्यार्थियों का अज्ञान और उससे भी बढ कर उनकी उदारता।

तामिल विद्यार्थी दक्षिण अफ्रिका में ही पैदा हुए थे। इसलिए वे बहुत ही कम तामिल जानते थे। लिपि तो उन्हें जरा भी नहीं आती थी। इसलिए उनको लिपि और व्याकरण के मूलतत्व सिखलाने थे। यह सहज था। विद्यार्थी जानते थे कि तामिल बातचीत में वे मुझे सहज ही हरा देंगे और जो सिर्फ तामिल ही जाननेवाले कोई मुझसे मिलने आते तो वे लडके ही मेरे दुभाषिये बनते। मेरी गाडी चल निकली क्योंकि मैंने विद्यार्थियों से अपना अज्ञान छिपाने का कभी प्रयत्न ही नहीं किया। सभी बातों में वे मुझे वैसा ही जान गये जैसा कि मैं था। इसलिए अक्षर-ज्ञान की बहुत बडी कमी होते हुए भी मैंने उनका प्रेम या आदर कभी न खोया।

मुसलमान बालकों को उर्दू सिखलाने का काम ज्यादा सहज था। वे लिपि जानते थे। मेरा काम सिर्फ उनके अक्षर सुधारना, और पढने का शौक बढाना भर ही था।

मुख्यतः ये सभी के सभी बालक निरक्षर और स्कूल में न पढे हुए थे। पढाते पढाते मैंने देखा कि उनको कम ही पढाना पडता है। इतना ही काम बहुत था कि उनका आलस्य दूर किया जाय, उन्हें आप पढने लायक बनाया जाय, उनके अभ्यास की चौ[...] रक्खी जाय। इतने से ही वे संतुष्ट थे। इसलिए जुदा जुदा उम्र[...] जुदा जुदा विषयों के विद्यार्थियों को एक ही कोठरी में बैठा[...] काम लिया जा सकता था।

पाठ्य पुस्तकों का जो शोर जब तब सुनायी पडा करता[...] मुझे उसकी कभी जरूरत ही नहीं मालूम पडी। जो पुस्तकें थी[...] उनका भी बहुत उपयोग करने की याद मुझे नहीं है। हरएक ल[...] को बहुत सी पुस्तकें देने की जरूरत मैंने नहीं देखी थी। [...] लगा है कि विद्यार्थी की पाठ्य-पुस्तक शिक्षक ही होता[...] यह भी मुझे थोडा ही याद है कि शिक्षकों ने भी पुस्तकों[...] पढाया हो। जिन्होंने जो कुछ अपने मुंह से पढाया था, उस[...] याद आज भी रह गयी है। बालक आंख से जो ग्रहण करते[...] उससे कहीं अधिक और कम परिश्रम से कान के जरिए ग्रहण[...] सकते हैं। मुझे यह याद नहीं है कि लडकों को मैं एक[...] किताब पूरी पूरी पढा गया होऊं।

पर बहुत सी पुस्तकों में से मैं जो पचा गया था, व[...] अपनी भाषा में कह गया और मैं मानता हूं कि वह उन्हें [...] भी याद होगा। पढाया हुआ याद रखने में उन्हें क्लेश ह[...] था और मैं जो सुनाता, उसे वे उसी क्षण फिर दुहरा कर सुना[...] थे। सुनने में जब तक खुद मैं थकावट या किसी दूसरे का[...] से मंद या नीरस नहीं होता तब तक वे दिलचस्पी लेते और [...] थे। वे सवाल भी उठाते थे। उनका जवाब देने में मुझे उन[...] ग्रहणशक्ति का माप मिल जाता था।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गां[धी]

(पृष्ठ १५५ का शेषांश)

अनुभव किया कि सेठजी के अनुभव और नसीहतों से हमने, [...] कार्यकर्ता की हैसियत से, कितनी ही अच्छी काम की बातें समझ [ली]

बंजारे और सब बातों से तो सन्तुष्ट ही नहीं खुश[...] थे; पर एक बात की शिकायत सी उन्हें थी। शुरूआत[...] जब सूत अच्छा न आता था तब बहुत समय में वे थोडा क[...] बुन पाते थे और इसलिए उन्हें मजूरी अधिक दी गई थी; [...] सूत अच्छा मिलने पर वे, थोडे समय में, ज्यादह काम करने [...] हैं, इसलिए मजूरी घटाने की चेष्टा कार्यकर्ताओं की तरफ से [...] स्वाभाविक है। क्योंकि कार्यकर्ता इस बात के लिए भी उत्सुक[...] कि खादी और सस्ती हो। अतएव सेठ साहब ने बंजारों को ब[...] कि किस तरह इसमें तुम्हारी कोई हानि नहीं है और आज [...] मजूरी कम भी पडती हो तो उसे लेकर ज्यादह और अच्छा [...] करने की शक्ति बढा लेने पर आगे ज्यादह लाभ कैसे हो सकता [...] साथ ही उन्होंने कार्यकर्ताओं को भी संकेत किया कि खादी [...] करने के लिए जहां हम बंजारों को कसते हैं तहां खुद अपने[...] भी कसना चाहिए—और कम खर्च में अपना काम चलाकर [...] सस्ती करने में सहायक होना चाहिए।

आशा है, सेठजी की इस खादी-यात्रा का मीठा फल इस प्रान्त[...] अवश्य मिलेगा और यदि सेठजी साल में कुल मिला कर ३ महीने [...] इस तरफ रहा करें तो यहां खादी के साथ ही अन्य काम भी [...] तरक्की कर लें। कार्यकर्ताओं ने सेठजी से आग्रहपूर्वक इस बात [...] अनुरोध किया है।

कार्यकर्ताओं ने कई तरह के काम करने का नया भार अपने [...] पर लिया है—वे यदि सेवा और तपस्या दोनों का आदर्श अपने सा[...] रक्खे रहेंगे, और साधु-जीवन व्यतीत करने का दृढ संकल्प कर लेंगे [...] दुनिया की कोई कठिनाई उनकी सफलता में बाधक नहीं हो सक[ती]

हरिभाऊ उपाध्याय

स्वतंत्रता

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६] [अंक २१

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, पौष सुदि ११, संवत् १९८३ गुरुवार, १३ जनवरी १९२७ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

गांधी जी का भाषण

स्वामी श्रद्धानन्द के स्वर्गवास के विषय में महासभा के सामने निम्न लिखित आशय का प्रस्ताव पेश किया गया था:

"स्वामी श्रद्धानन्द जी का नामर्दी और दगाबाजी से खून किया गया है, इसके लिए महासभा अपना तीव्र तिरस्कार प्रकट करती है और स्वदेश तथा स्वधर्म की सेवा में अपना जीवन और शक्ति अर्पण करने वाले, अन्त्यजों और वैसे ही पतितों और निर्बलों की सहायता को निडर होकर दौडने वाले इस वीर और महानुभाव की करुणा जनक मृत्यु से उसकी सम्मति में देश की न पूरी होने वाली हानि हुई है।"

यह प्रस्ताव पेश करने का भार पहले मौलाना मुहम्मद अली पर दिया गया था किन्तु अन्त में सभापति महोदय ने गांधी जी से वह प्रस्ताव पेश करने को कहा। गांधी जी को लंबा भाषण न करना था, किन्तु अनायास ही, अनिच्छा से,— अथवा ईश्वरेच्छा से कहिए — उन्हें लम्बा भाषण करना पडा। यों भी कहा जा सकता है कि उस भाषण से सारी सभा के हृदय का तार मानों झनझना रहा था। भाषण में के बहुत से उद्गार तो महासमिति के भाषण वाले ही थे। किन्तु एक दो बातें ऐसी थीं जो उस भाषण में अप्रकट थीं, पर इस भाषण में उन पर विस्तार से विवेचन किया गया। महासमिति में उन्होंने कहा था,—"इस खून के लिए शोक करना भला नहीं मालूम होता। ऐसा खून तो हर एक वीर पुरुष चाहता है।" इस वाक्य को जरा सुधार कर के उन्होंने कहा, "वीर पुरुष को जब ऐसी मृत्यु मिलती है, तो वह उसे मित्र के समान गले लगाता है। किन्तु इससे कोई यह नहीं चाहता कि उसका कोई खून करे। कोई भी अपने साथ अन्याय करे, गुनहगार बने, कोई भी मनुष्य दुष्कृत्य करे, ऐसी इच्छा ही करना अनुचित है।" आगे चल कर स्वामी जी की सेवा और महत्ता के विषय में वे बोले:

"स्वामी जी वीरों के अग्रणी थे। अपनी वीरता से उन्होंने भारत को आश्चर्य-चकित कर दिया था। इसका साक्षी मैं हूं कि देश के लिए अपना शरीर कुर्बान करने की उन्होंने प्रतिज्ञा ली थी। वे अनाथ-बंधु थे। अछूतों के लिए उन्होंने जितना किया उससे अधिक हिन्दुस्तान में दूसरे किसी ने नहीं किया है। उनकी दूसरी सेवाओं का वर्णन मैं यहां करना नहीं चाहता। स्वामी जी के ऐसे वीर, देशभक्त, ईश्वर के अनन्यभक्त और सेवक का खून देश के लिए जैसा लाभदायक है, वैसा ही, उसे दुःख होना भी स्वाभाविक है क्योंकि हम लोग अपूर्ण मनुष्य हैं।"

खून के विषय में गांधीजी ने कहा:

"खून भी कैसी हालत में हुआ? खूनी धर्म-चर्चा करने जाता है। बहादुर धर्मसिंह ने उसे दाखिल करने से इनकार किया क्योंकि डाक्टर अंसारी ने स्वामी जी को बीमारी में बहुत आदमियों से मिलना मना किया था। परन्तु ईश्वर की आज्ञा के आगे किसकी चले? स्वामीजी ने उसे अन्दर आने देने को कहा। धर्मसिंह ने भाई अबदुल रशीद को बुलाया। मैं समझ बूझ कर ही 'भाई' रशीद कहता हूं क्योंकि अगर हम सच्चे हिन्दू हों तो समझ सकेंगे कि इस आदमी को मैं भाई क्यों कहता हूं। स्वामी जी ने भाई अबदुल रशीद को भीतर बुलाया क्योंकि ईश्वर स्वामीजी की और हिन्दू धर्म की महत्ता दिखलाना चाहता था। स्वामीजी ने कमजोरी के कारण उस समय बात करने में असमर्थता बतलायी और फिर कभी बातें करने का वचन दिया। अबदुल रशीद ने पीने को पानी माँगा और स्वामीजी ने धर्मसिंह को पानी लाने को कहा। धर्मसिंह जब तक पानी लावें, इसने उनकी छाती पर वार कर ही दिया। धर्मसिंह ने उसे पकडा। उसे भी गोली लगी। वह अस्पताल में गया। बाहर से एक आदमी ने आकर खूनी को पकडा।

"हिन्दुस्तान में ऐसा न होना चाहिए क्योंकि हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही अपने २ धर्मों का अभिमान है। मैंने कुरान पढी है — और मुसलमानों को कह सकता हूँ, और उन्हें दुःख न लगे तो हिन्दुओं को भी, कि — और उसी आदर से जिससे मैं रोज गीता पढता हूँ। इतने आदर से कुरान पढ कर कहता हूँ कि — यों खून करने की आज्ञा कुरान में कहीं नहीं

है। हमारे यहां दो जातियां हैं। बदनसीबी से वे एक दूसरे को जहरीली नजरों से देखती हैं। एक दूसरे को दुश्मन मानती हैं। इसी कारण यह हत्या हो सकी है। मुसलमान मानते हैं कि स्वामी जी, लाला जी और मालवीय जी मुसलमानों के दुश्मन हैं। उधर हिन्दू समझते हैं कि सर अबदुर्रहीम तथा दूसरे मुसलमान हिन्दुओं के शत्रु हैं। दोनों के खयाल निहायत खोटे हैं। स्वामी जी इस्लाम के दुश्मन न थे, मालवीय जी और लाला जी नहीं हैं। लाला जी और मालवीय जी को अपने विचार प्रकट करने का पूरा अधिकार है और उनके विचार जिन्हें गलत मालूम हों उन लोगों को उन्हें गाली देने का अधिकार नहीं है। हिन्दुस्तान के नम्र सेवक की हैसियत से मेरी यह सम्मति है। जब कभी हम अखबार देखें भाग्य से ही ऐसा कोई मुसलमान अखबार मिलता हो जिसमें इन देश सेवकों को गाली न दी गयी हो। उन्होंने क्या गुनाह किया है? वे जिस रीति से काम करना चाहते हैं, उसमें हम भले ही शामिल न हों किन्तु मेरा मत है कि मालवीय जी अपनी सेवाओं से भारत-भूषण बने हुए हैं। (तालियां बजीं।) तालियों से आप देश-सेवा नहीं कर सकते। मैं आज जो कुछ बोल रहा हूँ, वह ईश्वर को सामने रख कर। मेरे हृदय के भीतर आग जल रही है। उसकी दो चार चिनगारियां ही मैं तुम्हें दे रहा हूँ जिसमें हम उनकी आत्म-बलि से पूरा लाभ उठावें और उनके पवित्र रुधिर से अपना दिल शुद्ध करें। सच्ची दृष्टि से मैं आज वही शुद्धि चाहता हूँ जो श्रद्धानन्द जी चाहते थे। मालवीय जी को मैंने भारत-भूषण कहा है किन्तु लालाजी भी जो मानते हैं उसे ही कहनेवाले हैं। उनकी भी देश-सेवा कुछ कम नहीं है। सर अबदुर्रहीम मानते हैं कि मुसलमानों को बंगाल में अधिक नौकरियां मिलनी चाहिए। उनकी राय हमें भले ही न रुचे मगर इसके लिए हम क्या उन्हें गाली देंगे। मुहम्मद अली कहते हैं कि गांधी के लिए मुझे मान है। आदर है मगर जो मुसलमान कुरान शरीफ पर ईमान लाता है, उसका ईमान गांधी के ईमान से कहीं अच्छा है। इस पर हम बुरा क्यों मानें? इससे मैं कहता हूँ कि हमें ऐसा वातावरण उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए जिसमें एक दूसरे को गाली देना रुके, गंदी बात फैलाने वाले, गंदी बात लिखनेवाले अखबारों का बहिष्कार हो। मैं खुद एक अखबार निकालनेवाला हूँ मगर तौभी कहता हूँ कि अगर आज हिन्दुस्तान के सैकड़े ९० अखबार भी बंद हो जायँ तो देश की कुछ घटी न होगी। आज अगर कोई मुसलमान अखबार किसी हिन्दू की तारीफ करे तो उसे मुसलमान त्याग देंगे और मुसलमानों को गाली न देने वाले अखबार को हिन्दू छोड़ देंगे। स्वामी जी आत्म-बलिदान से दूसरा ही धर्म बतला गये हैं। उन्होंने एक बार मुझसे पूछा था कि आर्य समाज उदार कैसे नहीं? आप क्या जानते हैं कि महर्षि दयानन्द ने अपने को जहर देनेवाले के साथ क्या किया था? मैंने जवाब दिया कि मैं महर्षि की क्षमा-शीलता को जानता हूँ। मगर स्वामी जी तो महर्षि के भक्त थे। उन्होंने सारी कथा कह सुनायी। महर्षि क्षमाशील थे क्योंकि उनके आगे युधिष्ठिर का उज्ज्वल उदाहरण था। वे उपनिषदों के भक्त थे। श्रद्धानन्द जी भी वैसे ही क्षमाशील थे। शुद्धि पर बातें करते समय उन्होंने एक बार कहा था कि 'मैं मुसलमानों को हिन्दुओं का दुश्मन नहीं मानता।' 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्त का उपदेश करने वाले और गीता के भक्त श्रद्धानन्द जी किसी को दुश्मन क्यों कर मान सकते थे? उन्होंने कहा 'मैं मुसलमान को भाई मानता हूँ, मित्र मानता हूँ किन्तु हिन्दू को भी भाई मानता हूँ और उसकी सेवा करना चाहता हूँ।'

मेरा धर्म मुझे बतलाता है कि कोई मुसलमान मेरे मुँह थूके तौभी मैं उसे भाई और मित्र समझूं। मैं बतलाता हूँ इन तीनों में से कोई मुसलमानों का दुश्मन नहीं है। वैसे सर अबदुर्रहीम या मियां फजली हुसैन हिन्दुओं के शत्रु नहीं। मियां फजली हुसैन ने मुझ से कहा था कि मैं कांग्रेसवाला और मुझे हिन्दुओं से मुहब्बत है, मगर, इससे मुसल[मानों] की सेवा क्यों न करूँ? वे कहते हैं कि आधी नौकरियां [मुसल]मानों को मिलनी चाहिए। इस पर तुम कहो कि एक भी [न] देनी चाहिए। मगर इस पर से हिन्दुओं का दुश्मन उन्हें माना जायगा? हम अपनी कल्पना शक्ति का दुरुपयोग [कर] काल्पनिक दुश्मन बना लेते हैं। मैं फिर फिर कहता हूँ कि अबदुर्रहीम, मियां फजली हुसैन, जिन्ना, अली भाई हिन्दुओं [के] शत्रु नहीं और मालवीय जी तथा लाला जी मुसलमानों [के] दुश्मन नहीं हैं।

किन्तु आज इस विषय की चर्चा करने का यह प्रसंग [नहीं] है। श्रद्धानन्द जी के स्वर्ग गमन से हमें जो पाठ लेना [है] मैं उसकी बात करता हूँ। आज दिल्ली में तूफान हो र[हा है] और हम प्रस्ताव कर रहे हैं। इस प्रस्ताव को स्वीकार [करने] को जो उठे उन्हें मैं कहता हूँ कि तुम मेरी कही बात [मान] सको तो मैं स्वराज का वचन देने लगूंगा। भले ही [लोग] कहें कि एक वर्ष में स्वराज देने की बातें करने वाला गांधी [पागल] है मगर मैं पागल नहीं हूं। १९२० में मैंने जो बात [कही थी उस] पर मैं अब भी कायम हूं मगर मेरा साथ देने वाले अपनी [बात] पर कायम न रहे। मैं सब को कहता हूं कि हम स[ब] ईश्वर की सन्तान हैं। हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान उसे [भिन्न] नामों से जानते हैं किन्तु ईश्वर एक है। शंकराचार्य ने [अद्वैत] की बात की, रामानुज ने द्वैत का पाठ पढ़ाया। पैगम्बर ने एक ही अल्लाह की बात की किन्तु सब का तात्पर्य एक है। हम सब भाई हैं, एक दूसरे के दुश्मन नहीं। अगर [हम] अपने दिल को साफ कर सकें तो जिसने जीते जी स्वदेश [की] सेवा की और अपनी मृत्यु से स्वदेश और स्वधर्म की सेवा [की] उनके रुधिर से हम अपने पापों को धोवें और एक दूसरे [से] झगड़ें भी तो शान्ति से झगड़ें। मुसलमान भी आज इकरार [करें] कि श्रद्धानन्द जी में बुराई न थी, वे मैले दिल के न थे, उनके वे दुश्मन न थे।

रशीद को मैंने भाई क्यों कहा है, यह तुम अब समझ [गये] होओगे। मैं तो उसे गुनहगार भी नहीं मानता। गुनहगार [मैं] हूं, लाला जी हैं, मालवीय जी हैं, अली भाई हैं। गीता [ने] कहा है, 'समत्वं योग उच्यते।' इन्सान इन्सान के बीच [भेद] न करो। ब्राह्मण और चाण्डाल, हाथी और गाय के बीच [भेद] न रक्खो। इससे मैंने कहा कि रशीद मेरा भाई है और गुनहगार भी नहीं है।

आज श्रद्धानन्द जी के लिए आंसू बहाने का समय [नहीं] है। आज तो क्षत्रियता बताने का अवसर है। क्षत्रियता का खास गुण भले ही होवे मगर ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र [भी] दिखा सकते हैं। खास कर आज का 'स्वराज-युग' हम [सब के] लिए क्षत्रियता का युग है। इस लिए रोने की बात छोड़ [दो] और श्रद्धानन्द जी के बलिदान से, रशीद के किये [से] जो पाठ मिले उसे हृदय में धरें। ईश्वर सब का भला करे।

(नवजीवन)

महादेव दे[साई]

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय ६

सेवा-वृत्ति

मेरा धंधा तो ठीक चलता था। परन्तु मुझे सन्तोष न होता था। जीवन और अधिक सादा होना चाहिए, कुछ शारीरिक सेवा-कार्य होना चाहिए। ऐसे विचार मन में उठा ही करते थे। इसी बीच एक कोढी मेरे घर आ पहुँचा। उसे खाना देकर निकाल बाहर करने को जी न चाहा। उसे एक कोठरी में रक्खा। उसके घाव साफ किये और उसकी सेवा की। किन्तु ऐसा तो अधिक दिनों तक नहीं चल सकता था। उसे हमेशे के लिए घर में रख लेने का सुभीता न था, मुझे हिम्मत भी न थी। इस लिए उसे मैंने गिरमिटियों के लिए चलने वाले सरकारी अस्पताल में ला छोडा।

किन्तु चित्त को शान्ति न मिली। रोगी-सेवा का ऐसा कुछ काम हमेशे करूं तो क्या ही अच्छा हो? डाक्टर बूथ सेन्ट एडन्स मिशन के प्रधान थे। उनके पास जो कोई जाय वे उसे हमेशे दवा देते थे। पारसी रुस्तमजी की दानशीलता से डा. बूथ के अधीन एक बहुत छोटा अस्पताल खुला। इस अस्पताल में नर्स का काम करने की मुझे प्रबल इच्छा हुई। उसमें दवा देने का एक से दो घन्टे का काम था। यह काम माथे लेने और उतना समय अपने काम से बचाने का मैंने निश्चय किया। मेरी वकालत का बहुत काम तो औफिस में बैठे सलाह देने और दस्तावेज बनाने या फरीकों में मेल करा देने का ही रहता था। थोडे मुकदमे भी मजिस्ट्रेट की अदालत में होते। उनमें कितने ही बेतकरारी होते। ऐसे मुकदमे जब हों तो उन्हें चला लेने का भार मि० खां ने अपने सिर लिया। वे मेरे बाद आये थे और उस समय मेरे साथ ही रहते थे। मैं उस छोटे अस्पताल में काम करने लगा। रोज़ सबेरे वहां जाना पडता। आते जाते और अस्पताल में काम करते, सब मिला कर हमेशे लगभग दो घन्टे जाते।

इस काम से मुझे कुछ शान्ति मिली। मेरा काम था रोगी का हाल समझ कर डाक्टर को समझाना और डाक्टर की बतलायी दवा तैयार कर उसे देना। इस काम से दुःखी हिन्दुस्तानियों के साथ मेरा गाढा सम्बन्ध बँधा। उनमें अधिक संख्या तो तामिल, तेलुगु या उत्तर भारत के गिरमिटियों की होती थी।

यह अनुभव मेरे लिए भविष्य में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। बोअर लडाई के समय घायलों की शुश्रूषा के काम में और दूसरे रोगियों की सेवा करने में वह खूब काम आया।

बालकों के पालन का सवाल तो मेरे सामने था ही। द० अफ्रीका में मुझे दो और लडके हुए। इस प्रश्न को हल करने में कि उन्हें कैसे पालपोस कर बडा किया जाय, इस काम से मुझे मदद मिली। मेरे स्वतंत्र मिजाज के कारण मुझे बहुत कठिनाई पड जाया करती थी और अब भी पडा करती है। वैज्ञानिक रीति से सौरी (प्रसूति-गृह) तैयार करने का हम दोनों ने निश्चय किया था। उसमें डाक्टर और नर्स का भी वैसा प्रबन्ध तो था ही मगर तौभी कदाचित् डाक्टर उस घडी न मिलें और दाई भाग जाय तो हमारा क्या हाल बने? दाई तो हिन्दुस्तानी ही रखनी थी। सीखी हुई दाई हिन्दुस्तान में ही मुश्किल से मिलती है तो फिर द० अफ्रीका की बात ही क्या? इतने में बाल-परिचर्या का अभ्यास कर लिया। डाक्टर त्रिभुवनदास की 'माने सिखामन' नाम की पुस्तक पढी। ऐसा कहा जा सकता है कि अनुभव के अनुसार उसमें सुधार संशोधन कर के, अखीरी दो बालकों को मैंने खुद पाला। दाई की मदद दोनों बार थोडे ही समय के लिए ली — दो महीने से अधिक तो कभी नहीं — और वह भी खास कर पत्नी की सेवा की खातिर। बालकों को नहलाने धुलाने का काम शुरू में मैं ही करता था।

अखीरी लडके के जन्म के समय मेरी पूरी पूरी जाँच हो गयी। प्रसूति की वेदना एक ब एक शुरू हो गयी। डाक्टर घर पर नहीं था। दाई को बुलाने में ही कुछ समय बीत गया। अगर वह पास होती तौभी उससे प्रसव कराने का काम नहीं हो सकता था। प्रसव के समय का सारा काम मुझे ही करना पडा। सौभाग्य से इस विषय को 'माने सिखामन' नाम की किताब में मैंने सूक्ष्मरीति से पढ लिया था। इससे मुझे घबराहट न हुई।

मैंने देखा कि अपने बालकों को ठीक तरह से पालना पोसना हो तो मा और बाप दोनों को ही बालकों के पालन पोषण वगैरह का सामान्यज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। मैंने अपने इस विषय के ज्ञान का लाभ पग पग पर देखा है। मेरे लडके आज जो सामान्य तन्दुरुस्ती का सुख भोग रहे हैं, अगर मैंने उस विषय में सामान्यज्ञान प्राप्त कर उसका अमल न किया होता तो उन्हें वह तन्दुरुस्ती न मिलती। हम लोगों में यह वहम है कि पहले पाँच वर्षों तक लडके को सिखलाने लायक कोई बात ही नहीं होती। सच्ची बात तो यह है कि पहले पांच वर्षों में बालक जो कुछ सीख लेता है, वह पीछे से कभी सीखता ही नहीं। मैं यह अनुभव से कह सकता हूं कि बालक की शिक्षा मा के पेट में से ही शुरू होती है। गर्भाधान काल की माता-पिता की शारीरिक और वैसी ही मानसिक स्थिति का असर बालक पर पडता है। गर्भकाल में माता की प्रकृति, माता के आहार विहार के भले बुरे फल को ले कर बालक पैदा होता है। जन्म होने के बाद से वह मातापिता का अनुकरण करता जाता है और आप अपंगु होने के कारण उसके विकास का आधार माता-पिता पर रहता है।

जो समझदार दम्पति यह विचार करेंगे वे तो दम्पति-संग को विषयवासना को सन्तुष्ट करने का साधन कभी नहीं बनावेंगे किन्तु उन्हें जब सन्तति की इच्छा होगी तभी वे संग करेंगे। मुझे तो ऐसा मानने में कि रति-सुख कोई स्वतंत्र सुख है घोर अज्ञान ही मालूम पडता है। जनन क्रिया के ऊपर संसार के अस्तित्व का आधार है। संसार ईश्वर की लीला का स्थान है, उसकी महिमा का प्रतिबिम्ब है। ऐसा समझनेवाला मनुष्य कि उस संसार का सुव्यवस्थित वृद्धि के लिए रति-क्रिया बनायी गयी है, विषयवासना को महाप्रयत्न कर के भी रोकेगा, और रतिभोग के फल स्वरूप जो सन्तति होवे उसकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रक्षा करने के लिए, जो कुछ सीखना जरूरी हो, वह सीखेगा और उससे अपनी जाति को लाभ देगा।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

'हिन्दी नवजीवन' की पुरानी फाइलें

पहले और दूसरे साल की अप्राप्य हैं। तीसरे, चौथे और पांचवें साल की बहुत थोडी प्रतियां बची हैं। एक साल की जिल्द बँधी पूरी फाइल का दाम डाक खर्च के अलावा सात रुपये है।

व्यवस्थापक, 'हिन्दी नवजीवन'

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, पौष सुदि ११, संवत् १९८३

स्वतंत्रता

हर साल महासभा में एक प्रस्ताव पेश किया जाता है जिससे महासभा के ध्येय को इस प्रकार बदलने का प्रयत्न किया जाता है जिसमें स्वराज का लक्षण पूर्ण स्वतंत्रता माना जाय और एक के बाद दूसरे हर साल महासभा सौभाग्य से उस प्रस्ताव को बहुत बड़े मताधिक्य से नामंजूर करती जाती है। इस प्रस्ताव की नामंजूरी ही महासभा की बुद्धिमानी की निशानी है। इस प्रस्ताव को पेश करने से कुछ भावुक महासभा-वादियों की अधीरता प्रकट होती है जिन्हें ब्रिटिश सरकार के इरादों में न कुछ विश्वास है और न जो यही मानते हैं कि वह सरकार कभी हिन्दुस्तान के साथ न्याय करेगी। आज की स्थिति में यह अधीरता क्षम्य है। पूर्ण स्वतंत्रता के समर्थक भूल जाते हैं कि इससे उनका मनुष्य-स्वभाव में और इस लिए अपने आपमें भी अविश्वास प्रकट होता है। वे ऐसा क्यों मानते हैं कि ब्रिटिश नेताओं के दिल बदलेंगे ही नहीं? क्या यह कहना अधिक सही और गौरवजनक न होगा कि हमी कमजोर हैं, इस लिए उनके दिल नहीं बदलते? प्रकृति निर्बलता से घृणा करती है। हम ब्रिटिश लोगों से और सारे संसार से न्याय माँगते हैं जो हमारा हक है, न कि दया की भीख। न्याय भी मिलेगा मगर तभी जब हम मजबूत होकर और अपना बल समझकर उसके लायक बन जावेंगे।

मुझे निश्चय है कि पूर्ण स्वतंत्रता का सब बड़ा से समर्थक भी यह नहीं कहना चाहता कि वह किसी भी शर्त पर किसी भी प्रकार का सम्बन्ध ब्रिटिश लोगों के साथ नहीं रक्खेगा। अगर वह प्रस्ताव के समर्थन में ऐसा कहता भी है तौभी मेरे पूछने पर उसने कबूल किया कि उसका मतलब यह है कि अंगरेज लोग समानता का व्यवहार करने पर राजी ही नहीं होंगे। किसी भी शर्त पर ब्रिटिश लोगों से सम्पर्क न रखने से तो यह बिलकुल जुदा बात है।

सचमुच ही स्वराज शब्द में सभी कुछ शामिल है। इसे कोई भी दूसरा अर्थ देना इसके अर्थ को संकुचित कर देना है। आज सौभाग्य से जो सीमा-रहित है उसीको सीमा में बाँध देना है। स्वराज के अर्थ को राष्ट्र की चेतनता के साथ ही साथ बढ़ने देना चाहिए। आज हम शायद 'आन्तरिक स्वराज' से ही सन्तुष्ट हो जाएँ। भविष्य की सन्तानों को सम्भवतः इसीसे सन्तोष न होगा। वे इससे और कुछ अच्छी चीज चाहेंगी। जो कुछ आज हम पासकें वा उससे भी अच्छी जिसकी हम कल्पना भी कर सकें वह सब कुछ लक्षणरहित स्वराज में सम्मिलित है। स्वराज का अर्थ यह है कि 'आन्तरिक स्वराज' के अन्दर भी हम स्वेच्छापूर्वक स्वतंत्रता प्रकाशित कर सकें। जब तक हममें वह ताकत नहीं आ जाती हमें स्वराज भी नहीं मिला है। स्वराज का कमसे कम इतना अर्थ तो जरूर है। द० अफ्रीका इस स्थिति पर अब पहुँच गया है। यह स्वतंत्र राष्ट्रों का स्वेच्छापूर्वक सहयोग है। इंग्लैण्ड और दूसरे डोमीनियनों का सहयोग समानता की शर्त पर पारस्परिक लाभ के लिए है। हिन्दुस्तान अन्त में कौन सा स्वराज लेगा, इसका निश्चय तो केवल एक वही कर सकता है। महासभा के मौजूदा ध्येय में ब्रिटिश साम्राज्य या राष्ट्र-संघ के भीतर स्वराज का विकास भी संभव है। मैं ने जो स्वराज का अर्थ समझा है वह यह है, अगर संभव हो तो ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर मगर जरूरत पड़े तो उसके बाहर स्वराज। मैं ऐसा सोचने का साहस करता हूं कि इसमें सुधार करना असंभव है। राष्ट्रीय स्वाभिमान के यह सर्वथा अनुकूल है और राष्ट्र की अधिक से अधिक प्रगति के लिए इसमें समाई है।

आखिर, असल लक्षण का निश्चय तो हमारे अपने कामों से ही होगा, अगर हम उपायों पर ही ध्यान रक्खें तो स्वराज अपने आप ही मिल जायगा। इस लिए हमारे सभी प्रयत्न एक ऐसी वस्तु की परिभाषा के बदले जिसकी परिभाषा बन ही नहीं सकती, उसकी प्राप्ति के उपाय की खोज में लगने चाहिए।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

महासभा

(२)

मेरा खयाल है कि सभापति की यह सलाह कि "द० अफ्रीका में महासभा की बैठक के तौर पर एकबार कुछ किया जाय" केवल इच्छा भर ही है। इस विषय पर जितना ध्यान दिया गया है उससे अधिक देने की जरूरत थी। मैं मानता हूं कि कई कामों में लगे रहने के कारण व्यस्त सभापति से मि. ऐण्ड्रयूज की अमूल्य सेवाओं का उल्लेख न करने की अनजानी भूल हो गयी है।

ऐशिया-संघ का जिक्र भी कुछ सतरों में आ गया है। मि. ऐयंगर को इसका खेद है कि "सभी ऐशियाई देशों से सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्ध की सम्भावना की हम लोगों ने बहुत दिनों तक उपेक्षा की है।" मैं यह सुझाने का साहस करता हूं कि हमारे महाकवि सांस्कृतिक संबंध के प्रश्न पर काफी ध्यान दे रहे हैं और बड़ी बड़ी व्यापारिक संस्थाएँ व्यापारिक संबंध पर।

सभापति का अदम्य आशावाद साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता वाले भाग में देखने लायक है। वे कहते हैं, "मुझे विश्वास है कि जहां कहीं ईमान्दारी से खूब प्रचार किया जाय, और लोगों को समझाने का प्रयत्न किया जाय, वहां इससे साम्प्रदायिकता की भूतें जाहिर होते ही वह गायब हो जायगी। सौभाग्य से हिन्दुस्तानियों में पक्षपात और सन्देह का रोग बहुत जड़ पकड़े नहीं है और साम्प्रदायिकता तो उसी का फल है।

'सहन-शीलता की प्रार्थना' शीर्षक के नीचे, नीचे लिखे अर्थगंभीर वाक्य मिलते हैं, "अगर्चे हर एक सम्प्रदाय को अपने प्रचार करने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए किन्तु सब पूछिए तो अब वैसा धर्म-प्रचार न तो फायदेमन्द न जरूरी ही रह गया है। हर जाति के अच्छे से अच्छे और पवित्र पुरुषों के जीवन धर्म-प्रचार की अपेक्षा कहीं अच्छे और पुरअसर प्रचारक हैं। मगर जहां कहीं धर्म-प्रचार किया जाय, वह प्रकट, शान्त और खुला हुआ होना चाहिए और कुछ खास स्त्री पुरुषों को अपनी ओर मिला लेने की कोशिश न होनी चाहिए। हम देखें कि संख्या-वृद्धि से किसी भी महान् और दीर्घ-काल-स्थायी धर्म की सत्यता, सुन्दरता या आध्यात्मिकता में वृद्धि नहीं होती। अशोक के स्तम्भलेखों से यह उतारा देकर वे समाप्त करते हैं, 'जो कोई दूसरों के धर्म की निन्दा करता हुआ अपने धर्म में मोह से उसी की तारीफ करता है और इससे अपने धर्म का गौरव बढ़ने की आशा रखता है, सच पूछो तो ऐसा कर के वह अपने धर्म पर सब से बड़ी चोट करता है।"

सभापति जी जांति गत प्रतिनिधित्व के विरुद्ध स्पष्ट मालूम पडते हैं । उनका कहना है, "वह बार बार का निन्दित शब्द, जातिगत प्रतिनिधित्व गलत अर्थ बतलाने वाला है क्योंकि हर एक सम्प्रदाय का सभी सार्वजनिक और दैशिक प्रश्नों में और उनके हल में बराबर ही स्वार्थ है ।......हम समझ लेवें कि दो जातियों के बीच न्याय करना वैसा ही है जैसा दो आदमियों में। बतौर हिफाजत के केवल एक ऐसा नियम काफी है कि, किसी भी जाति के अधिक लोग सभी पद दखल न कर पावें ।"

उनका विचार है कि, "राजनीति में धर्म को घुसा देने और विशेष कर न बदलने वाले धर्म को घुसा देने को प्राथमिक या मध्यकाल का और पोप पूजा से उत्पन्न विचार मान कर, धर्म और राजनीति दोनों के लिए समान रूप से हानिकारक समझ विरोध करना चाहिए ।" मगर वे यह भी जोड देते हैं, "मगर मैं नीतिमत्ता या उस आध्यात्मिक गुण की बात नहीं करता जो सभी धर्मों में समान रूप से है और जिससे राजनीति और राजनीतिक संस्थाओं का सुधार होता है और वे मीठी और लाभदायक बनती हैं ।"

उनकी सलाह है, "राजनीतिक झगडों के बीच हम यह न भूल जावें कि सभी धर्मों की शक्ति ईश्वर से ही मिलती है और प्रह्लाद ऐसे धर्मवीरों में उनकी जड होती है। मनुष्य की आत्मा के अक्षय धर्म को न तो हिरण्यकशिपु की प्रतारणाएँ, न आग में जलाना, न कोई भी सजाएँ नष्ट कर सकी हैं । न तो हिन्दू न इसलाम धर्म को ही मौजूदा या किसी भी भविष्य सरकार के सहारे की जरूरत है । दोनों ही स्वरज से बहुत ही ऊंचे पर हैं । उनके साथ स्वराज का मुकाबिला किया ही नहीं जा सकता । हम सब किसी के अन्तःकरण में श्रद्धा का जो बीज है, इस जगत् का जो ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान है और इस लोक में जिससे सान्त्वना और विवेक ज्ञान के लिए और परलोक में मुक्ति के लिए जिसका सहारा हम ढूंढते हैं, उसे न स्वराज न विदेशी राज्य, न प्रतिनिधि सत्ता न धन सत्ता कोई भी नष्ट कर सकती है ।"

भाषण के अखीरी तीन पृष्ठ एकता की जोरदार अपील में लगाये गये हैं, "हिन्दुस्तान में दो ही दल हो सकते हैं । सरकारी दल और उसके समर्थकों का दल जो स्वराज का विरोध करते हैं और दूसरा वह दल जो स्पष्ट रूप से स्वराज के लिए निरन्तर लडता है । जब किसी शक्तिशाली जाति से जिसके सुशिक्षित नौकरशाही हो और अशेष धन सम्पत्ति हो स्वतंत्रता का महा-युद्ध लडना पडता हो, तब अपनी ही अपनी बात रखने के सिद्धान्त की मैं निन्दा करता हूं । ऐसे सवाल में कि कोई खास काम सही है या गलत, वह सफल होगा या असफल, उससे स्वराज की ओर हम बढेंगे या पीछे हटेंगे, अपने मत फैसिले, या भाव को अन्तरात्मा का सवाल बना देना गलत सिद्धान्त है । धर्म, नीति या मान की बात में अपनी आत्मा ही पंच बनेगी किन्तु देश के कामों में जब कोई निश्चय अधार्मिक या अनैतिक या अपमानजनक न होवे ते मैं नहीं समझता कि हम कैसे अपना मतभेद का हक कायम रख सकते हैं और स्वराज के लिए लडनेवाली किसी संस्था के परमावश्यक नियमों को भी साथ साथ क्यों कर बचाये रख सकते हैं।"

अपील के जोर और भाषण के हर सतर में भरी भावुकता के योग्य ही उपसंहार हुआ है । वे कहते हैं, "स्वराज कुछ मानसिक वस्तु नहीं किन्तु भावनामय वस्तु है । इसे हमें अपने दिलों में अशेष श्रद्धा से रखना होगा । हममें स्वराज के लिए जबर्दस्त चाह उत्पन्न करनी होगी, जो भूलों से भरी न हो, जो कंधे से कंधे भिडाये हुए जन-समूह की समान और शीघ्र सामूहिक उन्नति का पक्षपाती हो, जो बाधाओं से रुके नहीं, जो समय समय पर घटती बढती हुई न हो और जो असफलता तथा अत्याचारों से दबे नहीं ।"

मैं आशा करता हूं कि सब के दिलों से इस प्रार्थना की प्रतिध्वनि उठेगी ।

प्रस्तावों की सविस्तर जाँच करने की जरूरत नहीं है । शोक प्रस्तावों के अलावा, काउन्सिलवालों के लिए काउन्सिल का प्रस्ताव है । उसके बाद, केनिया, द० अफ्रीका, बंगाल के कैदी, और गुरुद्वारा कैदियों के सम्बन्ध के प्रस्ताव हैं । मेरी समझ में महासभा के विधान में खद्दर वाले वाक्य को बदलने से लाभ ही होगा । कांग्रेस अवसरों पर खद्दर पहनने का प्रस्ताव सब के लिए मजाक का मसाला बन गया था । अगर हमारे मताधिकार में खद्दर को कोई स्थान मिलता है तो वह सर्वदा पहनने की चीज हो कर ही हो सकता है। यह आशा की जाती है कि हर एक कांग्रेस कार्यकर्त्ता अपने शरीर पर इसका पालन तो करेगा ही और दूसरों को भी समझावेगा । मगर विषय-समिति में अस्वीकृत या लौटा लिये गये प्रस्तावों के विषय में जिन कई बातों की चर्चा हुई, उन पर अब दूसरे ही लेख में विचार करना होगा ।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी

साप्ताहिक पत्र

गोहाटी और उसके बाद

गांधी जी के लिए गोहाटी में दूसरा काम था स्वदेशी प्रदर्शिनी खोलना । प्रदर्शिनी में कोई असाधारण बात नही थी । गांधी जी ने एक छोटासा किन्तु शुरू से अखीर तक भावनामय भाषण देकर नुमायश खोल दी । देश की गरीबी का जिक्र दिल पिघलाने वाला था । देश की सम्पत्ति का मृग मरीचिका रूप उन्होंने दो तीन वाक्यों में समझा दिया । उन्होंने कहा, 'किसी भी करोडपति के हाथों ५ लाख और धन की बढती होने का अर्थ है विदेशों में दूसरे ९५ लाखों का चला जाना । गरीब किसानों के ऊपर हम लोग चिरस्थायी जोंक लगे हुए हैं । आखिर हम अपना हिस्सा उसे चुकावेंगे क्योंकर ? एक मात्र रास्ता खादी ही है । किसी भी दूसरे काम में इतनी अधिक सफलता का भरोसा नहीं हो सकता । चर्खा संघ में आज ५०,००० कातनेवालियां हैं जो सूत कात कर अपनी आमदनी में बढती करती हैं या पहले जहां वे कुछ भी नहीं कमाती थीं, वहां दो आने रोज पैदा करती हैं । मगर उनकी पुकार सुनेगा कौन ? मेरी ही पुकार सुनने को कौन रवादार है ? द्रौपदी ने जब देखा कि उसके पांचों पति भी उसकी सहायता नहीं कर सकते तो उसने अपनी विपत्ति में अनाथों के नाथ, कृष्ण भगवान् को पुकारा और उन्होंने उसकी लाज बचायी । वैसे ही मैं भी आज करोडों मूक हिन्दुस्तानियों के नाम पर पुकारूंगा और मुझे विश्वास है कि मेरी प्रार्थना एक दिन जरूर सुनी जायगी ।'

* * *

जब पूरा दिन भर काउन्सिल सम्बन्धी प्रस्ताव और उसके संशोधनों के ही विचार में बीत गया तो मालूम होता था कि गांधी जी की पुकार सचमुच ही कहीं अरण्यरोदन तो नहीं हुई । मगर मानों जैसे उस रुदन का जवाब होवे, कार्य-समिति की ओर से विषय-समिति में यह प्रस्ताव आया जिसके जरिये हर एक महासभावादी के लिए जो महासभा में मताधिकार चाहता है, खादी हमेशे पहनना लाजिमी बनाया जाता था । मि० अणे ने इसका

ऐसा विरोध किया मानों खादी में उन्हें कुछ विश्वास ही न होवे। एक और सज्जन ने उनका समर्थन किया और गांधी जी की न्याय-बुद्धि की दुहाई दी। गांधी जी ने जो सभापति की विशेष प्रार्थना पर वहां उपस्थित थे, थोडे शब्दों में उत्तर दे दिया। 'मेरी न्याय-बुद्धि तो तभी संन्तुष्ट होगी जब सूत मताधिकार भी सही किया जाय जैसा कि मैं आवश्यक समझता हूँ। अगर मताधिकार को सख्त बनाना मैं राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक समझूं तो क्या इसके लिए शर्तें ठीक करने में कोई भूल करूंगा? अगर कोई भाई यह समझें कि किसी दल को महासभा से निकालने के लिए ही मैं यह परिवर्त्तन करता हूं तो मुझे बडा दुःख होगा।' मगर इसके बाद आंखें खोलकर प्रस्ताव पास करनेवाले उन सज्जनों को जो एक साल पहले इस प्रस्ताव को नहीं चाहते थे, यह चेतावनी दी। 'यह संशोधन आत्मसुधार के लिए है। अगर आप इसे न करने की नीयत से पास करें यानी महासभा के बाहर जाते ही खादी की बिलकुल पर्वा न करने की नीयत से इसे पास करना चाहते हों तो मैं कहूंगा कि इसे अस्वीकार कर दीजिए। मौजूदा नियम बहुत ही अपमानजनक है और उसे या तो बिलकुल ही बदलना होगा या छोड देना होगा। खद्दर को अपने पैरों आप खडा होना होगा। . . . अगर आप प्रस्ताव स्वीकार करें तो उसके सभी अर्थों को समझ कर। . . . मैं न तो किसी को देता हूं न आप ही दया की भीख माँगता हूं। मैं अपनी स्वतंत्रता का प्रेमी हूं और इस लिए आपकी स्वतंत्रता कम करना नहीं चाहता। मैं तो केवल अपनी अन्तरात्मा यानी भगवान् को तुष्ट करना चाहता हूं।' विषय समिति और महासभा, दोनों में यह प्रस्ताव बहुत बडे मताधिक्य से स्वीकार हुआ।

*   *   *

महासभा का ध्येय साम्राज्य से अलग स्वतंत्रता प्राप्त करने का बनाने का प्रस्ताव दूसरे दिन महासभा में आया था। हर साल यह नाटक होता ही है और इस साल भी वही हुआ। सांबमूर्त्ति मानें क्योंकर? ऊपर से उन्हें कुछ बंगाली युवक भी मिल गये। गांधीजी ने अतिशय आग्रह पूर्वक समझाया कि प्रस्ताव वापिस कर लो। सभापति ने भी अनुरोध किया। कालापानी से लौटे हुए एक जवान ने सभापतिजी को सुनाया 'हर बात में आप लोग यह महात्मा महात्मा की क्या रट लगाये हुए हैं? हमारे जो स्वतंत्र विचार हैं, वे तो हैं ही।' गांधीजी ने अपनी स्थिति खूब खुलासा समझायी और विनती की कि 'भाई, मेरी मुरौवत किये बिना जो प्रस्ताव लाना हो वह लावो।' पहली रात को महाराज नाभा के साथ सहानुभूति का प्रस्ताव स्वीकार हुआ था। इससे महासभा को कोई लाभ नहीं है, हानि ही है। महाराज नाभा को तो कोई लाभ है ही नहीं। यह समझा कर गांधीजीने यह प्रस्ताव वापिस कर लेने और इस प्रश्न की जांच करने का भार कार्यसमिति को देने का प्रस्ताव स्वीकार करने को कहा। कितने विरोध के बाद यह भी मंजूर हुआ। मुद्रा और विनिमय आदि के विषय में कोई प्रस्ताव ही नहीं हुआ था। इसका महत्व समझा कर कार्यसमिति को और कुछ नहीं तो इसके जानकारों से मिल कर इस विषय में देश का अभिप्राय जानने का काम देने को कहा। इस प्रकार सबने देखा कि इन तीन प्र.' के लिए गांधीजी की हाजिरी अनिवार्य हो पडी थी।

*   *   *

स्वामी श्रद्धानन्द के खून के कारण हिन्दू महासभा की खास बैठक हुई थी। मालवीयजी सभापति थे। उनके भाषण के समय अगर अधिक मुसलमान वहां हाजिर होते तो क्या ही अच्छा होता। उनका दर्द भरा भाषण सुन कर वे जान जाते कि गांधीजी के यह कहने में कि मालवीय जी मुसलमानों के दुश्मन नहीं हैं कितनी सचाई है। स्वामीजी का काम अडग रीति से चलाने को उन्होंने कहा और उनके स्मारक के लिए ५ लाख की माँग पेश की। सभा में दूसरे भाषण भी हुए और वे भी सौम्यता के नमूना थे।

मैमनसिंह जिले के एक मौलवी साहेब ने सभापति से विशेष आज्ञा माँगी और कहा कि 'कुरान की नजर से स्वामी जी का खून तिरस्करणीय है। लडाई में दुश्मन को या अपने ऊपर हमला करने वाले को छोड कर, और किसी को मारने का हुकम इस्लाम में नहीं है। इस खून से इस्लाम का सिर नीचा हुआ है।' इस पर बँगला में शोर हुआ कि 'दिल से बोलते हो या सिर्फ मुँह से?' बिना कुछ दुःख या रंज के मौलवी साहेब ने कहा, 'दिल से भाई, दिल से।'

मालवीय जी की माँग का जवाब पहले पहल आया एक मुसलमान भाई की ओर से। डाक्टर रजब अली बंबई के नामी खादी भक्त हैं। उन्होंने अछूतोद्धार के लिए १००) रु. का दान स्वामी श्रद्धानन्द स्मारय के लिए दिया। उनका दान साभार स्वीकार किया गया। अगर ऐसे शुद्ध हृदय के हिन्दू और मुसलमान अधिक होते तो हमारा आधा काम तो यों ही बन जाता।

*   *   *

गौहाटी के बाद

का सप्ताह कलकत्ता, सोदेपुर और कोमिल्ला में बीता। कलकत्ते के दिन एक प्रकार से पवित्र कामों में ही बीते। चित्तरंजन सेवा सदन के लिए दो और मकानों की नींव देने में, उस पवित्रात्मा बाबू अश्विनी कुमार दत्त के स्मारक की नींव देने में और स्वा. श्रद्धानन्द जी की स्मृति-सभाओं में जाने में वे दिन बीते। स्वामी जी की स्मारक सभाएँ, जैसा कि अनुमान किया जाता था, असाधारण रूप में बडी बडी थी। एक सभा सभी हिन्दुओं की और एक अछूतों की हुई।

सेवा सदन में अखीरी नौ महीनों में ७००० रोगियों का इलाज हुआ। ३५० का इलाज तो अस्पताल में ही हुआ। १५[illegible] प्रसव कराये गये, १४५ को चीरा दिया गया और ९७ रोगियों की रेडियम चिकित्सा हुई। इस सेवा सदन में जोडे गये नये मकान की नींव देने के लिए गांधी जी को निमन्त्रण दिया गया था। गांधीजी ने कहा कि 'देशबन्धु के साथ मेरा एक प्रकार का आध्यात्मिक संबंध था जो देशबन्धु की मृत्यु के बाद शायद और भी सच्चा हो गया है। मुझे इसमें कोई शक नहीं कि अगर हमारी विचित्र गुलामी की स्थिति के कारण देशबन्धु की सारी शक्ति राजनीति में ही नहीं लग जाती तो वे धार्मिक सुधार और दरिद्र-नारायण की सेवा में ही जी जान से लग जाते। मगर देशबन्धु ने तो गीता का यह पाठ पढा था।

'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितम्'

यानी पर या परे के सु-आचरित धर्म से अपना (उपस्थित) धर्म ही गुणरहित होने पर भी अच्छा है। अगर्चे कि आज मैं एक साधारण नारी-चिकित्सालय की नींव डाल रहा हूं, मगर मुझे विश्वास है कि देशबन्धु की दृष्टि से यह स्वराज पथ में एक पग आगे बढना है। कुछ लोग कहते हैं कि बंगालियों में बहुत अधिक प्रान्तीय संकीर्णता है, इस लिए शायद यह सेवा-सदन भी बिलकुल प्रान्तीय न बन जाय मगर मैं तो कहता हूं कि अगर बंगाली लोग सारे हिन्दुस्तान पर कब्जा कर लेवें तो संयुक्त प्रान्त

के बूढे पंडितजी को और गुजरात के मुझ बूढे बनिये को कुछ आराम मिले। उस बंगाल ने जिसने रवीन्द्र नाथ, राम मोहनराय, केशव चन्द्रसेन, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द को पैदा किया है, जिसकी धूलि चैतन्य के पद-रज से पावन है, गंगा और ब्रह्मपुत्र से जिसकी भूमि पवित्र बनी है, उस बंगाल में अगर सारा हिन्दुस्तान भी मिल जाय तो क्या हानि? मगर यह भय निर्मूल है जैसा कि डाक्टर विधानचन्द्र राय ने ट्रस्टियों की ओर से कहा है कि सेवा-सदन उसी विस्तृत दृष्टि से चलाया जायगा जिससे देशबन्धु देश की सेवा करते थे। उनके हृदय में हमारी उन बहिनों के उद्धार की प्रबल चाह थी जो हमारी काम-वासना की शिकार बनी हुई हैं। यह सेवा-सदन उनका जीवन्त स्मारक है। यह किसी खास ट्रस्टी का नहीं है। यह तो देश की सम्पत्ति है। हम इसे देशबन्धु के योग्य बनाने का प्रयत्न करें और इससे उनकी यादगार इस देश में अमर होवे।'

सोदेपुर

खादी प्रतिष्ठान के सतीशबाबू के निमन्त्रण पर सोदेपुर जाना पडा। सोदेपुर कलकत्ते का जवार है। खादी प्रतिष्ठान ने ३० बीघे जमीन खरीदने और प्रतिष्ठान शिक्षण विभाग के लिए मकानात बनाने में ७०,०००) रु० लगाये गये हैं। मगर गांधी जी को केवल कलाशाला ही खोलने को न बुलाया था। यह घर और आश्रम दोनों है। वहां सतीश बाबू प्रतिष्ठान के कार्यकर्त्ताओं के साथ काम और भगवान् की प्रार्थना किया करते हैं। आश्रम के कार्यकर्त्ता देखने में नौकर हैं किन्तु खादी के काम ने उन्हें एक परिवार के आदमियों सा मिला दिया है। साबरमती और वर्धा आश्रमों के समान यहां भी सबेरे ४ बजे की प्रार्थना से दिन का काम शुरू होता है और सात बजे शाम की प्रार्थना से समाप्त होता है। रोज शाम को सब कोई अपने दिन भर के कते सूत का हिसाब लिखाते हैं। उद्घाटन-संस्कार शान्ति से हुआ। उसे देखने को हजारों आदमी आये थे जिनमें कई तो कलकत्ते से आये थे। ९ महीने में सतीश बाबू ने जमीन खरीद कर, मकान बनाये हैं और अब रँगाई, धुलाई, छपाई और सूतकी परीक्षा के सब काम चल रहे हैं। सतीश बाबू के काम की तारीफ करते हुए गांधी जी ने कहा, 'आप देखेंगे कि सतीश बाबू ने खादी पर अपना सब कुछ लगा दिया है। आप में से कितने सोचेंगे कि सतीश बाबू का सिर फिर गया है। मगर मैं आप से कहता हूँ कि यह श्रद्धा है जो पहाडों को हिला देती है। सतीश बाबू में श्रद्धा है और इसका दृढ निश्चय कि जहां तक संभव होगा, कलकत्ते में रोज लाखों का आनेवाला विलायती कपडा रोकेंगे।' उनकी अपील पर तत्काल ही ५००) रु. जमा होगये और ३०००) रु. के वचन मिले।

अभय आश्रम, कोमिल्ला

इसके बाद हम लोग कोमिल्ला गये। वहां भी अभय आश्रम में दो शान्त मगर व्यस्त दिन बीते। आश्रम को डाक्टर सुरेश बाबू और उनके साथी असाधारण श्रद्धा और प्रेम से चला रहे हैं। समाज-सेवा की खास उल्लेखनीय बात है अछूतोद्धार के संबंध की। अछूतों के लिए स्कूल हैं। आश्रम का चिकित्सा-संबंधी कार्य खूबचलता है और उससे आमदनी भी होती है। सुरेश बाबू एक अच्छी सेवा-समिति चला रहे हैं। उनके खादी-भण्डार में एक मुफ्त वाचनालय है और साथ में एक अछूत पाठशाला भी चलती है। इन अछूत पाठशालाओं से गांववालों में सफाई का खयाल बढा है। आश्रम में भी ६ अछूत लडके हैं। यहां भी प्रार्थना इत्यादि के लिए समय नियत है और हरएक आश्रमवासी को कमसे कम २०० गज सूत रोज कातना ही पडता है। चिकित्सालय में काम करनेवाले को भी इससे छूट नहीं है। नवम्बर में सदस्यों ने १,४६,२०० गज और दिसम्बर में २,०२,१४० गज काते।

एक दिन प्रार्थना के समय गांधीजी ने बंगाल के दोनों खादी मंडलों (प्रतिष्ठान, और अभय आश्रम) को आशीर्वाद दिया और उसी साथ ये बातें भी कहीं, 'तुम दोनों ने सबसे पहले काम शुरू किया है। तुम लोग जमनोत्री और गंगोत्री के समान हो। तुम उन दो बहनों के समान बनो। जब मैं तुम्हारे विषय में सोचता हूं तो मैं दो घोडों की कल्पना करता हूं जो खादी की गाडी खीचने में बाजी लगाये हुए हैं। तुम लोगों को इस बात में अपूर्व सफलता मिली है कि तुम्हें दूसरे प्रान्तों का मुँह जोहना नहीं पडता। अपने कपडे बेंचने में तुमने बंगाल की महिलाओं को—जो सम्मानीय हैं—अपने पक्ष में झुका लिया है और आज वे तुम्हारी दी हुई सारी पहनन में गौरव का अनुभव करती हैं। तब तुम दोनों में एक की शक्ति और त्रुटियां दूसरे की शक्ति और त्रुटियां होवें और गाढे समयों में खादी प्रतिष्ठान अभय आश्रम का भरोसा करे, अभय आश्रम, खादी प्रतिष्ठान का।'

शहर में एक बडी सभा हुई। पहले लोग निराश हुए जब गांधी जी ने हिन्दी में बोलना शुरू किया मगर तुरत ही शान्ति छा गयी और बहुत शान्ति से गांधी जी का भाषण सुना गया। इससे गांधी जी इतने खुश हुए कि उन्होंने अंगरेजी में भी एक भावना मय भाषण किया।

(नवजीवन और यं. इं. में से) **महादेव देसाई**

'ऋद्धिसिद्धि की जननी' गायमाता

(९)

वृषोत्सर्गादिते नान्यत्पुन्यमस्ति महीतले।

(कोई अपने घर पर जातिवन्त साँड का मरण पर्यन्त पालन करे और वह साँड सार्वजनिक काम में आवे तो उसके ऐसा दूसरा पुण्य पृथ्वी पर नहीं है।)

[मि. हेन अब अच्छे साँड का महत्व और खादर की सँभाल की जरूरत समझाते हैं। दे० बा०]

साँड का मूल्य कितना?

आप कैसा साँड रखते हैं? वैसा कि जिसके पूर्वजों की उत्तमता के विषय में लिखा हुआ हिसाब किताब हो या वैसा जिसके मा-बाप दादा-दादी को कोई जानता ही न हो या जैसा मिल जाय वैसा ही?

बुरा साँढ क्या करता है?

बुरा सांढ रखने के फल स्वरूप, गायों की बनिस्बत उनकी बछडियों का दूध वर्ष में औसतन १००९ सेर कम हो गया।

अच्छा साँढ क्या करता है?

एक बहुत मामूली गाय साल में ३,८७५ सेर दूध और १९३ सेर मक्खन देती थी। अच्छे साँढ से उसे बछडी हुई और उसने साल में ६,९५६ सेर दूध और २६६ सेर मक्खन दिया। और इस बछडी की भी अच्छे साँढ से जो बछडी हुई उसने साल में १२,८०४ सेर दूध और ४८३ सेर मक्खन दिया।

दो साँढों के बीच इतना अन्तर पड सकता है कि उसीसे दूसरी गोशाला खोली जा सके।

अच्छे साँढ से गोशाला इतनी सुधरती है कि दूध में और बछडों की कीमत में जो बढती होती है वह थोडे सालों में एक गोशाला की कीमत के बराबर हो जाती है।

मान लीजिए कि साल में औसतन ५००० सेर दूध देनेवाली २०,२० गायों की दो गोशालाएँ है। पहली में डेढ सौ डौलर का अच्छा साँड है और दूसरी में २५) डौलर का साधारण सा। इस प्रकार तीन व्यान तक चलता है और हर साल आधा आधी बछडियां होती हैं, जिनमें आठ रक्खी जाती हैं।

अब उन दोनों गोशालाओं में पहली आठ बछडियां एक साल दूध दे चुकी हैं और दूसरी बार व्यायी हैं; उनकी संतति में से ३ हाल की जन्मी और ३ बछडियां एक वर्ष की रक्खी गयीं; कुल १४। दूसरे व्यान की ८ बछडियां पहली बार व्यायी हैं और उनकी ३ बछडियां हैं; कुल ११। इसके बाद तीसरे साल की ८ बछडियां हैं; कुल ३३।

अन्तर कितना पडा?

	डौलर
अच्छे साँड की ८ तीन साल की बछडियां अपनी माताओं से दोदो हजार पाउन्ड अधिक दूध करती हैं; १६००० पाउन्ड अधिक दूध का मूल्य, १ हन्ड्रेडवेट का दो डौलर के हिसाब से	३२०
साधारण साँड की ८ तीन साल की बछडियां अपनी माताओं से एक एक हजार पाउन्ड दूध कम करती हैं; ८००० पाउन्ड दूध का दाम, उसी हिसाब से ...	१६०
अच्छे साँडवाली गोशाला को नफा	४८०
अच्छे साँड की ८ तीन साल की बछडियां दूसरे साँड की ८ बछडियों से ५०, ५० डौलर अधिक कीमती हैं और उनसे नफा हुआ...	४००
अच्छे साँड की दो साल की ८ बछडियों का मूल्य दूसरे साँड की बछडियों की अपेक्षा ३५, ३५ डौलर अधिक होगा और उनसे नफा हुआ...	२८०
अच्छे साँड की एक साल की ८ बछडियों का मूल्य दूसरे साँड की बछडियों से २५, २५, डौलर अधिक होगा। और उनसे नफा हुआ	२००
अब पहली गोशाला में ३ साल की गायों की ३ बछडियाँ हैं जिनका मूल्य दूसरी गोशाला की बछडियों से २५, २५, डौलर अधिक होगा, और इस लिए नफा हुआ ...	७५
दूसरे पुश्त की हमारे पास ६ बछडियां तुरत की पैदा, दोनों गोशालाओं में हैं; अच्छी बछडियों का १५, १५ डौलर अधिक मिलता है इस लिए कुल नफा हुआ...	९०
पहले साँड की कीमत हुई अब २५० डौलर यानी १०० डौलर का नफा हुआ और दूसरे की ५० डौलर यानी २५ डौलर का नफा हुआ। इस लिए दोनों के दाम की बढती में अन्तर पडा	७५
एक साल में कुल फर्क डौलर	१,६००

अब भला तीन या चार साल में कितना अन्तर पडेगा?

अगर ५, ६ गोशालाओं में उन साँडों से काम लिया जाता तो कितना अन्तर पडता?

अगर हमारे पास शुद्ध जाति के पशु हों तो और भी अधिक अन्तर पडेगा।

साँड की सँभाल रखना

बछडा पांच महीनों का जब हो जाय, उसे बछडियों से दूर रखना चाहिए। अपनी उम्र के दूसरे बछडों के साथ अच्छी मौसम में चरता फिरे तो ठीक है।

खुराक उसे बछडियों जैसी ही देनी चाहिए। विशेष बढने के लिए कुछ अधिक देना चाहिए। छुटपन से ही पगहे के साथ चलना सिखलाना चाहिए। एक साल का हो जाय तो थोडा काम ले सकते हैं।

एक वर्ष के साँढ की नाक में कडी या नाथ लगानी चाहिए। गायों के साथ उसे चरने देना नहीं चाहिए क्योंकि उसमें जोखिम है, क्या जाने किसी को मार बैठे; गायों के गाभिन होने का हिसाब नहीं रक्खा जा सकता और उसकी शक्ति क्षीण होती है।

मजबूत घेरेवाले बाडे में सांढ को रक्खा जाय, जिसमें जरूरत पडने पर उसके भीतर छायादार स्थान में उसे बंद किया जा सके तो अच्छा है।

बाडा, दरवाजा, रस्सी पगहा, वगैरह की देखभाल होते रहनी चाहिए।

उसके घूमने फिरने के लिए काफी जगह और समय देना चाहिए जिस में उसके खुर बढने न पावें और तन्दुरुस्ती ठीक रहे।

उसके साथ दयालुता और शान्ति से काम लेना चाहिए। उसके पास जाते समय खूब सावधान रहना।

साँढ का दाम कब लगाया जाय?

पंद्रह महीने का होने पर उससे ठीक ठीक काम लिया जा सकता है। अपनी पहली बछडियों की पैदाइश के समय वह ... साल का होगा जब बछडियां बियायँ और वे दूध देने लगें ... साँढ के दाम का कुछ पता चले तब तक वह ५ साल का होगा। एक साल तक उन बछडियों को दुहना चाहिए। फिर ये बछडियां बियायँ और एक वर्ष दुही जायँ तभी यह मालूम होगा कि कैसी गायें होती हैं। तबतक साँढ तो सात वर्ष का होगा।

उम्र बढने के साथ, और विशेष कर अगर कसरत बिना ... रहे तो साँढ तूफानी बनता है। अगर वह अच्छा निकले ... उसका बाडा खूब मजबूत बनाना और उससे ठीक ठीक काम ... के साधन ठीक रखना चाहिए।

संयुक्त साँढ

हर एक ग्वाले को अच्छा साँढ रखने की समाई न हो ... दश पांच ग्वाले मिल कर जातिवन्त साँढ रक्खें। इससे ... खर्च में वह सब के काम आता है। हर एक ग्वाले के साथ ... साँढ रखने की अपेक्षा मिल कर एक अच्छा साँढ रखने में अधिक लाभ पडता है।

खादर खराब नहीं जाने देना

अगर कोई आदमी गायें रक्खे मगर खादर की सँभाल न ... तो गोपालन का एक बहुत बडा लाभ वह खो बैठता है। ... नफा नुकसान बन जाता है और खेत की शक्ति घटती जाती है।

अच्छी गाय का साल में ११ टन खादर होता है

गोशाला के खादर से जैसा खेत बनता है, वैसा दूसरी ... नहीं। इस खादर को यों ही बाडे में फेंक देवें तो वह ... प्रकार सडता, उडता और कीडों से भर कर नाकाम जाता है।

इसका कुछ अर्थ नहीं कि दुग्धालय के पिछवाडे में गोबर ... ढेर जमा हों और उनसे चारों तरफ दुर्गन्ध फैले और ... मच्छड पैदा हों।

१०,००० सेर खादर अगर उघार कर छोड दिया जाय ... दस महीने में उसमें से ४,८७५ सेर घट जाता है और ... सत्व सैकडे ३२ घट जाता है।

खादर फैलाने का यंत्र तो दुग्धालय में होना ही चाहिए। खादर जितना ही ताजा हो उतना ही ठीक। जितनी ... फैलाया जाय उतना ही अच्छा।

(नवजीवन) वालजी गोविंदजी देसाई

खरी टीका

वार्षिक मूल्य ४)
छः मासका ,, २)
एक प्रति का ,, -)'

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६] [अंक २३

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, माघ बदि ३, संवत् १९८३ गुरुवार, २० जनवरी १९२७ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३
अध्याय ७
ब्रह्मचर्य (१)

ब्रह्मचर्य के विषय में विचार करने का समय अब आया है। विवाह होने के समय से ही एक पत्नीव्रत को मेरे हृदय में स्थान था। मेरे सत्यव्रत का एक अंग था पत्नी के साथ वफादारी। किन्तु अपनी स्त्री के साथ भी ब्रह्मचर्य का पालन करने की बात मैं द० अफ्रीका में ही साफ साफ समझ सका। अभी मुझे ठीक ठीक याद नहीं आता कि किस प्रसंग से या किस पुस्तक के प्रभाव से मन में ये विचार उठे। इतना याद है कि इसमें रायचंदभाई का असर प्रधान था।

उनके साथ का एक संवाद मुझे याद है। एक समय मैंने मि ग्लैडस्टन के प्रति श्रीमती ग्लैडस्टन के प्रेम की बडी तारीफ की। ऐसा मैंने कहीं पढा था कि पारलियामेन्ट की बैठकों में भी श्रीमती ग्लैडस्टन अपने पति के लिए आप चा बनाती और देती थीं। इस नियम-बद्ध दम्पति के लिए यह बात एक नियम सी हो पडी थी। यह मैंने कवि को पढ सुनाया और उनके दम्पति-प्रेम की स्तुति की रायचंदभाई बोले, 'इसमें तुम्हें बडी बात कौन सी मालूम होती है? श्रीमती ग्लैडस्टन का पत्नीपना या उनका सेवा-भाव? अगर वह महिला उनकी बहिन होती तो? या वफादार नौकार होती और उतने ही प्रेम सेवा करती तो? ऐसी बहिनों, ऐसे नौकरों के उदाहरण हमें नहीं मिलते क्या? अगर किसी मर्द में तुम ऐसा प्रेम देखते तो तुम्हें क्या आनंद के साथ आश्चर्य नहीं होता? मैं जो कहता हूं उस पर विचार करना।'

रायचंद भाई स्वयं विवाहित थे। मुझे याद आता है कि उस समय तो उनकी बात मुझे कडवी लगी मगर उस बात ने मुझे लोहचुम्बक के ऐसा पकड लिया। मर्द नौकर की ऐसी वफादारी की कीमत, पत्नी की वफादारी की कीमत से कहीं हजार गुणा अधिक है। पति पत्नी के बीच एकता होती है, इस लिए उनमें प्रेम हो तो उसमें आश्चर्य की बात नहीं है। नौकर मालिक के बीच वैसा प्रेम पैदा करना पडता है। मेरे आगे कवि की बात का बल दिनों दिन बढता ही मालूम हुआ।

पत्नी के साथ मैं कैसा सम्बन्ध रक्खूं? पत्नी को विषयभोग का वाहन बनाने में उसके साथ वफादारी कहां रहती है? मैं जहां तक विषय-वासना के अधीन न रहूं, वहीं तक मेरी वफादारी की कीमत लग सकती है। यहां मुझे यह कहना चाहिए कि हमारे बीच के संबंध में मुझ पर पत्नी की ओर से कभी आक्रमण हुआ ही नहीं। इस दृष्टि से मैं जभी चाहूं, मेरे लिए ब्रह्मचर्य का पालन सुलभ था। मेरी अशक्ति वा आसक्ति ही मुझे रोके हुए थी।

जाग्रत होने के बाद भी मैं प्रयत्न करता मगर गिर पडता। प्रयत्न का मुख्य उद्देश्य ऊंचा न था। मुख्य हेतु था संतति-निग्रह। उसके ऊपरी उपायों के विषय में विलायत में मैंने कुछ पढा भी था। निरामिषाहारवाले प्रकरण में डाक्टर ऐलिन्सन के इस विषय के प्रचार का उल्लेख मैं कर चुका हूं। उसका कुछ क्षणिक असर मुझ पर हुआ। किन्तु मि० हिल्स के उसके विरोध और अंतर-साधना और संयम के समर्थन का असर उससे कहीं अधिक पडा और अनुभव से वह चिरस्थायी बना। इससे प्रजोत्पत्ति की अनावश्यकता समझ कर संयम-पालन का प्रयत्न शुरू किया।

संयमपालन की मुश्किलों का पार न था। अलग बिस्तर रक्खा। रात को तो खूब थक कर ही सोने का प्रयत्न करता था। इन सब प्रयत्नों का बहुत परिणाम तुरत ही मैं देख नहीं सका। किन्तु आज भूतकाल की ओर नजर कर के देखता हूं कि इन सब असफल प्रयत्नों ने मुझे अन्त में बल दिया।

अन्तिम निश्चय तो १९०६ के साल में ही कर सका। उस समय सत्याग्रह आरंभ नहीं हुआ था। इसका मुझे स्वप्न में भी खयाल न था। बोअर युद्ध के बाद नेटाल में जूलू बलवा हुआ। उस समय मैं जोहान्सबर्ग में वकालत करता था। किन्तु मुझे ऐसा लगा कि उस अवसर पर मुझे नेटाल सरकार को अपनी सेवा अर्पण करनी चाहिए। मैंने वह अर्पण की। वह कबूल हुई। उसका वर्णन अभी पीछे आवेगा। इस सेवा से मेरे मन में तीव्र विचार उत्पन्न हुए। अपने स्वभाव के अनुसार साथियों से भी मैंने उनकी चर्चा की। मुझे ऐसा लगा कि प्रजोत्पत्ति और उसके फल स्वरूप प्रजा-पालन सार्वजनिक सेवा के विरोधी हैं। इसमें दाखिल होने के लिए मुझे जोहान्सबर्ग का अपना घर तोडना पडा था। एक महीने के भीतर बसे बसाये घर का त्याग कर देना पडा। पत्नी को और बालकों को फीनिक्स में रक्खा और सेवकों की टुकडी लेकर निकल पडा। कठिन कूच करते हुए मैंने देखा कि अगर मुझे लोक सेवा में ही तन्मय हो जाना हो तो पुत्र और वैसे ही धन की इच्छा त्याग करनी होगी और वाणप्रस्थ धर्म का पालन करना होगा।

बलवे में तो मुझे डेढ महीने से अधिक नहीं रुकना पडा, मगर ये ६ हफ्ते मेरी जिन्दगी के बहुत कीमती दिन थे। व्रत का महत्व मैं उस समय अधिक से अधिक देख सका। मैंने देखा कि व्रत बंधन नहीं है मगर स्वतंत्रता का द्वार है। अब तक मुझे अपने प्रयत्नों के माफिक सफलता न मिली थी क्योंकि मैं निश्चयवान न था, मुझे ईश्वर की कृपा का अविश्वास था, और इससे मेरा मन अनेक तरंगों, अनेक विकारों से डोलता फिरता था। मैंने देखा कि व्रत से न बँधने वाला आदमी मोह में पडता है। व्रत में बँधना क्या है मानों व्यभिचार से निकल कर एक पत्नी से संबंध जोडने जैसा है। 'मैं प्रयत्न में विश्वास करता हूं, व्रत में बँधना नहीं चाहता' यह वचन निर्बलता की निशानी है और इसमें सूक्ष्म रूप से भोग की इच्छा छिपी हुई है। जो चीज छोड देने लायक है, उसका सर्वथा त्याग करने में कौन सी हानि हो सकती है? जो साँप मुझे काटेगा उसका मैं निश्चयपूर्वक त्याग करता हूं, त्याग का कुछ प्रयत्न नहीं करता। मैं जानता हूं कि सिर्फ कोशिश करते रहने में मौत बनी बनायी है। प्रयत्न करने में साँप के जहर के स्पष्ट ज्ञान में कमी है। इसी प्रकार यह सिद्ध होता है कि जिस वस्तु का त्याग करने का हम प्रयत्न भर करते हैं उस वस्तु के त्याग करने के औचित्य का हमें स्पष्ट विश्वास नहीं होता। 'मेरा विचार पीछे से बदल जाय तो?' ऐसी शंका कर हम अनेकों बार व्रत लेने में डरते हैं। इसी से निष्कुलानंद ने कहा है,

त्याग न टके रे वैराग विना।

जहां अमुक वस्तु के विषय में सम्पूर्ण वैराग्य उत्पन्न हुआ है, वहां उसके लिए व्रत अनिवार्य वस्तु है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

बिहार खादी का निरीक्षण

बिहार के खादी कार्यकर्त्ताओं की बैठक पटने में रखी थी। पहले की सूचना के अनुसार प्रत्येक केन्द्र के कार्यकर्त्ता अपने अपने यहां के कते सूत के नमूने लाये थे और ध्यानपूर्वक उनकी जाँच कराने लगे थे। सूत की ताकत की जाँच करने का यंत्र यहां की शाखा में था तो मगर उससे काम लेने का इल्म न होने से वह बेकार पडा हुआ था। भाई जेठालाल ने उसे सुधार दिया और चार भाइयों को उसको व्यवहार करना भी सिखलाया। सूत की कस (ऐंठन) निकालने का महत्व भी यहां के कार्यकर्त्ता समझ गये हैं। सूत के निकले कस का परिणाम नीचे दिया जाता है:

केन्द्र	मजबूती	समानता	अंक
१. दरभंगा	३४	८५	७॥
,,	४५	८४	२०
,, (कोकटी)	७२	८५	३०
२. पुपरी	३१	८३	१०॥
३. पंडौल	३५	८२	८५
,,	३३	८५	३५
४. सकरी	३४	८४	१०॥
५. मधुबनी	३४	८६	७
,,	३७	७७	२६
,, (कोकटी	६२	७३	३३
६. मधेपुर	४३	७८	९
७. छितवन	४२	८३	१०
,,	४४	८६	१८॥
८. गोरौल	३५	८०	७

इन सब सूतों में कोकटी रुई के सूत में अधिक ताकत मालूम पडती है। इसका कारण यह है कि कपास चुनने से लेकर सूत कातने तक सब काम कतवैयों के ही हाथ होते हैं। कोकटी कपास की फसल ४ से ५ महीनों में तयार हो जाती है। दूसरी कपास ८ से १२ महीनों में तैयार होती है। यहां १२ अंक तक के सूत के बदले में ड्योढी रुई दे कर कतवाते हैं। और बारीक सूत दाम ठीक कर खरीदते हैं। सूत के लिए पकी रुई भी कानपुर की ओर से खरीद कर लाते हैं। धुनने का काम अधिकांश में कतवैयों के ही हाथ होता है। जो दूसरों से धुनवाते हैं वे धुनाई की मजदूरी में रुई तौल कर उतना ही अनाज देते हैं। आप ही धुन कर कातनेवालों के सूत प्रशंसनीय होते हैं और आपही ओट कर और धुन कर कातनेवालों के सूत और भी सुन्दर होते हैं। कातनेवालियां प्रायः रुई के बदले कपास लेना ही पसंद करती हैं। अच्छी और बारीक सूत कातनेवालियों को अधिकतर कपास ही दी जाती है। यहां के कार्यकर्त्ताओं का कहना है कि यदि कातनेवालियों को अगर रुई के बदले कपास ही दी जाय तो सूत अधिक अच्छा, बारीक और साफ होगा। कपास जमा कर रखना खरीदना, और जुगाना न हो सकने के कारण ही यहां बाहर से पकी रुई की गांठें मँगानी पडती हैं। कार्यकर्त्ता कहते हैं कि इस प्रान्त के छपरा, मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिले में कोई तीस लाख मन कपास होती होगी। यहां की कातनेवालियों की मजदूरी फी घंटे २ से ३ पैसे तक गिनी जाती है। आज की स्थिति में अगर कातनेवालियों से अधिक ऐंठनवाले सूत की माँग की जाय तो वे इन्हीं मौजूदा साधनों से अधिक मजबूत सूत दे सकती हैं जरूर मगर उनकी चाल बहुत कम हो जायगी और तब कहीं चर्खे को ही छोड देने की बात वे न सोचने लगें। मगर अगर उन्हें अच्छी कपास देने का प्रबन्ध कराया जाय तो सूत भी अच्छा हो और उसकी आमदनी भी बढे। अच्छी कपास देने के पहले चर्खे का सवाल भी हल करना होगा। यहां के चर्खे में सुधार करने की जरूरत है। इस लिए उन्हें चर्खा चलाने और सुधारने को भी सिखलाने पडेगा। साथ ही साथ अच्छी कपास का भी संग्रह करना होगा। कपास को चूहे कुतर देते हैं इस लिए पके पत्थर का या दूसरे किसी प्रकार का गोदाम हमें बनाना पडेगा। साथ ही साथ ओटने के लिए बडे बडे छोटे ओटे रखने होंगे और लोगों को अपनी कपास ओट देने के लिए मकान में इसका भी प्रबन्ध करना पडेगा। भाडे के मकान और आज की बाजारू रुई, आज की मौजूदा हालत के लिए ही उपयोगी हैं। विशेष प्रगति के लिए पुराने जमाने में जैसा आज के 'जिनिंग मैशीन' के बदले छोटे व्यापारी अपने अपने घर पर ही कपास ओटना कर रुई देते भेजते थे वैसा ही आज हमें कताई की वृद्धि के लिए करना पडेगा। इसके बिना उन्नति की आशा आकाश-कुसुम है!

बिहार की बुनाई और प्रान्तों से उतर कर तो नहीं कही जायगी। बनारस के कार्य-कर्त्ताओं के समान यहां के कार्यकर्त्ताओं ने भी, बुनाई के लिए चुन कर सूत देना स्वीकार किया है। इससे यहां की बुनाई में जो त्रुटियाँ मिलती हैं, वे भी दूर हो जायँगी। यह यहीं की कोकटी बतलाती है कि मजबूत सूत से अच्छी बुनाई हो सकती है। अनुभव से यह बात मालूम हुई है कि सूत जितना ही ठोक ठोक कर बुना जाना सह सकेगा बुननेवाला उसे उतना ही ठोक ठोक कर बुनेगा। बिहार और संयुक्त प्रान्त की कताई की रीति और बुनाई की दर प्रायः एक ही समान है। १० से ३० अंक तक का सफेद या उससे भी ऊंचे अंक के कोकटी के सूत का कपडा बिहार तैयार करता है यह उसकी विशेषता है। अब तक यहां थान के कार

कपडे के वजन पर बुनाई की म दूरी दी जाती थी । आगे से निश्चय हुआ है कि तानी और भरनी के सूत के तार की गिनती पर से मजदूरी देने का प्रबन्ध होगा । इससे बुनने वालों का ध्यान, अपने बुने कपडे में अधिक तार घुसाने की ओर रहेगा और कपडा भी घन बुना जायगा ।

विहार ने कताई, बुनाई के बाद खादी की छपाई में भी ठीक प्रगति की है । खादी के ऊपर तीन या चार रंग की छपाई का काम करने में यहां के कारीगरों का हाथ बैठ गया है ।

लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम

(नवजीवन

अभय आश्रम खादी कार्य

[अभय आश्रम कोमिल्ला, के १९२५—२६ साल के खादी-कार्य की यह रिपोर्ट रुचि से पढी जायगी । जो रिपोर्टें मैं प्रकाशित कर रहा हूँ, पाठकों को मैं उनका अध्ययन करने को कहूँगा । उनके द्वारा खादी की प्रगति और शक्ति के ऐसे स्वयं सिद्ध और जबरदस्त सबूत मिलते हैं जैसे किसी भी दूसरे प्रकार नहीं । इन रिपोर्टों से जहां तहां एक दो जगहों में या एक दो प्रान्तों में ही खादी की प्रगति का पता नहीं चलता बल्कि प्रायः सभी प्रान्तों में । जिन प्रान्तों में कुछ भी नहीं या बहुत कम काम होता है, उन प्रान्तों को कार्यकर्त्ताओं की जरूरत है । 'फस्ल तो बडी अच्छी है किन्तु मजदूर ही कम हैं ।' अभय आश्रम की रिपोर्ट से इसका भान होता है कि खादी का दाम कितना घट गया है । यह बतलाती है कि कतवैयों और बुनवैयों की निपुणता बढने के साथ २ खादी का दाम अभी और भी घटेगा । इस आश्रम की सब से अधिक मार्के की बात यह है कि शुरू शुरू से ही खादी स्वावलम्बी रहा है । इसकी वजह ढूँढना कुछ कठिन नहीं है । आश्रम के अधिकांश सदस्य स्वेच्छासेवक हैं और केवल गुजर खर्च भर लेते हैं । रिपोर्ट लिखनेवाले भाइयों से मैं चाहूँगा कि जब वे आंकडे लिखते हों तो 'करीब करीब,' 'अन्दाजन', 'कोई' इत्यादि शब्दों का व्यवहार न करें । 'करीब ८००० कतवैयों' से कुछ अस्पष्ट अर्थ ही समझ में आता है । हर एक केन्द्र को अपने यहां के धुनियों, बुनवैयों और कतवैयों की सही २ संख्या देनी चाहिए । किसी भी विशाल और विस्तृत आन्दोलन के लिए जितनी सावधानी और शुद्धता संभव हो रखनी चाहिए । ऐसे आन्दोलन की सफलता कार्यकर्त्ताओं की अत्यन्त सचाई और शुद्धचारित्र्य पर ही निर्भर करती है । कार्यकर्त्ताओं की ईमानदारी, चारित्र्य और त्याग के सिवाय उसे और कुछ की सहायता नहीं मिलती, और कोई भी आन्दोलन जिसे यह सहारा प्राप्त होता है, और मदद का मुहताज नहीं होता ।

मो० क० गांधी०]

असहयोग आन्दोलन के साथ १९२१ में आश्रम का खादी कार्य शुरू हुआ । पहले ढाका में किराये के एक मकान में काम शुरू किया गया । शुरू में सारी शक्ति और समय केवल कताई पर ही लगायी गयी । फलतः पहले साल के खत्म होते होते जिले में चार कताई केन्द्र स्थापित हो गये । इन केन्द्रों का सूत कुछ तो गांव के जुलाहे ही बुन लेते थे और कुछ आश्रम के ही सदस्यगण बुनते थे । साथ साथ ढाका शहर में ही आश्रम के सदस्यों के अधीन कांग्रेस की बुनाई शाला 'जयचन्द्र बोयानगर' खोला गया । उसमें बंगाल के सभी हिस्सों से खादी बुनना, रँगना और छींट छापना सीखने के लिए कार्यकर्त्ता आते थे । वहां खादी तैयार भी की जाती थी । इस प्रकार बडे पैमाने पर बंगाल में संगठित रूप से खादी तैयार करने का काम पहले पहल इसी आश्रम ने किया । इसकी ति र लोक प्रियता दिन पर दिन ती गयी । १९२३ में यह अपने वर्त्तमान और स्थायी मकान, कोमिल्ला में लाया गया ।

कोमिल्ला में अभी चर्खा बिलकुल गायब नहीं हुआ था । फुरसत के समय में बूढी औरतें जब तब चर्खा चला लिया करती थीं । इस लिए वहां अभी थोडा बहुत सूत मिलता था । फिर आश्रम की ओर से ढौंडी पिटवा दी गयी कि चर्खे का चाहे जितना सूत मिले खरीद लिया जायगा । सूत की बेहिसाब बढती होने लगी । ढाका में जुलाहों को शुद्ध खादी बुनने पर राजी करना मुश्किल था किन्तु कोमिल्ला के जुलाहे सहज में ही राजी हो गये और यों शुद्ध खादी उत्पन्न करने का सवाल हल हो गया ।

प्रबन्ध

आश्रम की कार्य-समिति के अधीन श्रीयुत अन्नदाप्रसाद चौधरी इस विभाग के अध्यक्ष हैं । इस समिति में सभापति, मंत्री और खजाञ्ची के अलावा चार और सदस्य होते हैं । वर्त्तमान पदाधिकारी ये हैं :

श्रीयुत	सुरेशचन्द्र बनर्जी	सभापति
,,	नृपेन्द्र चन्द्र वसु	मंत्री
,,	सुशीलचन्द्र पालित	खजाञ्ची
,,	हरिपद चटर्जी	सदस्य
,,	अन्नाप्रसाद चौधरी	सदस्य
,,	देवेन्द्रनाथ सेन	सदस्य
,,	धीरेन्द्र चन्द्र चक्रवर्त्ती	सदस्य

खद्दर विभाग की मौजूदा पूँजी है रु. १२५७९-१५-९ की जिसमें रु. १२२९०-७-० तो चन्दा या दान स्वरूप मिले हैं और बाकी है साल १९२४-२५ में खादी का नफा । इसे बंगाल खादी बोर्ड से बिना सूद के १०००) रु. का कर्ज मिला है और अ० भा० चर्खा-संघ ने आश्रम-सम्पत्ति की जमानत पर ३५०००) रु. एक हजार पर एक रुपये सालाना सूद पर कर्ज दिये हैं । -संघ ने रुई और खद्दर की जमानत पर १९०००)रु. और दिये हैं । कपडा बंधक रख कर स्थानीय सज्जनों की जमानत पर यहां के बैंकों से १५०००) रु. और ११०००) रु. फी सदी सालाना ९) रु. सूद पर कर्ज लिये गये हैं ।

खादी केन्द्र

सब मिला कर २० केन्द्र चलते हैं । कोई ८००० कतवैये हैं । कातनेवाले ही अपनी रुई आप धुन लेते हैं । अलग धुनिये नहीं हैं । जुलाहों के कोई २२० परिवार हैं ।

कार्य की प्रगति

बिक्री: अपने प्रान्त के बाहर हमारी खादी बहुत कम बिकती है । नीचे के आंकडों से हर साल की बिक्री में उन्नति का पता लगेगा:

साल		बिक्री (रुपयों में)
१९२१	अन्दाजन	६००)
१९२२		८०००)
१९२३		७०००)
१९२४		२१८२२-१३-३
१९२५		७४६२०)
१९२६	(सितंबर तक, ९ महीनों में)	९४०००)

(क्रमशः)

(यं इं०)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ वदि ३, संवत् १९८३

खरी टीका

नीचे का पत्र मैं पाठकों से बचा रखना नहीं चाहता ।

"मैंने आपका 'शहीद श्रद्धानन्द' शीर्षक लेख यथेष्ट आदर और सावधानी से पढा है । उस पर टीका टिप्पणी करने के पहले मैंने उसे पाँच बार पढ लिया है जिसमें उतावली से उसकी आलोचना न करने लगूं ।

"वह लेख बेशक बहुत ही सुन्दर भाषा में लिखा गया है । आपकी लेखनशैली देख कर मुझे ईर्ष्या होती है । वह आकर्षक है मगर मेरी समझ में उसका आकर्षण खतरे से खाली नहीं है ।

"वह आलोचना मैं आपको सत्यशील मान कर ही करता हूं । जब तब कुछ मित्रों से इस विषय में मैंने बहस भी की है । उनका कहना है कि सन्त के भेस में आप नीति-चतुर पुरुष हैं और स्वदेश के लिए सत्य का जब कभी त्याग कर सकते हैं । इसके उलटे मैं मानता आया हूं कि आप सन्त हैं और अपने उद्देश्य की ही प्राप्ति के लिए कठिन से कठिन अवसरों पर भी सत्य के पालन के लिए राजनीति में घुसे हैं । अगर मुझे इसका पता मिल जाय कि मेरा अनुमान सही है तो मैं बडा आभार मानूंगा । अगर यह ठीक न हो तो नीचे दी हुई आलोचना कौडी काम की न रहेगी । मेरी सम्मति में नीति-वादी मनुष्य को आपने जैसा लिखा है वैसा लिखने का पूरा अधिकार है ।

"आप मुझ से सहमत होंगे कि सत्य को छिपाना भी असत्य का ही एक रूप है । जब आप स्याह को स्याह समझें तब उसे स्याह न कहना कायरता होगी । सत्य और निर्भयता का बहुत निकट सम्बन्ध है ।

"महात्मा जी, क्या आप के दिल में ऐसा लगता है कि स्वामी जी का खून, एक मुसलमान गुंडे का अमानुषिक, असभ्य और क्रूर कार्य था जिसके लिए मुसलमान समाज को शर्मिन्दा होना चाहिए? आप इसे ऐसा मानने से इनकार क्यों करते हैं? उसकी और उसके काम की और इसके लिए जिम्मेदार लोगों की, उनकी जो हिन्दू नेताओं को काफिर कहते हैं यानी उन गर्म दिमाग मुसलमान धर्मप्रचारकों और पगले मौलवियों की निन्दा करने के बदले आप खूनी का बचाव करने लगे हैं और मुसलमानों की ओर से दरगुजरी पेश करते हैं । आपने डायर का तो बचाव नहीं किया था । क्या यूरोपियन भाई नहीं हैं ?

"आगे आप कहते हैं कि इस्लाम का अर्थ है शान्ति । क्या यही सत्य है? कुरान में इस्लाम की जो शिक्षा दी जाती है और उसके जन्म से आज तक मुसलमान लोग इसका जैसा पालन करते आये, उसका अर्थ शान्ति कभी नहीं है । ऐसी साफ साफ गलत बात आप क्यों लिखते हैं । बौद्ध, ईसाई और हिन्दू धर्म भले ही शान्ति सिखलाते हों मगर इस्लाम नहीं । क्या आप बतलावेंगे कि आप ऐसा क्यों सोचते और लिखते हैं ।

"सरकार की निन्दा करते समय तो आपने सवालों को कभी उलझाया नहीं । आर्य समाज की निन्दा करते समय भी आपने सवालों को नहीं उलझाया । सिद्ध दोषों के लिए भी मुसलमानों की निन्दा करते हुए आप क्यों डरते हैं?

"मुझे निश्चय है कि अगर किसी मुसलमान नेता के ... किसी हिन्दू ने ऐसा काला काम किया होता तो (भगवान् न ... कि ऐसा हो ।) आपने खूनी और हिन्दू जाति की निन्दा ... में कुछ उठा न रक्खा होता । आप हिन्दुओं से मातम मनाने ... उपवास करने, हडताल करने, मृतात्मा के लिए स्मारक खडा ... और कितनी बातें करने को कहते । अपने सगे भाई मुसलमा... से आप पक्षपात का व्यवहार क्यों करते हैं?

"सत्यवक्ता किसी वस्तु का भय नहीं करता, इस्लाम ... तलवार का भी खौफ नहीं खाता । मैं आशा करता हूं कि ... प्रसिद्ध पत्र में आप इसका जवाब देंगे ।"

लेखक साफगो है । उसके पत्र से उसकी सरगर्मी ... है और उसका पत्र लोगों के वर्तमान भावों का द्योतक है ।

अगर मुझे सन्त कहा भी जा सकता हो तौभी अभी सन्त ... में बहुत देर है । मैं संत हूं, ऐसा तो मुझे अपने आप ... प्रकार नहीं मालूम होता । मगर मुझे मालूम होता है ... अनजाने चाहे मैं लाखों न करने योग्य काम करलूँ या करने ... करने में चूक भले ही जाऊँ मगर सत्य का सेवक हूं । पत्र लेखक ने ... अनुमान किया है कि 'सन्त के भेस में मैं नीति-चतुर आदमी ... हूं ।' मगर चूंके सत्य ही सबसे बडी बुद्धिमत्ता है इस ... कभी कभी मेरे काम सबसे बडी नीति-चतुराई के अनुकूल ... पडते हैं । मगर मुझे आशा है कि **सत्य** और **अहिंसा** की ... के सिवाय मुझ में और कोई नीति-चातुर्य नहीं है । ... और स्वधर्म के उद्धार के लिए भी मैं **सत्य** और **अहिंसा** ... छोड नहीं सकता । इतना करने का अर्थ यह है कि दो... किसी को भी मैं नहीं छोड सकता ।

स्वामी जी की हत्या के विषय में लिखते समय मैंने ... को छिपाया नहीं है । मैं उस काण्ड को हूबहू वैसा ही ... हूं जैसा कि पत्र-लेखक ने बयान किया है । मगर हत्यारे ... लिए मुझे वैसी ही दया आती है जैसी जेनरल डायर के ... मुझे आयी थी । पत्र-लेखक यह न भूल जायँ कि ... डायर के ऊपर मुकदमा चलाने का मैंने कभी नहीं समर्थन ... मैं यह दावा जरूर रखता हूं कि कोई यूरोपियन भी मेरे ... वैसा ही भाई है जैसा कि कोई हिन्दुस्तानी मुसलमान या ...

हत्यारे के विषय में मेरे भाव ये हैं कि वह खुद ... नाम पर बुरे और अधार्मिक प्रचार का शिकार है । इसीसे ... इस हत्या के लिए अखबारों को दोषी ठहराया है जिन्होंने ... साधारण की बुद्धि बिगाड दी है । मौलवियों और उन सब ... को, जो स्वामी जी के प्रति घृणा की आग जलाने वाले ... इस हत्या का मैं दोषी ठहराता हूँ ।

मगर मैं इस्लाम को उसी अर्थ में शान्ति-धर्म मानता ... जिसमें ईसाई, बौद्ध या हिन्दू धर्म को मानता हूं । ... शान्ति की मात्रा में अन्तर है मगर उन धर्मों का उद्देश्य ... शान्त । मैं कुरान के वे वाक्य जानता हूं जो इसके विरुद्ध ... किये जा सकते हैं मगर वेदों से भी तो ऐसे ही ... निकालना उतना ही संभव है । अनार्यों के विरुद्ध ... और क्या अर्थ लगेगा? जरूर, उनका इस युग में दूसरा ही ... है मगर एक समय उनका भयंकर रूप अवश्य था । हम ... का अछूतों के साथ के व्यवहार का और क्या अर्थ है? ... भला सूप पर न हँसे । बात यह है कि हम सब ... विकास हो रहा है । मैंने अपना मत प्रकट कर दिया ... इस्लाम के अनुयायियों की तलवार और छुरी बात ... निकला करती है । मगर वह तो कुरान की शिक्षा ...

नहीं है। मेरी समझ में उसका कारण है, वह स्थिति जिसमें इस्लाम का जन्म हुआ था। ईसाई धर्म का इतिहास खून खराबी से भरा पड़ा है मगर इसका कारण ईसा की त्रुटि नहीं है किन्तु यह है कि ईसा की उच्च शिक्षा का जिस स्थिति में प्रचार हुआ वह उसे ग्रहण करने योग्य न थी।

ये दोनों, ख्रिस्तानधर्म और इस्लाम, अभी कल के ही धर्म हैं। अभी उनका अर्थ लगाया ही जा रहा है। मौलवियों के इस हक को कि वे मुहम्मद की शिक्षाओं का अखीरी अर्थ लगा सकते हैं मैं वैसे ही इनकार करता हूं जैसे कि ईसा की शिक्षाओं का अर्थ लगाने के पादरियों के हक को। दोनों का ही अर्थ लगता है उन लोगों के जीवन में जो उनका पालन अपने जीवन में शान्ति और पूरे आत्म-बलिदान से कर रहे हैं। शोर गुल कुछ धर्म नहीं है और बड़ी बुद्धि में ही कुछ बड़ी विद्या नहीं होती। धर्म का स्थान हृदय है। हम हिन्दुओं, ईसाइयों, मुसलमानों और दूसरे धर्मवालों को अपने २ धर्म का भाष्य अपने हृदय के रक्त से लिखना होगा, और किसी प्रकार नहीं।

(यं. इं.) मोहनदास करमचंद गांधी०

टिप्पणियां

हिन्दी बनाम अँगरेजी

मालूम होता है कि सभाओं के प्रबन्ध-कर्त्ताओं को इस बात की याद निरन्तर दिलाते रहने की जरूरत है कि जनता से बातें करने की भाषा अँगरेजी नहीं बल्कि हिन्दी या हिन्दुस्तानी है। मैंने देखा है कि सन् १९२१ के उलटे इस बार मुझे इस दौरे में जो अभिनन्दन पत्र मिले हैं वे अधिकांश में प्रायः अँगरेजी में ही थे। यह स्पष्ट विरोध दिखलायी पड़ने लगा झरिया में जहां की कोयले की खानों के मजदूरों की ओर से मुझे अँगरेजी में मान पत्र देने की कोशिश की गयी। और वह भी एक ऐसी सभा में जिसमें हजारों आदमी थे मगर मुश्किल से ५० आदमी अँगरेजी समझ सकते होंगे और अगर वह हिन्दी में होता तो बहुत अधिक लोग उसे सहज में समझ सकते थे। उस संघ के कार्यकर्त्ता बंगाली थे। अगर वह मेरी खातिर अँगरेजी में लिखा गया था तो यह बिलकुल बेजरूरी था। मान-पत्र बँगला में लिखा जा सकता था और मेरे लिए उसका हिन्दी अनुवाद या अँगरेजी भी तैयार करा लिया जा सकता था। मगर उन श्रोताओं पर अँगरेजी का प्रहार करना उनका अपमान करना था। मैं उमेद करता हूं कि वे दिन आ रहे हैं जब कभी किसी सभा की कार्रवाई किसी ऐसी भाषा में होवे जिसे अधिकांश लोग नहीं जानते हों तो वे सभा से उठ कर चल देंगे। उस सभा के सभापति की तारीफ में यह कहना चाहिए कि इसकी ओर मैंने उनका ध्यान ज्योंही खींचा उन्होंने उसे समझ लिया और बड़ी शिष्टता से उस अभिनन्दन पत्र को बिना पढ़े ही पढ़ा हुआ सा मान लेने दिया। यह घटना सभी सभा-प्रबन्धकों के लिए चेतावनी होनी चाहिए मगर खास कर आन्ध्र देश, तामिलनाड, केरल और कर्णाटक वालों के लिए। उनकी कठिनाइयां मैं जानता हूं मगर अब कोई छह साल से उनके बीच हिन्दी का प्रचार करने के लिए एक संस्था काम कर रही है। उनके अभिनंदन-पत्र अपने अपने प्रान्त की भाषाओं में होने चाहिए और मेरे समझने के लिए उनके हिन्दी अनुवाद होने चाहिए। मैंने द्राविड़ देश के लिए हमेशे छूट दी है और जब कभी उन्होंने चाहा है, अपना भाषण अँगरेजी में ही किया है। मगर मैं यह सोचता हूं कि अब वह समय आ गया है जब उन्हें बड़ी सार्वजनिक सभाओं के लिए अँगरेजी का आसरा छोड़ देना चाहिए। सच पूछो तो हिन्दी सीखना इनकार करके हमारे अँगरेजीदां नेता ही जन समूहों में हमारी शीघ्र प्रगति के रास्ते में रोड़े अटका रहे हैं। हिन्दी तो द्राविड़ देशों में भी ३ महीने के भीतर भीतर अगर ३ घन्टे रोज समय दिया जाय तो सीख ली जा सकती है। अगर उन्हें इसमें कोई सन्देह हो तो एक बार वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के अधीन चलते हुए मद्रास के प्रचार कार्यालय को आजमायश देवें। ट्रिप्लिकेन के प्रधान कार्यालय में और शाखा कार्यालयों में और आन्ध्र देश में उन्हें सन्तोष-जनक शिक्षक और ग्रन्थ मिलेंगे। हिन्दुस्तान के २० करोड़ आदमी हिन्दी समझते हैं। उसी हिन्दी को न सीखने का कोई भी बहाना सिवाय आलस्य या अनिच्छा के हो नहीं सकता।

पनामा में भारतीय

पनामा के प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्य की धारा सभा ने हाल में विदेशियों के आगमन पर रोक का प्रस्ताव पास किया है। उसके द्वारा ब्रिटिश हिन्दुस्तान के निवासियों का भी वहां प्रवेश बंद है। राष्ट्रपति चिआरी ने बहुत सोच समझ कर धारा सभा को वह बिल लौटा दिया और उसमें कई सुधार सुझाये और बिल पर विचार करने की सलाह दी। धारासभा ने उनके बतलाये सुधारों में सिवाय उनके जिन्हें जरूर करना पड़ता, औरों को नामंजूर किया। धारासभा ने ब्रिटिश हिन्दुस्तानियों की स्वतंत्रता में बाधाएँ लगाने का समर्थन यह कह कर किया कि इससे वे अपनी आगे की सन्तानों के हकों की रक्षा कर सकेंगे। आज वहां नुमाइशी चीजों के अधिक से अधिक ३० सिन्धी व्यापारियों के अलावा और कोई हिन्दुस्तानी नहीं है। यह माना गया है कि उनसे पनामावासियों को कोई हानि नहीं है। मगर तौभी यह कानून सिवाय उनके जो १० साल पहले से वहां हमेशे अपना रहना सिद्ध कर सकें और सभी लोगों पर लागू है। मैं नहीं समझता कि पनामा में ऐसे कई प्रवासी होंगे जो इतने अधिक दिनों का निवास साबित कर सकें। अगर अफ्रीका के अनुभव से कुछ कहा जा सके तो कहा जायगा कि प्रवासी हिन्दुस्तानी इतने अधिक दिनों तक हिन्दुस्तान से बाहर रहने के अभ्यासी नहीं हैं। मैं समझता हूं कि यह मामला अब परदेश-विभाग के सामने है। अब यह देखना है कि वह विभाग पनामा प्रवासी हिन्दुस्तानियों के हकों की और उन लोगों के हकों की जो ईमानदारी से रोजी कमाने पनामा जावे रक्षा कर पाती है या नहीं।

गंगा और यमुना का सन्देश

एक बहिन लिखती हैं:

"अभी उस दिन मैं घूमने गयी। यमुना के किनारे की बालू से होती हुई नीचे उतर आयी। गंगा के समान ही शक्ति से उसने भी मुझे मुग्ध कर लिया। पानी के किनारे बैठ कर मैंने हाथ मुँह धोये। प्रार्थना और गंभीर विचार के खयालात मेरे मन में उठ रहे थे। वह बिलकुल ही शान्त सन्ध्या थी। धीरे २ बहती हुई वह महा नदी बाह्य संसार के प्रत्येक रूप का प्रतिरूप दिखला रही थी। ऐसा मालूम होता था मानों वह कहती थी कि 'मेरे गहरे पानी में देखो। वहां की चमकदार दुनिया को देखो। इस नील आकाश को, उजले बादलों को, वृक्षों को, पक्षियों को देखें सभी कितने स्पष्ट, कितने असली हैं। मगर ये एक गुजरते तमाशे कि सिवा और कुछ नहीं है! यह जान लो कि, उस बाह्य संसार में जिसपर तुम इतने लट्टू हुए फिरते हो, इस छाया संसार से, जिसे मैं दिखला रही हूं, कुछ भी अधिक सत्य

नहीं हैं । एक बार इसे समझ लेने पर तुम सत्यज्ञान को पा लोगे ।'

यह इतना आश्चर्यजनक था । मालूम होता था कि नदी जरूर बोलती है मगर एक ऐसी दिव्य भाषा में जिसे शब्दों की जरूरत नहीं । आखिर ठंडी हवा से होश में आयी । उसने मुझे चिताया कि अब सूर्य डूब चला है। मैं उठ खड़ी हुई । उधर दूर पर पुल के ऊपर रेलगाडी दिखायी पडी जो सें सें फों फों करती हुई, धुआं उगलती, भौतिकता और मानव समाज की चिह्न स्वरूप थी जिसे 'यांत्रिक क्रान्ति' ने उत्पन्न किया है ।"

दो नदियों के अलावा, हमारे पास और भी गंगाएं और यमुनाएं हैं । यह सच है कि उनके नाम दूसरे हैं । मगर वे पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्खन, सारे देश को पानी देती हैं । गंगा और यमुना ने जो सन्देश इस बहिन को दिये, वे केवल वे ही सन्देश नहीं देतीं । वे हमें याद दिलाती हैं कि जिस देश में हम रहते हैं, उसके लिए हमें अवश्य त्याग करना होगा हमें वे इसकी याद दिलाती हैं कि अपने देश के लिए हमें किस प्रकार क्षण क्षण में पवित्र बनने की प्रक्रिया करनी होगी, जैसी कि वे नदियां ही स्वयं हर क्षण में बन रही हैं । कोई १० वर्ष हुए मैंने लिखा था कि सभी हिन्दुओं की समान प्रार्थना गायत्री, गंगा का ही उपहार है । उसके चमकते पानी से पुरातन काल के ऋषियों को अवश्य ही भावोद्रेक होता होगा । आज के जमाने में तो इन नदियों से हम केवल यही काम लेना जानते हैं कि उनमें अपनी मोरियां बहावें, और उनकी छाती पर अपनी नावें चलावें और इस प्रकार उन्हें और भी गंदा करें । इस बहिन को घूमने का समय था । हमारे पास वह समय नहीं है कि हम इनके पास जावें और शान्त ध्यान में उनका वह सन्देश सुनें जो वे हमारे कानों में धीरे २ गुनगुना रही हैं ।

(यं. इं.) मो० क० गांधी०

मजेदार छूट

'हिन्दुस्तान में गांवों का पुनरुत्थान' नाम का एक लेख सर हेनरी रू ने 'हिन्दू' के वार्षिक विशेषाङ्क में छपाया है। उनके मतानुसार "हिन्दुस्तान में अधिकांश किसानों की खेती लाभदायक नहीं है। और अच्छी से अच्छी फसल में भी एक परिवार का बसर नहीं हो सकता। फल यह होता है कि किसान को कोई न कोई दूसरा पेशा ढूँढना ही पड़ता है और किसान पेशा लोगों के लिए दूसरे सहायक धंधे का प्रबन्ध करना आवश्यक होने के कारण देहात का जीवन जटिल हो जाता है।" सर हेनरी रू का खयाल है कि कृषि की उन्नति होने में यह एक मुख्य बाधा है और खुद इसी समस्या का हल सहज नहीं है। हिन्दुस्तान की नैतिक और साम्पत्तिक उन्नति की रिपोर्ट से उतारे दे दे कर वे इस बात को सिद्ध करते हैं कि कई प्रान्तों के किसानों को ऋतु की कठिनाइयों से साल में ४ महीने से अधिक बेकार रहना पड़ता है । इस लिए लेखक को इसका खेद है कि वे मुर्गियाँ पालने, सूअर पोसने, बागबानी, या रेशम के कीडे पालने के व्यवसाय क्यों नहीं करते जिन पर थोडी खेती पर निर्भर रहने वाले दूसरे देश के किसान अपना गुजर करते हैं ।

ये सभी लेखक आखिर हाथ-कताई को क्यों छोड देते हैं? शायद आत्मरक्षा का कोई सूक्ष्म भाव हो जो इन लेखकों और विचारकों से उस एकमात्र सहायक धंधे को भुला देता है जिसके जरिये किसानों के परिवारों को सहायता मिलेगी, और जिसके विरुद्ध यह उज्र नहीं होगा कि 'सामाजिक नियम स्त्रियों के लिए मिहनत मजदूरी के विरुद्ध हैं' या 'यह नयी चीज है।' उनके पुरखे यह बात जानते थे और सबसे बडी बात तो है कि ऐसे सहायक धंधे से जो अधिक कपडा बनता था हिन्दुस्तानियों की जरूरत पूरी करके यूरोपवालों का भी ढांकता था । (यं. इं.)

च० राजगोपालाचारी

अस्पृश्यता की गुत्थियां

भाई गोविन्ददास जादवदास (गोविन्द भाई ढेढ जाति के) ने एक पत्र भेजा है । उसका मतलब यह है कि अगर अस्पृश्यता को दूर करना है तो फिर अस्पृश्यों के लिए अलग स्कूल, मन्दिर, कुँवे वगैरह क्यों बनें ? यह दलील योंही छोड देने लायक है ही नहीं । द० अफ्रीका में ऐसा ही सवाल उठा था और अब भी उठता ही है । वहां हिन्दुस्तानियों के लिए अलग स्कूल खोलने का अर्थ है उनकी अस्पृश्यता की आयु बढाना । यह दलील खुद मैंने की है । जिसके पांव में बवाय फटती है वही बवाय का दर्द समझता है । इस न्याय से भाई गोविन्द जी का दुःख मैं समझ सकता हूँ ।

किन्तु जहां मैंने देखा कि जो चीज है ही, उसकी हस्ती न मान कर चलना ही मूर्खता है वहां मैंने भेद का अस्तित्व जान समझ कर ही अपना काम किया है । इस तरह वहां मैंने अलग स्कूलों की बात स्वीकार कर ली । वहां रेलगाडी में मैंने हिन्दुस्तानियों के लिए दूसरे और पहले दर्जे के अलग डब्बे रखने की बात भी स्वीकार कर ली । जैसे गोविन्द जी उनका विरोध करते हैं, वैसे मैंने भी किया । किन्तु जहां भेद के अस्तित्व के ही मिट जाने का भय पैदा हुआ, वहां मैंने वैसे भेद को स्वीकार किया जो भेद में भी हलका से हलका भेद होवे । जैसा कि पहले हिन्दुस्तानी लोग केवल तीसरे दर्जे में ही मुसाफिरी कर सकते थे । आन्दोलन के अन्त में उनके लिए दूसरे और पहले दर्जे के भी टिकट काटने का हुक्म हुआ किन्तु उसके साथ ही हिन्दुस्तानियों के लिए पहले दूसरे दर्जे की गाडियां रखने का ठहरा । विरोध किया किन्तु अन्त में इतना भेद स्वीकार कर लिया । राज सत्ता सुभीता कर सकती है किन्तु हमारे साथ बैठने पर दूसरे को लाचार कैसे कर सकती है ?

ऐसी विचार सरणी के अनुसार ऐसा निश्चय ऊपर आया जब तक अंत्यज सामान्य मन्दिरों का उपयोग न कर सकें तब तक उन्हें मन्दिर इत्यादि का उपयोग ही न मिले, इसकी अपेक्षा अच्छा है कि उनके लिए अलग संस्थाएँ बनें और उन्हें उनका उपयोग मिले । वातावरण में से तो अब अस्पृश्यता चली गयी है किन्तु तौभी बहुत लोग अभी उसे व्यवहार से दूर करने को तैयार नहीं हुए हैं । जब तक स्थिति है तब तक अत्यंजों के जो मित्र हैं, वे क्या करें ? शुद्धि का सबूत किस प्रकार देवें ? जवाब यही होगा कि अंत्यजों के लिए मन्दिर, इत्यादि बना कर ।

भाई गोविन्द जी कहते हैं कि ऐसे मन्दिर वगैरह भले बनें किन्तु, 'अंत्यजों के लिए' यह विशेषण उन्हें न दिया जाय । ऐसे विशेषण कोई देता ही नहीं है । जो मन्दिर इधर हाल में बन रहे हैं, उनका उपयोग उनके बनाने वाले अंत्यजों के दूसरे मित्र तो करते ही हैं । इस दृष्टि से अंत्यजों के निमित्त बनायी गयी संस्थाएँ सार्वजनिक हैं । किन्तु उन पर पहला हक है अंत्यजों का । उनके उपयोग में पहला विचार अंत्यजों का होता है और सब से पहले उनकी सुविधा देखी जाती है ।

अगर भाई गोविन्द जी जैसे अंत्यज भाइयों का मैं दुःख समझ [illegible]ा हूँ तो मैं उन्हें कहता हूँ कि वे मानें कि मन्दिर वगैरह बनाने [illegible] आन्दोलन पवित्र स्तुत्य और अंत्यजों को लाभदायी है।

मो० क० गांधी

(नवजीवन)

आसाम का खादी प्रदर्शन

आसाम के लिए खादी प्रदर्शिनी नयी बात थी [illegible]गर उन्होंने उसे खूब निबाहा। अहमदाबाद से कानपुर तक की [illegible]दर्शनियों में खादी के कपडे में उन्नति दिखलायी गयी थी और [illegible]ासाम में भांति भांति की खादी की विशेषता देखने में आती [illegible]ी। यह बात आसाम में साफ साफ दिखायी पडी कि लोगों के पसन्द माफिक खादी बुनने, छापने, तथा उस पर कसीदे काढने [illegible]की ओर खादी बनानेवालों और बेचनेवालों का ध्यान गया है।

खादी पर नकशे काढने में तो मीठी बहन ही पहला पद [illegible]ा सकती हैं; उनके नमूनों को कोई भाग्य से ही टप सकता [illegible]ा। उन नमूनों में बंबई की मध्यवर्ग की महिलाओं की चतुराई [illegible] चित्रकला स्पष्ट दिखलायी पडती थीं। बंबई की इस साहसिक [illegible]हिला के खादी पर कसीदे कढवाने और बेचने के प्रयत्न आज [illegible]बई में मध्यवर्ग की ३०० बहनों को काम और पैसा मिल रहा है।

बंबई के चर्खा-संघ के खादी भंडार की विशेषता भी कम न [illegible]ी। भंडार के माल की धुलाई, सफाई, छपाई और सिलाई [illegible]ाकर्षक थीं। इस बारे में सभी प्रान्त इस भंडार से शिक्षा [illegible]ते थे। बंगाल के खादी-प्रतिष्ठान ने तो अपना काम [illegible]दिखलाने में हद ही कर दिया था। खादी-संस्थाओं के [illegible]िए प्रतिष्ठान का प्रदर्शन आदर्श-पाठ था। प्रतिष्ठान के खादी [illegible]ाम की प्रगति के आंकडे जुदा जुदा रीति से लिख और सज[illegible]र दिखाये जाते थे। ढाका के पुराने मलमल के बुनने की कला [illegible]ब भी बंगाल में जीती है। खादी छापने और छपाने के [illegible]ांचे बनाना दिखलाया गया था। आचार्य राय के देशी-रंग की [illegible]क्रिया से रँगे गये भिन्न २ रंग के सूत भी दिखलाये गये [illegible]। मिट्टी और जस्ते की तकली, उसकी पूनी के लिए नाजुक [illegible]नकी, तकुवे, चर्खे, बारडोली हाथ पींजन, और मुसाफिरी का चर्खा [illegible]गैरह बिक्री के लिए रक्खे गये थे। प्रतिष्ठान के बिक्री के कपडे [illegible]रह तरह के थे मगर उनकी विविधता और सजावट आकर्षक थीं! [illegible]जैसे प्रतिष्ठान ने अपना काम सजाया था, वैसे ही अभय आश्रम [illegible] भी। ये दोनों प्रतापी संस्थाएँ बंगाल का खादी-काम खूब [illegible]ला रही हैं। इनके अलावा बंगाल की तीन दूसरी संस्थाओं [illegible] भी बिक्री के लिए अपनी खादी प्रदर्शन में ला रक्खी थी। [illegible] संस्थाओं से मालूम होता था कि बंगाल में खादी-काम पारमा[illegible]र्थ-वृत्ति से भले प्रकार फैल रहा है।

बंगाल के समान विहार ने भी अपना खादी-काम दिखलाने में कुछ [illegible]ठा नहीं रक्खा था। सुन्दरता में तो विहार की कोकटी सबको मात करती [illegible]ी जिस किसी को सस्ती खादी चाहिए वह विहार के खादी भंडार [illegible] जा पहुँचता। विहार की खादी की नाक थे, चर्खा-संघ की [illegible]हारशाखा और मलखाचक के राम विनोद बाबू का गांधी कुटीर। [illegible]र्खा-संघ की पंजाब, संयुक्त प्रान्त, आन्ध्र और तामिलनाड [illegible]शाखाओं ने भी प्रदर्शन और बिक्री के लिए अपनी २ खादी ला [illegible]रक्खी थी। आसाम की शाखा ने भी अपने सूत, खादी, रेशम [illegible]गैरह के नमूने रक्खे थे। राजपूताना की खादी का भी एक [illegible]डार था ही। सभी खादी भंडारों को लायी हुई खादी की कीमत [illegible]मोटे हिसाब से कोई १ लाख आंकी जा सकती है। ऐसा [illegible]माना जा सकता है कि उसकी एक तिहाई बिक गयी होगी। ऐसा माना जा सकता है कि सभी खादी भंडारों को इस बिक्री में घटी ही हुई मगर सभी एक दूसरे की विविधता और विशेषता देख सुन कर अपनी त्रुटियों को समझ सके हैं और इसकी कीमत कुछ कम न समझी जायगी।

इस रीति से खादी प्रदर्शन को उद्देश और उपयोगिता की दृष्टि से सफल ही गिनेंगे। आसाम के प्रदर्शन में सूती काम के अलावा रेशम के काम की विशेषता थी। मूँगा और एंडी के हाथ कते, हाथबुने रेशमी कपडों की कई एक दूकानें थी। आसाम की बुनाई का काम दिखलाने के लिए भी आसामवासियों ने बहुत प्रयत्न किया था। आसाम सरकार के उद्योग-विभाग ने हाथ के सूत और रेशम की बुनाई के विविध तरीके दिखलाये थे। नकशेदार कपडे बुनने का उनका प्रयोग बहुत आकर्षक था। दूसरी ओर डिब्रूगढ के लडकों की ओर से चलते हुए नाजुक हाथ करघों और आसाम की बहिनों के सादे हाथ-करघों के उपर खादी की बुनाई का काम इस देश की आदर्श सादगी के नमूने थे। सब मिल कर आसाम का खादी प्रदर्शन देखनेवालों के सामने खादी-उद्योग की सफलता सिद्ध कर रहा था।

(नवजीवन)

लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम

साप्ताहिक पत्र

बनारस

प्रो० कृपालाणी के गांधी आश्रम के सालाना जलसे में शामिल होने। हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की भी मालवीय जी ने गांधी जी के कुछ बात चीत करायी 'गांधी आश्रम' की बातें करने के पहले मैं इसी बातचीत का मुख्तसर में उल्लेख कर लूंगा। शायद गोहाटी के खादी प्रदर्शन का मालवीय जी पर बहुत असर पडा था। उन्होंनें गांधी जी से कहा था कि 'आप जब कभी बनारस आवें मेरे विश्वविद्यालय के लडकों को भी खादी का सन्देश सुनाने की कृपा करें।' गांधी जी का भाषण सुनने को कोई दो हजार लडके एक बडे शामियाने में इकट्ठे हुए थे। छह साल हुए जब गांधी जी ने उन्हें इससे अधिक विकट सन्देश सुनाया था। इस समय तों उन्होंने खद्दर और पवित्रता का सादा सन्देश सुनाया। उन्होंने कहा, 'कई ओर से मुझे यह सलाह मिलती है कि आप अपनी बातें सुना चुके। अब आपकी कोई सुनना नहीं चाहता। खद्दर की बातें करने से आप बाज क्यों नहीं आते? मगर मैं अपना प्रिय मंत्र सुनाने से बाज क्यों आऊँ? मेरे सामने तो प्राचीन काल के प्रह्लाद का उदाहरण है जिसने मरण से भी अधिक कष्ट सहना स्वीकार किया मगर राम नाम छोडना नहीं। और मुझे तो अभी कोई कष्ट नहीं सहना पडा है। मेरे कानों में मेरे देश की दुर्दशा का जो एक मात्र सन्देश सुनायी पडता है, उसे मैं क्यों कर छोड दूँ? पंडित जी ने तुम्हारे लिए लाखों जमा किये हैं और अब भी राजों महाराजों से लाखों जमा कर रहे हैं! ऊपरी दृष्टि से तो यह रुपया राजों, महाराजों से आता हुआ मालूम होता है मगर सचमुच में तो यह इस देश के करोडों गरीबों की ही कमाई है। यूरोप के विरुद्ध हमारे देश में धनियों का धन गरीबों की गरीबी से बढता है और उनमें से अधिकांश को एक जून भी भर पेट खाना मयस्सर नहीं होता। इस प्रकार तुम जो शिक्षा पाते हो उसका खर्च चुकाते हैं मुफलिस गांववाले और उन्हें इस शिक्षा का संयोग स्वप्न में भी नहीं मिल सकता। यह तुम्हारा कर्तव्य है कि वह शिक्षा लेने से इनकार करो जो गरीबों को भी प्राप्य न हो मगर आज तुमसे मैं यह नहीं माँगता। मैं तुमसे उन गरीबों का जरा सा बदला चुकाने को कहता हूँ। उनके लिए थोडा यज्ञ करो। गीता का वचन है कि जो अपना यज्ञ किये बिना खाता है वह अपना भोजन चुराता

है । महायुद्ध के जमाने में ब्रिटिश नागरिक जनता से इस की माँग की गयी थी कि हर घर के आँगन में थोडे आलू बोये जायँ और थोडी सिलाई हुआ करे । हमारे लिए इस युग का यज्ञ है चर्खा चलाना। मैं इसके विषय में दिन रात बातें करता रहा हूँ, लिखता रहा हूँ। आज मैं और कुछ नहीं कहूंगा । अगर तुम्हारे दिलों पर गरीबों की इस करुण कहानी का कुछ भी असर पडा हो तो तुम कल कृपालाणी जी के खादी भंडार पर धावा करो और उसमें एक गज भी खद्दर बाकी न छोडो और आज अपनी जेबें खाली कर दो । पंडित जी ने भिक्षा-कला में कमाल हासिल किया है । मैंने यह विद्या उन्हीं से सीखी है । अगर वे राजों महाराजों पर कर बैठाने में उस्ताद हैं तो मैं भी गरीब लोगों की जेबें उनसे भी अधिक गरीबों के लिए खाली कराने में वैसा ही बेशर्म हूँ ।'

यह तो हुआ उनके वार्तालाप के पहले हिस्से का संक्षेप । दूसरे में उन्होंने पवित्रता के लिए जोरदार अपील की । 'तुम्हारे लिए लाखों रुपये माँगने, महलों के समान इन मकानों को उठाने में मालवीय जी का एक मात्र उद्देश्य है देश में मातृ-भूमि की सेवा के लिए खरे जवाहिर भेजना जो स्वस्थ और सफल नागरिक होंगे । वह मतलब पूरा न हो सकेगा अगर तुम पच्छिम से आने वाली हवा में बह चले। वह अपवित्रता की वायु है । यूरोप में कुछ मित्र हैं, बहुत ही कम हैं, जो इस जहरीली प्रवृत्ति से जबर्दस्त मोर्चा ले रहे हैं । मगर अगर तुम सचेत रहते चेत न जाओगे तो अनीति की बढिया जिसका बल दिन पर दिन बढता जा रहा है तुम्हें बहा ले जायगी । मैं अपनी सारी शक्ति से तुम्हें पुकार पुकार कर कहता हूँ कि 'सँभलो, चेतो और जलने के पहले ही भाग चलो ।'

मालवीय जी ने हृदय-स्पर्शी भाषण में गांधी जी के एक एक शब्द का समर्थन किया और विद्यार्थियों को गांधी जी की चार माँगें पूरी करने को कहा । वे माँगें हैं: (१) धार्मिक कृत्य के समान नित्य चर्खा चलाना, (२) खद्दर पहनना, (३) कोष में चन्दा देना और (४) ब्रह्मचर्य-पालन । तीसरी माँग का पालन तो तुरत ही हुआ — सभा में बैठे बैठे ही ८५०) रु० जमा हो गये — औरों के विषय में तो भविष्य ही चल कर बतलावेगा ।

९ तारीख, श्रद्धानन्द-दिवस को मालवीय जी और गांधी जी जलूस के साथ साथ दशाश्वमेघ घाट पर पैदल गये और वहां स्नान करके स्वर्गीय आत्मा के लिए उन्होंने जलाञ्जलि दी और फिर काशी विश्वनाथ के मन्दिर में प्रार्थना की । मन्दिर से कुछ ही गज दूर यह जलूस एक सभा बन गया और महिम्न स्तोत्र (शिव-स्तुति) का पाठ होने लगा । देवदास भाई ने 'राम-धुन लागी ' कहलाया और गांधी जी ने भाषण किया । उन्होंने स्वामी जी के बलिदान के मुख्य आशय पर जोर दिया यानी आत्मशुद्धि, धर्मशुद्धि, आत्म संयम के लिए निरन्तर प्रयत्न और उनके जीवन के प्रधान मंत्र ब्रह्मचर्य पर । हिन्दू महासभा की परिभाषा के अनुसार हिन्दू माने जाने वाले सभी किसी ने — यहां तक कि बौद्ध धर्मानुयायी एक जर्मन महिला ने भी-विश्वनाथ मन्दिर की प्रार्थना में भाग लिया । मालवीय जी के प्रमाण पर मैं यह कहता हूँ कि उसमें अछूत भी दिखायी पडते थे ।

अब गांधी आश्रम की बात लीजिए । इसका जीवन विघ्न बाधाओं से परिपूर्ण रहा है । हिन्दू विश्व विद्यालय छोड कर निकले हुए दो सौ विद्यार्थियों को लेकर काशी विद्यापीठ का बनना, उसके बाद लडकों की संख्या में और भी बढती होकर, देश में उदासीनता की लहर घूमने से फिर बसेरा उजड जाना, और इस ज्वार भाटे के बीत जाने पर उनसे बचे हुए कुछ दृढ-प्रतिज्ञ आत्माओं का खादी-काम में सारी शक्ति लगा दे[illegible] यही तो इसका इतिहास है । जिस दृढता, निश्चयता, [illegible] साहस और उद्दाम आशा से इन्होंने अपना काम निबाहा है, [illegible] किसी भी स्वतंत्रता समर के सैनिकों के लिए गौरवास्पद [illegible] कोई ४ साल हुए मैं आश्रम में गया था । उस समय [illegible] वासियों को विरुद्ध परिस्थिति से लडना पडता था । [illegible] उन्हें अध्यापक कृपालाणी की अध्यक्षता में अपना सब काम [illegible] हुए, यहां तक कि बाग के लिए मोट भी खींचते हुए, [illegible] भी साफ करते हुए देखा और वे अपना गुजर करते थे [illegible] महीने पर । उनकी दृढनिश्चयता की जीत हुई और पहले [illegible] वे थोडा पढने लिखने के अलावा अपने अश्रम में ही [illegible] कताई बुनाई और थोडी बढईगीरी पर ही सन्तोष कर लेते [illegible] अब उनके कई खादी-केन्द्र हैं, जैसे धमारा, अकबरपुर, [illegible] मिल्की और मुजफ्फरनगर । केन्द्रों में सूत और कपडे के [illegible] की पद्धति पर काम होता है और एकाध केन्द्रों में [illegible] से सीधे खादी ही ली जाती है और जुलाहे खुद पडोस [illegible] कतवा लेते हैं । कताई और बुनाई पर आश्रम के कार्यकर्ता [illegible] निगाह रखते हैं और उनका कार्य विवरण बतलाता है कि [illegible] खादी दिनों दिन अधिक अच्छी, और सस्ती बनती गयी [illegible] इन आंकडों से पिछले पांच साल के काम का थोडे में [illegible] मिल जाता है ।

साल	उत्पति (रुपयों में)	बिक्री (रुपयों [illegible]
१९२१	४८)	३,०१[illegible]
१९२२	४,७५९)	२१,१५[illegible]
१९२३	२३,१२३)	२३,११[illegible]
१९२४	१६,०००)	२१,५०[illegible]
१९२५	३६,१५७)	३२,७६[illegible]
१९२६	६५,३१२)	७१,८०[illegible]

१ गज कपडे का दाम

चौडाई	१९२१	१९२२	१९२३	१९२४	१९२५	१९[illegible]
३६ इंच	९ आने	८ आने	७॥ आने	८ आने	७॥ आने	७[illegible]
४२ ,,	×	×	७॥। से ८। आने	८। से ८॥। आने	८॥ से आने	६[illegible] ८[illegible]
४५ ,,	×	×	९ से ९॥ आने	८॥ से ९॥ आने	८॥ से ९ आने	६॥[illegible] ८[illegible]
४८ ,,	×	×	×	९। से १०॥ आने	९ से ९॥ आने	८॥[illegible]

यहां यह बात याद रखनी चाहिए कि हर हालत में दा[illegible] घटती हुई है, कपडे में साथ साथ उन्नति होते जाने पर भी । [illegible] हॉल में एक सुन्दर, छोटा प्रदर्शन किया गया था । सालों [illegible] की उन्नति का भारी गवाह तो वहां का प्रबन्ध ही था । [illegible] के अंकों में दूसरे प्रान्तों से लायी गयी के भी अंक [illegible] है । इस प्रान्त में तैयार होने वाली खादी के हिसाब से [illegible] की इस प्रान्त के निवासियों का खादी प्रेम बहुत ही कम [illegible] बनारस का दौरा तब सफल कहा जा सकेगा अगर आश्रम [illegible] खादी के लिए लोगों के दिलों में कुछ चाह उत्पन्न हो सकी [illegible]

(यं० इं०) म० दे[illegible]

आश्रम भजनावलि

पांचवीं आवृत्ति खतम हो गयी है । अब जितने आर्डर [illegible] हैं, दर्ज कर लिये जाते हैं । आर्डर भेजनेवाले सज्जन [illegible] शिकायतें भेजना शुरू न करें । छठीं आवृत्ति तैयार हो रही है [illegible]

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीव[illegible]

'इंडिपेन्डेन्स'

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक २१

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनंद | अहमदाबाद, माघ बदी ५ संवत् १९८४ गुरुवार, १२ जनवरी १९२८ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ३४

आत्मा का शिक्षण

विद्यार्थियों के शरीर और मन की शिक्षा की अपेक्षा आत्मा की शिक्षा में मुझे बहुत परिश्रम पडा। आत्मा को विकसाने में मैंने धर्म पुस्तकों पर बहुत ही कम आधार रक्खा था। मैं यह मानता था कि हरएक विद्यार्थी को अपने अपने धर्म के मूल तत्व जानने चाहिए, अपनी धर्म पुस्तकों का सामान्य ज्ञान होना चाहिए। इसलिए मैंने यह सुविधा कर दी थी कि जिसमें उन्हें यह ज्ञान मिल जाय। पर इसे मैं बुद्धि की शिक्षा का एक अंग मानता हूँ। टॉल्सटॉय आश्रम के लडकों को सिखलाना शुरू करने के पहिले ही मैंने यह देख लिया था कि आत्मा की शिक्षा तो एक अलग ही वस्तु है। आत्मा का विकास करना है चारित्र गढना, आत्मज्ञान पैदा करना। यह ज्ञान पैदा करने में बालकों को बहुत ही मदद चाहिए और इसके बिना और दूसरा ज्ञान व्यर्थ है; मैं तो मानता हूँ कि हानि-कारक भी हो सकता है। यह वहम मैंने सुना है कि आत्मज्ञान की खोज तो चौथे पन में होनी चाहिए। पर जो इस अमूल्य वस्तु आत्मज्ञान को चौथे पन तक मुल्तवी रखता है, वह इसे पाता ही नहीं किन्तु यह सार्वत्रिक अनुभव देखने में आता है कि वह बुढापा या दूसरा दयाजनक बचपन पाकर पृथ्वी का भाररूप होकर जीता है। इन शब्दों में १९११-१२ में ये विचार मैं शायद नहीं लिखता मगर इसकी तो मुझे पूरी याद है कि उस समय मेरे मन में इस तरह के विचार उठा करते थे।

आत्मिक शिक्षा भला दी कैसे जाय? बालकों से भजन गवाता, उन्हें मैं नीति की पुस्तकें पढ सुनाता, पर इतने से संतोष नहीं होता था। ज्यों ज्यों मैं उनके निकट आता गया, मैंने देखा कि यह ज्ञान पुस्तकों के जरिए तो दी ही नहीं जा सकती। शरीर की शिक्षा शरीर की कसरत से, बुद्धि की उसीकी कसरत से दी जाती है। उसी भांति आत्मा की शिक्षा आत्मा की ही कसरत से दी जायगी। आत्मा की कसरत शिक्षक के रहनसहन से ही दी जा सकती है इसलिए युवक उपस्थित हों या न हों मगर शिक्षकों को तो हमेशे ही सावधान रहना चाहिए। लंका में बैठा हुआ शिक्षक अपने आचार से अपने विद्यार्थी की आत्मा को हिला सकता है। मैं खुद तो झूठ बोलूँ मगर अपने शिष्यों को सच्चा बनाने का प्रयत्न करूँ तो वह बेकार जायगा। डरपोक शिक्षक शिष्यों को वीरता नहीं सिखला सकता। व्यभिचारी शिक्षक शिष्यों को संयम कैसे सिखलावेगा। मैंने देखा कि मुझे अपने पास रहनेवाले युवकों और युवतियों के सामने पदार्थ-पाठ बन कर रहना चाहिए। इससे मेरे शिष्य मेरे शिक्षक बने। मैंने समझा कि अपने लिए नहीं तो कम से कम उनके लिए मुझे अच्छा बन कर रहना चाहिए और यह कहना होगा कि टॉलस्टॉय आश्रम में मेरा बहुत कुछ संयम इन युवक युवतियों का आभारी है।

आश्रम में एक लडका बहुत तूफान किया करता था। झूठ बोलता, किसीको कुछ गिनता ही नहीं, दूसरों के साथ लडता था। एक दिन उसने बहुत ऊधम किया। मैं घबराया, मैं विद्यार्थियों को कभी दंड नहीं दिया करता था। इस समय मुझे बहुत क्रोध चढा। मैं उसके पास गया। उसे समझाने लगा, मगर वह किसी तरह समझता ही नहीं था। मुझे धोखा देने का भी उसने प्रयत्न किया। मैंने पास पडी हुई रूल उठा कर उसकी बांह पर दे मारी। मारते हुए मैं कांप रहा था। यह शायद उसने देख लिया होगा। मेरी तरफ से ऐसा अनुभव तब तक किसी विद्यार्थी को नहीं हुआ था। वह रो पडा। मुझसे माफी मांगी। वह लकडी लगने के दर्द से नहीं रोता था। वह इतना ताकतवर था कि अगर सामने खडा हो जाता तो मेरी बराबरी कर सकता था। उसकी उम्र कोई सतरह साल की होगी। गठन से मजबूत था। पर मेरे रूल मारने में उसने मेरा दुःख देख लिया। उस घटना के बाद उसने मेरा विरोध कभी नहीं किया था। पर मुझे रूल मारने का पछतावा आज तक रहा है। मुझे भय है कि मैंने उसे मार कर अपनी आत्मा का नहीं, परन्तु पशुता का दर्शन उसे कराया। बालकों को मार मार कर सिखलाने का मैंने हमेशे विरोध किया है। ऐसा मुझे एक ही प्रसंग याद है जब कि मैंने अपने लडकों में से किसीको मारा था। इसका निर्णय मैं आज तक नहीं कर सका हूँ कि वह दंड देने में मैंने योग्य काम किया था या अयोग्य। इस दंड के औचित्य में मुझे शङ्का है क्योंकि उसमें क्रोध भरा हुआ था और दंड देने का भाव था। अगर उसमें केवल मेरे दुःख का प्रदर्शन होता तो मैं उसे उचित गिनता। इस प्रसंग के बाद तो मैंने विद्यार्थियों को सुधारने का ज्यादह अच्छा तरीका सीखा। इस कला का उपयोग अगर मैंने इस अवसर पर किया होता तो मैं नहीं कह सकता कि कैसा परिणाम

-आता । पर इस प्रसंग ने विद्यार्थियों के प्रति शिक्षक के कर्त्तव्य के बारे में मुझे विचार में डाल दिया । इसके बाद युवकों के ऐसे ही दोष हुए मगर मैंने दण्ड नीति से काम नहीं ही लिया । यों आत्मिक ज्ञान देने के प्रयत्न में मैं आप ही आत्मा के गुण और भी अधिक समझने लगा ।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

प्रायश्चित्त

१

[श्रीयुत चक्रवर्त्ती राजगोपालाचार की एक यह भी महाभिलाषा जान पडती है कि वे यं. इं. के लिए हृदयद्रावक कहानियां लिखें। उनकी और कहानियां जैसी इस कहानी की भी एक शिक्षा है ही। यह एक 'अस्पृश्य' कहानी है । अगर इससे किसी 'स्पृश्य' या 'सछूत' का पत्थर सा कलेजा हिल जाता! **मो० क० गांधी**]

गांव के बाहर इमली की बगिया में लडके बंदरों को मार मार कर खेल रहे थे । बडे लडकों को तो इसमें बहुत मजा आता था, मगर छोटे लडकों और बंदरों की पारी पारी से आफत भी आ जाती थी । मगर शोरोगुल से निर्बलों को भी साहस आ जाता था और यह खेल बहुत देर तक चलता रहा ।

एक तरफ कोने में से बडे जोर की चीख सुनायी पडी । लडके दौड पडे । वहां पर गांव भर के प्रिय बेचारे मुकुन्दन पर एक जबर्दस्त बंदरी ने हमला किया था । उस बंदरी के बच्चे को लडकों ने खदेडा था और वह पेड पर से गिर पडा । मुकुन्दन ने बच्चे को पकड लिया, और उसकी माँ अपने बच्चे को पकडनेवाले पर टूट पडी थी । बंदरी ने मुकुन्दन का गला पकडा था और उसके मुँह और हाथों को नोच रही थी । लडके चिल्ला उठे, छोड दो, 'बच्चे को छोड दो ।'

पर मुकुन्दन के होशहवास दुरुस्त कहां थे ? उसने समझा ही नहीं कि लडके क्या करने को कह रहे हैं । कोई लडका पास जाने का साहस करता नहीं था और उधर क्रोधान्ध बंदरी ने मुकुन्दन के और भी कितनी चोटें लगायीं । इतने में मरी कूद के आगे बढा और उसने मुकुन्दन के हाथ से बच्चा छीन लिया । मरी पारिया या अछूत लडका था । बंदरी मुकुन्दन को छोड मरी पर छूटी । मरी ने बच्चे को जमीन पर फेंक दिया और एक लकडी ले कर खडा हो गया । बंदरी अपने बच्चे को अपनी आड में कर के पीछे हटी । बच्चा माँ की पेट में सट कर लटक गया । बंदरी भाग कर पेड की सबसे ऊँची डाल पर जा बैठी । इधर मुकुन्दन जमीन पर बेहोश पडा था । लडके इतने डर गये थे कि मुकुन्दन के पास कोई ठहरा भी नहीं, उसकी सेवासंभाल कौन करे? लडके गांव की ओर चिल्लाते हुए भागे, 'मुकुन्दन मर गया।' 'बंदर ने मुकुन्दन को मार डाला!'

मरी का छोटा भाई भी भागा जा रहा था । मरी ने उसे बुला कर कहा:

'चिन्नन, जा घर में मा से माँग कर पानी ला ।'

यह कह कर मरी मुकुन्दन के पास बैठ कर उसके खून पोंछने लगा ।

थोडी देर बाद चिन्नन मिट्टी के बरतन में पानी लेकर आया । मरी ने वह पानी मुकुन्दन के मुँह पर छिडका जिससे मुकुन्दन ने आंखें तो खोलीं, मगर खून वैसे ही जोरों से बहता रहा ।

मरी ने कहा, 'चिन्नन, चलो मुकुन्दन की मा के पास उसे हम हाथ लगा कर पहुँचा आवें ।'

२

मुकुन्दन की मा विधवा थी । उसके पति को ज्वर आया था । पूरे तीस दिन ज्वर रहा । गांव के पंडितजी की दवा होती ही रही मगर ज्वर शान्त नहीं हुआ । शान्त हुआ तो आखिर ज[ान] लेकर ही । उसे परमात्मा का भरोसा था । बेचारी ने बडे धैर्य से यह विपत सही । उसका पति गांव में अपने खदुकों (कर्जदारों) को जो कुछ कर्ज दे कर मरा था, वह सब उसने इकट्ठा किया, [और] अपना खेत लगान पर दे दिया और जिसने खेत लिया था, [वह] समय पर लगान चुका दिया करता था । इस तरह वह बेवा किसी तरह घर चलाने लगी । मुकुन्दन शाला में भेजा गया । गांव में कहने सुनने को एक पाठशाला भी थी और उस समय के लिए [वह] काफी थी । घर पर वह मुकुन्दन को राम और हनुमान की [और] महाभारत की कथाएँ सुनाया करती थी । वैसी कमसिन और अकेली बेवा के लिए जिन्दगी भारी तो थी ही, मगर परमात्मा में विश्वास [रख] कर और धार्मिक आचरणों में बझी रह कर वह दिन काटती चली [आती] थी । मालूम होता था, मानों साक्षात् परमात्मा उसकी खोज [खबर] लिया करते थे । वह स्नान के बाद पूजा पाठ करके चौके के [पास] बैठी ही थी कि मरी और चिन्नन मुकुन्दन को लेकर पहुँचे, [और] उसके आगे रख दिया । मुकुन्दन को खून से तर देख कर [वह] उसकी ओर झपटी ।

'अभागे, इसका तुमने क्या किया है?' वह चिल्ला उठी। [इस] पर मुकुन्दन की माता का डर कर अपने बच्चे की ओर झपटने और अपने बच्चे के लिए बंदरिया के मुकुन्दन पर चोट करने [में] विलक्षण सादृश्य था ।

थोडे में मरी ने सारी कथा कह सुनायी ।

माता का दिल कृतज्ञता से भर गया और वह हँस कर बोली, 'बेटा, तुम कौन हो?'

मरी और चिन्नन पीछे हटते हुए बोले, 'हम लोग अ[छूत] हैं माई ।'

वह सब कुछ भूल कर चिल्ला उठी, 'अछूत लडके! क्यों [रे] यहां आने की हिम्मत ही कैसे की अभागा? और, और यहां चू[ल्हे] के पास! हाय भगवान्, अब मैं क्या करूँगी?'

उसने एक बडी सी चैली उठा ली और चिन्नन की ओर [उसे] चलाया । मरी कूद कर बीच में आ गया और खुद ही वह चो[ट] सह ली । मरी गिर पडा । चिन्नन चिल्लाता हुआ निकल भागा।

अब तो मुकुन्दन की मा घबरा कर और भी चिल्लाने लगी, 'पिशाच ने मेरा घर खराब कर दिया, चूल्हा अशुद्ध कर दिया [और] ऊपर से गांव भर में मेरी यह दुर्गति कहता फिरता है! हाय भगवान्!'

मरी उठ खडा हुआ । झुक कर घायल पैर को पकडे हु[ए] जिसमें बहुत दर्द हो रहा था, बोला, 'माई, हमने तो तुम्हारे लड[के] को बंदरी से बचाया जो उसके टुकडे टुकडे कर डालती और तुम[ने] उलटे मेरी टाँग तोड दी!'

'चूल्हे में जा तू और तेरा बंदर । अब इस पाप से मैं कैसे छूटूँगी? तेरी तो छाया का पाप लगता है और तू मेरे घर [में] घुस आया था और फिर चौके में और ठाकुर जी के घर में। हाय सत्यानाश हुआ । हाय राम, हाय भगवान, हाय कृष्ण, [इस] पाप से कैसे छुटकारा होगा?'

मरी अभी वहीं खडा खडा पैर मल रहा था । इसका पैर बहुत ही दुखता था ।

'निकल, निकल सत्यानाशी, तुरत निकल!' वह चिल्लाने लगी और उसके पैर में एक और लकडी मारी । बेचारा मरी बिलबिला उठा और बाहर सडक पर निकल भागा ।

इधर सामने दरवाजे पर भीड आ जुटी थी ।

लोग घबरा कर चिल्ला उठे, 'हैं, इस घर में यह साला अछूत घुस गया था!'

दूर पर सडक के परली किनारे मरी की माँ चिल्ला रही थी कि 'मेरे बच्चे को, मेरे लाल को मत मारो!'

३

पिछली घटना को हुए दो साल बीत चुके हैं। मुकुन्दन बडा हो गया है। दो मील दूर पर वह कमलापुर के मिडल स्कूल में अब पढने जाता है। वेलमपट्टी से दो और लडके वहां पढने जाते थे, इसलिए मुकुन्दन को उनका साथ रहता था। बंदर की कथा तो बिलकुल भूल ही गयी थी, सिवाय इसके कि मुकुन्दन के चेहरे पर एक लंबा सा दाग रह गया था।

मरी की मा, उसे इसके लिए कभी क्षमा नहीं कर सकी कि वह क्यों ऊँची जाति के लडके के मामले में दखल देने गया। उसे और जितनी तकलीफें हुईं, जो विपत्तियां आयीं, सब कुछ वह इसी एक पाप के कारण मानती थी। उसने बडी मुश्किल से कौडी कौडी जोड कर बकरे खरीदे और लगातार तीन साल तक एक एक बकरा मरियायी (अछूतों की देवी) देवी के वार्षिक पूजन के समय बलि देती गयी जिसमें देवी का कोप कुछ शान्त होवे। मगर देवी कब सुनती थीं? पहले उसका पति हफ्ते में एक बार ताडीखाने जाता था। अब तो वह रोज ही ताडी पीने लगा। गुरबत और तरद्दुद बढने के साथ ही साथ यह आदत भी दिनों दिन और भी बढती गयी। कभी कभी तो वह दिन भर बन बन मारी मारी फिर कर जो दो चार लकडियां चुन लाती और उन्हें बेंच कर जो दो पैसे पाती वह भी उसका अभागा पति ताडी पीने के लिए छीन ले जाता। लडके भूखे सो रहते। फिर वह नशे में गिरता पडता घर पर खाने के लिए आता, मगर यहां खाने को क्या रक्खा होता था? इसलिए उलटे उस बेचारी को मार भी खानी पडती थी।

मगर मार खाते खाते वह लडकों को धीरज देती थी, 'मरी, चिन्नन, बेटा, हमलोग अब कुलीवाले के आते ही कैन्डा (लंका) चले जायँगे और यह अभागा यहीं ताडीखाने में मरता रहे।'

उस साल पानी पडा ही नहीं। सभी खेत सूख गये। फस्ल चौपट हो गयी। गरीबों के लिए कहीं कोई काम नहीं रहा। सभी के लिए ये दिन मुश्किल के थे, मगर पारियों और चक्लियों की तो सबसे बुरी गत थी। उन पर तो मानों आसमान ही फट पडा था। लंका के चाय बागानों के लिए कुली भर्ती करने को कंगनी आया। ऐसे समय में भूखे मरते लोगों ने उसका स्वागत देवता के समान किया।

जमीन्दारों ने कहा, 'ये सब अनजान लोगों को फुसला कर बहकाने, चुरा ले जाने के लिए आये हैं। बेचारों को झूठी झूठी बातें सुना कर ठग लेते हैं।' मगर तौभी दुर्भाग्य के मारे मुसीबत जदा मर्द और औरत उसके साथ बडी खुशी से गये। मरी की मा ने भी उसीमें विपत्ति का अंत देखा। वह अपने लडकों को भी साथ लेती गयी। पहले तो उसका पति घर ही पर रह जानेवाला था, मगर चलने चलाने के समय वह भी साथ हो लिया। वह बार बार कसमें खाता गया कि 'अब फिर कभी शराब छुऊँगा भी नहीं।'

४

तीन साल और बीत गये। मुकुन्दन ने अपनी लोअर कक्षा की पढाई पूरी की। इसमें उसकी बडी तारीफ हुई। वह अपनी मा से बहुत प्रेम करता था। उसने सोचा "बस अभी दौड चलें, और मा से परीक्षा का फल सुनावें।" उधर लडके हठ कर रहे थे कि पास की पहाडी पर मंदिर देखने चलें और दिन भर वहीं खेल होता रहे। मुकुन्दन इस पर राजी होता ही नहीं था। एक बडे लडके ने कहा:

'मुकुन्दन, तुमसे तो लडकी ही भली। तुम्हें हमारे साथ चलना ही होगा। अगर कहीं देर हो गयी तो तुम्हारे घर पर मैं आप तुम्हें पहुँचा आऊँगा। चलो।'

'हां, हां, चलो, चलो।' एक साथ कई लडके बोल उठे। मुकुन्दन को सबकी बात रखनी ही पडी और यह मंडली चल पडी।

उस दिन कोई पर्व था। बहुत से यात्री आये थे। लडकों को खूब मजा आया। उस दिन वे खुल खेले। उनमें एक लडके का बाप रुई का तिजारती था जो अपने लडके को अपनी जान से अधिक मानता था। उस लडके के पास पांच रुपये का नोट अपने खर्च के लिए था। बस और क्या चाहिए? लडकों ने मिठाई खरीद कर खायी, और दिन भर धूप में धमा चौकडी करते फिरे।

पहाडी से उतरते समय मुकुन्दन ने कहा, 'रामकृष्ण, मेरा तो प्यास से गला सूखा जा रहा है।'

लडके बोल उठे, 'यहां आसपास में तो पानी का नाम निशान भी नहीं है।'

इस पर बडा लडका बोला, 'कैसे मूर्ख हो? क्या तुम्हें हनुमान पोखरे का पता नहीं है? वह यहीं पर तो है।'

सचमुच वहीं पास में ही एक चट्टान पर हनुमान जी की बहुत बडी मूर्ति चट्टान काट कर बनायी गयी थी। और उसीके पास एक छोटी तलैया भी थी। उसमें पानी बहुत गंदा था, मगर मुकुन्दन बहुत प्यासा था, और उसने पेट भर कर पानी पिया। कुछ देर तक लडके हनुमान जी की पूँछ को सराहते रहे और फिर वहां से रवाना हो गये। मुकुन्दन के घर पहुँचते पहुँचते अंधेरा हो गया था, घर घर संझौत जल गयी थी। मुकुन्दन की बोली सुनते ही उसकी मा दरवाजा खोलने को लपकी।

वह बोली, 'बेटा, मैं तो सारे दिन भर तेरा आसरा देखती रह गयी। आखिर तुझे इतनी देर कहां हुई? तुमने तो सबेरे कहा था कि परीक्षा-फल सुनते ही उठ कर घर चला आऊँगा।'

'हां मा, मगर हम लोग उस पहाड पर मंदिर देखने चले गये थे। हम सब लडकोंने आज खूब मजा किया। मैं तो लौट आना चाहता था, मगर किसीने आने ही नहीं दिया।'

'खैर उसके लिए कोई फिक्र नहीं। पर तुम्हारी परीक्षा का क्या हुआ बेटा?'

'मा, मैं अव्वल दर्जे में पास हुआ हूँ और सब लडकों में मैं अव्वल हुआ हूँ।'

माता ने मुकुन्दन को छाती से लगा लिया। और फिर रोने लगी। यह शायद उसकी जैसी कोई विधवा-माता ही समझ सकती है कि उस समय उसके मन में क्या क्या विचार उठ रहे थे।

५

हमने अभी अभी इस घर में खुशियाली देखी थी, आनंद देखा था। अब इन कुछ दिनों में ही यह क्या हो गया? सारा घर उजाड सा क्यों हो गया?

थोडे में, बात यह हुई कि उस पहाडी मंदिर से लौटने की ही रात बचारा मुकुन्दन बामार पड गया। उसके मुँह पेट चलने लगे। मगर किसीने यह नहीं समझा कि उसे हैजा हो गया है। उसकी सेवा करते करते उसकी गरीब मा को भी छूत लग गयी--उसे भी हैजा हो गया। गांवों में अज्ञान और दारिद्र दोनों का अखण्ड साम्राज्य रहता है। वहां बीमार अपने भाग्य से बचें तो भले ही बचें, मगर उनके लिए दूसरी कोई आशा नहीं है। पडोसियों की देखभाल से कहिए या भाग्य के बल से कहिए, मुकुंदन तो किसी तरह बच गया। मगर उसकी मा ने अंत तक किसीको अपनी

बीमारी का पता नहीं चलने दिया। जब वह अंत में उसे छिपा नहीं सकी, तब लोगों को खबर हुई, मगर अन्त में कोई कर ही क्या सकता था?

एक बार वायु के प्रकोप में चिल्ला कर उठ बैठी, "मेरे लाल, मेरे बेटे, तुझे अब कौन देखेगा?" और फिर गिर कर बेहोश हो गयी। कुछ देर बाद उसके प्राण-पंखेरू प्रयाण कर गये। मुकुन्दन अनाथ हो गया। (असमाप्त)

(यं० इं०) चक्रवर्त्ती राजगोपालाचारी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ बदी ५ संवत् १९८४

'इंडिपेन्डेन्स' बनाम स्वराज

कहा जाता है कि 'इंडिपेन्डेन्स'* का प्रस्ताव लॉर्ड बर्केनहेड का माकूल जवाब है। अगर यह बात संजीदगी से कही जाय तो हमें इसका पता ही नहीं है कि सुधार-जांच कमीशन बैठाने का और उसकी घोषणा के समय की परिस्थिति का क्या जवाब होना चाहिए। इस नियुक्ति के जवाब में यह जरूरी नहीं है कि कडे से कडे भाषण दिये जायँ, जबर्दस्त से जबर्दस्त बहादुरी की घोषणाओं से कुछ आना जाना नहीं है, इसके लिए तो कुछ वैसा ही माकूल और काफी काम कर दिखाना होगा जो ब्रिटिश मंत्री, और उनके साथी और पिछलगुओं की करनी के लायक हो। फर्ज किया जाय कि अगर महासभा किसी किस्म का कोई प्रस्ताव नहीं करती, मगर अपने पास के सारे के सारे विदेशी कपडे की होली जला डालती और सारे राष्ट्र से यह होली जलाने को कहती तो कुछ हद तक यह जवाब कहा जा सकता था गो कि उस नियुक्ति के अपमान का योग्य जवाब तो शायद ही होता। अगर महासभा हर एक सरकारी नौकर से उसके काम की हडताल करा देती— ऊंचे से ऊंचे न्यायाधीशों से ले कर नीचे मामूली पिउन या सिपाही, और फौजी सेना तक से उनका काम छुडवा देती तो यह यथेष्ट उपयुक्त जवाब कहा जाता। इतना तो इससे जरूर ही होता कि जिस बेफिक्री और लापर्वाई से आजकल ब्रिटिश मंत्रिगण और दूसरे हमारे गर्जनों तर्जनों को सुन रहे हैं, उनकी वह मनोवृत्ति डोल जाती।

यह कहा जा सकता है कि यह सलाह है तो बिलकुल पक्की और सही, मगर मुझे जानना चाहिए कि काम में किसी तरह नहीं लायी जा सकती। मेरा यह खयाल नहीं है। आज कितने ही भारतीय जो बोलते नहीं फिरते हैं, अपने अपने ढंग से उस शुभ दिन की तैयारी कर रहे हैं जब कि हमें गुलाम बनाये रखनेवाली इस सरकार को चलानेवाला एक एक हिन्दुस्तानी इस अराष्ट्रीय नौकरी से हाथ धो हटेगा। कहा जाता है कि जब कुछ कर दिखाने की ताकत न होवे तो जबान पर ताला लगाये रखने में ही साहस है, अक्लमंदी तो जरूर ही है। बिना कुछ किये महज बहादुरी के भाषण झांडने से केवल शक्ति का ही अपव्यय होगा। फिर सन् १९२० साल में जब देशभक्तों ने भाषणों के बदले कैद से प्रेम किया, कडे से कडे भाषणों की चमक जाती रही। बोली उनकी जरूरी है जिन्हें काठ मार गया हो। बकवादी के लिए तो संयम ही चाहिए। अंगरेज शासक हमारे भाषणों पर हमारी मखौल उडाते हैं, और अपने कामों से हमारे भाषणों के प्रति अपनी घृणा व्यक्त कर दिया करते हैं और जवानी कहने की बनिस्बत कहीं जोरों से उन्हीं कामों से ही हमें ताने देते हैं कि, 'देखेंगे तुम्हारी कितनी हिम्मत है? ताकत हो तो कुछ कर लो।' जब तक हम इस चितौनी का जवाब नहीं देते, मेरी सम्मति में, हमारी धमकानेवाली एक एक बात, एक एक शब्द हमारी ही जिल्लत है, हमारी नामर्दी का हमारा आप डंका पीटना है। मैंने देखा है कि जंजीरों में कसे हुए कैदी जेलरों को गालियां और शाप देते हैं जिससे जेलरों का महज मनबहलाव ही होता है।

इसके अलावा, क्या किसी अंगरेज के किसी अपमान के जवाब में हमारा ध्येय अचानक 'इंडिपेन्डेन्स' बन गया है? क्या कोई किसी को खुश करने के लिए या उसकी करतूतों का विरोध करने के लिए अपना ध्येय निश्चित करता है? मेरा कहना है कि अगर यह ध्येय है तो फिर हमें इसे कहना चाहिए और यह भूल कर कि दूसरे क्या करते या कहते हैं, उसकी प्राप्ति के लिए काम करते ही जाना चाहिए।

इस लिए हम यह भी समझ लेवें कि 'इंडिपेन्डेन्स' से हमारी क्या मंशा है। इंग्लैण्ड, रूस, स्पेन, इटली, तुर्की, चिल्ली, भूटान सभी को 'इंडिपेन्डेन्स' प्राप्त है? हम इनमें किसकी 'इंडिपेन्डेन्स' चाहते हैं? मुझ से यह न कहा जाय कि मैं वही बात सही मान रहा हूँ जो कि साबित की जाने को है। क्योंकि अगर यह कहा जाय कि भारतीय 'इंडिपेन्डेन्स' की चाह है तो यह दिखलाया जा सकता है कि कोई दो आदमी भारतीय 'इंडिपेन्डेन्स' को एक ही परिभाषा नहीं बतलावेंगे। बात असल यह है कि हम अपना अन्तिम ध्येय जानते ही नहीं। और वह ध्येय हमारी परिभाषाओं से नहीं मिलेगा बल्कि हमारे स्वेच्छापूर्वक या अनिच्छापूर्वक किये गये कामों से ही प्राप्त होगा। अगर अक्ल है तो हम वर्त्तमान को सँभालेंगे, भविष्य अपनी फिक्र आप ही कर लेगा। परमात्मा ने हमारे कार्यक्षेत्र और दृष्टि की मर्यादा बाँध दी है। इसलिए अगर हम आज का ही काम आज खतम कर लेवें तो वही बहुत होगा।

मेरा यह भी दावा है कि स्वराज के ध्येय से सब किसी को सर्वदा सन्तोष मिल सकता है। हम अँगरेजी पढे लिखे हिन्दुस्तानी यह मान लेने की भयंकर भूल अकसर अनजाने किया करते हैं कि अँगरेजी बोलनेवाले मुट्ठीभर आदमियों में ही सारा हिन्दुस्तान है। मैं हर किसीको चितौनी देता हूँ कि 'इंडिपेन्डेन्स' के लिए वे एक साधारण भारतीय शब्द बतलावें जो जनसमूह भी समझ सकें। आखिर हमारे ध्येय को ३० करोड आदमी किसी स्वदेशी शब्द से ही समझेंगे। और ऐसा एक शब्द है स्वराज जिसका राष्ट्र के नाम पर पहले पहल प्रयोग श्री दादाभाई नौरोजी ने किया था। यह शब्द सजीव है। हजारों भारतीयों के आत्मत्याग से यह शब्द पवित्र बन गया है। यह एक ऐसा शब्द है जो अगर हिन्दुस्तान के कोने कोने में प्रचलित नहीं हो गया है तो कम से कम ऐसे दूसरे शब्दों से अधिक प्रचलित तो जरूर है। इसे हटा कर बदले में कोई विदेशी शब्द जारी कर प्रचलित करना जिसकी उपयोगिता में हमें शंका है, एक प्रकार का अत्याचार है। शायद यह 'इंडिपेन्डेन्स' का प्रस्ताव ही इसका अन्तिम कारण है कि हम महासभा की कार्रवाई सिर्फ हिन्दुस्तानी में ही चलावें। तब तो इस प्रस्ताव के जैसा कोई दुर्घटना होना संभव ही नहीं थी। तब एक से एक वीर बोलनेवाले हम स्वराज शब्द की ही गौरवमय या हीन परिभाषा करने की कोशिश करते, स्वराज शब्द के अर्थ को ही विभूषित करने में सार्थकता मानते। क्या इससे ये 'इन्डिपेन्डेंट' लोग कुछ सबक सीखेंगे और जन समूहों में काम करने का निश्चय कर लेंगे और सामूहिक सभाओं जैसे कि महासभा वगैरह की सभाओं में अंगरेजी बोलनी बिलकुल छोड देंगे?

खुद तो मुझे उस 'इंडिपेन्डेन्स' की कोई चाह नहीं है जिसे मैं समझता ही नहीं गर मैं अंगरेजों के जुए से इतना चाहता

* 'इंडिपेन्डेन्स' शब्द का अर्थ शब्दकोषों में आजादी या स्वतंत्रता दिया हुआ है।

हूँ। इसके लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ। इसके बदले में मुझे अंधेरखाता भी मंजूर है। क्योंकि अँगरेजी शान्ति तो श्मशान की शान्ति है। एक सारे राष्ट्र की इस जीवन्त मृत्यु से तो कोई बात अच्छी ही होगी। इस शैतानी सल्तनत ने इस सुन्दर देश को आर्थिक, नैतिक और आध्यात्मिक, सभी दिशाओं में प्रायः सत्यानाश ही कर दिया है। मैं रोज देखता हूँ कि इसकी कचहरियां न्याय के बदले अन्याय करतीं, सत्य के गले पर छुरी फेरती हैं। मैं भयाकुल उडिस्सा को अभी देखे आ रहा हूँ। यह सरकार मेरे अपने ही स्वदेश बन्धुओं से अपने पापी निर्वाह के लिए मदद ले रही है। मेरे पास कई हलफें अभी रक्खी हुई हैं कि खुर्दा जिले में प्रायः तलवार की नोक के बल पर लोगों से लगान-बढती की स्वीकृति के कागजों पर दस्तखत कराये जा रहे है। इस सरकार की लासानी फजूलखर्ची ने हमारे राजों महाराजों का सिर फेर दिया है जो इसकी बंदर के समान नकल उतारने में नतीजों की ओर से लापर्वा हो कर अपनी प्रजा को धूल में मिला रहे हैं। अपना अनैतिक व्यापार कायम रखने के लिए वह सरकार नीच से नीच काम करने से बाज आनेवाली नहीं है। ३० करोड आदमियों को एक लाख आदमियों के पैरों तले दबाये रखने के लिए यह सरकार इतना बडा सैनिक खर्च का भार लादे हुए है जो आज करोडों आदमियों को अधभूखे रखता है, शराब से हजारों के मुँह अपवित्र करता है।

मगर मेरा तो धर्म है हर हालत में अहिंसा का बर्ताव करना। मेरा तरीका तो बलात्कार नहीं, मत परिवर्त्तन करना है। यह तो है आप कष्ट सहना, न कि जालिम को दुःख देना। मैं जानता हूँ कि मेरा शस्त्र अमोघ है--विफल नहीं जाता। मैं जानता हूँ कि सारा का सारा देश इसे अपना ध्येय बनाये बिना, इसका रहस्य समझे बिना भी इसे काम में ला सकता है। साधारणतः लोग अपने हर एक काम का रहस्य नहीं समझते। मेरी महत्वाकांक्षा तो 'इंडिपेन्डेन्स' से कहीं बहुत ऊँची है। भारतवर्ष के उद्धार के जरिए ही मैं पश्चिम की लूट मार से कुचले जाते हुए,—जिसमें इंग्लैण्ड का सब से बडा भाग है— संसार के सभी निर्बल देशों का उद्धार करना चाहता हूँ। हिन्दुस्तान जिस तरह अंग्रेजों का मत-परिवर्त्तन कर सकता है, अगर वह करे तो संसार के संयुक्त राज्य में आप एक मुख्य भागीदार हो सकता है जिसमें इंग्लैण्ड अगर चाहे तो हिस्सेदार होने का आदर पा सकेगा। अगर हिन्दुस्तान को केवल इसका पता ही हो जाय, तो संसार के संयुक्त राज्य में मुख्य सदस्य बनने का उसे हक है और वह उसकी बहुत बडी जनसंख्या, उसकी भौगोलिक परिस्थिति और युग युग की मिली हुई उसकी सांस्कृतिक विरासत के कारण। मैं जानता हूँ यह डींग मारनी है। पतित भारतवर्ष के लिए यह आशा करनी कि वह संसार को हिला देगा, निर्बल जातियों की रक्षा करेगा, धृष्टता मालूम हो सकती है। मगर 'इंडिपेन्डेन्स' के इस शोर के विरोध में मैं अब और अधिक दिन सत्य को छिपाये नहीं रह सकता। मेरी यह महत्वाकांक्षा ऐसी है जिसके लिए जीना उचित होगा, मरना उचित होगा। मैं; नतीजों के डर से कभी सर्वोत्तम स्थिति से जरा भी नीचे नहीं रहना चाहता। इस लिए कुछ सामयिक नीति के लिए ही मैं 'इंडिपेन्डेन्स' के ध्येय का विरोध नहीं करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि भारतवर्ष अपनी सच्ची स्थिति को प्राप्त होवे और उस स्थिति का वर्णन स्वराज शब्द से अधिक अच्छी तरह और किसी एक शब्द से नहीं हो सकता। उसका अर्थ निर्भर करेगा उस समय पर राष्ट्र जो कुछ काम कर सके, उस पर। भारतवर्ष के अपनी सच्ची स्थिति को प्राप्त होने के मानी हैं कि सभी देशों की वही दशा होगी।

(य॰ इं॰)

मोहनदास करमचंद गांधी

गोरक्षा का सच्चा रास्ता

१

इस देश में गायों के कसाईखाने जाने का खास कारण यह है कि गाय पालने में घटी होती है। आज हम इतने गरीब हो गये हैं कि अपने बच्चों को तो भर पेट खिला ही नहीं सकते, लाखों बेकार ढोरों को पालने की तो बात ही क्या? गो-बध रोकने का सब से अच्छा उपाय यह है कि गायों का दूध बढाया जाय, और दूध में मक्खन का प्रमाण बढाया जाय यानी ऐसी स्थिति लायी जाय कि गोपालन से भी चार पैसे मिल सकें। जब यह बात हो लेगी, तब तो कसाई भी गाय मारने के बदले पालने लगेगा क्योंकि गाय पालने में ही तब अधिक नफा रहेगा। हमारी राष्ट्रीय शक्ति एक तो आप ही बहुत कम है। अब बेकार बल्कि हानिकारक झगडों में उसे खराब करने के बदले अगर हम अपनी वह शक्ति गो-पालन और गो-सुधार के रचनात्मक कार्य में लगावें तो क्या ही अच्छा हो! जब यह काम पूरा हो लेगा, तब हम देखेंगे कि गाय ने अपनी रक्षा अपने आप ही करली है, उन बाहरी सहायताओं की उसे जरूरत नहीं रह गयी है जिनसे जितना लाभ पहुँचता है, उतनी ही हानि भी पहुँचनी संभव है।

अगर गो-सुधार का यह रचनात्मक कार्य हमें करना है तो अमेरिका के संयुक्त राज्यों में गो-सुधार के इतिहास से सहायता लेना लाभदायक होगा। वहां पर तो पशु-पालन में उन लोगों ने कमाल कर दिखाया है। जैसे कि पिछले ७५ वर्षों में, जितने दिनों के अंक हमें मिलते हैं, हम देखते हैं कि वहां की गायों का सालाना औसत दूध सन १८५० साल में १,४३६ पाउन्ड (१ पाउन्ड= ३९ तोले) से बढ कर सन १९२५ में ४,५०० पाउन्ड से भी बढ गया है यानी पौन शताब्दि में वहां की गायों का दूध तिगुने से भी अधिक बढ गया है। टी. आर. पर्टल के 'गो-पालन व्यवसाय का इतिहास' में से मैं नीचे के अंक देता हूँ:

संयुक्त राज्य अमेरिका में फी गाय का सालना औसत दूध

साल	पाउन्ड	साल	पाउन्ड
१८५०	१,४३६	१९१८	३,९३६
१८६०	१,५०५	१९१९	३,६००
१८७०	१,७७२	१९२०	३,६२७
१८८०	२,००४	१९२१	३,९४५
१८९०	२,७०९	१९२२	४,०२१
१९००	३,६४६	१९२३	४,२६०
१९१०	३,११३	१९२४	४,३६८
१९१७	३,७१६	१९२५	४,९३५*

सन १९२३ तक अमेरिका में किसी एक गाय का एक साल में अधिक से अधिक दूध ३७,३८१ पाउन्ड और मक्खन १,२१८ पाउन्ड हुआ था।

२

और अमेरिका वालों की इस आश्चर्यजनक सफलता का रहस्य क्या है?

पहले तो यह कि वे अपनी गोशालाओं के लिए सांड चुनने में बडी सावधानी रखते हैं। उन्होंने इस कहावत का रहस्य खूब समझ लिया है कि, सांड की कीमत आधी गोशाला के बराबर होती है। फल यह हुआ है कि उनकी गायों का दूध बढता गया है, और उसमें मक्खन का प्रमाण भी बढता गया है।

क्लैरेन्स एच. एकल्स साहेब की किताब 'गोशाला के ढोर और उनका दूध' में से सांड की बदौलत गोशाला में सुधार के कई उदाहरण दिये जाते हैं।

* 'यह अंक बहुत अधिक जान पडता है। शायद ४५०० पाउन्ड ज्यादह सही होगा' टी आर, पर्टल

आयोवा की प्रयोगशाला में १३ बांगडू या निकम्मी गायें लायी गयीं जिनमें फी गाय सालाना औसत ३,९९१ पा० दूध और १८७ पा० मक्खन का पडता था। जातिवन्त सांडों से पैदा उनकी १३ बछडियों का सालाना औसत ५,५५६ पा० दूध और २५३ पा० मक्खन का पडा यानी माता से पुत्री का दूध सैंकडे ३९ बढ गया। अब तीसरे पुश्त में ३ हिस्सा नया खून और एक हिस्सा पुराना कहा जायगा। तीसरे पुश्त की पांच गायों का औसत सालाना ८,४०१ पा० दूध और ३५८ पा० मक्खन का पडा। दादी के सौ सेर दूध की जगह पर नातिनी २१० और मक्खन १०० सेर के बदले, १९० सेर देने लगी।

मिन्नेसोटा की प्रयोगशाला में १९ मामूली गायें औसत ४,५७० पा. दूध और १९६ पा. मक्खन देती थीं। उसकी बछडियों ने औसतन ५,०२८ पा. दूध और २५१ पा. मक्खन दिया। अच्छी जाति के सांड के मेल से बछडियों का मक्खन ५५ पा. या सैंकडे ३० बढ गया।

गर्नसी जाति के सांड चिलमार्क्स मे किंग की दश पुत्रियों का औसत मक्खन, उसी दशा में अपनी माताओं के औसत से ११९ पा. बढ गया, यानी मक्खन के बाजार भाव से बछडियों से अपनी माताओं की बनिस्वत ६० डौलर की अधिक आमदनी होनी चाहिए।

जातिवन्त सांढों के उपयोग से केलिफोर्निया की गोशाला में ५,८१८ पा. के औसत से बढ कर वहां की गायों का दूध १०,००० पा. हो गया।

मेरीलेन्ड की एक सांड समिति के हिसाब के अनुसार २१ गायों का फी गाय औसत सालाना दूध ५,५६० पा. और मक्खन २१९ पा. पडता था। उन्हीं का जातिवन्त सांढों से संयोग कराने पर जो बछडियां हुई उनका औसत सालाना दूध ६,५२३ पा. और मक्खन २६३ पा. हुआ। इस तरह की बछडी का दूध १,४१४ पा. और मक्खन ६२ पा. फी साल, अपनी माता से बढा।

नीचे के अंकों से लेक काउन्टी इल्लिन्वाय में जातिवन्त सांढों से काम लेने के नतीजे नीचे दिये जाते हैं:

जातिवन्त साँढों के उपयोग का फल

सांढ	गोशालाओं की संख्या	गायों की संख्या	गाय पीछे दूध की सालाना बिक्री
सांढ और गाय दोनों जातिवन्त	५६	९४१	२८४ डौलर
५ साल के या उससे बडे, जातिवन्त सांढ	९५	१,६१०	२६७ ,,
२ से ४ साल के जातिवन्त सांढ	१२५	२,०९८	२२१ ,,
अर्ध जातिवन्त या निकम्मे सांढ	२१४	३,१६०	१७३ ,,

कितने सांढ बछडी को दूधशक्ति दे सकते हैं और कितने नहीं। इसका पता मिस्सौरी विश्वविद्यालय की गोशाला के नीचे लिखे अंकों से चलेगा।

एक ब्यान का कुल माल

सांढ	माता पा.	पुत्री पा.	अन्तर
मिस्सौरी रायटर			
दूध	५,३८०	४,३८१	(−९९९)
सौ पाउन्ड दूध में मक्खन	४.३५	४.९३	
मक्खन	२३४	२१६	(−१८)
मेरीडेल का लोर्न			
दूध	४,५५९	६,०५०	(+१,४९
सौ पाउन्ड दूध में मक्खन	४.८५	४.८१	
मक्खन	२२१	२९१	(+
मिस्सौरी रायटर, तीसरा			
दूध	४,७७५	८,००५	(+३,२
सौ पाउन्ड दूध में मक्खन	४.९८	४.८०	
मक्खन	२३८	३८४	(+१४
डेजी का प्रिन्स लैम्बर्ट			
दूध	५,३६२	३,९३२	(−१,४
सौ पाउन्ड दूध में मक्खन	५.०७	५.०३	
मक्खन	२६९	१९८	(−
रेजिस्ट्रार			
दूध	६,०६९	४,६०७	(−१,४
सौ पाउन्ड दूध में मक्खन	४.९४	४.९७	
कुल मक्खन	३००	२२९	(−
वर्जिनिया लैड			
दूध	५,३४९	७,७२२	(−१४
सौ पाउन्ड दूध में मक्खन	५.१७	५.७६	
कुल मक्खन	२७७	४४५	(+१६

एम्ब्लागार्ड ट्रिटोमिया होमस्टेड नाम के एक दो साल के विल सांढ की दश पुत्रियों की दो साल की उम्र में और उनकी मात के भी दो साल की ही उम्र में औसत दूध और मक्खन अंतर देखिए:

	माताएँ	पुत्रियां
कुल दूध	९,५९४ पा०	१३,५०४ पा
सौ पाउन्ड दूध में मक्खन	३.२१ ,,	३.४७ ,,
कुल मक्खन	३०८ ,,	४६९ ,,

(यं० इं०) वालजी गोविन्दजी देसा

मिट्टी की महिमा

'आरोग्य के विषय में' अपनी पुस्तक में मैंने मिट्टी के उ चारों के बारे में अच्छी तरह लिखा है। उसे पढ कर मिट्टी प्रयोग करनेवाले श्री विट्ठलदास पुरुषोत्तम लिखते हैं:

"'नवजीवन' में आपके मिट्टी के उपचारों के बारे में लि हुए लेख मैंने पढे हैं। उसमें आप कपडे में मिट्टी बांध कर के ऊपर रखने को लिखते हैं। पर सचमुच में अगर मिट्टी उपचारों से सच्चा लाभ उठाना हो तो पानी में सान कर कपडे रखना और उसके बाद पेडू पर या शरीर के जिस अंग पर ल हो रखना चाहिए। कपडे का भाग ऊपर आना चाहिए। ऐडोल्फ जस्ट की पूरी किताब पढी है और उन्होंने अपने अनु से लिखा है कि ऐपेन्डिसाइटिज जैसे कठिन रोग पर तीन दिन इसका प्रयोग करने से संपूर्ण आराम होता अगर आप 'नवजीवन' के जरिये इस तरह मिट्टी लगाने की प्रकाशित कर देंगे तो जिन्हें मिट्टी के प्रयोग करने हों, उन्हें लाभ होगा। कपडा बिगडने के डर से कपडे में मिट्टी बाँध लगाने से कम फायदा होना संभव है।

"विशेष में यह बतलाना भी जरूरी है कि जहां तकलीफ वहां तो मिट्टी लगानी ही चाहिए और उसके अलावा पेट पर मिट्टी लगानी नहीं भूलनी चाहिए। कारण यह है कि मूल होने की जगह तो पेट ही है। इसलिए जहां कष्ट हो वहां पेट पर, दोनों जगह मिट्टी लगानी चाहिए। और बहुत रोग तो केवल पेट पर ही मिट्टी लगाने से तुरत छूट जा इन प्रयोगों को करते समय उपवास करने की जरूरत है,

अगर उपवास न हो सके तो फल अथवा दूध पर रहना चाहिए।"

इस पत्र के जवाब में मैंने उनसे उनके अपने अनुभव पूछे। उसके जवाब में वे लिखते हैं:

"पेट का दर्द — इतना सख्त था कि दाहिनी या बायीं भी करवट भी मैं नहीं फिर सकता था। भोजन बंद कर दिया और तीन दिन और रात पेट पर मिट्टी बांध रक्खी। दिन में तो मिट्टी दो दो घन्टे पर बदलती थी मगर रात को सोते समय जो बाँधता था, वह ठेठ उठने के समय ही खुलती थी। पेट का दर्द तो दो ही घंटे में दूर हो गया और करवट बदलने में भी तकलीफ नहीं पडने लगी। पर जिसमें पेट का रोग बिलकुल ही दूर हो जाय, इस लिए तीन दिनों तक प्रयोग जारी रक्खा। मैंने अपने डाक्टर मित्र से इसकी बात की। उन्होंने तो इसे 'ऐपेन्डिसाइटीज' कहा और उसमें इस तरह मिट्टी का उपयोग करने के लिए थोडा उलाहना भी दिया। पर मैंने उनका उपकार ही माना। पिछले आठ सालों से मैं जो कुदरती या प्राकृतिक उपचार करता आया हूँ, उनमें मेरी श्रद्धा इतनी बैठ गयी है कि उसमें ये डाक्टर कोई फेरफार नहीं करा सके। पाँचवे दिन थोडी छाछ और नारंगी से उपवास तोडा और आस्ते आस्ते चालू खूराक पर मैं आ गया। इस रोग से मेरी कितने दिनों की मुराद पूरी हुई। मैं अन्न का त्याग कर फल, शाक और दूध पर बहुत दिनों से आना चाहता था, मगर इस बारे में कोई पक्का निश्चय नहीं किया था। मेरी इस जिन्दगी में मेरा यह उपवास भी पहला ही था। खूराक में फेरफार करने का अच्छा मौका मिल गया और मैंने उसी दिन से अन्न का त्याग किया है। खजूर, मूँगफली, बदाम, किसमिस, शाकभाजी, दूध और छाछ पर रहता हूँ। और मुझे बहुत दिनों से जो कब्जियत या कोष्ठबद्धता थी, वह भी अब नहीं है। पर २० दिन हुए उडिसा के अकाल में मदद के लिए गया था। वहां दूध का बंदोबस्त बिलकुल ही नहीं हो सकने के कारण, फिर कब्जियत शुरू होने लगी थी, मगर फिर यहां लौट आने के बाद सिर्फ दो ही दिनों में आराम हो गयी। इससे इतना तो साबित होता है कि दूध के बिना तन्दुरुस्ती बनायी रखनी अशक्य है।

"ज्वर—दो साल के नन्हें बच्चे के पेट पर मिट्टी बांधी और उस पर ऊन का कपडा बांधा। खूराक में सिर्फ गर्म पानी और स्वाद की खातिर थोडा शहद दी जाती थी। सिर्फ दो दिन यह चिकित्सा करने से ही वह बिलकुल अच्छा हो गया।

"सर्दी में भी पेट पर मिट्टी का पट्टा बांधने से मुझे आप आराम हुआ है। पर इस बीच में मैं खूराक तो जरूर ही बंद रखता था।

"खाज—एक भाई को बहुत दिनों से खाज थी। उनके किसी मित्र ने उन्हें प्याज का लेप लगाने को कहा। पर लेप से आराम होने के बदले वेदना बढी। उँगली पक उठी, और दर्द तो इतना बढा कि रात को नींद मुहाल हो गयी। दो दिनों बाद उन्होंने मुझसे दर्द की बात कही। मैंने उसी समय लेप खोल कर मिट्टी बँधवायी। सिर्फ दो ही घंटों में ठंढक आ गयी। सारा फोडा आराम होने में १५ दिन लगे। ये भाई तेल और मिर्चा खूब खाते हैं, इस लिए अब भी जरा सी कसर रही गयी है। अगर वे मिर्चा और तेल छोड देवें, तो रोग जड मूल से निकल जाय।"

इन दोनों पत्रों की सलाह का उपयोग बहुत से रोगों में छूट से किया जा सकता है। मेरा मतलब यह है कि जहां चमडा उतर गया होवे, वहां पर मिट्टी खुली नहीं लगायी जा सकती है। जिन्हें कपडे पर रक्खी हुई मिट्टी से लाभ न होवे, वे खुली मिट्टी का प्रयोग कर के देख सकते हैं। अब भी मैं मिट्टी के सामान्य प्रयोग करता ही हूँ। यह इलाज इतना सस्ता और सादा है कि सभी किसी को मर्यादित रूप में आजमाना चाहिए। यह यथार्थ ही है कि पेट पर मिट्टी रखने का प्रयोग खाली ही पेट किया जाय। यह याद रखना जरूरी है कि मिट्टी हमेशे स्वच्छ स्थान पर से लेनी चाहिए। सिर के दर्द में और ज्वर में बर्फ इस्तेमाल की जाती है। वहां पर मिट्टी का उपयोग करने से सामान्यतः बर्फ की बनिस्बत ज्यादह लाभ होता है।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

गरीब का अर्थशास्त्र

मैं एक गांव में गया। एक गरीब की झोंपडी में सूप में कुछ अनाज पडा हुआ था। मैंने उसे कभी देखा नहीं था। मैंने पूछा, "यह क्या है?"

कई स्त्रियाँ हँस पडीं। हँसें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? मैं तो ऐसी मामूली बात भी नहीं जानता था।

एक बोली, "यह कोदो है। हम तो यही खाते हैं।"

मैंने पूछा, "कैसे तैयार करती हो?"

"इसको कूटते हैं, और फिर जब यह बिलकुल साफ हो जाता है, तब ऐसे दाने निकलते हैं।" यह कर उसने दाने ला दिखाये। "फिर इसे दल कर रोटियां बनाते हैं।"

दाने बहुत महीन थे। मैंने यह देख कर कहा, "ये तो बहुत छोटे दाने हैं। इसमें से तो बहुत कुछ भूसी निकल जाती होगी।"

"हां, एक मन में से आधा मन दाना निकलता है।"

मैंने पूछा, "इसका भाव क्या है?"

"डेढ रुपये मन।"

"यह तो तीन रुपये मन पडा। तब इसके बदले बाजरी लेकर क्यों नहीं खाती हो? उसकी भी तो यही कीमत पडती है न?"

"ऐसे नहीं चल सकता। क्योंकि इस कोदो में तो आधी भूसी छिलका वगैरह रहने देते हैं, इसलिए थोडे दाने और बहुत कुछ भूसी छिलके से लडकों का पेट भर जाता है। बाजरी में से तो भूसी निकलती ही नहीं। और लडके तो कोदो की रोटी के बराबर ही बाजरी की रोटी माँगते हैं जिससे अधिक दाने लगते हैं। फिर बाजरी की रोटी मीठी भी लगती है, जिससे वे अधिक खा जाते हैं। इस तरह बाजरी महँगी पडती है।"

यह बात मैंने दो चार साथियों को कही। उन्होंने भी इसीका समर्थन करते हुए कहा कि कई जगह जुआर से गहूँ सस्ता आता है, मगर तौभी लोग जुआर ही खाते हैं क्योंकि गहूँ के साथ घी चाहिए नहीं तो वह महँगा पडता है। घी का खर्च चलता नहीं और इस लिए लोग जुआर ही पसंद करते हैं। इसी कारण, बाजरी से जुआर महँगी भी हो तौभी जुआर में से दो चार किस्म के गरीबों के भोजन बन सकने, और घी के बिना खाये जा सकने के कारण, बहुत जगह बाजरी के बदले जुआर ही पसंद किया जाता है।

गरीब का अर्थशास्त्र इस तरह का है।

(नवजीवन) **किशोरलाल ध. मशरूवाला**

स्वामी श्रद्धानन्द

स्मृतियां

३

स्वामीजी के स्वभाव में दो प्रवृत्तियां थीं जो मुझे कभी कभी परस्पर विरोधी सी लगीं। एक से तो वे गावों की ओर आकर्षित होते थे। दूसरी उन्हें शहरों की ओर उसकी भीड भम्भड में और भी खींच ले जाती थीं। जब मैं उन्हें खूब अच्छी तरह से पहचान गया, तब उनके स्वभाव के इन दो पहलुओं का मेल समझ सका। स्थायी आकर्षण तो अवश्य ही गावों की ओर था; मगर बहुत सालों तक शहरों के अनाथ जन-समूहों की ओर भी उनका ध्यान बहुत ही अधिक आकर्षित हुआ था।

जब मेरा उनसे परिचय हुआ तब असल खिचान तो गावों की ही ओर था। वे गांववालों का सीधा सादा, सुन्दर जीवन पसंद करते थे। उनके पास गुरुकुल, कांगडी में भी आधुनिक सभ्यता के भार से अछूता वही जीवन बिताया जाता था। रोज संध्या को हम लोग टहलने निकलते थे और सडकों पर, या उनके घर में गांववालों से मिलते और बातें किया करते थे। दीहाती जीवन की सादगी से उन्हें बहुत आनंद मिलता था बल्कि यह उनके जीवन का एक आवश्यक अंग ही था। उस समय उन दीहातियों से उन्हींकी तरह बातें करते हुए, उनके सुख दुःख में शामिल होते हुए स्वामीजी चमक उठते थे।

गुरुकुल कांगडी के सारे काम धंधों में दीहात की सादगी कायम रही। वह शुरू से ही महात्मा मुंशीराम की अपनी कृति थी। वह गुरुकुल से वैसी ही मुहब्बत करते थे जैसे कि माता अपने बच्चे से, कवि अपनी कविता या गान से करता है। ऐसे प्रेम को देखने में भी बडा आनन्द आता था। जब उन्होंने यह देख लिया कि मैं आश्रम की सच्ची आन्तरिक खूबियों और आकर्षणों को समझ सकता हूं, तब वहां की हरएक बात के लिए मेरे सोल्लास उत्साह ने ही हमें और भी गाढा मित्र बना दिया।

हर मौके पर उनकी मेहमानदारी भी क्या ही थी! शुरू में उन्हें एक बात की तरद्दुद हुआ करती थी। उन्हें यह डर था कि शायद उनके प्रबंध से मुझे भोजन वगैरह के बारे में पूरा आराम नहीं मिलेगा। पर जब उन्हें इसका निश्चय हो गया कि उनका दिया सादा भोजन ही मैं सचमुच खूब रुचि से खाता हूँ, तब उनका मन हलका हो गया। और जब मेरे आराम और सुभीते की और सब बातों के बारे में वे संतुष्ट हो गये, तब उनकी चिन्ता बिलकुल ही दूर हो गयी।

वे दिन सचमुच ही बहुत शुरू शुरू के थे। तब से अब तक बीस साल से भी अधिक बीत गये हैं। मैं अभी धोती पहननी नहीं जानता था। इस जैसी जरूरी बातों में वे मेरे शिक्षक बने और इसमें हम दोनों का बडा विनोद होता था। इसमें उन्हें जो आनन्द मिलता था वह देखने से भी सुख होता था।

मैं पालथी मार कर बैठने की कोशिश करता था और मेरे कडे घुटने मुडते ही नहीं थे। स्वामीजी मुझे सिखलाने की कोशिश करते थे। अंत में बहुत मिहनत के बाद विफल-प्रयास हो कर मैं दीवार के सहारे या किसी कोने में पीठ लगा कर बैठ जाता था। और हम सभी हँस पडते। हम दोनों साथ ही हँसते और वे कहते थे, "चार्ली, अगर बचपन से बैठने का अभ्यास नहीं है तो यों अब नहीं बैठ सकते हो।"

मेरे जीवन के वे सुनहले दिन थे। जब कभी मैं दिल्ली से निकल पाता, मैं हरद्वार को रवाना हो जाता था। वहां मेरे लिए बैलगाडी खडी रहती थी। वे बैल भी कैसे सुन्दर थे। सारे गुरुकुल को उनपर नाज था। हरद्वार में हर दीवार, हर मकान और ... पर बंदर दौडते फिरते थे। हरद्वार से निकल कर नदी के किनारे ... किनारे बहुत दूर तक बालू से होकर जाना पडता था। रास्ते ... बांस के दो तीन रोगी से हिलते डुलते पुल मिलते थे। ये पुल ... गर्मी भर के लिए ही बनाये जाते थे। दूरी का अन्दाजा ... लगता था। उत्तर की ओर सारे रास्ते भर अत्यन्त सुन्दर ... दिखलायी पडता था। गंगा का तुरत ही का बर्फ से गला हुआ ... इतना साफ, इतना नीला था जैसा कि मैंने दुनिया में और ... नहीं देखा है। उजले, बर्फ से लदे हुए पहाडों के शिखर भी ... ही चमकीले, मनोमोहक थे। साधारणतः हम खूब सबेरे नदी ... पार किया करते थे। सारा का सारा दृश्य सपना जैसा लगता ... छह मील की इस सफर में कोई क्षण ऐसा नहीं बीतता था जब ... परमात्मा की कृतियों की संपूर्णता नहीं दिखलायी पडती हो।

कभी कभी महात्मा मुंशीराम स्वयं मुझे लेने आते या नहीं ... पहुँचाने आने की जिद करते थे गोकि यह सफर बहुत ही थका... वाला होता था। और समयों पर वे अध्यापक रामदेव को ... अब गुरुकुल के आचार्य हैं, भेजते थे। आचार्य रामदेव से ... मेरी वैसी ही घनिष्ठता हो गयी जैसी कि महात्मा मुंशीराम से ... महात्माजी की अनुपस्थिति में मैं उन्हीं के यहां ठहरता था।

मुझे एक मजेदार घटना की याद आती है। बात तो ... ही मामूली थी, मगर इससे मुझे उन हँसी खुशी के दिनों की ... आ जाती है। इससे यह बात कुछ जाहिर होगी कि हम लोग ... दिनों किस तरह रहा करते थे।

अध्यापक रामदेव बहुत बक बक किया करते थे। यह उ... बाल-सुलभ स्वभाव का ही एक अंग था और उनके लिए ... ही स्वाभाविक था, जैसे कि किसी लडके के लिए होवे। मह... मुंशीराम उन्हें इसके लिए खरे और अच्छे पंजाबी ... से कुछ सुना दिया करते थे और रामदेव जी भी उसे ... तरह सुन लेते। गुरुकुल की पहली यात्रा में गंगा ... करने के बाद मैंने अ० रामदेव का स्वभाव जाने बिना, लिखा ... कि बैलगाडी के मेरे साथी तो रास्ते भर बक बक ही करते ... मगर आसपास के दृश्यों का सौन्दर्य ऐसा था कि मैंने उनकी ... जरा भी ध्यान नहीं दिया। दर असल उस दिन मेरे ... अ० रामदेव जी ही गाडी में बैठे थे। इस लिए महात्मा मुंशी... की, उक्त वाक्य के संबंध में, सभी चोटें उन्हें खुशी से सहनी पडीं ... हम लोग उन दिनों लडकों ही जैसे थे और ऐसी कोई दिल्ल... होती तो वह मुंह मुंह फिर जाती, मगर उसका मजा कम ... होता था।

जैसा कि मैं कह चुका हूँ, महात्मा मुंशीराम आदर्श गृह... मेजबान थे। उन्हें यह महान् कला सिद्धहस्त थी कि कब ... कैसे मेहमान की पूरी सेवा सँभाल और खातिरदारी करते हुए ... उसे अकेले बिताने को काफी समय देना चाहिए। पहली बार ... धर्मशाला में ठहरा था परन्तु दूसरी बार वे मुझे गंगा के बिल्कुल ... किनारे अपनी कुटिया में आप लिये चले गये। उन्होंने ... कहा, 'यह आपका ही घर है।' इससे मुझे तकल्लुफ की ... जरूरत ही नहीं रही और उनके काम से उनकी वही बात ... हुई। एक तरह से तो उन का घर सचमुच ही मेरा अपना ... बन गया था। उन दिनों मेरी मां इंगलैण्ड में मुझसे दूर ... थी। हिन्दुस्तान आये मुझे अभी कुछ ही दिन हुए थे। इस ... मुझे घर से दूर रहने की उदासी रहती थी। वहां रहने पर वह उदासी ... कुछ कम हो जाती थी।

(यं० इं०)

सी. एफ. एन्ड्रयूज

'अपरिवर्त्तनवादियों' को

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक २१

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, माघ वदी १२ संवत् १९८४ गुरुवार, १९ जनवरी १९२८ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

अजमल जामिया कोष

स्वर्गीय हकीम अजमल खां साहिब की स्मृति में और राष्ट्रीय मुसलिम विद्यापीठ की आर्थिक नींव पक्की करने के लिए जो कोष खोला जानेवाला है उसके बारे में डाक्टर अंसारी ने मुझे पत्र लिखा है। यह प्रकाशित करने की इजाजत डाक्टर अंसारी ने मुझे दी है कि डाक्टर अंसारी और प्रिन्सिपल जाकिर हुसैन इस अपील में मेरा साथ देते हैं। श्रीयुत जमनालाल बजाज ने इस कोष का कोषाध्यक्ष बनना स्वीकार किया है। हिन्दू और मुसलमानों के बीच इस मनमुटाव के जमाने में इस अपील को कई नामों में निकालना उचित नहीं समझा गया है। मगर हमारी उमेद है कि सभी कोई जो स्वर्गीय आत्मा की स्मृति में श्रद्धा रखते हैं, और इस स्मारक के साथ राष्ट्रीय मुसलिम विद्यापीठ को जोड देने का खयाल पसंद करते हैं, इसमें वैसी ही सहायता देंगे, जैसे कि वे भी अपील करनेवालों में शामिल हो।

मेरी नम्र सम्मति में एकता में विश्वास करनेवाले हिन्दू मुसलमानों का यह कर्त्तव्य है कि वे हकीम साहिब की यादगार इस प्रस्तावित ठोस रूप में स्थायी बनाये। जामिया की नींव स्थिर और पक्की बनानी उनका कर्त्तव्य है क्योंकि जामिया उस जमाने का फल है जब कि यह समझा जाता था कि दोनों जातियां हमेशे के लिए मिल गयी हैं। और अगर असहयोगी महाविद्यालय एकता का समर्थन न करें, एकता कराने की कोशिश न करें, एकता पक्की न करें तो फिर और कोई वस्तु नहीं कर सकती। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि एकता के सभी हामी इस कोष में खूब उदारता से दान देंगे।

आज केन्द्रीय विद्यालय में २०० विद्यार्थी हैं, और शहर के शाखा-विद्यालय में ८४ हैं। इनके अलावा दो रात्रिपाठशालाएँ हैं जिनमें २०० विद्यार्थी पढते हैं। जामिया में २३ कार्यकर्ता हैं, जिसमें सबसे अधिक मुशाहरा पानेवाले को २६५) रुपये और कम पानेवाले को ३५) रुपये महीना मिलते हैं। प्रिन्सिपल या आचार्य के सामने हमेशे यही खयाल रहता है कि ऐसे स्वयंसेवक आकर्षित किये जायँ जो केवल अपनी जरूरत भर के बराबर ही लेंगे। हर महीने २३००) रुपये मुशाहरे के देने पडते हैं। मकान का किराया ४२५) रुपये माहवार है। कुल महीनावारी खर्च ४,८००) रुपये का है। नियमित माहवारी आमदनी, जिसमें भोजनालय के १३००) रुपये भी शामिल हैं, २८००) रुपयों की है। यों २१००) रुपये महीने की कमी है। जबतक हकीम साहिब जिन्दा थे, किसी न किसी तरह यह खर्च चला जाता था। जब तक शिक्षक लोग अपने लिए ऐसा नाम और प्रतिष्ठा नहीं पैदा कर लेते, जिससे उन्हें सहायता मिलने लगे तब तक सर्वसाधारण को यह कमी आप पूरी करनी ही पडेगी। और जब तक जामिया का मकान नहीं बन जाता, यह स्मारक स्थायी नहीं माना जा सकता। इस लिए दाता लोग सहायता की रकम का निश्चय करते समय, जरूरत का भी खयाल रक्खेंगे।

डाक्टर अंसारी लिखते हैं कि सेन्ट्रल बैंक ने बराय मिहर्बानी, अजमल जामिया कोष की सहायता स्वीकार करनी और इसके लिए सभी चेक और ड्राफ्ट भी बिना दस्तूरी के अपनी सभी शाखाओं में स्वीकार कर के रकम भर लेनी मंजूर की है। कोषाध्यक्ष का पता है, ३९५ कालबादेवी रोड, बंबई।

बतौर ट्रूस्टी के हम चार आदमियों के नाम पर कोषाध्यक्ष अपने पास जमा हुई सारी रकम रोके रहेंगे, और वह तभी दी जायगी जब कि जामिया के नाम पर एक समुचित ट्रूस्ट तैयार हो लेगा।

(यंग इंडिया) मो० क० गांधी

प्रायश्चित्त

६

पन्द्रह साल बीत गये हैं, अब तो उन पुराने घटना-स्थलों को ढूँढ निकालना भी मुश्किल होगा । वेलमपट्टी तो प्रायः उजड ही गयी है । मंदिर के पुजारी के घर को छोड कर ब्राह्मणों का टोला तो प्रायः रहा ही नहीं है । चेरी भी आधा उजाड हो गया है ।

मरी और चिन्नन अपने माबाप के साथ सिलोन में बढते गये । मरी के बाप ने सिलोन आने के कुछ ही दिनों बाद फिर शराबखोरी शुरू कर दी थी । कुछ दिनों बाद वह नौकरी से हटा दिया गया । फिर अपनी औरत से झगड कर वह सारे सिलोन में भीख मांगता फिरा । उसके बाद कोई नहीं जानता कि उसका क्या हुआ । मरी और चिन्नन सिलोन के एक चाय बागान में अपनी मा के साथ काम करते रहे । उन्होंने अपना चाल चलन ठीक रक्खा । मरी अब २५ साल का जवान हो चुका था । उसकी मा ने उसी बागान के किसी दूसरे कुली की लडकी से उसका विवाह ठीक किया । विवाह हो भी गया । विवाह होने के कुछ ही दिनों बाद मरी ने फिर घर लौटने की बात शुरू की । वह बोला :

'मा, आखिर हम लोग किस लिए इस परदेश में अपनी जान देते रहें? यहां हमें न घर है न द्वार, न कोई धर्म है न ईमान, देवता और परमात्मा का तो यहां कोई नाम ही नहीं जानता और न तो किसी की जिन्दगी का यहां ठिकाना है । यहां तो हम सभी गोरू बैल जैसे गोल बांध कर रहते हैं । मेरा मन तो घर जाने पर लगा हुआ है । अब अपने पास कोई दो सौ रुपये भी जमा हो गये हैं । चलो, घर लौट चलें, घर चल कर दो गाय खरीद लेंगे या एक जोडी बैल और एक गाडी खरीद लेंगे, और उसी से गुजरान चलाते जायँगे । देश में तो सैंकडों आदमी उससे भी कममें ही खुशी से रहते हैं ।'

मा बोली, 'हां बेटा, चलो, चले चलें । मैं भी अपनी उसी कुटिया में मरना चाहती हूँ ।'

सलाह पक्की हो गयी । कुलियों का जो पहला जत्था इसके बाद घर लौटा, उसके साथ ये लोग भी लौट आये । मरी ने एक जोडी बैल और एक गाडी खरीद ली ।

पर दुर्भाग्य फिर भी सिर पर आ खडा हुआ । दो दिनों बाद एक बैल लँगडाने लगा । पीछे मालूम हुआ कि बैल खरीदने में मरी ठग गया है । अब वह उसे बेच भी नहीं सकता था । फिर उसने एक और बैल खरीदा, मगर उसके बाद ही ढोरों की कोई बीमारी शुरू हुई जिससे मरी के तीनों बैल मर गये । अब उसने गांव के किसी किसान के यहां नौकरी कर ली । उसके लिए अपने परिवार का भरण पोषण करना मुश्किल हो गया, मगर किसी तरह वह गुजर चलाये ही जाता था । चिन्नन उससे झगड कर मलाया टापुओं की ओर मजदूरी करने चला गया ।

मगर मरी को अपनी स्त्री पूवी से सुख था । वह थी तो १५ साल की ही लडकी मगर होशियार, मिहनती और धीर इतनी थी कि २५ साल की औरत के बराबर काम करती थी । जब उसे फुरसत मिलती वह जंगल की ओर निकल जाती और थोडी लकडी चुन लाती, मैदानों में जाकर एक गट्ठर घास छील लाती और बाजार में उन्हें अच्छे भाव से बेंच आती । उसके सौभाग्य से उसे दाम भी पूरे मिल जाते थे । इस तरह वह एक हफ्ते में दो तीन बार दो दो आने पैसे लाकर घरखर्च में सहायता पहुँचाती । किसी तरह चूल्हा जलता रहा ।

इस साल वेलमपट्टी की बुरी हालत है । वर्षा तो बिलकुल हुई ही नहीं । सच पूछो तो चार साल से वहां सुखार पडता आ रहा था, मगर इस साल तो अति हो गयी । करीब करीब सभी कुँए सूख गये । सिर्फ खेती ही नहीं सूखी, बल्कि पीने के लिए भी पानी मिलना मुहाल हो गया । कितने लोग तो घरबार छोड कर रोजी के लिए परदेश में भागे । मगर मरी और उसकी स्त्री कहीं जा भी नहीं सकते थे क्योंकि बूढी मां हिलने को भी तैयार नहीं थी । वह कहती, "मुझे यहीं मरने दे बेटा । यह तो मरियायी देवी का कोप है न । तब यहां रहो या कहीं भाग जाओ, देवी छोडेंगी थोडे, बेटा? उनका दण्ड तो भोगना ही पडेगा ।"

सिलोन से लौटने के बाद से ही बूढी को पुराने दिनों की याद हो आयी और वह बराबर अपने मन में यही सोचा करती थी उसकी सारी विपत्ति का कारण वही पाप है जो उसके लडके ने ब्राह्मण के घर में घुस कर किया था ।

वह दिन रात मरियायी देवी के आगे नाक रगडती रहती, मन ही मन देवी से चिरौरी, बिनती करती रहती और बेटे से कहती रहती, "आखिर तुम उस अभागी ब्राह्मणी के घर गये ही क्यों? यह बडा भारी पाप है बेटा ।"

अब वेलमपट्टी की चेरी या अछूतों के टोले में गिनगिना कर केवल पाँच अछूत परिवार रह गये थे । बाकी सब कहीं पर किसी तरह पेट पाल लेने के लिए भाग गये थे । चेरी तालाब तो न जाने कब का सूख गया था । अब वे पडोस के एक वल्लाल के खेत के कुँए में से पानी लाते थे । एक इसी कुँए में थोडा पानी बचा था । मगर कुँए में वे अपने बरतन तो डुबा सकते नहीं थे क्योंकि पारिया के बरतन से तो कुँए का पानी जो अशुद्ध हो जाता । दिन भर के खर्च के लिये गांववालों के लिये पानी खींच लिये जाने तक वे बेचारे खडे रहते । फिर बैल छुडाये जाते, पानी पिला कर नहलाये जाते और तब नाली में बहता हुआ पानी अछूतों को लेने दिया जाता था । फिर उस महामूल्य पानी के लिए अछूत स्त्रियों में झगडा, तकरार, गाली गलौज सभी बातें होतीं । कभी कभी कोई औरत झगडे में रंज होकर सारा का सारा पानी गँदला कर देती और तब दूसरी औरतें किसानों से इसका फैसला करने को कहतीं । और उसका जवाब क्या मिलता? यही कि, "छिः! यही तो साले अछूतों का ढंग है ।"

७

कुडी गौन्दन के लडके खेत में सोये हुए थे । खेत में तो फस्ल अगोरने को थी ही नहीं, मगर अधभूखे गोरू और पानी खींचने का मोट और रस्सियां थीं जो चोरी जा सकती थीं । सुनसान रात थी । कहीं कोई आवाज सुनायी नहीं पडती थी । ऊपर आकाश में चन्द्रमा झकाझक चमक रहा था । वे सूखे खेत भी चाँदनी में सुन्दर ही दिखायी पडते थे ।

अचानक कुत्ते भूँक उठे । उधर दूर पर कुंए से कुछ दूर पेड की आड में जाती हुए परछाहीं सी कुछ दिखलायी पडी ।

कुडी का छोटा लडका बोल उठा, "कौन है? चोर, चोर!" बडा लडका सेनगोडन नींद में ही पडा पडा पूछने लगा "क्या है?"

पहला लडका चिल्ला उठा, "हो काका, हो रकिया, गोविन्द हो वालती, चोर चोर, डोल लेकर भागा जाता है, पकडो, पकडो, चोर चोर ।" फिर तो सभी ओर से मानों आसमान ही फट पडा । पास के खेत में से लोग उठ पडे और हाथ में जो लाठी मिला, लेकर दौड पडे । कुत्ते भी मैदान मारने के लिए भूँकते हुए दौडे आये ।

चोर तो सहज ही पकडा गया। चोर औरत थी। वह पानी की चोरी करने आयी थी! वह डोल और रस्सी लेकर आयी थी, और उसने कुएँ में से पानी भर लिया था।

कुट्टी के लडके चिल्ला उठे, 'हो, इसने कुँए में अपना डोल डाल दिया था। मारो अभागी को। मार लातों के कचूमर निकाल दो। बस वहीं मार डालो। तोडो इसकी डोल, फोड डालो। इसके हाड हाड तोड डालो। सत्यानाशी ने कुँआ ही अशुद्ध कर डाला।'

डोल तो पलक मारते ही टुकडे टुकडे हो गयी और उस पर लात मुके बरसने लगे। बेहोश होकर वह जमीन पर गिर पडी।

रकिया को कचहरी के मामले का कुछ पता था। वह बोला 'छोडो, छोडो, वह मर गयी। अब मत मारो। बस तुरत ही एक गडा खोद कर इस सुअर को गाड डालो जिसमें फिर कोई तरद्दुद न होवे।'

इससे उन क्रोधान्धों के होशहवास कुछ सँभले।

एक बूढे ने पूछा, 'यह कौन है? किसी को पता है?'

कुट्टी का बडा लडका बोला, 'यह तो कैन्डी मरी की औरत है। ऐसे तो बेचारी भली लडकी है, मगर न जाने उसने यह पाप क्यों किया?'

छोटा लडका बोला, 'कल्ह हमने उन्हें पानी लिये बिना ही लौटा दिया था। तभी तो शैतानों ने यह बदमाशी की।'

एक आदमी ने कहा, 'बस सब फसाद धर्म का है, सभी अच्छा है और सभी बुरा है।'

एक और बोल उठा, 'अरे, वह मरी नहीं है। नकल किये हुए है। लगाओ न एक लात और देखो किस तरह फुर्र से उठ कर भाग जाती है।' यह कह कर उसने अपनी सलाह आप ही मान ली और उसे एक लात जमायी। बेचारी लडकी हिली तो जरूर मगर फुर्र से उठ कर भाग नहीं सकी। लातों पर लातें बरसती रहीं, मगर वह बेहोश ही पडी रही।

रकिया ने कहा, 'उठाओ ससुरी को' चेरी में फेंक आओ।'

इस पर तीन चार आदमियों ने उसके छिटके हुए, बिखरे शरीर को बटोर कर उठा लिया और उसे चेरी में ले गये।

८

अगर अनाथ लडकों की सच्ची कहानी लिखी जाय तो उसे पढने से लाभ ही होता है। हम सभी अभाग्य के पंजे में नहीं पडते, मगर अपने से भी अधिक दुःखी के अनुभवों से बहुत कुछ लाभदायक बातें सीख सकते हैं। मुकुन्दन की मा के मरने के बाद की उसकी जीवनी बडी ही रोचक और शिक्षाप्रद होगी। मगर उसने आप तो उसे लिखा नहीं और अब दूसरे तीसरे आदमी से सुनी सुनायी बातें लिखने में कोई मजा नहीं है। इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि अब वह पढ लिख कर डाक्टर बन गया था और कमालपुर के अस्पताल का डाक्टर था। उसने दुनिया घूम घूम कर खूब देखी थी। अनाथ लडकों को यह बदा ही होता है कि वे बहुत कुछ भूगोल तो अपने आप ही देख कर सीखें।

एक दिन चार हट्टे कट्टे आदमी कंधे पर एक खटिया लिये अस्पताल में आये। उन्होंने अपना बोझ सामने सहन पर धीरे से उतार कर रख दिया। फिर वे पुकारने लगे, 'स्वामी, स्वामी,' उनके स्वर में वह बात थी जिससे लोग समझ जायँ कि बाहर कोई अछूत खडा चिल्ला रहा है।

डाक्टर मुकुंदन अपना बहीखाता लिख रहे थे। उन्हें अपनी सालाना रिपोर्ट के लिए सालाना हिसाब जल्दी तैयार करना था। लिखते ही लिखते डाक्टर साहब अस्पताल के नौकर से बोले, 'यह क्या है मुथा? देख आ कि कोई मुर्दा तो नहीं आया है।'

गांव के स्कूल के हेडमास्टर साहब भी टहल कर, गप लडाने चले आये थे। उनसे डाक्टर मुकुन्दन बोले, 'जनाब, पूछिए, मत यह जगह भी न जाने कैसी बुरी है कि तकरीबन हर हफ्ते यहां एक न एक खून होता ही रहता है, और मुझे मुर्दे की चीर फाड कर परीक्षा करनी पडती है।'

हेड मास्टर ने, जो कि तंजोर जिले के थे, कहा, 'इस जिले की रैयत बडी ही असभ्य और झगडालू है। बस, ये बात बात में झगड पडते हैं, और फिर मार पीट, खून होना ही चाहिए। जब तक इनमें प्राथमिक शिक्षा का और प्रचार नहीं होता, सुधार की कोई आशा नहीं है।'

मुथा आकर बोला, 'मुर्दा नहीं है साहब। एक लडकी है जिसे लोगों ने बहुत मारा पीटा था।'

मुकुन्दन ने कहा, 'यहां टेबुल पर लाने को कहो।'

हेड मास्टर ने हँसते हुए कहा, 'जान पडता है कि यह कोई प्रेम-काण्ड है।'

'हो सकता है। खैर, चल कर देखें।'

वे लोग लडकी को चारपाई पर से उठा कर बडे टेबुल पर लाये।

डाक्टर ने चोटों को देखते हुए कहा 'बडी बुरी तरह मारा है।' और जगह की चोटें तो साधारण थीं, मगर दोनों बाहों की हड्डियां चटक गयी थीं।

उसे लाने वालो में मरी भी था। वह पूछने लगा 'क्या यह बच जायगी?'

मरी की आंखों में आंसू भर आये वह फिर फिर पूछने लगा, 'स्वामी, यह मेरी औरत है। क्या यह जियेगी?'

'हां, हां। वह बिलकुल अच्छी हो जायगी। अस्पताल में एक महीने रहना होगा।'

इस पर मरी रोने लगा, 'हाय, एक महीने तक मैं कैसे गुजर करूँगा? खाने को कहांसे लाऊँगा?'

'मूर्ख कहीं का! चुप रह। हम लोग उसे खाना देंगे। तू फिकर मत कर।'

मरी का एक साथी बोल उठा, 'मरी, तुम नहीं जानते हो? ये डाक्टर साहब हमारे अपने ही गांव के ऐय्या, सेनय्या के लडके तो हैं। वे हमारी रक्षा करेंगे। उसे वे चंगा कर देंगे।'

दूसरे ने कहा 'हां, हां, वे उसे खाना देंगे और जब तक वह बीमार है तुम्हें भी वे खिलावेंगे। डरो मत!'

फिर तीनों चिल्ला उठे, 'ना डर क्या है, वे तो हमारे ही स्वामी हैं न?'

ने मुकुन्दन के चहेरे में आँखें गडा कर देखा।

छा, 'स्वामी, आप क्या मुकुन्दय्या है?'

डाक्टर ने लडकी की बाँह की परीक्षा करते हुए कहा 'हाँ, हाँ।'

हेडमास्टरने कहा डाक्टर साहब नमस्कार। आज आप के हाथ में जरा मुश्किल काम आया है। इस समय बाधा देनी ठीक नहीं है। मैं जाता हूँ।

'नमस्कार, मास्टर साहब।'

फिर मुकुन्दन ने मरी से पूछा, क्यों झगडा क्या था भाई? कहो तो बात क्या हुई थी?

फिर सब के सब एक ही साथ इस तरह बोलने लगे कि मुकुंदन को उनकी बात समझने में बडी कठिनाई पडी। (असमाप्त)

(यं० इ०) चक्रवर्त्ती राजगोपालाचारी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ बदी १२ संवत् १९८४

'अपरिवर्त्तनवादियों' को

मैं देखता हूँ कि यह खबर कि इस महीने किसी समय अपरिवर्त्तनवादी असहयोगियों की एक सभा साबरमती में होनेवाली थी, किसी तरह अखबारवालों के पास तक पहुँच ही गयी। शायद यह बात अनिवार्य थी। परन्तु मुझे यह खबर देते हुए खेद होता है कि कम से कम हाल के लिए तो यह खयाल छोड दिया गया है। कोई कार्यक्रम निश्चित करने और साधारण विचार विनिमय के लिए बहुत से अपरिवर्त्तनवादी ऐसी सभा की सूचना बहुत दिनों से दे रहे थे। यह माँग मद्रास कांग्रेस में बडी जबर्दस्त हो उठी जब कि महासभा में आये हुए अपरिवर्त्तनवादियों को लगा कि कई एक प्रस्तावों पर हमारे निश्चित और संयुक्त मत होने चाहिए थे और महासभा के भीतर ही हम एक अलग दल के रूप में काम करें तो ठीक होगा। गोकि मुझे अलग दल बनाने का खयाल बहुत जँचा नहीं; मगर चर्चा के लिए अपरिवर्त्तनवादियों की सभा करने के मैं विरुद्ध नहीं था। मगर जब आमंत्रण पत्र लिखने का मौका आया, तब मैंने देखा कि यह मुश्किल काम है, और निमंत्रितों के नाम चुनना भी कुछ कम टेढी खीर नहीं है। सच पूछो तो मुझे दोनों ही काम असंभव से लगे। इस प्रश्न पर और गहरा विचार करने पर मैंने देखा कि ऐसी कोई सभा करने से शायद डाक्टर अंसारी मुश्किल में पड जायँगे और ऐसी बातों पर वाद-विवाद करने से, जिन को हम मजे में किसी दूसरे अच्छे अवसर के लिए मुल्तवी रख सकते हैं, बहिष्कार की ओर से देश का ध्यान इस ओर खिंच जायगा जिससे बहिष्कार का राष्ट्रीय कार्यक्रम पूरा करना शायद और अधिक मुश्किल हो जायगा। फिर मैंने यह भी देखा कि जब तक मैं जिन्दा हूँ, सुलभ हूँ और मेरा दिमाग ठीक और स्वस्थ है, तब तक मेरे बिना कट्टर असहयोगियों का जो अपरिवर्त्तन-वादी दल खोला जायगा, वह पूरा पूरा और जोरों से काम नहीं कर सकेगा, और इस सभा की जड में यह खयाल था कि एक दल ऐसा बनाया जाय कि जिसमें मेरा शामिल होना जरूरी न रहे। सिद्धान्त के रूप में यह भले ही संभव होवे, मगर व्यवहार में तो बहुत सी बातों पर मेरी राय पूछी ही जायगी, और मैं उन बहुत मुबाहिसों में शामिल रह कर, जिनसे वे सवाल पैदा होंगे, जो राय दे सकूँगा, उसकी बनिस्वत, उनमें शामिल हुए बिना ही मेरी जो राय होगी, उसके कहीं अधिक गलत होने की संभावना है। इन खयालों से इस विचार की ओर मैं झुका कि अभी हाल के लिए तो सभा मुल्तवी की जा सकती है। पहले पहले मैंने वल्लभभाई से अपनी यह बदली हुई राय कही और वे उससे सहमत हुए। दूसरे मित्र भी दूसरे स्वतन्त्र कारणों से इसी नतीजे पर आ गये। इस लिए इस सभा का विचार तो अभी स्थगित रहा।

मुझे आशा है कि इस मुल्तवी से अपरिवर्त्तनवादी लोग निराश न हो जायँगे। मैं यह अभी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि इसे स्थगित रखना ही अच्छा होगा। जब कि राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में असहयोग अंशतः स्थगित है, व्यक्तिगत या अलग अलग असहयोगियों को अपनी श्रद्धा की परीक्षा करने का अवसर मिला है। दल के सहारे के बिना अलग अपने ही पैरों खडे रहने में उनकी श्रद्धा और भी सबल होनी चाहिए। जब कोई वस्तु इतना सबल ध्येय बन जाती है जितना कि उनके लिए असहयोग जरूर ही हो गया होगा, जो अब तक उसका पालन सचाई से करते आ रहे हैं, तो वह वस्तु अपने ही बल पर खडी रहती है, उसे अपने भीतर ही से यथेष्ट पोषण मिल जाता है। हम देश में यह भी श्रद्धा रखें कि जब कभी कोई प्रगतिशील आन्दोलन शुरू होगा, वे सभी लोग उसमें बखुशी तमाम शामिल हो जायँगे, जिन्होंने असहयोग को छोड दिया था। इस घडी मैं आगे का कोई काम नहीं सुझा सकता। और बीच की मैं जो कुछ बात सुझाऊँ, उससे देश के भिन्न २ दल जो संयुक्त कार्यक्रम तैयार करने की कोशिश कर रहे हैं, संभवतः उसमें खलल पड जा सकता है। इस बीच में मैं अपरिवर्त्तनवादियों का ध्यान केवल खादी के महान रचनात्मक कार्यक्रम की ही ओर खींच सकता हूँ। जो लोग असहयोग के सबसे अधिक शक्तिशाली, और सबसे अधिक क्रियाशील अंश यानी अहिंसा की खूबियां नहीं समझते, उसे नहीं पहचानते, उनके लिए असहयोग किसी समय भी ध्येय के गौरव को प्राप्त नहीं हो सकता और वह युद्ध की कई चालों में से केवल एक चाल भर बन कर रह जाता है। असहयोग के तो वह अमोघ शस्त्र बनने की आशा थी कि जो और सब अस्त्रों का स्थान ले लेता होगा। इसके रचनात्मक पहलू का पहला अंग खादी है। इंग्लैण्ड के समाचारपत्र 'डेली डिस्पैच' में देखिए कि मि० हारकोर्ट रौबर्ट्सन किस प्रकार अनिच्छापूर्वक खादी की स्तुति कर रहे हैं। संपादक का कहना है कि 'लेखक बहुत साल तक ब्रिटिश भारत में रह चुके हैं और वहां के व्यापार की हालत और भारतीयों की मनोवृत्ति का उन्हें खूब गहरा ज्ञान है।' 'लीडर' पत्र से मैं नीचे का उतारा देता हूँ:

"मि. रौबर्टसन के मतानुसार ब्रिटिश सूती माल की भारत में खपत की कमी का कारण महासमर के बाद का गडबड नहीं है, आर्थिक कठिनाइयां भी नहीं हैं और न भारतीय जनसमूह की दरिद्रता ही है क्यों कि 'हिन्दुस्तानी किसान तो सदा का ही नंगा और भूखा है,' और न अकाल हैं क्यों कि 'अकाल तो यहां हर साल पडते ही रहते हैं' बल्कि हिन्दुस्तानी और जापानी मिलों की चढाऊपरी है और सब से जबर्दस्त कारण है खद्दर जो और सब कारणों से कहीं बढाचढा है। वे तो खादी को ही असल दुश्मन समझते हैं। खादी और खादी के प्रधान आचार्य महात्मा गांधी का उन्होंने रोचक वर्णन किया है। वे कहते हैं:

"'खद्दर वह देशी कपडा है जो बाबा आदम के जमाने के करघों पर हाथकते सूत से नौसिखुए और नये नये बुननेवाले बुनते हैं। खद्दर रुखडा, कडा, मकठोंवाला और दोषों से भरा होता है। वह बराबर ही मैला दिखलायी पडता है। मगर तो भी उसकी चाल खूब चल निकली है, धनी हिन्दुस्तानी भी खद्दर का कपडा पहनने में गौरव मानते हैं। क्योंकि दिन दूने रात चौगुने बढनेवाले राष्ट्रीय दल की इस पुकार का कि 'हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों के ही लिए है' खद्दर प्रत्यक्ष और ठोस रूप है। इस पर खर्च होनेवाली एक कौडी भी विदेशों में नहीं जाती है। इसे जो पहनता है, वह हिन्दुस्तान के करोडों भुक्खडों को खाना देता है, अपने देश की स्वतंत्रता घोषित करता फिरता है और अपने को अव्वल दर्जे का देशभक्त साबित करता है। महात्मा गांधी का एक शस्त्र खद्दर है और भारतवर्ष में विदेशी शासन से डर कर उन्होंने इसका आविष्कार किया था। महात्मा गांधी आधे संत, आधे धर्मान्ध और पूरे देशभक्त हैं। वे खुद अपने भाषणों और देशी समाचारपत्रों के जरिए भी देश के शिक्षित वर्ग के हृदयों पर असर डालते हैं। आज हिन्दुस्तान में असहयोग इसलिए मर नहीं गया है कि उसका शोर नहीं होता। यह तो अब उस स्थिति में पहुँच गया है जब कोई शोरोगुल न होते हुए यह खतरनाक हो रहा है। . . . . एक बार महात्मा गांधी के प्रचारकों ने जनता का मत फेरा नहीं कि फिर हिन्दुस्तान विदेशी माल का ग्राहक

खरीदार नहीं रहेगा — बल्कि खरीदार रहेगा ही नहीं । . . . . यह वार केवल कपडे पर ही नहीं किया गया है बल्कि यह तो सभी ब्रिटिश माल का व्यापार ही चौपट कर देने की कोशिश जानबूझ कर की जा रही है ।'

"इन बातों से तो महात्मा गांधी के उत्साहप्रद नेतृत्व में खद्दर के प्रचारकों की छाती दो गज चौडी ही हो आयगी । अहिंसा के महान् भक्त महात्मा गांधी जी का विश्वास है कि चर्खे के ज़रिये भारतवर्ष आर्थिक स्वतंत्रता पा सकता है जिसके कारण, बाद में राजनीतिक स्वतंत्रता भी आयगी ही । मि. रौबर्टसन डर गये हैं और वे इनका उपाय भी सुझाते हैं, 'ब्रिटिश राज में विश्वास पैदा करो । साम्राज्य के खयालात लोगों के दिमाग में भरो। हिन्दुस्तान की जनता को समझाओ कि ब्रिटिश शासन से भारतवर्ष को बहुत से लाभ हुए हैं और तब ब्रिटेन का हिन्दुस्तान का व्यापार उसे मिल जायगा ।' उनकी सलाह है कि अँगरेजी राज्य के पक्ष में सिनेमा या बायस्कोप की चलती फिरती तस्वीरों के जरिये प्रचार कराया जाय और ये तस्वीरें हिन्दुस्तान के अनजान लोगों को मुफ्त में दिखलायी जायँ । प्रचार के दूसरे जरियों जैसे कि अखवारों की भी उपेक्षा न की ज़ाय । अगर उनकी सलाह पर अमल किया जाय तो 'अब भी हमारे हाथ में हिन्दुस्तान आ सकता है, हिन्दुस्तान का व्यापार हमारे हाथों से हमेशे के लिए नहीं निकल गया है ।' इसमें देर करने से नहीं चलेगा क्योंकि 'कुछ ही वर्षों में राष्ट्रीय दलों ने इतना अधिक काम कर लिया होगा कि उनका असर दूर करने के लिए चाहे जो काम किया जाय, वह असफल ही होगा क्योंकि 'का वर्षा जब कृषि सुखानी ।' इस बीच वे सुझाते हैं कि हिन्दुस्तान में ऐसे विचारों का प्रचार करने के लिए कुछ किया ज़ाय कि, 'हिन्दुस्तान की कपास का लैंकाशायर वाला कपडा,' 'हिन्दुस्तान का सबसे अच्छा गाहक लैंकाशायर है,' 'लैंकाशायर के कपडे खरीदने से हिन्दुस्तानी किसानों को सहायता मिलती है ।' अंत में वे कहते हैं कि जब तक ये, अथवा ऐसे ही और उपाय अमल में तुरत नहीं लाये जाते, यह निश्चित जान पडता है कि लैंकाशायर के कपडों का भारत का व्यापार न सिर्फ रोगी ही है, बल्कि मर रहा है ।' लेखक यह मानने में बडी भूल करते हैं कि इस तरह के पूँजीवालों के प्रचार से भारतवर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन की बाढ रुक जायगी हिन्दुस्तान की जनता और पढे लिखे लोग, ऐसे वछिया के ताऊ नहीं हैं कि इस चाल का भी मतलब न समझ सकें । आर्थिक लूट के इस संगठित प्रचार का तो यही नतीजा निकलना चाहिए कि खद्दर आन्दोलन को प्रोत्साहन मिले और वे हिन्दुस्तानी भी जो आज इसका आर्थिक महत्व बहुत नहीं मानते, इसे जरा दूसरी नजर से देखने लगें । इस तरह का प्रचार करना इस बात को खुलासा मान लेना होगा कि खद्दर अपना काम करता रहा है, जिससे खद्दर में जिन्हें शंका भी होगी, उनका भी इसमें विश्वास पैदा हो जायगा । दोनों देशों का संबंध स्वार्थी प्रचार से नहीं, बल्कि भारतीयों की राष्ट्रीय मांगें बहुत कुछ पूरी करने से ही ठीक ठीक जुडेगा और लैंकाशायर के भारतीय व्यापार के विरुद्ध जो शक्तियां काम कर रही हैं, वे हर सकेंगी ।"

यह तो कहना ही फजूल है कि खादी कोई धमकी नहीं है । स्वराज के समान यह भी राष्टीय जीवन के लिए श्वास के जितनी ही आवश्यक है । चाहे जिस उदारता से हमारी मांगें क्यों न पूरी की जायँ, मगर जिस तरह स्वराज को हम नहीं छोड सकते हैं, उसी तरह खादी को भी नहीं छोड सकते । खादी को छोडने के मानी होंगे भारतीय जनता को बेंच देना, भारतवर्ष की आत्मा को बेच देना ।

(यं० इं०)

मोहनदास करमचंद गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ३५

भले बुरे का मेल

टॉल्सटाय आश्रम में मि. केलनबेक ने मेरे आगे एक सवाल ला खडा किया । उनके उठाने के पहले मैंने उस सवाल पर विचार नहीं किया था । आश्रम में बहुत से लडके बडे तूफानी और बुरे थे कोई कोई आवारा गर्द थे । उन्हींके साथ मेरे तीन लडके थे और दूसरे भी उन्हीं की तरह पले हुए लडके थे । पर मि. केलनबेक को तो यह फिक्र थी कि वे आवारा लडके और मेरे लडके एक साथ कैसे रह सकेंगे । एक दिन वे बोल उठे, "आपका यह ढंग, मेरे गले जरा भी नहीं उतरता है । इन आवारा लडकों के साथ आप अपने लडकों को रखते हैं तो इससे एक ही बात होगी । उनकी संगति का छूत लगेगा और ये भी बिना बिगडे कैसे रहेंगे ?"

यह तो मुझे अब याद नहीं आता है कि मैं इससे घडी भर चिन्ता में पडा था या नहीं, मगर इतना जरूर याद है कि मैंने उन्हें क्या जवाब दिया था । मैंने कहा, "मैं अपने लडकों और इन आवारा लडकों के बीच फर्क कैसे कर सकता हूँ ? अभी तो मैं दोनों के लिए एक ही जैसा जिम्मेवार हूँ । ये नवजवान मेरे बुलाये पर आये हैं । अगर मैं उन्हें रुपये दूँ तो ये पहले जैसे रहते थे वैसे जोहान्सबर्ग में आज ही जा रहें । अगर वे और उनके बडे लोग, यह भी मानते हों कि यहां आकर उन्होंने मुझपर कोई अहसान किया है, तौभी कोई ताज्जुब नहीं है । यह तो आप और हम दोनों ही देखते हैं कि यहां आ कर वे असुविधा उठाते हैं । पर मेरा धर्म स्पष्ट है । मुझे तो उन्हें यहीं रखना चाहिए । यानी मेरे लडके भी उन्हींके साथ रहें । फिर मैं आज से अपने लडकों को क्या यह भेदभाव सिखलाऊँ कि वे दूसरे लडकों से ऊँचे हैं ? ऐसे विचार ही उनके मन में लाना, उन्हें गलत रास्ते पर ले जाना है । ऐसी स्थिति में रहने से उनका चरित्र बनेगा, वे भले बुरे की पहचान आप करने लायक बन जायँगे । हम ऐसा क्यों न मानें कि अगर उनमें सचमुच कोई गुण होगा तो उलटे उसीकी छूत उनके साथियों को लगेगी । खैर बात चाहे जो होवे, मुझे तो उनको यहां पर रखना ही होगा और इसमें अगर कोई जोखम हो तो उसे उठाना रहा । " मि. केलनबेक ने सिर हिलाया

यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रयोग का परिणाम बुरा आया । मैं यह नहीं मानता हूँ कि इससे मेरे लडकों को कोई नुकसान हुआ है । यह मैं देख सकता हूँ कि लाभ हुआ है । अगर उनमें बडप्पन का कोई खयाल रहा भी हो तो वह बिलकुल चला गया, उन्होंने सबके साथ मिल जाना सीखा । वे आग में तप गये । यह और ऐसे ही दूसरे अनुभवों से मुझे ऐसा लगा है कि अगर मावाप की देखरेख ठीक होवे तो भले बुरे लडकों के साथ अपने लडके रहें और पढें लिखें तो इससे अच्छे लडकों का कुछ बिगडता नहीं है । ऐसा कोई नियम तो है ही नहीं कि अपने लडकों को तिजोरी में बन्द ही रखने से वे अच्छे रहते हैं और बाहर निकले नहीं कि गये । हां, परन्तु यह सच है कि जहां अनेक प्रकार के लडके और वैसी ही लडकियां साथ रहती, पढती लिखती हों, वहां मावाप और शिक्षक की कडी जाँच हो जाती है । उन्हें सावधान रहना पडता है ।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

आश्रम में

अकिञ्चन व्रत

एक साल के पर्यटन के बाद गांधी जी को फिर क्षणभर स्थिर होकर आश्रम में बैठने का अवसर मिला है । इसकी कल्पना पाठक सहज ही कर सकते हैं कि इससे उन्हें, या हम लोगों को कितनी शान्ति मिली है । पहले तो बात ऐसी थी कि जनवरी महीना खत्म होते ही गांधी जी फिर आन्ध्र और कर्णाटक में घूमने चले जायँ, मगर चर्खासंघ ने यह योजना रद कर दी है, इस लिए मार्च तक तो वे यहां रहेंगे ही ।

पर इस समय भी आराम कैसा ? यहां भी तो काम पडा ही हुआ है, मगर इतना तो जरूर है कि यहां के काम में शान्ति है, आश्रमवासियों की अनेक कठिनाइयां दूर करने में सहायता देने का आश्वासन है और अपने मन का भार भी उनके आगे हलका करने का अवसर है ।

आदमी की परीक्षा छोटी छोटी बातों में भी हुआ करती है । और बहुत बार तो आदमी को खबर भी नहीं होती कि उसकी कसौटी हो रही है । ऐसा दो एक घटनाएँ हुईं । आश्रम में हर साल शरद्ऋतु के बाद मलेरिया का खूब प्रकोप होता है और उसका निवारण करना एक बडा जटिल प्रश्न हो रहा है । इस बारे में डाक्टरों की सलाह ली गयी है । उनसे पूछा गया है कि हम सफाई में, पानी के बारे में और क्या करें ? उनकी एक साधारण सलाह यह है कि सभी मच्छरदानी या मशहरियां लगावें । जान पडता है कि इस पर गांधी जी ने डाक्टरों से पूछा था कि, 'मगर सभी मच्छरदानी लावें कहां से ? क्या गरीबों के लायक भी कोई उपाय नहीं है ?' डाक्टरों ने बतलाया होगा कि सारा बदन तो ओढने में ढका रहे और चेहरा, गर्दन और हाथों पर मिट्टी का तेल लगा लिया जाय तो मच्छर नहीं काटेंगे । सामान्यत: गांधी जी मच्छरदानी लगाते हैं मगर अब तो उन्हें गरीबों का उपाय मिल गया । इस लिए उन्होंने मच्छरदानी हटवा दी, और मुँह पर किरासन तेल लगाना शुरू कर दिया । सच पूछो तो गरीबी का व्रत लेनेवाला वह गरीब नहीं है जिसे कुछ जुरता ही नहीं, मगर गरीब वह है जिसे सब कुछ मिलता है, मगर इस लिए कि वे चीजें गरीबों को नहीं मिलतीं, उनका उपयोग नहीं करता ।

दूसरी घटना इस तरह हुई । एक दिन गांधीजी ने सांझ के समय प्रार्थना में कहा, 'मुझे आज अपनी मूर्खता की बात कहनी है । इसमें हम तीन आदमियों का हिस्सा है, या तो अधिक से अधिक हिस्सा मेरा है, क्योंकि इस आश्रम में सरदार तो मैं हूँ, और इस लिए सब से अधिक जाग्रत तो मुझे रहना चाहिए, जो मैं नहीं रहा ।' बहुतों को फिक्र हो गयी कि भला यह कौन सी बात होगी ? पर गांधीजी तो अपनी भूलों की सभी कथाओं को सुनाते हुए अतिशयोक्ति की ही भाषा बोलते हैं । यहां भी वही बात हुई । गांधीजी जिस कमरे में, सोते, उठते, बैठते या काम करते हैं, उसकी नदी की तरफ की दीवार और छप्पर के बीच लकडी की जाली है । यह जाली हवा और उजियाले के प्रवेश के लिए बनायी गयी थी । पर जब सुबह में सूर्य उगता है तब जाली से होकर ठीक गांधीजी बैठे हुए जहां कामकाज करते होते हैं, वहीं उनके मुँह पर आकर धूप पडा करती है । गांधीजी ने हममें से एक आदमी से कहा कि वहां धूप रोकने के लिए कुछ बांध दो । वह भाई एक दूसरे आदमी को कह आये । वे गये और बढई को एक पटरे के साथ लेते आये । बढई को उन्होंने कहा कि, 'इस तरह पटरा लगावो कि जो जरूरत हो तो इसे पर्दे के जैसे अनायास उठाया जा सके और बंद करना हो तो बंद किया जा सके ।' गांधीजी ने 'हां' कह दिया मगर जब बढई काम में लगा, तब वे सोच में पड गये कि यह उचित हुआ है या अनुचित । उन्हें यह काम ठीक न जंचा इसलिए उन्होंने तुरत ही उन दो साथियों को बुलाया और 'मूर्खता का नमूना' के रूप में उस पटरी को पेश किया । दूसरे दिन सबेरे बहिनों की प्रार्थना में भी यह कथा कह सुनायी और सांझ की प्रार्थना में इस 'मूर्खाई' की कथा का और भी अधिक प्रचार किया । "हम गरीबी का व्रत लेनेवालों का इसतरह नहीं चल सकता । जब यह पटरी आयी तभी मुझे यह सूझ जाना चाहिए था कि इसके बदले कार्ड बोर्ड या कपडे के टुकडे से भी काम चल सकता है । इस पटरी की ही कीमत के दो रुपये होंगे, और बढई की मजदूरी लगी होगी, वह अलग ही है । जब कि कार्डबोर्ड या कपडे की कीमत नहीं सी ही पडती और दो खीलें मार कर उसे लगा सकते थे । ऐसी छोटी छोटी बातों में हमारी परीक्षा होती है । ऐसे हर एक अवसर पर विचार करना चाहिए कि गरीब कैसे रहें, वे किस तरह अपनी जरूरियात पूरी करें ।"

साहेब कैसे मिलें

सबेरे सांझ हमारी प्रार्थना में भजन होते हैं और सामान्यत: पण्डित खरे शास्त्री गाया करते हैं । वे जब मद्रास गये हुए थे, तब उस बीच पण्डित तोताराम जी प्रार्थना चलाते थे । तोतारामजी तो हैं मानों कबीर के वचनों और भजनों के भंडार हैं । एक-न-एक ले कर गाते भी बडी ही मधुर शैली से हैं । एक दिन सबेरे इन्होंने कबीर का एक भजन गाया जो हमने पहले कभी न सुना था । इसलिए सांझ को गांधीजी ने लडकों से पूछा, "भला आज सबेरे कौन भजन गाया गया था ।" कोई कह नहीं सका । इसलिए प्रार्थना पर और उस भजन पर गांधीजी को कुछ कहने का अवसर मिला । उन्होंने कहा, "मुझे भजन के शब्द तो याद नहीं हैं, मगर भाव तो ऐसे नहीं हैं जो भूले जा सकें । सारे दिन उस भजन की गूँज मेरे कानों में आती ही रही है । हम प्रार्थना में आते हैं तो कुछ गीत सुनने के लिए नहीं, कुछ यह देखने के लिए नहीं कि फलां ने खूब अच्छा गाया, और फलां ने नहीं, मगर इसलिए कि जिसमें प्रार्थना में जो कुछ सुना हो, उसमें से कुछ अंश हृदय में बचा रक्खें और सारे दिन उसकी शिक्षा को अपने जीवन से मिलाया करें । अगर यह न हुआ तो प्रार्थना में आना, न आना दोनों ही बराबर हैं । आज का भजन कैसा भावपूर्ण था ! उसमें कबीर ने बतलाया है कि साहेब यानी भगवान किसे मिलेंगे ! यह बडे को तो मिलेंगे ही नहीं, पर जो छोटा हो उसे मिलेंगे । इसके लिए कबीर ने सादे और सुन्दर दृष्टान्त दिये हैं । अगर रेत में शक्कर मिल जाय तो हाथी उसे निकाल कर नहीं खा सकता, उसे निकाल कर खाने की शक्ति तो केवल एक चींटी में ही है ।" वह भजन यह रहा:

> साहबको मिहीं होय सो पावे ।
> मोटा सूत दिया कोरियाघर, मिहीं मिहीं बुहरावे,
> मोटे सूत को ताना ताने, मिहीं कहां से पावे
> —साहब को०
>
> मोटी माँटी है कुम्हरा घर, दोचार लात लगावै,
> मिहीं मिहीं वाको करि डारे, तब वाहि चाक चढावै
> —साहब को०
>
> शक्कर बिखिरी रेत में संतो, कुंजर हाथ न आवै,
> मान बडाई छोड दे बंदे, चिंटी होइ चुन लावै
> —साहब को०

बडौ होइ तिहि सब जग जानै, सबपर अदल चलावै,
कहै कबीर यम वाको पकडे, तब वाहि कौन छुडावै
—साहब को०

गीता पाठ

सायंकाल की प्रार्थना के समय गांधी जी उसी दिन की किसी घटना के ऊपर कुछ विवेचन करते हैं और सबेरे की प्रार्थना में, उस दिन गीता के जिस अध्याय का पाठ हुआ होवे, उस पर कुछ कहते हैं। यह कुछ लम्बी टीका या विवेचन नहीं होता, परन्तु केवल थोडे से सूचक वचन या वाक्य भर होते हैं, जिनसे उस अध्याय के अध्ययन में कुछ सहायता मिले। उसमें से थोडा सा यहां देता हूँ।

"नवां अध्याय—यह तो हम लोगों जैसे अंतर्व्यथा से व्यथित रोगियों के लिए मरहम पट्टी के जैसा है। हम सभी विकार से भरे हुए हैं और यहां पर भगवान ने अपनी शरण में आनेवाले का विकार मिटाने का कौल—वचन—दिया है। इस अध्याय से यह भी जान पडता है कि जिस समय गीता लिखी गयी थी, उस समय वर्णाश्रम धर्म में ऊंचनीच के भेदभाव घुस चुके थे और एक दूसरे को ऊंचा नीचा गिनने लग चुके थे। पर कौन ऊंचा है और कौन नीचा? जो संपूर्ण निर्विकारी हो, वह दूसरे पर उँगली उठावे और कहे कि 'देखो लोगो, यह विकारी है।' यहां तो सभी के सभी एक समान विकारी हैं, और उस विकार को दूर करने, मिटाने के लिए भगवान् की शरण जाना—यही दवा बतायी गयी है। इससे यह न समझना चाहिए कि हाथ पर हाथ धरे बैठे रह कर भगवान् की शरण जाने से बिना प्रयत्न किये ही सब विकार धुल जायँगे। जिसकी इन्द्रियां उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे विषयों की ओर खींच ले जाती हैं और वह आंसू ढालता हुआ जिस समय भगवान् की शरण में दौडेगा, उसे वे जरूर विकार-मुक्त करेंगे।

"इस अध्याय में पाप का प्रायश्चित्त भी आ जाता है। पाप का प्रायश्चित्त उपवास से नहीं, पर भक्ति और प्रपत्ति से होता है। मैं उपवास की उपयोगिता भली भांति समझता हूँ, मगर उसकी भी मर्यादा है। पाप के लिए उपवास हो ही नहीं सकता, शायद आड हो पडेगा। पापी तो पाप करनेवाला हुआ, पर पाप-योनि तो पापरूप योनि में से जन्मा हुआ, और इसलिए वह महापापी हुआ। यह तो हम नहीं कह सकते कि इसमें इसकी क्या कल्पना है मगर आश्वासन तो सभी किसीको भगवत्प्रपत्ति में मिला ही है। पाप का प्रायश्चित्त तो भक्ति ही है कितनी बार भक्तिरस में डूबने के लिए उपवास जरूरी जान पड सकता है और उस समय, सभी कोई अपने अपने लिए निश्चय कर ले सकते हैं। पर साधन तो है केवल भक्ति ही और भक्ति है शून्य हो जाना, अपने आपको, अपनी खुदी को नष्ट कर डालना। अगर यह हो गया तो चाहे लाख पाप हो चुके हों, सभी नष्ट हो जाते हैं, लगते नहीं। सुदुराचार जो कहा है, वह दूसरा कुछ नहीं है, हमीं हैं। हृदय के अनेक पाप करनेवाले—ऊपर से रँगे सियार बन कर फिरनेवाले—हम सब पापी हैं और उनके लिए भगवान् ने इस अध्याय में वचन दिया है।"

ग्यारहवां और बारहवां अध्याय:

"ग्यारहवें अध्याय में भगवान् के अनेकानेक रूपों का दर्शन करा के मनुष्य को भक्ति के लिए तैयार कराया है और बाद बारहवें में भक्ति का रहस्य बतलाया है, सच्चे भक्त का वर्णन किया है। यह अध्याय तो इतना छोटा है कि कोई आदमी उसे सहज ही कंठ कर ले सकता है।"

चौदहवां और पंद्रहवां अध्याय:

"चौदहवें में तीन गुणों का वर्णन है और पंद्रहवें में पुरुषोत्तम का वर्णन है। १४ वें में मनुष्य का नियमन करनेवाले तीन गुण बतलाये हैं। नियम तो अनेक हैं, मगर उनके सत्व, रजस् और तमस्, तीन विभाग किये हैं। इनमें कोई आदमी ऐसा नहीं दिखलायी पडता जिसमें केवल एक ही गुण होवे। सबमें तीनों का ही कुछ न कुछ थोडा बहुत अंश रहा ही करता है। धीमे धीमे चढते हुए हम सात्विक बनें और अंत में उसे भी पार कर के पुरुषोत्तम को पावें। अपने अवगुण को पहाड जैसे देख कर भाप जैसे पतले बनें, तभी सात्विकता आयगी। इस बात को समझाने के लिए पानी और भाप का दृष्टान्त बडा योग्य जान पडता है। पानी जब बर्फ की दशा में होता है, तब उसकी गति नीचे की ओर होती है, वह धरती पर ही पडा रहता है। पर भाप बनना शुरू हुआ नहीं कि ऊपर चढने लगा। बर्फ बन कर वह ऊपर चढने की जो शक्ति खो बैठता है, वह शक्ति उसमें भाप बनने से आ जाती है और अंत में बादल बन कर वह बरसता है और जगत का कल्याण करता है। यह बात ही जुदा है कि बर्फ का भी उपयोग है और सूर्य के बिना पानी भाप बन कर आकाश में उड कर बादल नहीं बन सकता,—इसे भी हम अभी कोरे ही रक्खें। तात्पर्य यह है कि बादल मोक्ष की दशा बतलाते हैं, भाप सात्विक दशा बतलाती, है, और पानी हमारी अपनी स्थिति दिखलाता है।"

क्षमा का रहस्य

उस दिन खादी-सेवा-संघ के एक विद्यार्थी, अपना दुःख लेकर पहुँचे। इनका रोग था क्रोध। इसका उपाय क्या? इन्होंने पूछा, "क्या प्रायश्चित्त के रूप में उपवास करूं?" गांधीजीने उपवास के बारे में ऊपर लिखे गये विचार कह सुनाये, "उपवास प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। पर सच्चा प्रायश्चित्त तो जिस पर क्रोध किया है, उसकी माफी मांगने में, उसे खुश करके उससे प्रायश्चित मांग लेने में, है।" इन भाई ने यही किया, मगर वह बेचारा क्या करे जिस पर क्रोध किया गया था? इस घटना में तो उसने क्रोध नहीं किया था, शान्त रहा था। पर क्या इस तरह शान्त रह कर ही सब कोई क्षमा दिखलावें? क्षमा आखिर है क्या? क्या क्षमा केवल अक्रोध, महज क्रोधहीनता ही भर है? गांधी जी ने कहा, "क्रोध का कारण उपस्थित होने पर भी चुप्पी मार लेनी, मार खा लेनी, मार खा कर भी कुछ न बोलना — इसी मान्यता ने हिन्दुस्तान की जड खोद फेंकी है। बुद्ध भगवान् ने जब कहा था कि 'अक्रोधेन जिने कोधं" अर्थात अक्रोध से क्रोध को जीतना चाहिए, तब क्या उनके मन में यही धारणा होगी कि अक्रोध के मानी हैं कुछ नहीं करना, हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहना? मुझे तो नहीं जान पडता है। कहा है "क्षमा वीरस्य भूषणम्" तब क्या यह क्षमा केवल निष्क्रिय क्षमा होगी? नहीं। यह अक्रोध, यह क्षमा जब दया के रूप में बदलती है, प्रेम का रूप धारण करती है, तभी यह शुद्ध क्षमा होती है, वीर का भूषण बनती है। क्रोध के बदले क्रोध न करते हुए क्रोधी के सामने जा कर कहिए कि तुम्हें क्रोध दिलाने के लिए माफी मांगता हूँ और फिर पीछे उसे नम्रता से समझाइए कि अगर दूसरा भाई कोई भूल भी करे तो क्रोध करना उचित नहीं है। यों, आत्मा की शक्ति का प्रयोग करने में क्षमा घुसी हुई है। अहिंसा कुछ आलस नहीं, प्रमाद नहीं, अशक्ति नहीं, वह सक्रियता है। क्षमा के बारे में यह ज्ञान होना चाहिए कि यों आत्मा की शक्ति प्रकट कर के हम जगत का कल्याण करेंगे। यह सच है कि यह क्षमा, यह ज्ञान, जिनमें हो, केवल वे ही उसे दिखला सकते हैं, मगर यह ऐसा गुण है जो पैदा भी किया जा सकता है।"

(नवजीवन)

महादेव देशाई

मेरा जामिया का अनुभव

मैं जामिया मिल्लिया में इस्लाम के बारे में जो कुछ सीख सकूँ, सीखने गया था। शान्तिनिकेतन और सत्याग्रहाश्रम में मैंने हिन्दूधर्म की कितनी अनमोल बातें सीखीं। बतौर हिन्दू के मैंने सोचा कि अपने मुसलिम देशबंधुओं के आदर्शों, आकांक्षाओं के बारे में मैं जो कुछ सीख सकूँ, सीखना मेरा कर्त्तव्य है।

जाने के साथ ही मुझे भाई और दोस्त बनाकर मिला लिया गया। वहां बिलकुल घर जैसा मिल जाने में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई। मुझे यह देखने में बहुत कम समय लगा कि जामिया में वैसे लोग हैं जो एक ऐसी संस्था बनाने के लिए दिलोजान से कोशिश कर रहे हैं जिसकी जड में इस्लाम की सभी खूबियां होवें, मगर जो राष्ट्रीयता में किसीसे पीछे न रहे। दर असल जामिया में जीवन के इस्लामी और राष्ट्रीय आदर्शों में कोई फर्क ही नहीं है। जामिया में संकीर्ण साम्प्रदायिकता को कोई जगह नहीं है। जब कभी जामिया मुसलमानों का सच्ची सेवा करने की कोशिश करती है वह भारतीय राष्ट्र की ही सेवा करती है। वहां और कुछ हो ही नहीं सकता था क्योंकि जामिया के बनानेवाले, उसे जिलानेवाले तो हकीम साहेब थे। यह सोच कर उनका कलेजा मुंह को आ जाता था कि मुसलमानों का शिक्षा में पिछडा रहना, भारतीय राष्ट्रीयता के लिए एक बहुत बडी बाधा है। इसलिए जामिया में वे वह शिक्षा देना चाहते थे। और चूंके जामिया में शिक्षकों का ऐसा दल था कि जो हकीम साहेब के विचार समझता और पसंद करता था, इसलिए उस विचार को बहुत कुछ व्यावहारिक रूप देने में जामिया सफल हुआ है। इस नयी भावना को मैंने कई अवसरों पर खूब स्पष्ट देखा है। दिल्ली के हिन्दू, मुसलमानों में पिछले १२ महीनों में बडी कडवास रही है। और इन्हीं १२ महीनों में मैं जामिया में रहा हूं। मगर इस कडवास की मरुभूमि में जामिया में मेल का सोता ही बराबर बहता रहा है। एक घटना मुझे बिलकुल साफ साफ याद है। जब अबदुल रशीद को गोर देने के लिए ले जाते थे, दिल्ली की गलियों में दंगा हुआ था। मैं उस समय वर्ग में पढा रहा था। मुझे उसी वक्त दंगे की खबर मिली। मैंने कहा, 'ओफ, बेचारे को बेकार ही फांसी दी गयी।' पर मुसलमान लडकों का सारा का सारा वर्ग बोल उठा, 'क्यों जनाव, उसे फांसी क्यों न दी जाती? वह और किस लायक था? स्वामीजी को बीमारी की हालत में, जब कि वे कमजोर थे, उसने मारा ही क्यों?' मैंने कहा कि मैं तो फांसी की सजा का ही विरोधी हूं। जवाब मिला, 'वह तो दूसरी ही बात है।' मगर यह दिखलाने के लिए कि ये लडके इस्लाम के प्रति अपनी भक्ति में किसी से कम नहीं हैं, मैं एक और उदाहरण दूंगा। पढाते समय एक बात समझाने के लिए मैंने कहा ही था कि 'फर्ज कर लो कि तुम हिन्दू हो गये . . . . ' मुझे तुरत ही आदर के साथ लडकों ने टोका, 'नहीं जनाब, बराय मिहर्बानी, ऐसी बात मत फर्ज करें।' मैंने बहुत खुशी से मान लिया।

यह मेरा विश्वास है कि भारतीय राष्ट्रीयता को जामिया की यह भेट होगी कि वह इस्लाम के मूल में छिपी सहिष्णुता और सार्वदेशिक प्रेम पर जोर देते हुए इस्लाम का सच्चा रहस्य बतलायगी।

मुझे यहां एक और बात कहनी चाहिए। जामिया भिन्न २ विषयों में ऊँची शिक्षा देते हुए यह बराबर समझती है कि जब तक नींव मजबूत नहीं होगी, मकान कमजोर ही रहेगा। किसी धंधे की कुछ न कुछ तालीम के बिना शिक्षा पूरी नहीं हो सकती। इस लिए बढईगीरी, जूते बनाने और कताई के वर्ग खोले गये हैं। तुरत ही बुनाई भी सिखलायी जायगी। कताई पर लिखते समय [...] का खयाल आ ही जाता है। जामिया को गरीबों की [...] जामिया के बडे विद्यार्थी रात्रि-पाठशालाएँ चलाते हैं जिन में [...] पास के गांवों से गरीबों के कोई दो सौ लडके आते हैं।

अन्त में मुझे यह भी कहना है कि जामिया तो [...] ही रही है। दूसरी संस्थाओं के जैसे इसमें भी त्रुटियां हैं, [...] हैं। मगर मेरे मनमें तो इसके भविष्य के बारे में कोई शक [...] है क्योंकि मैं इस विद्यापीठ के कार्यकर्त्ताओं के साथ काम [...] उन्हें खूब जानता हूँ। उनके आगे बहुत सी कठिनाइयां हैं। ऐसे अवसरों का भी पता है जब कि उनमें कुछ को इसका भी [...] नहीं था कि अब दूसरे शाम क्या खायेंगे। जो थोडे से लो[...] उठाये हुए हैं, वे कसौटी पर कसे हुए आदमी हैं और वे खरे [...] थे। कुछ बडे बडे लोगों के बारे में समझा जाता है कि वे [...] में दिलचस्पी लेते हैं। मगर उन गरीबों के बिना, इन बडे [...] के रहते हुए भी आज जामिया का कहीं पता नहीं लग सक[ता] परमात्मा की कृपा है कि वे अब भी अपने स्थान पर डटे [...] वहीं डटे रहने का दृढ निश्चय किये हुए हैं। जामिया के [...] की इससे अच्छी गारंटी और क्या होगी?

(यं. इं.) जी. रामच[...]

अखिल भारतीय गोरक्षा-मण्डल

चन्दा और दान

पहले स्वीकार किया गया		रु. ५,८९३
रामेश्वरदास झवेरमल्ल	धूलिया	५१
छोटालाल एच. श्राफ	बम्बई	५
काशीबहिन की स्मृति में हा. भगवानजी पुरुषोत्तम	प्रोम	५१
जीतमल लूणिया	अजमेर	५
शंकर श्रीकृष्ण देव	धूळिया	६०
'सज्जन'	बम्बई	३३५
अचरतलाल रणछोडलाल पंडया	बांदरा	६
गोसाई धर्मगिर मायागिर की पत्नी की स्मृति में	आंकलाव	३
परमेश्वरीप्रसाद गुप्त	दिल्ली	५
प्रागजीभाई जगाभाई	रूडापोर्ट	८५
विनायक एच. कामट	बम्बई	०
देवेन्द्रसिंह	लखनऊ	०
विठ्ठल लक्ष्मण गदांवर	यवतमाल	६
संतोकबाई देसाई के स्मरण में	साबरमती	५

कुल रु. ६,५१०

सभ्यों का सूत

		गज
११ बापुभाई कीलाभाई	नडियाद	
१९ छगनलाल खु० गांधी	साबरमती	
२० वी. जी. जोगलेकर	हर्दवी	

नं० ७, १२ और १८ वाले सभ्यों के सूत ३६,९६०; १४,०००; और ५,५०० गज तक पहुँचे हैं।

दान का सूत

		गज
एम. वी. राजगोपालन	धोन	
छीबुभाई केशवजी पटेल	भामो	

ब्रिटिश माल का बहिष्कार

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ ―)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक २३

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, माघ सुदी ४ संवत् १९८४ गुरुवार, २६ जनवरी १९२८ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ३६

प्रायश्चित्त के रूप में उपवास

इसका अनुभव दिनों दिन बढता गया कि बालकों और बालिकाओं को ठीक ठीक पाल पोस कर शिक्षा देने में कैसी कठिनाइयाँ पडती हैं। शिक्षक और वली के रूप में उनके हृदय में प्रवेश करना था, उनके सुखदुःख में भाग लेना था, उनके जीवन की उलझनें सुलझानी थीं, उनकी उछलती जवानी की तरंगों को सीधे रास्ते ले जाना था।

कैदियों के छूटने के समय टॉल्सटाय आश्रम में थोडे ही आदमी थे। ये मुख्यतः फिनिक्स-वासी थे। इस लिए मैं आश्रम को फिनिक्स में ले गया। टॉल्सटाय आश्रम में रहनेवाले आश्रमवासियों को फिनिक्स छोड कर मैं जोहान्सबर्ग गया। जोहान्सबर्ग में मैं थोडे ही दिन रहा था कि मेरे पास दो व्यक्तियों के भयंकर पतन के समाचार आये। सत्याग्रह के महासमर में निष्फलता जैसी कोई वस्तु देख कर मुझे आघात नहीं लगता था। परन्तु इस घटना ने मुझपर वज्र के समान प्रहार किया। मुझे चोट लगी। मैं उसी दिन फिनिक्स के लिए रवाना हुआ। मि० केलनबैक ने साथ आने का आग्रह किया। वे मेरी दयावनी स्थिति भाँप गये होंगे। मुझे अकेले जाने देना उन्होंने बिलकुल इनकार कर दिया। पतन की खबर मुझे उन्हीं की मार्फत मिली थी।

रास्ते में मैंने अपना धर्म समझ लिया, अथवा यों कहिए कि मान लिया कि समझ लिया। मुझे लगा कि अपनी संरक्षकता में रहनेवालों के पतन के लिए वली या शिक्षक थोडे ही अंश में सही, पर जवाबदेह हैं। इस घटना में मुझे अपनी जिम्मेवरी साफ दिखलायी पडी। मेरी पत्नी ने मुझे चेतावनी तो दी ही थी। पर स्वभाव से विश्वासु होने के कारण, मैंने उसकी चेतावनी की कोई पर्वा नहीं की थी। किन्तु मुझे यह लगा कि अगर मैं इस पतन के लिए प्रायश्चित्त करूँ, तभी पतित हुए लोग, मेरा दुःख समझ सकेंगे और उससे उन्हें अपने दोष का भान होगा, और उसका कुछ अंदाजा मालूम होगा। इससे मैंने सात दिन का उपवास और साढे चार महीनों तक दिन रात में केवल एक बार भोजन करने का व्रत लिया। मि० केलनबैक ने मुझे रोकने का प्रयत्न किया और वह निष्फल गया। आखिर उन्होंने प्रायश्चित्त की योग्यता स्वीकार की और उन्होंने भी मेरे साथ ही व्रत रखने का आग्रह किया। उनके निर्मल प्रेम को मैं रोक नहीं सका। यह निश्चय किया नहीं कि तुरत मैं हलका हुआ, शान्त हुआ; दोषी पर क्रोध उतरा और उस पर केवल दया ही रही।

यों ट्रेन में ही मन हलका कर के मैं फिनिक्स पहुँचा। खोज पूछ करके और जो कुछ जानना था, जान लिया। जो कि मेरे उपवास से सबको कष्ट तो हुआ, पर उससे वातावरण शुद्ध हुआ। पाप करने की भयंकरता सब को जान पडी और विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों के साथ मेरा संबंध और भी मजबूत और सरल बना।

इसी घटना में से मुझे थोडे दिनों बाद चौदह उपवास करने का प्रसंग आया। मैं तो मानता हूँ कि उसका परिणाम इतना अच्छा आया, जितना कि मुझे खयाल भी नहीं था।

इस घटना से यह सिद्ध करने का मेरा आशय नहीं है कि शिष्यों के हर दोष के लिए शिक्षकों को हमेशे उपवास करना ही चाहिए। पर मैं मानता हूँ कि कई एक संयोगों में इस प्रकार के प्रायश्चित्त रूप उपवास की जगह जरूर है। पर उसके लिए विवेक और अधिकार चाहिए। जहां शिक्षक और शिष्य के बीच शुद्ध प्रेम-बंधन नहीं है, जहां शिक्षक को अपने शिष्य के दोषों की सच्ची चोट नहीं लगी है, जहां शिक्षक के प्रति शिष्य के मन में आदर नहीं है, वहां उपवास निरर्थक है, शायद हानिकर भी होवे। पर ऐसे उपवास और एकाहार में भले ही शंका होवे, लेकिन इस बारे में तो मुझे लेश मात्र भी शंका नहीं है कि शिष्य के दोषों के लिए शिक्षक थोडा बहुत, कुछ न कुछ जिम्मेवार जरूर है।

सात उपवास और एकाहार हममें किसी को भारी नहीं लगे। इस बीच मेरा कोई काम मंद अथवा बंद नहीं हुआ था। और इस अवसर पर मैं फलाहारी ही था। चौदह उपवास का अन्तिम भाग मुझे भलीभांति भारी लगा था। उस समय रामनाम का चमत्कार मैंने पूरा पूरा नहीं समझा था। इस लिए दुःख सहन करने की शक्ति कम थी। फिर मुझे इस बाहरी कला का भी ज्ञान नहीं था कि चाहे

जिस तरह होवे मगर पानी खूब पीना चाहिए, इस कारण भी भारी पडा। किन्तु पहला उपवास सुखशान्ति से बीता था इस लिए इस बारे में लापर्वा था। पहले उपवास के समय हमेशे क्युनी बाथ (जल-चिकित्सा के खास स्नान) लिये थे। चौदह उपवास में दो या तीन दिन बाद उसे बंद किया। पानी का स्वाद ही नहीं रुचता था। और उससे उबकाई आती थी, इस लिए पानी बहुत ही कम लेता था। इससे गला सूखा, क्षीण हुआ और अन्त के दिनों में केवल धीमे ही धीमे बोल सकता था। ऐसी हालत होने पर भी लिखने का आवश्यक काम तो अंतिम दिन तक कर सका था और रामायण इत्यादि अखीर तक सुनता था। कुछ प्रश्नों के बारे में राय देने का आवश्यक काम भी कर सकता था।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

प्रायश्चित्त

९

डाक्टर मुंकुन्दन मन ही मन कह रहे थे,

"यह तो आश्चर्य-जनक है, मैं जब कभी इस बेचारी लडकी के पास आता हूँ, मेरी माता के लगाये फूलों की उस सुगन्धि से मन भर जाता है।"

पाठको, क्या आपको भी कभी यह अनुभव हुआ है कि बरसों पहले के सूँघे हुए किसी फूल की सुगंध, या बचपन के सुने हुए किसी गीत की तान एक ब यक याद आ जाती है, नाक में मानों वह गंध भर जाती है, कानों में वह गीत गूंजने लगता है और मन में उसके साथ की सारी स्मृति, सारी कथा याद आ जाती है, आंखों के आगे वह सारा दृश्य घूमने लगता है, आपके प्राणों में वही बात भर जाती है? और इसका कोई कारण भी नहीं बतलाया जा सकता।

मुकुन्दन ने प्रेमसे उसके घाव धोये, कपडा बांधा, और पट्टा ठीक कर दिया। फिर पूछा, कैसी तबीअत है।

पूवी बोली, "मैं अब बहुत अच्छी हूँ स्वामी। भगवान् आपका भला करें, आपको सब सुख मिलें।" डाक्टर को आशीर्वाद देते समय उसके मुँह से जब ये शब्द निकले, उसकी आंखों में वह चमक दिखलायी पडी जो माता की वात्सल्य दृष्टि में होती है।

मुकुन्दन उसके पास से जाते हुए मन ही मन सोचने लगे, "क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। इस लडकी को देखते ही मुझे मा का इतना अधिक खयाल क्यों आने लगता है?"

"सुधा क्या तुमने कहीं से कुछ फूल चुन कर रक्खे हैं?"

"नहीं साहब, यहां कहीं फूल वूल नहीं हैं। अपने तो सभी फूल पौधे पानी विना सूख गये।"

मुकुन्दन की माता फूलों से बहुत प्रेम करती थी। विधवा होने के बाद वह जूडे में फूल तो लगा नहीं सकती थी। मगर वह तब भी फूल रोज ही चुनती और पूजा घर में उन्हें रक्खा करती थी।

मुकुन्दन वार वार अस्पताल में पडी हुई उस लडकी की ओर जाया करते थे।

"गजब की बात है। मेरे दिमाग से तो उन फूलों की सुगंध निकलती ही नहीं है। लोग कहते हैं कि जब कोई मरता है तो, मरने के साथ ही वह खत्म नहीं हो जाता बल्कि उसका जन्म फिर होता है। कौन जानता है कि यह अछूत लडकी दूसरी देह में मेरी मा ही न हो?" ये शब्द मन ही मन कहते हुए मुकुन्दन उसके मुँह की ओर बडे गौर से ताकने लगे। वह सोयी हुई थी। उनके मन में यह खयाल जम गया। उन स्वर्गीय फूलों की सुगंध और भी स्पष्ट आने लगी। मुकुन्दन तो अब मानों फिर से लडके बन गये।

१०

मुकुन्दन प्रायः बिस्तर पर पडने के बाद तुरत ही सो जाया करते थे। किसी संन्यासी से उन्होंने यह विधि सीखी थी कि सोने के समय आनेवाले भिन्न २ विचारों को किस तरह भगा कर नींद बुलायी जाय। मगर आज तो उस विधि से काम नहीं चला। उनकी आंखों के सामने अपने सारे बचपन के सभी दृश्य नाच उठे। चाहे सोने की लाख कोशिश की जाती, मगर वे विचार पीछा छोडते ही नहीं थे। बिस्तर में एक घन्टे तक करवटें फेरते रह कर आखिर वे उठ पडे और बत्ती जला कर पढने बैठे। हाथ में गीता पड गयी। यह प्रति किसी मित्र की भेट थी जो अब इस दुनिया में नहीं रहा। उनकी नजर इन पंक्तियों पर पडी:—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

ये पंक्तियां तो अनेक बार की पढी हुई थीं मगर तौभी आज इन में एक नया ही अर्थ झलकता था, नयी ही बात मालूम पडती थी।

मुकुन्दन ने सोचना शुरू किया, "हां, ठीक तो, कैसे कोई युवक और सबल आत्मा शरीर के मरते ही आप भी अचानक मर जायगी, नष्ट हो जायगी? ना यह नहीं हो सकता।"

सोचते सोचते, मुकुन्दन को अपना भान ही नहीं रहा। उन्होंने मन ही मन बोलना शुरू किया, "हां, मगर पुराना शरीर छोडने के बाद आत्मा कौन सा नया शरीर धारण करेगी? इसका निश्चय तो केवल उसके भले बुरे कामों से ही हो सकेगा। जब कभी कोई दुःखी प्राणी, आदमी या पशु दिखलायी पडे, जहां तक बन होवे, उसका दुःख कम करने की कोशिश करनी चाहिए क्योंकि कौन जानता है कि हमारा अपना ही कोई प्रिय जन, भाई, बाप, मा, पत्नी या लडका, जिसके लिए हम विलाप कर रहे हैं, अपने पापों के लिए उस देह में कष्ट नहीं भुगत रहा है। जब किसी को बहुत सुख मिले, सभी तरह के भोग मिलें तब उससे हम ईर्ष्या ही क्यों करें? क्या पता कि हमारा ही वह कोई प्रिय संबंधी हो जो अपने पुण्यों का फल भोग रहा है? अगर यह हम जान लें तो फिर हमारे हृदय सुख से भर जायँ न कि ईर्ष्या से।"

उन्हें पता भी न चला और यों सोचते ही सोचते वे सो गये।

११

मुकुन्दन की मा भोजन बना रही थी। "मुकुन्द, बेटा, उठ जल्दी तैयार हो जा। देख दिन कितना चढ उठा है।"

अरे, इसमें तो भूल हो ही नहीं सकती। शंका की जगह ही कहां है? यह तो हूबहू बिलकुल मा का ही स्वर है। तब इतने दिनों तक यह क्यों सोचता रहा कि मा मर गयी, चली गयी? मा तो यहां जिन्दा है, बुला रही है। तब तो यह एक बुरा सा स्वप्न भर ही था कि मा मर गयी, मैंने इतने कष्ट उठाये, दुनिया में मारा मारा फिरा।

मुकुन्दन ने मन ही मन ऊपर की बातें कहीं। फिर वे सोचने लगा, "अहा, क्या ही आनंद है! अब मैं फिर कभी मा से छूत लग कर बीमार नहीं पडने दूँगा, और मरने नहीं दूँगा।"

× ×

अचानक दृश्य बदलने लगा। वह किसी तरह से डाक्टर बन गया था, पर मा तो उसकी वही छोटे लडके की विधवा मा बनी थी। मा ने उसे पुकारा और चेरी की ओर दौड पडी। मुकुन्दन कुछ झिझका। समझ ही नहीं सका कि मा क्या कहती है। पर वह दौडती ही गयी। दौडते दौडते वह आंखों की ओझल हो गयी।

वह रात को चेरी में घुसी थी और लोगों ने उससे बिगड कर उसे खूब मारा, उसकी हड्डियाँ, हड्डियाँ छटका दीं। फिर चार लंबे आदमी उसे चारपाई पर सुला कर लाये।

× × ×

दृश्य फिर बदला। इस बार वह लडका था। वह दर्द से परेशान चारपाई में पडा पडा छटपटा रहा था। उठने की ताकत नहीं थी। लोगों ने कहा कि इसे हैजा कहते हैं। उसने "मा, मा," कई बार पुकारा मगर मा पास में नहीं आयी। फिर चार आदमी धीरे से आये और बांस की अरथी पर उसकी मा को बांध कर उठा ले गये। वह चीख कर जाग पडा।

× × ×

हाथ से गीता गिर पडी थी। डाक्टर मुकुन्दन आरामकुर्सी में ही लेटे लेटे सो गये थे। यह तो स्वप्न था। कुर्सी पर से उठ कर वे बिस्तर पर जा कर सो गये।

१२

मुकुन्दन ने पूवी की सेवा बडी कोमलता से, बडे प्रेम से की। एक महीने में वह अच्छी हुई। अब अलग होना बडा मुश्किल हो गया।

मुकुन्दन बोले, "मरी, भैया, तुमसे मुझे एक बात कहनी है।"

मरीने जवाब दिया, "क्या, स्वामी?"

"हमारे बचपन में तुमने मुझे बंदर से बचाया था और बदले में मेरी मा से मार खायी थी।"

मरी ने कहा, "हां, कोई ऐसी ही बात हुई थी तो, किन्तु स्वामी यह तो बहुत पुरानी बात है। आपने तो अब मेरी औरत की जान बचा दी है और मैं पुरानी बातें याद भी नहीं रखता।"

"मरी, क्या तुम जानते हो कि लोग मरने के बाद अपने पाप और पुण्य के फल भोगने के लिए फिर से जन्म लेते हैं?"

"हाँ, स्वामी यही होता है। भगवान् बहुत बडे हैं और न्यायी हैं।"

"मेरी मा ने तुम्हें बहुत तकलीफ दी थी और शायद इस पाप के लिए वह कष्ट सह भी रही है। मैं उसके लिए कुछ प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ। मा बाप के पापों के लिए प्रायश्चित्त करना तो बेटे का धर्म ही है। क्या तुम और तुम्हारी पत्नी मेरे साथ, मेरे भाई और बहिन बन कर रहोगे? तुम्हारे लिए तो ये दिन मुश्किल के हैं ही और मैं तुम्हारा पालन सहज ही कर सकता हूँ।"

"यह कैसे होगा स्वामी? अगर काम दीजिए तो मैं काम कर सकता हूँ मगर भला हमारे जैसे अधम पशु तो स्वामी के भाई बहिन कैसे होंगे?"

"यह सच है मरी कि कभी कभी तुम लोगों के साथ कुत्तों के समान या उससे भी बुरा व्यवहार होता है। मगर हम लोग तो यह बडा भारी पाप कमा रहे हैं।"

"मैं ये सब बातें नहीं समझता, मैं तो मूरख अछूत हूँ, स्वामी।"

"खैर, तुम्हें, तुम्हारी स्त्री और मा को मेरे साथ रहना ही होगा।"

मरी हँसते हुए बोल उठा, "मेरी मा! ना स्वामी, ना, वह इस तरह नहीं फँसेगी।"

(यं० इ०)

(समाप्त)

चक्रवर्त्ती राजगोपालाचारी

गोरक्षा का सच्चा रास्ता

३

दूसरे, अमेरिकावाले अपनी गायों को खिलाने पिलाने में भी बडी चौकसी रखते हैं। गोशाला के लिए जितना महत्वपूर्ण सांढ पर ध्यान देना है, उतना ही खिलाने पिलाने पर भी। खूराक केवल काफी ही देने से नहीं चलेगा, बल्कि वह 'सम' भी होवे यानी एक तरफ तो प्रोटीन और दूसरी तरफ कार्बो-हाइड्रेट्स और फैट पूरे रहने चाहिये।

'गोशाला की गायों की खूराक और प्रबंध' नामकी अँगरेजी किताब में से नीचे लिखे दो प्रयोगों के फल दिये जाते हैं।

मेरीलैण्ड प्रयोगशाला की ८ गायें भिन्न २ जगहों में एक साल रक्खी गयीं। फिर दूसरे साल वे ही गायें प्रयोगशाला में ला कर रक्खी गयीं और यहां पर उनके खिलाने पिलाने का सुप्रबन्ध किया गया था। नीचे की सारिणी से इस सुप्रबन्ध से जो लाभ हुआ, उसका पता चलेगा:

गाय की संख्या	पहले साल के पाउन्ड दूध दिया	दूसरे साल के पाउन्ड दूध दिया	पहले साल जिस हफ्ते अधिक से अधिक दूध दिया, उस हफ्ते का रोजाना औसत	दूसरे साल जिस हफ्ते अधिक से अधिक दूध दिया उस हफ्ते का रोजाना औसत
१	४,००४	६,०९२	२७	४०
२	४,१२२	५,०९३	२१	३३
३	५,१९२	६,१६३	२७	४०
४	४,५३७	६,१३४	२७	४८
५	६,०९७	६,९९५	३१	३५
६	४,०३५	७,९९५	२७	५७
७	६,३५७	६,२२८	३८	३३
८	४,६५३	५,४६५	२४	३७

ऐसा ही प्रयोग न्यूयोर्क की प्रयोगशाला में भी किया गया था। कौर्नेल यूनिवर्सिटी के पास की किसी गोशाला में से गायें चुनी गयी थीं। एक साल तो गायें अपने मालिक के ही पास रहीं और वे ही उन्हें खिलाते पिलाते रहे मगर उनके दूध का हिसाब प्रयोगशाला खुद अपने आदमी भेज कर रखवाती थी। दूसरे साल वे प्रयोगशाला में लायी गयीं और उन्हें 'सम' भोजन दिया जाने लगा, जिनमें शरीर के लिए आवश्यक मसालों का ठीक ठीक समावेश था। नीचे के आंकडों से दोनों वर्षों के औसत हफ्तावारी दूध का पता चलेगा।

औसत हफ्तावारी दूध

गाय की संख्या	पहले साल	दूसरे साल	फी सैकडे बढती
१	८९	११२	२५
२	८३.९	१२१.६	४४९
३	८३	११९	४४
४	२२	१२२	३७
५	१०६	१६२	५२
६	८४	१२०	४१
७	१२४	१७५	४१
८	११३	१४९	३१
९	२५	१३६	६०
१०	१०३	१८७	८०

(यं. इं.)

दे० बा० गो०

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ सुदी ४ संवत् १९८४

ब्रिटिश माल का बहिष्कार

ब्रिटिश मंत्रिगण सोच सोच कर जो अपमानजनक और उद्धत काम करते हैं, उनके विरुद्ध अपना क्रोध दिखलाने की इच्छा अगर राष्ट्र करे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। इस बारे में हर एक नयी बात जो मालूम होती है, उससे आग में और घी ही पडता है। सबसे ताजा बात वह नफरत है जो कही जाती है कि लॉर्ड सिंह के मामले में परलोकगत सम्राट् सप्तम एडवर्ड और उनके पुत्र वर्तमान् सम्राट ने दिखलायी थी। राष्ट्र के प्रतिनिधियों ने पिछले कई वर्षों से ब्रिटिश माल का कुछ अंश तक या संपूर्ण बहिष्कार करने की कोशिश कर के अपना क्रोध दिखलाने की कोशिश की थी। अगर राष्ट्र ब्रिटिश माल का बहिष्कार करना चाहे तो यह करना उसका अधिकार है। अगर आवश्यक हद तक उसमें सफलता मिल सकी तो इसमें तो कोई शंका ही नहीं कि उसका बहुत बडा असर पडेगा।

मगर मेरा यह दुर्भाग्य या सौभाग्य रहा है कि मुझे हमेशे ही ब्रिटिश माल के बहिष्कार की पुकार का विरोध करते आना पडा है। गोकि मैं इस सिद्धान्त पर ही कायम हूँ कि यह बहिष्कार अहिंसा के विरुद्ध है मगर अभी मैं केवल इसकी संभवता पर ही विचार करना चाहता हूँ। पहले तो यही बात कि इतने दिनों से इसके लिए इतना जबर्दस्त आन्दोलन चलते रहने पर भी इसमें कुछ भी प्रगति नहीं हुई है, साबित करती है कि इसमें बडी कठिनाइयां हैं। अगर साबुन का ही मामूली उदाहरण ले लेवें तो हमें पता लगेगा कि ब्रिटिशमेड (ब्रिटेन के बने) साबुन तक का भी बहिष्कार करने में हमने कोई प्रगति नहीं की है। महासभा की चुनी हुई समिति ने कुछ खास चीजें बहिष्कार करने के लिए चुनी थीं। जहां तक मैं जानता हूँ ऐसी कोई कोशिश नहीं की गयी है कि राष्ट्र उनमें एक भी वस्तु को इस्तैमाल करना छोड देवें। उस बहिष्कार की उपयोगिता जो दण्ड देने के लिए किया जाय, इस बात में है कि उसका कुछ असर पडे, वह खले। जो कोई विलायत से आनेवाली वस्तुओं के हिसाब का अध्ययन करेगा, तुरत ही समझ लेगा कि ब्रिटिश सरकार पर प्रभाव डालने की नीयत से ऐसा बहिष्कार करना बेकार है, बेफायदा है। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इन इतने वर्षों में भी हमारे यहां विशेषज्ञों का कोई ऐसा दल खडा नहीं हो सका है जो केवल एक इस काम में ध्यान लगावे। आज कल तो कहीं कहीं यह चाल सी निकल चली है कि महासभा का चाहे कोई प्रस्ताव क्यों न असफल होवे, उसका दोष मेरे मत्थे मढ दिया जाय। मुझे कहा जाता है कि फलां प्रस्ताव तो इसी लिए असफल हुआ कि आपने उसका विरोध कर दिया था, फलां के लिए तो आपने कुछ काम ही नहीं किया। किसी राष्ट्र के लिए इससे बुरी जलालत और क्या हो सकती है कि वह इस प्रकार नामर्द, अशक्त बना रहे। बेशक, दक्षिण अफ्रिका से मेरे लौटने के पहिले ही बहिष्कार का खयाल सूझा था, और उसका जोरों से समर्थन किया गया था। ब्रिटिश माल के बहिष्कार की असफलता का सच्चा और अधिक स्वाभाविक कारण तो यह स्पष्ट बात है कि अब तक इस विषय के विशेषज्ञों की कोई समिति इसे पूरा करने की कोई योजना निश्चित नहीं कर सकी है। कहा जाता है कि अगर चीन को इसमें सफलता मिली थी तो हिन्दुस्तान को क्यों नहीं मिल सकती है? हां, बहिष्कार हम भी जरूर कर सकते हैं, मगर कब? जब हममें सशस्त्र सेना के जरिए, क्रान्तिवादियों की फौज खडी करने, खास इस काम के लिए हडताल करा के, बंदर के कुलियों से ले कर ब्रिटिश माल के लाने में सहायता करनेवाले हर एक आदमी तक से हडताल करा के बहिष्कार कराने की इच्छा हो, साहस हो और हमें उपयुक्त अवसर मिला हो तब। मुझे जान पडता है कि इसकी हमें अगर इच्छा हो तो भी ऐसी खुली और सशस्त्र क्रान्ति करने के न तो हमारे पास साधन हैं और न उसके नियन्त्रण की शक्ति ही है। और न तो बहिष्कार का समर्थन करनेवालों ने और न सविनय अवज्ञा जाँच समिति की बनायी इसकी विशेष समिति ने ही कभी सशस्त्र सेना का विचार किया है। इस लिए मैं यह जोरों से कहूँगा कि राष्ट्र के गौरव, प्रतिष्ठा और लाभ के ज्यादह अनुकूल यह होगा कि हम ब्रिटिश माल के बहिष्कार की इस पुकार को छोड देवें जो कि बेकार और प्रायः अशक्य सिद्ध हो गयी है।

हां, यहां देश में जो चीजें बन सकती हैं, उन सबके बारे में सच्ची स्वदेशी भावना के प्रचार की स्थायी आवश्यकता का, इस दंड के रूप में बहिष्कार के विरुद्ध दलीलों से कोई वास्ता नहीं है।

मगर निराश होने की कोई वजह नहीं है। हमारे ऊपर ये अन्याय जो निरंतर एक के बाद दूसरे होते जा रहे हैं, उनके ऊपर अपना क्रोध दिखलाने का ऐसा साधन हमारे पास बना बनाया है जो सबसे अधिक बा-असर है। मेरा दावा है कि अगर हमें ख्वाहिश हो तो महज ब्रिटिश ही नहीं बल्कि सभी प्रकार के विदेशी कपडों का पूर्ण बहिष्कार करने की शक्ति हम में है। अगर हम यह बहिष्कार करते हैं तो हमें न सिर्फ अपना क्रोध ही प्रदर्शित करने में सफलता मिलती है किन्तु हम जनता की एक वैसी सेवा करते हैं जिस प्रकार की पहले कभी नहीं की थी और एक राष्ट्रीय कार्य में हमें उनका सहयोग प्राप्त होता है। इस काम को करने के लिए हमारे पास कार्यकर्ताओं की एक सेना भी खडी है। हमारे पास वैसे विशेषज्ञ हैं जिन्होंने इसका ज्ञान आप यह काम करके पाया है। इस वस्तु की उपयुक्तता के बारे में दो मत हैं ही नहीं। इस उद्देश्य की ओर आगे बढने से हमें रोकनेवाली केवल एक ही वस्तु है और वह है हमारा अपना ही अविश्वास। यह है तो आश्चर्य-जनक मगर दुःखजनक बात यह है ही कि कुछ खास ब्रिटिश माल के बहिष्कार की सफलता में हमें सभी विदेशी कपडे के बहिष्कार की सफलता से कहीं अधिक विश्वास है।

मगर बिना ठीक ठिकाने से सोच समझ कर एक योजना बनाये, यह बहिष्कार भी सफल नहीं हो सकता। अगर हम महज बहिष्कार ही करना चाहें, और जनता के आर्थिक लाभ के रूप में उसके ऊँचे और चिरस्थायी फल की पर्वा न करें तो अगर हमें देशी मिलों का, हमारी शर्तों पर, सहयोग मिल जाय तो यह बहिष्कार हम तुरत ही सफल कर सकते हैं। जब तक मिलवाले ईमानदारी से और पूरे मन से सहयोग नहीं करते तब तक मिल के कपडों के जरिये विदेशी कपडों का बहिष्कार करना आत्महत्या करना है और सिर्फ अपना ही टका सीधा करनेवाले मिलवालों का ही काम साधना है। अगर इस महान राष्ट्रीय कार्य में देशी मिल के कपडों का कोई बडा भाग रहना है तो मिलवालों को कपडे की जात और उसका दाम निश्चित करने के बारे में, महासभा के साथ समझौता करना ही पडेगा। अपनी मिल के हिस्सेदारों की रजामंदी और सहयोग के साथ मिल एजेन्टों को केवल अपने और अपने हिस्सेदारों भर के ही हितों के रक्षक बने रहना छोड देना चाहिए और दोनों को ही—एजेन्टों और हिस्सेदारों को—सारे र्‍ट्र के हित-रक्षक बनना चाहिए। तब खादी के सहारे इस

...श से विदेशी कपडे का आना बिलकुल ही बंद हो सकता है। ...कि समय के लिहाज से अधिक मुश्किल जरूर है, मगर केवल ...दी के ही जरिए भी, विदेशी कपडे का संपूर्ण बहिष्कार कराया ...सकता है। तब भी मिल के कपडे का स्थान महत्वपूर्ण रहेगा, ...गर वह तो मिल-मालिकों के विरोध करते हुए भी होगा ही। ...दी तो मिल-मालिकों के लोभ पर बाअसर अंकुश लगा देगी, उसके कारण कपडे का कभी अकाल नहीं पड सकेगा, करोडों भूखों ...रनेवालों को इसके जरिए जीवन और आशा मिलेगी, सादा कपडा बुननेवालों को यह उनका पुराना पेशा दे देगी, अंत में जरूर ही और थोडे ही दिनों में विदेशी कपडे की जगह पूरी पूरी ले लेगी, मिलवालों के नफे का नियंत्रण करेगी। इसका पता कि कब यह ...क हो सकेगा, इस बात से लगाया जा सकेगा कि महीन कपडे के शौक का थोडा त्याग, और थोडे पैसों का त्याग जो हर एक आदमी के व्यक्तिगत बूते के भीतर है, करने की राष्ट्र को कितनी इच्छा है, कितनी शक्ति है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

गुजरात विद्यापीठ पदवी-दान

विद्यापीठ के विद्यालयों की संख्या घटती जा रही है। इस ...ल १५ विद्यालयों को इसलिए हटा देना पडा है कि वे कताई ...र खादी की शर्त नहीं मान सके। महाविद्यालय में विद्यार्थियों ...ी संख्या भी घटी है। उनकी संख्या ५० से घट कर ३७ हो ...ी है। इसलिए ऐसी संस्था को 'यूनिवर्सिटी' कहना अनुचित ...ा जिसके अधीन केवल थोडे से गिने गिनाये विद्यालय हैं और ...सके एक मात्र महाविद्यालय में ५० से भी कम विद्यार्थी हैं। ...र 'इन्डिपेन्डेन्स' के समान 'यूनिवर्सिटी' शब्द का अर्थ वक्ता ...शुद्ध या अशुद्ध प्रयोग के अनुसार विस्तृत या संकुचित हो ...कता है और हम खूब खुलासा स्वीकार कर लेते हैं कि हमारे ...द्यापीठ को 'यूनिवर्सिटी' कहना अनुचित है। 'यूनिवर्सिटी' शब्द ...तुरत ही उस विदेशी संस्था की याद हो आती है जो हमारे ...ा में ऊपर से ला कर रक्खी गयी है। अगर हम राष्ट्रीय ...द्यापीठों को 'यूनिवर्सिटी' कहा करें तो हम इन विदेशी संस्थाओं ...अराष्ट्रीय संसर्ग भूल जा सकते हैं और उन्हींकी विशालता ...अपनी संस्थाओं के लिए भी मानदण्ड मान ले सकते हैं और ...र अपनी संस्था छोटी और जोश दिलानेवाली न देख कर निराश हो ...ते हैं। मगर महामात्र के वार्षिक विवरण में अगर विद्यालयों ...न्यूनता की बात लिखी थी तो साथ ही साथ यह भी गर्व के ...थ लिखा गया था कि इस राष्ट्रीय विद्यापीठ की ही बदौलत ...वल्लभभाई पटेल को संकट-निवारण के लिए कितने अच्छे २ कार्य-...र्ता मिल सके थे।

दीनबन्धु ऐन्ड्र्यूज को पदवीदान का व्याख्यान देने के लिए ...मंत्रित किया गया था। उन्होंने अपना भाषण अँगरेजी में दिया ...। जो अँगरेजी समझ सके थे, वे तो उनकी वाणी की मिठास ...र सहृदयता से मुग्ध हो गये थे। अँगरेजी न जाननेवालों के ...ए गांधीजी ने उस भाषण की हीर निकाल कर अपने भाषण में ...रखी थी। इस भाषण में ऐण्ड्रयूज साहिब के भाषण का सार ..., मगर तौभी उसे स्वतंत्र ही कहेंगे। उस भाषण का अनुवाद ...ा दे देने के बाद दीनबन्धु ऐण्ड्रयूज के भाषण का अनुवाद देने ...की जरूरत ही नहीं रह जाती। गांधीजी ने कहा:

"दीनबंधु एक भले अँगरेज तो हैं ही, मगर इतना ही ...हैं, उन्होंने तो इस देश के लिए अपने सर्वस्व का त्याग किया ..., इतना ही भर नहीं किन्तु वे कलाकार भी हैं। जिन्होंने इनके ...भाषणों और कार्यों पर विचार किया होगा, वे जानते होंगे कि इनकी सभी कृतियों में कला तो छिपी ही हुई है। ये कवि हैं क्योंकि ये समझते है कि भविष्य कैसा होना चाहिए और कैसा होगा। ये योग्य वक्ता हैं और इस लिए नहीं कि कभी जोर से, कभी धीरे से, सुन्दर शुद्ध उच्चारण करते हुए और उत्तम भाषा में बोल सकते हैं। बल्कि इस लिए कि ये जो कुछ कहते हैं, अन्तर से कहते हैं। इनका भाषण पढने पर तुमपर एक प्रकार का असर होगा, और ध्यान से सुनने वाले पर दूसरे ही प्रकार का। सामान्यतः हम मानते हैं कि जो आदमी कई कई घन्टों तक एक धारा से बोलता रह जाता है, वही योग्य वक्ता है। कोई कोई यह भी मान ले सकते हैं कि मि० ऐण्ड्रयूज को बोलना नहीं आता होगा और इसी लिए वे लिख कर कह गये। पर ऐसा मानना तो मूर्खता है। इन्होंने भाषण लिख कर उसमें इतना रस भर दिया है कि हम उसमें डूब रहे हैं। यह रस तो उनके हृदय से उतरा है।

"इन्होंने अपने भाषण में स्वर्गवासी हकीम साहेब का उल्लेख किया है। ऊपर ऊपर देखने से किसी किसी को लगेगा कि हकीम साहेब के स्वर्गवास और स्नातकों के पदवी-दान में क्या संबंध होगा? यह तो कला-हीनता की ही निशानी है न? पर मुझे तो लगता है कि उन्होंने इसीमें अपनी कला दिखला दी है और अपना उद्देश्य पूरा किया है। तुमसे तो ऐण्ड्रयूज बूढे ही कहे जायँगे। इन्होंने अपने बचपन की कथा कही। हकीम साहिब के पास अपनी शिक्षा शुरू करने की बात कही। हकीम साहिब जब बडे नामी हकीम हो चुके थे, तब के अपने ज्ञान के जरिए राजा और रंक सब की सेवा कर रहे थे, तब ऐण्ड्रयूज ने देखा कि अभी तो मैं इनके पास तालीम पा रहा हूँ। उन्होंने अपने ही अनुभव से यह बात कह सुनायी कि उन्हें अपने अध्यापकों के भाषण अब तक याद नहीं हैं, मगर उनका पवित्र से पवित्र, बडा से बडा संस्मरण तो उनके एक अध्यापक का है जो इनके हृदय में प्रवेश कर सके थे। शिक्षा का यही सार बतलाने के लिए उन्होंने हकीम साहिब की कथा सुनायी है। इसमें तो अदभुत कला भरी है। इसमें करुणा तो है ही। वह भाषण पढ कर सुनाते २ उन्होंने वीररस का स्वाद कराया, और अन्त में त्याग का उपदेश दिया।

"इसके बाद उन्होंने अपना इतिहास सुनाया है। हमारे हृदय निराशा की खाई में पडे हुए हैं। हम सोचा करते हैं कि मकान तो हमारे पास हैं जरूर, मगर दो साल बाद उनमें कबूतर बसेरा करने लगें तब? निराशा की इन बातों को वे जानते हैं। मैंने उन्हें ये बातें कही नहीं हैं, मगर ये तो वातावरण से ही समझ लेते हैं। इस लिए इन्होंने कहा कि आपके पास मकान हैं, रुपये हैं, जमीन है, गुजरात जैसे प्रान्त में रुपया मिला भी करेगा, पर मैं जिस कौलेज में पढा हूँ, उसका इतिहास आपको सुनाऊँ तो आपको आश्चर्य होगा, और आशा की किरणें दिखलायी पडेंगी। क्योंकि उसकी उत्पत्ति तो एक छोटी सी झोंपडी में से हुई थी, और वह भी एक वीर विधवा की बदौलत जिसका जिस दिन व्याह हुआ था, उसी दिन सोहाग धुल भी गया था—वह विधवा हो गयी थी। वह चाहती तो पुनर्विवाह कर सकती थी, मगर उसने सेवा-व्रत स्वीकार किया था। उसने कुछ संन्यासियों और साधुओं को ढूँढ कर विद्यार्थियों को शिक्षा देने को कहा। उनके लिए कुछ झोंपडे बनवा दिये। उसी झोंपडे में से आज का बहुत बडा पेम्ब्रोक कौलेज निकला, जिसमें से ग्रे जैसे कवि निकले, पिट जैसे राजनीति धुरंधर और ब्राउन जैसे पंडित निकले हैं। यह बात कह कर उन्होंने तुम्हें आश्वासन दिया है कि जो कथा मेरे कौलेज की है, वही तो तुम्हारी भी है। अगर अपने यहां हम भी धैर्य से काम करते रह गये तो हमारे यहां से

भी वीर पुरुष निकलेंगे । इसके लिए उन्होंने उपाय बतलाया आत्म-श्रद्धा । जिन्हें ईश्वर में विश्वास हो और धैर्य हो उनमें यह वीरता पैदा होती है । उत्तम वस्तु एकाएक तैयार नहीं होती । जबर्दस्त, और बडे पेड का बीज कितने दिनों तक तो जमीन में ही छिपा रहता है । पर माली जानता है कि अपने समय पर यह पौधा बढेगा । कितनी एक बार घास उगती है तो उसे भी उगने देना पडेगा; माली निराश नहीं होता क्योंकि वह ज्ञानी है । हम से मि० ऐण्ड्रयूज उस ज्ञान की आशा नहीं रखते हैं, परन्तु श्रद्धा की आशा रखते हैं । श्रद्धा की 'बाइबिल' में बतलायी हुई व्याख्या इन्होंने हमें सुनायी है । श्रद्धा उन वस्तुओं का प्रमाण है जिन्हें हम देख नहीं सकते । अगर यह श्रद्धा हम में हो तो विद्यापीठ गिर नहीं सकता । पेम्ब्रोक कौलेज को बढने में जितने दिन लगे थे, उतने इस विद्यापीठ को नहीं लगे हैं । आप कहोगे कि हां, आपने प्रगति तो यही की न कि, १५ विद्यालय बंद हुए ! भले ही और भी बंद होंगे मगर आप में श्रद्धा हो तो आप निराश न होंगे । विद्यालयों के अलग होने का कारण यह है कि हम अक्कड रहे, हमने अपनी शर्तें कायम रख कर साफ कह दिया कि कातना हो तो रहो, नहीं तो जाओ । एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब यहां कोई न रहे । केवल एक कुलपति ही बैठा हो, वही अकेला शिक्षक हो, शिष्य भी वही अपने आप ही हो; उसके आगे अगर उसका चर्खा पडा हो तो कोई तो देखने आयगा, कोई न आवे तो बंदर तो आवेंगे, और अगर उसमें श्रद्धा हो तो वह उनके साथ वैदर्भी के समान बातें करेगा, और आश्वासन लेगा । मेरी श्रद्धा का प्रमाण क्या ? प्रमाण यह कि वह श्रद्धा है । आपसे अगर कोई पूछे तो कहना कि उस चर्खेवाले से जा कर बातें करो जो दिन रात चर्खा चर्खा चिल्लाता रहता है । अगर हममें यह श्रद्धा होवे तो ऐन्ड्रयूज का कहना है कि हम एक नहीं परन्तु एक हजार पेम्ब्रोक पैदा कर लेंगे । कहां इंग्लैण्ड और कहां हिन्दुस्तान ! हिन्दुस्तान में तो न जाने कितने इंग्लैण्ड समा जायँगे । पर हममें क्या इतनी वीरता है, इतना धैर्य है ? वीरता और धैर्य के बिना श्रद्धा नहीं मिलती । हम अपने सिद्धान्तों पर कायम रहें और विश्वास रक्खें । गाहक का मुँह देख कर दाम बोलनेवाले ठग बैपारी के समान हमें व्यापार नहीं करना है । इस तरह के व्यापार से कि यह करो तो लडके आवेंगे, इसलिए थोडी ढील करो, न जनता का कुछ लाभ होगा, और न विद्यापीठ को ही कुछ मिलेगा । अध्यापकों में अगर श्रद्धा हो तो वे एक ही बात कहेंगे । विद्यार्थी भी एक ही आवाज निकालेंगे, एक ही राग अलापेंगे । वे कहेंगे कि हम अकेले भी रहे तो क्या बिगडा ? अध्यापक मुझ पर अपने सर्वस्व की वर्षा करेंगे । ईश्वर भी एक ही है, परन्तु उसकी कृतियां अनेक हैं । इसी प्रकार जो विद्यार्थी एक होते हुए भी, निडर हो कर बैठेगा, वह पूरा का पूरा पक्का उतरेगा । ऐन्ड्रयूज के भाषण का यही सारांश है, उनकी वीणा का यही स्वर है ।

"मेरा भी यही भाषण मान लेना । तुम अपने मन में विद्यालय के लिए अभिमान रखना, विद्यापीठ को सँभालना, अपने जीवन को उज्ज्वल करना । जहां बैठे हो, वहीं विद्यापीठ का स्मरण करना । इसका पता तो तुम्हें थोडे ही दिनों में मिल जायगा कि भविष्य में इसका क्या रूप होगा, मगर धैर्य रखना । तुम्हें इतना तो मैं कह देना चाहता हूँ कि जब तक हममें एक आदमी भी जीता है, हम विद्यापीठ को बंद होने देनेवाले नहीं हैं । इस विद्यापीठ की हस्ती के लिए मुझे जो मर जाना पडे, यहां दफन हो जाना पडे तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ । तुम अगर विद्यापीठ का ताप सहन कर सको तो यह समझना कि तुम्हारे लिए जगह यहां हमेशे रक्खी हुई है । अगर सहन न हो सके तो मुझे दोष मत देना, अध्यापकों को दोष मत देना, विधाता को दोष देना । पर हम अगर अपने वचन का पालन न कर सकें, चूक जावें तो मैं अहिंसक होते हुए भी कहता हूँ कि हमें कत्ल कर देने का अधिकार तुम्हें होगा । "

दीनबंधु ऐन्ड्रयूज के भाषण के ऊपर आधार रखकर गांधीजी ने कोई नयी ही इमारत ला खडी की । अपने भाषण के बाद दीनबंधु ने भी स्नातकों को जवानी ही कह कर कुछ पाथेय, जीवन में बढने के लिए उपदेश रूपी सहारा दिये; 'एक महानुराग करना — सत्य के लिए, स्वच्छता के लिए, पवित्रता के लिए, के लिए महा अनुराग पैदा करना । यह अनुराग, यह ... दूसरी इच्छाओं को, दूसरे अनुरागों को जला डालेगी ।'

इन दो साधुहृदय पुरुषों के दिये पाथेय को लेकर जीवन-पथ में अग्रसर होनेवाले इन स्नातक पथिकों का कैसा भाग्य था ।

समारंभ के अंत में गांधीजी ने आचार्य गिडवानी की ... खोलते समय उनके त्याग की स्तुति की । अन्त में ... विद्यार्थियों, अध्यापकों और विद्यापीठ के नौकर, भंगियों तक के ... हुए सूत में से बुने गये कपडे की राष्ट्रीय ध्वजा गांधीजी ने ... परमात्मा करें कि जिन स्नातकों ने ऊपर के ये उपदेश पाये ... ऐसी पवित्र ध्वजा को कभी झुकने न देवें ।

(नवजीवन)

महादेव देसाई

आश्रम में

बंधुता-प्रचारक

पिछले हफ्ते (१३ से १९ जनवरी) दो खास बातें हुई थीं, तो आश्रम में इन्टर्नैशनल फेलोशिप के सभ्यों का आ कर वार्षिकोत्सव करना और दूसरी थी, गुजरात विद्यापीठ का पदवी-दान समारोह । गुजरात विद्यापीठ के पदवी-दान समारोह के बारे में अलग लेख दिया जाता है ।

यह तो वाजिब ही था कि ऊपर लिखे फेलोशिप या अन्तर्राष्ट्रीय बंधुत्व संघ के बंधुओं ने एक ऐसे आश्रम में अपनी सभा करने का विचार किया जो खुद आप ही अन्तर्राष्ट्रीय संघ हो रहा है । ... संघवाले हमारे ये मिहमान भिन्न २ देश और जाति के भिन्न २ ... के आदमी थे तो हमारे यहां भी भिन्नता की कोई कमी नहीं ... लोग भी भिन्न २ देश, जाति और धर्म के होते हुए भी एक ही ... एक ध्येय के आकर्षण से खिंच कर एक जगह आ जुटे हैं । ... वे आश्रम के और उसके संस्थापक के नाम से आकर्षित होकर आये हों, मगर मुझे इसमें कोई शंका नहीं है कि वे इस खयाल को लेकर गये कि उनके ये दिन उन्हीं जैसे एक दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय संघ में बीते हैं, जिसका भी उद्देश्य मनुष्यजाति से प्रेम करना और पृथ्वी पर शान्ति का राज्य स्थापित करना है ।

हमारे मिहमानों में केवल कुछ का ही नाम ले लेना ठीक होगा । पहले तो थे दीनबंधु ऐन्ड्रयूज, जिनके सहयोग और ... का गर्व सभी संस्थाओं को हो सकता है । फिर थे बंबई के पारसी प्रो० पी. ए. वाडिया, वेल्लोर के मि० डेवूर, कलकत्ते के मि० ड्यूविक, स्विट्जरलैन्ड के मिस्टर और मिसेज औरियो, ... से मिस बार्लें, बंबई से मिस मणिबाई और मिसेज ... मलबार से श्रीमती जानकी अम्मल, पूने से मिस वान डोरेन, ... क्राइस्ट सेवा संघ के मि० एलविन जो अभी अभी अपनी ... समाप्त करके अपने देशवासियों के भारत को गुलाम बनाने रूपी पाप का कुछ प्रायश्चित्त करने आये हैं । फिर हिन्दुस्तानी ... डाक्टर जेसुदासन, श्रीयुत शंकर नैयर, मि. हमीद खां और ... कुमार स्वामी — हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पार्सी — हिन्दुस्तानी, ... अमेरिकन, लंकावासी, स्विटजरलैन्ड निवासी, रशियन, स्वीडिश ...

—सभी के सभी थे । इनके मंत्री एक हिन्दुस्तानी ईसाई मि. ए. ए. पौल हैं ।

ये लोग हमारे यहां तीन दिन रहे । इन्होंने आश्रमवासियों का जीवन देख कर जितना कुछ सीख सकें, सीखने का प्रयत्न किया । इन्हें हमारे दिये रूखे सूखे भोजन और महज मामूली साजसामान से ही संतोष था । इन दिनों इन्होंने हमारे नियमों का पालन करके हमारे जीवन का परिचय प्राप्त करने की भी कोशिश की थी । वे रोज शाम को हमारी प्रार्थना में शामिल होते थे और हमारे भजनों के बाद आप भी कोई न कोई अँगरेजी भजन गा सुनाते थे । हमने अपने यहां गाये जानेवाले भजनों के अँगरेजी अनुवाद करके उन्हें दे दिये थे । इनमें कुछ लोग तो सुबह की प्रार्थना में भी शामिल होते थे । इस तरह हम सब किसीके लिए ये दिन बडे आनंद से बीते ।

संघ

प्रोफेसर वाडिया ने एक भावुक और धार्मिक भाषण से सभा का कार्यारंभ कराया । उनके भाषण का मूल मंत्र था प्रेम, मनुष्य मनुष्य में प्रेम, जाति जाति, राष्ट्र राष्ट्र में प्रेम । दूसरे दिन दीनबंधु ऐन्ड्रयूज ने सभा का कार्य शुरू करने के पहिले बाइबिल में से ईसा के बलिदानवाला प्रसंग पढ कर, पंडित खरे शास्त्री से एक भजन गाने को कहा और इमाम साहब से कुरान की कोई आयत पढने को कहा । इसके बाद गांधीजी से प्रार्थना की गयी कि 'संघ के मूल उद्देश्य क्या होने चाहिए' इस विषय पर आप चर्चा शुरू करावें । संघ के उद्देश्य के बारे में तो कोई शंका है ही नहीं, मगर अभी उन्हें अपना मंतव्य स्पष्ट शब्दों में लिखना बाकी था और वह ऐसा होना चाहिए था जिसमें न तो संकीर्णता होवे और न होवे स्वच्छन्दता के लिए कोई स्थान । इस विषय पर दो दिनों तक चर्चा होती रही और कोई निर्णय नहीं हो सका मगर तौभी यह नहीं कहा जा सकता कि यह चर्चा बेकार हुई । इसमें तो खूब साफ साफ और स्वतंत्रतापूर्वक विचारों का परस्पर विनिमय हुआ, जिससे परस्पर अधिक अच्छा संबंध तो बँधेगा ही । इससे यह भी मालूम हुआ कि हम मौलिक तत्वों का चाहे जितना गान क्यों न गाते फिरें मगर हम सब किसी के मनों में एक न एक ऐसी मूर्त्ति छिपी हुई होती है जिसके कारण कुछ भी करना कठिन हो जाता है । जैसे कि इसमें तो किसी को शक ही नहीं था कि सबका आदर्श है सहनशीलता पैदा करनी, अंधकार की शक्तियों के विरुद्ध प्रकाश की शक्तियों की सहायता करनी, या पाप की सेना के विरुद्ध पुण्य की सेना का साथ देना या जैसे कि मि० ऐण्ड्रयूज ने कहा था, ईश्वरवादियों की ओर से ईश्वर का अस्तित्व ही न माननेवाले अनीश्वरवादी सेना से युद्ध करना । इस बात से तो सभी कोई सहमत थे पर तौभी बहुत आदमी इसके बाद दूसरा पग आगे उठाने से घबराते थे । गांधीजी ने यह बात वहां कई बार समझायी । चर्चाओं से यह भी पता लगा कि किन किन लोगों के विचार कहां तक गांधीजी के विचारों से मिलते हैं और किनके कहाँ तक नहीं । गांधीजी ने कहा :

"अगर इस संघ को सफल बनना है तो इसके सदस्यों का हर एक काम धार्मिक और त्याग का होना चाहिए । इस निष्कर्ष पर मैं बहुत दिनों पहले ही, बहुत विचार, मनन और जितने लोगों से मिला सब के साथ बातें कर के पहुँच गया था कि सभी धर्म सच्चे हैं, और साथ ही, सभी में कुछ न कुछ दोष या त्रुटियां भी जरूर हैं और अपने धर्म पर दृढ रहते हुए भी मुझे और दूसरे धर्मों को भी हिन्दूधर्म के जैसा ही प्रिय मानना चाहिए । इससे यह बात तुरत ही निकलती है कि मुझे अपने निकट से निकट सगे और प्रिय संबंधी के समान हर एक आदमी से प्यार करना चाहिए, आदमी आदमी में बडे छोटे, ऊंचनीच का अन्तर नहीं रखना चाहिए । अगर हम हिन्दू हैं तो हमें प्रार्थना यह नहीं करनी चाहिए कि कोई ईसाई हिन्दू हो जाय, अगर हम मुसलमान हैं तो हमें यह दुआ न करनी चाहिए कि हिन्दू लोग मुसलमान हो जायँ, हमें तो एकान्त में भी यह प्रार्थना नहीं करनी चाहिए कि किसी का धर्मपरिवर्तन होवे बल्कि हमारी आन्तरिक प्रार्थना तो यह होनी चाहिए कि जो हिन्दू है वह और अधिक अच्छा और सच्चा हिन्दू बने, जो ईसाई है वह और सच्चा ईसाई बने, जो जिस धर्म में है, वह उसी धर्म का और भी अच्छा अनुयायी बने । बंधुता का यही मूल मन्त्र है । मि. ऐण्ड्रयूज ने जो कथा पढ सुनायी है, पंडित खरे और इमामसाहिब ने जो सुनाया है, सबका एक यही अर्थ है । अगर ऐण्ड्रयूज ने केवल ऊपरी सहनशीलता दिखलाने, या महज शिष्टाचार के ही लिए उनसे गाने की प्रार्थना की थी तो वे अपने बंधुता के सिद्धान्त का पालन नहीं करते हैं, उन्हें यह प्रार्थना नहीं करनी चाहिए थी । मगर मैं ऐण्ड्रयूज को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ । मुझे पता है कि जिस प्रकार मैं दूसरे धर्मों से भी प्रेम करके अपने हिन्दूधर्म को शोभित करता हूँ, वैसे ही ऐन्ड्रयूज ने भी और धर्मों से वही प्रेम करके जो वे ईसाई धर्म से करते हैं, ईसाई धर्म को शोभित किया है । मगर, आपके मन में अगर यह शंका होवे ही कि केवल एक ही धर्म सच्चा हो सकता है और दूसरे सब झूठे ही होंगे तो आपको मेरे बतलाये बंधुता के आदर्श का त्याग करना ही पडेगा । तब तो हमें निरंतर एक दूसरे को छाँटते ही जाना पडेगा, हमारी बंधुता की नींव पारस्परिक बहिष्कार पर बँधेगी । सबसे अधिक जोर मैं सत्य पर देता हूँ । अगर हमारे मनमें दूसरे धर्मों के लिए भी वह प्रेम नहीं है जो अपने धर्म के लिए है तो भला होगा, अगर हम यह संघ तोड देवें, यह ऊपरी सहिष्णुता हम नहीं चाहते । मेरी सहनशीलता में पाप को जगह नहीं है गोकि मैं पापी मनवाले को सहन कर लेता हूँ । इसका यह अर्थ नहीं है कि हर बुरे मनवाले को आप अपने पास बुलाया करें या झूठे धर्म को सहन कीजिए । सच्चा धर्म मैं उसको कहता हूँ जिसकी सब शक्तियों का कुल प्रभाव उसके अनुयायियों के लिए हितकर होवे, और झूठा धर्म वह है जिसमें अधिकांश झूठ ही झूठ भरा पडा हो । इसलिए अगर आपको यह लगे कि कुल मिला कर हिन्दू धर्म से हिन्दुओं का और संसार का अहित ही हुआ है तो आपको हिन्दू-धर्म को झूठा धर्म मान कर जरूर छोडना ही पडेगा ।"

धर्म-परिवर्त्तन

गांधी जी ने इस बात पर जोर दिया था कि संघ का कोई सदस्य गुप्तभाव से भी यह इच्छा न करे कि कोई अपना धर्म छोड कर हमारे धर्म में मिल जाय । इस पर बहुत वाद-विवाद हुआ । गांधीजी ने अपनी स्थिति पहले से और अधिक स्पष्ट करने के लिए कहा, "मैं न सिर्फ दूसरे का धर्म-परिवर्त्तन करने की कोशिश न करूँगा बल्कि मैं गुप्तभाव से भी यह नहीं चाहूँगा कि वह अपना धर्म छोड कर मेरा धर्म स्वीकार करे । मेरी परमात्मा से यही प्रार्थना हमेशे होगी कि इमाम साहिब अच्छे मुसलमान बनें या अच्छे से जो अच्छा आदमी बन सकें, बनें । अहिंसा का संदेश लिये हुए हिन्दू धर्म **मेरी दृष्टि में** सबसे सुन्दर, सबसे बडा, सबसे महिमामय धर्म है, — जैसे कि **मेरी दृष्टि में** मेरी धर्मपत्नी सबसे अधिक सुन्दर रमणी है — मगर दूसरों को भी अपने धर्म के बारे में वही गर्व हो सकता है । सच्चे और असल धर्म-परिवर्त्तन के उदाहरण भी मिलने संभव हैं । अगर कुछ लोग अपने आन्तरिक संतोष और विकास के लिए धर्म-परिवर्त्तन करना चाहें तो वे भले ही करें। जंगलियों और आदमनिवासियों के पास अपने धर्म का संदेश पहुँ-

चाने का शौक मुझे नहीं है। कहा जाता है कि अत्यन्त नम्रता से ये काम करो। खैर, मैंने महानम्रता में भी औद्धत्य को छिपा पाया हुआ है। मैं जानता हूँ कि अगर मैं सम्पूर्ण हूँ तो दूसरों के पास तक मेरे विचार पहुँचेंगे ही। मेरी सारी शक्ति उसी ध्येय की ओर जाने में खर्च हो जाती है जो मैंने अपने लिए निश्चित कर लिया है। अगर मैं अपने सच्चे स्वरूप में, बाहरी आवरण छोड कर उनके पास न जाऊँ तो आसामनिवासियों, आदिमनिवासियों के पास और क्या ले कर जाऊँगा? अपनी प्रार्थना में शामिल होने को कहने के बदले मैं ही उनकी प्रार्थना में शामिल हो जाऊँगा। अँगरेजों के आने के पहले हम 'आदिम-निवासी,' 'किसी धर्म को न माननेवाला,' इत्यादि भेदों को नहीं जानते थे। ये भेद तो हमें अंगरेजी शासकों ने सिखलाया है। मुझे सेवा करने की इच्छा है और यह लोगों के साथ मेरा ठीक संबंध बाँध देगी। धर्म-परिवर्त्तन और सेवा-- दोनों का साथ ठीक ठीक नहीं चलता।"

दूसरे दिन खूब सबेरे ये मित्र गांधीजी से खानगी बातचीत करने बैठे। इस बार भी कइयों ने वही सवाल पूछा,

"तब क्या आप चाहते हैं कि संघ का यह नियम बन जाय कि जो लोग दूसरों को अपने धर्म में लाने के लिए प्रचार करना चाहते हैं, वे इसके सदस्य नहीं बन सकते?"

गांधी जी ने कहा, "जाती तौर पर तो मैं यही ठीक समझता हूँ। मैं इसे संघ बनाने के बाद का दूसरा ही पग समझता हूँ। भिन्न धर्मावलम्बियों के पारस्परिक सम्पर्क और संबंध के लिए यह नियम आवश्यक है।"

एक दूसरे मित्र ने पूछा, "क्या धर्मप्रचार की इच्छा परमात्मा की प्रेरणा नहीं है?"

गांधी जी ने जवाब दिया, "मुझे इसमें शंका है। कुछ हिन्दुओं का विश्वास है कि सभी इच्छाएँ परमात्मा की ही प्रेरणा होती हैं परन्तु उन्होंने तो हमें भले बुरे को समझने की शक्ति, विवेक भी तो दिया है। भगवान् तो कहेंगे कि मैंने तुम्हें बहुत सी प्राकृतिक स्फुरणायें दी हैं, जिसमें प्रलोभन का सामना करने की तुम्हारी शक्ति की परीक्षा होवे।"

एक बहिन ने पूछा, "मगर आप आर्थिक संगठन के बारे में उपदेश देना तो जरूर ही भला समझते होंगे?"

"हां, उसी प्रकार जिस प्रकार मैं स्वास्थ्य के नियमों को बतलाना अच्छा समझता हूँ।"

"तब यही नियम धार्मिक मुआमलों में भी क्यों न काम में लाया जाय?"

"यह सवाल ठीक है। मगर आप यह मत भूलें कि हमने यह चर्चा यही सिद्धान्त मान कर शुरू की है कि सभी धर्म सच्चे हैं। अगर भिन्न २ समाजों के लिए भिन्न २ परन्तु स्वास्थ्य के सच्चे नियम प्रचलित होते तो मैं कुछ को सही और कुछ को गलत कहने में हिचकता। मेरा यह दृढ विश्वास है कि लोग जब तक दूसरों के धार्मिक विचारों करने को तैयार नहीं होते, किसी किस्म का अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व संघ हो ही नहीं सकता।

"फिर आध्यात्मिक विषयों में संस्कारिक या भौतिक दृष्टान्त भी बहुत दूर तक काम में नहीं लाये जा सकते। जब आप बाह्य प्रकृति से कोई दृष्टान्त चुनते हैं, तब उसका उपयोग भी किसी खास हद तक ही हो सकता है। मगर मैं एक प्राकृतिक उदाहरण ले कर ही अपनी बात समझाने की कोशिश करूँगा। अगर मैं आपको गुलाब का एक फूल दूँ तो उसके लिए मुझे अपना हाथ हिलाना ही पडता है, मगर उसकी सुगंध देने के लिए मुझे कुछ नहीं करना पडता, वह अपने आप ही, आपके पास पहुंच जाती है। हम एक पग और आगे बढ जायँ तब हम समझ सकेंगे कि आध्यात्मिक अनुभवों का असर अपने ही होने लगता है। इस लिए स्वच्छता आदि नियम सिखलाने के दृष्टान्त यहां काम नहीं देगा। अगर हमें आध्यात्मिक ज्ञान है तो वह अपने आप ही दूसरों तक पहुँच जायगा। आप आध्यात्मिक अनुभवों के परमानंद की बात करते हैं, और कहते हैं कि उसे दूसरों को भी हिस्सा दिये बिना रही नहीं सकते। खैर, अगर सच्चा आनंद है, परमानन्द है, तो वह अपने आप ही चोंके फैल जायगा। आध्यात्मिक मामलों में हमें रास्ते पर से महज सा भर हट जाना पडता है। हम रास्ता रोकते नहीं। परमात्मा अपना काम करने दीजिए। अगर हम बीच में हस्तक्षेप करें तो उससे हानि भी हो सकती है। परमात्मा का असर तो आप ही हुआ करता है। पाप को अपना पैर नहीं होता, पर को होता है। पाप तो केवल 'नास्ति' भर है। उसे तो पुण्य का भेस मिलना चाहिए, तब कहीं वह आगे बढ सकता है।"

"खुद ईसा ने क्या लोगों को सिखलाया नहीं था, उपदेश दिया था?"

"यहां बहुत बडी सावधानी चाहिए। आप चाहते हैं कि बतलाऊँ कि ईसा के जीवन का क्या स्वरूप मैं समझता हूँ। मैं इतना तो कहूँगा कि बाइबिल में लिखे हर एक शब्द को ऐतिहासिक सत्य नहीं मानता, यह नहीं मानता कि उसमें की एक एक बात किसी समय जरूर घटित हुई होगी ही। फिर भी याद रखना चाहिए कि वे अपने देशबन्धुओं के बीच काम कर रहे थे। वे नाश करने के लिए नहीं आये बल्कि पूरा करने के लिए आये थे। मैं गिरिशिखर पर के उपदेश और पौल के पत्रों में बहुत अन्तर मानता हूँ। पौल के पत्र तो ईसा की शिक्षाओं के ऊपर से मिलाये गये हैं—वे पौल की कृति हैं, ईसा की नहीं।"

समावर्त्तन संस्कार

पदवीदान समारोह का कुछ हद तक पहले के गुरुकुलों के समावर्त्तन संस्कार से मिलान कर सकते हैं जब कि शिष्य गुरुकुल में विद्या समाप्त करके गुरु की आज्ञा लेकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए जाते थे।

एक जर्मन अध्यापक गुजरात विद्यापीठ और महाविद्यालय देख कर गांधीजी के पास आये और अपना संतोष प्रकट किया। उन्हें गांधीजी ने कहा था, "आप अपना संतोष इस पर भले प्रकट करें, मगर आज तो उसमें देखने की कोई विशेष चीज ही नहीं है। देखने की चीज तो जमीन में बहुत गहरे गड़ी है। शुरू में ऐसा लगा था कि हमारे बीज उगने लगे हैं, थोडे ही दिनों में वे बडा वृक्ष बन जायँगे, मगर वे सूख गये। अगर बीज मर गये हों तो हम उसीके लायक हैं, मगर मेरा पक्का विश्वास है कि वे मरे नहीं हैं। एक दिन वह जरूर ही आनेवाला है जब कि वे फिर उगेंगे और वृक्ष बनेंगे।" इन चार शब्दों में ही गांधीजी ने आज राष्ट्रीय विद्यालयों की सारी वस्तु स्थिति सामने रख दी। इसी में उन्होंने अपनी भविष्य की आशा भी बतला दी। पदवी-दान समारोह के दिन गांधीजी ने मि. ऐन्ड्रयूज से उस दिन के भाषण का गुजराती सारांश आप बतलाया। उन्होंने अपने खास ढंग पर मि. ऐन्ड्रयूज की हर एक सलाह, हर एक भावना का समर्थन किया और खास कर इस बात पर जोर दिया कि "श्रद्धा वह वस्तु है जिसकी केवल आशा ही की जाती है, उन वस्तुओं का प्रमाण है जो देखी नहीं जा सकतीं।"

(यं० इं०)

महादेव देसाई

गुजरात विद्यापीठ

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक २४

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, माघ सुदी १२ संवत् १९८४ गुरुवार, २ फरवरी १९२८ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ३७

गोखले को मिलने

दक्षिण अफ्रिका के बहुत से स्मरण अब छोडने पडते हैं। सन् १९१४ में जब सत्याग्रह की लडाई समाप्त हुई, तब गोखले की इच्छा से मुझे इंग्लैण्ड से हो कर देश लौटना था। इस लिए जुलाई में विलायत जाने के लिए कस्तूर बाई, कैलनबैक और मैं, तीन जने रवाना हुए। सत्याग्रह की लडाई के जमाने में मैंने तीसरे दर्जे की मुसाफिरी शुरू की थी, और इस लिए समुद्र की यात्रा के लिए भी तीसरे ही दर्जे का टिकट कटाया। पर इस तीसरे दर्जे में और अपने यहां के तीसरे दर्जे में बहुत फर्क है। अपने यहां तो सोने बैठने की जगह भी मुश्किल से ही मिलती है। स्वच्छता तो भला होने ही किस लिए? पर वहां तो जगह काफी थी और स्वच्छता भी खूब थी। कंपनी ने हमारे लिए अधिक सुविधा भी कर दी थी। हमें किसीके कारण तकलीफ न होवे, इस लिए एक पैखाने में खास ताला लगवा कर हमें कुंजी दे दी गयी थी और हम तीनों फलाहारी थे, इस लिए हमें सूखे और हरे फल भी काफी देने की आज्ञा स्टीमर के खजाञ्ची को दी गयी थी। सामान्य तौर पर तीसरे दर्जे के मुसाफिरों को फल कम ही मिलते हैं, सूखे मेवे तो बिलकुल ही नहीं। इस सुविधा की बदौलत हमने जहाज के १८ दिन बडी शान्ति से बिताये।

इस मुसाफिरी के कई एक स्मरण बहुत जानने लायक हैं। मि० कैलनबैक को दूरबीनों का खूब शौक था। उन्होंने दो एक कीमती दूरबीन रक्खे भी थे। इस विषय पर हमारे बीच रोज ही बातें होती थीं। मैं यह समझाने का प्रयत्न करता था कि हमारा जो आदर्श है, हम जिस सादगी पर पहुँचना चाहते हैं, यह व्यवहार उसके अनुकूल नहीं है। एक दिन हमारे बीच इसकी तीखी तकरार हुई। हम दोनों अपनी कैबिन के दरवाजे के पास खडे थे।

मैंने कहा, "इसको बनिस्बत कि हमारे बीच झगडे हुआ करें यह कितना अच्छा होगा कि इस दूरबीन को ही समुद्र में फेंक देवें और फिर कभी इसकी बात ही न करें?"

मि० कैलनबैक ने तुरत जवाब दिया, "जरूर, इस झगडे की जड को फेंक दीजिए।"

मैंने कहा, "मैं फेंकता हूँ।"

उन्होंने उसी शीघ्रता से जवाब दिया, "मैं गंभीर हूँ, फेंक दीजिए।"

मैंने दूरबीन फेंक दिया। वह कोई सात पाउण्ड की कीमत का था। पर उसकी कीमत उसके दाम से कहीं अधिक उस पर मि० कैलनबैक के मोह में थी। तौभी मि० कैलनबैक ने उसके बारे में कभी दुःख नहीं माना। उनके और मेरे बीच ऐसे बहुत से अनुभव हुए, जिनमें से मैंने यह एक बानगी के तौर पर दिया है। हमारे परस्पर के संबंध से हमें रोज ही कुछ न कुछ नया सीखने को मिलता था क्योंकि हम दोनों ही सत्य के पीछे चलने की कोशिश करते थे। सत्य का अनुसरण करने से क्रोध, स्वार्थ, द्वेष, इत्यादि सहज ही शान्त होते थे, और अगर शान्त न होते तो सत्य ही नहीं मिलता था। रागद्वेषादि से भरपूर आदमी सरल भले हो सकें, वाचा का सत्य भले ही पाल लेवें, पर शुद्ध सत्य उन्हें नहीं ही मिलता है। शुद्ध सत्य की खोज करने के मानी हैं राग द्वेषादि से सर्वथा मुक्ति पाना।

हमारे मुसाफिरी शुरू करने के समय मुझे उपवास किये बहुत दिन नहीं हुए थे। मुझमें अभी पूरी शक्ति नहीं आयी थी। स्टीमर के डेक पर रोज टहलने की कसरत करके मैं ठीक खाने और खाया हुआ पचाने की कोशिश किया करता था। पर साथ ही साथ मेरे पैरों की पिंडलियों में अधिकाधिक दर्द होने लगा। विलायत पहुँचने पर उनका दुखना कम नहीं हुआ, किन्तु बढ़ा। विलायत में डाक्टर जीवराज मेहता की पहचान हुई थी। उन्हें उपवास का और पैर के दर्द का इतिहास कहते ही, उन्होंने बतलाया कि, "आप को कुछ दिनों तक बिलकुल ही आराम लेना पडेगा नहीं तो हमेशे के लिए पैर बिगाड जाने का डर है।" इसी समय मुझे पता लगा कि लंबा उपवास करनेवाले को गयी हुई ताकत झट लौटा लेने

या बहुत खाने का लोभ नहीं रखना चाहिए। उपवास करने से कहीं अधिक सावधान उसे उतारने में रहना पडता है और शायद उसमें ज्यादह संयम भी होवे।

मदीरा में हमें समाचार मिला कि लडाई अब शुरू ही हुआ चाहती है। इंग्लेन्ड की खाडी में पहुँचते ही लडाई शुरू हो जाने का समाचार मिला और हमें रोका गया। जगह जगह पर पानी में गुप्त खानें बनायी गयी थीं। उनसे बच कर हमें साउथैम्पटन ले जाने में एक या दो दिनों की देर हुई। ४थी अगस्त को लडाई की घोषणा हुई और हम ६ठी को विलायत पहुँचे।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

काठियावाड में छह दिन

इस साल काठियावाड राजनीतिक परिषद पोरबंदर में श्री. अमृतलाल ठक्कर की प्रमुखता में हुई थी। उसमें गांधी जी को भी जाना पडा था। पोरबंदर के श्री महाराणा साहेब ने गांधी जी, ठक्कर बापा, वल्लभभाई, अब्बास साहेब, इमाम साहेब वगैरह की मेहमानदारी अपने दरबारी गेस्ट हाउस (अतिथि-शाला) में की और दूसरे मेहमानों की मेहमानदारी उन उन जातियों के गृहस्थों ने अपने अपने खर्च से की। महाराणा साहेब ने विषय समिति के सभी सदस्यों को स्नेह सम्मेलन में बुलाया था और एक दिन दीवान साहेब के साथ स्वयं घडी भर के लिए परिषद में भी वे पधारे थे। ये सभी बातें बडी सुन्दर कही जायँगी और हम आशा रक्खें कि एक दूसरे को देख कर चलनेवाले देशी राज्य इसका अनुकरण करेंगे।

जिस मुख्य प्रस्ताव की चर्चा गांधी जी ने अपने लेख में की है, और जिसका अनुवाद अन्यत्र दिया जा रहा है, उसीमें उन्होंने इतना विवेचन किया है कि मैं इस विषय पर और कुछ लिखने की जगह ही नहीं देखता हूँ।

प्रश्नोत्तर

आखीरी दिन कार्यकर्त्तागण और सत्याग्रह दल गांधी जी से बातें करने के लिए इकट्ठे हुए थे। गांधी जी इसी बात पर कायम रहे कि जिस राज्य में अंत्यज शाला चलती हो, उसके लिए धन वहीं मिलना चाहिए। एक भाई ने पूछा।

"'अमुक' राज्य में अंत्यज शाला खोली जा सकती है या नहीं?'

गांधीजी ने कहा, 'मैंने बहुतों के मुँह से, और बहुत जगहों पर सुना है कि 'अमुक' राज्य अपवित्र राज्य है और अगर यह बात सच्ची हो तो वहां किसी पवित्र काम के लिए कोई नहीं जा सकता। इसमें अपवाद केवल एक यही है कि उसमें उसकी अपवित्रता दूर करने के लिए ही जाया जाय। हम ब्रिटिश राज्य में रहते हैं और इस कारण उसे खास प्रतिष्ठा मिल जाती है पर हमें इस अनीतिमय राज्य में रह कर इसे तोडना है, इस लिए छुटकारा नहीं मिल सकता। पर दूसरे किसी काम के लिए भले आदमी का अपवित्र राज्य में जाना अथवा रहना उसकी प्रतिष्ठा बढाने के लिए जाने के बराबर है।'

भाई फूलचंद का बनाया हुआ, सत्याग्रह की तैयारी करनेवाला 'सत्याग्रह दल' २२ नवयुवकों का एक छोटा सा दल है। ये सभी गांधीजी की सलाह लिये बिना कुछ भी नहीं करने के लिए बँधे हुए हैं। इन युवकों ने कई प्रश्न पूछे।

प्र० देशी राज्यों में सुधार के लिए कोई अखिल भारतीय सत्याग्रह संस्था चाहिए या नहीं?

उ० नहीं चाहिए। द० अफ्रिका में मेरे साथ ६०,००० आदमी हो गये थे। अब उनमें कितने सत्याग्रही हैं? पर आपके २२ तो इस लिए इकट्ठे हुए हैं कि जब जरूरत पडे तो काम आवें। पर जब आप काम करेंगे, — और विवेक बिना आप कुछ करनेवाले नहीं हैं — उस समय आपको और भी अनेक आदमी मिल रहेंगे। अगर आप समझदार सत्याग्रही हों तो आपके बतलाये अ. भा. सत्याग्रह दल की जरूरत नहीं है। प्रसंग आने पर आप का और देश का जौहर प्रकट होगा।

प्र० सत्याग्रह दल गुण और संख्या में किस तरह बढे?

उ० हर एक सत्याग्रही को जागृत रहना चाहिए। उसमें आलस्य, शिथिलता, तंद्रा न हों, उसे व्याधि न होवे, यहां तक कि हर एक आदमी अपने बारे में हमेशे विचार करता रहे। अपनी निश्चित की हुई, अपनी प्रवृत्ति के अंदर अपनी परीक्षा करता ही रहे। जैसे सेनापति के पास हर एक सैनिक के कामकाज का रोजाना हिसाब या दिन-पत्रिका होनी चाहिए।

प्र० आज तो बहुत आदमी अन्त्यजशाला वगैरह कामों में लगे हुए हैं।

उ० मैं तो ऐसे सत्याग्रही से पूछूँगा कि तुमने बालकों को सत्याग्रह का कितना स्पर्श कराया है? बालकों के साथ तुम कितने ओतप्रोत हो गये हो। लडकों से मैं पूछूँगा कि यह कौन है? उन्हें कहना चाहिए कि इन्हें तो हम शिक्षक के रूप में बाप ही मानते हैं।

आपमें सत्याग्रही डाक्टर हैं। मैं बतलाता हूँ कि सत्याग्रही डाक्टर कैसा होना चाहिए। वह गरीब को पहला स्थान देवे। मेरे जैसों का और दूसरों का जिन्हें जभी चाहिए तभी डाक्टर मिल जाते हैं, खयाल पीछे करे। गरीबों को देख कर पूछे कि, 'भाई तुम्हारे दाँत टूट गये हैं, तुम्हें नकली दाँत चाहिए?' उसे यह नहीं सोचना होगा कि, हाय कोई खराब दाँतवाला नहीं मिलता, अब मेरा धन्धा कैसे चलेगा? सत्याग्रही डाक्टर की और अधिक व्याख्या 'हिन्दस्वराज' में देख लेना। सत्याग्रही डाक्टर अपनी आजीविका तो अपने धन्धे में से पैदा करने का विचार ही न करे। डा० वानलेस ने हजारों आदमियों को नश्तर लगाये हैं, उनकी संस्था को लोग हजारों रुपये दे जाते हैं, मगर वे उसमें से आप एक कौडी नहीं रखते। सैम हिगिन बौटम बहुत बडे किसान हैं। उन्हें कृषि विषय में केवल सलाह देने के लिए ४,०००) रुपये महीना मिलते थे। पर उसमें से क्या एक फूटी कौडी भी उन्होंने अपने व्यक्तिगत काम के लिए लिया था? हां, हमारे चन्दूलाल डाक्टर भी ऐसे ही हैं सही। अपना धन्धा वे भलीभांति जानते ही हैं और अपने लिए एक कौडी भी नहीं लेते और गरीब उनके पास जा कर खडा रह सकता है।

सत्याग्रही निर्मल साधना साधे, अपने काम का निश्चय कर के उसीमें लगा रहे। अगर खोटी वस्तु को भी उसने एकबार सत्य मान लिया तो उसी सत्यनिष्ठा के साथ लगे रहने में उसकी अनन्य श्रद्धा का माप लगाया जायगा। तुलसीदास ने कहा है,

> रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानुकर वारि।
> जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकै कोउ टारि॥

जगत को अगर सत्य मान कर चले तो फिर जगत के हित में ही लगे रहना हुआ। इसीमें कल्याण है।

प्र० मान लीजिए कि 'अमुक' राज्य में सत्याग्रह करने लायक स्थिति बिगडी हुई है तो हम वहां क्या अपना डेरा डाल सकते हैं?

उ० नहीं। बाहर ही रह कर आपको खूब बलवान् बनना रहा। बाहर से ही 'अमुक' राज्य का प्रजामत तैयार करना रहा। जब आप देखें कि आप में बल आ गया है और 'अमुक' राज्य में

कमजोरी आ गयी है; और वहां पर से किसी विभीषण के मिल जाने की आशा है, तब आप सत्याग्रह दल लेकर 'अमुक' राज्य पर चढाई करें। यह चढाई करते हुए भी याद रखना चाहिए कि जिस राजा की खराब नीति के लिए चढाई की जाती है, उस राजा के प्रति प्रेम रक्खें। जब यह सब बातें हों, तभी सत्याग्रह दल की छावनी पड सकती है। इस बीच आप 'अमुक' राज्य के लोगों को समझा सकते हैं। वहां से अनेक आदमी आते होंगे। उन्हें उनकी अधोगति के बारे में जागृत कीजिए। उसमें अगर अपना कोई सगा भी हो, और उसके यहां विवाह या कोई ऐसा ही दूसरा शुभ प्रसंग हो, तौभी वहां नहीं ही जाना चाहिए। उस राज्य के लोगों को इस तरह शिक्षा दीजिए।

मंदिर कैसा चाहिए

पोरबंदर से वरतेज गये। वरतेज में भाई मूलचन्द पारेख ने अन्त्यजों के लिए एक अन्त्यजाश्रम बनाया है और अब मंदिर बनाने का निश्चय किया है। दोनों के लिए १३०००) रुपये चाहिए, जिनमें ५,५००) गांधी जी की मार्फत इकट्ठे किये और शेष भावनगर राज्य से लिए। इस मंदिर की नींव डालने के लिए गांधी जी वरतेज गये थे।

"ऊंची जातिवाले हिन्दू अंत्यजों की सेवा कर के उनका उपकार नहीं करते, बल्कि अपना ही उपकार करते हैं। अपने अंत्यज कहे जानेवाले भाइयों के अस्तित्व के लिए जिम्मेदार होकर उन्होंने जो पाप किये हैं, उनके लिए वे जो प्रायश्चित्त या शुद्धि करें, थोडी हो है। इसलिए अंत्यज सेवा का मुझे जब कभी अवसर मिलता है, तब मैं उसे धन्य घडी समझता हूँ, और ऐसा लगता है कि पाप का कुछ प्रायश्चित्त करता हूँ। कोई आदमी ऐसा न माने कि मैं सेवा करता हूँ। इसलिए मुझे प्रायश्चित्त करना तो है ही नहीं। मैं आपको कहना चाहता हूँ कि एक भी हिन्दू के के किये अत्याचार के लिए सभी भागीदार हैं। जगत् का यही न्याय है कि जहां तक एक आदमी भी पाप करता है, वहां तक सारा जगत् जवाबदार है। इस न्याय को हिन्दू मुसलमान सभी घटा लेवें। जहां तक जगत् में जुदा जुदा बाडे हैं, वहां तक हर एक बाडावाला अपने बाडे के एक एक आदमी के पाप के लिए जवाबदेह है।

"मंदिर कुछ ईंट या चूने का घर ही भर नहीं है और सिर्फ उसमें मूर्ति की स्थापना करने से ही वह मंदिर नहीं बन जाता। मंदिर तो वही कहा जाता है कि जिसमें प्राण–प्रतिष्ठा की गयी हो। ब्राह्मण को बुला कर हवन कर के मंदिर खोलने में पाखंड होना भी संभव है। सच्ची बात तो यह है कि जिन्होंने मंदिर बनाने का निश्चय किया हो उन्हें संकल्प की ही घडी से अपना जीवन प्रायश्चित्त के कामों में ही व्यतीत किये हुये हुए होना चाहिए और अपने सारे पुण्यों का भार उन्होंने उसी मंदिर मे डाला हो। मंदिर के संचालक और पुजारी भी तपश्चर्यामय जीवनवाले हों और उस मंदिर में घुसते ही जानेवाले का हृदय हिल जाय। आप समझना कि अगर यह मंदिर ऐसा बननेवाला न होवे, इसके पीछे इतनी आत्मशुद्धि और विचारशुद्धि न होवे तो यह खाली मकान है, पृथ्वी पर बोझा रूप है। यह मंदिर कहा जायगा और इस लिए उसका कोई उपयोग नहीं हो सकेगा, उतना भाग निरर्थक होगा। कदाचित् मंदिर के नाम पर यह संस्था हानिकारक भी बन जाय—अनेक पापों का धाम बन जाय। मैंने यह मान कर इसकी नींव रक्खी है कि ये दोष यहां पर नहीं हैं। इस बात में कोई सार नहीं है कि विचार हुआ नहीं कि मन्दिर बनना चाहिए और फिर नींव डलवायी और इस भरोसे बैठ रहे कि आगे कभी मन्दिर भी उठ जायगा ही। उतावली से आम के पेड में फल नहीं लगते, उसी तरह उतावली से धर्म का पौधा नहीं उगता। इसके लिए सच्चा विश्वास चाहिए, उद्यम चाहिए, धैर्य चाहिए।

"अंत्यज भाइयों को इतना कहूँगा कि हिन्दूधर्म बतलाता है कि आप मरे बिना स्वर्ग नहीं देखा जाता और यह बात अक्षरशः सही है। तुम्हें अपनी उन्नति करनी है। यह मान कर मत बैठ रहना कि तुम्हारा भला हिन्दू लोग करेंगे। वे तो तुम्हारी सेवा करके अपनी ही भलाई करते हैं। तुम अगर अपना जौहर दिखलाना चाहते हो तो तुम जागृत हो जाओ। जो दोष तुम में दिखाकर हिन्दू लोग तुम्हारा त्याग करते हैं, उन्हें दूर करो। ऐसा नियम करना कि तुममें जो व्यसनी हों, मुरदार मांस खानेवाले हों, वे इस मंदिर में न जा सकें। दूसरे उच्च कहे जानेवाले हिन्दुओं के दोषों की और उँगली मत उठाना। 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं' के न्याय से जगत उन्हें माफ करेगा, परतु तुम्हें नहीं। दूसरों में सैकडों दोष भले ही हों, मगर तुम अपने दोष निकालने का प्रयत्न जरूर करना।"

वरतेज से हम मोरवी गये। मोरवी में भी ठाकोर साहब ने प्रजा के साथ स्वागत में खूब योगदान किया था। लोग अगर खादी के लिए बडी रकम इकट्ठी करना चाहते तो कर सकते थे पर स्वागत के उत्साह में सभी सच्चा कर्तव्य भूले हुए थे। मोरवी की यात्रा की कीमत तो ठाकोर साहेब और गांधी जी की मुलाकात में है। उन्होंने परस्पर बहुत बातें कीं, बहुत विषयों पर चर्चा की, ऐसा लगता था कि जैसे दोनों एक दूसरे को समझते हों, और परस्पर हृदय खोलने का उत्तेजन दोनों को मिला। इससे सुन्दर और क्या होता? मानों इसीकी प्रतिध्वनि के रूप में गांधीजी ने ऐसा प्रौढ और हृदय—स्पर्शी भाषण किया जैसा काठियावाड में शायद ही कभी किया हो, और वह भी ऐसी बलंद आवाज में जैसी उनकी पिछले नौ महीनों में कभी नहीं सुनायी पडी थी। सारा भाषण देने की जगह तो है ही नहीं; मगर उसका सारांश अगले अंक में दिया जायगा। मोढ जाति को और उसके बहाने दूसरी सभी जातियों को उन्होंने जो बातें कही हैं, उन्हें पढ कर हर एक जाति सचेत हो जाय, जागृत हो जाय। राजाप्रजा के बीच संबन्ध के बारे में भी जो उद्गार इस भाषण में व्यक्त हुए हैं, वैसे कदाचित् और किसी भाषण में न हुए हों।

वांकानेर

वांकानेर के बारे में भी दो शब्द। वांकानेर कार्यक्रम में पहले नहीं था, परन्तु गांधीजी के साथ दक्षिण अफ्रिका से ही प्रेम-संबन्ध रखनेवाले भाई खंडेरिया के प्रेम से खिंच कर गांधी जी वहां गये। यह भाई खंडेरिया कैसे समझें कि गांधीजी के जैसे आदमियों को केवल अपने प्रेम से ही नहीं खींचना चाहिए? तौभी वहां पर कुछ काम तो हुआ ही। शाला के बालकों ने अपने जेबखर्च में से जमा करके १०१) रुपयों की थैली जमा की थी। पर मानों अपने बालकों की थैली से मांबाप को मुक्ति मिल गयी थी। भाई खंडेरिया के घर गांधीजी को थोडा सोना भी मिला, और सोने से भी अधिक कीमती प्रतिज्ञाएँ, उनकी पुत्रों की ओर से मिलीं और इस लिए मैं वांकानेर की मुसाफिरी को सार्थक मानता हूँ।

(नवजीवन)

महादेव देसाई

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ सुदी १२ संवत् १९८४

गुजरात विद्यापीठ

असहयोग के उरूज के जमाने में यह सबसे पहला राष्ट्रीय विद्यापीठ खोला गया था। पिछले तीन चार वर्षों से इसकी हस्ती पर आफतें पडती आ रही हैं। विद्यार्थियों की संख्या बहुत ही घट गयी है। इससे संबद्ध कितने ही विद्यालय या तो बंद हो गये हैं या सरकारी यूनिवर्सिटी से संबद्ध हो गये हैं। अगर कुछ आन्तरिक कारण न होते तो इस उतार से घबराने की कोई बात न होती। किन्तु हममें से अधिकांश लोगों को और मुझे भी जान पडता है कि हमने इस राष्ट्रीय पुनर्रचना के अत्यन्त महत्वपूर्ण काम के लिए वह सब कुछ नहीं कर लिया है जो करना हमारे बूते की बात थी। सभी किसी के सावधान और सचेत रहने पर भले ही उतनी अवनति न होती जितनी हुई है, मगर तौभी इसके कुछ ऐसे भी कारण हैं, जिन पर किसी का कोई कब्जा नहीं था। और गोकि जैसा काम किया जा सका है, उससे ज्यादह अच्छा काम सहज ही किया जा सकता था, मगर तौभी जो ही कुछ हो सका है, उस पर संस्था गर्व कर सकती है। मैं तो यह दावा करने का भी साहस करता हूँ कि अगर विद्यापीठ न होता तो वल्लभभाई पटेल को पिछले संकट के समय इतने अधिक कार्यकर्त्ताओं की मूल्यवान् सहायता नहीं ही मिल सकती थी। इतना ही नहीं बल्कि विद्यापीठ के विद्यार्थी तो सिंध भी अध्यापक मलकानी की मदद करने गये जो वहां के बाढ-पीडितों को सहायता देने में अपनी जान लडा रहे हैं। विद्यापीठ के एक स्नातक ने जिन्हें विद्यापीठ का स्नातक होने का गर्व है, उसके स्नातकों के काम का संक्षिप्त परन्तु सही विवरण तैयार किया है। किसी दिन उस विवरण पर विचार करने की आशा में करता हूँ। आज के लिए तो यही कबूल करना काफी है कि हमारी लापर्वाई निवार्य भी थी और अनिवार्य भी और हम अब अपनी नींद से जगे हुए से जान पडते हैं।

सबसे पहला सफाई का काम तो यह हुआ कि गत रविवार को नियामक सभा ने विद्यापीठ की मूल्यवान सम्पत्ति और उससे भी कीमती उत्तरदायित्व, एक विद्यापीठ मण्डल स्थापित कर प्रस्ताव कर के उसे सौंप दिया। वह प्रस्ताव यह है:

"गुजरात विद्यापीठ की नियामक सभा की यह सम्मति है कि:

१. गुजरात ने असहयोग के राष्ट्रीय आन्दोलन के संबंध में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की और असहयोग आन्दोलन के उतार के समय भी उसे जो सँभाले रक्खा है, इससे राष्ट्र की सेवा हुई है;

२. किन्तु संख्या की दृष्टि से देखने पर विद्यापीठ में उत्तरोत्तर घटती ही होती गयी है;

३. गुण की दृष्टि से भी देखने पर, यदि आन्तरिक संयोग अच्छे होते तो जितना कुछ काम हुआ है, उससे कहीं अच्छा हो सकता था;

४. और विद्यापीठ के अस्तित्व में अभी यह स्थिति आ गयी है कि जब विद्यापीठ का तंत्र अधिक कार्यकर बनाने के लिए, और इसके साथ, जिसमें ध्येयों का अधिक एकाग्र पालन होवे, इस लिए विद्यापीठ का तंत्र एक स्थायी मंडल को सौंपने की आवश्यकता है; इस लिए;

५. और इस सभा ने विद्यापीठ के पुनः संगठन के बारे में ता. ४-१२-२७ को जो प्रस्ताव स्वीकार किया था, उसके अनुसार,

यह सभा नीचे लिखे सभ्यों में से जो यहां बाद में बतलाये हुए ध्येयों को स्वीकार करने और उनका पालन करने की प्रतिज्ञा लेंगे, गुजरात विद्यापीठ मंडल बनाती है, और उस मंडल को विद्यापीठ की तमाम संस्थाएँ तथा उनकी तमाम मिल्कियत, उत्तरदायित्व, और हक सौंपती है और उस मंडल को अपनी संख्या में २५ तक वृद्धि करने, किसी सदस्य की मृत्यु होने, इस्तीफा देने, मंडल की प्रतिज्ञा का भंग करने से या किसी ऐसे दूसरे सबल कारण से किसी सदस्य के ४/५ बहुमति से बरतरफ करने अथवा किसी दूसरे कारण से जगह खाली होने पर दूसरे सदस्यों को चुनने वगैरह की सत्ता और दूसरे सभी अधिकार जो इस सभा को हो सकते हैं, देती है।

मंडल के सभ्यों के नाम

१. श्रीयुत वल्लभभाई पटेल
२. ,, नृसिंहप्रसाद भट्ट
३. ,, काका कालेलकर
४. ,, शंकरलाल बैंकर
५. ,, महादेव देसाई
६. ,, अबदुल कादिर बावजीर
७. ,, मणिलाल कोठारी
८. ,, किशोरलाल मशरूवाला
९. ,, नरहरि पारीख
१०. ,, वालजी देसाई
११. ,, हरिप्रसाद व्रजराज देसाई
१२. ,, जुगतराम दवे
१३. ,, गोकुलभाई भट्ट
१४. ,, सुखलालजी पंडित
१५. ,, परीक्षितलाल मजमूदार
१६. ,, गोपालराव कुलकर्णी
१७, ,, मामा फडके
१८. श्रीमती मणिबेन वल्लभभाई पटेल

ध्येय

१. विद्यापीठ का मुख्य काम स्वराज प्राप्त के लिए चलते हुए आन्दोलनों के लिए चारित्र्यवान्, शक्ति संपन्न, संस्कारी, और कर्त्तव्य-निष्ठ कार्यकर्त्ता तैयार करने का है।

२. विद्यापीठ की ओर से चलती हुई और उससे संबद्ध सभी संस्थाएँ पूर्ण रूप से असहयोग करनेवाली होनी चाहिए और इस लिए वे सरकार का किसी किस्म का आश्रय नहीं ले सकेंगी।

३. विद्यापीठ स्वराज और स्वराज प्राप्ति के साधन अहिंसामय असहयोग के संबंध में खुला था, इस लिए उसके शिक्षक और संचालक ऐसे ही होने चाहिए जो स्वराज प्राप्ति के लिए अहिंसा और सत्य के अविरोधी ही साधन स्वीकार करें और उन्हें अमल में लाने के लिए प्रयत्नशील हों।

४. विद्यापीठ के संचालक, और शिक्षक तथा विद्यापीठ से संबद्ध संस्थाएँ अस्पृश्यता को कलंकरूप माननेवाली और उसे दूर करने को प्रयत्नशील होनी चाहिएँ, और किसी लडके या लडकी को अस्पृश्य होने के कारण न तो बाहर रखना चाहिए और न उसे दाखिल कर लेने बाद उसके साथ अलग व्यवहार ही करना चाहिए।

५. विद्यापीठ के संबंध में काम करनेवाले शिक्षकवर्गों, संचालकों [और] संबद्ध संस्थाओं को चर्खा आन्दोलन में विश्वास करना, अनिवार्य [कारण] के सिवाय नियमित रूप से कातना और सर्वदा खादी पहिननी चाहिए।

६. विद्यापीठ में प्रान्तभाषा गुजराती को प्रधानपद दिया जायगा और सारी शिक्षा गुजराती के ही जरिए दी जायगी।

नोट — दूसरी भाषाएँ पढाने में उन्हीं भाषाओं का उपयोग इस [नियम] का बाधक नहीं होगा।

७. विद्यापीठ में राष्ट्रभाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी को आवश्यक स्थान होगा।

८. विद्यापीठ में औद्योगिक शिक्षा को भी बौद्धिक शिक्षा के ही बराबर महत्व दिया जायगा और राष्ट्र के पोषक जो उद्योग हों केवल उन्हींको स्थान दिया जायगा, दूसरों को नहीं।

९. भारतवर्ष का उत्कर्ष शहरों पर नहीं किन्तु गांवों पर अवलंबित है, इस लिए विद्यापीठ के धन के अधिकांश का और उसके शिक्षकों का मुख्य उपयोग गांवों में राष्ट्र की पोषक शिक्षा का [प्रचार] करने में होगा।

१०. शिक्षा-क्रम बनाते समय गांववालों की जरूरतों को प्रधानता [दी] जायगी।

११. विद्यापीठ के नीचे चलनेवाली संस्थाओं में सभी प्रचलित [धर्मों] के प्रति आदर होना चाहिए और विद्यार्थियों के आत्मविकास [के] लिए अहिंसा और सत्य को दृष्टि में रख कर ही, धर्म का ज्ञान [दिया] जायगा।

१२. प्रजा के शारीरिक विकास के लिए व्यायाम और शारीरिक [मेहनत] की तालीम विद्यापीठ में आवश्यक गिनी जायगी।"

मगर यह काम क्रान्तिकारी भले ही होवे तौभी इसके बाद [अगर] तुरत ही अनवरत और सावधानी-पूर्वक प्रयत्न न किये जाते [तो] तो इसके मानी कुछ नहीं होंगे। हाल के लिए तो ऐसे प्रयत्नों [की] और भी घटी हो सकती है। इस बात को नियामक सभा—या अब विद्यापीठमण्डल भली भांति जानता है। वे तो योग्य आदमी चाहते और जानते हैं कि जब हम योग्यता पैदा कर लेंगे तो संख्या समय पा कर आप ही आयगी, योग्यता के पीछे वे सब कुछ [कु]रवान करने को तैयार हैं। उन लोगों के दानों का उपयोग [कर]ना अनुचित होगा जिन्होंने इस विश्वास से दिया होगा या देंगे कि [जहां] तक मनुष्य के लिए संभव है, उन सिद्धान्तों का व्यावहारिक [उप]योग किया जायगा जिनके नाम पर आज तक विद्यापीठ चलता आ रहा [है।] अगर मंडल के सभ्य विद्यापीठ को किसी तरह चलाये लिये जाने [के] लिए इसके मूल सिद्धान्तों को ही छोड देवें तो वे अपने दायित्व [के] प्रति झूठे साबित होंगे। अगर मण्डल के सभ्य दृढ रह गये [और] यह मानने का कोई कारण नहीं है कि वे दृढ नहीं रहेंगे तो मुझको तो परिणाम के बारे में कोई डर है ही नहीं।

ऊपर ऊपर से तो मालूम होगा कि यहां प्रजातंत्र से उतर [कर] हम संघतंत्र पर आ रहे हैं। सच पूछिए तो बात यह है। जब उन सिद्धान्तों को ही बदलने का विचार हो रहा था [जिन]के नाम पर निर्वाचित नियामक सभा काम करती थी तब उस निर्वाचित मण्डल को बचा नहीं रखा जा सका था। जमाने के [सा]थ प्रजातंत्र के आदर्श और उसूल बदलते रहते हैं। सुधारक [के] सिद्धान्त अपरिवर्तनीय और निश्चित होते हैं। जब असहयोग, [राष्ट्]रीय कार्यक्रम नहीं रह गया, तब उन लोगों के लिए जो [गुलामी] [हिन्दु]स्तान की बेडियां तोडने का एक मात्र यही उपाय मानते थे, लाजिमी हो गया कि वे अपने जीवन में असहयोग के [सिद्धा]न्त को हद तक पहुँचा करके अपने सिद्धान्त की रक्षा करें।

इसीलिए महासभा ने अ० भा० चर्खासंघ नाम की एक स्वाधीन और स्वतन्त्र संस्था उन लोगों की बनायी जिन्हें चर्खे में जीवन्त विश्वास था। अलिखित समझौता तो यह था कि संघ चर्खे का कार्यक्रम इस तौर पर पूरा कर दिखावे जिसमें समय पा कर वह मूल संस्था महासभा के लिए बहुत बडा शक्तिशाली सहायक बन जाय। यह स्थायी मण्डल एक सच्ची प्रजातंत्रवादी संस्था बना लेने की आशा में बनाया गया है। और अगर खादी सचमुच में राष्ट्रीय वस्तु बन जाय तो वैसा प्रजातंत्र तैयार है जैसा कि संसार ने कभी नहीं देखा है। अपने वर्तमान उद्देश्यों को पूरा करने के लिए वचन-बद्ध हो कर यानी राष्ट्रीय शिक्षा को जीवन्त शक्ति का रूप देने के लिए, अर्थात गुजरात के एक एक गांव में राष्ट्रीय शिक्षा का ऐसा प्रचार करने के लिए कि जिसमें विद्यार्थी बौद्धिक शिक्षा की प्रतिष्ठा के बराबर ही हाथों से काम करने की प्रतिष्ठा को मानें, राष्ट्रीय सेवक तैयार करने के लिए जो गांवों की सेवा के जरिए राष्ट्र की सेवा करेंगे, उसी प्रकार नियामक सभा भी विद्यापीठ मंडल का रूप ले कर ऊपर हुई है। गत रविवार को पूरी चर्चा के बाद यह प्रस्ताव स्वीकार करते समय नियामक सभा की आशा इससे कम नहीं थी, उसने इससे कम जिम्मेवरी नहीं ली है। नियामक सभा के स्वेच्छापूर्वक त्याग के समान किसी के अपने से कभी कोई आप हट जाने से संघतन्त्र पैदा नहीं हो सकता। इसने एक दूसरी स्थायी संस्था के हाथों अपने अधिकार दे दिये जब कि सारे अधिकार इसी के हाथों थे, और वह उनका पूरा पूरा प्रयोग भी कर सकती थी। यह आत्मत्याग का काम था जिसकी कीमत तो मण्डल के काम से ही साबित होगी। उनकी जवाब देही भयंकर रूप से बडी है। मगर समुचित तपश्चर्या से वह उनके मत्थे भारी नहीं लगेगी और इससे गुजरात को तथा हिन्दुस्तान को लाभ ही होगा। उनकी जाँच इस बात से नहीं होगी कि उन्होंने कितना काम कर दिखाया, बल्कि इस बात से होगी कि इस काम में कितनी और किस तरह की सेवा लगाया गयी।

(यं० इं०) **मोहनदास करमचंद गांधी**

एक बहिन की उलझन

एक बहिन लिखती हैं:

"दो साल पहले मैंने खादी पर आपको भाषण देते हुए सुना था। आपने सबको खादी पहनने को सलाह दी थी। उस पर से मैंने खादी पहनने का निश्चय किया। पर हम गरीब हैं और मेरे पति कहते हैं कि खादी महँगी पडती है। हम महाराष्ट्र की हो कर दक्षिणी साडियां पहनती हैं। उसकी लंबाई नौ गज होती है। अब मैं नौ के बदले छह गज की साडी पहनूँ तो बहुत खर्च बचे। पर मेरे बडे लोग मुझे ऐसा करने नहीं देते। मैं उन्हें बहुत ही समझाती हूँ कि प्रधान वस्तु खादी है, साडी पहनने की रीति तो गौण वस्तु है, पर तूती की आवाज सुने कौन? वे कहते हैं कि तू तो अभी भरजवानी में है, इसीसे तुझे अभी ये नखरे सूझते हैं। पर आप जो संदेशा भेजें कि चाहे जिस ढब से होवे, पर खादी ही पहननी चाहिए तो वे मान जायँगे। गरीब बहिन की इतनी मदद तो जरूर कीजिएगा।"

मूल पत्र अँगरेजी में है। मैंने यहां उसके जरूरी भाग का तर्जुमा दिया है। इस बहिन को तो मैंने अपनी सलाह लिख भेजी है। पर मैं जानता हूँ कि इस बहिन की जैसी कठिनाई तो बहुत सी बहिनों के आगे आती है और इसलिए यहां उसका जवाब देता हूँ।

इस बहिन में देशाभिमान तीव्र होना संभव है क्योंकि बहुत सी बहिनें, यों आप ही आप, इनके समान पुराने ढब या पुराने रिवाज छोडने को तैयार नहीं होती हैं। एक भी असुविधा उठायें

बिना, रिवाजों की सारासारता का विचार किये बिना, उन पर कायम रहने पर भी अगर स्वराज मिल सके तो बहुत सी बहिनें और उसी भाँति भाई भी उसे लेने को तैयार होंगे । पर इस तरह स्वराज मिलना ही नहीं है । स्वराज लेने के मानी हैं स्वार्थत्याग की शक्ति पैदा करनी । और स्वार्थत्याग में प्रान्तीयता का त्याग भी आ ही जाता है ।

प्रान्तीयता से राष्ट्रीय स्वराज तो मिलना ही नहीं है । परन्तु प्रान्तीय स्वराज मिलना भी और अधिक कठिन हो जाता है । इस संकीर्ण प्रान्तीयता को बनाये रखने में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का हाथ शायद अधिक है । कुछ हद तक विविधता का संग्रह करना उचित है । पर इस हद को लांघने के बाद विविधता के नाम से पाले जानेवाले भोग और रिवाज राष्ट्रभावना के नाशक हैं । दक्षिणी साडी शोभावाली है । पर जो शोभा राष्ट्र के मत्थे मिलती हो, वह त्याज्य है । अगर कच्छी पछेडा या पंजाबी ओढनी रखने से खादी सस्ती पडे तो उसीमें हम सच्ची शोभा मानें । दक्षिणी कछोटा, गुजराती लटकती साडी, कच्छी पछेडा, बंगाली रीति, आदि ये सभी साडी पहनने की विविध राष्ट्रीय रीतियां हैं । इनमें से चाहे जिस रीति से साडी पहन कर उसे राष्ट्रीय रीति मानना चाहिए । इन सभी रीतियों में से वह रीति पसंद की जाय जिससे शरीर पूरा पूरा ढँके और कपडा कम से कम लगे । यह रीति तो कच्छी घांघरे और पछेडे की है । पछेडा तीन गज में होता है । इस लिए गुजराती साडी की बनिस्वत भी आधा ही खर्च हुआ, और जो बोझ कम हुआ वह नफे में । जो पछेडा और घांघरा एक ही रंग के होवें तो एका एक यह जान भी नहीं पडता कि साडी पहनी है या पछेडा । ऐसी राष्ट्रीय रीतियों का विनिमय और अनुकरण स्तुत्य है ।

श्रीमंतों के यहां अनेक प्रान्तों की पोशाकों का होना चाहने लायक है । इसमें कितना विवेक और राष्ट्रीय भावना भरी है कि गुजराती गृहस्थ के घर बंगाली मेहमान आवें तो मालिक और मालकिन बंगाली पोशाक पहनें और गुजराती मेहमान का आदर सत्कार करते समय बंगाली गृहस्थ गुजराती पोशाक पहनें ? पर यह तो राष्ट्र-भावनावाले धनिक देश-प्रेमी ही कर सकते हैं । मध्यमवर्ग के और गरीब देशप्रेमी, जिस प्रान्त की पोशाक खादी पहनने के लिए सस्ती और सरल हो, उसीको पहनने में अभिमान समझें । और उसीमें से, यह विचार कर लेवें कि कंगाल क्या पहनते हैं, अपने लिए पोशाक बनावें ।

स्वदेशी यह नहीं है कि अपने गढे में डूब मरें, किन्तु स्वदेशी के मानी हैं अपने गढे को सार्वजनिक समुद्र में होम करना । और होम हमेशे शुद्ध द्रव्य का, शुद्ध हाथों से ही हो सकता है । इसलिए हम सहज ही समझ सकते हैं कि हर एक स्थानिक रिवाज या रीति जो मैले नहीं हैं, नीति विरुद्ध नहीं हैं, वे ही राष्ट्र के उपयोग में लिये जाने लायक हैं । इतनी वस्तु समझ में आ सके तो राष्ट्र-प्रेम अन्त में विश्व-प्रेम का रूप ले सकता है ।

और जो बात हमने कपडों के बारे में विचारी है, वही भाषा खुराक इत्यादि के बारे में भी लागू पडती है । जैसे हम समयानुसार अन्य प्रान्त की पोशाक की नकल करें, उसी तरह प्रान्तीय भाषा वगैरह की भी करें । अभी तो अँगरेजी भाषा को मातृ-भाषा से भी बडा स्थान देने के निरर्थक, अशक्य और घातक प्रयत्न से ही हमें इतनी थकावट आती है कि हम अपनी मातृ-भाषा की अवगणना, जाने, अजाने किया करते हैं । जहां ऐसा चलता है, वहां प्रान्तीय भाषा का तो पूछना ही क्या ?

नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

काठियावाड राजकीय परिषद

[उत्तर भारत के देशी रजवाडों में काम करनेवालों के भी उपयोगी समझ कर, गांधीजी के इस अत्यन्त महत्वपूर्ण लेख का एक थोडा सा अंश छोड कर, शेष यहां दिया जा रहा है ।

उप० स० 'हि० न०]

मैं तो केवल एक ठहराव पर ही लिखना चाहता हूँ । ठहराव मेरी कृति है और मुझे जान पडता है कि उसे ... और स्वीकार करा के मैंने परिषद की और काठियावाड की ... की है । वह प्रस्ताव यह रहा :

" राजा प्रजा के बीच किसी प्रकार की भ्रान्ति या गलत... न होवे, और इस परिषद को अपनी शक्ति का पूरा भान ... हेतु से और कितने समय से चली आती हुई प्रथा को ... करने के लिए यह परिषद निश्चय करती है कि यह परिषद ... राज्य के बारे में उसकी व्यक्तिगत निन्दा या टीका रूप कोई ... नहीं करेगी ।"

इस प्रस्ताव का संभव होना सत्य की उपासना पर ही ... है । मैंने देखा कि कितने एक गर्भित समझौते के कारण ... परिषद पोरबंदर में हो सकी थी और अभी कितने ही ... तक ऐसे समझौतों से ही की जा सकेगी । इसमें परिषद की ... का माप था । ऐसी अपंगता किसी परिषद की न होवे ... अपंगता होती है, वहां कहीं न कहीं कोई दोष या न्यूनता ... पर अपंगता ढांकने से दूर नहीं होती । रोग को छिपाने ... बढाता है । उसे मिटाने वाले उपायों की अवगणना ... अपना शत्रु आप ही बनता है ।

विषय-विचारिणी समिति में दो प्रसंग आये जब कि ... देशी राज्यों की व्यक्तिगत टीका करनेवाले दो प्रस्ताव उपस्थित ... मैं यह नहीं कह सकता कि इन प्रस्तावों को लाने का कोई ... था । पर मैंने यह स्पष्ट देखा कि ऐसे प्रस्ताव लाना अथवा ... कुछ काम करना, परिषद का शक्ति के बाहर था । ये ... समिति ने निकाल डाले । किन्तु मैंने देखा कि ऐसे प्रस्ताव ... परिषद अपनी हस्ती अधिक दिनों तक नहीं निभा सकती है ... मैंने परिषद को सलाह दी कि उसे अपनी अशक्ति, अपनी ... जगजाहिर करनी चाहिए । मैंने यह सुझाया कि ऐसा ... परिषद अपनी अशक्ति शीघ्र दूर करेगी, और अपने को ब...

विषय-विचारिणी समिति के लिए यह घूँट बडी कडवी ... मुझे भी यह सलाह देनी रुचती नहीं थी । पर मैं अपना ... रूप से समझ सकता था । दुःखद सुखद जो कुछ सच्चा हो, ... ही चाहिए । सच्चा सुख क्या बहुत मर्त्तबे जहर जैसा नहीं ... कितनों को यह प्रस्ताव खलता था, मगर तौभी, और दूसरे ... उदारता और दीर्घ दृष्टि से काम ले कर मेरी सलाह स्वीकार क...

इससे मेरा उत्तरदायित्व बढा । मैं जानता हूँ कि इस प्र... अगर कोई अनिष्ट परिणाम आवे तो उसमें मेरा दोष पढे... जानेवाला है । मुझे तो अनिष्ट परिणाम का कोई भय ... इतना ही नहीं बल्कि मैं तो मानता हूँ कि अगर परिषद ... प्रस्ताव का सदुपयोग करेगी, उसके पीछे जो काम करने ... उन्हें करेगी तो परिणाम भला आना ही चाहिए । स्वे... डाला हुआ अंकुश, स्वेच्छा से पाला हुआ संयम, संयमी को ... लाभदायी होते हैं । स्वेच्छा से डाले हुए इस अंकुश पर दूसरा ... लागू नहीं पडता है ।

परिषद अगर मन, कर्म और वचन से इस प्रस्ताव का ... करेगी, तो मर्यादा के भीतर रहे हुए कार्य करने की उसकी ... बढेगी । मर्यादा के पहले राजा लोग व्यक्तिगत टीका अथवा ... के भय से परिषद् की बैठक करने देने में संकोच करते थे । म...

क तौर पर नहीं जानने से, राज्यों के व्यक्तिगत दोष दूर करने के क किंतु व्यर्थ प्रयत्न में परिषद के सभ्य लगते थे और उनसे जो हो के, ऐसे मोहकता-रहित कामों की ओर वे दुर्लक्ष करते थे। अब या तो नीरस होने पर भी सरस काम करेंगे अथवा अपना दरवाजा बंद कर गे। किसीको दिवाला निकालना नहीं रुचता है, इसलिए ऐसी हम आशा रखें कि इच्छा से अथवा अनिच्छा से भी करने लायक काम वे करेंगे ही। इस प्रस्ताव का ऐसा अर्थ तो कोई न करे कि इससे हम संसार के सामने कबूल करते हैं कि कोई राज्य टीका का पात्र नहीं है। निन्दा तो किसी की न करें। टीका के पात्र होने पर भी, हम कबूल करते हैं कि काठियावाड के किसी राज्य की सरहद में रहकर सकी या किसी दूसरे राज्य की टीका करने की शक्ति अभी हममें नहीं है। इसी लिए, और टीका करने की ऐसी शक्ति पैदा करने के लिए ही हमने यह मर्यादा रक्खी है। परिषद में प्रस्ताव लाने के सिवाय, और परिषद में सीधी या टेढी रीति से किसी राज्य की व्यक्तिगत टीका करने के अलावा, उन राज्यों के प्रकट दोष दूर करने के जो उपाय परिषद की समिति के पास हों, उन्हें करने का उसे अधिकार है, उसका धर्म है। जैसे कि परिषद की बैठक के प्रसंग विषय-विचारिणी समिति के सामने चाहे जो सदस्य काठियावाडी राज्य के दोषों का दर्शन सभ्यों को करावे और उनके बारे में समिति की सलाह मांगे। अंकुश इतना ही भर है कि उनके बारे में परिषद के सामने वह प्रस्ताव नहीं ला सकेगा। कार्यवाहक समिति उन राज्यों से पत्रव्यवहार चला सकती है, राजाओं और उनके अमलदारों से मिल सकती है और उन दोषों को दूर करने की प्रार्थना कर सकती है, अथवा फरयाद झूठी ठहरे तो यह बात जाहिर कर सकती है। यानी मित्र के तौर पर समिति प्रत्येक राजा के पास उचित रास्ते से जा सकेगी। यह भी संभव है कि मर्यादा का रहस्य समझने के बाद, वे राज्य अगर एकाएक स्वच्छन्द न हो गये हों, लोकमत की बिलकुल अवगणना न करते हों तो समिति के ऐसे प्रयत्न का स्वागत ही करें और उसे अपनी ढाल बना लेवें। यहां यह याद रखना चाहिए कि ऐसी खोज और जांच की समिति अनुचित लाभ न उठावे। जो बातें वह जाने, उनकी सार्वजनिक या चर्चा न करे, और अगर उन उन राज्यों के पास पहुँच न सके अथवा पहुँचने पर भी संतोष न मिले तौभी जीभ पर ताला लगाकर सब सह लेवे और समझे कि रोग का निवारण समिति की शक्ति के बाहर है।

इस तरह मर्यादा के भीतर दखल कहो या जाँच कहो, उसका परिणाम समिति की बाहोशी या सावधानी, उद्यम और विनय पर निर्भर है। अगर वह पहले से ही उन उन राज्यों के बारे में बुरी राय बना बैठे, भरमा जाय तो कुछ नहीं कर सकेगी। राजाओं के हृदयों को पिघलाने का आत्म विश्वास उसमें होना चाहिए। यह आत्मविश्वास केवल राजा प्रजा दोनों की अनन्य सेवा से ही आता है। दोनों की ही सेवा, उन्हें खुश करने के लिए नहीं उनके भले के लिए तटस्थ भाव से करनी होती है। ऐसी सेवा में स्वप्न में भी समिति के सभ्यों का व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होना चाहिए। देशी राज्यों की हस्ती पर हम हाथ डालना नहीं चाहते हैं केवल उनका सुधार करना। यह मान्यता इस वस्तु में समायी हुई है। यदि परिषद राज्यतंत्र का ही नाश करना चाहे तो उसकी बैठक के लिए राज्यों में स्थान ही नहीं है। अहिंसा से परिवर्तन साध्य है, नाश नहीं, प्रजावाद को राज्यों में दाखिल किया जा सकता है, राजाओं का या राज्यों का नाश नहीं; राजा प्रजा दोनों में जितना कुछ अच्छा होवे, उनका मेल कराया जा सकता है। थोडे में कहिए तो दोनों के बीच संबन्ध धर्म का रहे, पशुबल का नहीं। आधुनिक वायु नाशक है, प्राचीन सभ्यता पोषक है। अहिंसा से सबका शुभ सधता है, हिंसा एक के नाश पर दूसरे की वृद्धि का पाया रचती है। प्रजासत्ता सर्वथा लाभ-कारक नहीं है, राजसत्ता सर्वथा हानिकारक भी नहीं है। दोनों का उपयोग है। वह उपयोग कहां है? इसकी खोज करना राजकीय परिषद का काम है क्योंकि परिषद सत्य और अहिंसा के रास्ते अपने ध्येय पर पहुँचना चाहती है।

यह विचार करें कि परिषद क्या कर सकती है। खादी, अंत्यजसेवा, सामाजिक सुधार वगैरह काम तो हैं ही। इन कार्यों को कर के परिषद् प्रजातत्व का पोषण करे। राज्यप्रकरण अथवा राज-नीति संबन्धी काम भी कम नहीं हैं। मद्यपान-निषेध, शिक्षा, रेलवेविभाग, बरसात के पानी का समस्त काठियावाड के लिए संग्रह, समस्त काठियावाड के लिए वृक्षों का संग्रह और उनकी वृद्धि, समस्त काठियावाड के लिए एक प्रकार की जकात और उसका एक प्रकार का संचालन। इत्यादि, इस प्रकार की राजा प्रजा दोनों का कल्याण करनेवाली दूसरी बातें भी कही जा सकती हैं। इनका महत्व बहुत बडा है। काठियावाड उन्हीं पर निभ सकता है। उनके बिना काठियावाड उन्हींके कारण नाश पावेगा।

ये कार्य साधने के लिए जितनी मदद राजाओं की चाहिए, उससे कहीं अधिक उनके अमलदारों की। अमलदार वर्ग अगर स्वार्थी या लघुदृष्टि हांगे तो वे सुधार भी नहीं हो सकेंगे जो राजा खुद चाहेंगे। राजा के हाथ पांव उनके अमलदार हैं। और अमलदार वर्ग क्या हैं मानो प्रजा। प्रजा सुधरे तो राजा जरूर ही सुधरेंगे। पर बोलने चालनेवाली प्रजा का बडा भाग तो अमलदारों का है। इस से जहां तक वे स्वार्थ को न भूलें, नीति का पंथ ग्रहण न करें, अपनी जीविका के लिए निर्भय न बनें, निर्भय बन कर किये जानेवाले सार्वजनिक कामों को समझ कर उनमें दिलचस्पी न लेवें, वहां तक राज्यों में सच्चा सुधार होने की आशा थोडी ही है। इस लिए राजकीय परिषद का महान् प्रयास तो प्रजा में ही होना और रहना चाहिए। प्रजा मूल है, राजा फल है। मूल मीठा होगा तो फल मीठा पकना ही है।

और काठियावाड राजकीय परिषद के नसीब में अगर शोभा पाना होगा तो मुख्य राज्यों में उनकी उनकी प्रजा की अलग अलग परिषदें होनी चाहिए और वे परिषदें अवश्य अपने राज्य की सभी टीका विनय-पूर्वक कर सकती हैं। इन परिषदों को अपनी शक्ति बढानी चाहिए। उस शक्ति को पैदा करने के लिए भी रचनात्मक काम करना चाहिए। इसके ऊपर उनकी शक्ति का खिलना निर्भर है।

इन कार्यों के लिए निःस्वार्थ, निडर सेवक चाहिए। वे कहां होंगे? जो होवें, जितने होवें, वे शांति से अपना काम करते जायँ तो उसमें वृद्धि होगी। कोई ऐसा नामर्द विचार न करे कि, "मैं क्या कर सकूंगा?"

राजाओं के प्रति

इतना तो मैंने प्रजाजन के प्रति कहा है। राजा अगर समझें तो राजकीय परिषद के इस प्रस्ताव से उनकी जिम्मेवारी बहुत बढ गयी है। आजतक वे टीका या निन्दा के डर से अथवा उसके बहाने परिषद की उपेक्षा करते थे, कोई अवगणना भी करते थे। पर अब मेरी नम्र मति में तो उन्हें परिषद की सभ्यता की कद्र कर उसका स्वागत करना चाहिए, उसे संतुष्ट करना चाहिए, अपने और अपनी प्रजा के बीच उसका उपयोग पुल के रूप में करना चाहिए। मेरे पास जो सुबूत हैं, उनसे मैं मानता हूँ कि बात ऐसी तो है ही नहीं कि काठियावाड का कोई राज्य टीका के योग्य नहीं है। सुनने में आया है कि कितनों में बहुत बडे बडे दोष हैं। वे इस युग को पहिचानें। यह एक महान् निशानी है कि सारे जगत् में जो

अँधाधुंधी चल रही है, उसकी गंध भारतवर्ष में भी फैल रही है। अँधाधुंधी रूप में तो अवश्य ही जहरीली है, मगर उसके तल में हेतु निर्मल है। जाने या अजाने, लोग खुद नीति के रास्ते नहीं चलते हैं, मगर तौभी वे नीति के उपासक हैं। सत्ता के अंधे बल से वे थके हैं, अधीर बने हैं। यह बात वे अधैर्य में भले ही भूल जाते होंवें कि उनका उपाय रोग से भी अधिक भयानक है। पर वे चाहते हैं सुधार, उन्हें नीति की सत्ता चाहिए। मेरे जैसे सत्य और अहिंसा के उपासक देख सकते हैं कि उनके रास्ते से नीति नहीं ही मिलेगी पर वे यह भी देख सकते हैं कि यदि सत्ताधिकारी चेते नहीं तो उनका नाश आ चुका है। राजाओं के चेत जाने की आवश्यकता है। विनाशकाल की सूचक विपरीत बुद्धि उन्हें कभी न होवे। मुझे यही अविचलित श्रद्धा जीने देती है कि हिन्दुस्तान नीति-नाश के रास्ते नहीं जायगा। इस श्रद्धा को राजा लोग सच्ची साबित करें।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

एक आदर्श विवाह

अमूमन तौर पर आश्रम की घरेलू बातें अखबारों में नहीं दी जाती हैं, मगर गत २७ जनवरी को गांधी जी के तीसरे चिरंजीवि पुत्र भाई रामदास के विवाह में कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं, जो 'हिं. नवजीवन' के पाठकों को सुनायी जा सकती हैं।

सगाई हुए दो साल हो चुके हैं मगर जब तक कन्या १७ साल की न हो लेवे तब तक गांधी जी विवाह करने को राजी ही नहीं थे। इसलिए कन्या पक्ष को बरबस रुकना पडा था। वर की उम्र विवाह के समय ३० वर्ष की थी। जिसमें पूरी सादगी और गंभीरता रहे इस लिए कन्या पक्षवालों ने लडकी को विवाह के लिए आश्रम में लाना स्वीकार किया था। वे कुल ५ या ६ आदमी आये थे। आश्रम में कुछ घन्टे रह कर, वे उसी दिन लौट भी गये। विवाह संस्कार आठ बजे सवेरे शुरु हुआ था और साडे ९ बजे तक समाप्त हो गया, मगर विवाह के पहले वर कन्या को कहा गया था कि इस पवित्र अवसर के उपलक्ष्य में आप लोग पहले इतने काम कर लीजिए — (१) उपवास (२) सूत कातने और कुएँ की जगह और उसके आसपास की सफाई के रूप में कुछ शारीरिक काम, (३) गोशाला की सफाई का काम, (४) पेड पौधों को पानी सींचना यानी सारी सृष्टि से एकता का भाव प्रदर्शित करना और (५) गीता का एक अध्याय पढ लेना। विवाह संस्कार में मुख्य बात थी यज्ञाग्नि और गुरुजनों के सामने वर कन्या का सेवाव्रत लेने की प्रतिज्ञा करनी। नाच बाजा तो कुछ था ही नहीं और बरात के ज्योनार वगैरह जैसी भी कोई बात नहीं थी। शहर में से कुछ मित्र, उन्हें विवाह की खबर मिल गयी थी, आशीर्वाद देने आ गये थे। गांधी जी ने वर कन्या दोनों को अपने हाथ के कते सूत की एक एक मंगल माला, भगवद्गीता और आश्रम भजनावलि की एक एक प्रति और एक एक तकली उपहार में दी थी। कन्या की माता ने एक चर्खा दिया था। इसके सिवा वर या कन्या किसी को और उपहार नहीं दिये गये थे। दोनों ही दूध के समान उजली खादी पहने हुए थे। उनमें से किसी के बदन पर सोने चाँदी के गहनों का नाम भी नहीं था।

ठीक ठीक साडे नौ बजे प्रार्थना-स्थल में सभी कोई आ जुटे और गांधीजी ने छोटे से संक्षिप्त भाषण में वर वधू को आशीर्वाद दिया। अवसर के अनुकूल ही वह भाषण भी गंभीर था। गांधीजी के जीवन के सबसे अधिक हृदय हिलानेवाले दृश्यों में से यह एक था। वहां उपस्थित लोग देख सकते थे कि ऐसे प्रसंगों पर गांधीजी किसी दूसरे आदमी के समान विह्वल मनुष्य बन जाते हैं। यह कहते समय कि "मेरे लडकों में रामदास और देवदास खा[स] मेरे नीचे, मेरे द्वारा पले हैं।" उनकी आंखों में आंसू भर [आये] इस ज्ञान से कि उनके इस लडके ने उन्हें कभी नहीं ठ[गा] अपनी भूलें, अपनी त्रुटियां कभी नहीं छिपायी हैं, गर्व से [उनकी] छाती फूल उठी, कंठ गद्गद् हो आया। उन्होंने कहा, "तुमने [अपने] दोष मेरे सामने किये कबूल किये हैं, मगर मैं उनसे कभी [दुःखि]त हुआ हूँ क्योंकि तुम्हारी स्पष्ट कबूलियत ने मेरी आंखों में [के] दोष धो दिये हैं। मुझे इसका हर्ष है कि तुम्हें चाहे सारी [दुनिया] भले ही ठगे, पर तुम किसीको ठगनेवाले नहीं हो। मैं [चाहता] हूँ कि तुम ऐसे ही भोले बने रहो, ऐसे ही सच्चे बने रहो।

"तुम अपनी पत्नी की आबरू की रक्षा करना और [उसके] मालिक मत बन बैठना, उसके सच्चे मित्र बनना। तुम [उसका] शरीर और आत्मा वैसे ही पवित्र मानना, जैसे कि वह [तुम्हारा] मानेगी। इसके लिए तुम्हें परिश्रमशील, सादा और संयत [जीवन] बिताना पडेगा। तुम लोग परस्पर एक दूसरे को विषय-वा[सना की] पूर्ति के साधन मत मान लेना।

"तुम दोनों को ही यहां शिक्षा मिली हुई है। तुम [अपना] जीवन मातृभूमि की सेवा में लगा देना, मातृभूमि की [सेवा में] अपने शरीर गला देना। हमने गरीबी का व्रत लिया है। तुम दोनों ही गरीबों के समान पसीने की ही रोटी खाना। दोनों परस्पर एक दूसरे को दैनिक काम में सहायता देना, आनन्द मानना।

"मैंने तुम्हें कुछ उपहार नहीं दिया है। तकली [और मेरे] प्रिय ग्रन्थ गीता और आश्रमभजनावलि की प्रतियों के [सिवा मैं] तुम्हें और कुछ दे भी नहीं सकता हूँ। सूत की ये मालाएँ [तुम्हारे] लिए रक्षा कवच बनें। मैं चाहता तो मित्रों से भीख [मांग कर] तुम्हें कीमती चीजें भी भेट कर सकता था, मगर उसमें [तो] मेरा हलकापन भाँप लेता, मगर मैंने जो चीजें तुम्हें दी हैं जिन्हें ही मैं अपना सर्वस्व मानता हूँ, वे इस बात की सा[क्षी हैं] को मैंने तुम्हें वही वस्तुएँ दी हैं, जो देना मेरे लिए उचित [था।]

"गीता रत्नों की खान है। तुम्हारे लिए भी वह रत्नों [की खान] बन जाय, जीवन-पथ में गीता तुम्हारी सतत संगिनी रहे [और] प्रदर्शिका रहे। इससे तुम अपना रास्ता देख सको, प्रकाश प[ा सको।]

"भगवान् तुम्हें सेवा करने के लिए चिरंजीवी बनावें।"

संध्या को उन्होंने विवाह के प्रश्न के सा[र्व]जनिक [पहलू का] उल्लेख किया। उन्होंने चार मूल वर्णों के विभाग कर [के] जातियाँ और उपजातियाँ बनाने की चाल पर बातें कीं [और कहा] की कि आश्रम में एक ही जाति के वर कन्या का यह विवाह होगा। आश्रम के लोगों को इस मामले में आ[गे रहना] चाहिए क्योंकि औरों को कितनी कठिनाइयाँ हैं जो आश्रम[वालों को] नहीं हैं। आश्रम में यह नियम होना चाहिए कि भिन्न [जा]तियों में विवाह को उत्तेजन दिया जाय और एक ही [जाति के] विवाह की उपेक्षा की जाय। लडकियाँ अगर २० या [...] तक कुँवारी रक्खी जा सकें तो अच्छा होगा। अन्त में [वे] इस विषय की गंभीरता पर आ गये और उन्होंने कहा,

"यह मत मानो कि आश्रम का ध्येय विवाह को [...] बनाना है। इसका उद्देश्य तो आजीवन ब्रह्मचर्य है और आश्रम विवाह का वहीं तक आदर करता है जहां तक [वह संयम] का अस्त्र बने, न कि भोग विलास का। और संयमी [का जीवन] भोगी के जीवन से अलग होगा। याद रखिए कि भोग-वि[लास की] कोई मर्यादा है, हद है, मगर संयम की कोई हद नहीं है।"

(यं० इं०) **महादेव [देसाई]**

हडताल के बाद

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक २५

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, फाल्गुन बदी ४ संवत् १९८४ गुरुवार, ९ फरवरी १९२८ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

आदर्शों का विकास

[काका कालेलकर के गुजरात विद्यापीठ की व्याख्यानमाला में दिये हुए एक भाषण के महत्वपूर्ण अंश राष्ट्रीय शिक्षा के सभी प्रेमियों के लिए लाभकर समझ कर नीचे दिये जा रहे हैं। स० 'हिं० न०']

१

सामान्य जनसमाज आज राष्ट्रीय शिक्षा को लगभग भूल ही सा गया है। राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाएँ चलती हैं, उन्हें उनके निराश संचालक चलाते हैं, टेकवाले विद्यार्थी उनमें पढते हैं और कितने एक तटस्थ आलोचक भली बुरी आलोचना कर के राष्ट्रीय शिक्षा की ओर लोगों का ध्यान खींचने का व्यर्थ प्रयास करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षण के बारे में इससे अधिक जागृति समाज में देखने में नहीं आती है। राष्ट्रीय शिक्षा के आधार स्तंभ बार बार कहते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षा पर हमारा विश्वास पहले ही जैसा है, बल्कि अधिक जीवित और प्रज्वलित है। व्यवहारग्रस्त लोग सहज ही आंखें उठा कर इन पर एक नजर डाल लेते हैं और फिर अपने धन्धे में डूब जाते हैं। लडकों की संख्या की वृद्धि में राष्ट्रीय शिक्षा का विकास देखनेवाले लोग संख्या घटने पर कहने लगे, 'ठीक है, भार हलका होता है। जो सचे तत्वनिष्ठ होंगे, जिन्हें सच्ची भूख होगी, केवल वे ही टिकेंगे। हम तो एक विद्यार्थी के भी रहने तक संस्था को चलावेंगे।' ऐसी श्रद्धा को कौन धन्य नहीं कहेगा? पर अगर यही बात हमेशे सच्ची होती कि जो आखिर तक टिके वही उत्तमोत्तम है तो हमारा काम बहुत ही सहज हो जाता। पर संयोग ऐसी विचित्र चलनी है कि इससे किसी बात की कोई परीक्षा नहीं होती, कुछ भी पता नहीं चलता। तौभी इतना तो सच ही है कि जो अब तक टिके हुए हैं, आगे भी टिके रहना चाहते हैं, उन्हींमें भूतकाल का वारसा या उत्तराधिकार, वर्त्तमानकाल का पुरुषार्थ और निकटवर्त्ती भविष्य की आशा समायी हुई ह।

ऐसे लोगों के समक्ष मैं थोडे विचार यहां रखना चाहता हूँ। हमें यह देखना है कि शिक्षा के संबंध में हमारे राष्ट्रीय आदर्श किस भांति प्रकट होते गये, विकसते गये और रूपान्तर पाते गये। पुराने अनुभवों की यही कीमत है कि वे भविष्य के लिए दिशा-दर्शक होते हैं। जैसे कि आचार्य कृपलाणी कहते हैं, आज राष्ट्रीय शिक्षा राष्ट्र-मान्य नहीं रही। वह तो थोडे से सैनिकों, थोडे नवयुवकों की ही श्रद्धा पर टिकी हुई है। इसे सिर्फ इसी दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा कह सकते हैं कि इसमें राष्ट्र की जरूरतों पर विचार किया जाता है। जिन लोगों के हाथों आज राष्ट्रीय शिक्षा का काम है, उन्हें आगे पैर बढाने के पहले इसका सिंहावलोकन कर लेना चाहिए कि वे आप कितने आगे बढ आये हैं।

राष्ट्रीय महासभा ने अपना आदर्श चालीस वर्ष की मिहनत के बाद धीरे धीरे निश्चित किया है। राजनीतिक आन्दोलन के सख्त या बहुत कठिन होने से उसे ऐसा करना ही पडा है। सामाजिक क्षेत्र में हम अभी अपना आदर्श सर्वमान्य या बहुमान्य नहीं बना सके हैं। धार्मिक विषय में अनेक विचार, रिवाज और सिद्धान्त प्रयोग की कडाही में अभी पक रहे हैं। यह तो कोई रसेश्वर ही जाने कि इनके सम्मेलन से कौन सा रस तैयार होगा। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय शिक्षा का ध्येय भला एका एक कैसे निश्चित हो जाय? शिक्षा का क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितना समग्र जीवन का। प्रजा का जीवन-सिद्धान्त ही राष्ट्रीय शिक्षा का ध्येय है। इस जीवन का ज्यों ज्यों विकास होता गया है, त्यों त्यों राष्ट्रीय शिक्षा का ध्येय भी पक्का होता गया है। इस विकास के क्रम की जाँच हम सहज ही करें।

इस शोध में हम न पडें कि प्राचिन काल में हमारे यहां शिक्षा का आदर्श कैसा था, क्योंकि इसके लिए हमारे पास समय नहीं है। हम इतना ही जानें कि शिक्षा का काम धर्म के हाथों में था। धर्म और शिक्षा के बीच कोई अन्तर था ही नहीं। आज भी नहीं होना चाहिए। 'धर्म' शब्द का उच्चारण करते समय अंतर में जो वस्तु खडी हो जानी चाहिए, वह आज नहीं होती। कोई दूसरी ही और विकृत वस्तु धर्म के संबोधन का जवाब देती है। इस लिए हम ऊपर के सिद्धान्त को छोड न देवें। धर्म और शिक्षा ये दो वस्तुएँ एक ही हैं। प्राचीन काल में चारित्र की शिक्षा, सामाजिक सद्गुणों का अभ्यास और संस्कार, और जीवनकला का सामान्य शिक्षण धर्म की मार्फत मिलता था। इसके उपरान्त रहती है फक्त धन्धे की शिक्षा, आजीविका का साधन हस्तगत करने का इल्म। वह तो कुलधर्म के नाम से पुकारा जाता था और वारसे या उत्तराधिकार में मिलता था। शिक्षा के इन दो मुख्य विभागों को देख लेने के बाद और कुछ विशेष रहता ही नहीं है। जो कुछ रहता है वह या तो निरी नरी पंडिताई अथवा शास्त्रों का गहरा अध्ययन हो, या संस्कारी बहुश्रुतता हो। इन दोनों के पीछे हमारे पूर्वज जीवन का कीमती समय उत्साहपूर्वक बिताते थे। यात्रा द्वारा उदात्त स्थलों अथवा उदात्त पवित्रचरित पुरुषों का परिचय प्राप्त करते थे।

देश देशान्तर की समाज स्थिति की तुलना करते थे। इस प्रकार हमारे पूर्वजों को जगत की संस्कृति का अभ्यास होता था। समाज के अंग प्रत्यंग का परस्पर संबंध सुस्थित रहे, परस्पर पोषक बने, इस लिए ब्राह्मण पुराणकारों की प्रचण्ड सेना जहां तहां लोकशिक्षण का कार्य करती थी। और इस भांति जनता का जीवन संपन्न, प्रसन्न और वेगवान् होकर बहता था। शिक्षाशास्त्र की चाहे जिस कसौटी पर कसें, ऊपर वर्णित व्यवस्था त्रुटिवाली या अधूरी नहीं गिनी जा सकती।

जन समूह के जीवन का प्राण—अंदर का उत्साह—क्षीण होने बाद चाहे जैसी सुन्दर व्यवस्था क्यों न होवे, वह सडनेवाली है ही। वही बात अपने यहां हुई थी। सत्य की खोज शिथिल हुई। रूढि के बंधन अधिक प्रिय हो पडे। समाज के अवयव ढीले होने लगे, बिखरने लगे। बडा मन संकीर्ण होने लगा छोटे छोटे बाडे बनने लगे। और जहां तहां सभी कोई अपने भागने का रास्ता ढूँढने लगे।

असाधारण प्रगति के साथ असाधारण अधोगति का अनुभव रखनेवाले हम लोगों को इतना तो जानना चाहिए कि योजना, व्यवस्था, विधान और साधन सामग्री — सभी कुछ गौण हैं; मुख्य बात अंदर की प्रेरणा, दिव्यदृष्टि, असाधारण उद्योग अखण्ड जागरूकता, और मन की उदारता ही है।

हमारे यहां जैसे जैसे धर्मक्रांति होती गयी वैसे वैसे समाजिक आदर्श और शिक्षा की पद्धति भी बदलती गयी। पर इसके इतिहास को विचारने का समय यह नहीं है। आज हमें यह देखना है कि राष्ट्रीयता की वर्तमान विशिष्ट कल्पना के हमारे यहां दाखिल होने के बाद से शिक्षा का आदर्श कैसे कैसे बनता और बदलता आया है। राष्ट्रीयता आज का युग-धर्म होने से, उसमें पडे बिना हमारा छुटकारा नहीं है। पर इसमें पडते हुए भी यह तो जरूर याद रक्खें कि यह मानने का कोई कारण नहीं है कि हमारे यहां जब राष्ट्रीयता का ख्याल नहीं था, तब की सामाजिक स्थिति या सामाजिक आदर्श उतरते हुए थे। उस समय का समाज-जीवन आज की बनिस्बत ज्यादे कृतार्थ था।

अँगरेजी शिक्षा का सबसे बडा दुर्दैव यह है कि वह हमेशे संस्कृति, सुधार, सभ्यता, ज्ञान का विस्तार इत्यादि उच्च आदर्शों के नाम से हमारे सामने आती है किन्तु हमेशे आजीविका का साधन, रुपये कमाने की तरकीब, और राजमान्यता के दरवाजे के ही रूप में इसका स्वीकार होता आया है। इसके ऐतिहासिक कारण हैं। अंगरेजी शिक्षा की शुरुआत हमारे यहां मिशनरी लोगों ने की थी। उन्हें यहां की 'वहमी' संस्कृति को तोड कर खीस्तानी संस्कृति दाखिल करनी थी। स्वधर्म का उच्छेद करनेवाली ऐसी शिक्षा भारतवर्ष की सभ्य जनता यों ही स्वीकार करने वाली तो थी नहीं पर उस समय की व्यापारी सरकार को अँगरेजी जाननेवाले 'क्लर्कों', दफ्तर के 'बाबुओं' की जरूरत थी और इसलिए उसने अँगरेजी पढे लिखे लोगों को मुँहमांगे से भी अधिक तनख्वाह देकर नौकर रखना शुरु किया। इससे लालची लोग इसमें फँसे और अरुचिकर शिक्षा को उन्होंने रुचिकर बनाया। मिश्नरी लोग अगर अकेला ख्रिस्ती पुराण लेकर आये होते तो कुछ नहीं बिगडा था, मगर उन्हें तो यहां के समाजधर्म के विरुद्ध पाश्चात्य संस्कृति दाखिल करनी थी। अकेले ईसू ही आते तो हम उन्हें कबीर अथवा नानक जैसे संत कह कर स्वीकार कर लेते मगर हमारे सामने तो ईसामसीह के नाम पर आहार-विहार की शिथिलता दिखलानेवाली, मद्य-मांस को प्रतिष्ठा देनेवाली संस्कृति आ खडी हुई। मोगल जुल्म के सामने जो प्रजा टिक सकी थी वह ब्रिटिश लालच के आगे नहीं ठहर सकी और प्रजा ने हृदय में द्वेष रख कर, मग्ज में अँगरेजी शिक्षा स्वीकार की। उस दिन से जनता को जान पडने लगा मानों हम पर कोई राष्ट्रीय आपत्ति आ पडी है। तौभी जनता ने ही यह आपत्ति स्वीकार की और इसी शिक्षा में से उद्धार का रास्ता ढूँढा। इस वृत्ति में तर्क दोष भले ही हो, किन्तु इस में ऐतिहासिक सत्य है।

अंगरेजी शिक्षा को मिश्नरियों के हाथ में से निकालना राष्ट्रीय शिक्षा का पहला पग गिना जायगा। राज्यकर्त्ताओं की धर्म के प्रति उदासीनता हमें उदारता के समान लगी और मिश्नरी शिक्षा के बदले सरकारी शिक्षा आत्मीय लगी। पैसे की लालच में नहीं फँसा हुआ जनसमाज स्वाभाविक लापर्वाई से मिश्नरी और सरकारी दोनों शिक्षाओं का विरोध करता रहा। परन्तु जिस जडता के कारण इस समाज हारा, वही जडता यह जानने में भी असमर्थ रही कि किसमें राष्ट्रीय शक्ति है और किसमें जहरीले दांत हैं। उसने माना कि रूढि का पुराना मुर्दा सँभाले रखने से ही धर्म के प्राण टिकेंगे और नयी आयी हुई आपत्तिरूप संस्कृति पर निन्दा और बहिष्कार के शस्त्र फेंके। पर ये अस्त्र दुर्बल हाथों से चलाये जाने के कारण बेकार निकले। आज बिरादरी में जिस भांति बडे बूढे बिरादरी को सँभाल नहीं पाते हैं उसी भांति उस समय पुराणमतवादी आनेवाले चढाई को रोकने में असफल रहे।

पुराण मतवादी रूढि उपासक लोगों में समय का ज्ञान तो था ही नहीं किन्तु इससे भी अधिक त्यागवृत्ति, सेवाभाव और तत्त्वनिष्ठा भी नहीं थी। भोजन के समय केवल रेशमी या ऊनी वस्त्र न पहननेवाले लडके को घर से निकाल बाहर करनेवाला पिता, उसी लडके को आगे आई सी. एस. के लिए जाने का अवसर मिले तो सारा विरोध, सारी धर्महानि भूल कर के, गहने बेंच कर भी लडके को विलायत भेजने को तैयार होता था और लालची समाज यह कहते हुए भी डरता था कि इसमें धर्म-हानि है। सुधारक उद्धारक का भेद निर्जीव सामाजिक विवेक के पालन या खंडन में ही रहा। धर्म के मर्म पर प्रहार करने में दो में से एक पक्ष भी कुछ उठा रखता हुआ नहीं कहा जा सकता।

उद्धारक और सुधारक अथवा संस्कृत और अँगरेजी दोनों पक्ष में से कई सच्चे लोगों ने चारित्र्यशुद्धि पर जोर दे कर समाज में कुछ जागृति पैदा की किन्तु इन दोनों में मेल क्यों कर होवे? वे चारित्र्य-परायण लोग, अपने अपने पक्ष से जुदा हो नहीं सकते थे। इसलिए उनकी शक्ति नाहक के पारस्परिक विरोध में ही क्षीण हुई। आज जिस भांति भले हिन्दू और भले मुसलमान अपने अपने समाज से अलग निकल कर अभी एक नहीं हो सकते, उसी तरह उस समय चारित्र्य को प्रधानपद देनेवाले सुधारक और चारित्र्य पर जोर देनेवाले उद्धारक अपना अपना टोला छोड कर परस्पर सहकार से एक दूसरे का बल एकत्रित करने का प्रयत्न नहीं कर सकते थे। इस बीच शिक्षा का काम आगे बढता ही गया और शिक्षित लोग देखते ही देखते धनवान बनने लगे। रुपये के इस प्रभाव से शिक्षा की प्रतिष्ठा बढी और समाज हितैषी लोगों ने इस शिक्षा के विद्यालय आम लोगों के लिए खोलने का बीडा उठाया। राष्ट्रीयता का यह दूसरा पग गिनना चाहिए।

शिक्षा सरकारी अफसरों के हाथ में से ले कर अपने हाथ में रखनी और घर घर पहुँचानी — इस जमाने की राष्ट्रीयता का उद्देश्य था। लोकमान्य तिलक और महामना गोखले, दोनों ही इस युग के आचार्यों में गिने जायँगे। उन्हें यह विश्वास होता था कि अँगरेजी शिक्षा तो बाघिन का दूध है। अगर हम जनता को वह भर गले तक पिलावें तो इससे उसका बल बढेगा। इस बीच संस्कृत शिक्षा कुछ राज्याश्रय और कुछ धर्माश्रय से किसी तरह जीती थी। उसे तो राष्ट्रीय शिक्षा कोई मानता ही नहीं था। वह थी 'दीहाती'। पुरोहित, पुजारी और कोरे शास्त्रार्थ करनेवाले पंडितों के ही गले की माला वह रह गयी थी।

राष्ट्रीय शिक्षा का तीसरा पग स्वमान का भान होने से लिया गया। स्वदेशी बहिष्कार में से राष्ट्रीय शिक्षा का जन्म हुआ। इस युग में पाश्चात्य संस्कृति का द्वेष, स्वदेशी आचार व्यवहार के

लिए अभिमान, सरकारी नौकरियों का त्याग, और साबुन, आलपीन काच के बरतन, और 'एक्सरसाइज बुकें' वगैरह विदेशी वस्तुओं के बदले स्वदेशी वस्तुएँ तैयार करने के कारखाने आये। सिगरेट की जगह बीडी पीनी भी स्वदेशी का ही अंग गिनी गयी। तौभी उस समय के देशाभिमान की प्रेरणा इँग्लैण्ड या नेदरलैण्ड के ही इतिहास में से मिलती थी और शिक्षा की सीमा लडकों को विदेश भेज कर हुनर उद्योग सिखा लाने में होती थी। जनता ने इस प्रयोग के पीछे कुछ कम बलिदान नहीं दिया था। परन्तु थोडे ही दिनों में अनुभव हुआ कि इँग्लैण्ड का इतिहास भारतीय जनता के लिए पूरा पूरा सीख लेना असम्भव है। इँग्लैण्ड के इतिहास से हमें बातें मालूम हो सकती हैं, किन्तु बल नहीं मिल सकता। परदेश के कारखानों से संजीविनी विद्या ला कर हमारे कच न तो आप ही सफलता पा सकते हैं और न दूसरों की ही मार्फत करा सकते हैं। हमारे विद्यार्थी विदेशों में से यंत्रों की रचना और रासायनिक नुस्खे ले तो आये किन्तु उन्हें यहां की परिस्थिति का भान ही नहीं मिलता था। छोटे पैमाने पर कारखानों से लाभ होता नहीं था और बडे पैमाने पर चलाने की पूँजी नहीं मिलती थी। हमने अपने विद्यार्थी परदेशों में वहां की यंत्र विद्या और रसायन विद्या लेने को भेजे थे, और ले आये वे वहां की समाज-विद्या और खर्चीला रहन सहन। यह हमारे समाज की सुस्थिति बतलाती है कि विलायत से स्त्रियां भी लानेवालों की संख्या कम थी।

नये युग में ध्येयवाद (आइडियलिज्म) जागृत हुआ। हर एक राष्ट्र की अपनी स्वतंत्र आत्मा होती है। उसके स्वतंत्र हृदय, और स्वतंत्र बुद्धि होती है। अपने उत्तराधिकार के पीछे चल कर ही प्रत्येक राष्ट्र अपना विकास कर सकता है। इस युग में ऐसे ऐसे सिद्धान्त प्रचलित होने लगे कि अपने आप को खोजना, पहचानना और विकसित करना ही शिक्षा के आदर्श हो सकते हैं। इसलिए इसी युग का नाम राष्ट्रीय युग उचित जान पडा। इटाली के उद्धारक मेजिनी इसी युग के आचार्य गिने जायँगे। सरकार ने शुरू से ही इस युग की शिक्षा-संस्थाओं का बहिष्कार किया था और उनके टूटते ही, उनके विद्यार्थियों को भली भांति सताया था। इस युग की राष्ट्रीयता कुछ कृत्रिम तो थी किन्तु उसके परिणाम में हमारी संस्कृति का अध्ययन हमारी अपनी ही आंखों से होना शुरू हुआ तथा स्वधर्माभिमान का पक्का पाया बना। पहले पहल हम अपनी संस्कृति की महत्ता बहुत कम जानते थे। इस लिए देशाभिमान तीव्र होने पर भी वह खोखला लगता था। संस्कृति का यथार्थ ख्याल आने के बाद इस वस्तु का दर्शन होने पर कि हम भी दुनिया की सभा में सम्मानपूर्वक बैठ सकते हैं और दुनिया को कुछ दे भी सकते हैं, आत्म-ग्लानि कम हुई और आत्म-विश्वास बढा। हमारा ध्यान इस बात पर गया कि संसार में केवल इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान, ये ही दो देश नहीं हैं, किन्तु दूसरे भी बहुत से देश हैं जो जगद्व्यापी सवालों को हल करने में लगे हुए हैं। मानव-संस्कृति के मूल तक पहुँचनेवाले अनेक विषयों के साथ परिचय होने पर यह देखने की ओर हमारा ध्यान गया कि हमारे यहां सामाजिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक सवालों को कैसे हल किया जाता था। इस शोध के अंत में यह आत्मविश्वास प्रकट हुआ कि हम अब भी दुनिया के सामने खडे रह सकते हैं और केवल हिन्दुस्तान का ही नहीं किन्तु दुनिया का भी दुःख दूर कर सकते हैं।

इस दर्शन के मुख्य आचार्य दो गिने जायेंगे; — गगनविहारी रवीन्द्र और शक्ति के उपासक गांधीजी। दोनों के आदर्श एक ही हो गये हैं, किन्तु उनके आग्रह जुदा जुदा हैं, साधना जुदी है। गांधीजी का मार्ग तपस्या का गिना जायगा। और इसीसे उन्होंने आत्मशुद्धि और उसके लिए असहयोग से शुरूआत की।

असहयोग आन्दोलन से हमारा वर्त्तमान युग शुरु होता है। असहयोग के जरिये हमने सरकार की और सरकारी शिक्षा की प्रतिष्ठा तोडी, देशसेवा का उत्साह बढाया, आत्मशक्ति का कुछ परिचय किया। पर हमारी राष्ट्रीय शिक्षा तो टैगोर पंथ पर ही चली। संस्कृत, पाली और मागधी यानी आर्यविद्या का अभ्यास, इस्लाम का अध्ययन, देशी साहित्य का सेवन, संगीत और चित्रकला, इतिहास और लोक साहित्य, लोक जीवन के साथ समभाव, इत्यादि अनेक वस्तुओं के द्वारा हम कवीन्द्र का ही कार्यक्रम अमल में लाते रहे। यहां की राष्ट्रीय शिक्षा के कर्णधार जाने या अनजाने कवीन्द्र के ही रास्ते चलते रहे और हमारे कुलपति धैर्य रख कर हमें समझाते रहे कि हमें क्या चाहिए। वे हमेशा कहते हैं कि जो चल रहा है, वह कुछ बुरा नहीं है, उपयोगी ही है किन्तु मैं उससे कुछ और अधिक का आग्रह रखता हूँ। पर उनका मार्ग तलवार की धार के समान सीधा होने के कारण इनकी बात समझनी हमारे अनुकूल नहीं थी। इस गंभीर सूत्र का, 'सा विद्या या विमुक्तये,' दूसरा चाहे जो अर्थ होता होवे, किन्तु यह अर्थ तो निकलना ही चाहिए कि राष्ट्रीय शिक्षा वही है जो हमारे आज के स्वराज्य आन्दोलन की सीधी रीति से पोषक होवे। हमने यह आदर्श रक्खा था कि जितने विद्यार्थी सरकारी संस्थाएँ छोडें, सबके लिए शिक्षा का प्रबंध किया जाय। हम स्वराज्यप्रेमी, स्वराज्याभिमानी, नागरिक पैदा करना चाहते थे। गांधी जी कहते थे कि सभी कोई सरकारी शिक्षा छोडें और फिर हर एक आदमी तटस्थ स्वराज्य-प्रेमी या स्वराज्य-हितैषी न रह कर स्वराज्य-सैनिक बने। कवीन्द्र की देश-सेवा की कद्र गांधी जी खूब करते हैं। उनके भावनात्मक विचार-वैभव पर वे आशिक हैं और इससे हमारे यहां कवीन्द्र के रास्ते जितना काम हुआ है, वह उन्हें इष्ट ही लगा है, मगर इतने से ही उनकी भूख मिटी नहीं है।

कितने रोगों में रोगी अखीर तक यह नहीं समझ सकता कि उसकी स्थिति कितनी गंभीर है। हमारे राष्ट्र की भी कुछ ऐसी ही बात जान पडती है। जलते हुए घर या डूबते हुए नाव की उपमा तो अतिशयोक्ति सी जान पडती है। क्योंकि जो लोग हमारी बातें सुनते हैं उन्हें देश की दुर्दशा कुछ चंडी जैसी प्रत्यक्ष नहीं हो जाती। बेचारे मूक लोग बिना समझे सहन करते हैं, बिना मौत ही मर जाते हैं और परदेशी व्यापारी और राज्यसंस्था अपना जाल अधिकाधिक फैला कर देश को जकडती जा रही है। हमें यह मानने की भूल नहीं करनी चाहिए कि फलां वस्तु हम नहीं देखते, इसलिए वह है ही नहीं।

आज का, तुरत का कार्यक्रम है राष्ट्रसेवकों की प्रचण्ड सेना तैयार कर के प्रजा में जीने की इच्छा और ताकत पैदा करना। जब तक अज्ञान, वहम, भूखमरी, कर्ज, अदूरदृष्टि और निराशा से जनता नहीं बचती है, तबतक स्वराज की लडाई में कमर कस कर वह आगे बढनेवाली नहीं है। इसी लिए गांधीजी शिक्षा में और राजनीति में, कला में और धर्म में एक चर्खे की ही बात लाते हैं। शिक्षक या शिक्षा के संचालक भले ही उकता उठे, राजनीतिक पुरुष भले ही रंज होवें, कलाकोविद भले ही घबरायँ, धर्माचार्य भले ही निर्वीर्य विरोध करें — गांधीजी की तो एक ही बात है — चर्खा चलाओ। जीवन के हर एक अंग प्रत्यंग में चर्खे को दाखिल करो। शिक्षा संस्था के संचालकों और गांधीजी में धैर्य की बाजी लगी है। पर काल और संयोग को कैसा धैर्य? ये तो अपने नये नये पहलू रखते ही जाते हैं और हमसे जबरन विचार कराते हैं। काल और संयोगों का यह आमंत्रण स्वीकार कर के हम हाल की परिस्थिति का एक बार विचार कर लेवें। [अपूर्ण]

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन वदी ४ संवत् १९८४

हडताल के बाद

'स्टैट्यूटरी कमीशन' के बहिष्कार के बारे में प्रायः कुछ भी लिखने से मैं अब तक बहुत सोच समझ कर और बहुत ही आत्म संयम से अपने को रोके हुए था। मैंने प्रयाग के पत्र 'लीडर' की इस विनती की उपयोगिता समझ ली कि मैं बहिष्कार आन्दोलन में हाथ न लगाऊं, विभिन्न दल वाले उसे आप ही सँभालें, मैं कोई प्रभाव न डालूं। मैंने देख लिया कि मेरे हाथ लगाने से आन्दोलन में जनता की मुख्यता और भी बढे बिना रह नहीं सकती और शायद आन्दोलन के उन्नायकों को इस से कठिनाई होती। मगर अब जब कि हडताल का भारी प्रदर्शन खत्म हो गया है, कुछ कहने की मैं छूट देखता हूँ। हडताल के प्रबंधकों को मैं उस दिन की महान् सफलता के लिए बधाई देता हूँ। उदार दल, नर्मदल, स्वतंत्रदल, और कोंग्रेसवालों को एक साथ कन्धे मिलाये देख कर मुझे अत्यंत हर्ष हुआ था। सरकारी कौलेज के विद्यार्थियों के राष्ट्रीय कार्य के लिए कौलेज से गैरहाजिर होने के उनके साहस की तारीफ किये बिना मैं नहीं रह सकता। सारे संसार में राष्ट्रीय आन्दोलनों को बनाने और सबल करने में विद्यार्थियों का जबर्दस्त हाथ देखा जाता है। अगर हिन्दुस्तान के विद्यार्थियों ने उससे कम किया तो यह अत्यन्त ही बुरा कहा जायगा।

मैं इस बात पर ध्यान खींचना चाहता हूँ कि अगर हडताल के बाद यथेष्ट और अनवरत काम होता न रहा तो इस हडताल की ही महान् सफलता हमारे विरुद्ध दलील बनायी जायगी। लॉर्ड सिंह की इस भविष्यद् वाणी को हमें झूठी साबित करना ही पडेगा कि यह हडताल तो क्षणिक जोश था। हम यह भी याद रक्खें कि हम कुछ भी करें, मगर कमीशन तो अपने रास्ते चला ही जायगा। जहां कहीं लोग इसे सचमुच में मान नहीं देंगे, वहां मान पैदा किया जायगा। क्या अछूतों के एक नाममात्र के मंडल ने कमिशन का स्वागत अपने उद्धारक कह कर नहीं किया था? मेरा दावा है कि अछूतों के इस प्रतिनिधि मंडल की बनिस्बत अछूतों को अधिक मैं जानता हूँ और उस दावे के साथ मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यह मंडल अछूतों का वैसा ही प्रतिनिधि है जैसा कि जापानियों का कोई दल होता।

इस लिए हमें अगर सम्पूर्ण बहिष्कार का निश्चय कर लेना है तो न केवल सभी दलों का एक संयुक्त संगठन ही और जहां जहां कमिशन जावे, वहां वहां शायद पहरा भरना भी चाहिए, परन्तु राष्ट्र की शक्ति का कुछ और प्रदर्शन करना होगा। चाहे मेरा कहना अरण्य रोदन ही क्यों न होवे, और मैं वही बात लाख बार क्यों न दुहराऊँ, परन्तु मैं कहता हूँ कि विदेशी कपडे के बहिष्कार के सिवाय, देश के सामने और कोई कार्यक्रम नहीं है जो शीघ्र और ठीक ठीक किया जा सके। मगर सभी बडे बडे कामों के समान इसके लिए भी योजना बनाने, संगठन करने की आवश्यकता है। इसके लिए लगनवाले, योग्य और ईमानदार स्त्री पुरुषों को केवल एक इसीमें लग कर निरंतर और सावधानी पूर्वक काम करना चाहिए। यह काम सहज नहीं है। अगर यह सहज होता तो इससे जिन फलों की आशा है, उनका मिलना ही दूभर होता। इसके पूरा होने के पहले राष्ट्र की सारी अच्छी से अच्छी शक्तियां खिंच आनी चाहिएँ। मगर हम यह भी साफ साफ कबूल कर लेवें कि अगर हम इस एक चीज का संगठन नहीं कर सकते तो दूसरी किसी वस्तु का नहीं कर सकते।

मैं अपनी स्थिति साफ कर दूँ। मैं अब भी जब तब कुछ लिखने के सिवाय इस आन्दोलन के विकास में और कोई हस्तक्षेप करना नहीं चाहता। इस लिए केवल भिन्न २ दलों से राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा करने की अपील के रूप में ही यह लेख लिखा है।

(यं० इं०) **मोहनदास करमचंद गांधी**

जीवन-कण

[इस स्तंभ में गांधीजी के अँगरेजी और गुजराती लेखों, और भाषणों में से चुने हुए उद्गारों के सारानुवाद दिये जाते हैं।

उप० सं०]

"स्थिति तो आज भी तीव्र है, मगर हम आज तीव्र इलाज करने के नालायक हैं, इस लिए हमें खामोश रहना चाहिए।"

"जो अपनी नामर्दी कबूल करेगा, शायद वह किसी दिन मर्द बन सकता है, पर जो नाहक में मर्द होने का दावा करता है, वह कभी मर्द बनने का नहीं है।"

"यह सभा बकरों की है सिंहों की नहीं। सिंहों की संस्था किसीने जगत में नहीं देखी है।"

"राजपूतों का इतिहास पढ कर सीखो कि वीरों का एक भी वचन मिथ्या नहीं जाता। वीरता बातें कहने में नहीं, परन्तु उन्हें मिथ्या नहीं जाने देने में है।"

"एक ही आदमी का, पर शुद्ध बलिदान रंग लाये बिना नहीं रहता। मगर विवेक और विचार के बिना चाहे जितने बलिदान किये जायँ, सभी बेकार जायँगे।"

"मैं तो लोगों को साथ ले कर चलना चाहता हूँ, इस लिए तुम्हारे ही, जनता के ही जोर पर मैं अपना जोर नापूँगा।"

"दूसरे का डाला अंकुश गिरानेवाला है और अपना बनाया उठानेवाला।"

"जिस आदमी को अपनी अशक्ति का भान है, वह उसका प्रदर्शन जब जगत को कराता है, तब उसका भार हलका हो जाता है।"

"मैं जन्म से सत्याग्रही रहा, कर्म से सत्याग्रही रहा, और सत्याग्रही के रूप में ही मरूंगा। आप के रजवाडों की गंदगी के लिए भी मैं सत्याग्रह कर सकता हूँ, मगर आज मेरा यह पहला धर्म नहीं है।"

"मुझसे ऐसा नहीं पार लग सकता कि जिससे मुझे शर्माना पडे, या आपको शर्माना पडे या किसी को शर्माना पडे।"

"मेरा स्वभाव ही हमेशे से यह रहा है कि जहां तक उठा सकूँ, असह्य बोझा उठाऊं और अगर उठाते समय उसके नीचे दब जाना पडे तो दब जाऊं। जो यह नहीं करता, वह इस अंश तक सत्य का अधूरा पूजारी है और अगर वह लोगों का नेतृत्व करेगा तो उस अंश तक अधूरा ही नेतृत्व कर सकेगा। सेवा करनेवाले को तो अपनी लाज, आबरू, मान, सर्वस्व को होम कर के ही प्रजा की सेवा करने का इरादा रखना चाहिए।"

"मेरे प्रस्ताव के शब्दों में आप फेरबदल नहीं कर सकते, क्योंकि इसका एक एक शब्द तौल तौल कर लिखा गया है। मेरा स्वभाव ही यह है कि जैसा बोलता हूँ, वैसा ही लिखता हूँ और जैसा लिखता हूँ वैसा ही बोलता हूँ।"

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ३८

लडाई में भाग

विलायत पहुँचने पर खबर मिली कि गोखले तो पेरिस में रह गये हैं, पेरिस से आना जाना बंद हो गया है, और इसका पता नहीं कि वे कब तक आवेंगे। गोखले स्वास्थ्य के लिए फ्रान्स गये थे और वहां लडाई के कारण घिर गये थे। उनसे मिले बिना देश नहीं जाना था। यह कोई नहीं कह सकता था कि वे कब आ सकेंगे।

इस बीच करना क्या? लडाई के विषय में मेरा क्या धर्म है? जेल के मेरे साथी और सत्याग्रही सोराबजी अडाजणिया विलायत में बारिस्टरी पढ रहे थे। अच्छे से अच्छे सत्याग्रही के रूप में सोराबजी इंग्लैण्ड में बारिस्टरी की तालीम लेने और बाद में द० अफ्रिका को लौट कर मेरी जगह लेने के लिए भेजे गये थे। उनका खर्च डाक्टर प्राणजीवन मेहता देते थे। और उनकी मार्फत डाक्टर जीवराज मेहता इत्यादि जो लोग उनके साथ शिक्षा पा रहे थे, उनसे मस्लहत की। विलायत में रहनेवाले हिन्दुस्तानियों की एक सभा की और उनके सामने मैंने अपने विचार रक्खे। मुझे लगा कि विलायत में रहनेवाले हिन्दुस्तानियों को लडाई में अपना हिस्सा देना चाहिए। अँगरेज विद्यार्थियों ने लडाई में सेवा करने का अपना निश्चय जाहिर किया था। इस दलील के विरुद्ध कि हिन्दुस्तानी उससे कम नहीं कर सकते, बहुत सी दलीलें इस सभा में पेश हुईं। हमारी और अँगरेजों की स्थिति में हाथी और चींटे का फर्क है। एक गुलाम, दूसरा सरदार! ऐसी स्थिति में गुलाम सरदार के संकट में स्वेच्छा से सरदार की मदद कैसे कर सके? गुलामी में से छूटने की इच्छा रखनेवाले गुलाम का क्या यह धर्म नहीं है कि वह सरदार के संकट का उपयोग अपनी मुक्ति के लिए करे। यह दलील उस समय मेरे गले कैसे उतरती? जो कि मैं दोनों के बीच का भेद समझ सका था, परन्तु मुझे अपनी स्थिति ठेठ गुलामी की नहीं लगती थी। मुझे तो यों लगता था कि अँगरेजी पद्धति में दोष हैं, और उनसे अधिक दोष कितने अँगरेजी अफसरों में हैं। वे दोष हम प्रेम से दूर कर सकते हैं। अगर हम अँगरेजों की मार्फत और उनकी मदद से अपनी स्थिति सुधारना चाहते हों तो हमें उनकी भीर के अवसर पर उन्हें मदद दे कर स्थिति सुधारनी चाहिए। राज्यपद्धति के दोषमय होने पर भी, वह मुझे अब जैसी असह्य लगती है, वैसी तब नहीं लगती थी। किन्तु जिस प्रकार पद्धति पर से आज मेरा विश्वास उठ गया है, और मैं उसकी मदद नहीं करूँगा, उसी प्रकार जिनका विश्वास सिर्फ पद्धति पर से ही नहीं, बल्कि अँगरेजी अफसरों पर से भी उठ गया हो, वे भला मदद देने को कैसे तैयार हों? उन्होंने इस समय जनता की माँग जोरों से जाहिर करने और उसमें सुधार करा लेने का आग्रह करने का मौका देखा। मैंने इसी संयम में अधिक सभ्यता और दीर्घ दृष्टि देखी कि अँगरेजों की इस आपत्ति को हम अपनी माँगें पेश न करने का समय समझ कर लडाई भर हक माँगना मुल्तवी रक्खें। इसलिए मैं अपनी सलाह पर कायम रहा, और सूचना दी कि जिन्हें अपने नाम लिखाने हों, लिखावें। नाम अच्छी संख्या में लिखे गये। उनमें लगभग सभी प्रान्तों और सभी धर्म के आदमी थे।

लार्ड क्रू के पास इस बारे में पत्र लिखा और अगर हिंदुस्तानियों की प्रार्थना स्वीकार करने के लिए, जख्मी सिपाहियों को सेवा करने की तालीम लेने की जरूरत जान पडे तो उसके लिए इच्छा और तैयारी जाहिर की। कुछ सलाह मशविरे के बाद लार्ड क्रू ने हिंदुस्तानियों की प्रार्थना स्वीकार की और ऐसे संकट के मौके पर साम्राज्य की मदद करने के लिए आभार माना।

नाम लिखानेवालों ने प्रसिद्ध डाक्टर कैंटली के नीचे जख्मियों की सेवा शुश्रूषा करने की प्राथमिक शिक्षा लेनी शुरू कर दी। छह हफ्तों का छोटा सा पाठ्यक्रम था। मगर उसीमें जख्मियों को प्राथमिक मदद करने की सारी क्रिया सिखला दी जाती थी। हम लग भग ८० आदमी इस खास वर्ग में भर्ती हुए। छह हफ्ते बाद जो परीक्षा ली गयी, उसमें केवल एक ही आदमी नापास हुए। जो पास हो गये, उन्हें अब सरकार की ओर से कवायद वगैरह की शिक्षा देने का प्रबन्ध हुआ। कर्नल बेकर के हाथों कवायद की शिक्षा सौंपी गयी और उन्हें इस टुकडी का सरदार चुना गया।

विलायत का उस समय का दृश्य देखने लायक था। लोग घबराते नहीं थे, मगर लडाई में मदद करने को सभी लग गये। सशक्त जवान तो लडाई की तालीम लेने में लग गये, किन्तु अशक्त, बुड्ढे या स्त्रियां वगैरह क्या करें? वे अगर चाहें तो उनके लिए भी काम तो होवे ही। वे लडाई के घायलों के लिए कपडा वगैरह सीने, ब्योंतने में लग गयीं। वहां स्त्रियों का वाइसियम नाम का क्लब है। उसकी सभ्याओं ने लडाई-विभाग के लिए जरूरी कपडों में जितना हो सके, बनाने का भार उठा लिया। सरोजिनी देवी उसकी सभ्या थीं। उन्होंने इसमें पूरा भाग लिया। उनके साथ मेरी पहचान तो यह पहली ही थी। उन्होंने ब्योंते हुए कपडों का मेरे सामने ढेर खडा कर दिया और जितने सी या सिला सकूँ उतने सी, सीलवा कर उनके हवाले करने को कहा। मैंने उनकी इच्छा खुशी से मान ली और जख्मियों की सेवा की तालीम के दर्म्यान जितने कपडे हो सके, उतने तैयार कर के दे दिये।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

अजमल जामिया कोष

इस पत्र में छपी अपील के जवाब में केवल नीचे लिखे चंदे अब तक मिले हैं:

सेठ जमनालाल बजाज	१०००) रुपये
श्रीयुत रामेश्वरदास, धुलिया	५१) ,,
,, प्यार अली, बंबई	१००) ,,
कुल	११५१) रुपये

अब तक तो यह बहुत मामूली जवाब है। बहुधा इस पत्र में प्रकाशित अपीलों का लोग जो जवाब देते हैं, वही इस बात की निशानी होती है कि लोग फलां आन्दोलन को कितना पसन्द करते हैं। स्पष्ट ही दोनों जातियों के परस्पर मनमुटाव के कारण साधारण पाठक रुके हुए हैं। क्या मैं आशा करूं कि जहां कहीं ऐसे स्त्री पुरुष होंगे जो हिन्दू-मुसलिम एकता में विश्वास करते हैं और मानते हैं कि हकीम साहेब बहुत बडे देशभक्त थे और जामिया को चलाना आवश्यक है, वे न सिर्फ अपनी ही सहायता तुरत भेज देंगे किन्तु अपने मित्रों और पडोसियों से भी कह कर दिलावेंगे? हर एक बडी या छोटी रकम का प्राप्ति स्वीकार इस पत्र में छापा जायगा।

(यं. इं.) **मो० क० गांधी**

मोरवी का भाषण*

महार-जा साहेब, प्रजाजनों और मोढ जाति ने मेरा और मेरे साथियों का जो स्वागत किया है और मानपत्र दिया है, उसके लिए मैं अंतःकरणपूर्वक सबका आभार मानता हूँ। मोढ भाइयों को इतना कहना चाहिए कि आपके पास से मानपत्र लेने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। ऐसा खयाल मुझे स्वप्न में भी नहीं है कि मैं मोढ जाति की सेवा जाति के रूप में कभी कर सका हूँ। कितने भाई तो यह मानने वाले भी पडे होंगे कि मैंने कुछ नुकसान भले ही किया हो, पर सेवा तो नहीं की है। यह आरोप घडी भर के लिए स्वीकार कर लूँ, तौभी आपका मानपत्र तो उदारता बतलाता है। पर मुझे इतनी उदारता से संतोष नहीं हो सकता क्योंकि यह उदारता की निशानी भले होवे, मगर मानपत्र लेने और देनेवालों के बीच यह गुह्य समझौता रहता है कि मानपत्र लेनेवाला जो काम कर रहा है, उसके लिए देनेवालों की सम्मति और आशीर्वाद है। हम दोनों के बीच इस भांति का कोई समझौता नहीं है। इस लिए यह मानपत्र लेते हुए मुझे संकोच हो रहा है।

आपकी इस नन्हीं सी जाति के बारे में मैं जो इतना कहता हूँ, उसमें भी मर्म है ही। क्योंकि मैं मानता हूँ कि छोटे २ वाडों का नाश करना ही चाहिए। मुझे इस बात में तो शक ही नहीं है। यह बात मैं मोढ और दूसरी जिन जिन जातियों के लोग हों, उन सब के लिए कहता हूँ। सच्चे शास्त्रों में जाति संबंधी बातों के लिए कोई आधार ही नहीं है। आधार केवल चार वर्णों लिए है। इन चार वर्णों को रच कर भगवान ने हाथ धो डाले हैं। वर्णधर्म में जाति की गंध ही नहीं है। मोढ जाति की मार्फत मैं आप सब किसी को सुनाना, विनती करना चाहता हूँ कि जाति के बाडे को भूल जाना। आज जो जातियां पडी हैं, उनका उपयोग जाति की आहुति डालने में करना। इन जातियों का यज्ञ करना और इसमें संयम रूप कुछ होवे तो उसका पालन करना। इन छोटे बाडों के गढ्ढों में हम पडे रहेंगे तो उनमें से बदबू निकलेगी। गढ्ढे भरने की सलाह वैद्य देते हैं। उनमें से केवल बदबू भर ही नहीं छूटती है, बल्कि उनमें से मच्छर पैदा होते हैं, और वे घातक होते हैं। इस तरह यह समझना कि जाति रूप ये बाडे मनुष्य-घातक हैं। यह समझना कि ईश्वर कभी ऐसी घातक रचना करता ही नहीं। मैं अपने अनुभव की ये बातें कहता हूँ। इन्हें मानोगे तो सुखी होवोगे। समय अपना काम करता ही जाता है। समय की गति रोकने का प्रयत्न करना हो तो भले ही करो, पर यह मान लेना कि वह प्रयत्न निरर्थक है। जो इन बाडों के बचाव में हम निरर्थक समय बितावेंगे तो यह सूरज पर धूल उडा कर अपनी ही आंख में फेंकने के खेल के बराबर होगा। इस वस्तु को छोटी सी न मान कर, बहुत वर्षों से हम अज्ञान में पडे हुए हैं, उस वहम और अज्ञान को ज्ञान का रूप न देकर, अगर आप पृथ्वी पर जुदा जुदा धर्मों का जो मुकाबिला हो रहा है, उसे उदार भाव से देखेंगे तो जान पडेगा कि ये जातियाँ, प्रगति को, धर्म को, स्वराज को, रामराज्य को—उस रामराज्य को जिसका रटन मैं दिन रात किया करता हूँ,—रोकनेवाली हैं। मैं आपसे पूछता हूँ कि मोढ जाति में सुरखाब के वे कौन से पर लग गये हैं कि हम उसीके गीत गावें? हमारे आचार और विचार के बीच जहां तहां विरोध देखने में आता है। हमारे गीतों की ध्वनि जुदा, और हमारे आचार जुदे। यह तो सांप के निकल जाने पर लकीर को पीटने के समान है। आचार विचार का साम्य साधने का भगीरथ प्रयत्न कीजिए। आपने जो मानपत्र दिया है, उसके जवाब में मैं आपसे यह मांग लेता, हूँ। मैंने जिस गुह्य समझौते की बात कही है आप स्वीकार कर लेंगे तो मैं समझूँगा कि भले ही इस जा[ति में] मेरा जन्म हुआ, भले ही मैंने आपसे मानपत्र लिया।

मेरा तो आचार विचार की एकता का यज्ञ चल रहा [है] और इस यज्ञ के लिए मोढ जाति ने मेरा बहिष्कार किया [था] कि पीछे से मोढों ने ही देखा कि मैं बहिष्कार के लायक नहीं क्योंकि मैं ने कभी जाति से लाभ लेने का विचार ही नहीं [किया] है। मैं तो बाडे तोडने का अपना यह प्रयत्न और आगे [बढाना] चाहता हूँ। आपको शायद पता न होवे कि मैंने अपने एक [लडके] का विवाह जाति के बाहर किया है। और इसमें मेरा [कुछ] कुछ भी नहीं हुआ है। मेरे लडके को एक भक्त वैष्णव [कुटुंब] की कन्या मिली और इसके लिए मेरा लडका मुझे धन्यवाद [देता] है। मैं यह कहूँ तौभी चलेगा कि मैंने दूसरी जाति से [एक] जवाहिर चुरा लिया है। छोटी २ बिरादरीवालों को मैं [कहता हूँ] कि अगर आपकी कन्याएँ पडी रहती हों तो मुझे सौंप[ना] दूसरी बिरादरी के अच्छे सुशील लडकों के साथ दो तुल[सीदल] अथवा सूत के धागे से व्याह दूँगा। अंत्यज लडकी को [घर में] बैठाने वाले मुझको अगर यों दूसरी जाति अपनी कन्या देने में डरती तो आपको किस बात का भय हो सकता है? मैं तो [कुछ] दिन बाद एक मोढ कन्या से अपने लडके का विवाह करनेवाला [हूँ।] यों मेरा काम तो चला ही करता है। अडचन नहीं आती।

इस भाँति मोढ बिरादरी के बहाने मैं सभी जातियों को [कहना] चाहता हूँ कि बाडे तोडिए। अठारह वर्ण तो केवल लोगों के व्यवहार [के हैं।] वर्ण तो केवल गुण कर्म के अनुसार सिर्फ चार विभागों में बँ[टे हैं।] खाने पीने का आचार अस्पृश्यता का विषय है, जिसकी छाया तले [रह] कर मनुष्य जाति अपने लिए छाया और पोषण पा सक[ती है।] वर्ण व्यवस्था संयम धर्म है। इसमें आर्थिक दृष्टि नहीं, किन्तु [धर्म] पालन का उद्देश्य है। ऋषि मुनियों ने धर्मपालन के सच्चे मार्ग के [रूप में] इसकी कल्पना कर के, इसकी रचना की है और उसके बदले यह [हमारे] स्वार्थ, हमारे ऐब, हमारे भोगों का पोषण करने का साधन बन [गई] है। इस शुद्ध वर्णव्यवस्था को बचाने का प्रयत्न कीजिए।

प्रजातंत्र बनाम रामराज्य

मेरी अपनी दृष्टि से तो स्वराज और रामराज्य एक है [तौभी] मैं भाइयों के आगे रामराज्य शब्द बहुत बार नहीं बोलता हूँ। [क्योंकि] बुद्धि के इस युग में स्त्रियों के आगे चर्खे की बातें करनेवाले [की] रामराज्य की बातें बुद्धिवादी जवानों को बेमतलब लगतीं [हैं।] उन्हें तो रामराज्य नहीं, पर स्वराज चाहिए और वे स्वराज की चामत्कारिक व्याख्याएँ करते हैं। मेरी दृष्टि में यह बात [एक] समान है। लेकिन आज जब मैं महाराजा साहेब और उनकी [प्रजा] के समक्ष खडा हूँ और एक घन्टे तक महाराजा साहेब ने [अपने] हृदय के उद्गार मेरे सामने ढाले हैं, तब अपने हृदय के भी [उद्गार] यहां रखने का मन हो आता है: स्वराज्य की कल्पना रामराज्य [की] है, परन्तु वह रामराज्य है। यह रामराज्य कैसे आवेगा, कब [आवेगा?] जब राजा प्रजा दोनों सीधे हों, जब राजा प्रजा दोनों के [हृदय] पवित्र हों, जब दोनों त्याग की ओर झुके हों, भोग भोगने में [भी] संकोच और संयम रखते हों, दोनों के बीच पिता पुत्र के [जैसी] सुन्दर संधि हो, तब उस राज्य को हम रामराज्य कहें। हम [यह] भूल गये, इस लिए 'डिमोक्रेसी' (प्रजातंत्र) की बातें करते [हैं।] आज 'डिमोक्रेसी' का युग चलता है। मुझे इसके अर्थ का [पता] नहीं, पर जहां प्रजा की आवाज सुनी जाती है, प्रजा के प्रेम का प्राधान्य है, वहां कहा जा सकता है कि 'डेमोक्रेसी' है।

*गताङ्क में जैसा कि लिखा गया था गांधीजी का यह महत्त्व-पूर्ण भाषण यहां दिया जा रहा है।

...रामराज्य में सिर या हाथ गिन कर प्रजा के मत का माप नहीं निकाला जा सकता है। इस तरह से मत लेने को मैं पंच का मत ...मानूँगा। 'पंच बोले सो परमेश्वर' वाले पंच हाथ ऊँचा करनेवाले ...नहीं होते। ऋषि मुनियों ने तपश्चर्या कर के देखा कि जो ...आदमी तपश्चर्या करते हों, प्रजा-हित की भावना-वाले हों, उनका ...मत प्रजामत कहा जायगा। इसका नाम है सच्ची 'डेमोक्रेसी'। मेरे ...से लोग एकाध भाषण दे कर आप के मत चुरा ले जायँ तो ...आप के उस मत से प्रकट होनेवाली वस्तु का नाम 'डिमोक्रेसी' ...नहीं है। मेरी 'डिमोक्रेसी' तो रामायण में बतलायी हुई है — ...और रामायण भी जब मैं सीधे सादे भाव से पढता हूँ और तब ...उसमें से जो भाव निकलते हैं, उसके अनुसार। रामचंद्र ने कैसे ...राज्य किया? आज के राजा तो राज्य करना अपना जन्मसिद्ध हक ...मानते हैं; और प्रजा के कुछ कहने का हक नहीं मानते। पर राजा ...लोग जिस राम के वंशज कहलाते हैं क्या आप जानते हैं कि उन ...राम ने क्या किया था? कृष्ण के भी आप वंशज कहलाते हैं। कृष्ण ने क्या किया था? कृष्ण तो दासानुदास थे, राजसूय यज्ञ के समय ...कृष्ण ने सब के पैर धोये, प्रजा के भी पैर धोये। यह बात सच्ची ...हो या काल्पनिक, यह प्रथा उस समय हो या न हो, मगर इसका ...सार तो यह है कि उन्होंने प्रजा को प्रसन्न कर के उसके आगे ...नमन किया, प्रजा के मत के आगे नमन किया। रामायण में यह ...बात जुदे तौर पर दिखलायी गयी है। गुप्तचर के द्वारा रामचंद्रजी ...पर चर्चा करा के जान लेते हैं कि सीताजी के बारे में किसी धोबी ...के घर अपवाद चलता है। वे तो जानते थे कि अपवाद में कुछ सार ...नहीं है, उन्हें तो सीताजी प्राणों से भी प्यारी थीं, उनके और ...सीताजी के बीच भेद डाल सकनेवाली कोई वस्तु नहीं थी, मगर ...भी यह समझ कर कि ऐसा अपवाद चलने देना उचित नहीं है, ...उन्होंने सीताजी का त्याग किया। जिस सीता के लिए राम ने लड़कर ले कर ...लड़ाई की, जिनके लिए रात दिन झँखते रहे, उस सीता के शरीर-वियोग ...की आवश्यकता रामचंद्रजी ने मानी। प्रजा मत का ऐसा मान करनेवाला ...था राम का राज्य, रामराज्य कहा जाता है। इस राज्य में कुत्ते ...जैसे जीव को भी दुःख नहीं दिया जा सकता क्योंकि रामचंद्रजी तो ...जीव मात्र का अंश अपने में देखते थे। ऐसे राज्य में व्यभिचार, ...पाखंड, असत्य नहीं हो सकते। इस सत्ययुग में प्रजातंत्र चला ...। यह टूटे और इस लिए राजा राजधर्म छोडे। बाहर से ...आक्रमण होने लगें। मनुष्य का लोहू बिगडने पर बाहर से रोग के ...जन्तु आक्रमण करते हैं। उसी भांति समाज शरीर के अस्वच्छ होने ...पर समाज के अंग रूप मनुष्यों पर बाहर से आक्रमण शुरू होते हैं। किन्तु राजा प्रजा के बीच जब प्रेम का मेल पैदा होता है, ...तब प्रजारूपी शरीर आक्रमणों को सह लेता है। राजशासन प्रेम का ...शासन है। राजदंड पशुबल नहीं, किन्तु प्रेम की गांठ है। राजा ...शब्द ही 'राज' धातु अथवा शोभने से बना है। इस लिए राजा ...वह हुआ जो शोभता हो। वह जितना जानता है, प्रजा उतना ...नहीं जानती। उसने तो प्रेम-गांठ से प्रजा को बाँध लिया है और ...इसलिए दासानुदास है। श्रीकृष्ण भी दासानुदास थे और उन्होंने ...रणछोड का नाम पाया, गालियाँ खायीं। उसी तरह मैं राजों और ...महाराजों को कहता हूँ कि आप अगर अपने को कृष्ण और राम के ...वंशज कहलवाना चाहते हैं तो आपको प्रजा की चोटें खाने को तैयार ...रहना चाहिए। आप भी प्रजा की गालियाँ खाइए। प्रजा मस्त हो सकती है, किन्तु राजा नहीं हो सकता। राजा अगर उन्मत्त होवे तो ...प्रजा रसातल को चली जाय।

यंत्र-युग से बचो

...यह कृषि-प्रधान मुल्क, जिसके अंदर सात लाख गांव हैं, ...यंत्र-युग से नहीं बच सकता। इसमें जीते जागते यंत्र हैं, जिन्हें बचा कर ही आप देश को बचा सकते हैं। ये यंत्र हैं गायमाता और उसके वंश, मनुष्य और उनके वंश। जिनके पास चेतनामय यंत्र पडे हुए हैं, जो हमेशे वृद्धि कर सकते हैं, ऐसे आदमी अगर जड यंत्रयुग के पुजारी बनें तो उन पर दुनिया का शाप पडनेवाला ही है। चक्रवर्ती राजाओं के इस देश में, जहां ३३ करोड जीते जागते यंत्र पडे हुए हैं, अगर हम यंत्र-युग के पुजारी बनें तो समझ लेना कि हम राम के नहीं, किन्तु रावण के वंशज हैं। ये शब्द कडवे हैं, परन्तु हृदय के, प्रेम के उद्गार हैं। मुझे ठाकोर साहेब ने अपने हृदय के उद्गार दिये और मुझे जहां हृदय मिलता है, वहां मैं भान भूल कर हृदय चीर कर दिखलाता हूँ। आज नहीं तो, जब मैं मर जाऊँगा तब आप समझेंगे कि गांधी ठीक बात कहता था। यंत्र-युग को प्राधान्य जिस दिन दिया, उसी दिन अपने गले पर आप छुरी फेरी। भविष्य में कोई चंगेज खाँ के जैसा आकर ३३ करोड को मार कर तीन लाख कर देवे तो हमें फिर यंत्र जरूर ही चाहिए — जैसे कि इंगलैण्ड और अमेरिका को यंत्र चाहिए। और अमेरिका इंगलैण्ड ने तो लूटने का धंधा शुरू किया है। आप भला किसे लूटोगे? हमारा देश, जो इतना सुन्दर है, मनोहर है, मनोरम है, जहां इतनी सुन्दर हवा बहती है, जहां विविध भांति की वनस्पतियां हैं, जहां दूसरे साधनों का अटूट भाण्डार पडा है, उस देश के लिए कंगाल होने का कोई कारण नहीं है। हमीं अपने दुश्मन आप बने हुए हैं।

इसीलिए मैं खादी खादी कर रहा हूँ।"

(राज्यों के खादी प्रचार के बारे में बोलते हुए उन्होंने मैसूर, सावंतवाडी, कोचीन, वगैरह राज्यों की खादी के लिए दी हुई मदद की कथा सुनायी; राजकोट, पालीताणा, पोरबंदर की बातें कहीं और राजा तथा प्रजा, दोनों से ही चर्खे को अपनाने और यज्ञ रूप में चलाने की प्रार्थना की। इसके अलावा उनके भाषण के पोरबंदर परिषद के प्रस्ताव, अंत्यजोद्धार और गोपालन संबंधी अंश छोड दिये जाते हैं। अंत में उपसंहार करते हुए वे राजाप्रजा के संबन्ध के ही ऊपर आये और बोले:)

राजाप्रजा को संदेश

"आपसे मैं यह माँगता हूँ कि अपने बीच हमेशे ही मीठा संबन्ध रक्खें। 'यथा प्रजा तथा राजा' और उसी भाँति 'यथा राजा तथा प्रजा'। प्रजा में झूठ, कायरता, प्रपंच, पाखंड हों तो राजा क्या कर लेंगे? राजा अगर अच्छे हुए तो शायद आप बच जायँ, मगर प्रजा को नहीं बचा सकेंगे। प्रजा अपनी स्त्रियों को प्रजा से ही सुरक्षित नहीं रख सके, तो राजा उन्हें कैसे बचा सकेंगे? मोरबी जैसे शहर में, जहां सिर्फ १२-१३ हजार की बस्ती हो, अनेक झगडे, अनेक विवाद किस लिए हों, किस लाभ के लिए हों? इसे भूल जाओ। सत्य और अहिंसा के सिवाय दूसरा धर्म नहीं है। आप अहिंसा के उपासक हो कर खटपट क्यों करते हो? रागद्वेष के मानी है हिंसा। केवल खटमल और जूँ को ही नहीं मारने में अहिंसा समाप्त नहीं हो जाती। यह तो कनिष्ठ से कनिष्ठ अहिंसा है। जिसके हृदय में से प्रेम की धारा निरंतर बहा करती है, वह जगत का कल्याण करता है — यह मेरा वाक्य नहीं है, यह तो महावीर कह गये हैं, यह तो गीता का वचन है, मैंने तो इसकी बानगी भर अभी देखी है, इस सत्य और अहिंसा के पालन में मेरा काम सधता है। आप अगर इसका पालन करें तो उबर जायँगे। अगर पाखंड और प्रपंच चला तो आपकी खादी, आपके ढोर नहीं बचेंगे। अगर आप सत्य की धारा को समझ लेंगे, अहिंसा की गंगा को समझेंगे तो मेरी बतलायी बातें आपको कडवी नहीं लगेंगी, उनपर अमल करना सहज जान पडेगा।

(नवजीवन)

गोरक्षा का सच्चा रास्ता

अमेरिका से हम लोग अभी और बहुत सी बातें सीख सकते हैं, मगर एक और विषय पर विचार करके हम यह लेख समाप्त करेंगे।

अमेरिकावाले खाद की रक्षा अत्यन्त सावधानी से करते हैं और उसका अच्छा से अच्छा प्रयोग जिस तरह कर सकते हैं करते हैं। मिन्नेसोटा प्रयोग शाला के स्नाइडर को खाद का प्रयोग करने बाद, फी टन दो से तीन डौलर तक का नफा होने लगा। यह अंक पांच सालों के नाज में वृद्धि का औसत निकाल कर निकाला गया है। पर्डयू प्रयोगशाला के वियाङ्को लिखते हैं कि "अगर खाद का प्रयोग ठीक ठीक किया जाय तो सामान्यतः खेत के उपजाऊपने के हिसाब से फी टन दो से आठ डौलर तक की आमदनी बढायी जा सकती है और जिन सात खेतों पर प्रयोग कर के देखा गया था, उनका औसत आता है फी टन पांच डौलर की बढती का।" ओहियो की प्रयोगशाला के औसत अंक आते हैं ३.३१ यानी कोई ३⅓ डौलर फी टन की बढती।

स्वीट्सर साहेब दुधार गायों के गोबर की खाद के उपजाऊपेन का अध्ययन कर के इन नतीजों पर आये हैं:

"जितना गाय को खूराक में मिलता है, उसमें से

१. गोबर में नत्रजन ⅓ भाग, फस्कोरिक एसिड ¾ भाग, और पोटाश ⅕ अंश होता है।

२. मूत्र में ⅔ नत्रजन, फस्फोरिक एसिड प्रायः बिलकुल ही नहीं और ⅘ हिस्सा पोटाश होता है।

३. दूध में ⅙ भाग से भी कम नत्रजन, ¼ फस्फोरिक एसिड और ५% पोटाश यानी खूराक का ⅙ हिस्से से भी कम मसाला खाद की दृष्टि से होता है।

४. अगर मूत्र को जाया जाने दिया जाता है तो कोई ६३ फी सैकडे यानी गाय की खूराक का खादवाला आधा से भी अधिक हिस्सा नष्ट हो जाता है।"

प्रो० एकल्स १००० पाउण्ड दूध देनेवाली गाय के दिये खादर की मिकदार देते हैं और एक एक पाउण्ड नाइट्रोजन, फोस्फोरिक एसिड, पोटाश और सौ पाउण्ड और वस्तुओं की क्रमशः १५ सेन्ट, ४ सेन्ट, ५ सेन्ट और २० सेन्ट के हिसाब से कीमत भी लिखते हैं:

	मूत्र पाउण्ड	गोबर पाउण्ड	कुल पाउण्ड
साल में के पाउण्ड हुआ	८,०००	१८,०००	२६,०००
सूखा मसाला	५६०	३,६००	४,१६०
नाइट्रोजन	६४	६३	१२७
फौस्फोरिक एसिड	लेशमात्र	३६	४०
पोटाश	८०	४५	१२५
पौधे के लिए पोषक	डौलर सेन्ट	डौलर सेन्ट	डौलर सेन्ट
वस्तुओं का मूल्य	१३ ६०	१३ १०	२६ ७०
और वस्तुएँ	१ १०	७ २०	८ ३०
कुल व्यापारिक कीमत	१४ ७०	२० ३०	३५ ०
एक टन खाद का मूल्य	३ ६५	२ २५	२ ७०

इस से जान पडता है कि गाय के मूत्र में, गोबर का अपेक्षा कहीं अधिक, पौधों के लिए पोषण अथवा खादर होता है। अगर्चे कि वजन में गोबर से मूत्र आधा होता है मगर उसमें गोबर के बराबर ही नाइट्रोजन होता है, और कुल १२५ पाउण्ड पोटाश में दो तिहाई से जरा सा कम (८० पाउण्ड) तो मूत्र में ही मिलता है। पौधों के लिए पोषण पदार्थ तो मूत्र में अगर १३ डौलर ६० सेन्ट का होता है तो गोबर में केवल १३ डौलर १० सेन्ट का ही पाया जाता है और एक टन मूत्र के खादर की कीमत ३ डौलर ६५ सेन्ट होती है यानी उतने ही गोबर की ... १ डौलर ४० अधिक। इसी लिए मूत्र को नष्ट ... बचाना इतना अधिक महत्वपूर्ण है।

न्यू जर्सी की प्रयोगशाला में देखा गया कि जब गोबर ... मैदान में १०९ दिनों तक छोड दिया गया तो उसमें से ... फी सैकडे साढे सैंतीस घटा, फौस्फोरिक एसिड फी सैकडे ... पोटाश ४७ घटा। गोबर और मूत्र मिला कर मैदान में ... पर उतने ही दिनों में नाइट्रोजन फी सैकडे ५१, फौस्फोरिक ... फी सैकडे ५१ और पोटाश फी सैकडे ६१ घट गया। चार ... से भी कम ही मैदान में पडे रहने देने पर खादर की कीमत ... आधी भी नहीं रही। एक गाय का दिया गोबर यों ही ... सूखने को छोड देने पर, खेत के उपज की घटी साढे ... सालाना आती है। इस कमी का, और खास कर नाइट्रोजन की ... कमी का एक कारण यह बतलाया जाता है कि खाद ... आने या खमीर उठने से अमोनिया निकल जाती है और ... चीजें और भी अधिक घुल जाती हैं। खादर का संग्रह ... लाभ, कौर्नेल प्रयोगशाला के एक प्रयोग के नतीजे से ... गये थे। एक बडे बकस में ५ टन गाय के गोबर ... मूत्र की खाद फुलके भर कर मैदान में ... अक्तूबर महीने तक छोड दी गयी। इस बीच उसके कुल ... में ४९ फी सैकडे की घटी हुई, नाइट्रोजन फी सैकडे ... फौस्फोरिक एसिड १९ फी सैकडे और पोटाश फी सैकडे ... गया था।

(यं. इं.) दे० वा०

इन्द्रराज चर्खा

काश्मीर में चर्खे पर श्रीयुत हरजीवनदास कोटक ने ... पत्रिका' में एक लेख लिखा है। उन्होंने आप काश्मीर ... कर अपने अनुभव से यह लेख लिखा है। उससे ... स्पष्ट होती हैं:

१. चर्खे का महत्व,

२. काश्मीर में यह प्रवृत्ति अब तक चालू है,

३. और काश्मीर में इस अनमोल हुनर की अवनति।

चर्खे के महत्व के समर्थन में सुबूत हमें दक्षिण में ... तक नागर कोइल में मिलते हैं, पूर्व में ठेठ आसाम तक ... और अब उत्तर में ठेठ काश्मीर में मिले हैं। पश्चिम में ... काठियावाड में मिलते ही आते हैं। पश्चिम में मैं कराची ... क्योंकि कराची अभी नया शहर है और यह स्वाभाविक है ... वहांवाले धन के मद में चर्खे का महत्व बहुत न जानें। ... वहां पर भी स्व० श्री रणछोडदास के जैसे खादीभक्त की ... अब तक नये ढंग से चर्खा-प्रचार चल रहा है, खादी का ... होता है।

भाई हरजीवन दास के लेख से हमें यह ... मिलती है कि वहां जो रेशम मिलता है, वह हाथ ... होता। आज तक तो हममें से शौकीन लोग यह मान ... वह हाथ कता होगा, काश्मीरी रेशम का उपयोग करते थे ... यह स्पष्ट है कि जो केवल हाथ कता ही रेशम, उनका ... कपडा पहनना चाहते हैं, उनके लिए काश्मीरी रेशम ... है। उत्तम बात तो यह है कि अपने पहनने लायक ... लिया जाय, मध्यम है नजदीक से नजदीक में कतवा ... कनिष्ठ है, प्रामाणिक बेंचनेवाले के पास से जो कपडा ... नाम से मिले, उसे लेकर पहनना।

(नवजीवन) मो० क० ...

कसौटी पर

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक २६

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, फाल्गुन बदी १० संवत् १९८४ गुरुवार, १६ फरवरी १९२८ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ३९

धार्मिक-समस्या

यह खबर कि युद्ध में काम करने के लिए हम कई आदमियों [ने] इकट्ठे होकर सरकार को अपने नाम भेजे हैं, दक्षिण अफ्रिका [प]हुँचते ही, मेरे नाम वहां से दो तार आये। एक तो पोलक का [था]। उन्होंने पूछा था, 'क्या आपका यह काम आपके अहिंसा सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है?'

मुझे ऐसे तार की कुछ आशा थी ही। क्योंकि 'हिन्द-स्वराज' [में] मैंने इस विषय की चर्चा की थी और दक्षिण अफ्रिका में मित्रों [के] साथ तो इसकी चर्चा बराबर ही हुआ करती थी। युद्ध की [अ]नीति हम सभी स्वीकार करते थे। जब मैं अपने पर हमला [क]रनेवाले पर भी मुकदमा चलाने को तैयार न था तब अगर दो राज्यों [में] लड़ाई चलती हो, और उनके गुण दोष की खबर भी न हो, [त]ो उसमें मैं किस तरह हिस्सा ले सकता था? जो कि मित्र [जा]नते थे कि बोअरयुद्ध में मैंने हाथ बँटाया था, किन्तु तौभी [उ]न्होंने मान लिया कि उसके बाद मेरे विचारों में फेरफार [हु]ए होंगे।

[द]र असल जिस विचारश्रेणी के वशीभूत होकर मैं बोअरयुद्ध में [ग]या था, इस बार भी उसीका उपयोग किया था। मैं यह स्पष्ट [दे]खता था कि युद्ध में शामिल होना, ऐसी बात नहीं है जिसका [क]ि अहिंसा के साथ ठीक ठीक बैठे। पर हमेशे कर्त्तव्य का भान [ह]मेशा कुछ दिये के प्रकाश जैसा स्पष्ट नहीं हो जाता। सत्य के [पुज]ारी को अनेक बार गोते खाने पडते हैं।

अहिंसा व्यापक वस्तु है। हिंसा के दावानल के बीच घिरे [हु]ए हम पामर प्राणी हैं। यह झूठा वाक्य नहीं है कि 'जीव [जी]व पर जीता है।' मनुष्य एक क्षण भी बाह्य हिंसा के बिना [र]ह नहीं सकता। खाते पीते, उठते बैठते, सभी क्रियाओं में, [इच्]छा से या अनिच्छा से कुछ न कुछ हिंसा तो वह किया ही करता [है]। अगर उस हिंसा में से निकलने का वह महाप्रयास करता हो, [जि]सकी भावना में केवल अनुकंपा हो, वह सूक्ष्म से सूक्ष्म जंतु का भी नाश न चाहता हो, और यथाशक्ति उन्हें बचाने का प्रयत्न करता हो तो वह अहिंसा का पुजारी है। उसकी प्रवृत्ति में निरंतर संयम की वृद्धि होगी, उसमें निरंतर करुणा बढती होगी। पर कोई देहधारी बाह्य-हिंसा से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता।

इसके अलावा अहिंसा के मूल में ही अद्वैतभावना घुसी हुई है और जो प्राणिमात्र में अभेद होवे तो एक के पाप का असर दूसरे पर होता ही है और इस लिए भी मनुष्य हिंसा से केवल अस्पृष्ट—अछूता—नहीं रह सकता। समाज में रहा हुआ आदमी समाज की हिंसा में अनिच्छा से भी भागीदार बनता है। जब दो देशों के बीच युद्ध होवे, तब अहिंसा को माननेवाले व्यक्ति का धर्म उस युद्ध को रोकने का है। उस धर्म का पालन जो न कर सके, विरोध करने की शक्ति जिसमें न हो, जिसे विरोध करने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ हो, वह युद्ध-कार्य में लगे; और शामिल होता हुआ भी उसमें से अपने आपको और अपने देश को तथा संसार को निकालने की हार्दिक कोशिश करे।

मुझे अँगरेजी राज्य के जरिए अपनी यानी अपने देश की स्थिति सुधरवानी थी। मैं इंग्लैण्ड में बैठा, इंग्लैण्ड की नौ सेना से सुरक्षित था। उस बल का यों उपयोग करके मैं उसमें स्थित हिंसकता का भागीदार सीधी रीति से बनता था। इसलिए अगर मुझे उस राज्य के साथ आखिर सरोकार रखना हो, उस राज्य की छत्रच्छाया के नीचे रहना हो तो या तो मुझे खुले तौर पर युद्ध का विरोध करके जब तक उसकी युद्ध-नीति न बदले तब तक सत्याग्रह के शास्त्र के अनुसार उसका बहिष्कार करना चाहिए अथवा भंग करना योग्य होवे तो वैसे कानूनों का सविनय भंग करके जेल का रास्ता ढूँढना चाहिए अथवा मुझे उसकी युद्ध-प्रवृत्ति में भाग लेकर उसका विरोध करने की शक्ति और अधिकार प्राप्त करना चाहिए। ऐसी शक्ति मुझमें नहीं थी। इसलिए मैंने माना कि मेरे पास युद्ध में भाग लेने का ही रास्ता बचा है।

मैंने बंदूक चलानेवाले और उसे मदद करनेवाले में अहिंसा की दृष्टि से कभी भेद नहीं देखा है। जो आदमी लुटेरों की जमायत में उनके लूट के लिए आवश्यक चाकरी करने, उनका बोझा ढोने, वे जब लूट पाट करते हों तब उनकी चौकी करने, वे घायल हों तो उनकी सेवा करने में, लगता है वह भी लूट के लिए लुटेरों के बराबर ही जिम्मेवार है। इस भांति विचार करने से लश्कर में

केवल घायल की सेवा करने में ही लगा हुआ आदमी भी युद्ध के दोषों से मुक्त नहीं रह सकता ।

पोलक का तार आने के पहले ही मैंने ये विचार कर लिये थे । उनका तार आते ही मैंने उसकी चर्चा कई मित्रों से की । युद्ध में शामिल होने में मेने धर्म माना; और आज भी उसका विचार करता हूँ तो मुझे ऊपर की विचारश्रेणी में दोष नहीं दिखायी पडता । ब्रिटिश साम्राज्य के बारे में मेरे उस समय जो विचार थे, उन्हींके अनुसार मैंने भाग लिया और इसलिए उसका मुझे पश्चात्ताप भी नहीं है ।

मैं जानता हूँ कि मैं अपने उपर्युक्त विचारों की योग्यता सभी मित्रों के सामने तब भी सिद्ध नहीं कर सका था । उसमें मत-भेद की जगह है । इसीलिए अहिंसा धर्म के माननेवालों और सूक्ष्मरीति से उसका पालन करनेवालों के समक्ष जितनी स्पष्टता से बन सका है, मैंने अपना मत रक्खा है । चाहिए कि सत्य का आग्रही रूढि को ही पकडे हुए रह कर कोई काम न करे, वह हमेशे अपने विचार को हठपूर्वक न पकडे रहे, उसमें दोष होने की संभवता हमेशे माने और उस दोष का ज्ञान होते ही, चाहे जितना बडा जोखिम क्यों न हो, किन्तु उसे उठा कर वह दोष स्वीकार करे और उसका प्रायश्चित्त भी करे ।

(ननजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

ब्रह्मचर्य-साधना

[गुजरात विद्यापीठ के एक स्नेह सम्मलन में श्रीयुत किशोरलाल घ. मशरूवाला से कई प्रश्न पूछे गये थे । तीसरा प्रश्न था, "जिसमें तरुण विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का ठीक ठीक पालन कर सकें, इस लिए शालाओं को क्या क्या करना चाहिए ।" उन्होंने उसका निम्न-लिखित उत्तर दिया था:]

१

यह याद रखना चाहिए कि अब्रह्मचर्य होना, मानसिक और शारीरिक, दोनों ही विकृतियों का परिणाम है । पहले यह मानसिक है पीछे शारीरिक बन जाता है ।

किसी इन्द्रिय को एक प्रकार की गति का अभ्यास अधिक दोनों तक कराया जाता है तो देखने में आता है कि वह इन्द्रिय बिना प्रयास ही वह गति करने में अभ्यस्त हो जाती है । ऐसा अभ्यास कराने से टाइपिस्ट की अँगुलियां आंख बंद रहने पर भी टाइप करती चली जाती हैं, गवैये के हाथ ताल देते जाते हैं । इस तरह का अभ्यास नींद और सन्निपात में भी दिखलायी पड जाता है ।

उसी भांति बहुत दिनों तक अब्रह्मचर्य में पडे हुए विद्यार्थी की विषयेन्द्रियों को जाग्रत हो जाने की ऐसी टेव पड जाती है कि बिना किसी स्पष्ट प्रयास के बल्कि इच्छा के विरुद्ध और बरबस, उसके ब्रह्मचर्य में दोष आ ही जाते हैं । दुःखद अनुभव तो ऐसे हैं कि सद्भाव से ब्रह्मचर्य की महिमा सुनने से भी उसका अनिच्छापूर्वक वीर्यपात हो जाता है । स्नायुओं के इस अभ्यास— शारीरिक विकृति — को मानसिक विकृति से अलग विचारना चाहिए ।

इसके लिए विद्यार्थी को ख्याल रखना चाहिए कि पेट के नीचे के भाग पर बहुत भार कभी न बढने पावे, और शिक्षक भी इस पर नजर रक्खें । अनुभव कहता है कि पायखाना या पेशाब की हाजत रोक रखने से भी विषयेन्द्रियाँ जाग्रत होती हैं । रात को उठने में आलस्य लगता है इस कारण बहुतों को देर तक पेशाब रोक रखने की आदत होती है । शुक्र पर इसका बुरा परिणाम पडता है । इसके लिए या तो एक या दो बजे के लगभग विद्यार्थी को उठा कर पेशाब के लिए ले जाना एक उपाय है; अथवा किसी ऐसी वस्तु का सेवन कराना चाहिए जिसमें रात को पेशाब की हाजत होवे । रात को सोते समय दो तीन बादाम खा लेने से बहुत को रात को उठना नहीं पडता है, किन्तु यह देखना है कि यह उपाय सबपर सफल होता है या नहीं ।

अब्रह्मचर्य में से ब्रह्मचर्य में जानेवाले को जो खुराक प्रतिकूल आवे, उसे छोडना चाहिए । हो सकता है कि जो अब्रह्मचर्य में पडा ही नहीं था उसे अमुक भोजन बाधक न बने । इस कारण मैं यह कहने को तैयार नहीं हूँ कि उसके सामान्य रूप में फलाँ चीज जरूर अब्रह्मचर्य कराने वाली है ही । पर जो अब्रह्मचर्य के दोष में पड चुका है, उसे कितने समय तक खुराक के बारे में ध्यान रखना पडता है । इसमें कौन भोजन किसको प्रतिकूल है, यह तो सब अपने आप ही निश्चय करेंगे । रात को खिचडी या सोते समय गर्मागर्म दूध उत्तेजक जान पडते हैं । एकादशी को व्रतस्थ रहने के लिए मन तैयार हो चुका हो तौभी रात को मूँगफली जैसी वस्तु का फलाहार उत्तेजक होता है । अगर दूसरे किसी का ऐसा कोई अनुभव हो तो, वे उसका विचार करें ।

पर आज मुझे रात को खिचडी खाने या गर्म दूध से वीर्य-दोष का इतना डर नहीं लगता है । पर यह खुराक मेरे लिए कुपथ्य होने से दम्मे का डर लगता है । इस लिए जिसे भोजन कुपथ्य हो और उनका मन विकारशील हो तो, कुपथ्य वीर्यदोष पैदा करता है और शायद दूसरे दोष भी पैदा करे । अगर उसका मन विकारों के सामने कुछ दृढ हो चुका हो तो कुपथ्य दूसरे दोष भले ही पैदा करे, किन्तु वीर्य-दोष तो नहीं हो सकता । इस लिए मेरा मत यह है कि अगर मन विकारों की ओर झुका हुआ हो तो खुराक का असर वीर्यदोष पैदा करनेवाला बन करके होता है । इस लिए जब तक मन को विकारों के साथ जूझना पडता है, वहाँ तक खुराक के बारे में सावधानी चाहिए ।

दूसरी ओर जो वस्तुएँ शुक्र को गाढा करें या इन्द्रियों को ढीला रक्खें, उनका उपयोग छोड देने लायक नहीं है । इसके लिए दवा के विज्ञापनों की सलाह नहीं लेनी चाहिए । दूध के साथ थोडा जायफल लेने से मुझे सदा अच्छा अनुभव हुआ है । कहा जाता है कि शुक्र को गाढा करने का गुण जायफल में है । उससे नींद भी अच्छी आती है । विद्यार्थी को नींद की कमी होती है । और कितनी बार लोटपोट करते रहने पर भी नींद ला सकनेवाला विद्यार्थी अब्रह्मचर्य का दोष करके ढीला बन सो जाता है । इसलिए वैसे उपाय ब्रह्मचर्य के लिए इष्ट हैं कि झट गाढी नींद आ जाय ।

इसलिए ऐसी व्यवस्था इष्ट है कि विद्यार्थी सोने के पहले काम कर ले या इतना खेल ले कि जिसमें खूब थक जाय । साथ ही यह भी देखना रहा कि उसे इतनी थकावट न आ जाय जो शारीरिक विकास के लिए हानिकर हो । उसके साथ अगर पौष्टिक और सात्विक भोजन भी होवे तो बढती की इस उम्र में बिलकुल धानपान लडकों को छोड कर दूसरों के लिए बहुत की चिन्ता करने की जरूरत बहुत कम होगी ।

वीर्य दोष होता है, इस लिए शरीर को उपवासादिक से दुर्बल करना मैं भूल समझता हूँ । क्योंकि उपवास सर्वदा तो रक्खा नहीं जा सकता और उपवास तोडने पर अगर पेट में भी भार बढा तो वीर्य दोष हो जाता है । दूध वगैरह शक्ति बनानेवाले पदार्थों का त्याग भी मुझे उचित नहीं जँचता । उसकी की मर्यादा का अवश्य पालन करना चाहिए ।

(नवजीवन) **किशोरलाल घ. मशरूवाला**

राजस्थान में खादी

अक्तूबर १९२६ से सितंबर १९२७ तक, राजस्थान चर्खा संघ के काम का अहवाल नीचे दिया जाता है:

राजस्थान चर्खा संघ १६ मार्च १९२६ को खोला गया था। गत वर्ष के अंत तक यानी सितंबर १९२६ तक वह बहुत ही कम काम कर सका था। उस समय हमारे केवल दो केन्द्र थे, एक तो अमरसर में उत्पत्ति का और दूसरा अजमेर में ब्रिक्री का। उस समय अमरसर में एक हजार रुपये महीने से भी कम की खादी बनती थी और अजमेर भंडार की भी ब्रिक्री ५००) रु. महीने से अधिक की नहीं थी।

साल शुरू होने पर हमने बहुत ही कम आशा से काम शुरू किया। हमने तीन कार्यकर्त्ता लेकर अमरसर के आसपास के गांवों में खादी को फिरसे जिलाने के लिए घूमना शुरू किया। वहां की परिस्थिति बिलकुल स्वाभाविक थी। खादी के लिए अपने ही ढंग पर बहुत से कतवैये और बुनवैये काम कर रहे थे। उनका धंधा सत्यानाश के रास्ते जा रहा था। सूत ४ से ७ अंक का कतता था। बुनकर मिल के सूत का ताना बनाते और हाथ कते का बाना भरते थे। मगर कतवैये और बुनकर हमारी सलाह मानने को राजी हो गये। वे महीन सूत कातने को तैयार थे। बुनकर भी केवल हाथकते सूत का ही कपडा बुनने को राजी थे।

जनवरी १९२७ में हमने बांसा में एक केन्द्र खोला, और दूसरे महिने, एक और गोविन्दगढ में। उत्पत्ति धडाधड बढने लगी। निम्नलिखित अंकों से प्रगति का पता चलेगा:

		रु. आ. पा.
अक्तूबर	१९२६	९५०—२—०
नवंबर	,,	७९२-१२—०
दिसंबर	,,	१,०८०—३—०
जनवरी	१९२७	३,७८६-१४—९
फरवरी	,,	३,८९३—५—६
मार्च	,,	६,०९२—०—०
अप्रिल	,,	३,०२३—६—९
मई	,,	२,९३२-१०—०
जून	,,	४,६७५—२—९
जुलाई	,,	५,२७४—४—३
अगस्त	,,	८,२८७-१०—६
सितंबर	,,	८,७८७—१—०

[इनमें दूसरी संस्थाओं के अंक शामिल नहीं हैं। ये केवल चर्खासंघ के ही काम के आंकडे हैं।]

हमारे काम शुरू करने के पहले जुलाहे केवल रेजी यानी कम ताने वाने का झांझर का कपडा बुनते थे। बाजार में इन्हें कोई पूछता नहीं था। हमने उन्हें गोधा यानी गाढी बुनाई का कपडा बुनने को कहा। इसके लिए उन्हें १० अंक से ऊपर का उपयुक्त सूत मिलता नहीं था। कोई दो सौ जुलाहों ने महीन सूत के लिए प्रचार शुरू किया। उन्हें इसमें सफलता मिली और अब बहुत से कतवैये १० अंक से ऊपर का सूत कातते हैं। हमारा सारा का सारा कपडा प्रायः ८ या ९ अंक का गोधा या दसूती होता है। जुलाहों ने और भी किस्म के कपडे बुनने शुरू किये हैं, जैसे कि

१. रेजी
२. गोधा
३. दसूती
४. कोट के रंगीन कपडे
५. ७२" पहने का खेस
६. ५०" पहने की धोतियां
७. तौलिये
८. रुमाल, फेंटा वगैरह

उत्पत्ति केन्द्रों में खादी की लागत घटी नहीं, बल्कि रुई का दाम बढने से थोडी बढी ही है। लागत खर्च बढने पर भी हमने अगस्त १९२८ से फी थान ६ से ८ आने तक दर घटायी है। अधिक माल तैयार होने लगने से कार्यालय का खर्च घटा है, और इसी लिए हम दाम घटा सके हैं।

बिक्री में बढती

स्थानिक बिक्री १९५९६-१३-० रुपयों की हुई है। निम्नलिखित कारणों से यहां पर स्थानिक बिक्री बढाने में कठिनाई पडी है:

१. राजपूताना पिछडा हुआ प्रदेश है।

२. स्थानिक जुलाहे मिल के सूत का कपडा बुन कर खादी के नाम से बेंचते हैं, और वह हमारी खादी से सस्ता पडता है।

इन सब कठिनाइयों के हुए भी हमने फेरी, प्रदर्शन इत्यादि के जरिए बिक्री बढाने की कोशिश की।

इतना तो स्थानिक बिक्री के बारे में हुआ। राजपूताने के बाहर हमारी बिक्री बहुत बढ रही है। हमारी खादी बंबई, गुजरात, महाराष्ट्र, कराची और कलकत्ते में अपने अच्छेपन की वजह से खूब बिकती है। अब तक इस बाहरी बिक्री को बढाने के लिए हमने कुछ भी नहीं किया है।

बिजोलिया में मनोरंजक प्रयोग

बिजोलिया खादी कार्यालय वस्त्र-स्वावलंबन के लिए प्रचारकार्य कर रहा है। वहां की कुल १२,००० की आबादी में प्रायः आधे आदमी अपने ही काते सूत का कपडा पहन रहे हैं। बेशक यह बात उल्लेखनीय है। अमरसर में भी हम इसी तरह का काम शुरू करना चाहते हैं। यहां घर घर में एक एक चर्खा है और बहुत से जुलाहे हैं। कपास की खेती भी काफी होती है। इन सब सुविधाओं को देख कर, हमें आशा है कि हम असफल नहीं होंगे।

स्कूलों में कताई

उज्जैन के वकील श्रीयुत पुस्तके लिखते हैं कि ग्वालियर रियासत के उज्जैन जिले के पांच स्कूलों में तकली का प्रयोग चल रहा है। कोई पांच सौ लडके नित्य तकली चलाते हैं। लडके और साधारण लोग इस प्रयोग में बहुत दिलचस्पी लेते हैं। अगर प्रयोग सफल हुआ तो अधिकारी रियासत के हर एक स्कूल में तकली कताई का प्रवेश कराने का विचार करते हैं।

अछूत सहायक मण्डल

हमने श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय को अध्यक्ष, श्रीयुत देशपाण्डे को मंत्री और श्रीयुत कर्पूरचंद पटनी जैन को सभ्य बना कर यह मण्डल बनाया। श्रीयुत सेठ जमनालाल बजाज की सहायता से इस मण्डल को २,०००) रुपये भी मिल गये हैं। यह मण्डल अछूतों को शिक्षा देता है, उनके लिए कुएँ खुदवाता है और सभी जाति के लोगों को मुफ्त दवा बाँटता है। मंडल की ओर से अछूतों के लिए तीन पाठशालाएँ चलती हैं जिनमें कोई एक सौ लडके पढते हैं। कुछ ब्राह्मण और बनियों के लडके भी पढने आते हैं। अब तक मंडल ने रडवों के लिए एक कुँआ खुदवाने में मदद दी है। बहुत आदमियों को दवा भी बाँटी है।

इन सभी बातों से हमें गांधीजी का संदेश लोगों में पहुँचाने में सहायता मिली है।

(यं. इं.)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन बदी १० संवत् १९८४

कसौटी पर

रौलट ऐक्ट के आन्दोलन के जमाने में, विद्यार्थियों को जो हुआ था, वही बात फिर से दुहरा कर हो रही है। उन अनमोल दिनों में एक विद्यार्थी ने मुझे लिखा था, "मुझे तो मालूम होता है कि मैं मानों आत्मघात ही कर रहा हूँ क्योंकि सरकार मुझे अपने सभी विद्यालयों से निकाल रही है।" अब एक दूसरा विद्यार्थी लिखता है:

"फलां . . . के विद्यार्थियों ने मातृभूमि की पुकार सुनी और माता की आज्ञा सिर आंखों पर उठायी। हमने गत ३ फरवरी को हडताल किया था। इस साहसिक काम के लिए हम सब पर दो दो रुपये का जुर्माना हुआ है। बेचारे गरीब विद्यार्थियों की फीस की माफी, और उनकी छात्रवृत्तियां छीनी जा रही हैं। आप कृपा कर हमारे प्रधानाध्यापक मि० . . . . को पत्र लिखें या 'यं० इं०' की मार्फत उन्हें सलाह देवें। उन्हें कहिए कि हम लोग कुछ मुजरिम नहीं हैं। हमने कोई जुर्म नहीं किया है। हमने माता की पुकार सुनी, उसे माना, यथाशक्ति उसे बेइज्जती से बचाने की कोशिश की। उन्हें कह दीजिए की हम कायर नहीं हैं। आप हमारी सहायता को आगे बढिए।"

मैं मुख्याध्यापक के पास पत्र लिखने की सलाह पर अमल नहीं कर सकता। अगर उसे अपनी नौकरी भारी नहीं पडा है, तो मैं समझता हूँ कि उसे नियम-पालन कराने के लिए कुछ न कुछ करना ही पडेगा। जब तक शिक्षा-संस्थाएँ सरकार की छत्रच्छाया में हैं, सरकार के समर्थन में उनका उपयोग किया ही जायगा और जो विद्यार्थी या शिक्षक सरकार के विरुद्ध लोक प्रिय कामों का समर्थन करें वे अपना जोखम अच्छी तरह समझ लेवें, बरतरफ कर दिये जाने का खतरा उठाने को तैयार रहें। देश भक्त की दृष्टि से विद्यार्थियों ने जनता के आन्दोलन में शरीक होकर खूब किया और बहादुरी का काम किया। अगर वे देश की पुकार पर ध्यान न देते तो, उन पर कुछ और बुरा नहीं तो कम से कम देश-प्रेम की कमी का इल्जाम तो जरूर लगाया जाता। सरकार की दृष्टि से उन्होंने जरूर भूल की और उसके क्रोध-भाजन बने। वे दुरंगी चाल नहीं चल सकते। अगर उन्हें जनता का साथ देना है तो उन्हें अपने व्यक्तिगत 'भविष्य' को अपने उद्देश्य से नीचा स्थान देना पडेगा और देश-हित के विरुद्ध वह जब जाय, तब उसका त्याग करना पडेगा। मैंने यह १९२० में स्पष्ट देखा और बाद के अनुभवों ने पहली छाप को और पक्का कर दिया है। बेशक सबसे सुरक्षित और सम्मान जनक रास्ता तो है, चाहे कुछ भी हो, सरकारी स्कूलों और कौलेजों को छोड दिया जाय। मगर उनके लिए उससे उतर का दूसरा रास्ता है कि जब कभी सरकार और प्रजा में युद्ध होवे, वे अपने विद्यालयों से निकाल बाहर कर दिये जाने के लिए तैयार रहें। जैसे कि वे दूसरी जगहों पर बने हैं, अगर सरकार के विरुद्ध युद्ध में वे खुद नेता बनना न चाहें तो उन्हें कम से कम सच्चे और अटल अनुयायी तो जरूर ही बनना चाहिए। जिस बहादुरी से उन्होंने राष्ट्र की पुकार सुनी है, उसी बहादुरी से उसके फल भी उठावें। वे अपने को जलील न बनावें, जिन स्कूलों और कौलेजों से वे हटा दिये गये हैं उन्हीं में घुसने की कोशिश कर अपने स्वाभिमान को न कुचलें। अगर पहली ही परीक्षा में वे गिर गये तो उनकी यह बहादुरी बहादुरी न होकर शेखी बघारना कही जायगी।

मैंने सुना है कि हडताल के कुछ दिनों पहले विद्यार्थियों ने विलायती कपडे छोड दिये और खादी से खूब प्रेम करना शुरू किया था। उनके बारे में यह कहने का मौका नहीं आना चाहिए कि यह तो चलती चक्की का एक तमाशा था और बाहरी दवाव या आन्तरिक प्रलोभन के वश हो कर उन्होंने खादी को भी उतनी ही जल्दी छोड दिया है, जितनी जल्दी विलायती कपडा छोडा था। मेरे लिए तो विदेशी कपडे के मानी है विदेशी सरकार। क्याही अच्छा होता अगर इसे सभी कोई स्पष्ट बात मान लेते।

(यं० इं०) **मोहनदास करमचंद गांधी**

मेरा स्वास्थ्य

मेरे लिए यह बहुत बडे दुःख की बात है कि मेरे स्वास्थ्य के कारण बहुत से मित्रों को चिन्तित होना पडता है। अब मैंने महादेव देशाई ने मेरे स्वास्थ्य के बारे में जो चाहा, मैंने अनुमति के साथ, उन्हें लिखने दिया है क्यों कि जब कभी मेरा स्वास्थ्य भंग हुआ है, चाहे वह महत्व पूर्ण हो या नहीं, किन्तु सफर के दर्म्यान हुआ है और उसका कारण समझा जाता था अति परिश्रम और सफरों में मेरी सँभाल लेनेवालों के सिर मेरे स्वास्थ्य की एक जिम्मेवरी थी। मगर परिस्थिति अब बदल गयी है। इस समय मुझे सफर और महत्वपूर्ण सार्वजनिक कामों से छुट्टी मिली है। गुजरात के केवल कुछ हलचलों, खास कर राष्ट्रीय शिक्षा संबंधी, जिसके लिए खासकर मैं ही जवाबदेह हूँ, के ही पुनःसंगठन में मैं भाग ले रहा हूँ और वह भी, जितना चाहता हूँ उतना ही। मुझे आहार-संबन्धी प्रयोग करने का शौक शुरू से ही लगा रहा है। उन्हें करना मैंने जरूरी समझा था, इसलिए उन्हें भी कर रहा था। मेरे लिए तो वे भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं, जितने कि मेरे दूसरे महत्वपूर्ण काम, जिनमें कि समय समय पर मैं मशगूल रहा हूँ। इन्हीं प्रयोगों के दर्म्यान यह स्वास्थ्य-भंग कही जानेवाली घटना हुई। डाक्टरों के यंत्रो में जो शंकाजनक बातें दिखलायी पडीं वैसी कोई बात मेरे मन में नहीं आती है। मगर मैं ने डाक्टरों की यह बात मान ली है कि बहुत अक्सर लहू का भार बढने के रोग में रोगी को कोई बुराई नहीं जान पडती, जब कि यह खतरा शरीर में छिपा रहता है और इस लिए उसका बचाव जरूर करना चाहिए। मगर खुशी की बात है कि इन यंत्रों ने भी गत रविवार को कुछ उन्नति की खबर बतलायी। सिस्टोलिक प्रेसर २१८ एम. एम. घट कर १७८ एम. एम. हो गया है और डायस्टोलिक ११० एम. एम. से बढ कर ११८ एम. एम. पर पहुँचा है। डाक्टर हरिभाई देशाई और उनके डाक्टर मित्रों के आज्ञानुसार मैं आराम भी ले रहा हूँ और उनकी देखरेख में अपने आहार-संबधी प्रयोग भी करता जा रहा हूँ। डाक्टर मुथु भी, जिन्होंने शायद आहार का विशेष अध्ययन किया है, कृपापूर्वक मुझे पत्र द्वारा सलाह दिया करते हैं।

ये सब बातें कह चुकने पर मैं अखबारों के संवाद-दाताओं से प्रार्थना करूँगा कि आप अपने कलम रोकें, और अभी तो मुझे और मेरे स्वास्थ्य को भूल ही जायँ। और चिन्तित मित्रों से मैं कहूँगा कि आप मेरे स्वास्थ्य के बारे में कोई तरद्दुद न करें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, आप खातिर जमा रक्खें कि मुझे जाने की कोई जल्दी नहीं पडी हुई है। इस लिए उन आदर्शों के अनुकूल जिनपर मेरा शरीर न्यौछावर है, और जिन्हें मैं शरीर से अधिक कीमती समझता हूँ, जो सँभाल रखनी मेरे लिए संभव है

रक्खूँगा। भले ही मुझे कोई भाग्यवादी कहे किन्तु मेरा यह विश्वास है, और मैं मित्रों को भी यह विश्वास करने को कहूँगा कि परमात्मा की इच्छा बिना किसीका एक बाल भी बाँका नहीं हो सकता और जिस दिन उसे हमारे शरीरों से कोई काम नहीं रह जाता, वह अपना हाथ हटा लेता है तो धन, प्रतिष्ठा, देश-प्रेम, मित्रता इत्यादि के जरिए चाहे जो संभाल, जो ध्यान, जो विज्ञान क्यों न काम में लाया जाय, सभी का सभी धरा रह जाता है। इस विश्वास के मानी यह नहीं हैं कि सारे भारतवर्ष से बडी उदारतापूर्वक डाक्टर मित्र मुझे जो सहायता देते हैं, उसे मैं नहीं लेना चाहता। मैं वह सहायता खुशी से और विश्वासपूर्वक लेता हूँ। क्योंकि परमात्माने मुझे कोई बात बतलायी तो नहीं हैं किन्तु दूसरे आवश्यक कर्त्तव्यों के साथ साथ--जो कि मेरी समझ में मनुष्य-मात्र पर लागू है--मुझे शरीर-रक्षा का भी कर्त्तव्य दिया है।

मो० क० गांधी

(यं० इं०)

बारडोली में सत्याग्रह

परिस्थिति

पाठकों को सूरत जिले का बारडोली ताल्लुका भूला न होगा। वहांके किसानों पर जमीन की लगान बढती के रूप में अभी एक संकट आया है। कुछ दिन हुए सरकार ने लगान बढती के लिए जाँच करने को एक सेट्ल-मेन्ट अफसर भेजा। उसने बिना किसी से पूछे ताछे बढती की सलाह देकर अपनी रिपोर्ट भेज दी। उसकी राय में गत तीस वर्षों में ताल्लुके की समृद्धि बढी है। पर ऐसी राय देने के पहले उसे लोगों से ३० दिन भी सलाह बात करने की जरूरत नहीं जान पडी। लोगों को उज्र पेश करने को कहा गया। उज्र पेश भी खूब हुए मगर उन पर ध्यान कौन देता है? वहां तो अगर किसीने आप मिहनत करके अपनी कमाई बढाई, अगर कालीपरज लोगों ने शराब छोड कर पैसा बटोरा तो कहा जाता है कि इनपर अधिक महसूल लगना चाहिए, चाहे इस कथित समृद्धि में सरकार का कुछ हाथ हो वा नहीं। ऐसी निर्लज्ज दलील तो इसी सरकार के राज्य में हो सकती है। सेट्लमेन्ट अफसर ने कपास की दर बढने के आंकडे दिये हैं मगर उसके जवाब में जब यह कहा जाता है कि ये आंकडे उन दिनों के हैं जब लडाई के बाद सभी चीजों की कीमत बेहद बढ गयी थी और उनपर आधार नहीं रक्खा जा सकता तो सरकार कहती है कि, "यह तो लिखा ही नहीं कि किस साल दर चढी थी!" मानों सरकार को इसकी खबर ही नहीं है। और फिर तुरत ही बाद में कहती है कि "संसार-व्यापी युद्ध का असर कुछ न कुछ तो पडा ही होगा।" जो असर पडे ही नहीं तो असाधारण भाव कहां से आवे? सरकार के गले यह बात भी नहीं उतरती कि किसान दिन दूने, रात चौगुने कर्ज की जंजीर में जकडे चले जाते हैं। रावबहादुर भीमभाई नायक ने जो कि लेजिस्लेटिव काउन्सिल के सभ्य हैं, गांव गांव में घूम कर, जांच करके कर्ज के आंकडे तैयार किये हैं। तीस साल पहले जब लगान निश्चित हुई थी तब की सरकारी रिपोर्ट कहती है कि लोगों को कोई ३२ लाख का कर्ज था। आज वह कर्ज ९३ लाख कूता जाता है। सरकार कहती है कि "भला इतना कर्ज होने का सबूत क्या है?" धारासभा के सभ्य ने इतनी बारीकी से जो आंकडे निकाले वे झूठे और सरकार के अफसर दफ्तर में बैठे बैठे जो कुछ लिख मारें वह सच! महसूल बढाने की धारा की सरकारी भाषा भी नमूने की ही है। सुनिए, "अगर किसान के मानी काश्तकार है तो इससे क्या मतलब कि किसान कर्ज से लदा है? अगर किसान के मानी जमीन्दार हो जो लगान पर जमीन देता है तो वह कर्जदार नहीं हुआ है। और अगर किसान उस जमीन्दार को कहें जो अपना खेत आप ही आबाद करता हो तो उसे वही लगान मिलता है जो दूसरे जमीन्दारों को मिलता है और साथ ही वह काश्तकारी की मजदूरी भी पैदा कर लेता है।" उसे कैसा कर्ज हो! इसीको कहते हैं, चित भी मेरी, पट भी मेरी। वर मरो या कन्या मरो, मेरी गोद का भाडा भरो। लोगों की ओर से जितने उज्र पेश किये गये हैं सभी गलत और सरकार की भविष्यद् वाणी है कि लोगों की समृद्धि तो बढेगी ही --- और वह भी बढे हुए महसूल से ही!

यों सभी उज्र सरकारने हँस कर इनकार कर दिये किन्तु सेट्लमेन्ट अफसर की सलाह नहीं मानी। शायद गलत आधारों पर दी गयी सलाह अनुचित जँचा होगी, और इस लिए, नया रास्ता ढूँढा। सेट्लमेन्ट अफसर के भी बडे अफसर सेट्लमेन्ट कमिश्नर ने उनके चकलाबंदी या वर्गीकरण को नामंजूर किया और नया ही वर्गीकरण कर के जमीन के दाम के आधार पर ही अपनी सलाह दी! यों एक बार लोगों ने एक अफसर की राय के विरुद्ध उज्र पेश किये तो सरकार ने उससे भी बडे अफसर की नयी शैली, नया हिसाब किताब और नयी सलाह पेश की! और इसपर तो उज्र भी कोई नहीं कर सकता! सरकार ने यह सलाह मान ली, और फी सैकडे २२ रुपये की वृद्धि ३० साल के लिए की है।

इस अन्यायी बढती का विरोध करने के लिए बारडोली ताल्लुके के लोग श्रीयुत वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में इकट्ठे हुए थे। वहां सरकार की अन्यायी लगान-नीति पर विचार करना नहीं था, सरकार की टीका भी नहीं करनी थी, केवल यही देखना था कि लोग विरोध करने को तैयार हैं या नहीं। इस सभा में धारा-सभा के भी तीन सदस्य उपस्थित थे। उनसे जितना कुछ हो सका उन्होंने किया। उन्होंने यह कह कर कि अब तो बात हमारे बूते की नहीं रही हाथ धो लिया है और वल्लभभाई जैसे सत्याग्रही लडाई के सरदार के पास जाने की लोगों को सलाह दी है। श्री. वल्लभभाई ने पहले तो कार्यकर्त्ताओं की जाँच की। देखा कि उन्हें सत्याग्रह का शौक नहीं है। वे तो हजार बार देख कर फूँक फूँक कर पांव रखना चाहते हैं। तब उन्होंने गांवों के प्रतिनिधियों को बुलाया। ७९ गांवों के प्रतिनिधि और ताल्लुके में काम करनेवाली सभी जातियों के प्रतिनिधि आये थे। सभी जिम्मेवार आदमी थे। अच्छे अच्छे जमीन्दार थे। तीन सौ से पांच सौ सालाना लगान देने वाले जमीन्दार थे। एक पारसी सज्जन तो ७०० रुपया देनेवाले थे। इन लोगों ने आग्रहपूर्वक जाहिर किया कि यह वृद्धि अन्याय-पूर्वक की गयी है और उसे नहीं देना चाहिए। श्री. वल्लभभाई ने एक एक कर के सबसे पूछना शुरू किया। पांच गांव के आदमियों ने कहा; "हम पुराना लगान दे देवें और बाकी को सरकार की खुशी, जैसे हो हम से ले लेवें। हम नहीं देंगे।" दूसरे सभी इसपर अटल थे कि "जब तक सरकार पुराना लगान ही लेने को तैयार नहीं होती और इस वृद्धि को छोड नहीं देती तब तक हम कुछ भी नहीं देंगे।" लोग बडी निखालसता से बातें करते थे। कोई तो सारा गांव भले ही पीछे हट जाय किन्तु आप अटल था, तो कोई गांव के साथ चलनेवाला था, मगर गांव ही सारा का सारा, महसूल न देने को डटा हुआ था।

यों सब किसीकी पूरी जाँच करने के बाद भी वल्लभभाई ने अपने भाषण में सुनाया, "मैं कुछ खेल करना नहीं चाहता। बेजोखम के काम में मैं हाथ नहीं डालता। जिसे जोखम उठाने हों, उसीके पास मैं टिक सकता हूँ।" अंत में सात दिनों तक फिर खूब शान्ति से जोखमों का विचार कर के निश्चय करने की सलाह दी।

इस बीच उन्होंने सरकारी अफसरों से भी सलाह करने और निष्पक्ष पंच चुनने की सूचना करने की भी बात की। यह पत्र उन्होंने गवर्नर साहब को लिखा और उसके जवाब में उन्हें केवल प्राप्ति-स्वीकार ही मिला है जिसमें लिखा है कि पत्र 'रेवेन्यू डिपार्टमेन्ट' के विचार और कार्रवाई के लिए भेज दिया गया है। गत १२ फरवरी तक उन्हें इस बारे में और कोई सूचना नहीं मिली थी।

सत्याग्रह की घोषणा

इसलिए श्री. वल्लभभाई ने अपना पुराना कार्यक्रम बदलना ठीक नहीं समझा और वे पूर्व-निश्चयानुसार बारडोली ताल्लुके के लोगों से गत १२ फरवरी, रविवार को मिले। इस बीच लोगों ने भी पैरों तले घास जमने नहीं दिया था। आपस में वे लगान न देने के फलाफलों की चर्चा करते रहे और उन्होंने सचमुच ही लगान न देने के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कराने शुरू कर दिये। इस बार की सभा में बहुत आदमी आये थे। पहले से अधिक गांवों ने अपने प्रतिनिधि भेजे थे और कइयों ने प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करा के भी भेजे थे। एक एक आदमी ने उठ कर अपने गांववालों का किया काम सुनाया। उनकी बोली में शान्त विचारशीलता और दृढ-निश्चयता झलकती थी। अगर सभी के सभी उठ उठ कर केवल एक ही शब्द तोते के समान दुहराते जाते तो उनके शब्दों की कोई कीमत न होती। सबने अपने ही अपने ढंग से अपनी कथा कह सुनायी। एकने कहा, "मेरे गांव में तो ५८ आदमियों ने प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कर लिये मगर अभी १२ और करने को हैं। खैर उनकी कोई पर्वा नहीं है।" दूसरा बोला, "गांव के पटेल को छोड कर सबने हस्ताक्षर किये हैं, मगर पटेल भी हमारे विरुद्ध नहीं है।" "अरे हमारे पटेल ने तो अपनी मालगुजारी पहले ही चुका दी है। उस गांव में एक बनिये ने भी यही किया है। मगर उनका भरोसा ही हमने कब किया था?" फिर किसीने कहा, "हां, हमारे गांव में कुछ लोग हैं जो हमसे अलग हैं, मगर हम तो उनकी पर्वा ही नहीं करते। बाकी हम लोग तो चाहे कुछ हो जाय, लगान कभी नहीं देंगे। बाकी तो परमात्मा के हाथों है।" बहुतों का दावा था कि, "हमारे गांव में सभी किसीने हस्ताक्षर कर लिये हैं।" तीन चार ने बडे गर्व से कहा, "मेरा सारा गांव अंत तक डटा ही रहेगा। उसका जिम्मा मुझपर रहा।"

ये सब बातें सुन कर फिर श्री वल्लभभाई ने कहा, "मैं फिर कहता हूँ कि अन्तिम निश्चय करने के पहले एक बार खूब अच्छी तरह से सोच समझ लो। इस भरोसे मत भूल जाना कि तुम्हारा नेता मुझ जैसा लडाका है। मुझे और मेरे साथियों को भूल जाओ। अगर तुम्हारे दिल में लगे कि अन्याय और अत्याचार का विरोध करने के लिए तुम्हें लडना ही चाहिए, तभी लडो। ढीले दिल से इतना गंभीर काम मत करो। अगर तुम असफल हुए तो फिर बहुत वर्षों तक तुम सिर भी नहीं उठा सकोगे और सफल हुए तो तुमने हिन्दुस्तान के स्वराज्य की नींव डालने में बहुत कुछ काम कर लिया होगा। अब तुम अपने प्रस्ताव आप बनाओ, आप पेश करो, आप उनका समर्थन करो और आप ही स्वीकार भी करो। हममें से उन पर कोई नहीं बोलेगा। तुम अपनी राजीखुशी से आप प्रस्ताव करो।"

इसके बाद सभा शुरू हुई। वल्लभभाई ने पहले गवर्नर की चिट्ठी की कथा कह सुनायी। "जैसे कि मैंने पिछली दफे कहा था, मैंने गवर्नर साहेब को एक निष्पक्ष पंचायत नियत करने की चिट्ठी लिखी थी। उसका जो जवाब मुझे मिला है, उसे जवाब कही नहीं सकते। मेरा पत्र रेवेन्यू डिपार्टमेन्ट में विचार और उचित कार्रवाई के लिए भेज दिया गया है। पता नहीं, उनका विचार कब तक खत्म होगा, और हम उसका रास्ता देखने के लिए भी नहीं रुक सकते। अगर गवर्नर साहेब ने यह कहा होता कि जब तक वह पत्र विचाराधीन है, लगान की उगाही मुल्तवी रहेगी और आप अपनी सभा स्थगित करे तो मैं बडी खुशी से यह बात मान लेता। मगर अब तो मुझे तुम्हारा ही फैसला सुनने को रहा है। मैंने इस बीच कानून की किताबें भी देखी हैं, और मेरी समझ में कानून की रू से भी यह बढती गैर कानूनी है।

"इस परिस्थिति में जब तक कि सरकार समझौता न करे मैं बडी नम्रता से तुम्हें सारा लगान देना इन्कार करने की सलाह दूँगा। तुम भली भांति समझ लो कि कष्ट सहिष्णुता और दृढ निश्चय को छोड कर, सरकार के पाशविक बल से जूझने के लिए तुम्हारे पास दूसरे कोई अस्त्र नहीं हैं। अगर प्रजा कष्ट सहने को तैयार है तो बडे से बडे जालिम को भी झुकना ही पडेगा। सवाल कुछ कई लाख रुपयों का ही नहीं है, बल्कि यह झगडा स्वाभिमान का पालन के एक मौलिक सिद्धान्त का यानी कि प्रजा का मत लिये उसपर कर नहीं बैठाया जा सकता। तुम्हें पूछे बिना उन्हें कुछ भी नहीं करना चाहिए। तुम्हें तो इस पद्धति का विरोध करना है कि सरकार के सिर जैसी सनक चढे, उसी भांति तुम पर स्वच्छन्दता से कर बैठावे।

"इस विरोध के लिए तुम्हें और धीर रहना पडेगा। सरकार तुम्हारी जांच कई तरीकों से करेगी। तुम्हें भांति भांति के लालच दिखलावेगी। भांति भांति के बुरे तरीकों के जरिए तुम्हें फूट डालने की कोशिश करेगी। मगर तुम्हें इसी बात पर डटे रहना होगा कि चाहे जितने कष्ट उठाने पडें, चाहे जो हो जाय, मगर हम तो लगान देंगे ही नहीं।

"मैंने तुम्हारे प्रस्ताव में इतना और जोड देने की सलाह दी है कि जब तक सरकार निष्पक्ष पंचायत न बैठावे या बढती का हुक्म लौटा न लेवे, यह युद्ध चलता रहेगा। इसके मानी यह नहीं हैं कि इस लगान-बढती के अन्याय में हमें कोई शक है किन्तु अगर हमने सरकार से स्वतंत्र पंचायत का सिद्धान्त कबूल करा लिया तो फिर यह लाभ किसी स्थायी या अस्थायी भौतिक लाभ से कहीं बडा होगा।

"इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है। आंखें खोल कर परमात्मा को साक्षी रख कर, तुम्हें जो करना हो करो। यह भी संभव है कि औरों को डराने के लिए सरकार तुम्हारे नेताओं को चुन लेवे और पहले उन्हींको खब सजाएँ दे। यह भी हो सकता है कि आज जो लोग यहां प्रस्ताव पेश करें, पहले उन्हींकी जायदाद जब्त कर ली जाय। अगर तुम्हें निश्चय है कि ऐसी चीजों से डिगाये तुम नहीं डिगोगे तो इस धर्म युद्ध में लग जाओ, धर्म के यह लडाई लडो।"

ताल्लुके के भिन्न २ गांवों के सभी समाजों — कुनबी, अनाविल, बनिया, पारसी, मुसलमान — सभी किसीने आपस में ही मिल लिखित प्रस्ताव पेश कर के आप समर्थन किया और स्वीकार किया।

"बारडोली ताल्लुके की प्रजा की यह सभा निश्चय करती है कि बारडोली में लगान का जो दुबारा निश्चय हुआ है, वह निरंकुश, अन्यायी और अत्याचारी है और सभी जमीनवालों को सलाह देती है कि जब तक सरकार अपने सारे बकिऔते के साथ पुराना ही लगान लेने पर राजी न हो या लगान के दुहराने के सारे झगडे पर मौके पर ही जाँच कर के, फैसला देने के लिए निष्पक्ष पंचायत न बैठावे वे नया लगान देने से इनकार करें।"

प्रस्ताव-कर्ता ने बहुत ही छोटा सा भाषण किया। उसके बाद दो आदमियों ने और भी छोटे भाषण किये। फिर बाद में जितने आये सबने भाषण के ही समर्थन किया।

इसके बाद फिर कोई भाषण नहीं हुआ। भाषण के दिन तो बीत गये थे। कुरान की एक आयत और एक हिन्दू भजन के गाये जाने बाद रामनाम का थोडी देर तक सारी सभा ने उच्चारण किया और गंभीरता-पूर्वक शान्ति से प्रस्ताव स्वीकार किया गया। स्वयंसेवक भर्त्ती किये जा रहे हैं। श्रीयुत वल्लभभाई पटेल ने गांवों में घूमना शुरू कर दिया है।

महादेव देशाई

(यं० इं० और नवजीवन)

आदर्शों का विकास

[काका कालेलकर के गुजरात विद्यापीठ की व्याख्यानमाला में दिये हुए एक भाषण के महत्वपूर्ण अंश राष्ट्रीय शिक्षा के सभी प्रेमियों के लिए लाभकर समझ कर नीचे दिये जा रहे हैं। सं० 'हि० न०']

२

राष्ट्रीय शिक्षा का इतना अनुभव लेने बाद हमें जानना चाहिए कि शिक्षा कुछ लिखाना, पढना या गिनना सीखने की सुविधा भर का ही नाम नहीं है। यह तो एक स्वतंत्र दर्शन है। और जीवन के हर एक महत्व के प्रश्न का रहस्य जो खोले और हर एक कठिनाई का हल जो विशिष्ट रूप से करे वह दर्शन कहलाता है। सांख्य वैशेषिक, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत इत्यादि हमारे पुराने या सनातन दर्शन तो हैं ही। दूसरी दृष्टि से विचार करते हुए हाल के लोगों ने दूसरे ही दर्शन सोचे हैं। कानून भी ऐसा ही एक दर्शन गिना जायगा। इस विश्वास को कानून धर्म, या कानून दर्शन कहते हैं कि समाज की हर एक मुश्किल कानून के जरिए दूर की जा सकती है और अच्छे कानून बनाकर समाज का विकास कराया जा सकता है। अर्थशास्त्र भी एक स्वतंत्र दर्शन बनना चाहता है। इस अर्थदर्शन का दावा यह हैं कि व्यापार और पूँजी का समुचित उपयोग करके चाहे जिस क्षेत्र में इष्ट परिणाम लाये जा सकते हैं। इस एक ही सूत्र में कि 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते' इसका सारा विश्वास समाया हुआ है। यह शास्त्र बारंबार कहता है कि मैं अन्तर्राष्ट्रीय द्वेष, मत्सर और उनसे उत्पन्न होनेवाले युद्ध भी बंद कर सकता हूँ। अपना आचार और विधियाँ लेकर हर एक धर्म कहता है कि, "मैं ही एक परमदर्शन हूँ। मेरी शरण आवो। मेरा साम्राज्य सभी कोई स्वीकार कर लो तो दुःखों का नाश होगा।" धर्ममात्र को वहम गिनने वाला विज्ञान प्रचंड आत्मविश्वास से कहता है कि, "दुनिया में क्या कोई ऐसा भी दुःख है जो मैं न दूर कर सकूँ? पंच महाभूत केवल मेरे ही सामर्थ्य से तो मनुष्यों के दास बने हैं। रोग, भूखमरी, मानसिक मुश्किलें, वहम जो कुछ हो, सभी को दूर करने का एक ही उपाय है, विज्ञान का विस्तार करो।' सत्ता तो विश्वामित्र के समान कहती है कि" "कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुम्' शक्ति तो केवल एक मेरी ही है न? बेचारा अर्थशास्त्री तो मेरा दास है। कानून मेरे हाथ का खिलौना है।" सौम्य और रमणीय कला कहती है, "इतनी जबर्दस्ती किस लिए? देहदंडन भी किस मतलब के लिए? मेरी उपासना कर देखो। उस में से तो चारों पुरुषार्थ मिल सकते हैं। मैं सार्वभौम भी हूँ और सुभग भी हूँ। मेरे यहां कष्ट भी सुखद ही लगेगा। और आध्यात्मिक साधना पहाड की कठिन चढाई के समान मुश्किल न लग कर अत्यंत सहज और रसभरी हो पडेगी।"

ऐसे ऐसे अनेक दर्शनों में शिक्षा भी अपना स्थान लेना चाहती है। वह कहती है, "मैं विज्ञान की सखी नहीं, कला की प्रतीहारी नहीं, सत्ता की दासी नहीं, कानून की किंकरी नहीं, अर्थशास्त्र की बांदी नहीं हूँ। मैं तो धर्म का ही पुनरागमन हूँ। मनुष्य के हृदय, बुद्धि और तमाम इन्द्रियों की स्वामिनी हूँ। मानसशास्त्री और समाजशास्त्री ये दोनों मेरे पग हैं। कला और हुनर मेरे हाथ हैं। विज्ञान मेरा मस्तिष्क है। धर्म मेरा हृदय है। निरीक्षण और तर्क मेरी दो आँखें हैं। इतिहास मेरा कान है। स्वातंत्र्य मेरा श्वास है। उत्साह और उद्योग मेरे फेफडे हैं। धीरज मेरा व्रत है। मैं ऐसी जगदंबा हूँ, जगद्धात्री हूँ। मेरी उपासना करनेवाला दूसरे किसीका भरोसा नहीं रखता। उसकी सभी कामनाएँ मेरी ही मार्फत पूरी हो सकती हैं।"

सचमुच ही समाज के हाथों बडा से बडा अस्त्र शिक्षा है। जो कोई समाजहित का विरोध करता हो उस पर अंत में यह अस्त्र फेंके बिना निस्तार नहीं है। हिन्दू निर्माल्य और वहमी बन गये हैं। उनपर शिक्षा का अस्त्र चलाओ, मुसलमान राष्ट्रहित नहीं समझते। उनपर भी यही अस्त्र चलाओ। माबाप लडकों का हित बिगाडते हैं, उन्हें कायर बनाते हैं, उनके पांख कतरते हैं। चलाओ उन पर शिक्षा का अस्त्र। सामाजिक प्रगति में, राजनीतिक लडाई में, गृह-जीवन की पुनर्रचना में, स्वदेशी के प्रचार में अथवा धर्म के संस्करण में जहां देखो वहां मूढ किन्तु प्रभावशाली विरोध तो स्त्रियों की ही ओर से होता है। अब इनका किया क्या जाय? इन्हें भी तो शिक्षा देने पर ही छुटकारा है। मजूरों को लीजिए या किसानों को, भीलों को या अंत्यजों को, शिक्षा के बिना इनकी दशा सुधरने की नहीं। सारे राष्ट्र में क्षात्रवृत्ति जगाने के लिए आखिर कैसर को भी शिक्षा का ही आसरा लेना पडा था। और शान्ति का — अहिंसा का — अवैर का — सन्देश फैलाने के लिए भी पाश्चात्य लोगों को शिक्षा का ही पल्ला पकड़ना पडता है। किसी सामाजिक या व्यक्तिगत दुःख को दूर करने का एक रास्ता तो शिक्षा ही है। अरे, ईश्वर की बनायी हुई सनातन संस्था — गृह-कुटुम्ब — भी बिगडी हुई हो तो उसे भी सुधारने का रास्ता शिक्षा ही है। शिक्षा तो मनुष्य-जाति का स्वभाव है। हर एक मनुष्य का यह हक है। हर पीढी का यह कर्त्तव्य है। शिक्षा की ओर दुर्लक्ष्य कर के कोई राष्ट्रीय आन्दोलन अधिक दिनों टिक नहीं सकता। चाहे जो राष्ट्रीय आन्दोलन लीजिए। अगर उसकी परंपरा टिकानी होवे, उसके आदर्श और साधनों को खिलाना होवे, तो शिक्षा की ही शरण लेनी होगी। युद्ध के प्रसंग में सैनिकों का उपयोग करना दूसरी बात है, और सैनिकों को तैयार करना जुदी ही बात है। युद्ध में सैनिक गढते हैं, बनते हैं सही, किन्तु लंबे या अधिक दिनों के विग्रह में से यश के साथ पार उतरने के लिए जो श्रद्धा चाहिए, जो दृष्टि चाहिए और जिन विविध कुशलताओं की जरूरत पडती है, वे तो बिना शिक्षा के मिलने से रहीं। हमारे शासनकर्त्ताओं ने दूसरे सभी विभागों के खर्च में काट छांट कर के एक ही अपवाद रक्खा था और वह शिक्षा-विभाग में। इसमें भी क्या शंका है कि जो राष्ट्र अपने युवकों की सच्ची शिक्षा की ओर से उदासीन रहता है, वह आत्म-हत्या का पाप लादता है?

यह कहना कि राष्ट्र को शिक्षा चाहिए, इसके बराबर है कि शरीर को खूराक चाहिए। पर सभी तरह की खूराक शरीर को कुछ अनुकूल नहीं होती। मुख्य सवाल यह है कि किसी खास शरीर के लिए खास उम्र में किस भांति की खूराक चाहिए। अब तक हम बडे शौक से, रसपूर्वक, सरकारी शिक्षा के दोष गिनाते आये हैं। एक भी जोडा नहीं है। पर क्या केवल सरकार ही भूल करती है? प्रजा क्या कभी भूल करती ही नहीं? राष्ट्रीय शिक्षा का एक प्रयोग पूरा कर चुकने बाद हमें देखना चाहिए कि इसमें क्या क्या न्यूनताएँ, क्या क्या त्रुटियां रह गयी हैं। और इस अनुभव के आधार पर हमें नयी योजना बना कर नयी शुरुआत करनी चाहिए।

पहली भूल यह हुई कि हमने यह निश्चय नहीं किया कि शिक्षा के जरिए हम किसकी सेवा करना चाहते हैं। हम कहते आये कि हिन्दुस्तान की शक्ति उसके गरीबों में पडी हुई है। हमारी संख्या का बल तो दुनिया को डरानेवाला है। हमारी गरीबी से अनेक निराशाएँ पैदा हो सकती हैं। हमारे भोलेपन में धर्म तेज सोया हुआ है। हमारे वहम भी हमारी भली बुरी श्रद्धा और ईश्वर-निष्ठा को ही बतलाते हैं। हमारी परलोकपरायणता में से निर्भयता और मृत्यु से लापर्वाई जग उठ सकती है। पर इन्हीं गरीब लोगों के लिए हमारी शिक्षा ने अब तक क्या किया है? यह कहने से भी चल सकता है कि हमारी शिक्षा का मुँह अब तक गरीबों की ओर फिरा ही नहीं है। क्या हम इन विचारों के आधार पर कभी अपना पाठ्यक्रम बनाते हैं कि गरीबों को क्या चाहिए, गरीबों की सेवा का व्रत लेनेवालों में क्या लियाकत चाहिए?

यह बात भी जाने देवें। इसमें कोई मतभेद नहीं है कि मनुष्यत्व का संपूर्ण विकास करने के लिए सभी इन्द्रियों को कुशलता पूर्वक इस्तैमाल करना आना चाहिए। हमने हाथ पैर हिलाने की योजना कहां की है? सारे जगत् में मनुष्य प्राणी आजीविका पैदा करने के लिए, अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए, और समाज-सेवा करने के लिए किसी न किसी धंधे की शरण लेता है। इन धंधों का हमने विचार सा भी नहीं किया है। 'हस्तपादादि-संयुक्ता यूयं किमवसीदथ' का वचन होने पर भी आप किस लिए हाथ पैर तोड कर बैठे हुए हैं? भगवान् व्यास का यह उलाहना आज भी हम पर लागू पडता है। हाथों से काम करने का अवसर आने से ही जिन्हें कँपकँपी छूटती है, उन लोगों को सुशिक्षित कह कर हम इस शब्द की ही दुर्गति क्यों करते हैं? क्या यह डर हमारे मनों से अब तक नहीं गया है कि अब तो बुनाई की बात चल रही है, अरे इसके बाद तो चर्खा आवेगा है।

यह भी नहीं है कि आज तक हमने उद्योग धंधों की शिक्षा की बात न की हो। राष्ट्रीय शिक्षा का हलचल हमेशे ही राजनीतिक जागृति में से पैदा होता है। उस समय जहां तहां स्वराज की ही बात चलती है। यह ज्वार कुछ पीछे हटते ही, राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रीय अपनापन या आत्म स्वरूपत्व आदि संस्कृति की बातें शुरु होती हैं। बाद में, उससे और नीचे उतरने की पगडंडी इतिहास संशोधन और साहित्य-सेवा है। इनके दिन पूरे होते ही धर्म की बातें शुरु होती हैं। हमारा सामान्य धर्म कौन सा है, हमारा राष्ट्रीय धर्म क्या है? इनमें से मत भेद की शाखाएँ, या फुनगियाँ फूटती हैं। इसके बाद यह चिन्ता आ खडी होती है कि विद्यार्थी कैसे टिकें, अनिष्ट शिक्षक किस भांति हटें, एक आदमी के हाथ में प्रबंध कैसे रहे और धन कैसे मिले। विद्यार्थियों के 'कैरियर' (career) अथवा भविष्य जीवन की आशाओं और संभवताओं के बारे में तो विचार न करने की बात पहले से ही कह दी गयी होने पर भी संख्या घटने से यह विचार आने लगता है कि 'कैरियर' का कुछ प्रबंध किये बिना छुटकारा नहीं है। इसकी कल्पना करनी कठिन नहीं है कि उतार के समय के ये विचार कैसे स्वरूप लेते हैं। जिल्दसाजी, दर्जी का काम, बेंत की बुनाई का काम, फोटोग्राफी वगैरह छोटे छोटे धंधे सूझने लगते हैं। ऐसे कामों के लिए उच्च कोटि के शिक्षक रखने की सुविधा भला कहां से होवे? पुराने शिक्षक तो सभी के सभी शब्दशास्त्री हैं। हमारी मुख्य लियाकत तो यह है कि हमें पाठ्य पुस्तकों का अर्थ बतलाना और बडे बडे ग्रंथों का सार निकालना आता है। यह किसी धंधे में काम आता नहीं है। धंधे में तो 'सैंकडे तैंतीस नम्बर से पास' का हिसाब नहीं चलता। बढईगीरी में अगर कोने और जोड ठीक ठीक न बैठें तो बक्स बनेगा ही [illegible] और बुनाई में अगर टूटा तागा जोडना न आवे तो वह [illegible] चुकाये बिना छोडे नहीं। इस पर भी तुर्रा यह कि जो कारीगर [illegible] रखते हैं वे तो कभी शिक्षा का आदर्श, शिक्षण-पद्धति, विद्यार्थियों [illegible] मानस, और पवित्र धंधे के लिए किया गया स्वार्थत्याग, आदि [illegible] सुने हुए होते नहीं। रसिक शब्द-शास्त्री समय पाकर संस्थाको [illegible] जाते हैं। हुशियार विद्यार्थियों को टेक का कुछ इजारा मिला हुआ [illegible] होता नहीं, इसलिए गुरुजनों का अनुकरण करने को उनका भी [illegible] चलता है। संस्था के बडे बूढे या संरक्षक होशियारी की '[illegible]' या मात्रा तो देते ही जाते हैं और अपना नाम देने का आश्रय [illegible] लेने की धमकी देते जाते हैं। इसके बाद सरकारी सहायता [illegible] संस्था चलाने की सूचना आयी कि मानों की संस्था की [illegible] आ गयी।

गुजरात के भाग्य में ऐसा कडवा भाटा नहीं आया है [illegible] मैंने तो राष्ट्रीय आन्दोलन के दो तीन ज्वार भाटे कई प्रान्तों [illegible] देख कर ये बातें कही हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा की सच्ची शुरुआत तो मुट्ठी भर श्रद्धावान् [illegible] के हाथों तभी होनी चाहिए जब कि समाज अव्यवस्थित हो, [illegible] टूट गया होवे और अनेक प्रश्न समाज को पीडित कर रहे हों। कहा जाता है कि जापान के सामुद्रिक सेनापति टोगो तब [illegible] ले कर सफर को निकलते और सिपाहियों से कवायद कराते [illegible] जब कि समुद्र में तूफान उठी हो। राष्ट्रीय शिक्षा का भी ऐसे [illegible] प्रसंगों पर उपयोग है। अगर पक्के पाये पर छोटी सी ही शुरू[illegible] की हो तभी वह आगे जा कर दृढ-मूल और सुविस्तृत बनता है।

जिनसे सहज ही गुजर हो, ऐसे छोटे बडे हुनरों की [illegible] हम देने के नहीं, किन्तु हमें तो विद्यार्थियों को राष्ट्रीय महत्व [illegible] राष्ट्रव्यापी धन्धों की महीन से महीन बातों की जानकारी करा देनी है। हम तो ऐसी शिक्षा देना चाहते हैं जो खर्चीली सरकार और [illegible] गर्ज तथा आलसी उच्चवर्ग के बोझे के नीचे दबे हुए और [illegible] हुए आमवर्ग को सुलभ होवे।

इसकी बनिस्बत कि विदेश के व्यापार और राजनीति में [illegible] सी भाषा उपयोगी है, हमें यह विचार करना है कि हमारे [illegible] भाई कौन भाषा बोलते हैं, और किस भाषा में हमारी बात [illegible] सकते हैं। हमें इस प्रकार की रहन सहन सीखनी है कि जिससे गरीबों के साथ रहने में हमें तकलीफ न जान पडे, और हम उनके लिए दुष्प्राप्य न बन पडें, हमें ऐसा साहित्य नहीं सिखलाना है जिससे विलास के असंख्य और बढते हुए स्वरूपों की ओर [illegible] आकर्षित होवे किन्तु ऐसे संस्कारी साहित्य के साथ परिचय कराना है कि जिसमें स्वमान का भान होवे, पराक्रम की पिपासा जागे [illegible] चारित्र्य का तेज बढे; जमाना का प्रभाव, आधुनिक प्रगति, पाश्चात्य लोगों के अनुभव, इत्यादि शब्द प्रयोग कर लोगों को चारित्र्य की शिथिलता सिखलानी नहीं है किन्तु सादगी में छिपी स्वतंत्रता और उद्योग में समाया हुआ तेज उत्पन्न करने हैं। गांवों का अर्थशास्त्र, गांवों का समाजशास्त्र, और गांवों का सामर्थ्य-शास्त्र, अनुभव और श्रद्धा के ऊपर रचने हैं। लोगों को क्षीण-सत्व बनानेवाले वहम दूर कर के धर्म-संस्करण करना है। सारी प्रजा को पाठशालाओं में न्यौता देने के बदले, घर घर लोक-शिक्षक पहुँचाने हैं। थोडे में कहिए तो अब तक की भूलें दूर कर के सच्चा रास्ता बनाना है। और जितनी हो सके, उतनी ही श्रद्धा से नयी शुरुआत करनी है।

(नवजीवन)

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

असंतोष फैलाना

वार्षिक मूल्य ४
छः मास का „ २
एक प्रति का „ -)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक २७

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, फाल्गुन सुदी २ संवत् १९८४ गुरुवार, २३ फरवरी १९२८ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ४०

सत्याग्रह का

यों धर्म समझ कर मैं युद्ध में पडा तो सही, किन्तु मेरे नसीब में, उसमें हाथ बँटाना लिखा ही नहीं था। इतना ही नहीं बल्कि ऐसे नाजुक समय में सत्याग्रह करने का भी प्रसंग आ गया।

मैं लिख चुका हूँ कि जब हमारे नाम मंजूर हुए और लिखे गये, तब हमें पूरी कवायद सिखलाने के लिए एक अफसर चुना गया था। हम सबकी समझ थी कि वह अफसर केवल युद्ध की तालीम देने भर के लिए ही हमारा अफसर है, नहीं तो और सब बाबतों में टोली का मुखिया मैं हूँ। मेरे साथियों के प्रति जवाबदेही मेरी थी, और मेरे प्रति उनकी। इतना तक कि हम समझते थे कि उसे सब काम मेरी ही मारफत लेने चाहिएँ। पर लडके के पांव पालने से ही पहचाने जाते हैं। उसी भांति इस अफसर की आंख हम पहले ही दिन से दूसरे ढंग की देखने लगे। सोराबजी बडे स्याने थे। उन्होंने मुझे चेताया, "भाई, देखना। जान पडता है कि यह शख्स तो जहांगीरी चलाना चाहता है। हमें उसके हुक्म नहीं चाहिए। हम इसे अपना शिक्षक मानते हैं। और मैं देखता हूँ कि वे दूसरे जो युवक आये हैं, वे भी हमपर हुक्म ही चलाने आये हैं।" ये जवान ऑक्सफर्ड के विद्यार्थी थे और सिखलाने के लिए आये थे। और उनको बडे अफसर ने हमारे ऊपर अफसर बनाया था। मैं भी सोराबजी की बतलायी बात देख गया। मैंने सोराबजी को सान्त्वना दी और कहा, "आप बेफिक्र रहिए।" पर सोराब जी झट मान जानेवाले आदमी नहीं थे। सोराब जी हँसते हँसते बोले, "आप तो भोलानाथ हैं। ये तो मीठी मीठी बोल कर ही आपको धोखा देंगे और जब आपकी आंख खुलेगी तो आप कहिएगा कि 'चलो सत्याग्रह करें' और बाद में हम सब को भी चौपट कीजिएगा।"

मैंने जवाब दिया, "मेरा साथ करने में सत्यानाश होने के सिवाय, तुमने और क्या और कब देखा है? और सत्याग्रही ठगे जाने के लिए ही तो जन्मा है न? इस लिए भले ही ये साहेब मुझे ठगें। मैंने आपको हजारों बार नहीं कहा है क्या कि अन्त में तो ठगनेवाला ही ठगा जाता है?"

सोराब जी खिलखिला कर हँस पडे और बोले, "भला, आप धोखा खाया करें। किसी दिन आप जरूर मरियेगा और अपने पीछे हम जैसों को भी लिये जाइएगा।"

इन शब्दों का स्मरण करते हुए मुझे स्वर्गीय मिस हॉबहाउस के, असहयोग के अवसर पर लिखे वचन याद आते हैं; "सत्य की खातिर किसी दिन आपको फांसी भी चढना पडे तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। ईश्वर आपको सीधे ही रास्ते ले जायँ और आपकी रक्षा करें।"

सोराब जी के साथ ऊपर की बातचीत तो उस अफसर के गद्दीनशीन होने बाद, आरंभ में ही हुई थी। आरंभ और अन्त के बीच थोडे ही दिनों का अन्तर था। परन्तु इस बीच मुझे पसली का सख्त दर्द उत्पन्न हो गया। चौदह दिनों के उपवास के बाद मेरा शरीर पूरा पूरा बँधा तो था ही नहीं, किन्तु कवायद में मैंने पूरा पूरा शरीक होना शुरू किया था और बहुत बार घर से कवायद के मैदान तक पैदल ही जाता था। वह दूरी कम से कम दो मील की तो थी ही। इसकी बदौलत अंत में चारपाई पकडनी पडी।

मेरी इस स्थिति में हमें कंप में जाना था। दूसरे वहां रहते और मैं सांझ को घर लौट आता था। यहां सत्याग्रह का प्रसंग आ खडा हुआ।

अफसर ने अपनी अफसरी दिखलायी। उसने खुलासा सुनाया कि, "सभी बातों में मैं ही तुम्हारा अफसर हूँ।" अपनी अफसरी के दोचार पदार्थ-पाठ भी पढाये। सोराबजी मेरे पास पहुचे। वे यह जहांगीरी सहने को तैयार नहीं थे। उन्होंने कहा, "सभी हुक्म आप की ही मारफत मिलने चाहिए। अभी तो हम तालीमी छावनी में हैं और हर बात में बेहूदे हुक्म निकलते हैं। उन युवकों के और हमारे बीच बहुत सी बातों में फर्क रक्खा जाता है। यह तो काबिल-बर्दाश्त (सहने लायक) नहीं है। इसका उपाय तुरत होना चाहिए, नहीं तो हमारा काम ही टूट जायगा। ये सभी विद्यार्थी और दूसरे जो इस काम में शामिल हुए हैं—उनमें एक भी बेहूदे हुक्म माननेवाला नहीं है। यह तो नहीं बनेगा कि स्वमान के लिए उठाये गये काम में अपमान ही सहना पडे।"

मैं अफसर के पास गया। अपने पास आयी हुई सभी फरियाद उसे सुना गया। उसने मुझे कागज पर सभी फिरयाद लिखित रूप में पेश करने को कहा और इसके साथ अपने अधिकार की बात कही। उसने कहा, "फिरयाद तुम्हारी मार्फत नहीं हो सकते।

फिरयाद तो पेटा अफसरों की मार्फत ही मुझ से सीधे ही करनी चाहिए।"

मैंने जवाब में बतलाया, "मुझे अधिकार भोगना नहीं है। लश्करी रीति से तो मैं सामान्य सिपाही ही कहलाऊँगा। पर हमारी टुकडी के मुखिया के रूप में आपको उनका प्रतिनिधि मुझे मानना चाहिए।" मैंने अपने पास आयी हुई फिरयादें भी सुनायीं, "पेटा अफसर हमसे बिना पूछे चुने गये हैं और इससे बहुत असंतोष फैला है। इस लिए उन्हें हटा दिया जाय और टुकडी को अपने अफसर चुनने का अधिकार दिया जाय।"

यह बात उसके गले न उतरी। उसने मुझे सुनाया कि अपने अफसर टुकडी चुन लेवे — यह बात ही लश्करी नियम के विरुद्ध है और उन्हें हटा दिया जाय तो आज्ञा-पालन का नाम निशान न रहे।

हमने सभा की। सत्याग्रह के गंभीर परिणाम सुनाये। लगभग सभीने सत्याग्रह का शपथ लिया। हमारी सभा ने निश्चय किया कि अगर वर्त्तमान अफसरों को हटाया न जाय और हमें अफसर चुनने न दिये जाँयँ तो हमारी टुकडी कवायद में और कंप में जाना बंद कर देगी।

मैंने अफसर के पास पत्र लिख कर अपना सख्त असंतोष जाहिर किया और लिखा कि मुझे अधिकार के मजे नहीं उठाने हैं, मुझे तो सेवा करनी है और यह काम सांगोपांग पार उतारना है। मैंने उसे यह भी लिखा था कि बोअर युद्ध में मैंने कोई अधिकार नहीं पाया था। किन्तु तौभी कर्नल गेलवे और हमारी टुकडी के बीच कभी किसी तकरार का प्रसंग नहीं आया था और वहांके अफसर, मेरी टुकडी की इच्छा मेरी मार्फत जान कर ही सभी काम करते थे। अपने पत्र के साथ, अपनी टुकडी के किये प्रस्ताव की एक नकल भेजी।

अफसर के ऊपर इसका कोई असर नहीं पडा। उसे तो लगा कि हमारी टुकडी ने जो सभा करके प्रस्ताव किया, यही लश्करी नियम का गंभीर भंग था।

इसके बाद मैंने हिन्दुस्तान के मंत्री के पास पत्र में सभी बातें लिखीं और अपनी सभा का प्रस्ताव भी लिख भेजा।

हिन्दुस्तान के मंत्री ने जवाब दिया कि द० अफ्रिका की तो जुदी स्थिति थी। यहां तो टुकडी के बडे अफसर को पेटा अफसर चुनने का हक है, मगर तौभी भविष्य में वह अफसर आपकी सिफारिश का ख्याल रक्खा करेगा।

इसके बाद तो मेरा बहुत पत्र-व्यवहार हुआ किन्तु अपने सभी कडवे अनुभव देकर यह प्रकरण बढाना नहीं चाहता।

पर इतना तो कहे बिना नहीं चल सकता कि वे अनुभव वैसे ही थे, जैसे की हमें हिन्दुस्तान में आये दिन होते रहते हैं। उस अफसर ने धमकी देकर, कौशल से हममें फूट डाला। कितने लोग शपथ लेने के बाद भी कल, बल के वश हुए। इतने में नेटली अस्पताल में इतने घायल आ पहुँचे, जितने की धारणा भी नहीं थी। उनकी सेवा सँभाल के लिए हमारी सारी टुकडी की जरूरत पडी। वह अफसर जिन्हें खींच सका था, वे तो नेटली पहुँचे। पर दूसरे न गये। यह बात इंडिया ऑफिस को नहीं रुची। मैं तो चारपाई पर पडा था किन्तु टुकडी के आदमियों से मिला करता था। मि० रावर्ट्स से मेरा परिचय हुआ था। वे मुझे मिलने आगये और जो लोग बाकी बचे हुए थे, उन्हें भी भेजने का आग्रह किया। उनकी सलाह थी कि वे अलग, दूसरी टुकडी में जायँ। नेटली अस्पताल में टुकडियां वहां के बडे अफसर के अधीन रहेंगी, इसलिए वहां जाने में मान हानि न होगी, सरकार को उनके जाने से संतोष होगा, और बडी संख्या में आये हुए जख्मियों की सेवा सँभाल होगी। मेरे साथियों को और मुझे यह सलाह पसंद पडी और बचे हुए विद्यार्थी भी नेटली गये। एक मैं ही खटिये पर पडा दांत पीसता रह गया।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

ब्रह्मचर्य-साधना

[गुजरात विद्यापीठ के एक स्नेह सम्मलन में श्रीयुत किशोरलाल घ. मशरुवाला से कई प्रश्न पूछे गये थे। तीसरा प्रश्न था, "जिससे तरुण विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का ठीक ठीक पालन कर सकें, इस लिए शालाओं को क्या क्या करना चाहिए।" उन्होंने उसका निम्न लिखित उत्तर दिया था:]

२

यह तो स्थूल सँभाल रही।

किन्तु यह खूब याद रखना चाहिए कि अब्रह्मचर्य का मूल तो मानसिक विकार में है।

यहां तक कि सभी स्थूल नियमों का पालन करते रहने पर भी अगर वातावरण विकारी मिले तो ब्रह्मचर्य रहना अशक्य है।

जैसे कि किसी बडी भूर या पानी के सोतेवाले कुँएँ को साफ करना हो तो पहले उस सोते का मुँह कपडा, बोरा वगैरह भर कर मूँदना चाहिए और बाद में पानी निकालना, नहीं तो कुआँ खाली ही नहीं हो सकता, उसी भाँति मन को निर्मल करने के लिए शरीर के भीतर जानेवाली वस्तुओं पर खूब लक्ष्य रखना चाहिए।

अगर शृङ्गारी उपन्यासों, नाटकों, काव्यों, चित्रों वगैरह का अनिवार्य अध्ययन करना पडता हो, सिनेमा, नाटकशाला, होटल के भोजन, नये विवाहित और नये भोग भोगनेवाले विद्यार्थियों और शिक्षक के बीच रहना हो, विलासी वार्त्तालाप वगैरह में विद्यार्थी डूबा रहता हो तो उसके लिए चान्द्रायण कर के भी वीर्य स्थिर रखना कठिन है।

हाईस्कूलों के ऊँचे वर्गों से ले कर कॉलेज तक का वातावरण ब्रह्मचर्य का विरोधी होता है। ऐसे वातावरण में रह कर भी जो स्थिरवीर्य रहा हो, उसे सचमुच में भाग्यशाली समझना चाहिए।

शहरों में चालियों के नौजवान बचपन से ही विकार-पोषित होते हैं। ढाई या तीन वर्ष के बच्चे मनोविकारी तो क्या कहलाँय किन्तु शरीर विकारी दिखायी पडते हैं।

मावाप और शिक्षक का जीवन बहुत बार विकार-पोषक होता है। जैसे कि रास्ते पर खडे पशु बहुत बार असभ्य पदार्थ सामने रखते हैं, वैसे ही मावाप भी करते हैं।

इस वातावरण को जितना निर्मल बनाया जा सके, बनाना पहला कर्त्तव्य है। इसके सिवाय दूसरे उपाय बेकार हैं।

ब्रह्मचर्य पर बारंबार भाषणों का भी असर अच्छा नहीं होता। इससे उलटे निर्दोष विद्यार्थी विचार करने लग जाते हैं। उन्हें कुतूहल भी होता है। किसी विद्यार्थी को यह विषय समझने की जरूरत पडी हुई मालूम हो तो उसे सिर्फ एक या दो बार गंभीरता और भक्तिभाव से भली भाँति समझा देना चाहिए। अनभिज्ञ को ज्ञान देने करने के पहले खूब समझ लेना चाहिए। इसलिए छोटे लडकों के वर्ग में इस विषय की बातें बतलाने में मुझे शंका होती है। मैं जानता हूँ कि छोटे बालक भी निर्दोष नहीं होते। ज्यादह अच्छा तो यह जान पडता है कि जिन्हें कहना जरूरी हो उन्हें अकेले में समझाया जाय। इस विषय को बारंबार तो छेडना ही नहीं चाहिए।

एक और बात है। विकारों को टालने का उपाय उन्हें द्वेष भाव से सोचना नहीं है। विकारों को द्वेष-भाव से सोचने से

स्मरण होता है। ब्रह्मचर्य-साधक को तो विकारों का विस्मरण चाहिए। इस लिए इसका उपाय दूसरे कामों में चित्त को लगाना ही है। कोई दूसरा उदात्त रस या दिलचस्पी, मन को देना विकारों को हटाने का उपाय है।

इसके साथ व्यायाम, आसन वगैरह की मदद बुद्धिमानीपूर्वक ली जा सकती है, किन्तु मैं इस विषय का जानकार नही हूँ।

(नवजीवन) किशोरलाल घ. मशरूवाला

बारडोली में सत्याग्रह

पहला वार

सरकार ने पहला वार कर लिया है। बारडोली ताल्लुके में जहां गत दस वर्षों से कोई यह नहीं जानता था कि लगान के बकिऔते की नोटिस क्या चीज है, वहाँ पर सरकार को लाचार हो कर लोगों को नोटिस देनी पडी है कि जो किसान १० दिनों के भीतर अपनी अपनी किश्त चुका नहीं देंगे उन पर बढती लगान का चौथाई तक जुर्माना किया जा सकता है। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि कितनी जगहों पर तो लगान की बढती ही सैकडे २५ से अधिक की हुई है। मुख्य मुख्य गांव इस काम के लिए चुने जा रहे हैं और पहला वार तो सबसे नाजुक अंग — बनियों— पर किया गया है।

लोगों को चक्कर में डाल देने या उलझनें बढाने के लिए, 'इगटपुरी रियायत' के नाम से एक रियायत की जा रही है। उसके अनुसार जिन गांवों का लगान सैकडे २५ या चौथाई से अधिक बढ गया है, वहाँ के लोगों को दो साल तक और जहाँ सैकडे ५० से अधिक यानी आधे से अधिक बढ गया है, उन गांववालों को ४ साल तक बढती का लगान नहीं देना पडेगा। मगर जहाँ सिर्फ सैकडे २५ या उससे कम की ही बढती हुई है, वहाँ के लोगों से इसी साल से लगान लिया जायगा। आशा है कि किसान इससे धोखा नहीं खायँगे क्योंकि यह तो सिर्फ दो साल, चार साल के लिए मुल्तवी करना है, इससे कुछ ३० साल की मुद्दत में कमी नहीं होती। मगर बेचारे भोले भाले किसान तो इससे जरूर ही फेर में पड जाते हैं। सच पूछिए तो 'लैन्ड रेवेन्यू कोड' और उसके नियम वगैरह ऐसे बनाये गये हैं कि कोई कितना ही अधिक गडबड क्यों न कर लेवे किन्तु उसका काम कानूनी ही साबित होगा। लगान निश्चित करने के बारे में दफा १०७ में लिखा है, "बंदोबस्त करते समय जमीन की कीमत का खयाल रक्खा जायगा और अगर वह जमीन खेती के काम आती हो तो खेती के नफे का।" इसके तो साफ मानी हैं कि खेती की जमीन का लगान दुहराते समय केवल खेती के नफे का हिसाब जोडा जायगा और होना भी तो यही चाहिए क्योंकि अगर जमीन की कीमत और खेती से नफा, दोनों को जोड लिया जाय तो बेचारे गरीब किसान पर दुहरा कर लग जायगा। मगर अचरज की बात है कि सेट्लमेन्ट अफसरों की आदत कई सालों से रही है दोनों को जोड लेने की। इस अन्याय की भी कहीं कोई सीमा है? कितने ही सेट्लमेन्ट अफसरों ने लैन्ड रेवेन्यू ऐसेसमेन्ट कमिटी को सूचना दी थी कि यह कानून इस भांति बदल दिया जाय जिसमें दुविधा की कोई जगह ही न रहे।

इसके अलावा यह भी सुन पडता है कि दफा १०३ और १०४ के अनुसार नया लगान लगाया जाता है और कोई सरकारी प्रस्ताव भी है कि अगस्त महीने से लेकर अगले साल की पहली किश्त के बीच लगान न बढाया जाय। इस मुआमले में तो सरकार ने अगस्त में नहीं किन्तु जुलाई में लगान बढाया (पिछले साल का आखिरी महीना जुलाई और अगले साल का पहला अगस्त होता था) जिसमें अगले साल यानी चालू साल में दफा १०४ के मोताबिक लगान बढती हो सके। अगर नियमों के अनुसार यह लगान बढती की जाती तो बढती की रकम इस साल वसूल न होकर कहीं अगले साल होती। इस पर भी तुर्रा यह कि उन गांवों में सैकडे ६६ की बढती का यानी ३) रुपये का लगान ५) रुपये करने का प्रस्ताव तो जुलाई में ही पास हुआ था और उस पर दो महीनों के भीतर उज्र पेश करने को कहा गया था। हमें पता चला है कि ताल्लुका और महाल के अफसरों ने इस मुद्दत में ही, अपनी सिफारिशों के साथ उज्र सरकार तक भेज दिये किन्तु उन पर कोई हुक्म नहीं हुआ और सरकारी फरमान इसी भांति जारी रहे मानों कि कुछ हुआ ही न होवे।

इसी तरह तो सरकार अपने ही नियमों और कानूनों को आप पैरों तले कुचलती है।

पीछे हटे

मगर जब कि सरकार की सारी की सारी लगान नीति ही बेहद बुरी है, और लगाननिश्चय करने की पद्धति ही सडी हुई है, तब तो अब इन बातों के लिए झगडने के दिन बीत गये। हमें तो यह और इन जैसी हजारों बुराइयां सहनी ही हैं जब तक कि, यही बुरी शासन पद्धति कायम है और हमें स्वराज्य लेने की ताकत अभी आयी नहीं है। बारडोली सत्याग्रह तो अभी प्रत्यक्ष रूप से कर के बोझ से लदे हुए एक ताल्लुके पर और कर बढाने के ताजा अन्याय का विरोध करने के लिए शुरू हुआ है किन्तु इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव तो स्वराज्य-प्राप्ति की योग्यता पैदा करने में तो पडे बिना रह नहीं सकता। पहला वार तो सरकार ने कर लिया और जिन गांवों पर वार किया गया है, वे दृढ हैं और जब्ती वगैरह का रास्ता देख रहे हैं। मगर एक गांव में जहां कि अभी नोटिस नहीं दी गयी थी, कुछ बनिये डोल गये, और सुनने में आया है कि उन्होंने अपना लगान चुका दिया है। इस युद्ध में यह पहली हार कही जायगी। इसके लिए हमें दुःख तो है ही किन्तु यह भी भला ही है कि जिनका मन डांवाडोल है, वे तुरत ही हट जायँ और जब लडाई जोरों पर हो तब पीठ दिखा कर औरों के मन में भी डर उत्पन्न न करें।

(नवजीवन) महादेव देशाई

चीन का उदाहरण

एक मित्र 'न्यू यौर्क टाइम्स' से एक कतरन भेजते हैं जिसमें चीन के सुप्रसिद्ध अगुआ सि. कु हुंगमिंग के साथ मुलाकात का अहवाल छपा है। उसमें सि. कु चीनी लोगों की सांस्कृतिक महत्ता और विदेशियों की उसकी निन्दा का जिक्र करके, विदेशी व्यापारियों के प्रवेश के बारे में कहते हैं:

"मैं विदेशों में बहुत दिन बिता कर पहले पहल जब देश लौटा तब तो मुझे अपने को चीनी कहने में लाज लगती थी किन्तु अब मुझे अपने पूर्वजों का इतना अभिमान है कि मैं आप सभी को असभ्य समझता हूँ।

"देखिए, हमारी सबसे बडी कठिनाई आर्थिक है। जैसे कि, अमेरिकनों ने सोचा कि अगर बहुत चीनी मजूर पहुँच गये तो आपके उद्योग नष्ट हो जायँगे और आपके रहन सहन की शैली का आदर्श नीचे उतर जायगा। आपने तुरत ही हमारा वहां जाना रोक दिया।

"मगर हम चीनवाले तो आपके विदेशी कलों और कल के बने सस्ते माल के मारे मरे जा रहे हैं। इनने हमारे उद्योग उसी भांति नष्ट कर दिये हैं जैसे कि चीनी मजदूर अमेरिका के उद्योग नष्ट कर देते।

"जब कि मैं छोटा था, खास हमारे घरों में भी स्त्रियाँ कातती और बुनती थीं। उस समय पूरे दश करोड स्त्रियाँ कातती और बुनती थीं। उसके बाद सस्ते विदेशी कपडे आये और ये दश करोड औरतें बेकार हो गयी; इन्हें केवल मर्दों की ही कमाई पर गुजर करना रहा। हम तो आपकी नकल करके विदेशी माल का आना बंद कर नहीं सकते क्योंकि संधियों के कारण हम मजबूर हैं। हमें तो चुंगी लगाने की भी स्वतंत्रता नहीं है।

"अगर मैं चित्रकार होता तो मैं चित्र बना कर दिखला देता कि मेरी समझ में ये बेजोड सुलह-नामे कैसे हैं।

"कल्पना कीजिए कि कोई चीनी जमीन पर गिरा पडा है। उसपर खडा होकर पैरों से कोई विदेशी उसे दबाये हुए है। विदेशी आदमी कहता है, 'उठ, उठ खडे हो'। चीनी कहता है, 'पहले अपना पैर तो हटाओ' इस पर वह विदेशी और भी जोरों से दवा कर कहता है, 'नहीं, पहले तुम उठ खडे होवो।'"

(यं० इं०) **मो० क० गांधी**

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन सुदी २ संवत् १९८४

असंतोष फैलाना

उस दिन पूने में श्रीयुत शंकर राव देव तथा श्री. वी. बी. हारोलीकर को दो साल की कैद की सजा दफा २४ ए. के अनुसार हुई है। उन पर दो आरोप थे — एक तो शाहंशाह के विरुद्ध लडाई करने का (दफा १२१) और दूसरा ब्रिटिश भारत में कानून के मुताबिक स्थापित सरकार के विरुद्ध असंतोष या अप्रेम भडकाने का प्रयत्न करने का (दफा १२४ ए.)। श्रीयुत देव ने बहैसियत 'स्वराज्य' के संपादक के वह लेख लिखा था जिसके आधार पर उनपर मुकदमा चला और श्रीयुत हारोलीकर 'स्वराज्य' के प्रकाशक हैं। मैं उस लेख का सरकारी (अँगरेजी) भाषान्तर अन्यत्र छाप रहा हूँ,* जिसे आरोप कर्त्ताओं ने पेश किया था। गो कि उसमें और भी सुधार किये जा सकते थे किन्तु उसे मूल लेख का अशुद्ध अनुवाद नहीं कह सकते।

दादा साहेब करंदीकर और दूसरे नामी वकीलों ने स्वेच्छा से बकालत करनी चाही, किन्तु आसामियों को वकील का बचाव मंजूर नहीं था। मित्रों ने उन्हें कहा था कि अब तो हर कोई वकील की सलाह लेते हैं और कोई इसके लिए उन पर उंगली नहीं उठाता। मगर ये असहयोगी तो अंगद के पैरों के समान अटल रहे। उन्हें इसकी पर्वा नहीं है कि दूसरे क्या करते हैं। वे तो सिद्धान्त से ही असहयोगी थे और इस लिए समय का रुख देख कर दी गयी सलाह सुननी उन्होंने नहीं चाही। यरवदा जेल में श्रीयुत देव से मेरा परिचय हुआ था। उन्होंने श्रीयुत दस्ताने के साथ साथ एक सख्त उपवास शुरू किया था, जिससे मैं उन्हें बहुत मुश्किल से रोक सका था। अपने विश्वास पर अटल रहने के लिए मैं इन मित्रों को बधाई देता हूँ। क्योंकि मुझे पूरा विश्वास है कि ऐसी ही श्रद्धा से स्वराज्य की नींव बनेगी। अपने परम पवित्र त्याग से वे बेशक स्वराज्य को और भी नजदीक ले आये हैं। कोई यह न सोचे कि राष्ट्र-रचना में ऐसे त्यागों की कोई जगह नहीं है या इनका कोई बडा नतीजा नहीं निकलता। सचमुच ही, अन्त में असर तो पवित्रतम त्याग का ही पडेगा। यह तो स्वराज्य की सबसे पक्की और पवित्र नींव पडेगी।

निःसन्देह लेख तो मौजूदा सरकार के प्रति असंतोष बढाने के लिए ही लिखा गया है। इस प्रकार का असंतोष बढाना सभी राष्ट्रवादियों का अनिवार्य कर्त्तव्य है। मुझे आशा है कि हर एक कांग्रेसवादी वर्त्तमान सरकार का कट्टर दुश्मन है। हमें व्यक्तियों से कोई झगडा नहीं है किन्तु अगर हम स्वराज्य के लायक हैं तो वर्तमान सरकार को हर न्याय्य और शान्तिमय साधन से नष्ट करना हमारा कर्त्तव्य है। असेम्बली या बडी धारा सभा में 'स्टेट्यूटरी कमीशन' अथवा साईमन कमीशन पर हाल में जो बहस हुई थी और जिसमें सभी दल शामिल हुए थे और जो सदा उनके ... का कारण होगी, वह असंतोष का पदार्थ-पाठ थी। असंतोष के पक्ष में अपना मत देने के लिए दिल्ली तक जाने में श्रीयुत हरबिलास राय विशनदास ने अपनी जान की बाजी लगा दी। असंतोष की दृष्टि से तो रोज ही श्रीयुत देव के लेख से भी अधिक जोरदार लेख लिखा करते हैं। वे तो हिन्दू-मुसलमानों से युक्तियुक्त अपील करते हैं कि देश को गुलाम बनाये रखने वाली सरकार का रक्षण अस्वीकार करो और अगर लडे बिना चले ही नहीं तो न्यायपूर्वक, ... संमानपूर्वक धर्मयुद्ध लडो। मैंने वह लेख अनेक बार पढा है और मैं भले ही उनकी भाषा न लिखूँ, किन्तु उनके दलीलों में एक भी ऐसी नहीं है, जिसे मैं अपना न सकूँ। पक्ष-पात... आलोचक महाभारत से उद्धृत श्लोकों के शब्दों पर भले उज्र ... किन्तु संदर्भ के साथ पढने पर उसका अर्थ स्पष्ट हो जायगा। ... कोई राजा नहीं है। कानून के पवित्र नाम के भेस में ... पर शासन हो रहा है। शासक बहुत से हैं। एक आता ... दूसरा जाता है। शासन कायम रहता है। मगर यह ... बुरा, आत्मा को नष्ट करनेवाला शासन है, और चाहे जो कुछ ... जाय, किन्तु जिसे नष्ट करना ही पडेगा। श्रीयुत देव और उनके ... लोग जो इसके लिए कीमत देने को तैयार हों, उन्हें वही कीमत देनी होगी जो उनके अहिंसा के ध्येय के अनुकूल होवे। वे सच्चे ... का शासन स्थापित करना चाहते हैं और वह कुछ दूसरे लोगों को मार कर नहीं, चाहे वे कितने ही क्रूर व और विपथगामी ... न हों, किन्तु अगर जरूरत पडे तो इस कोशिश में आप ... प्राण गँवा कर ही। स्वराज्य की उनकी अपनी कल्पना के अनुसार यह मर्यादा आवश्यक है। इस लिए यह समझना मेरे लिए अत्यन्त ही मुश्किल है कि मुआमला चलाने के लिए ये ही दो निर्दोष कार्यकर्त्ता क्यों चुन लिये गये थे अथवा इसे मैं क्या उत्पीडन कहूँ। अगर वे कैद के पात्र हैं तो लाला लाजपतराय और उनके साथियों को अगर कोई और बडी सजा नहीं तो कालेपानी की सजा तो ... ही मिलनी चाहिए। अगर यह कहा जाय कि असेम्बली के सदस्यों को वे विशेष अधिकार मिल जाते हैं, जो उसके बाहर दूसरे ... आदमियों को नहीं होते हैं तो शायद दूसरा ऐसा कोई नहीं है जिसने 'कानून के अनुसार संस्थापित सरकार' के प्रति सोच समझ कर, जान ... कर असंतोष फैलाने का कसूर मेरे समान किया हो। मेरा तो ... जीवन ही, सारी शक्ति ही इस सरकार का नाश करने के लिए ... और इस उद्देश्य के लिए जहां तक संभव हो असंतोष का अधिक ... अधिक प्रचार करने के लिए है और मेरा खयाल है कि मैं ... कर सकता हूँ कि देव और हारोलीकर से अधिक लोग मेरी ... पढते और सुनते हैं। किन्तु सच्ची सुसंगतता, न्याय और साहस ... आशा उन सरकारों से नहीं की जा सकती जिनका आधार ... वा जोरो जुल्म के बल पर लूट खसोट ही होवे।

(यं० इं०) **मोहनदास करमचंद गांधी**

---

* भर सक इस लेख का हिन्दी भाषान्तर किसी अगले अंक में दिया जायगा। **स० स०**

बे पर की

मैं देखता हूँ कि अखबारों में लिखा जा रहा है कि मैंने भविष्यद्वाणी का है कि मैं अगले १२ मार्च को मर जाऊँगा और इस लिए मैं निरुत्साह सा हो रहा हूँ। यह भी कहा गया है कि अपना ज्योतिषी मैं अपने आप ही हूँ। इस मजेदार खबर की मैं कोई पर्वा नहीं करता किन्तु कुछ चिन्तित मित्रों ने इसे सच्चा मान लिया है और इस लिए वे घबरा उठे हैं। अगर उन पूछनेवाले मित्रों ने मेरी यह सलाह मानी होती कि अखबारी खबरों पर कभी निर्भर नहीं रहना चाहिए और अखबार की खबरों की सच्चाई की जांच मूल स्थान से ही करनी चाहिए तो उन्हें इतनी चिन्ता नहीं करनी पडती। जिस संवाददाता ने यह शोर शुरू किया, वह अगर अपने बयान की सच्चाई की जांच कर लेने की भलमन्साहत दिखलाता तो पूछनेवालों को बहुत चिन्ता से बचा देता। मगर संवाददाता लोग, अपने बयानों की सच्चाई के बारे में और अधिक खयाल रक्खा करें तो उनका पेशा ही गया हुआ है। तब मैं मित्रों को बतला सकता हूँ कि मैं ज्योतिषी नहीं हूँ। मैं ज्योतिष — विज्ञान जरा भी नहीं जानता और अगर यह विज्ञान है तो इसकी उपयोगिता में मुझे संदेह है और मैं मानता हूँ कि इससे भाग्य नियन्ता में विश्वास रखनेवाले हर आदमी को बिलकुल अलग ही रहना चाहिए। और न मैं हतोत्साह ही हूँ। हताश होना ही मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। पर असल बात यह हुई थी कि छह वर्ष पहले जब मुझे छह वर्ष के जेल की सजा हुई थी, मुझसे किसीने पूछा था कि स्वराज्य की संभवता के बारे में आप क्या सोचते हैं, तब मैंने कहा था कि बहुत संभव है कि इन छह वर्षों की मर्यादा में ही परमात्मा का हाथ हो और इन छह वर्षों में या तो हम स्वराज्य ले लेवें या मैं मर जाऊँ और छह वर्ष का समय तो स्वराज्य लेने के लिए, देश के लिए बहुत लंबा समय होवे। उस समय भारतवर्ष की परिस्थिति को देख कर यह बात कही गयी थी। मैंने इससे अधिक महत्व इस बात का और कभी नहीं समझा है कि एक व्यक्ति के रूप में स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने में मैं कुछ उठा नहीं रक्खूँगा। यह बात भी मेरी उसी बात के समान थी कि अगर कुछ शर्तें पूरी हो जायँ तो एक साल में स्वराज्य लिया जा सकता है। उस बयान का भी काम खत्म हो चुका है और अगर और कुछ नहीं तो उससे मेरे आलोचकों को मेरी मूर्खता पर हँसने का मौका मिला और मैंने उस साल देश को महा प्रयास करते हुए देखा। साल खत्म होने पर अहमदाबाद में यह कहते मैं नहीं झिझका कि यद्यपि कि हम कानून में स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सके हैं किन्तु राजनीतिज्ञ भारतवर्ष में जो स्वतंत्रता दिखलायी पडी, वही स्वराज्य के बराबर है, और कलकत्ता और नागपुर में मेरी बतलायी शर्तें लोगों ने पूरी की होतीं तो कानून में भी स्वराज्य वर्ष के भीतर ही मिल जाता। मगर जैसे एक साल के भीतर कानून के अनुसार स्वराज्य लेने में असफल होने पर भी मैं अविचलित रहा, उसी भांति छह साल की अवधि के बीतने के दिन नजदीक आने से भी अविचलित हूँ। खैर, वह दिन भी १२ मार्च नहीं किन्तु १७ मार्च है। न सिर्फ अपने शरीर के अन्तिम दिन की तैयारी से ही बाज आ रहा हूँ, किन्तु उसे जितना अच्छा बना सकूँ, बनाने के प्रयत्न में लगा हुआ हूँ और गर्मी और बरसात के लिए घूमने का कच्चा कार्यक्रम भी निश्चित कर चुका हूँ। छह साल पहले, मित्रों से मेरी बातचीत के और सार्थक बातों के बाद हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता प्राप्त करने की बात दुहरायी गयी थी। चाहे वह कितना ही बडा क्यों न हो किन्तु किसी व्यक्ति पर कुछ नहीं निर्भर करता है। किन्तु भारतवर्ष की स्वतंत्रता पर बहुत कुछ निर्भर है। इस लिए हम सब व्यक्तियों को भूल जायँ और उस मूल्यवान् स्वतंत्रता की प्राप्ति में जान लगा दें, जो कभी डाउनिंग स्ट्रीट या किसी दूसरी जगह से हम पर बरस नहीं पडेगी किन्तु हम चाहे जभी ले सकते हैं। १७ मार्च के भीतर ही भीतर ले सकते हैं। इसके लिए कोई बडी तैयारी जरूरी नहीं है, सिवाय इसके कि मानसिक क्रान्ति हो जाय— हिन्दू मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिक्ख, यहूदी सबके सब मानने लगें हैं कि हम एक अखंड राष्ट्र और सबका इस देश में एक स्वार्थ है—इससे अधिक और कुछ नहीं चाहिए कि हिन्दू लोग अपनी मानसिक क्रान्ति करें, किसी को ऊँच नीच समझना भूल जायँ, और उन अछूत कहे जाने वालों को अपने ही भाईबंद मान लेवें और न और ही कोई प्रयत्न जरूरी है अगर हम सिर्फ विदेशी कपडे का ही संपूर्ण बहिष्कार करने का दृढ निश्चय कर लेवें। मैंने जो बात बारंबार कही है, वही फिर भी कहता हूँ, चाहे भले ही कोई इस पर हँस लेवे, कि अगर हम इन तीनों कामों को कर लेवें तो दुनिया की कोई शक्ति हमारे जन्म सिद्ध अधिकार को लेने से हमें रोक नहीं सकती। जैसे कि अपने बिगाडे को बनाना हमारे ही हाथ है, वैसे ही अपनी मुक्ति लेनी भी हमारे ही हाथ है।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

कामधेनु चर्खा

['नवजीवन' में रानीपरज लोगों में चर्खे के प्रचार का बडा ही सुन्दर अहवाल छपा है, जिसमें से यहां सबसे अधिक कातनेवाले परिवार के मुखिया से बातचीत दी जाती है।

स. स. 'हिन्दी नवजीवन']

१. तुम्हारा नाम? रणछोडभाई चीमनभाई

२. मौजे ? टोकरफलियुं, ताल्लुका बारडोली।

३. संवत १९८३ में तुम्हारे कुटुम्ब ने कितना काता? — ७६ रतल (१ रतल=४० तोला)।

४. सं. १९८२ में कितना काता था? — कुछ नहीं।

५. तुम्हारे घर में कितने आदमी हैं? — ६ पुरुष + ६ स्त्रियां + १४ बालक=कुल २६ आदमी

६. उनमें कितनों को कातना आता है? — १२ जनों को।

७. कताई के संबंध में क्या क्या सामान इकट्ठा किया है? — १२ चर्खे; १ धुनकी और १ ओटा।

८. खेती के बीघों की की? — ४५ बीघे कपास + २५॥ बीघे जुवार + १०॥ चना=कुल ८१ बीघे। इसके अलावा ४५ बीघे पडती में से घास काटा।

[ये रणछोड भाई, अपने घर के आमद-खर्च का कौडी कौडी का हिसाब रखते हैं। इस लिए हिसाब पूछने पर ये पाई पाई का हिसाब बतला सके।]

९. सं० १९८२ में तुमने कुल कितने रुपयों के कपडे खरीदे थे?- पुरुषों के लिए १०९।) रु. का + स्त्रियों के लिए ३०) रु. का = कुल १३९।) रु. के।

१०. सं. १९८३ में कितने का? — चर्खा चलाना शुरू करने के बाद तो सिर्फ ३≋) की धोती + १।।) रु. का कोट का कपडा = कुल ४।।≋) का।

११. एक वर्ष में चर्खे के प्रताप से तुम्हारे कुटुम्ब में कितने

की बचत हुई? — यह देखिए, मेरा हिसाब:

आमद		खर्च	
१४०)	घर खर्च के कपडे की कीमत बची	३८॥)	सवा छह मन कपास ७६ रतल सूत में लगी। दर ६) मन
७)	चार मन बिनौले की कीमत १॥।) मन को दर से	२०॥।	बुनाई १९० गज कपडे की सात पैसे गज की दर से
		४॥≶	इस साल कपडे की खरीद
१४७)	कुल	६३)	कुल
		८४)	बचत
		१४७)	

१२. तुम्हारे पडोस के वेडछी गांव में तो सं. १९८० के पहले से ही चर्खा शुरू हो गया था। फिर एकदम तुम्हींने क्यों १९८३ में ही चर्खा शुरू कराया? — वेडछी और मेरे गांव में तो सिर्फ एक माइल का ही अन्तर है। वेडछी में चर्खा शुरू होने की बात मैं जानता था। उसे देखता भी था। कोई दश वर्ष हुए मैंने शराब छोड दी। चीनी भी देशी ही खाता हूँ किन्तु चर्खे पर मन बैठता नहीं था। क्योंकि मेरे मन में बडी भारी शंका यह थी कि खेती के साथ जो चर्खा शुरू किया जाय तो खेती बिगडेगी ही। इसी लिए देखने पर भी, कई भाइयों के कहने पर भी मैं चर्खा नहीं लाता था।

सं. १९८३ के कातिक में गोपालदेव सभा हुई थी। वहां मैं गया था। उस सभा में सुना कि सोमाभाई बावरभाई ने ५०–६० बीघे आबाद किये और फिर भी ५७ रतल सूत काता। ऐसा एक ही नहीं किन्तु कई उदाहरण देखे कि किसान भी ५०–६० बीघा जमीन आबाद कर के भी २५–३० रतल कात सके हैं। यह सुनने के बाद तुरत ही वेडछी आश्रम से एक चर्खा खरीदा। पीछे देखा कि चर्खा चलाना सीखना मुश्किल नहीं है। सूत कातना तो बात की बात में आ गया। थोडी फुर्सत तो मिलेगी ही और घर के आदमी बेकार बैठे रहते हैं। और सबको थकावट मिटाने का यह साधन मालूम हो गया। एक से कुल १२ चर्खे तक घर में ला जमा किये और इतने से ७६ रतल सूत तो हँसते ही खेलते ही रात कात कर तैयार कर लिया।

१३. चर्खा लाकर कातने से खेती में कुछ नुकसान हुआ अथवा खेती के काम में मजदूरी का खर्च बढा है या और अडचन जान पडी है? — खेती का काम छोड कर हम कातते नहीं हैं। जब जब खेती में कोई काम न हो और हम बेकार हों, यह सूत काता है। और उसमें भी यह अधिक के रात को ही कता है। रात को हमारे पासे कोई काम नहीं। चर्खा लाकर सूत कातने से खेती में हमें किसी तरह नुकसान नहीं हुआ है।

१४. तुम कहते हो कि दिन भर खेती का काम करके हम चर्खा चलाते थे। इसमें तुम्हें क्या थकावट नहीं आती? फिर आराम कब करते थे? —आप पढे लिखे लोग दिन भर कर के जब कुछ पढने बैठते हैं तो क्या उसमें आप को थकावट आती है? मेरा अनुभव तो यह है कि पढे लिखे लोगों के वाचनालय विश्रान्ति के स्थान हैं। उसी भांति हम किसानों के चर्खा रात को आराम देता है। थके मांदे आकर थोडी देर चला कर सो जाते हैं। इसमें मीठी नींद आती है। जब नहीं थे, तब तो खटिया पर पडे पडे अरवट करवट बदलते थे और जीवन में कोई रस ही नहीं जान पडता था। यह एक वर्ष का अनुभव है।

१५. तुम्हारे घर सिर्फ एक साल में ही इतना सूत कातने से घर के आदमी घबरा नहीं उठे? तुम चर्खे से उकताते नहीं? —जो एक ही आदमी को यह सब कातना हो तो वह जरूर ऊब जाय; किन्तु घर में सभी कातते हों, जो कोई बेकार हो, वही कातता हो, तब किसे भार लगे? हमारे घर में १२ आदमियों को कातना आता है। हर एक आदमी ने लगभग ६।–६॥ सेर कपास काता। इसमें किसीको और क्या भारी पडे? हमारा तो हँसी खेल में कपडा निकल गया।

खादी की उत्पत्ति और बिक्री का ब्यौरा

प्रान्त		उत्पत्ति अक्तूबर '२७	उत्पत्ति अक्तूबर '२६	उत्पत्ति सितम्बर '२७	विक्रय अक्तूबर' २७	विक्रय अक्तूबर' २६	विक्रय सितम्बर' २७
	रु.						
अजमेर	,,	३,२६८	५,११८	९,२७८	४,२५८	५,५१९	८,९५[illegible]
आन्ध्र	,,	१८,४३८	२७,४८२	१०,४७०	२९,९२१	२९,९१७	३३,६८[illegible]
बंगाल	,,	२३,४१८	३६,९४०	२४,३६४	२५,७३७	६३,७५१	६६,४३[illegible]
बिहार	,,	२६,३६८	२१,७३२	२३,२४३	१७,७९२	२६,०३०	२१,९१[illegible]
बम्बई	,,	. .	. .	. .	२६,२७२	२१,२६३	२१,५४[illegible]
ब्रह्मा	,,	. .	. .	. .	४,०३६	३,३७६	२,७०[illegible]
दिल्ली	,,	१,५६६	७६७	१,६७६	१,७८७	१,१२८	१,४३[illegible]
गुजरात	,,	८,१८५	३,२९३	१,८५०	२०,९६१	९,७७२	१,४४[illegible]
केरल	,,	३,८३६	९२	२,४८७	४,३९०	१,२६१	२,५५[illegible]
कर्णाटक	,,	५,८८४	४,००१	७,९६७	६,३९१	५,७२१	८,३६[illegible]
महाराष्ट्र	,,	२,८३९	४१२	३,८०६	१६,८१३	१३,७०४	११,५८[illegible]
पंजाब	,,	५,१५८	४,५९५	५,९६०	८,५६६	१०,५८७	१०,५४[illegible]
तामिलनाड	,,	१,२५,८८१	८४,५३९	१,२१,५२१	१,४७,०३४	१,२०,६३९	१,०३,५३[illegible]
युक्त प्रान्त	,,	११,४३०	७,०१२	८,३५६	११,६२७	१२,९९९	८,७३[illegible]
उत्कल	,,	२,९८७	२,८०७	४,७६३	२,६७७	३,२९५	३,३५[illegible]
कुल	रु.	२,३९,२५८	१,९८,७१०	२,२५,७४१	३,२८,२८२	३,२८,९९२	३,०६,३४[illegible]

महाराष्ट्र में खादी

श्रीयुत दस्ताने महाराष्ट्र में १९२६-२७ साल के खादी कार्य की निम्न लिखित रिपोर्ट भेजते हैं :

उत्पत्ति

कुल रु० १८,७४१-८-० की उत्पत्ति हुई यानी गत वर्ष से रु० ३,६०६-८-० अधिक की खादी बनी ।

चोपडा, स्त्रियों की सूतसमिति पूना, और चन्दा के पुराने केन्द्रों में पहले से अधिक और अच्छा कपडा बन रहा है । केवल एक जलगुर पीछे है ।

किन्हीं और सावली के नये केन्द्रों में बहुत काम होने की आशा है । सावली में तीन महीनों के भीतर रु० २,०४३-१४-० की खादी बनी । किन्हीं ने ९ महीनों में रु० १,३०२-१४-३ की खादी बनायी, जिसमें एक महीना सितंबर १९२७ में ही रु० ७७१-१५-० की बनी । ये दो केन्द्र नये होने पर भी कपडे की लागत और अच्छाई की दृष्टि से औ केन्द्रों से भली भांति मुकाबला कर सकते हैं ।

किस्म

केवल एक पूना सूत समिति ही महीन साडियां और महाराष्ट्र स्त्रियों के उपयोग के दूसरे महीन कपडे बनाती है । मगर यह भी स्वीकार कबूल करना चाहिए कि यहां भी महीन सूत दूसरे ही प्रान्तों से मँगाया जाता है ।

चंदे में सभी कपडे और जगहों से अच्छे बनते है किन्तु कोट के कपडे बनाना यहां की खासियत है । यह कपडा कुछ महँगा होने पर भी सहज ही बिक जाता है ।

कुर्तों के कपडे और धोतियाँ सावली और किन्हीं की विशेषताएँ हैं और और बनना चाहती हैं । आशा है कि बडे पैमाने पर खादी बनाने के लिए महाराष्ट्र के ये दो सबसे बडे केन्द्र बन जायँगे । इस प्रदेश में जान पडता है कि लोगों को कपडे की कला अभी भूली नहीं है ओर चर्खे की परंपरा भी जैसी की तैसी है ।

चोपडा केन्द्र ६ से १० अंक तक का मोटा सूत तैयार करता है और महाराष्ट्र के उत्पत्ति काम में इसका भी एक खास स्थान है ही । चोपडा के तौलियों को खादी-प्रेमी महाराष्ट्री खूब पसंद करते है ।

कीमत

और जगहों की बनिस्बत महाराष्ट्र में चंदा केन्द्र की मजदूरी और दाम ज्यादह हैं । किन्तु इस केन्द्र में दाम की घटी, दूसरे केन्द्रों के दाम घटाने के प्रयत्न का चिह्न है । निम्नलिखित सारिणी से यह बात स्पष्ट हो जायगी:

	१९२५-२६		१९२६-२७	
किस्म	थान	कीमत	थान	कीमत
		रु. आ. पा.		रु. आ. पा.
कुर्तेका कपडा	३२"×१० गज	६-१३-०	३६"×१० गज	४-८-०
धोती	४५"×१० गज	८-१२-०	४५"×१० गज	६-०-०
साडी खादी	२७"×१० गज	५-४-०	२७"×१० गज	३-८-०
कोट की खादी दुसूती	३२"×१० गज	९-९-०	३६"×१० गज	८-०-०

लोक-सेवा

उत्पत्ति काम लगभग २० गांवों में चलता है जिससे इस साल ४२ धुनियों या पिंजारों, ८४१ कातनेवालों और १२० बुनकरों या जुलाहों को रोजी मिली ।

केवल एक सूतकार या कतवैये की अधिक से अधिक माहवारी आमदनी चन्दा केन्द्र में रु. ३-१२-६, सावली में रु. ३-०-० और किन्हीं में रु. ३-८-० हुई है । इन अंकों के बाद और क्या कहना रह जाता है ?

महाराष्ट्र में उत्पत्ति कार्य के लिए रँगाई, धुलाई और छपाई की उचित व्यवस्था परमावश्यक है ।

बिक्री

इस साल रु. १,७२,८८५-७-३ की खादी बिकी यानी गतवर्ष से रु. ५५,९०२-१३-३ अधिक की । गोकि गतवर्ष एक ही रकम हिसाब में कई बार चढ गयी थी, किन्तु तौभी बिक्री कमसे कम ज्योढी जरूर हो गयी है ।

वस्त्रागार जलगांव

महाराष्ट्र की बढती हुई बिक्री के कारण किसी ऐसे केन्द्रीय दूकान की जरूरत बहुत ज्यादह महसूस की जाती थी, जहां पर कि सभी किस्म के खद्दर मिल सकें । इस लिए जनवरी १९२८ से महाराष्ट्र वस्त्रागार खोला गया । इसकी निम्नलिखित ८ शाखाएँ थीं: १. गोंदिया, २. नागपुर, ३. वर्धा, ४. अमरावती, ५. अकोला, ६. भुसावल, ७. जलगांव और ८. अहमदनगर ।

इस वस्त्रागार ने प्रदर्शन, फेरी वगैरह का भी प्रबंध करके महाराष्ट्र के और दूसरे भागों में भी दूकानें खोलने की कोशिश की ।

अब स्वभावतः ही वस्त्रागार पर एक नयी जिम्मेवारी, महाराष्ट्र की खादी बेंच डालने की आ पडी है । इससे उत्पत्ति केन्द्रों को कई तरह से सहायता मिलती हुई सी जान पडती है । पहली तो यह कि खादी तैयार होते ही वस्त्रागार उसे उत्पत्ति केन्द्रों से खरीद लेता है और यों उत्पत्ति केन्द्रों की पूँजी बझी नहीं रहने पाती और इस लिए कार्यकर्ताओं को तरद्दुद नहीं उठानी पडती । दूसरी और भी अधिक महत्वपूर्ण सहायता यह है कि वस्त्रागार स्वयं खादी के बाजार से खूब परिचित होने के कारण उत्पत्ति केन्द्रों को बतलाता रहता है कि किस किस्म की खादी कैसी बिकेगी ।

अभी तो केवल वस्त्रागार के लिए ३२,०००) रुपयों की पूंजी मंजूर हुई है । पिछले ९ महीनों की खरीद फरोख्त का हिसाब देखने से इस प्रयोग से बडी बडी आशाएँ बँधती है ।

धुलिया और भुसावल को छोड कर सभी केन्द्रों की बिक्री बढी है ।

जलगांव और पूने में २० हजार से अधिक की तो धुलिया, वर्धा, नागपुर और शोलापुर में १० हजार से अधिक की बिक्री हुई है ।

दूसरी स्वतंत्र संस्थाएँ

खामगांव भाण्डार स्वतंत्र संस्था है । वह भी उन्नति कर रहा है । मैनेजर ने अ. भा. चर्खासंघ के माँगे अनुसार हिसाब रखना स्वीकार किया है ।

रत्नागिरि जिले के वेंगुरला में भी एक स्वतंत्र भंडार है ।

फेरी

पिछले साल मजदूरी देकर केवल ५,८०८) रु. की खादी फेरी से बिकी थी । गतवर्ष की मराठी रिपोर्ट में मराठे नवयुवकों से खादी बेंचने की अपील की गयी थी, जिसके फल स्वरूप २४ फेरीवालों ने १२,८५०) रु. की खादी बेंची और उन्हें ८०३) रु. मजदूरी में दिये गये ।

गांवों में भी खादी को मांग बढ रही है और अब गांवों में भी फेरी करने वाले मिल रहे हैं । अब तो महाराष्ट्र को भी गांवों में फेरी के लिए खास कमीशन का लाभ उठाने देना चाहिए ।

प्रदर्शन

तीन प्रदर्शन किये गये थे । दो बडे — पंढरपुर और शोलापुर में — एक छोटा संगमनेर में । पंढरपुर में खादी बाजार भी गत जून मास में खोला गया था इनकी कुल बिक्री १०,८७०) रु. की हुई थी।

काम

इनके अलावा वर्धा आश्रम वालों ने घर घर घूम कर, राष्ट्रीय सप्ताह में १,६००) रु. की खादी बेंची।

संघ की सदस्यता

गत वर्ष इस संबंध में कुछ भी नहीं लिखा जा सका था। इस साल अ० भा० चर्खासंघ ने महाराष्ट्र चर्खा संघ को अपने प्रान्त में संघ की सदस्यता का सूत वसूल करने का अधिकार गत मई महीने से दिया था।

इस साल इतने सदस्य भर्ती हुए हैं।

'अ' वर्ग के	२५९
'ब' वर्ग के	४४
बालवर्ग के	८१
दान देनेवाले	६८
कुल	४५१

इस साल सदस्यों के शुल्क के रूप में इतना सूत मिला थाः—

साबरमती में	११,४७,३२१ गज
पिंपराला में	१२,५७,०३३ गज
कुल	२४,०४,३५४ गज

कुछ सदस्य अपने सूत का कपडा बुनवा लेना चाहते हैं। इसकी भी व्यवस्था रही है।

व्याख्यान

धुलिया के श्रीयुत शङ्कर [illegible] देव ने अपनी अध्यक्षता में महाराष्ट्र खादी [illegible] व बनाया और महाराष्ट्र में खादी-प्रचार के लिए भ्रमण किया। उनके भ्रमण की रिपोर्ट तो बहुत ही उत्साह देनेवाली है। उनके किसी दल से संबद्ध नहीं होने के कारण वे खादी के बारे में गलतफहमियां सहज ही दूर करते और खादी की उपयोगिता समझाते हैं।

राष्ट्रीय विद्यालय

महाराष्ट्र में १५ राष्ट्रीय विद्यालय हैं जिनमें निम्नलिखित ने अपने यहां कताई शुरू कर दी हैं:—

१.	राष्ट्रीय विद्यामंदिर,	वर्धा
२.	,, ,,	गोंदिया
३.	,, ,,	तुमसर
४.	,, ,,	नागपुर
५.	,, ,,	खामगांव
६.	,, ,,	सतारा
७.	,, ,,	पूना

वर्धा: राष्ट्रीय विद्यामंदिर, वर्धा को आदर्श राष्ट्रीय विद्यालय कह सकते हैं। वहां पर बौद्धिक शिक्षा का पूरा प्रबंध है और साथ ही साथ खादी कार्य के सभी अंगों में शिक्षा दी जाती है। वहां की नकल और राष्ट्रीय विद्यालय भी कर सकते हैं।

वहां हर एक विद्यार्थी और शिक्षक से आशा रक्खी जाती है कि वे कम से कम एक लच्छी यानी ४ फीट घेरा के परेते पर ६४० तार सूत जरूर कात लेंगे। इसके लिए उन्हें रोजाना १२ तोले कपास दी जाती है, जिसे वे ओट, धुन कर पूनियां बना लेवें और कातें। इनमें दर असल कोई ऐसा नहीं है जो इतना काम पूरा न कर लेता हो। विद्यालय का प्रबंध आश्रम के नीचे है।

सभी रूपों में खादीमय हो जाना ही वर्धे का ध्येय है। गोंदिया और तुमसर भी इस ध्येय की प्राप्ति के लिए खूब प्रयत्न कर रहे हैं। खामगांव ने भी इसे समझ लिया है और शिक्षित शिक्षक ढूँढ रहा है। नागपुर को भी यह पसंद है, मगर कितनी कठिनाइयां हैं। गोंदिया, तुमसर और नागपुर की कोशिश से खादी की फेरी खूब हुई। नागपुर के श्रीयुत पटवर्धन ने अपने विद्यार्थियों की सहायता से २,३००) रु. की खादी बेंची।

म्युनिसिपैलिटियां

निम्नलिखित म्युनिसिपल स्कूलों में कताई का प्रवेश [illegible] हैः

१ जलगांव, २ धुलिया, ३ अहमदनगर और ४ पूना।

धुलिया के सिवाय सभीने इसके लिए एक खास शिक्षक [illegible] है। जलगांव और पूने का काम संतोषजनक होने पर भी [illegible] रिपोर्ट नहीं मिली है। वर्धा ने दिसंबर १९२६ में ही प्रस्ताव [illegible] अपने विद्यालयों में खादी का प्रवेश कराने के लिए ५००) [illegible] खर्च भी मंजूर किया था, मगर वहां अब तक कुछ हुआ नहीं [illegible]

स्कूलों में कताई का प्रवेश कराने के अलावा और दूसरे तरीकों से भी म्युनिसिपैलिटियां, खादी-प्रचार में सहायता [illegible] सकती हैं। चन्दा म्युनिसिपैलिटी गत तीन वर्षों से स्थानिक [illegible] कार्य के लिए सालाना ५००) रुपयों की मदद देती आयी [illegible] वह अपने नौकरों की वर्दियाँ खादी की ही बनाती है और [illegible] उसने खादी पर से चुंगी भी उठा ली है।

पंढरपुर म्युनिसिपैलिटी ने प्रदर्शन के लिए अपनी [illegible] और प्रदर्शन के खर्च के लिए ३००) रुपये दिये। [illegible] म्युनिसिपैलिटी ने भी प्रदर्शन के खर्च के लिए ५०) रुपये [illegible]

चर्खा-समितियां

निम्नलिखित स्थानों में कुल ६ चर्खा समितियां हैं:

१. कोल्हापुर, २. सतारा, ३. पूना, ४. जलगांव, ५. [illegible] और ६. अकोला।

शिक्षा-संस्थाएँ

इस प्रान्त में दो शिक्षा-संस्थाएँ हैं, एक तो वर्धा में [illegible] और दूसरी पिंपराला में उद्योगमंदिर।

वर्धा में आश्रम ने राष्ट्रीय विद्यामंदिर के साथ खादीकार्य [illegible] सभी अंगों के बारे में प्रयोग किये जिसमें उत्पत्ति केन्द्रों को [illegible] ठोस संगठन करने में मदद मिले।

खादी कार्यकर्त्ताओं को तैयार करने के लिए उद्योग [illegible] खोला गया था। उस समय के कार्यकर्त्ताओं ने इसमें दीक्षा [illegible] नये कार्यकर्त्ता भी यहां सिखलाये जाते हैं। गोकि खादी-[illegible] खुल चुका है किन्तु बहुत से कार्यकर्त्ता जो उतने दिन न [illegible] सकते हैं और न जिनके ठहरने की जरूरत ही है, उनके लिए [illegible] व्यवस्था है।

गांधीजी का भ्रमण और दास स्मारक कोष

गांधीजी का भ्रमण २ री फरवरी १९२७ को शुरू होकर [illegible] मार्च को समाप्त हुआ था। उसमें बडी सफलता मिली थी। [illegible] उन दिनों में १९ स्थानों में वे गये थे। कुल चंदा रु. १,२१,५१२-०-४ का मिला था।

निरीक्षण

इस साल सभी केन्द्रों के हिसाबों की जांच दो बार हुई [illegible] रिपोर्ट अ० भा० चर्खा संघ को भेजी गयी थी।

उपसंहार

खादी कार्य के लिए महाराष्ट्र की परिस्थिति अनुकूल नहीं [illegible] जाती थी और उसमें भी खास कर उत्पत्ति के लिए। गत [illegible] क्रमशः प्रगति और दूसरे कामों में जान पडेगा कि यह ख्याल [illegible] था। खैर, चाहे जो कुछ हो, खुद महाराष्ट्र को ही खादी के [illegible] उत्पत्ति कार्य का कोई भरोसा नहीं था। किन्तु सावली और [illegible] के खादी केन्द्र तो महाराष्ट्र की मांग पूरी कर देने का [illegible] देते हैं।

अपनी जरूरत की खादी आप पैदा करने सकने की आशा [illegible] महाराष्ट्र का नया वर्ष शुरू होता है। [illegible]

अंधेर या कुराज्य ?

वार्षिक	मूल्य ४
छः मास का	,, २
एक प्रति का	,, ‒

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक २८

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, फाल्गुन सुदी १० संवत् १९८४ गुरुवार, १ मार्च १९२८ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ४१

गोखले की उदारता

विलायत में हुई पसली के दर्द की बात मैं लिख आया हूँ। इस बीमारी के समय गोखले इंग्लैन्ड में आ पहुँचे थे। उनके पास कैलनबैक और मैं, हमेशे जाते थे। बहुत करके तो लडाई की ही बातें होतीं; और कैलनबैक को जर्मनी का भूगोल बरजवान था, और उन्होंने यूरोप की मुसाफिरी भी खूब की थी इस लिए वे गोखले को नकशे खींच २ कर लडाई के स्थान बतलाते थे।

मुझे जब बीमारी हो गयी, तब वह भी चर्चा का एक विषय बन गयी। मेरे खूराक के प्रयोग तो चलते ही थे। उस समय की मेरी खूराक मूँगफली, कच्चे और पके केले, नीबू, जैतून का तेल, टमाटा, अंगूर वगैरह की थी। दूध, अनाज, दाल वगैरह तो जरा भी नहीं लेता था। मेरी सेवा शुश्रूषा जीवराज मेहता करते थे। उन्होंने दूध और अनाज खाने का बहुत भारी आग्रह किया। यह फिरयाद गोखले तक पहुँची। फलाहार की मेरी दलील के लिए उन्हें बहुत आदर नहीं था; आग्रह यह था कि आरोग्य-रक्षा के लिए डाक्टर जो कहे, लेना चाहिए।

गोखले के आग्रह को न मानना मेरे लिए बहुत कठिन बात थी। उन्होंने जब खूब आग्रह किया, तब मैंने विचारने के लिए चौबीस घन्टे की मुहलत माँगी। केलनबैक और मैं घर आये। मैंने रास्ते में उनके साथ चर्चा की कि मेरा धर्म क्या है। मेरे प्रयोग में वे मेरे साथ थे। उन्हें प्रयोग पसंद पडता था, किन्तु मैं उनकी भी यह वृत्ति देख सका कि अगर अपनी तबीअत की खातिर मैं उसे छोड दूँ तो ठीक है। इसलिए मुझे अब अपने आप ही अन्तर्नाद को सुनना रहा।

सारी रात विचार में बितायी। जो प्रयोग पूरा छोड दूँ तो मेरे विचार धूल में मिल जाते थे। उन विचारों में मुझे कोई भूल जान नहीं पडती थी। प्रश्न यह था कि गोखले के प्रेम के कहां तक वशीभूत होना अथवा शरीर-रक्षा के लिए प्रयोग को कहां तक छोडना धर्म है। इस लिए मैंने निश्चय किया कि जो प्रयोग केवल धर्म की दृष्टि से होते हैं, उन्हें तो न छोड़ूँ किन्तु और सब बातों में डाक्टर के वश होकर रहूँ। दूध के त्याग में धर्म-भावना प्रधान थी। कलकत्ते में होनेवाली, गायभैंसों पर दुष्ट क्रियाएँ, मेरे आगे मूर्त्तिमंत थीं। यह वस्तु भी मेरे सामने थी कि जिस भांति मांस आदमी की खूराक नहीं है, उसी भांति जानवरों का दूध भी नहीं है। इस लिए दूध के त्याग पर दृढ रहने का निश्चय करके मैं सबेरे उठा। इतने निश्चय से मेरा मन बहुत हलका हो गया। गोखले का भय था। पर मुझे विश्वास था कि वे मेरे निश्चय का सम्मान करेंगे।

सांझ को नेशनल लिबरल क्लब में हम उनसे मिलने गये। उन्होंने तुरत पूछा, "क्यों, डाक्टर का कहा मानने का निश्चय किया न ?"

मैंने धीरे से जवाब दिया, "मैं सभी करूँगा। सिर्फ एक बात का आग्रह आप मत कीजिएगा। दूध और दूध के पदार्थ अथवा मांसाहार मैं नहीं लूंगा। अगर यह न लेने से शरीर न रहे, तो मुझे लगता है कि उसे न रहने देने में ही धर्म है।"

गोखले ने पूछा, "क्या यही तुम्हारा अन्तिम निर्णय है ?"

मैंने जवाब दिया, "मुझे लगता है कि मैं दूसरा जवाब नहीं दे सकता। मैं जानता हूँ कि इससे आपको दुःख होगा पर मुझे क्षमा करेंगे।"

गोखले ने कुछ दुःख से किन्तु अत्यन्त प्रेम से कहा, "तुम्हारा निश्चय मुझे पसंद नहीं पडता है। मैं इसमें धर्म नहीं देखता। परन्तु अब मैं आग्रह नहीं करूंगा।" यह कह कर जीवराज महेता की ओर घूम कर उन्होंने कहा, "अब गांधी को मत सताना। वे जो कहते हैं उसी मर्यादा में उन्हें जो कुछ दे सकते हो, देना।"

डाक्टर ने नाखुशी दिखलायी मगर लाचार हो गये। मुझे मूंग का पानी लेने की सलाह दी। उसमें हींग का बघार देने को कहा। मैंने इसे मान लिया। एक दो दिन यह भी खाया। मेरी तो उससे तकलीफ बढी। वह मेरे मुवाफिक नहीं आया। इससे मैं फिर से फलाहार पर आया। डाक्टर ने बाहर के उपचार तो किये ही। उससे थोडी शान्ति होती थी। पर मेरी मर्यादाओं से वे बहुत घबराते थे। इस बीच गोखले, चूँकि वे लंडन की अक्टूबर, नवम्बर का कोहरा सह नहीं सकते थे, इसलिए देश का रवाना हुए।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

विद्यार्थियों का सुंदर सत्याग्रह

नवजीवन में यह अनेक बार लिखा जा चुका है कि सत्याग्रह सर्वव्यापक होने के कारण, जिस भांति राजनीतिक क्षेत्र में किया जा सकता है उसी भांति सामाजिक क्षेत्र में भी, और जिस भांति राज कर्ता के विरुद्ध, उसीभांति समाज के खिलाफ, कुटुंब के विरुद्ध, माता के, पिता के, स्त्री के, पति के विरुद्ध यह दिव्य अस्त्र काम में लाया जा सकता है। क्योंकि उसमें हिंसा की गंध सी भी नहीं हो सकती, और जहां अहिंसा यानी केवल प्रेम ही प्रेरक वस्तु हो, वहां चाहे जिस स्थिति में इस शस्त्र का उपयोग निडर होकर किया जा सकता है। ऐसा उपयोग धर्मज के (खेडा जिले में एक स्थान) विद्यार्थियों ने धर्मज के बडे लोगों के विरुद्ध थोडे ही दिन पहले कर दिखाया। उस संबंध के कागजपत्र मेरे पास आये हैं। उनसे नीचे लिखी बातें मालूम हो जाती हैं।

थोडे दिन पहले किसी गृहस्थ ने अपनी माता की बारहीं (बारहवें दिन का श्राद्ध) के दिन बिरादरी का भोज कराया। भोज से एक दिन पहले इस विषय पर नौजवानों में बहुत चर्चा हुई। उन्हें और कई गृहस्थों को ऐसे भोजों से अरुचि तो हुई थी ही। और इस बार विद्यार्थी मंडल ने सोचा कि कुछ न कुछ तो कर ही लेना चाहिए। अन्त में बहुतों ने नीचे लिखी तीनों या एक, दो प्रतिज्ञाएँ लीं कि:—

"सोमवार ता: २३-१-१९२८ के दिन बारहीं के लिए जो बडा भारी भोज होनेवाला है, उस में न तो पंगत में बैठ कर न छन्ना ही घर मँगा कर भोजन करेंगे; (२) इस रूढि के विरुद्ध अपना सख्त विरोध दिखलाने के लिए उस दिन उपवास करेंगे; (३) इस काम में अपने घर या कुटुंब में से जो कष्ट सहना पडे, वह शान्ति और राजी खुशी से सहेंगे।"

और इसलिए भोज के दिन बहुत से विद्यार्थियों ने, जिनमें कितने तो नाजुक लडके थे, उपवास किया। इस काम से विद्यार्थियों ने बडे गिने जाने वाले लोगों का क्रोध अपने माथे लिया है। ऐसे सत्याग्रह में विद्यार्थियों को आर्थिक जोखम भी कम नहीं होता है। गुरुजनों ने विद्यार्थियों को धमकाया कि तुम्हें जो आर्थिक मदद मिलती है वह छीन ली जायगी और तुम्हें हम अपने मकानों में नहीं रहने देंगे। पर विद्यार्थी तो अटल रहे। भोज के दिन २८५ विद्यार्थी भोज में शामिल नहीं हुए और कितनों ने तो उपवास भी किया।

ये विद्यार्थी धन्यवाद के पात्र हैं। मैं उमेद रखता हूँ कि हर एक जगह सामाजिक सुधार करने में विद्यार्थी आगे बढ कर हाथ बँटावेंगे। जिस भांति स्वराज्य का चाबी विद्यार्थियों के हाथ है, उसी भांति वे समाज-सुधार की चाबी भी अपनी जेब में लिये फिरते हैं। संभव है कि प्रमाद अथवा लापर्वाई के कारण उन्हें अपनी जेब में पडी इस अमूल्य वस्तु का पता न हो। पर मैं आशा रखता हूँ कि धर्मज के विद्यार्थियों को देख कर दूसरे विद्यार्थी अपनी शक्ति का माप लगा लेंगे। मेरी दृष्टि से तो उस स्वर्गवासी बाई का सच्चा श्राद्ध विद्यार्थियों ने ही उपवास कर के किया। जिसने भोज दिया, उसने तो अपने धन का दुरुपयोग किया और गरीबों के लिए बुरा उदाहरण रक्खा। धनिक वर्ग को परमात्मा ने धन दिया है कि वे उसका परमार्थ में उपयोग करें। उन्हें समझना चाहिए कि विवाह या श्राद्ध के अवसर पर भोज करना गरीबों के बूते के बहार है। उन्हें यह भी जानना चाहिए कि इस खराब रूढि से कितने ही गरीब पैमाल हुए हैं। बिरादरी के भोज में जो धन धर्मज में खर्च हुआ, वही अगर गरीब विद्यार्थियों के लिए गोरक्षा के लिए, अथवा खादी के लिए, या अंत्यज सेवा के लिए खर्च होता तो वह उग निकलता और मृतात्मा को शान्ति मिलती। भोज को तो सब कोई भूल जायँगे। उसका लाभ किसीको मिलेगा नहीं, और विद्यार्थियों को तथा धर्मज के दूसरे समझदार लोगों को इससे दुःख हुआ।

जिस भोज के लिए सत्याग्रह हुआ था, वह बंद न रहा। इस लिए कोई यह शंका न करे कि सत्याग्रह से क्या लाभ हुआ? विद्यार्थी यह आप जानते थे कि उनके सत्याग्रह का तात्कालिक असर होने की संभावना कम है। पर उनमें अगर यह जागृति कायम रही तो फिर कोई सेठ बारहीं करने का साहस नहीं करेगा। बारह वर्ष का कोढ एक दिन में नहीं छूटता। उसके लिए धैर्य और आग्रह की जरूरत होती है।

महाजन समझा जानेवाला वृद्धवर्ग क्या समय का विचार नहीं करेगा? रूढि को समाज अथवा देश की उन्नति का साधन न गिन कर वह कहां तक उनका गुलाम बना रहेगा? अपने बालकों को ज्ञान लेने देगा और फिर उन्हें उस ज्ञान का उपयोग करने से कब तक रोकेगा? धर्मा-धर्म का विचार करनेवाले शिथिलता रखते हैं। शिथिलता छोड सावधान हो कर, वे कब सच्चे महाजन होंगे।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

वैदेशिक प्रचार

असहयोग आन्दोलन के पहले हिन्दुस्तान का राजनीतिक कार्य मुख्यतः ग्रेटब्रिटेन में वैदेशिक प्रचार ही मर्यादित था। उस समय इस पर खर्च भी खूब होता था। और यह खर्च उपयोगी समझा जाता था। जबसे महात्मा गांधी ने हमारे राष्ट्र का नेतृत्व शुरू किया, लोगों का दृष्टि कोण ही बदल गया। इस कार्यक्रम का पहला नतीजा तो यह निकला कि राष्ट्र की शक्ति का हमें सच्चा ज्ञान हुआ और उस समय के हमारे राजनीतिक विचारों पर इसीकी छाप रही। अहिंसा से राष्ट्रीय माँगें पूरी करने के लिए आवश्यक प्राकृतिक नियमों को हमने समझा। स्वभावतः ही फल यह हुआ कि हमें तकरीबन सिर्फ अपने ही पैरों का सहारा रह गया। विदेशों में, ग्रेटब्रिटेन में भी, सहानुभूति पैदा करने की कीमत का हमें ठीक ठीक पता चला और उसके लिए कोशिश करनी प्रायः बंद हो गयी और जब कभी यह सवाल उठाया गया, उसका जोरों से विरोध किया गया। हिन्दुस्तान में उस समय इतने जोरों से काम हुआ, उसके ऐसे नतीजे निकले कि बात की बात में पलडा पलट गया और कहां ग्रेट ब्रिटेन तथा दूसरे विदेशों में हिन्दुस्तानी अपना प्रचार करने जाते थे कि यहीं हार के हार मुसाफिर या दर्शक आने लगे। और ब्रिटिश गवर्नमेन्ट को ही विदेशों में हमारे खिलाफ प्रचारका काम शुरू करना पडा। खुद हिन्दुस्तान में तो सरकार को अपनी सुरक्षितता का भरोसा न रहा, उसे राष्ट्रीय जागृति को रोकने या उसके फलों को जो ही मुलतवी कर सके करने के लिए हमारे खिलाफ प्रचार का प्रबंध करना पडा!

आक्रमणात्मक असहयोग बंद होने के बाद से भारतीयों के विचारों ने धीरे धीरे पलटा खाया है। धीरे धीरे, किन्तु दृढता से विदेशों में प्रचार कार्य की पुकार बढती जा रही है। भीतरी मुश्किलों से भी, जैसे कि एक साथ मिल कर काम करने की, लोगों को स्वभावतः ही विदेशों में काम करने के सुगम मार्ग का मुँह देखना पडता है। जो लोग असहयोग के सिद्धान्त के अब भी कायल हैं, और जो मुक्ति का रास्ता केवल आन्तरिक शक्ति में ही देखते हैं, उनकी नजर में राष्ट्र की इधर उधर उडती नजर, दूसरों का मुँह जोहना, हमारी बढती हुई निर्बलता का चिह्न है। इससे वे चिन्तित हो रहे हैं। इस ओर का झुकाव बढने के साथ साथ दृष्टि धूमिल होगी ही, और रचनात्मक कार्य में बाधा पडेगी ही। इससे न सिर्फ ध्यान दूसरी ओर खिच जाता है बल्कि कुछ अच्छे से अच्छे कार्यकर्त्ता भी ऐसे सरस या दिलपसंद किन्तु ऊसर, बेकार काम में जबरन खिंच जायँगे।

असहयोग के पहले वैदेशिक प्रचार मुख्यतः ब्रिटेन में ही होता था। मगर पिछले आठ साल के काम का एक स्थायी परिणाम तो यह हुआ है कि ब्रिटेन पर से हिन्दुस्तान का विश्वास बिलकुल ही जाता रहा। ब्रिटिश मजूर दल पर जो कुछ जरा मरा विश्वास बचा हुआ था, वह भी नष्ट हो गया। इस लिए अभी प्रचार की जो पुकार हो रही है, वह कुछ इंग्लैण्ड में प्रचार की नहीं है, किन्तु दूसरे देशों से सम्पर्क और मित्रता स्थापित करने की है। कहा जाता है कि जर्मन और रूसी लोगों से परिचय करने से बडा लाभ होगा। हमें कहा जाता है कि यूरोप में प्रचार का बहुत अवकाश है। इसके लिए फ्रांस, इटली, स्पेन और पुर्तगाल के नाम लिये जाते हैं। गरीब स्केन्डिनेविया का नाम भी नहीं भूलता क्योंकि वह भी महत्वपूर्ण और निष्पक्ष देश समझा जाता है। हमें बतलाया जाता है कि इस समय जरूरत है उन देशों से हमारा संबंध जोडने की जो आप भी इसी प्रकार के साम्राज्यवाद की लूट खसोट के नीचे दबे हुए हैं। हमें यकीन दिलाया जाता है कि अगर एशिया के सभी देश मिल कर पश्चिम की गुलामी के विरुद्ध उठ खडे हों, तभी हिन्दुस्तान को भी कुछ आशा भरोसा है। वैदेशिक प्रचार के प्रति मनोवृत्ति में इस परिवर्तन की प्रतिध्वनि अ. भा. महासमिति में भी स्वभावतः सुनायी पडी थी, जहां कि वैदेशिक विषयों का ही प्राधान्य रहा और जिसमें आन्तर्राष्ट्रीय मित्रता पैदा की जा सके ऐसे कई प्रस्ताव स्वीकार किये गये।

अगर हमारी स्थिति अच्छी होती, और तब हम दूसरों से सरोकार करना इनकार करते तो यह हमारी संकीर्णता, और संस्कृति और सज्जनता में कमी कही जाती। मगर भली स्थिति में जो विशाल-हृदयता, सभ्यता, और सज्जनता गिनी जाती, वही बात मौजूदा स्थिति में महज लाचारी, असहायपना कही जायगी और उससे कोई लाभ भी नहीं होगा। दूसरे देशों से तभी दोस्ती हो सकती है, और उससे लाभ भी हो सकता है, जब कि दो आदमियों की दोस्ती के समान वह भी केवल एक ही पक्ष के लाभ ही लाभ के लिए न की जाय। हमें दूसरों से दोस्ती करनी हो तो यह जरूर है कि उनसे कुछ लेने के अलावा, उन्हें भी देने को हमारे पास कुछ हो। अगर दर असल हम दूसरों की कोई सहायता नहीं कर सकते और सिर्फ उन्हींसे कुछ न कुछ लेते रहें तो इससे परस्पर न तो सम्मान बढेगा और न सच्चा दोस्ती ही हो सकती है। अगर हम दूसरों को सहायता देने के सचमुच लायक हैं तो हम पहले परम प्रयत्न करके अपने में शक्ति पैदा करके ही कुछ कर सकते हैं और वह अगर सच्चे रास्ते पर हो तो, उसका प्रभाव स्वदेश में ही अधिक स्पष्ट दिखलायी पडना चाहिए। जिन देशों से हम मित्रता करना चाहते हैं, उन्हें हमारे पास से कुछ सीखने को या हमसे कोई लाभ होना चाहिए। अगर हमारे यहां कोई मूल्यवान् जबर्दस्त आन्दोलन चलता हो, कोई क्रान्तिशील प्रयत्न हो रहा हो, जिसकी नकल अथवा अध्ययन दूसरे लाभ के साथ करें, तो हम उनसे बराबरी का नहीं तो कम से कम सम्मानित मित्रता जरूर करेंगे। मगर हमेशे तो हम अपनी प्राचीन संस्कृति या गांधी आन्दोलन की ही पूँजी पर गुजर नहीं कर सकते।

केवल गुलामी के जुँए का भाईचारा न तो सच्चा होगा और न उससे कोई लाभ ही होगा। हम रूस, चीन या तुर्की की ओर क्यों झुकें? इन देशों; के केवल प्राचीन इतिहास से ही हम आकर्षित नहीं होते हैं। अगर केवल एक वही चीज होती तो हम शायद ही उधर झुकते। मगर उनकी ओर हमारे झुकने का कारण यह है कि हम जानते हैं कि उन देशों में बडे बडे आन्दोलन चल रहे हैं जिनके अध्ययन से हमें लाभ हो सकता है, जिन्हें प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाता है और वहां पर हमारे कुछ देशवासी जाया करते हैं।

इसी भांति हम अगर दूसरों से दोस्ती करना चाहते हैं तो उन्हें भी देने के लिए हमारे पास कोई मूल्यवान वस्तु होनी चाहिए। नहीं तो हम केवल भिखारी ही होंगे और उसी मुवाफिक व्यवहार की आशा हमें रखनी चाहिए।

मगर कहा जा सकता है कि यह तो संसार की राजनीति की ओर से आंखें मूंदनी है। लडाइयां होनेवाली हैं। संसार के भिन्न २ देश एक दूसरे की योजनाएँ चौपट करने की कोशिश हर दम कर रहे हैं। और इस शतरंज की बिसात में हिन्दुस्तान का मोहरा कीमती है। अपने आन्तरिक मुआमलों में हम जितने असहाय हैं, उतने अन्तर्राष्ट्रीय मुआमलों में नहीं हैं। इसके लिए बहुत सी बातें स्पष्ट करनी होंगी। क्या हम लडाई करना चाहते हैं या जिन देशों की इंग्लैण्ड से लडाई करने की संभावना हो, उनसे संधि करने जाते हैं या हमींपर कोई हमला करना चाहता है? अगर दो देश लडते हैं तो तोप, गोला और लडाई के जहाजों को ले कर लडते हैं। क्या हम राष्ट्र के रूप में किसी ऐसी लडाई में शामिल हो कर लाभ पहुँचा सकते हैं? अथवा क्या यह खयाल है कि हिन्दुस्तान और पूर्व के दूसरे गुलाम देश आपस में संधि कर के भविष्य में सबके एक दुश्मन का विरोध करने में परस्पर सहायता करेंगे? अथवा कोई संसार-व्यापी युद्ध शुरू होने पर हिन्दुस्तान को कभी आशा है कि वह किसी मौके पर इंग्लैण्ड पर आक्रमण करनेवाले देश को कोई सहायता पहुँचा सकेगा? बस एक इसी दलील का क्या जवाब है कि क्या हिन्दुस्तान को कभी इस तरह से कुछ पाने की आशा है? जैसे कि हम निःशस्त्र हो रहे हैं, क्या यह कभी किसी किस्म की व्यावहारिक राजनीति कही जा सकती है?

कहा जा सकता है कि हम अस्त्र शस्त्र नहीं चाहते। हम निष्क्रिय प्रतिरोध से बहुत कुछ कर सकते हैं। युद्ध में या शान्ति में ब्रिटिश सरकार से लडने के लिए हमारे पास केवल एक ही शस्त्र यानी असहयोग है। आखिर यहां हम उसी पहली स्थिति पर पहुँच गये। अगर हिन्दुस्तान को इँगलैण्ड से अहिंसामय उपायों से ही युद्ध करना है तो वह केवल हमारी अपनी ही आन्तरिक शक्ति पर निर्भर होगा, वह कभी आन्तर्राष्ट्रीय विषय बनाया ही नहीं जा सकता अहिंसा मय युद्ध में बाहर से अगर सहायता मिल भी सके तौभी मिलनी आसान नहीं है। परन्तु केवल संपूर्ण स्वावलंबन के विचार काही आधार रख कर, उसकी कल्पना करनी होगी, संगठन करना होगा, और उसे लडना होगा।

यों हमें नैतिक सहायता तो दूसरे देशों से मिल सकती है। किन्तु उसके लिए हमें विदेश में या स्वदेश में प्रचार करना जरूरी नहीं है किन्तु हम अपने यहां जितना ठोस काम करेंगे और आन्तरिक शक्ति पैदा करेंगे, वह ठीक उतनी ही मिलेगी।

[मैं वैदेशिक प्रचार के मसले पर गर्मागर्म बहस छेडना नहीं चाहता किन्तु मैंने उपर का लेख इस लिए छापा है कि उसमें बहुत से कार्यकर्त्ताओं के विचार का संक्षेप आ जाता है। और उनके विचार इस लिए निर्बल नहीं कहे जा सकते कि वे उन्हें सार्वजनिक रूप से प्रगट नहीं करते। १९२० का अगर सच्चा और शुद्ध असहयोग बडे पैमाने पर वे नहीं पाते हैं तो वह असहयोग कुछ लोगों के जीवनों में दिनोंदिन और भी अधिक घर करता चला जाता है और आज जो कुछ होता है, उससे उनके विश्वास की पुष्टि ही होती है। मगर वे समय, असमय, हमेशे शोर मचा कर असर नहीं डाल सकते। इसके उलटे उन्हें लगता है कि हम जहाँ बोल कर सेवा नहीं कर सकते, वहां चुप रह कर ही और नम्रता पूर्वक, सक्रिय रूप में जहां कहीं सहायता कर सकें, कर के ही स्वराज्य की सेवा कर रहे हैं।

मो० क० गांधी]

(यं० इं०)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन सुदी १० संवत् १९८४

अंधेर या कुराज्य ?

एक सम्मानित मित्र लिखते हैं :

"आप जब अपना कोई राजनीतिक मत प्रकाशित करते हैं, मैं उसमें बारबार टांग नहीं अडाता हूँ। मगर हाल के अपने किसी सम्पादकीय लेख में आपने अपना एक पुराना निराला मत दुहराया है, जिसके कारण मुझे बरबस आपसे पूछना ही पडता है कि आपने क्या इस बार भी अपने शब्दों को उसी सावधानी से तौला है, जिसकी आशा नीति के प्रतिपादकों से की जाती है? यह तो बिलकुल ही स्वाभाविक, समुचित और श्रेयस्कर है कि हिन्दुस्तानियों को किसी विदेशी जुएँ से स्वतन्त्र होने की इच्छा हो और वे इसके लिए प्रयत्न करें। किन्तु यह तो अक्ल के बाहर की बात है कि कोई होशो हवास में रह कर भी किसी तरह की सुसंगठित सरकार के बदले अंधेरखाता चाहे क्योंकि एक में अगर किसी भांति के, चाहे ऊपर से लादे या आप बनाये, संयम नियम का पता है भी तो दूसरा तो आत्म-संयम का बिलकुल उलटा ही है। अंधेरखाता भगवान् के शब्दकोष में भले ही हो। मनुष्य के मुँह में तो उसके कोई मानी ही नहीं हो सकते और वह वैसा ही खतरेनाक मुबालगा (अतिशयोक्ति) और मति-भ्रम है, जैसा कि 'इन्डिपेन्डेन्स' शब्द है, जिसके विरुद्ध आपने वाजिब ही कमर कसी। इसके अलावा, मुझे यह भी जान पडता है और खुद आपने भी यह इतनी बार स्वीकार किया है कि बुद्धिमानी इसी में है कि आदमी उन कामों और शब्दों से दूर रहे, जिनसे अनजान लोगों को गलत रास्ते ले जाने का मतलब न होते हुए भी, उनके जाने का भय हो और वे बेशक इस शब्द के ऐसे अर्थ लगायेंगे, जिनकी कल्पना भी आपको न होगी। हर एक वहशी आदमी, अहिंसा की आपकी शर्त्तों को समझे बिना, इसीपर जोर देगा। जैसा कि आपका दावा है, अगर अहिंसा स्वभाव से ही, रचनात्मक, सार्थक और दिव्य वस्तु हो तो, उसका नतीजा, या खासियत, कभी अंधेर नहीं हो सकता। अगर आपने सोच समझ कर यह शब्द लिखा है तो मैं यही कहूँगा कि आपने मनुष्य-जाति की कोई सेवा नहीं की है। उन्हें जरूरत इस याद दिहानी की है कि हमें विश्व-दृष्टि, पैदा करनी चाहिए न कि जिसकी ओर उनका स्वाभाविक ही झुकाव होता है उस असंयत, अनियमित अंधेरखाते की। अगर किसी गंभीर और उच्च भावना के आवेश में यह केवल भाषा की ढिलाई के कारण हुआ है तो, मुझे आशा है कि विचार करने पर आप अपना असल मतलब स्पष्ट करेंगे।"

इस पत्र में छिपी लगन को तो भूला ही नहीं जा सकता। और इस मित्र के विचारों के लिए मेरा इतना आदर है कि अगर उनके अनुकूल मैं अपने विचार बना सकता तो जरूर खुशी से बना डालता।

मगर मुझे कहना ही पडेगा कि मैंने यह शब्द सोच समझ कर चुना था। अंधेरखाता का अर्थ है — अनियम, अव्यवस्था। नियम और व्यवस्था का जन्म अनियम और अव्यवस्था से होता है किन्तु सीधे उस कु-नियम और कु-व्यवस्था से कभी नहीं जो नियम और व्यवस्था के भेस में प्रचलित हों। मैं मानता हूँ कि इस मित्र की कठिनाई इस मान्यता के कारण हुई है कि भारत सरकार आज "किसी न किसी भांति के ऊपर से लादे या आप बनाये नियम और व्यवस्था का प्रतिरूप है।" संभवत: वर्त्तमान शासन-पद्धति के बारे में हमारे विचारों में फर्क हो। मेरा अपना खयाल यह है कि यह तो बिलकुल ही बुरी है। इसलिए बुराई से भलाई नहीं हो सकती। मैं कु-शासन या कु-राज्य को अ-शासन या अ-राजकता से बुरा मानता हूँ।

फिर मेरे शब्दों से अनजान अथवा हिंसा-प्रिय लोगों के मन में भ्रान्ति नहीं हो सकती। क्योंकि मैं पत्र-लेखक की बात कबूल करता हूँ कि अंधेर खाता तो केवल हिंसा का ही फल हो सकता है। क्या मैंने अनेक बार इन पृष्ठों में लिखा नहीं है कि अगर मुझे इस सरकार और हिंसा में से एक चुनना ही पडे तो मैं हिंसा को ही पसंद करूँगा गोकि मैं हिंसा के आधार पर चलते हुए युद्ध में सहायता नहीं करूँगा, कर नहीं सकूँगा। मेरे लिए तो इसमें दूसरा रास्ता ही नहीं। आज की शान्ति तो हिंसा का खतरेनाक रूप है जो उससे भी बडी हिंसा या बडी हिंसा करने की तैयारी के नीचे दबायी हुई है। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि जो मौत के या घरबार छिन जाने के कायर भय से, मन में हिंसा से कुढते हुए भी, जब्र किये हुए हैं, हिंसा कर लेवें और गुलामी से या तो स्वतंत्र हो जायँ या अपने जन्मसिद्ध अधिकारों को लेने के प्रयत्न में मर जायँ।

मेरी अहिंसा कोई किताबी सिद्धान्त नहीं है जो अनुकूल अवसर देख कर बतलायी जाय। यह वैसा सिद्धान्त है, जिसे मैं सभी कार्यक्षेत्रों में लाने का प्रयत्न अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में कर रहा हूँ। अहिंसा को घुसाने की मेरी कोशिश प्रायः मेरी अपनी ही कमजोरी या अज्ञान के कारण चौपट हो जाती है। उस समय मुझे अपने इसी ध्येय की खातिर हिंसा को मन से ही मंजूर कर के उसे सहन करना पडता है। १९२१ में मैंने बेतिया के निकट गांववालों को कहा था कि तुमने बुरे मतलब-वाले अमलों का विरोध न करके उनके आने पर भाग जाने में कायरता दिखलायी है। एक दूसरे अवसर पर किसी पुजारी के कारण मैं शर्म्मिन्दा हुआ था, जिसने कहा कि कुछ बदमाशों के मंदिर लूटने और मूर्त्ति तोडने के लिए आने पर मैं चुपचाप जान ले कर भाग निकला। मैंने उसे कहा कि अगर तुम अपनी जगह पर अहिंसा भाव से डटे रह कर अपनी मूर्त्ति की रक्षा में मर नहीं सकते थे, तो तुम्हें दूसरों को मार कर भी मूर्त्ति की रक्षा करनी चाहिए थी। इसी भाँति मैं मानता हूँ कि वर्त्तमान कु-शासन से हिंसा के जरिए भी हिन्दुस्तान का स्वतंत्रता लेना अच्छा है, बनिस्वत इसकी कि उसका धन और इज्जत दिन रात लूटी जाती रहें और वह असहाय होकर तमासा देखे।

जरा देखिए तो कि किस बेशर्म तरीके से ब्रिटिश राजनीतिज्ञ (?) हिन्दुस्तान का अपना लूटपाट जारी रखने के लिए एक दल को दूसरे से लडा रहे हैं। उन्हें आज अचानक अछूतों का पता लग गया है क्योंकि जान पडता है कि उन्हें डर है कि केवल हिन्दू-मुसलिम झगडों से ही "ब्रिटिश ताज के सबसे चमकदार हीरे" का सुरक्षित रहना शायद मुश्किल हो। वे असहाय नरेशों को लोगों से लडाने की कोशिश कर रहे हैं। सर जौन साइमन को भी यही चाल़ चलनी आवश्यक जान पडती है। कहा जाता है कि उनकी बुद्धि बडी तीक्ष्ण और रहस्य-भेदिनी है। किन्तु उनके सम्मान के लिए रचे हुए बहुत ही महीन पर्दे को वह छेद नहीं सकती। उन्हें भारतीय वाताकाश में कोई बात बिगडी हुई नहीं मिलती। इस भांति के 'सुव्यवस्थित अंकुश' ने तो प्रजा को इतना नामर्द और अशक्त कर दिया है, जितना कि उसके पूर्व इतिहास की किसी घटना ने उन्हें नहीं किया था।

मेरी अपनी स्थिति और विश्वास, दोनों स्पष्ट और बेदुबिधा के हैं। मैं न तो वर्तमान शासन चाहता हूँ और न अंधेर खाता ही। मैं अंधेर के रास्ते से गुजरे बिना, सच्ची सुव्यवस्था स्थापित देखना चाहता हूँ। मैं इस अव्यवस्था को अहिंसा से नष्ट करना चाहता हूँ। अपनी बुराई करनेवालों का मत ही बदलना चाहता हूँ। इसी काम के लिए मेरा जीवन समर्पित है। और ऊपर जो कुछ मैं लिख आया हूँ, वह अहिंसा के मेरे ज्ञान से सीधे निकलता है। अहिंसा से बडी शक्ति मनुष्य जाति को मालूम नहीं है। इसकी शक्ति या प्रभावशालिता में मेरा विश्वास अटल है और उसी भांति मेरा यह विश्वास भी अटल है कि केवल अहिंसा के ही जरिए स्वतंत्र होने की शक्ति हिन्दुस्तान में है। मगर सत्य या सच्ची बातों को छिपाने से, चाहे वे इस घडी कितनी ही बुरी क्यों न मालूम हों, शक्ति नहीं मिल सकती। भगवान् न करें कि हिन्दुस्तान को अहिंसा का पाठ पूरा पूरा पढने के पहले खूनी लडाई लडनी पडे। मगर वह बीच की सीढी, जो प्रायः जरूरी जान पडती है, उसके भी भाग्य में बदी होवे तो उसे अपने मुक्ति के मार्ग में उस में से भी जरूर ही गुजरना होगा और वह आज की वर्त्तमान व्यवस्था से तो जरूर ही अच्छी होगी। आज की व्यवस्था तो महज एक उजला कफन है, जिसके नीचे केवल हिंसा ही हिंसा छिपी हुई है।

(यं. इं.)

मोहनदास करमचंद गांधी

बारडोली में सत्याग्रह

सरकार

कुछ मुखिया किसानों को नोटिस देने के अलावा, सरकार ने अभी और कुछ नहीं किया है। संभव है कि दूसरी किश्त के दिन बीतने तक यानी १५ अप्रेल तक शायद सरकार की ओर से कोई दबाव न डाला जाय। अगर यह हो तो अच्छा ही है। लोगों को अपना संगठन करने का और भी समय मिल जायगा। दबाव डालने के कानून कायदे तो अभी काम में आने शुरू हुए हैं किन्तु आगे आगे कूदनेवाले सरकारी अफसरों की ओर से गैरकानूनी दबाव के उदाहरणों की कमी नहीं है। बेडकुवा गांव में उस दिन किसी तलाती ने एक रानीपरज किसान को बडी निर्दयता से पीटा। पहले तलाती ने धमकाना शुरू किया, किन्तु जब वह किसान धमकी से न डरा तो उसने घूसे, ठोकरें चलानी शुरू कीं। दूसरी जगह दो आदमी गैरकानूनी तौर पर रोक लिए गये थे और वे लगान देने के ही बाद छोडे गये। इसको धर्मयुद्ध नहीं कहा जाता। किन्तु पाशविक बल पर चलनेवाली सरकारें विरले ही धर्म युद्ध का नाम जानती हैं। जो डिप्युटी कलक्टर गांव गांव में घूम रहे हैं, वे ऐसे जलील तरीके अख्तियार नहीं करते हैं। वे तो गांव के कुछ मुतव्वर लोगों को बुलाकर, उनसे बहस करते हैं और कहते हैं, "बकाया लगान यदि पूरा नहीं तो कुछ तो जरूर दे दो। और नहीं तो एक ही पाई सही, मेरी खातिर तो, दे दो।" बेचार गांववाला कहता है "हां, आपकी खातिर कर तो सब कुछ सकते हैं किन्तु सारे गांव की रजामंदी के बिना कैसे कुछ कर सकते हैं?" साहेब ने कहा, "अगर मैं तुम्हें जेल भेज दूँ तो?" भोला भाला किसान बोल उठा, "यह क्यों साहेब? हम तो कुछ राजद्रोही नहीं हैं?" साहेब ने हँस कर माफी माँगी और उसे विदा किया।

लोग

यह तो सरकार की बात हुई। लोग दिनों दिन परिस्थिति की गंभीरता के समझते जा रहे हैं। वे नियमित सभाएँ करते हैं, समाचारों की चर्चा करते हैं, जब कभी सरकार दबाव डालना शुरू करे, उससे जूझने की तैयारी कर रहे हैं और हर एक जमीनवाले से सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करा रहे हैं। फल यह हुआ है कि केवल दो ही तीन गांव ऐसे हैं, जो सत्याग्रह में शरीक नहीं हुए हैं और सिर्फ इने गिने जमीनवाले अभी तक दुबिधा में हैं। उन्होंने अब तक अपनी किश्त अदा नहीं की है, और कहते हैं कि आगे भी नहीं देंगे किन्तु प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे। सरभण भी ऐसे ही गांवों में से था, किन्तु श्री वल्लभभाई के समझाने बुझाने से वहां पर एक एक आदमी ने हस्ताक्षर कर दिया है। ताल्लुके का एक सबसे महत्वपूर्ण गांव वाडोड है जो अब तक लोकमत की पर्वा नहीं करता है। वहां भी छोटी हैसियतवालों ने दस्तखत कर दिये हैं मगर बडी हैसियत वाले मानों यह सोच कर कि दुनिया भर में सबसे अधिक मिटने का डर उन्हींको होना चाहिए, अब तक नहीं सुनते। दूसरी ओर कई गांवों के पटेलों तक ने औरों का साथ दिया है, और सबे मन से इस आन्दोलन में वे शरीक हो गये हैं। वालोड के मुसलमानों को दस्तखत करने में मजहबी उज्र था किन्तु इमाम साहेब अबदुल कादिर बावजीर के समझाने पर सबने दस्तखत कर दिये हैं और अखीर तक डटे रहने को तैयार जान पडते हैं। इमाम साहेब रोजा रखते हुए भी अपने सहधर्मियों में घूम घूम कर प्रचार कर रहे हैं।

कुछ रानीपरज (जंगली जाति) लोगों को उनके महाजन बनियों ने धोखा दिया है। इन बनियों ने नोटिस निकलने के भी पहले ही न सिर्फ अपना ही लगान चुका दिया था किन्तु अपने कुछ खदुके (कर्जदार) रानीपरज लोगों की ओर से भी खजाना भर दिया था। संभावना भी इसीकी थी। मगर इन असहाय लोगों का भी एक बडा अंश दृढ है। उस दिन हम लोग उनके एक गांव में गये थे। यह तो खादी का गांव था। बडे छोटे सभी आये हुए थे। उनमें न सिर्फ केवल वे ही आये थे जो खादी बुनते हैं, और शराब वगैरह छोडे हुए हैं किन्तु वे भी आये थे जिन्होंने अब तक खादी पूरी पूरी स्वीकार नहीं की है और शराब छोडने की भी प्रतिज्ञा नहीं ली है। खादी न पहननेवाले, अब तक खादी पहननेवालों से डरा करते थे, किन्तु उन्होंने इसमें इनका हार्दिक साथ दिया है। खादी बुननेवालों में से चतुर युवकों का एक स्वयंसेवक दल रानीपरज लोगों में काम करने के लिए आ खडा हुआ है। तीन साल पहले गांधीजी के सामने जिन युवतियोंने खादी पहनने का व्रत लिया था और अपने पीतल के भारी भारी गहने छोड दिये थे, वे सब वहां बेदाग दूध के समान खादी के उजले कपडे पहन कर, खुशी से फूली न समातीं, सत्याग्रह के गीत गाती हुई हाजिर थीं।

रिपोर्टर के रूप में तलाती

बोरसद सत्याग्रह के जमाने में श्री. वल्लभभाई जहां कहीं जाते, सी. आई. डी. (खुफिया पुलिस) के दो रिपोर्टर (खबर दिहन्दा) उनके पीछे पीछे लगे फिरते थे। बारडोली में सरकार ने पुलिस रिपोर्टरों की सहायता लेनी ठीक नहीं समझी है। शायद आज हर मुख्य गांव में होनेवाली अनेक सभाओं की खबर रखनी ही उनकी शक्ति के बाहर हो। इसलिए तलातियों को हुक्म दिया गया है कि अपने गांव में होनेवाली हर एक सभा में शामिल हो कर उसकी रिपोर्ट लिखाया करो। इसका तो पता नहीं कि गांव का लगान वसूल करके हिसाब देनेवाले तलाती या पटवारी का काम रिपोर्ट लिखना भी है या नहीं। किन्तु लिख लोढा पढ पत्थर कान्स्टेबलों से तो वे हर हालत में अच्छी ही रिपोर्टें देंगे। मगर आखिर सरकार किस लिए बेचारे गरीब तलातियों को भी तकलीफ देती है? वह मजे में यह मान ले सकती है कि हर एक व्याख्यान

दाता असंतोष का उपदेश देने के सिवाय और कुछ कहता नहीं ही। और हमारा प्रकाशन विभाग भी हर एक महत्वपूर्ण भाषण को प्रकाशित करता ही है।

बाहरवालों की सहानुभूति

इस जिले के दूसरे ताल्लुके भी सहानुभूति प्रकट कर कर रहे हैं। जलालपुर ताल्लुके कुछ गांववालों ने तो यह विचार करने के लिए भी सभा की थी कि बारडोली को किस तरह सहायता दी जा सकती है। श्रीयुत वल्लभभाई पटेल को सभा में जा कर भाषण देने का निमंत्रण आया था किन्तु वे वहाँ गये नहीं। उन्होंने अपने एक सहायक की मार्फत यह खबर भिजवायी कि बारडोली के किसानों ने अब तक ऐसा कोई काम नहीं किया है कि उन्हें बधाई दी जाय और हमने जब अपने ही ताल्लुके में ही कोई कोष नहीं खोला है, और कोई कष्ट नहीं उठाया है, तब बाहर की सहायता कैसे ले सकते हैं। ४ तारीख को सूरत में भी बारडोली के साथ सारे जिले की सहानुभूति प्रकट करने के लिए एक जिला सम्मेलन होने को था। जान पडता है कि श्रीयुत वल्लभभाई पटेल ने सरकार के कुछ दमन शुरू करने और सत्याग्रह जोरों से चलने लगने के पहले सम्मेलन न करने की सलाह दी है। उन्होंने कहा, "हमने अब तक ऐसा कुछ नहीं किया है, जिससे अपना ढिंढोरा पीटना शुरू करें। हम तो अपने सभी मित्रों से प्रार्थना करेंगे कि आप अपनी सहानुभूति और सहायता हमारे लिए तब तक सुरक्षित रक्खें जब तक कि हम अग्नि-परीक्षा से उत्तीर्ण नहीं हो लेते।"

(यं० इं०) **महादेव देसाई**

परम निर्णायक

प्रायः देखने में आता है कि संस्कृत में लिखे हर एक श्लोक को लोग आँखें मूँद कर वेदवाक्य के समान मानते और शास्त्र कहते हैं। इसके जवाब में श्रीयुत एस. डी. नाडकर्णी ने मेरे पास बुद्धि को अन्तिम प्रमाण कहनेवाले निम्नलिखित श्लोक ऐसे ग्रन्थों से लिख भेजे हैं जो सर्वत्र प्रामाणिक समझे जाते हैं।

अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं चेयुक्तिबोधकम्।
अन्यत्त्वार्षमपि त्याज्यं भाव्यं न्याय्यैकसेविनाम्॥
युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि।
अन्यत्तृणमिव त्याज्यम् अप्युक्तं पद्मजन्मना॥

"यदि पौरुषेय शास्त्र भी युक्ति के अनुकूल हो तो उसे स्वीकार करना चाहिए और आर्ष शास्त्र को भी ऐसा न होने पर त्याग देना चाहिए। यदि बालक भी युक्तियुक्त बात कहे तो उसे स्वीकार करना चाहिए और ब्रह्मा के भी अयुक्तियुक्त वचन को तृण के समान त्याग देना चाहिए।" योग वाशिष्ठे (न्याय प्रकरणम्)

समयश्चापि साधूनां प्रमाणं वेदवद् भवेत्।

"साधुओं का स्वीकृत आचार भी, वेदों के समान प्रमाण होगा।"

—माधव स्मृत्याम्

ये श्लोक बतलाते हैं कि शास्त्र इस लिए नहीं बनाये गये थे कि वे बुद्धि की जगह ले लेवें किन्तु बुद्धि को सहायता देवें और अन्याय या असत्य के पक्ष में शास्त्र की दुहाई कभी नहीं दी जा सकती।

(यं० इं०) **मो० क० गांधी**

भूल सुधार

गताङ्क में भूल से आत्मकथा ४० वें अध्याय का शीर्षक 'सत्याग्रह की छोटी सी लडाई' के बदले केवल 'सत्याग्रह का' छपा था। पाठक कृपा कर यह भूल सुधार लेंगे।

उप० सं० हिन्दी नवजीवन

कामधेनु चर्खा

['हिन्दी नवजीवन' के किसी पिछले अंक में हमने ... के एक बडे किसान की बात चीत दी थी। इस बार सारे ... परज का मनोरंजक हिसाब दिया जाता है।

उप० सं० 'हि० न०'

इस साल गांधी जी की प्रमुखता में पांचवीं रानीपरज ... बैठी थी। उस समय स्वागत समिति केवल उन्हीं लोगों की ... गयी थी जो केवल अपने ही घर के कते सूत की खादी पहन ... इस शर्त्त के अनुसार ११५२ सभ्य अपने ही घर के सूत की ... पहन कर हाजिर हुए थे। देश की आज की स्थिति में ... आश्चर्य जनक जान पडेगी परन्तु ऊपर दी गयी बातें ... इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

इस साल ६१२ चर्खे बिके, ८३३९ रतल सूत का ... बहुतों को बुनाई का काम मिला। पर अब यह देखना ... चर्खा चला कर, खादी पहन कर रानीपरज लोगों ने एक ... क्या कमाई की:

आमद		खर्च	
९१२२-०-०	सूत २०८ मन १९ सेर का २०८५० गज कपडा बुना गया दर ०।≤ आने गज	४१७०-०-०	कपास ... की कीमत ... की दर ...
८२०-४-८	बिनौले ४६८ मन दर १॥।)मन, ६९५ मन कपास में से मन पीछे २७ सेर बिनौले निकले	२२८०-०-०	खादी ... गज की)॥ ...
		६४५०-...	
१७३१-४-०	रानीपरज बुनकरों ने कमाया	५२२४-०-०	नफा
१२१७-४-०	सूत ५५ मन ५ सेर का ५०४८ गज कपडा बुना		
५१४-०-०	बुनकर सहायक कोष के		
कुल रु. ११६७४-०-०		कुल रु. ११६...	

यों खेती के काम से मिली हुई फुरसत में नमक ... के लिए एक साल में ५२२४) रु. की आमदनी हुई ... यह कोई सारे रानीपरज प्रदेश का काम नहीं है। ... १०६२ कुटुम्बों का हिसाब है। इनमें थोडों ने ही ... अधिक सूत काता है और बहुतों ने तो सिर्फ दो ... ही काता है। यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने ... लाभ ठीक ठीक समझा है। ११० गांवों में से ... गांवों के १०६२ कुटुम्बों में से लगभग २०० कुटुम्बों ने ... चर्खे से पूरा लाभ उठाया है। परन्तु जितना हुआ है ... चर्खे की शक्ति को दिखलाने के लिए काफी है।

(नवजीवन)

उत्कल में खादी

श्रीयुत निरंजन पट्टनायक अ. भा. च. संघ की उत्कल शाखा का १-१०-१९२६ से ३०-९-१९२७ तक का निम्नलिखित हवाल भेजते हैं:

भूमिका

यह रिपोर्ट अक्तूबर १९२६ से सितंबर १९२७ तक की है, इस साल उत्पतिकार्य में वृद्धि हुई है। चर्खा संघ के दो कताई केन्द्र, दो बुनाई केन्द्र, चार बिक्री के और बरहमपुर में जहां कि इसका मुख्य दफ्तर है रंगाई और छपाई का एक केन्द्र चलता है।

उत्पत्ति

इस साल उत्पत्ति के कोई नये केन्द्र नहीं खोले गये हैं। कोडाला में से कताई का मुख्य केन्द्र हटा कर बोयरानी में ला रक्खा गया है। बंगाल नागपुर रेलवे की हडताल और बाढ के कारण रेलवे लाइनों के टूटने से फरवरी-मार्च और अगस्त-सितंबर में दोनों बार डेढ डेढ महीनों तक रुई की आमदनी बंद हो गयी थी।

गत तीन वर्षों में खादी की उपज के अंक नीचे दिये जाते हैं:

	१९२४-२५	१९२५-२६	१९२६-२७
वजन		२८१ मन १६ सेर ६१½ तोला	३६६मन १८ सेर
कीमत	रु.४८८१-९-७½	रु.३३,१५६-३-८½	रु.४१,५७४-०-४

निम्नलिखित अंकों से शाखाओं की प्रगति का पता चलेगा :

(क) कितनी खादी बनी

	१९२४-२५ मन	१९२५-२६ मन	१९२६-२७ मन
कोडाला	२६	१९०-२६-१६	२७२-३६-११
पद्मनाभपुर	२६(तकरीबन)	९०-१६—०	९३-२१-६९

(ख) कितना सूत कता

बोयरानी	३७-१३-५२	९०-३३-६२½	९०-३७-२७
बोलगड	२८-३०-३६½	२७-३६-७१½	९०-३७-२७

कपडे भी कोट के, कमीज के, कुर्त्ते के, चादरें, धोतियां, होडा, यां, अंगौछे, तौलिये, विस्तर की चादरें, कंबल, छपी हुई चीजों की चादरें, सारियां, छींट, गुलूबंद, और कंबल आदि बने। मूल्य-सूची देखने पर कपडे की कोई ३५० से भी अधिक जातियां मिलती हैं और १६ तरह का तैयार माल उसके अलावा। टर्किश का तौलिया, और चादर (जिनकी बिक्री भी खूब होती है) एक जाति की सुन्दर कौन्टरपेन, और सुन्दर किनारीदार चादरें इस साल से बनने लगी हैं।

सूत में भी, और खास कर बोलगढ में कुछ सुधार हुआ है। सामान्यतः अच्छी हुई है।

सूत तैयार करने में हमें अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पडती हैं। यहां का चर्खा छोटा होता है। उसके चक्कर का व्यास १२ इँच से कम होता है। धुरी पत्थर की होती है और सारा का सारा ठीक ठीक बैठा हुआ भी नहीं होता। इस पर तकुआ भी मोटा महामन्त्र। कातनेवालियों को सूत के वजन की आधी रुई मजदूरी में दी जाती है। इससे जो अधिक सूत कतता है उसका वे अपना कपडा आप बुनवा लेते हैं। इस भांति सभी के सभी खादीधारी हैं। इस केन्द्र ने सूत का अंक ४ और ६ अंक से बढा कर ९ अंक तक कर दिया है किन्तु अब शीघ्र प्रगति नहीं की जा सकती क्योंकि चर्खे में परिवर्त्तन कतवैयों को पसंद नहीं पडता। बुनकरों की जरूरतों के लिए महीन सूत पर जोर देने से सूत की मात्रा कम हो जाती है, जो उनपर भारी पडता है। बोयानी में बहुत कम कतवैये, अपनी रुई आप धुनते हैं क्योंकि धुनने से ऊँची जातिवाले घबराते हैं। कतवैयों को कताई का काम न्यामत सा जान पडता है और फरवरी-मार्च और अगस्त-सितंबर में जब रुई की आमद में कमी हो गयी थी, तब वह उन्हें बहुत खली थी। कुछ कतवैये तो १०-१५ मील से अपनी रुई और हफ्ते की ८-९ आने मजदूरी लेने के लिए आते हैं। दूसरे प्रान्तों से रुई लाने से खादी महँगी पडती है। फिर कतवैयों के स्वाभाविक आलस्य वा तांत छूने के उज्र से वे अपनी रुई आप धुनते नहीं हैं और चर्खे में सुधार करने की उनकी अनिच्छा के कारण सूत का अंक बढाना बहुत ही मुश्किल हो रहा है। इन दो कारणों से खादी को बेंचने में भी बडी कठिनाई होती है, गोकि पिछले दो वर्षों में हम अपनी सारी की सारी खादी अपने ही प्रान्त में बेंच सके हैं।

हमारे कतवैयों और बुनवैयों की, और जिन गांवों की सेवा होती है, उनकी संख्या नीचे दी जाती है।

	सूतकरों की संख्या	गांवों की संख्या
बोयरानी	३४२	१३
बोलगढ केन्द्र	९८१	३२
कुल	१६१६	२१

इसके अलावा पद्मनाभपुर कताई केन्द्र अपना सूत बहुत करके खरीद लेता है, और वहां पर सूतकरों का अलग अलग खाता नहीं रक्खा गया था। यहां पर कुल मन ७२-५-५० सूत आया जिसमें मन ६७-०-७ खरीदा गया था। यों मोटा मोटी १५०० सूतकरों को हमसे सहायता मिलती है।

	बुनकरों की संख्या	गांवों की संख्या
कोडाला केन्द्र	४५	२
पद्मनाभपुर	१२	१
कुल	५७	३

निम्नलिखित अंकों से लोगों को मिली सहायता का अनुमान होगा। इस साल खादी की कुल पैदावार से सूतकरों को रु. ७,०७७), बुनकरों को रु. १२,१६३) और धोबियों को रु. ८४८) मिले हैं। इस भांति गरीब से गरीब गांववालों को रु. २०,३५३) यानी खादी की कुल कीमत का सैकडे ५०.३ वा आधा से अधिक मिला। कितने ही ऐसे कुटुम्ब हैं जिनकी आधी आमदनी सूत की है। और यों तो सभी के सभी कतवैया परिवारों को चर्खे का बडा सहारा तो है ही।

कार्यकर्त्ता

कार्यकर्त्ताओं और वैतनिक नौकरों को छोड कर कोई ३ से १० आदमी तक सिखला कर के खादी छापने के लिए रक्खे गये थे। किन्तु उन्हें साल में सिर्फ ५ महीने तक ही काम दिया जा सका था। छपेरों को छोड कर संस्था के अधीन ३२ से ४२ आदमी तक काम करते रहे हैं और इस समय ४५ हैं। इस साल उत्पत्ति विभाग, बिक्री की दूकानों, केन्द्रीय दफ्तर और निरीक्षण विभाग, सभी के कुल कार्यकर्त्ताओं को कुल मिला कर रु. ९,७५२-१२-१ यानी माहवारी रु. ८१२-११-८ दिये गये थे। इस हिसाब से एक कार्यकर्त्ता की औसत आमदनी रही है (दिसंबर १९२६ में) रु. १८-५-३ और (जुलाई १९२७ में) रु. २३-१४-२ और (सारे साल का मिला कर) रु. २०-१०-९। उत्पत्ति और बिक्री के काम जोड कर की आदमी कुल रु. १९०९) के काम का औसत पडता है। योग्यता की दृष्टि से तो दो आदमी अ. भा. खादी विद्यालय, साबरमती से सीख कर आये हुए हैं, दो बंगाल में अत्रेयी के सीखे हुए हैं और एक ने रँगाई, छपाई का काम आन्ध्र जातीय कलाशाला, मसुलीपट्टम में और बाद में, बंगाल के खादी प्रतिष्ठान में सीखा था। हाल के ४५ आदमियों में, १९ १९२१-२२ से ही कँाग्रेस का कार्य करते आते हैं, और उनमें भी १६ तो खादी कार्य प्रायः उसकी शुरूआत से ही क ते हैं

दाम में कमी

इस साल हम अपने सभी प्रकार के कपडों के दामों में कमी नहीं कर सके हैं । नीचे दिये हुए, दाम की कमी के आंकडे रोचक होंगे:

	१९२३-२४	१९२४-२५	१९२५-२६
दोसूती सादा ३६" फीगज़ रु.	०-१४-०	०-१३-६	०-१२-०
सादा कुर्ते का कपडा ३६" ,,	०-९-६	०-९-६	०-८-६
,, ,, ,, ४५" ,,	०-१२-०	०-११-०	०-१०-९
धोती ३॥गज× ४५"	२-९-०	२-९-०	२-३-०
,, ४गज × ४५"	२-१३-०	२-१३-०	२-८-०
सारी ५गज × ४५"	द-९-०	३-९-०	३-३-०
दूसूती कंबल ३गज × ४५"	४-८-०	४-०-०	३-१२-०
सादा तौलिया १॥गज × २८"	०-१२-०	०-१२-०	०-१०-६

जुलाई के मध्य से लेकर नवंबर के मध्य तक रुई की दर चढी हुई होने के कारण सभी प्रकार के कपडों का दाम नहीं घटाया जा सका है ।

बिक्री

बिक्री तो प्रायः सारी की सारी इसी प्रान्त में हुई है । केवल रु. ६८४-११-० का कपडा प्रान्त के बाहर गया है । प्रायः सारा का सारा कपडा खुदरा बिक्री से ही बिका है, केवल रु. २,९९१-०-८ की ही थोक बिक्री हुई है ।

बिक्री के आंकडे

१९२४-२५	१९२५-२६	१९२६-२७
रु. ३२,६८८-३-५	रु. २८,९२३-११-४½	रु. ३२,८८७-१३-९

भंडारों की बिक्री के अंक ये हैं :

	१९२२-२४	१९२४-२५	१९२५-२६	१९२६-२७
	रु.	रु.	रु.	रु.
बरहमपुर	१२,३७६	८,६९९	१२,०१७	१७,२८५
कटक	२,९५६	४,२७७	६,६२४	५,८०८
बालासोर	६,९६५	१०,२३०	६,५४४	४,८२०
पुरी	२,७६३	१,९०७	३,४३७	३,३१७

इस साल खादी को बिक्री और प्रचार के लिए मैजिक लैन्टर्न ले कर कुछ लोग गांवों में घूमे भी । इस भांति गंजम, पुरी, कटक, बालासोर जिलों के १९ स्थानों से लोग हो आये । इसमें रु. १०,०३४-३-४ की बिक्री हुई । गत अप्रैल में हमारा नि[illegible] स्वीकार कर के श्रीयुत सेठ जमनालाल जी बजाज ने [illegible] समुद्री किनारे के चार जिलों में भ्रमण किया था । उनके [illegible] लोगों को खूब पसन्द पडे थे । दर असल तभी पहले पहल [illegible] ने खादी के पक्ष में युक्तियुक्त बातें सुनी भी थीं । वे [illegible] ११ दिन रह कर ११ स्थानों में गये थे । इस [illegible] रु. १८७६-६-६ की खादी बिकी थी । इस साल हमने [illegible] में ३४ विज्ञप्तियां या लेख छपवाये । पुरी में विशेष प्रचा[illegible] करने के लिए श्रीयुत कृपासिन्धु होता रक्खे गये हैं और [illegible] प्रार्थना पर मन्दिर के अधिकारियों ने विगत रथयात्रा के [illegible] खादी इस्तैमाल की थी । वे मन्दिर के भिन्न २ उत्सवें [illegible] होमों में, और मठों में खादी का प्रवेश कराने की कोशि[illegible] हैं । उन्हें इसमें कहीं कहीं कुछ सफलता मिलती भी है । [illegible] नेताओं में श्रीयुत गोपबन्धु दास ने खादी के लिए ८ [illegible] किये और उसमें रु. १,१०३-११-० की खादी [illegible] श्रीयुत शशिभूषण राठ ने ब्रह्मपुर में खादी की फेरी करके [illegible] सफलता पायी है । उन मित्रों को हम सच्चे दिल से धन्यवा[illegible] हैं जो खादी के अनुकूल वातावरण पैदा करने में हमें [illegible] रहे हैं ।

रँगाई और छपाई

रँगाई और छपाई का काम छोटे पैमाने पर शुरु किया [illegible] किन्तु वह स्वावलंबी है । उसमें हमें कुल रु. ९३) का [illegible] साल हुआ है । १,८३७½ पाउन्ड सूत या खादी रँगी [illegible] और ८,३३१ गज खादी छापी गयी है । अब हमने हल[illegible] पक्का रंग रँगने की व्यवस्था की है । इस बाबत में त[illegible] बाबतों में अपने प्रयोगों के नतीजे बतला कर सहायता [illegible] लिए खादी प्रतिष्ठान, बंगाल हमारे धन्यवाद का पात्र है ।

उपसंहार

हमें आशा है कि खादी की जाति सुधारने, उत्पत्ति [illegible] अधिक विक्री करने के लिए भंडारों में पूरा माल रखने की [illegible] करने के अलावा अगले साल अपना काम अत्यन्त ही [illegible] क्षेत्रों में भी फैला सकेंगे ।

([illegible])

खादी की उत्पत्ति और बिक्री का ब्यौरा

प्रान्त		उत्पत्ति नवम्बर '२७	उत्पत्ति नवम्बर '२६	उत्पत्ति अक्तूबर '२७	विक्री नवम्बर '२७	विक्री नवम्बर '२६
	रु.					
अजमेर	,,	५,४४५	४,५२६	३,२६८	५,३७१	५,३३०
आन्ध्र	,,	२५,२५३	२७,८९९	१८,४३८	३५,१७६	३६,०५५
बंगाल	,,	२१,८८९	३१,९५५	२३,४१८	३९,२९०	४१,६५५
बिहार	,,	२२,२६८	१७,२९३	२६,३६८	२१,१६४	२२,१९१
बम्बइ	,,	. .	. .	. .	१७,०३८	९,७७३
ब्रह्मा	,,	. .	. .	. .	१,६३२	१,९४३
दिल्ली	,,	१,२७०	८३०	१,५६६	१,५१६	८२२
गुजरात	,,	२,८५७	३,०२२	८,१८५	५,१५०	७,४०२
केरल	,,	३,६०८	१६२	३,८३६	३,१९८	१,७३८
कर्णाटक	,,	६,२१३	३,७५८	५,८८४	६,५४१	४,९२६
महाराष्ट्र	,,	२,४०५	३१६	२,८३९	१६,०३३	१०,७५९
पंजाब	,,	५,२८९	४,८१८	५,१५८	९,२३०	७,९७६
तामिलनाड	,,	९३,९९१	७२,८१६	१,२५,८८१	५४,७५३	९६,१८२
युक्त प्रान्त	,,	६,०६०	५,७७२	११,४३०	२२,८०५	१५,२८०
उत्कल	,,	*	३,३२३	२,९८७	*	३,७४४
कुल रु.		१,९६,५४८	१,७६,४९०	२,३९,२५८	२,३८,८९९	२,६५,७७६

* ये अंक अभी नहीं प्राप्त हुए हैं ।

बारडोली सत्याग्रह

वार्षिक मूल्य ४
छः मास का ,, २
एक प्रति का ,, ≤

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक २९

मुद्रक–प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, चैत्र बदी १० संवत् १९८४ गुरुवार, ८ मार्च १९२८ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ४२

रोग के लिए क्या किया ?

पसलियों का दर्द मिटता नहीं था। इस लिए मैं घबराया। इतना मैं जानता था कि दवा के उपचार से नहीं किन्तु आहार के फेरफार से और कुछ बाहरी इलाज से दर्द जाना चाहिए।

सन् १८९० में मैं अन्नाहारी और खूराक के फेरबदल से इलाज करनेवाले डाक्टर ऐलिन्सन से मिला था। उन्हें मैंने बुलाया। वे आये। उन्हें शरीर दिखलाया और दूध के अपने विरोध की बात कही। उन्होंने मुझे तुरत ही दिलासा दिया और कहा कि, 'दूध की कोई जरूरत नहीं है। और मैं तो कुछ दिनों आपको स्नेह–रहित (चिकनाहट–बिना) भोजन पर ही रखना चाहता हूँ।' उन्होंने मुझे केवल सूखी रोटी, और कच्चे शाक और फलों पर रहने को कहा। कच्चे शाक में मूली, प्याज और ऐसे ही मूल तथा हरी भाजी और फलों में खास कर नारंगी थी। शाक के तो खूब छोटे छोटे टुकडे कतर करके खाने थे। मैंने यों तीन दिन चलाये किन्तु कच्चे शाक बहुत अनुकूल नहीं आये। न तो मेरा ऐसा शरीर ही था और न ऐसी श्रद्धा ही थी कि यह प्रयोग पूरा पूरा कर सकूँ। इसके बाद उन्होंने मुझे चौबीसों घन्टे दरवाजे, खिडकियां खुली रखने, रोज थोडा गर्म पानी से नहाने, दुखते हुए भाग पर तेल लगाने और १५ मिनट से ले कर आधे घन्टे तक खुली हवा में घूमने की सलाह दी। यह सब मुझे पसन्द पडा। घर में तो फ्रेंच ढब के दरवाजे थे। उन्हें पूरा खोल देने से घर में वर्षा का पानी आता था। ऊपर की खिडकी खोली नहीं जा सकती थी। इस लिए उनके सभी सीसे तुडवा कर, उनके जरिए चौबीसों घन्टे हवा के आने की सुविधा की। जहां तक पानी न आवे, वहां तक तो फ्रेंच दरवाजे भी खोल रखता।

यह सब करने से तबीअत कुछ सुधरी। बिलकुल ठीक तो नहीं ही हुई। कभी कभी लेडी सिसिलिया रॉबर्ट्स मुझे देखने आती थीं। उनसे खूब परिचय था। मुझे दूध पिलाने की उन्हें प्रबल इच्छा थी। वह तो मैं लेता नहीं, इस लिए उन्होंने दूध के गुण वाले पदार्थों की खोज चलायी। उनके किसी मित्र ने उन्हें 'माल्टेड मिल्क' का नाम बतलाया और अनजाने से कहा कि उसमें दूध का स्पर्श तक भी नहीं होता किन्तु वह रासायनिक प्रयोग से बनायी दूध के गुणवाली बुकनी है। मैं जान गया था कि धर्म की मेरी लगन के लिए लेडी रॉबर्ट्स के मन में बहुत आदर था। इस लिए मैंने वह बुकनी पानी में मिला कर पी। उसमें मुझे दूध के समान ही स्वाद मिला। मैंने वैसी ही कहावत पूरी की कि पानी पीने बाद जाति पूछी। बोतल पर विवरण पढते ही मालूम हुआ कि यह तो दूध का ही पदार्थ है। इस लिए एक ही बार पीने बाद, उसका त्याग करना पडा। लेडी रॉबर्ट्स को खबर दी और लिखा कि आप जरा भी चिन्ता न करें। वे उलटे पावों दौडी आयीं। अपना खेद प्रकट किया। उनके मित्र ने बोतल पर का विवरण पढा ही नहीं था। मैंने इस भली बाई को आश्वासन दिया और इसकी माफी माँगी कि उन्होंने तकलीफ उठा कर जो सामान चुन कर दिया था, मैं उसका उपयोग नहीं कर सका। यह भी बतलाया कि अनजाने जो बुकनी खा ली उसके लिए पश्चात्ताप या प्रायश्चित्त का कोई कारण नहीं है।

लेडी रॉबर्ट्स के साथ के दूसरे मधुर स्मरणों को छोड देना चाहता हूँ। ऐसे बहुत से स्मरण हैं कि जिनका आश्रय मुझे महान् विपत्तियों और विरोधों में मिल सका है। श्रद्धालु पुरुष ऐसे मीठे स्मरणों में देखता है कि ईश्वर दुःख रूपी कडवे औषध देता है और उनके साथ ही मैत्री के मीठे अनुपान भी देता ही है।

डाक्टर ऐलिन्सन ने दूसरी बार और अधिक छूट दी और चिकनाई के लिए सूखे मेवे यानी मूँगफली आदि बीजों का मक्खन अथवा जैतून का तेल लेने को कहा। कच्चे शाक न रुचें तो उन्हें रांध कर चावल के साथ लेने को कहा। ये सुधार मुझे अधिक अनुकूल आये।

किन्तु रोग जड से नहीं ही छूटा। सँभाल की जरूरत तो थी ही। चारपाई न छोड सका। डाक्टर मेहता समय समय पर तो देख ही जाते थे। उनके तो मुँह में हमेशे यही बात रहती थी कि 'मेरा इलाज कीजिए तो चुटकी बजाते चंगा कर दूँ।'

यों चलता था। इसी बीच मि० रॉबर्ट्सन एक दिन आ पहुँचे। उन्होंने मुझसे देश लौटने का आग्रह किया और कहा, "इस हालत में आप नेटली कभी नहीं जा सकते। सख्त ठंड तो

अभी अब आने को है। मेरा तो खास आग्रह है कि अब आप देश जाइए और अच्छे हूजिए। अगर तब तक लडाई चलती रही तो मदद करने के बहुत अवसर आपको मिलेंगे ही। नहीं तो आपने जो यहां किया है, उसीको मैं कुछ कम नहीं मानता।"

मैंने यह सलाह स्वीकार की और देश जाने की तैयारी की।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

गाय को कौन छुडावेगा?

ब्रह्मभट्ट जाति के ७० वर्ष के पास पहुँचे हुए एक बूढे को, जिसने चार शादियां की हैं, किन्तु चारों स्त्रियों का स्वर्गवास हो चुका है, अब फिर से अपना घर चलाने के लिए, पुत्र के लिए पाँचवा विवाह करने की इच्छा हुई है। उसे १५ साल की एक लडकी है, लडका कोई नहीं। लडकी का विवाह हो चुका है। वह आप विलायत से हो आ चुका है। गायकवाड के राज्य में अच्छे ओहदे पर था। मोतियाबिन्द के कारण आंखें चली गयी हैं। अब यह बहु-विवाहित बूढा यह रास्ता देख रहा है कि कौन सा निर्दय बाप अपनी बेटी बेंचने को तैयार होता है। इस भांति कसाई के घर जानेवाली गाय को बचाने के हेतु से ब्रह्मभट्ट जाति के कई जवान प्रयत्न कर रहे हैं। उनमें से एक ने इन्हें इस काम से रोकने के लिए पत्र लिखा था। उसके जवाब में लंबा खत आया है। उसकी नकल मेरे पास भेजी गयी है। उसमें से मैं ये उतारे देता हूँ:

"खंभात से......का यथा योग्य पहुँचे। तुम्हारा पत्र पौष सुदि १३ का मिला। उसके जवाब में यह लिखना है कि तुमने जो अफवाह सुनी है, उसका अभी कुछ निश्चय नहीं है। क्योंकि मुझपर भगवान् ने आफत डाली है, और मेरे घर में गुजरे हुए अभी एक महीना भी नहीं हुआ है। इसलिए पहले अपना शरीर डाक्टर......को दिखलाकर, सलाह लूँगा और बाद में जो कुछ करना होगा, हो लेगा। अभी हां या नहीं, कुछ नहीं कह सकता। भावी प्रबल है। मेरी लडकी बची है। वह भी दूसरे की हो चुकी है। इसलिए घर में ऐसा कोई नहीं है जो घर का काम काज करे या मेरी सेवा करे। मैंने सारी जिन्दगी सुख में बितायी है। इस लिए थोडा भी दुःख सहने की आदत नहीं है। प्रभु ने शरीर संपत्ति सुधारी है। फिर......भाई भी लिखते हैं कि लडके के गुजर जाने पर मैंने नवें महीने विवाह किया था और उस समय तुम्हारे जैसे बहुत से सुधारक मेरी निंदा करते थे। परन्तु प्रभु की इच्छा मैंने मानी और गया हुआ वंश रह कर, प्रभु ने दो लडके दिये, और भली कुलीन कन्या मिली जो बुढापे में भले प्रकार सेवा करती है। इसके अलावा कितने ही कुलीनों ने बुढापे में विवाह किया है, उनका वंश रहा है और उनकी स्त्रियों ने बुढापे में उनकी भली भांति सेवा की है। पराया आदमी चाहे जैसी सेवा क्यों न करे, किन्तु अंग के आदमी जैसी सेवा हो ही नहीं सकती। ऐसे एक दो उदाहरण तो तुम्हारे ही घर में मिलेंगे। तुम्हारे दादा......बुढापे में एक औरत रहते हुए भी शोक के रूप में दूसरी, तुम्हारी दादी, को ले आये तब भी दूसरी जाति के नये सुधारक निन्दा करते थे। तौभी मेरे पिताजी ने कुलीन रीति के हिमायती होने के कारण उनका विवाह कराया जिससे तीन लडके हुए और बुढापे में पूरी सेवा हुई। और उसी विवाह से तुम्हारे जैसे भगत भी वंश में पैदा हुए। तुमने......भाई के विवाह के समय भी खूब शोर किया था परन्तु प्रभु इच्छा बलवान होने के कारण उन्होंने विवाह किया और मेरे इतने नजदीकी, स्नेही संबंधी होकर भी यह चाहते हो कि मुझे सुख की प्राप्ति न होवे, मुझे धमकाते हो, विशेषणों का प्रहार करते हो। तुम तो कुलीनों की रीति बिल्कुल नहीं जानते हो। . . .

"आदमी अपने सुख के लिए बहुत से काम करता है। राजा और प्रजा सभी, अनेक विवाह करते हैं। पर यह कभी नहीं सुना कि कोई उन्हें मूर्ख कहे। फिर जो लडकियां जवान लडकों से ब्याही जाती हैं और फिर विधवा हो जाती हैं, उन्हें सुधारक लोग विधवा होने से बचा नहीं सकते। मैंने भी जब नडियाद में विवाह किया था तब तुम्हारे जैसे कितने लोग कन्या के बाप को रोकने गये और उसकी अत्यन्त निन्दा करने लगे। पर उस स्त्री के नसीब में सुख भोगना था। जितने दिन मेरे यहां दानापानी था, उतने दिन रह कर वह चलती बनी और विधवा होने की आशा रखनेवाले मूर्खों का खयाल गलत हुआ।

"कुलीनों में सैकडों उदाहरण सुने और देखे हैं कि बुढापे में कितनों के वंश रहे हैं। . . . में . . . के विवाह करने से लडके और एक लडकी अब भी जीवित हैं। . . . भाई के विवाह से लडका हुआ और २० वर्ष का मौजूद है। प्रभु इच्छा बलवान है। प्रभु मुझे प्रेरणा करें, मेरा विचार न होते हुए भी प्रेरणा बलवान हो और कन्या बडी उम्र की मिल जाय और उस कन्या के संबंधियों की मर्जी में प्रभु इच्छा प्रेरित हो कर बलवान् हो तो उसमें मेरा विचार क्या काम कर सकनेवाला है। और पेपरों का शोरगुल पाठक चार दिन पढ कर घडी भर बोलेंगे। और अगर प्रभु की मर्जी होगी कि मेरा जीवन सुख से बीते, तो वह बीतेगा और अगर कन्या अपने भाग्य में मेरी ओर से दुःख ही लिखा कर जन्मी होगी तो तुम्हारे जैसे हजार रोकने जायँ, जाति का डर, राज्य का जोर दिखलावें, मगर रुकनेवाला नहीं है। क्योंकि हे भाई, कन्या का भाग्य आदमी के हाथ में नहीं होता है, प्रभु के हाथ में होता है तुम झूठा गर्व मत करो। अभी जो नया जमाना आया है, नये सुधार आये हैं, उन्हें लोग अपनी अपनी सत्ता और सुख के लिए ही पालते हैं। इसलिए मैं भी वही करूँगा जो मेरे सुख के लिए प्रभु मुझे सुझावेंगे। पर यह मत खयाल करना कि तुम्हारे जैसों के किये मुझे जो करना होगा, वह रुक जायगा।

"स्नेही आदमी सज्जन हो तो वह स्नेही की भूल छिपाता है और अगर वह स्नेही बंदर के समान ओछा हो तो जहां तहां बंदर के समान बातें करके विरोध बढाता है। मैं कुछ अपढ नहीं हूँ। पुराने जमाने का भी नहीं हूँ। अखबारों से भी अनजान नहीं हूँ कि अत्यन्त बुरा ही काम करूँ। विचार करके प्रभु जैसा सुझावेंगे वैसा करूँगा। इसलिए तुम्हारे ध्यान में जो आवे तुम आन्दोलन करोगे, मगर मैं ठीक ठीक जानता हूँ कि होगा वही जो प्रभु की इच्छा के अधीन होना होगा।"

मूर्खों में गिने जाने का जोखिम उठा कर ही मैं यह पत्र छाप रहा हूँ। अगर ब्रह्मभट्ट जाति में बालिकाओं के लिए प्रेम की शून्यता होगी, इस जाति के हृदयवाले आदमियों में कायरता होगी और न होगी इस जाति में लोकमत जैसी कोई चीज, तो इस अनमिल विवाह को कोई नहीं रोक सकेगा। और इससे इस जाति के मुट्ठीभर दयावान् जवानों और स्त्रियों को डर कर अपना कर्तव्य नहीं भूलना चाहिए। शान्तिमय सुधार प्रेम से ही, धैर्य से ही हो सकता है। स्वार्थ के वश होकर आदमी चाहे जैसा क्रोध क्यों न करे, उसे सहन करना रहा। चाहे वह जैसा पाण्डित्य चलावे, उसे भूलना नहीं चाहिए। उत्साह से और लोकमत तैयार करने से पिछले

१२ महीनों में दो विवाह रोके जा सके हैं, की करायी सगाई तोडी गयी है, जब कि यहां तो सगाई की बात ही भर हुई है। वहां अगर लोकमत पैदा किया जा सके तो बहुत संभव है कि कोई गरीब गाय कत्ल होने से बच जाय।

अब जरा इस विलायत से घूम आये हुए गृहस्थ का पत्र देखें। मैं यह नहीं समझ सका हूँ कि वह वृद्ध पुरुष के संतान होने का उदाहरण देकर क्या सिद्ध करना चाहते हैं। जो दलील वे देते हैं, वह तो पाप करनेवालों की सनातन दलील है। उपन्यासों में हमने पढा है कि खूनी, खून के फायदे बतलाता है। लुटेरे भी अपने पराक्रम की प्रशंसा करते दिखायी पडते हैं। किन्तु अगर हम न्याय की ही खोज करें तो जान पडेगा कि पाप से ही जितने काम बनते दिखायी पडते हैं, उनसे उनके करनेवाले भले ही अपना लाभ मान लेवें, किन्तु जगत् को लाभ नहीं हुआ है। बेजोड विवाह की ही प्रथा को लीजिए। जो जो दृष्टान्त उपस्थित पत्र में दिये हुए हैं, उन उन दृष्टान्तों में उन उन पुरुषों ने भले ही अपना लाभ देखा हो किन्तु स्वार्थ और विषय के वशीभूत यह अनुभवी पुरुष उनका दुरुपयोग कर रहा है और अपने कार्य का समर्थन करता है। उन उन लडकियों ने वृद्धों के साथ विवाह करते समय क्या क्या विचार किये होंगे, कितने निःश्वास छोडे होंगे, उनका विचार करने का समय इन्हें नहीं है, ये आवश्यकता भी नहीं देखते। जो एक वृद्ध को १५ या १३ वर्ष की लडकी से व्याह करने का अधिकार है तो सबको होना चाहिए। और अगर सभी वृद्ध इस चाल का अनुकरण करें तो हम सहज ही देख सकते हैं कि प्रजा का क्या हाल होगा। सारे जगत में कहीं बुद्धिमान् पुरुषों ने बेजोड विवाह की स्तुति नहीं की है। उसकी निंदा हर एक देश में हुई है। उसके अनेक बुरे परिणाम हिन्दुस्तान में हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। इससे मैं आशा रखता हूँ कि ये गृहस्थ रोष और आवेश में लिखे हुए अपने पत्र को नयी दृष्टि से देखेंगे और अपनी विषयवासना पर काबू पैदा करेंगे। और अगर विषय-वासना का संयम आखिर नहीं ही कर सकें तो उन्हें कोई ऐसी विधवा ढूँढनी चाहिए जो विवाह करने को स्वेच्छापूर्वक तैयार हो।

प्रजोत्पत्ति का मोह छोड देना उचित है। यह हमेशे नहीं कहा जा सकता कि प्रजोत्पत्ति की इच्छा पुण्य है। अगर प्रजा में सामान्य जन्म मरण का प्रमाण ठीक चलता हो तो वहां पुत्र की इच्छा करने की बनिस्बत इच्छा का संयम ही करने में पुण्य कर्म है। हिन्दुस्तान में, हिन्दुस्तान की अब की गुलाम स्थिति में, जहाँ सब भयग्रस्त रहते हैं, अपना, अपनों का या अपनी मिल्कियत का रक्षण करने की शक्ति खो बैठे हैं, वहां पर संतान उत्पन्न करना मैं तो पाप समझता हूँ।

अब रही सेवा की चाह। यह कितना बडा वहम है कि सेवा के लिए अपना ही आदमी चाहिए। पैसे का लालच देकर किसी बाप से उसकी लडकी को छीन लाने और उसे अपनी समझने में मुझे तो उद्धताई की परिसीमा जान पडती है। ऐसी लडकी को अपनी मानने के बदले ज्यादह सत्य होगा यह कहना कि 'एक लौंडी खरीदी है।' सेवा के लिए तो अभी काफी पैसा देने पर अच्छे और वफादार नौकर मिल सकते हैं। वर्त्तमान वृद्ध पुरुष के लेख में दूसरे कई अघटित विचार हैं, जिन्हें मैं छोड अभी देता हूँ। जो यह लेख उनकी नजर से गुजरे तो शान्ति से विचार करने और वे जो अनुचित साहस करने को तैयार हुए हैं, उसे छोड देने की नम्रता--पूर्वक विनय करता हूँ।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

अजमल जामिया कोष

		रु. आ. पा.
पूर्व स्वीकृत		१,१५१-०-०
एक हिन्दू	अहमदाबाद	३-०-०
श्री मोहनलाल भार्गव	कानपुर	१००-०-०
जामा मस्जिद में मौलाना महम्मद अली की मार्फत चंदा	दिल्ली	२८-०-६
मि. अब्दुल मजीदखां	नयी दिल्ली	५-०-०
मि. सै. अफरूज बख्त	सिलहट	२२-९-०
जामा मस्जिद में मौ. महम्मद अली की मार्फत चंदा	दिल्ली	१७-४-६
म० वजीर साहेब	,,	१-०-०
मि. जगतसिंह	कराची	१०-०-०
शेख बिस्मिल्ला साहेब	हरिसाल	१०-०-०
मि. सै. अफरूज बख्त	सिलहट	१२-४-०
श्री. वासुदेव नारायणसिंह	दर्शनगढ	५-०-०
मार्फत मि. अब्दुल कादिर		
मि. अब्दुल अजीज इस्माइल	लंडीकोटल	३०-०-०
,, अब्दुर्रज्जाक	,,	२५-०-०
,, अहमद सईद कोतवाल	,,	१०-०-०
,, फकीर महम्मद	,,	१०-०-०
,, सिराजुद्दीन	,,	५-०-०
,, मुहम्मद खिज्र	,,	५-०-०
,, अब्दुल करीम	,,	५-०-०
,, अब्दुल कादिर	,,	४-०-०
,, इमामुद्दीन	,,	१-०-०
,, गुलाम मुहम्मद	,,	१-०-०
,, मुहम्मद शफी	,,	१-०-०
,, नुरुद्दीन	,,	०-८-०
,, करमइलाही	,,	०-४-०
,, फकीर मुहम्मद दर्जी	,,	०-४-०
,, अब्दुल अजीज	,,	१-०-०
मौलवी चिरागदीन	,,	१-०-०
मार्फत मंत्री खिलाफत कमीटी दिल्लीप्रान्त	दिल्ली	१००-०-०
हकीम अजमत अली खां	महोबा	१०-०-०
मि. गौस मोहियुद्दीन	निर्मल	५०-०-०
मि. सैयद अजमतुल्ला	हपनहल्ली	१०-०-०
,, खैर मुहम्मद इसमाइल	कैम्पबेलपुर	२०-०-०
,, शेख मुहम्मद यूसुफ साहेब	कुन्जाह	२-०-०
,, सैयद अफरूज बख्त	सिलहट	७-०-०
,, मुहम्मद बख्श साहेब	क्वेटा	२-०-०
हाजी चौधरी मुहम्मद अब्दुल्ला साहेब	कोटा बुँदी	१०-०-०
शेख मुहम्मद सिद्दीक साहेब	सरहिंद	२५-०-०
सैयद मुश्तहलिन जैरी	मीरट	२५-०-०
मि. अब्दुल अलीम	दिल्ली	२५-०-०
मार्फत मीर अनवर अहमद साहेब		
मि० नसीरुद्दीन	दिल्ली	१-०-०
मि० मुहम्मद खलील	,,	१-०-०
एक मुसलमान	,,	०-४-०
एक मुसलमान	,,	०-४-०
	कुल रु.	१,७५३-१०-०

स्वर्गीय लॉर्ड सिंह

भारतवर्ष के इस सम्मानित सेवक के सम्मान में औरों की अंजलियों के साथ साथ मैं भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ। जब कभी भारतवर्ष के सेवकों की सेवाओं का मूल्य आंका जायगा, लॉर्ड सिंह की सेवाएँ बहुमूल्य गिनी जायँगी। सभी राजनीतिक बातों में उनकी सलाह पूछी जाती थी। उसकी कीमत भी बडी समझी जाती थी। लॉर्ड सिंह की मौत से देश गरीब ही हुआ है।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, चैत्र वदी २ संवत् १९८४

बारडोली सत्याग्रह

[सत्याग्रह शुरु करने के पहले श्री. वल्लभभाई ने बंबई प्रान्त के गवर्नर साहेब को, बारडोली ताल्लुके में लगान-बढती के विरुद्ध लोगों के उज्रों का फैसला करने के लिए कोई स्वतंत्र पंच बदने की सलाह दी थी। सरकार के यह सूचना अस्वीकार करने पर, दोनों ओर के पत्र-व्यवहार पर गांधीजी ने 'नवजीवन' में निम्न लिखित टीका की है:—]

श्री. वल्लभभाई के पत्र का मध्यविन्दु, उसका निचोड यह है कि 'सरकार हमारी दलील भले ही न माने किन्तु जब लोगों में और सरकार में हकीकत का ही मतभेद है, तब उसका फैसला करने के लिए कोई तटस्थ पंच होना चाहिए और वह जो फैसला देवे, उसे लोगों की ओर से श्री. वल्लभभाई मानेंगे।'

यहां यह सवाल आ खडा होता है कि सरकार और लोगों के बीच भला यों कोई पंच हो सकता है? सरकार क्या सर्वोपरि नहीं है? कानून के सवालों में तो सरकार भी कहने सुनने के लिए अदालत के पिंजरे में खडी होने को तैयार गिनी जाती है। लगान को सरकार अदालत के बाहर रखती है। इसका कारण समझना सामान्य मनुष्य की अक्ल के बाहर है। हम अभी इसके कारण की पंचायत में नहीं पडेंगे।

पर जब लगान का सवाल सामान्य तौर पर कानून के बाहर है, तब वल्लभभाई लोगों की ओर से पंच न मांगें तो और क्या करें? सरकार को अर्जी देकर बैठ रहने की सलाह देवें? ऐसी सलाह देनी भी हो, तो लोगों ने ही वह दरवाजा भी खुला नहीं रख छोडा है। वे अर्जी कर चुके। अर्जी देने का काम तो वल्लभभाई से नहीं लिया जा सकता, इसलिए जिनसे वह काम लिया जा सकता था, उनकी मार्फत अर्जियां भी दी गयीं। इससे कुछ न हुआ, इसलिए लोग वल्लभभाई के पास सत्याग्रह के युद्ध की सरदारी कबूल कराने गये।

सत्याग्रह के कानून के अनुसार वल्लभभाई ने सरकार के पास अर्ज विनय की: "संभव है आप भूल न कर रहे हों। यह भी हो सकता है कि लोगों ने मुझे भुलावा दिया हो। पर आप तो पंच बदिये और उनसे इन्साफ करवाइए। यह दावा मत कीजिए कि हम भूल कर ही नहीं सकते।" इस विनय का अनादर करने की भयंकर भूल कर के सरकार ने लोगों के सत्याग्रह का मार्ग साफ कर दिया है।

परन्तु सरकार तो कहती है कि वल्लभभाई पराये हैं, बाहर के हैं, परदेशी हैं। उसके पत्र की ध्वनि है कि अगर वल्लभभाई और उनके साथी बारडोली न गये होते तो लोग जरूर ही खजाना भर देते। उलटे चोर कोतवाल को डांटे। यह न तो वल्लभभाई ही समझते हैं न हममें और ही कोई समझ सकेगा कि बारडोली जब तक हिन्दुस्तान में है, तब तक वल्लभभाई को या काश्मीर से कन्याकुमारी तक या कराची से डिब्रूगढ तक में रहनेवाले हिन्दुस्तानी को बाहर का कैसे कहा जायगा? परदेशी, पराये, बाहर के तो सरकार के अँगरेज अफसर हैं, और यदि अधिक स्पष्टता से कहें तो पराये हैं, पराई सरकार के सभी अफसर, ख्वाह वे काले हों या गोरे। सरकार का नमक खानेवाले सरकार का ही पक्ष लेंगे। द्रोण और भीष्म जैसों को भी युधिष्ठिर से कहना ही पडा था, 'जिसका नमक हम खाते हैं, उसीके तो कहलायँगे।' यह पराई सरकार वल्लभभाई और वल्लभभाई के समान लोगों को बारडोली के लिए परदेशी कहे! यह कैसी वक्रता है? यही तो दिया तले अँधेरा है। इसी लिए तो मेरे जैसों ने सरकार के साथ वफादारी में पाप समझ कर असहयोग किया। जहां इस हद तक अविनय हो, वहां न्याय की कौन सी आशा रक्खी जाय?

इस सरकार को न्याय कौन सिखलावेगा? केवल सत्याग्रही बुद्धिवाद से सरकार अपराजित है। जबर्दस्त की बुद्धि होती उसका ठेंगा। वह तलवार की नोक पर ही न्याय को तौलता है।

यह तलवार सत्याग्रही की दोधारी तलवार के आगे बेकार है। यदि बारडोली के सत्याग्रहियों में सत्य का आग्रह होगा, तो या तो पंच चुने जायँगे या वल्लभभाई की दलील स्वीकार की जायगी और वल्लभभाई परदेशी मिट कर स्वदेशी गिने जायँगे।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

बारडोली में सत्याग्रह

छीनाझपटी

श्रीयुत वल्लभभाई का सरकार के साथ बारडोली सत्याग्रह के विषय में पत्रव्यवहार अखबारों में छप चुका है। उसमें श्री. वल्लभभाई ने अगर कहीं भूल की भी होगी तो कमी की ओर यानी, सरकार के दोषों की अतिशयोक्ति नहीं बल्कि न्यूनोक्ति ही की होगी। मगर दर असल बात यह है कि इस प्रान्त में सरकार की लगान-नीति का इतिहास ही रहा है, प्रजा के लोकमत की पर्वा बिलकुल ही न करनी, धारासभा के सदस्यों का अपमान करना तथा बेहयापने से छीनाझपटी करनी। इस संबन्ध में १९२४ और २७ में धारासभा के विवादों की रिपोर्टों से बहुत सी बातें मालूम होती हैं। १९१९ में गवर्नमेन्ट ऑफ इन्डिया बिल पर विचार करने के लिए जो संयुक्त समिति बैठायी गयी थी, उसने लगान दुहराने की नीति के संबन्ध में निम्नलिखित आशय की घोषणाएँ भी की थीं।

"समिति की सम्मति में नये कर बैठाने के पहले धारासभा की राय ली जानी चाहिए। और जिसमें लगान के दुहराने की पद्धति कानून के मुताबिक हो इसलिए कानून बनाने चाहिए और अब इस संबंध में रैयत के हित का ध्यान रख कर इस संबंध में कानून बनाने चाहिए।"

फिर १९२४ में बंबई की धारासभा ने भी इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया था कि

"उपर्युक्त समिति की सलाह के मुताबिक शीघ्र ही इस संबंध में कानून बनाने के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक समिति बनायी जाय और **जब तक वैसे कानून बन न जायँ लगान दुहराने पर कहीं नयी दर न रक्खी जाय।**"

सरकार ने तो इसका विरोध ही किया था मगर मुँह की खाने के बाद समिति तो बना डाली परन्तु प्रस्ताव के दूसरे अंग पर कुछ भी नहीं किया। ऐसे प्रस्ताव की उपेक्षा कर के वह एक के बाद दूसरे ताल्लुके का लगान दुहराती गयी। इसके बाद फिर १९२७ में एक दूसरा प्रस्ताव आया, जिसका सरकार ने पूरा विरोध किया किन्तु फिर भी मुँह की ही खा कर रही। उसका आशय था,

"गवर्नर साहेब से प्रार्थना की जाती है कि उपर्युक्त समिति की रिपोर्ट पर विचार कर के वे कानून बनावें, उस प्रस्ताव के स्वीकार होने बाद जहाँ लगान में बढती हुई हो, वहां वहां उसके लिए भी कोई उपाय किया जाय, और जब तक फैसला न हो ले तब तक वहाँ वहाँ का अधिक लगान न लिया जाय।"

इस प्रस्ताव को भी पास हुए साल भर हो गये, मगर सरकार अभी तक कान में तेल डाले सोयी हुई है। जब यह कहा गया कि, "सरकार, गरीबों को अभी बेकसूर मत मारिए। आपके अफसर अगर कुछ फैसला न करें तो इसके लिए गरीब किसान क्यों मारे जायँ!" तब सरकार के अर्थ सदस्य ने सरकार की गरीबी का दुखडा रो सुनाया। सरकार ने श्री. वल्लभभाई को बुरी तरह की गलतफहमी फैलाने का दोष दिया है। भले ही हमें यही बात सुनायी जाय किन्तु दर असल सरकार जिस उतावली से लगान दुहराने का काम जल्द करती जाती है, उससे तो जाहिर होता है कि जब ऊपर का कानून पास होवे तब उसे बेकार कर देना ही उसकी नीयत है क्योंकि इस चाल से तो कानून बनने के बाद एक भी ताल्लुका रहेगा ही नहीं जिसका लगान-दुहराना बाकी हो। इस पर लोग सत्याग्रह न करें तो और करें ही क्या? सरकार के रेवेन्यू मेम्बर साहेब ही फरमाते हैं कि, "सरकार की इस बुरी आर्थिक दशा में कैसे कोई सलाह देता है कि वह इतनी बडी आमदनी से बाज आवे।"

लुक्का छिपी

किन्तु श्रीयुत वल्लभभाई ने इसके कानूनी पहलू को अलग ही छोड दिया है। उस पर तो काउन्सिलवालेही दिल खोल कर लड लेवें। उन्होंने सेट्लमेन्ट अफसर की रिपोर्ट में शंका की है और उस रिपोर्ट के तैयार करने के सिद्धान्त में भी। येरिपोर्टें मी मालूम किस तरह जनता को दिखलायी जाती हैं या इन्हिं यों कहिए कि उनसे छिपायी जाती हैं कि किसीको कुछ खबर ही नहीं होती। देखिए इस विषय पर बंबई काउन्सिल के सदस्य श्रीयुत शिवदसानी क्या कहते हैं:

"सेट्लमेन्ट अफसर की रिपोर्ट जनता को मिलती ही नहीं। आम तौर पर उसकी एक प्रति ताल्लुका कचहरी में रहती और उमेद रक्खी जाती है कि किसान रिपोर्ट को पढ कर अपने उज्र भेजेंगे। मगर यह तो उचित नहीं है। सभी जानते हैं कि हमारे दीहाती कितने पिछडे हुए हैं। उनसे यह आशा नहीं रखी जा सकती कि वे २० मील दूर ताल्लुका शहर में जाकर अंग्रेजी की रिपोर्ट पढेंगे। दर असल मैंने तो सुना है कि कहीं कहीं मामलतदार रिपोर्ट की नकल ही नहीं करने देते। या मान लीजिए कि रिपोर्ट पढने की सभी सुविधा है, मगर ८० या ९० गांवों के भाग्यों का फैसला करने वाली रिपोर्ट अगर इस तरह छिपायी जाय तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह सुलभ है।" बारडोली की ही इससे कुछ अच्छी हालत नहीं थी। मगर एक तरह से तो बारडोली की हालत इससे भी बुरी कही जायगी। बारडोली में सेट्लमेन्ट अफसर ने अक्तूबर १९२५ में रिपोर्ट भेजी। साधारणतः सेट्लमेन्ट अफसर की रिपोर्ट कलक्टर जांचते हैं किन्तु उस समय कलक्टर साहेब छुट्टी पर गये थे और सेट्लमेन्ट अफसर ही कलक्टर भी थे। इस लिए वे ही सर्वे सर्वा थे। इस पर यह कहा जाता है कि सेट्लमेन्ट कमिश्नर ने पूरी रिपोर्ट खूब ध्यान से जांची और सच पूछिए तो प्रायः पूरी की पूरी रिपोर्ट ही नये सिरे से लिखी है। फिर यह कहना कि सेट्लमेन्ट कमिश्नर ने नये सिरे से रिपोर्ट लिखी, यह कहने का दूसरा ढंग है कि वह रिपोर्ट खारिज करके दूसरी लिखी। मगर काउन्सिल के कई मेम्बरों के बार बार माँगने पर भी कमिश्नर का रिपोर्ट अब तक दिखलायी नहीं जाती है। वह रिपोर्ट कुछ गुप्त कागज भी नहीं है। यह रिपोर्ट प्रकाशित की जानी चाहिए थी। उस पर उज्र माँगे जाने चाहिए थे, न कि उसे छिपाना चाहिए था और वह अब भी काउन्सिल के मेम्बरों तक को भी नहीं मिल सकी है। अगर श्रीयुत वल्लभभाई चाहते तो इसी दलील से गवर्नमेन्ट को परीशान कर सकते थे कि उसने रिपोर्ट छिपा रक्खी।

श्रीयुत वल्लभभाई की चितौनी

मगर उन्होंने इससे जब्र किया। और सेट्लमेन्ट अफसर की ही रिपोर्ट को सही सिद्ध करने की चितौनी दी। उस रिपोर्ट में कितनी एक असंभव बातें भरी हुई हैं, आंकडे असावधानी से तैयार किये हैं, जिस कारण उनसे बहुत सी अनिश्चित और बेपते की बातें भरी हुई हैं। उन्होंने जमीन का दाम बढने का हिसाब दिया है किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि जमीन की कीमत बढाने के लिए किसान ने कितनी तकलीफ उठायी है। इसकी भी कोई पर्वा नहीं की है कि किन दिनों में जमीन की कीमत बढ गयी थी। उन्होंने इसका हिसाब दिया है कि जमीन की उपज इतनी बढी है मगर यह नहीं लिखा है कि रहन सहन का मामूली खर्च कितना बढ गया है और फस्ल तैयार करने में किसान को पहले से कितना अधिक खर्च करना पडता है। जान पडता है कि सेट्लमेन्ट कमिश्नर ने जब देखा कि सेट्लमेन्ट अफसर की रिपोर्ट का सहारा नहीं लिया जा सकता तो उसने और दूसरी बातों का आधार लिया। मगर श्री. वल्लभभाई ने गांव गांव घूम कर, जाँच कर सरकार को जो चितौनी दी है उसका कम से कम जवाब सरकार यही दे सकती है कि उन आक्षेपों की जाँच करवावे।

अन्याय

इसके अलावा यह भी सहज ही साबित किया जा सकता है कि जमीन की मालियत के आधार पर लगान निश्चित करने की पद्धति से हानि होती है और इसका समर्थन कितने ही अनुभवी सेट्लमेन्ट अफसर करते हैं। मगर सरकार को इसकी क्या पर्वा?

अब उपाय?

श्रीयुत वल्लभभाई ने इस मसले को हल करने का जो उपाय सुझाया है वह बहुत ही सहल है यानी इस मुआमले की पूरी जाँच करने के लिए एक निष्पक्ष पंचायत बैठायी जाय। मगर शायद यह उपाय सरकार को पसंद न पडे। तब भी सरकार के लिए एक ऐसा रास्ता अब तक बचा हुआ है जो उसे मंजूर हो सके। वह यह है कि समिति की सलाह के मुताबिक लगान हर बार दुहराने पर बढती के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए काउन्सिल के चुने चार गैरसरकारी और दो सरकारी सदस्यों की एक समिति बना कर विचार के लिए पेश किया जाया करे।

अगर जनता की माँग पर नहीं तो, अपनी समिति की सलाह पर ही सही, सरकार यह समिति बना सकती है। इस भांति उसका पानी बच जायगा।

(यं० इं०) **महादेव देसाई**

खादी का अर्थशास्त्र

१

भारतवर्ष की साम्पत्तिक अवस्था

हिन्दुस्तान खास कर किसानों का देश है। यहां दीहातों की संख्या शहरों से कहीं अधिक है। जहां गिने गिनाये २,३१६ शहर हैं, गांवों की संख्या ६,८५,६६५ है। आबादी भी इसलिए दीहातों की ही अत्यंत बडी है। शहरों में अगर १० में १ आदमी रहता है तो गांवों में बाकी ९ रहते हैं। शहरों की आबादी कुछ विशेष बढती भी नहीं है। जन-संख्या में जितनी बढती होती है, उससे कम ही वृद्धि शहरों की आबादी में होती है।

अब जरा लोगों के पेशों पर भी नजर दौडावें तो वहां भी कुछ ऐसी ही ध्यान देने लायक हकीकत दिखायी पडेगी। मोटे मोटे अंक देखने पर तो

कपडे की मिलों में	३,००,००० आदमी है
जूट की मिलों में	३,६५,००० ,,
रेलवे के कारखानों में	१,२६,००० ,,
बाकी सब उद्योगों में	१४,००,००० ,,
हाथ करघे के काम में	२०,००,००० ,,
केवल खेती पर	२२,४०,००,००० आदमी

निर्भर हैं यानी सभी संगठित उद्योगों को मिला कर कुल जितने आदमियों की परवरिश होती है, उनके १६० गुणे आदमी केवल खेती पर निर्भर हैं अथवा हर ४ आदमियों में ३ का गुजर खेती पर होता है।

खेती पर गुजर तो इतने आदमियों का होता है मगर दुर्भाग्यवशतः जमीन बहुत ही कम है। आज जितनी जमीन बोयी जाती है, उसका औसत निकाला जाय तो फी आदमी ⅘ एकड का औसत पडता है, मगर यह औसत भी ठीक नहीं है क्योंकि धनी लोगों के पास अधिक खेत हैं। दर असल मध्यवित्त के भी मामूली लोगों को फी आदमी ½ एकड से कम खेती का औसत पडेगा। अब इसके अलावा अगर हम यह देखें कि खेती के काम में कितने आदमी दर असल लगे हुए हैं तो मालूम होगा कि बंगाल में फी आदमी २½ एकड, आसाम में ३ और संयुक्त प्रान्त में २½ एकड का औसत पडता है। दूसरे प्रान्तों की भी यही हालत है। यह बात भी नहीं है कि बहुत जमीन बेकार पडी है जिसे आबाद किया जा सके। अगर सभी जमीन आबाद की जाय तौभी गांववालों में फी आदमी ½ एकड औसत से अधिक की बढती नहीं होगी। अगर और देशों से इन अंकों का मिलान करें, जो खेती करते हुए भी उद्योग धंधे बढा रहे हैं और हिन्दुस्तान केवल खेती पर ही निर्भर है तो हमारी गरीबी और स्पष्ट होगी। अमेरिका के संयुक्तराज्यों में, खेती पर निर्भर न रहनेवालों की भी संख्या मिला कर फी आदमी १४ एकड आबाद जमीन, और काबिल आबाद ज़मीन का ५ एकड का औसत पडता है। औस्ट्रेलिया में आबाद जमीन का औसत ३ एकड है तो काबिल आबाद का ३५ एकड। दक्षिण आफ्रिका में चरागाहों को भी मिला कर फी आदमी ४६० एकड का औसत पडता है। उस पर भी तुर्रा यह कि हम आबादी बढने पर अपने लोगों को दूसरे देशों में नहीं भेज सकते। अमेरिका आफ्रिका और औस्ट्रेलिय के बडे बडे देशों में हमारा प्रवेश निषिद्ध है। हमें तो उसीका भरोसा है, जो प्रकृति ने हमें दिया है।

ऐसी स्थिति होने पर — जब कि ऐसे बडे देश का मुख्य आधार खेती हो, इतनी बडी आबादी केवल खेती पर गुजर करती हो, तौभी कहीं फैलने की जगह न हो, जमीन भी आदमी पीछे इतनी कम हो जिसमें उसपर निर्भर लोगों का पेट कभी पल ही नहीं, संगठित उद्योगों से इतने कम आदमियोंका पालन होता हो, तो अगर हम संसार में सबसे गरीब ही होवें तो इसमें आश्चर्य क्या है? और देशों की औसत आमदनी से हमारी आमदनी का मिलान कीजिए:

फी आदमी औसत आमदनी

	सालाना	माहवारी
संयुक्त राज्य, अमेरिका	रु. १०८०)	रु. ९०)
औस्ट्रेलिया	८१०)	६७॥)
ग्रेट ब्रिटेन	७५०)	६२॥)
कैनाडा	६००)	५०)
भारतवर्ष	३६)	३)

इस पर भी आफत यह है कि हिन्दुस्तान को अपने का बहुत सा सामान विदेशों से मँगाना पडता है। यहां यह विषय नहीं है कि विदेशों से माल मँगाने में हमेशे हानि ही है किन्तु यहां सवाल यह है कि हमें इस परिस्थिति में विदेशों से मँगाने और अपना बाहर भेजने में क्या लाभ या हानि है। हम मुख्यत: तैयार माल मँगाते हैं और कच्चा माल भेजते हैं तैयार होकर लौटता है। अब इन चीजों में एक चीज कपडा जिसके बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता और सबसे अधिक आता भी है। दूसरी ओर हम सबसे अधिक खेती की पैदावार हैं। यह बात यहां समझ लेनी चाहिए कि बाहर से मँगाये दाम तो हम माल भेज कर ही देंगे और हम केवल खेती की वार ही भेज सकते हैं। होता भी यही है। हमारे यहां कपडा ही ६० से ७० करोड तक का आता है। और १९२३-२४ में हमारे भेजे कच्चे माल का ब्यौरा देखिए:

चावल	रु० ३४,८९,७३,०००) का
गहूँ	रु० ९,११,८१,०००) का
जौ	रु० १,७६,९०,०००) का
कुल	रु० ४५,७८,४४,०००) का

ये हमारे मुख्य भोजन हैं। इनमें दूसरे फुटकर अगर हम जोड देवें तो कुल साढे ७२ करोड की खेती की हम विदेशों में भेज देते हैं। कपडा इससे कुछ ही कम आता है। इस प्रकार हम हकीकत पर पहुँचते हैं कि हिन्दुस्तान किसान बडी मिहनत से, अपनी थोडी से जमीन से जो अन्न और जो दूसरी चीजें पैदा करते हैं, उनका एक बहुत अंश यानी साढे ७२ करोड का माल विदेशों में केवल कपडे के लिए हम भेज देते हैं।

यह कहा जा सकता है कि आखिर हम अपना सारा उन्हीं देशों को नहीं भेजते हैं, जिनसे कपडे मँगाते हैं। वे दो चीजें ली हैं जिनसे मेरा अभी संबंध है। यह कोई जुरूरत नहीं है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में माल की रफ्तनी का हिसाब पूरा पडना चाहिए ही और अगर्चे कि हूबहू ठीक नहीं होगा कि फी गज मखमल के लिए हमें चावल या गहूँ भेजना ही पडता है मगर तौभी यह सब हमें अपने मँगाये माल की कीमत खुद माल भेज कर पडती है, जिसमें मुख्य है खेती की पैदावार।

(क्रमशः)

(खादी का अर्थशास्त्र नामक अँगरेजी पुस्तक में से)

राजेन्द्र

एक रियासती खादी केन्द्र

मैसूर राज्य के बदनवाल गांव में मैसूर राज्य का एक खादी केन्द्र है। इस केन्द्र के जरिए कोई ५० गांवों में काम होता है। कुछ दिनों तक स्वतन्त्र रूप से यहां तिरुपुर के एक व्यापारी ने खादी-कार्य किया था और पीछे से अ. भा. चर्खा-संघ ने भी सहायता देनी शुरू की किन्तु यह प्रबंध संतोष जनक न पाकर अन्त में यह केन्द्र अ. भा. चर्खा-संघ की कर्णाटक शाखा ने अपने हाथों ले लिया। महात्मा जी के इधर आने के पहले श्रीयुत शंकरलाल बैंकर, गंगाधर राव देशपाण्डे तथा मैं इधर के प्रदेशों में घूम गये थे। उसी यात्रा में हमारी भेट मैसूर राज्य के उद्योग विभाग के डायरेक्टर और डेवेलपमेन्ट विभाग के अध्यक्ष से हुई थी। खादी के संबंध में भी बातें हुई। हमारा यह प्रस्ताव कि रियासत को हाथकताई के उद्योग को जिलाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए, इस प्रकार सुना गया और इस उत्सुकता से उन्होंने व्यावहारिक काम शुरू करने की इच्छा दिखलायी कि हमने कहा कि आप हमारा बदनवाल केन्द्र ही अपने हाथों ले लीजिए और हम आपको अनुभवी कार्यकर्ता देकर सहायता देंगे। यह प्रस्ताव उन्होंने स्वीकार कर लिया और फलस्वरूप १ली नवंबर १९२७ से बदनवाल में खादी का एक रियासती उत्पत्ति केन्द्र है।

यहां का संगठन करने और अभी काम चलाने के लिए चर्खा संघ के दो त्यागी कार्यकर्त्ता श्रीयुत पुजारी और श्री. राजाराम भेजे गये हैं।

उद्योग विभाग के डायरेक्टर साहेब और मैं गांवों में घूम गये। हमने देखा कि काम ठीक ठीक चल रहा है। अभी और बहुत अधिक बढने की आशा है। पहले जो चर्खे, धुनकियां, ओटे पडे फिरते थे, वे ही अब सँभाल २ सुधारे जा रहे हैं, घर घर उनका आदर बढ रहा है। लिंगायतों और आदि कर्णाटकों ने तो स्वभाव से ही इस काम को पसंद कर लिया है।

गांवों में घूमते समय कातनेवाली स्त्रियों से हमारी बातें हुई। एक ने कहा, 'अब हम अपनी कपास कभी नहीं बेंचेंगे।' दूसरी ने कहा 'अभी इस बार तो कातना शुरू करने के बाद न मालूम कितने बरसों पर मुझे बेफटी साडी पहनने को मिली है।' डायरेक्टर साहेब के पूछने पर कि चर्खे से तुम्हें क्या आमदनी होती है, एक तीसरी औरत ने कहा, 'साहेब, इससे नमक तेल का खर्च निकल आता है।' फिर चौथी ने कहा, 'अभी आप क्या देखते हैं, हम तो अब घर घर चर्खे चलावेंगी।' इसपर गांव के पटेल ने हामी भरी, 'हम तो अब यही मोटा झोटा कपडा पहनेंगे।'

यहां यह देख कर बडा आनन्द हुआ कि अछूत साफ रहते हैं और उनके मकान बडे और हवादार हैं। यह स्थिति और जगहों में नहीं है। लिंगायतों के साथ उनकी खूब पटती है। और जगहों के जैसा उनके साथ दुर्व्यवहार भी नहीं होता। पहले उन्हें साल में कई बार जो बेकार रहना पडता था, अब वह बात नहीं है। अगर सिर्फ शराब की दूकान यहां से हटा दी जाती तो इनकी स्थिति खूब ही सुधर जाती। एक बूढे रैयत ने शिकायत की कि 'कभी कुछ दिनों तक ताडी की दूकान बंद कर दी गयी थी तो इन लोगों ने खपरैलें छवा ली थीं, मगर दूकान फिर से खोल दी गयी।'

यह अनोखा खादी आश्रम हिन्दुस्तान में एक ही है जो किसी राज्य के जरिए चलता हो। फिर यह है भी रेलवे स्टेशन से ही सटा हुआ। यहां की कपास भी बडी अच्छी जाति की होती है। कपास के लिए जमीन भी बडी अच्छी है। मगर कपास यहां एक बार नहीं बोयी जाती है, जिसके कारण से उसमें कोई रोग भी नहीं लग सके हैं। इसके अलावा इतनी अधिक होती भी नहीं कि कपास के बडे बडे व्यापारी यहां आकर्षित हो कर आवें, और हमारे गृह उद्योग को नष्ट कर डालें। स्त्रियां अपनी कपास आप ओट कर धुन लेती हैं। इससे परिवार की आमदनी इतनी अधिक बढ जाती है, जितनी महज ओटने से नहीं बढ सकती थी और फिर आगे काम भी सहज और साफ होता है। बुनकर सभी के सभी अछूत हैं। आज बुननेवाले ४४ गांवों में से २६ में ६से ८ अंक का सूत कतता है और बाक़ी में १० से १५ तक का। सूत की मजबूती अच्छी होती है।

यहां बहुत सी बातों में जैसे कि चर्खा, ओटा, उन पर नक्काशी वगैरह में, तामिलनाड से मेल है। यहां पर सूत का लच्छा बना कर नहीं बेंचते, किन्तु गोला बनाते हैं। १३ तोले के गोले की कीमत चार आने होती है। ६३/४ पाउन्ड कपास चार घन्टे में ओटी जाती है, जिससे १३/४ पाउन्ड रुई, ५ पाउन्ड बिनौले निकलते हैं और १/४ पाउन्ड नुकसान जाता है। बिनौले दुधार गायों और भैंसों को खूब खिलाते हैं। यहां का घो भी प्रसिद्ध है। अब १३/४ पाउन्ड को धुन कर पूनियां बनाने में भी चार घन्टे लगते हैं, इससे १ पाउन्ड पूनियां तैयार होती हैं, बाकी नुकसान जाता है। इस एक पाउन्ड को कातने में १२ घन्टे लगते हैं। इस भांति २० घन्टे फ़ुरसत के समयों में काम करके, बूढे, लागर, निर्बल, बच्चे, औरतें वगैरह ही १२ आने का सूत और ५ आने का बिनौले तैयार करती हैं, जिसमें पूँजी सिर्फ १२ आने की लगी होती है। अगर कुछ अच्छा सूत होता है तो पैसे कुछ और भी मिल जाते हैं। कुछ गांवों में सूत आंटियों में बिकता है और लंबाई की दर से कीमत दी जाती है।

बुनकरों को तामिलनाड की ही दर से बुनाई दी जाती है। वे इतना काफी बुन लेते हैं कि फी साल या कर्घा हर हफ्ते साढे तीन रुपये की आमदनी हो जाय। इस क्षेत्र में आजकल ५०० चर्खे हैं। और आशा है कि यह संख्या शीघ्र ही बढ कर १००० तक पहुँच जायगी। अभी १६ कर्घे चल रहे हैं और कताई के बढने के साथ ही उनकी भी संख्या बढेगी। बंगलोर खादी वस्त्रालय यहां के कपडे खरीद लेता है। मैसूर सरकार वर्दियों और अस्पतालों के लिए कपडे की मांग इस केन्द्र से कर रही है। अब तक काम इतना अच्छा हुआ है कि पहले ३,५००) रु. की जो पूँजी लगाया गयी थी, वह आगे के विकास के लिए शीघ्र ही बढा कर १५,०००) रु. तक की कर दी जाने को है। श्रीयुत पुजारी के शब्दों में मैसूर राज्य के इस प्रदेश में इस गृह-उद्योग को जिलाने के प्रयत्न का फल यह होता है कि (क) इससे किसानों को बिना किसी खर्च के कच्चे माल से पक्का माल तैयार कर के अपनी आमदनी बढाने की सुविधा मिली है। पहले जहां वे सिर्फ ३ रुपयों में १ मन कपास बेंचते थे वहां वे ४) रुपयों में सूत और बिनौले बेंचते हैं। (ख) इससे उन्हें बिना किसी खर्च के अपना कपडा आप मिल जाता है यानी उनका कपडे का खर्च बचता है। (ग) बूढों, लागरों, लाचारों, लँगडों, औरतों को जो घर से बाहर काम ढूँढने नहीं जातीं, बेकार समय का उपयोग करने का अवसर मिल जाता है, जिससे कुछ तो पेट पलता ही है। (घ) आदि-कर्णाटकों को घर बैठे काम मिल जाता है, जिससे जमीन पर का भार कम होता है और आदि-कर्णाटकों को घर से बाहर भागने की जरूरत नहीं पडती है।

श्रीयुत पुजारी ने डायरेक्टर औफ इन्डस्ट्रीज के पास ३१ जनवरी तक के काम की रिपोर्ट और पैसे पैसे का हिसाब भेजा है। डायरेक्टर साहेब उसे पढ रहे हैं और आर्थिक परिषद के सामने उसे पेश कर कुछ और रुपये उसके लिए मंजूर कराने की आशा रखते हैं।

श्रीमती राजाराम अपने पति के साथ उसी कुटिया में रहती हैं। उनके लिए वे खाना ही भर नहीं बनातीं बल्कि सच्ची खादी

पत्नी के समान गांव गांव खादीकार्य के लिए घूमती हैं, सभी कामों में उनका हाथ बँटाती हैं। इस नयी गृहस्थी के सरदार हैं श्रीयुत पुजारी जो अपने को उनका पिता कहते हैं। विरले ही सच्चे रिश्तेदारों में इतना प्रेमभाव होता होगा। स्वार्थ-त्याग, सेवा और एक आदर्श का बंधन भी खून के संबंध के जैसा ही गाढा हो सकता है।

(यं० इं०) चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

प्रेम-महाविद्यालय

राजा महेन्द्र प्रताप की इस कृति को अपने किये पर गर्व हो सकता है। यह उन इनी गिनी संस्थाओं में से है जो असहयोग के पहले खोली गयी थीं और बिना किसी प्रकार की सरकारी सहायता या स्वीकृति के चलती रही हैं। ऐसी बहुत सी संस्थाओं के समान इसे भी भाग्य के बहुत से उलटफेर देखने पडे हैं, किन्तु सभी संकटों को यह सह कर निर्विघ्न चला आया है। हाल में ही इसका वार्षिकोत्सव मनाया गया था। डाक्टर अंसारी सभापति थे। सभा की रिपोर्ट में लिखा है कि 'उत्सव के शुरु में पहले तकली चलाने का प्रदर्शन किया गया और फिर डाक्टर अंसारी ने राष्ट्रीय पताका फहरायी तथा हिन्दुस्तान सेवा-दल के स्वयंसेवकों ने वन्देमातरम् गाया।' इसके बाद रिपोर्ट में लिखा है:

"फिर आचार्य गिडवानी ने महाविद्यालय का भार आप ग्रहण करने के बाद से आज तक की रिपोर्ट पढ सुनायी। रिपोर्ट में आर्थिक अवस्था बुरी ही बतलायी गयी। अभी महाविद्यालय के पास ७,०००) रुपये हैं और हर साल घटी लगती है १०,०००) रुपयों की। रिपोर्ट से यह भी जान पडता है कि आचार्य गिडवानी ने महाविद्यालय का प्रबंध बहुत कुछ बदला है। खर्च की बहुत-कमी कर डाली है किन्तु विद्यालय का उपयोगिता नहीं कम होने दी है। साथ ही साथ दर्जी विभाग, रँगाई विभाग, चित्रकारी विभाग, जिल्द साजी विभाग खोले हैं और विद्यालय का छापखाना तथा प्रेम मासिक पत्र को फिरसे जारी कराया है। और विभागों के खर्च में कमी कराके ये सब नये काम शुरू कराये जा सके हैं। इस भाँति विद्यालय की उपयोगिता बढ ही गयी है। जो परिवर्तन हो चुके हैं और जो करने का विचार है, उनकी दृष्टि से तो यह संस्था कला, शिल्प और उद्योगों की एक संस्था बन जायगी।

"इस रिपोर्ट में संस्था के लिए ज्यादह अच्छी स्वास्थ्यकर ... की जरूरत बतलायी गयी है और मकानात तथा सामान वगैरह के ... दो लाख की अपील की गयी है। महात्मा गांधी के समर्थन ... पूरी आशा है क्योंकि आचार्य गिडवानी ने कहा था कि, ... महाविद्यालय गत १८ वर्षों से बिना सरकारी सहायता के अपनी स्व... बचाये रख कर शान से चला आता है। हमारा मूल ... 'हाथ से काम करने में प्रतिष्ठा है।' कताई और बुनाई ... हमारी योजना के अनुकूल हैं, हमारा एक एक विद्यार्थी शुद्ध ... पहनता है और रोज चर्खे या तकली पर सूत कातता है। ... सिंध की बाढ में सहायता देने के लिए स्वयंसेवक भेजे। ... का कर हमने भी अपने आदमियों को जेल में भेज कर ... और सबसे बडी बात तो यह है कि हमारे यहां भंगी और ... ब्राह्मण लडकों के साथ साथ शिक्षा पाते हैं। अगर ... खासियतें बनी रहें और लडकों के भविष्य जीवन का ध्येय ... तो फिर मैं कोई ऐसी संस्था नहीं जानता जो गांधीजी के आ... इससे अधिक पालती हो या उनकी सहायता के अधिक योग्य ... फिर आचार्य ने विद्यार्थियों को याद दिलाया कि 'प्रेम महावि... न तो महज स्कूल है और न महज कारखाना किन्तु यह है राजा ... प्रताप के कल्पना राज्य का प्रेम का मंदिर स्वतंत्रता का मंदिर।

जिस संस्था की ओर से इतने दावे आचार्य गिडवानी ... सके, उसके लिए मेरी सहायता की आशा रखनी उचित ही ... पाठकों को शायद पता न हो कि आचार्य गिडवानी ... म्युनिसिपैलिटी के अधीन काम करने जा रहे हैं। आचार्य ... के गांधी आश्रम, बनारस से श्रीयुत युगल किशोर जी मह... में भेजे गये हैं। मगर खयाल यह है कि गो श्रीयुत युगल ... आचार्य गिडवानी की ओर से काम चलावेंगे किन्तु आचार्य ... महाविद्यालय में दिलचस्पी लेते रहेंगे और जहां तक हो ... उसका संचालन करते रहेंगे।

(यं. इं) मो. क. गां...

खादी की उत्पत्ति और बिक्री का ब्यौरा

प्रान्त		उत्पत्ति			बिक्री		
	रु.	दिसम्बर '२७	दिसम्बर '२६	नवम्बर '२७	दिसम्बर '२७	दिसम्बर '२६	नवम्बर '२७
अजमेर	,,	५,०४५	४,५५२	५,४४५	३,९८१	३,४४१	[illegible]
आन्ध्र	,,	२७,०३७	३०,०५३	२५,२५३	३४,१७०	४७,१०८	[illegible]
बिहार	,,	२०,०९२	१४,६६१	२२,२६८	२३,२४९	१९,९३६	[illegible]
बंगाल	,,	१८,४३२	२२,९४९	२१,८८९	४५,१५०	५७,३९८	[illegible]
बम्बई	,,	. .	. .	. .	२०,६८६	९,३४०	[illegible]
ब्रह्मा	,,	. .	. .	. .	२,१८४	१,३१४	[illegible]
दिल्ली	,,	१,४३७	६७२	१,२७०	२,३२८	१,२६४	[illegible]
गुजरात	,,	४,११६	३,६३८	२,८५७	५,१०२	९,१२६	[illegible]
केरल	,,	२,७५२	१९४	४,१४५	३,६७८	१,९५७	[illegible]
कर्णाटक	,,	४,२८७	३,६६९	६,२१३	७,१६२	४,५९८	[illegible]
महाराष्ट्र	,,	३,२१५	३७६	२,४०५	१७,५८६	१९,१९०	[illegible]
पंजाब	,,	६,२६१	४,४७३	५,२८९	९,८०७	१०,८६०	[illegible]
तामिलनाड	,,	९८,८५३	७८,४३९	१,०८,४०३	८२,७८०	५६,३५०	[illegible]
युक्त प्रान्त	,,	७,८६०	८,०२७	[illegible],३२१	१४,९९६	१२,५५२	[illegible]
उत्कल	,,	२,९४४	३,९६०	६,६२३	१५,११२	३,७३१	[illegible]
कुल	रु.	२,०२,३३१	१,७५,६६२	२,१९,३८१	[illegible]७,९७१	२,५८,१६५	[illegible]

मिलें क्या करें?

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ३०

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, चैत्र बदी ९ संवत् १९८४ गुरुवार, १५ मार्च १९२८ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ४३

रवाना

मि० केलनबेक देश जाने के निश्चय से मेरे साथ निकले थे। विलायत में हम साथ ही रहते थे। किन्तु लडाई के कारण जर्मन लोगों पर खूब ही जाब्ता था और केलनबेक के साथ आ सकने के बारे में हम सभीको शक था। उनके लिए पास लेने की मैंने बहुत कोशिश की। मि० रॉबर्ट्स आप ही उनके लिए खुद पास ला देना चाहते थे। उन्होंने सारी हकीकत का तार वायसराय के नाम भेजा। परन्तु लॉर्ड हॉर्डिङ्ग का सीधा और छोटा जवाब आया, 'हमें खेद है किन्तु इस समय तो ऐसा कोई जोखम उठाने को हम तैयार नहीं हैं।' हम ने इस जवाब की योग्यता समझी। केलनबेक के वियोग का दुःख मुझे तो हुआ ही, किन्तु मैं देख सका कि मुझसे अधिक उन्हींको हुआ था। वे अगर हिन्दुस्तान आ सके होते तो एक सुन्दर किसान और बुनकर का जीवन विताते होते। अब तो वे दक्षिण अफ्रिका में अपना असली जीवन व्यतीत करते हैं और मकान बनानेवाले का धन्धा खूब धूस से चला रहे हैं।

हमने तीसरे दर्जे की टिकट लेने की कोशिश की। किन्तु पी. ऐन्ड ओ. कंपनी के जहाजों में तीसरे दर्जे की टिकट नहीं मिलती है, इसलिए दूसरे दर्जे की लेनी पडी। द० अफ्रिका से साथ लाये हुए कितने फल जो जहाज पर मिल ही नहीं सकें, और जहाज पर मिलनेवाले दूसरे फल भी साथ लिये थे।

डाक्टर मेहता ने शरीर को तो मीड्ज प्लास्टर से बाँध दिया था और पट्टी को रहने देने की सलाह दी थी। मैंने दो दिन तो सहन किये किन्तु बाद में नहीं सह सका और इसलिए बडी मिहनत से उसे निकाल दिया और नहाने धोने की छूट पायी। भोजन तो मुख्य कर सूखे फलों का ही बना लिया। तबीयत दिनों-दिन सुधरती चली और सुअेज की खाडी में पहुँचते पहुँचते तक बहुत अच्छी हो गयी। जो कि शरीर निर्बल था किन्तु तौभी मेरा भय चला गया और मैं धीमे धीमे थोडी कसरत रोज बढाता गया। मैंने माना कि यह फेरफार केवल शुद्ध और समशीतोष्ण हवा के कारण हुआ है।

पुराने अनुभव के कारण अथवा चाहे जो कारण होवे, किन्तु अँगरेज मुसाफिरों और अपने बीच में जो अन्तर यहां देख सका, वह द० अफ्रिका से आते हुए भी नहीं देखा था। वहां भी अन्तर तो था किन्तु उससे जुदे ही प्रकार का लगा। किसी किसी अँगरेज के साथ बातें होतीं भी किन्तु केवल 'साहेब सलाम' के ही बराबर। हृदय की भेट न हुई। दक्षिण अफ्रिका के स्टीमर में और दक्षिण अफ्रिका में हृदय की भेट हो सकी थी। ऐसे भेद का कारण मैंने तो यह समझा कि इन स्टीमरों में यह ज्ञान, जाने अनजाने भी काम कर रहा था कि, (अँगरेज) 'मैं राज्यकर्त्ता हूँ,' और (हिन्दुस्तानी) 'मैं पराये शासन के नीचे हूँ।'

ऐसे वायु में से झट छूटने और देश पहुँचने के लिए मैं आतुर हो रहा था। एडन पहुँचते ही कुछ घर पहुँचने जैसा भास आया। एडनवाला के साथ हमारा ठीक संबंध द० अफ्रिका में ही हुआ था। क्योंकि भाई कैकोबाद कावसजी दीनशा डरबन से हो आये थे और उनके और उनकी पत्नी के साथ मेरा खूब परिचय हो चुका था। थोडे ही दिनों में हम बंबई पहुँचे। जिस देश में १९०५ में लौट आने की आशा करता था वहां अब दश वर्ष बाद पहुँच सका, इसलिए बहुत आनन्द हुआ। बंबई में गोखले ने स्वागत वगैरह का प्रबन्ध कर ही डाला था। उनकी तबीयत नाजुक थी, मगर वे बंबई आ ही पहुँचे थे। मैं इस उत्साह से बंबई पहुँचा था कि उनसे भेट कर के, उनके जीवन में मिल जा कर, अपना भार उतार सकूँगा। किन्तु "मेरे मन कछु और है, कर्त्ता के मन और।"

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

खादी का अर्थशास्त्र

२

आर्थिक अवस्था को सुधारने के उपाय

(१)

उपाय तो कितने ही सुझाये जा सकते हैं किन्तु मैं कहूँगा कि अगर कुछ खास अवधि के भीतर ही भीतर सचमुच में कुछ लाभ पहुँचाना है तो केवल कुटीर अथवा गृह उद्योगों का ही आश्रय लेना पडेगा। लोग कहते हैं कि भारतवर्ष को औद्योगिक देश बना दो। मैं कहूँगा कि न तो यह हो सकता है, और न इष्ट ही है। जरा हम यह तो देखें कि औद्योगिक बनाने का मतलब क्या है, उसके लिए क्या क्या जरूरी है उससे क्या होता है? औद्योगिकता की मुख्य बात है यंत्रों का इस्तेमाल यानी बडे पैमाने पर माल तैयार करना। यूरोप में औद्योगिकता से जो पहली बात हुई है, वह है कलों का प्रवेश यानी पूँजी अथवा पुरानी बचत का उपयोग। जो लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान को औद्योगिक देश बनाना चाहिए, वे भूल जाते हैं कि हिन्दुस्तान का गडा धन चाहे जितना मशहूर क्यों न हो, किन्तु दर असल यहां पूँजी है ही नहीं। फिर पूँजी अपने आप बढती जरूर है, मगर जिसके पास नहीं होती, उसे जकड कर उसकी छाती पर कोदो भी दलती है। हमारे पास आज पूँजी नहीं है, इस लिए हम आज उसके नीचे दबे हुए हैं, उसके जाल से सहज ही नहीं निकल सकते। फिर यह भी याद रखना चाहिए कि खुद यूरप में भी इसके फल स्वरूप गरीब भले ही और भी गरीब न होवें, किन्तु धनियों की तो तोंद बढती ही चली जाती है। एक अमेरिका में ही उसके सारे धन का दो तिहाई हिस्सा सौ में से सिर्फ पांच ही आदमियों के पास है और सौ में पैंसठ के पास कुल मिला कर उसका बीसवां हिस्सा धन है। इँग्लैण्ड के बारे में भी कहा जाता है कि वहां के सवा चार करोड आदमियों में से ५० लाख के हाथों में सारे देश के धन का आधा था जब कि बाकी पौने चार करोड के हाथ में केवल शेष आधा धन था। यानी उन देशों में थोडे आदमियों के हाथ बहुत धन होने के कारण वे चाहे जिस धंधे में यथेष्ट पूँजी लगा सकते हैं। इसके अलावा वे तो किसी खास धंधे के सभी संचालकों का भी संगठन करके चलना चाहते हैं। इतनी बडी पूँजी से संचालित धंधों से बाजी मारने की आशा रखना दुराशा मात्र है। इस लिए भारतवर्ष में उद्योग धंधों के प्रचार में सबसे बडा बाधक कारण पूँजी की कमी है।

फिर विदेशी पूँजी से भी काम नहीं चल सकता क्योंकि संसार का यही अनुभव है कि न सिर्फ उनसे पुनरुद्धार ही न होगा किन्तु उससे हमारी आर्थिक लूट बढेगी और हमारी गुलामी की जंजीरें और भी मजबूत बनेंगी।

दूसरे, कलों से काम लेने से हमेशे ही एक आदमी अधिक माल तैयार करने लगता है और इसलिए कम मजूरों की जरूरत पडती है। इसलिए बेकार हुए मजूरों को दूसरा काम ढूँढ कर देना पडता है। यहीं हिन्दुस्तान में तथा इंग्लैण्ड और अमेरिका में फर्क है। हिन्दुस्तान में कलों के प्रवेश के साथ साथ बेकार बने लोगों को दूसरे धन्धे नहीं मिले हैं। कपडे की मिलें चलने के पहले जो लोग सूत कातते या बुनते थे, वे तो अब बेकार हो गये हैं किन्तु उन्हें दूसरा धन्धा मिला नहीं है। सूत कातने का समय बेकार जाता है। यही दशा दूसरे हाथकारीगरों की भी है। और देशों की बात न्यारी है। वहां जो लोग एक धन्धे से बेकार होते हैं उन्हें दूसरा मिल जाता है। फिर इस भांति अपनी जरूरत से वे जो अधिक माल तैयार करते हैं, उसे उन विदेशों में बेंच लेते हैं, जिनके बाजारों पर उनका कब्जा होता है।

तब सवाल यह है कि और देश किस भांति बेकारी को टाल सके हैं और हम भी क्यों नहीं टाल सकते? मसलन इँग्लैण्ड का उदाहरण लीजिए उसने अपने बेकारों के लिए नये नये धन्धे ढूँढे हैं और अधिक माल दूसरे देशों में बेंचा है। फिर लोगों के देशान्तरों में प्रवास से भी उसका थोडा भार कम हुआ है। अगर हम उन देशों के अपने देश में खपे और बाहर भेजे माल का अनुपात देखें तो यह और भी स्पष्ट हो जायगा। १९२४ में लँकाशायर ने १०००) रुपये के माल में ८५७) रुपये का तो बाहर भेज दिया और स्वदेश के खर्च के लिए केवल १४३) रुपयों का रक्खा। १९०१ में ये ही संख्याएँ ८८९) रु. और १११) रु. थीं। कई अर्थशास्त्रियों ने मिल कर अँगरेजी में एक किताब लिखी है 'क्या बेकारी अनिवार्य है?' उसमें वे लिखते है कि रूस, जापान, चीन, हिन्दुस्तान और शेष एशिया के १० अरब लोगों के रहते इँग्लैण्ड को अपने माल न खपने का यानी बेकारी का भय नहीं हो सकता। महासमर के बाद से इँग्लैण्ड का व्यापार बढा ही है, घटा नहीं है।

और देशों की भी यही हालत है। तब पश्चिम के औद्योगिक देशों की स्थिति यह है कि उन्हें अपना माल बेंचने के लिए दूसरे देशों पर खास कर पूर्व के देशों पर निर्भर रहना पडता है जैसा कि मि० क्लैफम कहते हैं, 'अगर दूसरे देशों से माल की आमदनी और रफ्तनी बंद हो जाय तो उनके उद्योग धन्धे एक साल भी उसी शान से नहीं चल सकें।' यह जानने बाद, यह बात सहज ही समझ में आ जाती है अमेरिका और यूरोप के देश बाजार हथियाने के लिए क्यों जान देने को तैयार रहते हैं। यूरोप को ऐसे बाजारों की जरूरत है जहां वह सस्ता कच्चा माल खरीद सके और महँगा तैयार माल बेंच सके। अमेरिका को अपना तैयार माल बेंचने के लिए बाजार चाहिए। जापान भी उन्हींकी लीक पर चलना चाहता है। उपनिवेशों पर अधिकार करना, कुछ देशों पर विशेष अधिकार प्राप्त करना, या अपना अधिकार दिखलाना, सभी कुछ बाजार बसाने के लिए ही है। यह कहना भी अत्युक्ति नहीं होगी कि विगत महासमर इन्हीं बाजारों के लिए था और आगे भी इन्हीं के लिए लडाइयाँ होंगी। इस भांति हम देखते हैं कि अगर हिन्दुस्तान को औद्योगिक अथवा उद्योग—प्रधान देश बनाया जा सके—जो कि बहुत बडी बात है—तौभी हमें यहां का माल बेंचने के लिए किसी दूसरे ग्रह पर कब्जा करना होगा क्योंकि पृथ्वी पर के सभी बाजार तो पहले से ही दूसरों के कब्जे में हैं। हिन्दुस्तान का कपडे का व्यापार इस बात को सिद्ध करता है। कुछ दिनों पहले हम चीन और जापान को अपनी मिलों का काता बहुत सा सूत और कुछ कपडा भी भेजा करते थे किन्तु जैसा कि नीचे के अंकों से मालूम पडेगा, हमारा वह व्यापार मर गया और आज साठ साल के बाद भी हिन्दुस्तानी मिलों को विदेशी कपडे से चढा ऊपरी में सरकारी रक्षण की प्रार्थना करनी पडती है। सन १८९९-१९०० में हिन्दुस्तान से साढे २४ करोड पाउण्ड सूत और ११ करोड गज कपडा विदेशों में गया जब कि केवल १६७ मिलें चलती थीं। लगभग १९०४-०५ में मिलों की संख्या १८३ हो जाने पर साढे १३ करोड गज कपडा बाहर भेजा गया किन्तु सन् १९२४-२५ में २७५ मिलें हो जाने पर भी सिर्फ सवा तीन करोड पाउण्ड सूत और साढे सोलह करोड गज कपडा भेजा गया था। फिर हमें बेकारी, बाजार के अभाव की ही कठिनाई नहीं है किन्तु बडा व्यापार, बडी संगठन, अधिक पूँजी और विशेष योग्यता के कारण भी विदेशी कंपनियाँ हिन्दुस्तान के बाजारों में हिन्दुस्तान के कपडे से अपना कपडा सस्ता

बेंच लेते हैं। यही हालत दूसरे धंधों की भी है। जमशेदपुर का ताता का लोहे का कारखाना सरकारी सहायता के बिना चल ही नहीं सकता। कोयले की भी वही हालत है। द० अफ्रिका का कोयला यहां आकर हमारे कोयले से सस्ता विकता है। कारण यह है कि ये सभी धंधे परस्पर आश्रित हैं। एक में सफलता तभी मिलेगी जब दूसरों पर भी कब्जा किया जा सके। उदाहरण के लिए देखिए कि हमारी एक सबसे बडी कठिनाई है माल का एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में। इसमें सुभीता होने से बडे पैमाने पर माल बनानेवाले सहज ही दूर से भी सस्ता कच्चा माल खरीद सकते हैं और दूर के बाजार में बेंच सकते हैं। यहां की तो दुनिया ही निराली है। भले ही यह आश्चर्य-जनक जान पडे किन्तु दर असल बात यही है कि बंबई से शोलापुर तक २८३ मील कपडा ले जाने में जितना खर्च पडता है, उतने ही या उससे भी कम खर्च में हिन्दुस्तान से रुई जापान जाकर, और कपडा बन कर आ जाती है। इसी भांति द० अफ्रिका से बंबई तक कोयला लाने में जितना खर्च पडता है, उससे अधिक झरिया की खानों से बंबई तक लाने में पड जाता है। इस लिए हमें अगर उद्योग-प्रधान देश बनना है तो हमें पूंजी के अभाव, व्यापारिक योग्यता की कमी, बाजारों के अभाव, सामान एक जगह से दूसरी जगह लेजाने की सुविधा की कमी, और सबसे बडी बात है अपने घर में अपना अधिकार न होने की कठिनाई को झेलकर ही कुछ प्रगति करनी होगी।

(क्रमशः)

('खादी का अर्थशास्त्र' नामक अँगरेजी किताब में से।)

राजेन्द्रप्रसाद

अजमल जामिया कोष

पूर्व स्वीकृत		रु. १७५३-१०-०
हाफिज अब्दुल हमीद	दिल्ली	१०३-०-०
मेसर्स असगरअली महम्मदअली	,,	१०-०-०
सरदार दीवानसिंह साहेब	,,	२५-०-०
हकीम बुरहशाह साहेब	,,	५-९-०
विश्वंभर दयाल साहेब	,,	१०-०-०
मो इब्राहीम साहेब	;,	१०-०-०
राय ब. बी. एम. चैटर्जी	,,	१०-०-०
हाजी मु. याहिया साहेब	,,	१०-०-०
लियाकत उल्ला साहेब अब्दुल हई साहेब मार्फत के. एच.	,,	१०-०-०
मो. अब्दुल्ला साहेब	,,	१०-०-०
बंबई का सेठ, मार्फत गुलाम किबिया खां साहेब	,,	१००-०-०
नूर-उल-आला मौदूदी साहेब	,,	१०-०-०
मौलवी याकूब साहेब जन्जानी	अलीगढ	५-५-०
बेगम सफदर अली साहेब	दिल्ली	५०-०-०
जामा मस्जिद में चन्दा, मा. मौलाना महम्मद अली साहेब		
पं. मोतीलाल नेहरू	,,	२७-०-०
लाला श्रीराम साहेब	,,	५००-०-०
जामा मस्जिद में चन्दा, मार्फत मौलाना महम्मद अली साहेब	,,	९०-०-०
मौलवी मजहर-उद्दीन साहेब	,,	३५-०-०
मार्फत हाजी अब्दुलगफ्फार साहेब	,,	१५-०-०
महम्मदअली साहेब मार्फत ख्वाजा अब्दुल हई साहेब	,,	२०-०-०
डाक्टर एस. ए. मजीद साहेब	,,	५-०-०
जमालपुर के मुसलमान मार्फत अब्दुल सलाम साहेब	पटना	५-०-०
...मस्जिद में चन्दा	पेशावर	१०-०-०
	दिल्ली	५०-०-०
एम. आर. रेलवे, एम. मुकुन्दराव बी. ए. कादरी	मंगलोर	१००-०-०
एस. ए. समद	दिल्ली	२५-०-०
अजीजअली साहेब	गाजियाबाद	४-०-०
मार्फत मीर अनवर अहमद साहेब सै. मुइनुद्दीन साहेब	दिल्ली	५-०-०
साहिबजादा शाह मुहम्मद बिलाल साहेब	,,	२५-०-०
मु. शफी साहेब	,,	५-०-०
नन्हेंमियां साहेब	,,	१०-०-०
मुहम्मद रफीक साहेब	,,	५०-०-०
एक मुसलमान शरीफ	,,	१०-०-०
हाफिज मुहम्मद हाफिज साहेब	,,	५-०-०
अजीजुद्दीन साहेब	,,	१-०-०
बरकतउल्ला साहेब	,,	१०-०-०
मु. यसीन साहेब	,,	५-०-०
मुहम्मद साहेब	,,	२५-०-०
डाक्टर एस. एम इलाही साहेब	,,	५-०-०
अब्दुल अजीज साहेब	,,	२५-०-०
एस. एम. अब्दुल्लाह साहेब	,,	५०-०-०
एक शरीफ	,,	४-१३-०
रजाउल्लाह साहेब	,,	१०-०-०
छैल साहेब, मार्फत मीर अहमद साहेब	,,	१-०-०
श्रीयुत कालिदास जशकरण झवेरी	अहमदाबाद	२५-०-०
श्रीमती शीलावती देवी	शिवसागर	३-०-०
श्रीयुत रमेशचन्द्र	,,	२-०-०
,, एम. जकरिया	,,	१०-०-०
,, बालचंद खेतान	बंबई	२५-०-०
,, सीताराम पोद्दार	रंगून	१००-०-०
,, वालजी गोविन्दजी देसाई	साबरमती	५-०-०
,, एक आर्य	खेडुई	२-०-०
,, लालजी मूलजी चौहान	मेघपुर	७-०-०
,, नानजी प्रेमजी	कलम्बो	२६-०-०
,, शंकरलाल बेलाभाई बैंकर	अहमदाबाद	१००-०-०
साहुकार ए. मुहम्मद हुसैन साहेब	मैसूर	५०-०-०
		कुल रु. ३६०१-७-०

इनके अलावा निम्न लिखित रकमें 'नवजीवन' कार्यालय में प्राप्त हुई हैं:

श्रीयुत बालमुकुन्द कल्ला	आगरा	रु. १-०-०
,, एक सज्जन	,,	५-०-०
,, बापालाल चुन्नीलाल	बंबई	५-०-०
,, भिखालाल गोकुलदास तलाटी	वीसनगर	१-०-०
,, शामजी शावजी मोदी	मद्रास	२५-०-०
,, मैसूर सैनिटोरियम के नौकर, मा. एच. जी. मुथु	मैसूर	६-१२-०
श्रीयुत सेठ जेठालाल रामजी दलाल	बंबई	३४-०-०
डा. वी. एन. मोदी	बरोदा	५-०-०
श्रीमती देवी दुहिता	जूनागढ	५-०-०
श्रीयुत वी. एन. खानोलकर	खार	५-०-०
		कुल रु. ८९-१२-०

कुल योग फल रु. ३६९१-९-०

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, चैत्र वदी ९ संवत् १९८४

हमारी मिलें क्या कर सकती हैं

सभी किसीको इसकी चिन्ता है कि हम अपने इतिहास की इस नाजुक घडी में कुछ सच्ची ताकत दिखलावें। यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है कि ऐसी ताकत केवल ब्रिटिश कपडे के बदले सभी विदेशी कपडों के बहिष्कार से ही पैदा की जा सकती है, तथा दिखलायी जा सकती है। अगर हमारे मिलमालिक चाहें तो इस बहिष्कार में महत्वपूर्ण हिस्सा ले सकते हैं, बल्कि निर्णय-कारक हिस्सा ले सकते हैं।

किसी न किसी दिन उन्हें इस विदेशी सरकार और प्रजा में से एक को चुनना ही पडेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बहुत कर के इस सरकार की अगर सहायता नहीं तो रजामंदी पर ही उनकी जिन्दगी मुनहसिर है। थोरो ने यह कहते समय सत्य ही कहा था कि बुरी सरकार के राज्य में धनी होना पाप है और गरीब होना ही पुण्य है। धनियों का धन, उस समय की भली या बुरी सरकार के ही हाथों में होता है।

मगर, मिलों का अस्तित्व अगर सरकार की रजामंदी या सहायता पर निर्भर है तो प्रजा की भी रजामंदी या सहायता पर कम निर्भर नहीं है। मिल-मालिक प्रजा की उपेक्षा तभी तक कर सकते हैं जब तक कि वह अज्ञान, निर्बल या असंगठित रहे। किन्तु पिछले सात वर्ष यों ही नहीं बीते हैं। जो सामूहिक जागृति उत्पन्न हो गयी है, वह कभी मर नहीं सकती। कोई नहीं कह सकता कि कब और किस रूप में प्रजा अपनी शक्ति का प्रदर्शन करेगी।

किन्तु मिलों की तो एक प्रकार की विशिष्ट स्थिति है। थोडा सा साहस, राष्ट्र के सच्चे स्वार्थ की थोडी सी पर्वा और थोडा सा ही आत्मत्याग कर के, मिल-मालिक सरकार और प्रजा दोनों की सेवा कर सकते हैं और प्रजा का कार्य साध सकते हैं।

मेरी नम्र सम्मति में वे यह काम यों कर सकते हैं:

कुछ तेजी और मंदी के सालों का कम से कम औसत जोड कर वे अपने कपडों का एक दाम निश्चित कर सकते हैं।

बहिष्कार आन्दोलन के संगठनकर्त्ता नेताओं के साथ वे इसका समझौता कर सकते हैं कि कितना और किस किस्म का कपडा बनाना चाहिए।

खादी बनानेवाले जो कपडे तुरत बना सकते हैं, उन कपडों का बनाना छोड कर वे उन्हीं कपडों को बनाने में शक्ति लगा सकते हैं जिन्हें कि खादीवालों से ज्यादह जल्दी वे ही बना सकते हैं।

अपना नफा कमसे कम लेकर, जो बचत रहे, उसे वे बहिष्कार आन्दोलन में लगा सकते हैं या यह जरूरी न होने पर अपने मजदूरों की दशा सुधारने में लगा सकते हैं।

इसके मानी होंगे सभी ओर से ईमान्दारी का बर्त्ताव, अध्यवसाय, पारस्परिक विश्वास, मजदूरों, पूँजीपतियों और खरीदारों के बीच स्वेच्छापूर्वक और सम्मानित तिहरा संगठन। इससे बहुत बडे पैमाने पर संगठन करने की शक्ति साबित होगी। और अगर एक दिन हमें अहिंसा के जरिए विदेशी कपडे का बहिष्कार सफल करना है तो मेरी बतलायी जाँचें पूरी करनी ही पडेंगी।

मेरी नम्र सम्मति में हम इस काम के लिए बिलकुल ही योग्य हैं। इसके लिए आवश्यक संगठन से हम अपरिचित नहीं हैं। तब एक ही सवाल यह है कि क्या हममें इसकी इच्छा भी है? क्या मिल-मालिकों में इतनी दूर-दृष्टि, इतना देश-प्रेम है? अगर है तो वे रास्ता दिखा सकते हैं।

मैं अपना विश्वास फिर फिर कहता हूँ। बहिष्कार में शीघ्र सफलता पाने के लिए खादी और सच्ची स्वदेशी मिलों का मेल इष्ट है किन्तु नितान्त अनिवार्य नहीं है। मैं 'सच्ची स्वदेशी' शब्द जान बूझ कर जोडता हूँ क्योंकि हमारे यहां नकली मिलें बहुत सी हैं जो हिन्दुस्तानी इसी लिए कही जाती हैं कि हिन्दुस्तान में हैं। नहीं तो उनके हिस्सेदार उनका प्रबंध, उनकी भावना, अगर बिलकुल नहीं तो, मुख्यतः विदेशी ही हैं। मगर जो स्वदेशी मिलें राष्ट्रीय आन्दोलन में साथ न दे सकें या देना न चाहें तौभी मेरा दृढ विश्वास है कि खादी अकेले ही विदेशी कपडे का बहिष्कार कर सकती है, बशर्त्ते कि राजनीतिक विचारवाले हिन्दुस्तानियों में इस काम के लायक यथेष्ट लगन, श्रद्धा और शक्ति होवे। स्टीम एंजिन आयल एंजिन अथवा बिजली के रूप में हमारे पास काफी शक्ति नहीं है किन्तु हमारे पास मनुष्य शक्ति का अनन्त भाण्डार भरा पडा हुआ है जो 'काम, काम' चिल्ला रहा है और जो इस काम के लिए खास कर मौजूँ है। ओह, अगर केवल एक वही श्रद्धा होती जो इस जीवंत शक्ति को देख सकती, काम में ला सकती।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

युद्ध और अहिंसा

यूरोपीय महासमर में ब्रिटिश साम्राज्य को जो सहायता देने का उल्लेख मैंने अपने 'सत्य के प्रयोगों' में किया है, उसके संबंध में एक भाई निम्न लिखित प्रश्न लिखते हैं:

"आपने अपनी 'आत्मकथा' के चौथे भाग के ३८वें अध्याय में पहले पहल यूरोपीय महासमर में अपने शामिल होने का जिक्र किया है। इसकी योग्यता के विषय में मुझे शंका है। मेरा खयाल है कि मैं शायद आपका मतलब ही ठीक ठीक नहीं समझ सका हूँ। इस लिए प्रार्थना है कि आप कृपा कर मेरी शंकाओं का समाधान कर देवें।

"पहला प्रश्न है:

"आपको दर असल लडाई में शामिल होने के लिए किस बात ने प्रेरित किया? आप कहते हैं।

"इसलिए अगर मुझे उस राज्य के साथ आखिर संबंध रखना हो, उस राज्य की छत्रच्छाया के नीचे रहना हो तो या तो मुझे खुले तौर पर युद्ध का विरोध करके जब तक उसकी युद्धनीति न बदले तब तक सत्याग्रह के शास्त्र के अनुसार उसका बहिष्कार करना चाहिए अथवा भंग करना योग्य होवे तो वैसे कानूनों का सविनय भंग करके जेल का रस्ता ढूँढना चाहिए अथवा मुझे उसकी युद्ध-प्रवृत्ति में भाग लेकर उसका विरोध करने की शक्ति और अधिकार प्राप्त करना चाहिए। ऐसी शक्ति मुझमें नहीं थी। इसलिए मैंने माना कि मेरे पास युद्ध में भाग लेने का ही रास्ता बचा है।" (भाग ४, अध्याय ३९:)

"आप युद्ध में शरीक हो कर युद्ध की हिंसा का विरोध करने के लिए कौन सी योग्यता, कौन सी शक्ति प्राप्त करना चाहते थे?

"मैं देखता हूँ कि लडनेवाले दूसरे देशों के निवासियों की बनिस्बत आप का स्थिति न्यारी थी। वे तो सेना में भर्ती किये जा सकते थे किन्तु आप नहीं और इसलिए निष्क्रिय प्रतिरोध का रास्ता आप के लिए स्वभावतः ही नहीं खुला हुआ था। तब फिर कि आपकी कोई स्थिति नहीं थी, सार्वजनिक रूप से युद्ध में

विरोध करना तो न करने से भी बुरा होता। तब आखिर नितान्त आवश्यक लाचार शराकत से जरा भी अधिक शराकत क्यों करें।

"गोकि ऊपर के उद्धरण से जान पडता है कि आप युद्ध का विरोध कर सकने की ताकत पैदा करने के लिए लडाई में शरीक हुए किन्तु दूसरी जगहों में आप खुलासा कहते हैं कि आपकी उम्मेद थी कि लडाई में शामिल होने से आपकी अपनी और आपके देश की स्थिति अच्छी होगी—और यह पढ कर जान पडता है कि आपकी उन्नति महज लडाई का विरोध भर करने के लिए ही नहीं थी।

"और इसीमें से दूसरा प्रश्न यह भी उठता है कि कुछ भी पाने के लिए लडाई में योग देना ही क्यों उचित था?

"मेरी समझ में नहीं आता कि गीता की शिक्षा से इस बात का मेल किस तरह बैठाऊँ। गीता में तो कहा है कि फल का विचार त्याग कर कर्म करना चाहिए।

"सारे अध्याय में आपने यही दलील इस्तैमाल की है कि ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता की जाय अथवा नहीं। और मैं समझता हूँ कि मूलतः सवाल व्यक्तिगत रूप में उठा होगा किन्तु वह इस किनारे तक ले ही जाता है कि युद्ध के रूप में युद्ध में हमें योग दान करना चाहिए या नहीं?"

बेशक लडाई में योगदान के लिए मुझे प्रेरित करनेवाला उद्देश्य मिश्रित था। दो बातें मैं याद करता हूँ। गोकि व्यक्तिगत रूप से मैं लडाई के विरुद्ध था किन्तु मेरी ऐसी स्थिति नहीं थी कि मेरे विरोध का असर पड सके। अहिंसामय विरोध तभी हो सकता है जब कि विरोध करनेवाले ने विरोधी की पहले कुछ सच्ची निःस्वार्थ सेवा की हो, सच्चे हार्दिक प्रेम का प्रदर्शन किया हो। जैसे कि किसी जंगली आदमी को पशु का बलिदान करने से रोकने के लिए मेरी तब तक कोई स्थिति नहीं होगी, जब तक कि मेरी किसी सेवा या मेरे प्रेम के कारण वह मुझे अपना मित्र न समझ ले। दुनिया के पापों का न्याय करने में नहीं बैठता हूँ। स्वयं असंपूर्ण होने के कारण, और चूँकि खुद मुझीको औरों की सहनशीलता तथा उदारता की दरकार है, मैं संसार की कच्चाइयों या असंपूर्णताओं को तब तक सहन करता रहता हूँ जब तक कि उनपर प्रकाश डालने का अवसर मैं नहीं पाता या बना नहीं लेता हूँ। मुझे लगा कि अगर मैं यथेष्ट सेवा कर के वह शक्ति, वह विश्वास पैदा कर लूँ कि साम्राज्य के युद्धों, और युद्ध की तैयारियां को रोक सकूँ तो मेरे जैसे आदमी के लिए यह बडी अच्छी बात होगी जो खुद अपने ही जीवन में अहिंसा का व्यवहार करना चाहता है तथा यह भी जाँचना चाहता है कि सामूहिक रूप में इसका कहां तक उपयोग किया जा सकता है।

दूसरा उद्देश्य साम्राज्य के राजनीतिज्ञों की सहायता से स्वराज्य की योग्यता पैदा करने का था। साम्राज्य के इस जीवन मरण की समस्या में उसे सहायता दिये बिना यह योग्यता मुझे में आ नहीं सकती थी। यहां यह भी समझ लेना चाहिए कि मैं सन् १९१८ की अपनी मानसिक स्थिति की बात लिख रहा हूँ जब कि मैं ब्रिटिश साम्राज्य और हिन्दुस्तान के उसके स्वेच्छापूर्वक सहायता देने की बात में विश्वास करता था। अगर मैं तब भी आज के जैसा अहिंसक विद्रोही होता तो अवश्य ही सहायता न देता और अहिंसा के जरिए जिस जिस तरह उनका उद्देश्य चौपट होता, करने की सभी कोशिशें करता।

युद्ध के प्रति मेरा विरोध और उसमें अविश्वास तब भी आजके ही जैसे सबल थे। मगर हमें यह मानना पडता है कि हम बहुत से काम करना नहीं चाहते मगर तौभी उन्हें करते ही हैं। मैं छोटे से छोटे सजीव प्राणी को मारने के उतना ही विरुद्ध हूँ, जितना कि लडाई के। किन्तु मैं निरंतर ऐसे जीवों के प्राण इस आशा में लिये चला जाता हूँ कि किसी दिन मुझ में यह योग्यता आ जायगी कि मुझे यह हत्या न करनी पडे। यह सब होते रहने पर भी अहिंसा का हिमायती होने का मेरा दावा सही होने के लिए यह परमावश्यक है कि मैं इसके लिए सचमुच में, जी जान से और अविराम प्रयत्न करता रहूँ। मोक्ष अथवा सशरीरी अस्तित्व की आवश्यकता से मुक्ति की कल्पना का आधार है संपूर्णता को पहुँचे हुए पूर्ण अहिंसक स्त्री पुरुषों की आवश्यकता। सम्पत्ति-मात्र के कारण कुछ न कुछ हिंसा करनी ही पडती है। शरीर रूपी संपत्ति की रक्षा के लिए भी चाहे जितनी थोडी किन्तु हिंसा तो करनी ही पडती है। बात यह है कि कर्त्तव्यों के धर्मसंकट में से सच्चा मार्ग ढूँढ लेना सहज नहीं है।

अन्त में, गीता की उस शिक्षा के दो अर्थ हैं। एक तो यह है कि हमारे कामों के मूल में कोई स्वार्थी उद्देश्य नहीं होना चाहिए। स्वराज्य लेने का उद्देश्य स्वार्थपूर्ण नहीं है। दूसरे, कर्मफल का मोह छोडने का अर्थ यह नहीं है कि उनसे अनभिज्ञ रहा जाय या उनकी उपेक्षा की जाय या उनका विरोध किया जाया। मोह रहित होने का अर्थ यह कभी नहीं है कि जिसमें अपेक्षित फल न आवे, इस लिए कर्म करना ही छोड दिया जाय। इसके उलटे मोह-राहित्य ही इस अचल श्रद्धा का प्रमाण है कि सोचा हुआ फल अपने समय पर जरुर होगा ही।

(यं. इं)

मोहनदास करमचन्द गांधी

टिप्पणियां

रोचक आंकडे

मैं सभाओं में यह बात बराबर कहता रहा हूँ कि चर्खा संघ के जरिए १,५०० गांवों में ५०,००० कतवैयों की सेवा होती है। अ. भा. चर्खा संघ ने सूत की मिकदार पर से कतवैयों की संख्या निकाली थी। उसी के आधार पर यह बात कही जाती थी। तब से एक वर्ष से अधिक दिन बीत गये हैं। उसके बाद कतवैयों, की और उसी साथ धुनियों तथा बुनकरों भी संख्या प्रत्यक्ष रूप से यानी गिनती कर के जोडने की कोशिश की गयी थी। साथ के कोष्ठक में ये अंक दिये जाते हैं। उन्हें देखने पर मालूम होगा कि न तो प्रान्तों की सभी संस्थाओं ने अपने अंक भेजे हैं और न जिन्होंने अंक भेजे हैं, वे ही अ. भा. चर्खा संघ की सारी माँगें पूरी कर सकी हैं। इस लिए साथ के अंक हर तरह से असलियत से कम ही होगे, अधिक नहीं हो सकते, मगर तौभी ये संख्याएँ ५०,००० कतवैयों और १,५०० गांवों से कहीं अधिक की प्रगति बतलाती हैं। मगर यह तो उस आन्दोलन का महज शुरू का मजा है, जिसका समर्थन समझदार लोगों को करना चाहिए। अगर केवल माँग का पक्का भरोसा हो जाय तो खादी बनाने की अपार गुंजायश पडी है।

प्रान्त	धुनिये	कतवैये	बुनकर	गांव
अजमेर	१२९	३,७२८	४९१	८०
आन्ध्र	२६४	११,६५४	९८१	२९५
बिहार	१९	१६,६३४	५४८	३२१
*बंगाल (प्रतिष्ठान और प्रवर्त्तक संघ)		५,१४४	५१६	४४६
दिल्ली		५९४	३०	४३
गुजरात	४१	१,३९७	२३४	१२६
कर्णाटक	३७	२,५८७	२०६	१३१
महाराष्ट्र	७३	८४१	११५	१६
पंजाब	अंक नहीं मिले हैं			

* अधूरे आंकडे

तामिलनाड		२१,६४९	२,१८४	
युक्त प्रान्त	१८	४५७	१७०	४७
उत्कल		१,४६२	५७	५८
कुल	५८१	६६,१४७	५,५३२	१,५६३

अ० भा० चर्खा-संघ की सदस्यता

३१ जनवरी १९२८ को चर्खा-संघ के सदस्यों की संख्या यह रही:

प्रान्त	'अ' वर्ग	'ब' वर्ग	'तरुण' वर्ग
अजमेर	१०	१	१
आन्ध्र	१२८	१३	१३
आसाम	६	०	०
बिहार	१२३	८	८
बंगाल	१२१	१४	४
बर्मा	७	०	०
मध्य प्रांत	११	१	०
बंबई	४४	१	१
दिल्ली	६	०	०
गुजरात	२११	७	६०
कर्णाटक	६१	९	४
केरल	१५	१	१
महाराष्ट्र	१२२	२०	४१
पंजाब	२४	१	०
सिंध	१०	३	०
तामिलनाड	५८	४	९
युक्त प्रांत	३३	२	१
उत्कल	७	१	०
कुल	९९३	८६	१३६

३१ जनवरी १९२७ को अ. भा. चर्खा-संघ के सदस्यों की संख्याएँ निम्न लिखित थीं:

प्रान्त	'अ' वर्ग	'ब' वर्ग	'तरुण' वर्ग
अजमेर	९	०	२
आंध्र	२०१	५	०
आसाम	१	१	०
बिहार	७८	९	१०
बंगाल	२३६	१०	१५
बर्मा	९	१	०
मध्यप्रांत	२८	२६	०
बंबई	४७	०	१
दिल्ली	९	०	०
गुजरात	२८३	१३	६७
कर्णाटक	८२	२	०
केरल	१६	२	१३
महाराष्ट्र	१९०	३६	४८
पंजाब	३६	१	१
सिंध	२४	३	०
तामिलनाड	१४०	४	१
युक्त प्रान्त	५४	३	२
उत्कल	१९	१	०
कुल	१४६२	११७	१६०

उपर्युक्त आंकडों पर और कुछ टीका टिप्पणी करने की जरूरत नहीं है सन् १९२७से सन् १९२८में सभी श्रेणियों के सदस्यों की संख्या घटी है क्योंकि संघ की नीति ही रही है कि यज्ञार्थ कातने के लिए लोगों को कहने में एक पैसा भी खर्च न किया जाय यह नीति उचित ही है। अगर रुपया खर्च करके प्रचार करा जाय, लोगों को उत्साहित किया जाय तो यज्ञार्थ की कीमत ही नहीं रह जाती। मगर सदस्यों की संख्या सहज ही दूनी हो जाय अगर सभी सदस्य एक एक नया सदस्य बनाने का भार अपने सिर ले लेवें। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब सदस्यों की संख्या घटी है, खादी की उत्पत्ति और बिक्री में बहुत बढती हुई है तथा मजदूरी के लिए कातनेवालियों की भी संख्या खूब बढी है।

बालक, बालिकाओं की जानकारी के लिए मैं अ० भा० चर्खा-संघ की कार्य समिति के एक प्रस्ताव की नकल दे रहा हूँ। राष्ट्रीय शालाएँ तरुण सदस्यों की संख्याएँ बहुत बढा सकती हैं:

"निश्चित हुआ कि तरुण सदस्यों का एक 'ब' वर्ग बनाया जाय जिसमें १८ साल से कम उम्र के वे बालक या बालिकाएँ ली जाएँ जो नियमित खादी-धारी हों, और जो संघ को अपने काते एक समान और काफी ऐंठनवाले २,००० दो हजार गज सूत का सालाना चंदा दिया करें।"

(यं० इं०)

मो० क० गांधी

नवीनगर खद्दर भंडार

अन्यत्र मदन खादी कुटीर की रिपोर्ट दी जा चुकी है जो कि एक स्वतंत्र संस्था है। अब चर्खा संघ के अधीन एक दूसरे खादी भंडार का हाल सुनिए। गांधी जी की पिछली विहारयात्रा के बाद विहार प्रान्तीय चर्खा-संघ ने नवीनगर जिला, गया में गत मई १९२७ से एक खादी उत्पत्ति केन्द्र खोला है। तब से वहाँ पर कातनेवालियों कि संख्या दिनोदिन बढती ही गयी है। उनकी संख्या के आंकडे ये रहे:

महीना	कतवैयों की संख्या
मई १९२७	२७
जून	६८
जुलाई	१९४
अगस्त	२१०
सितंबर	२८८
अक्तूबर	२७५
नवंबर	३०९
दिसंबर	३१०

काम करनेवालों को कुल मिला कर रु. २,७६६-६-९ दिये गये। हिसाब नीचे दिया जाता है:

	रु. आ पा.
कातनेवालियों को	८६७-१२—६
धुनियों को	५४१-१३—०
बुनकरों को	१,१७५—६—९
मकान किराया	५६—०—०
कार्यकर्त्ता का वेतन	९६—०—०
रँगरेज को	२२-१३—०
धोबी को	६—९—६
कुल रु.	२७६६—६—९

यानी कोई ३५०) रु. फी महीने बाँटे गये।

इस के बाद रिपोर्ट में लिखा है कि इन ३१० कातनेवालियों ने कुल ९३ मन २७ सेर सूत काता। खादी की उत्पत्ति भी हर

...बढती गयी है। खादी उत्पत्ति के अंक ये हैं:

मास १९२७	
जून	३५-१०—३
जुलाई	४०५-०—३
अगस्त	९०१-१५—३
सितंबर	८४२-१०—०
अक्तूबर	७८९—७—६
नवंबर	१,००२—३—३
दिसंबर	१,१८१-१५—६
कुल रु.	५२४८-१४—०

...भंडार का काम ५६ गांवों में होता है। भंडार ने होमियो... दवाएँ भी गरीबों में मुफ्त बाँटी। हाल में ही एक ...शाला भी खोली गयी है और हम कतवैयों को अपने ही ...कपडा आप पहनने को समझाने की कोशिश करते हैं और ...१५ आदमियों ने हमारी बात मानी है। यह कपडा उन्हें ...पडता है। हमें आशा है कि समय पाकर हम सभी कतवैयों, ...और बुनकरों को अपनी बनायी खादी पहना सकेंगे। ...तो बहुत ही आशा जनक जान पडती है। स्थानीय अग्रवाल ...इसमें खूब दिलचस्पी लेते हैं और उन्होंने अपने लडकों को ...सिखलाना भी शुरू कर दिया है।

...ई०)

महादेव देशाई

मदन खादी-कुटीर, करौली

...खादी कुटीर की स्थापना स्वर्गीय कुँवर मदनसिंह जी द्वारा ...सं. १९८४ में हुई थी, पर उक्त कुँवर साहब का स्वर्गवास होने ...इस कुटीर का नामकरण उन्हीं के नाम से कर दिया गया। ...तो कुटीर का कार्य चैत्र से ही आरम्भ हो गया था किन्तु ...रूप से इसका कार्य भाद्रपद से ही शुरू हो सका है। केवल ...) रुपयों की पूँजी से ही हमने यह कार्य शुरू किया था। ...मास में हमें ५००) की सहायता और मिल गयी और यह ...विशेष उत्साह के साथ होने लगा। हमें १०००) की एक और ...सेठ भागीरथमल जी कानोडिया ने कुटीर को बिना सूद ...है अतः हम उनके कृतज्ञ हैं।

समस्त भारतवर्ष में खादी महँगी समझी जाती है और जिस ...इस संस्था की स्थापना हुई थी उस समय खादी की दर चढी ...थी। करौली के खादी प्रेमियों ने अपने निजके उपयोग के ...धोतीजोडा, दुसूती आदि हाथ के कते सूत से बनवाना शुरू ...। बुनकरों और कातनेवालियों के संसर्ग में आने पर मालूम ...कि यहां की असहाय स्त्रियों की बडी बुरी दशा है और बहुत ...स्त्रियों का निर्वाह तो केवल कातने से ही चलता है। हम लोगों ...को भी मालूम हुआ कि यहां की खादी दूसरी जगह से सस्ती ...। अतः कार्य शुरू कर दिया गया। इस कुटीर की स्थापना में ...मुख्य उद्देश्य केवल यही है कि खादी प्रेमियों को सस्ते दामों ...और टिकाऊ खादी पहुँचायी जावे।

...कुटीर यादववाटी हित वर्द्धक सभा के वाणिज्य विभाग के ...है और सभा के ही कार्यकर्त्ता अवैतनिक रूपसे इसका कार्य ...है। इस समय इसका कार्य मुख्यतः दो खादी प्रेमी सज्जन ...ओंकारसिंह जी और श्री कुँ. परमसिंह जी सुचारु रूप से ...रहे हैं। इनके द्वारा कितनी खादी तैयार हुई है और कितनी ...बिकी है उसके आंकडे नीचे दिये जाते हैं।

मास	उत्पादन	बिक्री स्थानीय	बिक्री राजस्थानीय	बिक्री ब्रिटिश भारतीय
चैत्र से श्रावण मास तक	रु. ७६९-७-९	११९-५-९	४५६-१४-०	८६-६-६
भाद्रपद	३२१-४-०	४०-०-६	४६-४-९	३०-४-३
क्वार	४२६-४-३	३५-०-३	४४५-८-९	४४८-६-०
कार्तिक	२५२-१२-०	२२-७-६	६१-५-६	
अगहन	२५१-०-६	२७-१३-३	१४७-१३-०	१३५-६-६
योग	२,०१८-१२-९	२४४-११-३	१,१५७-१४-०	७००-७-३

उपर्युक्त कोष्टक को देखने से पता चलता है कि कुल बिक्री रु. २१०२-६ की यानी उत्पादन से ८४।) की अधिक की हुई है। यह जो रकम बढी है वह नफा की है।

हमें हर्ष होता है कि हमारे माल की माँग अच्छी रही। अभी तो हमें इसका खेद है कि हम माल की पहुँच देरी से कर सकते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि यहां पर बुनकरों या कातनेवालियों की कमी है। कमी केवल पूँजी की है। यहां के लिये दस हजार रुपया भी अधिक नहीं है। हम चाहते हैं कि सस्ते दामों पर बढिया खादी जनता के सामने उपस्थित करें।

हमने एक स्कीम निश्चित की है, उसके अनुसार कुटीर को जो कोई ऋण देगा, उसपर उसे ५) प्रतिशत वार्षिक के हिसाब से सूद मिलगा और खादी बाजार दर से कुछ सस्ती मिलेगी परन्तु वे सज्जन जो विना व्याज लिये ही रुपयों का ऋण देंगे, उन्हें खादी लागत मूल्य पर निजके उपयोग के लिये मिला करेगी। और उनके रुपयों का सूद शिक्षा प्रचार में लगाया जायगा। ऋण की रकम १ मास की नोटिस पर जब चाहेंगे वापिस मिल सकेगी।

मंत्री, **मदन खादी कुटीर**

कैसे करना चाहिए

इस पत्र में श्रीयुत शंकरराव देव द्वारा स्थापित पश्चिम खानदेश जिला मंडल का उल्लेख हो चुका है। इस मंडल के कार्य का मुख्य उद्देश्य है, गांवों की पुनर्रचना करनी और मंडल को इसका पूरा विश्वास हो चुका है कि अगर पुनर्रचना के काम को जन-समूह के दिलों में भी घर करना है, और उन्हें लाभ पहुँचाना है तो उसके केन्द्र में चर्खा ही होना चाहिए। मंडल का काम जितना पक्का हो सका है, बनाया गया है। श्रीयुत एस. वी. ठक्कर किसी गांव में जम कर काम करने के लिए बैठने के पहले कुछ दिनों तक शिक्षा लेते रहे हैं। ऐसे काम के केन्द्रों के गांवों में वे श्रीयुत बालूभाई मेहता के साथ घूमते रहे हैं। मंडल के समापति के पास उन्होंने जो संक्षिप्त रिपोर्ट भेजी है, वह पढने लायक है मैं उसके मुख्य अंश, यही काम करनेवालों के लाभ के लिए नीचे दे रहा हूँ:

"नीचे मैं १ली अप्रिल १९२७ से अपने दूसरे साल के किये काम की रिपोर्ट देता हूँ।

"परन्तु उसके पहले पूज्य गांधीजी के साथ मंडल के सदस्यों की बातचीत का सारांश देता हूँ क्योंकि उसी बातचीत के आधार पर मंडल के काम की दिशा निश्चित हुई, और मुझे आप भी उससे बहुत ही उत्तेजन मिला था। तथा मंडल का सरोकार अ. भा. चर्खा-संघ से हुआ।

"गांधीजी की सलाह से मुझे अपना यह साल ओटाई, धुनाई, कताई, बुनाई वगैरह के कामों की शिक्षा, खादी उत्पत्ति के केन्द्रों में घूमने, ग्राम संगठन की शिक्षा, और अपने भविष्य कार्य के लिए कोई गांव चुनने के काम में बिताना था।

"खादी-उत्पत्ति के केन्द्रों में घूमना तो वर्ष प्रारंभ होने के पहले ही शुरू हो गया था और वह भी स्वयं गांधीजी की देख रेख के नीचे। मार्च १९२६ में गांधीजी ने मुझे तथा मेरी पत्नी को,

बारडोली के आसपास रानीपरज लोगों के बीच अपने साथ ले जाने की मुझपर बडी कृपा की थी। खानपुर की रानीपरज परिषद में भी हम गये थे। वह परिषद भी अपने ढंग की अनोखी ही थी। इस थोडे से भ्रमण से हमारे दिल पर बडी ही गहरी और चिर स्थायी छाप पडी कि खद्दर के सहारे हिन्दुस्तान के दलित जन-समूह की आर्थिक, नैतिक, धार्मिक तथा समाजिक स्थिति सुधारी जा सकती है।

"ऊपर लिख आया हूँ कि दूसरा साल १ अप्रिल १९२७ से शुरू हुआ था। इस साल का पहला पखवारा तो दुर्भाग्य से घरेलू विपत्तियों में बीता। औद्योगिक शिक्षा का स्थान सत्याग्रहाश्रम वर्धा चुना गया। वहां पर श्रीयुत विनोबा भावे के अधीन मैंने अपनी पत्नी के साथ १९ अप्रिल १९२७ से ले कर १९ अगस्त १९२८ तक शिक्षा पायी। इस बीच केवल १५ दिनों का यानी २१ मई से ४ जून तक का व्याघात पडा था। ताना तानने, मांडी लगाने और बुनने के पहले की सभी क्रियाएँ हमने सीखीं। इस शिक्षा से मुझे प्रत्यक्ष लाभ तो यह हुआ है कि चर्खा कला का मुझे ज्ञान मिला है और अप्रत्यक्ष यह कि भारतवर्ष के वस्त्र-स्वावलंबन में विश्वास हुआ है। यह अप्रत्यक्ष लाभ होने पर भी मेरे जैसे प्रचारक और ग्राम-संगठन कर्त्ता के लिए अधिक कीमती है। प्राथमिक शिक्षण समाप्त होने पर श्रीयुत विनोबा भावे ने हमें चन्दा जिले का सावलि केन्द्र देख आने की सलाह दी और उसे हम देख भी आये।

"हमारे वर्धा से लौटने के बाद तुरत ही श्रीयुत सेठ जमनालाल बजाज धुलिया में आ गये। इस अवसर से लाभ उठा कर हमने उनके साथ मंडल के ग्राम-संगठन कार्य की योजना के बारे में बातें कीं और सारे भारतवर्ष में खादी-केन्द्र तथा ग्राम-संगठन का काम देखने के बारे में सलाह की। उन्होंने इस भ्रमण का कार्यक्रम तैयार कर दिया और बहुत सी संस्थाओं के संचालकों के नाम परिचय-पत्र भी लिख दिया।

"इस भ्रमण में १६ सितंबर १९२७ से २० जनवरी १९२८ तक चार महीने लगे। इस भ्रमण में हमें कर्णाटक, तामिलनाड, आन्ध्र, उडिस्सा, बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रान्त, राजपुताना, तथा गुजरात में घूमना पडा। भ्रमण की दिनचर्या तथा जहां जिस आश्रम, संस्था, केन्द्र, आदि को देख कर जैसी छाप पडा, उस पर संक्षिप्त नोट लिख कर दे चुका हूँ। यह भी सौभाग्य की बात है कि यह काम जो कि महात्माजी के शुभाशीर्वाद से शुरु हुआ था उन्हींका शुभाशीर्वाद लेकर गत १५-१८ जनवरा के बीच सत्याग्रहाश्रम में समाप्त हुआ। गांधीजी को यह देख कर बडा आनंद हुआ था कि इस खादी की सर्वसाधिनी और उपकारिनी शक्ति की बहुत ही गहरी अमिट छाप पडी है। हमें इसका पूरा विश्वास हो गया है कि प्रकार के ग्राम-संगठन की नींव खादी पर ही होनी चहिए।

"यहां यह भी कहना चाहिए कि इस भ्रमण में ताना मांडी लगानी, खादी बुनना इत्यादि भी सीखने की कोशिश के निकट हेमनिवास बुनाईशाला में की गयी थी।

"इस भ्रमण से लौटने पर मेरे सिर पर जो काम और दायित्व स्वाभाविक ही आये, और अब भी हैं, वे हैं किसी को चुन लेने के, जहां पर मैं अपनी सारी शक्ति लगा दूँ। गांव का काम अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इस लिए अत्यन्त सावधानी जरूरत है। खैर, कोई उपयुक्त केन्द्र शीघ्र ही चुन लिया और आगामी १ ली चैत के दिन से या रामनवमी के दिन से ठिकाने से काम शुरू हो जायगा। इसी मंगल दिवस को कहा कि मेरी विनीत सेवाओं का तीसरा साल शुरू होता है।"

(यं० इ०) मोहनदास करमचंद गांधी

अखिल भारतीय गोरक्षा-मण्डल

चन्दा और दान

पहले स्वीकार किया गया		रु. ६५१०
बहिन लीलावती की स्मृति में	बंबई	१५
ए. वेदराम ऐयर	मदुरा	१००
एक दोस्त		१०
पंडित वासुदेव नारायण सिंह	महासापुर	३९
भोलाराम झवेरमल	धुलिआ	६०
जे. के. परिख		१
जे. के. बक्सी		२
प्रसादीलाल शर्मा	बनारस	५
जुपिटर लूम मिल के कर्मचारी	अहमदाबाद	८०
मोतीलाल किसनदास शेठ	चोपडा	११
हरखचंद मोतीचंद	चोरवाड	५
बेनीमाधव राय	अहलोन	२०
	कुल रु.	६८५८

खादी की उत्पत्ति और बिक्री का ब्यौरा

प्रान्त	रु.	उत्पत्ति जनवरी '२८	उत्पत्ति जनवरी '२७	उत्पत्ति दिसम्बर '२७	बिक्री जनवरी '२८	बिक्री जनवरी '२७	बिक्री दिसम्बर '२७
अजमेर	,,	४,६७२	७,२६३	५,०४५	५,२७०	८,६७५	३,९८[illegible]
आन्ध्र	,,	१५,१९६	१३,१३४	२,७०३७	३२,७५९	३८,२४७	३४,१५[illegible]
*बिहार	,,	१८,९६९	११,०३८	२०,०९२	२०,३९३	४६,३३७	२३,२४[illegible]
बंगाल	,,	१४,९२३	२०,५३६	१८,४३२	३१,६८८	३५,३६१	४५,१५[illegible]
बम्बई	,,	. .	. .	. .	३४,९६८	११,९१४	२०,६८[illegible]
ब्रह्मा	,,	. .	. .	. .	२,७७५	२,१८९	२,१८[illegible]
दिल्ली	,,	२,३७४	९३१	१,४३७	२,३९७	१,४२१	२,३२[illegible]
गुजरात	,,	+	४,०८६	४,११६	+	५,९४५	५,१०[illegible]
केरल	,,	१,६७९	८६४	२,७५२	३,९८४	२,८९२	३,६७[illegible]
कर्णाटक	,,	४,९४९	२,७३१	४,२८७	७,४८०	८,२९५	७,९६[illegible]
महाराष्ट्र	,,	३,०३८	९१३	३,२१५	१३,७०२	१४,३३०	१७,५८[illegible]
पंजाब	,,	८,११८	७,१९१	६,२६१	८,७८४	१०,७८५	९,८०[illegible]
तामिलनाड	,,	८७,९९३	६१,३४०	९८,८५३	७६,२६५	७५,८८६	८६,००[illegible]
*युक्त प्रान्त	,,	३,९७४	५,५२६	१,८६०	८,९७०	११,८७६	१४,९९[illegible]
उत्कल	,,	१,४८८	२,३७३	३,३१५	९,३२९	३,१०८	५,४३[illegible]
कुल रु.		१,७०,०७३	१,३७,९२६	२,०२,७०२	२,५७,७६४	२,७७,२६१	२,८९,५१[illegible]

*अधूरे आंकडे. + अंक नहीं मिले हैं

विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

र्ष ७] [अंक ३१

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, चैत्र सुदी १ संवत् १९८४ गुरुवार, २२ मार्च १९२८ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ४४

वकालत के कितने एक स्मरण

इसका वर्णन कि हिन्दुस्तान में लौटने के पहले मेरे जीवन की नौका किस प्रकार चली थी, मैंने जान बूझ कर छोड दिया था। किन्तु उसके कितने भागों में से थोडा देने की जरूरत अब जान पडती है। कितने वकील मित्रों ने उस समय के वकालत के स्मरण देने का अनुरोध किया है। ये स्मरण इतने अधिक हैं कि अगर उन्हें देने बैठूं तो उन्हींसे एक पुस्तक भर जाय। ऐसे वर्णन मेरी निश्चित की हुई मर्यादा के बाहर जाते हैं। किन्तु कई एक को जो सत्य को लागू हैं, देना शायद अनुचित नहीं गिना जायगा।

मुझे जैसा याद है, मैं बतला चुका हूँ कि वकालत के धंधे में मैंने कभी असत्य का प्रयोग नहीं किया है। और वकालत का अधिकांश तो सेवार्थ ही अर्पित था और उसके लिए जेब खर्च अधिक मैं कुछ नहीं लेता था; कितनी बार तो उससे भी बाज आता था। मैंने मान लिया है कि इतनी प्रतिज्ञा इस विभाग के लिए काफी होगी। किन्तु मित्रों की माँग उससे भी आगे जाती है। उनका खयाल है कि मैं अगर सत्य-पालन के प्रसंगों का थोडा सा भी वर्णन दूं तो उससे वकीलों को जानने की कुछ बातें मिल जायँगी।

विद्यार्थी जीवन में भी मैं सुना, करता था कि वकालत में झूठ बोले बिना नहीं चलता। मुझे तो झूठ बोल कर न पद लेना था, न धन कमाना था। इसलिए मुझपर इन बातों का कोई असर नहीं पडता था।

दक्षिण अफ्रिका में तो इसकी कसौटी अनेकों बार हुई। मैं जानता था कि विरोधी पक्ष के गवाहों को सिखा पढा कर तैयार कराया गया है, और मैं अपने मुवक्किल को झूठ बोलने में जरा भी उत्तेजन दूं तो वह मुकद्दमा जीत जायगा। पर मैंने इस लालच को हमेशे ही जीता है। ऐसा प्रसंग मुझे एक ही याद है, जब कि मुकद्दमा जीतने के बाद मुझे शक हुआ कि मुवक्किल ने मुझे ठगा है। मेरे अंतर में बराबर यही इच्छा रहती थी कि अगर मुवक्किल का मुकद्दमा सच हो तो वह जीते, नहीं तो हार जाय। फीस लेने में मुझे यह कभी नहीं याद आता है कि मैंने मुआमले की हार जीत पर फीस की दर मुकर्रर की हो। मुवक्किल हारे या जीते, मैं तो हमेशे मिहनताना ही माँगता और जीत होने पर भी उसीकी आशा रखता था। मुवक्किल को पहले ही कह देता था कि, "झूठा मुकद्दमा हो तो मेरे पास मत आना। गवाह पढाने के काम की आशा मुझसे मत रखना।" अन्त [illegible] साख तो ऐसी बँधी कि झूठे मुकद्दमे मेरे पास आते ही नहीं थे। मेरे ऐसे मुवक्किल भी थे जो सच्चा मुकद्दमा हो तो मेरे यहाँ लाते और जरा भी मैला हो तो दूसरे वकील के पास जाते थे।

एक प्रसंग ऐसा आया कि मेरी बडी सख्त परीक्षा हुई। मेरे एक अच्छे से अच्छे मुवक्किल का मुकद्दमा था। उसमें हिसाब किताब का बडा झमेला था। मुआमला बहुत दिनों तक चला था। कितने ही अदालतों में उसके कुछ हिस्से गये। अंत में अदालत ने हिसाब किताब जाननेवाला पंच चुन कर उसका हिसाब का भाग उसे सौंपा। पंच के फैसले से मेरे मुवक्किल की पूरी जीत थी। पर उसके हिसाब में एक नन्हीं सी किन्तु गंभीर भूल भी रह गयी थी। जमा उधार की रकम पंच की भूल से उलटी लिख ली गयी थी। विरोधी पक्ष ने वह फैसला तोडने की अर्जी दी। अपनी और से मैं छोटा वकील था। बडे वकील ने पंच की भूल देखी थी। पर उनका मत था कि पंच की भूल कबूल करने को हमारा पक्ष लाचार नहीं है। उनकी खुलासा राय थी कि विरुद्ध पक्ष की कोई बात कबूल करने को कोई वकील बँधा हुआ नहीं है। मैंने कहा, "इस मुकद्दमे में रही हुई भूल कबूल करनी ही चाहिए।"

बडे वकील ने कहा "अगर यह हो तो डर है कि अदालत सारा फैसला रद कर देवे और कोई होशियार वकील अपने मुवक्किल को ऐसे जोखिम में नहीं डालेगा। मैं तो यह जोखिम उठाने को कभी तैयार नहीं होऊँगा। फिर से मुकद्दमा उखडे तो कौन कह सकता है कि मुवक्किल को कितना खर्च करना पडेगा और आखिर नतीजा भी क्या होगा?"

इस संवाद के समय मुवक्किल हाजिर था।

मैंने कहा, "मुझे तो लगता है कि मुवक्किल को और हमें, दोनों को यह जोखिम उठाना ही चाहिए। इसीका क्या भरोसा कि हमारी कबूलियत के बिना भी अदालत उस भूल भरे ठहराव को जान बूझ कर, बहाल रक्खेगी और भूल सुधारने जाने में अगर मुवक्किल को नुकसान ही उठाना पडे तो क्या हरकत?"

बडे वकील बोले, "किन्तु हम भूल कबूल ही क्यों करें?"

मैंने जवाब दिया, "इसीका क्या विश्वास कि हमारे भूल कबूल न करने पर भी अदालत उसे नहीं पकडेगी या विरोधी पक्ष उसे ढूँढ नहीं लेगा।"

बडे वकील दृढतापूर्वक बोले, "तब इस मुकद्दमे में आप बहस करेंगे? भूल कबूल करने की शर्त पर मैं उसमें हाजिर होने को तैयार नहीं हूँ।"

मैंने नम्रता पूर्वक कहा, "अगर आप खडे ही न होवें, और मुवक्किल भी चाहे तो मैं खडा होने को तैयार हूँ। अगर भूल कबूल न करें तो मुझसे इस मुआमले में काम करना नहीं पार लगेगा।"

इतना कह कर मैं मुवक्किल की ओर मुखातिब हुआ। वह घबराया। मुकद्दमे में मैं तो शुरू से ही था। मुवक्किल का विश्वास भी मुझ पर भरपूर था। मेरे स्वभाव से वह बखूब वाकिफ था। उसने कहा, "तब ठीक है। आप ही अदालत में खडे हूजिएगा। भूल कबूल कीजिएगा। जो नसीब में हारना होगा तो हार जाएँगे। सच्चे का बेली परमात्मा तो है न?"

मैं खुश हुआ। मैंने दूसरे जवाब की आशा ही नहीं रक्खी थी। बडे वकील ने मुझे फिर से चेताया, मेरे 'हठ' के लिए मुझपर तरस खाया और धन्यवाद भी दिया।

अदालत में जो हुआ, वह तो बाद में दूँगा।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

खादी का अर्थशास्त्र

३

आर्थिक अवस्था को सुधारने के उपाय

(२)

तब क्या किसी किस्म के उद्योगों का संगठन संभव है जिनमें ये मुश्किलें किसी कदर हल हो सकें? मैं कहता हूँ कि संभव है और गृह-उद्योगों को बढाने से यह हो सकता है। हमारे जनसमूहों की मुश्किलों को ध्यान में रखने से जान पडेगा कि वे तभी सफल हो सकते हैं, जब कि वे किसानों की फुरसत के समय में किये जा सकें। यह हिसाब जोडा गया है कि साल में ५ महीने से अधिक का काम हिन्दुस्तान के किसानों को नहीं रहता। यानी खेती से उन्हें ७ महीने की फुरसत रहती है। मगर ये फुरसत के महीने कुछ लगातार नहीं होते बल्कि आज काम रहता है तो कल्ह नहीं, फिर परसों काम है तो दो दिन बेकारी है यानी साल भर में उनकी बेकारी का समय बँटा रहता है। साथ ही साथ उनके काम के दिन भी साल भर तक फैले रहते हैं। इस लिए अगर शहरों में लाखों आदमियों को काम मिल भी सके, तौभी किसान तो घर छोड कर बाहर नहीं जा सकते। अब इस बेकार समय का उपयोग तभी हो सकता है जब उन्हें कोई ऐसा धंधा दिया जाय, जो बिना हानि उठाये वे जब चाहें शुरू कर सकें और जब चाहें मुल्तवी रख सकें। यानी खेती के दो कामों के बीच की मुहलत में भी वह किया जा सके। कताई का काम हूबहू इसी किस्म का धंधा है। यह स्त्रियों के लिए और भी मौजूँ है क्योंकि उन्हें मर्दों से कम काम रहता है, यानी ज्यादह फुरसत रहती है और कहीं आना जाना भी मर्दों की बनिस्बत उनके लिए अधिक मुश्किल होता है। और तरह के भी गृह-उद्योग या घरेलू धंधे हो सकते हैं जिनसे फुरसत का उपयोग होवे मगर कताई का काम जितने लोग कर सकते हैं, उतने लोग और कोई दूसरा धंधा नहीं कर सकते। कारण स्पष्ट है। फुरसत की घडियों का उपयोग तो वैसी ही चीजें तैयार करने में हो सकता है, जिनकी जरूरत लाखों, करोडों को हो। यह देखते हुए कि करोडों आदमियों को काम चाहिए, उन्हें ऐसी कोई वस्तु बनाने को नहीं कहा जा सकता कि जिसकी बहुत माँग न होवे। पटने (विहार) के सरकारी गृह-उद्योग शाला में खिलौने बनाना सिखलाया जाता है, और सुंदर खिलौने बनाये भी जाते हैं। मगर हमें खिलौनों की उतनी जरूरत तो नहीं है, जितनी कि कपडों की। बेशक, हम हिन्दुस्तानी लोग कौडी काम के खिलौनों पर रीझा करते हैं किन्तु हम भी तो कपडों के जितने ही खिलौने खरीदने की लडकपन नहीं करेंगे।

इसी तरह मधु-मक्खियां पालने, चिडिया पालने, रेशम के कीडे पालने, मोजे बुनने, बागबानी वगैरह से भी थोडे ही लोगों को काम मिलेगा। कताई के मूल में दो अकाट्य बातें हैं। पहले तो यह एक ऐसी वस्तु तैयार करती है जिसकी माँग सर्वत्र है बल्कि जिसकी माँग अगर किसी से कम है तो फकत आहार से कम है। यानी यह जीवन की एक जरूरियात पूरी करती है। दूसरे यह काम ऐसे समय में किया जाता है जब कि दूसरा काम नहीं होता, यानी जो समय बेकार जाता, उसीको यह कीमती बना देता है। इस भांति हम और उद्योगों के प्रचार का विरोध नहीं करते हैं, मगर साथ ही यह दावा भी करते हैं कि और कोई धंधा नहीं है जिसे लाखों, करोडों बेकार स्त्री-पुरुष कर सकें। अगर और कोई धन्धे हों तो उनका खूब प्रचार किया जाय, फुरसत के समय में स्त्री-पुरुष उन्हें खुशी से करें। अगर किसी काम में कताई से अधिक आमदनी हो, तो लोग भले ही, कताई को छोड कर उसे करें। जो सवा आना रोज पैदा कर सके, वह भले ही न काते क्योंकि कताई से एक ही आने रोज की प्राप्ति हो सकती है। मगर हम दावे के साथ कहते हैं कि कताई के सिवाय और कोई धन्धा नहीं है, जिससे आप करोडों आदमियों को रोज एक आना भी दे सकें।

४

कुछ शंकाओं का समाधान

कताई के विरुद्ध प्रायः ये उज्र पेश किये जाते हैः-(१) यह सफल नहीं होगा क्योंकि इससे बहुत ही कम आमदनी होती है; (२) खद्दर का दाम बहुत लगता है और क्यों कोई बाजार में सस्ता माल छोड कर महँगा खद्दर खरीदे; (३) अगर हमारा उद्देश्य है विदेशी कपडा मँगाने से विदेशों में जानेवाले धन की रक्षा करने का तो मिलें खडी करके क्यों न यह काम किया जाय? और (४) केवल हाथ कताई से हमारी कपडे की जरूरियात नहीं पूरी की जा सकती।

(१) मैं इन शंकाओं का जवाब एक एक करके दूँगा। पहले अखीरी शंका से ही शुरू करता हूँ। यह नहीं भूलना चाहिए कि कुछ ही दिन पहले हिन्दुस्तान न केवल अपना ही तन ढाँक सकता था, बल्कि विदेशों में भी बहुत सा खद्दर भेज सकता था और वह भी केवल चर्खे के बल पर आज भी यह तो सभी कबूल करते हैं कि हाथ कर्घों पर हिन्दुस्तान की जरूरत का एक तिहाई कपडा बनता है। मगर दर असल कपडा बनता इससे अधिक है। हिसाब तो केवल मिल के उस सूत का ही जोडा जाता है जो मिलों में खर्च नहीं होता और वह हाथ कर्घे के नाम लिखा जाता है। मगर चर्खा-संघ के प्रयत्नों के अलावा भी तो इस देश में स्वतंत्र रूप से हाथ कताई बहुत जगहों में चली आ रही है। उसका भी हिसाब अगर मिल सके तो जाहिर होगा कि हमारी जरूरत का $\frac{1}{3}$ से अधिक कपडा हाथ कर्घों पर बनता है। अर्थात् खद्दर की इस जाहो जलालत के जमाने में भी हाथ कर्घा न सिर्फ अपनी हस्ती बचाये ही हुए है बल्कि सभी देशी मिलें मिल कर जितना कपडा

बनाती हैं, उतना हाथ कर्घों पर ही बनता है। कताई के उरूज के जमाने में विदेशों में भेजे जानेवाले कपडों के आंकडे हर एक प्रामाणिक ग्रंथ में मिल सकते हैं। इस लिए यह मान लेना अत्युक्ति नहीं होगी कि इस देश में इतने काफी मर्द और औरतें हैं जो हम सभी का तन ढांक सकती हैं। मगर मैं तो एक इससे भी सहज जाँच देता हूँ — और वह किताबी प्रमाणों या तर्क के नतीजों से कहीं अधिक प्रामाणिक होगी — यानी व्यक्तिगत अनुभव की जाँच। मैं एक घंटे में कोई ३०० गज सूत कात सकता हूँ, बल्कि कात लेता हूँ। अगर मैं रोज एक घंटा काता करूँ तो महीने में ३०० × ३० गज = ९,००० गज सूत कात लूँगा। १० या १२ अंक के सूत का एक वर्ग गज कपडा बुनने में १००० गज से कम अथवा कोई २,५०० गज सूत लगता है। इस भांति एक महीने में मैं ३$\frac{3}{5}$ गज अथवा एक वर्ष में कोई ४३ गज कपडा बुनने लायक सूत कात लूँगा। अगर हम अब यह देखें कि हमारे यहां एक साल में कुल कितना कपडा लगता है और उसे कुल कितने आदमी पहनते हैं तो जान पडेगा कि एक आदमी के कपडे के सालाना खर्च का औसत ११ गज से अधिक का नहीं पडता है। इस हिसाब से तो एक साल में मैं चार आदमियों को कपडा पहना दूँगा और यह भी याद रहे कि न तो मैं कोई बहुत निपुण और न बहुत तेज कतवैया हूँ। तब यह समझना कठिन नहीं है कि ५ आदमियों के परिवार में अगर एक औरत रोज दो तीन घंटे काता करे तो सारे परिवार को वह कपडा पहना सकती है। दर असल इस तरह के प्रयोग किये भी जा रहे हैं। गुजरात, काठियावाड और राजपूताने के कुछ भागों में ऐसे प्रयोग हो रहे हैं। गुजरात के एक ताल्लुके के ५०४ कतवैयों ने जो कि किसान होने के कारण केवल फुरसत में ही कात सकते थे, कुल २,७३६ पाउण्ड सूत काता जिससे ६,९०५ वर्ग गज कपडा बना यानी फी आदमी १३$\frac{1}{2}$ वर्ग गज का औसत पडा। और हमारे यहां कपडे के खर्च का औसत सिर्फ ११ गज ही है। काठियावाड के एक दूसरे केन्द्र में १,६८६ कतवैयों ने कुल ५२,३२१ गज कपडा तैयार किया। उनके यहां फी आदमी ३० गज से भी अधिक का औसत पडा। राजपूताने में एक जगह, जिसकी आबादी कुल ११,००० की है, ७८,००० गज खादी तैयार हुई जिससे वहां के कोई दो तिहाई लोगों की कपडे की जरूरत पूरी हुई। यह सब यहां केवल यह दिखलाने के लिए दिया है कि कपडों के मुआमले में स्वयं-संपूर्णता का विचार करना हवाई किले बनाना नहीं है बल्कि यह थोडे प्रयत्न से संभव हो सकता है।

हम जानते हैं कि बिरले ही घरों में ऐसी औरतें होंगी जो रोज दो तीन घंटे समय नहीं निकाल सकतीं। जरूरत है केवल समय की कीमत समझने की, जो समय बेकार की गप्पों में बीतता है, उसका उपयोग करने की। मगर साथ ही यह भी कहना अच्छा होगा कि चर्खा चलने के साथ साथ जीभ की कतरनी भी चल सकती है।

(२) फिर यह कहा जाता है कि हमें मिलें खडी करके यहां के वस्त्र-प्रश्न को हल करना चाहिए। पहले मैं सामान्य तौर पर ऐसे उपाय की कठिनाइयां दिखा आया हूँ। यहां कुछ और विस्तार के साथ इस पर विचार करूँगा। हम पहले यही मान लेते हैं कि खादी आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य, और दूसरे आर्थिक आन्दोलनों के समान, महज बेकारों को काम देना, या जिन्हें कम आमदनी होवे, उन्हें अधिक आमदनी का काम देना भर ही है, मगर यह भूल जाते हैं कि मुट्ठीभर लोगों को हमें काम देना नहीं है, बल्कि करोडों बेकारों का मसला हमारे सामने पेश है। अगर हम यह बात समझ लेंगे तो सहज ही जान सकेंगे कि मिलें खोलने से हमारा प्रश्न हल नहीं होगा, बल्कि संभवतः वे कठिनाइयां और भी बढा देंगी। हम जानते हैं कि आज हिन्दुस्तान के कपडे का एक तिहाई अंश पूरा करने के लिए सभी मिलें मिल कर कुल ३$\frac{1}{4}$ लाख मर्द, औरत और बच्चों को काम देती हैं। इनमें कातने और बुननेवाले सभी शामिल हैं। दूसरी ओर सिर्फ हाथ बुनाई में ही २० लाख आदमियों को काम मिलता है। अब हम सहज ही समझ सकेंगे कि अगर केवल मौका भर मिल सके तो बहुत ही अधिक लोगों को बजरिये कताई के रोजी मिलेगी। यह भी हिसाब जोडा गया है कि मिलों की सूत कातनेवाली कलें चलानेवाला एक आदमी २१६ से २४६ चर्खे चलानेवालों के बराबर काम करता है, यानी उनको बेकार करता है। कल के कर्घे को भी चलानेवाला कमसे कम ८ आदमियों की रोजी मारता है। इस लिए यह स्पष्ट है कि हमारा प्रश्न इस तरीके हल नहीं हो सकता।

मगर इसके अलावा भी तो यह व्यवहारिक प्रस्ताव नहीं है। इतनी मिलें खडी करने के लिए इतनी पूँजी लगेगी कि इस प्रस्ताव को अव्यावहारिक कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। हमारी एक तिहाई जरूरत पूरी करने के लिए मिलें खडी करने में कोई ७० वर्ष लग गये हैं। यह हिसाब भी जोडा गया है कि एक कलकर्घे में उसके सभी आवश्यक सामान, कलचर्खे को भी मिला कर, कुल ५,४५०) रु. लगते हैं। और हमें जरूरत है आज जितने कलकर्घे हैं उतने और की। आज १,५४,००० कलकर्घे चलते हैं। इस लिए बकिया एक तिहाई कपडा जो विदेशों से आता है, उसे पूरा करने के लिए इतने ही कलकर्घे और चाहिए। जो कि बहुत साल तक के लिए असंभव बात जान पडती है, अगर वह भी संभव हो जाय यानी हम पूँजी जमा कर भी सकें, तोभी बहुत धन तो विदेशों में कल पुर्जों के दाम के रूप में भेजना ही पडेगा। फिर कलें बनानेवाले कारखानों की शक्ति भी तो परिमित है। और वे कई सालों का बाजार देख कर निश्चित करते हैं कि हमें इस साल कितनी कलें बनानी चाहिए। वे अचानक हमें बहुत कलें नहीं दे सकते। इस लिए केवल जरूरी कलें ही लाने में हमें वर्षों लग जायँगे।

फिर आखिर इतनी पूँजी विदेशों में लगाने का मतलब क्या है? पिछले १२ वर्षों में हमने कोई ४२ करोड की कलें कपडे की मिलों के लिए मँगायी हैं। हमें विदेश से कलें मँगाने में उनका दाम देना पडता है। फिर उन्हें चलाने के लिए सालों साल, मरम्मत, दुरुस्ती वगैरह करने के लिए भी विदेशों में रुपया भेजना पडता है। इसके अलावा अमूमन २०, २५ साल तक ही कोई कल काम देती है, यानी हर पचीसवें साल नयी कल मँगानी पडती है। इतना ही भर नहीं, बल्कि रोज ही कुछ न कुछ नयी तरक्की होती जाती है, फल यह होता है कि आज की खरीदी कल ४, ५ वर्षों में पुरानी गिनी जाने लग जाती है। और उधर विदेशी मिलों की बराबरी करने के लिए नयी से नयी कलोंवाली देशी मिल को हर घडी कुछ न कुछ पुराना पुर्जा बदलते ही रहना पडता है। अब इन कलों को खरीदने के पहले हमें समझ लेना चाहिए कि हम अपने धन का विदेशों में जाना जो रोकना चाहते थे, वह नहीं रुकता है; दूसरे रूप में विदेशों को धन जाता ही है।

दूसरी ओर चर्खे के लिए नाममात्र की पूँजी चाहिए। जो चाहिए, वह भी इतने जगह में इतने लोगों में बँटी हुई है, फैली हुई है कि उसे हम न कुछ ही कह सकते हैं। चूँके खुद चर्खा ही महँगी कल नहीं है, इस लिए उसके पुर्जों या हिस्सों के लिए न बडी पूँजी चाहिए और न विदेशों में धन ही भेजना पडता है।

इस भांति पूँजी का रास्ता देखे बिना, वर्षों तक कलों की प्रतीक्षा किये बिना ही सारे देश में यथेष्ट संख्या में चर्खे फिर से चलाये जा सकते हैं। सारे देश में इतने बढई हैं कि वे बात की बात में जरूरत लायक चर्खे बना कर तैयार कर दे सकते हैं और लुहारों को भी तकुवे तैयार करने में कोई मुश्किल नहीं होगी। यों, कताई के शुरू होने के साथ ही साथ कितने और दूसरे धंधे भी फिर से जी उठते हैं। हमारा थोडा सा अनुभव भी यही बतलाता है, मगर उसपर फिर पीछे लिखूँगा। (क्रमशः)

('खादी का अर्थशास्त्र' नामक अँगरेजी किताब में से।)

राजेन्द्रप्रसाद

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, चैत्र सुदी १ संवत् १९८४

विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार–कुछ सवालात

एक मित्र, जिनका मिलों से गहरा संबंध है और जो विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार आन्दोलन में हमारी मिलों को अपना हिस्सा पूरा करते देखने को उत्सुक हैं, पूछते हैं कि:—

१. "आप किस आधार पर एक तरह के माल का एक निर्ख रखना चाहते हैं? क्योंकि याद रखिए कि सभी मिलें एक सरीखी नहीं हैं; कुछ अच्छी हैं और कुछ बुरी; कुछ अधिक मांडी लगाती हैं कुछ कम; कुछ का संचित कोष बडा है, कुछ का कम; बंबई की मिलों को और जगहों की मिलों से कम नफा होता है। ऐसे और भी बहुत से अंतर दिखलाये जा सकते हैं। ये तो केवल नमूने भर हैं।"

इसका एक सामान्य जवाब यह दिया जा सकता है कि 'जहां चाह है वहीं राह है।' मिलें अपने हिस्से का काम तभी पूरा कर सकेंगी, जब वे निष्कर्मण्यता छोड देवें, जी लगा कर खूब सोचें, और वह भी राष्ट्र के हानि लाभ की दृष्टि से, महज हिस्सेदारों, डायरेक्टरों या एजेन्टों की ही जेबें भरने की दृष्टि से नहीं, मगर इस बारे में अपना मत स्पष्ट करने के लिए मैं कह सकता हूँ कि उन सभी मिलों को जो बहिष्कार आन्दोलन में शामिल हों, सारा फर्क हटा कर एक समान कीमत ठीक करनी होगी यानी उनके मौजूदा नफे का एक बहुत बडा हिस्सा जाता रहेगा। अगर उनकी देशभक्ति सच्ची और वृद्धिशील हो तो शान से चलनेवाली मिलें, घटी उठानेवाली मिलों को सँभाल लेंगी, और जो फर्क परिहार्य होगा, उसे छोड दिया जायगा। मेरी दृष्टि में जो योजना है, उसके अनुसार तो अंत में मिलों को कुल मिला कर हानि होनी ही नहीं चाहिए और न खरीदारों के मत्थे उन्हें नफा उठाना चाहिए।

२. "खादी न बनाने का निश्चय तो इनी गिनी ही मिलें करेंगी, मगर उनका क्या होगा जो केवल मोटा ही सूत कातती हैं? खादी की आपकी जांच क्या है?"

यह तो खादी संस्थाओं और मिलों के बीच सामान्य ईमान्दारी और व्यवस्था का सवाल है। हाल में तो मुझे कहते खेद होता है कि कुछ अच्छी मिलें भी अपने कपडों पर खादी की छाप मारने में शर्माती नहीं हैं जिसमें कि वे गांवों में खादी के वृद्धिशील वातावरण का नाजायज लाभ उठा सकें। अगर कोई व्यावहारिक व्यवस्था बन सकी तो मुझे आशा है कि कम से कम हाल के लिए तो यह निश्चित हो जायगा कि केवल फलां कपडे मिलें बनावेंगी और फलां खादीवाले। लडाई के जमाने में कपडे की तैयारी पर जो अंकुश रहता है, वही इस समय रक्खा जायगा। हिंसा के आधार पर होनेवाली लडाई में जो कुछ जब्रन कराया जाता है, वही इस लडाई में हम स्वेच्छा से करेंगे। स्वेच्छापूर्वक यानी महज लोकमत के दबाव से बहिष्कार इत्यादि कर लेने की हमारी योग्यता, इसमें अगर कुछ अहिंसा हो तो, उसकी बाहरी किन्तु लाजिमी जाँच होगी।

३. "नफे पर किस तरह अंकुश रक्खा जायगा? आप भी तो बखूबी जानते हैं कि रुई की कीमत की घटी बढी के कारण मिलों में दम आ जाया करता है।"

इसमें यह बात मान ली गयी है कि हम रुई के बाजार का नियंत्रण नहीं कर सकेंगे। निश्चय ही, अगर देश के बडे से बडे मिलमालिक इस राष्ट्रीय कार्य में एक हो जाएँ तो वे रुई के बाजार का नियंत्रण कर सकेंगे। अमेरिका हमारी रुई के बाजार पर राज करता है क्योंकि हम मूर्खता से, बिना विचारे, स्वार्थान्ध हो कर अपनी रुई भेज देते हैं। किन्तु बहिष्कार का तो अर्थ है रुई की रफ्तनी का नियंत्रण करना, जैसा कि अगर हमें संपूर्ण बहिष्कार सफल करना है तो, हम और कई चीजों का करेंगे। और अगर हमने सच्ची राष्ट्रीय भावना पैदा कर ली है और हमें अपने आप में और राष्ट्र में विश्वास है तो वह नियंत्रण-शक्ति प्राप्त होगी ही।

४. "अगर आप ईमान्दारी, अध्यवसाय, पारस्परिक विश्वास आदि पर बहुत जोर देंगे तो आपकी असफलता निश्चित है।"

चूंके मेरे पास तलवार नहीं है और न होने पर भी उससे काम लेना मैं चाहता, इसलिए, मुझे इन्हीं गुणों पर जोर देना पडेगा, जिनकी कीमत के बारे में इस मित्र को शंका है। मुझे ऐसी कोई शंका नहीं है। बल्कि मुझे तो इतना काफी है कि आज अगर वे गुण यथेष्ट नहीं मिलते तो उनके बढने तक मैं ठहरने को तैयार हूँ। क्योंकि यह राष्ट्र तब तक स्वतन्त्र नहीं होगा, तब तक कि हमारे सारे राष्ट्र में ये गुण नहीं आ जाते। मैं यह भी जानता हूँ कि पशुबल, धोखेबाजी इत्यादि के गुणों के शिक्षण में सत्य, अहिंसा और उनके रहस्य का अभ्यास करने की अपेक्षा कहीं अधिक समय लगेगा।

इसके बाद ये मित्र मेरा ध्यान खींचते हैं कि मेरे पिछले लेख में ये तीन बातें छूट गयी हैं:

(क) जो मिलें इस योजना में शामिल हों उन्हें विदेशी सूत या विलायती नकली रेशम का इस्तैमाल छोड देना होगा। आज बहुत सी मिलें उनका इस्तैमाल करती हैं।

(ख) वे विदेशी कंपनियों के यहां बीमा न करावेंगी।

(ग) वे विदेशी कपडा मँगा कर स्वदेशी नहीं कहेंगी।

मैंने तो मान लिया था कि (क) और (ग) पहले ही निश्चित हैं। अगर (ख) पर जोर देने से प्रस्तावित संयुक्त योजना को पूरा करने में कठिनाई हो तो मैं उसपर जोर नहीं दूंगा। मैं स्वदेशी बीमा कंपनियों का होना बहुत चाहता हूँ किन्तु मुझे विश्वास है कि जिस तरह विलायती कपडा हमारा रास्ता रोके हुए है, उस तरह और कोई चीज नहीं। अगर यह महाबाधा दूर हो गयी तो छोटी मोटी बाधाएँ हम चुटकी बजाते दूर कर लेंगे।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

बहिष्कार का शस्त्र

[बारडोली सत्याग्रह के संबंध में दो जगह सरकार की ओर से जब्ती करने के लिए आदमी गये और दोनों जगह जब्ती का स्वांग किया गया और जब्ती करनेवालों ने सरकारी कर के रुपये बकस खुलवा कर ले लिये। इसपर सारे ताल्लुके में हलचल मच गई। उनके साथ संबंध न रखने, उनके वहाँ माल न ले जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। एक ने तो अपनी भूल समझ ली, प्रकट रूप से माफी माँगी, और प्रयश्चित्त माँगा। पंचों ने ७५०) रु. प्रायश्चित्त के ठहराये। उस में ५१) मिलाकर इस धर्म युद्ध में उन्होंने ८०१) दे दिये और बाकी जमीन का कर न देने की प्रतिज्ञा की है। मगर दूसरे सज्जन भूल करने पर भी लाल आंखें दिखा रहे हैं।

उप० स० 'हि० न०']

सुना गया है कि जो लोग सरकार का कर चुकाना चाहते हैं, उनके विरुद्ध बारडोली के सत्याग्रही बहिष्कार का शस्त्र चलाना चाहते हैं। बहिष्कार का शस्त्र बहुत कडा है और मर्यादा के भीतर ही रह कर सत्याग्रही उसे काम में ला सकते हैं। बहिष्कार हिंसक और अहिंसक दोनों हो सकता है। सत्याग्रही तो केवल अहिंसक ही बहिष्कार कर सकता है। यहां तो मैं केवल दोनों बहिष्कारों के दृष्टान्त भर देना चाहता हूँ।

सेवा न लेनी तो है अहिंसक बहिष्कार किन्तु सेवा न देनी होगी हिंसक बहिष्कार।

बहिष्कृत के यहां खाने न जाना, उसके यहां विवाहादि प्रसंगों में न जाना, उसके साथ सरोकार न रखना, उसकी मदद न लेनी —वगैरह बातें अहिंसक त्याग हैं।

बहिष्कृत बीमार हो तो उसकी सेवा न करनी। उसके यहां डाक्टर को न जाने देना, उसके यहां मरण होवे तो मरण क्रिया में मदद न करनी, उसे कुँआ, मंदिर आदि का उपयोग न करने देना वगैरह हिंसक बहिष्कार हैं। गहरा विचार करने पर जान पडेगा कि अहिंसक बहिष्कार अधिक समय तक टिक सकता है, और उसे तोडने में बाहर की शक्ति काम नहीं कर सकती। हिंसक बहिष्कार अधिक दिनों नहीं चल सकता और उसे तोडने में बाहर की शक्ति का बहुत उपयोग हो सकता है। हिंसक बहिष्कार के अन्त में युद्ध की हानि ही होती है। ऐसे नुकसान के उदाहरण असहयोग के युग में से कितने ही दिये जा सकते हैं। पर इस प्रसंग पर मैंने जो भेद दिखलाया है, वही बारडोली के सत्याग्रहियों और सेवकों के लिये काफी होना चाहिए।

क्या यह सच हो सकता है?

नयी दिल्ली, आर्य समाज के सभापति लिखते हैं:

"शिमला की पहाडियों में बाघात रियासत है। इसके राजा पढे लिखे हिन्दू हैं। रियासत की राजधानी सोलन में है, जो अपनी स्वास्थ्य कर जलवायु के लिए मशहूर है। राज्य की आबादी कोई दश हजार की है। यहां मुख्यतः राजपूत, कानेत, ब्राह्मण ही ज्यादा हैं। दूसरी जातियां कोली, चमार वगैरह हैं जिन्हें नीच समझते हैं। चूंकि कोलियों का गुजर मुख्यतः खेती से होता है, मगर उन्हें बहुत सी सामाजिक कठिनाइयां झेलनी पडती हैं। थोडे में, वे ऊँची जाति के हिन्दुओं के गुलाम हैं। इन्हें अपने हिन्दू भाइयों के अमानुषिक व्यवहार से पीडित देख कर शिमला, आर्य-समाज ने, इनकी स्थिति ऊँची करने के लिए इन्हें अपनाया, और चूंकि वे वैश्य का कर्म, खेती, करते हैं, इन्हें यज्ञोपवीत दिया। यज्ञोपवीत लेने के बाद से इन्होंने मांसाहार, शराबखोरी जैसी बुरी आदतें छोड दी हैं और अछूत कहने पर बहुत बुरा मानते हैं। जान पडता है कि इससे ऊँची जाति के हिन्दुओं का पारा चढ गया, और उन्होंने यज्ञोपवीत लेने के इनके अधिकार का विरोध किया। फलतः गत ६ जनवरी १९२८ को इसका संक्षिप्त विचार स्वयं महाराजा साहेब ने किया और पुरानी रीतियों के बहाने १० कोलियों को ६ महीने कैद और ऊपर से दो दो सौ रुपये जुर्माने की सजा दे दी गयी। न तो इन अभागों को अपना बचाव करने का मौका दिया गया, और न वहां पर उपस्थित आर्य समाज के पंडित को ही इस मुआमले में आर्यसमाज का दृष्टि-कोण समझाने का अवसर दिया गया। अब खबर है कि यज्ञोपवीत उतारने के लिए जेल में उन पर जुल्म किया जा रहा है।"

ऊपर के पत्र में लिखी बातें मुझे तो अविश्वनीय सी जान पडती हैं। कोलियों को किसी तरह अछूत, या दलित या व्यथित जाति नहीं गिना जा सकता। अगर वे अपने खेत आप जोतते हैं तो वर्णों की परिभाषा के अनुसार उनका जन्म वैश्य वर्ण में गिना जायगा और उन्हें यज्ञोपवीत पहनने के सभी अधिकार प्राप्त हैं। मगर, मान भी लेवें कि उन्हें यज्ञोपवीत पहनने का धार्मिक अधिकार प्राप्त नहीं है, तोभी मैं यह सुनने को तो कभी तैयार नहीं था कि किसी रियासत में कानून के मुताबिक, जनेऊ पहनना गुनाह गिना जायगा। यह भी वैसा ही अकल्पनीय है कि जिन अभागे आदमियों ने सोचा कि हमारा कोई ऐसा धार्मिक संस्कार हो रहा है, जो चाहने लायक हो, या पुण्यकर्म हो, उनके अपना बचाव करने, अपने गवाह तक पेश करने के अधिकार जाते रहे। अगर सजा और न्याय के नाटक की बातें सच हों तो फिर मुझे यह जान कर कोई ताज्जुब नहीं होगा कि उनके शरीर पर से जनेऊ जबरन उतार लिये गये हैं। मैं आर्य समाज के सभापति को आमंत्रण देता हूँ कि बाघात रियासत के विरुद्ध आप अपने लगाये इल्जामों के समर्थन में और भी ब्योरे लिखें और अगर रियासत के अधिकारी चाहें तो उन्हें भी आमंत्रण देता हूँ कि आप इस मुआमले का अपना बयान भी भेजें, जिसे मैं खुशी से छापूँगा।

चर्खा जरूर चाहिए

संयुक्त प्रान्त में अकबर पुर एक छोटी सी जगह है, जहां पर आचार्य कृपालाणी के दल ने सात साल तक काम किया है। कुछ कारण ऐसे हुए जिनसे इस दल को वहां से हट जाना पडा। उन कारणों का जिक्र यहां करने की कोई जरूरत नहीं हैं। उनके हटने पर बडाही करुण दृश्य देखने में आया। आखिर किसी न किसी तरह इस केन्द्र को जारी रखना ही पडा। इसका वर्णन पं० जवाहरलाल नेहरू ने अ० भा० चर्खासंघ के नाम अपने निम्नलिखित रोचक पत्र में यों किया है:—

"मैं आपको पहले ही लिख चुका हूँ कि गांधी आश्रम अकबरपुर से हट गया है। हमने अस्थायी रूप से उसका भार ले लिया है क्योंकि हमने समझा कि आपका फैसला आने तक हमें काम चलाना ही चाहिए। अगर हम लोगों ने यह भार नहीं उठाया होता तो यहां का काम टूट जाता और फिर से काम शुरू करना मुश्किल होता। इसके अलावा कुछ भावनाओं के कारण भी उसे छोड देना मुश्किल था। कई सालों से यह केन्द्र प्रसिद्ध है और बहुत से कतवैयों और बुनकरों का इससे गाढा संबंध है। इसे अचानक छोड देने से आसपास के सभी स्थानों में बहुत बुरा असर पडता और इस पर निर्भर बहुत से गरीबों को तकलीफ में पडना पडता। सचमुच में, हमें कहा गया था कि गांधी आश्रम के अपना काम बंद करने की घोषणा करने पर बहुत ही हृदय-द्रावक दृश्य देखने में आये

थे। बहुत सी बूढी औरतें जो अपना सूत दूर दूर के केन्द्रों में बेंचा करती थीं, उन्हें बंद पाकर इस मुख्य केन्द्र में आयीं और यह सुन कर कि उनका सूत नहीं लिया जायगा, रोने लगीं थीं। बहुत से बुनकर अपने बालबच्चों के साथ दौडे आये और कहने लगे, "वाह, सात साल तक हमने आश्रम के लिए काम किया, और अब आप हमें पेड पर चढा कर सीढी लिये भागे जा रहे हैं। नहीं, यह नहीं हो सकता। हम तो सत्याग्रह करेंगे।" अब आप समझ सकते हैं कि ऐसी परिस्थिति में वहां का काम अपने सिर ले लेने से इनकार करना हमारे लिए कितना मुश्किल था। मगर, आखिर केवल भावना के वश हो कर ही तो कुछ निर्णय किया नहीं जा सकता था। अकबरपुर में कुछ खास सुविधाएँ हैं और साथ ही असुविधाएँ भी हैं। बुनाई के लिए यह केन्द्र विख्यात है और इसके पास में ही, टाँडा में हिन्दुस्तान की अच्छी से अच्छी बुनाई होती है। दुर्भाग्यवशतः यहां महीन जामदानी विलायती सूत की बुनी जाती है। दूसरी ओर अकबरपुर के आसपास में बहुत कम सूत काता जाता है और अगर इस केन्द्र को चलाना है तो कहीं नकहीं बाहर से ही सूत मँगाना पडेगा। मेरा खयाल है कि गांधी आश्रमवाले, उधर बिहार से और मुजफ्फर नगर से सूत मँगाते थे। हमारे लिए संयुक्त प्रान्त के उत्तरी जिलों से, जैसे कि मुरादाबाद, बिजनौर वगैरह से सूत मँगाना सहज होगा। सूत भेजने का खर्च कुछ अधिक नहीं है।"

अगर खादी भी घी या नाज जैसी प्रचलित हो जाय तो किसी केन्द्र से हटने का विचार करने की भी जरूरत न पडे अगर हमारे पास धन और कार्यकर्त्ता हों तो हमारे प्रतिनिधि सिर्फ १,६०० नहीं, बल्कि ७ लाख गांवों में होंगे। यह कुछ अव्यावहारिक महत्वाकांक्षा नहीं है। हमें इसपर कोई आश्चर्य नहीं होता कि हरएक गांव में विदेशी सरकार के कम से कम दो प्रतिनिधि तो हैं ही। अगर अँगरेजों के आने के पहले कोई ऐसी बात कहता तो उसकी बात हँसी में ही उडा दी जाती। मगर विचार करने पर जान पडना चाहिए कि १७ वीं शताब्दि में साम्राज्यपति ब्रिटेन के दो दो प्रतिनिधियों के हिंदुस्तान के पंचायती (प्रजा सत्ताक) गांवों में होने की संभावना जितनी हास्यप्रद होती उसके आधा हास्यप्रद भी, हर गांव में चर्खे की पुनःप्रतिष्ठा का खयाल नहीं है। अकबरपुर की स्त्रियों की जो बात कही जाती है, वह स्पष्ट दिखलाती है कि चर्खे की कितनी जरूरत है, या इस प्राचीन देश में हो सकती है। हमारी देशभक्ति के लिए यह कुछ गौरव का विषय नहीं है कि अकबरपुर के चतुर बुनकरों को दूरदूर तक प्रख्यात जामदानी के लिए विलायती सूत का आश्रय लेना पडे जब कि सिर्फ पचास साल पहले वे अपनी ही पडोसिनी बहिनों के हाथ के कते सूत से उसे बनाते थे। कुछ ही दिनों में हमारी कातनेवालियाँ, आज बाजार में पडे हुए किसी किस्म के विदेशी सूत से कहीं महीन और मजबूत सूत कातने लगेंगी।

बहिष्कार और विद्यार्थी

एक कौलेज के प्रिन्सिपल लिखते हैं:

"बहिष्कार आन्दोलन के संचालक विद्यार्थियों को अपने आन्दोलन में खींचे लिये जा रहे हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि इस आन्दोलन में विद्यार्थियों के काम की कीमत कोई एक कौडी भी नहीं समझेगा। जब लडके अपने स्कूल और कौलेज छोड कर किसी प्रदर्शन में शामिल होते हैं, तब वे वहां के हुल्लडबाज लोगों में मिल जाते हैं और बदमाशों की सभी कारस्तानियों के लिए जिम्मेवर होते हैं तथा अक्सर पुलिस के डंडे के पहले शिकार होते हैं। इसके अलावा उनके स्कूल या कौलेज के अधिकारी उनसे ... हो जाते हैं, जिनकी दी सजा उन्हें सहनी ही पडती है; और ... अपने अभिभावकों की हुकुम उदूली करते हैं जो शायद उन्हें ... देने से इन्कार कर देवें और यों उनका सत्यानाश हो जा सकता है। मैं ऐसे युवक आन्दालनों की बात समझ सकता हूँ कि ... छुट्टी के दिनों में अज्ञान किसानों को पढाने, सफाई के नियम सिखलाने इत्यादि के कामों को करें मगर यह देख कर तो कष्ट होता है कि वे ... ही मावाप और शिक्षक का विरोध करें और बुरे लोगों के ... घूमने निकल जायँ और नियम और शान्ति का भंग करने में ... बँटावें। क्या आप राजनीतिज्ञों को यह सलाह देंगे कि वे ... प्रदर्शनों को ज्यादह बाअसर बनाने के लिए विद्यार्थियों को ... योग्य काम से खींच न बुलावें। दर असल इससे तो वे ... प्रदर्शनों की कीमत घटा रहे हैं क्योंकि सहज ही कहा जा सकता है कि यह तो स्वार्थी और मूर्ख आन्दोलकों के बहकाये ना... लडकों का काम है।

"उनके वर्त्तमान राजनीति सीखने का विरोध मैं नहीं करता। यह तो बडा अच्छी बात होगी अगर किसी सामयिक प्रश्न ... अखबारों में दोनां ओर के छपे मत चुन कर शिक्षक विद्यार्थियों को पढ सुनावें और उन्हें अपना निर्णय आप करना सिखलावें। मैंने ... प्रयोग में सफलता पायी है। सच पूछिए तो विद्यार्थियों के ... कोई विषय मना या अपाठ्य है ही नहीं। बर्टैन्ड रसेल और ... का तो कहना है कि विद्यार्थियों का स्त्री पुरुष के संबंध की बातें बतलानी चाहिए। मैं जी जान से विरोध करता हूँ तो इस ... का कि विद्यार्थियों कों ऐसे काम में अस्त्र बना लिया जाय, ... न तो उनका कोई काम सधता है और न उनसे काम लेने... का ही।"

पत्र-लेखक ने इस आशा से पत्र लिखा है कि मैं विद्... के सक्रिय राजनीतिक कामों में शरीक होने का विरोध ... मगर मुझे उन्हें निराश करते हुए खेद होता है। उन्हें ... चाहिए था कि सन् १९२०-२१ में विद्यार्थियों को उनके ... कौलेजों से बाहर निकाल कर राजनीतिक काम करने को कहने ... जिसमें जेल जाने का भी खतरा था, मेरा हाथ कुछ कम नहीं ... मेरी समझ में अपने देश के राजनीतिक आन्दोलन में आगे ... कर हिस्सा लेना उनका स्पष्ट कर्त्तव्य है। सारे संसार के ... यह कर रहे हैं। हिन्दुस्तान में, जहां कि अभी हाल ... राजनीतिक जागृति महज थोडे से अंगरेजीदां लोकों ... परिमित थी, उनका यह और भी बडा कर्त्तव्य है। ... और मिसर में तो विद्यार्थियों की ही बदौलत ... आन्दोलन चल सके हैं। हिन्दुस्तान में भी वे कुछ क... कर सकते।

प्रिन्सिपल साहेब इस बात पर जोर दे सकते थे कि वि... का अहिंसा के नियमों का पालन करना, तथा हुल्लडबाजों से ... होने के बदले उन्हींको काबू में रखना जरूरी है।

(यं० इं०) मो० क० गां...

आश्रम भजनावलि का नवीन और संशोधित ... कीमत =) पोस्टेज -)।; विना जवाबी कार्ड या टि... जवाब नहीं दिया जायगा। दस से कम प्रतियों की ... नहीं भेजी जायगी। वी. पी. मँगानेवालों को आधा दाम ... भेजना चाहिए।

व्यवस्थापक
हिन्दी-नवजीवन

छात्रालय

[अमरेली, छात्रालय-सम्मेलन के सभापतिपद से श्री काकासाहेब कालेलकर के दिये भाषण के कुछ चुने हुए अंशों का अनुवाद नीचे दिया जाता है।]

१

स्वाभाविक शाला (वर) का नाश और छात्रालयों की उत्पत्ति।

यह स्वाभाविक नियम है कि जो जन्म देवे, वही प्राथमिक संस्कार भी देवे। हमारा जीवन-व्यवहार अगर संतोष मूलक होता तो सहज ही उस आदर्श को शक्य कर सकते थे। अगर हर एक घर निश्चय करें कि, "हम उदर-निर्वाह के ही लायक पैदा कर के मानेंगे, अधिक कमाई का लोभ नहीं रक्खेंगे, और यों करने से जितनी फुरसत मिलेगी वह सभी की सभी अपने संस्कार सुधारने, शुभ संस्कार अपने बालकों में डालने तथा जितनी आवश्यक हो समाज-सेवा में लगायेंगे" तो केवल शिक्षा का ही नहीं, बल्कि अनेक सवालों का एक ही बार हल हो जायगा। इस तरह की समाज-रचना की कल्पना करनी असंभव नहीं है कि बालकों की सोलह बरस तक की शिक्षा अपने मा बाप से ही मिले। किन्तु हम तो इस संस्था में ही श्रद्धा खो बैठे हैं। चिडियों का जोडा, और उनका घोंसला—इस संकुचित दशा में से निकल कर हम आर्य लोगों ने बडे बडे संयुक्त कुटुम्ब रचे और चलाये और अनेक कीमती सद्गुण पैदा किये। इन्हीं सद्गुणों के जोर से हमने बडी बडी जातियां रचीं और उनके जरिए सामाजिक पुरुषार्थ साधा। ऐसी बहुत सी जातियों को वर्णाश्रम धर्म में संगठित करके विराट् हिन्दू धर्म खडा किया तथा उसके जरिए चतुर्विध पुरुषार्थ का उत्कर्ष दिखलाया। यह सब शक्य होने के मूल कारण थे त्याग, आदि कौटुम्बिक सद्गुण। यह मानने की बनिस्बत कि पर-राज्य आने से इन सद्गुणों का नाश हुआ, यह कहना ज्यादे वाजिब होगा कि पहले इन सद्गुणों का नाश हुआ, जिससे समाज शिथिल हुआ और उसके बाद ही पर-राज्य आया। आज हमारी अवनति सबको खटकती है। परन्तु हमारी असली पूंजी जो सद्गुण हैं, उन्हें लौटाने की कोशिश किये बिना अनेक उपायों से समाज को सुधारने का दावा हम करते आये हैं। हम इस लोभ में पडे हुए हैं कि कोई ऐसी युक्ति मिल जायगी, जिससे हम दो और दो मिला कर पांच कर लेंगे, बिना बोये फस्ल काटेंगे और बिना राँधे खाना खायँगे।

संस्कारों की शिक्षा हमने घर में से निकाल कर शालाओं को सौंपी। परिणाम यह हुआ कि घर के लडके को भी घर से निकाल छात्रालय में रहने के लिए भेजना पडा। आज की हर एक संस्था, कुटुम्ब संस्था को तोडने की कोशिश करती है। ईश्वर-निर्मित कुटुम्ब-संस्था पर अश्रद्धा रख कर हम असंख्य संस्थाएँ उत्पन्न करते हैं और उन पर अंध-विश्वास रखते हैं। होटलों, भोजनालयों, डॉक्टरों और वकीलों के ही समान छात्रालय भी कुटुम्ब-संस्था को नाश का ही काम किया करते हैं। जैसे सिपाही बॉरिकों में रहते हैं उसी भांति लडकों के लिए भी खाने पीने की सुविधा कर देनी मुश्किल नहीं है। ऐसी संस्थाओं के जरिए लडकों के दिमाग में अनेक प्रकार की बातें भरी जा सकती हैं, उनके लिए रहने, खाने और खेलने की सुविधा की जा सकती है, और सभी इन्द्रियों की कवायद भी करायी जा सकती हैं। पर यह शिक्षा न अकेली शाला लीजिए, या अकेला छात्रालय लीजिए या दोनों लीजिए, किन्तु अगर उनके शिक्षकों, आचार्यों, और गृहपतियों में कौटुम्बिक सद्गुण न होंगे तो यह सब किनारे लगेगा। लगेगा क्या, हम तो लगता हुआ देख रहे हैं। इस ओर हम सभी अंधे हो रहे हैं कि कौटुम्बिक सद्गुणों के नाश से हमारा समाज अधोगति को जा रहा है और इसीलिए हम चाहे जैसी शाला और जैसे भले बुरे छात्रालय से काम चला लेते हैं।

छात्रालय में कुटुम्ब के गुण चाहिए

कुटुम्ब चलाते चलाते हार कर दूसरी संस्था खोल कर नहीं, बल्कि मानवीशक्ति के लिए कुटुम्ब संस्था अधूरी अथवा संकुचित होने के कारण, स्थापित संस्थाओं में आध्यात्मिक संबंधवाले प्रयोग करने चाहिए। यों कहा जा सकता है कि ऐसे ही आदर्श से इस जमाने में आश्रम आदि चलाने का प्रयोग शुरू हुआ है। कौटुम्बिक पद्धति से उतरते दर्जे की संस्थाएँ अगर स्थापित करनी पडें तो उन्हें लाचार, अपरिहार्य समझ कर ही स्थापित करना होगा। और जितनी जल्दी हो, उनका काम पूरा कर के कुटुम्ब-संस्था को पुनर्जीवन देना होगा। कुटुम्ब से उतरते दर्जे की संस्थाएँ स्थायी करनी पडें तो उनमें समाज की बदनामी है। कुटुम्ब से ऊँचे, चढते दर्जे की संस्थाएँ बनानी मुश्किल हैं, किन्तु वे ही चिरस्थायी बनने लायक हैं, इसलिए हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि आश्रम हों या छात्रालय किन्तु उनमें कम से कम व्यवस्थित कुटुम्ब के सद्गुण तो होने ही चाहिए।

मनुस्मृति में लिखा है कि आचार्य पिता है और सावित्री है माता। सावित्री का अर्थ होगा शिक्षा, जीवन को रचनेवाली प्रेरणा, बुद्धि पर लगाम रखनेवाली शक्ति। अगर ये ही मातृ-स्थान पर बराबर प्रतिष्ठित रहें तो और चाहिए ही क्या? जिस संस्था में सावित्रीरूप शिक्षण मिलता हो उस संस्था के विद्यार्थी एक दूसरे को सहोदर भाई से भी अधिक चाहते हैं। इसीसे जिस भांति एक कुटुम्ब में विवाह-संबंध संभव नहीं होता, उसी भांति एक संस्था में भी नहीं हो सकता। अगर कुटुम्ब के भीतर ही भीतर विवाह करने की प्रथा चल जाय तो फिर कुटुम्ब टूट जायगा। केवल अनाचार ही नहीं पैदा होगा किन्तु कुटुम्ब की तो हस्ती ही मिट जायगी। इसी भांति जीवन गढनेवाले आचार्य और शिष्य के बीच पिता पुत्र या पिता पुत्री का और एक संस्था में साथ पढनेवाले लडके लडकियों के बीच भाई बहिन का संबंध होना चाहिए।

कुटुम्ब और संस्था के बीच मिलान करते हुए हम यहां तक आये। किन्तु यहां एक मुश्किल आ खडी होती है। मान लीजिए की किसी बडी बिरादरी या जाति ने अपने सभी लडके लडकियों के लिए बहुत बडा छात्रालय बनाया, और सह-शिक्षण तथा सह-जीवन का प्रयोग शुरू किया। तो इस जाति में विवाह की क्या व्यवस्था की जाय? बहुत वर्षों से मैं इस विषय पर विचार करता आया हूँ। मेरी नम्र सम्मति में इस विषय पर दो प्रकार से विचार किया जा सकता है। एक तो जाति जाति के अलग अलग छात्रालय नहीं बनाये जायँ। मगर ऐसे छात्रालय हों या न हों, तौभी जिस भांति जातियों और उपजातियों का विस्तार बढा है, उसे देखते हुए तो गोत्र का ही नियम जाति पर भी लागू करना चाहिए। अर्थात् जैसे कि कोई अपने ही गोत्र में विवाह नहीं कर सकता, उसी भांति नियम यह बनाना चाहिए कि कोई अपनी ही उपजाति में विवाह न कर सके। एक ही गोत्र के अंदर विवाह होवे तो जैसे समाज की आत्मा उसका विरोध करती है, उसे अनाचार समझ कर उसकी निंदा करती है, उसे धिक्कारती है, उसी तरह अगर एक ही उपजाति में विवाह हो तो वह समाज को नापसंद होना चाहिए।

मेरी नम्र राय है कि कुल मिलाकर साम्प्रदायिक छात्रालय लाभदायक नहीं हैं। आज के जमाने में अगर भिन्न २ जाति के, समाज के लडके साथ रहें, साथ पढें, तभी उनकी बुद्धि और हृदय का योग्य विकास हो सकता है। ऐसी आशा हम भले ही रक्खें कि केवल एक ही जाति के लडकों के साथ रहने से बंधुभाव पैदा होता है किन्तु सच पूछिए तो जाति के संकुचित झगडे और बासी आदर्शों के ही भीतर नवयुवकों का मन संकीर्ण हो जाता

संभव रहता है। व्यापक देश-सेवा के विचार ऐसे वातावरण में कुंठित हो जाते हैं। इतना व्यापक नियम होना चाहिए कि जो लोग आहार के और शुचिता के एक ही नियम स्वीकार करते हैं, वे सब एकत्र रह सकते हैं . . . .

अगर साम्प्रदायक छात्रालय ऐसे नियम करें कि जाति के लडकों को जो जो लाभ मिलते हैं वे सभी दूसरी बिरादरी के भी इतने लडकों को मिल सकेंगे तो थोडी निष्कृति होवे। अगर हम चातुर्वण्य को मानते हों तो हरएक काम में चारों वर्णों का हित हमें देखना चाहिए। और अगर पिछडे हुए समाजों का हाथ हम पूरा पूरा पकडना न चाहें तो उनका उद्धार करने के दूसरे अनेक उपायों पर अधिक ध्यान देना चाहिए। अगर सभी बिरादरियां अपनी २ आमदनी का पांचवा हिस्सा अंत्यजों को शिक्षा और छात्रालयों को लाभ देने में खर्च करें तो अंत्यज जाति कृतज्ञता-बुद्धि से ही सुधर जायगी, संस्कारी हो जायगी। . . . .

२

छात्रालय मुख्यत: संस्कृति का केन्द्र होता है। वहां पर संस्कृति के सभी अंगों की साधना करनी चाहिए। प्रकृति और संस्कृति में मुख्य भेद यह है कि प्रकृति अपने आप ही बही जाती है और संस्कृति बुद्धिपुरःसर सतत प्रयत्न के बल पर कायम रहती है। जैसे लुहार की भट्टी धौंकनी चलाने से ही तेज रहती है उसी भांति संस्कार का अभ्यास बराबर चालू रखने से ही संस्कारिता टिकती है, और बढती है। विस्मृति, प्रमाद, आलस्य, विकल्प, अनुत्साह इत्यादि जडता के विरुद्ध सतत युद्ध चलानेवाला ही संस्कृति को टिका सकता है। संस्कृति कुछ व्याख्यान में, किताबों में या कला-संग्रह में नहीं घुसी होती है। यह तो जीवन का विषय है, जागृति का विषय है।

संस्कृति के पाये में मुख्य वस्तु शौचाचार है। एक जमाना ऐसा था जब कि हमारी आर्य-जाति खानपान, रहन-सहन, सभी बातों में दुनिया की दूसरी जातियों से अधिक स्वच्छ और सुघड गिनी जाती थी। पचास वर्ष पहले भी संस्कारी कुटुम्बों में घर के अंदर की स्वच्छता खूब रक्खी जाती थी। नहाने धोने में, कपडे लत्ते में और खान पान में अत्यन्त स्वच्छ रहना धर्म का अंग गिना जाता था। अब आज तो घर के बाहर पोलों में, महल्लों में, चौगानों में, सार्वजनिक मकानों में और तालाबों में सफाई नहीं दिखलायी पडती। आज व्यक्तिगत प्रयत्न बहुत ही कम हो गया है। रोज नियमित दतुँवन करके बुढापे तक हीरा जैसे स्वच्छ उजले दांत बनाये रखने के बदले वर्ष, छ महीने पर दांत-डाक्टर से एक बार दांत साफ करा लेनेवाले लोगों का वर्ग उत्पन्न होने का भय है। म्युनिसिपैलिटियाँ, डाक्टर और धोबी शौचाचार के इजारेदार हो गये हैं। मैं तो इस मत पर आया हूँ कि आधुनिक जमाने में ऐसे सभी प्रयत्नों के कारण संस्कारिता घटी है। घर में है नौकरों का साम्राज्य; नौकर न हों तो स्त्रियाँ तो हैं ही। यह सभी जगह इष्ट माना जाता है, कि पुरुष और लडके अपने हाथों कोई काम न करें। इसके परिणाम-स्वरूप आलस्य, शिथिलता, और अपंगता इतनी बढी है कि इनका विरोध करनेवाला आदमी लोगों को हद दर्जे तक अप्रिय हो पडता है; और आज के लोकशाही स्वातंत्र्य के जमाने में अप्रिय आदमी अपनी शक्ति खो बैठता है। छात्रालयों में विद्यार्थियों की आदतें सुधारने के सभी प्रयत्न समान और सार्वत्रिक होने चाहिए। और हर एक संस्था में सभी कार्यकर्त्ता एक ही समान आग्रहवाले होने चाहिए। जहां आग्रह असमान होता है, वहां वातावरण नहीं बनता, बल्किसंस्था टूट भी पडती है।

समान आग्रह के नियम कडाई करने से नहीं पाले जा सकते। यह तो अंदर के उत्साह के और व्यवहार-कुशलता-पूर्वक आदर्श निश्चित करने के फल-स्वरूप हो सकता है।

जो बात स्वच्छता की है, वही धार्मिक आचार की। माबाप और संस्थाओं के संरक्षक जिन नियमों का पालन नहीं कर सकते, उनका पालन वे नियम बना कर वेतनभोगी नौकरों के जरिए कराना चाहते हैं। आर्यसमाजी घर में भले ही हवन न करते हों, किन्तु विद्यार्थियों और गृहपतियों से हवन करवाने का आग्रह तो रखते ही हैं। वे ही विद्यार्थी जब घर आते हैं तो हवन करने से उन्हें छूट मिल जाती है। इसका समर्थन करनेवालों में भी कि संस्था में कातने का आग्रह होना ही चाहिए यह बात दिखलायी पडती है। जैन बोर्डिंगों के जो व्यवस्थापक सूर्यास्त के बाद न खाने, आलू न खाने वगैरह के नियमों का पालन संस्था में कराने पर जोर देते हैं, वे ही अपने जीवन में इन नियमों का सरेबाजार भंग करना इकरार करते हैं। यह प्रयत्न तो गर्म पानी में मुर्दे को रख कर उसके शरीर की गर्मी बचा रखने का प्रयत्न करने के समान है। अगर हम इतना जान लेवें कि हमें जो योग्य मालूम पडे, केवल उसीको योग्य कहें, किन्तु जिसका अमल हम आप नहीं कर सकते, उसका अमल दूसरों से कराने का हम चाहे जितना आग्रह क्यों न रक्खें किन्तु हमारे हाथों वह होना नहीं है तो, हम कृत्रिमता और दंभ से बच जायँगे।

छात्रालय चलानेवाले शास्त्री कहां हैं ?

छात्रालयों में पहले विद्यार्थियों का शरीर गढने की ओर ध्यान देना चाहिए। किन्तु यह भी के जगहों में ठीक ठीक समझा गया है ? सबल शरीर बना कर उसे अलमस्त, गठा हुआ और कार्यक्षम करने के लिए किस तरह की खूराक होनी चाहिए, कैसी मिहनत होनी चाहिए, कैसा वातावरण होवे, शारीरिक परिश्रम किस तरह का अनुकूल आवेगा, आदि सभी बातों का शास्त्र हमने अभी कहां रचा है। छात्रालयों की हलचल में अबतक तो केवल अध्यापक या धर्मप्रचारक ही पडे हैं ? शरीरशास्त्री, मनोविज्ञानी, और समाजशास्त्री छात्रालय व्यवस्था को जीवन-कार्य समझ कर अब तक उसमें कहां पडे हैं ? प्राकृतिक चिकित्सावाले जिस भांति रोगी शरीर की परीक्षा करके उसके लिए खूराक निश्चित करते हैं, उसी भांति के प्रयोग छात्रालयों के व्यवस्थापकों को करने चाहिए, उनकी याददाश्त रखनी चाहिए और अनुभवों को अपना लेना चाहिए। इतना तो सभी मानते हैं कि शरीर को घी दूध की जरूरत है। अब यह भी सभी कोई समझ गये हैं कि लडकों को समय समय पर थोडा थोडा खाने को मिलना चाहिए। किन्तु कब खाना, कितना खाना, वगैरह कितनी ही वस्तुओं की खोज की जा सकती है। बढते हुए शरीर को काफी प्रमाण में दूध मिलना ही चाहिए। अब तक यह सब जगह स्वीकार नहीं किया गया है कि इसके अलावा फलों की भी जरूरत है। यह कहने की बनिस्बत कि फलों का आहार खर्चीला होने से हमने फल खाने छोड दिये हैं, यही कहना ज्यादे सच होगा कि हमने फल खाना छोड दिया जिससे फलों का आहार महँगा हो गया। केला, पपीता जैसे फल तो अब भी कहीं खाये जाते हैं। पक्के टमाटा और नींबू भी अत्यन्त महत्व की वस्तु हैं। इन वस्तुओं का असर तुरत भले ही न दिखायी पडे किन्तु शरीर को गढने और लहू को शुद्ध रखने में उनका उपयोग है। दाल और शक्कर पर हम ऐसे मोहित हो गये हैं कि हमने फलों के जैसी उत्तम वस्तु को अपने भोजन से लगभग वर्जित कर दिया है। हर एक छात्रालय अगर जमीन की सुविधा रख कर केले, पपीता वगैरह बोने का निश्चय करे, और जहां तक हो सके नींबू के पेड लगावे, और थोडे टमाटे के पौधे भी रक्खे तो अधिक खर्च के बिना विद्यार्थियों को उत्कृष्ट खूराक मिल सकेगी। . .

(क्रमशः)

(नवजीवन)

राष्ट्रीय सप्ताह

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ३२

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, चैत्र सुदी ८ संवत् १९८४ गुरुवार, २९ मार्च १९२८ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

खादी का अर्थशास्त्र

४

कुछ शंकाओं का समाधान

२

(३) खद्दर के विरुद्ध तीसरी शंका यह की जाती है कि वह बहुत महँगा होता है, लोग उसे खरीद नहीं सकते और फिर जब बाजार में सस्ता माल मिल ही रहा हो तो क्यों कोई महँगा खद्दर खरीदे। उस दिन विहार सरकार ने भी यही उज्र पेश किया था। उनका तो कहना था कि मिल के कपडे से खद्दर महँगा भी होता है और साथ ही साथ टिकाऊ भी कम यानी दुहरा महँगा होता है। दूसरी टीका का कारण तो यह है कि शुरू शुरू में न तो कार्यकर्ताओं को ही पूरा ज्ञान था और न कातनेवालों का ही हाथ चर्खे पर ठीक ठीक बैठा था, फल स्वरूप सूत कमजोर होता था, और कपडा भद्दा होता था। मगर अब तो हालत बहुत बदल गयी है। इतने दिनों में आकाश-पाताल का अंतर हो गया है। इस दलील के विरुद्ध मैं उन लोगों का अनुभव रखता हूँ जो आज दिन तक खादी पहनते रहे हैं। फिर सरकार ने अपने वस्त्र-विशेषज्ञ की आड ली। उन्होंने एक दिन मुझे कहा कि शास्त्रीय रीति से भी खद्दर मिल के कपडों के बराबर मजबूत नहीं हो सकता क्योंकि हमने सूत की परीक्षा की तो देखा कि मिल के सूत की अपेक्षा चर्खे का सूत ⅓ ही मजबूत होता है और इसलिए अगर मिल का कपडा तीन साल टिकना चाहिए तो खद्दर केवल १ साल। यह निष्कर्ष शास्त्रीय रीति पर भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसके जवाब में मैं एक दूसरे वस्त्र-विशेषज्ञ की किताब ला रक्खूंगा जिसे छपे कई साल हो गये, मगर जिसका कोई माकूल जवाब अब तक किसीने नहीं दिया है। उन्होंने युक्तियों के साथ सिद्ध किया है कि मिल में कपडा तैयार करने में, कपास ओटने से लेकर तैयार कपडे की गांठ बांधने तक ऐसी और इतनी क्रियाएँ होती है कि हर क्रिया में सूत का बल कुछ न कुछ घटता ही जाता है और अन्त में शास्त्रीय रीति से तो मिल का कपडा हाथ के बने कपडे से कभी नहीं मजबूत हो सकता। सूत की जाँच भी करते हैं, तो उसे दो छोर से खींच कर या उसमें कोई वजन लटका कर और देखते हैं कि कितने खिंचाव या भार से टूट जाता है। कपडा भी यों तान कर ही फाडते और उसकी मजबूती निकालते हैं। इसी जाँच के बल पर मिल का कपडा हमारे खद्दर से मजबूत गिना जाता है। मगर ऐसी जाँच में एक बहुत बडी भूल छिपी हुई है। हम कपडा तान कर फाडने के लिए नहीं खरीदते। हम तो पहनने के लिए खरीदते हैं और पहनना और तान कर खींचना बराबर नहीं हैं। पहनने में कपडे पर इतनी ओर से इतनी तरह के खिंचाव पडते हैं कि ठीक वैसी ही जाँच के यंत्र बनाना असंभव नहीं तो अत्यन्त कठिन जरूर है। अगर कपडा कभी एक ओर से खिंचता है तो दूसरी बार दूसरी ओर से, और वह कभी दबता है, कभी फैलता है, तो कभी सिकुडता है। इस भांति हम देखते हैं कि फाडने की जांच कोई पक्की जांच नहीं है और न यही वैज्ञानिक रूप से सिद्ध किया जा सका है कि अगर कोई सूत किसी दूसरे सूत के एक तिहाई मजबूत हो तो उसका कपडा भी तिहाई ही समय तक चलेगा। खद्दर पहननेवालों का अनुभव इसके विरुद्ध है मगर वैसा अनुभव वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता इसलिए मैं यही कह कर संतुष्ट होता हूँ कि खद्दर के विरुद्ध दलील साबित नहीं की जा सकी है।

मगर वस्त्र-विशेषज्ञ की अपनी दलील का भी जवाब हमारे पास है। हमने हाथ कते सूत की वही परीक्षा कर देखी है जो वे करते हैं और पाया है कि ८,१० हफ्तों में ही चर्खा चलाने वाले भी मिल वालों के ही समान मजबूत सूत कातने लगे हैं, अगर उन्होंने थोडा सा ध्यान दिया है तो। मैं सभी आंकडे नहीं दूंगा। यहां यही कहना यथेष्ट होगा कि सत्याग्रहाश्रम साबरमती में सूत के १०० से भी अधिक नमूनों की परीक्षा हुई। पहली परीक्षा में केवल ३ ही नमूनों की मजबूती ७० फी सदी से अधिक, १२ की ६० फी सदी से, और १९ की ५० फी सदी से अधिक आयी। दशवें हफ्ते के अंत में ४ नमूनों की मजबूती फी सदी १०० से भी अधिक, ६ की ९० से, २२ की ८० से, २५ की ७० से, १० की ५० से और ५ की फी सदी २० से अधिक आयी। यानी अधिकांश लोगों के सूत मिल के औसत दर्जे के सूत के बराबर मजबूत होने लगे। मिल के सूत के नमूनों में से एक की मजबूती फी सदी ९०, दूसरे की ८५, और तीसरे की ६० आयी।

फिर उस दिन बंगलोर में भी प्रदर्शन के अवसर पर जाँच की गयी थी। एक आंध्र स्त्री ने जो चर्खा चला कर ही गुजर करती है, चर्खा चलाने में सोने का तमगा पाया। उसे कोई विशेष शिक्षा नहीं दी गयी है, किन्तु वह है गांव की मामूली कत्तिन। उसने

एक एक घन्टे में ६० अंक के २५८ गज और ४० अंक के ४०० गज सूत कात दिखलाये। दोनों की मजबूती फी सदी १०० से अधिक थी। इस लिए आज अगर हमारा सूत मिल के सूत से कमजोर होता है, और हम कबूल करते हैं कि बहुत जगहों पर होता भी है, तो इस लिए कि हमारे यहां समय, संगठन और अनुभव की कमी है। ये बातें होते ही हम एक एक बात में मिल के सूत को हरावेंगे। मगर आलोचक हमें कब समय देने को तैयार होते हैं? वे हमें सहायता तो देंगे नहीं, किन्तु नुक्ताचीनी करने को हमेशे तैयार रहेंगे।

फिर सरकार की ओर से उस दिन पूछा गया था कि महँगे खद्दर पर सरकार एक लाख रुपया अधिक क्यों खर्च करे? अजी, मिलान वहाँ किया जाता है जहां दोनों वस्तुओं में कोई समानता होवे। जहां दोनों दो तरह की चीजें हों, वहां मिलान ही क्या होगा? मिल-व्यवसाय में जो इतनी बडी पूँजी लगायी गयी है, उसके प्रताप से संसार के बडे से बडे वैज्ञानिक और व्यवसायी उसके लिए दिन रात माथापच्ची कर रहे हैं और उसमें हमेशे कुछ न कुछ उन्नति ही करते जाते हैं, उदाहरण के लिए देखिए कि सन १९०७ में एक आदमी जितने समय में १ गज कपडा बुनता था, १९२४ में वही उतने ही समय में २½ गज बुनने लगा। इन वैज्ञानिकों और व्यवसायियों के मुकाबिले में हमारे यहां थोडे से लोग जिन्हें न तो कोई वैज्ञानिक, न व्यावसायिक शिक्षा मिली है इस उद्योग को जिलाने में लगे हैं, जिसे मारने में भी कई वर्ष लग गये थे। तौ भी हमारे काम के नतीजे कुछ असंतोष या निराशा-जनक नही हैं बल्कि बहुत कुछ उन्नति की ही आशा होती है। हमें जरूरत है तो सहायता और उत्साहदान की जो हमें मिलते नही हैं। अगर ताता के कारखाने और कपडे की मिलों को सरकारी सहायता पाने का हक है तो हमारे इस प्राचीन गृह-उद्योग को क्यों नहीं है? इसे जिलाने में सरकार कुछ लाख रुपये देने में क्यों कोताही करे? मैं कहता हूँ कि दवा से कहीं अधिक जरूरी है भोजन और अगर पेट में चूहे डंड पेलते होंगे तो दवा से ही क्या लाभ होगा? भले ही बडे मुशाहरोंवाले डाक्टरों और शिक्षकों के विलास से हमें वंचित रहना पडे, किन्तु इसका तो समर्थन होना ही चाहिए। आखिर दूसरे देशों ने भी अपने अपने उद्योगों के लिए क्या न किया है? खुद इंग्लैण्ड ने ही अपने वस्त्र व्यवसाय की रक्षा के लिए १००) रुपये के हिन्दुस्तानी कपडे पर ७०) से ८०) रु. तक की चुंगी लगायी थी और हिन्दुस्तान का कपडा पहनना जुर्म करार किया था। जब उसका व्यवसाय सबल हो गया तब वह स्वतंत्र व्यापार के सिद्धान्त की डींग मारने लगा। फिर यूरोप के और देशों ने तथा अमेरिका ने भी स्वतंत्र व्यापार का सिद्धान्त कभी माना ही नहीं है। और तो और, आज आखिर इंग्लैण्ड भी जब और देशों के साथ बराबरी करना मुश्किल पाता है तो घुमा फिरा कर अपने उद्योग के रक्षण के सिद्धान्त की ही ओर आ रहा है। मगर कच्चे माल के लिए उसके दूसरे देशों पर निर्भर रहने के कारण उसकी स्थिति हमेशे ही अनोखी रही है। हिन्दुस्तान की हालत इंग्लैण्ड से न्यारी है। आज हम सारे संसार की ⅕ कपास पैदा करते हैं और हमारी आबादी भी संसार के पांचवें हिस्से के बराबर है। मगर हमारी कपडे की जरूरत कम है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि हम अपनी जरूरत से कहीं अधिक कपास पैदा करते हैं। उसे केवल बुनवाने के लिए हम विदेश भेजते हैं। मैं दावे के साथ कहता हूं कि इंग्लैण्ड ने अपने नये वस्त्र-उद्योग की जैसे रक्षा की, वैसा रक्षण हमें दीजिए और हम भी इंग्लैण्ड के समान ही अपने चर्खे को सफल कर दिखलावेंगे। आज भी कुछ खास किस्मों को छोड कर खद्दर का दाम मिल के कपडे से फी सदी ७०, या ८० अधिक नहीं है। और फिर खद्दर को सस्ता बनाने के सैकडों उपाय हैं। ब्यौरों की बात छोडने पर भी, इतना तो सभी कोई समझते हैं कि हम अपने कार्यकर्त्ताओं पर का खर्च सहज ही अधिक माल तैयार कराकर घटा सकते हैं और गरीब लोग अपनी कपास आप ओट, धुन, कात कर अपने घरखर्च की खादी सस्ती बना ले सकते हैं।

४. अब अंतिम शंका यह है कि चर्खा चलाने से इतनी कम आमदनी होती है कि इसमें असफलता निश्चित है। बहस है होगी, मगर काम में देखिए तो जान पडेगा कि हम जो एक आने रोज की मजदूरी देते हैं उसीके लिए हजारों आदमी चर्खा चलाते हैं। आखिर हमारी रोजाना आमदनी ही जब पौने दो आने की है तब एक आना लेना किसे अखरेगा। यहां बहुत से काम तो हैं नहीं कि उनमें से लोगों को जो सबसे अधिक आमदनी का हो, वह काम चुन लेना है और बाकी छोड देना। बल्कि यहां तो चर्खा चलावें तो एक आना भी मिले, नहीं तो वह भी नहीं। चर्खे से पेट नहीं भरता है सही, मगर उसे नहीं चलाने से तो पूरा उपवास ही करना पडता है। इसी लिए यह विकट अंधकार में प्रकाश की एक किरण है, आशा की एक झलक है। (क्रमशः)

('खादी का अर्थशास्त्र' नामक अँगरेजी किताब में से)

राजेन्द्रप्रसाद

छात्रालय

३

काम-मीमांसा

बालकों के जन्म के संस्कार अगर अच्छे हों, और वातावरण निर्मल हो तो उनमें काम का प्रादुर्भाव जल्दी नहीं होता और अगर होता भी है तब योग्य संस्कारी शिक्षण के कारण मर्यादा को पार कर के बेशर्म नहीं बन जाता। किन्तु ऐसे निर्मल उदाहरण दुर्भाग्य वशतः शायद ही देखने में आते हैं। जहां ऐसी स्थिति हो, वहां उसका स्वागत करना चाहिए और यह मुग्धता जितने दिनों टिक सके टिकायी जानी चाहिए। और जब इस मीमांसा का पृथक्करण करने की जरूरत जान पडे, तब भी जरूरत भर ही बातें बता कर रुक जाना चाहिए। विकृति के एक एक रूप के सामने विद्यार्थी को चेताते जाते समय नयी नयी विकृतियों का पैदा होना बहुत संभव होता है। अज्ञान की दशा सुरक्षित दशा कभी नहीं मानी जा सकती सही, मगर मुग्धता केवल अज्ञान की ही दशा नहीं है। वह निर्विकारी दशा है। यह मुश्किल वस्तु है। यह जहां तक टिके, इसे टिकाने में लाभ है। ऐसी मुग्धता न हो और तौ भी हम भूल से मानें कि वह है तो, इस भूल के बडे ही कडवे परिणाम आते हैं सही। मगर हम जो लापर्वा न हों, सचमुच में हमें ऐसा लगता हो कि मुग्धता है तो बालक को कुछ भी न कहने में हम ईश्वर के आगे गुनहगार नहीं बनते। तौ भी अमुक उम्र के बाद तो कुदरत का क्रम पहचान कर ज्ञान देना ही योग्य है।

इस सवाल की अपेक्षा कि काम-मीमांसा का ज्ञान किस तरह दिया जाय, मेरे मन में ज्यादह महत्वपूर्ण यही है कि उस ज्ञान को देने का अधिकारी कौन है। और विकृति के बारे में तो जब तक हमें स्पष्ट शंका न हो, तब तक कुछ न कहना ही योग्य गिना जायगा। सर्व-सामान्य बातें मालूम हों तो वही बहुत है। हर एक विद्यार्थी को आरोग्य का ज्ञान यथेष्ट होना चाहिए। हर एक रोग की स्थिति और लक्षण समझने की जरूरत नहीं है। आरोग्य ठीक ठीक हो तो उसका जरा भी बिगडना समझ में आ जाता है। जहां मुग्धता बनाये रखनी असंभव हो, वहां पर तो

समय पर सावधान कर देना ही एक मात्र उपाय है। बालक के भोले भाले मुखडे और शुद्ध भाषा से उसे बिलकुल मुग्ध नहीं बनना चाहिए। बालकों में जिज्ञासा इतनी अधिक होती है और गुप्त कही जानेवाली बातें दूसरों से गुप चुप कहने का शौक इतने अधिक लोगों को होता है कि कुछ न कुछ कान में पडे बिना नहीं रहता। चित्र विचित्र कल्पनाएँ करने की टेव बालकों को होती है। वे सुनी हुई बात पर तुरत ही विचार करने बैठ जाते हैं। जब तक बालकों को यह खयाल रहेगा कि फलां बात इतनी महत्वपूर्ण है कि उसे गुप्त रक्खा जाता है, तब तक वे गुरुजनों और शिक्षकों से पूछने के बदले गैर जिम्मेवार लोगों से ही पूछने वाले हैं। मर्यादा का कवच गुरुजन भी बचाये रक्खें और विद्यार्थी भी रक्खें फिर ऐसी बातें होवें ही किस तरह ?

आजकल का जमाना ही कामसीमांसा प्रकट रूप से चला कर उसमें से मजा लेने का है। इस विषय की शास्त्रीय चर्चा करने के बहाने बहुत लोग इसका रस लूटने की वृत्तिवाले हैं। पुराने जमाने में जैसे धर्मकथा के नाम पर सरे बाजार कृष्ण गोपीलीला का शृंगारिक वर्णन करने और सुनने की छूट होती थी, उसी तरह आज वैज्ञानिक चर्चा और आवश्यक ज्ञान के प्रचार के नाम पर जहां तहां काम-मीमांसा करने की छूट समझी जाती है। दोनों के ही पीछे रस लूटने की ही वृत्ति नहीं होती है क्या ? कोमल वय के बालकों की कल्पनाशक्ति को खूब बढा कर बडप्पन के रस उन्हें देने की पद्धति खतरेनाक है। इस ओर शिक्षणशास्त्रियों का भी यथेष्ट ध्यान नहीं गया है।

४

छात्रालय का वातावरण

छात्रालय के वातावरण में मैं मुख्य स्थान शारीरिक श्रम को दूंगा। छात्रालयों के साथ रसोइयों, नौकरों, कोठारियों, गौशाला वगैरह का प्रश्न हमेशे ही महत्व का होता है। यह बहुत बडे दुःख की बात है कि इस आवश्यक और गरीब सेवकवर्ग को अब तक हम तालीम नहीं दे सके हैं। हम इन्हींके अवलंब पर रहते हैं, इनके बिना एक दिन भी चलाना असंभव है, मगर तौभी, हम इनसे जैसी चाहें, वैसी सेवा नहीं ले सकते। जब तक हमारे अध्यापक और छात्र शारीरिक श्रम का महत्व नहीं समझते, तब तक नौकरों की परिस्थिति का और अज्ञान की दशा का भान हमें नहीं हो सकता। विद्या और संस्कार की शिक्षा के लिए अमुक समय निकालना अपरिहार्य है और इस लिए विद्यार्थियों के पास फुरसत का समय बहुत ही कम रहता है, सही। तौभी शारीरिक श्रम की ओर जितना ध्यान दिया जा सके, उतना देने की ओर हमारा लक्ष्य होना चाहिए। विद्यार्थियों के पास अगर फाजिल वक्त निकल सकता है तो नौकरों को फुरसत देकर भी उन्हें आप काम करने का उत्तेजन देना चाहिए। यों करने के बाद ही संस्था में शामिल नौकरों को कुछ तालीम दी जा सकेगी। शिक्षणसंस्था में काम करनेवाले नौकर अगर हमेशे अशिक्षित रहें और उन्हें शिक्षा देने की जिम्मेवरी हमें न जान पडे तो यह कोई अच्छी बात नहीं है।

हर एक जीवन-संस्था के वातावरण में पंचमहायज्ञ को स्थान होना चाहिए। ये पांच महायज्ञ मानव संस्कृति के विकास के द्योतक हैं। विद्यार्थी पहले जलाशय की शुद्धि कर के उसकी पूजा करे। नदी, तालाव, कुँए में से कीचड निकाल कर आसपास की जगह साफ रक्खे। यह पहला यज्ञ हुआ। दूसरा महायज्ञ है वृक्ष वनस्पति की सेवा — फल, फूल वगैरह की जड में मिट्टी खोद कर, खाद डाल कर, पानी सींचना। तीसरा यज्ञ है, उन ग्राम्य पशुओं की सेवा करनी जिन पर हम हमेशे निर्भर रहते हैं। कृतज्ञतापूर्वक गाय, बैल वगैरह पशुओं को खिला पिला कर, नहलाना, धोना, डांस, मच्छर वगैरह से उनको बचाना भी एक महायज्ञ है। चौथा यज्ञ तो है अपने हाथों कात कर कपडा बुन लेना। बढई के काम का भी समावेश इसीमें हो जाता है। तर्कु और तक्ष (तकुआ और बँसुला) इस यज्ञ के साधन हैं। पाँचवा महायज्ञ स्वाध्याय है। स्वाध्याय कहते हैं शुभ संस्कार दे कर संस्कृति को जागृत रखनेवाले सद्ग्रन्थों को पढना। ये पंच महायज्ञ जहां चलते हों, वहां पर शिक्षा अवश्य ही तेजस्वी होगी। परमात्मा से हम यही माँगें कि ऐसी शिक्षा देश में दाखिल करने के लिए छात्रालय साधन रूप बनें।

छात्रालय और आश्रम अगर केवल तात्कालिक जरूरत पूरी करनेवाली क्षणजीवी संस्थाएँ न हों, जीवन-व्यापी संस्थाएँ हों तो आज जिस भांति केवल पुरुष ही उन्हें चलाते हैं, उनकी कल्पना करते हैं, वैसा नहीं होना चाहिए। आश्रम स्थापित करने के लिए भी हमें हृदय-धर्मी बहनों की ही शरण जाना पडेगा। पुरुषों की बनिस्वत स्त्रियों में विवाह-धर्म कुटुम्ब-धर्म अधिक सिद्ध हुआ है। कुटुम्बधर्म का आधार केवल स्त्रियों पर ही है। इसीलिए कुटुम्बधर्म से भिन्न ऐसे छात्रालय और आश्रम स्वाभाविक रीति से स्त्रियों को नहीं रुचते। यह स्थिति जब तक रहेगी तब तक केवल पुरुषों को ही ऐसी व्यापक संस्थाएँ चलानी पडेंगी। स्त्रियां कुटुम्ब की लीक जल्दी नहीं छोड सकतीं। किन्तु जिस समय वे उसे छोडेंगी और वह भी कुटुम्ब से उतरती अस्वाभाविक स्थिति के लिए नहीं किन्तु कुटुम्ब की अपेक्षा विशाल और व्यापक जीवन इस संसार में स्थापित करने के लिए, तब वे ही समाज की अगुआ होंगी। कुटुंब धर्म में विग्रह—कलह—को स्थान है। आश्रम-धर्म का पाया केवल संयम, संतोष और आत्मसमर्पण पर ही रचा जा सकता है। ये गुण पैदा करने की शक्ति केवल स्त्रियों की ही है। इस लिए भविष्य उन्हींके हाथों है। (समाप्त)

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

भयंकरता का सिद्धान्त

हंटर कमिटी के एक सदस्य के पूछने पर जेनरल डायर ने कबूल किया था कि जलियां वाला बाग कान्ड लोगों को डराने के लिए किया गया था। इस कबूलियत से जेनरल डायर ने कोई नया सिद्धान्त नहीं बताया था। सचमुच ही, संसार की "योग्यतम सिविल सर्विस" ने अपने बडप्पन की नींव इसी भयंकरता पर डाली है।

पत्र छपते समय ऐसी खबर मिली है जिससे जान पडता है कि इस प्रख्यात नीति के अनुसार बारडोली के किसानों को दबाने के लिए बिना लंबे विचार के कार्रवाई की जाने को है। बारडोली के सत्याग्रहियों के पास जब्ती की नोटिसें पहुँच चुकी हैं। जान पडता है कि इनके नाम बहुत ही सावधानी से चुने गये थे क्यों कि ये सभी के सभी नामी बनिये हैं। यह पसंदगी, जान पडता है कि, इस लिए की गयी है क्यों कि बनिये अपनी कमजोरी और डरपोंकपने के लिए बदनाम हैं, और इस लिए आशा की गयी है कि जब्ती की नोटिस पाकर वे झुक जायँगे। अफसर लोग सोचेंगे कि बनियों के कमजोर होने बाद तो औरों का भी झुक जाना ही स्वाभाविक है। भय दिखलाने के इस पहले दृष्टान्त से सत्याग्रहियों के आश्चर्य का कोई कारण नहीं है। उन्हें जब्ती और उससे भी बुरी सजाओं की आशा रखने को बार बार कहा गया है। अगर उनमें ताकत है तो उसे वे इस मौके पर दिखलावें।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, चैत्र सुदी ८ संवत् १९८४

राष्ट्रीय सप्ताह

राष्ट्रीय सप्ताह हर साल नियमित रूप से आया करता है मगर १९२२ के बाद से बराबर ही हममें कुछ न कुछ कमी ही रही है। ६ से १३ अप्रिल तक के दिन पवित्र, आत्म-निरीक्षण के, खूब जोरों से राष्ट्रीय काम करने के और आत्म-शुद्धि के समझे जाने चाहिए। इन बहु मूल्य सात दिनों में अपने किये काम का हिसाब जोडना, अपने दिलको टटोलना चाहिए। ६ अप्रिल १९१९ की सुबह में हिन्दुस्तान को अपनी प्रतिष्ठा का भान हुआ था। हिन्दू, मुसलमान, और राष्ट्र के दूसरे लोग सगे भाई जैसे एक दूसरे से मिल गये थे और अगर वे अपने को इसी देश की सन्तान मानें तो सगे भाई तो हैं ही।

६ अप्रिल १९१९ को हिन्दुस्तान में स्वदेशी की सच्ची भावना जग उठी, जिसके फल स्वरूप खादी आन्दोलन चला, जो हमारी अखीरी गिनती के मुताबिक आज ९०,००० से भी अधिक गरीब कत्तिनों का पेट भर रहा है। यों जो भावना जगी, वह १९२० और २१ में बढती ही गयी और हम लोग कानूनी स्वराज्य भी लेते लेते रह गये।

मगर वह स्वराज्य नहीं आया और फिर हम पीछे लौट पडे। तब से तो देखने में हम पीछे ही लौटते जा रहे हैं। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे का गला काटने को तैयार हैं।

स्वदेशी के बदले आज, जब तक सरकार से कुछ फैसला नहीं हो लेता, ब्रिटिश माल के बहिष्कार की पुकार मच रही है, मानों जापान के सस्ते माल का समर्थन, जिसमें कि उसका सस्ता मखमल भी शामिल है, स्वदेशी यानी सभी विदेशी कपडों को छोडकर शुद्ध खादी का स्थान ले सकता है। सन १९२०-२१ में जान पडता था कि बहुत खोज, विचार और अनुभव के बाद हम इसी नतीजे पर आ गये हैं कि एक मात्र व्यावहारिक, बा-असर और आवश्यक स्वदेशी तो खादी है और वह किसी फैसले तक के लिए नहीं है बल्कि हमेशे के लिए या कम से कम तब तक के लिए है जब तक कि हम भूखों मरनेवाले करोडों आदमियों के लिए इससे कुछ अच्छा और अधिक आमदनी का धंधा ढूँढ नहीं लेते। कोई नयी स्थिति ऐसी नहीं आ खडी हुई है जिससे हम यह विश्वास करें कि ब्रिटिश माल का बहिष्कार व्यावहारिक प्रस्ताव है और ब्रिटिश के अलावा दूसरे विदेशी कपडों के उपयोग से भी भारतवर्ष के स्वार्थ को प्रायः उसीके बराबर हानि नहीं होगी।

क्या वे लोग जो आज ब्रिटिश माल के बहिष्कार की पुकार का समर्थन कर रहे हैं, अपने कार्यक्रम पर गंभीरता-पूर्वक विचार करेंगे और जरुरत जान पडने पर अपनी योजना को दुहरावेंगे और इस पक्के विश्वास से खादी आन्दोलन में शरीक होंगे कि केवल एक इसीसे न सिर्फ ब्रिटिश कपडे का ही बल्कि सभी विदेशी कपडों का बहिष्कार किया जा सकता है?

मगर वे यह करें या न करें, मुझे विश्वास है कि ब्रिटिश के सिवाय और कपडों के समर्थन को वे सिद्धान्त की बात नहीं बनाते हैं। अगर मेरी यह मान्यता ठीक हो तो, उनको राष्ट्रीय सप्ताह में खादी की बिक्री का समर्थन करना चाहिए। अगर वे सिर्फ पिछले सात वर्षों में खादी आन्दोलन की प्रगति का अध्ययन करें तो उन्हें जरूर पता चल जायगा कि खादी में इतनी अधिक शक्ति है, जितनी का ख्वाब भी उन्होंने नहीं देखा था। अगर राजनीतिक वृत्तिवाले हिन्दुस्तानी उसका समर्थन करें तो वह मिलों की सहायता के बिना भी विदेशी वस्त्र का बहिष्कार सफल करने में समर्थ है। मिलों की सक्रिय और संगठित सहायता से विदेशी वस्त्र का बहिष्कार बहुत सहज काम हो जाता है। सच पूछिए तो इसकी कुंजी मिलवालों के हाथ है, बशर्ते कि वे उसका उपयोग राष्ट्र के लिए करें। उनके हाथ में एक बना बनाया, और विस्तृत संगठन है, जिसे वे अगर राष्ट्र की सेवा में लगावें तो, वह बहिष्कार का मसला बहुत कुछ सीधा कर दे सकता है और राष्ट्र को परमावश्यक शक्ति दे सकता है।

और आखिर हिन्दू और मुसलमान उन कीमती सात दिनों को याद क्यों न करेंगे और पारस्परिक अविश्वास तथा निर्बलता को क्यों न छोड देंगे?

अछूतों को भी नहीं भूलना चाहिए। उन्हें दबाते रहने के दोषी हम हिन्दू लोग हैं। क्या हम यह नहीं देख सकेंगे कि अपने छठवें अंश को (या चाहे जो संख्या हो) नीचे गिरा कर हमने अपने आप को ही नीचे गिराया है? कोई आदमी खुद गढे में उतर कर आप पाप का भागी हुए बिना दूसरे को उसमें नहीं गिरा सकता। दलित लोग पाप के भागी नहीं हैं। दबाने के पाप का जवाब तलब किया जायगा तो उन्हीं लोगों से जो दूसरों को नीचे दबाये हुए हैं।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ४५

चालाकी?

आपनी सलाह की वाजबियत के बारे में तो मुझे शंका बिलकुल ही नहीं थी। किन्तु उस मुकद्दमे की पूरी पैरवी कर सकने की अपनी योग्यता के बारे में बहुत ही शंका थी। यह मुझे बड़ी ही जोखिम भरा लगा कि ऐसे जोखिमवाले मुकद्दमे में मुझे बड़ी अदालत में बहस करनी पडे। इस लिए मन ही मन कांपता हुआ में न्यायाधीश के सामने खडा हुआ। उस भूल की बात निकलते ही एक न्यायाधीश बोल उठे;

"यह चालाकी नहीं कही जायगी?"

मुझे गुस्सा हो आया। जहां चालाकी की गंध सी भी न हो वहां चालाकी का शक करना असह्य लगा। मैंने मन में सोचा "जब पहले से ही जज का मन फिरा हुआ है, तब इस मुश्किल मुकद्दमे में जीत कैसे होगी?"

अपने रोष को मैंने दबाया, और शान्त होकर जवाब दिया:

"मुझे आश्चर्य होता है कि आप पूरी बात सुने बिना ही चालाकी का इल्जाम लगाते हैं!"

जज बोले, "मैं इल्जाम नही लगाता। महज शंका उठाता हूँ।"

मैंने जवाब दिया, "आपकी शंका ही मुझे आरोप-रूप लगती है। मैं अपनी बात सुनाता हूँ। बाद में अगर शंका की जगह हो तो जरूर उठाइएगा।"

जज शान्त होकर बोले, "आपको बीच में ही रोकने के लिए मैं दिलगीर हूँ। आप अपना खुलासा सुनाइए।"

मेरे पास खुलासे के लिए संपूर्ण मसाला तैयार था। आरंभ में ही शंका उठी और जज का ध्यान मेरी ओर खिंचा। इससे मुझे हिम्मत आयी और मैंने ब्यौरेवार समझाया। जजों ने उसे धैर्य से सुना और उन्होंने समझा कि भूल तो महज आंख की चूक

हुई थी। बहुत परिश्रम से तैयार किया गया हिसाब रद कर देना उन्हें नहीं रुचा।

विरोधी पक्ष के वकील को विश्वास हो गया था कि मेरे भूल कबूल करने बाद उन्हें कुछ बहुत बहस करने को नहीं रहेगी। किन्तु ऐसी स्पष्ट और सुधर सकने लायक बात के लिए पंचों का फैसला रद करने को जज बिलकुल ही तैयार न थे। विरोधी पक्ष के वकील ने बहुत ही सिर पच्ची की किन्तु जिस जज ने शंका उठायी थी, वही मेरा हिमायती बन बैठा था।

जज बोले, "मि० गाधीने जो भूल कबूल न की होती, तो आप क्या करते ?"

"हिसाब किताब के जिन जानकारों को हमने चुना उनसे अधिक हाशियार या प्रामाणिक विद्वान् हम कहां से लावें ?"

"हमें मानना चाहिए कि आप अपना मुआमला ठीकठीक जानते हैं। हिसाब का अनुभवी हरएक आदमी भूल कर सकता है। ऐसी भूल के अलावा अगर आप दूसरी भूल न दिखा सकें तो कानून के इस निर्जीव दरवाजे के कारण दोनों पक्षों को शरह नौ से खर्च में डालने को अदालत तैयार न होगी। अगर आप कहें कि अदालत ही यह मुकद्दमा फिर से सुने तो यह भी होना नहीं है।"

ऐसी और इसी भांति की दूसरी अनेक दलीलों से जजों ने वकील को शान्त किया, भूल सुधार कर, अथवा इतनी भूल सुधार कर फिर से फैसला भेजने का हुकम पंचों को भेजा और उस सुधरे हुए फैसले को कायम रक्खा।

मेरे हर्ष का पार न रहा। मुवक्किल और बडे वकील प्रसन्न हुए और यह मान्यता दृढ हुई कि वकालत के काम में भी सत्य का पालन करते हुए काम हो सकता है।

पाठकों के लिए यह याद रखना जरूरी है कि धंधे या रोजी के लिए की जानेवाली वकालत के मूल में ही जो दोष घुसे हुए हैं उन्हें सत्य की रक्षा नहीं ढाँक सकती।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

धर्मपरिवर्तन या आत्मपरिवर्तन

[मि. आयरलैण्ड नाम के कैंब्रिज मिशन के एक पादरी मित्र कुछ दिन पहले आश्रम में आये थे। जब अंतर्राष्ट्रीय बंधुत्व संघ की बैठक हुई थी तब वे उसमें हाजिर तो नहीं हो सके थे किन्तु उसका अहवाल उन्होंने यं. इं. में पढा, धर्मपरिवर्तन के बारे में गांधीजी के विचार पढे और गांधीजी को एक लंबा सा पत्र लिख कर कितनी हो एक शंकाएँ पेश कीं। उस पत्र का सारांश और गांधीजी का जवाब यहां दिये जाते हैं:]

"१. 'सभी धर्म सच्चे हैं' और सभी धर्मों में सत्य है — इन दो बातों में फर्क है। सत्य सभी धर्मों में होता है सही, मगर क्या वहम और भूत-प्रेत की पूजा के आधार पर बने धर्म और हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई धर्म जैसे महाधर्म, सभी के सभी अच्छे हैं? मुझे तो लगता है कि धर्म की बात दूर किनार रक्खें, तौभी जंगली प्रजा के भले के लिए भी हम उन्हें उनकी मौजूदा हालत में नहीं छोड सकते।

"२. इस लिए सच्ची बात तो यह है कि सभी धर्मों में सत्य है और उसके साथ असत्य भी मिला हुआ है। हममें से हर एक को प्रभु के बतलाये रास्ते पर असत्य को छांट कर सत्य के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करना चाहिए। और अगर हम ऐसा कर सकें तो दूसरों को भी ऐसा करने का अधिकार होना चाहिए।

३. आपने गुलाब के फूल का जो सुन्दर दृष्टान्त लिया है, वह मुझे बहुत ही पसंद पडा है। जिसे तरह गुलाब की सुगंध अपने आप ही फैलती है, उसी भांति हर एक आदमी की धार्मिकता की सुवास अपने आप ही फैलनी चाहिए, सही। मगर इससे क्या यह सच साबित होता है कि किसी दूसरे तरीके से हम अपनी सुवास नहीं फैला सकते ?

"४. ईसाई धर्म का अर्थ आज कुछ खास प्रथाएँ और मान्यताएँ हो पडी हैं। और ईसाई बनाना भी तबलीग या शुद्धि जैसी चीज माना जाता है। किन्तु अगर किसी आदमी को ईसू की जीवन लीला में सत्य और प्रेम का ऐसा दर्शन होवे, जैसा दूसरी किसी जगह न हो, और उस दर्शन के कारण वह ईसू का बंदा बन जाय तो वह क्या उसे प्रकट किये बिना रह सकता है या उसका लाभ लूटने के लिए औरों को भी न्योते बिना कभी रह सकता है ?

"५ ईसू की बंदागिरी कबूल करने से कुटुंब और परिजन से अलग होना ही पडता है और यह सब को अत्यन्त दुःखद लगता है। किन्तु इस दुःख के कारण मुख्यतः वे कुटुंबी जन ही होते हैं।

"ईसू तो सब की भवपीर हरने की, हमारा भार उठाने और अपने पंथ पर चलने की पुकार करते हैं। जिस तरह यह हो सके, आप करें। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अपना संघ बढाने, अपने हक्कूक बढाने के प्रयत्न करें। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि हम अपने आस पास में अपनी सुवास फैलावें। यह तो आप जानते ही हैं, और हम भी जानते हैं कि ऐसा करने में हमें कितनी कम सफलता मिली है। किन्तु इसमें तो शंका ही नहीं है कि ईसू हमसे इसी प्रकार का धर्म-प्रचार चाहते हैं।"

बंधुत्वप्रचारकों की परिषद् में तो मैंने स्पष्ट किया ही था कि मैं जगत के मुख्य धर्मों की बात करता हूँ। और मेरे कहने का अर्थ यह था कि ये सभी मुख्य धर्म थोडे बहुत सच्चे हैं किन्तु अपूर्ण तो सभी हैं। इस लिए इस बात में और मि० आयर्लैंड के कथन में कोई भेद नहीं है। किन्तु मि० आयर्लैंड के पत्र से यह छाप पडती है कि धर्म परिवर्तन के बारे में उनके और मेरे विचारों में तात्विक भेद हैं। यों सदोष तो रूपक मात्र होते हैं किन्तु हम गुलाब की सुवास के रूपक को जरा और आगे ले चलें। गुलाब अपनी सुवास अनेक तरह से नहीं किन्तु एक ही तरह से फैलाता है। जिसे नाक ही न हो, उसे यह सुगंधि मिलने से रही। यह सुवास जीभ, कान, त्वचा से तो नहीं ही लिया जा सकती। इसके लिए केवल घ्राणेन्द्रिय ही चाहिए। इस लिए आध्यात्मिकता की सुवास भी आध्यात्मिक इन्द्रिय के द्वारा ही ली जा सकती है। इस लिए सभी धर्मों ने इस इन्द्रिय को जागृत करने की आवश्यकता स्वीकार की है। यह जागृति एक तरह का पुनर्जन्म है। अतिशय आध्यात्मिकता वाला ऐसे आदमी के भी हृदय को बिना हिले डुले, बिना एक शब्द भी कहे, इशारा किये, या कुछ भी किये स्पर्श कर सकता है, जिसे न उसने कभी देखा हो, और जिसने भी उसे कभी न देखा हो। जब कि आध्यात्मिकता रहित किन्तु अत्यन्त वाणपटु या वाणी पर बहुत ही अधिकार रखनेवाला प्रचारक उसके हृदय को स्पर्श नहीं कर सकेगा। इस लिए मेरी नम्र मान्यता है कि आजकल के बहुत से मिशनों का प्रयत्न व्यर्थ है, बल्कि बहुत बार तो हानिकारक भी होता है।

इसके अलावा इन मिशनों के मूल में एक दूसरी वस्तु भी गृहीत होती है। वह यह कि मेरी मान्यता महज मेरे ही लिए नहीं बल्कि सारे संसार के लिए सच्ची है। जब कि सच्ची बात यह है कि परमात्मा हजारों और लाखों अदृश्य और अज्ञात कलाओं से हमारे पास आया करता है। इसलिए मिशनरियों के प्रयत्न में सच्ची नम्रता, सच्ची विनय नहीं होती — सच्ची विनय तो उसे कहते हैं

जिसमें मानव-मर्यादाएँ सहज ही स्वीकार की जायँ और ईश्वर की अमर्याद शक्ति का भान होवे । मुझे यह ख्याल कभी नहीं होता कि मैं जंगली कहे जानेवाले लोगों से आध्यात्मिकता में जरूर ही बढा चढा हूँ । और ऐसा ख्याल खतरनाक भी होता है । आध्यात्मिकता तो इन्द्रियग्राह्य, पृथक्करणीय और सिद्ध की जाने लायक वस्तु नहीं है । अगर मुझ में वह वर्त्तमान हो तो दुनिया में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो उसे मुझ से छीन सके और उसका असर अपने समय पर हुए बिना नहीं रह सकता ।

इससे उलटा वैद्यक या दूसरे शास्त्रों का ज्ञान ऐसी वस्तु है कि उनमें मैं दूसरों से अधिक जानकार हो सकता हूँ और मुझे अगर अपने मनुष्य भाइयों से प्रेम होवे तो उन्हें उसका लाभ दे सकता हूँ । किन्तु आध्यात्मिक बातें तो ईश्वर पर ही छोड़ूँगा और ऐसा करके ही अपने मानव-बंधुओं तथा अपने बीच का संबंध, पवित्र सच्चा और मर्यादित रक्खूँगा । किन्तु इस दलील को और आगे बढाने में मैं कोई सार नहीं देखता हूँ । यह वस्तु ही ऐसी है कि जिसका अंतिम निर्णय दलाल से हो ही नहीं सकता । खासकर अपनी जो वृत्ति मैंने यहां प्रकट की है, उसको ध्यान में लेते हुए, मेरी ओर से तो हो ही नहीं सकता ।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

प्रभु का कार्य्य

लंडन मिशन के एक पादरी मित्र पुदुपालयम नगर देखने आये थे । हमारे खादी-काम को देख कर उन्होंने पूछा, "क्या आपको विश्वास होता है कि इस यंत्र-युग में आपको सफलता मिलेगी?"

मैंने जवाब दिया, "अच्छा होता अगर पहले आप यह विचारते कि काम अच्छा है या बुरा । इस प्रश्न को हल करने के बाद ही हम सफलता या निष्फलता का विचार करेंगे ।"

"वाह वाह! सफलता क्या महत्व का प्रश्न नहीं है?"

मैंने कहा, "हां ठीक, उस प्रश्न पर भी हम जरूर विचार करेंगे पर दूसरे प्रकरण पर आने के पहले तो पहला प्रकरण पूरा कर लेना चाहिये न?"

"ठीक; हां तब सुनाइये ।"

लंडन मिशन की दो बहनें भी उनके साथ आयी थीं । सुनने का मन सबका जान पडा और मुझे तो एक सहज बहाना भर मिलना चाहिए, फिर मेरी खादी की ही कथा शुरु होती है ।

मैंने यों कथा शुरु की "पहले आप हमारा सवाल ठीक ठीक समझ लीजिए । अगर आप यह समझते हों कि यह महज कपडे का ही सवाल है तो इसमें आपकी भूल होती है । दूर दूर के गांवों में बसनेवाले, हमारे देश के सैकडे ९० लोगों के लिए रोजी ढूँढने का सवाल है । उन्हें खूराक तो चाहिए ही और काम ही खूराक है । काम मिले तो खूराक भी मिले ।"

उन्होंने कहा, "सच, काम ही खूराक है ।"

मैंने कथा आगे चलायी, "वे सभी निरक्षर हैं । बहुतों को जमीन तो मिलती ही नहीं, वे दूसरे की जमीन पर मजदूरी करके पेट पालते हैं । उनकी गरीबी की क्या बात कहूँ? आप ने यह अनेकों बार सुनाही होगा कि उन्हें भरपेट खाने को भी नहीं मिलता ।"

उन्होंने कहा "मैं जानता हूँ ।" वे लोग आप भी गांवों में काम करते हैं इस लिए मेरी बात का सम्पूर्ण भावार्थ समझना उनके लिए मुश्किल न था ।

मैंने पूछा "तब इन लोगों को आप कौन सा काम देंगे?"

उन्होंने कहा हां, "उनकी परिस्थिति के अनुकूल काम ढूँढ देना चाहिए । किन्तु इंग्लैंड में जिस तरह इस सवाल को हल किया गया है वैसे ही आपको भी करना चाहिए ।"

यह बात मेरे गले में न उतरी । मैंने सवाल किया "इंग्लैंड में लोग कारखाने खोल कर के साम्राज्य के लिए माल तैयार करते हैं । हिन्दुस्तान में भी आपको यही प्रयोग कर देखना है?"

उन्होंने तुरत जवाब दिया, "ना ना, इसकी मुश्किल मैं समझ सकता हूँ ।"

"हमारे करोडों दीहातियों के लिए अपना घर छोड कर कारखाने में जाना लाभदायक नहीं होगा । सारी दुनिया का बाजार हमारे हाथों होता तौभी कारखाने खडे करने की कोई सीमा होती और मजदूरों को जिस बुरी हालत में रहना पडता है, उसे हम भूल भी जायँ तौभी शहरों में उनके समाने की भी कोई हद होगी न?"

उन्होंने कबूल किया "हां, जरूर होगी ।"

मैं आगे बढा, "इसलिए इसका स्वाभाविक उपाय यह है कि इन लोगों को, हमारी देश की जरूरियात की चीजें घर बैठे पैदा करनी चाहिए । हमारी मुख्य जरूरियात तो अन्न, वस्त्र हैं ।"

उन्होंने कहा "सच, मुझे यह बात कबूल है कि लोगों को इन दो ही चीजें तैयार करने में लगाना चाहिए ।"

"खैर, देखिए, अन्न पैदा करने में तो हम अपने गांवों के लोगों को लगाते हैं किन्तु वस्त्र उत्पन्न करने का दूसरा काम, जो किसी समय उनका था, आज उनके पास से छिन गया है ।"

"बेश, पर वह तो मिल में बनता है न?"

मैंनें कहा "फिर आप रास्ते से भटक गये । हमें मिलों में कपडा बनाने से लाभ नहीं है क्योंकि यह कोई जैसे तैसे कपडा बना लेने का सवाल नहीं है किन्तु यह तो ऐसे लाखों और करोडों स्त्री पुरुषों को रोजगार देने का है, जिन्हें हम कारखाने में या शहरों में नहीं ले जा सकते ।"

"हां, अब समझा" कह कर मित्र ने सिर हिलाया किन्तु यह बनावटी था । उनका यंत्रयुगी मन हिन्दुस्तान की परिस्थिति में यंत्रों का मेल बैठाने के लिए मथ रहा था ।

उन्होंने पूछा, "पर उन लोगों से क्या कोई दूसरा काम नहीं ले सकते?"

"पर वे दूसरा जो कुछ बनावें उसका हम करें क्या! लोग अन्न और वस्त्र जितना उत्पन्न करें उतना हम काम में ला सकते हैं किन्तु इसी मिकदार में उत्पन्न होनेवाली कौनसी दूसरी चीज हमारे काम आयेगी?"

मेरे मित्र ने पूछा "ठीक तब आपको अभी कितनी सफलता मिली है?"

"अभी तो दाल में नमक भर ही हुआ है । मगर गांवों में जो बेकारी फैली हुई है, उसके निवारण के लिए ऐसा कोई काम ढूंढ निकालना चाहिए गांवों में जिसके विस्तार की कोई सीमा ही न रहे । हमारा दावा है कि ऐसा ही काम खादी का है ।"

उन्होंने कहा, "हां, आपकी बात समझ में तो आयी, मगर इस चढाऊपरी के और यंत्र के युग में आपको इस काम में सफलता की आशा है?"

मैंने जवाब दिया, "अब आप चर्चा के दूसरे प्रकरण पर आये हैं । इसके जवाब में मैं कहूँगा कि इस बारे में सफलता, असफलता का सवाल ही नहीं उठना चाहिए ।"

वे बोले, "अजी जाइए भी, यह बात तो किसी काम की नहीं है ।"

मैंने कहा, "नहीं भाई, जरा शान्त हूजिए । हमें जीवन मरण की समस्या को हल करना है । अब अगर हमारे सामने दो उपाय होते तो हम विचार करते कि उनमें किसकी सफलता की

...संभावना है। किन्तु जब केवल एक ही रास्ता होवे तब तो फल को परमात्मा के ऊपर छोड कर हमें काम ही करते जाना चाहिए।"

किन्तु उन्होंने टोका, "यह तो आप व्यवहार की बातें नहीं करते हैं।"

मैंने पूछा, "हम क्या इसी भांति अपनी जान या अपने मुल्क की रक्षा के लिए नहीं लडते? तब क्या हम सफलता निष्फलता का विचार करते हैं? दूसरा कोई काम सुझाइए जो ये लोग कर सकें, तब मैं सोचूँगा कि इनमें किसके सफल होने की अधिक संभावना है।"

इस पर मित्र ने दूसरी दलील शुरू की, "मैं तो हमेशे आदमी की मेहनत कम करने की इच्छा करनेवाला हूँ। मुझे तो गरीब लोगों को विनोद के लिए, पढने, लिखने, प्रार्थना के लिए फुरसत चाहिए है। और आपका इरादा तो उनसे बाहर मास चौबीस घन्टे काम लेने का जान पडता है।"

मैंने कहा, "क्यों भाई साहेब, अगर यह अवकाश सहज ही मिलता हो तो उन्हें मीठा लगेगा और मुझे कडवा? मैं क्या नहीं चाहता कि इन्हें फुरसत मिले। मगर एक ओर बेकारी और भूख की बातें करें तो दूसरी ओर फुरसत की बात नहीं हो सकती। आप ऐसा कोई उपाय बताइए जिससे इन्हें काम और भरपेट खाना मिले। फिर इनकी फुरसत मुझे नहीं अखरेगी। मगर इन भूखे और म्रियमाण लोगों से फुरसत की बात करनी तो उनका उपहास करने के समान है।"

मानों कोई नया सत्य देखा हो, इस भांति वे बहनें चौंक उठीं। वे मेरी ओर इस तरह ताकने लगीं मानों पूछती हों कि, "क्या आपकी बात सच्ची है?"

मित्रने पूछा, "क्या तब कभी कोई सस्ता कपडा खरीदे नहीं? मिलों के इस सस्ते माल के सामने खादी कब तक ठहरनेवाली है?"

"जिससे देश को रोजगार मिलता हो उस चीज का समर्थन करना ही चाहिए। अगर राज्य उसका पालन न करे तो हम लोगों से जिससे पार लगे, महँगे दामों भी उसे वही वस्तु खरीदनी चाहिए।"

उन्होंने फिर उज्र किया, "किन्तु यह तो मनुष्य-स्वभाव के विरुद्ध है।"

मैंने पूछा, "क्या स्त्री पुरुष सस्ते से सस्ता ही कपडा खरीदते हैं! जिस कपडे को पहन कर के ज्यादे फक्कड और अपनी कल्पना के अनुसार अधिक सुन्दर जान पडते हैं, उसे अधिक दाम देकर भी क्या नहीं खरीदते? क्या हम लोगों को पर्वों और उत्सवों में पानी सा धन बहाते नहीं देखते?

जवाब मिला, "किन्तु उनकी यह इच्छा तो स्वाभाविक है।"

"क्यों, अपने भूखों मरते भाई बहिनों को कुछ धंधा देकर उनकी मदद देनी अस्वाभाविक है? पडोसी और देश का प्रेम अस्वाभाविक हैं क्या? हमारे आधे आदमी भूखों मरतें हैं, उन लोगों को कुछ न कुछ रोजगार देना ही चाहिए, और वह धंधा कपास पैदा कर, उस पर सभी कियाएँ करके कपडा तैयार करने का है। इतनी बात क्या लोगों को समझा सकने की आशा मैं न करूँ?"

"हां, मगर यह तो पाताल का पानी आकाश में चढाने जैसा कठिन है।"

"हिन्दुस्तान के ३३ करोड आदमियों का धर्म बदल कर उन्हें ईसाई बनाना सहज काम लगता है क्या? वह काम उठाने में क्या आप कभी सफलता निष्फलता का विचार करते हैं?"

मेरी यह दलील काम कर गयी। शायद दूसरे किसीको कडवी लगती मगर ये तो सत्य के सच्चे शोधक थे।

मेरे मित्र ने कहा, "माफ कीजिएगा। मगर एक सवाल पूछे बिना नहीं रहा जाता।"

मैंने कहा, "जरूर पूछिए।"

"आपको क्या लगता है कि आपके इस काम में ईश्वर है? हमें तो लगता है कि ईसू के वचनामृत का प्रचार करना ईश्वर का काम है। उसमें हम ईश्वर का दर्शन करते हैं। इसलिए हम सफलता निष्फलता का विचार नहीं करते। पर आपको भी क्या अपने काम में हमारी ही जैसी श्रद्धा है?"

मैंने कहा, "अब आपने इस चीज की जड पकडी है। हां, हमें इस काम में ईश्वर का दर्शन होता है। ईश्वर के इन भूखों मरते बालकों की भूख मिटाने के सवाल को हल करना भी ईश्वर का ही काम है। हमें तो ऐसा लगता है कि ईश्वर ने ही हमें यह संदेशा दिया है। इसलिए मैंने जो कहा था कि आपका उठाया दूसरा सवाल यहां उठता ही नहीं है, वह इसी अर्थ में।"

मित्र बहुत प्रेम से बोले, "अगर आपकी यह श्रद्धा होवे तो आप आंख मूँद कर आगे बढे जाइए।"

और जाते समय उन्होंने प्रार्थना की। प्रार्थना में शामिल होने को मुझे भी न्यौता। इस सच्ची और सादी प्रार्थना का भाव था, "हे प्रभु हमें सच्चे रास्ते पर ले जाओ —असतो मा सद्गमय।"

(अँगरेजी में से) **चक्रवर्त्ती राजगोपालाचारी**

टिप्पणियां

खास राष्ट्रीय सप्ताह के लिए

श्रीयुत विठ्ठलदास जेराजाणी (खादी भंडार, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बंबई) लिखते हैं:—

"पिछले छह साल के राष्ट्रीय सप्ताहों में खादी भंडार के काम की रिपोर्ट आप के लिए मनोरंजक होगी। उन वर्षों के राष्ट्रीय सप्ताहों में क्रमशः खादी की इतनी बिक्री हुई थी:—

साल	रु.
१९२२	४२,५३९)
१९२३	२३,९९७)
१९२४	२०,४०१)
१९२५	११,८६७)
१९२६	२०,०१४)
१९२७	३२,०८६)

"गत वर्षों में हमारे पास इतने किस्म के कपडे न थे जितने अब हैं। हमारे पास पसंदगी के लिए कपडे तो बहुत किस्म के हैं ही, साथ ही खादी की जाति भी पहले से बहुत अधिक सुधर गयी है।

"निश्चय ही इस बार चूँके स्वदेशी भावना पहले से अधिक है और विदेशी वस्त्र का बहिष्कार सफल करने की आवश्यकता अधिक समझी जा रही है, इस लिए हमेशे से अधिक खादी बिकनी चाहिए।

"लोग यह याद रक्खें कि इस साल हम १ली से १५ वीं अप्रिल तक के बीच खादी खरीदने वालों को रुपये पीछे एक आना कमीशन देने वाले हैं।

"इस अवसर पर हम खादी–पत्रिका का भी विशेषाङ्क अंक निकाल रहे हैं।"

मैं जरूर आशा रखता हूँ कि श्रीयुत जेराजाणी की समुचित इच्छा और आशा के अनुरूप ही यथेष्ट खादी बिकेगी। राष्ट्रीय धुन का असर बंबई पर हमेशे ही पडा है। पहला खादी

भंडार खोल कर बंबई ने राष्ट्रीय खादी आन्दोलन की नींव डाली थी। पत्र में दिये गये आंकडे भी शिक्षाप्रद हैं। १९२५ में इतनी बडी घटी का कारण बतलाया जाता है कालबादेवी रोड में एक और खादी भंडार का खोला जाना। खैर, तौभी दूसरे साल के आंकडे यह स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि बंबई राजनीतिक वृत्तिवाले हिन्दुस्तान की मनोवृत्ति का सच्चा परिचायक है। १९२७ के अंकों से तो १९२६ की बनिस्बत स्पष्ट उन्नति दिखलायी पडती है। क्या बंबई फिर १९२२ के जमाने तक उठेगा? मगर इसका यह मतलब नहीं है कि १९२२ तक ही उठने से बहिष्कार सफल हो सकेगा, जो करना हम चाहते हैं और कर भी सकते हैं, अगर हम में केवल आवश्यक त्याग और दृढ निश्चयता हो।

दूसरी एक और विज्ञप्ति शुद्ध खादी भंडार, रिचीरोड, अहमदाबाद से मेरे पास आयी है। यह भंडार भी कपडे के किस्म के अनुसार, रुपये पीछे एक से चार आने तक कमीशन देनेवाला है।

मैं आशा करता हूँ कि सभी खादी-भंडार चाहे वे चर्खा संघ के हों, या उससे प्रमाणपत्र-प्राप्त हों, जानता की दृष्टि के सामने खादी को लाने की खास कोशिश करेंगे और सर्व साधारण भी खादी खूब खरीदेंगे।

बंगाल में खादी-भ्रमण

बंगाल के बेताज के राजा स्व० देशबन्धु चित्तरंजन दास की स्मृति में खोले गये अ० भा० देशबन्धु स्मारक कोष के लिए, जो खादी के लिए है, बंगाल में सेठ जमनालाल बजाज, श्रीयुत राजगोपालाचारी, श्रीयुत मणिलाल कोठारी और श्रीयुत शंकरलाल बैंकर आगामी ५ अप्रिल से भ्रमण करनेवाले हैं। हाल में बंगाल में स्वदेशी की एक लहर चल रही है। मगर मुझे भय है कि शायद इस सीधे सादे जीवन-दायी स्वदेशी शब्द के चारों ओर के शब्दाडम्बर में उसका सच्चा अर्थ भूला जा रहा है। हम इसके शब्दार्थ को ही पकडे रहें और फिर हमें उसमें खादी के सिवाय और दूसरा कुछ नहीं मिलेगा। स्वदेशी का अर्थ है 'अपने देश का।' दीहातियों के रोजमर्रा के इस्तेमाल की चीजों में सिर्फ एक कपडा ही है जो 'अपने देश का नहीं है।' और वे सहज ही बना भी सकते हैं तो सिर्फ कपडा ही भर। इस लिए वे जो स्वदेशी सहज ही पूरा कर सकते हैं, और जिसके बिना उन्हें भूखों मरना ही पडेगा, वह केवल खादी ही है—और कुछ नहीं है। इसीलिए खादी सभी देशभक्तों के लिए सच्चा स्वदेशी है। मैं इसलिए आशा करता हूँ कि सेठ जमनालाल जी और उनके साथी जहां कहीं जायँगे, बंगाल उनकी हार्दिक सहायता करेगा। खादी का एक गज भी खरीदने से और स्मारक कोष में कुछ भी दान देने से बहिष्कार आन्दोलन को और देश के सबसे बडे गरीबों को सहायता मिलती है।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

वृद्ध-विवाह बनाम बाल-विवाह

एक गृहस्थ सूरत से लिखते हैं:

"आप जब वृद्ध-विवाह के बारे में इतना लिखते हैं, वृद्ध-विवाह करना मना करते हैं, तब आप बाल-विवाह के बारे में क्यों नहीं लिखते?

"वृद्ध-विवाह तो सौ में दो होते होंगे। जब कि बाल-विवाह तो ब्राह्मण, बनिया, वगैरह जातियों में भी सौ में पचास होते हैं। और दूसरी जातियों में सभी के सभी बाल-विवाह ही होते हैं।

"तेरह चौदह वर्ष की लडकियां मा बन बैठती हैं, और पंद्रह, सोलह साल के छोकडे दो दो बच्चों के बाप होते हैं। उनके शरीर पूरे पूरे खिले नहीं होते। वे तो समझते ही नहीं कि विवाह कौन सी चिडिया है, तौभी उनके हित का दावा करने वाले मा बाप उनका अपार अहित कर रहे हैं। दुर्भाग्य से जो लडका मर गया तो व्याह करनेवाली लडकी व्याह के समय समझती ही नहीं कि मेरा मालिक कौन है। उसके भाग्य में जिन्दगी भर का वैधव्य लिखा जाता है। जो लडके जीते भी हैं, वे भी बडी उम्र तक नहीं जीते। २०, ३० साल की जवानी में या तो स्त्री मर जाती है या उसका पति दो चार बाल बच्चों को गरीबी में मरने छोड कर मर जाता है।

"ऐसे बाल-विवाहों को जिनसे देश अधोगति को जाता है रोकने की खास जरूरत है। इसके बारे में कोई जबान हिलाया करने नहीं आया है, और कोई इसका विरोध भी नहीं करता।

"वृद्ध-विवाह में इतनी हानि नहीं दिखायी पडती। वृद्ध-विवाह में केवल स्त्री के विधवा होने का दुःख है। किन्तु आपने तो वैधव्य का जो बखान किया है, वह 'नवजीवन' में मैंने पढा है। जो वृद्ध विवाह करने निकले हैं, वे गरीब नहीं होते। इस लिए विधवा को खाने पीने या रहने का दुःख नहीं होता। बूढे को कन्या देने वाला धन को मान देकर कन्या का पिछला सुख विचार लेता है।"

इसमें बाल-विवाह की जो टीका है, वह बहुत अंश तक सही है। लेखक अगर 'नवजीवन' के पिछले अंक पढ जायँ तो उन्हें मालूम हो जायगा कि 'नवजीवन' में बाल-विवाह की सख्त टीका अनेक बार हुई है। मैं यह भी जानता हूँ कि उन लेखों से अनेक बाल-विवाह होते होते रुके भी हैं। पर उसमें अभी बहुत बडा सुधार करने की गुंजायश है। वृद्ध-विवाह से जितनी अरुचि समाज में पैदा हुई है, उतनी बाल-विवाह से नहीं। नीति दृष्टि से तो दोनों वस्तुएँ जड से खोद फेंकने लायक हैं। इस लिए बाल-विवाह के विरोध के बारे में लेखक के और मेरे बीच मतभेद नहीं है। मेरे हाथ में सत्ता हो या मेरी कलम में यथेष्ट बल हो तो मैं उनका उपयोग प्रत्येक बाल-विवाह को रोकने में करूँ। जो मा बाप अपने लडकों का विवाह बचपन में करते हैं, वे उनके दुश्मन बनते हैं और उन्हें पराधीन और अशक्त बना डालते हैं।

किन्तु लेखक का उद्देश्य तो बाल-विवाह की निन्दा कर वृद्ध-विवाह की स्तुति करने का जान पडता है। वृद्ध-विवाह के जो लाभ ये बतलाते हैं, वे हास्यजनक लगते हैं, और इतना ही नहीं बल्कि उसमें तो बेचारी गरीब लडकी के मन के भावों का विचार सा भी नहीं किया गया है, अथवा जो है भी वह मानो उसकी आर्थिक स्थिति भर के ही लायक। लेखक यह भूल ही गये हुए से लगते हैं या उनकी दृष्टि में इसका विचार ही अनावश्यक होना चाहिए कि जिन कन्याओं का विवाह वृद्ध पुरुषों के साथ किया जाता है, उसमें उनकी सम्मति नहीं ली जाती। लेखक को तो इसका भान भी नहीं है कि विवाह धार्मिक विधि है और उसमें उनका बडा दोष यह दिखायी पडता है कि वे भूल जाते हैं कि वृद्ध-विवाह तो दुगुना बाल-विवाह है; क्योंकि वृद्ध-विवाह में कन्या तो बालिका होती ही है और जो वृद्ध पुरुष वृद्ध होने पर भी विवाह करने का विचार करता है, वह बालक ही, या उससे भी उतरता हुआ गिना जायगा। कन्या तो, वर के जीते हुए भी, एक तरह से विधवा ही गिनी जायगी। जो बूढे पुरुष अपने विकारों को रोकने में असमर्थ हों और इस लिए अथवा किसी दूसरे कारण से विवाह करने को तैयार हों, वे अपने ही जैसी किसी वृद्ध स्त्री से या पुख्त उम्र को पहुँची हुई किसी ऐसी स्त्री से विवाह करें जो बूढे से संबंध जोडने को तैयार हो तो, समाज की कम से कम हानि होनी संभव है।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

बहिष्कार

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ३३

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द	अहमदाबाद, चैत्र सुदी १५ संवत् १९८४ गुरुवार, ५ अप्रैल १९२८ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ४६

मुवक्किल साथी बने

नेटाल और ट्रांसवाल की वकालत में यह भेद था कि नेटाल में एडवोकेट और अटर्नी के भेद होते हुए भी दोनों सभी अदालतों में एक समान वकालत कर सकते थे जब कि ट्रांसवाल में बंबई के समान ही भेद था। वहां पर एडवोकेट मुवक्किल के साथ सारी बात व्यवहार सिर्फ अटर्नी की ही मार्फत कर सकता था। अगर कोई बारिस्टर हो चुका हो तो वह जो चाहे, एडवोकेट या अटर्नी का परवाना ले सकता था और तब केवल एक वही धंधा कर सकता था। नेटाल में मैंने एडवोकेट का परवाना लिया और ट्रांसवाल में अटर्नी का। एडवोकेट बनने से हिन्दुस्तानियों के साथ मेरा सरोकार होता नहीं और दक्षिण अफ्रिका में ऐसा वातावरण भी नहीं था कि गोरे अटर्नी मुझे मुकद्मे देते।

ट्रांसवाल में यों वकालत करते हुए मैं मजिस्ट्रेट की अदालत में तो बहुत बार जा सकता था। यों करते हुए एक प्रसंग ऐसा आया कि मुकद्मा चलने के दर्म्यान मैंने देखा कि मुवक्किल ने मुझे ठगा है। उसका मुकद्मा झूठा था। कठघरे में वह खडा हुआ तो गिर पडता था। इस लिए मैंने मजिस्ट्रेट को मुवक्किल पर मुआमला खारिज करने को कहा और बैठ गया। विरुद्ध पक्ष का वकील आश्चर्य-चकित हो गया। मजिस्ट्रेट खुश हुआ। मुवक्किल को मैंने उलाहना दिया। उसे पता था कि मैं झूठा मुकद्मा नहीं लेता। उसने यह कबूल की और मैं मानता हूँ कि मेरे उलटा फैसला मांगने के कारण वह क्रुद्ध नहीं हुआ। बात चाहे जो कुछ होवे, मगर मेरे इस बरताव का कोई बुरा असर मेरे धंधे पर न पडा और अदालत में मेरा काम सरल हो गया। मैंने यह भी देखा कि मेरी सत्य की ऐसी पूजा से वकील बंधुओं में भी मेरी प्रतिष्ठा बढी थी और विचित्रता होते हुए भी उनमें कितनों का प्रीति-संपादन मैं कर सका था। वकालत करते हुए मैंने एक ऐसी आदत डाली थी कि मैं अपना अज्ञान न तो मुवक्किल से छिपाता था और न वकीलों से। जहां जहां मैं आप नहीं समझता था वहां वहां मैं मुवक्किल को दूसरे वकील के पास जाने को और मुझे रक्खे तो किसी दूसरे अधिक अनुभवी वकील की सलाह ले कर काम करने को कहता था। इस निखालसता के कारण मैं मुवक्किलों का अटूट प्रेम और विश्वास-संपादन कर सका था। बडे वकील के यहां जाने में जो फीस देनी पडे, वह भी वे खुश हो कर देते थे।

इस विश्वास और प्रेम का पूरा पूरा उपयोग मुझे सार्वजनिक काम में मिला।

पिछले प्रकरणों में मैं बतला गया हूँ कि दक्षिण अफ्रिका में वकालत करने का हेतु केवल लोकसेवा था। इस सेवा के लिए भी मुझे लोगों का विश्वास संपादन करने की जरूरत थी। उदार दिल के हिन्दुस्तानियो ने फीस लेकर को गयी वकालत को भी सेवा के रूप में माना और जब मैंने उन्हें अपने हकों के लिए जेल के दुःख उठाने की सलाह दी तब उनमें बहुतों ने वह सलाह ज्ञानपूर्वक स्वीकार करने की बनिस्बत, मेरे ऊपर अपनी श्रद्धा और मुझपर अपने प्रेम के वश हो कर ही उसे स्वीकार किया था। यह लिखते हुए वकालत के कितने ऐसे मीठे स्मरण मेरे कलम पर चढे आते हैं। सैकडों मुवक्किल से बदल कर मित्र बने, सार्वजनिक सेवा में मेरे सच्चे साथी बने और उन्होंने मेरे कठिन जीवन को रस मय कर डाला।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

बाघात रियासत और जनेऊ

गत २२ मार्च के 'यं. इ.' में बाघात रियासत में कोलियों के साथ बरताव पर, मेरे लेख के बारे में नयी दिल्ली आर्य--समाज के सभापति लिखते हैं:—

"आपने मुझे बाघात रियासत में कोलियों के साथ बरताव के बारे में और ब्यौरे लिख भेजने का जो अवसर दिया है, उससे मुझे बडी खुशी हुई है। मुझे इससे भी वैसी ही खुशी हुई है कि आपने रियासत के अधिकारियों को भी अपनी बात कहने का मौका दिया है। पता नहीं, बाघात रियासत के अफसरों के पास आपका साप्ताहिक जाता है या नहीं। इस लिए उनकी सुविधा के लिए मैंने ही उस तारीख के यं. इ. की एक प्रति रजिष्टरी कर के भेज दी है। वे चाहें तो भले ही अपने विरुद्ध लगाये इल्जामों का जवाब देवें।

"जहाँ तक मुझसे मतलब है, रियासत के साथ अपने पत्र-व्यवहार की नकल मैं आपके पास भेजता हूं। मेरे सभी पत्रों के जवाब में एक पत्र १३ जनवरी १९२८ का आया है। १६ जनवरी के मेरे पत्र का जवाब, बार बार लिखने पर भी नहीं आया। खैर, राणा साहेब से मिलने की भी कोशिश की गयी, मगर फल कुछ नहीं हुआ। तब आप ही सोचिए कि अपने लगाये इल्जामों के सुबूत में मुझे और क्या कहने की जरूरत है? मेरे पहला पत्र लिखने के बाद से अब तक स्थिति केवल इतनी ही भर बदली है कि कोलियों को इस शर्त्त पर जेल से छोड दिया गया है कि अगर उन्होंने फिर जनेऊ पहना तो रु. ५००) का जुर्माना देना पडेगा। इससे वे बहुत ही डर गये हैं। अब तो वे दूध के जले, छाछ भी फूंक फूंक कर पीते हैं। बाहर की कोई सलाह उन पर असर नहीं करती।

"आपके देखने के लिए मैं गत १८ जनवरी १९२८ के 'ट्रिब्यून' पत्र में से एक कतरन भेजता हूँ। उसमें आप देखें कि कोलियों का एक मात्र कसूर यही था कि शिमला पहाडी में दलित कही जानेवाली जातियों के उद्धार के लिए आर्यसमाज के प्रचार के फल-स्वरूप उन्होंने हिन्दू धर्म के चिह्न के रूप में जनेऊ पहन लिया था और इस 'शुद्धि' के साथ ही साथ कितनी बुराइयां छोडीं तथा धार्मिक जीवन बिताना शुरू कर दिया था। अपनी सामाजिक स्थिति सुधारने की उनकी ये सभी कोशिशें न सोचने वाले बाबापंथी लोग अछूतों के लिए निषिद्ध बतलाते हैं और इसी लिए उनपर राणा साहेब को भी क्रोध हो आया, गोकि उनकी अदालत में इन गरीबों ने हिन्दू धर्म के अपने पालन और ज्ञान का खासा परिचय दिया। मुझे उचित से अधिक कडवी भाषा लिखने की आदत नहीं है किन्तु महात्मा जी, मैं यह कहता हूँ कि ये संकीर्ण हृदय राजा महाराजा अगर हिन्दू समाज में से अस्पृश्यता के अभिशाप को दूर करने के लिए कुछ नहीं कर सकते तो कम से कम उन्हें दलित कही जानेवाली जातियों के उद्धार के काम में बडी और अन्याय्य बाधाएँ तो नहीं डालनी चाहिए। मुझे आशा है कि आपके कुछ और लिखने से संभवतः राणा साहेब इस मुआमले में अपने फैसले की भूल तथा अन्याय समझ जायँ और उन्हें सुधारने के लिए कुछ करें।"

पत्र-लेखक सभापति महोदय, और कोई नहीं, दिल्ली के नामी दानी और कार्यकर्त्ता राय साहेब लाला गंगाराम हैं। लाला गंगाराम का पत्र पढने पर तो उनके इल्जामों की सचाई के बारे में कोई शक रही नहीं जाता। मैंने आशा की थी कि शायद उनके संवाददाताओं ने मुआमले को बढा चढा कर कहा हो और बाघात रियासत ने अछूत कहे जानेवालों का जनेऊ पहनना गुनाह मुकर्रर न किया हो। रियासत के प्रधान मंत्री की, लाला गंगाराम के नाम चिठ्ठी की नकल यह रही:

"१० जनवरी १९२८ के आपके पत्र के जवाब में मुझे यह कहना है कि चूँके इस मकद्दमे में आर्य-समाज एक पक्ष नहीं था, इस लिए आपको रियासत की ओर से उस फैसले की एक नकल नहीं दी जा सकती।"

मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि जवाब बहुत ही बुरे ढंग पर लिखा गया है। वह अँगरेज अफसरों के अत्यन्त संक्षिप्त और एक ही ढर्रे के पत्रों की बुरी नकल है जो अमूमन जरा टेढे सवाल पूछनेवालों को भेजे जाते हैं। मगर ये महाशय भी साधारणतः प्रतिष्ठा और पद की इज्जत करते हैं तथा जवाब देने से बचने के लिए भद्दे तौर पर नयी बातें नहीं पैदा कर लेते हैं। बाघात रिसायत के प्रधान मंत्री ने समाज में लाला गंगाराम की स्थिति (पदवी को छोड कर के) की उपेक्षा करने का दुःसाहस किया है और उन्हें अपमानित करने के लिए वैसी बातों की कल्पना कर ली है जिनका जिक्र तक लाला गंगाराम ने अपने पत्र में नहीं किया था। क्योंकि उन्होंने न तो फैसले की नकल मांगी थी और न बेचारे कोलियों के मुकदमे में शरीक होने का ही दावा किया था।

यह मुआमला दर असल हिन्दू महासभा को अपने हाथों में लेना चाहिए। मुझे पता नहीं है कि महासभा नामधारी अछूतों का जनेऊ पहनना पसंद करती है या नहीं। भले ही पसंद करे या नहीं, किन्तु पहननेवालों पर अत्याचार किया जाना तो वह कभी पसंद नहीं कर सकती। जिस घडी यज्ञोपवीत कुछ खास लोगों का इजारा हो जाता है तथा, उस इजारे का भंग करनेवालों को दंड दिया जाता है, उसकी पवित्रता नष्ट हो जाती है। यह पवित्र था और इस लिए था कि इसे धारण करने वाले विद्वान और पवित्र पुरुष होते थे। अगर बाघात रियासत की जो बात कही जाती है उसकी छूत दूसरों को भी लग जाय तो फिर यह अवनति या छुटपने का चिह्न हो पडेगा।

(यं० इं०) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

उपवास की महिमा

पाठक उस पोलिश अध्यापक से परिचित हो गये हैं जिनके पत्रों में से उतारे मैं जब तब देता आया हूँ। मेरे उपवासों के संबंध में अपने एक पत्र में वे लिखते हैं:

"मेरा अनुभव है कि अगर पिचकारी देकर पेट बिलकुल साफ रक्खा जा सके तो १५ दिनों का उपवास कर लेना काफी आसान है। १० दिनों के उपवास से कुछ अधिक मुश्किल नहीं है। मगर यह बात तो मेरी निस्बत है और मेरा सामान्य वजन १६० पाउण्ड है जो कि उपवास में घट कर १४० पाउण्ड हो जाता है। आपकी बात अलग है। आपकी जैसी तसवीरें मैं देखता हूँ, उनसे तो मुझे जान पडता है कि आपको ७ दिनों से अधिक का उपवास नहीं करना चाहिए।

"मैं उपवास करते समय कुछ भी नहीं खाता। महज ५ से ६ पाउण्ड तक उबाला हुआ, मगर ठंढा किया हुआ पानी रोज पीता हूँ। अगर जरूरत जान पडे तो थोडा सा नींबू का रस भी उसमें मिला लेता हूँ। मेरा वजन रोज एक पाउण्ड, या उससे जरा अधिक घटता है। सन १९०७ के बाद से मैं हर साल ४ से ६ बार तक उपवास करता आया हूँ यानी वर्ष में कुल ४० से ६० दिनों तक, जरूरत और शारीरिक स्वास्थ्य के अनुसार ३, ७, १० या १५ दिनों के उपवास करता हूँ। कुछ खास समयों पर मेरे लिए उपवास करना तो परमावश्यक हो जाता है। उन दिनों कुछ भी खाना नहीं रुचता। इस भाँति पिछले २० वर्षों में मुझे ३ से १६ दिनों के १०० से भी अधिक उपवासों का अनुभव है। आज तीन महीने से अधिक मुझे उपवास किये हो गये है। इस समय मेरा वजन १६०

पाउण्ड है। मुझे उपवास करने की खूब इच्छा हो रही है। मैं साधारणतः जब भाषण करने के लिए लंबी मुसाफरी को निकलता हूँ, तब उसके पहले उपवास कर लेता हूँ। उपवास के कारण श्रम की तीव्रता घटती नहीं, बल्कि बढ ही जाती है। अब तो मुझे बडी थकावट और नींद सी लग रही है क्योंकि मैं लगातार साढे तीन महीनों से मुसाफिरी ही करता रहा हूँ और इस बीच मुझे उपवास करने का अवसर मिला नहीं है। चूंकि मुझे शारीरिक व्यायाम करने की फुरसत नहीं मिलती, इस लिए अगर उपवास न करूँ तो चर्बी बहुत बढ जाती है। बहुत संभव है कि शारीरिक व्यायाम की कमी और खाना पूरा पूरा चबा कर न खाने के कारण ही मेरे शरीर में चर्बी इतनी अधिक बढ जाया करती हो। स्वभाव तथा वंशपरंपरा से भी मैं लघु आहारी नहीं हूँ। अपनी खूराक की मात्रा घटाने के लिए मुझे बहुत अभ्यास और श्रम करना पडा है मगर तोभी भोजन रुच जाय तो इस पैंसठ साल की उम्र में भी मैं बहुत अधिक खा जाता हूँ। . . . पेट की सफाई के मानी मैं यह समझता हूँ कि अधोद्वार से नली के जरिए पेट में पानी पहुँचाया जाय जिसका कुछ अंश तो मूत्राशय में ठहर जाता है किन्तु अधिकांश गुदद्वार से थोडी देर में निकल आता है। पानी का बरतन या 'एनिमा' ३ या ३½ फीट ऊँचे पर रहता है। मैं यह 'एनिमा' सब कपडे हटा कर गर्म पानी में लेट कर लेता हूँ। इतना अधिक पानी पीना मैं लाभदायक नहीं समझूँगा। पहले मैं २॥ पाउण्ड पानी लेता हूँ और उसके निकल जाने पर कई बार कर के ५, ६ या १० पाउण्ड तक पानी लेता रहता हूँ जब तक कि बिलकुल स्वच्छ पानी नहीं गिरने लगता। . . . . उपवास से न सिर्फ शारीरिक स्फूर्त्ति ही बढती है किन्तु अगर एक उद्देश्य लेकर उपवास किया जाय तो आध्यात्मिक लाभ भी होता है। जब कभी मेरे सामने कोई नैतिक या आध्यात्मिक कठिनाई पेश होती है, मैं उपवास करता हूँ। अगर किसी मुखालिफ से मेरा कोई झगडा हो तो मैं उपवास करता हूँ। एक बार एक छापाखानावाले ने अधिक कीमती काम के लालच में मेरे काम में देर कर दी। मैंने फिर उपवास किया और उसका विचार बदल सका। मैंने उपवास और प्रार्थना से अनेक कठिनाइयों के दूर होने का अनुभव किया है।"

ऐसी खोजों में रुचि रखनेवाले पाठकों के लिए लाभकर समझ कर मैं यह पत्र छापता हूँ। उपवास के शारीरिक और आत्मिक लाभ दिनों दिन अधिकाधिक समझे जा रहे हैं। सभी दवाओं और भयंकर इञ्जेकशनों की चिकित्सा से — भयंकर इस लिए नहीं की उनसे तकलीफ होती है किन्तु इस लिए कि उनके फल स्वरूप और दूसरे रोग होते हैं — कहीं अधिक लाभदायक विवेकपूर्वक किया गया उपवास ही होता है। दवाओं से होनेवाली सभी हानियों को हम नहीं जानते। मगर उपवास से हुई हानि के बहुत से उदाहरण नहीं दिखलाये जा सकते। उपवास करनेवाले प्रायः सभी आदमियों का अनुभव है कि इससे स्फूर्त्ति बहुत बढ जाती हैं क्योंकि मन और शरीर का सच्चा आराम तो केवल उपवास में ही मिल सकता है। अगर जरूरत से अधिक भार से लदा और शक्ति के बाहर काम करनेवाला पेट आराम न पावे तो महज शारीरिक काम बंद कर देने से ही शरीर को आराम नहीं मिलता। उपवास से आत्मिक लाभ भी खूब होते हैं किन्तु वे इस तरह सहज ही नहीं दिखलाये जा सकते। आत्मिक लाभ तभी होंगे, जब मन और देह का पूरा मेल होवे। और आत्म-प्रवंचना का खतरा इसमें है। मुझे ऐसे बहुत से उदाहरण मालूम हैं जब कि आत्मिक लाभ के लिए किये गये उपवास जरूरत से अधिक दिनों तक चलाये गये हैं। अगर उपवासी अपना उद्देश्य और साधन ठीक ठीक पहचानता हो तो मर्यादा में रह कर उपवास करने से बहुत आत्मिक लाभ होता है। मुहम्मद साहेब ने अपने अनुयायियों को कहा था कि 'रमजान के उपवास के अलावा, और उपवासों में मेरी नकल मत करना। मेरा सिरजनहार मेरे उपवास के दिनों में मेरे लिए पूरी खूराक भेज दिया करता है।' इस उपदेश में भी बहुत कुछ सार है। उस धार्मिक उपवास से लाभ ही क्या जिसमें शरीर को जितना ही भूखों मारो, मन तरह तरह के व्यञ्जनों की ओर उतना ही दौडा करे?

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

धन्यवाद

विगत ८ मार्च के 'हिन्दी नवजीवन' में छपे 'गाय को कौन छुडावेगा' शीर्षक लेख का परिणाम यह हुआ कि कोई गरीब लडकी बच गयी। क्योंकि जो वृद्ध पुरुष लडकी से विवाह करने को तैयार हुए थे, उन्होंने वह लेख देख कर अपनी भूल समझी और फिर से विवाह करने का विचार छोड दिया। इस शुभ परिणाम के लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। हम उम्मेद रक्खें कि वे फिर से जब जब विकार-वश होवें, तब तब लडकी का समाज का और देश का हित विचारेंगे, ईश्वर का स्मरण करेंगे और शान्त होंगे। इस दृष्टान्त से समाज सेवक और भी उत्साहित होवें; हम इससे और ऐसे ही बने हुए दूसरे दृष्टान्तों से समझ सकते हैं कि मर्यादा का पालन करते हुए दृढता-पूर्वक और समुचित अवसर पर, अगर समाज में होनेवाले या दूसरे अन्यायों के विरुद्ध हाथ उठावें तो अन्याय को रोका जा सकता है।

(नवजीवन) **मो० क० गांधी**

अखिल भारतीय गोरक्षा-मण्डल

सभ्यों का सूतचन्दा

२१ अवधविहारी सिंह	राघवपुर	गज	४,५३२
२२ राशनलाल दलाल	दिल्ही		२४,०००

नं. ३, ६, ७, १२, १६, १८ ने अपने सूत का जोड क्रमशः इतने तक पहूँचा दिया है, ४०४९०, २००००, ५०,४००, १६००० १०,००० और ९००० गज।

सूत का दान

मंगु सत्यनारायन गुरु	गन्तूर	गज	७००
रोशनलाल दलाल	दिल्ही		२४,०००
रामेश्वर अग्रवाल	वर्धा	गज नहीं लिखे	
गंगुबाई	,,	,,	
वापुभाई जी. देसाई	रंगून	गज	६,६६५
गोपालजी केशवजी पटेल	,,		१,६०२
छिबुभाई केशवजी पटेल	,,		३,०२८
मगनभाई मरघाभाई पटेल	अहमदाबाद		२,२६०
सोमचंद साकलचंद शाह	,,		१,५००
पोपटलाल चुनीलाल शाह	,,		५,६७०
गिरिजाशंकर मणीशंकर भट्ट	मुंबई		१७,०००
वेरजीवनदास त्रिभुवनदास	देवलाली		१,०००
जगजीवन तिलकचंद दरबारी	मांगरोल		२५,०००
लालचन्द जयचन्द जवेरी	कलकत्ता		१,५००
रामभाई शिवाभाई पटेल	करमसद		१,०००
जीवराम कल्याणजी कोठारी	कच्छ कोटडा		६,०००
एम. सी. गोवियानजी नायर	माननूर		१०,०००

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, चैत्र सुदी १५ संवत् १९८४

बहिष्कार पर एक मिल-मालिक

अहमदाबाद के एक मिल-मालिक लिखते हैं:

"मैं बहुत ही सावधानीपूर्वक विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार के संबंध में आपके लेख पढता रहा हूँ। मैं कुछ सूचनाएँ करना तथा बहिष्कार आंदोलन के संगठन के संबंध में अपने भय बतलाना चाहता हूँ। मेरा विश्वास है कि अगर मिलें आपके विदेशी-वस्त्र के बहिष्कार की योजना में शरीक हो जायँ तो, फिर हम न सिर्फ विदेशी वस्त्र का बहिष्कार ही भर करने में सफल होंगे, बल्कि मिलवालों के घर जमा कपडा भी बेंच देने का प्रबंध कर लेंगे। मिलवाले इस आन्दोलन में राष्ट्र की सेवा तथा हिस्सेदारों की स्वार्थ-रक्षा करने के दुगुने लाभ से शामिल हो सकते हैं। क्योंकि इससे तो हिस्सेदारों को हर साल लाभ का हिस्सा मिलने का भरोसा हो सकता है, और यह नहीं कि एक साल तो खूब मुनाफा मिले और दूसरे साल कुछ भी नहीं। इसमें न सिर्फ मुनाफे पर ही अंकुश रहेगा, बल्कि चूँके बाजार बना बनाया तैयार रहेगा, सूद या गोदाम का खर्च भी बहुत कम हो जायगा। कपडा बनाने के खर्च में यह तो स्पष्ट कमी कही जायगी। इस संगठन के अनुसार मिलों को कपडे में केवल उतनी ही मांडी लगानी चाहिए जितनी कि बुनाई के लिए आवश्यक हो। और फिर मिलों को कपडे की वही जातियां बनानी चाहिए, जिनका निश्चय बहिष्कार-समिति करे और हर एक थान पर बहिष्कार-समिति का मोहर दिया जाय जिसमें कोई मिल हलका या विदेशी कपडा न बेंच सके।

"नकली रेशम के बारे में तो मेरी समझ में यह बात आती ही नहीं है कि अगर हमें विदेशी रंग और मांडी लगानी है तो केवल उसीपर क्यों उज्र करें?

"मिलों की बाबत बहिष्कार का उद्देश्य यह होना चाहिए कि जहां तक संभव हो, वे विदेशी कपडों की जगह लेवें। आप मिलों को खादी न तैयार करने को कहते हैं और यह भी उचित ही है। इसका अर्थ दूसरे शब्दों में यह होगा कि मिलें हाल में केवल वे ही कपडे बनावें जो उन विलायती कपडों की जगह लेवें जिनकी जगह अभी खादी नहीं ले सकती। नकली रेशम तो लकडी से बनता है और वह सस्ता शौक है। उसका बहिष्कार नहीं करना चाहिए क्योंकि उससे विदेशी रेशम के बहिष्कार में मदद मिलती है। हां, विदेशी सूत को इस्तेमाल करनेवाली मिलों, को स्वदेशी नहीं कहना चाहिए। मगर उसे आप क्या कहिए जो विदेशी रुई काम में लावे? क्या उस रुई का कपडा स्वदेशी कहा जायगा? जब तक कपास के दाम में बहुत अधिक का फेर बदल न होवे, दर में यों मामूली चढाव उतार से कपडे के दाम में कोई फर्क नहीं पडता। रुई की कीमत ३३९) रु. से चढ कर ३७५) रु. हो गयी है, मगर कपडे का दाम तो जरा भी नहीं चढा है। आपके मित्र इस बारे में बिलकुल ही न डरें। मगर, साथ ही यह बात भी है कि जब तक सारे संसार के रुई के बाजार भाव को अमेरिका निश्चित कर सकता है, तब तक हिन्दुस्तानी मिलें उसकी कीमत पर अंकुश नहीं रख सकतीं। हां, जैसा कि आप कहते हैं, अगर रुई की रफ्तनी पर ही अंकुश रक्खा जाय तो दाम में बहुत अधिक फेर बदल नहीं होगा। खैर, उस स्थिति तक पहुँचने के लिए स्वराज्य लेने के पहले तक कुछ भी करना संभव नहीं जान पडता है, और स्वराज्य लेने के लिए हमें बहिष्कार करना पडेगा। इस लिए रुई के बाजार भाव में घटी बढी हुआ ही करेगी, और बहिष्कार की इस योजना में उसका भी हाथ रहेगा ही।

"अब मिल-मालिकों में आपके विश्वास के बारे में यह कहना चाहिए कि आप जरूरत से अधिक गंभीर हैं। क्या मुझे आपको अहमदाबाद मिल्स, तिलक स्वराज कोष और उसके खर्च के बारे में बार बार दी गयी धमकियों को भी याद दिलानी पडेगी? अगर आप पक्का से पक्का भरोसा किये बिना, हमारे साथ शरीक होवें तो आपकी असफलता निश्चित है।

"अगर बहिष्कार आन्दोलन को सफल होना है तो आप उन्हीं मिलों को शामिल कीजिए जिनके एजेन्ट सच्चे और विश्वास-पात्र हों। अगर आपके साथ एक दर्जन भी अच्छी मिलें शरीक होवें तो खूब अच्छा प्रचार किया जा सकता है और मेरा विश्वास कीजिए कि दूसरी मिलें भी शीघ्र ही अपना ढंग सुधार लेंगी।

"मुझे जान पडता है कि अगर दर असल कुछ महत्वपूर्ण काम करना है तो, या तो आपके यूरोप से लौट आने तक, अगर आप यूरोप जायँ, वह मुल्तवी रक्खा जाय, या आप यूरोप न जाने का ही निश्चय कर लेवें और इस मसले को अपने हाथ में लेवें क्योंकि मेरा और कई और मित्रों का भी विश्वास है कि इस संयुक्त आन्दोलन को चलाने के लिए आपकी उपस्थिति आवश्यक है।"

इस पत्र की खुलासगी से बडी खुशी होती है। अगर दूसरे मिल-मालिक भी कपडे का एक दाम और इसलिए एक समानता निश्चित करने की संभवता के बारे में इन्हीं के जैसा सोचते तो क्या ही अच्छा होता। यह देख कर हर्ष होता है कि रुई की दर में घटी बढी से कपडे के दाम में बहुत फर्क नहीं पडता। और पत्र-लेखक से मत-भेद होने पर भी मैं यह कहूँगा कि अगर विदेशी वस्त्र का बहिष्कार करना हमारे लिए संभव हो तो हम रुई के बाजार पर भी अंकुश रख सकेंगे। 'क्योंकि हमारी रुई का भाव इसलिए अमेरिका निश्चित कर सकता है कि हम अपनी बहुत सी रुई बाहर भेज देते हैं और वह भी उन्हीं देशों में जहां अमेरिका भी अपनी रुई बेंचता है। कपडा खरीदनेवाले की देशभक्ति के नाम पर आग्रह करना अगर हम संभव मानें जैसा कि वह संभव साबित हो चुका है, तो कपास बोनेवाले की देश-भक्ति के नाम पर आग्रह करना भी उतना ही संभव है। सचमुच में विदेशी वस्त्र के बहिष्कार का महत्व भी इतना बडा इसी लिए है कि उसकी सफलता इसीपर निर्भर है कि राष्ट्र के सभी महत्वपूर्ण अंग उसमें स्वेच्छापूर्वक शामिल होवें। जब तक गांवों का विशाल जन-समूह उसमें खुशी से, हार्दिक साथ न देवे, वह सफल नहीं हो सकता। इस आन्दोलन में मेरा विश्वास इसी लिए इतना दृढ है कि मैं जानता हूँ कि गांवों के जनसमूह पक्के हैं। रास्ता तो केवल दूसरे ही वर्गों के लोग रोकते हैं क्योंकि उनमें श्रद्धा की कमी है। **और यही बहिष्कार ऐसा है जिसमें जन-समूह बिना बहुत बडा त्याग किये, शामिल हो सकते हैं।**

पत्र-लेखक से इस बात में मैं सहमत नहीं हूँ कि हमारी मिलों में कपडा बनाने के लिए नकली रेशम से भले ही काम लिया जाय। विलायती रंग या मांडो के साथ नकली रेशम की समानता दिखलाने में उतावली की गयी है। अभी तो हम केवल विदेशी कपडे का बहिष्कार करना चाहते हैं न कि विदेशी रंगों या मांडी का। इस लिए सभी किस्म के विदेशी सूत, चाहे वे नकली या असली रेशमी, ऊनी, सूती, हों, त्याज्य होंगे या अगर हम विदेशी नकली रेशमी सूत के इस्तेमाल की बेरोक छूट दे देवें तो फिर विदेशी सूती या ऊनी या असली रेशमी सूत को ही क्यों न दें?

मगर विदेशी रुई के साथ बात बिलकुल जुदा है । हमें विदेशी रुई का बहिष्कार करने की जरूरत नहीं है क्योंकि वह कच्चा माल है। हमें जिसका **बहिष्कार अवश्य ही करना पडेगा वह है विदेशी सूत और कपडा जिन्हें हमारे जन-समूह अपनी झोपडियों में आप कात और बुन सकते हैं ।**

स्वदेशी मिलें अगर इन जन-समूहों को दूसरा वैसा काम दिये बिना उनकी रोजी छीन लेवें, तो वे भी असह्य हो जायँगी । ग्राम-जीवन में मिलों का इतना ही स्थान है कि वे करोडों घरों में चलनेवाले हाथ कताई के हमारे उद्योग के बचे काम को पूरा करती हैं । मिलें अगर उन्हींसे चढा ऊपरी करने या उनकी जगह लेने लगें तो वे बाधा स्वरूप बन जायँगी । उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति तो बेशक गांव के कतवैयों और बुनकरों की जगह लेने की है । मिल-मालिक, मिल-एजेन्ट, और उनके हिस्सेदार जिस दिन सच्चे राष्ट्रीय बन जायँगे और जन-समूहों को लूटने के लिए नहीं, बल्कि उनके हित को पहला और अपने लाभ को दूसरा स्थान दे कर, अपना धंधा चलावेंगे, केवल उसी दिन वे बहिष्कार आंदोलन का अर्थ समझ सकेंगे और उसमें वे न सिर्फ शरीक ही हो सकेंगे, बल्कि आन्दोलन का नेतृत्व करेंगे। यह तो ऊपर के पत्र में स्पष्ट कर दिया गया है कि अगर वे दूर-दृष्टि बनें तो उन्हें हानि तो कुछ नहीं होगी, हां लाभ बहुत कुछ हो सकता है। सचमुच में यह स्वयं स्पष्ट बात है । विदेशी कपडे के बहिष्कार में अगर जनता को निरंतर काम मिलते जाने का सब से बडा भरोसा है तो साथ ही मिलों को भी अंत में नफा जरूर होने का यही सबसे बडा भरोसा है । मगर मिल-व्यवसाय के पिछले सात सालों का इतिहास देखने से तो यह आशा बहुत नहीं होती कि मिलें अवसर के उपयुक्त बडप्पन दिखलायँगी और राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य समझेंगी । कहां चाहिए तो था कि वे खादी पर स्नेह की दृष्टि रखतीं और उसका पोषण करतीं और कहां वे खादी के साथ अनुचित, देश-द्रोही, और अन्याय्य प्रतियोगिता करने लगीं । पिछले कई वर्षों में हमारी मिलों ने इतनी खादी बनायी:

	१९२५	१९२६	१९२७
रतल	२,२८,८७,९७०	२,७२,३६,३३७	३,३९,७७,८५१
गज	६,५०,४२,४८७	७,४३,१३,२८०	९,४३,८०,३६८

इतना अधिक मोटा कपडा उन्होंने खद्दर के नाम पर बेंचा है और कुछ ने तो कांग्रेसकमिटियों के पैदा किये खद्दर वातावरण से अनुचित लाभ उठाने के लिए बेशर्मी से चर्खे की छाप भी लगाई है। यह कहते हुए कष्ट होता है कि जिन मिलों ने यों मोटा कपडा बनाया और उसे खद्दर के नाम पर चला दिया है, उन्होंने घोर देश-द्रोह किया है ।'

अगर उनकी आंखें अब भी खुल जातीं और राष्ट्र की इस हानि का बदला ही पूरा करने के लिए मिल-मालिक मेरी या दूसरों की बताई शर्तों पर बहिष्कार आंन्दोलन में आगे बढते या कम से कम तटस्थ होते तो क्या ही अच्छा होता ।

इन दुःखद आंकडों का एक सुखद पहलू भी है। इन आंकडों ने मेरे जैसे आशावादी और खद्दर शास्त्र के ज्ञाता की भी आंखें खोली हैं कि खद्दर इतना अधिक लोकप्रिय हो गया है । ये आंकडे दिखलाते हैं कि इतने अधिक आदमियों ने, जितने का हमें पता भी नहीं है, पहले वे जो महीन कपडे पहनते थे, उसे छोड कर मोटा कपडा पहनना और खरीदना पसंद किया है । इसमें तो कोई शक ही नहीं कि उन्हें अनेकों बार पहले से अधिक दाम देना पडा है । उन्होंने अधिकांशतः मिल खादी इसी गलत विश्वास से खरीदी है कि वही सच्ची खादी है और महासभा उसीका समर्थन करती है । जन समूहों के खादी प्रेम के इन आंकडों और उनसे मेरे निष्कर्षों से बहुत कुछ सोचने का मसाला तथा आशा करने का भी उतना ही मसाला मिल जाता है । मेरी यूरोप यात्रा से लेखक मत डरें । वे निश्चिन्त रहें कि अगर बहिष्कार की कोई सच्ची योजना बन सकी तो मैं यूरोप नहीं जाऊंगा ।

(यं, इ.) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

अछूतों को याद रक्खो

इस अंक के निकलने के दो दिनों के भीतर राष्ट्रीय सप्ताह आ जायगा । आत्मशुद्धि की क्रिया में, एक समय में हम शराब ताडी की दूकानों पर पहरा देते थे । कोयम्बाटूर की आदि-द्राविड सभा के दिये मानपत्र के निम्नलिखित अंश को पढते समय मेरे मन में सन् १९२१ के उसी जमाने की याद हो आती है :

" जब राष्ट्रीय महासभा ने अस्पृश्यता-निवारण को भी अपने मन्तव्यों में शामिल किया, तब हमें आशा हुई थी कि हमारे समाज के ६ करोड (अछूत) हिन्दुओं की उन्नति के रास्ते में के सभी रोडे बात की बात में दूर हो जायँगे । मगर साल के बाद साल बीतते चले गये और इस बात में हमें आशा की एक किरण भी नहीं मिली । शायद इससे लाभ इतना ही हुआ है कि दयावन्त सरकार ने सामान्य हुक्म निकाल कर हमारे लिए सभी सार्वजनिक रास्ते, कुएँ और संस्थाएँ खुली कर दीं । मगर पुरानी हालत जरा भी नहीं बदली है । दूसरे हिन्दू हमारी आत्मा से भी घृणा करते हैं । हम लोग मनुष्य और राष्ट्रों के भाग्यनियंता, परमपिता परमात्मा की पूजा भी मंदिरों में नहीं करने पाते । हमारे लिए गिर्जाघरों और मसजिदों के दरवाजे बराबर खुले हैं और उनके धर्म-प्रचारक हमारा स्वागत हमेशे करते हैं । हमारे समाज की बस्ती, चेरियों के भीतर ही या उनके निकट शराब की दूकानें खोल कर सरकार हमारे नवयुवकों को प्रलोभन में डालती है । अगर इन दूकानों के बदले उद्योगशालाएँ खुल जायँ, और आबकारी ठीकेदारों के बदले समाज-सेवक लोग हमपर कृपा दृष्टि डालें, तो हमें जरा भी शक नहीं है कि हमारी दशा बात की बात में सुधर जायगी । इस लिए हम आपसे हार्दिक आग्रह करते हैं कि आप हमारी जाति की सर्वनाश से रक्षा के लिए हमारी चेरियों के भीतर या उनके निकट औद्योगिक शालाएँ खुलवाने में मदद करें । "

राष्ट्रीय सप्ताह में हमें यह देखने की जरूरत नहीं है कि सरकार ने क्या किया और क्या न किया है । किन्तु यह सोचना अनिवार्य है कि हमने क्या किया या न किया है । इसमें तो कोई शक ही नहीं है कि गोकि अस्पृश्यता के विरुद्ध लोकमत दिनों दिन बढता जा रहा है, सार्वजनिक प्रयत्न निर्बल ही है । अब तक हम पुजारियों को अछूतों के लिए सार्वजनिक मंदिर के दरवाजे खोलने के लिए राजी नहीं कर सके हैं, और न एक भी शराब या ताडी की दूकान के बदले औद्योगिक शाला या विश्रामगृह खोल सके हैं, जहांपर उन्हें उस आग भरी शराब के बदले पौष्टिक पेय या स्वच्छ परिस्थिति में स्वास्थ्यकर वस्तुएँ खाने को मिल सकें ।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

खादी का अर्थशास्त्र

५
कर्घा बनाम चर्खा

अब एक और अन्तिम शंका पर यहां विचार किया जायगा। कहा जाता है कि हाथ-कर्घा में कुछ आन्तरिक जीवन है और तभी तो वह जीता रहा है और जीता रह सकेगा। इस लिए हाथकताई जैसे उद्योग पर अपनी सारी शक्ति नष्ट करने के बदले हमें हाथ बुनाई को ही उन्नत करने में अपनी शक्ति लगानी चाहिए। यह शंका करनेवाले भूल जाते हैं कि कताई और बुनाई हमेशे साथ साथ चलती हैं। दर असल हाथकताई को ही नींव बना कर हाथबुनाई की इमारत खडी करनी पडेगी। हाथ-कर्घे मिलों के आसरे नहीं रह सकते। मिलों को ज्यों ज्यों मालूम होता जायगा कि कताई के साथ बुनाई भी करने में ही नफा है वे अपना फाजिल सूत आप बुन लेने के लिए कर्घे बैठाती जायँगी और उनके भरोसे रहनेवाले हाथ कर्घे बंद हो जायँगे। अभी हाल में ही टैरिफ बोर्ड ने दिखलाया है कि कुछ को छोड कर बाकी सभी की सभी केवल कातनेवाली मिलों को घाटा ही लगता गया है जब कि साथ ही बुनाई का काम भी करनेवाली मिलों में कुछ को ही घाटा लगा है, नहीं तो बाकी सभी चैन की वंशी बजाती रही हैं। यह भी देखा गया है कि वे कताई के साथ साथ बुनाई का विस्तार करती भी गयी हैं। हिन्दुस्तानी मिलों में सन् १८९८-९९में साढे पैंतालीस लाख चर्खे (तकुवे) चलते थे। सन १९१३ में वे ही बढ कर सवा तिरसठ लाख हो गये जब कि कर्घों की संख्या ३८,००० से ९२,००० हो गयी। यानी जितने दिनों में तकुवों की संख्या सैकडे ३८ बढी, कर्घों की सैकडे १४२ बढ गयी। उसके बाद भी वृद्धि का यही क्रम रहा। सन् १८९८-९९ से १९२० तक तकुवों की संख्या केवल ड्योढी हुई मगर कर्घों की संख्या सवा तिगुनी हो गयी। सन् १८९९-०० में मिलों ने अपना सूत आठ करोड सत्तर लाख पाउण्ड खर्च किया था; १९१९-२० में ३४ करोड ३३ लाख और १९२५-२६ में ४१ करोड ५ लाख पाउण्ड खर्च किया; जब कि कर्घे के लिए पहले सन् १८९९-०० में वे जहां २२ करोड पाउण्ड सूत दे सकी थीं, १९१९-२० में केवल १४ करोड दे सकीं। खैर, फिर यह संख्या बढ कर २२ करोड ७० लाख पाउण्ड तक आ गयी है। इस लिए यह कहना अयुक्ति कर नहीं होगा कि केवल कुछ समय के बाद मिलें अपना सूत आप ही खर्च कर सकेंगी और फिर कर्घे को भूखों मरना होगा। इसके उलटे अगर चर्खे को जिलाया जाय, तो हाथबुनाई का उद्योग अपने आप ही जी उठता है, तथा, उसे मिल के भाग्य के साथ अपनी चोटी नहीं बाँधनी पडती और मिलों का भाग्य उनके हाथ में तो है ही नहीं, बल्कि बहुत बार हिन्दुस्तान के हाथों में भी नहीं होता।

६
चर्खे की पुनःप्रतिष्ठा

आखीरी और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि चर्खे का पुनरुद्धार किस भांति किया जाय। यह काम बेशक मुश्किल है। देशी और विदेशी मिलों की चढा ऊपरी से गरीब लोगों का खद्दर खरीदना मुश्किल हो जाता है और वैज्ञानिकों तथा कुशल व्यापारियों ने इधर ध्यान दिया नहीं है। इने गिने आदमी इसे जिलाने की कोशिश कर रहे हैं मगर तौभी जो कुछ काम हो सका है, वही बहुत अधिक आशाजनक है। जो काम पहले असंभव सा जान पडता था, वही अब न सिर्फ संभव ही बल्कि खूब संभव सा जान पडने लगा है। जरूरत है तो इसकी कि योग्य और कुशल कार्यकर्त्ता अपनी योग्यता का दाँभ इसे देवें। आखिर, यह तो कबूल करना ही होगा कि मामूली गांवों में बनी एक मामूली चीज से अनजान किसानों कपडा तैयार कर के ऐसी मिलों से मुकावला करना है जिनके [illegible] और संचालन में दुनिया के बडे से बडे बुद्धिमान् और व्यवसाय कुशल लोग लगे हैं और जिनकी अत्यन्त मुश्किल कलों के सुधार दुनिया के बडे से बडे वैज्ञानिक माथापच्ची करते हैं। इस लिए लोग चर्खे के लिए सहानुभूति और प्रोत्साहन माँगते हैं, उनसे [illegible] नहीं होना होगा। हमें इसके लिए अपने अच्छे से अच्छे वैज्ञानिकों और व्यापारियों को देना होगा। फिर मिलों में पूँजी भी कितनी [illegible] है! तब हम उसका एक छोटा सा अंश भी इसे देने में कोताही [illegible] करें? अ. भा. चर्खा संघ की कुल पूँजी १८ लाख रु. की रही है और [illegible] उसने सन १९२५-२६ में कुल २४ लाख रुपयों का खद्दर बनवा ३० लाख रुपयों का वेंचा और कमसे कम ५०,०००* कतैयों बुनकरों को और कोई १,००० मध्यवर्ग के आदमियो को रोजी [illegible] जो काम के निरीक्षण, संचालन वगैरह में लगे थे और इनके [illegible] बहुत से रँगरेजों, धोबियों, छपेरों, बढइयों, लुहारों वगैरह [illegible] काम दिया सो अलग ही है।

उधर केवल एक बंबई की ७९ मिलों में कुल ४६ करोड [illegible] लाख की पूँजी लगी है और इसके अलावा हर साल १ करोड [illegible] लाख रुपये मकानों और कलों के पुराने होते जाने के कारण, [illegible] में से घटते जाते हैं। और ये रोजगार देती हैं केवल डेढ [illegible] आदमियों को। इस संख्या से खादी बनाने वालों की संख्या [illegible] मिलान किया जाय तो मालूम होगा कि खादी में लगी पूँजी [illegible] अधिक काम करती है। यह भी याद रखना चाहिए कि अ० [illegible] चर्खासंघ की पूँजी न सिर्फ खादी तैयार करने में ही किन्तु [illegible] वेंचने में भी लगी हुई है। उधर मिलों की सारी पूँजी केवल [illegible] बनाने में ही लग गयी है और कपडे वेंचने का भार तो [illegible] लोगों ने लिया है, जिन्होंने भी कुल मिला कर तकरीबन [illegible] ही पूँजी लगायी होगी। इस तरह जान पडेगा कि खादी के [illegible] पूँजी की माँग न तो अयुक्तिकर है और न बहुत अधिक ही [illegible] फिर जब कि इस बीच की स्थिति में भी मिलों के बराबर ही [illegible] कर लेने के लिए, मगर उनके ५० गुणा अधिक लोगों को [illegible] देने के लिए खादी संस्थाओं का काम उनकी आधी पूँजी [illegible] चल जायगा, तब भी आशा है कि समय पाकर उस पूँजी [illegible] बहुत कम जरूरत रह जायगी। आज हर एक कतवैया और [illegible] अपना चर्खा और कर्घा आप खरीद लेता है। उसी भांति [illegible] एक कतवैया अपनी जरूरत की कपास आप इकट्ठी कर [illegible] और बुनकर सूत जमा कर रक्खेगा। इस लिए आज जो कुछ [illegible] बहुत पूँजी चाहिए, वह भी महज थोडे ही दिनों के लिए [illegible] जब तक कि यह उद्योग फिर से जी नहीं उठता, संगठित [illegible] लेता। मगर इस कारण, आज उसकी जरूरत कम नहीं हो [illegible] आज तो खादी काम के संगठन के लिए आदमियों की और [illegible] नितान्त आवश्यकता है।

मगर इसके अलावा भी कुछ और चाहिए। विदेशी [illegible] मुकाबिले में चर्खे और हाथकर्घे के बने कपडे को पसंद करना पडेगा। अगर मिल-उद्योग की मुश्किलें दूर करने के लिए [illegible] को स्वदेशी मिल के कपडे अधिक दाम दे कर खरीदने को [illegible] उचित है तो हाथकते कपडे के लिए कुछ अधिक दाम देने [illegible] कहना तो जरूर ही अनुचित नहीं हो सकता। चूँके कम से [illegible] इस समय तो, इसके कोई लक्षण नहीं दिखलायी पडते कि [illegible] हाथ-कताई के उद्योग के लिए कुछ करेगी, इसलिए अधिक [illegible] दे खादी खरीद कर, लोगों को स्वेच्छापूर्वक अपने ऊपर यह [illegible]

*अब यह संख्या ९०,००० हो गयी है।

लगा लेना चाहिए। अगर खादी शीघ्र बिक जाय तो वह कुछ पूंजी की जा सकेगी, और अगर एक बार उसकी उपयोगिता समझ में आ गयी जो फिर इसका कोई कारण नहीं है कि जल्दी न बिके। हां, पश्चिम के खिलौनों के लिए हमारा शौक बना रहे तो बात ही अलग है। जो इसे पहन चुके हैं, वे बेशक कहेंगे कि यह आरामदेह है। आज भले ही इसकी चाल कम हो, मगर हम जो गरीबों की सहायता करने का सचमुच इरादा कर लें तो, इसकी, जो गरीबों को काम और रोटी देगी, चाल बढा देनी मुश्किल नहीं है। और जहां तक इसकी चाल चल रही है, वहां तक भी लोगों की ही दृढता से चली है। जो दूसरों की ही दिखलायी चाल का भोजन और भेस रखता है, उसका नाश निश्चित है और पिछले ५०, ६० वर्षों में पैदा हुई इस मुश्किल को अगर हम पार न कर सके, और कपडे की चाल में भी अपनी स्वतन्त्रता न रख सके तो हमारे दुर्भाग्य का दोषी सिवा कौन होगा? मगर लक्षण शुभ हैं। खादी की ही चाल चल रही है। लोग खादी के लिए अधिक दाम देने तथा उसे जिलाने के लिए पूँजी और आदमी जुटाने की इच्छा दिखला रहे हैं। इसकी चाल कुछ अधिक तेज कीजिए और हमें, अपने स्वप्न का वह प्रिय भारतवर्ष मिल जायगा, जिसमें कोई बेरोजगार न होगा, और इस लिए भूखों मरता भी न होगा, जिसमें प्राचीन भारतवर्ष के समान हर घर में चर्खा चलता होगा—और जो भारतवर्ष न सिर्फ राजनैतिक या आर्थिक दृष्टि से ही बल्कि औद्योगिक दृष्टि से भी स्वतन्त्र होगा—जो भारतवर्ष साम्राज्यवाद के भार से दबे हुए दूसरे देशों को रास्ता दिखलावेगा कि किस भाँति दूसरे को कष्ट दिये बिना भी सुख की जिन्दगी बसर की जा सकती है। (समाप्त)

['खादी का अर्थशास्त्र' नामक अँगरेजी किताब में से]

राजेन्द्रप्रसाद

अ० भा० चर्खासंघ का सालाना अहवाल

अ० भा० चर्खासंघ ने अपना दूसरा सालाना अहवाल निकाला है। यह अहवाल बिलकुल व्यावहारिक और शिक्षाप्रद है। अहवाल ९१ पृष्ठों में समाप्त हुआ है और उसके परिशिष्ट २४ पन्नों में। मैं तो पाठकों को सलाह दूँगा कि पहले वे परिशिष्ट ही पढ जायँ। उनसे संघ की आमदनी और खर्च का ब्यौरेवार और जँाचा हुआ हिसाब मिल जायगा। पाठक को एक नजर में लग जायगा कि किस भाँति २० लाख रुपयों की पूँजी सबसे अधिक विस्तृत और इस लिए सबसे बडे राष्ट्रीय उद्योग में लगी है। अगर पाठक इन अंकों को ध्यान-पूर्वक पढें तो वे समझ सकेंगे कि हमें अपनी आमदनी का एक अंश इस व्यवसाय में क्यों लगाना चाहिए और उससे हमें जो लाभ होगा, वह होगा हमारे गरीब गांववालों की समृद्धि के रूप में, जिनके श्रम पर हमारी अपनी आमदनी निर्भर है। परिशिष्टों में अ० भा० चर्खासंघ के प्रस्ताव भी दिये गये हैं, जिनमें बतलाया गया है कि संघ की क्या सामान्य नीति है, किन शर्तों पर संघ किसी को कर्ज देता है, किन शर्तों पर संघ के डिपो किसी को उधार माल दे सकते हैं, किस तरह खद्दर के स्वतंत्र व्यापारियों को सहायता दी जाती है तथा खद्दर की फेरी करने वालों को कमीशन दी जाती है। इनके अलावा संघ का विधान, भिन्न २ एजेन्सियों या शाखाओं का परिचय और पता, और दूसरी जानने लायक बातें दी हुई हैं।

परिशिष्ट देख चुकने बाद अगर पाठक के पास घंटा, आधा घंटा समय होवे तो, वह अब रिपोर्ट पढे। रिपोर्ट से पता चलेगा कि खादी ने कितनी प्रगति कीहै। उसीसे अ. भा. देशबन्धु स्मारक कोष की भी हालत का ज्ञान होगा। जब कि सन १९२५-२६ में कुल रु. २३,७६,६७०, की खादी बनी थी सन १९२६-२७ में कुल रु. २४,०६,३७०, की बनी और बिक्री भी कुल रु. २८,९९,१४३, से बढ कर रु. ३३,४८,७९४ पर पहुँच गयी। खादी कोष में धन देने वालों को इन अंकों से यह तस्कीन होगा कि खादी में दिया धन पानी में बहा नहीं जाता है बल्कि कुछ काम हो रहा है, खादी खूब उन्नति कर रही है। पिछली रिपोर्ट में कतवैयों की संख्या ५०,००० बतलायी गयी थी, इस बार वही बढ कर ८३,३३९ हो गयी है। बुनकरों की संख्या ५,१९३ है। संघ की शाखाओं के जरिए पिछले साल १,५०० गांवों में खादी का काम होता था। अब इस साल २,३८१ गांवों में चल रहा है। पिछली बार भी कतवैयों और गांवों की संख्या कम ही बतलायी गयी थी। इस बार भी दर असल संख्याएँ, दी हुई संख्याओं से अधिक ही होंगी। खादी के १७७ उत्पत्ति केन्द्र हैं, जिनमें ६२ संघ के, ४१ संघ से सहायता-प्राप्त और ७४ स्वतंत्र हैं। २०४ दूकानें हैं, जिनमें ११५ संघ की, ४३ सहायता-प्राप्त और ४६ स्वतंत्र हैं। संघ के तथा सहायता-प्राप्त संस्थाओं के अधीन कुल मिला कर ७४२ कार्यकर्त्ता हैं। इनमें स्वतंत्र संस्थाओं में काम करनेवालों की तायदाद शामिल नहीं है। सूत की उन्नति के बारे में रिपोर्ट में लिखा है:

"जब कि सूत की एकसारगी या समानता और ऐंठन या मजबूती बढाने के लिए कोशिश की जाती रही है, सूत का अंक तो बहुत से प्रान्तों में बढ गया है इस बाबत में प्रान्तीय रिपोर्टें देखने से अजमेर और पंजाब में उन्नति स्पष्ट दिखलायी पडती है। शुरू में ६ से १० अंक का सूत होता था और अब बहुत सूत तो १५ अंक तक का होता है। थोडा सा सूत तो २५ अंक तक का भी मिलता है। अजमेर में काम शुरू करने के समय ४ से ५ अंक का ही सूत मिलता था। अब वही बढ कर १० से १३ तक पहुँच गया है। औसत दर्जे के सूत में उन्नति के अलावा बहुत से प्रान्तों में ऊंचे अंक का बहुत सूत मिलने लगा है। तामिलनाड में इस साल ऊँचे अंक के सूत का कपडा ७२,५३६) रु. का बना था। मगर आज सब से महीन खादी बनाने में तो आन्ध्र ही बाजी मारे हुए है।"

यह भी संतोष की बात है कि कपडे की जाति में सुधार होने के साथ साथ दर बराबर ही घटती गयी है। खादी-सेवा संघ के बारे में शिक्षण विभाग की दी हुई ये खबरें भी रोचक होंगी:

"पिछले सालों की रिपोर्टों में शिक्षण-विभाग के मुख्य कामों का जिक्र आता गया है। इसका सबसे महत्वपूर्ण विभाग है कार्यकर्ताओं को खादी बनाने की सभी क्रियाएँ सिखलाने के लिए खादी पाठशाला को चलाना। यह काम यों चलता रहा है सन् १९२२ से किन्तु खास तौर पर खादी काम में शिक्षित स्त्री पुरुषों को रखने की योजना पिछले ही साल बनी थी। इस योजना के अनुसार खादी-सेवा के लिए उम्मेदवारों को ३ महीने तक उम्मेदवारी करने बाद २ वर्ष के शिक्षाक्रम के अनुसार शिक्षा दी जाती है और बाद में ९ महीने किसी खादी-केन्द्र में व्यावहारिक अनुभव के लिए भेजा जाता है। इस तीन वर्ष की कुल अवधि में अगर जरूरत हो तो १२) रु. महीने की छात्रवृत्ति दी जाती है। उसके बाद अगर वह खादी-सेवा-संघ में शामिल होना चाहे तो उसे भर्ती कर लिया जाता है। उसे कमसे ३०) रु. माहवारी मुशाहरा और दश वर्ष की नौकरी की गारंटी दी जाती है। एक शिक्षाक्रम भी तैयार किया गया है, जो शिक्षा मण्डल के स्वीकार करने तक, अभी तब तक काम में लाया जा रहा है।"

रिपोर्ट की और दूसरे मनोरंजक फिक्रों को मुझे छोड ही देना पडेगा । मैं समझता हूँ की इतनी बातों से, रिपोर्ट मँगा कर पढने की भूख पाठकों के दिलों में जग गयी होगी । अ० भा० चर्खासंघ, मिर्जापुर, अहमदाबाद से वह ४ आने के पोस्टेज स्टांप भेजने पर मिल सकती है ।

(यं० इं०) मो० क० गांधी

मोक्षदाता राम*

हमें जिन राम के गुण गाने हैं, वे राम वाल्मीकि के राम नहीं हैं, तुलसी-रामायण के राम भी नहीं हैं — जो कि तुलसीदास की रामायण मुझे अत्यन्त प्रिय है और उसे मैं अद्वितीय ग्रन्थ मानता हूँ, तथा एक बार पढना शुरू करने पर कभी उकताता नहीं; तौभी हम आज तुलसीदास के राम का स्मरण करनेवाले नहीं हैं, और न गिरिधरदास के राम का । तब फिर कालिदास और भवभूति के राम का तो कहना ही क्या ? भवभूति के उत्तर राम-चरित में बहुत सौन्दर्य है, किन्तु उसमें वे राम नहीं हैं जिनका नाम ले कर हम भवसागर तर सकें या जिनका नाम हम दुःख के अवसर पर लिया करें । असह्य वेदना से दुःखित आदमी को मैं कहता हूँ कि 'रामनाम लो,' अगर नींद न आती हो तौभी कहता हूँ कि, 'लो रामनाम' । किन्तु ये राम तो दशरथ के कुँवर या सीता के पति राम नहीं हैं । ये तो देहधारी राम हो नहीं हैं । जो हमारे हृदय में बसते हैं वे राम देहधारी हो ही नहीं सकते । अंगूठे के समान छोटा सा तो हमारा हृदय और उसमें भी समाये हुए राम देहधारी क्यों कर हो सकते हैं, या तो किसी साल चैत्र की नवमी को उनका जन्म हुआ ही नहीं होगा । ये तो अजन्म हैं । ये तो पृथ्वी को पैदा करनेवाले हैं, संसार के स्वामी हैं । इसलिए हम जिन राम का स्मरण करना चाहते हैं और जिनका स्मरण करना चाहिए वे राम हमारी कल्पना के राम हैं, दूसरे की कल्पना के राम नहीं ।

इतना याद रक्खें तो हमारे मन में जो अनेक प्रश्न उठा करते है वे न उठें । कितनी बार सवाल होता है कि बालि का वध करनेवाले राम संपूर्ण पुरुष क्यों कर होंगे ? मेरे पास भी ऐसे ऐसे अनेक प्रश्न आते हैं । इसलिए मैं मन ही मन हँसता हूँ । किसीने अगर छल में या सीधी रीति से किसीको मारा अथवा ओई दश सिर का देहधारी रावण हो तो उसीको मार कर कौन कौन सा भारी काम कर लिया ? आज का जमाना तो ऐसा है कि बीस क्या, असंख्य भुजा का भी कोई रावण पैदा हो तो एक बालक तोप के एक ही गोले से उसके असंख्य हाथ और माथा उडा देवे । उसे हम अलौकिक बालक नहीं गिनेंगे । उसे हम बडा राक्षस मानेंगे । मैं मानता हूँ कि हम राक्षस के बडे भाई के समान शक्ति पैदा करना नहीं चाहते । उसकी पूजा करने से हमें शान्ति नहीं मिलेगी । हम पूजा करें तो अंतर्यामी की जो सबके भीतर है और साथ ही सबसे जुदा है और सबका स्वामी है । उन्हींके बारे में हमने गाया कि 'निर्बल के बल राम ।' इसमें तो 'द्रुपद-सुता निर्बल भई' की भी बात आयी है । अब द्रौपदी और देहधारी राम का मेल कहां बैठेगा ? तौभी कवि ने गाया है कि द्रौपदी की लाज राम ने रक्खी । इसमें तो वही राम हैं जो सभी को सामान्य हैं, तौभी जिन्हें कोई पहचान नहीं सकता । हम उसी राम का स्मरण करते हैं । इन अंतर्यामी राम और कृष्ण में भेद नहीं है ।

रामनवमी का पर्व इसी लिए बनाया गया कि इसके निमित्त हम कुछ संयम का पालन करें, लडके कुछ निर्दोष आनंद लेवें और रामायण पढ कर कुछ बोध लेवें । देहधारी मनुष्य परमेश्वर को दूसरे तरीके से झट नहीं पहचान सकता । उसकी कल्पना दूर नहीं दौड सकती और इस लिए वह मानता है कि परमेश्वर ने मनुष्य के रूप में अवतार लिया था । हिन्दू धर्म में उदारता का नहीं है । इस लिए वर्णन किया है कि परमेश्वर मछली के वराह के रूप में और नरसिंह के रूप में अवतरा था । यों ने देहाध्यास से ईश्वर की कल्पना देहधारी के रूप में की है जब तब उसके अवतार लेने की कल्पना की है । कहा है कि की ग्लानि हो और अधर्म फैल पडे तो ईश्वर धर्म की रक्षा के लिए अवतार लेता है । यह बात भी उसी तरह और ही हद तक सच्ची है, जितनी मैंने कही है । नहीं तो अजन्मा अवतार ही लेना क्या ? यह मानने का कोई कारण नहीं है कोई ऐतिहासिक पुरुष ईश्वर के रूप में या ईश्वर किसी ऐतिहासिक पुरुष के रूप में अवतरा था । जो जो महापुरुष हो गये हैं, गुण देख कर मनुष्यों ने उन्हें पूर्ण अथवा अंशावतार माना । यह जानते हुए भी कि वाल्मीकि या तुलसीदास के राम के जुदा उपासकों ने अपना ईश्वर उन्हींको माना है, उनके वैसे को गाने में कोई दोष नहीं है । किन्तु मैंने जो बात तुम्हें कह सुनायी, उसे सदा याद रक्खो तो तुम्हारे भ्रमजाल में का कोई कारण न रहे । हमारे सामने अगर कोई शंकाएँ रख हमें फेर में डालना चाहे तो उसे कहो कि हम किसी देहधारी की पूजा नहीं करते हैं । हम तो अपने निरंजन, निराकार राम पूजते हैं । उसके पास सीधे नहीं पहुँच सकते, इस लिए ईश्वर की मूर्तिमंत कल्पना की है, उन भजनों को गाते हैं ।

जब तक हम देह की दीवार के पार नहीं देख सकते, तक सत्य और अहिंसा के गुण हम में पूरे पूरे प्रकट होनेवाले हैं । जब सत्य के पालन का विचार करें तब देहाध्यास छोडना चाहिए, क्योंकि सत्य के पालन के लिए मरना जरूरी होवे अहिंसा की भी यही बात है । देह तो अभिमान का मूल है । के बारे में जिसका राग बचा हुआ है, वह अभिमान से मुक्त ही नहीं सकता । जब तक मेरे मन में यह है कि यह देह है, तब तक मैं सर्वथा हिंसा मुक्त होता ही नहीं हूँ । अभिलाषा ईश्वर को देखने की है, उसे देह के पार जाना अपनी देह का तिरस्कार करना पडेगा, मौत की भेट करनी पडेगी

ये दो गुण जो मिलें तभी हम तर सकेंगे, ब्रह्मचर्यादि का कर सकेंगे । अगर उनका पालन करना चाहें तो सत्य के बिना चलेगा ? सत्य का मुख तो सुवर्णमय पात्र से ढँका हुआ है—' ण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।' सत्य बोलने, सत्य के करने का डर क्यों हो ? असत्यरूपी चमकीला ढक्कन जब तक करें तब तक सत्य की झांकी क्यों कर होवे ? कोई कसूर उसपर क्रोध करने के बदले प्रेम करना क्या हमें रुचता है, को असार कह कर गाते हैं सही, मगर क्या उसे असार समझते भी हैं

राम तो कहते हैं कि मुझसे मिलना हो तो इस संसार से जा । मगर शरीर को भगाने से भागा नहीं जाता । असारता वृत्ति पैदा कर के, चौबीस घन्टे काम करते हुए भी हम मिल सकते हैं । यही वस्तु गीता जी में सिखलायी गयी है । को मैं इसी लिए आध्यात्मिक शब्दकोष मानता हूँ । तुलसीदास वही वस्तु हमें सुन्दर काव्य के रूप में सिखलायी है ।

किन्तु चाबी तो वही है जो मैंने बतलायी है यानी अपनी कल्पना के ही राम हमें तारेंगे । मेरा राम मुझे आपको नहीं और आपका राम आपको तारेगा, मुझे नहीं । तुलसीदास के समान सुन्दर काव्य नहीं बना सकते किन्तु जीवन ईश्वर को उतार कर, उसे काव्यमय कर सकते हैं ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

* आश्रम में रामनवमी के दिन दिये प्रवचन का सारांश ।

खादी का स्थान

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, –)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ३४

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, वैशाख वदी ७ संवत् १९८४ गुरुवार, १२ अप्रैल १९२८ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

निरक्षर बाल-शिक्षण*

१

ज्ञान-प्राप्ति के कुछ स्वाभाविक साधन अक्षर तो हैं नहीं। यह तो मनुष्य की बनायी अपनी युक्ति है। इन्द्रियों की मदद से सृष्टि का प्रत्यक्ष निरीक्षण करना; निरीक्षण, परीक्षण तुलना और वर्गीकरण से यह ज्ञान पक्का करना; — मनुष्य के ये खास अधिकार हैं। इस ज्ञान का विनिमय द्वारा प्रचार और विस्तार करने का साधन भाषा है। भाषा के जरिए हम एक दूसरे से व्यवहार चलाते हैं। ज्ञान का विनिमय करते हैं और संग्रह भी करते हैं। भाषा के कारण विचार करने की लीक भी बन जाती है; और जो बात सभी लीकों की होती है, वही इसकी भी यानी प्रगति सहज किन्तु संकुचित भी हो जाती है। जैसे कि रेलवे ट्रेन पटरी छोड कर कहीं जा ही नहीं सकती, सुधरे हुए लोगों का मन रास्ता छोड कर कहीं इधर उधर जाने का होता ही नहीं है, उसी तरह भाषा का प्रयोग करनेवाला आदमी अमुक ढब से ही विचार करना पसंद करता है।

यह भी कुछ जरूरी नहीं है कि भाषाओं की एक न एक लिपि भी होनी ही चाहिए। जब लिपि नहीं थी, तब भी भाषा का विकास होता था, और स्मृतिवीर कुबेर के समान साहित्य संपत्ति का विशाल संग्रह कर सके थे। जब तक लिपि न आयी थी, तब तक आदमी आदमी के बीच का संबंध, व्यवहार और सहवास अत्यावश्यक थे। ज्ञान-मात्र श्रुति या कानों द्वारा मिलता था। वेद के मानी हैं श्रुति या सुनी हुई बात। हमारी सारी संस्कृति का पालन श्रुति-स्मृति द्वारा होता था। सामान्य लोगों के लिए लोमहर्षण कथा कहानीं द्वारा इसी श्रुति और स्मृति के सिद्धान्त, रिवाज और नियम प्रचलित होते थे। पुराना ज्ञान हर बार नये ढब से गाया जाता था। जैसे श्रोता होते थे, वैसी ही इस ज्ञान की आवृत्ति भी होती। पुराना होने पर भी जो ज्ञान नया रहे वह है पुराण (पुरा अपि नव)। छंद में ही बोलने की प्रासादिक वाणी जिन लोगों को मिली, वे लोग केवल कथा वार्त्ता और धार्मिक सिद्धान्त सूत्र रूप से ध्यान में रखते होंगे और प्रसंग आने पर समयस्फूर्त्ति से छंद में बोल डालते होंगे। छंद है विचार और भाषा को स्थिर कर, उसे कायम रखनेवाला संग्रह, निधि अथवा बैंक भी कहिए तो चलेगा।

इसके बाद लिपि आती है। लिपि ने स्मरण पर का भार कम किया और स्मरण-शक्ति बढाने की जरूरत भी कम कर डाली। लिपि है तो कृत्रिम साधन किन्तु इसने साहित्य का विस्तार खूब बढाया और छापने की कला के बाद तो इसकी कोई मर्यादा ही नहीं रही है। यह अयोग्य है कि लिपि जैसे कृत्रिम साधन शुरुआत से ही शिक्षा के प्रदेश में फैल जाय या लिपि से ही शिक्षा शुरू हो। लिपि द्वारा उच्चार और विचार ग्रहण करना, चित्त का बहुत ही कठिन व्यापार है। इसका बोझा छोटे लडकों पर न रक्खें तो शिक्षा स्वाभाविक और सहल हो जाय। जब कि मनुष्य-सहवास से स्वाभाविक रीति पर मिलनेवाले ज्ञान से अधिक ज्ञान की भूख जगे, निरीक्षण और भाषण से कुदरती साधन अधूरे जान पडें, तभी शिक्षा में लिपि का प्रवेश कराना चाहिए।

जो बात लिपि की, वही (लिखित) अंकों की भी समझनी चाहिए। जिस भाँति भाषा रहे, किन्तु लिपि न आवे, उसी भाँति अंक रहें, गणित रहे, किन्तु आंकडे शुरुआत में न आवें। गणित लिखने की पद्धति तभी शुरू हो, जब मुखगणित की अवधि आ जाय—समाप्त हो जाय।

हम बहुत बार देखते हैं कि स्वभाव से चपल लडके भी लिपि-ज्ञान नहीं ग्रहण कर सकते। लिपि का उपयोग नहीं जानने से, या लिपि द्वारा ज्ञान लेने की इच्छा जाग्रत न होने से, लिपि-ज्ञान अत्यन्त नीरस और भार जैसा हो पडता है। लिपि-ग्रहण जैसे कठिन और अटपटे विषय में जिसकी बुद्धि चले, उसीको जो हम होशियार कहते हैं और जो बालक या बालिकाएँ इस अस्वाभाविक विषय में प्रवीणता नहीं दिखलातीं, उन्हें शिक्षा की शुरुआत में ही मूर्ख होने की छाप मार देते हैं, और उनके स्वाभाविक आत्म-विश्वास का जो हनन करते हैं, यह द्रोह है।

अन्त्यज, भील और ऐसी ही पिछडी हुई जाति के लडकों का तो इस बाबत में मरण ही है। उन्नत जातियों के वातावरण में ही जहां तहां लिखित साहित्य होता है। साहित्य का परिचय तो इन्हें अपने जन्म से स्वभावतः होता ही है। किन्तु जिनके बाप-दादाओं के लिए काले अक्षर भैंस बराबर थे, उन लडकों की शिक्षा अक्षरों से शुरू करनी त्रास ही है। शिक्षा जैसा अमृत अगर हम सार्व-

* सुझाये एक विचार पर से।

जनिक करना चाहते हैं तो अक्षर-ज्ञान की बाधा निकाल ही डालनी चाहिए।

एक अक्षर भी सीखे बिना पुराने ब्राह्मण चार वेद और छह वेदांग कंठस्थ कर के दशग्रंथी ब्राह्मण की पदवी पाते थे। तर्क, न्याय, वेदान्त जैसे विषयों में कितने पारंगत ब्राह्मण अपने नाम की सही करने लायक भी अक्षर-ज्ञान प्राप्त करने का कष्ट नहीं उठाते थे। और पुराने जमाने में बहिनों में भी अक्षर या आंकडों के ज्ञान बिना व्यवहार चलाने की शक्ति दिखलायी पडती थी और बहुत सा काव्य-साहित्य उनको मुखाग्र रहता था। अक्षर-ज्ञान से कोरी, किन्तु दवा दरपन करनेवाली स्त्रियों को किसने कहां नहीं देखा है?

अक्षर-ज्ञान का महत्व हम कम नहीं लगाते हैं। अक्षर-ज्ञान से जो स्वाश्रय पैदा होता है, उसे हम कीमती गिनते हैं। अक्षर-ज्ञान के बिना पुस्तकालय नहीं बन सकते। अक्षर ज्ञान के बिना अखबार नहीं चल सकते। किन्तु बालशिक्षण में या लोकशिक्षण में हमने अक्षरों को जो अपरिहार्य कर डाला है, अथवा शिक्षा का श्रीगणेश अक्षर-ज्ञान से ही करते हैं, उसकी कोई जरूरत नहीं है।

शिक्षा के कोई तीन साल तक यानी लडका जब तक नौ, दश साल का हो, तब तक अक्षरों के ज्ञान के बिना भी उसे सभी तरह की शिक्षा गंभीरतापूर्वक दी जा सकती है। कितने लोग यह सिद्धान्त स्वीकार करके भी यह आक्षेप उठावेंगे कि अक्षर सीखने में हाथ को और खास कर उँगलियों के स्नायुओं को जो शिक्षा मिलती है, आंख को एकाग्रता की तालीम मिलती है, और बुद्धि को कान और आंख के बीच मेल रखना पडता है,—ये लाभ तो अक्षर-ज्ञान निकाल देने से मारे ही जाते हैं। आक्षेप सच्चा है। शिक्षा में यह कमी नहीं रहनी चाहिए। किन्तु अक्षर-ज्ञान की बनिस्वत रेखाचित्रों के द्वारा ये ही उद्देश्य ज्यादह स्वाभाविक और दिलचस्प तरीके से पूरे किये जा सकते हैं। बालक और बालिकाएँ नित्य के अवलोकन या उपयोग में आनेवाले पदार्थों और प्राणियों को देख कर उनका आकार खींचने की कोशिश करें तो यह उत्तम से उत्तम शिक्षा है। अक्षरज्ञान की बनिस्वत इसमें लाभ अधिक है, श्रम कम है और इस रीति से हाथ के स्नायुओं पर और फिर आंख तथा मन पर काबू करने बाद अक्षर सीखने में ही कितनी देर लगेगी? और सबसे बडा लाभ तो यह होगा कि चित्रज्ञान में कसा हुआ हाथ खराब, बेढंगा, कलाशून्य अक्षर कभी लिखेगा ही नहीं। सिखाया हुआ हाथ जो कुछ लिखेगा, सुंदर ही होगा।

२

शिक्षा की इस स्वाभाविक पद्धति को हम अक्षर-पूर्व शिक्षा कहें या निरक्षर शिक्षा कहें, तौभी चलेगा। यह तो सहज ही समझ में आने लायक बात है कि इस शिक्षा में विद्यार्थियों के लिए पाठ्यपुस्तकें न होंगी। शिक्षक के बतलाये रास्ते पर विद्यार्थी सारा ज्ञान आप पैदा करे या शिक्षक के पास से सुन कर लेवे। इस पद्धति में शिक्षकों को अपने क्षेत्र के लायक गंभीर शिक्षाकार होना चाहिए। जब से पाठ्यपुस्तकें आयीं, तभीसे शिक्षकों का ज्ञान अस्पष्ट, ऊपरी और अपरिपक्व होता है। शिक्षक का काम पोस्टमैन और पहरेदार के जैसा हो गया है। वह विद्यार्थियों तक पाठ्यपुस्तकें पहुँचाता है और इस लिए इस हद तक पोस्टमैन हुआ और इसकी चौकी देता है कि विद्यार्थी उनका ठीक ठीक उपयोग करते हैं। और इस हद तक पहरेदार हुआ। भाषा-प्रधान विषयों में शिक्षकों की योग्यता कठिन वाक्यों का अर्थ करने तथा लंबे प्रकरणों का सार निकालने जितनी ही होती है।

पाठ्य पुस्तकों के हिमायती मानते हैं कि इनसे समाज में बडी तेजी से, चाहे कैसे भी शिक्षकों के द्वारा शिक्षा का प्रचार करने की सुविधा हुई। किन्तु यह वहम है। इससे शिक्षकों की प्रतिभा, तेजस्विता, शिक्षा-परायणता और आजीविका — सभी कुछ मारी जाती है। समाज की दृष्टि से यह ठीक नहीं हुआ है कि आज शिक्षक की प्रतिष्ठा पुस्तक के बराबर भी नहीं रह गयी है। शिक्षक कुछ केवल अक्षर-ज्ञान का ही उस्तांद नहीं होना चाहिए। वह संस्कारिता का प्रतिनिधि, शिक्षा का मिशनरी, और समाज का अगुआ होना चाहिए।

हर साल नये नये खर्चीले पाठ्यग्रंथों के बदले शिक्षकों के लिए उपयोगी प्रमाण ग्रंथ बनवाने चाहिए। उसमें सभी बातें थोडे में, पक्के शब्दों में, व्यवस्थित रीति से सँभाल कर आ जायँ। ऐसी पुस्तकें शिक्षक इस्तैमाल करें, प्रौढ विद्यार्थी पढें और संस्कारिता के इच्छुक और सामान्य लोग भी देखें।

जहां पाठ्यक्रम के अनुसार सभी को एक सरीखी शिक्षा देने का आग्रह होवे, वहां पर बहुत में बहुत, हर एक वर्गकी शिक्षा निश्चित करनेवाली वर्गोपयोगी किताबें सूत्र रूप से लिखी हों, जो खास शिक्षकोपयोगी हों और विद्यार्थी भी भले ही, काम में लावें। ऐसी किताबों में बेकार शब्दाडंबर न होवे, काम की बातें कम से कम छोटे सूत्रों में सजी हों। शिक्षक विद्यार्थियों की शक्ति, वृत्ति के अनुसार ये विषय हर बार नये नये ढब से बतलावें। ऐसी पद्धति एक बार दाखिल हुई कि साहित्य को स्वभाविक रीति से उत्तेजन मिलेगा। निर्माल्य साहित्य कम पैदा होगा। और लोगों का वाचन मनन पूर्वक तथा गहरा होगा। किताबें पढने की बनिस्वत उस विषय के जानकार के मुख से सुनने से कठिन से कठिन विषय भी सहज हो जाता है और थोडे समय में बहुत ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। भले ही हमें चारित्र्य को दीन करनेवाले आज के इस आदर्श या रिवाज को निकाल फेंकना पडे कि बोलने में तो चाहे जो गडबड होती रहे, मगर शुद्धता तो लिखने में चाहिए, तौभी ऊपर का ही मार्ग अनुकूल है।

गंभीर शिक्षण में जिन कई विषयों का ज्ञान प्रत्यक्ष प्रयोग से होना चाहिए, उन्हें भी हम पाठ्य पुस्तकों की मध्यस्थता के कारण शब्दों से ही चलाने लगे। ऐसे शाब्दिक ज्ञान ने हमारा रास्ता कुछ कम नहीं रोका है। पाठ्यपुस्तकें निकाल डालें तो शब्द-ज्ञान की महत्ता कुछ न कुछ तो घटेगी ही।

अक्षर-ज्ञान की कैद में शिक्षा के जाने से, शिक्षा में मावाप का सहकार बहुत कम हुआ है। ज्ञान की कल्पना ही विकृत हो गयी है। व्यावहारिक ज्ञान और पंडिताई के विचित्र भेद बने हैं, और ज्ञान के विषयवार टुकडे बन गये हैं। शिक्षाकारों और विद्यार्थियों के सर्वकाल किताबों में ही मस्त रहने के कारण किसी विषय का मौलिक ज्ञान प्राप्त करने के बदले हर एक आदमी यही जानने में समय बिताता है कि दूसरे आदमी ने इस विषय पर क्या लिखा है। और ग्रंथकार बहुत बार पेड पर के बंदरों के समान एक दूसरे पर ही गुजरान चलाते हैं। किताबों की वृद्धि होती है, मगर तौभी ज्ञान में बढती नहीं होती।

शुरूआत में ही अगर एक भूल की हो तो उसके दोष अंत तक अनेक तरह से बाधा डाले बिना कैसे रहे? मूल में ही जो वे दोष सुधारे हों तो शिक्षा की सारी धारा उस अंश तक निर्मल रहेगी। आशा है कि प्रजा-हितैषी शिक्षा-कार इस विषय पर गंभीर विचार करेंगे और सारी पद्धति में आमूलाग्र फेरफार करेंगे। यह वैसा ऊपर का काम नहीं है जैसा कि इसे पढने पर आदमी को पहले पहल लगेगा; इसमें तो सारी दिशा को ही बदलने का सवाल है। इस एक फेरफार से ही संगीन शिक्षकों की संख्या इसके साथ बढेगी और देश में प्राथमिक शिक्षा का प्रचार असाधारण वेग से बढेगा।

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

एकभक्ति हनुमान*

हनुमान के अनुकरण का पहला पाठ यह है कि हम जो काम करते हों, उसीमें सभी इन्द्रियों को लगा देवें। यह करने के लिए आंखें निश्चल और सच्ची रखनी चाहिए। आंखें सारे शरीर का दीपक हैं, और आत्मा का भी दीया कहें तो चल सकेगा। क्योंकि जब तक शरीर में आत्मा है, तब तक आंख से उसकी परीक्षा हो सकती है। मनुष्य अपने वचन से शायद आडंबर करके उसे आप छिपावे, मगर उसकी आंखें उसे जाहिर कर देंगी। उसकी आंख यदि निश्चल न हो तो अंतर परख लिया जायगा। जिस भांति नाडी की परीक्षा करके हम शरीर के रोग परखते हैं, उसी भांति आंख की परीक्षा करके आध्यात्मिक रोग परखे जा सकते हैं। इस लिए लडकों को बालपन से ही आंखें निश्चल रखने की टेव डालनी चाहिए।

हनुमान की आंखें निश्चल थीं। वे सदा दिखलाती थीं कि राम का नाम जिस तरह उनके मुंह में था, उसी भांति हृदय में भरा हुआ था, उनके रोम रोम में व्याप्त था।

हम अखाडों में जो हनुमान की स्थापना करते हैं वह मुझे रुचती है मगर इसका अर्थ यह नहीं है कि हम केवल शरीर से ही बलवान होना चाहते हैं या, हनुमान के केवल शरीर-बल की ही आराधना करते हैं। शरीर से जरूर बलवान् बनें मगर साथ ही यह भी जान लेवें कि हनुमान का शरीर राक्षसी न था; वे तो वायुपुत्र थे यानी उनका शरीर फूल के समान हलका था, और तौभी कसा हुआ था। किन्तु हनुमान की विशेषता, उनके शरीर-बल में न थी; उनकी भक्ति में थी। वे राम के अनन्य भक्त थे, उनके गुलाम थे। राम के दासत्व में ही उन्होंने सर्वस्व माना, और उन्हें जो कोई काम सौंपा गया, उसे वायु-वेग से किया। इसलिए हम व्यायाम-शाला में हनुमान की जो स्थापना करते हैं, वह इस अर्थ में कि व्यायाम कर के भी, हम दास बननेवाले हैं— भारतवर्ष के दास, जगत के दास और उसीसे ईश्वर के दास बननेवाले हैं। इस दासत्व में हमें परमेश्वर की झांकी मिलेगी।

इस लिए यह भी मत कहो कि हम केवल उनके ब्रह्मचर्य के लिए ही हनुमान की आराधना करते हैं। सेवकमात्र को ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाला अवश्य होना होगा। जिसने सेवा का व्रत लिया, वह भला इन्द्रिय-विषयों का सेवन कैसे कर सकेगा? अरे, पिता माता की सेवा जैसी संकुचित्त सेवा के लिए पुत्र के संयमी बनने की आवश्यकता है। जैसा विषयी मैं बना था, वैसा बन कर वह सेवा नहीं की जा सकती। उसी तरह जिसे आश्रम की सेवा करनी है, स्त्री पुरुषों, बालक बालिकाओं की सेवा करनी है उसके लिए विषय का सेवन करने से कैसे काम चल सकेगा? और आश्रम की सेवा तो महज एक नन्हीं सी सेवा है, समुद्र में एक बिन्दु मात्र है। इस लिए जिसे जगत की सेवा करनी है, वह तो विषय से भागता ही फिरेगा।

किन्तु विषयों के भीतर से मन को उठा लेना हो तो यह काम केवल उपवास से या तपश्चर्या से ही नहीं होगा; किन्तु हनुमान के जैसी भक्ति से ही हो सकता है। यानी ब्रह्मचर्य और दूसरी सभी वस्तुओं की कुंजी भक्ति में है। हम रोज संध्या में गाते हैं:

> विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
> रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

निराहारी की इन्द्रियां भले ही शान्त होवें, किन्तु विषयों के लिए रस शान्त नहीं होता। इन्द्रियां जब शिथिल होती हैं, तब बहुत करके मन अधिक चंचल हो जाता है, विषयों की ओर अधिक दौडता है; यह रस भी राम जी के दर्शन से शांत हो जाता है। यह हनुमान जी का कौल है अथवा हनुमान के जीवन से यह पदार्थ-पाठ सीखना है।

कल्ह मैंने ब्रह्मचर्य के बारे में एक ऐसे विशेषण का प्रयोग किया है, जैसा कभी नहीं किया था। वह यह कि मैंने हनुमान के ब्रह्मचर्य को सात्विक ब्रह्मचर्य कहा। यों ब्रह्मचर्य की स्तुति करते हुए उसके तीन भेद सात्विक, राजसी और तामसी दिखलायी पडे। हनुमान का ब्रह्मचर्य सात्विक था, जब कि मेघनाद का ब्रह्मचर्य राक्षसी था। राक्षसी ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले में क्रोध होता है, अभिमान होता है। सात्विक में समर्पण होता है। दोनों ही शरीरबल में एक दूसरे से बढे चढे हुए थे। किन्तु हनुमान मेघनाद को इस लिए हरा सके, कि मेघनाद अभिमानी था; जब कि हनुमान भक्तिभीने थे और इस लिए उनका बल विशेष था।

इस लिए आंखें बिलकुल सच्ची रखनी, हाथ पैर ठीक रखने, जीभ सच्ची रखनी और यों करके किसी अंश तक हनुमान का अनुकरण भी करने की शक्ति पैदा करनी चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करके शरीर को सुदृढ जरूर करना है किन्तु वह इसी लिए कि हमें शरीर से भी राम की भक्ति करनी है, और भक्त बनकर जगत के सेवक बनना है।

केवल बाह्य बातों को ही सँभालने से अंतर भी नहीं सँभल जायगा, किन्तु हम जो बाहर को भी सँभालते जायँगे और यह सब केवल बाह्याडंबर न हो तो किसी दिन मन भी स्थिर हो रहेगा, और तभी हम किसी दिन हनुमान की बराबरी कर सकेंगे।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

* हनुमान जयन्ति के दिन आश्रम की प्रार्थना में कहे दो शब्द।

सत्याग्रह समाचार

हम पिछले कई हफ्तों से बारडोली के बारे में कोई सूचना अपने हिन्दी पाठकों को नहीं देते आये हैं। उसका खास कारण यह है कि इधर लडाई की तैयारी शान्ति से होती रही, जिसका कोई शानदार समाचार बनाना ठीक नहीं है और सरकार की नीति पर हमारी टिप्पणियां लडाई से प्रत्यक्ष संबन्ध न रखने के कारण हिन्दी पाठकों के लिए शायद रोचक न होतीं।

अब तो सारे देश का ध्यान इस युद्ध की ओर खिंच गया है। पास पडोस के ब्रिटिश भारत के ही नहीं, बल्कि बरोदा राज्य के ताल्लुकों ने भी बारडोली के साथ सहानुभूति के प्रस्ताव कर के लोगों से आग्रह किया है कि सत्याग्रह आन्दोलन को दबाने में कोई सरकार की मदद न करे, माल की जब्ती में न कोई माल ढोये, न अपनी गाडी किराये पर देवे, न नीलाम के लिए बोली बोले। भिन्न २ जगहों की सार्वजनिक सभाओं ने सहानुभूति के प्रस्ताव स्वीकार किये हैं। पूने में स्थिति पर विचार करने के लिए एक खास सभा हुई थी। श्रीयुत डाक्टर सुमंत मेहता ने इस आन्दोलन के साथ सक्रिय सहानुभूति दिखलाने के लिए अपील की है। गोकि अभी धन की मांग नहीं की गयी है किन्तु तौभी बहुत जगहों से बेमाँगे धन आ रहा है। बंबई के किसी अज्ञात दानी ने १०००) रु. भेजे हैं। इनमें विचित्रता तो कुछ भी नहीं है। सरकार भले ही यह कह कर इन बातों की उपेक्षा कर लेवे कि ये तो वे ही लोग हैं जो सरकार के विरुद्ध हर एक आन्दोलन का समर्थन ही करते हैं, मगर अब तो भीरु

और अत्यन्त सतर्क बंबई प्रेसिडेन्सी ऐसोसियेशन ने भी, जो अपनी विधान-प्रियता का गर्व करतो है, सरकार की लगान नीति का सख्त विरोध किया है। वह स्वभावतः ही सत्याग्रह का उल्लेख तो नहीं कर सकता था किन्तु उसने भी सरकार को धारासभा के प्रस्ताव के अनुसार चलने को कहा है। यों प्रेसिडेन्सी ऐसोसियेशन का प्रस्ताव तो बारडोली के किसानों की माँग से भी कहीं अधिक दूर जाता है जो महज निष्पक्ष पंच की माँग भर करते हैं। देखना है कि सरकार इन दो रास्तों में अपने लिए किसे अधिक सम्मानप्रद समझ कर पसंद करती है।

(नवजीवन) महादेव देशाई

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख बदी ७ संवत् १९८४

खादी का स्थान

खादी-प्रेमी सज्जन मुझे बहुत जोरों से चेताते रहे हैं, कि विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार आन्दोलन के लिए राष्ट्र के लिए हितकर शर्तों पर मिलवालों को मिला कर उनसे काम लेने की आशा दुराशा मात्र है। उनकी चेतावनी का महत्व मैं समझता हूँ। उनमें कुछ तो खादी के ऊँचे हुए अनुभवी कार्यकर्त्ता हैं। मगर यह आशा मैं नहीं छोडता कि किसी दिन मिलवाले राष्ट्र की दृष्टि को स्वीकार कर लेंगे। आखिर, अहिंसा के सिद्धान्त का दृढ विश्वासी होने के कारण, जिस भाँति कि मैं अँगरेजों को भारतवर्ष के हित की भारतीय दृष्टि समझाने का एक भी मौका नहीं छोड सकता उसी भाँति मैं उनसे राष्ट्र की दृष्टि को स्वीकार करा सकने का एक भी मौका नहीं छोड सकता। आखिरशः हमें अगर अहिंसा के रास्ते स्वतन्त्र होना है तो हमें उनके भी दरवाजे खटखटाने होंगे जो हमारी स्वाधीनता के रास्ते में रोडे अटकाते हैं, और उनसे विनय करनी होगी कि आप उन्हें हटा देवें। और जिस भाँति खूनी लडाई में, उन लोगों को मरना ही पडता है जो कोई युक्ति नहीं सुनते और हठ-से रास्ता रोके खडे होते हैं चाहे वे विदेशी हों या स्वदेशी, उसी तरह अहिंसात्मक क्रान्ति में वैसे लोगों को सत्याग्रह का सामना करना ही पडेगा।

इसलिए उन शर्त्तों को बयान करने में, जिन पर कि मिल-मालिक राष्ट्र का साथ दे सकते हैं, मैं कोई हानि नहीं देखता। उन्हें न बतलाना ही अनुचित होता। अगर मिल-मालिक ये शर्त्तें स्वीकार कर लेवें तो मैं जानता हूँ कि इससे खादी की यानी जनता की कोई हानि नहीं होगी। क्योंकि अगर मिलें जनता को लूटने के लिए नहीं, जैसा कि वे आज चलायी जा रही हैं, बल्कि उनकी सेवा करने के लिए चलायी जायँ तो वे घर घर के चर्खों और कर्घों के काम में मदद करेंगी, और उनकी जगह नहीं ले लेंगी, जो आज वे लेती हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि अगर वे मेरी बतलायी शर्त्तें स्वीकार करने में हिचकें तो इसका कारण यह होगा कि उन शर्त्तों के युक्तिसंगत फल से मिल-मालिक घबराते हैं जैसे कि अँगरेजों को इस युक्तिसंगत नतीजे से घबराहट होती है कि वे सचमुच में राष्ट्र के सेवक हैं। इसलिए मैं खादी-प्रेमियों को कहूंगा कि आप मेरे इस इरुक से जरा भी मत डरिए। अगर हमारी श्रद्धा अचल हो, अगर खादी में वह आन्तरिक शक्ति हो जिसका दावा हम करते हैं,

अगर जनता को सचमुच इसकी जरूरत हो और अगर हम अपने प्रयत्न में लगे ही रहें तो वे रंग लाये बिना रह नहीं सकते। खादी तभी असफल होगी, अगर खादी-प्रेमियों की श्रद्धा डोल जाय या हमारी श्रद्धा का आधार केवल एक छायामात्र हो, उसमें कोई तथ्य न हो यानी जनता गरीबी से दर असल पिसी न जाती हो, और उन्हें साल में कभी फुरसत न मिलती हो, या फुरसत मिलने पर भी करोडों के लिए चर्खा ही सबसे अधिक उपयुक्त और व्यावहारिक धंधा न होवे।

ऊपर बतलाये ढंग पर खादी में संपूर्ण विश्वास होने से ही और उससे पैदा हुई ताकत के कारण ही मैं मिलमालिकों को मिलाने की कोशिश कर रहा हूँ। यह बिलकुल संभव है, शायद अब तक निश्चित हो चुका है कि इस सलाह मशविरे से कोई लाभ न होगा। मगर इस बीच हमने विदेशी वस्त्र का बहिष्कार पूरा नहीं कर लिया है तो, आगे कुछ काम करने में वह सहायक होगा।

इस लिए वही बात दुहरानी भले ही पडे, मगर यह विचार करना लाभदायक है कि बहिष्कार की योजना में खादी का क्या स्थान है। मेरी सम्मति में विदेशी वस्त्र का बहिष्कार इसी लिए आवश्यक है और संभव भी है कि जनता पर इसका असर पडता है। उन्हें इससे लाभ पहुँचता है और यह तभी सफल हो सकता है जब इसमें जनता भी शामिल हो। अगर केवल स्वदेशी मिलों के ही बल पर विदेशी वस्त्र का बहिष्कार किया जा सके तो, उसका मूल्य क्षण स्थायी होगा। और मैं निकट भविष्य में केवल स्वदेशी मिलों के ही सहारे यह बहिष्कार कर सकना असंभव मानता हूँ। मेरी सम्मति में केवल खादी ने ही इस प्रस्ताव को व्यावहारिक बनाया है। सचमुच ही, यह इतना अधिक व्यावहारिक है कि अगर राजनीतिक वृत्तिवाले हिन्दुस्तानी खादी बेंचने का भार उठा लेवें तो एक साल के भीतर ही देशी या विदेशी मिलों के एक गज कपडे के बिना भी, राष्ट्र को जितनी खादी की जरूरत पडे, वह तैयार की जा सकती है। इस बात पर मैं इस मान्यता से जोर देता हूँ कि गांवों की जरूरत की खादी गांववाले आप बना लेंगे और संगठित केन्द्रों में उन्हींके काम की खादी बनेगी जो आप अपने कपडे का सूत नहीं कात लेते। पिछले ७ वर्षों का अनुभव हमें बतलाता है कि अगर अचानक कपडे का अकाल पड जाय और जनता को उत्साहित किया जाय तो उन्हें इतना काफी इल्म है और उनके पास इतने यंत्र हैं कि वे अपनी खादी आप बना सकते हैं। बेशक, अंगरेजीदां हिन्दुस्तानियों के मानसिक दृष्टिकोण और वस्त्रविषयक पसंदगी में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन जरूरी है। मुझे इसमें कोई शंका नहीं है कि अगर आज उनमें अधिकांश इस पुकार को नहीं सुनते तो उस दिन उन्हें इसे लाचार सुनना होगा जब, वे देखेंगे कि खादी की गति रोकी ही नहीं जा सकती। और इसकी गति को अबाध बनाने के लिए खादी कार्यकर्ताओं को दृढता, ईमानदारी, शास्त्रीय निपुणता और चौकसी से काम करते जाना होगा। मैंने मिलवालों को जो मिलाना चाहा है और उनके साथ मिल कर विदेशी वस्त्र का बहिष्कार तुरत करने की संभवता के बारे में चर्चा की है वह यह दिखलाने के लिए कि अगर वे सचमुच में चाहें तो अपनी सेवा के साथ साथ वे राष्ट्र की सेवा का सौभाग्य लूट सकते हैं। इस बीच कोई इसमें शंका न करे कि खादी शान्ति पूर्वक और अनजान-रूप से लोगों की रुचि को बदलती जा रही है और अपने ढंगपर समय पा कर एक दिन जरूर सफल बहिष्कार करेगी, फिर भले ही मेरे सुझाये हुए मेल के जैसी कोई योजना सफल न हो।

मोहनदास करमचन्द गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ४७

मुवक्किल जेल जाने से बचा

इन प्रकरणों को पढनेवाले तो पारसी रुस्तम जी के नाम से भलीभांति परिचित हैं। पारसी रुस्तम जी एक ही समय मेरे मुवक्किल और सार्वजनिक काम में साथी बने, अथवा उनके विषय में तो यह भी कहा जा सकता है कि पहले वे साथी बने और बाद में मुवक्किल। उनका विश्वास मैंने इतना संपादन किया था कि अपने खानगी घरू मुआमलों में भी वे मेरी सलाह माँगते और उसपर चलते थे। वे अगर बीमार हों तौभी मेरी सलाह की जरूरत जान पडती और हमारे रहन सहन के बीच इतना बडा अन्तर होने पर भी वे अपने बारे में मेरे उपचारों का अमल करते थे।

इस साथी पर एक बार बहुत बडी आपत्ति आ पडी। जो कि वे अपने व्यापार की बहुत सी बातें मेरे साथ करते किन्तु एक बात तो उन्होंने मुझसे छिपायी थी। पारसी रुस्तम जी चुंगी की चोरी करते थे। बंबई और कलकत्ते से जो माल वे मंगाते, उसीके बारे में यह चोरी थी। सभी अफसरों के साथ उनका खूब मेल था। इस लिए कोई उनपर शक ही नहीं करता था। जो बीजक वे पेश करें, उसीपर से चुंगी का हिसाब जोडा जाता था। ऐसे अफसर भी होंगे जो उनकी चोरी की ओर से आंखें मूंद लेते होंगे।

किन्तु अखा की वाणी क्या कहीं झूठी निकल सकती है?

'काचो पारो खावो अन्न, तेवुं छे चोरीनुं धन' अर्थात चोरी का धन खाना कच्चा पारा खाने के समान है जो जरूर ही फूट निकलता है।

पारसी रुस्तम जी की चोरी पकडी गयी। मेरे पास दौडे आये। आंखों से आसू बह रहे हैं और रुस्तम जी कहते हैं "भाई, मैंने आपको ठगा है। मेरा पाप आज उघर गया है। मैंने चुंगी की चोरी की है। अब मेरे नसीब में तो जेल ही जाना लिखा है। और मेरा तो सर्वनाश होना है। इस आफत से आप ही मुझे बचा सकते हैं। मैंने आपसे कुछ छिपाया ही नहीं हैं। पर यह समझ कर कि व्यापार की चोरी में आपसे कहना ही क्या होवे, मैंने यह चोरी छिपायी। अब पछताता हूँ।"

मैंने धीरज देकर कहा, "मेरा तरीका तो आप जानते हैं। छुडाना, न छुडाना तो परमात्मा के हाथ है। गुनाह कबूल कर के छूट सकें तो मैं छुडा सकता हूँ।"

इधर इस भले पारसी के चहेरे का रंग उड गया। वे बोले, "किन्तु मैंने आपके पास तो कबूल किया। क्या इतना बस नहीं है?"

मैंने धीरे से जवाब दिया, "कसूर तो आपने सरकार का किया है। और मेरे पास कबूल करने से ही क्या हुआ?"

पारसी रुस्तम जी ने कहा, "करना तो अंत में मुझे वही है जो आप कहें, लेकिन मेरे पुराने वकील———हैं। उनकी सलाह भी लेंगे न? वे मेरे मित्र भी हैं।"

जांच करने पर मैंने देखा कि चोरी बहुत दिनों चली थी। पकडी तो थोडी ही सी चोरी थी। पुराने वकील के पास हम गये। उन्होंने मुआमले पर विचार किया और कहा, "यह मुकद्दमा तो ज्युरी के पास जायगा। और यहां के ज्युरर भला हिन्दुस्तानी को छोडेंगे? पर मैं आशा कैसे छोडूँगा?"

इस वकील के साथ मेरा गाढा परिचय नहीं था। पारसी रुस्तम जी ने ही जवाब दिया, "आपकी बडी मिहर्बानी की। पर इस मुकद्दमे में मुझे मि० गांधी की ही सलाह पर चलना है। वे मुझे ज्यादह अच्छी तरह से पहचानते हैं। इन्हें जो सलाह देनी जरूरी हो, आप देते रहेंगे।"

यों उल्झन को सुलझाये बिना ही हम रुस्तम जी सेठ की दूकान पर लौट आये।

मैंने समझाया, "मैं इस मुकद्दमे को अदालत में जाने लायक नहीं मानता। मुकद्दमा चलाना, न चलाना चुंगी के अफसर के हाथ में है। उसे भी सरकार के मुख्य वकील की सलाह के अनुसार चलना पडेगा। मैं दोनों से मिलने को तैयार हूँ। पर मुझे तो उनके सामने वह चोरी भी कबूल करनी पडेगी जिसे वे नहीं जानते हैं। मैं समझता हूँ कि वे जो दंड निश्चय करें वह कबूल करना चाहिए। बहुत कर के तो वे मान जायँगे किन्तु शायद न मानें तो जेल के लिए तैयार रहना चाहिए। मेरी तो राय है कि लज्जा जेल जाने में नहीं, किन्तु चोरी करने में है। लज्जा का काम तो हो चुका। जेल जाना पडे तो उसे प्रायश्चित्त समझना चाहिए। सच्चा प्रायश्चित्त तो अब से चोरी न करने की प्रतिज्ञा में है।"

मैं नहीं कह सकता कि ये सभी बातें रुस्तम जी सेठ, ठीक ठीक समझ गये। वे बहादुर आदमी थे। पर इस बार हार गये थे। उनकी प्रतिष्ठा जाने का समय आया था। और शायद उनकी अपनी मिहनत से बसाया घर उजड जाय तो?

वे बोले, "मैं आपको कहता हूँ कि मेरा सिर तो आपकी गोद में है। आपको जो करना हो, कीजिए।"

मैंने इस मुकद्दमे में अपनी विनय की सारी शक्ति लगा दी। मैं अफसर से मिला। सारी चोरी की बात निर्भयतापूर्वक उससे कह दी। सभी बही खाते दिखलाने को कहा और पारसी रुस्तमजी के पश्चात्ताप की भी बात कही।

अफसर ने कहा, "मैं इस पुराने पारसी को चाहता हूँ। उसने बेवकूफी तो की है। पर मेरा धर्म भी तो आप जानते हैं। मुझे तो वही करना है जो बडा वकील कहे। इसलिए आप अपनी समझाने की शक्ति का उपयोग उसीके साथ कीजिए।"

मैंने कहा, "पारसी रुस्तमजी को अदालत में घसीट ले जाने का आग्रह न हो तो मुझे सन्तोष होगा।"

इस अफसर से अभय-दान ले कर मैंने सरकारी वकील के साथ पत्र-व्यवहार चलाया। उनसे मिला। मुझे कहना चाहिए कि उन्होंने मेरी सत्य-प्रियता देख ली। मैं उनके पास सिद्ध कर सका कि मैं कुछ भी छिपा नहीं रहा हूँ।

इसमें या किसी दूसरे मुकद्दमे के प्रसंग में उन्होंने मुझे यह प्रमाणपत्र दिया था, "मैं देखता हूँ कि आप 'ना' का जवाब तो लेनेवाले ही नहीं हैं।"

रुस्तमजी पर मुकद्दमा न चला। उनकी कबूल की हुई चुंगी की चोरी की दुगुनी रकम ले कर मुआमला नहीं चलाया गया।

रुस्तमजी ने अपनी चुंगी की चारी की कथा लिख कर सीसे में जडवायी और अपने दफ्तर में उसे टांग कर अपने वारिसों और साथी व्यापारियों को चेतावनी दी।

रुस्तमजी सेठ के व्यापारी मित्रों ने मुझे चेताया, 'यह सच्चा वैराग्य नहीं है। यह तो श्मशान-वैराग्य है।'

पता नहीं, इसमें सत्य का अंश कितना था।

यह बात भी मैंने रुस्तमजी सेठ से कही थी। उनका जवाब यह था, "मैं आपको ठग कर कहां जाऊँगा?"

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

कर्वे जयन्ति

कर्वे जयन्ति समिति के सभापति श्रीयुत वी. एम. जोशी की इस अपील को में बडे हर्ष से छाप रहा हूँ:

"अध्यापक कर्वे आगामी १८ अप्रिल को ७१ वर्ष के हो जायँगे। वे न सिर्फ विधवागृह, और भारतीय महिला विद्यापीठ, पूना के संस्थापक भर ही हैं, बल्कि वे स्वयं भी एक प्रकार की संस्था हैं। उनका नाम न केवल महाराष्ट्र में ही बल्कि सारे भारतवर्ष में, न केवल धनी ही, किन्तु धनी गरीब सभी कोई, न केवल कुछ विशेष राजनीतिक दल ही, बल्कि सभी दल, न केवल सुधारक ही किन्तु पुराने विचारों के लोग भी बडे आदर से लेते हैं। यह अपूर्व स्थान उन्हें कोई एक दिन में ही नहीं मिला है। उन्हें भी वे सभी कष्ट उठाने पडे हैं जो हर एक आदमी के भाग्य में बदे होते हैं जो साधारण लोगों के वहमों और पुराने खयालों के विरुद्ध कुछ भलाई का काम करना चाहते हैं और खास कर जब कि उनके पीछे धन या पद का सहारा न हो। वे आप गरीब आदमी थे। अपने काम के पहले दश वर्ष तक तो धनियों से कुछ भी अधिक मदद या प्रशंसा भी नहीं मिलती थी। उधर बेपढे लोग विधवाओं को शिक्षा देने की उनकी सुधार प्रवृत्ति के लिए उन्हें गालियां दिया करते थे। फिर पढे लिखे लोग भी उन्हें बहुत थोडे उत्साह से सहायता दिया करते थे क्योंकि उन लोगों की दृष्टि में अध्यापक कर्वे का यथेष्ट आगे न बढना उनकी कायरता थी। इन सब कठिनाइयों को जीत कर वर्षों की मिहनत, धैर्य और आत्म-त्याग से उन्होंने शत्रुओं को श्रद्धालु, और थोडी सहानुभूति करनेवालों को उत्साही अनुयायी बना लिया है। उनके समान आदमी सभी देशों में विरले ही होंगे, और खास कर हिन्दुस्तान जैसे देश में जो कि कई परिस्थितियों के कारण न तो अपने वीरों को पहचान ही सकता है और न उनको उत्साह-दान ही दे सकता है। उनको जाननेवाले या जिन्होंने उनका नाम सुना है (यानी प्रायः सारा का सारा शिक्षित हिन्दुस्तान) वे स्वभावतः ही चाहते हैं कि हमारे बीच अध्यापक कर्वे अभी और बहुत दिन रहें। और ऐसे लोगों की आयु को बढाने का एक अच्छे से अच्छा तरीका यह है कि हम अपने कामों से उनके मन में यह भावना उत्पन्न करावें कि आखिर उनकी कीमत हम जरूर समझते हैं और उस काम का समर्थन करना चाहते हैं, जिसे उन्होंने इतने आत्म-त्याग-पूर्वक अपना लिया है। उनके कुछ मित्रों और भक्तों ने उनके नाम में असहाय विधवाओं को पढने के लिए छात्रवृत्तियां देने के लिए एक कोष खोल दिया है। आशा की जाती है कि धनी और शिक्षित वर्ग के सभी कोई खुशी से उस आन्दोलन की सहायता करेंगे और कोष के खोलनेवाले, अध्यापक कर्वे की ७१ वीं वर्षगांठ के दिन कोष के लिए जमा एक खासी रकम की घोषणा कर सकेंगे जिससे उस दिन उनका दिल खिल उठे, और अपनी नियमितता, और संयम के साथ साथ ऊंचे विचारों, आकांक्षाओं और निष्कलंक चारित्र्य के कारण उनके आज भी बचे हुए स्वास्थ्य, उत्साह, और आशावादिता में वृद्धि होवे।"

अध्यापक कर्वे कुछ मामूली आदमी नहीं है। वे केवल साधारण जनता को ही संतुष्ट करने में संतोष नहीं मानते जो कभी कभी बहुत मुश्किल काम से खुश होती है तो १०० में ९९ बार तो फुरसत की घडी में अपनी थोडी सी ही सेवा करने पर प्रमाणपत्र दे देती है। अध्यापक कर्वे ने तो एक ऐसे मालिक की सेवा की है जो कभी माफ करता ही नहीं, जो उदार नहीं है, और जो हमेशे न्याय करते हुए भी एक क्षण भी ढिलाई नहीं करने देता। वह मालिक तो उनकी अपनी ही अन्तरात्मा है। उनके आत्म-विलोपन, एक लगन से कर्त्तव्यपालन, कभी खत्म न होनेवाली कार्य-शक्ति, सभी स्थितियों में ईमान्दारी, विरोध के होते हुए भी अपने काम में श्रद्धा, अदम्य आशा आदि गुण राष्ट्र की बहुत बडी संपत्ति हैं। जिन कामों में उन्होंने अपनी शक्तियां लगायी हैं, उनके बारे में दो मत हो सकते हैं किन्तु उन शक्तियों के बारे में कभी नहीं और उनके कामों से कहीं अधिक कीमत उनके गुणों की ही है। जयंति के संगठन कर्त्ताओं ने २५,०००) रु. जमा करने का नम्र भार उठाया है। यह रकम तो तुरत ही उन बहुत से स्त्री पुरुषों के यहां से आ जानी चाहिए जिनपर चुपचाप काम करनेवालों के इस सरदार का असर पडा है या जिन्होंने इनके आजीवन श्रम से लाभ उठाया है।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

हिन्दी-नवजीवन की भाषा

'हिन्दी-नवजीवन' की भाषा के बारे में हमारे पास जब तब शिकायतें आ जाती हैं, जो मुख्यतः या तो उर्दू शब्दों की या संस्कृत शब्दों की अधिकता या विप्रान्तीय मुहावरों का प्रयोग या हिन्दी मुहावरों के ही अशुद्ध प्रयोग की होती हैं।

इन सब शिकायतों का अलग अलग उत्तर देना संभव नहीं है इसलिए हम इन सभी शिकायतों की संभवता स्वीकार करके अपनी भाषा-नीति के बारे में दो तीन बातें बतलावेंगे।

हमें 'हिन्दी-नवजीवन' को केवल हिन्दी-भाषियों ही नहीं किन्तु अ-हिन्दी-भाषियों के पास भी पहुँचाना है, इसलिए उसकी भाषा में संस्कृत शब्दों की अधिकता आवश्यक है।

इसके अलावा हमारी भाषा सर्वसुगम अथवा आम-फहम होनी चाहिए, और इसलिए हिन्दी की रोजमर्रा बोल-चाल में जो उर्दू अल्फाज आते हों, उन्हें लेना आवश्यक है, और हमें लेना ही पडता है। हम उस हिन्दी का प्रचार करना चाहते हैं, जिसमें हिन्दीपन अवश्य हो, किन्तु जो हिन्दी और उर्दू अथवा उत्तरभारत की आम बोलचाल की हिन्दुस्तानी कही जा सके। किन्तु हमें जिन जिन विषयों की चर्चा करनी पडती है, उन सभी विषयों पर सर्वसाधारण तो बातें करते नहीं, इसलिए उन्हें समझाने के लिए संस्कृत अथवा अर्बी, फारसी के कठिन कठिन शब्द कभी कभी लाने ही पडते हैं। पूज्य गांधीजी की गुजराती शैली तो ऐसी है जिसे हर कोई समझ सके, किन्तु वैसी सहज शैली में उनके लेखों का भी ठीक ठीक अनुवाद न कर सकने की कमजोरी हममें है और इसलिए हम खुलासा कबूल करते हैं कि हम से योग्य व्यक्ति और भी सरल भाषा में 'हिन्दी नवजीवन' को चला सकता था।

दूसरे, और भाषाओं के मुहावरों को हिन्दी में लाना हम आवश्यक मानते हैं। हां, किन्तु इसमें विवेक चाहिए। उन्हीं मुहावरों को लेना चाहिए, जिनके लेने से हिन्दी भाषा का सौन्दर्य बढे, घटे नहीं। परन्तु इस चुनाव के बारे में मतभेद होता है और हजार बार होगा। अगर किसी की दृष्टि में to take part in का अनुवाद 'उसमें भाग लेना' हिन्दी का सौन्दर्य बढाता है तो किसी की दृष्टि में घटाता है, क्योंकि इसके लिए 'हाथ बँटाना' मुहावरा प्रचलित ही है। इसी भांति ऐसे विवाद-ग्रस्त विषय में मतभेद होना स्वाभाविक ही है। इस लिए यहां हम केवल दो ही बातों पर पाठकों का ध्यान खीचेंगें। पहले तो यह कि केवल इस विचार से कि हिन्दी में अमुक मुहावरा प्रचलित है, इस लिए उसके समानार्थक दूसरा मुहावरा किसी दूसरी भाषा से न लेने की नीति हमें मंजूर नहीं है। हम तो हिन्दी का शब्दभण्डार बढाने की कोशिश करना चाहते हैं, और यह कहना ही होगा कि

अगर हिंदी को सचमुच ही राष्ट्र भाषा के रूप में सभी हिन्दुस्तानियों के लिए सुगम बनाना है तो यह आवश्यक है। इस लिए हम दूसरी भाषाओं से जो नये मुहावरे या शब्द-प्रयोग लाने में हिन्दी की श्री वृद्धि होते देखेंगे, उनको लाने के प्रयत्न का स्वागत ही करेंगे।

फिर हिन्दी में एक खास कमी यह दिखलायी पडती है कि और और भाषाओं में जो धातुपद मिलते हैं, उनके बदले हिन्दी में 'करना' आदि क्रियापूरक जोड कर धातुपद बनाने पडते हैं। जैसे कि गुजराती में 'वापरवुं' धातु खूब प्रचलित है और इसके हिन्दी अनुवाद होंगे 'काम में लाना,' 'इस्तैमाल करना' अथवा 'व्यवहार करना' इत्यादि। ऐसे क्रियापदों की कमी से पहले तो भाषा का व्यर्थ विस्तार होता है और दूसरे बहुत स्थानों पर इसके कारण भाव-प्रकाशन में भी कठिनाई पडती है। भले ही 'इस्तैमालना' और 'व्यवहारना' धातुओं का हिन्दी में प्रचार अभी दूर की बात है, किन्तु निःसंदेह हमें 'विचारना' के समान धातुओं को प्रचलित करना ही होगा और जैसे कि हिन्दी के एक बहुत बडे समालोचक ने अपने 'सिंहावलोकन' में 'अवलोकन किया' के बदले 'अवलोका' लिखने के लिए हिन्दी भाषा के एक बहुत बडे कवि को बुरी तरह आडे हाथों लिया था, वैसे समालोचकों का डर छोडना ही पडेगा। इस लिए हम विवेक के साथ किन्तु ऐसे नये धातुओं अपनाना जरूरी समझते हैं जिनसे हिन्दी भाषा की श्री नष्ट न होवे।

तीसरी बात यह है कि हमारा विश्वास है कि गांधी जी की गुजराती लिखने की एक विशेष शैली है जिसका अनुकरण किसी भाषा के लिए श्री वर्द्धक ही होगा। वे थोडे से सुगम शब्दों में गहन विचारों को भी समझ देते हैं। उनकी गुजराती ने गुजराती लेखकों को यह ज्ञान करा दिया है कि गुजराती भाषा में कितनी शक्ति है। वही लाभ हम हिन्दी वालों को भी उठाना चाहिए। इस लिए भी हमेशे जहां तक होता है, हम हिन्दी की श्री-हानि न करते हुए उनकी गुजराती शैली की हिन्दी में नकल नहीं किन्तु उसे हिन्दी जामा पहना कर, हिन्दी बना कर हिन्दी में लाने का प्रयत्न करते हैं। इसमें कई जगह बुरी करह फिसल भी पडते हैं सही, किन्तु हमें आशा है कि संजीवनी बूटी के बदले धौलागिरि को ही उठा लाने के लिए हिन्दी संसार हमें क्षमा करेगा और उसमें से कोई सुषेण वैद्य आप ही संजीवनी बूटी चुन कर बाकी अलग कर देगा।

अब रह गयी हिन्दी मुहावरों की भूल की बात। इसके बारे में हम अपना दोष स्वीकार करने, अज्ञान कबूल करने के सिवाय और कर ही क्या सकते हैं? अ-हिन्दी प्रान्त में रह कर हिन्दी मुहावरों का चलाना बहुत सहज तो नहीं है किन्तु इस कठिनाई की आड का सहारा हम नहीं ले सकते। किन्तु समालोचकों से एक अन्तिम प्रार्थना अवश्य करेंगे, और वह यह कि चूंकि 'हिन्दी नवजीवन' के प्रायः सभी लेख गुजराती 'नवजीवन' और अँगरेजी 'यंग इण्डिया' से अनुवादित होते हैं इस लिए उनकी भाषा के लिए अनुवादक ही जिम्मेवार है, न कि लेखक। यह बात इस लिए कहने की जरूरत पडी कि गतवर्ष एक हिन्दी मासिक पत्र ने 'हिन्दी नवजीवन' की सच्ची अथवा कल्पित भाषासंबंधी भूलों के लिए पूज्य गांधीजी को पकडा था। 'हिन्दी नवजीवन' में प्रकाशित लेखों के लिए अलग, अलग लेखों के लेखक उत्तरदायी हैं, उसकी नीति के लिए संपादक महोदय पूज्य गांधी जी, किन्तु भाषा के लिए और अनुवाद में अगर भूलें हों तो उनके लिए हमीं जिम्मेवार हैं, न कि गांधी जी। इस लिए हमारी भाषा की आलोचना करते समय आलोचक महोदय यह बात याद रखने की कृपा किया करें।

उप० स० 'हि० न०'

टिप्पणियां

वचन-भंग

पारसाल जब मैं गंजम् जिले में ब्रह्मपुर गया था, मुझे एक मंदिर में ले गये थे। उसके बारे में मुझे कहा गया था कि वह 'अछूत' कहे जानेवालों के लिए भी खुला हुआ है। मेरे साथ कुछ 'अछूत' मित्र भी थे। कुछ हफ्ते हुए मेरे पास एक पत्र आया था कि मंदिर के ट्रष्टी लोगों ने अछूतों का प्रवेश मने कर दिया है। मैं इस पर विश्वास करने में हिचकता था। इस लिए मैंने पत्र लिख कर पुछवाया, जिसका जवाब यह आया है:

"विगत २२ मार्च के आप के पत्र के जवाब में यह लिखना है कि 'अछूत' कहे जानेवाले लोग तो अब भी ब्रह्मपुर के रघुनाथ मंदिर में नहीं जाने पाते। श्रीयुत जगनायरुलु नायडू, जिला अदालत गंजम के भूतपूर्व नाजिर, जिन्होंने पारसाल आपको मंदिर में निमंत्रित किया था, मंदिर के ट्रष्टी हैं। वे ही अब मंदिर में अछूतों के प्रवेश में पहले से भी अधिक बाधाएँ डाल रहे हैं। अगचें कि पतितपावन समाज ने नगर के नेताओं से व्याख्यान और लेखों के द्वारा प्रार्थना की थी, मगर किसीके कानों में जूँभी नहीं रेंगती है। बेचारे नामधारी अछूतों की श्रद्धा काँग्रेस के अछूतोद्धार आन्दोलन पर से धीरे धीरे उठती जाती है। शायद आपके कुछ लिखने से वे अपना कर्त्तव्य पहचान सकें।"

अगर ये बातें सच्ची हैं तो यह सरासर अपना वचन तोडना है — और वह वचन न सिर्फ मुझीको दिया गया था बल्कि मेरी मार्फत ब्रह्मपुर के लोगों को। मैं समझ नहीं सकता कि ट्रष्टीगण अपने इस काम की क्या कैफियत या बचाव देंगे। यह तो बेशक अछूतों के सत्याग्रह करने का स्पष्ट मुआमला है। अगर उनका मंदिर-प्रवेश सचमुच ही मना हो तो, मैं आशा करता हूँ कि ब्रह्मपुर की जनता इस निषेध को हटा कर अपने सम्मान की रक्षा करेगी।

स्त्रियां और गहने

तामिलनाडु से एक महिला डाक्टर ने मेरे पास गहनों की भेट भेजी है। उसके साथ जो पत्र भेजा है, उससे भेट का महत्व बढ जाता है। इस लिए, और चूंकि वह दूसरों के लिए उदाहरण का काम करेगा, नाम ठाम हटा कर, मैं पत्र का सारांश नीचे देता हूँ:

"कल्ह मैंने आपकी सेवा में एक जोडी कान की बालियाँ और हीरे की एक अँगूठी, भेजी थीं। ये मुझे १२ वर्ष हुए ——— के राजमहल से महाराजा साहेब के पुत्र-जन्म के अवसर पर मिली थीं। मुझे यह सुन कर बडा कष्ट हुआ था कि जब आप यहां से गुजरे थे, महाराजा साहेब ने सरकार के डर से आपको निमंत्रण तक देने का साहस नहीं किया। आप सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि पहले जो जवाहिरात मेरे साथ साथ रहते थे, उन्हींको देख कर मेरे मन में अब क्या भावनाएँ उठने लगीं। अब उन्हें देख कर मेरे दिल में आग लग जाती थी, फिर जिन भूखे करोडों के बारे में आप ने भाषण किया था, उनके लिए सहानुभूति होने लगती थी। मैंने मन ही मन कहा, "क्या ये गहने लोगों के ही धन से नहीं बने हैं? तब उन्हें अपने पास रखने का अधिकार ही मुझे क्या है?" तब मैंने उन्हें आपके पास भेज देने का निश्चय किया। खादी-कार्य के लिए आप उनका इस्तैमाल कर सकते हैं। और यों कुछ भूखों मरनेवालों की मदद दे सकते हैं। मुझे इसका निश्चय है कि मेरे बकस के एक कोने में पडे रहने की बनिस्बत उनका यह ज्यादह अच्छा उपयोग होगा। एक मित्र ने उनकी कीमतें ५००) रु० आंके हैं। इसलिए

५००) रु. के लिए उनका बीमा कराया गया है । मैं यही आशा करती हूँ कि कोई उदार सज्जन, उस परिस्थिति को जान कर, जिसमें कि ये गहने दिये जाते हैं आपको उनकी असल कीमत से कुछ अधिक देंगे । आप इस पत्र का जो उपयोग करना चाहें, की जिहगा ।"

यह भी ध्यान देने लायक है कि भय का कोई कारण न होते हुए भी हम किस भाँति भय की कल्पना किया करते हैं । कितने राजों, महाराजों ने खुल्लमखुल्ला और खुशी से खादी का समर्थन किया है और उसकी मार्फत गरीबों के हित का, जिनसे उन्हें अपना धन मिला है । यह सच है कि खादी का राजनीतिक पहलू भी है, मगर हम अभी उस हद तक नहीं आये हैं कि सरकार बेफिकी से खादी को गैरकानूनी घोषित कर सके । हर एक उदार आन्दोलन का राजनीतिक उपयोग हो सकता है, मगर इसीलिए उसके उदार पहलू का भी बहिष्कार करना अनुचित होगा । मगर यह कहना भो उचित होगा कि केवल इस महिला डाक्टर के बतलाये राजा ही भर नहीं, बल्कि और कई लोग भी खादी का समर्थन करने या मेरे जैसे सार्वजनिक सेवकों के प्रति सामान्य शील दिखलाने में डरते हैं । खैर, इतना तो अच्छा है कि इस बहिष्कार की बदौलत यह भेट मिली । मगर उन सभी बहिनों को, जिनकी नजर से यह गुजरे, मैं कहूँगा कि भूखों मरनेवाले करोडों देशबंधुओं के प्रति अपने कर्त्तव्य पर विचार करने के लिए किसी ऐसे अवसर की ही खोज में बैठे न रहें । निश्चय ही, इतना समझना तो काफी सहज है कि जब तक देश में करोडों आदमी भोजन बिना भूखों रहते हों, तब उन्हें अपना शरीर सजाने या गहनेवाली होने के संतोष के लिए ही, गहने रखने का कोई अधिकार नहीं है । जैसा कि मैं पहले भी इन पृष्ठों में कह चुका हूँ, अगर केवल हमारी धनी बहिनें ही अपनी फजूलियात छोड देवें और उसी सज्जा से संतुष्ट रहें जो कि खादी उन्हें दे सके तो केवल एक इसीसे सारा खादी आन्दोलन चलाया जा सकता है । और हिन्दुस्तान की धनी बहनों के इस [illegible] का जो महान नैतिक असर राष्ट्र पर और विशेष कर भूखों मरने[illegible] करोडों आदमियों पर पडेगा, उसका तो हिसाब ही अलग है ।

अफ्रिकावासी और हिन्दुस्तानी

दीनबंधु ऐन्ड्रयूज ने ट्रांसवाल में कुछ हिन्दुस्तानियों के [illegible] आपको मूल अफ्रिकानिवासियों से अलग रखने के आन्दोलन [illegible] कवि ठाकुर के एक लेख की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है [illegible] में इस आन्दोलन को कोई महत्व नहीं देता हूँ । क्योंकि [illegible] लगता है कि इस आन्दोलन का कोई आधार ही नहीं है [illegible] हिन्दुस्तानियों और अफ्रिका निवासियों में इतनी बातों की सम[illegible] है कि वे अफ्रिकनों से अलग रहने का विचार कर ही नहीं सकते [illegible] अफ्रिकनों की सक्रिय सहानुभूति और मित्रता के बिना द० अफ्रि[illegible] में हिन्दुस्तानी लोग रही नहीं सकते । मुझे पता नहीं [illegible] हिन्दुस्तानियों ने कभी अपने अफ्रिकन भाइयों से बडप्पन का [illegible] रक्खा हो । मगर द० अफ्रिका में बसे हुए हिन्दुस्तानियों में [illegible] आन्दोलन जोर पकडे तो यह बहुत बडी दुर्घटना कही जाए[illegible] यह कहने की तो जरूरत ही नहीं है कि कवि ठाकुर के [illegible] आन्दोलन के जबर्दस्त विरोध से मैं सहमत हूँ । जैसा कि [illegible] जाता है कि इस आन्दोलन के नेताओं का कथन है कि '[illegible] एजेन्ट शास्त्री जी हमें अफ्रिकनों के बराबर जो नीचे लाते हैं, [illegible] भारतीय भावना, राष्ट्रीय सम्मान और सभ्यता के लिए जलाल[illegible] बात है ' अगर सच हो तो हमारे लिए भी द० अफ्रिका के [illegible] के ऐसे विचारों का जवाब देना असंभव होगा । और उससे [illegible] बडी बात तो यह है कि द० अफ्रिका के गोरे अपनी नफरत [illegible] पक्षपात को कार्यरूप में परिणत कर सकते हैं जब कि हमारे [illegible] खयालात, हमारे ही ऊपर पलट पडेंगे ।

(यं० इ०) मो० क० गां[illegible]

खादी की उत्पत्ति और बिक्री का ब्यौरा

प्रान्त	रु.	उत्पत्ति फरवरी '२८	उत्पत्ति फरवरी '२७	उत्पत्ति जनवरी '२८	विक्रय फरवरी '२८	विक्रय फरवरी '२७	विक्रय जनवरी '२[illegible]
अजमेर	,,	४,५४५	८,९१६	४,६७२	१५,५१४	२,२८६	[illegible]
आन्ध्र	,,	१७,१२२	१९,००८	१५,१९६	२६,६०४	३३,३०२	[illegible]
विहार	,,	२२,५०५	११,८६६	२०,२११	२५,२०३	२२,६३०	[illegible]
बंगाल	,,	१५,२१७	१३,०६७	१३,६८०	२८,३४७	२४,८३०	[illegible]
बम्बई	,,	. .	. .	. .	१८,५९३	१५,५३३	[illegible]
ब्रह्मा	,,	. .	. .	. .	२,४५१	१,२६५	[illegible]
दिल्ली	,,	१,५५३	९१५	२,३७४	१,२१८	१,६०९	[illegible]
गुजरात	,,	+	४,५२८	४,३६९	+	६,०९७	[illegible]
*कर्णाटक	,,	१,७७१	५,३२२	४,९९८	५,०२५	११,३६०	[illegible]
महाराष्ट्र	,,	१,५२४	१,१२७	३,०३८	१२,२०३	१८,८६४	[illegible]
पंजाब	,,	८,५०६	८,८०८	८,११८	७,०८३	८,७९९	[illegible]
तामिलनाड	,,	५५,४१२	७५,३६३	८७,९९३	७१,००९	६८,६०६	[illegible]
केरल	,,	९३०	३६९	१,६७९	३,४८१	३,४१३	[illegible]
*युक्त प्रान्त	,,	८,४७५	१५,८९५	११,४२४	१६,५४०	१३,९६९	[illegible]
उत्कल	,,	४,३०४	२,२४५	४,१८८	३,७६०	२,६२६	[illegible]
कुल रु.		१,४१,८६८	१,६७,४२९	१,८१,९४०	२.३७,०३१	२,३५,१८९	[illegible]

* अधूरे आंकडे । + अंक नहीं मिले हैं ।

भाग निकले

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ –)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ३५

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, वैशाख बदी १४ संवत् १९८४ गुरुवार, १९ अप्रैल १९२८ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा.

भाग ५

अध्याय १

पहला अनुभव

मेरे देश में आने के पहले ही फिनिक्स से लौटनेवाले साथी देश में आ पहुँचे थे। गिनती तो ऐसी थी कि उनके पहले मैं पहुँचूंगा, किन्तु लडाई के लिए मैं लंडन में रुक गया था। मेरे सामने यह प्रश्न था कि फिनिक्सवासियों को कहाँ रक्खूँ। मेरे मन में था कि अगर सभी एक साथ रह सकें और फिनिक्स आश्रम का जीवन बिता सकें तो बडा अच्छा होगा। किसी आश्रम चलाने-वाले से मेरा परिचय था नहीं कि उनके यहां जाने को लिख सकूँ। इसलिए उन्हें मैंने मि० ऐन्ड्रयूज से मिल कर, वे जैसा कहें, करने को लिखा था। पहले उन्हें काँगडी गुरुकुल में रक्खा गया जहांपर स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उन्हें अपने ही बालकों के समान रक्खा। उसके बाद उन्हें शान्तिनिकेतन में रक्खा गया। वहां पर कविवर और उनके समाज ने उनपर वैसे ही प्रेम की वर्षा की। इन दो जगहों पर मिला हुआ अनुभव उनके लिए और मेरे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ।

कविवर, श्रद्धानन्द जी और श्री. सुशील रुद्र को मैं ऐन्ड्रयूज की त्रिमूर्ति गिनता था। द० अफ्रिका में इन तीनों के गुणों का बखान करने में वे कभी थकते ही नहीं थे। हमारे द० अफ्रिका के स्नेह सम्मेलन के बहुत से स्मरणों में से यह तो मेरी आंख के आगे नाचता ही रहता है कि इन तीन महा पुरुषों का नाम उनके हृदय और होठ पर लगा ही रहता था। सुशील रुद्र के साथ भी एन्ड्रयूज ने मेरे बालकों का संबन्ध करा दिया था। रुद्र के पास आश्रम न था, अपना घर ही था। किन्तु उन्होंने अपने उस घर का कब्जा मेरे इस कुटुम्ब को सौंप दिया था। उनके लडके लडकी इनके साथ इस तरह मिल गये थे कि एक ही दिन में उन्हें फिनिक्स भुला दिया था। बंबई में उतरने के बाद ही मुझे खबर मिली कि इस समय यह कुटुम्ब शान्तिनिकेतन में है।

इसलिए गोखले से मिल कर मैं वहां जाने को अधीर हो रहा था। बंबई में मान-पत्र स्वीकार करते ही मुझे एक छोटा सा सत्याग्रह करना पडा था। मि० पेटिट के यहां मेरे लिए मान-सभा की गयी थी। वहां तो गुजराती में जवाब देने की मेरी हिम्मत न चली। उस महल में और आंख को चकाचौंध में डाल देनेवाले दबदबे में, गिरमिटियों के सहवास से आया हुआ मैं, अपने आपको ही गँवार जैसा लगा। गोकि मेरी आज की पोशाक की बनिस्बत उस समय की अँगरखा, फेटा वगैरह की पोशाक सुधरी हुई कहलायगी किन्तु तौभी इस अलंकृतसमाज में मैं नया ही नया आ रहा था। किन्तु किसी तरह जैसे तैसे सर फ़ीरोजशाह मेहता के नीचे आश्रय लिया।

किन्तु कहीं गुजराती भी मुझे छोडें? स्व. उत्तमलाल त्रिवेदी मुझे अपनी सभा में ले गये। इस सभा के बारे में कितनी ही बातें मैंने जान ली थीं। मि० जिन्ना भी गुजराती हैं। इस लिए वे भी उसमें हाजिर थे। यह मैं भूल गया हूँ कि वे सभापति थे या मुख्य वक्ता। किन्तु उन्होंने अपना छोटा सा और मीठा भाषण अँगरेजी में किया। मुझे याद आता है कि दूसरे भाषण भी बहुत करके अँगरेजी में ही हुए। जब मेरे बोलने की बारी आयी, मैंने अपना जवाब गुजराती में ही दिया, और थोडे ही शब्दों में गुजराती तथा हिन्दुस्तानी के लिए अपना पक्षपात जाहिर करके, गुजरातियों की सभा में अँगरेजी के उपयोग का अपना विरोध बतलाया। मेरे मन में ऐसा करने में संकोच तो था ही। मुझे लगा करता था कि बहुत दिनों बाद परदेश से लौटा हुआ बिना अनुभव का आदमी अगर चलते प्रवाह का विरोध करे तो उसमें कहीं अविवेक तो नहीं है? किन्तु गुजराती में जवाब देने की जो हिम्मत मैंने की, उसका अनर्थ किसीने नहीं किया और यह देख कर कि सब ने मेरा विरोध स्वीकार कर लिया, मैं खुश हुआ। इस सभा से मैंने यह सार भी निकाला कि अपने दूसरे नये विचार भी प्रजा के आगे रखने में मुझे अडचन नहीं पडेगी।

यों बंबई में दो एक दिन रह कर, आरंभिक अनुभव लेकर मैं गोखले की आज्ञा से पूना गया।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

खादी-सेवक के प्रति

[खादी-सेवा-संघ में शरीक होने के लिए चुने गये विद्यार्थियों के लिए आश्रम में खादी विद्यालय चलता है । उसमें अनेक प्रान्तों के विद्यार्थी हैं । उनके लिए अर्थशास्त्र, प्रयोग-ज्ञान वगैरह के अलावा प्रत्येक सत्र में प्रसंगोपात्त थोडे व्याख्यानों का भी प्रबंध किया जाता है । विगत राष्ट्रीय सप्ताह में उन विद्यार्थियों के लिए गांधीजी ने हिन्दी में एक छोटा सा भाषण दिया था । उसका सारांश नीचे दिया जाता है ।]

खादी-सेवा-संघ की कल्पना मेरी है । मुझे लगा था कि जिस तरह सरकार का यानी 'नौकरशाही' का मंडल है, वैसा हमारा भी कोई सेवक-मंडल हो तो अच्छा होवे । सरकार के नौकर मंडल को तो 'शाही' कहा है क्योंकि वह नौकर होते हुए भी शाही चलाता है । किन्तु हम 'शाही' नहीं हैं क्योंकि हमें तो सच्ची सेवा करनी है । इस मंडल में दाखिल होने के लिए अमुक वर्ष का पाठ्य-क्रम रक्खा गया क्योंकि खादी सेवक बनने के लिए शिक्षण और योग्यता चाहिए । खादी शास्त्र अतिशय गंभीर और वैसा ही अत्यन्त विस्तृत विषय है । क्योंकि इस शास्त्र के द्वारा हम हिन्दुस्तान के ३३ करोड आदमियों की सेवा करना चाहते हैं और उनकी सेवा के द्वारा जगत की सेवा करना चाहते हैं । यों यह अनुभव शास्त्र है। इसके उलटा खगोल शास्त्र अनुभव शास्त्र नहीं है । खादी शास्त्र अनुभव शास्त्र है, उसमें होनेवाले प्रयोग और उनके परिणाम अनुभव-गम्य हैं, ३३ करोड आदमी उसका प्रत्यक्ष अनुभव ले सकते हैं, इस लिए इसकी मर्यादा या सीमा वहां तक पहुँचती है जहां तक ईश्वर के नाम की पहुँचती है ।

इस शास्त्र की विशालता का पता इससे लग सकता है कि सूत कातने, और कपडा बुननेवाली मिलों में जितनी क्रियाएँ होती हैं वे सभी क्रियाएँ हमें घर बैठे करनी पडती हैं । इन मिलों के चलानेवालों ने इन क्रियाओं के विषय में अनेक पुस्तकें भी पढी हैं, जिन्हें पढना इन क्रियाओं में निष्णात होने के लिए आवश्यक है । एक ही क्रिया लीजिए । जैसे मिलवालों को कपास की परीक्षा करनी पडती है वैसी ही हमें भी करनी पडती है । कपास की शक्ति, कपास इकठ्ठी करने का शास्त्र, जितना उन्हें जानना पडता है, उतना ही हमें भी । हमारा पहला ही पाठ कपास के बारे में है और वह बहुत महत्वपूर्ण है । कितने एक काम जो मिलों को नहीं भी करने पडते हैं, हमें पडते हैं । उदाहरण देखिए-मिलों को यह सोचने की जरा भी नहीं पडी है कि कपास ओटते समय बीज अखंड रहते हैं, या टूट जाते हैं, मगर इस लापर्वाई से हमारा काम नहीं चल सकता । हम तो चाहते हैं कि बीज में पूरा पूरा सत्त्व रहे । हम बैल गोरू को बिनौले खिलाना चाहते हैं, उसका तेल पेरना चाहते हैं । इन सभी चीजों के साथ मिलों का कुछ भी लेना देना नहीं है ।

हमारे पास चाहे जितने साधन हों, और हमारी चाहे जितनी अधिक कोशिश क्यों न हो, किन्तु प्रयोजन के बिना यह सब बेकार है । वह प्रयोजन देशसेवा है । यह वस्तु ऐसी गहरी है कि इसमें जितने गहरे जाओ, जा सकते हो । मिलों के परिश्रम का पार नहीं होता क्योंकि उनकी स्वार्थदृष्टि है, उन्हें धन कमाना है, उनके तंत्र में दंडनीति को स्थान है, इनामनीति को भी स्थान है और इनामनीति अगर दंडनीति नहीं तो और है ही क्या ? हमारे यहां स्वार्थ नहीं है, दंडनीति भी नहीं है । किन्तु यह उचित नहीं है कि चूंकि स्वार्थ नहीं है, इस लिए हम मिलों के बराबर श्रम न करें । हमारा काम जितना निःस्वार्थ है, उतने ही अधिक परिश्रम के लायक है । इसमें जितना प्रेम और उद्यम हम डालेंगे उतनी ही जल्दी जीतेंगे । सर जगदीशचंद्र बोस किसी पौधे का एक पत्ता लेकर बडी सावधानी और सूक्ष्मता से जांच करते हैं कि उसके कितने पृथक्करण हैं, उसके इन्द्रिय हैं या नहीं, मनुष्यों के समान उसे भी 'मात्रास्पर्श' का अनुभव होता है या नहीं । और अपनी परीक्षा का परिणाम संसार के आगे रखते हैं । यह क्या वे द्रव्य के लिए करते हैं ? नहीं । तब क्या कीर्त्ति के लिए ? नहीं। केवल निःस्वार्थभाव से करते हैं । किन्तु उनका उद्देश्य ज्ञान है। किन्तु हमारे प्रयोग केवल ज्ञान के लिए ही नहीं हैं । हमारा तो अनुभव-शास्त्र है और हम प्रत्यक्ष परिणाम देखना चाहते हैं । हमें सावधानी से देखना है कि अमुक कपास से कितनी रुई निकलती है, उस रुई का कितना सूत होता है, और उस सूत से कितना कपडा बनता है । और इस तरह यह हिसाब जोड सकते हैं कि कितने आदमी कितना काम करके सारे देश की कपडे की जरूरियात पूरी कर सकते हैं ।

इस शास्त्र को हस्तगत करने के लिए जितना ज्ञान प्राप्त कर सको, करो, जितने प्रयोग करने हों, कर देखो । इसके लिए तुम्हारे दिल में उत्साह चाहिए, शौक चाहिए और लगन चाहिए । जो आदमी भक्ति-भाव से इस शास्त्र की साधना करेगा, उसे भगवान बुद्धि-योग देंगे ।

किन्तु हमारे लिए शास्त्र का इतना ज्ञान ही लेना काफी नहीं है । अकेला ज्ञान मिल में चलेगा । हममें तो इस ज्ञान के उपरान्त चारित्र्य चाहिए । तुम आजीविका के लिए नहीं किन्तु सेवा-भाव से आये हो, खादी में अपना जीवन देने की भावना से आये हो, और इसके लिए चारित्र्य की बहुत आवश्यकता रहेगी । चारित्र्य के बिना लोगों में तुम किस भांति जा सकोगे ? तुम्हारी सेवा कौन स्वीकार करेगा ? कारखाने में काम करनेवाले आदमी के चारित्र्य के बारे में कोई नहीं सोचता किन्तु तुम्हारे चारित्र्य के बारे में सभी पूछेंगे। फिर तुम्हें सेवक बन कर लोगों में जाना है, नादिरशाह बन कर नहीं । जो बन सके तो मजदूर बन कर उनके बीच रहना है। इसके लिए संयमी जीवन चाहिए ।

और चारित्र्य दिखलाने का पहला चिह्न स्वच्छता होगी । तुम स्वच्छता के नियम सख्ती से पाल कर लोगों पर जो प्रभाव डाल सकोगे, वह दूसरी तरह नहीं डाल सकोगे । और होना तो ऐसा चाहिए कि नियम पालने के लिए मत पालो बल्कि नियम पाले बिना तुमसे रहा ही न जाय । तुममें ऐसी वृत्ति उत्पन्न होनी चाहिए कि स्वच्छता तुम्हारा स्वभाव हो जाय, कहीं भी अस्वच्छता देख कर रहा ही न जाय चाहे । जिसने जहां अस्वच्छता रक्खी हो, किन्तु वह गंदगी हमारी आंख में गडे और उसे साफ किये बिना जिन्दगी में मजा रही न जाय ।

हम तो अपने आप को राष्ट्र-यज्ञ में होम करनेवाले हैं । इस यज्ञ में होम होने के लिए हमें पवित्र और स्वच्छ होना पडेगा। क्या गंदी चीज को जलाने में कुछ फायदा होता है ? किन्तु सुगंधित वस्तु को जलाने से वातावरण साफ होता है और सुगंध फैलती है। इस लिए हम चंदन जैसे स्वच्छ बन कर इस यज्ञ में आहुति हो जायँ । इस आश्रम की कल्पना इसी हेतु से हुई है । राष्ट्र-यज्ञ में आश्रम धूप बने और दूसरी जिस जगह बदबू हो उसे हम मिटावें। यही हमारा ध्येय है । यह ध्येय अकेले आश्रम का ही नहीं, बल्कि प्रत्येक खादी-सेवक का है ।

और क्या तुम्हें यह भी पता है कि तुम्हारे कार्य का कितना ऊँचा स्थान है ? मुझसे अगर कोई पूछे कि गो-सेवा, चर्मालय इत्यादि प्रवृत्ति के मुकाबिले में खादी का क्या स्थान है तो मैं जरूर कहूँगा कि पहला स्थान है । यही वस्तु तुलसीदास की भव्य उपमा के बमोजिब

के अनुसार नीरस दिखायी पडने पर भी अधिक से अधिक लोकोपकारक हैं:—

साधुचरित जिमि सरिस कपासू ।
निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥

कातना कैसा नीरस लगता है ? पंजाबी तो मुझे कहते हैं कि यह स्त्रियों का काम हम से नहीं हो सकता । फिर खादी-सेवा में सम्मान नहीं मिलता, बडा मुशाहरा नहीं मिलता । गो-सेवा में दुग्धालय के विशेषज्ञ बनो, चर्म विद्याविशारद बनो तो खूब मुशाहरा मिलेगा। खादी में मुशाहरे के ऐसे प्रलोभन नहीं हैं क्योंकि यह काम करोडों का है । सारे देश में खादी का संगठन करने के लिए सात लाख खादी-सेवक चाहिए । इनको ऊँची तनख्वाह देने से कैसे चलेगा ? सात लाख गो-सेवक या चर्म-विद्या-विशारद की जरूरत देश को शायद न पडे किन्तु खादी के लिए तो इतने से कम में चलेगा ही नहीं । इस सेवा का इतना महत्व है, इतने विस्तार और प्रमाण में इसकी आवश्यकता है । नीरस लगने पर भी शायद ही इसके जैसा दूसरा सरस काम कोई हो । इस कार्य में तुम खूब रस लेने लगो तो अपने आपको सुशोभित करोगे, आश्रम को सुशोभित करोगे और देश को सुशोभित करोगे ।

सत्याग्रहाश्रम में राष्ट्रीय सप्ताह

'हि. नवजीवन' के पाठक अब तक तो यह अच्छी तरह जान ही गये होंगे कि सत्याग्रहाश्रम, साबरमती में राष्ट्रीय सप्ताह किस तरह मनाया जाता है । इस वर्ष भी, पिछले वर्षों के समान इस सप्ताह भी उपवास, प्रार्थना और खूब जोरों से काम किया गया । गत वर्ष एक नयी बात यह हुई थी कि स्त्रियों और लडकियों ने पायखाने की सफाई का भार आप उठा लिया था । किन्तु इस वर्ष तो भंगी को बिलकुल ही छुट्टी दे दी गयी है और इस लिए गत वर्ष जो बात नयी थी, वही इस साल बिलकुल स्वाभाविक हो गयी थी । आश्रमवासियों ने अपने नित्य के दैनिक काम के अलावा खूब काता। रुई तो सिर्फ शाला के लडकों को ही अधिक सूत कातने की पूनियां वगैरह बनाने के लिए दी गयी थी ।

जहां तक स्याने आदमियों से प्रयोजन है, गतवर्ष के साप्ताहिक काम से इस साल उन्नति हुई है । लडकों में कुछ ढील दिखलायी पडती है किन्तु एक एक आदमी का काम देखने पर तो पिछले साल से उन्नति ही दिखलायी पडती है और पारसाल, उसके भी पिछले साल से उन्नति ही हुई थी ।

पिछले वर्षों में २४ घन्टे तक अखंड चर्खा चलाने की चाल चलती थी । किन्तु इस साल यह चाल प्रायः छोड ही दी गयी क्योंकि इस काम में आध्यात्मिक उन्नति से कहीं अधिक भाग शारीरिक सहनशक्ति का ही होता है । इसलिए कई चर्खे इस साल १६ घन्टे रोज तक कई कतवैये मिल कर या दो एक दिन किसी किसी ने अकेले ही १६ घन्टे चलाये ।

तीन लडकों ने अपने अदम्य उत्साह से अंतिम दिन २४ घन्टे तक लगातार चर्खा चलाया ही । अगर और कुछ नहीं तो उन्होंने पुरानी परंपरा ही बनायी रक्खी । उनके काम प्रशंसनीय थे किन्तु गत वर्ष में केशव गांधी के काते सूत की बराबरी न अधिकता में और न अच्छाई में ही कोई कर सका । इस साल के अंक देखिए :_

नाम	गज	घंटे	मजबूती	समानता	अंक
[illegible]	१३,४८१	२३	५३	८७	१४
[illegible]	१२,२६६	२३	५५	८७	१८
[illegible]	११,०००	२२	५६	८९	१५

पारसाल केशव गांधी ने १५,७४८ गज सूत २३ घंटों में काता था और इस साल के उपर्युक्त कतवैयों के सूत से मजबूत सूत काता था । एक और लडके के सिर में यह खयाल घुस गया कि चौबीस घन्टे तक लगातार रुई धुननी चाहिए । बहुतों को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वह सचमुच में २४ घंटों तक धुन सका था । धुनने में कातने की अपेक्षा अधिक थकावट आती है और पेशेवर धुनियों के लिए भी १० घंटे से अधिक देर तक धुनना बहुत मुश्किल होता है । इस लडके ने २२½ घंटे में ३२० तोला रुई धुन कर उसकी पूनियां भी बनायीं ।

नीचे मैं इस वर्ष के राष्ट्रीय सप्ताह के और मिलान के लिए साथ ही गत दो वर्षों के भी सूत के आंकडे देता हूँ :

	१९२८		१९२७		१९२६	
	कुल गज	रोजाना औसत	कुल गज	रोजाना औसत	कुल गज	रोजाना औसत
पुरुष वर्ग	३,२९,९९२	६१०	२,५५,६३०	५८९	२,४९,९४३	६४०
स्त्री वर्ग	२,६९,५२०	७९२	१,५८,२७२	६५८	२,०२,६८५	८४६
कुमार वर्ग	४,००,६४४	१३५३	४,०७,२८९	१६९६	३,१६,०१३	१४४९
बाल वर्ग	५०,२१०	४३३	५९,९४५	६२४	४७,०३२	४६५
	१०,५०,३६६	८१२	८,८०,१३६	८६९	८,१५,६७३	८५८

इस साल कतवैयों की संख्या कुल १८२ आश्रमवासियों में से १७२ थी । १९२७ में १३५ और १९२६ में १३४ थी । इस साल बहुत से बाहरी मित्र भी आश्रम में कुछ दिनों के लिए आकर ठहरे हुए हैं । शायद इसी लिए १९२६ के सूत का रोजाना औसत इस साल से अधिक था । किन्तु एक एक आदमी का अलग अलग सूत देखा जाय तो इस साल के जैसा काम कभी नहीं हुआ था । एक एक आदमी का सबसे अधिक सूत, राष्ट्रीय सप्ताहों के भीतर इतना आया था:—

सप्ताह में सब से अधिक सूत (गजों में)

	१९२८	१९२७	१९२६
पुरुषवर्ग	२३,२०८	२६,५३६	२२,८४०
स्त्री वर्ग	१९,४८८	१८,८४८	१३,६००
कुमारवर्ग	४०,५१२	२७,८५६	२२,९९२
बालवर्ग	१०,९१२	१०,३६८	९,७०८

अब इस सूत का औसत अंक अगर १४ माना जाय तो उसका हिसाब कपडों में जोडने पर कहना पडेगा कि जिस लडके ने औसत ५,००० गज रोज काता उसने इसी सप्ताह में अपने लिए एक जोडी धोती के लायक सूत कात लिया । अगर कुल सूत को लेकर देखें तो ३६ इंच अर्ज के ३५२ गज कपडा बुनने लायक सूत एक सप्ताह में कता यानी हरएक कतवैये का औसत दो गज कपडे का पडा । इसका वजन जोडें तो कुल तकरीबन ८९¼ पाउण्ड होना चाहिए यानी रोजाना कोई पौने तेरह पाउण्ड सूत कता ।

अब मैं थोडी व्यक्तिगत बातें भी देता हूँ । आशा है कि पाठक इनके लिए क्षमा करेंगे । सामान्यतः मेरी गति फी घन्टा २२५ गज से कभी नहीं बढती है मगर राष्ट्रीय सप्ताह में जम कर देर तक कातते रहने से बहुत बढ गयी । किसी किसी दिन तो मैं घंटे में ५२५ गज तक कात सका । मेरा औसत ४५० गज फी घंटे से कभी कम नहीं गया । मैं कबूल करता हूँ कि मेरा चर्खा जरा अच्छा था । मगर इतनी बढती की वजह तो मैं लगातार काम और एकाग्रता को मानता हूँ । पहले तीन घंटे तो ३०० गज फी घन्टे से अधिक की चाल से अधिक नहीं कात सका मगर मेरी चाल धीरे धीरे बढती गयी और दूसरे दिन से फिर मैंने कभी ४५० गज की घंटे से कम नहीं काता । फिर मैं यह भी सोचता हूँ कि यह बात कि काम धंधा करते हुए भी हम सब रोज दो तीन घंटे कात सके, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि किसीके लिए यज्ञार्थ कातने के लिए १घंटा समय रोज निकाल लेना मुश्किल नहीं होना चाहिए । एक घंटा रोज नियमपूर्वक कातनेवाले

किसी स्त्री या पुरुष के लिए वर्ष के अंत में ५०" इंच पनहे के ३० गज कपडे का सूत कातना मुश्किल नहीं होना चाहिए । ३५० गज फी घन्टे की चाल से महीने में कम से कम १०,००० गज होता है और इधर १५ से २० अंक तक के २०,००० गज सूत से ५×५०" की धोती या साडी बुनी जा सकती है ।

(यं० इं०) **महादेव देसाई**

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख बदी १४ संवत् १९८४

भाग निकले

लोगों को फेर में डाल देने, इधर उधर के सवाल उठा कर या मुख्य प्रश्न के समर्थन में पेश की गयी दलीलों में भूल निकाल कर या निकालने का दावा करके मुख्य प्रश्न पर से लोगों का ध्यान हटाने के सरकार के या उसके पक्ष में किये प्रयत्न देखने लायक हैं । यह कबूल करना सरकार के लिए लाभकर नहीं है कि उसका इतिहास ही हिन्दुस्तान के उद्योग धंधों के नाश का, हिन्दुस्तान के पुरुषत्व के विनाश का इतिहास है । यह बात बारंबार भाषणों और लेखों में कही जा चुकी है कि ईस्ट इन्डिया कंपनी के नौकरों के अत्याचारों से बचने के लिए हिन्दुस्तानी जुलाहों ने अपने अंगूठे आप काट डाले थे । कंपनी के नौकर उनसे जबर्दस्ती रेशम लपेटवाते थे । अगर जुलाहे के अंगूठा न हो तो वह रेशम लपेट ही नहीं सकता । इस कथा को झूठी प्रमाणित करने का प्रयत्न अभी अभी किया गया है और इस इतिहास को गलत प्रमाणित करने के लिए विलियम बोल्ट्स की प्रामाणिकता के विरुद्ध गडे मुर्दे उखाडे गये हैं । इन्हीं बोल्ट्स के आधार पर स्व० रमेश चन्द्रदत्त ने पहले पहल अंगूठे काटने की बात लिखी थी । इस बात को अस्वीकार करनेवाला यह नहीं कह सका है कि विलियम बोल्ट्स ने झूठी बात लिखी थी, बल्कि कहता है कि बोल्ट्स का चरित्र शुद्ध नहीं था और इस लिए उसकी बात पर विश्वास नहीं करना चाहिए । वह तो कंपनी का निकाला हुआ नौकर था । उसके बारे में कंपनी के प्रस्ताव में लिखा है, "यह कंपनी का बहुत ही अयोग्य और अ-लाभकारी नौकर है । देशीय व्यपार के अधिकारों के संबंध में उसके सिद्धान्त बहुत बुरे रहे हैं । जिसमें उसके जुल्म बहुत स्पष्ट रहे हैं ।" इटपुँजिए वकीलों की यह चाल कौन नहीं जानता, जो गवाहों का चरित्र बुरा साबित कर उनकी गवाही को झूठी कहते हैं मानो दुश्चरित्र आदमी कभी सच बोल ही नहीं सकता । मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि विलयम बोल्ट्स का चरित्र चाहे जैसा रहा हो, किन्तु तब तक अंगूठे काटने के संबंध में उसकी बात झूठी नहीं मानी जा सकती, जब तक कि यह सिद्ध नहीं किया जाता और इस बात को अविश्वसनीय साबित करने के लिए एक भी सुबूत पेश नहीं किया गया है । बल्कि इससे अधिक संभव और क्या है कि दण्ड और रोज रोज के अत्याचारों से बचने के लिए वे एक बार्गी ही वह काम करने के अयोग्य बन गये जो उनसे जत्रन, असह्य दण्ड दे कर कराया जाता था ? आखिर विलियम बोल्ट्स की गवाही भी तो भारतवर्ष के उद्योगों के नाश के इतिहास का एक हिस्सा ही भर है, जिसे रमेश चन्द्र दत्त ने बहुत से भिन्न २ प्रकार के गवाहों के आधार पर इस मारात्मक प्रभाव से लिखा है । उन सब की गवाहियों को मिलाने पर जो प्रभाव पडता है, उसका विरोध करना असंभव है । मुख्य विषय है—खूब सोच और समझ बूझ कर भारतीय उद्योगों का नाश किया गया था या नहीं । अगर किया गया था, तो एक की गवाही को छोड देने से भी बहुत ही कम फर्क पडेगा । दोषी के मुँह से यह बात नहीं शोभेगी कि सौ गवाहों में से एक झूठा था । फिर जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, विलियम बोल्ट्स की गवाही को 'अविश्वसनीय साबित करने के लिए एक भी संगत तर्क नहीं पेश किया गया है । खैर रमेश चन्द्र दत्त के '**भारतवर्ष के आर्थिक इतिहास**' की पहली जिल्द में से मैं कुछ संगत उतारे देता हूँ। वे कहते हैं.

"पिछले दो अध्यायों में वर्णित बातों से जान पडेगा कि १९वीं शताब्दि के पहले दश वर्षों तक भी हिन्दुस्तान के अधिकांश मनुष्य तरह तरह के उद्योग धंधों में लगे हुए थे । तब तक लोगों का राष्ट्रीय उद्योग कपडा बुनना था । करोडों स्त्रियां सूत कात कात कर परिवार की आमदनी को बढाती थीं । रँगाई, रंगरेजों की कमाई और धातुओं पर के काम से भी करोडों की रोजी चलती थी । मगर ईस्ट इण्डिया कंपनी की नीति भारतीय उद्योगों का समर्थन करने की नहीं थी । किसी पिछले अध्याय में मैं बता आया हूँ कि सन् १७६९ में ही कंपनी के डायरेक्टरों (संचालकों) की इच्छा थी कि बंगाल में कच्चे रेशम की तैयारी को प्रोत्साहन दिया जाय और रेशमी कपडे का बनाना कम किया जाय । और उन्होंने यह भी हुक्म निकाला कि रेशम लपेटनेवालों से कंपनी के कारखानों में काम कराया जाय और "सरकार की ओर से सख्त सजा" का डर दिखला कर उन्हें बाहर काम करने से रोका जाय। इस फरमान का यथायोग्य असर भी पडा । रेशमी और सूती कपडे कम बनने लगा । जो देश पहले यूरोप और एशिया के बाजारों में पिछली सदियों में रेशमी और सूती कपडे भेजा करता था, वह अब दिनों दिन अधिकाधिक कपडे मँगाने लगा ।"

इन तरीकों से इँग्लैण्ड से रेशमी और सूती कपडे की आमद इतनी बढ गयी है कि सन् १७९४ में जहां कुल १५६ पाउण्ड का कपडा आया था सन् १८१३ में १,०८,८२४ पाउन्ड तक आ गया। सन् १८१३ में कंपनी की सनद दुहरायी गयी और उसके पहले महत्वपूर्ण गवाही ली गयी थी । लेखक कहते हैं "हाउस औफ कामन्स (पालियामेन्ट) के सदस्यों ने भारतीय उद्योगों के बारे में यह जानना चाहा था कि किस भाँति उनकी जगह ब्रिटिश उद्योग ले सकते हैं और किस तरह उनका नाश कर के ब्रिटिश उद्योगों की उन्नति की जा सकती है ।"

हेनरी सेन्ट जौर्ज टुकर ने इँग्लैण्ड की व्यापारिक नीति का वर्णन यों किया है:

"भारतवर्ष के संबन्ध में हमने कौन सी व्यापारिक-नीति इस देश में रक्खी है ? रेशमी कपडे बनाने का उद्योग और रेशम और सूत को मिला कर बनाये कपडे, एक जमाने से हमारे बाजारों से उठ गये हैं । और हाल में फी सदी ६७ की चुंगी लगाने से मगर खास कर अच्छी कलों की बदौलत हिन्दुस्तान का सूती कपडा जो, उसका मुख्य आधार था, न सिर्फ इस देश से जाता ही नहीं है, बल्कि हम अपने एशिया के साम्राज्य की जरूरत का कुछ अंश पूरा करने के लिए अपने सूती कपडे वहाँ भेजते भी हैं । इस तरह हिन्दुस्तान औद्योगिक देश से गिर कर कृषक देश बन गया है ।"

इसी किस्म का एच. एच. विल्सन का कथन सुनिए:

"जिस देश के अधीन भारतवर्ष हो गया है, उसके लिये जुल्म का यह एक और दुःखद उदाहरण है। (सन १८१३ में) यह बतलाया गया था कि तब भी हिन्दुस्तान के सूती और रेशमी कपडे विलायत में ला कर भी इँग्लैण्ड के बनाये कपडों से कम दाम पर सैकडे ५०

१० तक नफा देकर बिकते थे। इस लिए कपडे के दाम पर फी सदी ७० से ८० तक चुंगी लगा कर या उसका पहनना बन्द कर के इंग्लैण्ड के कपडे की रक्षा करनी जरूरी हो गयी। अगर यह बात न होती, अगर ऐसी मारक चुंगी या कानून न होते तो पेस्ली और मैंचेस्टर की मिलें शुरू में ही बंद हो जातीं; और भाप के बल पर भी शायद ही उन्हें फिर से चलाया जा सकता। ये हिन्दुस्तानी उद्योग की बलि चढा करके बनायी गयी थीं। अगर हिन्दुस्तान स्वतंत्र होता तो वह घूसे का जवाब लातों से देता, ब्रिटिश माल पर मारक चुंगी लगा कर अपने इस उत्पादक उद्योग को नष्ट होने से बचाता। आत्मरक्षा का यह उपाय करने की शक्ति उसमें न थी। वह विदेशी की मर्जी पर निर्भर था। ब्रिटिश माल बिना चुंगी दिये ही उसके गले में जबरन ठूसे गये और एक ऐसे प्रतिद्वंद्वी को दबाये रखने तथा अंत में गला घोटकर मार डालने के लिए विदेशी व्यापारियों ने राजनीतिक अन्याय का सहारा लिया जिसके साथ वे बराबरी के मुकाबिले में टिक नहीं सकते थे।

टॉमस मनरो के कथनानुसार "कंपनी के नौकर मुख्य मुख्य जुलाहों को एक जगह पर इकट्ठा करके उनपर तब तक पहरा रखते थे जब तक कि वे केवल एकमात्र कंपनी के ही हाथों कपडा बेंचने का ठीका न ले लेवे।"

आगे चल कर लेखक कहते हैं:

"एक बार किसी जुलाहे ने अगाऊ ले लिया कि फिर कभी वह उद्धार नहीं पाता था। अगर वह देर करे तो उससे जल्दी माल वसूल करने के लिए उसके घर पर प्यादा बैठा दिया जाता था। अदालतों में उसपर मुकद्दमा भी चलाया जा सकता था। प्यादा बैठाने के मानी होते थे एक आने का रोजाना दंड और सिपाहियों के हाथ में खजूर की छडी भी दी जाती थी, जो प्रायः ही इस्तेमाल में आती थी। जुलाहों को जुर्माना किया जाता था जो उनके पीतल के बरतन जप्त कर वसूल किया जाता था। इस तरह गांवों के सभी के सभी बुनकर कंपनी के कारखानों के ताबे रहा करते थे। . . . और जुलाहों को दबाये रखना केवल बात बरताव ही नहीं थी किन्तु प्रस्तावों के जरिए ऐसे कानून ही बना दिये गये थे। कानून ऐसा था कि जिस जुलाहे ने कंपनी से अगाऊ ले लिया हो, वह "किसी दशा में भी किसी यूरोपियन या हिन्दुस्तानी को कंपनी के लिए बनाया या कपडा मजदूरी न देगा।" अगर वह बमूजिब शर्त कपडा न दे सके तो "व्यापारिक रेसिडेन्ट साहेब उससे शीघ्र कपडा वसूल करने के लिए उस पर प्यादे बैठा सकेंगे।" दूसरों के हाथ कपडे बेंचने पर "जुलाहों पर दीवानी अदालत में मुआमला चलाया जा सकेगा।" "जिन जुलाहों के पास एक से अधिक कर्घे हों या जो एक या अधिक कारीगर रखते हों, वे शर्तनामे के मुताबिक जितने कपडे न दे सकें उतने के दाम का सैकडे ३५ तक का जुर्माना उन पर किया जा सकता है।" जमीन्दारों और रैयतों को "हुक्म दिया जाता है कि वे जुलाहों के पास व्यापारिक रेसिडेन्ट या उनके अमलदारों के जाने में बाधा न डालें।" और उन्हें "सख्त मुमानियत की जाती है कि वे कंपनी ने व्यापारिक रेसिडेन्टों के साथ अनादर का बरताव न करें।" "

तब इसमें आश्चर्य ही क्या है अगर जुलाहे अपने अँगूठे आप काट कर ऐसे असह्य दबावों से छूट निकले? जो उद्योग इस तरह सोच सोच कर मार डाला गया था, और जिससे करोडों आदमियों के घर खर्च में सहायता मिलती थी, उसे जिलाना हरेक देश-प्रेमी भारतीय का पवित्र धर्म है और अपने पूर्वजों के इस पाप का जो प्रायश्चित्त करना चाहें, उन सभी अँगरेजों को इसे जिलाना एक विशेष पवित्र अधिकार समझना चाहिए। मगर प्रायश्चित्त के बदले तो हम १५० वर्ष पहले शुरू की गयी नीति का ही दुःखद अनुसरण और इस दोष को ही गौरवान्वित साबित करने के प्रयत्न देखते हैं।

(यं. इ.) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

दलितों की सेवा

दलितों की सेवा करनेवाला अपनी और समस्त समाज की सेवा करता है क्योंकि दूसरे को दबानेवाला ⁻द दबाया जाता है। दूसरे को गढे में गिरानेवाला खुद गढे में गिरता है और गिरे हुए को उठानेवाला खुद भी उठता है।

अपने ही भाइयों की बडी तायदाद को अस्पृश्य बना कर हम जगत के अस्पृश्य बनने के मौके तक पहुँच गये थे। अब कहा जा सकता है कि इस विपत्ति से बच निकलना शायद संभव होवे। क्योंकि हिन्दू समाज में यह पाप धोने के प्रयत्न अनेक दिशाओं में और अनेक प्रान्तों में चल रहे हैं।

इन प्रयत्नों में सबसे बडा और सफल प्रयत्न शायद अहमदाबाद में श्री. अनसूया बहिन की मारफत चलता है।

गत मास मैं दो सभाओं में हो आया। उनमें एक तो भंगी भाइयों के महाजनों (पंचायत) की की हुई थी और दूसरी थी मजदूरों की शालाओं के बालकों की। इनमें मुख्य कर के दलित जाति के बालक थे। उसका वर्णन मुझे पढ कर सुनाया गया था। उसमें से नीचे के भाग सबके मनन करने योग्य हैं।

"मजदूरों का बहुत बडा भाग आज अज्ञान दशा में है, संस्कारी समाज के संसर्ग से दूर है, उनके रहन सहन की व्यवस्था दयाजनक है, उनके रीतिरिवाज हानिकारक तत्त्वों से भरे पडे हैं, शराब वैगरह व्यसनों के पंजे में वे फँसे हुए हैं, उनके समाज में आज भी छोटे छोटे लडकों का विवाह होता है, उनके कुटुम्ब में पैदा होनेवाले बालकों में से सैकडे ५० तो पहले ही वर्ष में मौत की शरण हो जाते हैं, इसके उपरान्त वे भारी कर्ज के बोझ के नीचे दबे हुए हैं। सूद भी उन्हें सैकडे ७५ देना पडता है। इनकी आबादी और काम के लिहाज से इनका महत्व बहुत बडा है। सार्वजनिक हित की दृष्टि से भी इनका सुधार महत्वपूर्ण है इस संबंध में पंचायतों की ओर से कई दिशाओं में प्रयत्न होते हैं किन्तु इन सबका आधार शिक्षा पर है। अगर मजूर बालकों को कुछ अक्षर-ज्ञान और कुछ संस्कार मिल जाय तो इनकी स्थिति में बहुत कुछ फर्क पड जायगा। इस ओर जो कुछ थोडा सा काम हो रहा है उसका संक्षिप्त परिचय यह है:

दिवस-शालाएँ

"आज कुल १० पाठशालाओं में ६९९ विद्यार्थी हैं जिनमें ७५ लडकियां भी शामिल हैं। इनमें १८३ पाटीदार, ठाकुर वगैरह, ६० मुसलमान और ४५६ अछूत हैं। उन्हें गुजराती की चौथी श्रेणी तक पढाया जाता है। स्वच्छता, आरोग्य, शराब न पीना, तथा संस्कारी रहन सहन की शिक्षा देने की कोशिश की जाती है। इससे बहुत से विद्यार्थी दँतुवन करना और नहाना धोना नियमित करने लगे हैं। उद्योग सीखना आवश्यक है और लगभग सभी विद्यार्थी तकली चलाना जानते हैं। ऊपर के वर्गों में पींजना भी सिखलाया जाता है और इस लिए शालाओं में अपने खर्च की पूनी अपने यहाँ बन जाती है। कताई की गति नियमित रूप से बढती गयी है और ऊपर के वर्गों के लडके घंटे में १०० गज तक कात लेते हैं। तीन दिवस शालाओं ने विद्यार्थियों को खादी पहनायी है। दूसरी शालाएँ भी इस दिशा में प्रयत्न कर रही हैं। इन शालाओं के जरिए शिक्षा की भूख बढी है जिससे लडकों की संख्या और हाजिरी में उन्नति

हुई है मगर खेद है कि शालाओं की जितनी माँग है, उतनी पूरी करने की शक्ति हममें नहीं है।

बाल-मंदिर

"लडकों को बचपन से ही स्वच्छता और संस्कार की शिक्षा देने के लिए एक बालमंदिर खोला गया है जिसमें २८ लडके और २२ लडकियां हैं। ये बच्चे रोज सबेरे सात बजे से पांच बजे संध्या तक शाला में रहते हैं। यहां की शिक्षा से इनके रहन सहन में बहुत बडा अन्तर पडा है। हमारी इच्छा तो मजदूरों के महल्लों में ऐसी अनेक शालाएँ खोलने की है।

आश्रम

"चारित्र्यवान और होनहार लडकों के लिए हम सन् १९२१ से ही एक आश्रम चला रहे हैं। आजकल उसमें २५ विद्यार्थी हैं। वे शिक्षकों के साथ चौबीसों घन्टे रहते हैं। वहां पर बौद्धिक शिक्षा के बराबर ही उद्योग — शिक्षा का भी महत्व माना गया है। कताई से लेकर कपडा बनाने तक सभी क्रियाएँ उन्हें सिखलायी जाती हैं। आशा है कि अपनी पिछडी हुई जातियों के सुधार के लिए ये लडके योग्य कार्यकर्त्ता बनकर निकलेंगे।

रात्रि-पाठशालाएँ

"शिक्षा की मांग बढती जा रही है। मिल के मजदूरों ने भी अपने लिए रात्रि-शालाएँ खोलने की प्रार्थना की है। आज कल कुल १६ रात्रिपाठशालाएँ संध्या में ७.३० से ९.३० बजे तक चलती हैं जिनमें ६१२ विद्यार्थी पढते हैं। उनमें भी ३६ पाटीदार, १०० मुसलमान और ४७६ अछूत हैं। शाला के जरिए उनकी शराब खोरी बहुत कम हुई है। दो पुस्तकालय ओर वाचनालय भी हैं।

खर्च

"गतवर्ष शिक्षा पर ३३,६२०) रु. खर्च हुए। मिलमालिकों की परिषद ने ६,२५०) रु. दिये थे और दूसरे दानियों ने रु. ५,६५८-४-८। हम सभी दानियों का आभार मानते हैं।

शिक्षक

"कुल ४५ शिक्षक दिनशालाओं में और ३८ रात्रिशालाओं में हैं। वे अपना काम खूब दिलचस्पी से करते हैं। मिल मजदूरों पर उनके जीवन का बडा अच्छा प्रभाव पड रहा है।"

ऐसी सुव्यवस्था से, इतने उत्साह से, इतनी संख्या में मेरे जानते मजदूरों के लडके और कहीं नहीं पढते हैं।

मिलमालिकों को इस साहस का स्वागत करना चाहिए। मिलमालिकों की ओर से मिलनेवाली सहायता के रुकने की बात सुनायी पड रही है। मुझे आशा है कि ऐसा न होगा और यह इष्ट और आवश्यक है कि वे दिनों दिन अधिकाधिक सहायता देवें। मेरी सम्मति में इस साहस को पूरी मदद देनी मिल-मालिकों का धर्म है।

इस प्रयत्न में एक विशेषता यह भी है कि मजदूर इन शालाओं को चलाने में अपना चंदा यथेष्ट प्रमाण में देते हैं और अंतिम उद्देश्य यह है कि ये शालाएँ मजदूरों की ही सहायता पर चलें। इस उद्देश्य के पूरा होने के पहले मजदूरों की आर्थिक स्थिति सुधरनी होगी। उनमें त्यागबुद्धि बढनी होगी, उनमें बालशिक्षा का प्रेम बढना पडेगा। इस दर्म्यान मिल-मालिकों और दूसरे दानी सज्जनों को ये पाठशालाएँ चलानी चाहिए।

भंगियों की सभा में उल्लेखनीय अनुभव हुए। भंगी भाइयों में शुद्ध उच्चारण से भजन गानेवाले थे। उनके भजन सुनकर ऐसा नहीं लगता था कि ये किसी दूसरे से किसी तरह नीचे होंगे। उनमें अक्षर-ज्ञान बहुत कम था। उनकी स्थिति कर्जदार है, मुशाहरा कम है और उनमें शराब पीनेवालों की संख्या बहुत है। [illegible] बहुत बडा भाग जूठा मांगने और खानेवाला भी है। उन्हें [illegible] सुन कर लगता था कि उनमें जितने दोष हैं, उनके लिए [illegible] वर्ण के कहे जानेवाले हिन्दू जवाब देह हैं और अपने गुणों के [illegible] वे हिन्दू धर्म के मूल में घुसी हुई शक्ति के आभारी हैं। [illegible] धर्म के संस्कार ने दलित भंगी में से भी सभ्यता बिलकुल [illegible] खोद नहीं फेंकी है। अगर हम उन्हें बिलकुल पशुतुल्य न [illegible] होते तो उन्हें सडा हुआ अनाज और जूठा न देते, उन्हें शराब [illegible] लत से बचा लेते, कर्जदारों के पंजों से मुक्त रखते। अब उन [illegible] हाथ पकडा गया है इस लिए आशा रक्खी जा सकती है कि जि[illegible] सेवा से हम शहरों में निभ सकते हैं, समाज के उस उपयोगी [illegible] की स्थिति सुधरेगी।

दलित जातियों की स्थिति में आन्तरिक सुधार के प्र[illegible] अनसूया बहिन जैसे लोग करें किन्तु उनका घर कौन बनवा दे[illegible] अहमदाबाद के मजदूरों की चौलें मैंने देखी हैं। वे जिन कोठ[illegible] में रहते हैं, उन्हें घर कहा ही नहीं जा सकता। उनके [illegible] बनवा देने का काम खानगी व्यक्ति का नहीं है। वह काम [illegible] कर सुधार-विभाग का है या मिलमालिकों का है। मिल के मा[illegible] अपना धर्म न समझें तो सुधार विभाग तो अपनी जिम्मेवारी [illegible] भूल सकता। मजदूरों के लिए योग्य घर बनाना, जितना [illegible] उनके लिए है उतना ही शहर के आरोग्य के लिए भी है।

भंगी बनाम ढेड

एक तीसरी सभा के दुःखद अनुभव सुनिये। अहमदा[illegible] शहर के पास कोचरब गांव में एक अंत्यजशाला है। उसे विद्या[illegible] के स्नातक चलाते हैं। जान पडता है कि उसके लिए वे [illegible] परिश्रम करते हैं। उसमें विद्यार्थियों की संख्या अच्छी थी। [illegible] सभी ढेड थे। शिक्षकों को भंगी के बालकों का ध्यान आ[illegible] उन्हें पाठशाला में बुलाने का निश्चय शिक्षकों ने किया। भंगी ब[illegible] आये। इस लिए ढेडबालकों के माबाप ने अपने लडकों को [illegible] में से उठा लिया। उनमें से कितने एक लौट आये मगर बहुत [illegible] बाहर ही रहे। इससे शिक्षकों ने सोचा कि अगर मैं जाऊँ [illegible] शायद ढेड माबाप मानेंगे और अपने लडकों को भेजेंगे। मैं ग[illegible] किन्तु थोडे ही ढेड माबाप सभा में आये। एक भाई आये। उन्[illegible] मुझे खूब खरा जवाब दिया :

'भंगी को क्या ढेड छूए?' छूआछात के परंपरा से चलते [illegible] धर्म का इस सनातनी ढेड भाई ने समर्थन किया।

मैंने पूछा, 'पर अगर ढेड भंगी को न छुए तो फिर ब[illegible] ब्राह्मण वगैरह किस तरह ढेड को छुएँ?'

'बनिया, ब्राह्मण को हम कहां ढेडों को छूने को कहते हैं [illegible] वे हमें मत छुएँ।'

यह कह कर ढेड भाई ने मुझे हराया।

हाथ का किया काम यों हमारे हृदय पर चोट करता है [illegible] अगर छुआछूत का सडन बहुत दिनों चलता तो हम एक दूसरे [illegible] अछूत बनाते और बिना मौत ही मरते। किन्तु अब उसे ढेड माने [illegible] ब्राह्मण, बनिया मानें, अस्पृश्यता का सांप अधिक दिनों सांस [illegible] ले सकता।

शिक्षकों को अपने निश्चय पर अडे रहना है। ढेड भाइयों [illegible] वे रोष न करें मगर ढेड बालकों को रखने के लिए एक भी [illegible] बालक को हटावें नहीं। भंगी बालक जितने आवें उन्हें पढावें [illegible] इसीमें अपने कार्य की सफलता मानें। उनकी निश्चलता और [illegible] की छूत ढेडों को भी जरूर लगेगी और अगर भंगी बालकों [illegible] स्वच्छता, सत्य, प्रेम, ज्ञान वगैरह देखेंगे तो वे अपने बालकों [illegible]

[illegible] बिना रही नहीं सकेंगे। अस्पृश्यता का मैल धोने की इच्छा [illegible] को सबसे पहले उसीका संग्रह करना चाहिए जिसको सभी [illegible] त्याग करते हैं। ऐसे सुधारकों को मैं जानता हूँ जो सोचते हैं "ढेड का सुधार करने के पहले हम अपना सुधार तो कर लेवें। [illegible] पहले आप सुधर लेंगे तो ढेडों को भी सुधारेंगे।" इस [illegible]-श्रेणी में दो दोष हैं, एक तो अधैर्य और दूसरा अज्ञान। [illegible] इसलिए कि हम कठिनाइयों का सामना करने का धैर्य खो [illegible] हैं। अज्ञान इसलिए कि हम नहीं जानते कि हिन्दू धर्म में [illegible] बड़ा सुधार करना है, वह तो इस अस्पृश्यता का मैल धोने का [illegible] दूध में अगर जहर का स्पर्श भी हो जाय, तौभी जिस तरह [illegible] बेकार हो जाता है उसी तरह अगर हिन्दू जाति में अस्पृश्यता [illegible] सा भी रहने देते हैं तो यह जाति बेकार हो जाती है। [illegible] के धोने से दूसरे सुधार रुक नहीं जाते हैं। इस कलंक [illegible] देने पर दूसरे सुधार लगभग बेकार हो जाते हैं। क्षय के [illegible] दो एक फोडे साफ किये ही तो क्या, और न किये [illegible] क्या?

([illegible]नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

नये मंदिर

हम नये जमाने के लोग मंदिरों का पहले के समान उपयोग नहीं [illegible] हैं। मंदिरों में जाना हमें प्रायः बेकार ही सा लगता है। [illegible] खास उत्सव हो और जाना पडे तो बात ही दूसरी है। नहीं [illegible] अब हमें ऐसा खयाल हो गया है कि मंदिर तो अशिक्षित रूढि-[illegible], बुढियों, विधवाओं और दक्षिणा के लालची ब्राह्मणों के ही [illegible] हैं। किसी मंदिर की मूर्त्ति खास तौर पर सुंदर हो या विशेष [illegible] हो तो यह मोहकता देखने को मन ललचाता है सही। [illegible] दर्शन के लिए एकत्रित असंस्कारी लोग अपने कोलाहल से [illegible] को कहीं टिकने देवें तब तो? पुजारी लोग, पंडे [illegible] हमें एक मिनिट की भी शान्ति नहीं मिलने देते। [illegible] ध्यान धरने के लिए एक मिनट भी खडे हुए नहीं कि [illegible] चरणामृत लो और दक्षिणा दो" की वसूली शुरू हुई समझनी [illegible]।

[illegible] कितने मंदिरों के देवता गर्भ-श्रीमंत रजवाडे जैसे होते हैं। [illegible] में जितने भोग विलास होते हैं वे सभी इन देवों को [illegible] चाहिए। एक मंदिर में तो मैंने वेश्याओं को मंदिर के [illegible] पर से पैर दबाते हुए भी देखा है। इन देवों के रणवास [illegible] देवियां भी होती हैं। और रजवाडों के समान [illegible] से मिलने के दिन की पारी भी निश्चित होती है। ईश्वर [illegible] जिस दिन भक्त होंगे, वह सुदिन होगा। मगर यह सच [illegible] तब तक ईश्वर को अपने भक्तों के समान बनना पडता है। [illegible] लोगों के देवता भी मत्सरी। जो हुक्म की अभ्यस्त प्रजा के [illegible] भी घडी में दयालु और घडी में कठोर बनते हैं। हमारे [illegible] शीघ्रकोपी हैं और कितने रुधिर-प्रिय हैं। और यह [illegible] आखिर पूजाविधि में प्रकट होती है।

[illegible] कि हमारे धनिक लोग संपत्ति को पुश्त दरपुश्त रखने के [illegible] उसको स्थावर जमीन के रूप में बदल लेते हैं, उसी भांति [illegible] पूजा की कोई विधि सूझी, वह तुरत ही उसे शास्त्र की आज्ञा [illegible] देकर चिरंतन कर डालता है। हरएक मंदिर की पूजा-[illegible] जुदी होती है, मगर एक बार चल गयी, इसलिए उसमें [illegible] नहीं हो सकते। सरकार की जबर्दस्ती या शंकराचार्य जैसों [illegible] सिरजोरी से कुछ फेरफार होवे तो हो ले सही। [illegible] हमारे मंदिरों की संपत्ति और उनका उपयोग हर किसीको [illegible] कर डाल सकता है। तौभी उनकी व्यवस्था में पड कर उनका कुछ सदुपयोग कर सकने की आशा लगभग बेकार ही है। पढे लिखे लोगों ने मंदिरों में जहां सुधार दाखिल करने का प्रयत्न किया, वहां बात खूँरेजी तक आ गयी। दक्षिण भारत में मन्दिरों की आमदनी पर समाज का या सरकार का कब्जा रखने का कानून बनाने का आन्दोलन चल रहा है। मगर जब तक सरकार को महायुद्ध के समान अवसरों पर मन्दिरों की संपत्ति में से वार-बॉण्ड (लडाई का कर्ज) के लिए धन मिल सकता है, तब तक वह इन मन्दिरों की व्यवस्था में क्यों दखल देने लगी?

यह माननेवाले बहुत होंगे कि, "मन्दिर की संस्था जडता से घिरी हुई है। इसमें कोई सुधार होनेवाला नहीं है। यह जब अपने आप ही जीर्ण हो जायगी, तभी कुछ होगा।" किन्तु अभी अभी जब अमरेली और दाहोद जैसे स्थानों में समाज-सेवकों ने आप ही मन्दिर स्थापित किये हैं, तब कहना पडता है कि यह संस्था निष्प्रयोजन नहीं हो गयी है।

अपनी नयी भावना, नयी आध्यात्मिक भूख और नये सामाजिक सवालों और नये आदर्शों का विचार कर के ही हम नये मन्दिरों की स्थापना करें, और नये नियम बनावें। आज नये मन्दिर भले ही खिलौने जैसे होवें। इन मन्दिरों की स्थापना में मदद करनेवाले मध्यम वर्ग के लोगों के मन में मन्दिरों में आस्था और श्रद्धा भले ही कम हो। अज्ञान लोगों को आश्वासन देने के लोकसंग्रह के ही खयाल से ऐसे मन्दिर भले ही स्थापित होते हों। किन्तु अगर इनके आसपास धार्मिक बुद्धि से की गयी समाज-सेवा का तप बढे तो ये मन्दिर भविष्यकाल में पवित्र स्थान समझे जायँगे और लाखों लोग इन मन्दिरों को सेवेंगे। इसलिए अभी से इन मन्दिरों की स्थापना, उनकी रचना, और पूजा अर्चा की विधि भविष्य की ओर दृष्टि रख कर ही हमें निश्चित करनी चाहिए।

हमारे पुराने मंदिर छोटे हों या बडे, मुख्य देवों की मूर्तियां तो अंधेरे में ही रहनेवाली हैं। *क्या ऋषियों ने ही नहीं गाया था कि 'गुहायां प्रविष्टः' है?* अंधकार की मदद से मूर्त्ति के बारे में भय और गूढ भाव पैदा होते हैं तथा दरवाजे पर बैठे हुए पुजारी महाराज की आमदनी निश्चित हो जाती है। इतिहास की दृष्टिवाला आदमी कहेगा कि मूर्त्ति कोई तोड न डाले, उसे जिसमें लूट न ले जाय, इसलिए उसे यों अंधेरे में सुरक्षित रक्खा जाता है। संस्कृति की स्वाभाविकता की खोज करनेवाला आदमी यह भी कहेगा कि इस प्रखर तापवाले देश में मोटे मोटे पत्थर के शीतल मंदिरों में खूब भीतर, आधी अँधेरी शीतल कोठारियों में ही ही दोपहर का समय बिताना यहां सुखावह और शान्तिप्रद होता है। इसलिए पूजा के स्थान ऐसे बनाये गये।

बात चाहे जो हो, मगर अब से तो यह जरूरी है कि देवों को नये मंदिर अँधेरे में न बैठावें। जो हुकूमी बादशाह के दर्शन भले ही दुर्लभ हों किन्तु प्रजानायक तो सबके बीच ही शोभता है। अब से हमारे मंदिर सभी ओर से खुले हुए हों। मजबूत स्थंभों पर शिखर बनाये जायँ तो शोभा जरा भी नहीं घटेगी। ऐसे मंदिरों में अगर मूर्त्ति ऊंचे चौतरे पर स्थापित की जाय और चौतरे के आसपास पूरी जगह छोड कर कठघरा खडा कर दिया जाय तो मूर्त्ति भी सुरक्षित रहे और दर्शन भी सुलभ हो। दर्शन करने के लिए आनेवालों की संख्या अमर्याद — बेहद — हो तो जैसा कि कितने ही जैन और बौद्ध मंदिरों में होता है, वैसे ही मंदिर के मध्य में चार दिशाओं में देखती हुई चार मूर्तियां बैठानी चाहिए। और मूर्त्ति अगर एकमुखी ही हो, तो उसके रक्षण के लिए अगर पीछे के बाजू में एक छोटी सी शिला खडी कर दी हो, तौभी बस है।

मंदिर भले ही छोटा हो किन्तु उसके आसपास यथेष्ट खुली जगह जरूर होनी चाहिए। हम लोगों ने अपने कितने मंदिरों के चारों ओर से मकान बना बना कर उन्हें विगाड डाला है। अगर सर्व-साधारण को मंदिर के आसपास खुली जगह की जरूरत जान पडे तो वैसी जगह का प्रबंध करना मुश्किल नहीं है। मुश्किल तो है यात्रियों की सुविधा के लिए चारों ओर छोटी वडी कोठरियां बना देने का मोह छोडना। पहले मंदिर के आसपास मंडप बनते हैं, पीछे से धर्मशालाएं आती हैं और आगे चल कर भाडे के लोभ से उनकी दूकानें बन कर मंदिर का वातावरण ही मारा जाता है। मंदिर में या आसपास जो कोई दीवार उठाता है, वह उस दिशामें दर्शन की सुविधा रोकने का पाप करता है।

मंदिर के बारे में करने लायक मुख्य नियम तो नैवेद्य या भोग के बारे में है। हिन्दूधर्म को विदेशी लोग चूल्हाधर्म या रसोडाधर्म कहते हैं। जहां पकायी हुई रसोई का सवाल आया वहां जातपांत और छुआछूत के सभी सवाल आते हैं। हमारे ऋषियों ने कंद मूल, और फल को ही पवित्र गिन कर बडी बुद्धिमानी की है। हमारे मंदिरों में सूखे या हरे, कच्चे या पके फल ही भोग के रूप में ले जाये जाने का नियम करना अत्यावश्यक है। बहुत बहुत तो शक्कर दूध, मक्खन, और दूध में से तैयार होनेवाली ताजा मिठाई ही नैवेद्य के योग्य गिनी जाय। हमारा पेट और हमारे स्वाद कृत्रिम हो गये हैं। इसी लिए हम अनाज उबाल कर और उसे तरह तरह के मसाले से विगाड कर खाते हैं। नित्य तृप्त ईश्वर को भी ऐसी ही खूराक लेने की क्या जरूरत? वाल्मीकि ने ठीक ही कहा है:

यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः।

आदमी जैसी खूराक खाता है, वैसी ही देवता को भी अर्पण करता है। इसी रीति से अनार्य देव और देवियाँ भेड बकरी और भैंसे की बलि मांगनेवाली हुईं। अगर हम परिशुद्ध हिन्दूधर्म के देवों की उपासना करना चाहते हों तो हमें परमपावन ऋषियों के हविष्य गिने हुए कंदमूल, फल और बीज का ही नैवेद्य मानना उचित है। ऋषिपंचमी के दिन बैल की मिहनत से पैदा हुई कोई चीज नहीं खाने का नियम होता है। स्वार्थ के कारण पशुओं पर हम जो जुल्म करते हैं, यह नियम हमें उसका भान कराता है। यह हमारा सत्ययुग के लिए स्वप्न है कि मनुष्यजाति हमेशे के लिए यही निष्पाप खूराक निश्चित कर लेवे। हमारी पूजा-विधि से इस आशा का पोषण हो तो यह कुछ कम लाभ नहीं है।

पूजा में से चूल्हाधर्म को निकाल चुकने बाद पुराणकार की यह सलाह स्वीकार करने में विशेष बाधा नहीं आवेगी:

कृष्णालयसमीपस्थान् कृष्णसेवार्थमागतान्।
चांडालान्पतितान्व्रात्यान् स्पृष्ट्वा न स्नानमाचरेत्॥

अर्थात् देवमंदिर के समीप देवसेवा के लिए आये हुए चांडालों, पतितों, और व्रात्यों को छूकर स्नान न करे।

हमने अपनी पूजाविधि में कर्मकाण्ड और तंत्र को जरूरत से अधिक स्थान दिया है। पूजा में तो हृदय-धर्म की उत्कटता और सादगी होनी चाहिए। अगर हम ईश्वर को आदमियों की सभी हाजतें होने की कल्पना करके षोडश उपचार का आडंबर बढाने के बदले ऋषियों का यह वचन यांद रख कर कि ईश्वर को किसी चीज की जरूरत नहीं है, अपने हृदय को संतोष देनेवाली पूजा की व्यवस्था करें तो बहुत सी उपाधियों से बच जायँ। ईश्वर की पूजा भाव-प्रधान होनी चाहिए। रसायन-शास्त्र के प्रयोगों अथवा वैद्यों की दवा बनाने की विधियों के समान ईश्वर-पूजा कर्मकाण्डी बनाने की जरूरत नहीं है। औषध की भस्म तैयार करने में भूल हुई कि दवा जहर हो जाती है। इसी भांति पूजाविधि में जरा-भूल हुई कि महादेव या माता हमें भस्म कर डालेंगी——ऐसे भय उत्पन्न [illegible] से सकाम भक्ति में भले ही उत्कटता आती हो किन्तु यह नहीं [illegible] जा सकता कि धार्मिकता दृढ होती ही है। पूजाविधि सादी [illegible] उत्कटभक्तिवाली होनी चाहिए।

ऐसी पूजा करने के लिए कोई खास पुजारी, ब्राह्मण, तपोधन, संत या मुखियाजी को रखने की जरूरत नहीं है। [illegible] पुजारी रक्खा नहीं कि उसके पीछे हजारों बदियां आयँगी [illegible] यहां हम पुराने मंदिरों की बात नहीं करते। उन्हें तो अपने [illegible] अटपटे सवाल मुबारिक हों। नये मंदिरों में तो हम पक्के और [illegible] रहें। जिस किसीको मूर्त्तिपूजा से विरोध न हो, फिर चाहे वह [illegible] धर्म का हो, हमारे मंदिर में दर्शन के लिए आ सकता है। [illegible] इतना ही नियम हो कि उन्हें मंदिर की मर्यादा का पालन [illegible] पडे। और पूजा में माननेवाले हर किसी हिन्दू को मान्य विधि [illegible] अनुसार पूजा करने की छूट होनी चाहिए। पुरुष या स्त्री, [illegible] धोकर धुले हुए साफ कपडे पहन कर भूखे पेट मंदिर में पूजा [illegible] जायँ। इसमें जातिपांत का भेद न हो, स्त्री पुरुष का भी भेद [illegible] हो। जिन लोगों ने मिल कर मंदिर बनवाने का उपक्रम किया [illegible] वे सभी पूजा की पारी नियत कर लेवें। जबसे धन से मंदिर [illegible] और चलाने की सुविधा सूझी, तभीसे हिन्दू समाज में ज़रूरत [illegible] अधिक मंदिर बने। और वे भक्ति के लिए नहीं किन्तु अमुक [illegible] के शौक अथवा प्रतिष्ठा की लालसा को तृप्त करने के लिए। [illegible] चलाने का खर्च अधिक होना ही नहीं चाहिए। जो मंदिर [illegible] उन्हींको मंदिर चलाने का खर्च उठाना चाहिए।

दर्शन कराने के लिए तो दक्षिणा ली ही न जाय। दर्शन [illegible] चुकने बाद किसीको कुछ देने का मन हो तो भले ही दे [illegible] जाय। किन्तु इस तरह मिला हुआ धन, मंदिर के मालिकों, संच[illegible] (अगर दुर्भाग्य से हों तो) पुजारियों या मंदिर के देव का न [illegible] जाय। जिस समाज में से यह द्रव्य आता है, उसी समाज की [illegible] के अनुसार समाज-सेवा के किसी योग्य काम में यह धन खर्च [illegible] जाय। किन्तु यह स्वतंत्र विषय हो गया। इसकी चर्चा स्वतंत्र [illegible] करनी उचित है।

हिन्दुओं के मंदिरों में भले ही हजारों या लाखों लोग [illegible] हों किन्तु पूजा तो अधिकांश में व्यक्तिगत ही होती है। सामु[illegible] उपासना, शायद ही देखने में आती हो। इस कारण मंदि[illegible] संगीत के बदले कोलाहल मचता है और कला विकसित [illegible] बदले अवकला ही दिखायी पडती है। मंदिर मुख्यतः [illegible] संस्था हैं। धर्म का सामाजिक स्वरूप इसमें विकसित [illegible] ओर से दुर्लक्ष्य नहीं होना चाहिए। शुद्ध, सात्त्विक, पवित्र [illegible] कलारसिक अगुओं को मंदिर की संस्था का सारा प्रबंध [illegible] चाहिए। पूजा विधि भी उसीके अनुसरण में होवे।

मंदिर में व्यवहार में आनेवाले आहार के बारे में [illegible] सावधानी चाहिए वही सावधानी पूजा के मंदिर में [illegible] आनेवाले कपडे के बारे में रखनी चाहिए। परमात्मा 'दीन[illegible] हरण' हैं, पतित-पावन है। उसे राजविलास या वैभव के [illegible] नहीं शोभते हैं। उसे तो शुद्ध खादी ही शोभेगी। सिंहासन [illegible] बैठे हुए महाराज राम की अपेक्षा अहल्या का उद्धार कर[illegible] गुहक से मिलनेवाले; और शबरी के बेर चखनेवाले तपस्वी या [illegible] राम की ही मूर्त्ति मुझे अधिक अनुकूल लगती है।

इस तरह समाज के भविष्य का पोषण करनेवाले मंदिरों [illegible] रचना करने के बाद, समाज के ऐहिक और पारलौकिक कल्याण [illegible] यह विचारना योग्य है कि इन मदिरों से किस तरह लाभ उठाया [illegible]

(नवजीवन)　　　दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

मेरी यूरोप-यात्रा

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ३६

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, वैशाख सुदी ७ संवत् १९८४ गुरुवार, २६ अप्रैल १९२८ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

अपने सर्वश्रेष्ठ साथी से मेरा वियोग

जिसे मैंने अपने सर्वस्व का वारिस चुना था वह अब न रहा। मेरे चचा के पोते मगनलाल खुशालचन्द गांधी मेरे कामों में मेरे साथ सन् १९०४ से ही थे। मगनलाल के पिता ने अपने सभी पुत्रों को देश के काम में दे दिया है। वे इस महीने के शुरू में सेठ जमनालाल जी तथा दूसरे मित्रों के साथ बंगाल गये थे। वहां से विहार आये। वहींपर अपने कर्त्तव्य के पालन में ही उन्हें कठिन ज्वर हो आया। नौ दिन की बीमारी के बाद प्रेम और डाक्टरी इल्म से जितनी सेवा संभव है सभी कुछ होने पर भी वे व्रजकिशोरप्रसाद की गोद में से चल बसे।



कुछ धन कमा सकने की आशा से मगनलाल गांधी मेरे साथ सन् १९०३ में द० अफ्रिका गये थे। मगर उन्हें दूकान करते पूरे साल भर भी न हुए होंगे कि स्वेच्छापूर्वक गरीबी की मेरी अचानक पुकार को सुन कर वे फीनिक्स आश्रम में आ शामिल हुए और तब से एक बार भी वे डिगे नहीं, मेरी आशाएँ पूरी करने में असमर्थ न हुए। अगर उन्होंने स्वदेश-सेवा में अपने को होम दिया न होता तो अपनी योग्यताओं और अपने अध्यवसाय के बल पर, जिनके बारे में कोई संदेह हो ही नहीं सकता, वे आज व्यापारियों के सिरताज होते। छापाखाने में डाल दिये जाने पर उन्होंने तुरत ही मुद्रण-कला के सभी भेदों को जान लिया। अगर्चे कि पहले उन्होंने कभी कोई हथियार हाथ में नहीं लिया था, इंजिन घर में, कलोंके बीच तथा कंपोजिटरों के टेबल पर सभी जगह अत्यन्त कुशलता दिखलायी। 'इंडियन ओपीनियन' के गुजराती अंश का संपादन करना भी उनके लिए वैसा ही सहज काम था। फिनिक्स आश्रम में खेती का काम भी शामिल था, और इस लिए वे कुशल किसान भी बन गये। मेरा ख्याल है कि आश्रम में वे सर्वोत्तम बागबान थे। यह भी उल्लेखनीय है कि अहमदाबाद से 'यंग इण्डिया' का जो पहला अंक निकला, उसमें भी गाढे मौके पर उनके हाथ की कारीगरी थी।

पहले उनका शरीर भीम जैसा था किन्तु जिस काम में उन्होंने अपने को उत्सर्ग किया, उसकी उन्नति में उस शरीर को गला दिया था। उन्होंने बडी सावधानी से मेरे आध्यात्मिक जीवन का अध्ययन किया था। जब कि मैंने विवाहित स्त्री पुरुषों के लिए भी ब्रह्मचर्य ही जीवन का नियम है' का सिद्धान्त अपने सहकारियों के सामने पेश किया था, तब उन्हींने पहले पहल उसका सौन्दर्य तथा उसके पालन की आवश्यकता समझी और अगर्चे कि, उसके लिए जैसा कि मैं जानता हूँ, उन्हें बडा कठोर प्रयत्न करना पडा था, उन्होंने इसे सफल कर दिखलाया। इसमें वे अपने साथ अपनी धर्मपत्नी को भी धीरतापूर्वक

समझा बुझा कर ले गये, उस पर अपने विचार जबरन डाल कर नहीं।

जब सत्याग्रह का जन्म हुआ, तब वे सबसे आगे थे। द० अफ्रिका के युद्ध का पूरा पूरा मतलब समझानेवाला एक शब्द मैं ढूँढ रहा था। दूसरा कोई अच्छा शब्द न मिल सकने से मैंने लाचार उसे 'निष्क्रिय प्रतिरोध' का नाम दिया था गोकि ये शब्द बहुत ही नाकाफी और भ्रमोत्पादक भी हैं। क्या ही अच्छा होता अगर आज मेरे पास उनका वह अत्यन्त सुन्दर पत्र होता जिसमें उन्होंने बतलाया था कि इस युद्ध को **सदाग्रह** क्यों कहना चाहिए। इसी सदाग्रह को बदल कर मैंने **सत्याग्रह** शब्द बनाया। उनका पत्र पढने पर इस युद्ध के सभी सिद्धान्तों पर एक एक कर के विचार करते हुए अंत में पाठक को इसी नाम पर आना ही पडता था। मुझे याद है कि वह पत्र अत्यन्त ही छोटा और केवल आवश्यक विषय पर ही था। जैसे कि उनके सभी पत्र होते थे।

युद्ध के समय वे काम से कभी थके नहीं, किसी काम से देह नहीं चुराई, और अपनी वीरता से वे अपने आसपास में सभी किसीके दिल उत्साह और आशा से भर देते थे। जब कि सब कोई जेल गये, जब फीनिक्स में जेल जाना ही मानों इनाम जीतना था, तब भी मेरी आज्ञा से, जेल से भी भारी काम उठाने के लिए वे पीछे ठहर गये। उन्होंने स्त्रियों के दल में अपनी पत्नी को भेजा।

हिन्दुस्तान लौटने पर भी उन्हींकी बदौलत आश्रम जिस संयम नियम की बुनियाद पर बना है, खुल सका था। यहां उन्हें नया और अधिक मुश्किल काम करना पडा। मगर उन्होंने अपने को उसके लायक साबित किया। उनके लिए अस्पृश्यता बहुत कठिन परीक्षा थी। सिर्फ एक लहमे भर के लिए ऐसा जान पडा, मानों उनका दिल डोल गया हो। मगर यह तो एक सेकण्ड की बात थी। उन्होंने देख लिया कि प्रेम की सीमा नहीं बांधी जा सकती। और कुछ नहीं तो महज इसीलिए कि अछूतों के लिए ऊँची जातिवाले जिम्मेवार हैं, हमें उन्हींके जैसा रहना चाहिए।

आश्रम का औद्योगिक विभाग फीनिक्स के ही कारखाने के ढंग का नहीं था। यहां हमें बुनना, कातना, धुनना और ओटना सीखना था। फिर मैं मगनलाल की ओर झुका। गो कि कल्पना मेरी थी किन्तु उसे काम में लानेवाले हाथ तो उनके थे। उन्होंने बुनना और कपास के खादी बनने तक की और दूसरी सभी क्रियाएँ सीखीं। वे तो जन्म से ही विश्वकर्मा, कुशल कारीगर थे।

जब आश्रम में गोशाला का काम शुरू हुआ तब वे इस काम में उत्साह से लग गये, गोशाला संबंधी साहित्य पढा और आश्रम की सभी गायों का नाम-करण किया, और सभी गोरुओं से मित्रता पैदा कर ली।

जब चर्म्मालय खुला, तब भी वे वैसे ही दृढ थे। जरा दम लेने की फुर्सत मिलते ही वे चमडे की कमाई के सिद्धान्त भी सीखनेवाले थे। राजकोट के हाईस्कूल की शिक्षा के अलावा, और जो कुछ वे इतनी अच्छी तरह जानते थे, उन्होंने वह सब स्वानुभव की कठिन पाठशाला में सीखा था। उन्होंने दीहाती बढई, दीहाती बुनकर, किसान, चरवाहों और ऐसे ही मामूली लोगों से सीखा था।

वे चर्खा संघ के शिक्षण विभाग के व्यवस्थापक थे। श्रीयुत वल्लभभाई ने बाढ के जमाने में उन्हें विट्ठलपुर का नया गांव बनाने का भार दिया था।

वे आदर्श पिता थे। उन्होंने अपने बच्चों को, दो लडकियों और एक लडके को, जो अब तक अविवाहित हैं, ऐसी शिक्षा दी थी कि जिसमें वे देश के लिए उपहार बनने के योग्य हों। उनका पुत्र केशव यंत्र-विद्या में बडी कुशलता दिखला रहा है। उसने भी अपने पिता के ही समान यह सब मामूली लुहार बढइयों को काम करते देख कर सीखा है। उनकी सबसे बडी लडकी राधा ने, जिसकी उम्र आज अठारह वर्ष है, अपने मत्थे बिहार में स्त्रियों की स्वाधीनता के संबंध में एक मुश्किल और नाजुक काम उठाया था। सच ही तो, वे यह पूरा पूरा जानते थे कि राष्ट्रीय शिक्षा कैसी होनी चाहिए, और वे शिक्षकों को प्राय: इस विषय पर गंभीर और विचारपूर्ण चर्चा में लगाया करते थे।

पाठक यह न समझें कि उन्हें राजनीति का कुछ ज्ञान ही नहीं था। उन्हें ज्ञान जरूर था किन्तु उन्होंने आत्मत्याग का रचनात्मक और शान्त पथ चुना था।

वे मेरे हाथ थे, मेरे पैर थे, और थे मेरी आंखें। दुनिया को क्या पता कि मैं जो इतना बडा आदमी कहा जाता हूँ, वह बडप्पन मेरे शान्त, श्रद्धालु, योग्य, और पवित्र स्त्री तथा पुरुष कार्यकर्त्ताओं के अविरत परिश्रम, और गुलामी पर कितना निर्भर है? और उन सबमें मेरे लिए मगनलाल सबसे बडे, सबसे अच्छे और सबसे अधिक पवित्र थे।

यह लेख लिखते हुए भी अपने प्यारे पति के लिए विलाप करती हुई उनकी विधवा की सिसक मैं सुन रहा हूँ मगर वह क्या समझेगी कि उससे अधिक विधवा—अनाथ—मैं ही हो गया हूँ? अगर ईश्वर में मेरा जीवन्त विश्वास न होता तो आज मैं उसकी मृत्यु के शोक में पागल हो गया होता, जो कि मुझे अपने सगे पुत्रों से भी अधिक प्रिय था, जिसने मुझे कभी धोखा न दिया, मेरी आशाएँ न तोडीं, जो अध्यवसाय की मूर्त्ति था, जो आश्रम के भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी अंगों का सच्चा चौकीदार था। उनका जीवन मेरे लिए उत्साहदायक है, नैतिक नियम की अमोघता और उच्चता का प्रत्यक्ष प्रदर्शन है। उन्होंने अपने ही जीवन में मुझे एक दो दिनों में नहीं, कुछ महीनों में नहीं, बल्कि पूरे चौबीस वर्षों तक की बडी अवधि में—हाय जो अब घडी भर का समय जान पडता है—यह साबित कर दिखलाया कि देश-सेवा, मनुष्य-सेवा और आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान आदि सभी शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं।

मगनलाल न रहे, मगर अपने सभी कामों में वे जीवित हैं, जिनकी छाप आश्रम की धूल में से दौड कर निकल जानेवाले भी देख सकते हैं।

(यं. इ.) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

(पृष्ठ २८३ से आगे)

कलकत्ते में मैं मारवाडी कर्मचारी मंडल से मिला था। उन्होंने अपनी लाचारी का जो वर्णन मुझे सुनाया था वह सचमुच में करुणाजनक था।

जब हम सामाजिक नीति का पाठ पढ चुके होंगे, तब हम देखेंगे कि कारीगर, दफ्तर के बाबू या मालिक एक ही शरीर अथवा वस्तु के अविभाज्य अंग हैं। न उनमें कोई बडा है और न कोई छोटा। उनके स्वार्थ भी परस्पर विरोधी नहीं हैं किन्तु एक ही हैं, वे एक दूसरे पर अवलंबन करनेवाले हैं।

(नवजीवन) **मो० क० गांधी**

दफ्तर के बाबू बनाम कारीगर

[इस आशा से कि निम्नलिखित योजना कपडे की एक मिल के मालिक की होने पर भी दूसरे कारखानों में भी उपयोगी होगी, दी जाती है । **उप. सं. हि. नवजीवन**]

श्री रणछोडलाल अमृतलाल ने दफ्तर के बाबुओं के बीमा के बारे में मेरे पास निम्नलिखित योजना भेजी है:—

"हाल में देश परदेश में मजदूरों की स्थिति की जांच की जाती है और उनकी जरूरियातों की खोज होती है। उनकी हालत में जो दिलचस्पी ली जाती है, वह मध्यमवर्ग के दफ्तर के बाबुओं के बारे में नहीं दिखायी पडती । इन लोगों की स्थिति मजदूरों से इतनी अधिक बुरी होती है कि इनके कुटुम्ब में एक आदमी कमाता है तो चार या छे खानेवाले होते हैं । और उसमें भी तीस चालीस रुपये के मासिक मुशाहरे में जिन्दगी गुजारनी होती है।

"मजदूर की सामाजिक स्थिति से क्लर्कों की स्थिति बिलकुल बुरी होती है । उनके घर में कमानेवाले का मरण होने पर उनके बाल-बच्चों की हालत अत्यन्त दयाजनक हो जाती है । उन्हें भरपेट अन्न के भी लाल पडने लगते हैं । ऐसे गरीब मध्यमवर्ग के लोग सुखी कब होंगे—यह तो एक अलग ही सवाल है । मगर अब भी यह देख कर कि सारी आमदनी तो खाने पीने को ही पूरी नहीं, पडती, वे भविष्य का हाल सोच कर चिन्तातुर हो उठते हैं ।

"फक्त दो चार रुपयों की न कुछ बढती के लिए ये एक जगह से दूसरी जगह मारे मारे फिरते हैं । एक जगह जम कर अधिक दिनों नौकरी नहीं कर सकते ।

"इस स्थिति को सुधारने के मैं नीचे लिखे उपाय सुझाता हूँ:

१. जहां तक हो सके नौकरी स्थायी हो ।
२. अनाज और कपडा सस्ते — परते के — भाव पर कारखाने के मालिक देवें ।
३. डाक्टरी मदद मुफ्त मिले ।
४. कमती भाडे में रहने के मकान मिलें ।
५. उनके लडकों को पढाने की व्यवस्था मालिक करें ।
६. कम सूद पर उन्हें रुपया मिले ।
७. भविष्य में मरने बाद उनके आधार पर रहनेवाले स्त्री और बालकों की स्थिति भयंकर न होने पावे और उन्हें मदद मिले, इस लिए जिन्दगी का यथोचित बीमा कराया जाय ।

"ऊपर लिखी बातों में से छै तो तुरत ही की जा सकती हैं। जिन्दगी के बीमे की भी वैसी ही सहज और लाभकारी योजना है । इस सारी योजना को 'अहमदाबाद न्यू कौटन मिल्स' में अमल में लाने का विचार खूब चल रहा है । और जिन्दगी के बीमा की योजना को भी दूसरी योजनाओं के साथ अप्रिल से ही अमल में लाना संभव है ।

"बीमें की योजना तो इतनी सुंदर है कि उससे हर एक क्लर्क का १,५००) रु. का बीमा कराया जायगा और वे उसके बदले में बहुत ही मामूली हिस्सा देंगे। इस योजना की रूप-रेखा यह है:

"रु. ५०) तक का मासिक मुशाहरेवाले क्लर्क कुछ भी न देवें
रु. ५१) से ७५) तक मासिक पानेवाले क्लर्क हर महीने रु. ०-१५-० दें
रु. ७६) से १००) ,, ,, ,, १-६-० दें
रु. १०१ से १५०) ,, ,, ,, १-८-० दें
रु. १५१ से २५०) ,, ,, ,, २-०-० दें
रु. २५१) से अधिक ,, ,, ,, २-४-० दें

"इसके अलावा मिल की ओर से हर साल १,२००) रु. इस मद में दिये जायँ, और एक साल में एक या अधिक आदमियों के मरने पर यह रकम उनमें बाँट दी जाय । पुराने उदाहरणों को देखने पर जान पडता है कि हर साल ६० क्लर्कों में से एक की मौत होती है । इसलिए हर एक को प्रायः १,५००) रु. का बीमा मिल सकेगा । इस रकम का क्या उपयोग करना, मरनेवाले के कुटुम्ब को किस तरह वह रकम दी जाय,— आदि सवालों का निर्णय और बीमा की व्यवस्था के जरिए उपनियमों एक मण्डल करेगा । किन्तु किसी हालत में यह रकम मरण-क्रिया, श्राद्ध या ऐसी दूसरी कुप्रथाओं में खर्च नहीं की जा सकेगी ।

"अहमदाबाद की, बल्कि सारे हिन्दुस्तान की हर एक मिल अपने क्लर्कों के हित के लिए इस तरह की योजना करे और मध्यम वर्ग के विविध दुःखों को हटा कर उनके आशीर्वाद लेवे तो क्या ही अच्छा हो ।"

इस योजना में बीमा का जो भाग है, उसे मैं कम ही समझता हूँ । इस लिए अगर किसी किस्म का बीमा क्लर्कों का हित समझ कर कराया जाय, तो मैं यह मान लेता हूँ कि वह इस बीमायुग में अच्छा ही होगा । योजना में बतलायी बातों की सहायताकारक टीका तो कोई बीमाशास्त्री ही कर सकता है और मैं मान लेता हूँ कि किसी अच्छे जानकार की मदद श्रीयुत रणछोडलाल ने ली होगी । इस बारे में दो मत हो ही नहीं सकते कि मिल-मालिकों और दूसरी पेढियों को जो सैकडों क्लर्कों को निभाती हैं, अपने क्लर्कों के हित में, उन्हें कुटुम्बी सा समझ कर दिलचस्पी लेनी चाहिए । आज तक यह संबंध महज मालिक और नौकर जैसा ही था। मैंने अपने भ्रमणों में सब जगह देखा है कि उसमें कौटुंबिक भावना बहुत कम ही पैदा हुई है । इस लिए इस योजना को स्वागत करने योग्य समझता हूँ । बीमा के सिवाय और दूसरी जो वस्तुएँ बतलायी हैं, वे भी शुभ हेतु की सूचक हैं ।

तीसरे कलम में डाक्टरी मदद मुफ्त देने की जो बात लिखी है, वह मेरी दृष्टि में मुफ्त के बदले सस्ती, सच्ची, और तात्कालिक होनी चाहिए। क्योंकि मुफ्त मदद से यह संभव है कि क्लर्क बेचारे पराधीन, रंक स्थिति में पड जायँ। फिर, जहां मुफ्त मदद मिलती है, वहां लापर्वाई पैदा होती है या मदद का दुरुपयोग होता है। इस जोखिम से भी उनके निकल जाने की जरूरत है। क्लर्कों या कारीगरों का रोग उनका कम वेतन और उनकी स्थिति की ओर से लापर्वाई रखनी है। वर्त्तमान योजना में वेतन की कमी को पूरा करने का सीधा और सादा उपाय दिया हुआ है । और इस लिए वह कदर करने लायक है।

क्लर्कों की संख्या कम है, उनकी सहन-शक्ति भी थोडी और उनमें एकता भी कम ही है। किन्तु कारीगर-कुटुम्ब में सभी कमानेवाले होते हैं । जब कि क्लर्क के यहां बहुत कर के एक ही कमानेवाला होता है । इस स्थिति को सुधारने में क्लर्कों को खुद पूरा हाथ बँटाना चाहिए । उनमें एकता होनी चाहिए । कुटुम्ब को पराधीन रहने देने के बदले दूसरों को और खास कर अपनी पत्नी को ऐसी मदद और शिक्षा देनी चाहिए कि वह जिसमें कोई काम कर सके । क्लर्क आत्मविश्वास खो बैठने के कारण दीन जैसे हो पडते हैं, यों मानते हैं कि एक जगह से गये तो फिर कहीं सिर ढांकने की भी जगह नहीं मिलेगी । जो ईमान्दार हैं, अपने काम में होशियार हैं, जिनका शरीर अच्छा है और जो उद्यमी हैं, उन्हें किसी दिन नौकरी मिलने में मुश्किल नहीं हुई है ।

इसमें तो कोई बहस ही नहीं है कि कारीगर की बनिस्बत बहुत बातों में क्लर्क की स्थिति अधिक दयाजनक होती है। इस वस्तु की हूबहू तस्वीर मेरे आगे सन् १९१५ में रक्खी गयी थी।

(शेष पृष्ठ २८२ के दूसरे कालम के नीचे)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख सुदी ७ संवत् १९८४

मेरी यूरोप-यात्रा

यह घोषित करते हुए मुझे बहुत खेद होता है कि मेरे यूरोप जाने की जो इतनी धूम थी, सो कम से कम इस साल तो मैं वहां किसी हालत में जा ही नहीं सकता। ऑस्ट्रिया, हॉलैण्ड, स्कॉटलैण्ड, डेनमार्क, स्वीडेन, जर्मनी और रशिया के जिन मित्रों ने मेरे पास निमंत्रण भेजे थे उन्हें मैं इसके सिवाय और क्या कह सकता हूं कि मेरी निराशा से आपकी निराशा अधिक न होगी।

चाहे जिस तरह हो, मगर यूरोप या अमेरिका जाने में मुझे एक तरह का भय होता है। वह इसलिए नहीं कि मैं अपने आदमियों से अधिक उनपर अविश्वास करता हूँ। मगर मैं अपने आपपर ही अविश्वास करता हूँ। मुझे स्वास्थ्य-सुधार या सैर सपाटे के लिए पश्चिम में जाने की इच्छा नहीं है। मुझे सार्वजनिक सभाओं में भाषण करने का शौक नहीं है। घुमा फिरा कर दिखाये जाने से नफरत करता हूँ। मैं नहीं समझता कि भाषणों और सार्वजनिक धूम-धाम की भयंकर मिहनत बरदाश्त करने लायक मेरा शरीर अब फिर कभी सबल हो सकेगा। अगर परमात्मा मुझे कभी पश्चिम में ले गया तो मैं वहां के जन-समूहों के हृदयों में प्रवेश करके पश्चिम के नौजवानों से शान्ति से बातें करने और अपने ही समान विचार वाले शान्तिप्रेमी पुरुषों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त करने के लिए जाऊँगा, जो सत्य को छोड कर शान्ति के लिए और सब कुछ कीमत देने को तैयार होंगे।

मगर मुझे लगता है कि मेरे पास अभी ऐसा कोई संदेश नहीं है, जो मैं पश्चिम को आप जाकर दूँ। मेरा विश्वास है कि मेरा संदेश सार्वभौम है, मगर अब तक मुझे यही लगता है कि उसे देने का मेरा सबसे अच्छा तरीका है स्वदेश में ही काम करना। अगर हिन्दुस्तान में मैं प्रत्यक्ष सफलता दिखला सका तो मेरा संदेश देना पूरा हो चुका। अगर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि हिन्दुस्तान को मेरे संदेश की कोई जरूरत नहीं है तो उसमें विश्वास रखते हुए भी मैं उसे सुनाने के लिए और कहीं नहीं जाऊँगा। इस लिए अगर मैंने हिन्दुस्तान के बाहर जाने का साहस कभी किया भी तो मैं यह इस लिए करूँगा कि मुझे श्रद्धा और विश्वास है गोकि मैं उसे सबको प्रत्यक्ष नहीं दिखला सकता कि चाहे जितने धीरे २ क्यों न हो, मगर हिन्दुस्तान मेरे संदेश को जरूर स्वीकार कर ही रहा है।

इस भांति जब कि मैं आमंत्रण देनेवाले मित्रों से हिचकिचाहट के साथ पत्र-व्यवहार चला रहा था मैंने देखा कि मेरे यूरोप जाने की अगर और कुछ नहीं तो एक जरूरत है और वह है श्रीयुत रोम्यां रोलां से मिलना। साधारण यूरोप-यात्रा के संबंध में अपने पर विश्वास न कर सकने के कारण मैंने पश्चिम के इस बुद्धिमान् पुरुष से मिलने के लिए ही जाना यूरोप-यात्रा का मुख्य कारण बनाना चाहा। इस लिए मैंने उनके सामने अपनी मुश्किलें रक्खीं और अत्यन्त खुलासगी से पूछा कि क्या आप अपनी मुलाकात को ही मेरी यूरोप-यात्रा का मुख्य कारण बनाने देंगे? श्रीमती मीरा बाई (कुमारी स्लेड) की मार्फत उन्होंने मुझे पत्र लिखा है कि 'मैं केवल अपनी मुलाकात को ही यूरोप-यात्रा का मुख्य कारण स्वयं सत्य के ही नाम पर नहीं बनाने दूंगा।' केवल मुझसे मिलने के लिए वे मुझे अपने काम में व्याघात नहीं डालने देंगे। उनके पत्र में मैं झूठी नम्रता नहीं देखता। उसमें मैं सत्य की नितान्त सच्ची झलक देखता हूँ। मेरे पत्र का जवाब लिखते समय वे जानते थे कि मैं केवल मामूली भेट मुलाकात के लिए ही नहीं आ रहा हूँ, बल्कि उस कार्य के लिए आ रहा हूँ जो उन्हें भी वैसा ही प्रिय है जैसा कि मुझे। किन्तु स्पष्ट ही, वे इतने नम्र हैं कि महज इस लिए कि हम दोनों अपने एक समान प्रिय कार्य की उन्नति के लिए पारस्परिक बातचीत से एक दूसरे को अच्छी तरह समझ सकें, वे मुझे बुलाने की जिम्मेवरी लेने को तैयार न हुए और मैं चाहता था कि अगर उन्हें लगे कि सत्य के लिए हम दोनों का मिलना आवश्यक है तो वे यही भार उठावें। इस लिए मैंने उनके जवाब को अपनी प्रार्थना का स्पष्ट उत्तर मान लिया है। उनकी मुलाकात के सिवाय मुझे और कोई आन्तरिक प्रेरणा नहीं जान पडी।

मैंने इच्छा न रहने पर भी ये बातें इस लिए सार्वजनिक कर दी हैं कि अखबारों में छपा था कि मैं यूरोप जाने का विचार गंभीरता-पूर्वक कर रहा हूँ। मुझे अपने इस निश्चय पर खेद होता है किन्तु यही ठीक जान पडता है। क्योंकि जब यूरोप जाने की कोई प्रेरणा नहीं है, यहीं बहुत कुछ करने की प्रेरणा बराबर ही होती रहती है। और अब तो मेरे अपने सर्व-श्रेष्ठ साथी की मृत्यु मुझे आश्रम में ही बाँध दिये हुए सी जान पडती है।

परन्तु मैं यूरोप के अपने अनेक मित्रों को कह सकता हूँ कि अगले वर्ष अगर सब कुछ ठीक रहा, और वे मुझे तब भी बुलाना चाहते रहे तो मैं अपनी बतलायी मर्यादाओं के भीतर, यह मुलतवी मुसाफिरी फिर करूँगा और चाहे मैं अपना संदेश देने को तैयार हो सकूँ या नहीं, हर हालत में आऊँगा। अपने अनेक मित्रों से प्रत्यक्ष मिलना ही कुछ कम सौभाग्य की बात न होगी। अंत में मैं यह कह कर इस व्यक्तिगत कथन को खत्म करता हूँ कि अगर मुझे कभी पश्चिम जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ भी तो, सिवाय इसके कि आबोहवा के कारण जो परिवर्तन करने पडें, और स्वेच्छा-स्वीकृत संयम जो परिवर्तन होने देवे, मैं अपनी पोशाक या रहन सहन में कोई परिवर्तन नहीं करूँगा। मुझे आशा है कि मेरा बाहरी स्वरूप मेरे आन्तरिक स्वरूप की ही छाया है।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय २

गोखले के साथ पूना में

मैं बंबई पहुँचा नहीं कि गोखले ने तुरत ही खबर भेजी, "गवर्नर आपसे मिलना चाहते हैं। पूने के रास्ते में आप उनसे मिलते आवें तो अच्छा होगा।" इसलिए मैं उनसे मिलने गया था। सामान्य बातें करने के बाद उन्होंने कहा:

"आप से मैं एक वचन माँगता हूँ। मैं चाहता हूँ कि सरकार के संबंध में कोई काम करने के पहले आप मुझसे बातें कर लेवें, और मुझसे मिल जायँ।"

मैंने जवाब दिया:

"मेरे लिए यह वचन देना बहुत सहज है। क्योंकि सत्याग्रही के रूप में मेरा नियम ही यह है कि किसीके विरुद्ध कुछ भी काम करना हो तो पहले उससे उसका दृष्टिबिन्दु समझ लूँ और जहां तक उसके अनुकूल होना संभव हो, हो जाऊँ। द० अफ्रिका में मैंने इस नियम का पालन हमेशे किया है। यहां भी वैसा ही करूंगा।"

लॉर्ड विलिंगडन ने आभार माना और कहा:

"जब कभी मिलना हो, आप मुझसे तुरत मिल सकेंगे और आप देखेंगे कि सरकार इरादापूर्वक कुछ बुरा करना नहीं चाहती।"

मैंने जवाब दिया:

"इस विश्वास पर तो मैं निभता हूँ।"

मैं पूना पहुँचा। वहां के सभी स्मरण देने में मैं असमर्थ हूँ। गोखले और उनके भारत–सेवक–संघ (सर्वेन्ट्स आव इंडिया सोसायटी) के सभ्यों ने मुझपर प्रेम की वर्षा की। जहां तक मुझे याद है उन्होंने सभी सभ्यों को पूने में बुलाया था। सभीके साथ बहुत से विषयों पर मेरी दिल खोल कर बातें हुई। गोखले की तीव्र इच्छा थी कि मैं भी संघ में शामिल हो जाऊँ। मेरी इच्छा तो थी ही। किन्तु सभ्यों को लगा कि सोसायटी के आदर्श और काम करने की रीति मुझसे जुदा थी। इसलिए इसमें उन्हें शक था कि मेरा सभ्य होना उचित है या नहीं। गोखले की मान्यता थी कि मुझमें अपने आदर्श पर दृढ रहने का जितना आग्रह था, उतना ही दूसरों के आदर्शों को निभाने और उनमें मिल जाने का स्वभाव था। उन्होंने कहा, "लेकिन मेरे सभ्य अब तक आपके निभा लेनेवाले स्वभाव से परिचित नहीं हुए हैं। वे अपने आदर्श पर दृढ रहने-वाले स्वतंत्र और पक्के विचार के हैं। मैं उमेद तो रखता ही हूँ कि वे आपको कबूल करेंगे। पर कबूल न करें तो आप तो ऐसा समझिए ही नहीं कि आपके लिए उन्हें आदर या प्रेम कम हैं। इस प्रेम को अखंडित रखने के लिए ही वे कोई जोखिम उठाने से डरते हैं। पर आप सोसायटी के नियमित सभ्य हों, अथवा न हों, मैं तो आपको सभ्य ही गिननेवाला हूँ।"

मैंने उन्हें अपनी धारणा बतलायी थी। सोसायटी का सभ्य बनूँ या न बनूँ, मगर तौभी मुझे एक आश्रम खोल कर, उसमें फिनिक्स के साथियों को लेकर बैठ जाना था। इस मान्यता से कि गुजराती होकर गुजरात की सेवा करने की कुछ अधिक योग्यता मुझमें है, मैं गुजरात में ही कहीं स्थिर होकर बैठ जाना चाहता था। गोखले को यह विचार पसंद पडा था। इस लिए उन्होंने कहा:

"जरूर ऐसा कीजिए। सभ्यों के साथ बातचीत का चाहे जो परिणाम आवे, किन्तु आश्रम के लिए द्रव्य तो आपको मेरे पास से ही लेना है। उसे मैं अपना ही आश्रम गिनूँगा।"

मेरा हृदय फूल उठा। यह मान कर कि धन इकट्ठा करने के धंधे से मुझे मुक्ति मिली, मैं बहुत प्रसन्न हुआ। और इस विश्वास से कि अब मुझे अपनी ही जिम्मेवरी पर नहीं चलना पडेगा किन्तु हर एक मुश्किल में वे मेरे पथ–प्रदर्शक होंगे, मुझे अपने ऊपर से बड़ा भार उतरा हुआ सा लगा।

गोखले ने स्व० डाक्टर देव को बुला कर कहा, "अपनी बही में गांधीजी का खाता खोल दीजिए। और इन्हें अपने आश्रम के लिए या सार्वजनिक काम के लिए जो खर्च दरकार हो, दीजिएगा।"

मैं अब पूना छोड शान्तिनिकेतन जाने की तैयारी कर रहा था। अंतिम रात को गोखले ने केवल ऐसे ही मित्रों की पार्टी दी जो मुझे पसंद थे। उसमें उन्होंने वैसे ही सूखे या ताजे फलों का भोजन मंगवाया था, जैसे कि मैं खाता था। यह पार्टी उनकी कोठरी से कुछ ही पग दूर पर थी। उसमें आने की उनकी स्थिति बिलकुल न थी। किन्तु उनका प्रेम उन्हें रहने कैसे दे? उन्होंने आने का आग्रह रक्खा। आये तो सही, किन्तु उन्हें मूर्छा हो आयी और उन्हें लौट जाना पडा। ऐसा उन्हें समय समय पर हो जाया करता था। इसलिए उन्होंने खबर भेजी कि पार्टी तो चालू ही रक्खी जाय। पार्टी तो केवल सोसायटी के मेहमानों के साथ घर के सामने के मैदान में जाजिम बिछा कर बैठने और मूँगफली, खजूर वगैरह चबाने और प्रेमवार्त्ता करने तथा एक दूसरे के हृदय को ज्यादह अच्छी तरह जानने के लिए थी।

किन्तु यह मूर्छा मेरे जीवन के लिए सामान्य अनुभव होनेवाली नहीं थी।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

धर्म-संकट

"मैं ३० वर्ष का विवाहित पुरुष हूँ। मेरी धर्मपत्नी की भी प्रायः यही उम्र है। हमें पांच सन्तानें हुई जिनमें सौभाग्य से दो तो मर गयी हैं। मैं अपने शेष बच्चों के प्रति अपनी जिम्मेवरी को जानता हूँ। उस उत्तरदायित्व को पूरा करना अगर असंभव नहीं तो मैं बहुत मुश्किल जरूर पाता हूँ। आपने आत्म–संयम का सलाह दी है। खैर, मैं पिछले तीन वर्षों से उसका पालन करता आ रहा हूँ मगर अपनी सहधर्मिनी की इच्छाओं के विरुद्ध। वह तो उसी वस्तु को चाहती है जिसे आम लोग जिन्दगी का मजा कहते हैं। आप इतने ऊँचे से भले ही इसे पाप कह सकते हैं। मगर वह तो आपकी दृष्टि से इसपर विचार नहीं करती। और अब भी और अधिक लडके पैदा करने से भी वह नहीं डरती है। उसे उत्तरदायित्व का वह खयाल नहीं है, जिसके होने का विश्वास कर के मैं खुशी मानता हूँ। मेरे माता पिता मेरी बनिस्बत मेरी पत्नी का ही अधिक साथ देते हैं और रोज ही घर में दाँता किलकिल होती रहती है। इच्छा की पूर्ति न होने से मेरी स्त्री का स्वभाव इतना चिडचिडा और क्रोधी हो गया है कि वह जरा जरा सी बात पर उबल पडती है। मेरे सामने सवाल यह है कि इस कठिनाई को हल कैसे करूँ? अपनी शक्ति के बाहर मुझे लडके बाले हैं। उनका पालन करने की शक्ति मुझमें नहीं है। पत्नी को समझा सकना बिलकुल असंभव सा जान पडता है। अगर उसकी इच्छा पूरी नहीं की जाती है तो वह कुमार्ग पर चली जा सकती है, या पगली हो जायगी या शायद कहीं आत्म–हत्या कर बैठे। मैं आपसे कहता हूँ कि, अगर इस देश का कानून मुझे इजाजत देता तो मैं सभी बेचाहे लडकों को मार डालता, जिस तरह कि आप लावारिस कुत्तों को मरवाते। गत तीन महीनों से मुझे दिन–रात में दो जून खाना नसीब नहीं हुआ है, नाश्ता या जलपान नहीं मिला है। मेरे सिर ऐसे काम धन्धे भी पडे हुए हैं कि जिनसे मैं लगातार कई दिनों तक उपवास भी नहीं कर सकता। पत्नी से मुझे कोई सहानुभूति नहीं मिलती है क्योंकि वह मुझे पागल सा समझती है। संतति–निग्रह के साहित्य से मैं परिचित हूँ। वह साहित्य बहुत लुभावने तरीके से लिखा गया है। और मैंने आत्म-संयम पर आपकी भी किताब पढी है। मैं तो यहां बाघ और मगर के बीच में पडा हूँ।"

मैं पत्र-लेखक को कई साल से जानता हूँ। वे युवक हैं। उन्होंने अपना पूरा नाम ठाम पत्र में दिया है। उनके पत्र का सही सारांश ऊपर दिया गया है। अपना नाम देते हुए वे डरते थे। इस लिए, वे लिखते हैं कि, 'यं. इ.' में चर्चा की जा सकने की आशा में उन्होंने मेरे पास दो गुमनाम पत्र लिखे थे। इस तरह के इतने अधिक गुमनाम पत्र मेरे पास आते रहते हैं कि मैं उनपर चर्चा करने में हिचकता हूँ। उसी तरह इस पत्र पर भी चर्चा करने में मुझे बहुत झिझक है, गो मैं जानता हूँ कि यह पत्र सच्चा है और प्रयत्नशील पुरुष का लिखा हुआ है। यह विषय ही इतना नाजुक है। मगर मैं तो दावा करता हूँ कि ऐसे मुआमलों का मुझे काफी अनुभव है। ऐसा दावा करते हुए और खास कर इस लिए कि कई ऐसे ही मुआमलों में मेरे तरीके से

लोगों को आराम मिला है, मैं इस स्पष्ट कर्त्तव्य के पालन से देह नहीं चुरा सकता।

जहाँ तक अँगरेजी पढे लिखे लोगों से संबंध है, यहाँ की स्थिति दुगुनी मुश्किल है। सामाजिक योग्यता की दृष्टि से पति पत्नी के बीच इतना बडा अन्तर होता है कि, जिसे मिटाना असंभव है। कुछ नवजवान यह सोचते हुए जान पडते हैं कि अपनी पत्नियों की पर्वा नहीं करने में ही हमने यह सवाल हल कर लिया है, यद्यपि उन्हें पता है कि उनकी बिरादरी में तलाक संभव नहीं है और इसलिए उनकी पत्नियां पुनर्विवाह नहीं कर सकतीं। और तौ भी दूसरे लोग — और इन्हींकी संख्या अत्यन्त अधिक है — अपनी पत्नियों को केवल मजा लूटने का साधन बनाते हैं और उन्हें अपने मानसिक जीवन में हिस्सा नहीं देते। बहुत ही थोडे लोग ऐसे हैं जिनका अंत:करण जागृत हुआ है — मगर उनकी संख्या दिनोंदिन बढती जा रही है। उनके सामने भी वैसी ही नैतिक समस्या आ खडी हुई है जैसी कि मेरे पत्र-लेखक के सामने है।

मेरी सम्मति में संभोग को अगर उचित या नियमानुकूल मानना है तो उसकी इजाजत तभी दी जा सकती है जब कि दोनों पक्ष उसकी इच्छा करें। मैं इस अधिकार को नहीं मानता कि एक दूसरे से जबरन इच्छा-पूर्ति करावे। और अगर इस मुआमले में मेरी स्थिति सही है तो पति के लिए पत्नी की मांगें पूरी करने का कोई नैतिक दबाव नहीं है। मगर यों इनकार करने से ही पति पर और भी बडा और भारी उत्तर-दायित्व आ पडता है। वह अपनी पत्नी को हिकारत की नजर से नहीं देखेगा किन्तु नम्रता-पूर्वक इसे स्वीकार करेगा कि उसके लिए जो बात जरूरी नहीं है, वही उसकी पत्नी के लिए परमावश्यक वस्तु है। इस लिए वह उसके साथ अत्यंत नम्रता का व्यवहार करेगा और विश्वास रक्खेगा कि उसकी पवित्रता उसको पत्नी की वासना को अत्यंत ऊँचे प्रकार की शक्ति के रूप में बदल सकेगी। इस लिए उसे अपनी पत्नी का सच्चा मित्र, नायक और वैद्य बनना होगा। पत्नी में उसे पूरा पूरा विश्वास करना होगा, उससे कुछ भी छिपाना न होगा और अटूट धैर्य से उसे पत्नी को इस काम का नैतिक आधार समझाना पडेगा, यह बतलाना होगा कि पति पत्नी के बीच सचमुच में कैसा संबंध होना चाहिए और विवाह का सच्चा अर्थ क्या है। वह यह काम करते हुए देखेगा कि पहले जो बहुत सी बातें स्पष्ट नहीं थीं; अब स्पष्ट हो हो जायँगी और अगर उसका अपना संयम सच्चा हो तो वह अपनी पत्नी को अपने और भी निकट खींच लेगा।

इस मुआमले में तो मुझे कहना ही पडेगा कि केवल संतानोत्पादन से बचने की इच्छा ही पत्नी को संतोष देने से इनकार करने का काफी कारण नहीं है। महज बच्चों का भार उठाने के डर से पत्नी की प्रेम-याचना को अस्वीकार करना तो कायरता सी लगता है। बेहिसाब संतानोत्पादन को रोकना दोनों पक्षों के अलग अलग या साथ साथ अपनी काम-वासना पर लगाम लगाने का अच्छा कारण है, मगर दंपति में से एक के अपने संगी से एकत्र शयन का अधिकार छीन लेने का यह भरपूर कारण नहीं है।

और आखिर बच्चों से इतनी घबराहट ही किस लिए हो? जरूर ही ईमानदार, परिश्रमी और बुद्धिमान् पुरुषों के लिए कई लडकों के पालन कर सकने की कमाई करने की काफी गुंजायश तो है ही। मैं कबूल करता हूँ कि मेरे पत्र-लेखक जैसे आदमी के लिए जो देश-सेवा में अपना सारा समय लगाने की सच्ची कोशिश करता है, बडे और बढते हुए परिवार का पालन करना और साथ ही साथ देश की भी सेवा करनी, जिसकी करोडों भूखी संतानें हैं, मुश्किल है। मैंने इन पृष्ठों में अकसर लिखा है कि जबतक भारतवर्ष गुलाम है, बच्चे पैदा करना ही भूल है। मगर यह तो नवयुवकों और युवतियों के विवाह ही न करने की बडी अच्छी वजह है; एक के दूसरे को दाम्पत्तिक सहयोग न देने का काफी कारण नहीं है। हां, सहयोग न करना भी उचित हो सकता है, बल्कि न करना ही धर्म हो जाता है, जब कि शुद्ध धर्म के नाम पर ब्रह्मचर्य-पालन की इच्छा प्रबल हो उठे। जब वह इच्छा सचमुच में पैदा हो जायगी, तब उसका बडा अच्छा प्रभाव दूसरे पर भी पडेगा। अगर मान लें कि समय पर उसका भला प्रभाव न भी पडा, तौभी जीवन-संगी के पागलपन या मृत्यु का जोखिम उठा कर भी ब्रह्मचर्य-पालन करना कर्तव्य हो जाता है। ब्रह्मचर्य के लिए भी वैसे ही त्यागों की जरूरत है जैसे कि सत्य या देशोद्धार के लिए है। मैंने ऊपर जो कुछ लिखा है उसे दृष्टि में रखते हुए यह कहने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती है कि कृत्रिम उपायों से संतान-निग्रह करना अनैतिक है क्योंकि मेरे तर्क के नीचे जीवन की जो भावना छिपी हुई है, उसमें उसे जगह नहीं है।

(यं० इं०) मोहनदास करमचन्द गांधी

एक समयानुकूल किताब

यं. इं. के पाठक मि० रिचार्ड. बी. ग्रेग के नाम से भलीभांति परिचित हैं। ये अमेरिकन सज्जन पहले अपने देश में वकालत करते थे और कोई ढाई वर्ष से हिन्दुस्तान में आये हैं। यहां उन्होंने खादी आन्दोलन का अपने आने के समय से ही बहुत ही गहरा अध्ययन किया है। कोई साल भर की मिहनत से उन्होंने एक किताब तैयार की है, जिसमें खादी आन्दोलन पर प्राय: बिलकुल नये ही ढँग से विचार किया गया है। अपनी हर एक बात के समर्थन में उन्होंने आंकडे और हकीकतें दी हैं और पाद-टिप्पणियों में उद्धृत प्रमाणों का हवाला दिया है। इसके प्रकाशक हैं 'एस. गणेशन, १८ पाइक्रोफ्ट रोड, ट्रिप्लिकेशन, मद्रास।' कीमत है १॥) रु. कुल २२५ पृष्ठ हैं, जिनमें ६० तो परिशिष्टों के हैं। किताब में कुल १२ अध्याय हैं। पाठक यह भी समझ लें कि मि० ग्रेग भारतीय गांवों के बारे में जो कुछ लिखते हैं, आपबीती लिखते हैं। प्रस्तावना के पहले तीन फिकरों से पाठकों को पता चल जायगा कि मि० ग्रेग किस दिशा में चलते हैं:—

"पहले के जमाने में हिन्दुस्तान बहुत ही धनी देश समझा जाता था। कम से कम मुसलमानों के आक्रमण के पहले तक तो उसका धन सभी लोगों में बँटा हुआ था। महान् अलेक्जेन्डर के समय से ही उसके धन माल की शुहरत यूरोप में है। इसी धन में से हिस्सा पाने की आशा से ही, सचमुच में, अमेरिका की खोज की मुख्य उत्तेजना मिली तथा जहाजरानी, खोज, व्यापार, महाजनी (बैंक का काम) और राजनीति में भी इस आशा का बहुत अधिक भाग था और यूरोप के इतिहास में इन सभी बातों का महत्व बहुत ही बडा है।

"लेकिन गोकि अब भी हिन्दुस्तान को धन की बहुत बडी खान समझते हैं, हिन्दुस्तान के बाशिन्दे दुनिया के गरीबों में गिने जाते हैं। पश्चिमीय देशों के तराजू पर उनकी गरीबी का माप लगाना असंभव है। वहां तो धन का बहुत कुछ अंदाजा मालमता, आमदनी, बैंक का हिसाब, और रहन सहन के खर्च से लगाया जा सकता है। किन्तु यहां हिन्दुस्तान में कुछ ऐसी परिस्थिति है कि ये माप नाकाफी निकलते हैं। संयुक्त कुटुम्ब प्रथा अब भी इतनी प्रचलित है कि महाकंगाली का भार कई जनों पर बँट जाता है। (मगर ख्याल रहे कि इससे धन बढता नहीं है।) दान का धार्मिक कर्तव्य अब भी

... माना जाता है और उसपर अमल भी होता है। जातीय और आन्तर्जातीय संबंधों से कुछ कठिनाइयां कम हो जाती हैं। कुछ देशों और स्थानों में दाम के बदले बदलौवल की प्रथा इतनी अधिक अब भी प्रचलित है कि रुपयों के रूप में आमदनी का ... अविश्वसनीय ही माना जायगा। पश्चिम में जितना अधिक ... कम होता है, उससे यहां मिलान किया ही नहीं जा सकता। ... कि इतने अधिक किसान हैं, आमदनी का अधिकांश तो सीधे ... के रूप में ही होता है। जाडे के दिनों में और वह भी ... में या पहाडों में छोड कर और कहीं तापने के लिए उलाव ... की जरूरत ही प्रायः नहीं रह जाती है तथा उष्ण जलवायु ... कारण बहुत ही सादा जीवन बसर करना संभव हो जाता है।

मगर, इन सभी बातों के लिए जगह छोडने पर भी, आखिर ... में पिसने की बात का कोई जवाब ही नहीं है। इसके प्रमाण ... में जितने स्पष्ट दिखायी पडते हैं, उतने शहरों में नहीं और ... लिए उतावले मुसाफिर की नजर से निकल जाते हैं। और ... ९० से अधिक आदमी तो अधिकतर दूर के गांवों में ही ... हैं। सभी देशों में जन-साधारण के स्वास्थ्य और मृत्यु के ... से वहांकी गरीबी का बहुत कुछ पता चल जाता है। हिन्दुस्तान की बीमारियों और मौतों के लिए गोकि केवल बाल-... के ही मत्थे सारा दोष मढा जा रहा है, किन्तु [illegible] ... आंकडों से इस देश की गरीबी का [illegible] पता चलता है। संसार के सभी देशों से छोटी आयु की आशा हिन्दुस्तानियों की होती है और वह भी दिनों दिन घटती हुई सी जान पडती ... यहां बच्चों की मृत्यु अत्यंत अधिक होती है, रोगों का प्रचार भी ... अधिक है। गांवों में प्रायः सभी किसी की निरक्षरता भी ... गरीबी का ही सुबूत है। जमीन के अत्यंत ही छोटे छोटे ... होना तथा होते जाना भी गरीबी के कारण और प्रमाण ... हैं। लोगों की मकरूजी, सूद का दर, और छोटे छोटे कर्जों ... पद्धति ही अशोचनीय हैं। किसानों और शहरों के मजदूरों की ... क्षमता की सभी गिनतियों से उनके पास बहुत ही कम पूँजी का ... जाहिर होता है। इस परिस्थिति के सामने तो सोने चांदी की ... लाया जाना, घर में रखना, गडे हुए खजानों और घर के ... जवाहिरात इत्यादि की सभी बातें बिलकुल मूर्खता सी लगती हैं, ... कि हम विदेश से लाये कुल धन को आबादी से भाग देते और यह समझ लेते हैं कि चेकों और उधार सौदे के दूसरे तरीकों का यहां प्रचार नहीं है और इस लिए पश्चिम की ... व्यापारिक लेन देन के लिए यहां अधिक मुद्राएँ चाहिए ... मुद्रा के घिसने के लिए भी कुछ न कुछ जगह छोडनी ही ... तथा मिलान करते समय पश्चिमीय देशों में सभी कामों के ... आदमी मूल्यवान धातुओं के औसत से मिलान करना ... सामाजिक और आर्थिक गिनती के प्रायः सभी अनुभवी ... का मत है कि हिन्दुस्तान की कंगाली अत्यंत ही अधिक और सर्वव्यापक है। जैसा कि मद्रास विश्व विद्यालय के ... गिलबर्ट स्लेटर कहते हैं, 'भारत वर्ष की कंगाली भयानक ...'

... गरीबी को दूर करने के लिए, मि० ग्रेग ने इसकी विविध ... की परीक्षा की और अंत में उन्हें लाचार इसी निष्कर्ष ... पडा कि चर्खा ही इसका एक मात्र सच्चा इलाज है। लेखक ...

"इस छोटी सी किताब में यही दिया गया है कि यह योजना ... आदमी को कैसी जँचती है, जिसे अमेरिका की औद्योगिक ... के संबंध की समस्याओं का ७ वर्ष का व्यावहारिक ज्ञान है (जिसमें अधिकांश कपडे की मिलों का ही है) और जिसने हिन्दुस्तान में खद्दर आन्दोलन का ढाई वर्ष तक अध्ययन किया है, और वह भी गांवों में तथा आन्दोलन के मुख्य केन्द्र में। यह खोज मुख्यतः अपने ही विचारों की खुलासगी के लिए शुरू की गयी थी। विचार नये नहीं हैं गोकि उनका विश्लेषण कुछ हद तक नया है। इस किताब में जितनी बातें दी है, उन सबके लिए मैं सारे संसार का आभारी हूँ।

"यह पुस्तक पूरी तो है ही नहीं किन्तु मैंने मुख्य मुख्य बातें देने की कोशिश की है। और जहां कहीं और अधिक बातें मिल सकती हैं, सूत्रों का हवाला दे दिया है। आज तक के सभी आंकडे देना मेरी शक्ति के बाहर था किन्तु मैं नहीं समझता हूँ कि सिर्फ एक इसी कारण मेरे नतीजे गलत कहे जायँगे।

"एक बात निश्चित है। वह यह कि हिन्दुस्तान की उष्ण जलवायु के गांवों के आर्थिक संगठन और विधियों में ठंडे तथा मुख्तः शहरोंवाले मुल्कों की इन बातों से बहुत बडा फर्क है। मगर जब तक किसीने बहुत काफी दिनों तक दोनों का ही प्रत्यक्ष अनुभव न लिया हो, उसे इस फर्क का खयाल आना प्रायः असंभव ही है।"

इस प्रश्न की, मि० ग्रेग की परीक्षा में विशेषता यह है कि वे यंत्र-शास्त्र के पहलू से इसका विचार शुरू करते हैं और उनके पहले अध्याय का शीर्षक भी यही है। उन्हें यह दिखलाने में कोई कठिनाई नहीं हुई है कि किसी देश की भौतिक सम्पत्ति महज शक्ति और कलों के संग्रह से ही नहीं बढती है, किन्तु उनके समुचित प्रयोग से बढती है। वे अपनी दलील यों शुरू करते हैं:

"मि० फोर्ड के इस मत को मानते हुए कि शक्ति का समुचित प्रयोग, किसी खास किस्म की कल से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, आइए, हम भौतिक शक्ति के मूल तथा उसके उपयोग की जाँच करें और फिर खद्दर की योजना के औचित्य की जाँच उसी कसौटी पर करें।

"आखिर सभी भौतिक शक्तियों का मूल सूर्य है। कोयला और पेट्रोलियम भी युग युग के सूर्यताप के खजाने भर हैं जो पौधों के सूर्य ताप के जरिए परिवर्त्तित होकर अब तक जमा रक्खे हुए हैं। जल की शक्ति भी सूर्य के समुद्रों का जल खींच कर पहाडों और नदियों में ला गिराने से ही पैदा होती है। घोडों, बैलों, पशुओं और आदमियों तक की शक्ति भी उनके आहार्य फल मूल, घास पात से आती है जिनके प्राणदाता सूर्य हैं। आज कल मनुष्य जो कुछ शक्ति उपयोग में लाता है और भूतकाल में जो कुछ ला सका है, सभीका मूल अनंत सूर्य-ताप ही है और रहा है। ऋग्वेद की ऋचाओं ने ठीक ही सवितृ भगवान् का गुण गान किया है। "सवितृ. . . . . मंगलमय भगवान्" और "सुनेत्र सविता भगवान् अपने सभी उपासकों को सभी प्रकार की समृद्ध देने आये हैं।" (ऋ. १०,१४९;)।

"यंत्रशास्त्र की दृष्टि से तथा आर्थिक दृष्टि से भी कोई योजना जो ज्यादह अच्छी और पहले से ज्यादह सूर्यशक्ति का उपयोग करती है ठीक है।

"हम प्रायः चर्खे का विचार कल के रूप में नहीं करते। चर्खा तो पुरुष, स्त्री और बालक की सुलभ शक्ति का उपयोग कर के माल तैयार करता है। हाथकर्घा भी वही करता है। उसे चलाने वाली यांत्रिक शक्ति भोजन में से मिलती है। गो कि उस भोजन का यांत्रिक शक्ति के रूप में परिवर्त्तन दूसरे ही प्रकार से होता है, मगर तौभी क्रिया तो उसमें भी वही होती है जो भाप की इंजिन में या जल-

बल से चलनेवाली कलों में होती है अर्थात् कोयला पानी के रूप में मिली सूर्यशक्ति को यांत्रिक शक्ति के रूप में बदलना ।

"आज बहुत से हिन्दुस्तानी बेकार हैं । दर असल वे वेसी कलें हो रहे हैं जो कोयलापानी (भोजन) तो खाती हैं, मगर किसी यंत्र से संबंध न होने के कारण कोई वस्तु नहीं बना पातीं । गांधीजी उन्हें चर्खे में जोत देना चाहते हैं और यों बहुत अधिक सूर्यशक्ति को जाया जाने से बचाना चाहते हैं ।

"अगर हम हिन्दुस्तान में यंत्रशक्ति बढाना चाहते हैं तो यही सबसे शीघ्र और सस्ता उपाय है । इंजिनें तो सभी मौजूद हैं । आदमी भी आहार के इंधन को जला कर उसी तरह से उसे यंत्र-शक्ति में बदल सकता है, जिस तरह की कोई स्टीम इंजिन । और कातने और बुनने की भी यथेष्ट फलें सामने ही पडी हुई हैं । और जिस वस्तु की जरूरत हुई, वह शीघ्र ही, और सस्ते में हिन्दुस्तानी कारीगर बिना किसी विशेष शिक्षा के तैयार कर लेंगे । बने माल की तैयारी की गति और मिकदार, दोनों ही भारतीय बाजार और जरूरतों के इतने अनुकूल हैं, जितनी दूसरी कोई कल नहीं है । विदेशी पूँजी की कोई दरकार नहीं है और इस लिए न तो बहुत सूद देना है और न मालिक के दूर रहने से काम में ढिलाई होने का ही जोखिम है । ऐसे कारखाने को चलाने में कोई खर्च नहीं है और अभी जितने कार्यकर्त्ता हैं, केवल वे ही बिना किसी विशेष शिक्षा के ही सारा भार उठा सकेंगे । काम करनेवालों को कम से कम तालीम देनी पडती है और वह सभी प्रकार की कलों की शिक्षा से सहज है । इस कल का इंधन या भोजन भी तो उसीसे चल जायगा जितना कि आज राष्ट्र खर्च कर रहा है । सारा सामान हर एक प्रान्त में सर्वत्र सुलभ है । एक जगह से दूसरी जगह ले जाने का खर्च भी प्रायः नहीं है और सभी जगह बाजार पडे हैं ।"

अब दूसरे अध्यायों से उतारे इस वार देने का लोभ तो मुझे रोकना ही पडेगा । मगर ऊपर दिये गये उतारे अगर पाठकों को जरा भी रुचिकर लगे हैं तो मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि आगे के अध्याय यथेष्ट रोचक और बहुत ही शिक्षापूर्ण हैं । अंत में शेष ११ अध्यायों के शीर्षक देकर यह उतावली में लिखी समालोचना खतम करता हूँ । इतना तो सभी मानेंगे कि वे यथेष्ट सूचक या विचार में डालने वाले हैं :

२ रा अध्याय	यांत्रिक ब्यौरे
३ रा ,,	मिल के कपडे और खद्दर में चढा ऊपरी
४ था ,,	चढा ऊपरी को कम करनेवाले कारण
५ वां ,,	बढी हुई क्रयशक्ति
६ ठा ,,	विस्तृत उत्पत्ति और विभाजन
७ वां ,,	बेकारी
८ वां ,,	वस्त्र-व्यवसाय की कुछ बातें
९ वां ,,	क्या यह चलता भी है ?
१० वां ,,	विविध शंकाएँ
११ वां ,,	खद्दर कार्यक्रम का दूसरी योजनाओं से मिलान
१२ वां ,,	रुपये में कीमत का महत्व, निष्कर्ष या उपसंहार

(यं. इं.)

मो० क० गांधी

[मि० ग्रेग की उपर्युक्त पुस्तक के महत्वपूर्ण अंशों के सारांश 'हि. नवजीवन' में लेखमाला के रूप में दिये जायँगे । उस लेखमाला की प्रस्तावना के रूप में ऊपर गांधी जी की समालोचना दी गयी है ।

उप स०-'हि० न०']

चार मास का काम

गत वर्ष मैं वैश्य-विद्याश्रम, सासावणें में गया था । उसके ... से उसने रचनात्मक कार्य खूब जोरों से शुरू किया और ... बराबर आगे बढा ही जाता है । विगत चैत्र-मास में ... होनेवाले चार महीनों को नीचे की रिपोर्ट देने के बाद कुछ ... कहने को रही नहीं जाता है ।

"हमने काम शुरू किया था कताई और धुनाई से, मगर ... बुनाई और ओटाई की क्रियाएँ भी बढा ली हैं । हमें मध्य-... और गुजरात से कपास मँगानी पडती है । हमने हाल में ही ... ७८४ पाउण्ड कपास खरीदी है । इस सारी कपास को ओट, ... कात और बुन कर लडके ही खादी बना लेंगे । खादी ... हमारे एक शिक्षक श्रीयुत काणे के अधीन है । उन्होंने ... छुट्टियों में सत्याग्रहाश्रम साबरमती में तालीम पायी थी । हमने ... महीने के मुशाहरे पर एक बुनकर को भी रक्खा है । लडकों ने ... सारे काम की व्यवस्था के लिए आठ लडकों का मंडल बनाया है ।

"५ वें से १० वें वर्ग तक के सभी लडकों के लिए आधा ... चर्खा चलाना आवश्यक है । आज कल ४० चर्खे चल रहे हैं । ... तकुवे और दूसरे सामान हमें अहमदाबाद तथा बारडोली से ... पडते हैं । इन चार महीनों में ४० पाउण्ड सूत काता गया ... सबसे मोटा सूत ६ अंक का तथा सबसे महीन २० ... सूत कातने की मामूली गति फी घंटा २५० गज है और ... से अधिक गति ५६० गज फी घंटा है ।

"नीचे के वर्गों के लडके तकली पर कातते हैं । ... गति फी घंटा ७५ से १०० गज तक होती है ।

"ऊपर के वर्गों के लडके चर्खे पर सूत कातते हैं । वे ... कपास आप ओट कर धुन लेते हैं । तीनों तरह के पिंजन ... लाये जाते हैं । धुनाई की अधिक से अधिक गति घंटे में १... तक है । इन चार महीनों में ६० पाउण्ड रुई धुनी गयी थी ।

"बुनाई अभी हाल में ही शुरू की गयी है । पहले छः ... में हमारे यहां ५० पाउण्ड सूत कता था । ३ फ्लाईशटल क... यहां चल रहे हैं उनमें एक धोतियों, एक तौलियों और एक ... कपडों के लिए है । कुछ लडकों ने कपडा बुनना सीखा है । ... चार महीनों में ८५) रु. की २०० गज खादी बुनी गयी ... सबकी सब बिक भी गयी ।

"सभी शिक्षक अ० भा० चर्खा-संघ के सदस्य हैं तथा ११ ... भी 'ब' वर्ग के तरुण सदस्य हैं । विद्यार्थियों में नियमित खादी ... वाले कुल सैकडे ७५ हैं और उनकी संख्या दिनों दिन बढ रही ...

अगर इसके सुबूत की अब भी जरूरत हो कि लगन ... करने पर क्या हो सकता है तो उपर्युक्त अहवाल वही सुबूत ... जहां कहीं के बारे में कहा गया कि चर्खा असफल हुआ है ... वहां चर्खा असफल न हुआ था, बल्कि चर्खा चलवाने ... अपने काम पर डटे न रह सके क्योंकि उनमें श्रद्धा न थी । ... प्रयत्न किया जाय तो जैसा कि सासावणें के लडकों ने ... सभी जगहों के लडके शिक्षकों की बात मानेंगे । इन पृष्ठों में ... समय पर जो आंकडे छपते रहते हैं, उन्हींके सहारे जो कोई ... सहज ही जोड सकता है कि सारे राष्ट्र को कपडा पहनाने ... चर्खे पर या तकली पर ही कम से कम एक घंटा रोज कातने ... कितने लडके चाहिए । ओह, इस देश के दुःख दारिद्र्य ... रामबाण दवा के रूप में हमें चर्खे के सादे सौन्दर्य के ... कल्पना करने की शक्ति होती !

(यं० इं०)

मो० क० गांधी

स्वेच्छा-दारिद्र्य

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ३७

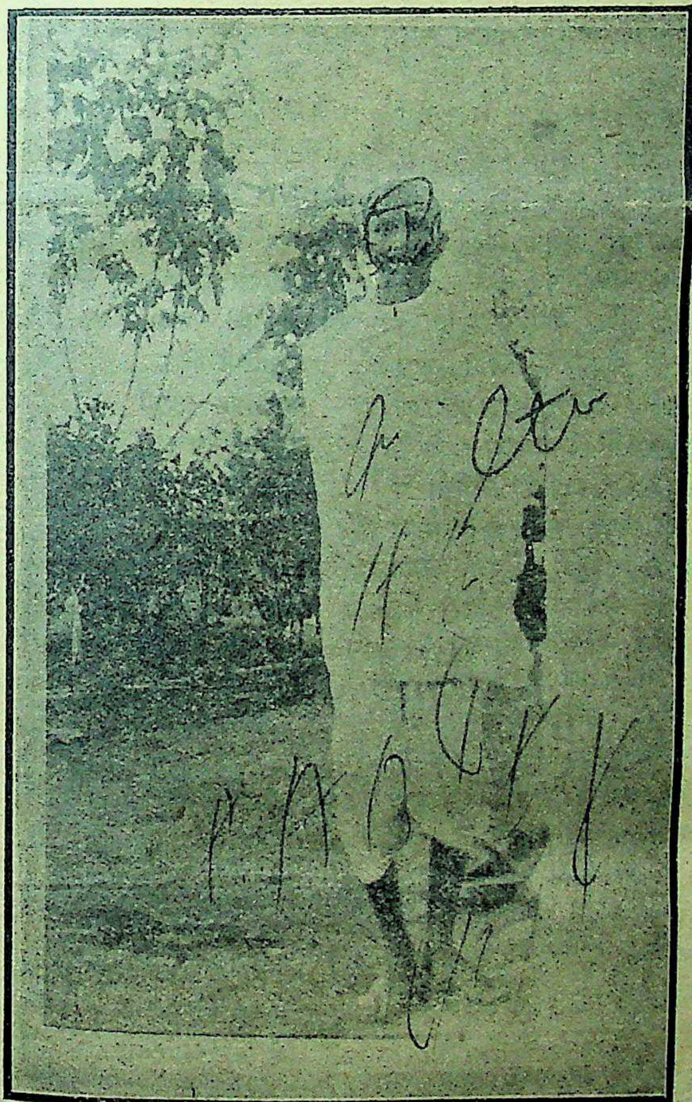
मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द	अहमदाबाद, वैशाख सुदी १४ संवत् १९८४ गुरुवार, ३ मई, १९२८ ई०	मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय, सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

वज्राघात

आश्रम पर, पूज्य गांधीजी पर, और सभी खादी-प्रेमियों पर जो वज्राघात पिछले सप्ताह हुआ, उसे पाठक जानते हैं। पिछले सप्ताह ब्यौरे मालूम न होने से जो सब बातें न दे सके थे सो इस बार देते हैं।

स्व० मगनलाल भाई जब आश्रम में से इस महीने की ... को गये तब कोई स्वप्न में भी नहीं सोचता था कि उनसे यह अन्तिम मिलन है। उस दिन की उनकी बातें केवल मीठे स्मरण के रूप में रह गयीं। कलकत्ते पहुँचने पर उन्हें अपने बडे भाई श्रीयुत छगनलाल गांधी की गंभीर बीमारी का समाचार मिला। वे तुरत भाई के पास पहुँचे। बडे भाई की सेवा की, उन्हें चंगा किया और कलकत्ते में चर्खासंघ की कौन्सिल की बैठक में शामिल हुए। वहां से वे अपनी पुत्री राधाबहिन से मिल कर (जो उन दिनों विहार में स्त्री शिक्षा के संबंध में काम कर रही थी) प्रयाग में एक दूसरे स्थान का खादी काम देख कर अल्मोडे में भाई प्रभुदास गांधी का खादी काम देखने जानेवाले थे। राधाबहिन से मिल कर पटने लौटे। रास्ते में ही ज्वर आ गया। उसी दिन कहीं सर्दी लग गयी। पटने में वे बाबू शंभुशरण वर्मा, ऐडवोकेट (बाबू राजेन्द्रप्रसाद और व्रजकिशोरप्रसाद के संबंधी और मित्र) के यहां रक्खे गये। दूसरे ही दिन डाक्टर ने कहा कि बीमारी गंभीर है। राधाबहिन को बुलाया गया। वीर पिता की वीर पुत्री ने आश्रम में किसी के नाम

'मेरा सर्व्वश्रेष्ठ साथी'—गांधीजी



स्व० मगनलाल खुशालचंद गांधी
जन्म ५-८-१८८३] [मृत्यु २३-४-१९२८

घबरानेवाला तार न भेजा। किसीको नहीं बुलाया और वहां की उत्तम सेवा का ही उल्लेख किया। किन्तु श्री व्रजकिशोर बाबू जो स्वयं बीमार थे, मगनलाल भाई की सेवा में लगे थे और वे ही रोज खबर देते थे। वहां प्रेमभरी सेवा में कमी हो क्या होवे? मूल तो विहार और उसमें भी मगनलाल भाई की सेवा करनी थी। उसे तो सब कोई लाभ ही समझते थे। किन्तु किसीका प्रेम, किसीकी सेवा काम न आया। पहला तार आया, "न्यूमोनिया है। अँतडी में भी सूजन है।" दूसरा तार आया, "सन्निपात भी है। नाडी और श्वास ठीक हैं।" तीसरे तार में लिखा था, "सन्निपात नहीं है, पर हिचकी आने लगी है।" चौथा तार आया, "हिचकी की तकलीफ है, बाकी बुखार उतर रहा है।" सभी भयंकर चिह्न होने पर भी हमने अखीरी तार से धोखा खाया। आशा के पुल बाँधने शुरू किये। मगर उसी रात को दो तार आये और हम कलेजा थाम बैठे। २३ वीं के सबेरे तो वज्राघात का तार आ ही पहुँचा।

अंतिम समय का वर्णन उनकी सेवा में हाजिर रहनेवाले श्रीयुत मथुराप्रसादजी अपने पत्र में यों देते हैं :

"श्री मगनलाल भाई की अन्तिम सेवा में योग देने का अवसर मुझे मिला था। अन्तिम दिन संध्या से प्रातःकाल तक जीवन और मृत्यु में संग्राम रहा। प्रातः सूर्योदय के बाद ही रोग और कष्ट का अन्त हुआ और मगनलाल भाई की आत्मा परलोक चली गयी। मुख की आभा बडी ही शान्तिमय हो गयी थी। सब दुःख तकलीफ के चिह्न साफ हो गये। बराबर रामनाम का उच्चारण हो रहा था। अन्तिम समय में "दयामय मङ्गल मन्दिर खोलो" वाला भजन राधा-बहन ने गाया और सभी उपस्थित सेवा करने वालों ने साथ दिया। स्वर्गीय दृश्य और भाव था। इसी भांति उन्हें विदा दिया गया। उसके बाद प्रातः और संध्या समय प्रार्थना और भजन होता है। आज रात को श्री राधाबहिन जायँगी। व्रजकिशोर बाबू भी इधर अपनी बीमारी से बहुत परेशान थे। बिछावन से उठ नहीं सकते थे। पर हम महा बिपत्ति के समय साहस करके चलने फिरने लगे थे। अन्त्येष्टि संस्कार अनुग्रह बाबू ने किया। व्रजकिशोर बाबू करना चाहते थे। उन्होंने हठ किया, पर मित्रों ने ऐसा नहीं होने दिया क्योंकि चिता का भ्रमण भी नहीं कर सकते थे और गङ्गास्नान तो भयानक ही होता। राधाबहिन शान्तिपूर्वक हैं पर बालिका हृदय नहीं मानता, रोती भी रहती हैं।"

अगर यह मृत्यु धन्य नहीं तो और क्या होगी? खादी के अनन्य भक्त की सेवा करने वाले भी सभी खादीभक्त ही थे और सबका प्रेम भी खादी के समान ही शुद्ध था। इस वातावरण में परलोक में जानेवाली आत्मा का राम_न में लीन होना दिव्य नहीं है तो और क्या वस्तु दिव्य होती होगी? मरण को भी ऐसे स्थान पर जाते समय गर्व ही होता होगा न?

गांधीजी का मौनवार था। अकल्पित संयोगों में किसीकी सेवा करने का प्रसंग उपस्थित हो और बोले बिना न चले तभी बोलने का प्रसंग शायद ही कभी आता हो। गांधीजी तुरत ही मगनलालभाई के घर जाकर बालकों को गोद में ले बैठे। सारा आश्रम खबर पाते ही विह्वल हो उठा। किन्तु आज्ञा हुई कि, "सबके एकत्र होने की कोई जरूरत नहीं है। जो काम चलते हैं उन्हें बंद करने की कोई जरूरत नहीं है।" दृढव्रती, कर्मवीर के अवसान का शोक तो काम करके ही मनाना चाहिए न? वणाट शाला, शाला आदि बंद करने का मन बहुतों का हुआ, मगर हिम्मत किसे हो?

मगनलालभाई की धर्मपत्नी श्री संतोक बहिन ने जैसे तैसे किसी तरह अपना शोक दबाया। 'बापू' घर में बैठे हों तो शोक का प्रदर्शन कैसे किया जाय? और 'बापू' (गांधीजी) बराबर यही कहते रहे कि, "मगनलाल होते तो ऐसे प्रसंग में क्या करते?" मगनलालभाई के पुत्र ने तो मुझ जैसे बडों से भी अधिक साहस दिखलाया। सायंकाल में हमेशे के मुताबिक प्रार्थना के समय सभी कोई इकट्ठे हुए। पंडित जी ने धीर गंभीर स्वर में गाया:

'अब हम अमर भये न मरेंगे।'

उज्ज्वल यश से यशस्वी मगनलालभाई के बारे में यह भजन अतिशय उचित था किन्तु उनके बिना हम जो अपंग लगते थे, हमें कौन आश्वासन देवे? कुल का दीपक रूप बडा लडका जब मर जाता है तब दूसरे लडकों को गोद में बैठा कर अपनी छाती वज्र की बना कर, जिस भाँति पिता उन्हें आश्वासन देता है उसी तरह गांधी जी ने प्रार्थना के बाद आश्वासन दिया। चौबीस वर्ष का संबंध क्रूर काल ने तोड दिया। जैसी चोट पहले कभी न लगी थी, वैसी लगी। मगर तौभी छाती कठिन कर के, मानों वियोग-वेदना हलकी करने के लिए ही गांधी जी ने कितने एक उद्गार निकाले। ये उद्गार ऐसे नहीं है जो यहां दिये जा सकें। उनमें ऐसे ऐसे वाक्य थे, "आश्रम के प्राण मगनलाल थे, मैं नहीं।" "इनके तेज से मैं प्रकाशित हुआ।" "तुम्हारे आदर्श मगनलाल थे, मेरे आदर्श भी वही थे। उनके जैसा सरदार अगर मुझे मिला होता तो उन्होंने जितनी मेरी सेवा की थी, उतनी मैं अपने सरदार की नहीं कर सकता। उनका जीवन संपूर्ण था। आश्रम के वे प्राण थे। मैं तो केवल घूमता फिरा और आश्रम के प्रति बेवफा रहा। और उन्होंने आश्रम की सेवा में अपना शरीर गला दिया था।" "मैं मीराबाई के समान जहर का प्याला पी सकता हूँ, मेरे गले में कोई सांपों की माला डाल देवे तो उसे सहन कर सकता हूँ किन्तु यह वियोग उन दोनों से भी अधिक कठिन है। तौभी छाती कठिन कर के, उनका गुणकीर्त्तन करते हुए मैंने अपने हृदय में उनकी मूर्त्ति स्थापित की है।"

ये उद्गार बहुत दिनों तक भूलनेवाले नहीं हैं। उस दिन के गांभीर्य से छोटे छोटे लडके भी गंभीर बने थे। जैसी १२ साल में कभी नहीं देखने में आयी, उस दिन वैसी निःशब्दता विराजमान थी।

आश्वासन के पत्र और तार

उस दिन से आज तक तारों और पत्रों का तांता लगा हुआ है। ये तार बतलावेंगे कि इस प्राणी की कीमत महज आश्रम में ही न थी बल्कि सारे देश में थी। इन सभी तारों और पत्रों के लिए यहीं पर आभार मान लेता हूँ। यह जानकर दुःख कुछ हलका होता है कि आश्रम के दुःख में इतने लोग भागीदार हैं।

(नवजीवन) **महादेव देशाई**

अखिल भारतीय गोरक्षा-मण्डल

चन्दा और दान

पहले स्वीकार किया गया		रु. ६,८५८-४-१
नवजीवन की मारफत		
पुरुषोत्तम जोगी		२५-०-०
मोतीलाल रामजी	कानपुर	५-०-०
रामनाथ खाना	लाहोर	१-०-०
एस. बी. गोडबोले	बंबई	१३-०-०
सेठ गोपालदास्	बनारस	०-४-०
चतुरभाई काशीभाई	भाद्रण	२५-०-०
बटेश्वर प्रसाद सिंह	दरभंगा	५-०-०
मणिलाल लक्ष्मीचन्द पटवा	अहमदाबाद	१०-०-०
एल. पी. आचार्य	भूज	४-१०-०
गिरिवरसहाय	फर्रुखाबाद	१०-०-०
बी. एस. जोषी	यवत	१०-१३-६
नानजी प्रेमजी देवजी	बरोली	५-०-०
ठाकोरदास नानाभाई	बंबई	११-०-०
गोकलदास रुदेचन्द दोशी	मोरबी	४-०-०
एल. के. करांथ	पटुर	१०-०-०
कैलासगिरि माधवगिरि गोसाई	अहमदाबाद	७-०-०
धनजी खीमजी	जामनगर	१६-०-०
बी. एल. गदानवर	यवतमाल	२-०-०
छगनलाल भाइजीभाई	नारायणपुर	५-०-०
एन. भट्टाचार्यजी	कलकत्ता	४-०-०
पोपटलाल चुन्नीलाल शाह	अहमदाबाद	४-०-०

कुल जोड रु. ७,०३५-१५-१

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय ३

धमकी ?

बम्बई से स्वर्गीय बडे भाई की विधवा और दूसरे कुटुम्बियों से मिलने राजकोट तथा पोरबंदर जाना था । इसलिए राजकोट गया । द० अफ्रिका में सत्याग्रह की लडाई के संबन्ध में, मैंने अपनी पोशाक गिरमिटिया मजदूर के समान जहां तक हो सका था, कर डाली थी। विलायत में भी घर में यही पोशाक पहनता था । देश में आ कर मुझे काठियावाड की पोशाक रखनी थी । द० अफ्रिका में मैंने साथ काठियावाडी पोशाक रक्खी थी । इसलिए बंबई में मैं उस पोशाक में उतर सका था यानी कुर्त्ता, अँगरखा और धोती पहन कर तथा उजला फेटा बाँध कर । ये सभी देशी मिल के ही कपडे के बने थे । बंबई से काठियावाड तीसरे ही दर्जे में जाना था । उसमें फेटा और अँगरखा मुझे जंजाल से लगे । इसलिए केवल कुर्त्ता, धोती और आठ दश आने की काश्मीरी टोपी रक्खी । ऐसी पोशाक पहननेवाला तो गरीब आदमी ही गिना जायगा । इस समय वीरमगाम या वढवाण में प्लेग के कारण मुसाफिरों की जांच होती थी । मुझे थोडा ज्वर था । जांच करनेवाले डाक्टर को नब्ज छूते ही, हाथ गर्म लगा । अतएव उसने मुझे राजकोट में डाक्टर से मिलने का हुक्म दिया और नाम लिखा ।

बंबई से शायद किसी ने तार या पत्र भेजा होगा जिससे वढवाण स्टेशन पर, वहां के प्रजा-सेवक के रूप में प्रसंग दरजी मोतीलाल मिले थे । उन्होंने मुझसे वीरमगाम की जकात की जाँच की और उसके बारे में होनेवाली तकलीफों की बात की । मैं बुखार से तकलीफ में था और इस वजह से बातें करने की इच्छा थोडी ही थी । मैंने जरा सा में जवाब दिया ।

"आप लोग जेल जाने को तैयार हैं ?"

बिना विचारे उत्साह में जवाब देनेवाले बहुत से जवानों के जैसा ही मैंने मोतीलाल को माना था । किन्तु उन्होंने बहुत दृढता-पूर्वक जवाब दिया:

"हम जरूर जेल में जायँगे । परन्तु हमारा नेतृत्व आपको करना पडेगा । काठियावाडी के रूप में आपपर पहला हक हमारा है । अभी तो हम आपको नहीं रोक सकते किन्तु लौटते समय आपको जरूर वढवाण में उतरना पडेगा । यहां के जवानों का काम और उत्साह देख कर आप खुश होइएगा । हमें आप अपनी सेना में जब चाहेंगे, भर्त्ती कर सकेंगे ।"

मोतीलाल के ऊपर मेरी आंख गडी । उनके दूसरे साथियों ने उनकी स्तुति करते हुए कहा :

"ये भाई दरजी हैं । अपने धंधे में कुशल हैं । इससे रोज एक घंटा काम करके हर महीने लगभग १५) रु. अपने खर्च के लायक कमा लेते हैं और बाकी का सारा समय सार्वजनिक सेवा में लगाते हैं । और हम सब पढे लिखे लोगों को रास्ता बताते तथा शरमाते हैं ।"

पीछे से भाई मोतीलाल से मेरा खूब परिचय हुआ था और मैंने देखा कि उनकी स्तुति में जरा भी अतिशयोक्ति न थी । सत्याग्रह आश्रम की स्थापना के बाद वे हर महीने कुछ दिन तो वहाँ रह ही जाया करते थे । बालकों को सीना सिखलाते और आश्रम का सिलाई का काम भी कर जाते थे । वीरमगाम की बात तो मुझे रोज ही सुनाया करते थे । मुसाफिरों की तकलीफ उनके लिए असह्य थी । इन मोतीलाल को भर जवानी में बीमारी उठा ले गयी और उनके बिना वढवाण सूना हो गया ।

राजकोट पहुँचने के दूसरे ही दिन सवेरे मैं उस डाक्टर के हुक्म के मुताबिक अस्पताल में हाजिर हुआ । वहां तो मैं अनजान था नहीं । डाक्टर शरमाये और उस परीक्षक डाक्टर पर गुस्सा करने लगे । मुझे गुस्से का कारण नहीं लगा । उसने तो अपने धर्म का ही पालन किया था । वह मुझे पहचानता न था और अगर पहचानता भी हो तौभी उसका धर्म वही हुक्म करने का था । पर मैं तो प्रसिद्ध आदमी था । इस लिए परीक्षक के पास जाने के बदले मेरे स्वास्थ्य की परीक्षा करनेवाले मेरे ही घर आने लगे ।

तीसरे दर्जे के मुसाफिरों की ऐसी बावतों में जांच पडताल आवश्यक है । बडे गिने जानेवाले आदमी भी तीसरे दर्जे में चलें तो उन्हें गरीबों पर लागू पडनेवाले नियमों के वशवर्त्ती होना चाहिए और अफसरों को पक्षपात नहीं करना चाहिए । किन्तु मेरा अनुभव ऐसा है कि अफसर तो तीसरे दर्जे के मुसाफिरों को आदमी गिनने के बदले जानवर जैसे गिनते हैं । तुंकार के सिवाय उनसे बात ही नहीं की जा सकती । तीसरे दर्जे का मुसाफिर उलटा जवाब नहीं दे सकता, दलील नहीं कर सकता । उसे ऐसा बर्त्ताव करना रहा मानों वह अफसरों का नौकर हो । अफसर उसे मार मारे, उसे लूटे, उसकी गाडी छुडावे और उसे टिकट देते समय हैरान करे । यह सब मैंने अपने आप अनुभव किया है । इस वस्तुस्थिति में सुधार तभी होगा जब कई पढे लिखे और धनिक सज्जन गरीब जैसे बनें, और तीसरे दर्जे में घूमें तथा, गरीब मुसाफिर को न मिलनेवाली एक भी सुविधा को न भोगें और असुविधा, अविवेक, अन्याय, बीभत्सता मुँह बंद किये सह न लेवें, बल्कि उनका विरोध करें और दाद करा लेवें ।

काठियावाड में मैं जहां जहां गया । वहां वहां वीरमगाम की जकात की खोज पडताल के संबंध में मुसाफिरों के महान कष्ट की फिरयाद सुनी ।

इस हेतु लॉर्ड विलिंग्डन के दिये निमंत्रण का उपयोग मैंने तुरत ही किया । इस संबंध में जितने अखबार, लेख, कागज वगैरह मिले, पढा । मैंने देखा कि फिरयाद में सचमुच ही बहुत तथ्य है । इसबारे में बंबई की सरकार के साथ प्रत्र-व्यवहार चलाया । सेक्रेटरी से मिला । लॉर्ड विलिंग्डन से भी मिला । उन्होंने अफसोस जाहिर किया, मगर दिल्ली की ढील की फिरयाद की ।

सेक्रेटरी ने कहा, 'अगर हमारे ही हाथों होता तो हमने कब का इसे निकाल फेंका होता । आप बडी सरकार के पास जाइए।"

मैंने बडी सरकार के साथ खतो किताबत की । किन्तु प्राप्ति-स्वीकार के अलावा और कोई जवाब न मिला । जब मुझे लॉर्ड चेम्सफोर्ड से मिलने का अवसर मिला तब यानी दो साल के पत्र-व्यवहार के बाद दाद मिली । लॉर्ड चेम्सफोर्ड से बात करने पर उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया । उन्हें वीरमगाम के बारे में कोई खबर नहीं थी । मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनी और उसी समय टेलीफोन करके वीरमगाम के कागजात मँगाये । अगर मेरी बातों के विरुद्ध अफसरों को भी कुछ कहना न हो तो जकात रद करने का वचन दिया । इस भेंट के कुछ ही दिनों बाद मैंने अखबारों में जकात के रद होने की खबर पढी थी ।

इस जीत को मैंने सत्याग्रह का पायारूप माना क्योंकि वीरमगाम के बारे में बातों के दर्म्यान बंबई सरकार के सेक्रेटरी ने मुझे कहा था :

"इस संबंध में बगसरा में आपने जो भाषण किया था, उसकी नकल मेरे पास है । उसमें सत्याग्रह का जो उल्लेख है वह मुझे नापसंद है । आप क्या इसे धमकी नहीं मानते ? और ऐसी शक्तिमान् सरकार क्या धमकी से डरेगी ?"

मैंने जवाब दिया:

"यह धमकी नहीं है, यह लोकशिक्षण है। लोगों को अपने दुःख दूर करने के सभी वास्तविक उपायों को बतलाना मेरे जैसे आदमियों का धर्म है। जो प्रजा स्वतंत्रता चाहती हो उसके पास अपनी रक्षा का अंतिम इलाज होना चाहिए। सामान्यतः ऐसे इलाज हिंसक होते हैं। सत्याग्रह तो शुद्ध अहिंसक शस्त्र है। उसका उपयोग और उसकी मर्यादा बतलानी मैं अपना धर्म मानता हूँ। इस में मुझे शंका नहीं है कि अँगरेज सरकार शक्तिमान् है। किन्तु मुझे इसमें भी शंका नहीं है कि सत्याग्रह सर्वोपरि शस्त्र है।"

स्याने सेक्रेटरी ने सिर हिलाया और कहा, "हम देखेंगे।"

(नवजीवन) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख सुदी १४ संवत् १९८४

स्वेच्छा-दारिद्य का अर्थ

छगनलाल जोशी सत्याग्रहाश्रम के मन्त्री हैं। वे बंबई युनिवर्सिटी के अर्थशास्त्री के 'स्कॉलर' थे। असहयोग—युग में उस पद को त्याग कर के वे आश्रम में आये और तभीसे आश्रम के कामों में रहे हैं। उनके नाम कोई १५ दिन हुए, गवाही का 'समन' आया। यह समन दे जानेवाले सिपाही ने अत्यन्त लापर्वाही का बर्त्ताव किया। वह पुकारता आया कि 'छगनलाल जोशी कौन है?' मैंने इसे सुना। इस लिए मैंने जरा दूर से ही उँगली का इशारा करके छगनलाल जोशी को दिखलाया। उसने उन्हें 'समन' दिया। छगनलाल जोशी उससे कहते ही रह गये 'जरा ठहरो। मैं समन पढ लूँ।' मगर इसपर वह यह कह कर चलता बना कि, 'लेना हो तो लो।'

जोशी ने मुझे समन पढ सुनाया। मैंने देखा कि मुआमले के बारे में वे कुछ भी नहीं जानते थे। अब सवाल यह हो पडा कि करना क्या चाहिए। जाने के लिए न था उनके पास अपना समय, और न भाडे का अपना रुपया।

समय और रुपये तो आश्रम के पास थे, क्योंकि आश्रमवासी को तो अपना सर्वस्व आश्रम को सौंपे हुए होना चाहिए। आश्रमवासी का प्रत्येक क्षण आश्रम के लिए होगा। आश्रम में मिले द्रव्य का उपयोग दान देनेवाले के बतलाये काम के ही संबंध में हो सकता है। ऊपर बतलाये जैसे गवाही के समनों के जवाब में जाने के लिए मुसाफिरी खर्च के रुपये आश्रम से नहीं लिये जा सकते। इसलिए छगनलाल जोशी की स्थिति उत्कल के रंकों के समान हो पडी। भेद केवल इतना ही भर था कि उत्कल के रंक को अगर कोई कुछ देवे तो वह उसका परिग्रह रक्खेगा। छगनलाल जोशी को कोई कुछ देवे तो उनसे उसका उपयोग भी आश्रम के काम के बाहर करना नहीं पार लगेगा। स्वेच्छा दारिद्र्य की यह विशेषता और अंकुश दोनों है।

तब उत्कल के रंक को अगर ऐसा गवाही का समन मिले तो वह क्या करे? सिपाही तो उसे अर्थ समझा नहीं गया है, अदालत तक जाने का भाडा खर्च भी नहीं दे गया है। इस मुआमले में तो प्रान्तिज लाइन के तलोद स्टेशन पर अदालत थी। अब कागज न समझ सकने से और कोई समझावे भी तो पैसा पास न होने से उत्कल का रंक बैठा ही रहेगा न?

इससे छगनलाल जोशी ने निश्चय किया, "मैं भी बैठ रहूँ और जो होना है, होने दूँ। तभी मेरा स्वेच्छा-दारिद्र्य सार्थक गिना जायगा। तभी गरीबों की रक्षा का मार्ग मिलेगा।"

दो चार दिनों में जोशी के नाम अदालत के अपमान का 'वारंट' निकला। जोशी गये। पकडनेवाले अफसर ने कहा, "मुकद्दमे की मुकर्रर तारीख को आने का वचन दो तो वारंट हम काम में न लावें।"

जोशी ने कहा, "मुझे भाडेभत्ते का पैसा दीजिए तो मैं हाजिर रहने को तैयार हूँ।"

यह करने का उस अफसर को अधिकार न था। इसलिए उसने जोशी को अहमदाबाद के पहले वर्ग के मैजिस्ट्रेट के सामने ला खडा किया। मैजिस्ट्रेट साहेब को पूरी जांच पडताल करने के लिए समय ही कहां से हो? उस 'समन' के जवाब में हाजिर न होने की कैफियत देने का प्रयत्न वे कर ही रहे थे कि इतने में ही अँगरेजी सल्तनत का वेतन खानेवाले और उसके वातावरण में घडे हुए मैजिस्ट्रेट बोल उठे:

"अगर आपको आन्दोलन करना हो तो बाहर जाकर कीजिए। आप अगर हाजिर रहने का जामिन देवें तो मैं छोड दूँगा, नहीं तो जाइए जेल में रहिए।"

भाडेभत्ते के बिना अगर जोशी जामिन देनेवाले होते तो पहले ही क्यों नहीं जाते?

गर्मी सख्त थी क्यों कि यह बात पिछले मंगलवार, ता. [illegible] अप्रिल को ही हुई। जोशी ने अब और अधिक पैदल चलने से इनकार किया। इसलिए उन्हें सवारी में ले जाना पडा। आखिर पहरे के नीचे इस कैदी को तलोद ले गये। जोशी को देख कर मैजिस्ट्रेट को अपनी भूल का कुछ भान हुआ। उनको भाडाभत्ता देकर मुकद्दमे के दिन हाजिर रहने की कबूलियत लेकर छोड दिया।

कहते हैं कि इस सादे काम की जरा सी हिम्मत का असर, तलोद में जिन लोगों ने जाना, उनपर अच्छा पडा और वे खुश हुए।

जो स्वेच्छा से, अपनी मर्जी से गरीब बने हैं, वे अगर ऐसा बर्त्ताव करें तो गरीबों पर होनेवाले जुल्मों का अंत बहुत शीघ्र आवे।

मैजिस्ट्रेट की लापर्वाई और अविवेक तो ध्यान खींचते हैं। 'समन' देख कर जान पडा कि बिना पूछताछ किये ही 'समन' निकाला गया था और निकालने बाद भाडेभत्ते की तजवीज नहीं रक्खी थी। मुझे कहा गया है कि गवाह को भाडाभत्ता देने का रिवाज यहां नहीं है। अगर बात ऐसी हो तो गरीबों पर कितना बडा भारी जुल्म होता होगा? पीछे मैजिस्ट्रेट ने जब वारंट निकाला तब तो गरीबों के प्रति अपनी ऐसी लापर्वाई ही सिद्ध की जिसे गुनाह भी कह सकते हैं। उनके पास इसका कोई सुबूत नहीं था कि समन मिला या नहीं। जिसे समन भेजें, उसकी सही की जरूरत तो मानी ही जाती होगी? इसकी तो हमें महज कल्पना भर ही आ सकती है कि सरकार के इस न्याय-विभाग में कितना अधिक अन्याय छिपा होगा!

अगर छगनलाल उत्कल के गूंगे गरीब प्राणी होते तो यह कौन कह सकता है कि तलोद में क्या हुआ होता? उनपर गालियों की कितनी वर्षा हुई होती, मैजिस्ट्रेट ने कैसी लाल आंखें की होतीं। जिसे फिरयाद करने के अनेक कारण थे, वह रंक बेचारा खुद ही गुनहगार ठहराया जाता।

गरीबों के प्रति ऐसे विचार रहित, उद्धत बर्त्ताव के लिए जो कि सरकार जवाबदेह है, मगर इतना कहे बिना नहीं चल सकता कि जो देशी अफसर ऐसा बर्त्ताव करते हैं उनके वैसा करने का कोई कारण नहीं है। जान पडता है कि ब्रिटिश राज्य के पहले भी अफसरों में ऐसा बर्त्ताव था। वे गरीबों के प्रति सभ्य होना क्यों न सीखें? पर वे अगर न सीखें तो स्वेच्छा से गरीब बने हुए सेवक उन्हें विवेकपूर्वक सत्याग्रह करके पाठ सिखलावें।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

धन्य मगनलाल भाई

आभार-प्रदर्शन

निकट से और दूर दूर से मित्रों ने अपने मीठे संदेशों से मेरे लिए सबसे कडी परीक्षा के अवसर पर मुझे अत्यन्त अनुगृहीत किया ... मेरी यह मूर्खता थी, मगर मैंने कभी यह सोचा ही नहीं ... कि मगनलाल मुझसे पहले मरेंगे। व्यक्तियों, संस्थाओं और ... सभाओं के तारों और पत्रों से मुझे बहुत आश्वासन मिला है। ... उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि उन्होंने मुझपर जिस प्रेम की वर्षा ... है उसके तथा मगनलाल ने मेरे साथ जिन आदर्शों को माना ... जिन के लिए शान्ति-पूर्वक अपने आपको उत्सर्ग कर दिया, मैं ... योग्य बनने की कोशिश करूंगा।

मो० क० गांधी

(... इ०)

श्री मगनलाल भाई के स्वर्गवास पर अनेकों तार आश्वासन के ... है और अभी आ ही रहे हैं। पत्रों का भी तांता लगा हुआ ... तार भेजनेवालों में कुछ उल्लेखनीय व्यक्तियों के नाम ये हैं:— ... टागोर, मि० ऐण्ड्रयूज, डा. अनुसारी, मौ० शौकतअली, आचार्य ..., आचार्य रामदेवजी, श्री बाबू भगवान् दास (काशी), ... रिचार्ड ग्रेग, श्री राजगोपालाचार्य, श्री जमनालाल बजाज, ... कोण्डावेङ्कटप्पया, श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त, श्री वल्लभभाई, ... मणिलाल कोठारी, श्री सुभाषवसु, श्री रेवाशंकर झवेरी, श्री ... लाल सेठ और श्री नारायणदास आनंदजी, श्रीयुत् श्री प्रकाश, ... जौर्ज जोसेफ, श्री पेरिनब्हिन कैप्टेन, श्री युगल किशोर (वृंदावन), जामिया मिल्लिया के प्रिन्सिपल, जामिया मिल्लिया का ... विद्यार्थी मंडल, बरार कांग्रेस कमिटी, श्री गणेशदत्तसिंह (विहार), श्री ... लाल शंकरभाई, श्री सोनीराम पोद्दार, रंगून; श्री नानाभाई ... राम, श्री शांतिकुमार नरोत्तमदास, श्री निर्मलकुमार नवलखा (कलकत्ता), श्री रेवाशंकर भाईचंद, श्री कल्याणदास धर्मदास, श्री ... प्रसाद देसाई, श्री नथुभाई पारेख, श्री विठ्ठलदास और प्रेमकुंवर आदि।

पत्रों में से कुछ के चुने हुए अंश यहां दिये जाते हैं:

आश्रम का स्तंभ गिरा

मगनलाल के अकाल और खेदजनक अवसान का तार पढ ... मैं तो स्तंभित हो गया। बारडोली आश्रम शोक-सागर में डूब गया ...। सत्याग्रहाश्रम का स्तंभ गिरा। 'बापू' की गैरहाजिरी में एक ही आदमी ने आश्रम को सँभाला और आश्रम की बाह्य रचना तो ... कुछ उन्हींकी आभारी थी। आश्रम और सारे गुजरात की ... बहुत बडी हानि हुई है।

उन्हें खादी का प्राण कहें तौभी चलेगा। उनका अभाव पूरा नहीं किया जा सकता।

यह अभाव मुझे तो बहुत ही खलता है। इस बार जब वे ... लगे, तब उन्होंने मेरी इजाजत माँगी थी। मैं छुट्टी देता नहीं था क्योंकि मुझे उनसे बहुत अधिक काम लेना था। उनका ... दूसरे से हो नहीं सकता था। जब उन्होंने तुरत ही लौट ... की शर्त पर इजाजत मांगी, तब मैं लाचार हो गया। अब ... मेरे मन में यह नहीं आता है कि वे चले गये। मैं जब से आश्रम में आने लगा, तभीसे इनपर मेरी नजर गडी और मुझे ... पडने लगा कि मानों हम दोनों सगे और समवयस्क भाई हों। ..., असमय, जब कभी मैं आता, और अगर किसी व्यक्ति को ... काम में लगा पाता तो वह व्यक्ति मगनलालभाई थे। मैंने ... बेकार कभी देखा ही नहीं है। उनका शरीर खूब कसा हुआ ... वज्र के समान था। किन्तु पिछ दो तीन वर्षों से इनके शरीर पर बेहद बोझा उठाने तथा कुछ मानसिक चिन्ता के चिह्न मालूम पडते थे।

आश्रम को तो उन्हींने खडा किया था। आपका सारा बोझ वे आप उठा कर अथाक परिश्रम करते थे। और आप जब दो साल जेल में रहे, तब तो सारा बोझ उन्हीं के माथे पडा था। आप का मान तो सभी कोई रखते हैं। कोई बात पसंद पडे या न पडे मगर कबूल सभी कोई करते हैं। परन्तु आप की गैरहाजिरी में आश्रम का भार उठानेवाले को कांटे की शय्या पर सोना था और यह तो मगनलाल के ही जैसे मजबूत मन के और उग्र तपश्चर्या करनेवाले का काम था। दूसरे की हिम्मत न थी। दूर ही दूर रह कर इनकी इस स्थिति में, मन का भार शायद कुछ हलका होवे, इस आशा से मैं उनके पास जा कर मीठी मीठी बातें करता और उनका मन कुछ हलका होता था।

मैं मानता हूँ कि आश्रम में किसीने इनके बराबर तप नहीं किया था और आपके सिद्धान्तों का अमल सर्वांश में करने का प्रयत्न तो केवल उन्हींने किया था। खादी का बीज बोया आपने किन्तु इसके उगने के साथ ही उसे पाल पोस कर सँभाल कर बढानेवाले तो वे ही थे।

गुजरात के सार्वजनिक हित के काम में उन्होंने मुझे अनेकों बार अमूल्य सहायता दी है। पिछली बाढ के समय तो उनका काम अद्भुत था। विठ्ठलपुर का नया गाम बनाने का काम तो वे अधूरा ही छोड कर चले गये।

मुझे लगता है कि आपके सभी साथी अपूर्ण हैं और इस लिए हिन्दुस्तान में आज आपके सिद्धान्तों का अमल नहीं हो रहा है। इस लिए ईश्वर की इच्छा ही ऐसी होगी कि आप सभी अपूर्ण साथियों के साथ फिर से जन्म लेवें और देश का उद्धार करें और अगर उसकी भूमिका तैयार करने के लिए *मगनलाल भाई* को पहले से भेजा हो तो इसका हमें क्या पता? जो परमात्मा को रुचे वही सच्चा। वह जो करता होगा, भले के लिए ही करता होगा।

आपका तो इस उम्र में आधार चला गया। किन्तु आप तो हम सबको दिलासा देनेवाले ठहरे इस लिए आपको हम क्या लिखें? मैं अभी तो यहां का काम छोड कर नहीं आ सकता। मगर इस प्रसंग पर एक बार मिल जाने की बडी इच्छा होती है।

(पत्र में से) **वल्लभभाई पटेल**

'बापू' का दाहिना हाथ

सतीश बाबू के साथ मैं बारकपुर में उतर कर सोडेपुर की गाडी में चढने जाता था। वहीं एक बंगाली अखबार लिया, और जो बात स्वप्न में भी न सोची थी, वही पढने को मिली। जब तक एक एक कर के मैंने अपनी आंखों से बँगला के अक्षर पढ न लिये मुझे विश्वास ही न हुआ। यों जीवन के बीच हम मृत्यु में पडे हुए हैं। बापू पर यह कैसा वज्राघात है।

खादी मंडल में एक आदमी भी ऐसा न था जो मगनलाल भाई की बराबरी कर सके। इनके लिए मेरा प्रेम तो दिनों दिन बढता ही जा रहा था। वे चारित्र में तीर के समान सीधे, बालक के जैसे सरल और इतने समझदार तथा मृदुता और नम्रता से भरे हुए थे कि मेरे जैसे आदमी की मजाक को न रोक सकने की वृत्ति को भी सह लेते थे।

हम सबके लिए यह भयंकर हानि है।

बापू को आश्रम का दादा भले ही कहें, मगर मगनलाल भाई तो ज्येष्ठ पुत्र थे और माता के लिए ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु से बढ कर शोक की बात और क्या होगी?

मगनलाल भाई ही बापू के दाहिने हाथ थे और उनकी जगह लेनेवाला अभी कोई है ही नहीं। किसमें है उनकी श्रद्धा, उनका नियम-पालन, उनकी अचल कर्त्तव्य-निष्ठा, उनके चारित्र की सरलता तथा उनकी समता और उनकी स्वच्छता?

(पत्र द्वारा) चक्रवर्त्ती राजगोपालाचार्य

भयानक हानि

मगनलालभाई का मृत्यु समाचार देनेवाला तार आज तीसरे पहर आया। छगनलाल से मैंने उनकी बीमारी की बात सुनी थी किन्तु मैंने सोचा कि अपने सबल शरीर की बदौलत वे इस बीमारी को झेल ले जायँगे।

मुझे अतिशय शोक हुआ है। इस देश में आने पर वे ही मेरे पहले भारतीय मित्र थे और उनसे अधिक अच्छे मित्र की चाहना ही कोई क्या कर सकता था। मैं उन्हें बहुत ही प्यार करता था। उनमें क्या ही मृदुलता, चातुर्य, दयालुता, आनन्द, नम्रता, दृढता, अध्यवसाय, उत्साह, लगन, सावधानी, बौद्धिक जिज्ञासा, स्पष्टवादिता, समझदारी, हृदय की विशालता, सहानुभूति तथा श्रद्धा थी। वे बहुत ही अच्छे सबल पुरुष थे। हम सब किसीको उनका अभाव खलेगा और खादी आन्दोलन के लिए तो यह भयंकर हानि है।

(पत्र के द्वारा) गोविन्द (रिचार्ड बी ग्रेग)

बारडोली सत्याग्रह

अंधेर नगरी

अब तो बारडोली सचमुच में "अंधेर नगरी" बन रही है। वहां के सरकारी अफसरों ने तो नियम और शील को धो कर पी लिया है। उदाहरण लीजिएगा? जरा सोचिए तो सही कि डिपुटी कलक्टर के पद का अफसर शराब बेंचनेवालों पर आबकारी अफसरों के जरिए दबाव डलवाये और शराब की दूकानों पर धावा कर के शराब की पीपे कुर्क कर लेवे। मगर यह कथा यहीं समाप्त नहीं होती है। अब शराब के पीपे को हटावे कौन और कैसे? इसलिए उनपर मुहर लगा दिया और दूकान बन्द कर के, ताला बंद कर दिया गया। उस बहादुर पारसी दूकानदार ने डिपुटी कलक्टर साहेब को लंबी चिट्ठी लिख कर उनके बर्त्ताव का विरोध किया और दूकान बन्द करने से जो घटी हुई उन्हें उसका जिम्मेवार ठहरा कर शराब के पीपों के लिए पांच रुपये रोजाना किराये का दावा किया। उसने यह भी लिखा था कि कलक्टर का यह अभियोग सरासर झूठा है कि जो लोग लगान देना चाहते हैं, उनपर दबाव डाला जा रहा है, बल्कि सत्य तो यह है कि उलटे हमीं लोगों पर सरकार की ओर से अनुचित दबाव डाला जा रहा है। जान पडता है कि इन बातों की भनक ऊपरी अफसरों के कानों तक भी पहुँची जिन्हें यह अंधेर नापसंद पडा। उन्होंने तुरत ही दूकान खोलने का हुक्म दिया। डिपुटी कलक्टर के आदमी सिर पर पांव ले कर बडी रात को दौडे गये, दूकान खोली और पत्र लिखने के लिए पारसी दूकानदार को भला बुरा सुनाने लगे। उन्हें गुस्सा इस बात का था कि उसने बडे साहेब का विरोध क्यों किया। फिर आगे से उसका नाम काली बही में चढा देने की धमकी दी।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि सरकार की दृष्टि में शराब भी वैसी ही नकद वस्तु है जैसे कि नोट। उन्हें ३००) के लगान के लिए २,०००) रुपये की शराब जब्त कर लेने का कोई हक नहीं था। अब भी पीपे तो वहीं दूकान में ही पडे हुए हैं। गोकि अब ताला और पहरेदार हटा दिये गये हैं, मगर दूकानदार, दूकान से कोई वास्ता ही नहीं रखना चाहता।

जहां तक सत्याग्रह आन्दोलन से संबंध है, पारसी कलालों की स्थिति बडी बुरी है। उन्हें रोज ही सरकार से लेन देन करना पडता है और सरकार को दूसरे मद के रुपये भी लगान के खाते लिख लेने में कोई हिचक नहीं होती। कई उदाहरण ऐसे हैं जबकि शराब के लिए जो रुपया दिया गया वह लगान के मद में जमाकर लिया गया। उस दिन एक पारसी कलाल ७००) रु० जमा कराने गया था। मगर उसे सरकारी अफसर लगान के मद में ले लेना चाहते थे। बेचार ने उसपर कहा कि इसके खेत ही नहीं है। मगर सरकारी अफसर कब के चूकने वाले थे? उन्होंने इस पर धमकाया कि तेरा नहीं तो तेरे रिश्तेदारों का लगान चुकाया जायगा। बेचारा अपना सा मुँह लेकर चुपचाप रुपये लौटा लाया।

अंधेर के दूसरे उदाहरण भी हैं। मामलतदार के साथ एक अफसर सबेरे एक गांव में पहुँचा। फिर किसीने न पूछा न ताछा और भैंसों की एक गोल को जब्त करार कर दिया। उन्होंने यह जानने की भी कोशिश न की कि वे भैंसें किसी किसान की हैं या किस किसान की। अगर यह दिन दहाडे डाका या लूट नहीं तो और क्या है? अब तो गांव गांव में पटेल मवेशियों की सूची तैयार कर रहे हैं। मगर यह कहना कठिन है कि कौन और किस तरह उनके मालिकों को पहचनवायगा।

अदल बदल

इधर तीन कुर्की अफसर स्थानीय अफसरों की सहायता के लिए खास तौर पर भेजे गये हैं। मामलतदार दूर बदल कर भेज दिया गया है। जान पडता है कि उसका काम पसंद नहीं पडा था। इस बीच एक मुसलमान मामलतदार ला बैठाया गया है जिसमें मुसलमान रैयतों पर दबाव डाला जा सके और अगर संभव हो तो भर सक हिन्दू-मुसलमानों में फूट डाल दिया जाय। खबर है कि बहुत से तलाती भी दूसरे ताल्लुकों में बदल दिये जायँगे और बाहर से तलाती लाये जायँगे।

कलक्टर एक जगह गये थे। वहांके पटेलों ने खरी खरी सच्ची बातें सुना दी। तबसे ताल्लुके को छोटे अफसरों के हाथ में छोड कर लौट गये।

फल क्या हुआ?

मगर अभी तो उनके इस कूदफांद का कोई यथेष्ट लाभ उन्हें नहीं मिला है। बैंठने की बडी बडी चौकियाँ और अनाज के बोरे कुर्क किये जाते हैं, मगर कोई ढोनेवाला न मिलने से वहीं के वहीं छोड दिये जाते हैं। गाडियां जब्त की जाती हैं। उन्हें सिपाही हाँकते हैं। जो कुछ थोडा सा ताल्लुका के प्रधान कार्यालय में पहुँच जाता है, उसका क्या होगा इस विषय में अभी किसी को कुछ पता ही नहीं है। कुर्की की नोटिसें तो अब धडाधड निकल रही हैं। अब केवल बनियों को ही चुन कर नोटिस देने की चाल बन्द कर दी गयी है क्योंकि वे अचल रह गये। उनपर सरकारी बाणों का कोई असर नहीं पडा। मुसलमानों ने भी बडी ही दृढता दिखलायी है। उनमें मुख्य नाम बारडोली के इमाम पटेल का लिया जा सकता है। उनका हजारों की कीमत का माल कुर्क हो जायगा, मगर वे दृढ हैं। ताल्लुके में वे बहुत बडी नैतिक शक्ति हैं। अब पाटीदारों की बारी आयी है। इसका स्वागत उन्होंने गर्व के साथ करना शुरू किया है।

सब जगह विशाल सभाएँ होती हैं। स्त्रियां खादी पहन कर आती हैं और श्री. वल्लभभाई के आगे सन् १९२१ के समान सूत की मालाएँ रखती हैं और सत्याग्रह के गीत गाती हैं।

जेल

हमें इसकी खुशी है कि पहला वार श्रीयुत रविशंकर व्यास पर किया गया है। उनपर मैजिस्ट्रेट के सामने मुकदमा चलाया जायगा।

...अधिक पवित्र बलिदान की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता ...। जान पडता है कि दूसरे की जग० में बिना हुक्म जाने का ... करने तथा सरकारी अफसरों के उनका अपना काम करने में ... डालने के लिए उनपर मुआमला चलाया जायगा। अब इस ... का ब्योरा सुनिए। जान पडता है कि डिपुटी कलक्टर साहेब ... सामान ढोने के लिए तीन बेल-गाडियाँ लायी गयी थीं। गाडियों ... मालिक ने अपनी भूल समझी और वह श्रीयुत रविशंकर साथ ... आदमियों को लौटा लेने थाने में गया। एक गाडीवान ने ... मालिक को देखते ही कहा कि "हम नहीं जाना चाहते मगर ... है।" श्रीयुत रविशंकर ने मामलतदार को समझाया कि ... लोग जाने का राजी नहीं हैं तो इनपर जोर नहीं डालना ... उन्हें थाने से बाहर निकल जाने का हुक्म मिला। वे बाहर ...। उनके पीछे वह गाडीवान भी गाडी छोड कर चला ...। आखिरश और दोनों गाडीवान भी गाडियों को सिपाहियों ... के लिए छोड कर चले आये।

अब यह जानने की इच्छा होती है कि श्रीयुत रविशंकर का ... 'ट्रेसपास' या दूसरे की जमीन में बलात्कार-प्रवेश का ... कैसे कहा जा सकता है। हां बाधा तो जरूर वहां है और ... पहले से यानी शुरू से ही है। सत्याग्रहियों को दबाने में ... सरकारी अफसरों को जो सारी असफलता मिली है, वे जहां जहां ... धनमाल जब्त न कर सके हैं और जब्त किये माल का ... प्रबंध न कर सके हैं, उन सबके लिए सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं ... दोषी ठहराया जा सकता है और बारडोली के सैकडों ... कार्यकर्त्ताओं पर मुकद्दमा चलाया जा सकता है। मगर श्रीयुत रविशंकर ... पहले सम्मान के लिए अलग चुन लिया गया है और वे भले ही ... के योग्य हैं भी। क्योंकि श्रीयुत वल्लभभाई के सिवाय हमारे यहां ... उनसे बढ कर दूसरा कोई शान्त बाधक नहीं है।

शान्ति जरूर रक्खो

श्रीयुत वल्लभभाई ने सर्व्वत्र शान्ति पर बहुत अधिक जोर दिया ... और दे रहे हैं। एक तरह से हमें अब खुशी है कि सी. ... डी. रिपोर्टरों को सरकार ने उनके सभी भाषणों की रिपोर्ट ... के लिए भेजना शुरू कर दिया है, क्यों कि अगर सरकार ने ... तक नहीं समझा है तो वह अब समझेगी कि सरकारी अफसरों की ... कहीं अधिक शान्ति श्री. वल्लभभाई ने ही रक्खी है। कलक्टर ... इलजाम के जवाब में कि लगान देने की इच्छा करनेवाले सामाजिक ... बहिष्कार, घर में आग लगा देने इत्यादि के भय से लगान नहीं देते ... श्री. वल्लभभाई ने कहा, "बारडोली के लोगों के नियम में ... धमकी या जोरो जुल्म को जगह नहीं है। और विस्तृत तथा ... और विवेक पूर्ण सामाजिक बहिष्कार के बल पर बना ... सामाजिक संगठन पशुबल पर आधार रखनेवाले सरकारी अफसरों के ... से कहीं अधिक अच्छा होगा।" एक दूसरे भाषण में उन्होंने ... था, "एक क्षण के लिए भी तुम यह मत सोचो कि इस ... आन्दोलन में हिंसा से जरा भी लाभ होगा। ब्रिटिश सरकार ... सेना को हराने की ताकत किसीमें नहीं है। अगर सरकार ... तो इस सारे ताल्लुके को गोलों से उडा दे सकती है। चाहे ... कितना ही उत्तेजित क्यों न किया जाय, मगर तुम अपनी ... उंगली भी मत उठाना। मैं आत्म-रक्षा के अधिकार को अत्यन्त ... अधिकार समझता हूँ। मगर तौभी कहता हूँ कि अगर ... कोई मारे तौभी तुम उलट कर मत मारो। क्योंकि जरा ... का बहाना मिलते ही सरकार उसका दुरुपयोग अवश्य ही ... और हमारा किया सारा काम चौपट हो जायगा।"

एक दूसरे भाषण में उन्होंने कहा:

"कलक्टर कहते हैं कि लोग लगान चुकाना चाहते हैं किन्तु उन्हें घर में आग लगा दिये जाने, जोरोजुल्म करने की धमकी दी जाती है, जिससे वे नहीं चुका पाते हैं। अगर ऐसे भी कोई हैं जो चुकाना चाहते हैं, मगर डर से नहीं चुकाते, तो उनसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरे पास आ जाओ। मामलतदार के पास मैं तुम्हें आप ले जाऊंगा और तुम्हें जैसी रक्षा की जरूरत होगी, दूँगा। मगर मुझे दृढ भरोसा है कि एक भी आदमी ऐसा नहीं है कि जो लगान देना चाहता है मगर डर से नहीं देता। डरा धमका कर काम चलाने का ऐसा कोई आन्दोलन ऐसी सरकार के विरुद्ध जिसके पास लोगों को डराने, त्रस्त करने के अनगिनत साधन हैं, अधिक दिनों तक टिक नहीं सकता। मुझे निश्चय है कि अपने शान्त बरताव के जरिए तुम इस ताल्लुके में पुलिस का रहना बेजरूरी बना दोगे।"

एक और दूसरे भाषण में उन्होंने फिर कहा था:

"मैं नम्रता-पूर्वक कहता हूँ कि इस ताल्लुके की शान्ति के लिए मैं अपने को चौकीदार समझता हूँ, मैं उस महात्मा के सामने अपने को जवाब देह समझता हूँ, जो साबरमती की अपनी शान्त कुटिया में बैठा, बहुत ध्यान पूर्वक इस संग्राम की प्रगति को देख रहा है। मेरे लिए उसके नाम, और उसके काम से अधिक मूल्यवान् दूसरा कुछ भी नहीं है। मैं उसके नाम पर, अपनी एक भी भूल से धब्बा आने देना नहीं चाहता।"

एक और ही भाषण में उन्होंने लोगों को सरकारी अफसरों के साथ शील का बरताव करने तथा उनके साथ व्यक्तिगत झगडा न मानने को कहा था।

ताजा खबरें

पत्र छपते समय बारडोली की जो सबसे ताजा खबरें आयी है, उनसे तो यही जान पडता है कि अंधेर नगरी बनने में जो थोडी कोर कसर रह गयी थी, वह भी अब पूरी हो गयी। उस दिन ५८ मवेशी पकड कर थाने में हांक दिये गये और नोटिस यह निकली कि "सिकेर गांव के रामगोविन्द और दूसरों के ५८ मवेशी लगान-बकाया में कुर्क कर लिये गये हैं।" मानों यह भी कुछ शामिलात की बात है! और जब ताल्लुके में कोई इन मवेशियों को देखनेवाला न मिला तो लाचार बाहर से पठान बुलाने पडे और उन्होंने उनकी ऐसी अच्छी सेवा की कि एक भैंस तो मर चुकी है और एक और भी अब मरने मरने को है। इस अंधेर के बाद अब हत्या का पाप भी सरकार ने अपने सिर लिया है।

१९ गाडीवानों को इसलिए नोटिस दी गयी है कि उन्होंने सरकारी नौकरों के काम के लिए अपनी गाडी भाडे पर देने से इनकार किया था।

इनके अलावा दूसरे मद के रुपये लगान के मद में भी गबन किये जा रहे हैं। बारडोली में एक अफीम-फरोश ने अफीम के दाम के हिसाब में १०५) रु. जमा कराये मगर उसके लगान के हिसाब मे रु. ८७-१५-७ जमा कर लिये गये और बाकी उसे लौटा दिया गया। दूसरे ताडीखानावाले के ताडी के दाम के १७५) रु. में से ४२) रु. लगान में लिख लिये गये।

इन छोटी छोटी बातों से जान पडता है कि बारडोली सत्याग्रह में बहुत अधिक स्वार्थ-त्याग करना पडेगा, नशे के दूकानदारों को भी शायद अपनी दूकानें बंद करनी पडेंगी, लाखों रुपयों की जमीन कुर्क होगी, और शायद सारे के सारे ताल्लुके को अपना घर-द्वार भी छोड देना पडे। मगर उसी दिन न तो ताल्लुके की ही साख की कोई सीमा रहेगी और न सारी ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों के किये गुनाहों की ही।

(यं० इं०) **महादेव देशाई**

नियम-पालन की आवश्यकता

खादी-सेवा-संघ के कुछ कार्यकर्त्ता लिखते हैं:

"गत मास की २० तारीख के प्रधान कार्यालय के सर्कुलर के जरिए प्रधान कार्यालय के हम कार्यकर्त्ताओं को सबेरे ६.३० में आने, १० बजे जाने तथा फिर तीसरे पहर २ बजे आकर ६.३० में जाने का हुक्म निकला था। हममें से कुछ लोगों के लिए जो आश्रम से २ मील दूर रहते हैं, आज कल की विकट गर्मी में २ बजे दिन को आना बहुत मुश्किल होता है। चूँके इससे भोजन में अनियमतता के कारण हमारे स्वास्थ्य पर धक्का पहुँचता था, हमने मंत्री से समय बदलने को कहा जिसे उन्होंने साफ इनकार कर दिया। खैर, चाहे जिस तरह हो हम नियमित समय पर आने का प्रयत्न करते रहे, मगर कभी कभी कुछ मिनिटों की देर हो जाती थी, जिसपर हम गैरहाजिर लिख दिये जाते थे। अब, जब कि हमारे नाम के आगे गैरहाजिर लिखा जाने लगा, हमने उनसे फिर प्रार्थना की कि हमारी सुबिधा के अनुसार आप कृपाकर समय बदल दीजिए और पीछे जितनी गैरहाजिरी लिखी है, सब काट डालिए। हमारी सूचना का कोई जवाब ही नहीं आया। इस लिए हमने दफ्तर जाना बंद कर दिया। गोकि वे आप आश्रम से २ फर्लाङ्ग (१/४ मील) की दूरी पर रहते हैं और उनके पास दफ्तर की एक बाइसिकल भी है, तौभी वे नियमित समय पर नहीं आ पाते हैं और हमसे अधिकार के बल पर कहा जाता है कि तुम्हें समय पर आना ही होगा। आप कहते हैं कि 'खादी तो दरिद्रनारायण की पवित्र सेवा है।' अगर इसमें इतनी अधिक पवित्रता है तो एक ही क्षेत्र में काम करनेवालों में इतनी छुटाई बडाई क्यों होवे?"

यहाँ पर स्पष्ट ही आदर्शों के बारे में भ्रान्ति है। ऊँचाई, नीचाई के विकृत खयालों ने प्रायः सभी राष्ट्रीय संस्थाओं में अनियम ला खडा किया है। बहुत आदमी सोचते हैं कि पद को हटाने के मानी हैं अंधेर और स्वच्छन्दता की छूट देनी। जब कि पद को हटाने का अर्थ पक्का नियम-पालन होना चाहिए क्योंकि यह तो हम जिस संस्था में हों उसके नियमों के अधीन स्वेच्छा-पूर्वक होना होगा। क्योंकि आदमी स्वयं ही एक आश्चर्य-जनक संगठनहै और जो बात उसपर लागू पडती है, वही बात समाज पर भी या उन राजनीतिक संस्थाओं पर भी लागू होती है, जिनका वह सभ्य होता है। जिस भाँति शरीर के मित्र २ अंग एक दूसरे से बडे या छोटे, ऊँचे या नीचे नहीं होते हैं, मगर तौभी स्वस्थ शरीर में सभी अंग दिमाग की आज्ञा स्वेच्छा-पूर्वक मानते हैं, उसी प्रकार किसी संस्था के कार्यकर्त्ताओं में कोई किसीसे बडा या छोटा नहीं होता, मगर तौभी सब को स्वेच्छा-पूर्वक संस्था के दिमाग, उसके संचालक के अधीन होना पडता है। जिस संस्था का कोई संचालक न हो, जिसके मित्र २ कार्यकर्त्ता संचालक से सहयोग न करें, उस संस्था को मानों लकवा मारे हुए है और वह म्रियमाण दशा में है।

ऊपर के पत्र पर जिन लोगों ने हस्ताक्षर किये हैं, वे यह नहीं समझते कि निश्चित समय पर दफ्तर में आने के प्राथमिक नियम का ही वे पालन न करें तो उनका खादी कार्यालय, जिसमें वे भी कार्यकर्त्ता हैं, अपना काम यानी दरिद्रनारायण की सेवा पूरी पूरी नहीं कर सकता। वे समझ जायँ कि खादी-कार्यालय का ऐच्छिक नियम पालन सरकारी दफ्तरों के बलात्कार नियम-पालन से कहीं अधिक सख्त होना चाहिए। अगर खादी-कार्यालय का प्रधान दफ्तर में समय पर नहीं आ पाता है तो बहुत संभव है कि वह दफ्तर में न होते हुए भी कहीं खादी कार्य में ही लगा हुआ होवे। क्योंकि जब कि मामूली कार्यकर्त्ताओं के काम का समय बँधा हुआ होता है, सरदार को आराम का समय ही कभी नहीं मिलता। अगर वह ईमानदार है, और अपनी जिम्मेदारी को समझता है तो उसे खादी को उसका योग्य स्थान दिलाने के लिए दिन रात काम करना होगा। किसी चलती हुई संस्था में शामिल हो जाना एक बात है और किसी बिलकुल ही नयी संस्था को चलाना, जिसे कि दुनिया की अपने ढंग की सबसे बडी संस्था बनाने का विचार हो, बिलकुल दूसरी ही वस्तु है। ऐसी संस्था पर एक नहीं, किन्तु हजारों कार्यकर्त्ताओं को सावधानीपूर्वक, बुद्धि पूर्वक और प्रामाणिक दृष्टि रखनी पडेगी। मौजूदा संस्थाओं में शामिल हो कर और अपने ऊपर कठिन से कठिन संयम-नियम का भार रख कर ही ये कार्यकर्त्ता तैयार होने होंगे।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

धन्य मगनभाई!

पूज्य मगनलाल भाई का अवसान हमारे लिए इतना भयंकर है कि उसकी पूरी कल्पना नहीं आ सकती। कल्ह रात को मैं फिनिक्स से लेकर आजतक का, मगनलाल भाई के साथ अपना सब संबंध याद कर रहा था। यह नहीं कह सकता कि ये विचार कैसे आये। यह खयाल भी न था कि वे पटने में बीमार हैं। तौभी एका एक मेरे मुँह से निकल ही पडा कि, "मगनभाई धन्य हैं!"

आश्रम में अभी उद्वेग छाया होगा। गोकि शोकातुरों की गिनती में मैं भी आ जाऊँगा, तौभी यह उद्‌गार तो बारंबार निकलता ही करता है कि मगनभाई धन्य हैं। उन्होंने आपके कामों में जो शक्ति लगायी, वह किसीने नहीं लगायी है। उन्होंने जो कुछ हाथ में लिया, उसे चमका दिया, पार लगा के छोडा। उनके बिना आज क्या कहां होता? उनका आदर्शवाद आश्रम की नींव में था। यह बात उनकी आत्मा को शान्ति देगी कि उनका एक भी काम अधूरा नहीं रहा है। हाल में वे कुछ हताश थे किन्तु उनकी आत्मा ऊँचे चढ रही थी। आज मुझे इस खयाल से थोडा बहुत संतोष होता है कि आश्रम से यहां आने के पहले उनके साथ मेरी ब्यौरेवार बातें हुई थीं। उनका संयमकाल ऐसा था जो बडे बडों के लिए भी कठिन था और उस दिन सांझ को उन्होंने मुझे अपने अमूल्य अनुभव सुनाये थे। मैंने, इस बातचीत के बाद उनके हृदय में और अधिक प्रवेश पाया और तब मेरे हृदय में उनके प्रति पूज्यभाव में घटी, बढी का सवल ही नहीं रह गया था। उनका मरण मुझे नम्रता सिखलाता है। मृत्यु चाहे जिसके आगे और चाहे जब आ खडी होती है। मुझे इसके उदाहरण की जरूरत थी। सो मिला। इस बीच उनकी जिन्दगी का अनुकरण ही सीधा और सरल मार्ग है। हम उनके तप को कहां तक पहुँच सकेंगे? हम स्वर्गीय आत्मा का कौन सा स्मारक बनावेंगे? आज सबने उपवास तो किया। आज किसीको अन्न रुचे ही किस तरह? परन्तु इसके बाद? मुझे अपने संयम के प्रयत्नों में अधिक बल मिला है। इसके बाद और कुछ नहीं कह सकता। उनकी आत्मा को जागृत रखने के लिए आश्रम में कुछ न कुछ करेगा ही। मेरे जैसे बाहर रहनेवाले उसमें जो कुछ भाग दे सकें, और उनसे जो माँगा जाय, वे देवें। अभी तो आज की तिथि मेरे लिए हमेशे संयम तिथि रहेगी और इस दिन उपवास नहीं किन्तु जिसे संयम का अधिक अच्छा लक्षण कहूँ, वह अल्पाहार करूँगा। मैं एक वर्ष तक हर सप्ताह संयम-तिथि का पालन करूँगा और इसके अलावा आश्रम में जो कुछ होगा, उसमें भाग लूँगा।

(पत्र में से) **देवदास गांधी**

भक्ति के नाम पर भोग

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ३८

मुद्रक–प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, ज्येष्ठ वदी ५ संवत् १९८४ गुरुवार, १० मई, १९२८ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

बेहयाई की हद !

रोज ही सरकार की ओर से की गयी नीचता तथा स्वेच्छाचार का कोई न कोई नयी ही खबर आती है। हाल में ही कलक्टर और पुलिस सुप्रिन्टेन्डेन्ट ने तो नोटिस निकाल कर अपनी शासन–कुशलता का दिवाला निकाल दिया। उनका कहना है कि "न तो यहां कोई वेठिया (बेगार), न बैलगाडी और न कुर्क माल को नीलाम में खरीदनेवाले ही मिलते हैं और हमारे अपने आदमियों के भी भाग निकलने का डर दिन रात लगा हुआ है।" इस लिए यह नोटिस सभी तरह के समझाने बुझाने को मना करती है। अगर धमकी की मनाहट हो तो यह बात समझ में आ भी सकती है। मगर यहां तो एक भी आदमी को धमकी नहीं दी गयी है।

और आखिर लडकों का खँजरी या ढोल बजा कर गाना भी पुलिस के हाथों रुकवाया जा रहा है ! भला इस बेहयाई की भी कोई हद है ! भले ही बंदूक और तोपों को ढोल और खँजरी से डरना पडता है।

मगर उन्हें क्या पता कि सत्याग्रहियों से मुठभेड हुई है। सरकार की जो मर्जी हो वह कर गुजरे मगर लोगों को समझाने बुझाने से वल्लभभाई और उनके वीर सैनिक बाज आनेवाले नहीं हैं। सच पूछो तो कानून के जरिए शान्त अनुरोध का दमन करना ही अनियम है, दुराचार है।

श्रीयुत रविशंकर को ५ महीने १० दिनों की सख्त कैद मिली है। खैर, जब सारा का सारा ही ताल्लुका एक तरह से बडा कैदखाना या सैनिक शासन का स्थान बन रहा है, तब इस एक फैसले के लिए कोई क्या झगडे ? अब सूरत के एक और पुराने योद्धा श्रीयुत [illegible]नाई को भी दो अभियोगों पर कुल ८ महीने २० दिनों की सख्त कैद की सजा दी गयी है।

लोगों को इन सजाओं की कोई पर्वा नहीं है। अब तक जमीन कुर्की की ४८४ से भी अधिक नोटिसें निकल चुकी हैं। उनकी कीमत सारे ताल्लुके के नये भाव के लगान के भी कई गुणा होगी। मगर जिन्होंने आत्म–सम्मान की रक्षा के लिए सर्वस्व बलिदान किया है, उन्हें इसका क्या डर ?

वालोड के उस बहादुर पारसी शराब बेंचनेवाले की कथा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पिछले लेख में उसकी शराब की जप्ती की बात दी जा चुकी है। फिर तो सरकारी अफसर दौडे गये और उसकी दूकान पर से पहरा उठा कर ताला खोल दिया और दोराब सेठ को दूकान खोलने का हुकम दिया। फिर उन्होंने कुछ खाली पीपे भी शराब ढालने के लिए जप्त किये। किसे पता या पर्वा हो कि पीपे फूटे हुए हैं ? जब बहुत शराब नुकसान हो गयी तब पता चला। फिर दौडे दूसरे गांव से पीपे लाये और कुछ और पीपे जप्त किये और कुल २,०००) रु. की शराब ९४) रु. कुछ आनों में किसी जी हुजूर के हाथ बेंच दी। इसके लिए नीलाम तो हुआ ही नहीं। अब इतने से ही मानों दोराब सेठ का लगान न चुका, इस लिए १४४–६–२ के लगान के लिए उनकी ३०,०००)रु. की जमीन जप्त हो रही है। मगर इससे तो यह बहादुर पारसी डरनेवाला था नहीं। उसने डिपुटी कलक्टर की सभी भूलें दरशाते हुए एक और पत्र लिखा है, और जप्त किये गये सारे माल असवाब का हिसाब उनसे माँगा है।

अगर सरकार लोगों का सिर झुकाना नहीं चाहती है तो फिर जब सरकार के हाथ में लगान के कई गुणा अधिक कीमत की जमीन पडी हुई है, तब यह अनियम, अत्याचार किस लिए है ? केवल अफसरों और लोगों के मवेशी छीनने तथा रखने के लिए पठानों को ही बुलाने से संतोष नहीं हुआ शायद इसी लिए १,२००) रु. से अधिक कीमत की १३ भैंसें एक साथ २१६) रु. और दूसरी जगह ४४ मवेशी ३३५ रु. में कसाइयों को बुला कर उनके हाथ बेंच दिये गये। लोगों की प्राचीन पवित्र–भावना को यों लातों ठुकरा कर आग लगाने की कोशिश की जाती है।

मगर वल्लभभाई वहां हैं। इसलिए यह आशा होती है कि वे चाहे लाख सिर पटक मरें, मगर उनके किये कुछ आग नहीं लगनी है। वल्लभभाई ने एक जगह कहा था, "मैं कलक्टर को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि अगर कहीं हिंसा की आग फूट पडी तो सबसे पहले मेरा सिर फूटेगा, उनका नहीं। मैं यह बात फिर फिर कहता हूँ और हजारों बार कहूँगा कि यह अहिंसा–युद्ध है और इसमें जितनी अधिक शान्ति हम रक्खेंगे, हमारी शक्ति उतनी ही अधिक बढेगी। मैं तुम्हें यह सिखलाने आया हूँ कि मरो भी तो हँसते हुए, दूसरे पर प्रहार किये बिना। अरे, मगर तुम्हें सिखलानेवाला मैं ही कौन हूँ ? पहला पाठ तो तुम्हींने पढा था, और तुम्हारे बाद मैंने सीखा। तुममें से कुछ लोगों को तो द० अफ्रिका में ही सत्याग्रह का पाठ सीखने का सद्भाग्य मिला था और वह भी उस महापुरुष के हाथों जिसने हिन्दुस्तान को पहले पहल अहिंसा का मंत्र दिया था। इस शाला के तुम पुराने विद्यार्थी हो, जब कि मैं तो तुम्हारे सामने अभी नौसिखुआ ही हूँ। इसलिए मुझे तुमको कोई नयी बात नहीं सिखलानी है।"

(यं० इं०)

महादेव देसाई

तपस्वी जीवन

लगातार चौदह वर्षों तक हमने एक दूसरे को समझने का प्रयत्न किया। एक आदर्श और बिलकुल ही भिन्न मनोवृत्तियों का हमारे जैसा दूसरा उदाहरण शायद ही मिले। पहली ही भेट में हम एक दूसरे की ओर आकर्षित हुए और मैं मानता हूँ कि अपनी अन्तिम मुलाकात में हम एक दूसरे को ठीक ठीक समझ सके। मैं जब आश्रम में से विद्यापीठ में रहने आया, उसके बाद के अपने अपूर्व अनुभवों के कारण मैं मगनलालभाई को तथा उनकी दृष्टि को जितना समझ सका, उतना चौदह वर्ष के सहवास से नहीं समझ सका था। एक दो बार, इस बारे में उन्हें पत्र लिखने को मन हुआ था, मगर संकोच की वजह से रह गया। आज उनको लिखने के बदले उनके विषय में लिखने का अत्यंत दुःखद प्रसंग आ पडा है।

गांधीजी के परिवार में सभी कोई मगनलालभाई को अखंड कर्मयोगी के रूप में जानते हैं। मैं आज उनका परिचय अहिंसा के पुजारी के रूप में देना चाहता हूँ हमारे बीच अनेक तात्त्विक मत भेद थे। इस लिए हमें हमेशे लडना पडता था और इसमें कभी नर्मियत रखने का हमने विचार ही नहीं किया था। हम लोगों के मतभेद की शुरूआत में ही मैंने गांधीजी को कहा था कि "मैं मगनलालभाई का सबसे बडा गुण आत्मोन्नति का तीव्र प्रयास देखता हूँ। इस लिए इनके स्वाभाविक क्रोध के सामने भी अपने को सुरक्षित मानता हूँ।" मुझे कभी अपनी यह राय बदलनी न पडी। आध्यात्मिक और देशसेवा की संस्था चलानी कुछ खिलवाड नहीं है। अगर तलवार की धार की उपमा कहीं सचमुच में लागू पडती होगी तो यहीं पडती है।

गांधीजी का कहना बिलकुल सच है। उन्होंने मगनलालभाई को कठिन से कठिन स्थिति में भी रखने में कुछ कमी नहीं की है। शुरूआत से ही अखीर तक गांधीजी ने आश्रम में ऐसे ऐसे विचित्र लोगों को ला इकट्ठा किया और इन लोगों ने मगनलालभाई को ऐसे कडवे अनुभव चखाये कि अगर उनके सिवाय उस स्थान पर दूसरा कोई होता तो न जाने कब का संस्था को तोड कर भाग ही गया होता। कष्ट और अपमान सहन करना सहज बात है। आदमी वह स्थिति भी सहन कर सकता है जब कि बुद्धि-शक्ति और धर्म-बुद्धि पर पूरा पूरा दबाव पडे और हृदय किंकर्त्तव्य-विमूढ हो जाय। किन्तु ऐसी परिस्थिति में अपने कौटुम्बिक जीवन को होम कर देना, और पुत्र कलत्र की बहुत ही बुरी दशा को देखते रहना, उन्हें ठंढा आश्वासन देना और हँसते मुँह से काम चलाते जाना तो महायोग ही है। आश्रम में सैकडों आदमी आये और गये। आश्रम के नियमों के पालन करने का एकरार कर के आवें और आश्रम का वातावरण क्षुब्ध कर के चले जायँ, और इस सारे बलिदान में दिये गये एक कुटुम्ब को हानि उठानी पडे — यह कैसी विचित्र स्थिति है! और हर एक जानेवाला आदमी जाते समय जो जहरीले वचन सुनावे, उन्हें चुपचाप सुन लेना और दूसरे ही क्षण जो नये आदमी आवें, उनके प्रति सद्भाव रख कर उनका आदर, सम्मान करना कोई छोटी सी बात नहीं है। बहुत से आदमियों ने मगनलालभाई का नुकसान किया होगा, किन्तु मैंने यह कभी नहीं देखा है कि मगनलालभाई ने किसीका नुकसान करने का इरादा कभी रक्खा हो। मैं उन्हें हमेशे कहा करता था कि, "मगनलालभाई, आप किसी वस्तु का दूसरा बाजू नहीं देख सकते। आपका यह अन्धापन आपका रास्ता रोकता है।" मैंने बहुत वर्षों बाद देखा कि यह दोष मुझमें भी है और इससे मैंने उन्हें खूब हैरान किया है। हम दोनों एक दूसरे की स्थिति समझते थे। इस लिए आमने सामने लडने में हमें मजा भी खूब मिलता था। बारह वर्ष के अंत में मैंने जब उनके मुँह से सुना कि, "काका के साथ मतभेद चाहे जितना हो किन्तु उनके साथ काम करने में मुझे कठिनाई नहीं होगी" तब मैंने अपने को धन्य माना। किन्तु मेरे आश्चर्यित होने का कोई कारण नहीं था। बहुत साल पहले मेरे बडे लडके ने उनका बहुत भारी अपराध किया था। मैंने सोचा कि मगनलाल भाई की क्षमा की अब हद हो जायगी। वे जो कुछ दंड देते, उसे मैं योग्य ही गिनता और उसे पसंद ही करता। मैंने उन्हें तुरत कहा, "हम आपके अपराधी हैं। आप जो कहें मैं करने को तैयार हूँ।" इस उदार मनुष्य ने 'कुछ भी नहीं' कह कर सब कुछ वहीं खत्म कर दिया और पहले के बराबर ही मिठास से आगे चलाया।

गांधीजी ने मुझे अपने काम के संबन्ध में परिपूर्ण स्वतंत्रता दी थी। तौभी जब तक मगनलाल भाई को संतोष न मिले, कुछ भी नया काम करते हुए मुझे हमेशे अविश्वास रहता था। मित्र इसे कायरता समझते थे किन्तु मैं जानता था कि मगनलाल भाई आश्रम के आदर्श और तपस्या की जीवित मूर्त्ति हैं। आज आश्रम में जो कुछ अच्छा है, वह गांधी जी का नहीं किन्तु मगनलाल भाई का आभारी है। मगनलाल भाई के सद्गुण भले ही गांधी जी के आभारी हों।

मगनलालभाई का क्रोध बहुत लोग देखते थे। किन्तु इस क्रोध के पीछे चारित्र की जो सात्त्विकता, आश्रम के प्रति निष्ठा, और उज्ज्वल देशभक्ति थी, उसे इस क्रोध के भोग बने हुए लोग कैसे देख सकें? न्यायाधीश को जिस भाँति अनेक कडवे काम करने पडते हैं, उसी भाँति इस चारित्रशिथिल और प्रमादी समाज में देशसेवक को हर क्षण किसी न किसी आदमी को कष्ट पहुँचाये बिना छुटकारा ही नहीं होता। मगनलाल भाई के हाथों रंज पहुँचे हुए लोगों की कितनी ही फिरयादें मैंने सुनी हैं। किन्तु किसीको रंज देते हुए उन्हें कितना रंज होता था, इसका साक्षी मैं हूँ। दिन पर दिन उनका वजन जो घटा, उसे मैं शारीरिक श्रम के कारण नहीं मानता हूँ। किन्तु इस तरह अनेक आदमियों को सँभालने की चिन्ता के कारण ही हृदय का रक्त सूख जाना चाहिए। जिसका नाम एकबार क्रोधी पड गया उसे तो हरवार हद से अधिक खामोश रहना और हर मौके पर अपने आपको ही दबाना रहा। मैंने हमेशे देखा है कि मगनलालभाई ने लोगों का जितना गुनाह किया, उससे अधिक लोगों ने ही उनका गुनाह किया था। इन्हें यह सब अकेले ही सहन करना पडा है। गांधीजी तो अपने स्वभावानुसार जिसे एकबार अपना गिनें, उसे रामचंद्र के समान दुनिया की बलिभूमि पर होम ही कर देते हैं। अगर अपने ऊपर रहम करें, तरस खायँ तभी तो अपनों पर तरस खावें। मेरा खयाल है कि गांधीजी के इस अलौकिक प्रेम का स्वाद केवल दो ही आदमियों को विशेष कर मिला है: राजाजी और मगनलालभाई को।

शान्ति निकेतन में जब हम पहले पहल मिले, तभीसे राष्ट्रीय शिक्षण का विचार हमने साथ साथ किया है। और राष्ट्रीय शिक्षण के मुख्य सिद्धान्तों का उनका आकलन किसीसे उतर कर नहीं था। उन्होंने यह ठीक ठीक समझा था कि हमें राष्ट्रीय शिक्षण के द्वारा कुशल राष्ट्रीय मजदूर तैयार करने हैं। और उनका आग्रह था कि राष्ट्रीय मजदूरों का जीवन और उनके विचार दोनों सहिष्णु या तितिक्षु होने चाहिए। यह उनका दुर्दैव था कि उन्हें हमेशे अपने जमाने के विरुद्ध लडना पडा था।

चौदह वर्ष के साथी के जीवन में से असंख्य संस्मरण इकट्ठे किये जा सकते हैं। किन्तु मगनलाल भाई के जाने से आश्रम को और गुजरात को जो हानि हुई है, उसका भी अंदाजा लगा सकते

के लिए उनके मरण का आघात कुछ कम होना चाहिए । वे अपने पीछे शुद्ध वारसा छोड गये हैं । जिसमें जीवट हो, वह उनके सद्गुणों का अनुकरण करे ।

(नवजीवन) दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

मिलों का कपडा बनाम खादी

एक मित्र के पत्र का सारांश यह है :

"कई एक महासभावादी आजकल खादी के साथ साथ स्वदेशी मिलों के कपडों के इस्तैमाल का भी समर्थन कर रहे हैं । स्वदेशी मिलों के कपडों को भी कांग्रेस की खादी की दूकानों में रखने का आन्दोलन चल रहा है । आप क्या इस विषय पर अपना मत प्रकाश नहीं करेंगे ? मुझे तो आपका मत मालूम है किन्तु महासभा के सभी कार्यकर्ता तो उससे वाकिफ नहीं हैं । वे आपका मत जानना चाहेंगे और खास कर इस दृष्टि से कि आपने हाल में ही कई लेख लिख कर यह दिखलाया है कि विदेशी-वस्त्र के बहिष्कार के आन्दोलन में स्वदेशी मिलें क्या भाग ले सकती हैं ।"

खादी के बारे में महासभा के प्रस्ताव का एक ही अर्थ संभव है । इस लिए जो उनका पालन करना चाहते हैं, उनके लिए स्वदेशी मिलों के कपडे का त्याग करने के सिवाय दूसरा रास्ता है ही नहीं । किन्तु यह जमाना तो उच्छृङ्खलता या अराजकता की वृद्धि का है । इस जमाने में महासभावादियों के कुछ खास कामों का विरोध या समर्थन करने के लिए महासभा के प्रस्तावों का हवाला देना फिजूल है ।

इसलिए, आइए हम इस प्रश्न पर फिर से विचार करें कि महासभावादी स्वेच्छापूर्वक विदेशी के स्थान पर स्वदेशी मिलों के कपडे पहनें या उनकी फेरी लगावें । हमें बंगाल का अनुभव मालूम है । बंग-भंग के दिनों में मिल-मालिकों की बेईमानी और लालचीपने के कारण स्वदेशी आन्दोलन को धक्का पहुँचा था । मिल-मालिकों ने कपडे के दर चढा दिये और विदेशी कपडे तक को भी स्वदेशी कह कर बेंचा । इसका कोई भरोसा नहीं है कि इस बार वे अधिक प्रामाणिकता का बरताव करेंगे । सचमुच में तो मैंने नकली खादी के बारे में जो बातें प्रकाशित की हैं उनसे तो जान पडता है कि खादी खरीदनेवालों के बडे लाभ के विरुद्ध अपने फायदे के लिए वे स्वदेशी भावना का नाजायज फायदा उठाने में नहीं चूकेंगे ।

अगर मिलें भी इसमें ईमान्दारी के साथ शामिल हो जायँ तो भी महासभावादियों के लिए मिलों का कपडा पहनना या उसका विज्ञापन करने की जरूरत नहीं होगी । मिलों के इस आन्दोलन में ईमान्दारी से शामिल होने का अर्थ है, उनका खादी के लिए विज्ञापन करना, खादी बेंचनी, खादी-भावना को ग्रहण करना, मिल के कपडों के ऊपर खादी की श्रेष्ठता स्वीकार करनी ।

यह बात पक्के तौर पर समझ लेनी होगी कि अगर मिलें चाहें, तो भी हम लोगों की जिन्दगी में तो वे विदेशी कपडे को नहीं हटा सकेंगी । इसलिए देश में ऐसी कोई न कोई एक संस्था जरूर चाहिए ही, जो जहां तक विदेशी वस्त्र के बहिष्कार से मतलब है, केवल खादी-प्रचार पर ही अपनी शक्ति लगावे । सन् १९२० से ऐसी संस्था महासभा रही है । खादी-उत्पत्ति और खादी-प्रचार से दो तरह के प्रभाव एक ही साथ पडते हैं । पहले तो इससे मिल-मालिकों के लोभ पर अकुश रहता है, और दूसरे यह बात अनोखी जान पडने पर भी, उससे स्वदेशी मिलों को विदेशी मिलों के साथ प्रतियोगिता में बहुत ही बा-असर प्रोत्साहन मिलता है । जब महासभा-वादी लोग केवल खादी पर ही अपनी शक्ति लगाते हैं तो इससे खादी के पांव जमते हैं और मिलों को उन क्षेत्रों में काम करने की सुविधा मिल जाती है जहांपर खादी का प्रभाव अभी नहीं के बराबर है । इसीलिए तो मिलों के ऐजन्टों ने कभी खादी-प्रचार से बुरा नहीं माना है । इसके उलटे उनके कई एजेन्टों ने मुझे विश्वास दिलाया है कि खादी-प्रचार से उन्हें लाभ ही हुआ है क्योंकि इससे विदेशी वस्त्र के विरुद्ध भाव पैदा हुआ जिस कारण वे विदेशी वस्त्रों के मुकाबिले में अपने मोटे कपडे बेंच सके हैं । एक मात्र विशुद्ध खादी के प्रचार को रोक दीजिए, मिल के कपडों से खिलवाड शुरू कीजिए और आप खादी को मार डालेंगे और साथ ही साथ अंत में जा कर स्वदेशी मिलों को भी मार डालेंगे क्योंकि वे अकेले अपने पैरों, विदेशी कपडों की चढा ऊपरी में नहीं ठहर सकते । अगर खादी-भावना न होवे तो विदेशी-वस्त्र के साथ देशी मिलों की प्रतियोगिता में, खलल डालनेवाली जो एक बात है, यानी स्वस्थ-सार्वजनिक भावना, वह बिलकुल ही न रहेगी ।

और खादी का अखीरी किन्तु बहुत ही बडा, अमूल्य लाभ यह है कि उससे अत्यंत विशाल सार्वजनिक शिक्षा दी जा सकेगी, सार्वजनिक उन्नति होगी, दिनों दिन बढती भूखमरी बहुत कुछ दूर की जा सकेगी, जब कि मिल के कपडों से जनसमूहों को न कोई रोजगार ही मिलता है और न कोई आर्थिक मदद ही और खादी का एक गज भी खरीदने का अर्थ होता है, उन जन-समूहों को कुछ रोजी और पैसा देना, जो रोजगार और मजदूरी के अभाव की दुहरी चक्की में दिनों दिन पिसते चले जाते हैं ।

इस लिए देश के हर एक सच्चे प्रेमी के लिए केवल एक मात्र खादी ही पहिनने तथा उसीका प्रचार किये बिना छुटकारा नहीं है ।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

मिल-मालिकों का लोभ

कुछ दिनों पहले मैंने हिन्दुस्तानी मिलों के नकली खादी बनाने के जो आंकडे दिये थे, वे केवल नौ ही महीनों के थे । अब दश महीने के अंक भी मुझे मिल गये हैं । ये दुःखद अंक ये रहे :

अप्रिल से जनवरी तक तैयार खादी, डुँगरी या खद्दर के आंकडे

	१९२५-२६	१९२६-२७	१९२७-२८
पाउण्ड	२,५८,२२,४४२	३,११,९५,१६९	३,७०,३६,२०६
गज	७,३२,४४,२३८	८,५४,३१,६११	१०,३०,६१,०७२

इन आंकडों से जाहिर होता है कि उन्होंने १ करोड गज फी महीना यानी कम से कम २० लाख रुपये की खादी हर महीने बनायी । यानी पूरे एक वर्ष में जितनी सच्ची खादी बनती है, उतनी नकली खादी मिलवालों ने हर महीने बनायी । यह तो स्पष्ट ही गरीबों के मुँह का कौर छीन लेना है; और वह भी एक ऐसे आन्दोलन की मार्फत जो कि भूखों मरनेवाले करोडों आदमियों की सहायता के लिए शुरू किया गया था । इससे अधिक नीचता और हो ही नहीं सकती । मिल-मालिकों ने अगर खादी आन्दोलन को अपना कर, खादी को बेजोड और बेईमानी से भरी प्रतियोगिता में मारने के बदले उसकी प्रत्यक्ष सहायता की होती, तो यह देश की सेवा होती । उनकी यह हरकत उन व्यापारियों के काम के बराबर है जो नकली घी को असली घी कह कर भोली और मूढ जनता के हाथों बेंचते हैं । सरकार के समान उन्होंने भी लोगों के अज्ञान के आधार पर अपना व्यापार किया है और अगर वे इससे बाज नहीं आते हैं तो ऐसा काम करनेवाले, दूसरे पिछले जमाने के सभी लोगों के समान, वे भी देखेंगे कि यह धोखा एक दिन पकड लिया जायगा । कुछ लोगों को हमेशे बेवकूफ बनाये रक्खा जा सकता है, मगर सभी किसीको सभी समय बेवकूफ बनाये रखना असंभव है । पूँजीपतियों को धनी बनने के लिए बेईमान बनना आवश्यक नहीं होना चाहिए ।

मो० क० गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, ज्येष्ठ वदी ५ संवत् १९८४

भक्ति के नाम पर भोग

श्री जयदयाल जी गोयनका के प्रयास से आज कल मारवाडी समाज में भक्तिरस उत्पन्न करने का प्रयत्न चल रहा है। उसीके संबंध में भजन मंडलियां स्थापित की गयी हैं। ऐसा एक भवन कलकत्ते में गोविन्द भवन के नाम से निकला है। उसमें श्री जयदयाल जी की प्रेरणा से एक भाई को रक्खा गया था। उसने भक्ति के नाम पर विषय भोगे। उसने स्त्रियों के पास से पूजा अंगीकार की, उसे स्त्रियाँ भगवान् मान कर पूजने लगीं, उसने स्त्रियों को अपना जूठा खिलाया और व्यभिचार में उतारा। भोली स्त्रियों ने मान लिया कि 'आत्मज्ञानी' के साथ का शरीरसंग व्यभिचार नहीं गिनना चाहिए।

यह घटना दुःख-दायक है। किन्तु मुझे उससे आश्चर्य नहीं होता। भक्ति के नाम पर विषय-भोग भोगते हुए लोग सभी ओर दिखलायी पडते हैं। और जब तक भक्ति का रहस्य नहीं समझ पडा है, तब तक धर्म के नाम पर अधर्म हो तो आश्चर्य ही क्या? अगर बगुलाभगतों से अनिष्ट परिणाम न निकले तभी आश्चर्य गिना जायगा।

मैं रामनाम का, द्वादश मंत्र का पुजारी हूँ किन्तु मेरी पूजा अंधी नहीं है। जिसमें सत्य है, उसके लिए रामनाम नौका रूप है। पर मैं यह नहीं मानता कि जो ढोंग से रामनाम रटता है, उसका उद्धार रामनाम से होगा। अजामिल इत्यादि के जो दृष्टान्त दिये जाते हैं, वे काव्य हैं और उनमें भी रहस्य है। उनके बारे में शुद्ध भावना का आरोपन है। 'रामनाम से मेरे विषय शान्त होंगे' — यह माननेवाले को रामनाम फलता है, तारता है। और जो ढोंगी यह मान कर कि 'राम के नाम में मैं अपना उल्लू सीधा करूँ' रामनाम लेता है, वह तरता नहीं, डूबता है—

'जैसी जिसकी भावना, वैसा उसको होय।'

भक्त जनों को दो बातें विचारनी चाहिए।

पहली — भक्ति केवल नामोच्चार ही नहीं है किन्तु उसके साथ रहा हुआ सतत यज्ञकार्य है। आजकल ऐसी मान्यता देखने में आती है कि संसारी काम को धर्म या भक्ति के साथ कोई संबन्ध नहीं है। यह असत्य है। सत्य तो यह है कि इस जगत के सभी कार्यों का संबन्ध धर्म और अधर्म के साथ है। कोई बढई केवल धन कमाने के लिए काम करता है और उसमें लकडी चुराता है तथा काम बिगाडता है। यह अधर्म हुआ। दूसरा बढई परोपकार के लिए करता है — मान लीजिए की रोगी के लिए चारपाई बनाता है — उसमें चोरी नहीं करता, उसमें अपनी सारी शक्ति लगाता है और चारपाई बनाता हुआ रामनाम लेता है। यह धर्मार्थ किया हुआ काम है। यह बढई सच्चा राम-भक्त है। तीसरा रामनाम लेने के निमित्त जान-बूझ कर या अज्ञान से बढईगीरी छोड बैठता है, अपने और अपने लडकों के लिए भीख माँगता है, रोगी के लिए भी कुछ बनाना हो, तौभी कहता है, "मेरे लिए तो रामनाम सच्चा। मैं न जानूँ रोगी को, न जानूँ दुखी को।" यह अज्ञान-कूप में पडा हुआ पामर प्राणी है।

भगवान् को मनुष्य केवल वचन से ही नहीं भजता, किन्तु वचन से, मन से और तन से भजता है। तीनों में से अगर एक भी अनुपस्थित हो तो वह भक्ति नहीं है। तीनों का मेल रसायन के मेल के समान है। रसायन के मेल में अगर एक वस्तु की भी मात्रा में फर्क हो तो जो वस्तु बनानी है, वह नहीं बनती। आज के भक्त वाणी के विलास में ही भक्ति की परिसीमा समझते हुए दिखायी पडते हैं। और इससे अन्त में भक्त मिट कर भ्रष्टाचारी बनते हैं और दूसरों को भ्रष्ट करते हैं।

दूसरी बात है—आकृति वाला साकार मनुष्य परमात्मा को कैसे और कहाँ भजे। भगवान् तो सभी स्थल हैं। इस लिए उन्हें भजने का अच्छे से अच्छा और समझ में आने लायक स्थान तो प्राणिमात्र हैं। प्राणिमात्र में जो दुःखी हैं, उनकी सेवा भगवद्भक्ति है। है। रामनाम का उच्चारण भी वही सीखने के लिए है। रामनाम अगर इस सेवा के रूप में न बदले तो वह निरर्थक है और बंधन रूप बनेगा जैसा कि गोविन्द-भवनवाले भाई के बारे में हुआ।

इस दृष्टान्त से भक्त मात्र चेत जायँ।

अब बहिनों को दो शब्द। जो पुरुष अपनी पूजा कराता है, वह तो भ्रष्ट होता ही है। किन्तु बहिनें क्यों भ्रष्ट हों? अगर बहिनों को मनुष्य की पूजा ही करनी है तो आदर्श स्त्री की पूजा क्यों न करें? फिर जिन्दे की पूजा ही किस लिए? सोलन के वाक्य हृदय में लिख लेने लायक हैं। "किसी जीवित आदमी को अच्छा नहीं कहा जा सकता।" आज अच्छा है तो कल बुरा है। फिर दंभी को तो हम पहिचान ही नहीं सकते। इसीसे पूजा केवल भगवान् की ही हो सकती है। मनुष्य की पूजा अगर करनी ही चाहिए तो उसके मरने बाद। क्योंकि पीछे हम उसके गुणों की पूजा करते हैं, आकृति की नहीं। पुरुषों को यह बात बहिनों को बारंबार समझा कर बतलाने की आवश्यकता है।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५
अध्याय ४
शान्ति-निकेतन

राजकोट से मैं शान्ति-निकेतन गया। वहांपर, वहांके विद्यार्थियों तथा शिक्षकों ने मुझपर प्रेम की वर्षा की। स्वागत-विधि में सादगी, कला और प्रेम का सुन्दर मिश्रण था। वहीं काकासाहेब कालेलकर से मेरी पहली मुलाकात हुई।

उस समय तो मैं यह नहीं जानता था कि कालेलकर 'काका साहेब' क्यों कहलाते थे। किन्तु पीछे से मालूम हुआ कि केशवराव देशपाण्डे, जो विलायत में मेरे समकालीन थे और जिनके साथ वहांपर मेरा पूरा परिचय हुआ था, बडोदा राज्य में विद्यालय चलाते थे। उनके कई खयालातों में एक यह भी था कि विद्यालय में कौटुम्बिक भावना होनी चाहिए। इसलिए सभी अध्यापकों को कौटुम्बिक नाम दिये थे। उनमें कालेलकर ने 'काका' का नाम पाया। फडके 'मामा' बने। हरिहर शर्मा 'अण्णा' हुए। दूसरों को भी योग्य नाम मिले।

आगे चल कर काका के साथी के रूप में आनंदानंद (स्वामी) और मामा के मित्र-स्वरूप पटवर्धन (आप्पा) इस कुटुम्ब में शामिल हुए।

इस कुटुम्ब के पांचों आदमी, एक के बाद एक, मेरे साथी बने। देशपांडे का नाम 'साहेब' पडा। साहेब का विद्यालय बंद होने बाद यह कुटुंब बिखर गया। किन्तु इन लोगों ने अपना आध्यात्मिक संबंध न छोडा। काका साहेब जुदा जुदा अनुभव लेने लगे ... अनुभवों के संबंध में ही इस समय शान्ति-निकेतन

रहते थे । उसी मंडल के एक दूसरे चिन्तामणि शास्त्री वहां रहते थे । ये दोनों संस्कृत पढाने में सहायता करते थे ।

शान्ति निकेतन में मेरे साथियों को अलग स्थान दिया गया था। और यहां मगनलाल गांधी उस मंडल को सँभाल रहे थे । फिनिक्स आश्रम के सभी नियमों का सूक्ष्मता से पालन करते और कराते थे । और मैंने देखा के शान्तिनिकेतन में उन्होंने अपने प्रेम, ज्ञान और उद्योग की बदौलत अपना सुवास फैलाया था । वहां ऐन्ड्रयूज तो थे ही । पियर्सन थे । जगदानंद बाबू, नेपाल बाबू, संतोष बाबू, क्षिति मोहन बाबू, नगीन बाबू, शरत बाबू, और काली बाबू के साथ ठीक ठीक परिचय हुआ ।

मैं अपने स्वाभावानुसार विद्यार्थियों और शिक्षकों में मिल गया और शारीरिक परिश्रम के बारे में बातें करने लगा । वैतनिक रसोइये के बदले अगर शिक्षक और विद्यार्थी अपनी रसोई आप कर लें तो अच्छा हो । रसोडे पर आरोग्य और नीति की दृष्टि से शिक्षक-वर्ग काबू रख सकें और विद्यार्थी स्वाश्रय तथा स्वयंपाक का अनुभव लेवें । यह बात मैंने वहांके शिक्षकों के आगे रक्खी । एक दो शिक्षकों ने माथा हिलाया । कितनों को यह प्रयोग पसंद आया। बालकों को तो नयी चीज, चाहे जो हो, पसंद ही पडनी चाहिए और इस न्याय से यह बात भी पसंद हो पडी । और प्रयोग शुरु हुआ । कविवर के आगे यह बात रखने पर उन्होंने अपना मत प्रकट किया कि अगर शिक्षक अनुकूल हों तो हमें तो यह प्रयोग पसंद पडेगी ही । उन्होंने विद्यार्थियों को कहा, "इसमें स्वराज्य की चाबी छिपी हुई है ।"

पियर्सन ने यह प्रयोग सफल करने में अपना शरीर गला दिया। उन्हें यह बहुत ही पसंद पडा था । एक मंडली शाक काटने की बनी तो दूसरी अनाज साफ करने की । रसोडे के आसपास शास्त्रीय शुद्धि करने में नगीन बाबू लगे । उन्हें कुदाली से काम करते देख कर मेरा हृदय फूल उठा ।

किन्तु यह मिहनत का काम ऐसा नहीं था कि सवा सौ लडके और शिक्षक एकदम उठा सकें । इससे रोज ही चर्चा होती । कितने थक जाते । किन्तु पियर्सन को कैसी थकावट ? वे तो हँसते हुए चेहरे से ही रसोडे के किसी न किसी काम में हमेशे लगे रहते थे । बड़े बड़े बरतन मांजना तो उन्हींका काम था । बरतन मांजनेवाले की थकावट उतारने को वहां कई लडके सितार बजाते थे । हर एक काम विद्यार्थियों ने आप ही उत्साह से उठा लिया और सारा शान्तिनिकेतन मधुछत्ते के समान भनभन करने लगा ।

इस तरह के फेरफार एकबार शुरू किये बाद रुक नहीं जाते हैं । फीनिक्स रसोडा सिर्फ स्वाश्रयी ही नहीं था, बल्कि उसमें रसोई भी बहुत सादी बनती थी । मसाले का त्याग था । इसलिए भात, दाल, शाक और गहूँ के पदार्थ भी सिर्फ उबाल कर पका लिये जाते थे । बंगाली खूराक में सुधार करने के इरादे से इस तरह का एक रसोडा खोला था । इसमें एक दो अध्यापक और कई विद्यार्थी शामिल हुए थे । ऐसे प्रयोगों में से सर्वसामान्य रसोंडे को स्वाश्रयी बनाने का प्रयोग शुरू हो सका था ।

किन्तु अन्त में कई कारणों को ले कर यह प्रयोग बंद रहा । मेरी मान्यता है कि इस जगविख्यात संस्था ने थोडे दिनों के लिए भी यह प्रयोग करके कुछ गँवाया नहीं है । और उसमें से मिले कितने एक अनुभव उसके लिए उपयोगी बने थे ।

मेरा इरादा कुछ दिनों तक शान्तिनिकेतन में रहने का था । किन्तु विधाता मुझे बलात्कार घसीट ले गया । मैं शायद ही एक सप्ताह भी रहा होऊँगा कि पूने से गोखले के अवसान का तार मिला । शान्तिनिकेतन शोक में डूब गया । मेरे पास सभी कोई शोक प्रकट करने आये । मंदिर में खास सभा हुई । वह दृश्य अपूर्व था । मैं उसी दिन पूने के लिए निकल पडा । साथ में पत्नी और मगनलाल को लिया । बाकी सभी शान्तिनिकेतन में रहे ।

ऐन्ड्र्यूज बर्दवान तक मेरे साथ आये थे । उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या आपको जान पडता है कि हिन्दुस्तान में आपके सत्याग्रह करने का अवसर आवेगा ? और अगर ऐसा लगता हो तो क्या कभी इसकी कोई कल्पना आती है ?"

मैंने जवाब दिया, "इसका जवाब देना मुश्किल है । मुझे एक वर्ष तो कुछ करना ही नहीं है । गोखले ने मुझसे वचन ले लिया है कि एक वर्ष तक मैं भ्रमण करूँ, किसी सार्वजनिक प्रश्न पर न तो कोई विचार निश्चित करूँ और न कहूँ । मैं इस वचन का अक्षरशः पालन करूँगा । बाद में भी किसी प्रश्न पर मुझे कुछ बोलना हुआ तभी बोलूँगा । इस लिए मुझे नहीं लगता है कि सत्याग्रह करने का कोई प्रसंग पांच वर्ष तक आवेगा ।"

यहां इतना कहना प्रस्तुत है कि 'हिन्द स्वराज' में मैंने जो विचार दिखाये हैं, गोखले उनकी हँसी उडाते और कहते थे, "आप जब हिन्दुस्तान में रह कर देख लेंगे, तब आपके विचार यहांके अनुकूल ठिकाने आ जायँगे ।"

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

स्वर्गगत मगनलालभाई

मगनलालभाई के अवसान पर आश्वासन के तार और पत्र अभी चले ही आते हैं । विलायत से मि० पोलक के और दक्षिण अफ्रिका से अनेक मित्रों के तार आये हैं । इस मृत्यु से देश की जो बहुत बडी हानि हुई है उसके लिए शोक प्रदर्शित करनेवाले पत्रों में पंडित मोतीलालजी, लालाजी, पंडित जवाहरलाल और दूसरे अनेक नेताओं के पत्र हैं । बहुतों से तो स्व० मगनलालभाई का घनिष्ट संबन्ध था ही नहीं, किन्तु उनके कामों से सभी परिचित थे । मौलाना महम्मदअली लिखते हैं, "आपके ऊपर जो कठिन आघात पडा है, उसकी कल्पना कर सकता हूँ । उनका प्रेममय बर्ताव तो ऐसा था, जिसे देख कर आदमी चकित हो जाय ।" श्रीविजयराघवाचार्य जो महज एक बार आश्रम में आये थे, लिखते हैं, "इनकी नम्रता तो आश्चर्य-जनक थी । इनके जाने से देश की बहुत बडी हानि हुई है ।" एक पारसी सज्जन लिखते हैं, "मगनलालभाई आश्रम थे और आश्रम मगनलालभाई था ।"

अपूर्व तर्पण

मगनलाल भाई के बारे में जब स्नेहियों, मित्रों, अपरिचितों को इतना लगता है, तब स्वजनों को, उन्हें जन्म देनेवाले उनके मातापिता को कितना लगता होगा ! इसकी कल्पना करनी मुश्किल नहीं है । किन्तु धैर्य की मूर्ति के समान उनके वृद्ध पिता जी सभीको धीरज धरा रहे हैं । माताजी की भी प्रायः यही हालत है । राजकोट में लोकाचार के अनुसार सभी विधियां करने के लिए स्व० मगनलाल भाई की विधवा पत्नी संतोकबहिन को बुलाने के बदले वे ही यहां आये और दुःखी बहू को गोद में लिया । यहां प्रकट विलाप की जगह ही कहां ? राधा बहिन ने भी, जिन्हें अंत समय में अपने पूज्य पिता की सेवा करने का सौभाग्य मिला था, उनके अलौकिक अवसान की पूरी कथा कह सुनायी, मगर वह भी धैर्य खोये बिना । केशो भाई ने मृत्यु की दशमीं तिथि आने पर गांधी जी से विनयपूर्वक कहा, "श्राद्ध करने में मुझे श्रद्धा नहीं है । और असत्य तथा मिथ्या का आचरण कर मैं अपने पिता का तर्पण कैसे करूँ ? इसकी अपेक्षा तो जो वस्तु पिता जी को प्रिय थी वही करूँगा । गीता का पारायण तीन दिन करूँगा और तीनों दिन १२ घन्टे रोज चर्खा चलाऊँगा ।" गांधी जी ने तो यह अनुरोध बहुत ही खुशी से स्वीकार किया ही

बल्कि मगनलाल भाई के पूज्य पिता तथा माता जी भी अनुकूल हो गयीं। १०, १२ तथा १३ वीं श्राद्ध-तिथियों को आश्रम की प्रार्थना-भूमि पर, जिसे मगनलालभाई ने ही तैयार कराया था, सारी गीता का पारायण उनके पुत्र तथा भतीजे मिल कर करते थे और उसमें आश्रम के दूसरे भाई बहिन भी शामिल होते थे। और १२, १२ घन्टे रोज चलनेवाले कई चर्खों में भी बडों, छोटों सभीने भाग लिया। गंगास्वरूप संतोकबहिन ने भी इस कताई के तर्पण में प्रसन्नता पूर्वक हाथ बँटाया। उनकी सासु, उनकी जेठानी उनकी माता इत्यादि सभी उन्हें अपने साथ साथ रुलाने के बदले आश्वासन देती हैं और दो पहर को सभी मिल कर स्व० मगनलाल भाई का प्रिय तुलसीरामायण पढती हैं। जैसी धन्य मृत्यु थी, उसीके अनुरूप तर्पण भी हुआ।

यों मगनलाल भाई का कुछ तर्पण करने का सौभाग्य, न केवल जन्म से बने स्वजनों को ही मिला, किन्तु कर्म से भी बने सभी स्वजनों को मिला। अभी पूरा तर्पण तो तभी होगा जब हम उनके छोडे वारसे के लायक बन जायँगे।

(नवजीवन) **महादेव देशाई**

मध्यभारत में खादी-प्रगति

खादी का रचनात्मक स्वरूप ज्यों ज्यों लोगों की समझ में आता जाता है त्यों त्यों देशी-राज्यों में भी खादी का पग दिन दिन आगे बढता जा रहा है। असहयोग के जमाने में खादी को लोग गहन राजनैतिक चीज समझते थे, इसलिए देशी-राज्यों के कई राजा लोग उससे भयभीत होते थे। खादी टोपी पहननेवाले कई लोग कई रियासतों में सताये गये। लेकिन जबसे अखिल भारत चर्खासंघ की स्थापना हुई और उसके विधान में यह बात खोलकर कह दी गयी कि चर्खासंघ राजनैतिक हलचलों से परे है और साथ ही खादी का विधायक स्वरूप और आर्थिक लाभ लोगों के सामने जोर से रक्खा जाने लगा तबसे हवा बदल गयी। देशी-राजाओं के मन में भय के बदले सहानुभूति और प्रेम पैदा होने लगे। खादी-यात्रा के समय दक्षिण भारत के कई देशी-राज्यों ने गांधीजी का किस प्रकार स्वागत किया और खादी के लिये उन्होंने किस तरह सहायता दी, उसका वर्णन पाठक समय समय पर पढ ही चुके हैं। आज में पाठकों को मध्यभारत में खादी-प्रगति का कुछ हाल सुनाना चाहता हूँ।

यों तो सन् १९२०-२१ से ही मध्यभारत में खादी फैलने लगी है। उज्जैन के प्रसिद्ध वकील श्री पुस्तके ने कुछ मित्रों की सहायता से कई चर्खे स्त्रियों को बाँटे थे; परन्तु अनुभव की कमी से उसमें सफलता नहीं मिली। रतलाम में खादी का एक कारखाना खुला था, इन्दौर में भी खादी की एक दूकान खुली थी, और एक छोटा-सा कारखाना कायम हुआ था; किन्तु नये काम का अनुभव न होने के कारण वे जड न जमा सके।

चर्खासंघ की स्थापना के बाद राजस्थान चर्खासंघ की तरफ से हमने १९२६ में मालवे में खादी-फेरी का आयोजन किया; हमने चाहा था कि श्री जमनालालजी बजाज मध्यभारत के कुछ ऐसे स्थानों में भ्रमण कर लें जो कि खादीकार्य के लिये ज्यादह अनुकूल हैं। इसके लिए मैंने इन्दौर और ग्वालियर के अधिकारियों से बातचीत व लिखापढी शुरू की। श्री जमुनालाल जी तो फिर न आ सके; किन्तु मुझे उनकी जगह खादी-फेरी पर सन्तुष्ट रहना पडा। इन्दौर के अधिकारियों ने खुद खादी खरीद कर अपनी अमली हमदर्दी प्रकट की, वहांके डिपुटी प्राइममिनिस्टर सरदार किबे महोदय तो प्रायः खादी ही पहनते हैं। वहांके प्रधान मंत्री और कौन्सिल के अध्यक्ष श्रीयुत बापना साहब ने होलकर राज्य में एक खादी केन्द्र स्थापित करने के लिए मुझे उत्साहित भी किया किन्तु कार्यकर्ता की कमी से हम अभी तक केन्द्र तो स्थापित नहीं कर सके हैं, परन्तु तभीसे इन्दौर में एक खादी-भण्डार की स्थापना श्री. बाळूभैया दाते के उत्साह से हो गयी है। उसमें १०० सौ रुपये महीने की बिक्री बिना प्रयास के घर बैठे हो जाती है। हम अधिक ध्यान दे सकें तो हजार रुपये महीने की बिक्री होना कोई बडी बात नहीं है।

ग्वालियर की रिजेंसी कौंसिल ने भी उन दिनों मुझे उत्साह वर्द्धक पत्र भेजा, जिसका आशय यह था कि खादी व चर्खे का प्रचार आप शौक से करें और यदि श्री जमनालालजी खादी-संबन्धी अपने विचार कौन्सिल के उद्योग और वानिज्य-विभाग के मंत्री पर प्रकट करेंगे तो राज्य की ओर से वे अपनी देख-रेख में खादी का संगठन कर सकेंगे। खेद है, कि श्री. जमुनालालजी को अब तक मध्यप्रान्त और ग्वालियर में आने का समय न मिला। मैं भी उस समय खादी फेरी के लिए उज्जैन और देवास से आगे न बढ सका। फेरी का फल उज्जैन में भी यह हुआ कि श्री पुस्तके की देख-रेख में एक खादी-भंडार वहां कायम हो गया, जो १०० रुपया मासिक बिक्री आसानी से कर रहा है। अब इस भंडार को बढाने का विचार हो रहा है। इसके बाद १९२७ में श्री पुस्तके के प्रस्ताव से ग्वालियर की मजलिस आम ने यह तय किया कि एक कमीशन बिठाया जाय जो जाँच करके रिपोर्ट करे कि किसानों के फुरसत के वक्त में कौनसा सहायक धन्धा उपयोगी हो सकता है। कमीशन राज्य के भिन्न भिन्न भागों में घूमा और घूम रहा है। राज्यस्थान चर्खा-संघ की ओर से उसने मेरी गवाही ली, जिसमें मैंने दिखलाया कि पिंजन और चर्खे से बढकर दूसरा कोई स्थायी सहारा किसानों के लिए नहीं हो सकता, मैंने इस बात पर जोर दिया कि शुरू में प्रयोग के तौर पर दो खादी केन्द्र राज्य की ओर से खोले जायँ एक में उत्पत्ति-बिक्री की पद्धति पर काम हो, और दूसरे में वस्त्र-स्वालम्बन की पद्धति पर। जहां दो फसलें होती हैं और किसानों को समय कम मिलता है वहां वस्त्र-स्वालम्बन की पद्धति से अधिक सहायता मिल सकती है, और जहां एक फसल होती है वहां किसानों को बेकारी ज्यादह होती है, इसलिए उत्पत्ति बिक्री का काम अधिक अच्छी तरह से हो सकता है। कमीशन ने सत्याग्रहाश्रम साबरमती के खादी-विद्यालय को भी देखा। अखिल-भारत चर्खासंघ के मंत्री श्री. शंकरलालजी बैंकर से भी कमीशन के सदस्य मिले। बैंकर साहब ने इस बात की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया कि खादी का जो कुछ कार्य किया जाय वह अच्छे जानकार लोगों की देख-रेख में किया जाय। गांधीजी से भी कमीशन मिला। गांधीजी ने किसानों के लिए तीन गृह-उद्योग बताये १. चर्खा, २. पशुपालन, ३. दूधशाला।

गांधी जी ने कमीशन को बताया कि किस तरह चर्खा गृह-उद्योग का मध्य-बिन्दु होना चाहिए। चर्खा-खादी तो राज्य के सहारे मात्र से किसान कर सकते हैं, परन्तु पशुपालन और दूध-शाला राज्य अपने संगठन के द्वारा कर सकता है। कमीशन को, जहां तक मैं जान और समझ पाया, गांधी जी की ये बातें जँच गयी हैं। अब उसकी बाक़ायदा रिपोर्ट की प्रतीक्षा हो रही है। जहां तक ग्वालियर-राज्य से सम्बन्ध है, ग्वालियर के स्वर्गीय महाराज अपनी रिपोर्ट में खुद यह बात लिख गये हैं कि राज्य में कम से कम चार महीने किसान बेकार रहते हैं, और उनके लिए किसी धन्धे की आवश्यकता है। गृह-उद्योग से दिलचस्पी रखने वाले एक भी सज्जन अभी तक चर्खे से बढ कर दूसरा सरल और

...साधन उनके लिए पेश नहीं किया है। इस लिए यह आशा वृथा नहीं है कि ग्वालियर का यह कमीशन चर्खे खादी की सिफारिश अपनी रिपोर्ट में करेगा। जो हो।

ग्वालियर के मित्रों को खादी की ऐसी लगन लगी हुई कि अभी अखिल महाराष्ट्र-साहित्य सम्मेलन के अवसर पर छोटी सी खादी प्रदर्शनी करने के लिए उन्होंने फिर निमंत्रित किया। समय कम रह जाने से खादी कि विविध क्रियाएँ दिखलाने का प्रबन्ध न हो सका। फिर भी उत्तम कताई, पिंजाई और ... की क्रियाएँ सत्याग्रहाश्रम साबरमती के विद्यार्थियों द्वारा दिखलायी गयीं। चर्खे और पिंजन के नये से नये से नमूने प्रदर्शित किये गये। गांधी जी के तथा अन्य नेताओं और राज्यवंशीय स्त्री पुरुषों के काते हुए सूत के नमूने भी दिखाये गये थे। सौ डेढ सौ अंक के महीन सूत, सौ डेड सौ वर्ष के पुराने महीन कपडों के साथ आज कल के बने महीन बढिया, जरीदार तथा तरह तरह के कपडों के नमूने दिखाये थे, जिन्हें देख कर लोगों को बडा आश्चर्य और आनन्द होता था। पांच सौ से ऊपर लोग रोज प्रदर्शनी देखने आते थे, तीन चार रोज में चार हजार का सारा माल हाथों हाथ बिक गया।

क्या सरदार गण, क्या अधिकारी, और क्या श्रीमती महारानी साहिबा, सबने खादी को अच्छा प्रोत्साहन दिया। श्रीमती बडी महारानी साहिबा खुद प्रदर्शिनी में पधारी थीं, और कौन्सिल के वाइस-प्रेसिडेंट सरदार शितोले साहब, उद्योग-वाणिज्य, शिक्षा तथा ...-कोष के मंत्रीगण सहित पधारे थे और प्रायः सबने खादी खरीद कर के अपनी अमली हमदर्दी प्रदर्शित की, यह प्रदर्शिनी ग्वालियर-राज्य खादी संघ की तरफ से जो कि हाल ही में श्री ... की अध्यक्षता में उज्जैन में स्थापित हुआ है राजस्थान चर्खा संघ ने संगठित की थी और इसकी इतनी सफलता का अधिकांश श्रेय है ग्वालियर-राज्य के चीफ मेडिकल आफिसर मेजर ... की दिल-चस्पी को। मराठी-साहित्य-सम्मेलन के कार्याध्यक्ष सरदार आंग्रे साहब के निमंत्रण और प्रोत्साहन का भी उल्लेख इस जगह किये विना नहीं रहा जा सकता। सरदार आंग्रे तथा सरदार ... खुद खादी पहन कर मराठी-सम्मेलन में उपस्थित हुए थे, सरदार आंग्रे साहब तो अपनी सारी जागीर को वस्त्र के संबन्ध में स्वावलम्बी बनाने के लिए बहुत उत्सुक हैं। और उन्होंने मेरी सूचना पर अपनी जागीर से एक विद्यार्थी को खादी की तालीम लेने के लिये एक छात्रवृत्ति देनी भी स्वीकार कर ली है। सुविधा होते ही हम उनकी जागीर की ओर ध्यान देने का विचार कर रहे हैं।

एक और आशाजनक चिह्न दिखायी दे रहा है। ग्वालियर राज्य के कई लडकों और लडकियों की पाठशालाओं में तकली पर सूत कातना शुरू कर दिया गया है और वहांके शिक्षा-मंत्री इसमें अच्छी दिलचस्पी लेते हैं। अभी मालवे के ३ स्कूलों में तकली कार्य देखने का अवसर मुझे मिला था, अभी ... ८०० विद्यार्थी उस तरफ तकली कातते हैं। आरम्भ बहुत अच्छा हुआ है। और शालाओं के हेडमास्टर पूरी दिलचस्पी ले रहे हैं। परन्तु अभी दो तीन बातों की कमी है। एक तो रुई अच्छी होनी चाहिए, दूसरे तकली एक नमूने की और अच्छी होनी चाहिए, तीसरे कातने की पद्धति में सुधार होना चाहिए। इन सबके लिए बडी आवश्यक बात यह है कि शिक्षा-विभाग की तरफ से एक योग्य शिक्षक तकली की तालीम के लिए नियुक्त किया जाय जिससे वह सफलता-पूर्वक जगह जगह सुव्यवस्था के साथ तकली-संगठन कर सके। इससे विद्यार्थी और पाठशाला दोनों को लाभ पहुँचेगा।

ग्वालियर और इन्दौर मध्य-भारत में सबसे बडी रियासतें हैं। इस समय तो ग्वालियर खादी में आगे बढ रहा है। आशा है इन्दौर, ग्वालियर से पीछे न रह सकेगा। इन दोनों राज्यों के आगे बढने पर अन्य पडौसी राज्य भी अपनी प्रजा की बेकारी दूर करने के इस उद्योग को अपनाये बिना न रहेंगे। जहां दूरदर्शिता के साथ सचाई और लगन है वहां कोई काम मुश्किल नहीं है। मुझे विश्वास होता है कि मध्य-भारत के नरेश, अधिकारी और प्रजा-सेवक उनमें से किसी गुण में दूसरी जगह के लोगों से पीछे न रहेंगे।

हरिभाऊ उपाध्याय

खद्दर और मिल के कपडे

१

मिलों में हाथ से चलाये जानेवाले चर्खों और कर्घों की बनिस्वत बहुत अधिक काम होता है। इतना अधिक होता है कि पहले पहल तो दोनों के बीच चढा ऊपरी का विचार ही करना असंभव जान पडता है।

मिलों में एक आदमी कई यंत्रों को चलाता है। मगर हाथ से काम करनेवाला तो अकेले एक ही यंत्र चला सकता है। मगर यहां ना-बराबरी तो इतनी अधिक है कि मिल का एक एक यंत्र अलग अलग भी हमारे हाथ-चर्खे या हाथ-कर्घे से अधिक काम करता है। और एक आदमी जितने यंत्रों को मिलों में चलाता है, उन सबसे वह कितना माल तैयार करता है और फिर हाथ से चर्खा या कर्घा चलानेवाला कितना बनाता है—इनमें मिलान किया जाय तो यह विषमता और भी स्पष्ट हो जायगी। मि० ग्रेग हिसाब जोड कर बतलाते है कि हाथ से काम करनेवाले की बनिस्वत मिल में काम करनेवाले इतने गुणा अधिक माल तैयार करते हैं:

	एकयंत्र (तकुवा या कर्घा)	एक आदमी के हाथ के कुल यंत्र
कताई	२ से २½ गुणा	२०३ से २३६ गुणा
बुनाई	५ से १० गुणा	२० गुणा

मगर इतना होने पर भी हाथ बुनाई का व्यवसाय मर नहीं सका है। उसकी ताकत उसीमें है जो मिलकी ताकत और कमजोरी दोंनों है। कुछ कपडों में तो मिल हाथ कर्घे से प्रतियोगिता कर ही नहीं सकता क्योंकि आज भी कुछ ऐसे खास २ किस्म के कपडों की माँग है जिन्हें मिलों के लिए बुनना मुश्किल होता है और वे अगर बुनें भी तो बडे पैमाने पर ही काम कर सकती हैं। इधर हाथ कर्घे वे ही कपडे नित्य नवीन रूप में और थोडी मिकदार में बुन सकते हैं। इस संबंध में मद्रास प्रान्त के बारे में मि. अमलसद ने लिखा है कि, "चूँकि लोगों के दिलों में यह विश्वास घर किये हुए है कि हाथ का बुना कपडा मिल के कपडे से अधिक टिकाऊ होता है, इसलिए अब भी दीहातों में बहुत अधिक कर्घे चलते हैं और मिल के मोटे या मध्यम सूत का कपडा बुनते हैं। इनके अलावा मिल के कपडों से महँगा होने पर भी शादी ब्याह या उत्सवों में बढिया हाथ का ही बुना कपडा पहना जाता है। हाथ की बुनाई में छोटा ताना होने के कारण भिन्न भिन्न तरह की साडियां, रंगीन थान वगैरह साधारणतः मिल में बुनने में परता नहीं पडता है। इसके अलावा, इस प्रान्त के सौभाग्य से, यहांसे कुछ खास किस्म के कपडे भी सालाना कोई २० लाख रुपयों के भेजे जाते हैं। उन्हें मद्रासी रुमाल या लुंगी कहते हैं। सिर्फ इसी तरह के काम में कुल १२,००० से अधिक कर्घे लगे हुए हैं।

"इस प्रकार यह स्पष्ट होगा कि अभी हाथ कर्घे को दूर करना कल कर्घे के लिए बहुत बहुत दूर की बात है। फिर दाम में

फर्क, लोगों के रीतिरिवाज, इत्यादि का सहारा बुनकरों को बहुत अधिक है और अगर मिलें उनके इस आधार को कभी तोड सकीं भी तौभी, उसमें अभी बहुत दिन लगेंगे ।"

यह भी यहां कहना चाहिए कि मि. अमलसद कबूल करते हैं कि बहुत से जुलाहे चर्खे का ही सूत इस्तैमाल करते हैं ।

बहुत सावधानी से मिलान करने पर यह भी जाना गया है कि कपास पैदा करनेवाले किसी जिले में अगर कतवैया अपनी कपास आप जमा कर रक्खे और उसको आप ही ओट, धुन और कात कर महज बुनाई की मजदूरी खर्च करे तो सब खर्च मिला कर भी उसे खद्दर मिल के कपडे से भी सस्ता पडेगा मगर जो लोग शहर की किसी दूकान से बनाया खद्दर खरीदते हैं, उन्हें मिल के कपडे से दुगुना दाम तक देना पड सकता है ।

फिर इस देश में कोई २२ करोड ऐसे आदमी हैं जो साल में कम से कम तीन महीने तो बेकार रहते ही हैं । अगर वे बेकारी के दिनों में ४ से ६ घण्टे तक रोजाना चर्खा चलाया करें तो वे न सिर्फ अपना ही कपडा पैदा कर लेंगे बल्कि इतना अधिक सूत कात लेंगे कि उसीकी आमदनी से उनका कपडा बहुत ही सस्ता हो जायगा । इतना सस्ता कि मिल तो वहां बराबरी कर ही नहीं सकती । आज भी चर्खे और कर्घे के उद्योग में लगे हुओं की संख्या कम से कम ३४ लाख तो है ही ।

मिलों की, बहुत काम करने की शक्ति का जो वर्णन ऊपर आया है, वह सचमुच में हमपर लागू नहीं होता क्योंकि मिलों की शक्ति वहीं लाभदायक होगी जहां काम अधिक है और आदमी कम हैं और इसलिए जितनी जल्दी जितना अधिक काम हो सके उतना ही अच्छा । मगर यहां तो बात उलटी है । यहां आदमी अधिक हैं जो काम के बिना बेकार पडे हुए हैं । और मिलों से उनके मुंह के रोटी छिनी है । इस लिए हमें श्रम या मजदूरों की संख्या में कमी करने की जरूरत नहीं है । मगर मजदूरों का समय बच सके तो उसे बचाने की जरूरत है, बशर्त्ते कि इससे उनकी आमदनी बढे, बचा हुआ समय दूसरे लाभदायक कामों में लगाया जाय, और दूसरों की बेकारी न बढे । आज भी इन २२ करोड में से अगर आधे भी सचमुच में बेकार हों तो, उनकी तीन महीने की बेकारी के माने हैं कोई पौने तीन करोड आदमियों का साल भर तक बेकार रहना । यानी सारे मिल-व्यवसाय में जितने आदमी आज लगे हुए हैं उनके २८२ गुणा बाहर बेकार पडे हैं । मिलें कितने आदमियों को क्या राहत देंगी ? हिन्दुस्तान की तो यही मनुष्य शक्ति अत्यंत अधिक है, और इस लिए बचानी नहीं है, बल्कि जिस तरह हो काम में लानी है, तब हमें जो दूसरी चीजें कम हैं उन्हींकी किफायत करने के उपाय सोचने चाहिए ।

मगर इनके अलावा और दूसरे कारण भी हैं, जिनसे मिल के कपडों के साथ खादी की प्रतियोगिता घटती है । आइए अब उनपर विचार करें ।

पहली बात तो यह है कि अगर चर्खे से आज के ढाईगुणे अधिक काम होने लगे और कर्घा दश गुणा अधिक कपडा बुनने लगे तो फिर मिलों की बराबरी सहज ही की जा सकेगी । इस संबंध में सत्याग्रहाश्रम, साबरमती में प्रयोग जारी हैं । कई प्रान्तीय खादी-संस्थाएँ तथा व्यक्तिगत खोजी भी इसके पीछे पडे हुए हैं । इसकी बहुत संभवता मालूम पडती है कि अगले तीन वर्षों के भीतर भीतर चर्खे से आज के दुगुणा, या तिगुणा सूत निकलने लगेगा । कर्घे से भी दुगुणा काम शायद हो सकेगा । दश गुणा तो अनहोनी सा लगता है मगर इसका उपाय है बहुत से बुनकर तैयार करना । बेशक इस बीच में मिलें भी उन्नति कर सकती हैं मगर उनके काम में पहले ही बहुत काफी शक्ति और [illegible] लग चुकी है । अब इसकी आशा नहीं होती है कि उनके यंत्रों में बहुत अधिक सुधार की गुंजायश होगी । ७५ वर्ष पहले मिल में [illegible] मजदूर जितना काम करता था, उसके सात गुण आज एक आदमी करता है, मगर न तो तकुए पर और न कर्घे पर ही पहले [illegible] दुगुणा माल भी तैयार होता है । यानी कुछ खास अंकों के सूत के लिए चर्खा आज भी उतना ही कामिल है जितना कि मिल [illegible] तकुवा ७५ साल पहले था ।

गत छै वर्षों में भी हाथ यंत्रों के काम में बहुत वृद्धि हुई है । प्रायः सभी कताई केन्द्रों में कताई का वेग बढा ही है ।

मगर इस वेग में अन्तर का भी बहुत महत्व नहीं है । [illegible] असल हम चाहते हैं कि लोग अपने घर खर्च के लिए खादी [illegible] और तब तो वेग का महत्त्व बहुत ही घट जाता है । और जिन्हें खादी बेंचनी भी है, उनके निकट के बाजार में बहुत माल [illegible] तो बिक सकता है और न वे दूर के बाजारों में अपना [illegible] वेंच सकते हैं । इस लिए दीहाती बुनकरों या कतवैयों के लिए मिलों के बराबर अधिक काम करने की जरूरत भी नहीं है । इसलिए वे उतना ही माल तैयार करेंगे जितना उनके दीहाती बाजार या हाट में बिक सकेगा । इस दृष्टि से उनके यंत्रों में थोडा [illegible] सुधार तो करना ही होगा किन्तु उनकी शक्ति बहुत अधिक [illegible] देनी भी लाभदायक के बदले हानिकारक हो सकती है ।

बडे बडे होटलों में शायद सस्ता भोजन तैयार हो सके [illegible] गांवों में उनसे गरीबों के घर का चूल्हा नहीं बंद हो सकता । शहरों में तरकारी के बडे बडे बागों से सस्ती तरकारी बिक सकती है, बिकती भी है मगर छोटे पैमाने पर जो तरकारी बोयी जाती है, वह भी आखिर बिकती ही है और इसलिए कि कुछ लोगों की जरूरियात सिर्फ वही पूरी कर सकती है यानी इन दोनों में प्रतियोगिता नहीं है बल्कि पारस्परिक साहाय्य है । कुछ हद तक यही बात [illegible] और मिल के बारे में भी कही जा सकती है ।

आखिर दुनिया में दाम ही सब कुछ नहीं है । किसी [illegible] की असल कीमत लोगों की भावना, रिवाज और पसंदगी [illegible] निर्भर करती है । यह तो कोई नहीं कह सकता कि खद्दर [illegible] लोक-प्रिय हो सकेगा किन्तु यह बात भी विचारणीय है जरूर ।

एक और खास बात यह है कि मिलों में बडे पैमाने पर [illegible] ही जगह काम होता है जब कि चर्खा बहुत दूर में घर घर [illegible] हुआ है । यानी बडे पैमाने के केन्द्रस्थित काम का मुकाबिला [illegible] छोटे पैमाने के विस्तृत काम से । विस्तृत काम में बहुत कुछ [illegible] होती है और खद्दर इन सभी बचतों से लाभ उठाने में कुछ [illegible] नहीं रक्खेगा । सब हिसाब जोडने पर अनुमान किया जाता है कि [illegible] सब बचतों का योगफल इतना अधिक होगा कि उससे हाथ-यंत्रों के जरिए काम में जो धीमापन होता है, उसकी त्रुटि पूरी [illegible] जायगी ।

इसके अलावा यह कहा जाता है कि कलों की विशेषता उनके वेग, काम की एकसारगी और शुद्धता में है । मगर आज इनकी त्रुटियां इन बातों में है कि उनका ऊपरी खर्च बहुत अधिक होता है, शहरों की वृद्धि होती है, और उसके साथ साथ अनिवार्य बेकारी बढती है । आज अमेरिका इनमें दो त्रुटियों से बचने की कोशिश कर रहा है, मगर उसकी स्थिति अनोखी है, वैसी स्थिति और किसी देश की नहीं है ।

(क्रमशः)

(मि० रिचार्ड. बी. ग्रेग की " खद्दर का अर्थशास्त्र " नामक किताब में से)

सवाल तो यह है

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ३९

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, ज्येष्ठ बदी १२ संवत् १९८४ गुरुवार, १७ मई, १९२८ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय ५

तीसरे दर्जे की मुसीबत

बर्दवान पहुँच कर हमें तीसरे दर्जे के टिकट कटाने थे। उसे लेने में मुसीबत आयी। जवाब मिला कि "तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के लिए टिकट पहले नहीं काटे जाते।" मैं स्टेशन मास्टर के पास गया। उसके पास मुझे जाने कौन देवे? किसीने दया कर के स्टेशन मास्टर को दिखला दिया। वहां पहुँचा। उनके पास से भी वही जवाब मिला। जब 'दरवाजा खुला' तब मैं टिकट लेने गया। किन्तु सहज ही टिकट मिलनेवाला नहीं था। बलवान मुसाफिर एक के बाद दूसरे घुसते जायँ और मेरे जैसे को हटाते जायँ। अंत में टिकट तो मिला।

गाडी आयी। वहां भी जो मजबूत थे, वे घुस गये। चढने उतरनेवालों के बीच धक्कम धुक्की होती थी। मैं इसमें शरीक हो नहीं सकता था। हम तीनों जैसे तैसे जायँ। सबसे एक ही जवाब मिलता, "यहां जगह नहीं है।" मैं गार्ड के पास गया। उसने कहा, "जगह मिले तो बैठ जाओ नहीं तो दूसरी ट्रेन से जाना।"

मैंने नम्रतापूर्वक कहा, "मगर मुझे जरूरी काम है।" यह सुनने का समय उसे नहीं था। मैं हार गया! मगनलाल को कहा कि 'जहां कहीं जगह मिले बैठ जाओ' पत्नी को लेकर मैं तीसरे दर्जे के टिकट के साथ ड्योढे में घुसा। गार्ड ने मुझे चढते हुए देख लिया।

आसनसोल स्टेशन पर गार्ड अधिक भाडा लेने आया। मैंने कहा, "मुझे जगह देनी आपका धर्म था। जगह न मिली और इसलिए मैं इसमें घुसा। मुझे तीसरे दर्जे में जगह दीजिए तो मैं वहां जाने को तैयार हूँ।"

गार्ड साहब बोले, "मेरे साथ दलील नहीं होगी। मेरे पास जगह नहीं है। पैसा न देना हो तो आपको ट्रेन में से निकलना पडेगा।"

मुझे तो किसी तरह पूना पहुँचना था। गार्ड से लडने की मेरी हिम्मत नहीं थी। मैंने पैसा चुकाया। उसने ठेठ पूने तक का अधिक भाडा ले लिया। मुझे यह अन्याय अखरा।

सबेरे मुगलसराय आया। मगनलाल ने तीसरे दर्जे में जगह ढूँढ ली थी। मुगलसराय में मैं तीसरे दर्जे में गया। टिकट कलेक्टर को हकीकत कही। उससे मैंने अपनी बात का प्रमाणपत्र माँगा। उसने देना इनकार किया। मैंने अधिक भाडे का रुपया लौटाने के लिए रेलवे के बडे अफसर के पास अर्जी भेजी।

इस आशय का जवाब मिला कि, "प्रमाणपत्र के बिना अधिक भाडे का रुपया लौटाने का रिवाज हमारे यहां नहीं है, मगर आपके मुआमले में हम लौटा देते हैं। बर्दवान से मोगलसराय तक का भाडा तो नहीं ही दिया जा सकता।"

इसके बाद के, तीसरे दर्जे के मेरे अनुभव इतने अधिक हैं कि उनकी एक किताब ही बन सकती है। किन्तु इस तरह कितने एक अनुभव प्रसंगोपात्त देने के अलावा इन प्रकरणों में उनका समास नहीं हो सकता। यह मुझे हमेशै अखरा है और अखरा ही करेगा कि शरीर-प्रकृति-वशात् मेरी तीसरे दर्जे की मुसाफिरी बंद हो गयी। तीसरे दर्जे की मुसाफिरी में जोहुकूमी अमल की मुसीबत तो है ही। किन्तु तीसरे दर्जे में बैठने वाले कितने एक मुसाफिरों की उद्धताई, उनकी गंदगी, उनकी स्वार्थबुद्धि, उनका अज्ञान कम नहीं होते। खेद तो यह है कि बहुत बार मुसाफिर यह जानते ही नहीं कि वे उद्धताई का व्यवहार कर रहे हैं, या गंदगी का पोषण करते हैं, या स्वार्थ देखते हैं। जो करता है, उसे वही स्वाभाविक जान पडता है। हम सुधरे हुए लोगों ने उसकी पर्वा ही नहीं की है।

कल्याण जंकशन पर थका माँदा पहुँचा। नहाने की तैयारी की। मगनलाल और मैंने स्टेशन के पंप से पानी लेकर स्नान किया। किन्तु पत्नी के लिए कुछ तजवीज कर ही रहा था कि इसी बीच में सर्वेन्ट्स ऑफ इन्डिया सोसायटी के भाई कौल ने हमें पहचाना। वे भी पूने जाते थे। पत्नी को दूसरे दर्जे की कोठरी में नहाने के लिए लेजाने को उन्होंने कहा। इस विनय को स्वीकार करते हुए

मुझे संकोच हुआ। मुझे इसका ज्ञान था कि पत्नी को दूसरे दर्जे का आश्रय लेने का अधिकार नहीं था। किन्तु मैंने उस कोठरी में उसे नहाने देने की योग्यता की ओर से आंखें मूँद लीं। सत्य के पुजारी को यह नहीं शोभता है। पत्नी को वहां जाने का कोई आग्रह नहीं था। किन्तु पति के मोह रूप सुवर्णपात्र ने सत्य को ढाँका।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

छठी रानीपरज परिषद

बरोदा राज्य के महुआ ताल्लुके के एक छोटे से गांव पूना में छठी रानीपरज परिषद की बैठक हुई थी। पूना के पास एक छोटी सी नदी भी बहती है। इस नन्हें से गांव के निवासियों ने कुछ दिन पहले दो बीघे जमीन और उसके साथ मकान बनाने के थोडे सामान दिये थे। अब उसी जमीन पर एक छोटी सी झोंपडी बनी है जिसमें खादी आश्रम है। गांव में खादी-भावना खूब जोरों पर है।

यह बात उल्लेखनीय है कि गोकि सभी कार्यकर्त्ता बारडोली सत्याग्रह में लगे हुए हैं, परन्तु इन लोगों ने अकेले ही अपनी परिषद सफलतापूर्वक पार लगा ली। पिछले पांच छै सालों के शान्त काम का यह शुभ परिणाम है।

इन लोगों के लिए एक दिन भी समय निकालना वल्लभभाई के लिए बहुत मुश्किल था, किन्तु कोई चारा नहीं था। उनके और वल्लभभाई के बीच प्रेम का वह बँधन है कि उन्हें जाना ही पडा।

पांच हजार खादी-पोश मर्द और पांच सौ औरतें जमा हुई थीं। आजकल शराब पीने और न पीनेवालों के बीच मन का भेद सत्याग्रह के प्रताप से गायब होता चला जा रहा है। अपने कपडों से तथा दूसरे अंतरों से अलग पहचान में आनेवाला यह वर्ग भी बडी संख्या में हाजिर था।

श्रीयुत वल्लभभाई ने उन्हें अपने भाषण में बतलाया कि सत्याग्रह संग्राम में वे क्या कर सकते हैं। उनके दो वाक्य ये हैं, "यह बात तो समझ में ही नहीं आती है कि तुम लोग जो ताड पर चढने में अपनी जान को हथेली पर लिये फिरते हो, बिना किसी एक भी शाखा या ठूँठ की आशा से, जिसपर कि पैर टिका सको, तुम लोग सीधे आसमान में चढ जाते हो, और वही तुम लोग इस युद्ध से डरते हो। हमारे आश्रमों में अपने लडकों को भेजो। वहांपर वे निर्भयता का पाठ पढेंगे और साथ ही साथ तुम अपने घरों पर शराब खोरी से बचने तथा अपने कपडे के लिए आप सूत कात लेने के पाठ पढना।

खादी, मद्य-त्याग, पीतल और पत्थर के भारी गहनों के त्याग तथा सत्याग्रह-संग्राम को कुचलने के प्रयत्न में सरकार को कुछ भी मदद न करने के प्रस्ताव तो थे ही।

मगर परिषद की सबसे बडी बात तो अभी कहने को बाकी ही है। वह है खादी प्रदर्शन। यह प्रदर्शन कुछ हद तक अपने ढंग का अनोखा था।

पहला विभाग कपास का था। वहां दोनों किस्म की कपास दिखलायी गयी थी। एक तो वह थी जो बेंचने के लिए अधपकी, पत्तों तथा मिट्टी के साथ मिली हुई बाजारों में मिलती है और दूसरी घर-खर्च के लिए थी जो खूब तैयार हो जाने, पर फूटी हुई कलियों में से सावधानी से चुनी गयी थी, तथा जिसमें कचरे का नाम निशान भी नहीं था। दो स्वयंसेवक दोनों तरह की कपासों को धुन कर उनका अन्तर दिखला रहे थे।

दूसरा विभाग धुनाई का था। उसमें भिन्न २ तरह की धुनकियां, उनसे धुनने के अलग ढंग, तथा मोटी, पतली, व मध्यम तांत से धुनने का फर्क भी दिखलाया था। इसके साथ थोडी सी मामूली रुई हाथों से धुन कर, और कंघी से सीध कर रक्खी थी। इसके एक एक रेशे अलग २ थे और ऐसा जान पडता था मानों हेमन्त ऋतु का उजला पारदर्शी बादल हो।

तीसरा था कताई विभाग। जैसी कि आशा की जाती थी इसमें बहुत तरह के चर्खे नहीं थे। मगर भले, बुरे, और मामूली सभी तरह के कतवैये, भली, बुरी, और साधारण, सभी तरह की पूनियों से कात रहे थे। यहां यह दिखलायी पडता था कि अच्छी धुनाई के बिना अच्छी कताई हो नहीं सकती। भिन्न २ तरह के सूत के नमूनों के साथ साथ उनके बुने कपडे भी दिखलाये थे। यहां भी अच्छी धुनाई की परमावश्यकता दिखलायी पडती थी। फिर कई कतवैयों के चर्खों पर उनका मनोरंजक इतिहास लिख लिख कर साटा गया था, जैसे कि, "ये बडे जमीन्दार हैं मगर तौभी खुद कातने का समय निकाल लेते हैं और अपने घर के सभी आदमियों से कतवाते हैं। इन्होंने अपने परिवार को कपडे के बारे में स्वावलंबी बना लिया है।" "यह छोटी लडकी इतना अच्छा धुन कर आप ही कातती है। अगर वह कात सकती है तो आप क्यों नहीं कात सकते?" फिर और देखिए, "ये सभी माताएँ ६०, ७० वर्ष से भी बडी उम्र की हैं। अगर ये कात सकती हैं तो आप क्यों नहीं कातें?"

चौथे विभाग में वल्लभभाई के सूत की आंटियां रक्खी थीं, जो उन्होंने सत्याग्रह संग्राम में ही जब कभी दम मारने की फुरसत मिली, काता था।

पांचवें विभाग में कपडे बनाने के लिए भिन्न २ जाति के सूत की उपयोगिता दिखलायी थी।

छठ्ठां विभाग बुनाई का था। यहां दो लडके अपने अपने इतिहास-पत्र को लिये बुन रहे थे। एक तो धनी रानीपरज माता पिता का लडका है। उसे वेडछी आश्रम में शिक्षा मिली थी। उसने एकवार अपने घर का सारा काम करते हुए भी, उसके अलावा दो सौ रुपयों का बुनाई काम किया था। दूसरा लडका एक महीन थान बुन रहा था। वह एक रानीपरज जमींदार का चरवाहा था। जब उसके मालिक ने खादी धारण की, तब उसके साथ साथ उसके लडकों तथा चरवाहे तक ने खादी ले ली। अब वही चरवाहा अत्यंत शीघ्र बहुत होशियार बुनकर बन कर यहां अपना कमाल दिखला रहा था।

अन्तिम विभाग में यह रोचक हिसाब दिया हुआ था:

१ मन कपास = ७ रुपये
१ मन कपास = मिल की २ धोतियां
१ मन कपास = हाथकती और हाथ बुनी ६ धोतियां
तथा बोने के लिए अत्यंत अच्छे २७ सेर बिनौले।

यह जीवन्त प्रदर्शन मिट्टी के झोंपडों में सजाया गया था। और शायद परिषद के दूसरे प्रबंधों से कम खर्च इसीमें लगा था। और खादी पर सैकडों भाषणों से जो बात स्पष्ट न हो पाती, वह बात-यानी खादी ने इन सीधे सादे, अज्ञान और निष्कपट लोगों के जीवन तथा विचारों में क्या क्रान्ति ला दी है, उसे यह प्रदर्शन दिखला रहा था।

(यं० इं०) **महादेव देसाई**

खद्दर और मिल के कपडे

२

पिछले लेख में हम देख आये हैं कि बहुत लोगों के लिए, और उनकी संख्या अभी बढ रही है, उनकी स्थिति और काम के कारण मिल के कपडों से खद्दर ही सस्ता पडता है।

दूसरे, खद्दर का भाव दिनों दिन घटता जायगा और मिल के कपडों का बढता ही जायगा। इसके कई कारण हैं। हाथ यंत्रों की हालत में सुधार करने और उनकी संख्या बढाने की गुंजायश मिल के यंत्रों की बनिस्बत कहीं अधिक है। ऐसे सुधारों से बाजार में खादी बढेगी क्योंकि अच्छे यंत्रों से खिंच कर अधिक बुनकर और कातनेवाले आवेंगे फिर मिलों में मजदूरी की जितनी घटी बढी होती है, उतनी कुटीर-उद्योगों में नहीं होती क्योंकि एक आदमी के साथ उसका सारा परिवार थोडा बहुत काम करता है।

फिर सभी देशों में व्यवसायों और वाहन (सामान एक जगह से दूसरी जगह ले जाने) में सारा सुलभ कोयला और तेल शीघ्रता से चुकता जा रहा है जिससे इंधन का खर्च बढता जा रहा है। इसका डर तो बहुत ही कम है कि किसी दिन सभी खाने खाली हो जायँगी मगर यह डर तो है ही कि शायद निकले हुए कोयले से अधिक खर्च उसे निकालने में ही पडने लगे। चाहे वह दिन दूर भले ही हो, मगर यह निश्चित है कि किसी दिन लाभ की दृष्टि से खानें बेकार हो जायँगी। इंग्लैण्ड और वेल्स में सन् १८८३ से बराबर ही कोयला निकालने का खर्च बढता जा रहा है। सारे यूरोप में कोयले की निकास कई वर्षों से स्थिर है। वस्त्र व्यवसाय में ब्रिटेन से जापान के बाजी मार ले जाने का एक कारण जापान का कम इंधन खर्च भी है। हेनरी फोर्ड का कहना है कि आज सभी व्यवसायों की नकेल, शक्ति (कोयला, तेल वगैरह) और वाहन-खर्च के हाथों है। यानी इंधन के खर्च में कमी होने से यंत्र-व्यवसाय की बढती होती है और उसमें बढती होने से हाथ-व्यवसायों को।

हिन्दुस्तान के संबंध में एक तीसरा कारण भी है। यहांके गरीबों में इतनी शक्ति ही नहीं होती कि वे बहुत माल खरीद सकें। प्रोफेसर टॉम्पसन कहते हैं:

"हिन्दुस्तान में मिलों की बढती के कारण किसानों की संख्या बढती जाती है क्योंकि मिलें जो व्यवसाय हाथ में लेती हैं, उस व्यवसाय पर जीनेवालों की रोजी मरती है। उन्हें लाचार खेती पर ही गुजर करना पडता है। और इस लिए खेती पर ही गुजर करनेवालों की औसत आमदनी घटती जाती है। हिन्दुस्तान में मिलों की बढती तो हो ही रही है, मगर वे पूँजीवाद के सिद्धान्त पर बनायी जाती हैं, यानी उनसे गरीब जनता का धन नहीं बढता। फलतः माल खरीदने की उनकी शक्ति बढने के बदले घटती जाती है। फिर जो बेकार हो जाते हैं, उनकी क्रयशक्ति तो घटती ही है। एक तो योंही हिन्दुस्तान की क्रयशक्ति बहुत कम है और उसपर भी अगर खेती पर कुछ और लोगों का भार पड जाय तो लोगों की औसत क्रय-शक्ति इतनी घट सकती है कि विदेशों से माल की आमद घटेगी ही, बढेगी नहीं।"

यों हम देखते हैं कि विदेशी माल को हिन्दुस्तान से बाहर रखने में उसकी गरीबी ही बहुत बडी रुकावट है। इस संबंध में यह भी याद रखना चाहिए कि मिलों में कपडा बनाने का जो खर्च सन् १९१४ में लगता था, सन् १९२४ में उसके दुगुना लगता था।

इन सभी कारणों से खद्दर की कीमत में घटी का वर्णन यों किया जा सकता है कि जैसे एक मिल को खोलने में बहुत खर्च पडता है मगर जब वह चल निकलती है तो कुछ वर्षों में पूँजी लौटा कर आमदनी देने लगती है, उसी तरह एक बार खादी चल निकलेगी तो चल निकलेगी। मगर सारी पूँजी का खर्च अगर पहले ही साल की पैदावार पर लाद दिया जाय तो कोई कारखाना नहीं चल सकता। अभी हाल में प्रारंभिक संगठन में कमजोरी वगैरह के कारण खद्दर महँगा पडता है, मगर जब एक बार संगठन पक्का हो गया और वह चल निकला तो मिल के कपडों से खद्दर ही सस्ता पडेगा।

यह भी लोग ठीक ठीक नहीं समझते कि मिलों से लाभ होना उसी हालत में संभव है जब कि हमेशें उनका विस्तार होता जाय। विस्तार रुक जाय तो काम नहीं चल सकता।

इंधन का खर्च बढने के कारण यूरोप के कपडे की आमदनी घटेगी ही, बढेगी नहीं। जापान के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। रह गया अमेरिका, सो उसे अपने ही घर, चीन तथा अफ्रिका से फुरसत नहीं है। फिर ब्रिटेन के कपडे का व्यापार जब घटेगा तो वह राजनीतिक सत्ता के जोर पर यहां देशी मिलों का विस्तार बहुत बढने देगा नहीं।

खादी का दाम घटने तथा, मिलों के कपडों का प्रचार घटने की इन सभी प्रवृत्तियों का समर्थन अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र-सम्मेलन, जेनेवा, की एक रिपोर्ट से भी होता है जो सारे संसार की रुई तथा कपडों के बाजार के बारे में तैयार की गयी थी। इन सभी बातों को देख कर यह खयाल होता है कि मिलों के कपडों के साथ खद्दर की प्रतियोगिता जरूर घटेगी ही।

इसपर कुछ लोग यह उज्र पेश करते हैं कि इस दलील से तो हम इस ऐतिहासिक घटना का ही अस्तित्व इनकार करते हैं कि मिल-व्यवसाय ने सस्ते में अच्छा माल तैयार करके हाथ से काम करनेवालों के वस्त्र-व्यवसाय को मार डाला। मगर हम कहेंगे कि जो इतिहास ऐसी बात कहे, वह इतिहास ही गलत है। दर असल बात यह है कि हिन्दुस्तान का वस्त्र-शिल्प कभी मरा ही नहीं, आज तक वह जिन्दा रहा। और जहां तक नष्ट हुआ भी, वहां तक ब्रिटिश लोगों के, उसके सर्वनाश के लिए ही रचित चुंगी के नियमों, और संगठित रूप में सोच समझ कर आर्थिक तथा राजनीतिक दबावों की बदौलत, न कि मिल की कलों की अपनी विशेषता से। हम देख आये हैं कि ७५ साल पहले मिल का तकुवा जितना काम करता था, उतना काम हमारा चर्खा करता था। हिन्दुस्तानी कारीगरों की निपुणता तथा हिन्दुस्तानी कपडों की अच्छाई और टिकाऊपने की बदौलत, यहांका खद्दर ही इंगलैण्ड में सन् १८१३-१४ तक भी खूब ही बिकता रहा, मगर उसी साल से इंगलैण्ड में जानेवाले हिन्दुस्तानी कपडों पर बहुत भारी चुंगी लगायी जाने लगी। यह बात तब की है, जब मिलों को स्थापित हुए ४०, ५० वर्ष बीत चुके थे, यानी ५० वर्षों से मिलों के चलते रहने पर भी, इंग्लैण्ड में भी हिन्दुस्तानी खद्दर न सिर्फ मिलों के कपडों को हटा कर बिकता ही था, बल्कि उसकी बिक्री रोकने के लिए बहुत भारी चुंगी भी लगानी पडी थी। यों हिन्दुस्तान के वस्त्र-व्यवसाय को मार डालने से इंग्लैण्ड के वस्त्र-व्यवसाय के मजदूरों की शिकायत दूर हुई और इंग्लैण्ड को भारत के अनाज और कच्चे माल का दाम चुकाने का बडा अच्छा साधन मिला। इस प्रश्न के भारतीय पहलू पर बहुत कम विचार किया गया है।

(क्रमशः)

[मि. रिचार्ड बी. ग्रेग की 'खद्दर का अर्थशास्त्र' नामक किताब में से]

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, ज्येष्ठ बदी १२ संवत् १९८४

सवाल तो यह है

बारडोली संग्राम मजे में चला जा रहा है। जिस तेजी से जब्ती की नोटिसें तामील की जा रही हैं, उससे तो कुछ ही दिनों में सारा का सारा ताल्लुका सरकार के हाथों में चला जाना चाहिए और तब सरकार अपने महामूल्यवान लगान के हजारगुणा अधिक वसूल कर लेगी। बारडोलीवाले अगर बहादुर होंगे तो खेती-बारी की जब्ती से उनका कुछ नहीं बिगडेगा। उनका धनमाल जाता रहेगा मगर उनके पास बच जायगी उनकी इज्जत जो हर एक भले स्त्री और पुरुष को प्राणों से भी प्यारी होनी चाहिए। जो कलेजे के दृढ हैं, जिनके हाथों में दम है उन्हें धन की हानि से कभी नहीं डरना चाहिए।

मगर जब्ती की नोटिसें जब कामयाब न हुई तो सरकार ने कार्यकर्त्ताओं को जेलों में ठूसना भी शुरू किया है। पंजाब मार्शल-लॉ के दिनों में जैसे न्यायविचार के प्रहसन देखने में आये थे, आजकल वे वैसा ही नकली इन्साफ कर रहे हैं। प्रोसेक्यूटर साहेब ने सजा माँगी नहीं, कि उन्हें खुश करने में प्रयत्नशील स्पेशल मैजिस्ट्रेट साहेब तुरत ही ऐसी सजाएँ दे देते हैं जिसमें किसीको फिर वैसा करने का साहस न हो और सभी को सख्त कैद की ही सजा मिलती है। जब्ती के समान इनसे भी स्वेच्छा-पूर्वक कष्ट सहनेवालों का भला ही होगा। स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहनेवाले की बुराई उस कष्ट से कभी नहीं होती।

मगर जो बात में दिल में खटकती है, वह है अफसरों की बेईमानी और अपमान-जनक औद्धत्य। गुजरात के कमिश्नर ने एक आदमी को पत्र लिखा है जिसमें अपमान-जनक और व्यंगपूर्ण आरोप और झूठी बातें भरी पडी हैं।

यह इशारा सरासर झूठा है कि यह आन्दोलन खेडा के आन्दोलकों का शुरू किया हुआ है। यह आन्दोलन तो खास बारडोलीवालों ने ही अपने आप शुरू किया था। उन्होंने केवल एक आदमी की मदद और सलाह ली थी। और वे थे श्री. वल्लभभाई, जिनके बारे में मैं मान लेता हूँ कि कमिश्नर को भी थोडा बहुत पता है। यह तो पाठक ही निर्णय करें कि सत्य के नाम पर उन्हें उसी अर्थ में आन्दोलक कहा जा सकता है या नहीं जिस अर्थ में कहने का कमिश्नर का इरादा था।

यह कहना झूठ है कि सरकारी अफसरों के पीछे खुफिया दूत लगे रहते हैं, या वे जहां जाते हैं, उनके आसपास हुल्लड मच जाती है या दूसरे तौर पर उनका अपमान किया जाता है।

कार्यकर्त्ताओं का वर्णन यों किया है, "यह तो आन्दोलकों का एक गिरोह है जो बारडोली वालों पर ही जीता है और उनको कुँए में ढकेलता है।" इस अपमान के लिए भले दिनों में और अगर राष्ट्र को अपनी शक्ति का भान होता तो कमिश्नर को प्रकट मुआफी माँगने को लाचार किया जाता। वह जान जाय कि गुस्से और शक्ति के मद में वह जिन्हें "आन्दोलकों का गिरोह" कहता है, वे राष्ट्र के सम्माननीय सेवक हैं जो स्वार्थ-त्याग करके बारडोली की सेवा मुफ्त में कर रहे हैं। इन लोगों में वल्लभभाई के अलावा, जो खुद बैरिस्टर हैं, वयोवृद्ध अब्बास तैयब जी हैं, जो बैरिस्टर हैं और बडोदा रियासत के प्रधान न्यायाधीश रह चुके हैं, इमाम साहेब बावजीर हैं, जो तकरीबन फकीर ही हो रहे हैं, और जिन्हें अपनी रोटियों के लिए बारडोली से कुछ लेने की जरूरत नहीं है, और हैं डाक्टर सुमंत मेहता और उन्हींके समान उनकी सुसंस्कृत पत्नी। डाक्टर सुमंत मेहता पिछले कई महीनों से बीमार रहते हैं मगर अपने स्वास्थ्य को खतरे में डाल कर बारडोली गये हैं। और इन चारों में खेडा का कोई नहीं है। फिर हैं ढसा के दरबार साहेब गोपालदास देशाई और उनकी बहादुर पत्नी श्री. भक्तिबा, जिन्होंने देश के लिए अपनी रियासत का बलिदान किया है। ये लोग बारडोलीवालों के रुपयों पर नहीं जीते हैं। इनके अलावा और हैं डाक्टर चंदूलाल और त्रिभुवनदास। फिर फूलचंद शाह उनकी पत्नी तथा उनके योग्य सहायक शिवानंद (जो जेल में हैं) के नाम जोड दीजिए। इनमें भी खेडा का कोई नहीं है। इन्होंने कई वर्षों से शान्त सेवा में अपने को उत्सर्ग कर दिया है। यह तो बारडोली की कष्ट कहानी है, जो इन लोगों को तथा दूसरों को खींच ले आयी है। अगर कमिश्नर की आंखों में जरा भी पानी बचा हुआ है तो वह इन महिलाओं और भद्रपुरुषों से अपने आप क्षमा माँगेगा। इतने अधिक कार्यकर्त्ताओं के बीच, सच पूछो तो खेडा के कार्यकर्त्ता दाल में नमक के बराबर भी नहीं हैं।

बडी शान से कमिश्नर ने काउन्सिल के विरुद्ध मत को प्रकाशित किया है, और बडे सुभीते से, अपने मतलब से काउन्सिल के पहले दो प्रस्तावों का जिक्र ही दबा दिया है। वे प्रस्ताव सरकार के विरुद्ध थे और सरकार ने उन्हें इतना हेय माना था कि उन पर विचार करने की भी, उनका जिक्र करने की भी जरूरत नहीं समझी।

कमिश्नर ने काम की इस महत्वपूर्ण बात को छिपाया है, दबाया है कि, सत्याग्रह शुरू करने के पहले, बारडोली के किसानों ने उन सभी उपायों से काम लिया जिन्हें वैध कहते हैं और उनकी शिकायत दूर न हुई, वे बिलकुल असफल रहे।

यह कहते हुए कमिश्नर ने लोगों का आंखों में धूल झोंकी है कि अगर बारडोलीवाले सत्याग्रह बन्द कर दें तो वे उन गांवों के मुआमले की जाँच बखुशी करेंगे जिनके वर्गीकरण में भूल मालूम पडेगी। वह इस सत्य को छिपाता है कि विचारणीय प्रश्न यह नहीं है कि इस गांव या उस गांव के वर्गीकरण में भूल है या नहीं, बल्कि सवाल तो यह है कि लगान निश्चित करने का सारा तरीका ही स्पष्ट गलत है। और **बारडोलीवाले इस पर अडे हुए नहीं हैं कि हमारा ही दावा सही है, बल्कि वे एक स्वतंत्र और निष्पक्ष पंचायत की माँग करते हैं जो उनकी शिकायत की न्याय्यता की जाँच करे और पंचायत का जो कुछ फैसला हो, उसे मानने को वे तैयार हैं।** यहां लगान देने से जी चुराने का सवाल ही नहीं है, व्यक्तिगत शिकायतें दूर करने का सवाल ही नहीं है। सवाल तो यहां सिद्धान्त का है। बारडोलीवाले तो सरकार के इस हक को इनकार करते हैं कि वह जब चाहे, बिना यथोचित जाँच के लगान में कुछ भी बढती कर सकती है। यह भी मैं कह दूं कि यह आन्दोलन किसी राजनीतिक उद्देश्य के लिए, लगान न देने का नहीं है। यह आन्दोलन एक ऐसी स्पष्ट निर्धारित शिकायत के विरुद्ध है, जो एक सारे ताल्लुके के सभी लोगों पर लागू पडती है।

इस लिए कमिश्नर का यह कहना शेखी और झुठाई की हद है कि:

"इसके लिए मुझसे अधिक फिक्रमंद कोई नहीं है कि उन पर जीनेवाले आन्दोलकों का गिरोह उन्हें गलत रास्ते ले जा कर उनका सर्वनाश न करा देवे।

"खेडा जिले में पांच ताल्लुके हैं जहां से ये आन्दोलक आते हैं। वहां के लगान का दुहराना बाढ के कारण दो वर्षों के लिए मुलतवी कर दिया गया है। पिछले ६, ८ महीनों में सरकार ने इस संकट-निवारण के लिए खेडा जिले में कोई ५० लाख तक का तकावी कर्ज दिया है। अगर इन आन्दोलकों को बारडोली में सफलता मिल गयी तो खेडा जिले के लगान और तकावी का वसूल होना खतरे में होगा।"

अगर 'आन्दोलकों' को सफलता मिली तो खेडा का तकावी कर्ज वसूल होना मुश्किल नहीं होगा। अगर कर्ज लेनेवालों ने उसे लौटाने में आनाकानी की तो सरकार देखेगी कि आन्दोलकों के सरगिरोह वल्लभभाई पटेल उसके अवैतनिक पटवारी बन कर कर्ज वसूल करते हैं। खैर, आन्दोलकों की सफलता से होगा यह कि सरकारी अफसरों को सम्मानित लोकसेवकों का अपमान करने का साहस न होगा, झूठी बातें कहने की हिम्मत न होगी, जैसी हिम्मत कि गुजरात के कमिश्नर ने दिखलायी है और जैसा कि बारडोली के बारे में दावा किया जाता है कि वहां अत्यन्त अनुचित और अन्याय्य लगान लगा है, वैसे लगान से लोग बच जायँगे।

जनता से भी एक बात है। सरकार ने अपनी बुद्धिमानी से, और इस बात पर जोर देने के लिए यह राज्य प्रजा में फूट डालने पर निर्भर है, बारडोली जैसे हिन्दूबहुल प्रदेश में मुसलमान अफसरों और पठान को ला बुलाया है। बतौर सत्याग्रही के, लोग चाहें तो सहज ही सरकार को मात दे सकते हैं। वे अफसरों और पठानों के साथ मित्रता का बरताव करें। वे उनपर न तो अविश्वास करें, न उनसे जरा भी डरें और न उन्हें तकलीफ पहुँचावें। अफसर तो हमारे देशबन्धु हैं और पठान हैं पडोसी। तब तो ही सरकार अपनी भूल देख लेगी और जान जायगी कि हिन्दुओं की इज्जत मुसलमानों को भी उतनी ही प्यारी है जितनी हिन्दुओं को तथा मुसलमानों की इज्जत भी हिन्दुओं को वैसी ही प्यारी है। बारडोलीवालों को यह बात कार्य के रूप में दिखलाने का अवसर मिला है। वे सत्याग्रह के नियम की सफलता को दिखलावें, जो कि प्रेम का भी नियम है, और जो किसी स्वेच्छाचारी कमिश्नर के पाषाण हृदय को भी पिघला सकता है।

(यं. इं.)

मोहनदास करमचन्द गांधी

बारडोली का यज्ञ

बारडोली में जो यज्ञ चला रहा है, उसके संबंध में वल्लभभाई ने अब तक कोई आर्थिक मदद नहीं मँागी थी। किन्तु अब उसे मांगने का अवसर आया है। श्री. रविशंकर और श्री. चीनाई जैसे सत्याग्रही सिपाही कैद में जा बैठे। दूसरे भी जायेंगे। जाना ही होगा। लोगों में अगर जीवट होगा और सरकार को अपना हठ अंत तक न छोडना हो तो न तो एक भी सेवक कैद के बाहर रहेगा और न एक भी रैयत माल मिल्कियतवाली या कैद के बाहर रह जायगी। सभी लडाइयाँ अमुक हद तक एक सरीखी ही होती हैं, फिर बाद में वे चाहे पशुबल की हों या सत्याग्रही हों। दोनों में कष्ट सहना तो है ही। यूरोप के महासमर में दोनों पक्ष के लडवैये पायमाल हुए। जर्मनी के असंख्य आदमी बेघरबार हो गये। किन्तु सत्याग्रह और पशुबल का साम्य यहीं खतम हो जाता है। सत्याग्रही आप ही पायमाल होता है। वह विरोधी को पायमाल करने के क्षणिक रस को इरादा-पूर्वक त्याग देता है और अपने त्याग में ही रस लूटता है। इस लिए सत्याग्रही लडाई को यज्ञ कहेंगे। उसमें आत्मशुद्धि है।

इस यज्ञ में आज तक आर्थिक मदद मुख्य कर के बारडोली से ही मिलती रही है। अब तक अकेले बारडोली ताल्लुके में से ही रु. १०,२२७-१३-० मिले हैं, जब कि बाहर से सिर्फ रु. २,२२६-४-० की रकम मिली है। बाहर से जिन्होंने स्वेच्छा से कोई मदद भेजी है, वह स्वीकार की गयी है। अब ऐसा करना शक्ति के बाहर कहा जायगा। बारडोली के लोगों के पास कल्ह न घर होगा, न बार होगा, न खेत होगा और न ढोर ही होंगे। ऐसी स्थिति में बाहर की मदद मँागने का अधिकार वल्लभभाई को है। वल्लभभाई की भिक्षा की पुकार सभी कोई सुनें और जिन्हें बारडोली की लडाई पसंद पडती है, जो उसमें शुद्धि और वीरता देखते हैं, वे यथाशक्ति अपना भाग चुकावें।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद

मगनलाल गांधी स्मारक

अ० भा० चर्खा संघ की काउन्सिल ने अपनी १२ ता. की बैठक में यह प्रस्ताव स्वीकार किया है:

"यह काउन्सिल निश्चय करती है कि स्व० श्रीयुत मगनलाल गांधी की स्मृति में एक खादी-संग्रहालय बनाया जाय। उसके लिए एक लाख रुपयों की अपील की जाय और काउन्सिल निश्चय करेगी कि कहां पर स्मारक बनाया जायगा, तथा उसकी व्यवस्था किस तरह होगी।"

मेरे पास भारतवर्ष के दूर दूर के कोणों से तथा, सुदूर द० अफ्रिका से जो आश्वासन के पत्र आये हैं, उनसे जान पडता है कि मगनलाल ने लोगों के हृदयों में कौन सा स्थान पाया था। उनके जैसे अच्छे और लोकप्रिय, शान्त कार्यकर्त्ता का स्मारक बनाना योग्य है। खूब सोच विचार के बाद अ० भा० चर्खा संघ की काउन्सिल ने निश्चय किया है कि किसी उपयुक्त स्थान पर खादी संग्रहालय खोलने से अधिक अच्छा उनका स्मारक दूसरा नहीं हो सकता। संग्रहालय खोलने की कल्पना तो मगनलाल की ही थी और उन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार सत्याग्रहाश्रम के एक कमरे में छोटा सा संग्रहालय बनाया भी था। किन्तु जिस तरह खादी ने उन्नति की है, उसे देखते हुए तो इसके लिए एक स्थायी और बडे मकान में स्वर्गीय व्यक्ति के योग्य संग्रहालय की जरूरत है। ऐसा संग्रहालय एक लाख रुपयों से कम में बन ही नहीं सकता। इसलिए संघ ने कम से कम एक लाख रुपयों की रकम रक्खी है। गंभीर अध्ययन और शिक्षण के लिए के लिए जो खादी संग्रहालय बनाया जाय, उसके विस्तार की कोई सीमा नहीं हो सकती। एक लाख रुपयों से काउन्सिल केवल बहुत मामूली, मगर काफी अच्छी शुरूआत कर सकने तथा स्वर्गीय व्यक्ति की कल्पना को स्थायी स्वरूप दे सकने भर की ही आशा रखती है। जनता जैसी सहायता देवे, उसके अनुसार संग्रहालय में कपास के संबंध में प्राचीन से प्राचीन तथा नयी से नयी किताबों का संपूर्ण संग्रह रक्खा जा सकता है, पुराने जमानों की तथा आज कल की अच्छी से अच्छी, महीन से महीन तथा भद्दी से भद्दी खादी के नमूने रक्खे जा सकते है, और धुनकी, ओटे तथा चर्खे के पुराने से पुराने तथा नये से नये नमूने रक्खे जा सकते हैं। संग्रहालय के साथ ही थोडी जमीन रक्खी जा सकती है, जिसमें कपास की खेती कर के यह प्रयोग किया जाय कि कैसी खेती से गरीब गांववालों को लाभ पहुँच सकता है, मगर दुनिया के बाजार भाव से या व्यापारी लूट से जिसका संबंध न हो। यह काम सत्याग्रहाश्रम में मगनलाल कर रहे थे। कतवैयों के बीच आश्रम की कपास बहुत लोक-प्रिय हो पडी है। घर की कपास को, जो गांठों के लिए दबा कर निर्बल नहीं कर दी गयी है, धुनने में कहीं आराम और आफियत रहती है, तथा कतवैया मजबूत सूत कात पाता है। अगर दाताओं

ने उदारता दिखलायी और काउन्सिल की माँगी इस अल्पतम रकम से बडी रकम जमा हो सकी तो ये सब, तथा और कई तरह के काम हो सकते हैं।

इस योजना को अ० भा० चर्खा-संघ अमल में लावेगा जो आप ही दिन दूनी रात चौगुनी बढने वाली संस्था है और जिसमें ऐसे ही लोग हैं जो ठोस और रचनात्मक कार्य करने के लिए कमर कसे हुए हैं।

यह अभी तै नहीं हो पाया है कि संग्रहालय रहेगा कहाँ क्योंकि काउन्सिल के सामने कई स्थानों के नाम हैं। दर पेश स्वभावतः ही साबरमती का नाम सबसे पहले ध्यान में आता है। और अगर पीछे से देखा जायगा कि सबसे अधिक उपयुक्त स्थान यही है तो बेशक, काउन्सिल साबरमती को ही चुनेगी। काउन्सिल की इच्छा है कि स्वर्गीय व्यक्ति के समान ही उनका स्मारक संग्रहालय भी काम काजी वस्तु हो। इस लिए स्थान के चुनाव में किसी किस्म की गलत भावना का खयाल नहीं किया जायगा।

इस पत्र में सभी दानों की पहुँच छापी जायगी। श्रीयुत शंकरलाल बैंकर, मंत्री अ० भा० चर्खा-संघ, मिर्जापुर, अहमदाबाद या श्रीयुत सेठ जमनालाल बजाज, ३९५ कालबादेवी रोड, बंबई या व्यवस्थापक सत्याग्रहाश्रम, साबरमती के नाम से दान भेजे जा सकते हैं।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

दलित वर्ग और बाघात रियासत

आखिर गत ५ तारीख को बाघात रियासत के राणा साहेब ने आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब की ओर से एक शिष्ट मंडल से जिसमें राय साहेब लाला गंगाराम, पंडित चमूपति एम. ए., दीवान रामशरणदास लुधियाना, पं. धर्मवीर वेदालंकार, और लाला शंकरनाथ ऐडवोकेट, शिमला, शामिल थे, आर्यसमाज के शुद्ध किए हुए कोलियों के यज्ञोपवीत-धारण पर रिसायत के व्यवहार से जो स्थिति पैदा हो गयी है, उसपर बातें की।

शिष्ट मंडल को ऊपर लिखी बातचीत के बारे में निम्नलिखित संयुक्त-विज्ञप्ति निकालने की इजाजत मिली है:

"शिष्टमंडल के सभ्यों ने राणा साहेब को उनके अतिथि-सत्कार के लिए धन्यवाद दिया। और इस संबंध में शास्त्रों की आज्ञा तथा आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थिति स्पष्ट की। राणा साहेब ने धैर्य से मंडल की बातें सुनी तथा उसे भरोसा दिलाया कि उनकी रियासत में सभी सम्यक् स्थापित धर्म-प्रचारिणी सभाओं को धर्मप्रचार की पूरी स्वतंत्रता है। मंडल ने राणा साहेब को उनकी शिष्टता के लिए तथा उत्साहदायक जवाब के लिए धन्यवाद दिया और बिदाई माँगी।"

इस संयुक्त बयान में अत्यंत अधिक सतर्कता तथा राज्य की भीरुता की झलक दिखलायी पडती है। दलितों के प्रति किये गये अन्याय तथा एक महान् धार्मिक संस्था के प्रति अपमान को स्वीकार करने से जनता में रियासत की इज्जत बहुत बढ जाती। खैर जो हुआ उसीके लिए धन्यवाद देना चाहिए। अगर राणा साहेब की प्रतिज्ञा के भाव का तथा उसके शब्दों का भी पालन हुआ तो अन्याय और अपमान की बात भूल जायगी।

(यं० इं०) **मो० क० गांधी**

सर्वनाशिनी गाडी

१

करुप्पण और उसकी पत्नी पार्वती को घरवालों ने अलग कर दिया है। किसानों में यह चाल है कि जब किसीका व्याह हो जाता है तब घर वाले उसे एक झोपडी अलग ही रहने और अपनी घरवाली के साथ गृहस्थी चलाने को देकर अलग कर देते हैं। तबसे उन्हें आप ही कमाना खाना रहता है। मध्यमवर्ग के आदमी लोगों के संयुक्त परिवार की प्रथा से यह प्रथा कहीं अच्छी है। वहां तो दिन रात दांता किलकिल लगा ही रहता है। करुप्पण के बूढे मावाप गांववाले घर में रहते थे। उसका बडा भाई खेत में ही झोंपडी बना कर रहता था। अब करुप्पण को अलग किया गया। लिए खेतीबारी के तीन हिस्से किये। एक हिस्सा करुप्पण को दिया और एक बडे भाई को तथा एक बूढे बाप को मिला। बडा भाई बाप के ही साथ रहा। सबने मिल जुल कर उसके लिए मिट्टी की झोंपडी उठा दी। मवेशी भी बांट दिये गये। करुप्पण के हिस्से में एक जोडी बैल और दो बकरियां आयीं। करुप्पण की उम्र तीस साल की थी। वह लंबा, तगडा जवान था। और पार्वती गांव भर की सभी स्त्रियों से सुंदर थी। उसका चेहरा मोहड़ा तो रानियों के समान था। मिहनती और कर्म्मंठ इतनी जैसी कि कोई भी न हो। अपने नये घर में जब कभी वह करुप्पण की ओर ताक कर मुस्कराती, वह इतना खुश हो जाता था मानों उसे राज मिल गया हो।

पार्वती अपने बाप के यहां से थोडे रुपये लायी थी। उनसे एक भैंस खरीदी गयी। ठीक समय पर वर्षा हुई। करुप्पण ने भी खेती में जी लगा कर मिहनत की। उसके छोटे से खेत में फसल भी खूब अच्छी लगी। पार्वती सारे दिन हँसती हुई काम में लगी रहती थी। उसके लिए करुप्पण, दोनों बैल, खेत और उसकी भैंस के सिवाय दुनिया में और कुछ नहीं था। जब कभी उसे इन सबोंसे छुट्टी मिलती, वह चर्खा लेकर बैठ जाती। ससुराल आते समय वह अपनी मा के यहां से यह चर्खा लेती आयी थी। रात को अगर चांदनी होती तब भी वह अपनी जेठानी के साथ चर्खा लेकर बैठ जाती। दोनों बातें करती हुई चर्खा चलाती जाती थीं।

भैंस खूब दुधार थी। पार्वती दूध का दही जमाती और रोज सबेरे उसे महती थी। सबेरे घर झाड बुहार कर वह गांव में रोज मट्ठा बेंचने जाती थी और हफ्ते में एक दिन घी बेंचती थी। इस तरह उसे हर हफ्ते दो रुपये मिल जाते थे।

अगले साल करुप्पण ने जरा हाथ पैर बढाये। "न, इससे काम नहीं होगा। यह खेत बहुत ही छोटा है। हम दोनों को इससे भरपूर काम नहीं मिलता है। तब क्या गाडी खरीदूँ और उससे कुछ कमाऊँ? तब तो बैलों से सारे साल काम लिया जा सकेगा। रमण को तो देखो। उसे हर हफ्ते दो, तीन, और कभी कभी तो चार रुपये तक बच जाते हैं। तब तुम्हारे मट्ठे और घी के रुपयों में कुछ और मिला कर एक गाडी क्यों न खरीद लें। लोग कहते थे कि वीरन उदुमलपेठ जा रहा है। महाजन के कर्ज के लिए वह अपना खेत बेंच रहा है और शायद उसकी गाडी सस्ते में ही मिल जायगी।"

पार्वती बोली, "न, न। वीरन की गाडी क्यों लोगे? उससे घर में दुर्भाग्य आवेगा! और फिर गाडी के लिए महाजन से कर्ज करोगे? जैसे हैं, वैसे ही बडे अच्छे हैं।"

"मूर्ख! वीरन पियक्कड है और पी पी कर के उसने अपना सर्वनाश किया है। गाडी में कोई कुलच्छन नहीं लगा है।

...गाडी क्या ही सुंदर और मजबूत है । अगर महाजन से बीस ...हूँ, तो फिर उसे पटा देना मुश्किल नहीं होगा ।"

"मैं तो अपने रुपये का गहना खरीदूँगी । मुझे हँसली चाहिए ।"

करुप्पण ने कहा, "बेवकूफी मत कर । गांव में तुझसे सुंदर कौन लडकी है ? गहनों से तुम्हारी शोभा मारी जायगी ।"

करुप्पण ने ठीक ही कहा । जैसे गहने ये गरीब किसान पहनते उनसे तो उसका दिखाव बढता नहीं ।

पार्वती बोली, "तुम मर्दों को क्या पर्वा कि स्त्रियां क्या चाहती ! आखिर हम औरतजात भला बुरा क्या समझें ? काका से जाकर और तुम सबको जो अच्छा जँचे, करो ।"

...दा, यानी करुप्पण के बाप ने जब देखा कि वह गाडी ...तुला हुआ है, तब कुछ नहीं कहा । गाडी उसी हफ्ते आ ...उसके लिए उसे मित्तादार से ४०) रु. कर्ज लेने पडे ।

२

करुप्पण अब गाडी चलाने लगा । दूर की सवारी मिल जाती ...चौबीस घण्टों तक या उससे भी अधिक देर तक घर नहीं ...था । उसके साथ उसका चचेरा भाई रमण जाया करता था । ...खत्म होने के पहले ही, रमण ने करुप्पण के मुँह ताडी लगा ...। फिर तो जब घर से बाहर निकले, ताडी पीनी जरूरी हो ...बल्कि उसीकी चाट से बाहर निकलने लगा । गाडी की ...दिनों दिन घटती गयी । बैलों की सेवा भी ठीक ठीक न ...लगी । पहली बार जब वह पी कर बुरी हालत में लौटा, ...देख कर पार्वती घबरा गयी ।

वह चिल्ला उठी, "तुमने तो मेरे सत्यानाश कर दिया ।"

करुप्पण बोला, "चुप रह । किस बदमाश ने रुपया चुराया है ।"

पार्वती ने क्रोध से जल कर कहा, "तुमने ताडी पी है ।"

करुप्पण गर्ज उठा, "हां, पी है, पी है, पर तेरे बाप का ...लेकर नहीं । मुझसे पूछनेवाली तू कौन होती है ?"

पार्वती ने डाँटा, "घर में मत घुसो । जाओ अपने बाप के ...। आज मैंने रसोई नहीं बनायी है ।" क्रोध और घृणा से ...मुँह निकृत हो गया था ।"

करुप्पण ने उसे गाली दी, "जा मुँहजली । तेरी गंदी रसोई नहीं चाहिए ।" बल्कि करुप्पण ने उस पर तकरीबन हाथ भी ...दिया था । यह धंधा रोज ही चलने लगा । कभी कभी ...पार्वती को बहुत जोरों से मारता था । पार्वती रोती हुई ...बच्चे को लेकर अपनी जेठानी के घर में चली जाती । इस ...घर के सभी कोई जमा होते और करुप्पण को खरी खोटी ...। मगर वह तो दिनों दिन बिगडता ही गया । बैल बूढे हो ...। करुप्पण ने उन्हें घटी सह कर बेंच डाला । वह दूसरी जोडी ...चाहता था मगर इसके लिए पास में रुपये नहीं थे । ...पार्वती के आगे कसम खायी कि अब फिर कभी शराब ...भी नहीं । पार्वती के दूध और कताई के जोडे हुए रुपये ...उसने अपनी विधवा बहिन से थोडा कर्ज लिया । नये बैल ...गये । तीन महीने बीत गये । मित्तादार ने अपने रुपयों के ...आदमी भेजा करुप्पण ने मुहलत माँगी । मुहलत मिली । ...दुबारा मिली । तीसरी बार भी मिली । मगर चौथी बार ...मित्तादार का आदमी आकर एक बैल खोल ले गया ।

करुप्पण मित्तादार के पास दौडा गया । एक महीने की ...के लिए चिरौरी विनती करने लगा ।

मित्तादार बोल, "मैं अब एक दिन भी नहीं ठहर सकता । ...पैसे चुकाये बिना, तुझ शराबी को किसने बैल खरीदने को ...था ?"

करुप्पण ने कहा, "आप हमारे माबाप हैं । मुझे थोडा और समय दीजिए । मैं आपके रुपये चुका दूँगा ।"

महाजन बोला, "मैं तो एक दिन भी नहीं ठहर सकता । यह बैल तो बुधवार की हाट में बिक जायगा ।"

करुप्पण विनय करने लगा, "नहीं सरकार । मुझे उजाडिए मत । मैं निहंग नहीं हूँ । मुझे मुहलत देने से आपका रुपया डूबेगा नहीं ।"

महाजन बोला, "यह नहीं होगा ।"

करुप्पण बोला, "मैं सूद भी दूँगा ।"

महाजन ने कडक कर डाँटा, "दूर हट बदमाश । मेरे सामने सूद की बात करता है । जा किश्तवारी मुसलमान महाजन के पास चला जा । और उससे कर्ज लेकर मेरा रुपया चुका दे । अगर रुपया नहीं लाता है तो कल्ह तेरा बैल बिक जायगा ।"

महाजन के मुनीब ने कहा, "करुप्पा, मालिक अब नहीं सुनेंगे। क्या करोगे ? जाओ कादिर साहेब के पास । वे तुम्हें उबार लेंगे ।"

३

करुप्पण अपने बूढे बाप के पास गया और कहा कि भाई से रुपया दिलवा दो । भाई तो देने को राजी था, मगर भौजाई नहीं देने देती थी ।

उसने कहा, "अगर भाई को अभी रुपया देते हो तो कभी वसूल नहीं कर सकोगे । उसे कंद्र साहेब के पास जाने दो । हमीं कौन सुख से रहते हैं ? कौन जानता है कि इस साल वर्षा होगी ही ? अगर अगले साल हमारे सिर विपत पडे तो कौन हमारे काम आवेगा ?"

करुप्पण आखिर कादिर खां के पास गया । कादिर खां चुप चाप सारे गांव की आर्थिक उन्नति अवनति का हिसाब देखा करता था । उसे मित्तादार की भी माली हालत की खबर रहती थी । वह बोला,

"तुम नहीं जानते हो । मित्तादार खुद बडी मुश्किलों में पडा है । उसने भी मुझसे रुपया माँगा है ।"

करुप्पण ने कहा, "बडे लोगों की कठिनाई तो किसी तरह दूर हो ही जायगी, मगर मेरा बैल बिक गया तो मैं कैसे जियूँगा ? मेरी मदद करो ।"

कादिर खां ने कहा, "मैंने तो अपने पास का सारा रुपया मित्तादार को देने का वायदा कर लिया है । अब मैं तुम्हारी मदद कैसे करूँ ?"

"मुझे बहुत बडी जरूरत है । तुम्हारे पैरों पडता हूँ । आखिर मुझसे मित्तादार की कथा कहने से क्या मतलब ?"

"गरीब की सहायता करनी तो चाहिए, मगर मैं क्या करूँ ? मैं तो जबान हार चुका हूँ ।"

बहुत बहुत नाक रगडने, गिडगिडाने पर वह कर्ज देने को राजी हुआ । करुप्पण ने पैंतालीस रुपये पाये, मगर उसे साठ रुपये का कागज लिखना पडा । सूद बिलकुल नहीं देना था । शर्त्त यह थी कि हर महीने पांच पांच रुपयों की किश्त कर के वह साल भर में सारा रुपया चुका देगा, और जिस महीने किश्त नहीं दे सकेगा, उस महीने उसे एक रुपया जुर्माना देना होगा ।

कादिर खां ने कहा, "करुप्पा, मैंने तुझपर विश्वास किया है । काम कर, कमा और वक्त पर रुपया चुकाता जा । शराब बिलकुल ही छोड दे । तेरे औरत है, बच्चा है और अभी और कई बच्चे होंगे । अगर तू शराब पीता रहा तो तेरा सत्यानाश हो जायगा ।"

"ठीक कहते हो, गुसैयां, मैं अब फिर भूल कर भी शराब के पास नहीं जाऊँगा। मैंने बहुत बडी सीख पायी है। तुमने गाढे मौके पर मेर बांह पकडी है। तुम्हारी दया मैं कभी नहीं भूलूंगा।"

मित्तादार का कर्ज चुक गया और बैल लौट आया। बचा हुआ रुपया उसने पार्वती के हाथ पर रख दिया और कहा,

"देख, मैं अब फिर कभी शराब ताडी नहीं पीऊंगा पीने की कसम खा ली है। मुझे रुपये पैसे से कुछ भी लेना देना नहीं हैं। तेरी जो खुशी हो करना। मैं जो कुछ कमाऊँगा तेरे पास ला दूँगा।"

पार्वती के आनन्द का पार न रहा। उसने समझा कि अब मेरे दिन फिरे हैं। और वह आनन्द तथा उत्साह से भरी, फूली न समाती, अपने काम में लगी।

४

अब खेत में कोई काम नहीं था। मगर पार्वती ने सोचा, "कहीं न कहीं से काम खोज कर मुझे पति की सहायता करनी ही चाहिए। वह कर्जदार हो रहा है।" बूढा कादिर खां अपने मकान में एक कोठरी बनवा रहा था। उसीमें राज के नीचे तीन चार दूसरी स्त्रियों के साथ वह भी मजदूरी करने लगी।

वह खूब सवेरे उठती। घर साफ कर के दही महती और गांव में मट्ठा बेंचने निकल जाती। वहां गाहकों से जल्दी फुरसत दे देने को कहती। फिर घर आकर जल्दी जल्दी कुछ खा पी कर बच्चे को दूध पिला कर उसे अपनी जेठानी के पास छोड जाती। फिर कादिर खां के यहां काम में लग जाती। दोपहर को भी वह घर आती और किसी तरह ठंढी कढी पीकर बच्चे को दूध पिलाती और फिर दौड कर काम पर चली जाती। उसे संध्या में सूर्यास्त होने पर छुट्टी मिलती। तब वह लौट कर घर के काम धंधों में में लगती। यह सब वह बडी खुशी से करती थी। काम तो मिहनत का था, मगर उसे इसीसे चार आने हफ्ता मिल जाता था जो उसकी इस हालत में मामूली बात न थी।

पार्वती इस भरोसे फूली हुई थी कि उसका पति बिलकुल बदल गया है। करुप्पण ने दो महीनों तक अपने वचन का पालन किया। उसके बाद फिर पुरानी चाट लौट आयी, वह ताडीखानों में जाने लगा। गाडी से जो कुछ आमदनी होती, वह इसीमें वह जाती। वह घर से दो दो तीन तीन दिनों तक गायब रहता और फिर थोडा भूसा, चारा वगैरह ले कर लौट आता। भाडे का हिसाब पूछने पर झूठें बहाने सुना दिया करता। कुछ दिनों बाद यह ठगने की कोशिश भी जाती रही। पार्वती ने भी पूछना छोड दिया। मगर वह घर तथा मजदूरी में उसी तरह मिहनत करती रही।

एक बार कादिर खां आया और उसने रुपयों के लिए बडा शोर किया। बात बढ गयी। वह गालियां भी देने लगा। पार्वती को मिस्त्री के नीचे काम करते हुए गालियां सुनने की आदत तो पड गयी थी, मगर इस बार उसे ऐसी कडी बातें सुननी पडीं, जैसी उसने कभी नहीं सुनी थीं। वह घर में गयी और किश्त का रुपया ला कर उसने कादिर खां के आगे फेंक दिया। पति के चोरी करते रहने पर भी वह उतना बचा सकी थी।

पार्वती दिन भर रोती रही। दूसरे दिन वह काम पर जाने लायक न थी, वह बीमार थी। मगर आखिर वह गयी ही। महाजन के वे भयंकर शब्द उसके शरीर में शूल जैसे चुभ रहे थे। उन्हें वह भूल नहीं सकती थी। पहले के समान अब वह बहादुर, हँसमुख औरत नहीं रह गयी थी। राजमजदूरों के साथ काम करते हुए, वह मर्दों के कडे शब्दों पर सहम उठती, कांप उठती थी। यह अजब भले ही मालूम हो, लेकिन उसकी इस दुर्बलता से ही, जब वह अच्छी थी, तबसे कहीं अधिक बुरी नजरें उसपर पडने लगीं। कादिर खां का लडका मजदूरों से काम करा रहा था। उसकी बातों और नजरों से पार्वती बहुत घबराती थी।

जबसे उसने मजदूरी करनी शुरू की, पार्वती के बच्चे की देख सँभाल कम होने लगी। वह बीमार रहने लगा। एक दिन उसे सर्दी, खांसी और ज्वर हो आया। एक हफ्ते तक बीमार रह कर लडका जाता रहा।

करुप्पण औरतों के समान रोने लगा। उसके बूढे बाप ने समझाया "चुप रह। रो मत। जिसने दिया था, उसने ले लिया।"

पार्वती ने रोते रोते कहा, "काका, भगवान ने हम पर यह विपत क्यों डाली? मैंने किसका क्या बिगाडा है?"

"बेटी, रोने से कुछ नहीं होगा। तू अभी जवान है। तेरे अभी पांच छे लडके हो सकते हैं। सभी बीज तो जम कर अन्न नहीं फलते हैं। तो क्या इस पर हम रोते हैं?"

"काका, मुझे और लडके नहीं चाहिए। मैंने काफी दुःख भोग लिया है। अब तो मैं मर जाऊँ सो ही अच्छा।"

बूढा हँस पडा। वह बोला, "अपने आदमी से कह दि भट्ठी में जाकर गांठ का पैसा न लुटावे। तू इस दुःख से छूट सकती है, संतान पैदा करके फिर सुखी हो सकती है। मौत तुझे छोड नहीं देगी।"

करुप्पण ने कसम खायी, "बाबू, अब मैं फिर कभी इस को नहीं छुऊँगा और जो उसके पास फिर जाऊँ तो मेरा परलोक दोनों बिगडे।"

(यं. इं) (क्रमशः)

चक्रवर्त्ती राजगोपालाचार्य

अखिल भारतीय गोरक्षा-मण्डल

चन्दा और दान

पहले स्वीकार किया गया — रु. ६,८५[illegible]

नवजीवन की मार्फत

नाम	स्थान
एक सेवक	माटुंगा
भाणजी तुलसीदास	कराची
सोमचन्द शाह	अहमदाबाद
शिवसहाय	फर्रुखाबाद
नानालाल ठाकोरदास देसाई	बंबई
एस. एस. कोठारी	चोपडा
राधाकृष्ण राजपाल	मुल्तान
नानजी नागजी	नागपूर
एक गृहस्थ	
धर्मप्रेमी	
भीखालाल गोकलदास	आतरसुम्बा
खेमाभाई अमरदास	बलीस्ना
विश्वनाथ गुप्त	दिल्ली
जे. एस. रायजादा	फर्रुखाबाद
रणछोडलाल वृजलाल	अहमदाबाद
प्रेमजी मेघजी	निजामसागर
बालमुकुन्द लाला	आगरा
सन्तराम	लाहोर
चेलाराम हंसराजमल	कराची
एक गृहस्थ	

कुल जोड रु. ७,[illegible]

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ४०

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द

अहमदाबाद, ज्येष्ठ सुदी ५ संवत् १९८४
गुरुवार, २४ मई, १९२८ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय
सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सच्ची और झूठी औद्योगिकता

पूने में पढे लिखे और विचारशील पुरुषों की एक सभा में श्रीयुत राजगोपालाचार्य ने 'खद्दर के अर्थ-शास्त्र पर' जो भाषण दिया था, उसे हिन्दी पाठकों के लिए भी अत्यन्त लाभकारक समझ कर, उसका हिन्दी छायानुवाद नीचे दिया जा रहा है:

"मैं तो यह मानने को ही तैयार नहीं हूँ कि देश में जो कुछ धन हो, वह उस देश की राष्ट्रीय संपत्ति है। जमीन में भले ही लाखों गडे हों, कुछ लखपतियों के खजानों में भले ही लाखों रुपये पडे हों, मगर यह धन तो राष्ट्रीय संपत्ति नहीं है। राष्ट्रीय संपत्ति तो वह धन है जो लाखों आदमियों में बराबर बँटा हुआ हो।

"आप संपत्ति पैदा करने बाद उसे सबमें नहीं बांट सकते। लोगों को आप इसके लिए राजी ही नहीं कर सकेंगे। मगर आप इस तरह से तो जरूर ही धन पैदा कर सकते हैं जो पैदा होने के साथ साथ लाखों में बँटता जाय। धन पैदा करने का यही रास्ता खादी है।

"न्यायी पिता चाहता है कि उसकी धन संपत्ति उसके सभी लडकों को बराबर बराबर मिले। हम चाहते हैं कि वस्त्र-व्यवसाय और खेती, हिन्दुस्तान की प्राचीन विरासत समझी जायँ और इन पर लाखों आदमियों का हक रहे। ये दोनों ऐसे प्राचीन धंधे हैं, जिनमें सभी कोई शामिल हो सकते हैं, और जो प्रायः सभी जगह सभी किसीके घरों में संभव हैं। इस लिए ये तो ऐसी चीजें हैं जो सब में बँटनी चाहिए। हम उद्योग-धंधों का विरोध नहीं करते। विरोध तो हम महज झूठी और अन्यायी औद्योगिकता का करते हैं। आप खुशी से सच्ची औद्योगिकता का प्रचार करें। लाखों लोगों के ईमान्दारी से पेट की जलन मिटाने का एक ही उपाय है। उसीको छीन कर, इसे औद्योगिकता मत कहिए। अगर आप कर सकें तो, हजारों तरह के दूसरे उद्योगों का आविष्कार कीजिए, उनका संगठन कीजिए। मगर 'वस्त्र-व्यवसाय और खेती पर यंत्र-बल के व्यवसायी धावा मत करें। ये तो सबके होने चाहिए, एक दो के इजारे नहीं। अगर लडका आप संपत्ति पैदा करके उस पर अपना दावा करे तो कोई बाप उसके दावे का विरोध नहीं करेगा। इसी तरह पूँजीपति अपने खास व्यवसाय खडे कर लेवें। मगर खेती और वस्त्र-व्यवसाय को तो गैर-मजरुआ—या संयुक्त संपत्ति—ही मान कर उन्हें कोई न छुवें, क्योंकि हमारे गरीब देशबंधुओं के एक मात्र सहारा वे ही हैं।

"आप कहिएगा कि गरीबों को मिलों में जाने दीजिए। मगर जिस किसीने बंबई के हडतालियों की करुणाजनक दुर्गति देखी है, यह समझे बिना नहीं रह सकता कि जो गरीब आदमी अपने घर-बार छोड कर शहर के कारखानों में काम करने जाते हैं, उनका क्या हाल होता है। बंबई की मिलों के बरखास्त किये गये १ लाख से भी अधिक आदमियों की हालत यह है कि बरसों काम करने बाद भी आज उनके पास इतना धन नहीं है कि वे घर लौटने का रेलवे भाडा भी दे सकें और अब वे गवर्नर साहेब के पास मुफ्त रेलवे-पास के लिए दरखास्त देना चाहते हैं। वे बचा तो कुछ भी नहीं सके हैं, हां, मगर अलमस्ती या लापर्वाई, शराबखोरी, जुएबाजी, और नैतिक बन्धनों की उपेक्षा की बुरी आदतें सीख आये हैं। हिन्दुस्तान के किसान नम्र, मिहनती, भले आदमी, अधभूखे, और अपढ होते हैं, मगर तौभी उनमें वह संस्कृति है, जिसका गर्व कोई राष्ट्र कर सकता है, और ऐसे लोगों को पाप के शिकार बनाना भला राष्ट्रीय कार्यक्रम नहीं कहा जायगा।

"आज तक इतनी पूँजी लगाने बाद, इतना उद्योग बढाने बाद, बुनाई मिलों और ओटाई (जिनिंग) तथा दबाई (प्रेसिंग) मिलों इत्यादि सभी तरह के मिल-वस्त्र-व्यवसाय में मिला कर कुल चार लाख आदमियों को हम काम दे सकें। जब बाहर २० करोड या २,००० लाख आदमी बेकार पडे हैं, तब सिर्फ चार लाख को ही काम देना तो जग जीतना नहीं है। अब जरा दूसरी तस्वीर पर गौर कीजिए। हमने सिर्फ चार साल में, परिश्रम और सार्वजनिक सहायता के बल पर एक लाख आदमियों को घर बैठे सहायक धंधा दिया है। अ० भा० चर्खा-संघ का यह काम कम नहीं कहा जायगा। आप इसे न कुछ कहते हैं और मैं कबूल करूँगा कि यह है भी वैसा ही। यह छोटा है, मगर वैसा ही जैसा कि बीज

होता है। इस बीज से एक विशाल वृक्ष उगेगा, जिसकी छाया में लाखों और करोडों आश्रय ले सकेंगे। जब कि आप न तो अपनी मिलों की संख्या ही बेहद बढा सकते हैं और न उनका प्रबंध ही सफलतापूर्वक कर सकते हैं, हम चर्खों की संख्या प्रायः बेहद बढा सकते हैं और इसे एक ऐसे विशाल वट-वृक्ष का रूप दे सकते हैं जिसका आश्रय इस महादेश के सभी किसान ले सकें।"

(यं० इं०)

बारडोली

जागृति

अहमदाबाद से बंबई तक आप चाहे जहां जाइए, आपको बारडोली के संबन्ध में आश्चर्यजनक सार्वजनिक जागृति दिखलायी पडेगी। खास बंबई में तो जिस मित्र के पास जाइए, वही बारडोली की ताजा से ताजा खबरें जानने के लिए उत्सुक मिलेगा। आपने भले ही बारडोली सत्याग्रह प्रकाशन-समिति के एक आध पर्चे न पढे हों, मगर बंबईवासी मित्र कुछ भी नहीं भूले हैं, वे तो आगे की खबरें जानने को उत्सुक हैं। कितने आदमी बारडोली में धन की सहायता भेजना चाहते हैं, मगर उन्हें पता ही नहीं कि रुपये भेजे कहां जायँ। एक बहिन ने अपना ५००) रु. का चन्दा बारडोली भेजने के लिए दूसरे मित्र के पास भेजा है, और साथ ही वचन भी दिया है कि "जब तक बारडोली के सत्याग्रहियों की माँग पूरी नहीं हो जाती मैं ५००) रु. की सहायता हर महीने दिया करूँगी।"

बंबई के रास्ते में सबेरे नींद भी खुली तो मुसाफिरों में बारडोली की ही चर्चा सुन कर। एक ने पूछा, "आखिर, इसका अंत क्या होगा?" दूसरा वहां का पठान-राज देख आया है। उसने पठान-राज का जीता जागता चित्र ला खडा किया। तीसरे साहेब ने फरमाया, "हम सब कुछ सह सकते हैं, मगर अपनी भैंसों पर पठानों का जुल्म नहीं सह सकते। और आप लोग तो जानते ही हैं, अब वे शील, संकोच तथा सभ्यता की सभी मर्यादा को पार कर गये हैं। उस दिन मढी में एक खातेदार के घर के पिछवाडे के बाडे से हो कर एक पठान घुसा। खातेदार की पत्नी दौड कर घर में घुस गयी और भीतर से दरवाजा बन्द कर रही थी, मगर पठान ने जोर से धक्का दे कर दरवाजा खोला और उसका हाथ पकड कर उसे बाहर खींच निकाला। आखिर इसके क्या मानी हैं? इसका अंत कहां होगा?" एक दूसरा मुसाफिर जो नवसारी में सवार हुआ, बोला, "सरभोण के जप्ती अफसर गुलाबभाई अणावला ब्राह्मण हैं। बेचारे के औरत तो है ही नहीं। लडके ने भी जहर खा कर आत्महत्या कर ली थी। उनके आगे-पीछे रोनेवाला और कौन बैठा है? तब वे यह कमाई किसके लिए कर रहे हैं?" मुझे तो दिन की गाडी से भी चलने का अवसर मिला था। बहुत से मुसाफिरों के हाथों में बारडोली की प्रचार-पत्रिकाएँ थीं। उनमें कुछ तो श्री. वल्लभभाई का भाषण जोरों से पढते और स्थिति पर बहस कर रहे थे। नवसारी की गलियों से हो कर मैं गुजरा। मेरी पीठ पर मेरा झोला देख कर एक पारसी मेरे पीछे दौडा आया और पूछने लगा कि "झोली में क्या बारडोली पत्रिका है?"

अखिल भारतीय प्रश्न?

इस युद्ध का महत्त्व इसी से जान पडता है। अगर बारडोली की चर्चा सारे हिन्दुस्तान में न होने लगे तो यह कसूर बारडोली के सरकारी अफसरों का न होगा। वे तो इसे घर घर की चर्चा बनाने के लिए एडी और चोटी का पसीना एक कर रहे हैं।

गुजरात के कमिश्नर मि. स्मार्ट ने अफसरों को जो आज्ञा दी है कि इस आन्दोलन को कुचल दो, उसके पालन में उन अफसरों ने अपने अधिकार मानों पठानों को दे दिये हैं। उनमें एक के अत्याचार की कहानी तो ऊपर कही जा चुकी है। उन सभी को दरवाजा तोड कर, पिछवाडे के रस्ते घर में घुसने दिया जाता है, बाडा तोडने दिया जाता है, टट्टियाँ फाडने दी जाती हैं, ढोर ले भगाने दिया जाता है। एक पठान तो बारडोली स्टेशन पर चोरी करते हुए भी पकडा गया था। पेन्शनयाफ्ता लोगों के नाम नोटिसें निकली हैं कि "अगर तुम लोग अपना बकाया लगान चुकाते नहीं हो तो तुम्हारी पेन्शन बंद कर दी जायगी।" कई आदमियों की हथियार की लायसंस छीन ली गयी है। ये स्वेच्छाचार और कमिश्नर का अपमान जनक पत्र, अगर वह इसी बीच लौटा नहीं लिया गया तो, हिन्दुस्तान को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान अवश्य करावेंगे।

(यं० इं०) **महादेव देसाई**

सर्वनाशिनी गाडी

८

बेचारी दुःखिनी पार्वती की विपत यहीं पर खत्म नहीं हुई। दूसरे बुधवार को रामपुरम के ताडीखाने के पास से गुजरते हुए, करुप्पण अपनी कसम भूल गया। अब तो वह बहुत दिनों से ताडी के बदले शराब पीने लगा था। वह तिरुपुर में गाडी पर सामान पहुँचा कर, दूसरे गाडीवानों के साथ लौटा आ रहा था। शराब की दूकान पर वह रुक गया और उसने अपने साथियों को पुकारा,

"हो, हो, शराब पीने कौन चलता है? मैं तो इसे छू ही नहीं सकता। मुझे चाहिए ही नहीं।"

एक दूसरे गाडीवान ने कहा, "तुम्हें जब पीना नहीं है तो इतना शोर क्यों करते हो? जाओ अपना रास्ता लो, और पैसे बचावो।" वह दूकान में कूद कर चला गया। करुप्पण थोडी देर तक खडा रहा, फिर वह भी भीतर चला गया।

घुसते समय उसने अपने मन में कहा, "यही अखीरी दफा पीऊंगा। फिर कभी शराब को हाथ भी नहीं लगाऊँगा।"

हाट के दूसरे दिन भी फिर यही बात हुई। उसने अपने साथियों से कहा, "भाई अगर हम दुःख चिन्ता भुला सकते हैं तो उन्हें क्यों न भुलावें?"

दूसरे ने जवाब दिया, "धत्तेरे की, यह रुपया एडी का पसीना चोटी चढा कर हमने नहीं तो और किसने कमाया है? अपनी खुशी से हम खर्च करेंगे। हमारा हाथ कौन रोक सकता है?"

तीसरा बोला, "ठीक कहते हो भाई, इस दुनिया में हजार वर्ष के लिए कौन आया है? यह रुपया न तेरा है, न मेरा है।"

चौथे ने सुनाया, "हा हा हा, ठीक तो यह रुपया अगर है तो भट्ठीवाले का है।"

फिर किसीने जडा, "चुप रह मूर्ख। सभी के सभी पंडिताई छांट रहे हैं। अरे यह शराब तो गला जला रही है।"

करुप्पण ने डांटा, "बुरा हो इन कपास के व्यापारियों का। वे चोट्टे हमारा हक छीन लेते हैं, ठग लेते हैं।"

इसी ढंग पर इनका चर्खा चलता रहा। रात होने के बाद वे अपनी गाडियों पर पहुँचे।

कादिर खां के तकाजे का समय आ रहा था। करुप्पण को पार्वती बार बार कह रही थी कि उसके आने के पहले ही किस्त चुका आवो।

करुप्पण ने कहा, "उसका सत्यानाश हो। आने तो दे। अब जो फिर उसने ऐंडी बेंडी सुनायीं तो उसका सिर ही कुचल दूँगा।"

...र मुसलमान तो कई दिनों तक नहीं आया। शायद वह दूसरे ...ों में लगा हुआ था। और इधर करुप्पण सारी बातें भूल गया। एक दिन सुबह में कादिर खां का लडका इस्माइल आया, मगर ...मांगने के बदले उसने करुप्पण से मिर्चे के कुछ बोरे रामपुरम ...आने को कहा। करुप्पण बोला।

"मुझे कोमार कौन्दन का पुआल ढोना है। मैं उसे एक हफ्ते ...हे हुए हूँ।"

इस्माइल ने जवाब दिया, "कोई पर्वा नहीं है करुप्पण। कोमार ...न्दन का पुआल अभी पडा रह सकता है। हमारे बोरे तो ले ही ...ने होंगे। अगर वे आज न गये तो हमें बडा घाटा लगेगा।

करुप्पण राजी हो गया। और खास कर इसलिए कि ...जन रुपये की बात भूला हुआ सा जान पडा।

शाम को, जब करुप्पण बाहर गया हुआ था और पार्वती ...र में अकेली खाना पका रही थी, इस्माइल खां फिर आया।

उसने बाहर से आवाज दी, "करुप्पण लौट आया क्या?"

वह बोली, "नहीं जी, अभी नहीं।"

इस्माइल ने घर में घुसते हुए कहा, "हां, इतनी जल्दी वह ...ही कैसे सकता हैं, और जब कि रास्ते में भट्ठी भी पडती है।"

पार्वती ने कहा, "हां हम गरीब स्त्रियों के सर्वनाश के लिए ...ठी तो वहां है ही।"

इस्माइल बेपूछे बैठ गया और पार्वती यह सोचती हुई कि वह करुप्पण के आने का रास्ता देख रहा है, अपने काम में लगी रही। इस्माइल ने बातचीत शुरू की,

"भला कह तो, ऐसे खाविंद से तेरा जी नहीं उकता गया है?"

पार्वती ने बिना घूमे, अपना काम करते ही करते कहा, "जिसके साथ संपत विपत सब में चोटी बांध दी गयी, उससे कोई औरत कैसे उकतायगी?"

इस्माइल बोला, "हां, हां, खाविन्द तो खाविन्द ही है। उसे कोई नहीं छोड सकती।"

वह फिर बोला, "क्या अफसोस है कि तेरी सी नायाब औरत ऐसे पियक्कड के पाले पडी।"

पार्वती कुछ न बोली।

इस्माइल ने तब उसके सुख दुःख के बारे में पूछना शुरू किया। कुछ देर तक बातें करने बाद, वह करुप्पण का रास्ता देखे बिना लौट गया।

दूसरें दिन भी इस्माइल फिर आया, और उसने करुप्पण को कोई काम दे दिया और फिर उसी तरह तीसरे पहर में हाजिर हुआ। अपने साथ वह खजूर के गुड की कुछ भेलियां लाया था। उन्हें उसने पार्वती को यह कहते हुए जबर्दस्ती दे दिया कि उसे किसी पासी ने भेलियां मुफ्त में दी थीं।

वह बोला, "मैं जब कभी तुम्हें देखता हूँ, मेरे मन में न जाने कैसी खुशी छा जाती है।"

पार्वती ने मन में कहा, "आखिर इस ढंग से नतीजा क्या होगा?"

इस्माइल बोला, "जब मैं तुम्हारे पास आता हूँ तो तुम कांपने क्यों लगती हो? क्या तुम्हारा खयाल है कि मैं कर्ज के लिए तुम्हें दिक करूँगा? अगर तुम मुझसे जरा मीठे मुँह बात किया करो तो मुझे रुपये की कोई पर्वा नहीं है।"

सारी कहानी कहने से क्या लाभ? कई दिनों तक पार्वती ने पाप से युद्ध किया, मगर आखिर वह गिर गयी, सत्पथ पर से फिसल पडी। जहां कहीं उसका शिकार गरीब और लाचार होता है क्रूर और कामुक पुरुष जीत जाते हैं।

६

फिरंबुर का ताडीखाना है। बाहर कई अछूत दीवार के उस छेद के पास खडे हैं, जिससे होकर उन्हें ताडी दी जाती है। भीतर तो गंदगी की सीमा नहीं है। धूल, गर्द, मक्खियों, और सडी ताडी के दुर्गंध से वह स्थान नरक हो रहा है। सभी पियक्कड आपस में बक झक रहे हैं।

करुप्पण बोला, "बदमाश कहींका, फिर जो बोला तो तेरे दांत तोड दूँगा।"

"मेरे दांत तोड देगा! शाबास पट्ठे। जरा देखो तो इसकी बहादुरी जो अपनी ही औरत को नहीं सँभाल सकता। और आया है मेरे दांत तोडने।"

खटाक, करुप्पण की चुकडी उसके मुँह में लगी और उसकी नाक से खून बहने लगा।

एक दूसरा बोला, "बेवकूफ हैं सब। वाह क्या ही अच्छी ताडी है, और उसे ही ये बेवकूफ, औरतों के पीछे फेंक रहे हैं। अरे, औरतों का विश्वास ही कौन करता है।"

चौथा बोल उठा, "रमण मर गया।" उसने रमण के मुँह में से खून पोंछा। रमण को मामूली ही चोट लगी थी। वह उठ बैठा। उसने एक ईंट उठा कर करुप्पण पर बडे जोर से फेंका। करुप्पण सिर हिलाकर, उससे बच गया।

दूकानदार चिल्लाने लगा, "दूकान में मत लडो। निकलो, बाहर निकलो।"

करुप्पण बाहर निकला। उसके पीछे से रमण दौडा, मगर दरवाजे पर ठोकर खा कर गिर पडा। करुप्पण हजारों गालियां देता हुआ अपनी गाडी में जा बैठा।

करुप्पण घर पर और दिनों से सबेरे पहुँचा। उसने देखा कि दरवाजा भीतर से बन्द है।

वह चिल्लाने लगा, "अरी औरत, घर बंद कर के क्या कर रही है? मैं बाहर खडा हूँ। खोल, दरवाजा खोल। ले जा बैलों को, पानी पिला ला।"

भीतर पैरों का आहट सुनायी पडा। फिर थोडी देर बाद दरवाजा खुला। इधर करुप्पण चिल्लाता रहा।

दरवाजा खोल कर पार्वती बाहर आयी। उसने करुप्पण के सामने खडा हो कर कहा, "देखो तो जरा कि भैंस को क्या हो गया है? दिन भर वह लात चलाती रही है और दुहने ही नहीं देती।"

"जा, मर जाय तेरी भैंस! मुझे प्यास लगी है। पानी ला।" यह कह कर वह भीतर घुसा।

इस्माइल भीतर ही था। वह दीवार के पास से खिसक जाना चाहता था।

करुप्पण चिल्ला उठा, "यह शैतान यहां क्या कर रहा है हरामजादी?"

उसने पास ही पडी कुदाली उठाली और अपनी औरत पर भर जोर से चला दी। तब उसने दाव उठा लिया और उसीसे इस्माइल पर एक चोट भरपूर कर दी। इस्माइल जो भागा जा रहा था, वहीं गिर पडा, और खून की धारा बह चली। तब वह पार्वती की ओर लपका जो अपनी जेठानी के घर की ओर रोती चिल्लाती भागी जा रही थी। करुप्पण ने उसे खदेडा, मगर जब देखा कि हल्ला सुन कर पास पडोस के लोग आ गये हैं, तब रुक गया। फिर उसने जमीन में पडे हुए इस्माइल की ओर देखा। उसे हिलते हुए देख कर झपटा कि उसके टुकडे टुकडे कर देवे मगर आये हुए लोगों ने उसे पकड कर रोक लिया।

(क्रमशः)

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

(यं. इं)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, ज्येष्ठ सुदी ५ संवत् १९८४

पुण्य का सौदा

गोआ शहर में अस्पताल चलाने के लिए 'लॉटरियों' (चिट्ठी) से रुपया जमा किया जाता है। एक मित्र मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं। उनका कहना है कि ब्रिटिश भारत से लोग इस व्यर्थ आशा में लाखों रुपये इन 'लॉटरियों' के लिए भेजते हैं कि वे बिना परिश्रम किये ही धनी हो जायँगे और साथ ही पुण्य भी लूटेंगे। उस मित्र के भेजे एक विज्ञापन से कुछ उतारे सुनिए, "जरा बीमारों की ओर भी तो देखिए। जो गरीबों पर दया करता है, वह पुण्य का सौदा करता है। तब, इस बार एक रुपये की बाजी लगा कर आप हमारे गरीबों की सहायता क्यों नहीं करते? यह क्या ही सुंदर दान है!" विज्ञापन में किसी बूढे पादरी साहेब की तसवीर भी छपी है।

यह जानना रोचक होगा कि इन लॉटरियों के नफों से बने अस्पतालों की क्या हालत है। तब तक इसकी नीतिमत्ता की परीक्षा करनी उचित है मनुष्यों के लोभ का लाभ उठाकर धन जमा किया जाय और उस धन से परोपकारी संस्थाएँ बनायी जायँ, तथा लॉटरी का टिकट खरीदनेवाला अगर इनाम न पा सके और लाखों आदमियों को इनाम जरूर ही नहीं मिलेगा तो उसे पुण्य-प्राप्ति का सब्जबाग दिखला कर उसका लोभ उत्तेजित किया जाय, यह कहां तक उचित है।

आज तो वातावरण में यह हवा फैली हुई है कि हम बिना काम किये, और सौभाग्य-दिवस का रास्ता देखे बिना ही, अचानक, अभी अभी धनी हो जायँ। हर एक आदमी जो लॉटरी या घुडदौड पर एक रुपये की बाजी लगाता है, वह बहुत से स्त्रियों और पुरुषों की वैसी ही आशाओं की निष्फलता की नींव पर अपनी आशाओं का महल उठाता है, और इन स्त्री पुरुषों को भी इनाम जीतने का उतना ही हक होता है, जितना कि इनाम जीतने वाले थोडे से सौभाग्यशाली (?) लोगों को होता है। जब कि जुए की भावना उन लोगों में भी घुसी हुई है जो समाज के सबसे अधिक सम्मानित पुरुष समझे जाते हैं, तब सिर्फ 'लॉटरी' को ही अलग चुन कर उसकी टीका करनी कठिन है। सट्टे का बाजार अगर जुआ खेलना नहीं तो और क्या है? और तौभी जुए के इस ज्वर से कौन बचा हुआ है? सट्टे के बाजार में हाथ मार कर जो अपने को एक ही दिन में धनी होते हुए पाते हैं, उनमें से हर एक आदमी जानता है कि उसके घर में लक्ष्मी के एका एक आने के मानी हैं कि कितनी ही विधवाओं के घरों का सत्यानाश हुआ होगा, उनके घरों का जलता चूल्हा बुझ गया होगा। उन विधवाओं के रिश्तेदारों ने भी उसी तरह की आशा बेशक की होगी, जैसी कि, हमारे कल्पना के चतुर सट्टेबाज ने की होगी।

यह बात विचित्र जान पडती है, मगर दर असल कपास, चावल और जूट पर ये सट्टे किये जाते हैं। लॉटरी की पद्धति भी जुए की उसी भावना का मोटा और भद्दा विस्तार है। बेशक, लॉटरी को बुरी, अप्रतिष्ठित मानना बहुत अच्छा है. मगर उससे भी अच्छा होगा, लॉटरी और शेयर मारकेट के भीतर छिपी भावना को पहचान लेना और तब इस रोग की जड ही काटनी न कि केवल उसका सबसे बुरा लक्षण भर ही हटाना। इसलिए आशा की जाती है कि सबसे बुरे लक्षण के ही जरिए हम रोग की जड तक पहुँच कर उसका इलाज कर सकेंगे।

मगर यह तो बहुत दूर की आशा है। एक आदमी भी लॉटरी में शामिल होने का औचित्य यह कह कर साबित न करे कि यह रोग सर्वत्र फैला हुआ है।

अगर यह लॉटरी किसी परोपकारी संस्था के संबन्ध में हो तो सावधानी की और भी अधिक जरूरत है। योग्यता पैदा किये बिना धनी होने की इच्छा करना बेशक बुरा है, मगर परोपकार के साथ जुआ जोडना तो जरूर ही बहुत अधिक बुरा है। जो लोग लॉटरी में रुपये फेंकें, वे यह कभी न सोचें कि एक अनुचित इच्छा की पूर्ति करने की आशा रखते हुए भी वे पुण्य की गठरियाँ लूटेंगे। हम एक ही साथ दोनों नहीं कर सकते कि परमात्मा की पूजा भी करें और अपने टके भी सीधा करें।

और गोआ के अस्पतालों के ईसाई संचालक, मनुष्यों की लोभ-प्रवृत्ति से लाभ उठा कर धर्म को गढे में क्यों गिराते हैं? क्या वे समझते हैं कि लाखों आदमियों की नीति बिगाड कर, अस्पताल चलाने में वे परमात्मा को प्रसन्न करते हैं? क्या वे राम को देने के लिए सोहन के घर डाका नहीं डालते? इने गिने शरीरों के रोग छुडाने से ही क्या, अगर उनके हजारगुणा अधिक आत्माओं को घायल किया जाय?

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

म्युनिसिपल स्कूलों में कताई

जलगांव खादीबोर्ड के मंत्री ने मेरे पास वहांकी म्युनिसिपैलिटी की शालाओं में चर्खे और तकली पर कताई के बारे में एक भली भांति लिखी हुई रिपोर्ट आंकडों के साथ भेजी है। यह रिपोर्ट १५ जून १९२७ से १५ फरवरी १९२८ तक की है। तकली या चर्खे पर १४९ लडकियां और १२६ लडके कातते रहे हैं। रोजाना २५ से ५० मिनट तक तकली या चर्खा चलता रहा है। कुल सूत ४,४८,००० गज कता है। तकली पर कताई का वेग अधिक से अधिक १२५ गज और चर्खे पर ३२५ गज घंटे में आया है। यह तो काबिल-तारीफ काम है। जो बात जलगांव म्युनिसिपल स्कूलों में संभव हो सकी है, वह सभी म्युनिसिपल स्कूलों में संभव है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि अगर हिन्दुस्तान को इसकी चाह हो तो वह अपनी शालाओं में पढनेवाले लडके लडकियों के जरिए ही अपने काम का सारा सूत कतवा ले सकता है, और साथ ही उन बच्चों को स्वाभिमान और स्वावलंबन का पाठ उनकी पढाई के काल में ही सिखला सकता है, जिसे कि कुछ लोग गलत हो गैरजिम्मेवरी और मजे उडाने का काल समझते हैं। यह भी लिखा है कि केवल चर्खा चलानेवाले लडके अपनी रुई आप धुन लेते हैं। इसका अर्थ तो यह होता है कि तकली चलानेवाले नहीं धुनते। यह बात दिनों दिन अधिकाधिक समझी जा रही है कि अच्छी कताई का रहस्य महज अच्छी धुनाई नहीं है, बल्कि बिलकुल पक्की धुनाई है। यह तभी हो सकता है, जब सब कोई अपनी अपनी रुई धुन लेवें। अगर इसे सीखने की सच्ची कोशिश की जाय तो यह सहज ही सीखी जा सकती है। एक और सूचना मैं यह करूँगा कि शीघ्र से शीघ्र इस सूत की खादी बुनवा ली जाय। इसके लिए किसी होशियार लडके को बुनना सिखलाया जाय या कोई शिक्षक सीख लेवें या इनमें कोई बात न हो सके तो स्थानीय बुनकरों को ऐसा सूत बुनने को राजी किया जाय।

(यं० इं०) **मो० क० गांधी**

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय ६

मेरा प्रयत्न

...पहुँच कर, अंतिम क्रिया समाप्त कर, हम सबकोई इसी चर्चा ...गये कि अब सोसायटी को कैसे चलाया जाय, तथा मैं उसमें ...होऊँ कि नहीं । मेरे ऊपर बहुत बडा बोझ आ पडा । ...अगर जीवित होते तो मुझे सोसायटी में दाखिल होने का ...करना भी नहीं पडता । मुझे केवल गोखले की आज्ञा और ...के वश होना था । यह स्थिति मुझे पसंद पडती थी । ...के तूफानी समुद्र में अपनी नाव खोलते हुए मुझे नाखुदा ...) की जरूरत थी और गोखले जैसे खिवैया के अधीन मैं ...त था ।

अब मुझे लगा कि सोसायटी में दाखिल होने के लिए मुझे ...प्रयत्न करना रहा । मुझे जान पडा कि मानों गोखले की ...ऐसा ही चाहती हो । मैंने बिना किसी संकोच के और ...पूर्वक इस प्रयत्न का आदर किया । इस समय सोसायटी के ...सभी सदस्य पूने में हाजिर थे । उनसे विनय करनी तथा ...संबंध में जो भय था, उसे दूर करना मैंने शुरू किया । ...मैंने देखा कि सभ्यों में मतभेद था । एक मत मुझे दाखिल ...का था तो दूसरा मुझे दाखिल करने के विरुद्ध दृढता-पूर्वक ...। मैंने अपने प्रति दोनों का प्रेम देख सकता था । किन्तु मेरे ...प्रेम की अपेक्षा, सोसायटी के प्रति उनकी वफादारी शायद ...थी, प्रेम से कम तो थी ही नहीं ।

इससे हमारी सारी चर्चा मीठी थी और केवल सिद्धान्त के पीछे ...वाली थी । विरुद्ध पक्षवालों को ऐसा लगा कि बहुत सी बातों ...मेरे और उनके विचारों के बीच उत्तर और दक्षिण के समान ...था । इससे भी अधिक, उन्हें यह जान पडा कि जिन ध्येयों ...लिए सोसायटी खोली गयी थी मेरे दाखिल होने से उन ध्येयों ...ही जोखम में पड जाना बहुत कुछ संभव है । स्वभावतः ही ...उन्हें असह्य लगा ।

बहुत चर्चा के बाद हम अलग हुए । सभ्यों ने अंतिम निश्चय ...दूसरी सभा के लिए मुल्तवी रक्खा ।

घर जाते हुए मैं विचार में पड गया । अगर मताधिक्य से मैं ...होऊं तो क्या यह इष्ट कहा जायगा ? क्या वह गोखले के ...प्रति वफादारी कही जायगी ? जो मेरे विरुद्ध अधिक मत पडे ...इसमें सोसायटी का स्थिति कठिन करने का निमित्त मैं ...बन जाऊँगा ? मैंने स्पष्ट देखा कि जब तक सोसायटी के सभ्यों ...मुझे दाखिल करने के बारे में मतभेद है, तब तक मुझे ...होने का आग्रह आप ही छोड देना चाहिए तथा विरोधी पक्ष ...नाजुक स्थिति में डालने से बचा लेना चाहिए और इसीमें ...के प्रति तथा गोखले के प्रति मेरी वफादारी है । ...में यह निर्णय उगा कि मैंने तुरत ही श्री शास्त्री जी को ...लिखा कि मुझे दाखिल करने के लिए आप सभा न करें । ...करने वालों को यह निश्चय बहुत ही पसंद पडा । वे धर्म-...में से उबरे । उनके और मेरे बीच धर्म-गांठ ज्यादह ...बनी । और सोसायटी में दाखिल होने की अपनी अर्जी ...कर ही मैं सोसायटी का सच्चा सभ्य बना ।

अनुभव से मैं देखता हूँ कि सोसायटी का नियमपूर्वक सभ्य ...हुआ सो योग्य ही था, और सभ्यों ने मुझे दाखिल करने ...जो विरोध किया सो भी वास्तविक था । अनुभव ने यह दिखला दिया है कि उनके और मेरे सिद्धान्तों में भेद था । किन्तु मतभेद जान लेने पर भी हमारे बीच आत्मा का अंतर कभी नहीं पडा है, खटास कभी नहीं हुई है । मतभेद होने पर भी हम बंधु और मित्र रहे हैं । सोसायटी का स्थान मेरे लिए यात्रा का स्थल रहा है । लौकिक दृष्टि से मैं भले ही उसका सभ्य न हुआ, आध्यात्मिक दृष्टि से तो सभ्य रहा ही हूँ । लौकिक संबंध में आध्यात्मिक संबंध ज्यादह कीमती है । आध्यात्मिक के बिना, लौकिक संबंध, बिना प्राण की देह के समान है ।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

क्रय-शक्ति

आज संसार में सबसे धनी देश अमेरिका है । अगर हिन्दुस्तान को अपना दुःख दारिद्र दूर करना है तो, हमें यह देखना चाहिए कि अमेरिका क्यों कर संसार का सबसे धनी देश हो गया है और उसके तरीके को हम, अपनी परिस्थिति के अनुकूल आवश्यक परिवर्त्तन करने बाद, अपना सकते हैं या नहीं ।

पहली बात तो यह है कि अमेरिका में यंत्रशक्ति का बहुत उपयोग किया जाता है । फलतः पहले जहां थोडा काम होता था वहां अब पहले से कई गुणा अधिक काम होता है—पहले तो आदमी खाली हाथों जितना माल तैयार कर सकता था अब उसके अनेक गुणा अधिक माल तैयार करता है । मगर तौभी यंत्र-युग के पुजारी दूसरे देशों की कठिनाइयों का सामना अमेरिका को क्यों नहीं करना पडता ? आज इँग्लैण्ड को अपना माल बेंचना दूभर हो रहा है । दूसरे देशों की भी ऐसी ही दुर्गति हो रही है गोकि वे दूसरे गरीब देशों का जीवन रक्त भी चूसते जाते हैं । इस प्रश्न पर संसार के सबसे बडे व्यवसायी 'फोर्ड मोटर कार' वाले मि. हेनरी फोर्ड का कहना है:

"यह सच है कि टुटपुँजिया व्यवसाय व्यवसायी–मजदूर और जनता तीनों की भूल पर चल सकते हैं मगर न तो बडे व्यवसाय इस रूप में चल सकते हैं और न छोटे व्यवसायों का विस्तार ही हो सकता है । सीधी और सच्ची बात तो यह है कि आपके कारखाने का माल खरीदनेवाले गाहक कुछ आसमान से नहीं टपक पडते हैं । कारखाने के मालिक, मजदूर और गाहक मंडली, सबकी सब एक ही है । इनमें कोई फर्क नहीं है । और इस लिए जब तक कोई व्यवसाय ऐसा नहीं करता कि मजदूरों को अधिक मजदूरी दे और माल सस्ता बेंचे, वह अपनी टांग में आप कुल्हाडी मारता है क्योंकि ऐसा न करने से उसके ग्राहकों की संख्या मर्यादित हो जाती है ।

"अगर हम नौकरों को अधिक मुशाहरा देते हैं तो उनका वह रुपया खर्च तो होगा ही । और फिर इस तरह दूसरे व्यवसाय में काम करनेवालों की भी समृद्धि बढेगी ही जिसके फलस्वरूप हमारे व्यवसाय की भी उन्नति होगी ही । सारे देश में मजदूरों की आमदनी बढ जायगी, जिससे सारे देश की समृद्धि बढेगी, बशर्त्ते कि अधिक माल की तैयारी के लिए अधिक मजदूरी दी जाया करे, नहीं तो महज रुपया बढेगा, समृद्धि या संपत्ति नहीं ।

"मजदूरी बढा कर देश की समृद्धि बढाने के विचार से ही इस देश की इतनी उन्नति हुई है ।

"तब किफायत करने के लिए, यांत्रिक शक्ति से काम लेने के लिए, जाया जाना रोकने के लिए, और यों अधिक मजदूरी देने के यथार्थ उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें बडे बडे व्यवसाय चाहिए, मगर यह आवश्यक नहीं कि वे केन्द्रीय यानी एक ही स्थान में हों । हमें हर एक व्यवसाय को सारे देश में फैला देना चाहिए ।

"जो आदमी बेकार है, वह माल नहीं खरीद सकता। जिसे हम आधापेट खिलाते हैं यानी कम वेतन देते हैं, वह भी बहुत कम माल खरीद सकता है। बाजार मंदा होता है, ग्राहकों की क्रयशक्ति के घटने से। और क्रयशक्ति घटती है, आमदनी में कमी या अनिश्चयता से। इस लिए बाजार की मंदी का इलाज है क्रयशक्ति बढाना और क्रयशक्ति बढेगी, नौकरों का वेतन बढाने से।

"तब तक सच्ची समृद्धि दूर ही रहेगी, जब तक कि किसी मामूली सामान के बनानेवाले प्रायः वही सामान न खरीद सकें जिसे कि वे तैयार करते हैं। आपके अपने नौकर भी आपके ग्राहक हैं। यह बात सर्वत्र लागू होनी चाहिए। मगर यूरोप की कठिनाई यह है कि वहां माल तैयार करनेवालों से यह आशा कोई रखता ही नहीं कि वे वह माल खुद भी खरीद सकेंगे। वहांसे इतना माल बाहर भेजा जा चुका है कि अब तक किसीने अपने ही देश में जबर्दस्त बाजार तैयार करने, अपना माल खपाने का विचार ही नहीं किया।

"अगर व्यवसायी लोग उन लोगों को भी अपनी समृद्धि में हिस्सा नहीं लेने देते जिन्होंने उन्हें समृद्धशाली बनाया है तो फिर कुछ ही दिनों में इतनी समृद्धि ही नहीं रह जायगी कि बाँटी जाय।

"आज माल तैयार करने की सुविधाएँ प्राप्त हैं, मगर उस माल को खपाने की योग्यता या शक्ति कम है। संसार में तब तक चैन और शान्ति नहीं हो सकती जब तक कि माल तैयार करने की सुविधाओं के ही बराबर उन्हें खपाने की लोगों की शक्ति भी हो जाय और बनी रहे। यह बराबरी तब तक नहीं हो सकती जब तक कि नफे की वृत्ति के स्थान पर मजदूरी बढाने की वृत्ति प्रचलित न हो जाय।"

सन १८४३ में इँग्लेण्ड की पार्लियामेंट ने ईस्ट इण्डिया कंपनी की सनद फिर से नयी करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक समिति बैठायी थी। उसके सामने सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने कहा था, "कंपनी के लाभों का महत्व मैं बहुत बडा मानता हूँ। मगर मैं यह भी कल्पना कर सकता हूँ कि अगर भारत वर्ष की उन्नति हो, और उसकी समृद्धि बढे, और हमारे तैयार मालों के लिए हिन्दुस्तानियों की क्रयशक्ति बढ जाय, चाहे भले ही उपनिवेशों के बाशिन्दों की क्रय-शक्ति से कम हो, मगर तौभी उसके साथ जो हमारा विशाल व्यापार तब चल सकेगा, उसके लाभों के सामने, ईस्ट इंडिया कंपनी के लाभों का कोई मिलान किया ही नहीं जा सकता।"

मि. फोर्ड के समर्थन में यह बात भी कही जा सकती है कि १९१४ में अमेरिका में सामान्य वस्तुओं का जो भाव था आज उससे फीसदी ६४ अधिक यानी प्रायः उसके ड्योढा हो गया है, मगर साथ ही साथ लोगों की आमदनी दुगुनी हो गयी है यानी सर्व—साधारण की क्रयशक्ति में फी सदी ३४ या ⅓ की वृद्धि हुई है। इसका कारण है मजदूरी अधिक करनी, और नौकरी में स्थिरता लानी।

इँग्लैण्ड की क्या हालत है? वहां भी यंत्रों से बहुत काम लिया जाता है। माल बहुत तैयार होता है, मगर वह आज अमेरिका से गरीब है, और कारण यही है कि वहां यह कोशिश ही कभी नहीं की गयी कि अँगरेजों की क्रय शक्ति बढे या वहांके बाजार में उस देश का माल खपाया जा सके।

इसी प्रश्न को जरा दूसरे दृष्टिकोण से देखें। आज पूँजी और यंत्रों के मेल से बहुत अधिक माल तैयार होता है। जिसके फलस्वरूप माँग और पूर्ति का नियम उलट गया है। पहले सवाल था माँग को पूरी करने लायक माल बनाना। आज का सवाल है तैयार माल के लिए माँग पैदा करनी। आज व्यवसाय का एक उद्देश्य यह भी समझा जाता है कि सिर्फ माल ही न नहीं, बल्कि उसके ग्राहक भी तैयार किये जायँ।

अगर स्थिति यही है तो आज के उद्योगों के लिए यह परम महत्त्वपूर्ण है कि जनता की क्रयशक्ति बढायी जाय।

और सबकी क्रयशक्ति बढाने के मानी ही हैं, जो धन पैदा हो उसे सबमें बराबर बराबर बाँटना। यह तो सामाजिक न्याय और सामाजिक स्थिरता का ही एक रूप है। और इसी सामाजिक स्थिरता की खोज सभी देशों में होती रही है। एक समय में हिन्दुस्तान में यह बात थी और उसका एक मुख्य कारण था घर घर में चर्खे और गांव गांव में कर्घे का मौजूद होना। इनके जरिए माल की तैयारी और खेती का मेल बराबर ही नियंत्रित होता रहा। आज भी कुछ वैसी ही स्थिति लानी हिन्दुस्तान के लिए परमावश्यक है। आज अमेरिका मजदूरी बढा कर तथा दूसरे तरीकों से वही काम करना चाहता है। हिन्दुस्तान वे सब तरीके अख्तियार नहीं कर सकता मगर चर्खे और कर्घे के प्रचार के सीधे सादे उपाय से बहुत कुछ लाभ उठा सकता है।

थोडा सा सोचने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि हिन्दुस्तान की आज की स्थिति में अमेरिका के तरीकों का प्रयोग चर्खे और कर्घे के ही जरिए सबसे अच्छी तरह से हो सकता है। कम से कम खर्च और समय में ये लाखों को काम दे सकेंगे। इनके जरिए बहुत सी शक्ति काम में आ जायगी, जिससे लोगों की प्राथमिक आवश्यकताएँ पूरी करनेवाली वस्तुएँ बनेंगी। और किसी योजना से तैयार माल इतने अधिक लोगों में और इतने सीधे नहीं बँट सकेगा। इससे बडी आमदनी भले ही न हो सकेगी मगर आज लोगों की जो आमदनी है, उससे अधिक वे जरूर पाने लगेंगे। अधिक मजदूरी देने के लिए पहला काम यही है। साथ ही साथ इसके कारण लोगों की क्रयशक्ति बढेगी, जिसका योग फल बहुत बडा होगा। यह वृद्धि कई करोड रुपयों की भी हो सकती है। मगर यह वृद्धि ऐसी है जिसमें किसान सुरक्षित रहता है। इस वृद्धि से उसे रुपया नहीं मिलता है बल्कि उसके बदले मनुष्य-जीवन के लिए परमावश्यक वस्त्र कपडा मिलता है। जिसे न तो कोई करके रूप में ले सकता है और न चमकीले भडकीले विज्ञापन ही दे कर ठग ले सकता है। अप्रत्यक्ष रूप में और धीरे २ इससे देश की समृद्धि बढेगी, और किसान का जीवन ज्यादह सुखकर होगा ही। मगर इसका यह अर्थ नहीं है कि पश्चिम में जिसे धनी जीवन कहते हैं, वह यहाँ संभव होगा, बल्कि सच पूछिए तो अभी यहाँके किसानों के जीवन को अभी और बहुत अधिक सुधारने के बाद भी शायद ही धनी जीवन कह सकें।

अगर यह सब ठीक है तो खद्दर आन्दोलन का समर्थन हर मिल-मालिक, महाजन, बनिया, साहूकार, और खुद लंकाशायर को भी करना चाहिए। अगर हिन्दुस्तान के सभी आदमी (जिनकी संख्या संसार के कुल आबादी के पांचवें हिस्से के बराबर है) खद्दर पहनने लगें तो इससे सारे संसार के ही माल खपाने की या क्रयशक्ति में इतनी अधिक उन्नति होगी कि संभवतः संसार के बाजार की मंदी में उलट फेर हो जाय।

(क्रमशः)

[मि. रिचार्ड बी. ग्रेग की 'खद्दर का अर्थशास्त्र' नामक किताब में से]

प्राथमिक शिक्षा

१

गुजरात विद्यापीठ का एक उद्देश्य यह है कि उसकी मुख्य ... गांवों की शिक्षा के संबंध में होनी चाहिए। और आज ... करके गांवों की शिक्षा का अर्थ प्राथमिक शिक्षा ही होती है। ... विद्यापीठ का काम गुरुजी या दफ्तर के बाबू तैयार करना नहीं ... किन्तु ग्राम-सेवक तैयार करना है। विद्यापीठ को अगर शहर ... निकट रहना है, और शहर का ढंग बदला जा सके तो, उसे ... में अपना हिस्सा चुकाना उसका काम है। यानी आज ... के नाश पर शहर आबाद होते हैं,—इसके बदले वे ऐसे बनें ... गांवों की सेवा के लिए ही निर्भे।

ऐसा बनना शक्य हो, या न हो, मगर विद्यापीठ के जरिए ... में के जितने युवकों और युवतियों को इस दृष्टिवाला बनाया ... सके, उसे बनाना ही है।

इस लिए यह आवश्यक है कि प्राथमिक शिक्षा का विचार ... ही ढंग से किया जाय।

इस लेख में तो एक ही विचार छान लेना चाहता हूँ।

बहुत वर्षों के मनन और कुछ प्रयोग करने के बाद, मैं इस ... पर आया हूँ कि प्राथमिक शिक्षा, कम से कम एक वर्ष तक ... पुस्तक के बिना ही देनी चाहिए और उसके बाद भी विद्यार्थियों ... पुस्तकों का उपयोग कम से कम होना चाहिए।

बारहखडी सीखते हुए, क का कि की घोखते हुए बालक की ... इन्द्रियाँ बंध जाती हैं और उसकी बुद्धि खिलती नहीं बल्कि, ... विकास रुक जाता है। बालक तो जन्म लेने के साथ ही ... लेना शुरू कर देता है किन्तु मुख्यतः आँख से और कान से ... बोलना शुरू करते ही भाषा–ज्ञान लेना शुरू कर देता है। ... लिए जैसे माबाप होते हैं, बालक भी वैसे ही बनते हैं। ... माबाप संस्कारी हों तो बालक शुद्ध उच्चारण करता है और ... आचार का अनुकरण करता है। यही उसकी सच्ची शिक्षा ... और अगर हमारी सभ्यता छिन्न भिन्न न हो गयी होती तो ... अच्छी से अच्छी शिक्षा तो अपने घर में ही पाते।

अब हमारे पास ऐसा शुभ प्रसंग नहीं है। बालकों को पाठशाला भेजना ही पडेगा।

पर जब बालक पाठशाला में आवे, तब उसे पाठशाला घर के ... और शिक्षक माबाप के समान लगने चाहिए। शिक्षा भी ... होनी चाहिए, जैसी सभ्य घरों में दी जानी चाहिए। यानी ... को प्राथमिक ज्ञान शिक्षकों के मुँह से ही मिले। और उस ... शिक्षा देने पर बालक केवल आंख और कान के जरिए ... ज्ञान एक वर्ष में पायगा, वह उसी मुद्दत में मिले हुए ... खडी के ज्ञान के दशगुणा अधिक होगा।

सामान्य इतिहास भूगोल का ज्ञान बालक को विनोद और कथा ... के रूप में पहले साल मिलेगा। कितने एक काव्य उसने ... उच्चारण से कंठस्थ किये होंगे। गिनती और पहाडा उसने ... ही जबानी ही सीख लिया होगा। और बालक पर अक्षर ... पहचानने का बोझ नहीं पडने से, उसका मन चक्कर काटने से ..., उसकी आंख का दुरुपयोग बंद होगा।

बालक के हाथ का उपयोग टेढे मेढे अक्षर लिखने और अक्षरों ... कठिन नाम समझने के बदले ज्यामिति की रेखाएँ खींचने, और ... पहचानने में होगा। यह हाथ की सच्ची प्राथमिक शिक्षा है।

और अगर हम गुजरात के या सारे भारतवर्ष के करोडों बच्चों ... शिक्षा देना चाहते हैं तो प्राथमिक शिक्षा दूसरे तौर पर दी ही ... जा सकती।

इस देश की आज की स्थिति में करोडों बालकों तक पुस्तकें पहुँचाना लगभग अशक्य वस्तु है। मैं कबूल करना चाहता हूँ कि प्राथमिक शिक्षण के लिए बालकों को जो पुस्तकें देनी जरूरी हों, उन्हें देने का प्रयत्न, चाहे जो खर्च पडे, जरूर होना ही चाहिए। किन्तु जब ऐसी पुस्तकें अनावश्यक और हानिकारक मानी जायँ तब इस व्यावहारिक दलील का उपयोग किया जा सकता है। जो वस्तु नैतिक दृष्टि से अनावश्यक या हानिकारक है, वह व्यवहार–दृष्टि से भी न करने लायक देखने में आती है। शुद्ध सभ्यता में नीति और व्यवहार विरोधी वस्तुएँ नहीं हैं, न होनी चाहिए।

यह स्पष्ट है कि हाल की प्राथमिक पाठशालाओं के शिक्षकों के जरिए ऐसी शिक्षा नहीं दिलायी जा सकती। ये गुरुजी लोग मारकूट कर किसी तरह बारहखडी पढाते हैं और शायद थोडा गणित भी बतलाते हैं। मैंने जो कल्पना की है कि बालक को पहले वर्ष की शिक्षा में जो ज्ञान मिलना चाहिए, वह बेचारे गुरुजी को ही नहीं होता। वे खुद ही शुद्ध भाषा बोलनी नहीं जानते तो बालकों को क्या बतलावें?

२

अब बडा सवाल यह है कि ऊपर जिस शिक्षा का विचार हम कर आये हैं, वह किस तरह दी जा सकती है या देने के लिए शिक्षक कहाँसे लाये जायँ? शिक्षा के संबंध में सच्चा सवाल तो यही है। सरकारी ट्रेनिंग कॉलेजों ने इस प्रश्न को हल नहीं किया है। जिसे वे 'तीन आर' या पढना, लिखना और मामूली हिसाब कहते हैं, उन्होंने उसका सवाल हल नहीं किया है। ये तीनों वस्तुएँ इतनी कम मिलती हैं कि उनका उपयोग सीखनेवाले को या प्रजा को थोडा ही मिलता है।

इस लिए यह काम विद्यापीठ को करना रहा है। राष्ट्रीय विद्यापीठ का यह धर्म और अधिकार ही है कि वह राष्ट्र का पोषण करनेवाली नयी युक्तियाँ खोजे। और मेरी अल्पमति के अनुसार, वे युक्तियाँ यूरोप से बहुत थोडे प्रमाण में मिलेंगी। प्रत्येक देश की शिक्षा उसके स्वराज्य की रक्षा के लिए होती है।

इस लिए हमें अपनी शिक्षा के नये प्रयोग ही करने रहे हैं। उन्हें करने में हम यूरोप के अनुभव का ज्ञान भले ही लेवें किन्तु यह मान कर नहीं कि वहांकी सभी बात पक्की ही होगी या यह अनुभव नहीं कर के कि वहांकी परिस्थिति में जो बात वहां के लिए ठीक होगी वह यहाँ भी लागू होगी ही। इससे एक बात तो यह निकलती है कि सरकारी पाठशाला में जो बात जिस तरह चलती है, हमें उसे शंका की नजर से देखना है। स्वराज और हमारी सभ्यता के लिए सरकारी शिक्षा के घातक होने से हम बहुत सी बातों में सरकारी पद्धति के उलटा चलें तो सीधा मार्ग मिलना संभव है। दृष्टान्त लीजिए:

वहां शिक्षा का माध्यम अँगरेजी है तो हम समझें कि राष्ट्रीय शिक्षा में अँगरेजी का माध्यम हो ही नहीं सकता।

वहां बडे खर्चीले मकानों में शिक्षा दी जाती है। हम समझें कि यह अयोग्य है। हमारी पाठशालाओं के मकान सादे और गरीब हों।

वहां भाषा–ज्ञान और साहित्य पर ही जोर दिया जाता है और हिन्दुस्तान के उद्योगों के प्रति उदासीनता है। हम देखते हैं कि यह अयोग्य है।

वहां धर्म का — साम्प्रदायिक नहीं बल्कि सर्व–साधारण धर्म का — शिक्षण त्याग दिया गया है। हम जानते हैं कि इस त्याग में शिक्षा का लोप होता है।

सरकारी स्कूलों में जो इतिहास पढाया जाता हैं, वह अगर गलत नहीं तो अँगरेजी दृष्टि से लिखा गया होता है । उसी वस्तु का निरूपण जर्मन, फ्रेन्च और अमेरिकन लेखक दूसरे ही तौर पर करते हैं । आधुनिक घटनाओं का निरूपण सरकारी लेखक एक तौर पर और प्रजा दूसरे ही तौर पर करती है, जैसे कि पंजाब-हत्याकाण्ड ।

सरकारी शाला का अर्थशास्त्र अँगरेजी रीति का अनुकरण करता है, जब कि हमें वह दूसरे ही रूप में चाहिए ।

सरकारी शाला शहरी सभ्यता की हिमायत करती है । राष्ट्रीय शाला के प्राण गांव होंगे ।

सरकारी प्राथमिक पाठशाला में शिक्षकवर्ग के चरित्र की पर्वा किये बिना, कम से कम ज्ञान और कम से कम वेतन दिया जाता है । जब कि राष्ट्रीय प्राथमिक शाला के शिक्षक चारित्रवान, ज्ञानी और त्यागी होने से (लाचार होने से नहीं) कम से कम वेतन लेनेवाले होने चाहिए ।

अब हमें कुछ कुछ पता चलेगा कि हमारे शहरी विद्यालयों में कैसी शिक्षा होनी चाहिए ।

हमारे विद्यार्थी ऐसे होने चाहिए जो गांवों में जाकर, गांवों की सभ्यता को स्थिर करें, गांवों की जरूरतें समझें, उनमें जो दोष हों, उन्हें दूर करें, उनके लडकों को शहरी बनने की नहीं, किन्तु देहाती ही बने रहने यानी किसान बनने की सलाह देनेवाले हों । इस लिए जब तक शहरों में दी जानेवाली हमारी शिक्षा की रचना जडमूल से सुधारी नहीं जाती, तब तक हम विद्यापीठ के एक बडे ध्येय तक नहीं पहुँचते, उसका पालन नहीं करते हैं ।

एक ही उदाहरण लेवें : हम अहमदाबाद में ही महाविद्यालय, नयी गुजराती शाला और विनय मंदिर चलाते हैं । उन्हें चलाने का अधिकार हमें तभी होगा, जब हम उन विद्यालयों में पढनेवाले विद्यार्थियों को ग्रामीण बनाने का प्रयत्न करें, उन्हें ग्राम्य-जीवन में रस लेनेवाले, उसे पहचाननेवाले बनावें और अंत में, जो लडके विनयमंदिर या महाविद्यालय छोडें वे गांवों में फैल कर गांववालों की सेवा करने लगें ।

यह विचार फिर कभी करूँगा कि यह कैसे होगा ।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद**

अखिल भारतीय गोरक्षा-मण्डल

चन्दा और दान

पहले स्वीकार किया गया		रु. ७,२३८-१५-६
नवजीवन की मार्फत		
सेठ मदनगोपाल	दिल्ही	१-०-०
नारणदास गोइल	जंजन	१०-०-०
चुनीलाल एम. पटेल	बम्बई	२-०-०
मोहन जोशी	अलमोडा	३-०-०
जमनादास शाह	बम्बई	२-०-०
शमशेरसिंह मुराजमल	हैदाबाद	५-०-०
हरिश्चन्द्र सुंदरजी देसाई	राजकोट	१-०-०
	कुल	रु. ७,२६२-१५-६

भूल सुधार

गताङ्क में अ० भा० गोरक्षा परिषद के आंकडों में दो भूलें रह गयी हैं । पाठक कृपा कर सुधार लेंगे ।

पहले स्वीकार की गयी रकम रु. ६,८५८-४-० के बदले रु. ७,०३५-१५-६ होनी चाहिए और कुल जोड रु. ७,२४३-१५-६ के बदले रु. ७,२३८-१५-६ होना चाहिए ।

महालक्ष्मी कहां रहती हैं

महाभारत (१३ अनुशासन पर्व, अध्याय २) में भीष्मपितामह ने युधिष्ठिर को 'पुरातन इतिहास' सुनाया है कि एक समय में लक्ष्मी ने सुंदर शरीर धारण करके गायों के गोल में प्रवेश किया। उनके अप्रतिम रूप से विस्मित होकर गायें बोलीं :

"हे देवि, तुम कौन हो ? आप कहां से आयी हो और कहां जाओगे ?"

लक्ष्मी ने कहा, "मैं जगत् की कान्ति हूँ और मेरा नाम श्री है । मैंने दैत्यों को त्याग दिया । इस लिए उनका नाश हुआ । और देव तथा ऋषि जो सु-शोभित होते हैं और मौज करते हैं, यह भी मेरा ही प्रताप है । तुम्हारे साथ मैं हमेशे रहना चाहती हूँ और इस लिए यह विनय करने आयी हूँ कि मुझे अपने साथ रहने दो ।"

गायें — "तुम तो अध्रुव, चपल और सामान्य हो । तुम्हारा कोई ठौर ठिकाना नहीं है । तुम कहीं जम कर नहीं ठहरती हो । तुम्हारा चित्त घूमता ही रहता है । इस लिए तुमसे हमारा कोई मतलब नहीं है । तुम्हारा जी जहां चाहे, वहां जाओ ।"

लक्ष्मी: "मुझे यों छोड कर तुम लोग ठीक नहीं करती हो। लोग जो कहते हैं कि जो बिनबुलाये जाता है, उसका अपमान होता है, सो ठीक ही है । देव दानव गंधर्व मुझे पाने के लिए कैसा उग्र तप करते हैं ! मेरी इतनी बात तो स्वीकार करो, मेरी अवगणना मत करो !"

गाये: "हे देवि, हम तुमको छोडतीं या तुम्हारी अवगणना नहीं करती हैं । किन्तु तुम चलचित्त हो, इस लिए हम तुम्हारा वर्जन करती हैं । बहुत बोलने से क्या लाभ ? तुम्हारी जहां इच्छा हो, जाओ । तुमसे हमें कोई काम नहीं है ।"

लक्ष्मी: "हे गायें, तुम अगर मुझे लौटा दोगी तो विश्व में मनुष्य मात्र मेरी अवज्ञा करेंगे । इस लिए मुझपर दया करो। मैं तुम्हारी शरण में आयी हूँ तो मुझे अपने किसी अंग में बसने दो ।"

गायें: अवश्यं मानना कार्या तवास्माभिर्यशस्विनी ॥
शकृन्मूत्रे निवसतां पुण्यमे तद्धि नः शुभे ॥

"हे यशस्विनि, तुम्हारा मान हमें अवश्य रखना चाहिए। इस लिए तुम हमारे पवित्र गोबर और मूत्र में निवास करो ।"

इस भांति गायों के साथ समय (ठहराव) कर के लक्ष्मी वहीं अन्तर्धान हो गयीं ।

× × ×

ऐसा लगता है कि मानों यह कथा हमारी वर्त्तमान परिस्थिति को ही देख कर लिखी गयी हो । धन कुछ सोना, रूपा, हीरा, मानिक, मोती ही नहीं है, बल्कि सच्चा धन तो धान्य (अनाज) ही है और धान्य की उत्पत्ति मुख्यतः खाद और उसमें भी गाय के गोबर और मूत्र पर ही निर्भर है । इसलिए यह कहा कि गोबर और गोमूत्र में लक्ष्मी निवास करती हैं । इससे शिक्षा इतनी ही लेनी है कि हमें गोबर और गोमूत्र को तुरत ही जमीन में गाड देना चाहिए, जिसमें हमपर धान्य-लक्ष्मी की कृपा बनी रहे। किन्तु अगर हम गोबर के उपले पाथ कर जला देवें और गोमूत्र को नुकसान जाने देवें तो धान्य-लक्ष्मी हमसे रुष्ट हो जायँगी । उपले जलाना तो वैसी ही मूर्खता और उडाउपना है जैसे कि कोई मूर्ख साहूकार दश पाँच सौ रुपयों के नोंटों की बीडी जला कर पी लेवे । इस लिए गोबर से तो हम खाद बनावें और ईंधन के लिए बबूल या किसी खास जाति के वृक्ष रोपें ।

(नवजीवन) **देसाई वालजी गोविन्दजी**

छप. सं. हि. नवजीवन

बारडोली की परीक्षा

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ४१

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, ज्येष्ठ सुदी १२ संवत् १९८४ गुरुवार, ३१ मई, १९२८ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय ७

कुंभ का मेला

डाक्टर प्राणजीवनदास से मिलने मुझे रंगून जाना था। रंगून के रास्ते में मैं श्रीयुत भूपेन्द्रनाथ वसु के आमंत्रण से उनके यहां ठहरा था। यहां बंगाली विवेक की परिसीमा आयी थी। उस समय मैं केवल फलाहार ही करता था। साथ में मेरा लडका रामदास था। कलकत्ते में जितनी तरह के सरस, हरे और सूखे फल मेवे मिल सकते थे, मँगाये गये थे। स्त्रियों ने रातों रात जग कर पिस्ते इत्यादि को भिगोकर उनके छिलके उतारे थे। हरे फलों को भी जितनी सुघडता से तैयार किया जा सकता है, किया गया था। मेरे साथियों के लिए अनेक प्रकार के पकवान बनवाये गये थे। इस प्रेम और विवेक को मैंने समझा, मगर मुझे यह बात असह्य लगी कि एक दो मेहमानों के लिए सारा घर दिन रात काम में लगा रहे। मेरे पास इस कठिनाई में से निकलने का उपाय न था।

रंगून जाते हुए मैं स्टीमर में 'डेक' (कमरे के बाहर) का मुसाफिर था। अगर श्री वसु के यहां प्रेम की कठिनाई थी तो यहां अप्रेम की। मुझे 'डेक' के मुसाफिरों की तकलीफ का अतिशय अनुभव हुआ। नहाने की जगह में इतनी गंदगी कि वहां खडा रहना मुश्किल था, पायखाना तो नरक की खान था, मल-मूत्रादि को छूते हुए या लांघ कर ही पायखाने में जाया जा सकता था। मेरे लिए ये असुविधाएँ बहुत भारी थीं कप्तान के पास मैं पहुँचा मगर दाद कौन देवे? मुसाफिरों ने ही अपनी गंदगी से डेक को खराब कर डाला था। जहां बैठे वहीं थूक कर दें कर डालें, वहीं सुरती या खैनी की पिचकारी चलावें, खा पी कर भी वहीं पर गंदगी करें। बातों के शोर को सीमा ही नहीं मिलती। जिससे जितनी बने, उतनी जगह दखल कर लेवे। कोई किसीके सुभीते का विचार भी न करे। जितनी जगह आप दखल करें, उससे अधिक सामान करे। ये दो दिन बहुत तकलीफ से कटे।

रंगून पहुँचते ही मैंने एजेन्ट के पास सभी बातें लिख भेजीं। लौटती बार भी डेक में ही आया किन्तु इस पत्र के परिणाम-स्वरूप और डाक्टर मेहता की तजवीज के फल-स्वरूप बहुत कुछ आराम से आया।

मेरे फलाहार का जंजाल तो यहां भी जरूरत से अधिक था ही। डाक्टर मेहता के साथ मेरा संबन्ध ऐसा था कि उनके घर को अपना ही समझ सकूँ। इसलिए मैंने फल के किस्मों पर तो अंकुश कर लिया था किन्तु मैंने कोई मर्यादा नहीं रक्खी थी, इसलिए जाति जाति के फल आते तो मैं उनका विरोध नहीं करता था। तरह तरह के फल हों तो वे आंख को तथा जीभ को पसंद पडें। खाने का समय तो चाहे जो हो जाय। मुझे खुद तो सबेरे ही खा पी लेना पसंद था, इसलिए बहुत देर तो नहीं होती थी मगर रात को आठ नौ तो सहज ही बज जाते थे।

इस १९१५ के साल में हरद्वार में कुंभ का मेला था। उसमें जाने की मेरी तीव्र इच्छा नहीं थी। किन्तु मुझे महात्मा मुंशीराम के दर्शनों के लिए तो जाना ही था। कुंभ के समय गोखले के सेवक-समाज ने एक बडी टुकडी भेजी थी। उसकी व्यवस्था श्री. हृदयनाथ कुंजरू के हाथ में थी। स्व० डाक्टर देव भी उसमें थे। निश्चय हुआ था कि इसमें मदद करने के लिए मैं भी अपने दल को ले जाऊँ। मगनलाल गांधी शान्तिनिकेतन में रहनेवाली टुकडी को ले कर मुझसे पहले हरद्वार पहुँच गये थे। मैं रंगून से लौट कर उसमें शामिल हो गया।

कलकत्ते से हरद्वार पहुँचने में बहुत कष्ट हुआ। रेल के डब्बों में बहुत बार तो दिया बत्ती भी नहीं मिलती थी। सहारनपूर से तो माल के या मवेशी के ही डब्बों में मुसाफिरों को भर दिया गया था। खुले, बिना छत के डब्बे में ऊपर से तो गर्मी में दुपहरी की धूप पडती और नीचे थी लोहे की जमीन, फिर कष्ट का पूछना ही क्या? तौभी भावुक हिन्दू प्यास बहुत जोर की लगी रहने पर भी मुसलमान पानी देवे तो नहीं पीते थे। जब हिन्दू पानी की पुकार होती, तभी पीते थे। इन्हीं भावुक हिन्दुओं को दवा में डाक्टर शराब दे, मुसलमान या ईसाई पानी डाले, मांस का सत्त दे, तो उसे लेने में न संकोच होता है, न कुछ पूछना भर भी होता है।

हमने शान्ति निकेतन में ही देख लिया था कि भंगी का काम करना तो हिन्दुस्तान में हमारा विशेष धंधा बन ही जायगा। सेवकों के लिए किसी धर्मशाला में तंबू ताना गया था। पायखाने के लिए डाक्टर देव ने गढे खुदवाये थे। किन्तु उन गढों की व्यवस्था तो

डाक्टर• देव उन्हीं थोडे से भंगियों से न करा सकते थे जो रुपये देने पर मिल सकें ? इन गढों में पडनेवाले मल को समय समय पर ढँकने तथा और तरह से गढों को साफ रखने का काम, फीनिक्स की टुकडी के उठा लेने की मेरी मांग डाक्टर देव ने खुशी के साथ स्वीकार की । इस सेवा की माँग करनेवाला तो मैं था, किन्तु करने का बोझ उठानेवाले थे मगनलाल गांधी ।

मेरा धंधा तो बहुत करके तंबू में बैठ कर दर्शन देने और जो अनेक यात्री आवें और उनके साथ धर्म की और वैसी ही दूसरी चर्चाएँ करने का हो पडा । दर्शन देते हुए मैं घबरा गया । इससे तो एक मिनिट की भी फुरसत नहीं मिलती थी । नहाने जाऊँ तौभी दर्शनाभिलाषी मुझे अकेला न छोडें । फलाहार करता होऊँ तो एकान्त होवे ही कहांसे ? तंबू में मैं एक क्षण के लिए भी अकेला न बैठ सका । यह अनुभव मुझे हरद्वार में हुआ कि द० अफ्रिका में जो कुछ सेवा हो सकी थी, इतना गहरा असर सारे हिन्दुस्तान में पडा होगा ।

मैं तो दो चक्कियों के बीच पिसा जाने लगा । जहां पहचाना न जाऊँ वहां तो तीसरे दर्जे की मुसाफिरी की कतलीफों के जैसी तकलीफों से नाक में दाम, और जहां लोग जान जायँ वहां दर्शनार्थियों के प्रेम से घबरा उठूँ । मेरे लिए यह कहना कई बार मुश्किल हो पडा है कि दोनों में कौन स्थिति अधिक दया–जनक है । इतना जानता हूँ कि दर्शनार्थी के प्रेम के प्रदर्शन से मुझे कई बार क्रोध हो आया है, और मन में तो उससे भी अधिक बार जला हूँ । तीसरे दर्जे की मुसाफिरी से मुझे असुविधा हुई है, मगर क्रोध तो शायद ही आया हो ।

इस समय मुझमें चलने फिरने की शक्ति ठीक थी, इस लिए मैं ठीक ठीक भटक सका था । उस समय इतना प्रसिद्ध नहीं हुआ था कि रास्ते में घूमना शायद ही हो सके । भ्रमण में मैंने लोगों की धर्म–भावना से अधिक उनकी लापर्वाई, चंचलता, पाखंड और अव्यवस्था देखी । साधुओं के दल के दल टूट पडे थे और वे ऐसे जान पडे कि मानों महज मालपूआ और खीर खाने के लिए ही पैदा हुए हों । यहां मैंने पांच पैरोंवाली गाय देखी । मुझे आश्चर्य हुआ । किन्तु अनुभवी आदमियों ने मेरा अज्ञान तुरत दूर किया । पांच पैरोंवाली गाय तो दुष्ट लोभी लोगों का बलिदान थी । इस गाय के कंधे में, बछडे का जिन्दा पैर काट कर, कंधा छेद कर जोडा गया था । और इस दुहरी घातकी क्रिया का फल अज्ञान लोगों को ठगने के काम में लाया जाता था । पांच पैरोंवाली गाय का दर्शन करने का लोभ किस हिन्दू को न हो ? और इस दर्शन के लिए वह जितना दान दे, वही थोडा ।

कुंभ का दिन आया । मेरे लिए यह शुभ घडी थी । मैं यात्रा की भावना से हरद्वार नहीं गया था । पवित्रता की खोज में तीर्थक्षेत्रों में जाने का लोभ मुझे कभी नहीं रहा है । किन्तु सतरह लाख आदमी पाखंडी नहीं हो सकते । कहा गया था कि मेले में सतरह लाख आदमी आये थे । इस बारे में मुझे शंका न थी कि इनमें असंख्य आदमी पुण्य कमाने के लिए, शुद्धि पाने के लिए आये थे । यह कहना अशक्य नहीं तो मुश्किल तो है ही कि इस प्रकार की श्रद्धा आत्मा को कहां तक चढाती होगी ।

बिस्तर पर पडा पडा मैं विचारसागर में डूबा । सभी ओर फैले हुए पाखंड में ये पवित्र आत्माएँ भी हैं । वे मनुष्य ईश्वर के दरबार में सजा के पात्र नहीं गिने जायँगे । जो हरद्वार में ऐसे समय पर आना ही पाप हो तो मुझे प्रकट रूप से विरोध कर के कुंभ के दिन तो हरद्वार का त्याग जरूर ही करना चाहिए । जो आने में और कुंभ के दिन रहने में पाप न हो तो मुझे कुछ न कुछ कडा व्रत लेकर चलते पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिए । मेरा जीवन व्रतों पर ही रचा हुआ है, इस लिए कुछ कठिन व्रत लेने का निश्चय किया । कलकत्ते और रंगून में मेरे लिए गृह–पतियों (जिनके यहां मैं ठहरा था) को हुए अनावश्यक परिश्रम का स्मरण हो आया और इस लिए मैंने भोजन की वस्तुओं की मर्यादा करने तथा अँधेरा होने के पहले खा लेने का निश्चय किया । मैंने देखा कि अगर मैं मर्यादा का पालन न करूँ तो मेजबानों या गृहपतियों के लिए भारी बोझ बन जाऊँगा और मेरे सेवा करने के बदले, सभी जगह लोग मेरी ही सेवा में लग जायँगे । इससे चौबीस घन्टे में पांच वस्तुओं के बाद कुछ भी खाना न लेने तथा रात्रि-भोजन के त्याग का व्रत किया । इन व्रतों में एक भी रास्ता या छूट न रखने का निश्चय किया । बीमारी में दवा के रूप में बहुत सी चीजें लेनी या न लेनी, दवा को वस्तु में गिनना या न गिनना, ये सभी बातें विचार लीं और निश्चय किया कि खाने का कोई पदार्थ पांच के अलावा न लूँगा । इन दो व्रतों को तेरह साल हो गये । उन्होंने मेरी कठिन परीक्षा की है, उसी तरह वे मेरे लिए ढाल रूप भी ठीक बने हैं । मेरा खयाल है कि इन व्रतों ने मेरी आयु बढायी है इससे मैं मानता हूँ कि मैं कई बार बीमारियों से बच गया हूँ ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

बारडोली के चित्र

सबसे ताजे 'रंगसूट'

सूरत से बारडोली जाते हुए सारे रास्ते भर हम यही सुनते गये कि सरकार ने एक गांव घेर लिया है, उस पर पहरा बैठा दिया है । मगर किसीकी समझ में यह बात नहीं आती थी कि दर असल घेरा बैठाया कैसे गया है । बारडोली पहुँचने पर मालूम हुआ कि यह नयापन यहाँ के नये 'रंगरूट' जप्ती अफसर के दिमाग की नयी सूझ है । पुराने जप्ती अफसर यहाँ से बदल दिये गये हैं । कारण कुछ ऐसा जान पडता है कि वे बहुत सी भैंसें जप्त नहीं कर सकते थे । अब ये नये अफसर साहेब खादी खरीदने के बहाने डाक्टर सुमंत मेहता और उनकी पत्नी श्रीमती सुशीला बहिन से मिलने आये । मौका पाकर इन्होंने अपना चर्खा शुरु किया । बेचारे डाक्टर दम्पति की नाक में दम आ गया । इन्हें तो अपनी मातृभाषा गुजराती में बोलने से घृणा है । अँगरेजी के सिवाय गुजराती में तो बात ही नहीं करते । आपने फरमाया, "अब मैं मामलतदार हो कर आया हूँ । अब तो लोगों को जरूर जरूर लगान चुका ही देना चाहिए । बंदोबस्त को मैं दुहराऊँगा" तभी तो लोग इन्हें छोटा कमिश्नर कहते हैं । फिर आप अपनी फुर्त्ती, तेजी, और जप्ती की बातें सुनाते गये । मतलब यह कि आपको यह खयाल है कि फाँसी देने या गोली मरवा देने के सिवाय, आप जिसे चाहें जो सजा दे सकते हैं । फिर आप डाक्टर मेहता के जरिए यह संवाद श्री वल्लभभाई तक पहुँचवाना चाहते हैं कि उन्हें कलक्टर साहेब से मिल कर अपनी शिकायतें दूर करानी चाहिए । इन्हें अगर रोजाना एक भैंस भी मिल जाय (जप्त हो जाय) तो संतोष रहेगा । डाक्टर दंपति तो यह सुनते सुनते आजिज आ गये । मगर अंत में आप यह भरोसा देते हुए गये कि, "मैं कानून के बाहर कुछ नहीं करूँगा" और फिर उसके कुछ ही घंटे बाद घर घिरवा बैठे !

घर घेरना

दर असल घेरा तो एक ही घर पर पडा था । उसके अगले और पिछले दोनों दरवाजों पर दो पठान बैठे रास्ता देख रहे थे कि कब दरवाजा खुले कि भीतर घुसें । मगर उनकी नजर तो

पास पडोस के मकानों के दरवाजों पर भी थी । जप्तीदार इसे 'पहरा' या 'चौकी' कहता है, और घेरा कहने से बुरा मानता है गोकि वह यह कल्पना कर ही नहीं सकता कि घर के भीतर बंद लोगों की क्या स्थिति होगी । रात को ढाई बजे आदमी बैठाये गये थे । और हम लोग जब शाम को छै बजे पहुँचे, तब तक घेरा पडा ही हुआ था । यह मकान ७५ वर्ष के एक बूढे सरकारी पेंशनर का है । उन्होंने सत्याग्रह प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर नहीं किया था किन्तु नये 'रंगरूट' जप्ती अफसर ने समझा कि इन्हें काबू में लाने का यही ढंग सबसे अच्छा है । उनकी बूढी पत्नी माला ले कर ऊपर कोठे पर बैठी रामनाम जप रही थीं । वल्लभभाई ने नीचे से ही नमस्कार किया । और बिलकुल ही न घबराने को कहा, आश्वासन दिया । मा जी ने हँस कर विश्वास दिलाया कि डर का कोई कारण नहीं है । और फिर इस लडाई तथा इसके संचालकों पर आशीर्वाद की वर्षा की । वल्लभभाई ने पूछा, "पठानों और पुलिसवालों के बारे में भी कुछ कहना है मा जी ?" "वे खुशी से आवें । यह तो सत्याग्रह की ही महिमा है कि वे मेरे दरवाजे पर आये । नहीं तो कहां वे और कहां मैं ?"

इन शब्दों में जरा भी खटास न थी, एक भी क्रोधभरा शब्द न था । मगर इसी बूढी माता को तब तक १७ घंटे तक अपने ही घर में बंद रहना पडा था ।

इसी अहिंसा से बारडोली पशुता का जवाब दे रही है ।

साढे ग्यारह बजेरात

सरभोण से कुछ दूर पर एक गांव में श्री वल्लभभाई का रास्ता छै ही बजे रात से देखा जा रहा था । मगर श्री वल्लभभाई को फुरसत हो, तब तो कोई काम हो सके । यहाँ तो रास्ते में हर गांव पर गांववालों के दबाव से रुकना पडता है जिनमें कोई सभा कराना चाहता है तो, कोई उन्हींके हाथों में बहिनों की थैली देना चाहते हैं और वल्लभभाई ये अनुरोध टालें कैसे ? लेते देते अंत में हम लोग रात को ग्यारह बजे पहुँचे । बारडोली के सिवाय किसी और जगह की बात होती तो लोग अब तक सो गये होते । मगर यहाँ तो बच्चा बच्चा तक जगा हुआ था । वल्लभभाई का भाषण सब लोगोंने बडे धैर्य और शान्ति से साढे ग्यारह बजे रात तक सुना । वल्लभभाई के सीधे सादे संदेश का सारांश यों दिया जा सकता है, "मैंने सुना है कि दयालु अफसर साहेब लोग तुम्हारी प्रतिज्ञा तोडवाने के लिए जमीन आसमान के कुलाबे मिला रहे हैं । मिलाने दो । मैं तो किसानों के लडकों को यह पाठ पढाना चाहता हूँ कि वे अपनी मा के दूध के साथ ही निर्भयता का रस पीवें । इस लिए तुम्हें मैं बहुत सीधी सलाह दूँगा । उन साहेबों से कह दो कि 'आप तो मरे हुए हैं ही । हमें भी मत मारिए । अपनी प्रतिज्ञा से टलना मौत के ही बराबर है । हम जानते हैं कि आप हमें ऐसी सलाह क्यों दे रहे हैं । आपके लिए नौकरी ही जीवन है और नौकरी छूटनी ही मरण है । हमारे हाथों में ताकत है, हाथ मजबूत हैं, हमारी बारडोली जाती रहेगी तो हम और कहीं जा खायेंगे । हमारी आपकी शिक्षा दो पाठशालाओं में हुई है । हम आपकी सुननेवाले नहीं हैं । हम अपना धर्म भली भांति जानते हैं ।'"

यह सभा मोता नामक गांव में हुई थी । इस गांव के तीन चार किसानों ने अपनी प्रतिज्ञाभंग करके सरकारी किश्त भरी थी । इस कारण इस गांव से सारा ताल्लुका नाराज है । इन लोगों ने पीछे से क्षमा-प्रार्थना भी की थी, मगर उसका कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि खबर मिली है कि पुलिस के कुछ पिट्ठुओं के साथ मिल कर ये लोगों को फोडने की कोशिश करते हैं । मगर इस सभा का उत्साह देख कर सब डर जाता रहा । श्री वल्लभभाई के पास चुभीले व्यंगों की कमी तो कभी होती नहीं है । उन्होंने ऐसे ही लोगों को लक्ष्य कर के कहा, "दुनिया में दो तरह की मक्खियां होती हैं — एक तो मामूली मक्खी और दूसरी मधुमक्खी । मधुमक्खी का यह काम है कि वह वनवन घूम कर फूलों का रस लेती और मीठा से मीठा मधु जमा करती है । दूसरी मक्खी का काम है, जहां कहीं मैला पडा हो, वहींपर जा बैठना और घर घर घूम कर लोगों में रोग फैलाना । मैंने सुना है कि यह गंदी मक्खी यहां कुछ काम कर रही थी । मैं कहता हूँ कि या तो उनकी पर्वा ही मत करो, या उन्हें केवल दूरदूर रक्खो । अगर तुम्हारे आसपास में कूडा करकट और मैला न जमा हो तो वे आवेंगी ही नहीं क्योंकि उन्हें सुगंधि और सौंदर्य से क्या मतलब ? उन्हें पास आने का अवसर ही मत दो ।" सभा में उपस्थित मित्रों ने भरोसा दिलाया कि ऐसा कोई डर नहीं है और एक बहिन ने तो यहां तक कहा, "मैं अपना धर्म जानती हूँ । भले ही मेरे खेत कोई ले लेवे । तब तो मैं आपके आश्रम में आ कर चर्खा चला कर गुजर करूँगी, मगर लगान न दूँगी ।" गांव के नौजवानों ने ४५०) रु. का चन्दा जमा कर के भेंट किया । पहले भी यह गांव २००) रु. से अधिक ही दे चुका था ।

पारसी मित्र

इसके बाद रानीपरज की भी एक कथा सुनानी चाहिए । वहां के एक पारसी भाई माना जी के बारे में प्रसिद्ध है कि सरकार के खाते में बहुत कुछ जप्त जमीन उनके नाम पर चढा दी गयी है । वल्लभभाई ने एक सभा में उनकी बहुत ही कडी टीका की । हमें यह अंदेशा हुआ कि पारसी लोग इसे शायद बुरा मानें । मगर तीन पारसी तुरत ही आगे बढ कर आये और हर एक ने ग्यारह ग्यारह रुपये भेंट किये और एक ने कहा कि, "मैं माना जी का चाचा हूँ । माना जी का घर भर उसके इस काम से शर्मिन्दा है । उसकी यह हालत शुरू से ही है और उसकी अपने घर में भी किसी से पटती नहीं है ।"

(यं० इं०) **महादेव देसाई**

अखिल भारतीय गोरक्षा-मण्डल
चन्दा और दान

पहले स्वीकार किया गया		रु. ७,२६२-१५-६
रामदास जगन्नाथप्रसाद	आबूनगर	५-०-०
प्रभाकुंवर अजरामर घेरिया	जेतपुर	५-०-०
वि. एल. गदमवर	यवतमाल	५-०-०
कल्याणसिंहजी जाडेजा	सांगणवा	५-०-०
नाथीबाई जीवराम कोठारी	कच्छ-कोटडा	५-०-०
ममाबाई भीमजी पुरुषोत्तम	,,	५-०-०
मगनभाई छोटाभाई पटेल	कम्पाला	६३-०-०
रामचरण रसतोगी	आबूनगर	५-०-०
वेणीमाधव रसतोगी	,,	५-०-०
लक्ष्मीबाई पाठक	अकोला	५-०-०
रघुनाथ गणेश पंडित	,,	५-०-०
एम. के. सुब्रह्मण्यम	तापा	४-१०-०
छज्जूराम	सीमला	२५-०-०
झिकुभाई बालचन्द बनानी	गोंडल	५१-०-०
काकु आणंदजी	कच्छ-मांडवी	१०१-०-०
मोतीलाल न्यालचन्द	बम्बई	५१-०-०
		७,६०८-९-६

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, ज्येष्ठ सुदी १२ संवत् १९८४

बारडोली की परीक्षा

उतावली में यह खयाल भले ही आ जाय कि इस समय बारडोली में सरकार की परीक्षा हो रही है, मगर यह खयाल गलत होगा। सरकार की परीक्षा तो बीसों बार हुई है, और वह कच्ची निकली है। जब इसके आवश्यक अंगों पर चोट हो इसकी नीति भय-प्रदर्शन की रहती है। जब कभी इसकी प्रतिष्ठा या आमदनी को खतरा हो, यह बुरे, भले सभी उपायों से दोनों की रक्षा करने का प्रयत्न करती है। यह भय-प्रदर्शन करने में नहीं हिचकती और उसे बेहयाई से झूठ बोल कर छिपाती है। इस सबसे ताजी खबर से न तो आश्चर्य करना चाहिए और न क्रोध ही कि अब गांवों में पठानों को यह हुकुम देकर भेजा गया है कि लोगों के घरों को रात दिन घेरे रहो। ताज्जुब तो यह है कि अब तक उन्होंने 'प्युनिटिव पुलिस' नहीं बैठायी और 'सैनिक-शासन' नहीं घोषित कर दिया है। हमें अब तक तो जान लेना चाहिए कि 'प्युनिटिव पुलिस' या 'सैनिक शासन' के क्या अर्थ होते हैं। यह तो स्पष्ट है कि इस भय प्रदर्शन के अखीरी तरीके से सरकार लोगों को कुछ न कुछ हिंसा कर देने पर उत्तेजित करती है, चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो, जिसमें उसे सैनिक शासन घोषित करने का बहाना मिल जाय।

क्या बारडोलीवाले इस अंतिम परीक्षा में खरे निकलेंगे? उन्होंने अभी ही सारे हिन्दुस्तान को कँपा दिया है। अत्यंत अधिक उत्तेजना के होने पर भी उन्होंने अब तक वीरों के समान धैर्य दिखलाया है। क्या वे उस बडे से बडे उत्तेजन को भी सह सकेंगे, जो उन्हें दिया जा सके? अगर वे सह सके, तो फिर उन्होंने जग जीत लिया। जो लोग सबसे प्यारी वस्तु सम्मान को मानते हैं, उनके सामने जेल, जप्ती, निर्वासन, मौत, वगैरह सभी बातें मामूली चीजें होनी चाहिए। अगर यहां का जुल्म असह्य हो जाय तो बारडोली को छोड कर, जिसे वे अपना समझते थे, वे दूसरी जगह जा बसें। जिस घर में प्लेग घुस जाय, उसे खाली कर देने में ही बुद्धिमानी है। अत्याचार एक तरह का प्लेग ही है और जब इससे हमारे क्रोध करने या कमजोर हो जाने की आशंका हो, तब ऐसे प्रलोभन के स्थान को छोड ही देने में बुद्धिमानी है। इतिहास में ऐसे उदाहरण भरे पडे हैं जब कि वीर पुरुषों ने जुल्म के आगे सिर झुकाने से ज्यादह अच्छा अपना देश ही छोड देना समझा है।

खैर, मैं आशा करूँ कि यह करने की जरूरत न पडेगी। शुभेच्छु मित्रों के बीच बचाव करने की खबरें सुनने में आती हैं। बीच बचाव करने का उन्हें हक है, बीच बचाव करना उनका कर्त्तव्य भी हो सकता है। मगर ये मित्र इस आन्दोलन का महत्त्व समझ लें। उन्हें कुछ निर्बल लोगों की ओर से नहीं बोलना है। बारडोलीवालों के पक्ष में न्याय है। वे कृपा की भीख नहीं माँगते, वे न्याय माँगते हैं। वे नहीं चाहते कि कोई उनके दावे को सच्चा माने। वे तो केवल एक स्वतंत्र, और खुली निष्पक्ष जाँच करानी चाहते हैं। और वे उसके फैसले को मानने के लिए तैयार हैं। इस जाँच को इनकार करने के मानी हैं, न्याय करने से इनकार करना और सरकार अब तक यही करती आयी है। लोगों के हाथों में इसका इलाज है स्वयं कष्ट उठाना। ऐसे मुआमले में, तब, अधिक से अधिक, और कम से कम दोनों ही प्रायः एक ही वस्तुएँ होती हैं। जो लोग कोई शिकायत दूर कराने के लिए आप ही कष्ट सहने का भरोसा रखते हैं, वे उस शिकायत को बढाकर नहीं कह सकते। इस लिए जो लोग इस आन्दोलन का रहस्य समझे बिना, बीच बचाव करने जायेंगे, वे इसे धक्का पहुँचायेंगे। और इस आन्दोलन में न तो सहज ही समझौता किया जा सकता है और न इसे बंद ही किया जा सकता है।

सत्याग्रहियों के प्रति जनता को भी अपने कर्त्तव्य का पालन करना पडेगा। सहायता के लिए वल्लभभाई की अपील पर अभीसे सहायता आने लगी है। यह भी याद रखना चाहिए कि तब तक सहायता की माँग रोकी जा सकी, उन्होंने रोकी, सहायता माँगनी इनकार की। लोगों के जेल जाने के कारण अब सहायता माँगे बिना नहीं चल सकता। मुझे इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि सहायता तुरत और बडी उदारता से मिलेगी। इसीके समान आवश्यक है, लोकमत का प्रकाशन। प्रजा सब हकीकतें ध्यान से सोचे समझे और तब सारे देश में सार्वजनिक सभाएँ की जायँ। श्रीयुत जयरामदास की यह सूचना मुझे पसंद पडती है कि आगामी १२ जून या किसी दूसरे दिन को बारडोली दिवस कहा जाय और उस दिन सर्वत्र सभी दलों के लोगों की सभाएँ कर के बारडोली के दुःखियों की सहायता के लिए प्रस्ताव किये जायँ और चन्दे इकट्ठे किये जायँ।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

प्राथमिक शिक्षा

३

अगर हम विनयमंदिर (उच्च शाला) और महाविद्यालय में शिक्षा का क्रम भली भांति फेरें, और मेरी बतलायी दृष्टि को शिक्षक पचा सके हों, तभी प्राथमिक शिक्षा यानी ग्राम्य शिक्षा का प्रश्न हल होगा।

आज हम संख्या के या लोकलज्जा के या झूठी प्रतिष्ठा के लोभ में कितने एक फेरफार करते हुए हिचकते हैं। अगर हिचकिचाते न होवें तो इन विद्यामन्दिरों में से गांवों की सेवा करनेवालों का सुन्दर वर्ग पैदा हो और शहरों के पाप का कुछ प्रायश्चित्त हो लेवे।

इन मंदिरों में विद्यार्थी पहले दर्जे के धुननेवाले, कातनेवाले, और बुनकर बनें, प्रथम श्रेणी के कपास की खेती जाननेवाले हों, उन्हें गांवों के लिए उपयोगी बढईगीरी आती हो यानी उन्हें अच्छा चर्खा बनाना आता हो, गाडी हल वगैरह बनाना न भी आता हो, तौभी उनकी मरम्मत का काम तो आता हो, वे गांवों के लायक सफाई का काम जानते हों, उनके अक्षर मोती के दाने के समान होते हों, वे सामान्य लेखन-कला जानते हों, देशी हिसाब उनके कंठाग्र हों, वे रामायण, महाभारत वगैरह प्राचीन साहित्य और उनके आध्यात्मिक तथा आधुनिक अर्थों से परिचित हों, गँवई के खेलों को जानते हों, आरोग्य के नियम जानते हों, उन्हें घरेलू चिकित्सा भली भांति आती हो, यानी वे सामान्य रोगों की परीक्षा करनेवाले और उनके उपचार जाननेवाले हों, गांवों के तालाब, पोखरों, कुँओं इत्यादि को साफ करना जानते हों, इत्यादि, सारांश यह कि इन मंदिरों में ऐसा शिक्षण दिया जाय कि वे गांवों की हर प्रकार की सेवा करने के लिए तैयार हो सकें, और ऐसा शिक्षण देने में जो खर्च पड़े, उसे हम प्राथमिक शिक्षण के ही लिए किया गया मानें। जब हम ऐसा करें और कर सकें तभी हम गांवों में सच्चा प्रवेश कर सकेंगे।

ऐसा प्रश्न उठता है कि अगर हम ऐसे फेरफार करें और ऐसे आदर्श ठीक ठीक रूप में प्रकाशित करें तो हमारे विद्यामंदिर खाली

आवेंगे। अगर बात ऐसी ही हो, तो मैं सत्य के लिए आपत्ति का स्वागत करने को तैयार हूँ। किन्तु जब तक विद्यापीठ का ग्राम-शिक्षण के बारे में का ध्येय कायम है, तब तक यह न करना असत्य और द्रोह गिना जायगा।

किन्तु मेरी मान्यता और मेरा अनुभव ऐसे हैं कि अगर हम अपने उद्देश्यों के प्रति एकनिष्ठ रहें तो प्रजा अंत में उन्हें पहचानती है और उन्हें उत्तेजन देती ही है। कही या मानी जानेवाली निष्फलता के कारण खोजने पर हमें मालूम होगा कि आदर्श के माननेवाले बेवफा, कच्चे या हौले थे। संशयात्मा का तो नाश ही होता है, और उसके नाश को न देखते हुए, लोग उसके आदर्श की कमी या निष्फलता को ही देखते हैं।

मेरा दृढ मत यह है कि अगर हमारे विद्यामंदिरों में त्यागी श्रद्धावान शिक्षक हों, तो वे जगमगा उठें। लोग सच्ची वस्तु पहचान सकते हैं। बहुत बार ऐसा होने में विलंब होता दिखायी पडता है। किन्तु वह केवल भ्रम होता है। यह नियम निर्विवाद है कि सच्चे मार्ग पर कम से कम विलंब होता है। लोगों की त्रुटियों को, उनकी भोग-वृत्ति को पालनेवाली संस्था एक क्षण में ही लोगों से भर जाय तो उससे क्या हुआ? उससे तो उसकी सफलता नहीं सिद्ध होती है।

मेरी दृष्टि को स्वीकार करने का एक परिणाम आना बहुत संभव है। जो विद्यार्थी सरकारी विद्यालयों के शिक्षण के समान ही शिक्षण पाने की आशा से आये हों, जो केवल शहरी जीवन बिताने की योग्यता पैदा करने की आशा रख कर आये हों, वे निराश होंगे और हमारे विद्या-मंदिर छोडेंगे। किन्तु ऐसा होना इष्ट है। हम और वे दोनों ही मिथ्या स्थिति से बच जायँ यानी एक दूसरे की शुद्ध सेवा करें।

जिस विचार से मैंने यह लेखमाला आरंभ की थी, उन विचारों को जरा और बढा कर यह माला बंद करने की आशा रखता हूँ। इसके बाद में मेरे पास इस विषय के जो बहुत से प्रश्न पडे हुए हैं, उनकी चर्चा करने की उमेद करता हूँ।

प्राथमिक शिक्षा के पहले वर्ष में अक्षर-ज्ञान बिलकुल ही न देने का विचार सही हो तो उसके कितने एक शुभ परिणाम उच्च विद्यालयों और महाविद्यालयों में भी आने चाहिए।

आजकल किताबी ज्ञान का प्रचार बहुत बढ गया है। नित्य नयी किताबें निकलती ही जाती हैं। जिनकी भाषा जरा भी दुरुस्त हुई है, जिन्होंने जरा भी विचार कर लिया है, उन्हें अपने विचार प्रकाशित करने की उतावली हो जाती हैं और वे समझते हैं कि ये विचार प्रकट करने से देश-सेवा होती है। परिणाम यह होता है कि विद्यार्थियों के मगज पर और उनके अभिभावकों की जेबों पर असह्य बोझा पडता है, विद्यार्थियों की बुद्धि सो जाती है, मारी जाती है। उनके दिमाग अनेक जाति की हकीकतों के संग्रह-स्थान बन जाते हैं और इससे उनमें मौलिक विचारों के लिए स्थान नहीं रहता। और हकीकतें भी अपने अपने स्थान में करीने से सज कर रहने के बदले, जैसे कि आलसी आदमी के घर में जैसे तैसे इधर उधर बे सजा सजाया सामान पडा रहता है, उसी तरह बेचारे विद्यार्थी के दिमाग में गडबड सडबड पडी रहती हैं। इनका उपयोग न तो वही कर सकता है और न प्रजा ही।

इस लिए अपने मत के अनुसार तो आज जो बहुत सी पुस्तकें चलती हैं, उन्हें विद्यार्थी के पास में नहीं ही रक्खूँगा। लिखना, पढना जानने वाला विद्यार्थी भी बहुत सी बातें तो शिक्षक के मुँह से ही पाता है। वे कम से कम पुस्तकें पढें मगर जो पढें उन पर विचार करें और विचार करने पर जो बात स्वीकार करने लायक जान पडे उसका अमल करने लगें। ऐसा करने से विद्यार्थी का जीवन सरस, विचारमय, विवेकमय, निश्चल, पवित्र और तेजस्वी होगा। ऐसा विद्याभ्यास गरीब प्रजा को शोभता है। ऐसा विद्याभ्यास विद्यार्थी और प्रजा को लाभदायक होता है।

इस लिए विद्यापीठ के सामने पडे हुए प्रश्न के हल का आधार मौजूदा शिक्षकों की विद्यापीठ के ध्येय पचाने और उस हद तक चलने का उग्र उद्यम करने की शक्ति के ऊपर रहा है।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

उत्पत्ति और बिक्री

१

हिन्दुस्तान और यूरोप तथा अमेरिका में जमीन आसमान का फर्क है। यहांकी स्थिति वहांसे इतनी अलग है कि सरसरी निगाह दौडानेवाले को यहांकी स्थिति का पता चल ही नहीं सकता। पश्चिमी रंग में रँगे हुए हिन्दुस्तानी भी इस बात को भूल कर पश्चिमी ढंग पर ही सोचा करते हैं। वे भूल जाते हैं कि जो सवाल वहां है, वह यहां नहीं और जो यहां है, वह वहां नहीं। वहां एक आदमी माल बनाता है, दूसरा व्यापारी उससे लेकर बेंचता है। यहां माल बनानेवाले और उसका उपयोग करनेवाले के बीच तीसरा नहीं घुसता। अगर जुलाहा कपडा बनाता है तो वही बेंच भी लेता है और वह भी अपने पडोसी के या पास के गांव के किसी आदमी के हाथ। इस लिए यहांपर माल की माँग और तैयारी की गति भी एक दूसरे के अनुकूल ही है। परन्तु पश्चिमी दिमागों को यह गति बहुत धीमी जान पडती है। किन्तु धीमापन की कुछ नफरत की बात नहीं है। गुलाब का फूल ताली बजाते ही नहीं खिल उठता है। मगर इस धीमेपन के लिए हम उससे घृणा तो नहीं करते। और इस धीमेपन की ही बदौलत हिन्दुस्तान में कुछ खास खूबियां भी हैं जो यूरोप में नहीं पायी जातीं।

हम आगे चल कर देखेंगे कि यह धीमापन भी, हिन्दुस्तान की अपनी विशेष परिस्थिति में उतना बुरा या बाधक नहीं है, जितना कि पश्चिमीय लोग समझते हैं। यहां तो यूरोप या अमेरिका से जो कोई इञ्जीनियर आता है, इसी धीमेपन की आलोचना करता आता है। मगर आज संसार के सबसे धनी देश के जिस सबसे बडे कारखानेवाले का जिक्र इस लेखमाला में कई बार हो चुका है, उन श्री हेनरी फोर्ड का विचार इस के उलटा है। वे बडे बडे कारखानों को तोड कर उनके बदले गांव गांव में छोटे २ कारखाने बनाना चाहते हैं। उनका यह भी खयाल है कि छोटे पैमाने पर माल बनाना सस्ता भी पडता है। उनके अपने शब्द सुनिए:

"जहाँ कहीं संभव हो, हमें एक केन्द्रस्थित या एक ही जगह में बने हुए कारखानों को तोड कर दूर दूर पर फैला देना चाहिए। एक अत्यंत बडी आटे की मिल चलाने से कहीं अच्छा है, उन सभी जगहों में छोटी छोटी बहुत सी मिलें खोल देनी, जहाँपर कि अनाज पैदा होता है। जो समाज कच्चा माल तैयार करता है, यथाशक्ति उसीको तैयार माल भी बनाना चाहिए। आटा वहीं पीसना चाहिए जहाँ नाज की फस्ल होती है। सुअर पालनेवाले देश को सुअर नहीं बल्कि सुअर के मांस का चालान करना चाहिए। कपडे की मिलें कपास के खेतों के निकट होनी चाहिए। ये विचार क्रान्तिकारी नहीं हैं। यह कोई नयी बात नहीं है, बल्कि बहुत पुरानी बात है। हजारों मील से कच्चा माल ला ला कर एक छोटे से स्थान में जमा करने की आदत लगाने के पहले हम ऐसा ही करते थे। अब तो हम ग्राहक से माल की ढुलाई का भी खर्च वसूल करते हैं। हमारे

समाज़ अबसे अधिक स्वयं-संपूर्ण, और रेलवे पर कम निर्भर होने चाहिए। वे जो कुछ पैदा करें, उससे पहले अपनी हाजतें रफा कर लें और बाकी विदेशों में भेजें। मगर जब तक गल्ले या दूसरे कच्चे माल से तैयार माल बनाने का ढंग उनके हाथ नहीं आया है, तब तक यह कैसे होगा? अगर यह बात हर एक किसान के बूते की न हो तो कई एक सहयोग कर के तो ऐसे कारखाने तैयार कर सकते हैं। आज किसान ही सबसे अधिक कच्चा माल तैयार करता है किन्तु इस जमाने का दुर्भाग्य है कि वह तौभी सबसे बडा व्यापारी नहीं बन सकता है क्योंकि उसे कच्चे माल को वेंचने लायक बनाने के लिए दूसरों के हाथ बेंच देना पडता है। अगर वह यह कर सके तो महज उसीको अपना पूरा नफा नहीं मिलेगा, बल्कि उसके समाज को रेलवे इत्यादि से अधिक स्वतंत्रता मिलेगी, और फिर रेलवे इत्यादि वाहनों का काम घटने से कुछ राहत मिलेगी। यह न सिर्फ युक्तियुक्त और व्यावहारिक ही है, बल्कि परमावश्यक भी है। उससे भी बडी बात तो यह है कि यह योजना कई जगहों पर अमल में आ रही है मगर जब तक इस योजना पर और अधिक अमल न हो, लोगों के जीवन पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पडेगा।"

. . . . "सामान्यतः बडे कारखाने में खर्च की कमी नहीं होती।"

. . . "हमने खेतों पर से किसानों को नहीं खींच लिया है, बल्कि खेती के साथ ही हम उद्योग को जोडना चाहते हैं।"

. . . "बडा उद्योग अगर देश के लाभ की दृष्टि से चलाया जाय, तो उसे सारे देश में बांट देना होगा, जिससे खर्च तो कम पडेगा ही और साथ ही साथ ग्राहकों में ही मजदूरी बँट भी जायगी।"

"दर असल खेती का मसाला यह है कि उसके अलावा किसान और क्या करे? अगर खेती के साथ छोटे पैमाने पर विस्तृत उद्योग को मिला देवें तो यह प्रश्न सहज ही हल हो जाता है। खेती में भी बैठे रहने और उद्योग में भी मंदी के दिन आते हैं। दोनों को इस तरह मिलाया जा सकता है कि एक की मंदी में दूसरा तेज चले। इसका फल यह होगा कि सभी किसी को सस्ता माल मिलेगा और कोई भूखा भी नहीं रहेगा।"

अमेरिका के प्रसिद्ध एलेक्ट्रिक इंजीनियर स्टाइन मेट्स का विचार है कि एक स्थान पर कई सोतों या झरनों का पानी इकट्ठा कर गिराया जाय और फिर इस गिराव की ताकत से बिजली ली जाय तो इसमें बडा खर्च पडेगा। बिजली की जितनी ताकत मिलेगी, उससे कहीं अधिक तो खर्च ही पड जायगा। इस लिए अगर सभी झरनों से थोडी थोडी बिजली ले कर एक जगह इकट्ठी की जाय तो ज्यादह अच्छा होगा।

इसका मिलान चर्खे से बिलकुल ठीक होता है। हम एक जगह मिल खोल कर बहुत शक्ति इकट्ठी करने के बदले घर घर में थोडा थोडा काम लेकर, सारे देश की दृष्टि से बहुत सी शक्ति खर्चते और बहुत सा माल तैयार कर लेते हैं।

अमेरिका के प्रसिद्ध व्यापारी मि० एडवर्ड ए. फिलीन ने भी ये ही विचार दर्शाये हैं। अर्थात् हम देखते हैं कि सबसे बडे कारखाने वाले, एक बहुत बडे व्यापारी और एक प्रख्यात इंजीनियर तीनों ही उसी सिद्धान्त का समर्थन करते हैं जो चर्खे का है।

मगर हम यहां खास चर्खे के बारे में ही कुछ खास बातें देंगे। यह तो हम देख ही चुके हैं कि कई कारणों से मिल के कपडे की बनिस्बत खादी ही सस्ती होनी चाहिए। अब यहांपर हम केन्द्रस्थित कारखाने के रूप में मिल के कपडे की महँगी के मुख्य मुख्य कारणों को गिनावेंगे।

(क) लागतखर्च में बचत

मिलों की बहुत सी मदों में खर्च की सोलहों आने या कुछ कम बचतः

१. कच्चे माल को एक जगह ला जमा करना,
२. कच्चे माल को सँभाल रखना,
३. रेलवे और जहाज का ढुलाई-खर्च,
४. दूर माल ले जाने के लिए गाँठ-बँधाई
५. बहुत तेज चलनेवाले ओटे और धुनकी मिलों से रुई के रेशों की खराबी और नुकसान,
६. ओटा मिलों में बिनौले का टूटना, और भिन्न २ जाति के बिनौलों का एक में मिल जाना,
७. माल की बडे पैमाने पर तैयारी में कुछ और नुकसान,
८. ढुलाई, रखाई और बडे पैमाने पर काम के कुछ और नुकसान,
९. माल के लिए आग और चोरी का बीमा,
१०. तैयार माल की रखाई,
११. विज्ञापन,
१२. फैशन और पसंदगी में अदल बदल होते रहने से तैयार माल का पुराना पड जाना,
१३. रुपया, जमीन, मिहनत और दूसरी सुविधाओं का, महज शौक की चीजें तैयार करने में जाया जाना,
१४. दलालों, थोक-व्यापारियों, कमीशनवालों और बीच बिचवानों इत्यादि का लाभ,
१५. कच्चे और तैयार माल, दोनों के बाजार-भाव में चढाव उतार और इनपर फाटका,
१६. ऊपरी खर्च (दफ्तर के बाबुओं और दूकान के बेंचनेवालों का बडा खर्च, कीमती कलकांटे, मकानात, जमीन और दूसरी वस्तुएँ),
१७. ईंधन का खर्च,
१८. अदालत का खर्च,
१९. कर्ज, हुंडियावन वगैरह के लिए महाजन या बैंक का खर्च,
२०. इनकम टैक्स,
२१. म्युनिसिपल टैक्स और पानी का खर्च,
२२. कल कांटों और मकान की मरम्मत,
२३. कल पुर्जों का पुराना और समय के पीछे पड जाना,
२४. मजदूरों की क्षति-पूर्ति के लिए बीमा, या कानूनी क्षति-पूर्ति,
२५. मकानात और कलपुर्जों के लिए आग का बीमा।

(ख) जिन कारणों से जोखिम जाता रहता है या घट जाता है

१, अकाल और फस्ल मारी जानी,
२. आग,
३. चोरी,
४. हडताल,
५. माल की ढुलाई में देर।

(ग) अप्रत्यक्ष फल या आर्थिक या सामाजिक प्रभाव

१. (क) सूची में गिनाये खर्च कम होने से रहन सहन का खर्च घटना,

२. विदेशी पूँजी और व्यापारियों का हित कम होने से उनके अधिकार का कम होना,

३. टिकाऊपने, उपयोग की अनुकूलता, और सुंदरता की दृष्टि से माल में सुधार.

५. शहरों में चॉलियों का जीवन, शहरी जीवन, शहरी जीवन
[फल]-स्वरूप शारीरिक और नैतिक ह्रास, बेकारी और उसका डर
[और] नैतिक ह्रास के समान सामाजिक बुराइयों का दूर होना,
[६]. शहरों के बसाने की प्रवृत्ति का कम होना, जिससे रेलवे,
[म्युनि]सिपैलिटी इत्यादि के खातों में राष्ट्रीय खर्च की बचत,
[७]. लोगों के जीवनों पर पूँजीपतियों के दबाव का कम होना,
[८]. संख्या ६ के ही फल-स्वरूप व्यापार में आवश्यक साख
[अ]थवा ऋण, और उसके जरियों में कमी होनी, और इस
[पर] एकाध आदमियों का निरंकुश अधिकार रहने से उसकी
[कमी] और जिसके कारण बाजार भाव का चढाव उतार,
[९]. अधिक फुरसत,
[१०]. स्वास्थ्य और शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों में वृद्धि,
१०. रचनात्मक प्रवृत्ति में वृद्धि और लोभ, परिग्रह तथा
[प्र]माद के अवसरों तथा लालचों में कमी,
११. जो जमीन आज कपास पैदा करने में बेकार पडी रहती
[है उस]का खाली हो कर अनाज पैदा करने में लग जाना।

(क्रमशः)

[मि. रिचार्ड. बी. ग्रेग की 'खद्दर का अर्थशास्त्र' नामक
[पुस्तक] में से]

सर्वनाशिनी गाडी

७

[...]पुरम थाने का हवालात है। पार्वती और करुप्पण अलग
[अलग क]मरों में बंद थे। सभी कान्स्टेबुलों ने पार्वती के कमरे के
[पास से] हो कर गुजरते समय उससे जरा हँसना चाहा। जिस
[किसी] को उससे बातें करने का अवसर मिला उसने मीठी ही बातें की।
[वह] तो इसी घबराहट में थी कि क्या था और अब क्या और
[क्या] हो गया है। वह बहुत घबरा गयी थी। जो कोई पहले पहल
[लोहे के] पिंजडे में बंद किये गये जंगली पशु के मनोभावों की
[कल्पना] कर सकता है, वही समझ सकेगा कि किसी किसान की
[स्त्री] को पकड कर कानून के जाल में डाल देने से उसे क्या
[होता] है, उस पर कैसी मुसीबत आ पडती है।

[सब]-इन्सपेक्टर बोला, "भला हो, अगर तू सब कुछ अकवाल [कर दे]। फिर पीछे हम देख लेंगे।"

[करु]प्पण बोला, "इसमें छिपाने की बात ही क्या है? मैं [पिछ]ले शुक्रवार को ही करमंदूर गांव से घर लौटा।"

"इससे कुछ नहीं होगा भाई। तेरी औरत ने हमें सब कुछ [कह दि]या है।"

"हुजूर कहींकी, वही तो सब फसाद की जड है।"

"हां, हां, ठीक ही तो कहते हो। सब मामलों की जड में [औरतें] ही होती हैं अब तो सब कुछ कह दो डरो मत।"

"मुझे कहना ही क्या है? आप तो कहते हैं कि उसने [सब कुछ क]ह ही दिया है।"

"हां, हां, । मगर तुझे जरूर कहना होगा नहीं तो सात [वर्ष] जेल होगा। समझा रे बदमाश।"

[करु]प्पण बोला, "भले सात वर्ष जेल काटूँगा। मगर मैं कहूँगा [कुछ] नहीं।"

[हेडकान्]स्टेबुल बोला, "हजूर, जब तक नर्मी से काम लिया [जायगा यह] ऐसे ही बकता जायगा। हमें तो . . . (उसने [किन्हीं] चीजों का नाम लिया जो कहे भी नहीं जा सकते) [...] पडेगा। तभी वह सच्ची बात कहेगा।"

[सब]-इन्सपेक्टर ने कहा, "हां, ठीक है। तुम पीछे से जरा जाँच करना।" जाँच शब्द पर खास जोर दिया।"

पार्वती से भी पूछ ताछ हुई।

हेडकान्स्टेबुल ने कहा, "सुन री औरत। तू तो निर्दोष जान पडती है। बीफे को तेरे घर पर कादिरखां और उसका लडका गये थे?"

"बाप और बेटा? ना जी।"

हेडकान्स्टेबुल ने दूसरे सिपाहियों की ओर कनखियों का इशारा किया, "तब क्या इस्माइल अकेले गया था?"

"नहीं मालिक, ऐसी बात न करो। मेरे घर कोई तुलुकन किस लिए जाय? ऐसी शर्म की बातें औरतों से मत पूछिए। मुझे घर जाने दो। वहां मेरे काका, मेरी सासु वगैरह सभी कोई हैं। उनसे पूछ कर सब जान लीजिए।"

"तू अभी घर नहीं जा सकेगी। इतनी जल्दी तो नहीं जाने पावेगी। पहले सच्ची बातें कह दे, फिर घर जाना।"

पार्वती ने कहा, "हाय, मेरे भगवान्।"

हेडकान्स्टेबुल फिर बोला, "अजी, वह सीधे मुँह बात करने से कुछ नहीं बतलावेगी। वह है होशियार औरत। उसने न जाने कितने बेवकूफों को अब तक चौपट किया है।"

"नहीं मालिक। आप के भी तो औरतें और बेटियाँ हैं। दया करो।" पार्वती गिडगिडायी।

हेड कौन्स्टेबुल ने कहा, "लोहे के छड गर्म करो।"

पार्वती चिल्ला उठी, "हाय स्वामी। मेरे आदमी से पूछो। वह सब कुछ कह देगा। मेरी जैसी अभागिनी पर क्यों जुल्म करते हो?"

"हां, हां, हम तेरे आदमी से भी जरूर पूछेंगे। हमने उससे पूछा था, और उसने सब कुछ कबूल भी कर लिया है। छिपा तो एक तू ही रही है।" सब-इन्सपेक्टर ने कहा।

पार्वती ने अत्यन्त दुःख से तडप कर पूछा, "क्या उसने कबूल कर लिया है?"

"हां, उसने हमें कह दिया है कि सारे टंटे की जड तू ही है।"

"हाय, भगवान्।" कह कर वह हाथ मलती हुई गिर पडी।

हेड कान्स्टेबुल बोला, "नहीं जी, रोने से कुछ नहीं होगा। हम लोग इससे धोखा नहीं खायेंगे। तुम तो इस बात में बडी चतुर जान पडती हो। तुमने अब तक कितने बेवकूफों का सर्वनाश किया है?"

"हाय भगवान्। इस तरह तो मुझ से बातें मत करो भाई। वह आया और उसने अपने किश्त के रुपये माँगे।"

"हा हा, अब तो आ रही है चिडिया रंग पर। मैं ने तो कहा था न साहेब?" सब इन्स्पेक्टर की ओर घूम कर हेड कान्स्टेबल ने इतना कहा। फिर पार्वती को समझाने लगा, "अगर तू सिर्फ सच सच बोलेगी तो छूट जायगी। औरतों को जेल में कौन डालना चाहता है? तुम्हारा आदमी भी थोडी सी सजा पाकर छूट जायगा। इसका उपाय हम लोग कर लेंगे।"

"आज मुझे घर जाने दो। कल्ह मैं सब कुछ कह दूँगी।"

सब इन्स्पेक्टर ने कहा, "अच्छी बात है। जाने दो। अब वह कहने को राजी जान पडती है।"

हेड कान्स्टेबुल ने फिर कहा, "अगर वह घर जा सकी तो फिर कुछ भी नहीं कहेगी।"

"मगर हम उसे हवालात में रख नहीं सकते क्योंकि उसे गिरफ्तार नहीं किया है।" सब इन्स्पेक्टर ने जरा अलग हो कर इतना कहा।

"जो हुक्म। उसे 'बंदोबस्त' के साथ घर भेजना होगा और कल्ह सुवह ही फिर बुलवा लेना होगा।"

८

बाप के कहने सुनने से करुप्पण के बडे भाई ने वकील किया। वकील का खर्च चुकाने के लिए करुप्पण की गाडी बेंच दी गयी। उसके, दाम खर्च हो जाने पर करुप्पण की भैंस किसी रिश्तेदार के हाथों बंधक रख दी गयी। पार्वती को सभी कोई रात दिन कोसने लगे। सारी बला की जड वही कही जाती थी।

मैजिस्ट्रेट के सामने वकील ने तीन घंटे तक बहस कर के सुबूतों के जरिए यह साबित करने की कोशिश की कि वारदात के दिन करुप्पण घर पर था ही नहीं बल्कि करुमंदूर गांव में गया हुआ था। वकील की बहस से करुप्पण के संबंधियों को बहुत संतोष हुआ।

कादिर खां ने हलफ लेकर कहा कि, "मैं करुप्पण के घर पर अपने लडके के साथ किश्त के रुपये माँगने गया था और करुप्पण ने गुस्से में आकर मुझे गालियां देनी शुरू की और मैंने इसका विरोध किया और अपने रुपये माँगे। इस पर करुप्पण हथियार लेकर मुझे मारने झपटा। संयोग से मैं तो बच गया, मगर मेरा लडका बीच में आ गया। वह भी वहीं ठंडा हो जाता लेकिन कुछ संयोग ऐसा था कि सिर के बदले चोट कान पर लगी जो साफ कट गया।"

पार्वती की गवाही कचहरी में ली गयी। उसने कुछ भी नहीं स्वीकार किया। वकील ने उसे ऐसी ही सलाह दी थी। उसने कहा कि पुलिस के यहाँ का बयान तो मुझसे धमकी दे कर लिखवाया गया था।

मैजिस्ट्रेट ने करुप्पण को दौरा सिपुर्द कर दिया।

अब तो बैल भी बेंच दिये गये। दौरा अदालत के लिए एक नया वकील रक्खा गया। पार्वती फैसले की राह देखती हुई पीहर में अपने भाई के यहाँ जा रही।

पार्वती का भाई गरीब था। बडी मुश्किल से वह अपना घर-खर्च चलाता था। उसकी औरत नल्यी पार्वती पर बडी कडाई करती थी। पार्वती मकान के सामने के बाडे में खडी हुई रो रो कर भाई से बातें कर रही थीं। नल्यी ने घर में से निकल कर कहा "हमसे कुलटाओं का पालन नहीं होगा। हम तो आप ही भलेमानुस गरीब आदमी हैं।"

वह दरवाजा बंद कर के खेत में चली गयी।

भाई बोला, "बहिन, गोशाला में जाओ और गोबर लेकर खेत में आओ।"

पार्वती काम कर के अपनी उपयोगिता दिखलाने की कोशिश करती थी। वह यही कोशिश करती थी कि जिसमें वह अपना खर्च तो मिहनत कर के भर देवे। मगर उसकी भौजाई ने जरा भी दया माया न दिखलायी। उससे जितना पार लगता, वह पार्वती का अपमान ही करती और उसे कष्ट पहुँचाती। मगर यह सब कुछ पार्वती संतोष और धैर्य से सह लेती।

एक दिन पार्वती को बडी अदालत में बुलाने के लिए एक सिपाही आया। करुप्पण का मुकद्दमा अब खुलने को था। पार्वती को इस में भी आराम ही जान पडा। पुलिसवाला बूढा, लंबी मूँछोंवाला दयालु मुसलमान था। उसने अपमान नहीं किया बल्कि बाप के समान समझाया।

"जैसे जैसे हुआ हो, सच्ची बातें कह देना। शायद जजों का दिल पिघल जाय और वे रहम करें।"

पार्वती बोली, "मैं सच बात कैसे कह सकती हूँ? हाय, यह कितनी बडी लाज की बात है?"

"शर्म क्या है? ऐसी बात तो दुनिया में न जाने कितने आदमी करते हैं। एक बार किससे भूल नहीं हो जाती है? [illegible] तो खुदा हमें हमेशे ही बचाता है मगर कभी कभी गलत रास्ते भी चला जाने देता है। यही मालिक की मर्जी है।"

पार्वती ने फिर पूछा, "तो क्या तुम यही सलाह देते हो कि मैं सच्ची बातें कह दूँ? तब तो मेरी जाति चली जायगी। मेरा आदमी मुझे घर में रक्खेगा नहीं। तब मैं क्या करूँगी?"

"अब तो तेरे आदमी को छै साल की सजा होगी। अगर तू सच्ची बात कह दे तो शायद वह छै महीने में ही छूट जाय। ऐसा ही मामला एक और हुआ था। अगर तू अभी उसकी मदद करती है तो वह तेरा अहसान मानेगा। फिर जाति में मिलाने के लिए कोई उपाय कर लिया जायगा। किसी तरह, यह खुलासा कर देने से अधिक महफूज रास्ता दूसरा नहीं है।"

पार्वती चुप थी। उसके दिल में कुछ कहता था कि सच कह दे। मगर तुरत ही कोई दूसरी ध्वनि उसे दबा डालती थी। वह डरती थी और घबरायी हुई थी।

कान्स्टेबुल ने उसे एरोड स्टेशन पर गाडी में चढाया। [illegible] पहले पहल, पार्वती रेलगाडी में बैठी थी। स्टेशनों पर की भीड और गाडी की चाल भी उसके लिए दुःखदायक ही रही।

गाडी की चाल तेज हो जाने पर किसी कोने में से उठ कर एक नौजवान आगे आया और गाने लगा। वह अंधा था। [illegible] और दूसरा लडका उसके पास आ खडा हुआ। वह भी उसके गले में गला मिला कर गाने लगा।

इस जोडी को कान्स्टेबुल ने फटकारा मगर उस फटकार से उनका गाना बन्द नहीं हुआ। वे गाते ही रहे। उनके सुर में वह लोच था जो मामूली गवैयों के गलों में नहीं होता। उनके गाने में कुछ ऐसी मोहकता थी जो कलावंतों में भी नहीं होती। [illegible] डिब्बे में बैठे हुए एक आदमी ने उन्हें कुछ न कुछ दिया ही। मानों यह भी एक कर ही लग गया। जब वे पार्वती के पास आये, तब उसने भी अपने आँचल की गांठ खोल कर एक [illegible] निकाल कर दे दिया।

पार्वती थोडी देर के लिए सब कुछ भूल गयी। पूरा गीत तो वह समझ नहीं सकी, मगर उसके मन में इस भाववाला पद बार बार आ रहा था,

"मैंने यह कौन सा पाप किया,
जिसे लोगों से छिपा रक्खा?
क्या मेरे बंधुगण मुझे स्वीकार करेंगे?
क्या मेरी मैया मुझे अपनी गोद से निकाल देगी?"

(क्रमशः)

(यं. इं.) चक्रवर्त्ती राजगोपालाचार्य

मगनलाल गांधी स्मारक फण्ड

एक गुप्त दान	रु. १०१-०-
सौ. दूधीवहन	११-०-
श्री. अब्बासभाई अब्दुल रहीम की तरफ से	१०-०-
श्री. इच्छाशंकर हरजीवन त्रिपाठी, सरखेज	७-०-
एक गृहस्थ	२५-०-
एक मित्र	१००-०-
श्री. डाह्यालाल मयाचन्द, पालनपुर	२५-०-
सेठ प्यारअली मुराज	२००-०-
श्री. गोकुलदास कल्याणजी पुजारी	१०-०-
कुल	रु. ४८९-०-

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ४२

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, आषाढ बदी ४ संवत् १९८४ गुरुवार, ७ जून, १९२८ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय ८

लक्ष्मण झूला

जब मैं पहाड जैसे लगनेवाले महात्मा मुंशीराम का दर्शन करने और उनका गुरुकुल देखने गया, तब मुझे बहुत शान्ति मिली। हरद्वार की गडबड और गुरुकुल की शान्ति के बीच भेद स्पष्ट ही दिखलायी पडता था। स्वामी जी ने मुझे प्रेम से नहलाया। ब्रह्मचारी मेरे पास से हटते ही नहीं थे। रामदेव जी से भी उसी समय परिचय हुआ और उनकी शक्ति को मैं तुरत ही पहचान सका। हमारे बीच कितनी मतभिन्नता देख सका किन्तु तौभी प्रेम की गांठ बँधी। गुरुकुल में औद्योगिक शिक्षण दाखिल करने की आवश्यकता के बारे में रामदेव जी तथा दूसरे शिक्षकों के साथ खूब चर्चा की। तुरत ही गुरुकुल छोडते हुए मुझे दुःख हुआ।

मैंने लक्ष्मण झूला की स्तुति खूब सुनी थी। हृषीकेश गये बिना, हरद्वार न छोडने की बहुतों की सलाह हुई। मुझे तो वहां पैदल चल कर जाना था। इसलिए एक मंजिल हृषीकेश की और दूसरी लक्ष्मण झूला की थी।

हृषीकेश में बहुत से संन्यासी मिलने आये थे। उनमें एक को मेरे जीवन में बहुत रस लगा। फिनिक्स मंडल मेरे साथ था। उन सबको देख कर उन्होंने बहुत से प्रश्न पूछे। हमारे बीच धर्म की चर्चा हुई। उन्होंने देखा कि मुझे धर्म की तीव्र लगन है। मैं गंगा-स्नान कर के आया था, इसलिए शरीर उघारा था। उन्होंने मेरे माथे पर शिखा न देखी और शरीर पर जनेऊ न देखा। इससे उन्हें बहुत कष्ट हुआ और उन्होंने पूछा,

"आप आस्तिक हो कर भी जनेऊ और शिखा नहीं रखते हैं, यह देख कर मेरे जैसों को कष्ट होता है। ये दो हिन्दु-धर्म की बाह्य संज्ञाएँ हैं, और इन्हें हर एक हिन्दू को रखना चाहिए।"

कोई दश वर्ष की उम्र में मैं पोरबंदर में ब्राह्मणों के जनेऊ में बँधी चाबियों की झनकार सुना करता था। मुझे इसकी डाह होती थी। ऐसा लगता कि जनेऊ में बाँध कर कुंजियां झनझनाते चलें तो क्या ही अच्छा हो। उस समय काठियावाड में वैश्य कुटुम्ब में जनेऊ का रिवाज न था। किन्तु यह नया प्रचार चल रहा था कि पहले तीन वर्णों को जनेऊ पहनना चाहिए। इसी संबन्ध में गांधी कुटुम्ब के भी कई आदमी जनेऊ पहनने लगे। जो ब्राह्मण हम दो तीन सगे संबन्धियों को रामरक्षा का पाठ सिखलाते थे, उन्होंने हमें जनेऊ पहनाया। मुझे कुंजियां रखने का कोई कारण नहीं था, तौभी मैंने दो तीन कुंजियां लटकायीं। जनेऊ के टूट जाने पर उसका मोह उतर गया या नहीं—यह तो याद नहीं है, मगर फिर से नया नहीं पहना।

बडी उम्र के होने पर दूसरों ने मुझे जनेऊ पहनाने का प्रयत्न हिन्दुस्तान में और द० अफ्रिका में किया था, किन्तु मुझपर उनकी दलील का असर न हुआ। शूद्र जनेऊ न पहने तो दूसरे वर्ण कैसे पहनें? जिस बाह्य वस्तु का रिवाज मेरे कुटुंब में न था, उसे फिर से दाखिल करने का एक भी सबल कारण मुझे न मिला। मुझे जनेऊ का अभाव न था, मगर उसे पहनने के कारण का अभाव था। वैष्णव होने के कारण मैं कंठी पहनता था। शिखा तो गुरुजन ही हम भाइयों को रखवाते थे। बिलायत जाते समय इस शर्म से शिखा कटवायी थी कि नंगा सिर होगा, उसपर शिखा देख कर गोरे हँसेंगे और मुझे जंगली समझेंगे। मेरे साथ रहते हुए मेरे भतीजा छगनलाल गांधी दक्षिण अफ्रिका में बहुत भाव से शिखा रख रहे थे। इस वहम से कि वह उनके सार्वजनिक काम में बाधक होगी मैंने उनका मन दुखा कर उनकी शिखा दूर की थी। यों मुझे शिखा की शर्म थी।

स्वामी को ऊपर की हालत मैंने कह सुनायी और कहा,

"जनेऊ तो मैं नहीं धारण करूँगा। असंख्य हिन्दू जिसे नहीं पहनते और तौभी हिन्दू कहे जाते हैं, उसे अपने पहनने की जरूरत मैं नहीं देखता। फिर जनेऊ धारण करना है दूसरा जन्म

लेना यानी इरादापूर्वक शुद्ध होना, ऊर्ध्वगामी बनना। अभी तो हिन्दू-समाज और हिन्दुस्तान गिरे हुए हैं, इसमें जनेऊ पहनने का अधिकार ही हमें कहां है? हिन्दू-समाज अस्पृश्यता का मैल धोवे, ऊँच नीच की बात भूल जाय, दूसरे ऐसे दोष दूर करे, जो इसमें घर कर चुके हैं, सर्वत्र फैले हुए अधर्म, और पाखंड को दूर करे, तब उसे जनेऊ का अधिकार भले ही हो। इसलिए जनेऊ धारण करने की आपकी बात मेरे गले नहीं उतरती है, किन्तु शिखा के बारे में आपकी बात मुझे जरूर विचारनी पडेगी। उसे तो मैं रखता था। शर्म और डर के मारे उसे कटा डाला है। मुझे लगता है शिखा धारण करनी चाहिए। अपने साथियों के साथ में इस विषय पर विचार कर लूँगा।"

स्वामी को जनेऊ के बारे में मेरी दलील पसंद न पडी। जो कारण मैंने न पहनने के लिए बतलाये वे उन्हें पहनने के पक्ष में लगे। जनेऊ के विषय में हृषीकेश में कहे हुए मेरे विचार आज तक कायम हैं। जब तक जुदा जुदा धर्म हैं, तब तक शायद प्रत्येक धर्म को कुछ बाह्य-संज्ञा की आवश्यकता हो। किन्तु जब बाह्य-संज्ञा, केवल आडंबर-रूप हो पडती है या अपने धर्म को दूसरे धर्म से बढा बनाने के लिए काम में लायी जाती है, तब वह त्याज्य बन जाती है। यह मैं नहीं देखता हूँ कि आज जनेऊ हिन्दू धर्म को ऊँचे ले जाने का साधन है। इस लिए उस संबंध में तटस्थ हूँ।

शिखा का त्याग तो मुझे आप ही शर्मिन्दा करनेवाला था। इसलिए साथियों के साथ चर्चा कर के मैंने उसे धारण करने का निश्चय किया। किन्तु अब हमें लक्ष्मण झूला जाना चाहिए।

हृषीकेश और लक्ष्मण झूला के कुदरती दृश्य बहुत पसन्द पडे। कुदरत की कला पहचानने की पूर्वजों की शक्ति और कला को धार्मिक स्वरूप देने की उनकी दूरंदेशी के बारे में मन में अत्यन्त अभिमान हुआ।

किन्तु मनुष्य के कारनामों से तो चित्त को शान्ति न मिली। जैसे हरद्वार में उसी तरह लोग हृषीकेश में रास्ते और गंगा किनारा गंदा कर डालते थे। गंगा का पवित्र पानी भी बिगाडते हुए उन्हें कुछ भी संकोच न होता था। हाजत जानेवाले दूर न जा कर जहां मनुष्यों की आवा जाही लगी हो, उसके पास ही चले जाते थे। यह देख कर हृदय को बहुत आघात पहुँचा।

लक्ष्मण झूला जाते हुए लोहे का झूलता हुआ पुल देखा। लोगों से सुना कि इसके पहले तो रस्सी का, मगर बहुत ही मजबूत पुल था। उसे तोड कर उदार दिल के किसी मारवाडी ने बडा दान दे कर यह लोहे का पुल बनवाया, और उसकी चाबी सरकार को सौंपी। रस्सी के पुल का मुझे कोई खयाल नहीं है, किन्तु लोहे का पुल तो कुदरती वातावरण को कलुषित करता था, और बुरा लगता था। यह बात मेरी उस समय की सरकार की भक्ति को भी बुरी लगी कि यात्रालुओं के इस रास्ते की चाबी सरकार को दी गयी है! वहांसे अधिक दुःखद दृश्य स्वर्गाश्रम का था। जस्ते के पतरों की तबेलों या घुडसाल जैसी कोठरियों को स्वर्गाश्रम का नाम दिया गया था। ये साधकों के लिए बनायी गयी थीं। उनमें शायद ही तब कोई साधक रहता था। इस से संबद्ध मुख्य मकान में रहनेवालों ने भी मुझपर कोई अच्छी छाप न डाली।

किन्तु हरद्वार के अनुभव मेरे लिए अमूल्य सिद्ध हुए। हरद्वार के अनुभवों ने इस विषय में बहुत मदद की कि मुझे कहां रहना और क्या करना चाहिए।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

शिक्षा-विषयक प्रश्न

प्राथमिक शिक्षा पर तीन लेख लिखने के बाद, अब नीचे के प्रश्नों के उत्तर देना सहज हो गया है।

प्र० आपने एक बार लिखा था कि अँगरेजी का भार हलका करें तो वह विद्यार्थी के जीवन में से कई वर्ष बचाने के बराबर होगा। राष्ट्रीय शिक्षण का अर्थ अगर राष्ट्रव्यापी शिक्षण करें तो इसका बोझा समाज पर कितना और कितने वर्ष का होगा?

उ० पहले तो वह समझाना होगा कि 'अँगरेजी का भार हलका करना' के क्या मानी हैं। मेरा मतलब यह बिलकुल नहीं है कि विद्यार्थी अँगरेजी का ज्ञान बिलकुल ही नहीं पावे। किन्तु जिस तरह कि कोई फ्रेन्चमॅन अँगरेजी जानता हो, उसी तरह हम उसका सेवन पर-भाषा के रूप में करें। किन्तु अगर हम इसी अंश तक अंगरेजी जानें तो अंगरेजी में विचार करने, शुद्ध उच्चारण से शुद्ध अंगरेजी बोलने और शुद्ध अंगरेजी लिखने का बोझा न उठाना पडे। मेरी मान्यता है कि इस बोझे से हर एक विद्यार्थी का कम से कम ५ वर्ष समय तो नष्ट होता ही है। इतना ही नहीं, बल्कि उन पाँच वर्षों के परिश्रम से उसकी विचार-शक्ति मारी जाती है, शरीर निर्बल होता है, और वह स्याही चूसनेवाले स्याही-सोख्ते या ब्लौटिंग पेपर के समान केवल ऊपर ऊपर की नकल करनेवाला बन जाता है। अगर कोई आदमी पांच वर्ष अपनी भाषा के जरिए ज्ञान लेने में खर्च करे तो कितना सीखेगा? कितना बचावेगा? अच्छे से अच्छे विचार अपनी भाषा के जरिए जान ले और परभाषा के मुश्किल उच्चारण सीखने के बोझ से बच जाय।

प्र० एक ओर तो बाल-शिक्षा और दूसरी ओर महाविद्यालय की शिक्षा, दोनों ही खूब खर्चीली हैं। राष्ट्रीय शिक्षण में इन दोनों का क्या अंतर्भाव सचमुच में हो सकता है? अथवा उतनी ही गंभीर शिक्षा कम खर्च में देने की कोई योजना आपके पास है?

उ० यह बतलाने का प्रयत्न मैंने पिछले तीन लेखों में किया है कि बाल-शिक्षा किस तरह सस्ती और लगभग स्वाश्रयी बनायी जा सकती है। अगर हम महाविद्यालय की शिक्षा को, प्राथमिक शिक्षा की मदद करनेवाली बनावें तो वह शिक्षा भी सस्ती हो जाय, और राष्ट्र का पोषक ज्ञान विद्यार्थी भली भाँति पावें। 'उतनी ही गंभीर शिक्षा' का अर्थ अगर सरकारी शिक्षा के समान होना ही हो तो यह प्रश्न अप्रस्तुत है, क्योंकि सरकारी शिक्षा को मैं संगीन गिनता ही नहीं हूँ। राष्ट्रीय महाविद्यालय की, या प्राथमिक शिक्षा सरकारी शालाओं की शिक्षाओं से भिन्न, और कितनी बार नयी, और मौलिक प्रकार की होगी। इसलिए वह स्वतन्त्र रूप से संगीन है।

प्र० पुरानी परंपरा के हिमायती विद्यार्थियों में गुरु भक्ति उत्पन्न करने को कोशिश करते हैं। यह समझाने का प्रयत्न करते हैं कि हमें गुरु की प्रसन्नता से ही विद्या प्राप्त हो सकती है, अन्यथा नहीं। गुरु की भक्ति, सेवा, शुश्रूषा न करें तो गुरु चित्त की शठता से विद्या चुराता है। जिसमें वह ऐसी हरामी न करे इसीलिए उसकी खुशामद करनी चाहिए।—क्या यही गुरुभक्ति की मीमांसा है?

उ० मैं गुरु-भक्ति को माननेवाला हूँ। किन्तु प्रत्येक शिक्षक गुरु नहीं होता। गुरु शिष्य का संबन्ध आध्यात्मिक और स्वयंस्फुरित होता है; वह कृत्रिम नहीं होता, वह बाहर के दबाव से पैदा नहीं होता। ऐसे गुरु आज भी हिन्दुस्तान में हैं। (यहां मैं कानफुँकवा मोक्षदायी गुरु का उल्लेख नहीं करता,—यह चेतावनी देने की जरूरत नहीं होनी चाहिए।) ऐसे गुरु की खुशामद संभव ही नहीं है। ऐसे गुरु के प्रति आदर

...विक होता है। गुरु का प्रेम भी स्वाभाविक ही होता है। ...लिए एक देने और दूसरा लेने को हमेशे तयार ही रहता है। ...सामान्य ज्ञान तो हम हर एक के पास से ले सकते हैं। ...बढई के साथ मेरा कोई संबंध न हो, तौभी उसके पास से ...के दुर्गुण जानते रहने पर भी मैं बहुत कुछ ले सकता हूँ, जिस ...दूकानदार के पास से सौदा खरीदते हैं, उसी तरह उसके पास ...बढईगीरी का ज्ञान खरीद लेता हूँ। हां, यहां भी अमुक ...की श्रद्धा आवश्यक है। जिस बढई के पास से मैं बढईगीरी ...ज्ञान लेना चाहता हूँ, उसके बढईगीरी के ज्ञान में मुझे श्रद्धा न ...तो मैं वह ज्ञान नहीं पा सकूँगा। गुरुभक्ति अलग ही विषय है। ...का विषय जहां चारित्र गढना ही है, वहां वहांपर गुरु ...का संबंध अत्यावश्यक है, और वहां अगर शुद्ध गुरुभक्ति न ...तो चारित्र गढ ही नहीं सकता।

मोहनदास करमचन्द गांधी

(...नवजीवन)

उत्पत्ति और बिक्री

२

हाथकताई और बुनाई पर चर्खा संघ का इनामी निबंध दिखलाता ...कि, "मिलों के खर्च का सैकडे १५ तो ईंधन, बीमा, इन्कम ...और कलपुर्जों की घिसावट पर खर्च हो जाता है। यंत्र बल ...मुकाबिले में मनुष्य-बल को भले ही कताई और बुनाई दोनों के ...अधिक मजदूरी देनी पडे, मगर ये जाया जानेवाले खर्च तो ...के मत्थे से उतर जायँगे और राष्ट्रीय किफायत के लिए और ...रास्ते मिल जायँगे।"

फिर, "कताई और बुनाई के लिए मजदूरी एक समान ठीक ...जाने के बाद कतवैये के अपनी रुई आप जमा कर लेना शुरू ...के बाद, कर्घे और चर्खे दोनों में सुधार होने बाद, और ...का पैदावार में ही बहुत बडी उन्नति होने बाद, सामान्यतः ...दूर तक की बचतें होने लगेंगी, जिनसे मिल के कपडों के ...खादी की कीमत का मिलान ज्यादह अच्छी तरह किया जा ...सकेगा।"

कतवैये के अपनी रुई आप जमा कर रखने का महत्त्व ...है। अमेरिका के मिलों में सारे खर्च का फी ...सदी ६२ तो कपास पर ही होता है, जब कि हिन्दुस्तानी ...मिलों में फी सदी ५३। फिर हमारे अधिकांश कतवैये या तो ...कपास पैदा करनेवाले किसान हैं, या कपास के खेतों पर ...श्रम करनेवाले मजदूर हैं। उनमें कुछ को तो अपनी मजदूरी भी ...कपास के रूप में ही मिलती है। बेशक इन्हें जितनी सस्ती कपास ...मिलेगी, वैसी तो मिलवालों को मयस्सर हो नहीं सकती। कपास ...पैदा भी प्रायः सभी जिलों में होती है, जिससे हमारे अधिकांश ...कतवैये सहज ही अपने कातने के लिए काफी कपास जमा रख ...सकते हैं। इससे तो आज जो खर्च रेलवे स्टेशन तक ले जाने ...और वहाँ से कपास ढो लाने में, गोदाम में बहुत अधिक ...कपास रखने में, बीमा कराने में, इस बीच कपास के दाम की ...मंदी तेजी से और इस कारण होनेवाली बेकारी से जो खर्च ...या हानि होती है, वह तो कतवैये के आप कपास जमा कर रखने ...से बिलकुल रुक जायगी। इतना ही नहीं बल्कि जो कतवैया अपने ...लिए कपास जमा कर रक्खेगा, उसे ओटाई की मजदूरी भी मिलेगी, ...और वह बिनौलों को भी बचा रख सकेगा। होशियार किसान के ...लिए अच्छे बीज की कीमत कुछ कम नहीं होती। इस बीच ...अगर कपास का दाम चढ गया तो वह अपने सूत का दाम बढा ...कर लाभ उठा सकता है, मगर दाम घटने पर वह उस सूत को अपने लिए ही कात कर घटी उठाने से बच सकता है। इससे सूत में भी बहुत बडा सुधार होने लगेगा क्योंकि कपास अपनी होने के कारण कतवैये को इसकी फिक्र हमेशे रहेगी, कि कहीं कुछ नुकसान न हो जाय। कपास की ओटाई और चुनाई भी बहुत सावधानी से होने लगेगी। इस खयाल से कि जब कपास नहीं मिलती, उन दिनों के लिए, जितनी कम खर्च की जा सके, की जाय, और तब भी सूत से जितना लाभ उठाया जा सके, उठाया जाय, वह महीन और एक सा सूत कातने की कोशिश करेगा।

यों हम देखते हैं कि बडे पैमाने पर एक केन्द्रस्थित कारखाने चलाने से भले ही बडे बाजार में लाभ हो मगर छोटे बाजार में, विस्तृत पैदावार और विस्तृत बाजार में केवल छोटे पैमाने पर ही काम करने से लाभ हो सकता है। यह बात इंजीनियरिंग और कीमत, दोनों दृष्टियों से सही जान पडती है। और जब हम सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विस्तृत दृष्टियों से देखते हैं तो उन्हीं में अधिक लाभ दिखायी देता है। कम से कम कुछ और गहरा अध्ययन किये बिना तो उनका विरोध करना उचित नहीं है। मगर दुर्भाग्य तो यह है कि पश्चिम के लोगों में यह खयाल घुस गया है कि उन्हींके तरीके, उन्हींके ढंग संसार में सबसे अच्छे हैं और चाहे किसी परिस्थिति में उपयुक्त होंगे। इसलिए जो कुछ कि उनके इलाजों से नहीं मिलता, बुरा कहा जाता है।

सारांश यह है कि गांधी जी के बतलाये चर्खा आन्दोलन के समान छोटे पैमाने पर, विस्तृत और बडे उद्योग की आर्थिक शक्ति और उपयोगिता इन बातों में है—कम मजदूरी, शक्ति पर कम खर्च, मरम्मत खर्च का कम होना, कलपुर्जों को चलाने में कम खर्च, उनके पुराने पडने का कम भय और उनकी घिसावट से कम नुकसान, हिसाब किताब का कम खर्च, जल्दी जल्दी सामान को तैयार हो कर बिक जाना, जिससे वही पूँजी बारबार फिरती रहती है, गोदाम में रखाई का खर्च बिलकुल ही न होना या बहुत कम होना, ढुलाई खर्च बिलकुल ही जाता रहना, रोजगार की निश्चयता, मानसिक और शारीरिक आरोग्य, मनुष्य-स्वभाव के लिए इसकी उपयुक्तता, उनकी नैतिक और सौंदर्य संबंधी संभवताएँ, व्यक्तिगत उन्नति के लिए जगह और उसकी स्वतंत्रता।

किन्तु इन उद्योगों की कमजोरी बौद्धिक जागृति की कमी में है। अच्छी शिक्षा पद्धति, अखबारों पुस्तकों के प्रचार और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने या माल ढोने के साधनों में सुधार होने से यह कमजोरी बिलकुल ही दूर हो जायगी।

लोग तो कोयले की खान में कोयला ढो कर ले जानेवाले पर हँसेंगे, मगर यह कोई नहीं देखता कि हम जापान रुई भेज कर उसका कपडा फिर उसी किसान के हाथों बेंच कर जिसने संभवतः वही रुई पैदा की होगी, यही कहावत चरितार्थ कर रहे हैं। हेनरी फोर्ड के अनुसार तो जो वस्तु २५० मील पर मिल सकती है वह ५०० मील से लानी पाप है तो जो वस्तु घर में पैदा होती है, उसे विदेश से घर का माल भेज कर बनवा लाने को क्या कहा जाय? विदेशों के या मिलों के कपडे की जो कुछ सस्ती जान भी पडती है, वह भी जाती रहेगी अगर हम यह विचार करें कि इन कपडों की बदौलत राष्ट्र को कितनी हानि उठानी पडती है जैसे कि बेकारी, गांवों के नाश पहले जो खेती और व्यवसाय का मेल बैठ गया था, उसका टूट जाना—इत्यादि के रूप में। ये खर्च भले ही एक दो ग्राहकों को न जान पडें क्योंकि वे बहुत कुछ गुप्त रहते हैं, मगर वे भी तो यह सहज ही देख सकते हैं कि जीवन का खर्च बढा जा रहा है, और कर भी बढता जाता है। अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

सारे संसार पर भले ही एक से लागू हों, मगर अंतर उनके प्रयोग में होता है ।

दूसरे लेख में केवल इन हानियों पर कुछ विस्तार से विचार किया जायगा । (क्रमशः)

[**मि. रिचार्ड बी. ग्रेग** की 'खद्दर का अर्थशास्त्र नामक' किताब में से]

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ वदी ४ संवत् १९८४

दोनों पहलू

उस दिन गुजरात के कमिश्नर के जिस पत्र की आलोचना करने का दुःखद काम मुझे करना पडा था, उसके अनुरूप ही, बंबई सरकार का बारडोली सत्याग्रह पर विज्ञप्ति निकली है । इस विज्ञप्ति का विस्मिल्लाह ही होता है श्रीयुत वल्लभभाई और उनके दूसरे साथियों को बाहरी कहने के अपमान को दुहरा कर के—उन्हें बाहरी कहने के बदले बारडोली में न रहनेवाला कहा जाता है । विज्ञप्ति में तब इसका जिक्र बेहयाई से किया गया है कि जब जब्ती करने की उनकी कोशिशें बेकार गयीं, तब सरकार ने 'संगठित रूप से भैंसें तथा दूसरी स्थावर संपत्ति को जब्त करना शुरू किया ।' श्रीयुत वल्लभभाई के प्रकाशन विभाग ने यह दिखला दिया है कि भैंसें जब्त करने के क्या मानी होते हैं । इसके बाद विज्ञप्ति बडे गर्व से कहती है कि 'जब्ती के काम में, तथा जब्त मवेशियों की सँभाल के काम में मामलतदारों और महालकारियों को मदद देने के लिए चालीस पठान बुलाये गये हैं ।' प्रकाशन विभाग ने फिर से यह भी दिखला दिया है कि पठानों को लाने के क्या मानी हुए हैं । प्रकाशन विभाग की मदद के बिना भी हम इसका अर्थ सहज ही समझ सकते थे । चाहे सरकार रखे, या सामान्य गृहस्थ पठानों को नौकर रक्खें, मगर लोग जानते हैं कि ये दोस्त किस लिए भर्त्ती किये जाते हैं । खैर पठानों को लाने का कहीं यही सर्वमान्य अर्थ कोई यहां न लगा लेवे, इस लिए विज्ञप्ति में लिखा है, 'बेजड के इल्जाम इन पठानों पर लगाये गये हैं । सरकार को विश्वास है कि उनका बर्त्ताव हर तरह से आदर्श हुआ है ।' इस कैफियत पर किसे हँसी न आयगी ? जैसा कि सरकार का दावा है, अगर पठानों को बेठियों की जगह पर बुलाया गया है, जिन्हें जाति-च्युत करने की धमकी दी गयी 'कही जाती' है, तो फिर यह सवाल पूछना युक्तिसंगत है कि दूसरी जगहों से बेठियों को बुलाने या कुछ दूसरे नम्र लोगों को लाने के बदले, ये पठान ही क्यों चुने गये हैं ? सरकार तो इस बात को हँसी में उडा कर अविश्वसनीय कहती है कि 'एक जिम्मेवार अफसर की नाक के नीचे पांच-पांच पठानों के पांच दल, नब्बे हजार मनुष्यों की आबादी में आतंक फैला देंगे ।' फिर भी हिन्दुस्तान को अनुभव है कि अधिकार का अस्त्र पाकर एक भी पठान एक सारे गांव में क्या कर सकता है । बेशक यह सोचना जिल्लत की बात है कि कोई पठान या कोई आदमी कई आदमियों को डरा सकता है, मगर दुर्भाग्य से इस आतंकित और भय-शंकित हिन्दुस्तान में यह रोजमर्रा की बात हो रही है । अगर बारडोली के संग्राम से और कुछ भी न हुआ, लोगों ने केवल आदमियों और अफसरों का डर छोड दिया और पठानों को मित्र बना लिया तो मैं इस संग्राम को भली भांति लडा गया मानूँगा ।

मगर सरकार केवल चल संपत्ति की जब्ती के बारे में बलात्कार के तरीकों को ही गिना कर संतोष नहीं करती है । उसने जमीन की जब्ती का भी जिक्र किया है । सरकार को यह कबूल करते हुए भी हया न आयी कि, 'विज्ञप्ति निकालते समय तक १४०० एकड जब्त जमीन बंदोबस्त कर दी गयी है और अगर बकाया पहले ही चुकाया न गया तो ५००० एकड और जमीन का बंदोबस्त कर दिया जायगा ।' और बेजरूरत ही यह भी जोड़ती है कि 'ऐसी बंदोबस्त की गयी जमीन फिर कभी नहीं लौटायी जायगी ।' विज्ञप्ति में और भी कई दूसरी बातें हैं जिनपर टीका की जा सकती है, मगर मैं जब्त करता हूँ ।

विज्ञप्ति में उन लोगों के लिए कुछ अपमानजनक रियायतों की घोषणा की गयी है जो १९ वीं तारीख के पहले अपना कर भर देंगे । इसका एक ही जवाब देना स्वाभिमानी पुरुषों के लिए संभव है, और उसे देना बारडोली का काम है । जब उन्होंने यह लड़ाई छेडी तब वे इसके नतीजे जानते थे । मुझे इसमें जरा भी शक नहीं है कि वे लडाई के अंतिम अंक में भी वैसी ही वीरता और धीरता दिखलायेंगे, जैसी कि उन्होंने शुरू में दिखलायी थी ।

इसके ठीक उलटे श्रीयुत विट्ठलभाई पटेल ने मेरे पास एक खत भेज कर १,०००) रु. की सुन्दर रकम की जब तक सत्याग्रह चलता रहे, तब तक मासिक सहायता देने की घोषणा की है । असेम्बली के सभापति के रूप में अपने नामी कार्य-काल में श्रीयुत विट्ठलभाई पटेल ने जनता के अधिकारों की रक्षा की है । पद पाने से न तो उनका सिर जरा भी फिर पाया है, और न उनके हाथों देश की इज्जत ही बिक पायी है । उन्होंने सख्त निष्पक्षपातता से काम किया है और साथ ही जब कभी उन्हें अपने पद से अवसर मिला है, प्रजा की सेवा करने में उन्हें न तो झिझक हुई है, और न डर ही । विदेशी सरकार ने यह गुलामी की परंपरा चला दी है कि जो लोग सरकार से मुशाहरा पाते हैं, उन्हें हर हालत में सरकार के विरुद्ध लडाई में प्रजा पक्ष से सहानुभूति प्रकट करने से बाज आना चाहिए । और यह बात तब भी हो जब कि सरकार अपने ही बनाये नियमों के विरुद्ध भी चले । श्रीयुत विट्ठलभाई पटेल ने इस गुलामी भरी और बुरी परंपरा को तोड दिया है । और वे उसे इसी लिए तोड सके हैं कि उन्होंने अपना पद न तो सम्मान के लिए और न अपने वेतन के लिए ही स्वीकार किया है, बल्कि जैसा कि वे अपने पत्र में लिखते हैं, "निर्वाचकों की अमानत के रूप में" स्वीकार किया है । यह भी याद रखना चाहिए कि असेम्बली का सभापति बादशाह का कानूनी नौकर नहीं है । वह तो प्रजा का प्रतिनिधि है और राजनीतिक वाद-विवादों में सक्रिय रूप से शामिल हुए बिना, उसे प्रजा के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करने के सभी अधिकार प्राप्त हैं । चुन लिये जाने बाद विट्ठल भाई किसी दल विशेष के आदमी न रहे, मगर उन सभी संयुक्त दलों के प्रतिनिधि तो अवश्य ही हैं, जिन्होंने उनको अपना सभापति चुना है । इस लिए प्रजा-पक्ष के लिए उनके इस मर्दाना काम के लिए मैं उन्हें बधाई देता हूँ । अगर विदेशी सरकार की बनायी धारासभाओं में जाना किसी तरह भी उचित कहा जा सकता है तो उनमें जानेवालों और पद स्वीकार करनेवालों के लिए श्रीयुत विट्ठल भाई ने रास्ता दिखला दिया है कि वे कैसे शालीनता और निर्भयता से काम कर सकते हैं ।

(यं. इं.)

मोहनदास करमचंद गांधी

बारडोली—सत्याग्रह

बारडोली के सत्याग्रहियों की वीरता ने अब सरकार का मुँह ...न खुलवा दिया है। मगर वह अभी पूरा नहीं खुला है। ...कार ने एक विज्ञप्ति निकाली है, मगर उसमें नार्थ डिविजन (गुजरात) के कमिश्नर के शोखाना पत्र का, बारडोली में प्रचलित ...नियम, और अशासन का कोई जिक्र नहीं है। संधि-प्रस्ताव तथा ...की असफलता का जिक्र तो जानबूझ कर दबाया गया है। इसके ...के विज्ञप्ति में केवल वे ही बातें हैं, जिनसे सरकार का गौरव ...ता है। उनपर जरा हम गौर करें।

'आदर्श' व्यवहार

इस विज्ञप्ति के बहुत से बेहया बयानों में से एक यह भी है, ...न पठानों के विरुद्ध बेजड के इल्जाम लगाये गये हैं। सरकार ...को संतोष हो गया है कि उनका व्यवहार सभी तरह से आदर्श ...रहा है।" खैर, हमारे पास इसके विरुद्ध लाजवाब सुबूत मौजूद हैं। ...को उस दिन एक पठान रेलवे स्टेशन पर चोरी करते हुए ...पकडा गया था। सरकार की ओर से मुआमले ...को छोटा करने की कोशिश की जा रही है। वे शायद ...उस पर से मुकद्दमा उठा भी लेवें। मगर यह तो दूसरी ही बात ...है। एक दूसरे पठान ने श्री. कल्याणजीभाई को फोटो खींचने पर ...छुरा मारने की धमकी दी थी। कुछ दिन हुए कि एक पठान को ...किसान का बाडा फांद कर घर में घुसने और एक औरत को पकड ...कर उसे बाहर खींच लाने दिया गया। "आदर्श व्यवहार" के ...इससे भी अधिक घृणित उदाहरण अब सामने आ रहे हैं।

हमने शपथ-पूर्वक दिये गये ऐसे बयान प्रकाशित किये हैं, जिनसे ...मालूम पडता है कि ३ बजे दिन को एक पठान आम सडक पर नंगा ...खडा था और औरतों को आते देख कर भी न हटा। इस बेशर्मी ...के मारे उनका रास्ता चलना कठिन हो रहा है। एक पठान ४ बजे ...शाम को कुँए पर नंगे खडा था। जो लडकियां पानी लेने गयीं, वे ...घर पर रोती हुई लौट आयीं। फिर वही पठान पेशाब करने के ...बहाने सडक पर देर तक नंगा बैठा रहा और उस रास्ते चलनेवाली ...लडकियों को एक बैलगाडी की आड में छिप कर आना पडा। ...इसकी शिकायत जब जप्ती अफसर मोहोनलाल से की गयी तो ...उन्होंने कहा कि, "उसे वहीं पर ठोंका क्यों नहीं?" फिर ...रात को ग्यारह बजे एक पठान ने एक लडकी को पकड कर नदी ...की ओर ले जाना चाहा मगर कुछ लोगों के आ जाने से उस ...बेचारी की इज्जत बच गयी। वह बेचारी उसी धडके से अब ...तक बीमार है।

भैंसों के साथ दुर्व्यवहार तो पशुओं के प्रति निर्दयता रोकने ...के कानून को पैरो तले रौंदने के बराबर है। और ये पठान उन्हीं ...लोगों की सेवा के लिए बुलाये गये हैं। वालोड में पकडी गयी ...एक भैंस पर इतने डंडे बरसे कि थाने के फाटक पर ही वह गिर पडी ...और बडी मुश्किल से उठा कर भीतर ले जायी गयी। अब वह ...मरने को है। ताल्लुके के लाभ के लिए बुलाये गये २५ ...पठानों में से कुछ के सुकृत ये हैं। अगर यह आचरण आदर्श ...है तो इन उदाहरणों से सरकार के नैतिक आदर्श का बहुत कुछ ...पता चल जाता है।

कुछ आंकडे

विज्ञप्ति में बडे घमंड से कहा गया है कि "अबतक कोई ...१,१०० एकड जब जमीन बंदोबस्त हो चुकी है और समयानुसार ...१,१०० एकड जमीन और भी बंदोबस्त कर दी जायगी, अगर उसपर बकाया लगान जल्द नहीं चुका दिया गया तो। इन जमीनों के लिए हिन्दू, मुसलमान और पारसी सभी जाति के ग्राहक, जिनमें अधिकांश सूरत जिले के ही हैं, जमीन के लिए दरख्वास्तें कर रहे हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि ये दुहरायी हुई मालगुजारी को अधिक नहीं समझते हैं और इन्हें यह डर भी नहीं है कि ये लगान नहीं भर सकेंगे।" इसके पहले भाग का सबसे अच्छा मुँहतोंड जवाब तो श्री वल्लभभाई ने ही खोजा गांव के भाषण में यों दिया है, "भला सरकार खुले आम यह भी क्यों नहीं कह देती कि उसने कितने में कौन सी जमीन बेंची है? सेट्लमेन्ट कमिश्नर ने लगान बढाने के पक्ष में रिपोर्ट लिखते समय यह लिखा है कि बारडोली में खेतों का दाम उनके लगान के १३० गुणा है। अब या तो ये साहेब झूठ बोलते हैं या सच। अगर ये सच बोलते हैं तो सरकार कहती क्यों नहीं कि उसे यह १३० गुणा अधिक दाम मिला है या नहीं? अगर उसे इतना अधिक दाम न मिल सका है तो फिर अगर कुछ भी मिला है तो उसीके हिसाब से क्यो नहीं लगान तै करती है?" अब इस दून की दूसरी हाँक के बारे में यही कहना काफी है कि यह जमीन जिन ४ या ६ आदमियों को दी गयी है, उनकी कोई सार्वजनिक स्थिति नहीं है, उनका जनता में मान नहीं है, उन्हें सरकार जो नाच चाहे, नचाती है, और जिन्होंने यह कभी जाना ही नहीं है कि पसीने की रोटी खाना किसे कहते हैं। अपनी प्रतिष्ठा के लोभ में सरकार ने उन्हें कौडी के मोल जमीन दे दी है और यह पर्वा नहीं की है कि वे १०० में २० अधिक देते हैं या कम।

हमारे हथियार

सरकार ने इसपर बहुत बहुत जोर मारा है कि जनता ने सरकारी सहायकों को "जाति से बाहर निकालने, सामाजिक बहिष्कार और जुर्माने वगैरह करने" की धमकी दी है। और इसी बात से लडने के लिए सरकार को बाहर से पठान बुलाने पडे हैं। मगर बात यह है कि सामाजिक और जातीय बहिष्कार का यह अर्थ कभी नहीं रहा है कि किसीको जीवन के लिए मामूली जरूरियात पाने में कठिनाई पडे। और तो और पठानों को भी दूध और दाल रोटी तो मिल ही जाती है। मगर बहिष्कार से इतना जरूर हुआ है कि बहिष्कृत लोगों के हाथों से सेवा लेनी, या उनके साथ में रहना बन्द हो गया है। यह तो सभी समाजों का जन्मसिद्ध हक है और जो आप कष्ट सहने को तैयार हों, वे इसका उपयोग हमेशे करेंगे, और उन्हें करना ही होगा। जुर्माने के बारे में बात यह है कि जिस किसीने अपने पाप के प्रायश्चित्त के स्वरूप में स्वयं कुछ दिया है, वह लिया गया है. मगर जहां सच्चा पश्चात्ताप नहीं था वहीं बिनमाँगे देने पर भी जुर्माना लेने से इनकार किया गया है।

परिस्थिति

विज्ञप्ति के अंत में सरकार ने कुछ रियायतों की घोषणा की है। वह समझ लेवे कि वे दिन बीत गये जब 'गँवई के गँवारों' को सत्त्वहीन, रियायतों के नाम पर भुलवाया जा सकता था। जनता तो एक वही जवाब देनी, जो जो उसके हाथों में है, और वह अभी दे भी रही है। यह आन्दोलन दूर दूर तक फैला जा रहा है। बारडोली के बाहर के गांवों में भाषण करने की प्रार्थनाओं को पूर करना वल्लभभाई के लिए मुश्किल हो रहा है। बरोदा रियासत के धामन नामक गांव के एक असाधारण रूप से बडी सभा में उन्हें १,२०० रु. की थैली भेट की गयी थी। नवसारी में बहुत से पारसियों की मौजूदगी में, सरकार के विश्वासी सहायक गर्दाजी की

लाख टीका की जाने बाद भी खुद पारसियों ने ही बारडोली सत्याग्रह के लिए मिली वस्तुओं को ८०० रु. में नीलाम खरीद लिया। मगर इससे भी सुंदर जवाब तो मुझे एक किसान ने दिया था। उससे बातें करनी भी सौभाग्य की बात थी। मैंने पूछा,

"तुमने सरकार की अन्तिम विज्ञप्ति तो पढी ही होगी?"

"जी हां, पढी तो है। इसके तो यही मानी होते हैं कि अब तक संग्राम जितना विकट रहा है, उससे कहीं अधिक विकट अब होगा।"

"आखिर तुम लोग कब तक टिके सकोगे?"

"जब तक जरूरत पडे। मेरा सारा गांव पूरा पूरा संगठित हो चुका है। मेरा गांव पूरा पूरा संगठित है। मेरे गांव में एक भी भैंस बची हुई नहीं है। हम समय पाकर देख लेंगे कि सरकार को जब्त करने के लिए हमारे घरों में एक फूटी कौडी भी न मिलेगी। जब से यह संग्राम शुरू हुआ, मैं ने पीतल के बरतनों में खाना बंद कर दिया है। अब हम मिट्टी की हांडियों में पकाते हैं और मिट्टी की तश्तरियों में खाते हैं। उनको इच्छा हो तो उन्हें वे बखुशी तमाम जब्त कर ले जावें। हम बाहर चटाइयों पर सोते हैं। खटियों पर नहीं कि जिन्हें कोई जब्त कर लेवे। और अब तो हम एक और उपाय सोच रहे हैं। आखिर हम घरों में क्यों बंद रहें? हम तो किसी घर को धर्मशाला बना देना चाहते हैं। कोई गैरखातेदार (जिसे जमीन नहीं है) धर्मशाला को चलावेगा और जरूरत पडेगी तो हम भंडारा भी चलावेंगे।"

मैं ने पूछा, "मगर मान लो कि श्री वल्लभभाई तुम्हें घर बार छोड कर हिजरत करने को कहें, तब?"

"बहुत खुशी से। हमने अपने बच्चों को रिश्तेदारों के यहां भेज ही दिया है। कुछ औरतें भी भैंसों के साथ चली गयी हैं और सच पूछिए तो हम गांवों में तो महज सोने भर के लिए ही आते हैं।"

"तुम अपनी जमीन परती पडी रहने दोगे? या जोतोगे भी?"

इसका उसने एक बहुत ही होशियारी का जवाब दिया, मगर मैं उसके उपाय अभी नहीं प्रकाशित करूँगा।

उसने फिर कहा, "यह आन्दोलन तो मानों हमे परमात्मा की कृपा के समान मिला है। हममें से बहुतों का काम चाय के बिना चलता ही नहीं था। भैंसें तो चली गयीं। दूध मिलता नहीं। और इस लिए बहुतों को लाचार चाय की आदत छोडनी पडी है। अब भी कुछ लोग ऐसे हैं जो बकरी के दूध से काम चला लेते हैं और एक दो आदमियों के पास अभी एकाध गायें बची हुई हैं, मगर हममें आत्मत्याग, और संयम का एक तरह का भाव आ रहा है। और अगर हम इस संग्राम में हार ही गये तो क्या बिगडा? अब दूसरी लडाई हम ज्यादह सावधानी और ज्यादह तैयारी से लड़ेंगे। आखिर, इसके सीखे पाठ, बेकार नहीं जायँगे।"

ऐसे ही मर्दाने और जबर्दस्त किसानों को सरकार नामर्द बनाना चाहती है। इन बहादुर किसानों का साहस तोडने के लिए बहुत से गुप्त उपायों से काम लिया जा रहा है, कोई बात उठा नहीं छोडी जा रही है। यह तो प्रकाश और अंधकार का युद्ध है, हिंसा और अहिंसा की शक्तियों में संग्राम चल रहा है। यह कहने के लिए इन में जीत किसकी होगी, किसी बडे भविष्यवक्ता की जरूरत नहीं है।

(यं० इं०)

महादेव देसाई

टिप्पणियां

बारडोली-दिवस

मैं आशा करता हूँ कि बारडोली दिवस, आगामी १२ जून को सारे हिन्दुस्तान में योग्य रूप से और लगनपूर्वक मनाया जायगा। इसे करने का सबसे अच्छा तरीका है, जहाँ कहीं संभव हो सारे दिन काम बंद रहे, और वह दिन बारडोली के सत्याग्रहियों के लिए और श्रीयुत वल्लभभाई तथा उनके कार्यकर्त्ताओं के संग्राम में सहायता के लिए धन जमा करने में लगाया जाय, और सार्वजनिक सभाएँ की जायँ, जिनमें फिर से चंदा जमा किया जाय, सत्याग्रहियों की माँगों के समर्थन में और सरकार के जुल्मों के विरोध में प्रस्ताव स्वीकार किये जायँ। मैं नहीं समझता कि स्वयंसेवकों के लिए माँग की जाय, क्योंकि श्रीयुत वल्लभभाई के पास उनके काम के लायक काफी स्वयं-सेवक हैं। सारे देश से स्वयंसेवक भेजने की अनुमति की प्रार्थना आयी है। और अगर अधिक की जरूरत पडे तो मुझे इसमें जरा भी शक नहीं है कि सारे देश में स्वयं-सेवक तैयार बैठे हैं। महाराष्ट्र, सिंध, और दूसरे प्रान्तों से मित्रों ने संदेश भेजे हैं कि वल्लभभाई चाहे जितने स्वयं-सेवकों का भरोसा रख सकते हैं। भले ही इतनी आशावादिता में भूल हो, मगर सबका हिसाब घटाने पर भी, इस में कोई शक ही नहीं है कि अगर स्वयंसेवकों की जरूरत पडी तो तब यथेष्ट स्त्री और पुरुष आगे बढ आवेंगे।

नौ नक्द न तेरह उधार

अ० भा० चर्खा-संघ के मंत्री लिखते हैं:

"संघ की प्रान्तीय शाखाओं की कुल उधार बिक्री रु. १,५४,४८८-१३-८ तक की आती है यानी इन शाखाओं में जितनी कुल पूंजी लगी है, उसका सैकडे १५ तो लहने में लगा हुआ है। और यह भी सामान्यतः उधार बिक्री की रोक के लिए काउन्सिल के इतने प्रस्ताव करने के बाद। इसका मुख्य कारण है, हमारे कार्यकर्ताओं का भय। उन्हें डर है कि अगर उधार बिक्री मुतलक रोक दी जाय तो बिक्री बहुत घट जायगी। तामिलनाड ने उधार बिक्री बिलकुल बंद कर दी है, मगर तौभी सारे हिन्दुस्तान की सभी खादी दूकानों से बडी बिक्री यहीं की है। आप हमारी विभिन्न शाखाओं और जनता को समझा दीजिए कि उधार बिक्री से काम में नुकसान होता है क्योंकि ग्राहक लहना चुकाने में देर करते हैं और हमारी थोडी सी पूंजी का बहुत बडा अंश बेकार बन जाता है।"

ऊपर के खत में दी गयी चेतावनी का मैं अक्षरशः समर्थन करता हूँ। जब तक कि खादी-व्यवसाय अभी बच्चा ही है जिसे प्रेमपूर्वक शुश्रूषा और जनता के समर्थन की जरूरत है, तब तक तो खादी-भंडारों में उधार बिक्री होनी ही नहीं चाहिए। हमें अवश्य ही केवल देशभक्त जनता के समर्थन का भरोसा रखना चाहिए, और अगर हम नक्द बिक्री न कर सकें तो हम नक्द दाम देने में उज्र का अर्थ यह लगा सकते हैं कि खादी का समर्थन जनता नहीं करती है। किन्तु मेरे इतने भ्रमणों से मेरा यह अनुभव हुआ है कि अपनी जरूरियातों के लिए लोग बखुशी नक्द दाम दे देते हैं, जब कि दूसरे सौदों के लिए उधार करते हैं। जो लोग खादी चाहते हैं, उनके लिए नक्द दाम देना तो वह कम से कम रक्षण है जिसकी हकदार खादी है। दूकानों के मैनेजरों को यह भय न होना चाहिए कि उधार बिक्री बंद कर देने से खादी नहीं बिकेगी। खादी की नक्द बिक्री के लिए पासपडोस में प्रचार कर सकने की अपनी योग्यता पर ही भरोसा रखना चाहिए। और केन्द्र कार्यालय के हुक्मों के विरुद्ध वे उधार बिक्री किसी हालत में नहीं कर

...। नियम-पालन का यह तकाजा है कि अगर उधार बंद कर देने से खादी बेंच सकने की अपनी योग्यता का विश्वास उन्हें न हो तो वे प्रधान कार्यालय को इसकी खबर देकर काम से छुट्टी लें। प्रधान कार्यालय से यह आशा रखनी चाहिए कि उसे मालूम होगा कि किस तरह कम से कम समय में खादी को व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है।

मो० क० गांधी

(यं० इं०)

सर्वनाशिनी गाडी

९

करुप्पण पर खून का मुकद्दमा चला।

पार्वती को लोग सलेम की जिला अदालत में ले गये। सलेम शहर में उसे एक बहुत ही नीची श्रेणी के लोगों के लिए चलते होटल में पुलिसवाले खिलाने ले गये और उसे उन्होंने आधी खूराक देने को कहा। उस होटल को चलानेवाली औरत ने पूछा, "तू किस लिए यहां आयी है?" पार्वती ने जवाब दिया, "मुझे, कचहरी में ले आये हैं।" फिर तो बहुत सी स्त्रियां आयीं और बड़ी भीड हो गयी। ये सभी औरतें लंका (सिलोन) के चायबागानों में काम करने के लिए भेजी जानेवाली थीं।

उस दिन करुप्पण के मुकद्दमे की पेशी नहीं हुई क्योंकि पिछले हफ्ते खून का एक मुकद्दमा शुरू हुआ, जो अभी चल ही रहा था। जब करुप्पण का मुकद्दमा शुरू हुआ, तब भी पार्वती की पुकार नहीं हुई क्योंकि सरकारी वकील ने कह दिया कि यह गवाह विरोधिनी हो गयी है। मगर करुप्पण के वकील ने उसका बयान लेना चाहा और अदालत से उसे रोकने को कहा। शाम को करुप्पण का भाई पार्वती को अपने वकील के पास ले गया।

वह अपने पति को तो बचाना चाहती थी, मगर अपने पाप को भी कबूल करने के नाम कांप उठती थी।

पार्वती ने अंत में कहा, "मैं तो वही कहूँगी जो परमात्मा मुझसे कहलायगा।"

करुप्पण का भाई बिगड उठा, "यह भी ससुरी भगवान् का नाम लेती है। लगा जूते, अक्ल ठिकाने आ जाय।"

पार्वती फिर बोली, "जैसा कहोगे, वैसा ही कहूँगी। औरत जात और कर ही क्या सकती है?"

यही तो वकील साहेब चाहते थे। वकील साहेब ने सबको हटा दिया और करुप्पण के भाई से अकेले में थोडी बातें कीं।

दूसरे दिन कई आदमियों के साथ पार्वती एक पेड के नीचे बैठी हुई थी। अपने नाम की पुकार सुन कर हडबडा कर उठी। उसे अदालत में ले गये। वहांका सामान देख कर वह दंग रह गयी। जब उसने घूम कर दूसरी ओर ताका तो उसे करुप्पण दिखलायी पडा। उसकी दाढी और सिर के बाल बेतरह बढ गये थे। उसका चेहरा इतना बिगड गया था कि वह मुश्किल से पहचाना जाता था। और जंगली जानवर के समान वह पार्वती की ओर, अपने कठघरे के भीतर से घूर रहा था। जेल में दो महीने रहने बाद गरीब किसान तो सच्चे खूनी के समान दिखलायी पडने लगते हैं।

पार्वती ने मन में सोचा, "यह सब मेरा ही किया है।" उसके मानसिक कष्ट का कोई पार न रहा। उसके पैर मानों टूटे जा रहे थे। कठघरे को पकड कर वह बडी कठिनाई से खडी रह सकी। पेशकार के पुकारते समय उसका सिर चकरा रहा था। पेशकार ने कहा,

"शपथ लो।"

पार्वती ने बिना पूछे ही कहना शुरू किया, "मैं भगवान् के सामने सच्ची ही बात कहूँगी। उस शाम को मैं खाना . . ."

पेशकार ने डांट बतलायी, "चुप रहो।" जज साहेब ने सरकारी वकील से कहा, "जान पडता है कि वह सिखा कर भेजी गयी है।"

"हुजूर, अभी पता लग जाता है।"

इसपर सारी अदालत में कहकहा मच गया। सरकारी वकील जोर से हँसने लगे और दूसरे वकील भी धीरे २ हँसने लगे। इस हँसी में बहुत धीरे से मुद्दालेह के वकील भी शामिल हो गये।

पेशकार ने कडक कर कहा,

"मैं जो कहता हूँ, कहो।"

पार्वती घबरा गयी। उसकी समझ में नहीं आया कि अपने वकील का पढाया पाठ पढे या पेशकार जो जो बतलावे, वही कहना चाहिए। पार्वती ने शपथ तो ले ही ली थी, अब जिरह शुरू हुई। वह सवालों को ठीक ठीक समझती नहीं थी, जो विचित्र और कृत्रिम रूप में पूछे जाते थे। उसने कहा, "मैं खाना बना रही थी। इतने में इस्माइल आया और उसने मुझसे बुरा प्रस्ताव किया। मैं तो चकित रह गयी। मैंने उसकी बात नहीं मानी। इतने में मेरा पति आ गया और क्रोध में भर कर मेरी ओर उसने कुदाल फेंक दी। मैं तो डर कर भाग गयी। मुझे पता नहीं है कि इसके बाद क्या हुआ। मगर मैंने इस्माइल को भागते हुए देखा। उसके सिर में जख्म था, जिससे खून गिर रहा था।" यही गवाही वकील के यहां पढायी गयी थी।

करुप्पण अपने कठघरे में से चिल्ला उठा, "अभागिनी," उसे अब तक आशा थी कि यह साबित हो सकेगा कि वह उस दिन वहां न था बल्कि दूसरे गाँव में गया हुआ था।

तब उसके वकील ने उसके पास आ कर उससे कुछ बातें धीरे से कहीं, जिससे वह शान्त हो गया। विचार खतम होने पर असेसरों ने फैसला दिया कि बहुत बडे क्रोध और उत्तेजना में सख्त जरर पहुँचाने का दोष करुप्पण पर लग सकता है, खून करने की कोशिश करने का नहीं। जज ने दूसरे दिन की तारीख दी। उस दिन कचहरी खुलने पर फैसला सुनाया गया। जज ने कहा "असेसरों से मेरा मेरा मतभेद है, और मैं करुप्पण को खून की कोशिश करने का दोषी मानता हूँ। मैं कादिर खां और इस्माइल के बयानों को सच मानता हूँ कि वे करुप्पण से अपने कर्ज की किश्त माँगने गये थे, मगर करुप्पण नशे में था, और शराब पीने की उसकी आदत है, इस लिए वह बिगड उठा और एक सख्त हथियार लेकर झपटा मगर संयोग कहिए या इतने लोगों का आ जाना कहिए कि उनकी जान बच गयी, नहीं तो वह मार ही डालता। करुप्पण की औरत का बयान काबिल-यकीन नहीं है क्योंकि उसका तो करुप्पण से संबंध है और खास कर इस लिए कि उसने मैजिस्ट्रेट के सामने एक बात कही थी और पुलिस के सामने दूसरी ही। आसामी को छे वर्ष की सख्त कैद की सजा दी जाती है।" इसके बाद जज ने सरकारी वकील को पार्वती पर झूठी गवाही देने का मुकद्दमा चलाने की भी सरकार की इजाजत लेने की सलाह दी।

करुप्पण ने जब फैसला सुना, तब वह चिल्ला उठा, "मेरी औरत ने धोखा दिया। जब अपनी औरत कुकर्म करने लगे तो क्या मर्द चुपचाप तमाशा ही देखते रहें?"

जज ने कहा, "जाओ।" पहरे पर के कान्स्टेबुल उसे यह कहते हुए ले चले कि "अब तुम यह सब लिख कर हाईकोर्ट में अपील करना।"

१०

मुकद्दमा खत्म हो जाने बाद करुप्पण के भाई तथा और किसीने पार्वती की कोई पर्वा नहीं की। उस बूढे मुसलमान कान्स्टेबुल ने उसपर थोडी दया दिखलायी और उसे अपने साथ ले गया।

उसने कहा, "तुम्हें तो बिलकुल सच सच बोलना था, और वह भी ऐन शुरू में ही। जज ने तुम्हारा विश्वास नहीं किया क्योंकि तुमने पहली अदालत में सच्ची बात नहीं कही और यहां भी तुमने सारी बात नहीं कही।"

पार्वती ने उसके शब्द सुने तो सही, मगर उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। वे दोनों रात को देर कर के रामापुरम पहुँचे। कान्स्टेबुल ने उसे रात को अपने ही छोटे से घर के बाहरी बरामदे में सो रहने और दूसरे दिन पीहर में भाई के घर जाने को कहा। उसे नींद भला कहां से आवे? "अब किस तरह भौजाई के सामने जाऊँगी? अब तो सारा खेल खत्म हो गया। भगवान् ने मेरा साथ छोड दिया है। मुझे अब मरने के सिवाय और कहीं ठौर ठिकाना नहीं है। इस दुःख की यह दवा तो मेरे हाथों हैं। इसे तो मुझसे कोई नहीं छीन सकता।" रात भर इसी तरह की बाते सोचते सोचते वह थक गयी। सबेरा होते होते उसकी आंख लग गयी। फिर वह सोयी भी तो मानों घोडा बेंच कर। कान्स्टेबुल छे बजे उठा। जब उसने बाहर निकल कर देखा कि पार्वती इतनी गहरी नींद सो रही है तो उसने मन ही मन कहा, "यह औरत तो अपने खाविंद को जेल भेज कर बहुत ही खुश है। इन मक्कार औरतों पर जो यकीन करते हैं वे बेवकूफ होते हैं।"

बच्चे की रुलाई सुन कर पार्वती की नींद खुली। वह स्वप्न देख रही थी कि उसका बच्चा रो रहा है। यह समझने में उसे कुछ देर लगी कि उसका बच्चा तो मर गया, और वह घर से निकाली क्ष-जाति औरत है।

वह उठ बैठी। सामने एक काला कलूटा लडका खडा था। वही मुँह पर हाथ रख कर कभी तो छोटे बच्चे के रोने की, और कभी मा के पुचकारने की हूबहू नकल किया करता था। पार्वती को जगी देख कर उसने अपना यह तमाशा बंद कर डाला और एक पैसा माँगा।

पार्वती ने पूछा, "तेरा घर कहां है, बेटा?"

"मुझे एक पैसा दो।"

पार्वती ने फिर पूछा, "तुम्हारे माबाप कौन हैं?"

लडका बोला, "मैं नहीं जानता!"

"तेरे मा नहीं है क्या?"

"हां, है तो मगर मुझे सूअरवाले के पास छोड कर वह चली गयी।"

"तुम्हें खाना कौन देता है?"

"खाना? मैं आप ही पैसे कमा लेता हूँ और सूअरवाले को दे देता हूँ। कभी कभी वह यों भी खिला देता है और मैं पीछे से पैसा दे देता हूँ।"

पार्वती के सवाल खत्म नहीं हुए। उसने पूछा, "तुमने लडकों का रोना कहां सीखा?"

"ओह, मैंने और मेरे एक साथी ने इसे तंजोर में सीखा था। मुझे कुछ दो। मुझे अभी सूअरवाले के पास जाना होगा। वह अभी इस शहर में सूअर खरीदने आया है। हम शहर शहर में घूमते फिरते हैं।"

कान्स्टेबुल बाहर निकल आया। उसने लडके को डरा धमका कर भगा दिया,

"यही तो चोरी करते हैं। ये आकर टोह ले जाते हैं और फिर पीछे से सारा गिरोह आकर सेंध मारता और चोरी करता है। तुम्हें तो खूब नींद आयी है?"

वह बोली, "भगवान्, तुम्हारा भला करें। तुमने मेरे बाप के समान बरताव किया है।" फिर वह रोने लगी।

इसका कुछ भी असर कान्सटेबुल पर नहीं पडा। वह बोला, "अब तुम अपने भाई के घर चली जाओ। अगर दुपहरी की धूप में मरना नहीं है तो अभी निकल जाओ।"

पार्वती दोपहर को भाई के घर भूखी, प्यासी, थकावट से चूर, इस आशा में पहुँची कि शायद भौजाई का दिल पिघला हो। मगर हाय, उससे भी पहले ही सब खबर वहां पहुँच गयी थी। भाई तो खेत पर गया हुआ था। भौजाई दरवाजे पर खडी थी।

वह चिल्लाने लगी, "देखो लोगो, वह अजात आयी। चल, यहां से अपना काला मुँह दूर कर। यहां उन राक्षसियों के लिए जगह नहीं है जो खसम को भसम करके आवें और तलुकनों के साथ मजे उडावें। तू क्या मेरे घर में बैठ कर मेरे मूरखराज का खून चूसने पावेगी? मैं झाडू मार कर दूर कर दूँगी। मेरे भी बालबच्चे हैं। वे तेरे साथ रहेंगे? दूर जा, भाग जा, उसीके यहां चली जा जिसके साथ तूने कुकर्म किया है। तेरे लिए यहां पर जगह नहीं है।"

"भाई, भाई, भैया।" पार्वती पुकारने लगी। उसे अब भी आशा थी कि भाई शायद घर में ही बैठा हुआ हो। "हो भैया, अब तुमने भी मुँह फेर लिया क्या? हे भगवान्, अब तेरा ही आसरा है।'

थकी, मांदी तो वह थी ही। वह पुक्का फाड कर रोने लगी। आंसू के बांध खुल गये। रोती हुई ही वह वहां से चल पडी।

ऊपर से सूर्य आग बरसा रहा था। मगर अब न तो उसे भूख थी, न प्यास और न थकावट ही। उसे गर्मी भी नहीं लगती थी। कांटे के समान सूखे गले और होठों से वह भगवान के सीधे सादे नाम लेती हुई चली। वह पडोस के गांव की ओर चली, वहां एक छोटी सी पहाडी पर मंदिर था।

वह पहाडी पर चढने लगी। वह इतनी थक गयी थी कि कुछ ही पग चलने बाद चट्टान की जरा सी छाया में गिर कर वह बेहोश हो गयी।

थोडी देर बाद वह फिर उठ बैठी, और ऊपर चढने लगी। वह मन्दिर के पास पहुँची मगर भीतर नहीं गयी। मन्दिर के सामने वह मुँह के बल पड गयी और उसने प्रार्थना शुरू की। फिर वह उठी इस बार उसका शरीर बहुत हलका जान पडा। वहां से वह एक दूसरी चोटी पर गयी जो मन्दिर से भी ऊँचा था। उस पर चढना मुश्किल था, मगर उसमें न जाने कहांसे ताकत आ गयी थी। वह चोटी पर पहुँची। नीचे देखने पर सिर चकरा जाता था। उसने किनारे पर जा कर नीचे ताका और प्रार्थना की,

"हे माता पृथिवी, मेरे अपराध क्षमा करना। मुझे अपनी गोद में ले लो।" चिल्ला कर वह कूद पडी, हवा में चल पडी।

एक क्षण भर के लिए क्या ही आनन्द और आराम मिला! जमीन और आसमान घूमने लगे। अहा, यह क्या ही आनन्द है, क्या ही शीतलता है! तब, तब तो अत्यन्त भयानक धडाका हुआ। ऐसा धडाका उसने कभी नहीं सुना था। फिर जान पडा कि मानों सिर में कुछ तडक गया हो। उसके बाद शान्ति, चिर शान्ति मिल गयी!

पार्वती के प्राण पखेरू पिंजडे में से उड गये।

(समाप्त)

(यं. इ.)

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

'प्रभु बडे या गुरु?'

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ४३

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, आषाढ बदी ११ संवत् १९८४ गुरुवार, १४ जून, १९२८ ई० | मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्याग्रहाश्रम

[सत्याग्रहाश्रम की स्थापना को १३ साल हो गये। आश्रम के बारे …ोगों का अनुराग बढता गया है। बढने के लिए अगर कोई … है तो आश्रम में रहे हुए सत्य को लेकर है। आश्रम के बारे में …जीवन में कुछ भी लिखने की इच्छा कम ही रहती है। यह इच्छा … रही है कि उसमें जो कुछ है, उसकी परीक्षा। केवल उसके … से ही होवे। छे साल हुए आश्रम की नियमावलि की छपी प्रतियां … गयी हैं। नियमावलि फिर से नहीं छपायी गयी है। इसका एक … समय का अभाव भी था। नियमावलि फिर से बना कर तैयार …का बोझा मुझपर था। यह काम कठिन होने से, जाने, अजाने … मन उसे हमेशा टाल ही रहा था। साथियों ने मुझसे हमेशे … उसका तकाजा किया है। वह अब नीचे छापी जा रही है। … कि पहला मसविदा या पाण्डुलिपि मेरी थी, मगर जिस रूप … वह प्रकट हो रही है, उसमें बहुत से साथियों का भाग है। …ाँ तक इसमें कोई फेरफार न हो, वहाँ तक इसे स्वीकृत नियमा… गिनने का प्रस्ताव कार्यवाहक मंडल ने स्वीकार किया है। किन्तु … नियमावलि कच्चे खर्रे के तौर पर अभी छापी जा रही है। …म का हित चाहनेवाले, और नैतिक दृष्टि से आश्रम को बढते … देखना चाहनेवाले बहुत आदमी हैं। नियमावलि के बारे में … भी मत जानना, इसे छापने का उद्देश्य है। इस लिए आश्रम … संबंध रखनेवाले, न रखनेवाले, मित्रों और टीकाकार आलोचकों, …, इनमें घटी, बढी या सुधार करने के बारे में अपनी सलाह … की प्रार्थना मैं करता हूँ। मैं मानता हूँ कि आश्रम का … शास्त्रीय पद्धति से चलता है। यानी जो नियम बनाये … हैं वे नियम आश्रम का आज का जीवन बतलाते हैं। उसका … ऐसा नहीं है कि उनमें दिये गये व्रतों का सर्वांश में पालन …वाला एक भी आश्रमवासी है, मगर उसका अर्थ यह अवश्य है … प्रत्येक आश्रमवासी इन नियमों का पालन करने का सतत प्रयत्न … ही करता है और १३ वर्षों के अनुभव के बाद उनका … आवश्यक लगा है और वह थोडे बहुत अंशों में हो भी … है।

(…नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी]

स्थापनाः कोचरब (अहमदाबाद) में वैशाख सुदि ११, सं० …, तदनुसार २५ वीं मई सन १९१५, हाल में साबरमती।

उद्देश्यः जगतहित की अविरोधी देश-सेवा करने की शिक्षा लेनी और ऐसी देश-सेवा करने का सतत प्रयत्न करना इस आश्रम के उद्देश्य हैं।

नियमः इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नीचे के नियमों का पालन आवश्यक हैं:

१ सत्य

सामान्य व्यवहार में असत्य न बोलना, या उसका आचरण न करना ही भर सत्य का अर्थ नहीं है। किन्तु सत्य ही परमेश्वर है, और उसके अलावा और कुछ नहीं है। इस सत्य की खोज और पूजा के लिए ही, दूसरे सभी नियमों की आवश्यकता रहती है और उसीमें से उसकी उत्पत्ति है। इस सत्य का उपासक अपने कल्पित देश-हित के लिए भी असत्य नहीं बोलता, असत्य का आचरण नहीं करता। सत्य के लिए वह प्रह्लाद के समान मातापितादि गुरुजनों की आज्ञा का भी विनयपूर्वक भंग करने में धर्म समझता है।

२ अहिंसा

प्राणियों का वध न करना ही भर इस व्रत के पालन के लिए बस नहीं है। अहिंसा हैं सूक्ष्मजंतुओं से लेकर मनुष्य तक सभी प्राणियों के प्रति समभाव रखना। इस व्रत का पालक अन्याय करनेवाले के प्रति भी क्रोध नहीं करता किन्तु उसपर प्रेम भाव रखता है, उसका हित चाहता और करता है। किन्तु प्रेम हुए करते भी अन्यायी के अन्याय के वश नहीं होता, अन्याय का विरोध करता है, और वैसा करने में वह जो कष्ट देवे, उसे धैर्यपूर्वक और अन्यायी का द्वेष किये बिना सहता है।

३ ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य के पालन बिना ऊपर के व्रतों का पालन अशक्य है। ब्रह्मचारी किसी स्त्री या पुरुष पर कुदृष्टि न करे केवल इतना ही बस नहीं है किन्तु वह मन से भी विषयों का चिन्तन या सेवन न करे। और विवाहित तो अपनी पत्नी या अपने पति के साथ भी विषय भोग न करे, किन्तु उसे मित्र समझ कर उसके साथ निर्मल संबंध रक्खे। अपनी पत्नी या दूसरी स्त्री का अथवा अपने पति या दूसरे पुरुष का विकारमय स्पर्श या उसके साथ विकारमय भाषण या दूसरी विकारमय चेष्टा भी स्थूल ब्रह्मचर्य का भंग है।

४ अस्वाद

ऐसा अनुभव होने से कि मनुष्य जहां तक जीभ के रसों को नहीं जीतता, वहां तक ब्रह्मचर्य का पालन अति कठिन है, अस्वाद को अलग व्रत गिना गया है। भोजन केवल शरीरयात्रा के लिए ही हो, भोग के लिए कभी नहीं। इसलिए उसे औषध समझ कर संयमपूर्वक लेने की जरूरत है। इस व्रत का पालन करनेवाला, ऐसे मसाले वगैरह का त्याग करेगा जो विकार उत्पन्न करें। मांसाहार, मद्यपान, तंबाकू, भांग इत्यादि का आश्रम में निषेध है। इस व्रत में स्वाद के लिए उत्सव या भोजन के आग्रह का निषेध है।

५ अस्तेय

इस व्रत के पालन के लिए यही बस नहीं है कि दूसरे की वस्तु उसकी अनुमति के बिना न ली जाय। वस्तु जिस उपयोग के लिए मिली हो, उससे अलग उसका, दूसरा उपयोग करना, या जिस मुद्दत के लिए मिली हो, उससे लंबी मुद्दत तक भी उपयोग करना चोरी है। इस व्रत के मूल में सूक्ष्म सत्य तो यह छिपा हुआ है कि परमात्मा प्राणियों के लिए नित्य की केवल आवश्यक वस्तु भर ही नित्य उत्पन्न करता है। उससे अधिक नहीं पैदा करता। इसलिए अपनी कम से कम आवश्यकता से अधिक, जो कुछ भी मनुष्य लेता है, वह चोरी करता है।

६. अपरिग्रह

अपरिग्रह अस्तेय के अन्तर्गत ही है। अनावश्यक वस्तु जिस तरह ली नहीं जा सकती, उसी तरह उसका संग्रह भी नहीं किया जा सकता। इसलिए जिस खुराक या साज सामान की जरूरत न हो, उसका संग्रह इस व्रत का भंग है। जिसका काम कुर्सी के बिना चल जाय, वह कुर्सी न रक्खे; दिनों दिन अपना जीवन और भी सादा करता जाय।

७. शारीरिक श्रम

अस्तेय और अपरिग्रह के पालन के लिए आप काम करने का नियम जरूरी है। फिर मनुष्य-मात्र शरीर-निर्वाह शारीरिक श्रम से करें तभी वे समाज के और अपने द्रोह से बच सकते हैं। जिनका शरीर चल सकता है, और जिन्हें समझ आ गयी है, उन स्त्री पुरुषों को अपने नित्य का सारा काम, जो वे आप कर सकें, कर लेना चाहिए और दूसरे की सेवा बिना कारण न लेनी चाहिए। किन्तु बालकों की, दूसरे अपंगु लोगों को, और वृद्ध स्त्री पुरुषों की सेवा प्राप्त हो तो उसे करने की सामाजिक जिम्मेवारी को उठाना प्रत्येक समझदार मनुष्य का धर्म है।

इस आदर्श का अवलंबन कर के आश्रम में वहीं मजदूर रक्खे जाते हैं, जहां अनिवार्य हों, और उनके साथ मालिक नौकर का व्यवहार नहीं रक्खा जाता।

८ स्वदेशी

मनुष्य सर्वशक्तिमान् प्राणी नहीं है। इस लिए वह अपने पडोसी की सेवा करने में जगत की सेवा करता है। इस भावना का नाम स्वदेशी है। जो अपने नजदीकियों की सेवा छोड कर दूरवालों की सेवा करने या लेने को दौडता है, वह स्वदेशी का भंग करता है। इस भावना के पोषण से संसार सुव्यवस्थित रह सकता है। उसके भंग में अव्यवस्था घुसी हुई है। इस नियम के आधार पर, जहां तक बने, हम अपने पडोस की दूकान से व्यवहार रक्खें; देश में जो वस्तु बनती हो या सहज ही बन सकती हो, वह विदेश से न लावें। स्वदेशी में स्वार्थ को स्थान नहीं है। कुटुम्ब के लिए अपने आप को, शहर के कल्याण के लिए कुटुम्ब को, देश के लिए शहर को, और जगत के कल्याणार्थ देश को होम कर दिया जाय।

९. अभय

सत्य, अहिंसा आदि व्रतों का पालन निर्भयता बिना असंभव है। और हाल में जहां सर्वत्र भय व्याप रहा है, वहां निर्भयता का चिन्तन और उसकी शिक्षा के अत्यन्त आवश्यक होने से, उसे व्रतों में स्थान दिया गया है। जो सत्य-परायण रहना चाहता है, वह न जाति बिरादरी से डरता, न सरकार से डरता, न चोर से डरता, न गरीबी से डरता, न मौत से डरता है।

१०. अस्पृश्यता-निवारण

हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता की रूढि ने जड जमा ली है। उसमें धर्म नहीं किन्तु अधर्म है। ऐसी मान्यता होने के कारण अस्पृश्यता-निवारण को नियम में स्थान दिया गया है। अस्पृश्य जनता के लिए दूसरी जातियों के बराबर ही, आश्रम में स्थान है।

आश्रम जाति-भेद नहीं मानता। मान्यता ऐसी है कि जाति-भेद से हिन्दू-धर्म को नुकसान हुआ है। उस में छिपी हुई ऊँच नीच और छुआ छूत की भावना अहिंसा-धर्म की घातक है। आश्रम वर्णाश्रम धर्म को मानता है। उसमें की वर्ण व्यवस्था केवल धंधे के अधीन जान पडती है। इस लिए वर्णनीति का पालन करनेवाला ऐसे धंधे से, जो मा बाप के धंधे का अविरोधी हो, अपनी आजीविका पैदा करे, और बाकी समय शुद्ध ज्ञान लेने में और बढाने में खर्च करे। स्मृतियों में दी गयी वर्ण-व्यवस्था जगत का हित करनेवाली है, किन्तु वर्णाश्रमधर्म मान्य होने पर भी, आश्रम जीवन गीतामान्य व्यापक और भावना-प्रधान संन्यास को आगे रख कर रचा हुआ है, इस लिए आश्रम में वर्ण भेद को अवकाश नहीं है।

११. सहिष्णुता

आश्रम की ऐसी मान्यता है कि जगत में प्रचलित प्रख्यात धर्म सत्य को व्यक्त करनेवाले हैं। किन्तु उन सभीके अपूर्ण मनुष्य के द्वारा व्यक्त होने से, सभीमें अपूर्णता अथवा असत्य का मिश्रण हुआ है। इसलिए हमें अपने धर्म के लिए जैसा मान है, वैसा ही प्रत्येक धर्म के लिए रखना चाहिए। जहां ऐसी सहिष्णुता हो, वहां एक दूसरे के धर्म का विरोध संभव नहीं होता, और न परधर्मी को अपने धर्म में लाने का ही प्रयत्न संभव होता है। किन्तु यही प्रार्थना और यही भावना नित्य रखनी उचित है कि सभी धर्मों के दोष दूर हों।

काम

१. उपासना

आश्रम की सामाजिक प्रवृत्तियों का आरंभ सबेरे ४-१५ बजे की सामाजिक प्रार्थना से होता है और सांझ के सात बजे खतम होने वाली प्रार्थना से बंद होता है। यह उपासना सभी आश्रम-वासियों के लिए अनिवार्य है उपासना का हेतु चित्त-शुद्धि करनी और ईश्वर को सर्व्वार्पण करना है।

२. शौच-सुधार

यह प्रवृत्ति अत्यंत आवश्यक और पवित्र होने पर भी, वह अपवित्र गिनी जाती है, और उसके प्रति समाज की बहुत अरुचि है, इसलिए और सामान्यतः सफाई करने के काम में आरोग्य और सफाई की दृष्टि से सुधार करने का बहुत अवकाश होने के कारण भी, इसमें मजूरों के जरिए काम न लेने का खास आग्रह रक्खा जाता है। पायखाना इत्यादि की सफाई का काम आश्रम के आदमी ही पारी पारी से करते हैं। नये आगंतुक को पहले यही काम देने का सामान्य नियम है। मल को हमेंशे, नौ इंच का गढा खोद कर गढे में से निकली तथा दूसरी सूखी मिट्टी से गाड दिया जाता है और उसका खादर बनता है। नियमित स्थानों पर ही लोग पायखाने

...पेशाब जाते हैं । रास्ते में थूकने न देने या किसी दूसरी तरह से आश्रम के रास्ते बिगाडने न देने का खयाल रक्खा जाता है ।

३. कातने का यज्ञ

भारतवर्ष का महादुःख उसके करोडों की भूखमरी है । और इस भूखमरी का मुख्य कारण उसके मुख्य धंधे सूत-कताई का विदेशी राज्य का किया हुआ नाश है । इस लिए इस क्रिया का पुनरुद्धार करने के लिए उसे केन्द्र बनाया गया है और वह राष्ट्रयज्ञ के रूप में आश्रमवासी के लिए अनिवार्य है । उसके संबंध में आश्रम की निम्न लिखित प्रवृत्तियाँ चलती है:

१. जुदा जुदा जात की कपास की खेती,

२. चर्खा, तकुवा, धुनकी वगैरह बनाने के लिए, लोहार और बढई विभाग,

३. कपास लोढनी या चुननेकी,

४. धुनने की,

५. डोरी, नेवार या बिस्तर को पट्टी, खादी बुनने की,

६. रँगने तथा छापने की ।

४. खेती

आश्रम के निर्वाह के संबंध में तथा उसे स्वाश्रयी बनाने के लिए उसमें कपास के अलावा, शाकभाजी, फल वगैरह की खेती की जाती है ।

५. दुग्धालय

आश्रम की दूध की आवश्यकता पूरी करने के लिए दुग्धालय चलता है और उसे आदर्श बनाने का प्रयत्न चलता है । गतवर्ष से अ. भा. गोरक्षा मंडल की सहायता से, किन्तु आश्रम की स्वतंत्र शक्ति के रूप में वह चलता है । उसमें २७ गायें, १० बैल, १७ बछडे, बछडी और ८ साँढ हैं । ५ मन (१ मन=४० पाउन्ड) दूध पैदा होता है ।

६. चर्मालय

दुग्धालय की प्रवृत्ति के संबंध में चर्मालय स्थापित किया गया है। इसमें केवल मरे हुए ढोर का ही चमडा लिया जाता है । और उसे कमाया जाता है । साथ में ही मोची का काम भी चलता है।

इस देश में गो-पालन का यथेष्ट सुधार न हो तो गाय की दूध देने की शक्ति में वृद्धि न होगी, और मरे हुए ढोर के चमडे का सदुपयोग इसी देश में न हो तो गोरक्षा का दावा करनेवाले इस अहिंसा-प्रधान देश में मवेशी बिना मौत ही मरेंगे और मनुष्यों को भी मरेंगे—इन दो (५ और ६) प्रवृत्तियों के पीछे यह मान्यता है ।

७. राष्ट्रीय शिक्षा

आश्रम में राष्ट्र की पोषक शिक्षा देने का प्रयत्न चलता है । उसमें नीचे के सिद्धान्तों पर अमल करने का प्रयत्न किया जाता है। शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास को साथ ही साथ करने के लिए औद्योगिक वातावरण खडा किया जाता है । अक्षर-ज्ञान या साहित्यज्ञान पर जरूरत के लायक भर ही जोर दिया जाता है। और चारित्र दृढ करने के लिए, उसकी आवश्यकता पर हर सूक्ष्म से सूक्ष्म कार्य में भी भार दिया जाता है ।

अंत्यज बालकों को दाखिल करने की पूरी छूट है ।

स्त्रियों की स्थिति सुधारने के हेतु से उनपर खास ध्यान दिया जाता है और पुरुषों के बराबर ही उनके स्वातंत्र्य का पालन किया जाता है ।

विद्यापीठ के नीचे लिखे सिद्धान्तों को आश्रम स्वीकार करता है:

"१ विद्यापीठ का मुख्य काम स्वराज्य प्राप्ति के लिए चलते हुए आन्दोलनों के लिए चारित्र्यवान्, शक्ति-संपन्न, संस्कारी, और कर्त्तव्य-परायण कार्यकर्त्ता तैयार करने का है ।

२. विद्यापीठ की ओर से चलती हुई और उससे संबद्ध सभी संस्थाएँ पूर्ण रूप से असहयोग करनेवाली होनी चाहिए, और इस लिए वे सरकार का किसी किस्म का आश्रय नहीं ले सकेंगी ।

३. विद्यापीठ स्वराज और स्वराज-प्राप्ति के साधन अहिंसामय असहयोग के संबंध में खुला था, इस लिए उसके शिक्षक और संचालक ऐसे ही होने चाहिए जो स्वराज प्राप्ति के लिए अहिंसा और सत्य के अविरोधी ही साधन स्वीकार करें और उन्हें अमल में लाने के लिए प्रयत्नशील हों ।

४. विद्यापीठ के संचालक, और शिक्षक तथा विद्यापीठ से संबद्ध संस्थाएँ अस्पृश्यता को कलंकरूप माननेवाली और उसे दूर करने को प्रयत्नशील होनी चाहिएँ, और किसी लडके या लडकी को अस्पृश्य होने के कारण न तो बाहर रखना चाहिए और न उसे दाखिल कर लेने बाद उसके साथ अलग व्यवहार ही करना चाहिए ।

५. विद्यापीठ के संबंध में काम करनेवाले शिक्षकवर्गों, संचालकों तथा संबद्ध संस्थाओं को चर्खा आन्दोलन में विश्वास करना, अनिवार्य कारण के सिवाय नियमित रूप से कातना और सर्व्वदा खादी पहिननी चाहिए ।

६. विद्यापीठ में प्रान्तभाषा गुजराती को प्रधानपद दिया जायगा और सारी शिक्षा गुजराती के ही जरिए दी जायगी ।

नोट—दूसरी भाषाएँ पढाने में उन्हीं भाषाओं का उपयोग इस नियम का बाधक नहीं होगा ।

७. विद्यापीठ में राष्ट्रभाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी को आवश्यक स्थान होगा ।

८. विद्यापीठ में औद्योगिक शिक्षा को भी बौद्धिक शिक्षा के बराबर ही महत्त्व दिया जायगा और राष्ट्र के पोषक जो उद्योग हों केवल उन्हींको स्थान दिया जायगा, दूसरों को नहीं ।

९. भारतवर्ष का उत्कर्ष शहरों पर नहीं किन्तु गावों पर अवलंबित है, इस लिए विद्यापीठ के धन के अधिकांश का और उसके शिक्षकों का मुख्य उपयोग गांवों में राष्ट्र की पोषक शिक्षा का प्रचार करने में होगा ।

१० शिक्षा-क्रम बनाते समय गांववालों की जरूरतों को प्रधानता दी जायगी ।

११. विद्यापीठ के नीचे चलनेवाली संस्थाओं में सभी प्रचलित धर्मों के प्रति आदर होना चाहिए और विद्यार्थियों के आत्मविकास के लिए अहिंसा और सत्य को दृष्टि में रख कर ही, धर्म का ज्ञान दिया जायगा ।

१२. प्रजा के शारीरिक विकास के लिए व्यायाम और शारीरिक मिहनत की तालीम विद्यापीठ में आवश्यक गिनी जायगी ।"

इस शाला से अब तक १५ विद्यार्थी और २ विद्यार्थिनियाँ तैयार हुई हैं ।

टिप्पणी: आश्रम के सभी विभागों में महत्त्वपूर्ण फेरफार चलते रहने के कारण हाल में एक वर्ष (सन् १९२९ के १० जून तक) विद्यार्थी भर्त्ती न करने का आग्रह कार्यवाहक मंडल ने रक्खा है ।

८. खादी-सेवक शाला

अ. भा. च. संघ की ओर से आश्रम खादी-सेवक तैयार करने के लिए अलग ही उद्योग-शाला चलाता है, जिसमें अभी जुदा जुदा प्रान्तों के ३३ विद्यार्थी हैं । आज तक उससे २०५ विद्यार्थियों ने लाभ उठाया है । शाला का अभ्यासक्रम इस प्रकार है:

खादी विद्यालय अभ्यास-क्रम

कातना (२१ सप्ताह)

१ फक्त हाथ की उँगलियों से कातना.

(शेष पृष्ठ ३४३ पर)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ वदी ११ संवत् १९८४

'प्रभु बडे या गुरु?'

ऊपर के शीर्षक के नीचे एक गृहस्थ ने यह लेख भेजा है:

"कलकत्ते के गोविन्द भवन की दिल कँपानेवाली बात सुन कर सारे मारवाडी समाज में खलबली मच गयी है। अपने को सनातनी कहलानेवाले पुराने विचार के मारवाडियों में भी बहुत हाहाकार मच रहा है। 'नवजीवन' में आपने एक लेख लिख कर ऐसा मत दिखलाया है कि,

१. बहिनों को मनुष्य का सेवन, पूजन छोड कर परमेश्वर के पूजन में ही लक्ष्य रखना चाहिए।

२. किन्तु सोलन के विचारानुसार कोई आदमी, चाहे वह कितना ही बडा क्यों न माना जाता हो, जब तक वह जीता है, तब तक पार पहुँचा नहीं कहा जा सकता। इसलिए जीवित मनुष्यों का सेवन, पूजन, स्त्रियों के लिए अयोग्य है।

"आपके लेख का यह भावार्थ मुझे बहुत पसंद पडा है। किन्तु उसके सामने पहाड के समान धार्मिक कठिनाइयाँ खडी हैं। आपने शायद उनका विचार न किया हो। 'नवजीवन' में इस बात पर थोडी बहुत चर्चा हो, इस हेतु से नीचे के मुद्दों पर आपका ध्यान खींचता हूँ।

"हिन्दूधर्म के बहुत से मतों और पंथों का ऐसा सिद्धान्त है कि मनुष्य को सीधे अपने आप ही परमेश्वर नहीं मिल सकता, इसलिए आत्मा और परमात्मा की एकता के लिए एक तीसरे आदमी की जरूरत पडती है। इस आत्मा और परमात्मा की एकता कराने की दावा करनेवाले आदमी की पदवी परमात्मा से भी बडी गिनी जाती है। सारे हिन्दुस्तान में प्रचलित इस दोहे को तो आपने सुना ही होगा:

गुरु गोविंद दोऊ खडे, काको लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दिया बताय॥

"फिर दादू दयाल नाम के गुजरात के एक ब्राह्मण का पंथ पंजाब में चलता है। इस पंथ में दादू दयाल के शिष्य सुन्दर दास कवि का लिखा सुन्दर विलास नाम का ग्रंथ बहुत प्रचलित है। उसमें लिखा है:

गोविंद के किये जिव जात है रसातल में,
गुरु जो कृपा करें तो छूटे जम फंद ते।

"मतलब यह कि प्रभु के बनाये जीव नरक में जायँगे किन्तु जिनपर गुरु ने कृपा कर के जिन्हें मार्ग दिखलाया होगा, केवल वे ही तरेंगे।

"गोस्वामी श्री तुलसीदासजी महाराज की रामायण में से भी एक वचन बारंबार बतलाया जाता है। वह यह रहा:

मोरे तो मन प्रभु उस विश्वासा।
राम से अधिक रामकर दासा॥

"वल्लभी पंथ का ऐसा सिद्धान्त है कि जब गुरु 'ब्रह्म-संबंध' करें, तभी उद्धार हो सकता है। इसके बिना चाहे कोई कैसा ही नीतिमान्, सद्गुणी या भक्ति-युक्त हो, मगर उद्धार नहीं होता। वल्लभाचार्य को भगवान् प्रत्यक्ष मिले और उन्होंने कहा, "जिन जिन को शरण में लेकर तुम मुझे सौंपोगे, उनको मैं तारूंगा।" इस लिए वल्लभी पंथ के गुरु अपने सेवकों और सेवकियों का ब्रह्म-संबंध कराते हैं। वल्लभाचार्य ने सिद्धान्त-रहस्य नाम की एक किताब लिखी है। उसके पहले तीन श्लोकों का मतलब यह है:

"साक्षात् भगवान् ने मुझसे मिल कर जो कहा है, वह अक्षर अक्षर मैं सुनाता हूँ। ब्रह्मसंबंध लेने से देह के तथा जीव के सब पाप जल कर भस्म हो जाते हैं। लोगों में और वेद में जो पांच महापाप बतलाये हैं, उन्हें बिलकुल न मानना। ब्रह्मसंबंध लिये बिना, किसी तरह सभी दोषों की निवृत्ति नहीं हो सकती। इन वल्लभाचार्य को भगवान् से भी बडा दिखलाने के लिए इन्हें महाप्रभुजी का नाम दिया गया है। यह तो मैंने केवल थोडे से ही उदाहरण बतलाये। दूसरे अभी बहुत से हैं। किन्तु उन्हें छोड कर, अब खुद गोविंद भवन के बारे में लिखता हूँ। पिछले रामनवमी पर कलकत्ते से गोविंद भवन के एक मारवाडी भक्त भक्ति का प्रचार करने बंबई पधारे थे। उनका विज्ञापन गुजराती पत्रों में भी छपा था। कालबा-देवी रास्ते पर एक मकान में उनका व्याख्यान था। मैं जब देखने गया, तब इस भक्त के मान में ढोल, ताशा, झाल, ब्यूगल, झांझ, नगारा और पिपुढी कितने आदमी बजा रहे थे। कोई तीस पैंतीस आदमी तो सिर्फ गुलाबजल ही फूलदानियों में भर कर उनपर छींट रहे थे, और फूल के तो टोकडों पर टोकडे खाली कर उनपर बरसा रहे थे। कोई पंखा हांक रहे थे। मैंने लोगों से पूछा तो सभीने यही कहा कि ये बहुत बडे भक्त हैं और उन्हें प्रभु का साक्षात्कार हो चुका है। इस बात की पूरी जाँच छोड कर मैं यही पूछना चाहता हूँ कि आपने तो बहिनों को मनुष्य-पूजा छोड कर प्रभु को भजने की शुभ सिखावन दी मगर ये सभी बातें जो आपकी दलील को तोडती हैं, उनका क्या हो? प्रभु के पास पहुँचानेवाले आदमी, प्रभु से भी बहुत बडे बन कर अपने पैर भोले भावुकों से पुजवा रहे हैं। उनका माहात्म्य पुराने ग्रंथों में भी बहुत गाया गया है। इस लिए यह उनके पक्ष में लाभदायी बात हो गयी है इसलिए इस संबंध में मैं जो सलाह 'नवजीवन' के द्वारा माँग रहा हूँ, उससे बहुतों को लाभ होगा और वह सार्वजनिक समाज के लिए हितकर सिद्ध होगा।"

मारवाडी भक्त के बारे में जो लिखा है, वह मैं नहीं जानता। सिद्धान्त-रहस्य नामक पुस्तक में से तीन श्लोकों का मतलब जो भेजा गया है, वे श्लोक भी मैंने नहीं देखे हैं। किन्तु इस लेख में जो लिखा है, वैसी मान्यता हिन्दूधर्म में है इस विषय में शंका नहीं है। मैं आप ही नित्य प्रातःकाल में नीचे के श्लोक गाता हूँ:

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

और गुरु के माहात्म्य के बारे में हिन्दूधर्म की मान्यता के लिए सबल कारणों का होना भी मैं मानता हूँ इसी लिए मैं गुरु शब्द का शुद्ध अर्थ ढूँढ रहा हूँ। और जब तब कहता हूँ कि मैं गुरु की खोज में हूँ। जिस गुरु में ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर का लय हो, और जो साक्षात् परब्रह्म सम हो, वह देहधारी, विकारी और रोगी मनुष्य नहीं होगा, किन्तु उसमें तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की सारी शक्ति होगी, यानी वह आदमी मुख्य कर के हमारी कल्पना में ही होगा। और वह गुरु, इष्टदेव केवल सत्य की मूर्ति परमात्मा ही होगा। इस लिए गुरु की खोज परमात्मा की खोज के बराबर हुई। विचार करते हुए जो जो वस्तुएँ लेखक ने लिखी हैं, वे सरल हो जाती हैं। जो गोविंद को बता सके वह अवश्य ही गुरु होने लायक है और चाहे वह पीछे भले ही गोविंद से भी बडा गिना जाय। गोविन्द के बनाये जीवों को अनन्त दुःख भोगते हुए हम देखते हैं किन्तु हमें जो इस फंद से छुडा सके वह खुशी से गोविंद से भी बडा पद लेवे। यही आशय 'राम से अधिक राम कर दासा'

है। इन सभी महावचनों का अर्थ इतना स्पष्ट है कि अगर सरल हृदय से ढूंढें तो प्रपंच में बिलकुल न पडें, और अनर्थ न पडें। हर एक महावचन में अनिवार्य शर्त्त जुडी हुई होती है। जो हमें प्रेमधर्म सिखलावे, जो हमें भयमुक्त करे, सादगी है। गरीब से भी गरीब के साथ ऐक्य साधने की बुद्धि ही बल्कि ऐक्य का अनुभव करने का हृदय-बल भी देवे, वह लिए अवश्य ईश्वर से भी बडा है। इसका अर्थ यह नहीं कि ईश्वर का ऐसा दास अलग स्वतंत्र रूप में ईश्वर से बडा समुद्र में हम पडें तो डूब जायँगे, मगर इसी समुद्र में बहनेवाली के मूल से एक लोटा जल प्यास लगने पर लेकर पीवें तो समय यह गंगाजल हमारे लिए समुद्र से भी बडा है। किन्तु गंगाजल वहाँ से लेने जायँ जहां समुद्र में गंगा मिलती हैं तो जहर के समान हो पडता है। ऐसा ही गुरु के विषय में जना चाहिए। जिनमें दंभ है, ईर्षा है, जो सेवा के भूखे हैं, गुरु मान बैठना तो अनेक प्रकार के गंदे पानियों के समुद्र पडे हुए गंगा नदी के जहरीले पानी के समान समझना चाहिए। अभी तो हम धर्म के नाम पर अधर्म का आचरण करते हैं। के नाम पर पाषंड का पोषण करते हैं, और ज्ञानी होने का करके अनेक प्रकार की पूजा चुरा कर आप अधोगति को होते हैं, और साथ में दूसरों को भी ले डूबते हैं। ऐसे समय किसी को गुरु करने के बारे में बिलकुल अस्वीकार करने का धर्म प्राप्त होता है। सच्चे गुरु न मिलें तो मिट्टी के पुतले को बना कर बैठाने में दुहरा पाप है। किन्तु जब तक सच्चे गुरु मिलें, तब तक 'नेति नेति' कहने में पुण्य है। इतना ही नहीं उससे किसी दिन सच्चे गुरु के मिलने का भी प्रसंग आ ता है।

इसके मुझे बहुत से कडवे मीठे अनुभव हुए हैं और अब भी करते हैं कि चलती धारा का विरोध करने में बहुत सी तें रही हैं। किन्तु उनमें से मैंने एक बात यह सीखी है कि वस्तु में अनीति है, जिसका खंडन होना ही चाहिए, उसका विरोध एकाकी होने पर भी हमें करना ही चाहिए और वह बात ये अगर अधिक सच्ची होगी तो जरूर सफल होगी ही। विश्वास सदैव रखना उचित है।

जो भक्त स्तुति का या पूजा का भूखा है, जो मान न मिलने चिढ जाता है, वह भक्त नहीं है। भक्त की सच्ची सेवा आप बनने में है। इस लिए आज कल चलनेवाली मनुष्य-पूजा जहां तक हो सकता है मैं विरोध ही करता हूँ और सबको करने के लिए प्रेरित करता हूँ।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

गनलाल गांधी स्मारक कोष

स्वीकार किया गया		रु. ४८९-०-०
टि. जी शाह	बम्बई	२५-०-०
पुरुषोत्तम खिमजी	झरिया	१-०-०
लाल भिखारीलाल	मग्रैर	५-०-०
एल. गद्दसवर	यवतमाल	१०-०-०
हीचन्द हिराचन्द	बम्बई	१५-०-०
र केशव	,,	२५-०-०
जी की मार्फत		२५-०-०
गोविंदजी देसाई	साबरमती	५-०-०
प्रसाद राधाकृष्ण		११-०-०
	कुल	रु. ६११-०-०

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय ९

आश्रम की स्थापना

कुंभ की यात्रा मेरे लिए हरद्वार की दूसरी यात्रा थी। सत्याग्रहाश्रम की स्थापना १९१५ की २५ वीं. मई को हुई। श्रद्धानंद जी की मांग थी कि मैं हरद्वार में ही आ बसूं। कलकत्ते के कितने एक मित्रों की सलाह वैद्यनाथ धाम में बसने की थी। कितने एक मित्रों का भारी आग्रह था कि राजकोट में ही रहना चाहिए।

किन्तु जब मैं अहमदाबाद गया तब बहुत से मित्रों ने अहमदाबाद पसंद करने को कहा तथा आश्रम का खर्च आप ही उठा लेने का बीडा उठाया। मकान ढूँढ देना भी उन्हीं लोगों ने कबूल किया।

अहमदाबाद पर मेरी नजर ठहरी थी। मैं मानता था कि गुजराती होने के कारण मैं गुजराती भाषा के जरिए ही देश की अधिक से अधिक सेवा कर सकूँगा। यह खयाल भी था कि अहमदाबाद पहले बुनाई का केन्द्र था, इसलिए चर्खे का काम यहीं ज्यादह अच्छी तरह चल सकेगा। यह आशा भी थी की अहमदाबाद गुजरात का मुख्य शहर होने से यहां के धनाढ्य लोग धन की अधिक मदद कर सकेंगे।

अहमदाबाद के मित्रों के साथ बातों में अछूत के सवाल पर भी चर्चा हुई थी। मैंने स्पष्ट कह दिया था कि जो कोई लायक अंत्यज भाई आश्रम में दाखिल होना चाहेगा तो मैं उसे जरूर दाखिल करूँगा।

एक वैष्णव मित्र ने अपने मन को यों मनाया कि, "ऐसे अछूत कहां पडे हुए हैं जो आप की शर्तों का पालन कर सकें।" और अहमदाबाद में रहने का निश्चय किया।

मेरे लिए मकानों की खोज करने में अहमदाबाद में ही रखने में सबसे आगे बढकर काम करनेवाले श्री जीवनलाल बैरिस्टर थे। कोचरब में उनका मकान था। वही भाडा करने का निश्चय हुआ।

अब यह प्रश्न तुरत ही उठा कि आश्रम का नाम क्या रक्खा जाय। मित्रों के साथ सलाह की। कितने एक नाम मिले। सेवाश्रम, तपोवन वगैरह की सूचना आयी। सेवाश्रम नाम पसंद पडता था किन्तु उससे सेवा की रीति का परिचय नहीं मिलता था। तपोवन नाम पसंद करने लायक ही नहीं था, क्योंकि तपश्चर्या प्रिय होने पर भी यह नाम कुछ भारी सा लगा। हमें तो सत्य की पूजा, सत्य की शोध करनी थी, उसीका आग्रह रखना था, और दक्षिण अफ्रिका में जिस पद्धति का मैंने उपयोग किया था, भारतवर्ष में उसका परिचय कराना था, और यह देखना था कि उसकी शक्ति कहाँ तक व्यापक हुई थी, इस लिये मैंने और साथियों ने 'सत्याग्रहाश्रम' नाम पसंद किया। उसमें सेवा का और सेवा की पद्धति का भाव सहज ही आ जाता था।

आश्रम को चलाने के लिए नियमावलि की अवश्यकता थी। इसलिए नियमावलि बना कर उसपर सम्मतियाँ माँगी। बहुत सी सम्मतियों में सर गुरुदास बनर्जी की दी हुई राय मुझे याद रह गयी है। उन्हें नियमावलि पसंद पडी, किन्तु उन्होंने सलाह दी कि व्रतों में नम्रता के व्रत को स्थान देना चाहिए। उनके पत्र की ध्वनि थी कि हममें नम्रता की कमी है। जोकि मैं नम्रता का अभाव ठौर ठौर पर देख रहा था, मगर तौभी नम्रता को व्रतों में स्थान देने से यह आभास आता था कि वह नम्रता, नम्रता ही न रह जायगी। नम्रता का पूरा अर्थ तो शून्यता है। शून्यता को

प्राप्त होने के लिए दूसरे व्रत होगे। शून्यता मोक्ष की स्थिति है। मुमुक्षु या सेवक के प्रत्येक कार्य में अगर नम्रता, निरभिमान न हों तो वह ममुक्षु नहीं, सेवक नहीं है। वह स्वार्थी, अहंकारी है।

आश्रम में इस समय लगभग १३ तामिल थे। मेरे साथ द० अफ्रिका से पाँच तामिल बालक आये थे और यहां के दूसरे लगभग पचीस स्त्री पुरुषों से आश्रम का आरंभ हुआ था। सब एक ही रसोडे में खाते थे और ऐसा ही बर्त्ताव करने की कोशिश करते थे मानों एक ही कुटुम्ब के हों।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

बारडोली यज्ञ

बारडोली में चालनेवाला सत्याग्रह एक किस्म का यज्ञ ही है। पारमार्थिक कार्यमात्र यज्ञ कहलाता है। बारडोली के किसान व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं किन्तु सामाजिक लाभ के लिए, स्वमान के लिए लड रहे हैं। इस लिए यह यज्ञ है। उसमें रोज आहुति भी पड रही है। अंतिम आहुति की खबर अभी अभी आयी है। वह यह है:

"लगभग तिरसठ पटेलों और ग्यारह तलाटियों ने सरकारी नीति की अराजकता का विरोध दिखलाने के लिए इस्तीफे दिये हैं। उनमें कोई कोई तो दश से बीस वर्ष तक के पुराने नौकर हैं। पटेल अपने इस्तीफे में कहते हैं:

'खालसा नोटिसों के, ढोरों को तडपाने के, और दो महीनों से लोगों को जिस भय और अँधाधुंधी में रहना पडा है, उसके साक्षी हमलोग हैं। हमने ऐसी आशा रक्खी थी कि सरकार न्याय करेगी। किन्तु उसके बदले अपनी अंतिम विज्ञप्ति में तो सरकार ने और भी दमन करने की धमकी दी है और पठानों को आदर्श व्यवहार का प्रमाणपत्र दिया है। ऐसी राजनीति के परिणाम-स्वरूप लोगों को कैसे कैसे दुःख उठाने पडेंगे, यह सोच कर ही हम कांप उठते हैं। इस लिए ऐसा जुल्म चुप चाप सह लेने के बदले हम अपने इस्तीफे देना ही बेहतर समझते हैं।'

दूसरे इस्तीफे पडने भी संभव हैं।"

सरकार की प्रस्तुत विज्ञप्ति का यह अच्छा जवाब गिना जायगा। पटेलों और तलाटियों ने जो यों वीरता दिखलायी, इसके लिए, मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। मैं आशा रखता हूं कि वे इस निश्चय से डिगेंगे नहीं, और उसके लिए न कभी पछतायँगे ही।

सरकारी नौकरी का मोह टूटना बहुत जरूरी है। जिसके हाथ पैर मजबूत हैं और जो उद्यमी है, उसके लिए ईमान्दारी से पसीने की कमाई रोटी मिलने में कहीं मुश्किल नहीं होती। सरकारी नौकरी करनेवाले को लोगों को लूटने का जो अवसर मिलता है, उसे भला मौका समझने के बदले दोष समझ कर उससे दूर रहना सीखें तो सरकार के हाथ पैर ढीले पड जायँ। हमारे ही आदमी सरकार के हाथ और पैर हैं। वे खिसक जायँ तो सरकार की तोप और बंदूक तथा हवाई जहाज सभी निरर्थक हो जायँ।

सरकार की विज्ञप्ति में असत्य, अविनय और प्रजा-पक्ष का तिरस्कार भरे हैं। उसमें सरकार ने जो लालच दिखलायी है, मैं आशा करता हूँ कि, उसमें बारडोली का कोई किसान नहीं फँसेगा।

सरकार ने साम, दाम, दंड और भेद का पूरा उपयोग किया है, और अभी वह कर रही है। इसमें दंड तो कमसे कम दूषित वस्तु है। दंड को हम पहचान सकते हैं। उसे सहन कर लें, तो उसके भय से उबर गये।

साम, दाम और भेद तो सूक्ष्म वस्तुएँ हैं। उसमें प्रलोभन हैं। इस लिए जिस तरह मछली कांटे पर लगी आटे की गोली को चाटने जाकर उसमें फँस जाती है, उसी तरह इस जहरीली त्रिवेणी में भोले और भीरु लोग फँस जाते हैं। उन्नीसवीं जून के पहले महसूल भरनेवाले को जिसे सुभीते का लालच दी गयी है, वह दामनीति है। उस घूस के मधु में मक्खी के समान फँसने जा कर एक भी किसान अपनी प्रतिज्ञा न तोडेगा, ऐसी आशा रखने का प्रजा को अधिकार है। सारे भारतवर्ष पर बारडोली ने जिस निडरता और सहनशीलता की छाप डाली है, वह छाप वह कभी नष्ट न होने देवे। भेद-नीति दामनीति से भी गयी बीती है।

अनेक तरह की अफवाहें प्रचलित हैं। कोई कहता है कि सरकार समझौता करना चाहती है; कोई कहता है लोग निर्बल हो गये हैं; कोई कहता है कि लोग चुपचाप चोरी से कर भरने लगे हैं; कोई कहते हैं कि बहिष्कार का भय न हो तो लोग कर भरने को तैयार हो रहे हैं; कोई कहते हैं कि बाहर से आये हुए श्री. वल्लभभाई और उनके साथियों के डर के कारण लोग लगान नहीं चुकाते हैं, नहीं तो बेचारे लगान देकर शान्ति से बैठ जाना चाहते हैं।

यह सब भेद-नीति है। मेरे कहने का यह आशय भी नहीं है कि ऐसा करने की प्रेरणा कोई खास आदमी करता है। किन्तु जिस शासन में उपर बतालायी चार नीतियों को स्थान मिला है, वहां वह इनके जरिए काम किया करता है। सारा नौकर वर्ग समझता है कि सरकारी नीति के अनुकूल बनने में ही हमारे मुशाहरे और ओहदे की वृद्धि छिपी हुई है। भीष्म द्रोणादि को भी धर्मराज के आगे अपना पेट दिखलाना पडा था।

यानी जैसे जैसे लडाई जमती जायगी, भेदनीति में वृद्धि होती जायगी। इस मोहजाल से सभी सत्याग्रही दूर भागें। एक भी अफवाह न मानें। जो कुछ सुनें, सरदार के पास पेश कर, फिर भूल जायँ। सत्याग्रही का समाधान एक ही होता है। उसकी प्रतिज्ञा का पालन हुआ और उसका काम समाप्त हुआ। वह अधिक न माँगे, और कमी से संतोष न माने। वह तो अपनी प्रतिज्ञा की वेदी पर प्यारी से प्यारी वस्तु को होम करने का निश्चय किये हुए हो। ऐसे आदमी का अफवाहों के साथ क्या संबंध होगा? फिर अपने माने हुए सरदार को पराया बनाने का जो औद्धत्य करे, उसके वचनों से भ्रम में क्या पडना और क्या लालच में पडना? समाधान होना होगा तो सरदार चेतावनी देगा ही।

चोरी से कर भरनेवालों की बात से भूल जाने की जरूरत नहीं है। हरएक कौम में कितने निर्बल तो होते ही हैं। मेरा अनुभव यह है कि चोरी से वश में होनेवाले कम होते हैं, किन्तु उन्हें बहुत बतलाया जाता है इस लिए सत्याग्रही को गुपचुप लगान भरने की बात न माननी ही शोभेगी। वह माने कि मुझमें जो शक्ति है, वह दूसरे में भी हो सकती है। किन्तु अन्त में चोरी छिपे वश होने-वाले निकल भी जायँ तो वह आप निराश न होवे। धर्म तो उसका है, जो उसे पालता है।

'हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनुं काम जोने।'

अर्थात् भगवान् का मार्ग शूरों का है, वहां कायरों का कोई काम नहीं है।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

अखिल भारतीय गोरक्षा-मण्डल

सभ्यों का सूत चन्दा

			गज
१	मीरां बहेन	साबरमती	४,०००
२	वाडीलाल जीवनलाल राणा	,,	७,५००
३	पुनाभाई मामैया	,,	१०,०००
४	जीवराम कल्याणजी कोठारी	कच्छकोटडा	३,५००
५	वी. जी. जोगलेकर	हाडवी	८,०००

संख्या ६, १६, और १८ वाले सभ्यों ने अपना सूत चन्दा बढा कर क्रमशः २४,०००; १६,००० और १३,००० गज कर दिया है।

(पृष्ठ ३३९ से आगे)

२. सूत के बल के मुद्दों को जानना ।

३. सूत में जुदा जुदा अंकों की आवश्यक मजबूती, समानता और वेग :

समय	अंक	गज	मजबूती	समानता	रुई की किस्म
१ घंटा	६	२५०	५०	८०	हलकी
	९	२५०	५०	८०	हलकी
१ ,,	१२	३००	६०	९०	मध्यम
१ ,,	१६	३००	७०	९०	अच्छी
१ ,,	२०	३००	७०	९०	अच्छी

कातने का क्रमः

एक सप्ताह तक शुरू में कातना सीखना ।

१ सप्ताह	६ अंक का	५ सेर सूत कातना
१ ,,	९ ,,	२॥ ,, ,,
१ ,,	१२ ,,	४॥ ,, ,,
१ ,,	१६ ,,	२।। ,, ,,
१ ,,	२० ,,	२।। ,, ,,
१ ,,	सामान्य	

कुल २१ सप्ताह

४. तकुवे की परीक्षा करनी और उसे सुधारना ।

५. तकली पर कातना ।

६. सामान्यतः सूत का अंक पहचानना ।

७. गिन कर सूत का अंक निकालना ।

८. सूत अच्छी तरह उतारना जानना ।

९. चर्खे के हरएक भाग को पहचानना और नाप जानना ।

१०. अपने काते सूत में से माल बनानी ।

११. रुई की परीक्षा करने के मुद्दे जानना ।

१२. 'बुनाई-शास्त्र' और 'तकली-शिक्षक' का अभ्यास करना ।

१३. अपने प्रान्त के चर्खे पर कातना ।

धुनना (७ सप्ताह)

(क) धुनकी तैयार करनी ।

(ख) उस में गद्दी बैठानी ।

(ग) सादडी बनानी ।

(घ) जुदी जुदी जात की तांत पहचाननी ।

धुनाई का क्रमः

२ सप्ताह में बडी धुनकी पर १८ सेर रुई धुननी

३ ,, मध्यम धुनकी पर २२ ,, ,, ,,

२ ,, बारडोली कामठी पर ८ ,, ,, ,,

७ सप्ताह

सामान्य हाथ-पिंजन से काम लेना ।

(ङ) धुनाई तथा पूनी तैयार करने का मापः

८ घंटे में बडे पिंजन से ३ सेर

,, ,, मध्यम पिंजन से २ सेर

,, ,, बारडोली और कामठी पिंजनसे १। सेर

कपास चुनना (२ सप्ताह)

वेगः ८ घंटे में ३२ सेर कपास चुनना

बुनाई

१. सांध करनी (सूत जोडना) समय २ दिन

२. ताने के लिए सूत भिगो कर और बाने के लिए कोकडी या नारा भरकर

(अ) २० गज साडी बनानी १०

(आ) ७५ गज बिस्तरे के लिए पट्टी या नेवार १५

(इ) शतरंजी या दरी में

२४"×२४" के तीन सादे आसन	४५
२४"×२४" के तीन नक्काशीदार आसन	,,
२गज×३०" की २ हाथ साल की दरियां	,,

पिट-लूम

३. सूत भिगोकर, सुखाकर, कोकडे भरकर, ताना कर, पवायत या मांडी लगा कर, टूटे धागे जोड कर, इतनी खादी बुननीः

	अंक	किस्म	गज	पनहा	१" ताने में सूत-संख्या		समय दिन
(क)	६	मोटी	२०	३०"	५	घर की दो सूती	२०
(ख)	६	गाढी	१०	,,	८, ९	,, ,,	२०
(ग)	९	,,	,,	,,	१२	,, ,,	१०
(घ)	६	,,	,,	,,	१८, १९	एक सूती	१२
(ङ)	९	,,	,,	,,	,,	,, ,,	१२
(च)	१२	,,	,,	,,	२१	,, ,,	१२
(छ)	१६	,,	,,	,,	२४	,, ,,	१५

फटका शाल

	अंक	किस्म	गज	पनहा	१" ताने में सूत-संख्या		समय दिन
(ज)	१२	सादी	,,	४२"	१७	,, ,,	७२
(झ)	१६	,,	,,	४५"	२०	,, ,,	,,
(ञ)	२०	,,	,,	५०"	२२	,, ,,	,,

नक्काशीदार कपडे की बुनावट

(ट)	१ से ६ जीन	१०	३०"	१६	,,	८
(ठ)	,, हनीकोम्ब	,,	,,	१२	,,	८
(ड)	ट्वील	,,	,,	१६	,,	८

४. राच के लिए ४ सेर सूत भिगोना । शुरूआत की सभी क्रियाएँ कर के राच बाँधना और फणी सुधारनी । २३

रँगाई

आचार्य राय और श्रीयुत वंशीधर जैन की पुस्तकों के अनुसार रँगना और छापना ।

छापने और रंगने में मुख्य विलायती रंगों का उपयोग कर के जान लेना । २४

बढ़ईगीरी की शिक्षा

१. तीन तरह के धोरण बनाना और हथियार घिसना जानना। ३०

२. तकली पेटी और चर्खे का मोढिया या चमरख का मोहडा बनाना । ३०

३. मध्यम पिंजन, बारडोली पिंजन, कामठी पिंजन, तकुवा और तकली बनानी । ३०

विशेषः ऊपर के क्रम के अलावा (अ) हिन्दी, हिसाब के वर्ग, (ब) खादी-निबंध, खादी-निबंध, खादी-पत्रिका, व्याख्यान और (क) चर्खासंघ के कार्यवाहक मंडल के सभ्यों और दूसरे नेताओं के व्याख्यान ।

आश्रम में विद्यार्थी पीछे मासिक भोजन-खर्च लगभग १२) रुपया आता है ।

कार्यवाहक मंडल

आश्रम की व्यवस्था १९८२ के आषाड सुदी १४ शनिवार ता. २४-७-२६ से कार्यवाहक मंडल के अधीन चलती है । हाल में उसके निम्नलिखित सभ्य हैंः

श्री. महादेव हरिभाई देसाई (प्रमुख)

,, इमाम कादिर बावजीर (उप-प्रमुख)

सभ्य

श्री. विनोबा भावे

,, छगनलाल खुशालचन्द गांधी

,, नरहरि द्वारकादास परीख
,, रमणीकलाल मगनलाल मोदी
,, चिमनलाल नरसिंहदास शाह
,, छगनलाल नथुभाई जोशी
,, नारायणदास खुशालचन्द गांधी
,, सुरेन्द्रजी

इस मण्डल में से किसीकी मृत्यु हो, अथवा किसी दूसरी तरह से उसमें किसीकी जगह खाली हो तो उसे भरने का अधिकार मण्डल को है।

कार्यवाहक का चुनाव, यह मण्डल कम से कम तीनचौथाई के बहुमत से करे।

इस मण्डल को दो और कार्यवाहक चुनने का अधिकार है।

इस मण्डल में कम से कम तीन कार्यवाहक होने चाहिए।

आश्रम की कुल व्यवस्था का अधिकार कार्य-वाहक मंडल को है। [**विशेषः** श्री गांधी जी और काका साहेब कालेलकर स्वेच्छा से ही कार्य-वाहक मंडल में नहीं हैं।]

आश्रमवासी

आश्रमवासी वह है जो आश्रम के उद्देश्य और नियमों को माने, और आश्रममें या आश्रम की सम्मति से आश्रम के बाहर रह कर नियमों का पालन करने का सतत प्रयत्न करे और कार्यवाहक मंडल या उसके चुने हुए व्यवस्थापक के बताये काम में एकनिष्ठा से लगा रहे।

कार्यवाहक

जिन आश्रमवासियों ने कम से कम ५ वर्ष आश्रम में बिताये हों, और जिन्होंने आश्रम में या आश्रम की ओर से चलनेवाले किसी काम में आजन्म रहने की प्रतिज्ञा की हो, वही इक्कीस वर्ष के या उससे बडे आश्रमवासी स्त्रियां या पुरुष कार्यवाहक मंडल के सभ्य बन सकते हैं।

महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव

कार्यवाहक मंडल ने नीचे लिखे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकार किये हैं:

१. आश्रम में जिम्मेवरी का हर एक काम करनेवाले तथा आश्रम में सदा के लिए या थोडे समय के लिए आ बसनेवाले हर एक आदमी के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक रहेगा।

२. आश्रम में दाखिल होने की इच्छा करनेवाले को अपने स्थान पर ही रह कर १ वर्ष तक आश्रम के नियमों का पालन किये हुए होना चाहिए।

अपवादः खास संयोगों में प्रमुख को इस विषय में अपवाद करने का अधिकार होगा।

३. आश्रम में नये रसोडों का बढना इष्ट नहीं है, इस लिए आश्रम में नये दाखिल होनेवालों के लिए—चाहे कुटुंबी हों या एकाकी—खाने पीने की व्यवस्था आश्रम में चलनेवाले संयुक्त रसोडे में ही होगी।

मेहमानों से विनती

आश्रम देखने आनेवाले और रहनेवाले मेहमानों की संख्या बहुत बढ गयी है।

देखने आनेवाले को आश्रम के काम दिखलाने की यथासाध्य तजवीज की जाती है।

किसी खास मुद्दत के लिए आनेवालों से प्रार्थना है कि वे मंत्री को लिख कर अनुमति मँगाये बिना न आवें, आनेवालों से नीचे लिखे नियमों का पालन करने की प्रार्थना की जाती है:

१ उपासना के समय भरसक उसमें हाजिर रहना।

२ खाने पीने के समयों का, जो कि दिनचर्या में बतलाये गये हैं, भर सक पालन करना।

३ आश्रम के पास बर्तन और बिस्तर का संग्रह भर सक कम ही है। इस लिए हर एक मेहमान को अपना बिछौना, सुराही की आदत हो तो वह भी और तौलिया, तथा थाली, कटोरा, और लोटा साथ लाना चाहिए।

४ पश्चिम के (यूरोपियन) मेहमानों के लिए खास सुविधा नहीं की गयी है। मगर जिन्हें जमीन पर बैठ कर खाना अनुकूल न आवे, उनके लिए ऊँची बैठक की सुविधा कर देने का प्रयत्न किया जाता है और उनके लिए यूरोपियन ढब के पायखाने की सुविधा हमेशे कर दी जाती है।

शाखा

आश्रम की एक ही शाखा है और वह वर्धा में श्री विनोबा के अधीन है। वहां लगभग ऊपर के ही नियम पाले जाते हैं। किन्तु उसकी व्यवस्था और खर्च मूल आश्रम से स्वतंत्र हैं।

वार्षिक खर्च

साबरमती आश्रम का औसत मासिक खर्च ३,०००) रु. आहै और वह मित्र वर्ग की ओर से मिलता है।

आश्रम की मिल्कियत

जमीन १३२ एकड २८ गुंठा कीमत रु. २६,९७२-५-६
मकान रु. २,९५,१२१-१५-६

यह संपत्ति निम्नलिखित ट्रस्टियों के नाम पर है:

१. श्री जमनालाल बजाज
२. ,, रेवाशंकर जगजीवन झवेरी
३. ,, महादेव हरिभाई देसाई
४. ,, इमाम साहेब अब्दुल बावजीर
५. ,, छगनलाल खुशालचन्द गांधी

आश्रम में हाल में इतने आदमी हैं:

पुरुष	स्त्री	बालक
५५ आश्रम में काम करनेवाले	४९ आश्रम की बहिनें	३५ कुमार
४३ चर्खा-संघ के विद्यार्थी तथा शिक्षक	१० मजदूर	३६ बालाएँ
५ बुनकर	६ बुनकर	७ छोटे बच्चे
३० खेती का काम करनेवाले मजदूर		
१३३	६६	७८

कुल २७७ आदमी

दिनचर्या

समय	
४ बजे सबेरे	उठने का घंटा
४-१५ से ४-४५	सबेरे की उपासना
५ से ६	शौच, स्नान, व्यायाम, स्वाध्याय
६-१० से ६-३०	नाश्ता
६-३० से ६	स्त्रियों का वर्ग
६ से १०	उद्योग, शिक्षा सफाई
१०-४५ से ११-१५	भोजन
११-१५ से १२-०	आराम
१२ से ४-३०	उद्योग
४-३० से ५-३०	आराम, इत्यादि
५-३० से ६	भोजन
६ से ७	व्यायाम इत्यादि
७ से ७-३०	सांझ की उपासना
९ बजे रात	शयन का घंटा

विशेष कारणों से इस दिनचर्या में फेरफार हो सकेगा।

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ४४

मुद्रक–प्रकाशक मोहनलाल मगनलाल भट्ट | अहमदाबाद, आषाढ सुदी ४ संवत् १९८४ गुरुवार, २१ जून, १९२८ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय १०

कसौटी पर चढा

आश्रम की हस्ती को अभी थोडे ही महीने हुए थे कि मेरी कसौटी हुई जिसकी मुझे आशा भी न थी। भाई अमृतलाल ठक्कर का पत्र मिला: 'एक गरीब और ईमान्दार अन्त्यज कुटुम्ब है। उसकी इच्छा आपके आश्रम में जा कर रहने की है। क्या आप उसे रक्खेंगे?'

मैं भडका तो सही। मैंने इसकी आशा बिलकुल ही न रक्खी थी कि ठक्कर बापा के जैसे आदमी की सिफारिश ले कर कोई अन्त्यज कुटुम्ब इतनी जल्दी आ जायगा। साथियों को पत्र पढ सुनाया। उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। भाई अमृतलाल ठक्कर को जवाब दिया कि अगर वह कुटुम्ब आश्रम के नियम पालने को तैयार हो तो हम उन्हें रख लेंगे।

दुदाभाई, उनकी पत्नी दानी बहिन और उनकी दूध पीती बच्ची लक्ष्मी आयीं। दुदाभाई बम्बई में शिक्षक का काम करते थे। उन्हें हमने आश्रम में ले लिया।

सहायक मित्र-मंडल में खलबली मची। जिस कुँए में मकान मालिक का हिस्सा था, उससे पानी भरने में ही अडचन आने लगी। कोशवाले को हमारे पानी के छींटे से ही छूत लगने लगी। उसने गाली शुरू कर के, दुदाभाई को सताना शुरू किया। मैंने सबको गाली सहन करने और दृढतापूर्वक पानी भरने को कह दिया। हमें गाली सुनते देख कर कोशवाला शरमाया और उसने गाली देना छोड दी। किन्तु धन की मदद तो बंद हुई। जिन भाइयों ने अंत्यज-प्रवेश के बारे में प्रश्न किया था, उन्हें तो अंत्यज के दाखिल होने की आशा ही न थी। धन की मदद बंद हो गयी। मेरे कानो में बहिष्कार की अफवाह आने लगी। मैंने साथियों के साथ विचार कर के निश्चय किया, "अगर हमारा बहिष्कार हो और हमारे पासे कुछ भी मदद न हो तौभी अब हम अहमदाबाद नहीं छोडेंगें। अंत्यजों के मुहल्ले में जाकर जाकर उनके साथ रहेंगे और जो कुछ मिल सकेगा, उसीपर या मजदूरी कर के निर्वाह करेंगे।"

अंत में मगनलाल ने मुझे नोटिस दी, "अगले महीने का आश्रम खर्च चलाने के लिए रुपये नहीं हैं।" मैंने धीरज से जवाब दिया, "तो हम अछूतों के मुहल्लों में रहने जायँगे।"

मुझपर यह ऐसी पहली ही भीड न थी। हर बार अंतिम घडी में कृष्णजी ने मदद भेज दी है।

एक दिन किसी लडके ने खबर दी: "बाहर मोटर खडी है और कोई सेठ आप को बुलाते हैं।" मैं मोटर के पास गया। सेठ ने मुझसे पूछा, "मेरी इच्छा आश्रम को कुछ मदद देने की है। क्या आप उसे लीजिएगा?" मैंने जवाब दिया, "अगर आप कुछ दें तो मैं जरूर लूँगा। मुझे यह भी कबूल करना चाहिए कि अभी मैं कुछ भीड में हूँ।"

"मैं कल्ह इसी समय आऊँगा। तब क्या आप आश्रम मे ही होंगे?" मैंने हां कहा और सेठ गये। दूसरे दिन ठीक समय पर मोटर का भोंपा बजा। बालकों ने खबर दी। सेठ अंदर न आये। मेरे हाथ में १३,०००) रुपयों के नोट डाल कर चलते बने।

इस मदद की आशा मैंने कभी न रक्खी थी। मदद देने की यह रीति भी नयी ही देखी। उन्होंने आश्रम में पहले कभी पैर भी न डाला था। मुझे याद है कि उनसे मैं एक ही बार मिला था। न आश्रम में आना, न पूछना; बाहर ही बाहर रुपया दे कर चलता बनना। ऐसा मेरा पहला ही अनुभव था। इस मदद से अंत्यज वाडे में जाना रुका। लगभग एक वर्ष का खर्च मुझे मिल गया।

किन्तु जैसी बाहर खलबली मची, वैसी आश्रम में भी हुई। जो कि दक्षिण अफ्रिका में मेरे यहां अन्त्यज वगैरह आते, रहते और खाते पीते थे, मगर यह नहीं कहा जायगा कि यहां अन्त्यज कुटुम्ब का आना पत्नी को और दूसरे स्त्री मण्डल को रुचा। दानी बहिन के प्रति अरुचि नहीं तो उदासीनता को, ऐसी बातों में मेरी सूक्ष्म दृष्टि देख लेती और तेज कान सुन लेते थे। आर्थिक मदद के अभाव के डर ने मुझे जरा भी चिन्ता में नहीं डाला था। किन्तु यह अन्तर की खलबली दुःखदायी हो पडी। दानी बहिन सामान्य स्त्री थी। और दुदाभाई मामूली ही पढे लिखे थे, किन्तु उनकी समझ अच्छी थी और उनका धीरज मुझे पसंद पडा था। उन्हें किसी किसी समय क्रोध आता भी था, मगर कुल मिला कर मुझपर उनकी सहन शक्ति की अच्छी छाप पडी। सूक्ष्म अपमान को पी जाने के लिए मैं दुदाभाई को समझाता और वे दानी बहिन से सहन कराते थे।

इस कुटुंब को आश्रम में रख कर आश्रम को बहुत से पाठ मिले हैं। और आरंभ काल में ही यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाने से कि आश्रम में अस्पृश्यता को स्थान नहीं है, आश्रम का काम, इस दिशा में बहुत सरल हो पडा। यह होने पर भी, आश्रम का खर्च बढते जाने पर भी, उसका खर्च जो मुख्य करके चुस्त कहे जानेवाले हिन्दुओं की ओर से मिलता आया है, शायद यह स्पष्ट दिखलाता है कि अस्पृश्यता की जड भलीभांति हिल गयी है। इसके दूसरे सुबूत तो बहुत से हैं ही। किन्तु अंत्यज के साथ जहां खाने पीने का भी व्यवहार रक्खा जाता है, वहां भी अपने को सनातनी मानने वाले हिन्दू मदद दें तो यह कोई निर्जीव प्रमाण नहीं गिना जायगा।

इसी प्रश्न के संबंध में आश्रम में हुए दूसरे सुधार, उस में उठे नाजुक प्रश्नों का हल, कितनी अनपेक्षित असुविधाओं को स्वीकार कर लेना, वगैरह सत्य की खोज के संबंध में किये गये प्रयोग प्रस्तुत होने पर भी मुझे छोड देने पडते हैं। इसका मुझे दुःख है। किन्तु अब आगे के प्रकरणों में यह दोष रहेगा ही। महत्त्वपूर्ण घटनाएँ मुझे छोडनी पडेंगी, क्योंकि उनमें भाग लेनेवाले बहुत से पात्र अभी मौजूद हैं और उनकी अनुमति के बिना, उनके नामों तथा उनके साथ के प्रसंगों का छूट से उपयोग करना मुझे अयोग्य लगता है। सबकी सम्मति समय समय पर माँगनी अथवा उनके संबंध की बातें उनके पास भेज कर सुधरवानी अशक्य है और इस आत्मकथा की मर्यादा के बाहर की बात है। इस लिए इसके बाद की कथा जो कि मेरी दृष्टि से सत्य-शोधक के जानने लायक है, तौभी मुझे डर है कि अधूरी ही दी जाया करेगी। यह होने पर भी अगर ईश्वर पहुँचने देवे तो असहयोग के युग तक पहुँचने की मेरी इच्छा और आशा है।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

विद्यार्थियों के प्रति

गुजरात महाविद्यालय के समारंभ के अवसर पर गांधी जी ने विद्यार्थियों को जो भाषण दिया था, उसका सारांश नीचे दिया जाता है:

इस छुट्टी में तुमने विद्यापीठ के ध्येय पढे होंगे। उनपर विचार किया होगा, उनका मनन किया होगा तो कितनी वस्तुएँ तुम्हारी समक्ष में आ गयी होनी चाहिए। छुट्टी का उपयोग अगर इस तरह तुमने न किया होगा, तो जैसे तुम गये, वैसे ही आये हो।

मैंने तो महाविद्यालय में कई बार कहा है कि तुम संख्यावल की जरा भी पर्वा न करो। मैं यह कहना नहीं चाहता कि अगर संख्यावल हो तो वह हमें अप्रिय होगा। किन्तु वह न हो तो हम निराश न बन जायँ। ऐसा न मान लेवें कि अब तो सारा चला गया, हाथ में से बाजी जाती रही। हम कम हों, अथवा अधिक मगर हमारा बल तो सिद्धान्तों के स्वीकार में और मनुष्य की शक्ति के अनुसार उनके पालन में है। ऐसे विद्यार्थी कम से कम हों, तो भी हमें विद्यापीठ से जो काम लेना है, और वह काम मुक्ति है — अंतिम मुक्ति नहीं, किन्तु स्वराज रूपी मुक्ति — जिस स्वराज के लिए विद्यापीठ स्थापित हुआ है, वह जरूर होवे। हम अगर झूठे होंगे तो स्वराज मिलने से रहा। अभी हाल में जो फेरफार हुए हैं और अब तुम जिन्हें देखोगे, वे तो हम डरते डरते कर सके हैं कि वह कहीं तुम्हारी शक्ति के बाहर न हो जाय। यह कैसी दयावनी स्थिति है। इसमें न तो तुम्हारी शोभा है और न हमारी। होना तो यह चाहिए कि तुम अपने अध्यापकों और संचालकों को यह अभयदान देदो कि हम इन सिद्धान्तों के पालन में जरा भी कचाई न रक्खेंगे। यह अभयदान नहीं है। उसी की याचना करने मैं आया हूँ। सत्र के आरंभ से ही तुम अध्यापक वर्ग को निश्चिन्त करो तो काम चमक उठेगा। तुम्हारे काम में असत्य का जरा भी स्पर्श नहीं होना चाहिए। तुम विद्यापीठ को तभी शोभित कर सकोगे जब अपने ही मन को, अध्यापकों को, गुरुजनों को और भारतवर्ष को नहीं ठगोगे। अध्यापकों से हर एक बात का खुलासा माँग सकते हो। उनका धर्म है, तुम्हारी हर एक कठिनाई को सुलझाना। यह न कर के अगर तुम जैसे तैसे बैठे रहोगे तो विद्यापीठ की व्यवस्था बेसुरी चलेगी। विद्यापीठ का काम इतनी अच्छी तरह चलना चाहिए कि वह संगीत के समान लगे। तंबूरे के पीछे जो संगीत लगा हुआ है, वह स्थूल है सच्चा संगीत तो सुजीवन है, और जिसका जीवन सुजीवन है, वही सच्चा संगीत जानता है। यह जीवन-संगीत बालक भी जानता है, अगर मावाप ने उसे ठीक रास्ते चलाया हो तो। बालक के पास केवल रोने की ही वाचा है, मगर उस में भी जो शरमा होता है, वह शोभता है। विद्यार्थियों में बच्चों के ही समान माधुर्य होना चाहिए। अगर तुम सत्य का आचरण करो तो यह स्थिति लानी सहज है। विद्यार्थी अगर सत्य का आचरण करनेवाले हों तो उनके द्वारा हिन्दुस्तान का स्वराज लिया जा सकता है। यह बात विद्यापीठ के सिद्धान्त में ही है कि अहिंसा और सत्य के ही रास्ते हमें स्वराज लेना है, इस लिए इसे सिद्ध करना भी नहीं रह जाता है। जिसे इसमें शंका हो, उसके लिए यहां स्थान नहीं है। अथवा जिसे ऐसी शंका हो, उसे पहले ही अवसर पर उसका निवारण कर लेना चाहिए।

सरकारी शाला और हमारी शाला का भेद समझना चाहिए। हमारे कई एक विद्यार्थी जेल गये और दूसरे जायँगे। वे विद्यापीठ के भूषण हैं। क्या सरकारी शालाओं के विद्यार्थियों की भी मजाल है कि वे वल्लभभाई की मदद कर सकें? अथवा मदद करने बाद अपने शिक्षक को धोखा दिये बिना कौलेज में रह सकें? पीछे उन्हें चाहे जितना ज्ञान मिलता रहे, मगर वह किस काम का? सत्व हर लेने बाद ज्ञान दिया ही तो क्या हुआ? खोटे सिक्के की क्या कीमत? उसे काम में लानेवाला तो सजा का पात्र होता है। सरकारी शालाओं के विद्यार्थियों की ऐसी ही बुरी स्थिति है। हमारे यहाँ सत्त्व तो कायम है ही, और इतना ही नहीं बल्कि उसमें वृद्धि होनी है।

एक दूसरा भेद भी ध्यान में रखना चाहिए। मैं अनेक बार बतला गया हूँ कि सरकारी कौलेज में दी जानेवाली शिक्षा के साथ तुम्हारी शिक्षा का मिलान नहीं हो सकता। इस जंजाल में पडोगे तो मारे जाओगे। हम उसकी बराबरी नहीं कर सकते। वहाँ जिस तरह अँगरेजी पढायी जाती है, उस तरह हमें नहीं पढानी है। किन्तु साहित्य का सूक्ष्म ज्ञान हमें अपनी ही भाषा के द्वारा देना है। हमें करना यह है कि हमारी अपनी भाषा का विस्तार हो, वह शोभे उसमें गहरे से गहरे विचार प्रदर्शित हो सकें। हिन्दी या गुजराती, या हमारी अपनी कोई प्रान्तीय-मातृभाषा बोलते समय, हमें अँगरेजी शब्द या वाक्य जो बोलने पडते हैं, यह बहुत ही बुरी और शर्मनाक स्थिति है। जगत के दूसरे किसी देश की स्थिति ऐसी नहीं है। अँगरेजी साहित्य का जितना ज्ञान आवश्यक होगा, उतना हम लेंगे। और अब जो ज्ञान लेंगे, हम अपनी ही भाषा—यहाँ पर गुजराती—के जरिए लेंगे। विज्ञान भी अपनी ही भाषा के जरिए पढेंगे। अगर परिभाषिक शब्द नहीं बना सके तो उन्हें अँगरेजी से लेंगे, मगर उनकी व्याख्या तो अपनी ही भाषा में करेंगे। इससे हमारी भाषा जोरदार बनेगी। भाषा के जो अलंकार हमें काम में लाने होंगे, वे हमारी जीभ पर, हमारे कलम पर उतरेंगे। आज की बेहूदी दशा

...से जितनी जल्दी हम निकल सकें, उतना ही अच्छा । अँगरेजी भाषा के जरिए जो ज्ञान दिया जाता है, उससे हमें कितना सहन करना पडता है । हम धर्म से चूके हैं, और कर्म से भी चूके हैं । इसका यह एक उदाहरण है ।

दूसरा उदाहरण अर्थशास्त्र का है । वहां जो अर्थशास्त्र पढाया जाता है, वह झूठा है । तुम अगर जिज्ञासु होगे तो देखोगे कि ...ग्रेजी, अमेरिकन या फ्रेञ्च भाषाओं में जो अर्थशास्त्र सिखलाये जाते हैं वे जुदे जुदे होते हैं । मेरे पास हंगरी का एक आदमी आया था । उसकी बातों से मुझे जान पडा कि वहां का अर्थशास्त्र जुदा ही होना चाहिए । हर एक देश की स्थिति के आधार पर वहांका अर्थशास्त्र रचा जाता है । एक देश के अर्थशास्त्र को सारे जगत के लिए सच्चा मानना अयोग्य है । आज सिखलाया जानेवाला अर्थशास्त्र हिन्दुस्तान को पायमाल करता है । हमको हिन्दुस्तान के अर्थशास्त्र की खबर ही नहीं है । हमें तो वह अभी खोजना है ।

यही बात इतिहास की भी है । अध्यापकों को यह विचार करना चाहिए कि हिन्दुस्तान का इतिहास क्या हो सकता है । कोई ...आदमी हिन्दुस्तान का इतिहास लिखेगा तो जुदा ही लिखेगा, अँगरेज जुदा ही लिखेगा । हिन्दुस्तान का आदमी मूल लेख खोज कर, हिन्दुस्तान के वातावरण को देख कर जो लिखेगा, जरूर जुदा ही लिखेगा । फ्रेंच और अँगरेजों की लडाई का, किसी अँगरेज का लिखा वर्णन क्या तुम वेद-वाक्य मानोगे? लेखक अगर सच्चा लिखेगा, तौभी अपने ही दृष्टि बिन्दु से लिखेगा । वह ऐसे ही प्रसंगों का वर्णन करेगा, जिनमें अँगरेजों की जीत हुई होगी । हम भी ऐसा ही करेंगे । फ्रेंच भी यही करेंगे । हम तो हिन्दुस्तान का जुदा ही इतिहास लिखें । महाभारत का अर्थ भी अँगरेजी विद्वान् एक तरह करेंगे, हिन्दुस्तानी विद्वान् दूसरी तरह और उसे हृदयंगम कर के जो लिखेगा, वह तीसरी ही तरह करेगा । विन्सेन्ट स्मिथ की शैली सरस है और उसमें विद्वत्ता है । इस लिए उसका लिखा भले ही भला जान पडे, मगर वह ठीक नहीं है । अँगरेज विद्वान् ही बतलाते हैं कि उसमें बहुत कुछ गलत है, बहुत बातें छूट गयी हैं । विलियम विल्सन हंटर की भी यही बात है । यहां पुस्तकों में से इतिहास न सिखलाया जाय । यहां तो जिस अध्यापक ने हिन्दुस्तान का गहरा अध्ययन किया होगा, और वह हिन्दुस्तान का भक्त होगा, तो इतिहास एक तरह से सिखलायगा और अगर उसनें अँगरेजी इतिहास से अपना मगज भर लिया हो तो इससे तुम्हारा तो कोई लाभ होना नहीं है और उसका तो हुआ ही नहीं । उसे तो शनि की ही दशा लगी है ।

हमारे यहां हर एक वस्तु सरकारी शाला से उलटे ही तौर पर सिखलायी जायगी । गणितशास्त्र के उदाहरण भी हमारे शिक्षक दूसरी ही तरह बतावेंगे, हमारे शिक्षक लिवरपुल से मैंचेस्टर की दूरी का उदाहरण न देकर, यहींके वातावरण में से उदाहरणों की कल्पना करेंगे । गणितशास्त्र में से ही हम इतिहास और भूगोल भी सीखेंगे । गणितशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, भूगोल सभी कुछ हमें नये ही बनाने हैं । इसमें तुम विद्यार्थियो मदद न करो तो अध्यापक क्या करें? और अध्यापक ही जो कच्चे हों तो यह स्पष्ट है कि सिद्धान्त टूट पडेंगे ।

यहां तुम आत्मा को तेजस्वी करने आते हो । इस लिए उद्योग का यहां जो शिक्षण रक्खा है, उसमें रस लेकर काम करोगे तो उद्योग की बुद्धि न भी होगी तो जाग जायगी । किन्तु ...बन कर बैठे रहोगे तो यह नहीं हो सकता दिलचस्पी लोगे तो देख सकोगे कि इसमें शास्त्र है । चेतन रूप होकर उद्योग करोगे तो देखोगे कि इसमें बहुत रस है । यह सिद्ध कर सकोगे कि इसका भी शास्त्र है । यह निश्चय करना कि मुझे बुनकर बनना है, बढई बनना है, और हिन्दुस्तान को स्वराज दिलाना है; नौकरी नहीं करनी है, क्लर्क नहीं बनना है । मजदूरी करके खादी-सेवक बनकर आजीविका पैदा करने का निश्चय रखना ।

सत्यादि व्रतों के बारे में

आश्रम नियमावलि में जिन नियमों का पालन आवश्यक माना गया है, उनके बारे में एक आश्रमवासी ने कुछ सहायक सूत्र सुझाये हैं। वे रहस्यवाले और उन उन व्रतों के पालन में मदद देनेवाले हैं । इस लिए उनका सार नीचे देता हूँ ।

प्रत्येक व्रत के अंत में हिन्दूशास्त्र में से आधार दिये गये हैं । ये आधार नियमावलि में से जानबूझ कर छोड दिये गये हैं । क्योंकि आश्रम की मान्यता है कि ये व्रत केवल हिन्दूधर्म के इजारे नहीं हैं बल्कि सब धर्मों में समान हैं । किन्तु जो आधार यहाँ दिये हैं वे, सुंदर हैं, और इस लिए उन्हें पाठकों की जानकारी के लिए देता हूँ ।

सत्य

'मितभाषण सत्य का कवच है और इस लिए सत्य में ही उसका समावेश होता है ।' **सत्यमेव जयते नानृतम्** । सत्य की ही जय होती है, असत्य की नहीं ।

अहिंसा

'अहिंसा सभी धर्मों की मर्यादा है ।' **न पापे प्रति पापः स्यात्** । पाप का जवाब पाप से नहीं हो सकता ।

ब्रह्मचर्यव्रत

'सभी इन्द्रियों का संपूर्ण संयम इस व्रत में ग्रहीत है ।' **यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरंति** । परमात्मा को पाने की इच्छा करनेवाले ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं ।

अस्तेय

तै र्दत्तान प्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः । जो ईश्वर का दिया ईश्वर को अर्पण किये बिना भोगता है, वह चोर है।

अपरिग्रह

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः । परिग्रह का त्याग कर के विचरण करना ।

अभय व्रत

'भीति और नीति परस्पर विरोधी कल्पनाएँ हैं ।' **अभयं सर्व भूतेभ्यः** । जो सबको अभय-दान देगा, वही निर्भय बन सकता है ।

अस्वाद

आहार का स्वाद-पूर्वक सेवन करना हिंसा है । **आहार-शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिर्लम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः** । आहार-शुद्धि से अंतःकरण शुद्ध होता है और अंतः-करण के शुद्ध होने से आत्म स्मरण दृढ होता है तथा स्मरण-प्राप्ति से सभी बन्धनों या ग्रन्थियों का नाश होता है ।

स्वदेशी

अहिंसा जिस प्रकार धर्म की मर्यादा है, उसी प्रकार स्वदेशी व्यवहार की मर्यादा है । **स्वधर्मे निधनं श्रेयः** । स्वधर्म में मृत्यु भी श्रेयस्कर है ।

शारीरिक श्रम

शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषम् । केवल शारीरिक काम निष्काम भाव से करने से पाप नहीं होता है ।

अस्पृश्यता-निवारण

नमः पूर्वजाय च अपरजाय च । ऊँच नीच सबको नमस्कार ।

सहिष्णुता

सहनं सर्वधर्मानां तितिक्षा सा शुभा मता । सभी धर्मों को सहन करने में ही तितिक्षा है ।

मो० क० गांधी

(नवजीवन)

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ सुदी ४ संवत् १९८४

बारडोली और गवर्नर

बारडोली के मुआमले में सरकार अपना बचाव जितना ही करना चाहती है, वह उतनी ही अधिक फँसती जाती है। श्रीयुत मुंशी के नाम गवर्नर के लंबे पत्र तो इस गुत्थी को और भी उलझाते जाते हैं और श्रीयुत मुंशी के समान विधान-प्रिय सज्जन के सामने भी, जैसा होने का उनका दावा है, स्थिति कुछ विशेष सुधरती नहीं दीख पडती है।

गवर्नर का पत्र तो प्रस्तुत प्रश्न से साफ़ कतरा कर निकल जाना चाहता है। गवर्नर साहेब कहते हैं कि "एक और जाँच फिर की जा चुकी है और सरकार का एक भी एक्जिक्यूटिव काउंसिलर ऐसा नहीं है जो सरकारी कार्रवाई की वाजबियत के बारे में, बल्कि जिसे दर असल मुझे उदारता कहनी चाहिए, पूरा संतुष्ट न हो।"

इसीको चक्रक तर्क कहते हैं। अगर इसी तरह की जाँच करनी है तो सरकार चाहे पचासों जाँचें कर लेवे, मगर उससे स्थिति जरा भी सुधरनी नहीं है। बल्कि उलटे इन जाँचों से यही बात सिद्ध होगी कि जब जब बारडोलीवाले रोटी मँागें, सरकार उन्हें पत्थर मारने पर तुली हुई है। वे कोई गुपचुप की ऐसी जाँच नहीं चाहते, जिसमें न तो उनके कोई ऐसे प्रतिनिधि हों, जिनका जाँच समिति पर लाभकारक प्रभाव पड सके, और जो न खुली और स्वतंत्र ही हो। उनका दावा है कि सरकार जिसे न्याय्य, बल्कि उदार तक कहती है, वही लोगों की समझ में अन्याय्य और जुल्मी है। उनका दावा है, और इस पत्र में भी दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि मि० जयकर और ऐंडर्सन कि रिपोर्टें निकम्मी, गलतबयानों से भरी, और हिसाब जोडने की भूलों से भी भरी पडी हैं। वे किसी खुली, निष्पक्ष और स्वतंत्र जाँच-समिति के आगे अपने इल्जाम साबत करने का दम रखते हैं।

सरकार बडे गर्व से, और बार बार वही बात कह कर कान पका रही है कि "हमने न तो मि. जयकर की फी सदी ३० की और न मि. ऐंडर्सन की फी सदी २९ की (सचमुच बहुत बडी उदारता है!) ही सलाह मानी है, मगर उसे घटा कर सैकडे २० रक्खा है।" और अब गवर्नर साहेब यह भी फरमाते हैं कि इतनी बढती न सिर्फ न्याय्य ही है, बल्कि उदार भी है! मगर प्रजा तो उदारता की भीख नहीं माँगती। वह तो सीधा सादा इन्साफ माँगती है और दावा करती है कि फी सदी २० की भी बढती, वहांकी हकीकत को देखते हुए, वहांके किसानों की स्थिति को देखते हुए न होनी चाहिए थी। दूसरी ओर गवर्नर साहेब फिर भी इसीपर जोर लगाये चले जा रहे हैं कि अगर कोई जाँच-समिति बैठायी जाती तो लगान में इससे अधिक बढती होती। अगर सरकार सच्चे दिल से यही विश्वास करती है तो फिर वह प्रजा की जाँच-समिति बैठाने की, जिसके फैसले को लोग मानने को तैयार हैं, अत्यन्त वाजिब प्रार्थना को क्यों नहीं मान लेती।

जब लोग सरकारी अफसरों की रिपोर्टों को ही गलत कहते हैं, तब तो यह घोर अन्याय है, अपमान-जनक है कि सरकार उनके सामने दूसरे अफसरों की रिपोर्टें ला फेंकती है, जो अफसर भी अपने निर्णय महज कागजों पर से, और जो प्रायः रँगे हुए और ऊपरी ऊपरी बातें बतलाते हैं, करते हैं। गवर्नर साहेब अगर सचमुच में न्याय करना चाहते हैं जैसा कि वे कहते हैं तो वे बारडोली के जिन लोगों के लिए अपने पत्र में सहानुभूति और चिन्ता का इजहार करते हैं, उन लोगों के कष्टों से सील-मुहर की हुई, और पावन बनायी इस सम्मान-जनक माँग को स्वीकार कर लेवें।

मगर गवर्नर साहेब यह घोषित करते हैं कि उनकी सहानुभूति की धारा, 'बाहरी लोगों' के बीचमें आ पडने से, जिन्हें गालियां दे देकर गुजरात के कमिशनर ने प्रसिद्ध कर दिया है, पूरी पूरी बहने नहीं पाती है! अगर किसानों के रास्ते में वे ही खडे हैं, नहीं तो, जैसा कि गवर्नर साहेब बखूबी जानते हैं 'दूसरे किसानों के समान, अगर उन्हें भरने दिया जाय तो वे भी अपना कर भर देंगे' तब इन बाहर से अनधिकार प्रवेश करनेवालों को एक ही बार वहां से सरकार वहां से हटा क्यों नहीं देती? अबतक तो सरकार के पथ में जिसने सिर ऊँचा किया, उसे गायब कर देने का उपाय सरकार को मिल जाता था! तब फिर वह (गुजरात के कमिश्नर की सुंदर भाषा में) 'खेडा के इन आन्दोलकों के गिरोह को जो गरीब बारडोलीवालों पर ही जीते हैं अछूता क्यों छोडती है और निर्दोष किसानों को एक साथ ही इन आन्दोलकों और पठानों या उनके बदले बुलायी गयी पुलिस का शिकार होने से क्यों नहीं बचा लेती है?

बारडोली में कर वृद्धि का औचित्य सरकार यह कह कर साबित करना चाहती है कि ऐसी ही बढती का विरोध चौरासी ताल्लुकेवालों ने तो नहीं किया है। मैं चौरासी के बारे में कुछ भी नहीं जानता। मगर यह मैं जानता हूँ कि हिन्दुस्तानियों ने और बहुत से अन्याय सहे हैं और हिन्दुओं ने अपने लिए 'नम्र हिन्दू' का बुरा खिताब पाया है। संभव है कि चौरासीवाले इतने निर्बल हों कि सरकार का विरोध नहीं कर सकते जब कि पिछले छै साल के लाभकारक प्रभाव में रह कर बारडोलीवालों ने इतनी ताकत और इच्छा पैदा कर ली है कि वे ऐसी सरकार का विरोध करने के कष्टों को सह सकें, जो कि अपने अविवेक और आतंकप्रियता के लिए बदनाम हो गयी है।

शेर का नंगा पंजा अब देखिए। गवर्नर साहेब फरमाते हैं:

"शासन करने के अपने निर्विवाद हक को सरकार क्यों छोड कर जैसा कि आप सलाह देते हैं किसी स्वतंत्र समिति को दे देवे? मैं तो हर संभव उपाय से इस स्थिति को सुधारने के लिए उत्सुक हूँ, मगर जो सरकार ऐसी बातें होने देवे, वह सरकार ही किस नाम की?"

'शासन करने का निर्विवाद हक' है हिन्दुस्तान का खून बेरोक टोक निचोड कर उसे मार डालना। अगर सरकारी अफसरों और प्रजा का झगडा फैसल करने को कोई स्वतन्त्र समिति आवे तो इस स्वच्छन्दता पर कुछ अंकुश लगेगा। यहां खयाल रहे कि स्वतंत्र समिति के मानी गैर सरकारी समिति नहीं है। इसके मानी हैं कि सरकार ऐसे लोगों की एक समिति बनावे जिनपर सरकारी अफसरों का दबाव न पड सकने की बात प्रकट हो, और उसे खुले आम जाँच करने, तथा प्रजा की भी काफी सुनवाई को नियमानुसार करने का अधिकार देवे। मगर ऐसी खुली जाँच के मानी होंगे सरकार की छिपी, और स्वच्छन्द लगान-नीति के 'रामनाम सत्य' बोल जाना। लोगों की इस नम्र माँग में 'सरकार के कामों को 'जरा भी हथियाना कहाँ है?' मगर सरकार के अफसरों की स्वच्छन्दता पर जरा भी लगाम लगाने से सरकार का पारा बहुत ऊँचा चढ जाता है। और जब ब्रिटिश सिंह, भारत में क्रुद्ध हो उठे तब, 'नम्र हिन्दुओं' का रक्षक तो राम ही है। मगर हां, 'सुनेरी मैंने निर्बल के बल राम' और वह ॥ 'सब

हारे के हरि नाम' बारडोली वालों को परमात्मा ने आपही कष्ट सहने का 'गाण्डीव' दिया है ।। उसके प्रभाव से लोग युग युग का आलस्य छोड कर उठ रहे हैं। बारडोली के किसान हिंदुस्तान को दिखला रहे हैं कि वे निर्बल भले ही हों, मगर अपने विश्वासों के लिए कष्ट सहन करने का साहस रखते हैं ।

अब इतने दिनों बाद तो सत्याग्रह को अवैध कहने का मौका ही नहीं रहा। यह तो तभी अवैध होगा, जब सत्य और उसका साथी तपश्चर्या, अवैध बन जायँगे। लॉर्ड हार्डिंज ने दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह को आशीर्वाद दिया था और उसके आगे सर्वशक्तिमान् यूनियन सरकार को भी झुकना ही पडा था। उस समय के वायसराय लॉर्ड चेम्सफोर्ड तथा बिहार के गवर्नर सर एडवर्ड गेट ने इसकी वैधता और प्रभाव-कारिता मानी थी और चंपारण की रैयतों की शिकायतों की जाँच के लिए एक स्वतंत्र समिति बैठायी गयी थी, जिसके फल-स्वरूप सरकार की प्रतिष्ठा बढी और सौ वर्ष का पुराना अन्याय दूर हुआ। फिर यह खेडा में भी स्वीकार किया गया और चाहे आधे मन से ही और जितना अधूरा क्यों न हो, मगर सरकारी अफसरों और आन्दोलन तथा प्रजा के नेताओं के बीच समझौता हुआ ही था। मध्यप्रान्त के तात्कालिक गवर्नर ने नागपुर झण्डा सत्याग्रहियों से समझौता करना ही ठीक समझा, कैदियों को छोड दिया और सत्याग्रहियों के हक को स्वीकार कर लिया गया। आखिर, और तो और बंबई के इन्हीं गवर्नर सर लेस्ली विल्सन ने भी, शुरु शुरू में जब तक कि वे 'संसार के सबसे अधिक योग्य अफसरों' के संसर्ग से अछूते थे, बोरसद सत्याग्रह में बोरसदवालों को राहत दी थी।

मैं चाहता हूँ कि गवर्नर साहेब और श्रीयुत मुंशी, दोनों ही पिछले चौदह वर्षों की इन घटनाओं की गांठ बांध लेवें। अब अचानक आज बारडोली के सत्याग्रह को अवैध घोषित नहीं किया जा सकता है। हकीकत तो यह है कि सरकार के पास कोई दलील नहीं है। वह अपनी लगान-नीति का विरोध खुली जाँच में होना नहीं चाहती। अगर बारडोलीवाले अखीरी आंच को सह गये तो या तो खुली जाँच वे करायेंगे ही या इजाफा लगान मंसूख हो जायगा। अपनी शिकायत के लिए निष्पक्ष अदालत के सामने सुनवायी का दावा तो उनका निर्विवाद हक है।

(यं. इ.)

मोहनदास करमचंद गांधी

शिक्षा-विषयक प्रश्न

२

प्र० सचमुच में देखते हुए तो आज के शिक्षकों का काम नौकर और पहरेदार के समान है। उनका तो काम है विद्यार्थियों तक शिक्षाशास्त्रियों के लिखे ग्रन्थों को पहुँचाना और फिर यह देखना कि विद्यार्थी उनका उपयोग ठीक ठीक करते हैं या नहीं। इसके उपरान्त भी आप क्या शिक्षक से कुछ आशा रखते हैं?

अब तक तो इसी व्याख्या तक शिक्षाशास्त्र का विकास किया गया है कि जो कठिन वाक्यों का अर्थ समझा सके, और लंबे प्रकरणों का सार बतला सके, वही शिक्षक है। इस आदर्श को हम अब क्यों न स्वीकार करें?

उ० पाठ्य-पुस्तकें चाहे जितनी सरस क्यों न बना दी जायँ, मगर तौभी सच्चे शिक्षक की जरूरत तो लगा ही करती है। सच्चा शिक्षक केवल सार बतला कर या कठिन वाक्यों का अर्थ बतला कर, कभी संतोष नहीं मानेगा। वह तो समय समय पर पाठ्य-पुस्तकों से बाहर जाकर, अपने सिखलाने का विषय विद्यार्थी के आगे चित्रकार के समान जीवंतरूप में खडा कर सकेगा। अच्छी से अच्छी पुस्तक का मिलान अच्छे से अच्छे फोटोग्राफ से किया जा सकता है, मगर कुछ उतरती हुई कला का होने पर भी जिस तरह चित्रकार के कलम का निकला चित्र फोटोग्राफ से बढ जायगा, उससे कुछ विशेष होगा, उसी तरह सच्चे शिक्षक के बारे में जानना चाहिए। सच्चा शिक्षक अपने विषय में विद्यार्थी को प्रवेश कराता है। उसमें रस पैदा कराता है, और विद्यार्थी को वह विषय स्वतंत्र रूप से समझने लायक बनाता है। मेरी दृष्टि से तो कठिन वाक्यों का अर्थ करनेवाले को और सार बतलानेवाले को शिक्षक मानने की प्रथा आदर्श कही हो नहीं जा सकती। हमारा प्रयत्न तो परोपकार की दृष्टि रख कर ऐसे सच्चे शिक्षक तैयार करने के होने चाहिए। आज भी हालत यह नहीं है कि ऐसे शिक्षक जहां तहां देखने में न आवें।

प्र० भरुच शिक्षा-परिषद के अवसर पर अपने कहा था कि प्राथमिक शिक्षा मुफ्त भले ही हो किन्तु आवश्यक नहीं होनी चाहिए। अच्छी वस्तु भी दबायी हुई प्रजा पर अनिवार्य रूप में न होनी चाहिए। आज देश की शिक्षा की व्यवस्था आपके हाथ में आवे तो अपनी वह शिक्षा जिसमें खादी और दूसरे राष्ट्रीय उद्योगों को प्रधान स्थान होगा, आप आवश्यक करेंगे वा नहीं?

उ० मैंने जैसी शिक्षा की कल्पना की है वह शिक्षा भी अनिवार्य देने की हिम्मत मैं अब भी अपने में नहीं देखता। मैं मानता हूँ कि हमारे देश में अभी बहुत दिनों तक इसकी जरूरत नहीं है। क्योंकि प्राथमिक शिक्षा आवश्यक हो तो उसे ऐसा करने से पहले अभी बहुत से काम करने बाकी हैं। मेरी मान्यता तो यह है कि इस देश को रुचने लायक प्रजा की पोषिका शिक्षा देने का साधन प्रजा के आगे हम रक्खें तो प्रजा उसे बिना प्रयास ही खुशी से स्वीकार कर लेगी।

प्र० आप क्या मानते हैं कि शिक्षकों को धार्मिक शिक्षा, अपनी दृष्टि के अनुसार जैसी पसंद पडे, देने का हक है?

उ० एक तंत्र में रहनेवाले शिक्षकों को खास अपनी २ दृष्टि के अनुसार धार्मिक शिक्षा देने का हक हो ही नहीं सकता।

जैसे दूसरे विषयों की, वैसे ही धार्मिक शिक्षा की जो रूप-रेखा संचालकों ने बनायी हो, उसीको आधार मान कर धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है। इस रूप-रेखा के अनुसार धार्मिक शिक्षा देने का ढब प्रत्येक शिक्षक का अपना ही होगा, किन्तु धर्म के विषय में संचालकों ने जो आदर्श बनाया होगा, शिक्षा उसीके अनुसार दी जा सकती है। इतना सच है कि जिस तरह अमुक विषयों की शिक्षा अमुक अमुक पुस्तकों का पढनेवाला दे सकता है, उस तरह धार्मिक शिक्षा पुस्तक के द्वारा दी ही नहीं जाती। यह शिक्षा देने की रीति और दूसरी शिक्षाओं से भिन्न है। जब कि दूसरी शिक्षा बुद्धि के द्वारा दी जाती है, तब धार्मिक शिक्षा केवल हृदय के द्वारा ही दी जा सकती है। इस लिए जहाँ तक शिक्षक धर्ममय न हो, तब तक वह धर्म की शिक्षा न देवे। किन्तु यों धार्मिक शिक्षा देने का वाहन जुदा है, तौभी वह शिक्षा देने के बारे में अमुक समझ होने की आवश्यकता है ही। जैसे कि जहाँपर अहिंसा को परम धर्म माना हो वहाँ पर हिंसा का उत्तेजन देनेवाली शिक्षा नहीं दी जा सकती। अथवा जहाँ सभी धर्मों के प्रति प्रेम, उदारता, सहिष्णुता रखने का आदर्श स्वीकार किया गया हो, वहाँ धर्मों के विरोध की शिक्षा नहीं दी जा सकती। थोडे में, जहाँ धार्मिक शिक्षा देने की आवश्यकता स्वीकार की गयी है, वहाँ उसके बारे में अराजकता को स्थान न होना चाहिए।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

लुटेरे पत्रकार

कितने समाचार पत्र के संपादक और मालिक लुटेरों का ही व्यवसाय करते हुए जान पडते हैं। चाहे कोई न कोई बहाना ढूँढ कर, निर्दोष आदमियों की झूठी आलोचना कर, उन्हें धमकी देकर उनका पैसा लूटने का वे धंधा करते हैं। कितने एक तो रुपये लेकर काले को उजला साबित करने का बीडा उठाते हैं और इस तरह भोली जनता को भ्रम में डालते हैं। ऐसा एक उदाहरण कलकत्ते से एक मित्र ने मेरे सामने भेजा है। वहां का एक समाचार पत्र गोविन्द भवन के बारे में प्रकाशित अनीति का लाभ लेकर, बहुत से कुटुंबों की निन्दा कर रहा है और मारवाडी जाति के सादे आदमियों को दुःख पहुँचा रहा है। कितनी एक ऐसी अश्लील बातें खोज कर, जो कभी हुई ही नहीं थी, बहुत से कुटुम्बों के साथ जोड देता है। यह गंदा अखबार भेजनेवाले मित्र का अनुरोध है कि मैं ऐसे अखबारों पर कुछ लिखूँ, जिसमें वे अपना सुधार करें। अपने लेखों से मैं यह आशा तो रखता नहीं, इस लिए यह लेख उनके प्रति नहीं है, किन्तु जिन कुटुंबों की झूठी निंदा करके लूटने का धंधा ऐसे अखबार करते हैं, उनके प्रति है।

अँगरेजी में कहावत है कि, 'जहां भोले आदमी रहते हैं, वहां लुच्चे लूट खाते हैं।' यह कहावत अनुभव के आधार पर बनायी गयी है। जिनकी लाख निंदा करने पर भी जो घबराते नहीं, अंत में थक कर निंदक उनकी निंदा करनी बंद कर देता है। हम में झूठी शर्म, झूठी लोक लज्जा ने बहुत घर कर लिया है। इस लिए जो चाहे, वही हमें डरा और लूट सकता है। अगर कोई हमारी झूठी निंदा करता है, या हमपर झूठा इल्जाम लगाता है तो हम इस तरह डर जाते हैं कि मानों उस निंदा और इल्जाम के पात्र हमीं हों। जब कि योग्य व्यवहार तो यह है कि चाहे जितनी टीका होती रहे, मगर जब तक वह सच्ची न हो, हम बिलकुल न दबें और ऐसी टीका के लिए बेफिक्र रहें।

(नवजीवन) मो॰ क॰ गांधी

स्वर्गीय गोपबंधु बाबू

अभी मुझे नीलकंठ बाबू का एक तार मिला है, कि पंडित गोपबंधु दास का देहान्त हो गया। दुःख और विपत्ति के मारे उडिस्सा के वे सर्वश्रेष्ठ पुत्रों में से एक थे। गोपबंधु बाबू ने उडिस्सा को अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया था। सन् १९१६ में जब अकाल पीडितों को सहायता पहुँचाने के लिए श्रीयुत अमृतलाल ठक्कर उडिस्सा भेजे गये थे, तब मैंने गोपबंधु बाबू के बारे में, और उनके निष्कलंक चारित्र, तथा दृढता के बारे में सुना था। श्रीयुत ठक्कर मेरे पास लिखा करते थे कि किस भांति असहायों को सहायता करने के लिए गोपबंधु बाबू कष्टों, और रोगों से लडा करते थे। असहयोग के जमाने में उन्होंने अपनी वकालत और काउंसिल की मेम्बरी छोड दी और फिर कभी वे डिगे नहीं। मगर उनके लिए जो इससे भी बडा त्याग था, यानी उन्होंने अपनी प्रियतम कृति सत्यवादी स्कूल को भी खतरे में डाल दिया। उन्होंने अपने कुछ निकटतम मित्रों के ताने सुने और जिसे वे उनकी मूर्खता समझते थे, उसीके पीछे लगे रहे। उसीके पीछे लगे रहने के लिए उनकी कीर्ति हमेशे बनी रहेगी। उनके जीवन की एक मात्र अभिलाषा थी, टुकडे टुकडे हुए उत्कल को ऐक्यसूत्र में बँधा हुआ और सुखी देखना। पीछे से वे लाला लाजपतराय की समिति में शामिल हो गये थे। और वे गरीबी तथा बाढ के पीडित उत्कल को आर्थिक सहायता पहुँचाने के लिए खादी को उपयोगी साधन बनाने की योजना बना रहे थे। पंडित गोपबंधु दास के अवसान से देश गरीब हो गया है। गोकि वे सशरीर हम लोगों के बीच आज नहीं हैं मगर उनकी आत्मा तो है ही। तब वही पुण्यात्मा राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं का पथ प्रदर्शक बने, उनकी मृत्यु के फल-स्वरूप राष्ट्रीय जरूरत के लिए जो अत्यंत ही थोडे से हैं, वे तितर बितर हुए कार्यकर्त्ता सेवा के लिए और अधिक जोर लगावें, और अधिक आत्म-विलोपन करें, और उनमें और अधिक एकता होवे। मैं इस स्वर्गीय देशभक्त के रिश्तेदारों तथा शिष्यों से समवेदना प्रकट करता हूँ।

अ॰ भा॰ चर्खा संघ के सभ्य

अ॰ भा॰ चर्खा संघ के शिक्षण विभाग के व्यवस्थापक निम्न लिखित आंकडे भेजते हैं:

३१ वीं मई १९२८ और १९२७ को अ॰ भा॰ चर्खा संघ के सदस्यों के आंकडे.

प्रान्त	'अ वर्ग		'ब' वर्ग		'क' वर्ग
	१९२८	'२८	१९२८	'२७	१९२८
अजमेर	१४	१०	१	०	१
आंध्र	१६१	२७२	२८	३६	१३
आसाम	६	१	०	१	०
विहार	१६७	९५	३८	११	१८
वंगाल	१६५	३२२	४३	५७	६
वर्मा	९	११	०	१	०
वंबई	५१	६२	७	१	२
मध्यप्रांत	१४	३२	१	२६	०
दिल्ही	१३	२९	०	०	०
गुजरात	२५६	३६५	१३	३०	८६
कर्णाटक	६३	९५	९	४	४
केरल	१७	२२	१	२	१
महाराष्ट्र	१४७	२००	२४	३९	५३
पंजाब	३८	५४	८	१	०
सिंध	१७	२९	३	३	०
तामिलनाड	७५	२११	५	५	२
युक्तप्रांत	५४	७३	५	७	१
उत्कल	९	३५	३	३	०
	१२७६	१९१८	१८९	२२७	१८७

इन आंकडों को ध्यान से देखने पर बहुत सी बातें मालूम होती हैं। जब कि खादी का व्यावसायिक विभाग धीरे ही धीरे सही, मगर निश्चित रूप से खादी की जात, मिकदार और कीमत में दिनों दिन उन्नति करता जा रहा है, विहार और अजमेर को छोड कर सर्व्वत्र यज्ञार्थ सूत का कातना घटता ही जो रहा है। इससे तो यह दिखायी पडता है कि या तो हमें यह पक्का विश्वास ही नहीं है कि हाथ कताई में हमारे करोडों लोगों का दुख दारिद्य दूर करने और मध्यम वर्ग के लोगों का सामान्य जनता साथ के लाभकारक संबंध जोडने की शक्ति है या मध्यम श्रेणी के लोगों में यह विश्वास है मगर वे इतने काहिल या लापर्वा हैं कि उनसे मांगा गया यह छोटा सा, मगर बराबर चालू त्याग वे कर ही नहीं सकते। ताज्जुब तो यह है कि राष्ट्रीय संस्थाएँ भी जैसे कि गुजरात की, स्वेच्छा से कातने वालों की पूरी संख्या नहीं पैदा करतीं और खादी-सेवा के भी कार्य कर्त्ताओं का मन बिना मजदूरी के कातने में नहीं लगता। तब भला आश्चर्य ही क्या है अगर राष्ट्र की जरूरत के मुताबिक खादी उन्नति नहीं कर रही है? खादी-कार्यकर्त्ता और खादी-प्रेमी सज्जन यह बात गांठ बांध लेवें।

(यं॰ इं॰) मो॰ क॰ गांधी

नयी शिक्षा का स्वरूप

यह बहुत ही शुभ लक्षण है कि ऐसा लगते ही कि महाविद्यालय (विनय मंदिर (उच्च शाला) के पाठ्यक्रम में उद्योग को भी स्थान सचमुच में मिलनेवाला है, जहां तहां इसकी चर्चा शुरू हुयी। कितने भाई ऐसा मानते हैं कि उद्योग को समय देने से अक्षर-ज्ञान या साहित्यिक ज्ञान बहुत कम होगा और इससे विद्यार्थियों की योग्यता और ज्ञान की कक्षा बहुत उतर जायगी। यह वस्तु तो निर्विवाद है कि अगर शिक्षा में रोज साढे पाँच घंटे खर्च करने हों और उसमें भी आधा समय उद्योग में लगाया जाय तो वर्ग में कम किताबें पढी जायँगी और बातें भी कम की जायँगी। किन्तु यह मानना तो भूल है कि इससे बौद्धिक विकास भी घट कर आधा हो जायगा। हमारा विश्वास है कि सब मिला कर बौद्धिक विकास में जरा भी कमी नहीं होनेवाली है। किसीको अगर दो घंटे के बदले एक ही घंटे व्याख्यान देने को कहा हो तो यह मानना भूल है कि वह इससे आधे ही विषय का प्रतिपादन करेगा या श्रोताओं को आधी ही बातें बतायगा। बहुत करके तो वह अपना आशय एक ही घंटे में कह सकेगा। और श्रोता अगर ध्यान और उत्साहपूर्वक सुनेंगे तो भाषण के विस्तार से कहीं अधिक फलद इसी रीति से दिया हुआ भाषण होगा। उसमें फिर अक्षर-ज्ञान के साथ औद्योगिक कला हो तो बहुतों का अनुभव है कि एक की थकावट दूसरे से उतर कर बुद्धि-अधिक प्रसन्न रहती है।

देश के गरीबों के हित के लिए खास शिक्षा देनेवाली संस्था में लंबी लंबी छुट्टियां नहीं हो सकतीं। यह सोच कर छुट्टियां भी बहुत कम कर दी गयी हैं। इस तरह पढने के समय में बढती होने से शिक्षा के बारे में चिन्ता रखने का कोई कारण नहीं रह जाता।

साहित्य और उद्योग दोनों को बराबर चलाना हो तो यह आवश्यक है कि सभी विद्यार्थी संस्था में रहें और शिक्षा के वर्ग सबेरे और सांझ दोनों समय चलें। अभी तो जब तक अधिकांश मुश्किल है। इसलिए ११ बजे दिन से ५ बजे संध्या तक जितना काम किया जा सके, उसीपर सन्तोष करना रहा। देश-सेवा के लिए विशिष्ट अभ्यासक्रम में विद्यार्थियों को तैयार करना हो तो अध्यापकों के पास से मिलनेवाली शिक्षा के ही बराबर यह भी महत्त्व पूर्ण है कि विद्यार्थी साथ रहें, एक दूसरे से परिचय करें, और अपना अपना क्षेत्र पसन्द कर के, उन उन क्षेत्रों में काम करने की अपनी योजनाएँ बना लेवें। और अगर कार्लाइल का यह वाक्य सच हो कि 'पुस्तकालय ही विद्यापीठ का मुख्य भाग है' तो यह स्पष्ट है कि संस्था के स्थान पर ही रहनेवाले विद्यापीठ का पूरा पूरा लाभ उठा सकेंगे। शहर के माबापों को तो यही समझ कर लडकों को छात्रालय में भेजने का उत्साह होना चाहिए कि वे आठ दिनों पर माबाप से आ कर सहज ही मिल सकेंगे। लडकों के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए घर से कुछ विशाल, व्यापक और स्वतंत्रतावाले वातावरण की जरूरत है और उसके साथ घर के संस्कार भी बिलकुल टूट नहीं जाने चाहिए। अहमदाबाद के माबाप जब चाहें, ऐसी सुन्दर व्यवस्था कर सकते हैं।

गांवों में राष्ट्र-पोषक शिक्षा का प्रचार करने, ग्रामवासियों की जरूरतों को प्रधानपद दे कर विचार करने, और गांवों के द्वारा ही भारतवर्ष के उत्कर्ष का प्रयत्न करने के विद्यापीठ के आदर्शों को सिद्ध करने के लिए अहमदाबाद के बाहर के और खास कर गांवों के साथ संबन्ध रखनेवाले विद्यार्थियों का अधिक संख्या में होना आवश्यक है।

इन सभी वस्तुओं का विचार करके विद्यार्थियों को छात्रालय में रहने के लिये जितना हो सके, उतना उत्तेजन देने का हमारा विचार है। इस लिए विनयमंदिर में पढनेवाले विद्यार्थियों से जो छात्रालय में रहेंगे, पढने की फीस नहीं, मकान का भाडा नहीं, और केवल भोजन खर्च में एक सत्र के ६०) रु. यानी साल में कुल १२०) रु. लेने की व्यवस्था हाल में की गयी है।

उद्योग में हाल में बढईगीरी और बुनाई ही दो विषय रक्खे गये हैं। इस अनुभव से यह ठीक किया है कि जब तक इन विषयों का वातावरण नहीं जमता, तब तक दूसरे विषयों का खयाल करना ठीक नहीं है। राष्ट्रीय महत्त्व की दृष्टि से इस धंधे को ही प्रधानपद देने की आवश्यकता है। इतना ही खयाल रखना जरूरी है कि दूसरे धंधे इनके मारक न होवें। लुहार काम, खेती दुधालय, चर्मालय, रंगकाम वगैरह धंधे पीछे से चाहे जब यथाक्रम जोडे जा सकेंगे।

ऐसी इच्छा नहीं है कि उद्योग लेनेवाले विद्यार्थी अकेले बढई या बुनकर बनें। बहुत लोग ऐसी दलील करते हैं कि आज देश में बढई और बुनकर कहाँ कम हैं। मगर हम तो पढे लिखों की अपंग दशा को दूर करना चाहते हैं। हम मानते हैं कि जब बढई, और बुनकरों में संस्कारिता आवेगी और बुद्धिजीवी लोग हाथ पैरों से काम लेना सीखेंगे, तभी समाज में तेज आवेगा। विद्यार्थियों को बढईगीरी और कपडा बुनने का इतना ज्ञान तो होना ही चाहिए कि वे स्वतंत्र रूप से ये धंधे कर सकें। किन्तु अपेक्षा ऐसी है कि वे इस ज्ञान का उपयोग समाज-सेवा के लिए करेंगे। आज पढे लिखों का नौकर-वर्ग परावलंबन के कारण निस्तेज बन बैठा है। और मजदूर तथा कारीगर वर्ग ज्ञान के अभाव से देश हित की ओर से मुँह मोड बैठा है। इसीमें से रास्ता निकालना है।

हिन्दुस्तान की परिस्थिति के लिए बौद्धिक शिक्षा में कम से कम अमुक भाषाओं का ज्ञान तो होना ही चाहिए। लोगों के बीच जाकर काम करना है, इस लिए गुजरातियों को तो गुजराती पर पूरा काबू होना ही चाहिए। दूसरे प्रान्तों में भी हमारा काम केवल विद्वान कहलानेवाले लोगों से ही नहीं है, किन्तु सर्व-साधारण से है। इसलिए हिन्दुस्तानी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। हमारा राष्ट्रीय वारसा संस्कृत, मागधी, पाली इत्यादि आर्य भाषाओं में है। इसलिए बहुत से विद्यार्थियों को इन भाषाओं का भी पूरा परिचय होना चाहिए। और आज के समाज में अँगरेजी का महत्त्व तो समझाने की जरूरत भी नहीं है।

विद्या का विस्तार, राष्ट्र-संगठन और स्वराज की तैयारी के प्रयत्न सभी प्रान्तों की भाषाएँ भी हम सीख लेवें तो यह लाभदायक होगा। केवल इसी लिए यहां गुजराती के साथ हिन्दी, बँगला और मराठी भी पढाने की व्यवस्था रक्खी है। मतलब यह नहीं है कि इनके सिवाय दूसरी देशी भाषाएँ कम महत्त्व की हैं; किन्तु अब तक का अनुभव बतलाता है उन भाषाओं को सीखनेवाले विद्यार्थी हमारे यहां नहीं आते।

विद्यापीठ के अब आगे के काम में समाज-सेवामंदिर ही महाविद्यालय का बडा भाग होना चाहिए। अबसे सभी फेरफार इस सेवा-मंदिर की स्थापना के लिए ही होंगे। आर्यविद्यामंदिर से लेकर राजनीति, संपत्तिशास्त्र, और इतिहास के मंदिर तक सभी मंदिर इस समाज-सेवामंदिर को ही समृद्ध करने में अपनी शक्ति लगायेंगे। और वाणिज्य-मंदिर भी गांवों को निचोडने, तथा शहरों और विदेशों के बीच चढा ऊपरी के केवल साक्षी अथवा मददगार

न रह कर, इसका खास विचार करेगा कि गांवों की मिहनत का फल गांववालों को ही किस तरह मिल सकेगा ।

इस तरह ध्येय की एकाग्रता साधने बाद जो विद्यार्थी तैयार होंगे उन्हें दीहातों की नयी शिक्षा चालू करने के लिए जगह जगह पर फैलाना रहेगा । आज का ऐसा मनोरथ है ।

(नवजीवन) **दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर**

बेकारी

बेकारी के बारे में श्रीयुत ग्रेग दिखलाते हैं कि संसार के बडे बडे अर्थ-शास्त्रियों और व्यवसायियों का मत है कि केवल यंत्रों से एक पदार्थ के खर्च में दो तैयार कर लेने से ही भला नहीं होगा, अगर इसकी बदौलत एक आदमी बेकार हो जाय । आज संसार में बहुत सी वस्तुएँ जाया जाती हैं, मगर सबसे अधिक तो योग्य आदमियों की बेकारी से उनकी शक्ति जाया जाती है । और हम देखते हैं कि यंत्रों में सुधार से मजदूरों को हमेशे यह शंका लगी ही रहती है कि अब एक और अच्छी कल बनी कि मैं गया । सच पूछिए तो हमें बेकारी से रक्षा के बदले, लगातार काम ही चाहिए ।

शायद इन बातों का विरोध कोई न करेगा । इस लिए अब इस दृष्टि से हम गांधीजी के कार्यक्रम की जांच करें ।

हम १९२१ की मर्दुम शुमारी की रिपोर्ट में देख चुके हैं कि हिन्दुस्तान में कुल १० करोड ७० लाख आदमी खेती के काम में लगे हुए हैं । ये भी साल में तीन महीने बेकार ही रहते हैं । और इनकी बेकारी की वजहें कारखानों के समान हडताल, नौकरी से छुडाना इत्यादि नहीं हैं । यह संख्या हिन्दुस्तान की जन-संख्या की एक तिहाई या काम करनेवालों की दो तिहाई है ।

इँग्लैण्ड में एक समय अधिक से अधिक पौने बाईसलाख आदमी बेकार रहे । यानी वहां की कुल जन-संख्या के एक बीसवें, या ट्रेड यूनियन के मेम्बरों की संख्या के छठवें हिस्से से अधिक आदमी कभी बेकार न रहे । मगर इतने से ही वहां के सरकार का आसन डगमग हो गया । अब अगर वहां भी सारी आबादी का एक तिहाई हिस्सा तीन महीने या कुल मिला कर बारहवां हिस्सा साल भर बेकार रहा करता तो वहां क्या हालत होती ?

पश्चिम के कारखानेवाले अपने यंत्रों को बेकार रखने की हानियाँ समझने लगे हैं । वे अब इस फिक्र में हैं कि वह हानि माल की कीमत बढा कर ग्राहक से वसूल की जाय या इसे अलग घटी के मद्द में डाल कर, उसे पूरा करने का दूसरा रास्ता सोचा जाय ।

इसी तरह हमें भी हिन्दुस्तान में सोचना चाहिए कि हमारे इतने मनुष्य-यंत्रों की बेकारी से राष्ट्र को कितनी बडी हानि पहुँचती है । सरकार के हिसाब को मान कर एक आदमी की रोजाना कमाई तीन आने मान ली जाय तो फिर ९० दिनों में १० करोड ७० लाख आदमी कुल १ अरब ८० करोड रुपये कमाते जो कि वे कमा नहीं पाते हैं । यानी साल में हम पौने दो अरब रुपये यानी सारी आबादी पर फी आदमी ५।≡ का कर देते हैं । यह भी सरकारी हिसाबों से ही देखने में आता है कि न तो सरकार को किसी मद्द से पौने दो करोड की आय है, और न किसी मद्द में इतना खर्च ही है यानी केवल किसानों की ही बेकारी का कर, आमद और खर्च सभी मद्दों से बढ जाता है । इतना ही नहीं बल्कि सच्ची घटी तो इससे बहुत ही बढ कर होगी क्योंकि जो तीन आने मजदूरी पायगा, वह तीन आने से कहीं अधिक का माल तैयार करेगा ।

अब इसमें किसी को उज्र हो तो हम चर्खे की कमाई एक आना रोज के ही हिसाब से जोड कर देखेंगे कि कोई ६० करोड रुपयों से भी अधिक की कमाई जो होनी चाहिए थी, नहीं हो पाती है ।

चाहे कोई किसी आधार से हिसाब करे, इसमें तो कोई शक ही नहीं है कि बेकारी के लिए हमें बहुत बडा कर देना पडता है ।

खद्दर आन्दोलन से तो इस बेकारी को हम बहुत कुछ दूर कर सकते हैं । जो लोग खद्दर तैयार करेंगे, वे खुद उस कपडे को पहन सकते हैं और उसके बदले दूसरा कपडा न खरीद कर उसकी बचत करा सकते हैं । फिर इसकी मांग भी हमेशे ही बनी रहती है । कपडा ऐसी वस्तु है, जिसके बिना किसीका काम चल नहीं सकता । इस लिए भी उसका बाजार हमारे लिए बना बनाया ही है । फिर कपास भी हिन्दुस्तान के प्रायः सभी जिलों में पैदा होती है । आवश्यक यंत्र भी बहुत ही सस्ते होते हैं, और हर गांव में सहज ही बनाये जा सकते हैं । सूत कातने का ढंग भी बहुत ही सहज है, बहुत ही जल्दी सीखा जा सकता है । और सच पूछिए तो अब भी करोडों को सूत कातना भूला नहीं है ।

हाथ कताई, धुनाई और ओटाई की क्रियाएँ ऐसी हैं जो सभी दशाओं में सभी तरह की बेकारियों को दूर कर सकती हैं । ख्वाह लंबी बेकारी हो या थोडे दिनों की, ख्वाह बेकार आदमी निर्बल हो या सबल, बूढा हो या जवान या लडका, सभी बेकारियों का इलाज इस तौर पर किया जा सकता है । इसके लिए न तो घर छोडना जरूरी है और न दश पांच का साथ मिलकर कारखाना बनाना । न कोई खास मकान ही चाहिए । न तो सरकार का कानून चाहिए न सूबा की सहायता । यह धंधा तो बात की बात में कभी शुरू किया जा सकता है ।

ऐसे काम से आर्थिक कठिनाई तो दूर होती ही है, साथ ही बेकारी से पैदा हुई बुरी मानसिक स्थिति, और अनीति की भी यही दवा है ।

फिर अकाल-पीडितों की सहायता के लिए भी इसका प्रयोग कई जगहों पर कर के देख लिया गया है । और तो और, अहमदाबाद की कपडे की मिलों की हडताल में भी हडतालियों की सहायता के लिए चर्खे चलवाये गये थे ।

बंबई सरकार के कृषि-विभाग के सबसे बडे अफसर डाक्टर हैरोल्ड मैन ने भी स्वीकार किया था कि "हिन्दुस्तान का उद्धार केवल काम करने से ही होगा । जिस देश के अधिकांश आदमी साल में छे महीने बेकार रहें, उस देश का उद्धार भला कब हो सकता है ? बेकारी के दिनों में लोगों को कुछ न कुछ काम देना ही होगा, चाहे उससे कितनी ही कम आमदनी क्यों न हो । गांधीजी ने चाहे और जितनी भूलें की हों, मगर जब उन्होंने हाथ-कताई का प्रचार शुरू किया चाहे उससे एक ही आना रोज क्यों न मिले, तब उन्होंने हिन्दुस्तान की गरीबी का मुख्य कारण पहचान लिया है ।"

अंत में ग्रेग साहेब खादी-आन्दोलन में अपना उत्कट विश्वास प्रकट करते हुए यह कहते हैं कि इसकी सादगी ही पश्चिम के उल्झन-प्रिय विद्वानों को चक्कर में डाला करती है ।

(क्रमशः)

[**मि. रिचार्ड बी. ग्रेग** की 'खद्दर का अर्थशास्त्र' नामक किताब में से]

पर्दा दूर हुआ समझो

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, ~)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ४५

मुद्रक-प्रकाशक
मोहनलाल मगनलाल भट्ट

अहमदाबाद, आषाढ सुदी ११ संवत् १९८४
गुरुवार, २८ जून, १९२८ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय
सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय ११

गिरमिट की प्रथा

नये बसे हुए और आंतर बाह्य तूफान में से निकले हुए आश्रम को छोड कर अब गिरमिट की प्रथा का थोडा विचार कर लेने का समय आया है। गिरमिटिया कहते हैं पांच वर्ष या उससे कम समय के लिए मजदूरी के शर्तनामे पर सही कर के हिन्दुस्तान के बाहर गये हुए मजदूर को। नेटाल के ऐसे गिरमिटियों पर से सन् १९१४ में ३ पौंड का कर तो दूर हुआ, मगर गिरमिट की प्रथा अभी बंद नहीं हुई थी। सन् १९१६ में भारतभूषण पंडित मालवीयजी ने यह प्रश्न धारा-सभा में उठाया था और लॉर्ड हार्डिंग ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर के जाहिर किया था कि यह प्रथा समय आने पर दूर करने का वचन शाहंशाह की ओर से मुझे मिला है। किन्तु यह स्पष्ट जान पडा कि यह प्रथा तुरत बंद हो जाने का निर्णय होना चाहिए। इस प्रथा को हिन्दुस्तान ने अपनी लापर्वाई से बहुत दिनों तक निभा लिया था। मैंने माना कि अब लोगों में इतनी जागृति आ गयी है कि यह बंद हो सके। कितने नेताओं से मिला, अखबारों में इस विषय में कुछ लिखा और मैंने देखा कि लोकमत इस प्रथा को निकाल डालने के पक्ष में है। क्या इसमें सत्याग्रह का उपयोग हो सकता है? मुझे इसमें जरा भी शंका न थी। किन्तु मैं यह नहीं जानता था कि हो तो किस तरह हो? सन् १९१७ के फरवरी महीने में भारतभूषण मालवीयजी ने गिरमिट प्रथा को जड-मूल से उखाड फेंकने का प्रस्ताव बडी धारासभा में पेश करने की आज्ञा माँगी जिसे वायसराय ने नामंजूर कर दिया। इस लिए, इस प्रश्न के संबंध में मैंने हिन्दुस्तान में भ्रमण शुरू किया।

भ्रमण शुरू करने के पहले मैंने वायसराय साहेब से मिल लेना उचित समझा। उन्होंने मुझे तुरत ही मिलने की तारीख भेजी। उस समय के मि० मेफि और अब के सर जौन मेफि उनके मंत्री थे। मि० मेफि के साथ मेरा ठीक संबंध बँधा। लॉर्ड चेम्सफोर्ड के साथ संतोषकारक बातें हुईं। उन्होंने निश्चयपूर्वक तो कुछ नहीं कहा, मगर मुझे उनकी मदद की आशा बँधी।

भ्रमण का आरंभ बंबई से किया। बंबई में सभा करने का भार मि० जहांगीर पेटिट ने लिया। इम्पीरियल सिटिजेनशिप ऐसोसियेशन के नाम से सभा हुई। उसमें पेश किये जानेवाले प्रस्तावों का निश्चय करने के लिए एक समिति बैठी। उसमें डा० रीड, सर लल्लूभाई, मि० नटराजन वगैरह थे। मि० पेटिट तो थे ही। प्रस्ताव में गिरमिट की प्रथा बंद करने की विनती सरकार से करनी थी। सवाल था, कब बंद करने को कहा जाय। तीन सूचनाएँ थीं, 'जितनी जल्दी हो सके,' '३१ वीं जुलाई' और 'तुरत'। '३१ वीं जुलाई' की सूचना मेरी थी। मुझे तो निश्चित तारीख की जरूरत थी, जिसमें इस मुद्दत में कुछ न होवे तो पीछे यह सूझ पडे कि अब क्या करना चाहिए और क्या करना संभव है। सर लल्लूभाई की सूचना 'तुरत' शब्द रखने की हुई। उनका कहना था कि "'३१ वीं जुलाई' से कहीं अधिक शीघ्रता दिखलानेवाला शब्द तो 'तुरत' है।" मैंने समझाने का प्रयत्न शुरू किया कि प्रजा 'तुरत' शब्द नहीं समझ सकेगी। प्रजा से कोई काम लेना हो तो उसके पास कोई निश्चयात्मक शब्द होना चाहिए। 'तुरत' का अर्थ तो सभी कोई अपनी २ मर्जी के अनुसार करेंगे। सरकार एक करेगी तो प्रजा दूसरा। '३१ वीं जुलाई' का अर्थ सभी एक ही करेंगे और अगर उस तारीख तक छुटकारा न हो तो, हम यह समझ सकेंगे कि अब क्या करना चाहिए। यह दलील डा. रीड के गले तुरत ही उतरी। आखिर में सर लल्लूभाई को भी ३१ वीं तारीख पसंद पडी और प्रस्ताव में यही तारीख दी गयी। सार्वजनिक सभा में यह प्रस्ताव रक्खा गया और सभी जगह ३१ वीं तारीख रक्खी गयी।

बंबई से श्रीमती जायजी पेटिट की अथक मिहनत से स्त्रियों का एक डेप्युटेशन वायसराय के पास गया। उसमें लेडी ताता, मरहूम दिलशाद बेगम, वगैरह थीं। सभी बहनों के नाम तो मुझे याद नहीं हैं, किन्तु इस डेप्युटेशन का बहुत अच्छा असर पडा और वायसराय साहेब ने उसे आशाजनक उत्तर दिया।

कराची और कलकत्ता आदि स्थानों में भी मैं पहुँच गया था। सभी जगह अच्छी सभाएँ हुईं और सभी जगह लोगों में खूब उत्साह था। जब आरंभ किया, तब मैंने ऐसी सभाएँ होने की या इतनी संख्या में लोगों की हाजिरी की आशा नहीं रक्खी थी।

इस अर्से में मेरी मुसाफिरी अकेले ही होती थी। इसलिए अलौकिक अनुभव मिलते थे। डिटेक्टिव तो पीछे होते ही। इनके साथ तकरार का कोई कारण ही मुझे न था। मुझे छुपाना तो कुछ था नहीं। इसलिए न तो वे मुझे सताते, और न मैं ही उन्हें सताता था। इस समय मैं महात्मा प्रसिद्ध नहीं हो चुका था, जोकि जहां मैं पहचाना जाता, इस नाम की पुकार तो पडती ही थी। एक समय रेलवे में जाते हुए बहुत से स्टेशनों पर डिटेक्टिव मेरी टिकट देखने आये और नम्बर वगैरह लेते थे। मैं तो तुरत ही, वे जो प्रश्न पूछते, जवाब दे देता था। पडोसी मुसाफिरों ने मान लिया कि मैं कोई सीधा सादा साधु या फकीर हूँ। दो चार स्टेशनों पर डिटेक्टिव आये, इसलिए ये मुसाफिर चिढे और उस डिटेक्टिव को गाली दे कर धमकाने लगे।

'इस बेचारे साधु को नाहक क्यों सताते हो?' मेरी ओर फिर कर कहा 'इन बदमाशों को टिकट मत दिखलाओ।'

मैंने धीरे से इन मुसाफिरों से कहा, 'वे टिकट देखते हैं तो इसमें मुझे कोई तकलीफ नहीं है। वे अपना फर्ज पूरा करते हैं तो इसमें मुझे कोई दुःख नहीं है।' मुसाफिरों के गले यह बात न उतरी। वे तो मुझपर और तरस खाने लगे। और आपस में बातें करने लगे कि निर्दोष आदमी को यों दिक क्यों किया जाता है?

डिटेक्टिवों की तो मुझे कोई तकलीफ नहीं हुई। मगर रेलवे की तकलीफ का कडवा से कडवा अनुभव मुझे लाहोर से दिल्ली के बीच हुआ। कराची से कलकत्ता लाहोर के रास्ते जाना था। लाहोर में ट्रेन बदलनी थी। यहां की ट्रेन में कहीं मेरा पता लगने लायक नहीं था। मुसाफिर बलात्कार अपने लिए जगह कर लेते थे। दरवाजा बंद हो तो खिडकी में से भीतर घुसें। मुझे कलकत्ते निश्चित तारीख को पहुँचना था। यह ट्रेन खोता तो कलकत्ते समय पर पहुँच नहीं सकता था। मैं जगह मिलने की आशा छोडने लगा था। कोई मुझे अपने डब्बे में नहीं लेता था। आखिर एक कुली ने मुझे जगह ढूँढते देख कर कहा, 'बारह आने पैसे दीजिए तो मैं जगह दिलवा दूँगा।' मैंने कहा, 'अगर जगह दिला देगा तो मैं तुझे जरूर बारह आने पैसे दूँगा।' बेचारा मजदूर मुसाफिरों से कहता, मगर कोई मुझे आने देने को राजी नहीं होता था। ट्रेन के चलने की तैयारी थी। एक डब्बे के कई मुसाफिर बोले, 'यहां जगह नहीं है, लेकिन इसके भीतर घुसा सकते हो तो घुसा दो। खडा रहना होगा।' कुली बोला, 'क्यों जी?' मैंने हां कहा और उसने मुझे उठा कर खिडकी में से अंदर फेंका। मैं अंदर घुसा और कुली ने बारह आने पैसे कमाये।

मेरी यह रात मुश्किल से बीती। दूसरे मुसाफिर जैसे तैसे बैठे थे। मैं ऊपर की जंजीर पकड कर दो घंटे खडा ही रहा। इस बीच कितने मुसाफिर मुझे धमकाया भी करते थे, 'अजी, अब तक क्यों नहीं बैठता है?' मैंने बहुत समझाया कि कहीं जगह ही नहीं है। किन्तु ये तो मेरा खडा रहना सहन ही न करें। जो कि आप तो ऊपर की पटरी पर लंबे हो कर पडे हुए थे। बहुत बार सताते। वे जितना ही सताते मैं शान्ति से जवाब देता था। इससे वे कुछ शान्त हुए। मेरा नाम ठाम पूछा। जब मुझे नाम देना पडा, तब वे शरमाये। माफी मांग कर मुझे अपने बगल में ही जगह कर दी। 'धीरज का फल मीठा' की कहावत याद आयी। मैं खूब थका था। माथा फिरता था। बैठने की जगह की जब सचमुच में जरूरत पडी, तब ईश्वर ने दे दी।

यों गिरता पडता मैं समय पर कलकत्ते पहुँचा। कासिम बाजार के महाराज का, अपने यहां ठहरने का निमंत्रण था। वे ही कलकत्ते की सभा के प्रमुख थे। कराची के समान ही कलकत्ते में लोगों का प्रेम उछला पडता था। थोडे अँगरेज भी हाजिर था।

३१ वीं जुलाई के पहले गिरमिट की प्रथा बंद होने का प्रस्ताव प्रकाशित हुआ। सन् १८९४ के साल में इस प्रथा को नष्ट करने की पहली अर्जी मैंने तैयार की थी और यह आशा रक्खी थी कि किसी दिन यह 'आधी गुलामगिरी' रद्द होगी ही। १८९४ में शुरू होने बाद इस प्रयत्न में बहुतों की मदद थी। किन्तु यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि इसके पीछे शुद्ध सत्याग्रह था। इस किस्से की और बातें तथा भाग लेनेवाले पात्रों के परिचय पाठक को 'द० अफ्रिका के सत्याग्रह के इतिहास'* में मिलेंगे।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

कपास की कुछ खास बातें

आज जो खद्दर तैयार होता है, उसमें से अधिकांश मोटा, रुखडा और भद्दा होता है। मगर तौभी सन् १९२१ या २२ में जो कपडा बनता था, उसकी अपेक्षा तो आज लाख दर्जे बेहतर ही बना करता है। एक जमाना वह भी था जब हाथ का कता और बुना खद्दर ही मिलों के कपडों से अच्छा हुआ करता था। अब भी परमात्मा की कृपा से जो थोडे से उस समय के नमूने बचे हुए हैं, वे यही साबित करते हैं। किन्तु भूतकाल का पुनरुज्जीवन तो अब यहां तक हो गया है कि अब भी हिन्दुस्तान में ४०० अंक का सूत हाथों से ही चर्खे पर कतता है। और कई आधुनिक जानकारों ने भी खद्दर की अच्छाई के गुण गाये हैं। सत्याग्रहाश्रम, साबरमती में परीक्षा कर के देखा गया है कि अहमदाबाद की मिलों के सूत के बराबर मजबूत, समान तथा उँचे अंक का हाथ का सूत हो सकता है। मगर जिसने सचमुच में ऐसे अच्छे नमूनों और उनकी परीक्षा को नहीं देखा है, उसे सहसा इस पर विश्वास नहीं होता। इस लिए इस लेख में हम इसीपर विचार करेंगे कि एक वजन और लंबाई के मिल के कपडे की तथा खद्दर की मजबूती, समानता और तनाव पर फैलने की शक्ति तथा टिकाऊपने में क्या फर्क है।

कपडे की जाति का सवाल शुरू होता है, रुई के छोटे से रेशे से। यह रेशा बहुत ही पतला और पोपला या खोखला सिलिंडर (शुद्ध गोल छडी) के रूप का होता है। इस सिलिंडर की दीवारें बहुत ही पतली होती हैं। इस सिलिंडर में जगह बजगह ऐंठन पडी होती है। कहीं दाहिनी ओर तो, कहीं बायीं ओर। यह ऐंठन कहीं अधिक, कहीं कम, कहीं ज्यादे दूर पर, कहीं कम दूर पर होती है। कोई दो रेशे हूबहू एक सरीखे कभी नहीं होते। उनमें कुछ न कुछ अंतर होता ही है। कभी कभी तो एक ही बीज के भिन्न २ रेशों में बहुत फर्क होता है, तब भिन्न २ जाति की कपासों का तो पूछना ही क्या?

मगर इसीसे हाथकताई को मिल की कताई पर तरजीह मिल जाती है। मिल की कलों में जान नहीं होती। एक यंत्र से हम जो काम लेंगे वही एक समान बराबर लेते जाना होगा। मगर आदमी की उँगलियाँ जानदार होती हैं। जब जैसी जरूरत पडी, वे कभी जोर से पूनी दबाती हैं, तो कभी हलके हाथों, कभी चक्कर जोर से चलाती हैं तो कभी तार निकालने के वेग को घटाती बढाती हैं। यानी रेशे रेशे के अंतर पर कतवैया ध्यान न दे सके तो न दे सके, मगर पूनी में बडे बडे फर्कों पर तो ध्यान दे सकता है, जो मिल के लिए असंभव है।

* इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद दो खंडों में 'सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल, अजमेर' ने प्रकाशित किया है।

मगर मिलों को भी तो कातना ही है । इस लिए उन्हें पूनियों में उन रेशों में जितनी अधिक समानता हो सके, लानी है । फलतः सूत कातने के पहले कपास पर कई क्रियाएँ करनी पड़ती हैं । मगर उन्हें काम बहुत तेजी से करना है, इसलिए बहुत तेज कलों से काम लिया जाता है, जिनसे रेशे कटते, पिटते, टूटते, कुचलते, मसलते और नुकसान होते जाते हैं । जो बचते भी हैं उनकी मजबूती, खिंचाव की सहन शक्ति और जीवन बहुत कुछ नष्ट हो जाते हैं ! यह बात हाथकताई में नहीं होती क्योंकि हाथ-ओटाई और हाथ-धुनाई में न तो इतनी तेजी ही हो सकती है और न उससे इतने धक्के ही पहुँच सकते हैं ।

फिर कपड़े का टिकाऊपना महज सूत की समानता पर ही निर्भर नहीं होता । क्योंकि सूत एक समान मजबूत या निर्बल हो सकता है । कपड़े की मजबूती एक समान मजबूती, एकसी फैलाव की शक्ति और एकसी नर्मी तथा एक तरह की बुनाई पर निर्भर होती है ।

फिर सूत की मजबूती सिर्फ रेशे के बल पर निर्भर नहीं होती । सूत की मजबूती निर्भर होती है उसकी सर्व्वत्र एक सी ऐंठन, मोटाई तथा रेशे पर । इस लिए अच्छे कातनेवाले की कोशिश होती है कि वह एकसा मोटा सूत काते जिसमें हर जगह बराबर ही ऐंठन पड़ी हो और हर जगह रेशों की संख्या बराबर ही होवे ।

मगर एक और बात है । केवल रेशे की मजबूती से ही नहीं चलता, बल्कि यह भी देखना पड़ता है कि किस कपास के रेशों में आपस की घिसावट ज्यादह होती है, जिससे एक दूसरे से मिलकर उन में ऐंठन पड़ती है ।

संभवतः मिल की कताई में रेशे ज्यादह समान रूप से सूत में बैठते होंगे किन्तु सूरत की कपास के रेशे ऐसे होते हैं, जिससे मिल की यह विशेषता नष्ट हो जाती है । मगर इस बारे में अभी और खोज की जरूरत है । अभी कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता ।

काम करने का वेग बढ़ाने के अलावा, यंत्रशास्त्रियों ने ओटाई और धुनाई के बीच कुछ खास क्रियाओं की खोज की है । जिनसे रेशों में बहुत समानता आ जाती है और सभी रेशे एक दूसरे के बगल में समानान्तर पड़े रहते हैं । मगर यह तरीका भी चर्खे पर प्रचलित है । मद्रास प्रान्त में बारीक से बारीक और अच्छा से अच्छा सूत पूनियों के बिना कतता है । वहांकी कातनेवालियां केवल मछली के कांटों वा किसी दूसरी कंघी से रुई को नोच कर, सभी रेशे समानान्तर कर लेती हैं और फिर केले के पत्ते के बीच रख कर, पूनी बनाये बिना ही काता करती हैं ।

इसके अलावा चूँकि चर्खे के सूत के लिए रुई और कपास की वह दुर्गति नहीं हुई रहती है जो मिलों में होती है, इस लिए चर्खे के सूत की रुई के रेशे बेशक मिल के सूत की रुई के रेशों से मजबूत, और जानदार होते हैं । फिर मिल में दो तरह से सूत कातते हैं । एक तो चर्खे के समान लंबा तार निकाल कर उसे फिर लपेटते हैं । दूसरे सूत कतता जाता है और साथ ही लिपटता भी जाता है । लंबा तार निकालने से ऐंठन सर्व्वत्र फैल जाती है और कमजोर हिस्से भी मजबूत हो जाते हैं । यह बात चर्खे के साथ सभी जगह होती है, जब कि मिल में केवल अच्छे सूत को छोड़ कर बाकी कभी लंबे तार नहीं निकालते ।

मिलों में इतनी तेजी से काम होता है कि धातु के कलपुर्जों तथा लकड़ी और चमड़े के हिस्सों के साथ रुई की रगड़ से बिजली पैदा हो जाती है जो सूत के रेशों को अलग अलग करती है । यानी रेशे एक साथ रहते ही नहीं । अगर एक एक रेशा साथ साथ और समानान्तर न रहे तो सूत कमजोर हो जाता है । इसके अलावा मिल की कताई (रिंग स्पिनिंग) में तकुवे इतनी तेजी से घूमते रहते हैं कि सूत के रेशे एक दूसरे से सटने के बदले अलग अलग छटकते फिरते हैं, जिससे मजबूत सूत नहीं कत सकता ।

हाथ से काम करने में कपास को तैयार होने तथा सूखने का अधिक समय मिलता है । घर की हाथ कताई में कपास गांठों में भी नहीं बँधी रहती है, जिससे वह कम समय में भी ज्यादह अच्छी तरह सूखती है ।

कपास के रेशे, फूल के भीतर जरा भी ऐंठनवाले नहीं होते । ऐंठन तो सूखते समय आती है । और अपनी ऐंठन से ही दो रेशे एक दूसरे के साथ मिलते हैं । अतएव यह ऐंठन बहुत ही महत्त्व पूर्ण है और हिन्दुस्तान में सभी कोई ओटने से पहले कम से कम घंटे भर तो कपास को धूप में सुखा ही लेते हैं ।

इसके अलावा यह भी दिखलाया जा सकता है कि हाथ की कताई में रेशों के फैलने और सिकुड़ने की शक्ति जैसी की तैसी ही बनी रह जाती है, जो मिलों में बहुत कुछ नष्ट हो जाती है । और इस शक्ति पर सूत की मजबूती बहुत कुछ निर्भर करती है ।

यह भी देखा जाता है कि जुलाहे पहले सूत में मांडी लगा लेते हैं, और तब बाद में ताना तानते हैं । मगर मिलवाले जल्दी के मारे, हमेशे ही पहले ताना तान लेते हैं, तब उसमें पीछे से मांडी लगाते हैं । फल यह होता है कि ताने में ही सूत काफी तना हुआ या खिंचा हुआ रहता है । उससे अधिक खिंचाव वह बिलकुल ही नहीं बरदाश्त कर सकता । जब कि पहले मांडी लगाने से सूत को बहुत कुछ सहारा मिल जाता है । शायद यह भी हाथ-बने कपड़े की मजबूती का एक कारण है ।

मगर आज अभी खद्दर मिल के कपड़ों को सभी जगह मात नहीं दे रहा है । तो क्या ये सब बातें गलत हैं ? नहीं । बात दर असल यह है जिसे हम देख सकते हैं कि अगर सचमुच में अच्छा खद्दर बने तो उसे ऐसी सुविधाएँ प्राप्त है, जिनसे वह मिल के कपड़े को हमेशे दबा सकेगा, मगर उन सुविधाओं से हम अभी पूरा लाभ नहीं ले सके हैं । ये सुविधाएँ ऐसी हैं जो वैज्ञानिक दृष्टि से हस्त-शिल्प को हमेशे ही यंत्र-शिल्प से अधिक मिली ही रहेंगी । मान लिया कि मिलें एकसारगी में हमारे कातनेवालों और बुनकरों को हरा देंगी, मगर उँगलियों का नाजुक तथा बारीक स्पर्श उन्हें कहां नसीब होगा ? और इस बल पर हमेशे ही खद्दर उन्हें नीचा दिखा सकेगा । और इसमें आश्चर्य ही क्या है ? जब कि हिन्दुस्तान इतिहास के प्रारंभ से ही वस्त्र-विद्या का घर रहा है । यहां की पुरानी विद्या बहुत कुछ भूल गयी है, तोभी अभी बहुत कुछ याद है, बहुत सी ढूँढ निकाली गयी है और अभी पग पग पर बहुत से नये सुधारों तथा खोजों की जरूरत और गुंजायश है । और आज इसके लिए प्रयत्न खूब चल रहा है । इस लिए आशा होती है कि अब भी हम ऐसी खादी बना सकेंगे जो मिल के कपड़ों से आगे बढ़ जाय । जिस दिन हम यह कर सकेंगे, वह दिन हिन्दुस्तान के—बल्कि दुनिया के—इतिहास में मंगल दिवस गिना जायगा ।

[**मि. रिचार्ड बी. ग्रेग** की 'खद्दर का अर्थशास्त्र' नामक अँगरेजी किताब में से ।]

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ सुदी ११ संवत् १९८४

पर्दा दूर हुआ समझो

अभी तुरत ही विहार में, वहाँके कई अत्यन्त प्रभावशाली पुरुषों और करीब उतनी ही स्त्रियों के हस्ताक्षर से पर्दे को बिलकुल ही दूर करने की सलाह के साथ एक युक्तियुक्त अपील निकली है। यही बात कि उसपर कोई पचास से भी अधिक स्त्रियों ने अपने हस्ताक्षर किये हैं, साबित करती है कि अगर जोरों से काम चलता रहा तो विहार में पर्दा एक पुरानी कथा भर रह जायगा। यह भी उल्लेखनीय है कि हस्ताक्षर करनेवाली बहिनें अँगरेजियत के रंग में रँगी हुई नहीं हैं, बल्कि धर्माभिमानी हिन्दू महिलाएँ हैं। इस अपील में निश्चयपूर्वक कहा गया है कि,

"पर्दे की प्रथा के कारण हमारा आधा अङ्ग पक्षाघात से पीडित के समान क्रियाशून्य हो गया है। हमारी स्त्रियां पर्दे में बन्द रहने के कारण प्रकाश और स्वच्छ वायु से वंचित होकर नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो रही हैं। डाक्टरों का अनुमान है कि स्त्रियों में जो यक्ष्मा की वृद्धि जोरों से हो रही है, उसका प्रधान कारण पर्दा ही है क्योंकि पर्दे के अन्दर अस्वास्थ्यकर परिस्थिति में न तो उन्हें पूरा प्रकाश और खुली हवा ही मिलती है और न वहां व्यायाम का ही प्रबन्ध रहता है। अपनी अर्द्धाङ्गिनियों के साथ इस प्रकार का मनुष्यताहीन व्यवहार बडा ही लज्जाजनक है। इस प्रथा को दूर किये बिना हमारा पूर्ण उद्धार होना असम्भव है। अतः आवश्यक है कि पर्दे की प्रथा शीघ्र हटायी जाय और महाराष्ट्र, कर्णाटक, गुजरात, मद्रास, आदि स्थानों की स्त्रियों के समान हमारी स्त्रियां और बहिनें भी स्वतन्त्र और विशुद्ध वायु में विचरण करके निर्भीक और स्वावलम्बिनी बनें, मगर साथ ही उनका रहन सहन पश्चिमीय ढङ्ग का न होकर भारतीय ढङ्ग का हो और सादा हो। नहीं तो यह कढाई में से कूद कर आग में गिरने के समान होगा।"

मैं विहार में पर्दे के दोषों को जानता हूँ। इस आन्दोलन को शुरू करने में जरा भी जल्दबाजी नहीं की गयी है।

इस आन्दोलन की शुरूआत जरा विचित्र है। श्रीयुत रामनंदन मिश्र खादी कार्यकर्त्ता हैं। वे अपनी पत्नी को पर्दे के कैदखाने से छुडाना चाहते थे। चूंकि उनके संबंधी उनकी पत्नी को आश्रम में नहीं आने देते थे, वे आश्रम से दो लडकियों को उसके साथ रहने के लिए ले गये। उनमें एक, स्व० मगनलाल गांधी की लडकी राधा बहिन शिक्षिका होकर गयी। उसके साथ स्व० श्रीयुत दल बहादुर गिरि की लडकी दुर्गादेवी गयी। इस बालिका पत्नी के माता पिता को आश्रम की लडकियों की, श्रीमती मिश्र को पर्दे से निकालने की कोशिशें बुरी लगीं। इधर इन लडकियों ने बडी बहादुरी से सभी कठिनाइयों का सामना किया। इसी बीच मगनलाल गांधी अपनी पुत्री से भेट करने और सभी कठिनाइयों से लडने के लिए उसे साहस तथा उत्साह देने को विहार गये। जिस गांव में राधा बहिन काम करती थी, वहीं वे बीमार पडे और पटने में आकर मरे। इस लिए विहार के मित्रों ने पर्दे के विरुद्ध युद्ध ठानना अपनी आन की बात बना ली। राधा बहिन अपनी शिष्या को यहां आश्रम में लेती आयीं। उसके आश्रम में आने से और भी हलचल मची और उसके पति के लिए जो पहले से ही इसके लिए तैयार थे, इस आन्दोलन में और भी उत्साह से पडना लाजिमी हो गया। यों, यह आन्दोलन जो थोडा सा व्यक्तिगत रंग लिये हुए है, आशा है कि जोरों से चल निकलेगा। इसके नेता हैं, विहार के पुराने मँजे हुए सैनिक बाबू व्रजकिशोर प्रसाद, जिनकी वीरता की परीक्षा अनेकों बार हो चुकी है। मैं नहीं जानता कि उन्होंने कभी किसी आन्दोलन का नेतृत्व स्वीकार किया हो, और फिर वह यों ही मर जाने दिया गया हो।

अपील में अगली ८ जुलाई का दिन इस पर्दा प्रथा के विरुद्ध जोरों से आन्दोलन शुरू करने के लिए ठीक किया गया है, जो कि आज विहार की आधी मनुष्य-संख्या को निर्दयता से समाज-सेवा से वंचित करता है, और कई बार तो प्रकाश और स्वच्छ वायु की स्वतंत्रता भी छीन लेता है। जितनी जल्दी हम समझ लेवें कि हमारी कई सामाजिक कुरीतियाँ स्वराज का रास्ता रोक रही हैं, उतनी ही तेजी से हम अपने प्रिय ध्येय की ओर आगे बढेंगे। स्वराज-प्राप्ति तक समाज-सुधार को मुल्तवी रखने के मानी हैं कि हम स्वराज का मतलब ही नहीं जानते। बेशक न तो हम अपनी रक्षा ही आप कर सकेंगे और न दूसरे देशों की ही सच्ची बराबरी कर सकेंगे, अगर अपनी अर्द्धाङ्गनियों को लकवा मारे सा लाचार किये रहें।

इस लिए मैं विहार के नेताओं को, उनके सच्ची लगन के साथ पर्दा के विरुद्ध आन्दोलन शुरू करने के लिए धन्यवाद देता हूँ। सभी सुधारों के समान, खास कर इस सुधार की सफलता, इसके कार्यकर्त्ताओं के चारित्र की पवित्रता पर निर्भर है। इस अपील पर दस्तखत करनेवाली महिलाओं पर बहुत कुछ निर्भर है। अगर, वे पर्दा छोड देने पर भी, भारतीय स्त्रियों का असली शील और विनय बचाये रक्खें, और बडी बडी कठिनाइयों के सामने भी साहस और दृढ-निश्चयता दिखलावें तो, वे देखेंगी कि सफलता पास ही पडी हुई है। पर्दे के विरुद्ध आन्दोलन अगर ठीक ठीक चलाया गया तो यह विहार की स्त्रियों और पुरुषों, दोनों के लिए ही सच्ची सार्वजनिक शिक्षा का साधन बन जायगा।

(यं. इ.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

नयी शिक्षा का स्वरूप

एक प्रख्यात विद्वान ने कहा है कि मनुष्य जीवन का पक्का फल विचार नहीं, किन्तु क्रिया है। हमारे लोगों ने इसी विचार को व्यक्त करने के लिए इस लोक को कर्म-भूमि कहा है। कर्म करने से आदमी जीता है। कर्म से ही उसका उदर-पोषण होता है। कर्म से ही सभी पुरुषार्थ शक्य होते है। कर्म से ही ज्ञान का साक्षात्कार होता है। और कर्म से ही हृदय में निश्चय बँधता है।

शिक्षा में कर्म को अभी अभी स्थान मिलने लगा है। पुरानी शिक्षा में अक्षर (साहित्य) और स्मृति (याददाश्त) पर ही आधार रक्खा जाता था। यह तो कोई कही नहीं सकता है कि पुराने समय में कर्म का कौशल नहीं सिखलाया जाता था, किन्तु यह शिक्षा का क्षेत्र कम ही गिना जाता था। समय पा कर छात्रालयों में स्वावलंबन जैसे तत्त्वों का प्रवेश हुआ और परिश्रम ने शिक्षा के किनारे पर पैर रक्खा। धीमे, धीमे, संगीत, चित्रण वगैरह शृंगार-रूप कलाएँ शिक्षा में दाखिल हुईं और दूसरे हुनर भी इनके साथ आये। जब लिखने, पढने और जोडती करने का पुराना त्रिविध कार्यक्रम मुश्किल जान पडा तब दिमाग, हाथ और हृदय तीन अंगों का सार्वत्रिक विकास ही शिक्षा की परिभाषा के रूप में हमारे आगे आ खडा हुआ। इस तरह इंद्रियों के विकास का आदर बनाये रखने के लिए हस्तकौशल की ओर ध्यान दिया जाने लगा। किन्तु कितना? बहुत जगह तो यह आग्रह नाम मात्र को ही था। और पुराने शिक्षकों में और विद्यार्थियों में भी इंद्रिय-विकास की मस्करी

लगी। कितने पूछने लगे कि डंबेल्स की कसरत के मुताबिक खास क्रियाएँ करने से भी भला कहीं इंद्रियों का विकास होता है।

जमाना का जोर ऐसा है कि हम एक आदर्श का पूरा पूरा अपने यहां करें या न करें कि तब तक अपने समय पर दूसरा आ खडा होता है। और जिस तरह कितने एक नापास होते जाते हैं, मगर तौभी ऊपर के वर्ग में चढते जाते हैं, उसी तरह समाज को एक आदर्श अमल में पूरा लाये बिना ही दूसरे के लिए तैयार रहना पडता है। शुरु की उलझन अन्त में आ पडती है और सच्चा तभी करना पडता है। इन्द्रियों की तालीम, शारीरिक और हुनर का ज्ञान, ये सभी इकट्ठे हुई और औद्योगिक का आदर्श घडा गया, और दिमाग, हाथ और हृदय का सूत्र कर सांस्कृतिक शिक्षा या औद्योगिक शिक्षा का सवाल खडा। हाईस्कूलों या कॉलेजों में तो संस्कारों की उदार शिक्षा ही है। इन्द्रिय-विकास के लिए वहां खेलकूद, कसरत और आदि ललित व्यवसाय पर ही आधार रहा। और शिक्षा के लिए कलाभवन स्थापित हुए। बौद्धिक शिक्षा जो न टिक सके वह कलाभवन में जाय और दोनों बाजू के आखिर नौकरी ही ढूँढें। हम यहाँ तक पहुँचे।

स्वदेशी हलचल के संबंध में परदेशों के साथ चढा ऊपरी की महत्वाकांक्षा जगी और कितने एक विद्यार्थियों को परदेश भेज कर पदार्थ-विज्ञान, रसायनशास्त्र, वगैरह भौतिक विद्याओं में कुशल बनाकर, उनके जरिए अपने यहां बडे बडे कारखाने खोलने के मनोरथ हुए। किन्तु परंपरा को बचाये बिना कहीं प्रगति होती होगी? विदेशी प्रजा के वारसे पर हम कौन सा व्यापार कर सकने वाले थे? इँग्लैण्ड की प्रजा के पुरुषार्थ के इतिहास को पढ कर उत्तेजित भले ही हों, किन्तु इतने ज्ञान से प्रजा में बल नहीं आ सकते हैं। बल तो अपने लहू में जो वारसे में मिला होगा और जो अपने पुरुषार्थ से खुद पैदा किया होगा, वही सच्चा। उसकी खोज की ही नहीं थी। पीछे उसपर श्रद्धा और आधार रखने का सवाल आवे ही कहां से?

उद्योगों को खिलाना होता तो अपने यहां प्राचीन काल से जो उद्योग चलते आये थे, और जिन्हें अपने ही हाथों हमने तोडा उन्हींका गौरव पूर्वक उद्धार करने का विचार हमने रक्खा होता और अँगरेजी पढे लिखों के ही बीच काम करने की संकुचितता न रक्खी होती तो स्वाभाविक विकास शक्य हुआ होता। अपनी खेती, पशु-पालन, बुनाई, रँगाई, बढईगीरी, लुहारी, कँसेरे का धंधा, वैद्यक, नौ विद्या, सराफी, साहूकारी, लोक शिक्षण की अपनी पुरानी पद्धति वगैरह का अपना पुराना राष्ट्रीय जीवन, जहां से उसकी अवगणना की, वहीं से फिर शुरु की होती, और सभी जाति के बालकों को इसमें खींचा होता तो यही महान राष्ट्रीय जागृति हो सकती। किन्तु हमने तो अँगरेजों के पास से अश्रद्धा की दीक्षा पाकर अँगरेजी शिक्षा न पाये हुए वर्ग का अविश्वास ही किया। और निश्चय किया कि जो कुछ रंग चढाना हो वह अँगरेजी पढी पर ही हो। दूसरे की संस्कृति की जितनी अवगणना मिश्नरी भी नहीं करते, उतनी तो हमने अपने बहुजनसमाज की और उसकी बुद्धिशक्ति की की। उद्योग हुनर की शिक्षा या तो अपने देश में रूढ बने उद्योगों की न हो या व्यावहारिक रीति से न दी गयी होवे। फिर वह आगे बढे ही तो किस तरह? और कितनी जगह तो सरकारी विभाग की लापर्वाई से खर्च कितना होता है, नफा होता है कि नुकसान, आदि बातों का जरा भी विचार किये बिना ही, और महीन महीन बातों पर ध्यान देकर बचत करने का खयाल किये बिना ही उद्योग की शिक्षा दी गयी। ऐसी शिक्षा अधिक दिनों तक चलाने की शक्ति कुबेर में भी नहीं हो सकती, फिर हमारे दुष्काल, दारिद और खर्चीली सरकार से पीडित देश में यह कहाँसे शक्य हो सके?

सच पूछो तो सांस्कारिक और औद्योगिक शिक्षा के दो भेद ही नहीं करने चाहिए थे। अगर राष्ट्र में सामर्थ्य पैदा करने की इच्छा हो, तेजस्विता जगानी हो, दीर्घोद्योग खिलाना हो तो साहित्य और हुनर इन दोनों को अलग अलग रखना ही नहीं चाहिए। औद्योगिक शिक्षा के जरिए शरीर बंधता है, इंद्रियों का विकास होता है, आर्थिक समस्या दूर होती है, स्वाश्रय शक्य होता है, आदि लाभ तो हैं ही, निर्विवाद हैं। किन्तु औद्योगिक शिक्षा का मुख्य लाभ तो चारित्र की तेजस्विता ही है। औद्योगिक शिक्षा लेनेवाली प्रजा चारित्र-संपन्न और टेकीली होती है। औद्योगिक शिक्षा के इस लाभ पर हमने अभी पूरा ध्यान नहीं दिया है।

कितने आदमी पूछते हैं, "किसान, बुनकर, बढई, लोहार, मिल के मजदूर और जहाज पर के खलासी अखंड उद्योग ही करते हैं किन्तु उनमें कहां हमारे बराबर चारित्रबल दिखलायी पडता है?" इस सवाल में अज्ञान और उद्धताई भरी है। ऊपर वर्णितवर्गों में अमुक व्यसन कमोबेश फैले हुए हैं। यह बात सच है। यह भी सच है कि वे अपना हित अहित झट नहीं देख सकते। यह भी सच है कि उनमें उन्नत जातियों की बुद्धिमानी, स्वार्थ साधने की चतुराई और विवेक का ओप नहीं होते। किन्तु हमें यह मानने का अधिकार नहीं है कि उनका चारित्रबल हमसे नीचे दर्जे का होता है। बात इतनी ही है कि गरीबों का घर संसार दुनिया के आगे उघाडा ही रहता है, और इसी लिए उनका नाम बदनाम होता है। क्या चारित्रबल के बिना ही बारडोली के किसान इस सल्तनत की नीचता का विरोध कर रहे हैं? चारित्रबल के बिना ही क्या मिल के मजदूर हडतालों के कष्ट सहते होंगे? अरे, हम इतना क्यों नहीं देखते कि श्रमजीविवर्ग में चारित्र की सज्जनता है, धर्मश्रद्धा है और इसी से हम सुरक्षित हैं, और इनकी मिहनत पर हम चैन करते हैं? इनकी सारी सज्जनता इनके अज्ञान की ही आभारी नहीं है, किन्तु परिश्रम के परिचय से आती हुई आत्मनिष्ठा, और ईश्वरनिष्ठा की आभारी है। श्रमजीवियों की स्वभाव सिद्ध उदारता पर सारा संसार निभता है। गरीब, छुटी हुई, और आलसी प्रजा को सजीवन करना हो, उसमें धार्मिकता लानी हो, तो उसकी शुरुआत उसे अधिक से अधिक श्रमजीवी बनाने से करनी चाहिए। उद्योग तो सार्ववर्णिक विश्व-धर्म है। शिक्षा में इसे पहला और प्रधान स्थान मिलना चाहिए। सच्चे संस्कार तो उद्योग के हैं। जिसे आज हम संस्कारिता के नाम से पहचानते हैं, वह बहुत करके ऊपर का शृंगार भर है। सच्ची संस्कारिता में हाडपिंजर तो उद्योग और उसके साथ आनेवाली उदारता ही है। उद्योग के कलेवर में ज्ञान का पवन फूँको और प्रेम, समभाव का चैतन्य भरो। इससे प्रजाकीय शिक्षा का अवतार हुआ समझो। ऐसी शिक्षा प्रजा के लिए क्या न कर सकेगी?

(नवजीवन) **दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर**

शिक्षा–विषयक प्रश्न

३

प्र० जैसे कि हर एक विद्यार्थी के लिए तीन चार भाषाओं का ज्ञान आवश्यक गिना जायगा, उसी प्रकार प्रचलित धर्मों के सिद्धान्तों, विधियों, आग्रहों और वहमों का भी ज्ञान देना क्या आवश्यक है ?

उ० अगर हर एक धर्म के प्रति, जो धर्म है, अधर्म नहीं, हम विद्यार्थियों के मनमें आदर, उदारता और प्रेम उत्पन्न कराना चाहते हैं तो उसके सिद्धान्तों का ज्ञान अवश्य देना चाहिए। वहमों और विधियों को जानने की आवश्यकता मुझे बहुत नहीं लगती। हिन्दुस्तान जैसे देश में तो अपनी आंखें खुली रख कर चलनेवाला वहमों और विधियों को देख ही सकता है। अगर हम गुण-ग्राही होना चाहते हैं तो हर एक धर्म की विधियों और वहमों को जानने का आग्रह ही न रक्खें। खास अपने ही धर्म में अगर वहम और विधियाँ पड़ी हों तो उन्हें सूक्ष्मता से जान कर उनमें जो सुधार आवश्यक हों, उन्हें कराने का आग्रह विद्यार्थियों के पास रखने में ही उनका समय ठीक ठीक लग जाना संभव है।

प्र० आप वर्णव्यवस्था मानते हैं, तो यह भी स्वीकार करते हैं कि नहीं कि भिन्न २ वर्णों की शिक्षा भिन्न २ होनी चाहिए ?

उ० मुझे यह नहीं लगता है कि हर एक वर्ण के लिए अलग शिक्षा होनी चाहिए। सभी वर्णों में बहुत सी समानता है ही, और हमारी शिक्षा सामान्य होनी चाहिए और हाल में है। शिक्षा का एक उद्देश है विद्यार्थी को मनुष्य बनाना और जो मनुष्य बनेगा, वह मनुष्य पर लागू और उसके लिए शोभायमान कायदे सहज ही काढ लेगा। वर्ण की मेरी कल्पना में यह घुसा ही हुआ है कि उसके धंधे पर रचे हुए होने के कारण, और चूँकि चारों वर्णों को अपने अपने धंधे के जरिए ही आजीविका पैदा करनी है, इस लिए वर्णों की विशेषता तो वंशपरंपरा में उतरनी चाहिए। किन्तु वर्ण-धर्म का यह अर्थ मैं कभी नहीं करता कि एक में दूसरे तीन वर्णों के गुण कभी होवें ही नहीं। शूद्र के समान परिचर्या करके ब्राह्मण पेट न भरे, किन्तु उसे अगर परिचर्या करनी ही न आवे या करने में वह शर्माय तो वह ब्राह्मण हो नहीं है। निःस्वार्थ सेवा बिना शुद्ध ज्ञान संभव ही नहीं है। और अगर्चे कि वेदादि पढ कर शूद्र भिक्षापात्र में मिले अन्न पर उदर-निर्वाह न करे, मगर तौभी सुव्यवस्थित समाज में तो उसने वेदादि का ज्ञान पाया ही होगा।

प्र० क्या यह बात सच्ची है कि आप कहते हैं कि उद्योग की शिक्षा में ही सारी शिक्षा आ जाती है और बौद्धिक शिक्षा तो केवल शिक्षा का शृङ्गार भर ही है ? अगर यह सच है तो आप महाविद्यालय की शिक्षा को किस लिए पसंद करते हैं ?

उ० यह बात जितनी सच्ची है, उतनी ही झूठी भी है। जहां बौद्धिक शिक्षा की मूर्ति-पूजा की जाती है, वहां मैं जरूर कहूँगा कि उद्योग की शिक्षा में सभी कुछ आ जाता है। शिक्षा की मेरी व्याख्या में बुद्धि और उद्योग के बीच सिमेन्ट और ईंट की दीवाल नहीं है, यानी दोनों बिलकुल भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं, किन्तु उद्योग की शिक्षा में बुद्धि की शिक्षा यानी बुद्धि का विकास छिपा ही हुआ है। मैं तो यह भी कहने की धृष्टता करूँगा कि, उद्योग की शिक्षा के बिना बुद्धि का सच्चा विकास संभव ही नहीं है। दीवाल चुननेवाले राजमिस्त्री को आजीविका पैदा कर लेने लायक ही जो ज्ञान होता है, मेरी दृष्टि में वह शिक्षा नहीं है। राजमिस्त्री की शिक्षा के तो ये सभी विषय हैं कि, समाज में इस उद्योग का क्या स्थान है, ईंट क्या है, घर कैसे होने चाहिए, घर का सभ्यता के साथ कैसा निकट संबंध है, इत्यादि। हम कितनी ही बार यह गलत अर्थ मान लिया करते हैं कि बौद्धिक शिक्षा है खबरों [illegible] सामान्य ज्ञान। ऐसा सामान्य ज्ञान न पाने पर भी, बुद्धि का [illegible] विकास होना संभव है। जो शिक्षाकार विद्यार्थियों के मगज को अगर खबरों से भर देने की संदूकची बना डालता है, उसने आप शि[illegible] का पहला ही पाठ नहीं सीखा है। अब समझ में आ गया हो[गा] कि प्रश्न में पूछी हुई बात किस तरह जितनी सच्ची, उतनी [ही] झूठी भी है। उद्योग की और बौद्धिक शिक्षा की मेरी कल्[पना] स्वीकार कीजिए तो यह बात गलत है। इन दोनों शिक्षाओं [को] अलग रख कर, इनके बारे में जो भ्रम रहा है, उस भ्रमव[श] शिक्षा को ध्यान में रख कर प्रश्न रचा गया हो तो बात स[च्ची] है। और अब यह खुलासा हो गया होगा कि मैं महाविद्यालय [की] शिक्षा को क्यों और किस शर्त्त पर पसंद करता हूँ। मेरी कल्[पना] के महाविद्यालय में राजमिस्त्री, बढई, बुनकर सच्चे बुद्धिशाली समाज-सेवक होंगे, महज आजीविका पैदा करने लायक ही ज्ञान पाये हु[ए] राजमिस्त्री, बढई या बुनकर नहीं होंगे। महाविद्यालय के बुनकरों [में] से मैं कबीर की, मोचियों में से भोजा भगत की, सोनियों में [से] अखा की, किसानों में से गुरु गोविंद की आशा रखता हूँ। [इन] चारों को मैं बौद्धिक शिक्षा पाया हुआ गिनता हूँ।

प्र० औद्योगिक शिक्षा ही अगर शिक्षा का सर्व्वस्व हो तो बढ[ई], लुहार, बुनकर की समिति को आप विद्यापीठ क्यों नहीं सौंप देते ! पीछे वे भले ही बौद्धिक शिक्षा के अध्यापकों को उस्ताद नौकर [के] रूप में रक्खें।

उ० इस प्रश्न का जवाब ऊपर के उत्तर में समा गया है तो[भी] अपना अर्थ और अधिक स्पष्ट करने के लिए मैंने इसे दिया है। अगर मेरे पास कबीर जैसे जुलाहे हों तो मैं अवश्य विद्यापीठ [की] लगाम उनके हाथों सौंप दूँ और उनके नीचे 'बौद्धिक शिक्षा [के] अध्यापक' उस्ताद नौकर के रूप में काम करने में लज्जा [नहीं] किन्तु मान समझेंगे। हमने उद्योगों को शिक्षा का विषय नहीं मा[ना] और इसीसे आज उद्योग करनेवाले का स्थान हलका गिना गया है और उद्योग करनेवालों की मदद समाज-सेवा के लिए ज[रा] अथवा किसी प्रमाण में नहीं मिल रही है।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियां

अमेरिका से श्रद्धाञ्जलि

कई अमेरिकन मित्र जब तब आश्रम देखने आते हैं। और कभी कभी ठहर भी जाते हैं। उन्हींमें से एक मित्र श्रीमती मगनलाल गांधी को लिखते हैं :

"१९२५ साल में मैंने आश्रम में, और खास कर के आपके अतिथि-सेवक घर में जो दो दिन बिताये थे, वे अब भी आनंद के यादगार हैं। मैं हमेशे ही इसे अमूल्य सौभाग्य समझूँगा कि मुझे श्रीयुत मगनलाल गांधी के इतने निकट परिचय में आने का अवसर मिला था। मैं जितने आदमियों से मिला हूँ, उनमें सबसे सुंदर आत्माओं में से मगनलालजी को एक गिनता हूँ। गो कि वे इतने सच्चे हिन्दुस्तानी थे, उनकी दृष्टि और समझ इतनी विशाल थी जितना कि जीवन। 'यंग इंडिया' में महात्मा गांधी के लेखों को पढ कर, मैंने सत्याग्रह का जो अर्थ समझा था, वे उसीकी जीवित मूर्त्ति जान पडते थे। फूल की सुबास के समान उनसे शक्ति, पवित्रता और माधुर्य की गंध निकलती थी।

"उनकी विशुद्ध अँगरेजी, शुद्ध शैली, बातचीत करने की सुंदर शक्ति से उनकी चामत्कारिक बुद्धि खिल उठती थी। इसके अलावा अपने सभा-चातुर्य, तथा शिष्टता, शील, विनय और संस्कृति के बल पर वे किसी समाज में चमक उठते। मगर उनके सामने ऐसा जान

...था कि उनमें इन चमत्कारों तथा माधुर्य के अलावा कुछ और ...थी; कोई और गहरी चीज थी, कोई ऐसी व्यक्तिगत पवित्रता थी कि उनकी सभी शक्तियाँ, सभी योग्यताएँ, उनके जीवन का हर एक अंग ...वेदी पर, भगवान के चरणों में मनुष्य के लिए सबसे बडे ध्येय के लिए ...दी गयी हों। इसके मानी यह नहीं हैं कि वे धर्म की बातें करते थे, ...बात में पवित्रता की दुहाई देते थे, बल्कि उधर तो उनका ...भी वही व्यावहारिक, कामकाजी व्यवसायी आदमी के समान था ...कि वे आश्रम में थे। किन्तु धर्म ही वह स्प्रिङ्ग या शक्ति–धारा जिसमें से उनके जीवन की धारा निकलती थी और उनके ...जो पवित्रता की सुगंध निकलती थी, वह वही थी जो ...पण से परोपकार के लिए ही जीने तथा सदा प्रयत्न शील ...से–निकलती है।

"आप मुझे क्षमा करेंगी। मेरे लिए ये शब्द महज प्रशंसा ...मामूली बातें ही नहीं हैं। हिन्दुस्तान से लौटने बाद सैकडों ...जब कभी मैंने इस पर कुछ कहा या सोचा कि हिन्दुस्तान ...ने क्या देखा, और अनुभव किया था, तब तब मैंने उस ...व्यक्ति की अपने पर पडी छाप को शब्द का रूप देने का ...किया। और वही अपूर्व व्यक्ति आपका पूज्य पति था। दुनिया के ...किनारे से दूसरे किनारे तक केवल उन्हीं से मिलने के लिए भी ...महँगा नहीं था, जब कि कोई यह सोचता है कि ...हिन्दुस्तान के लिए उनके जीवन का क्या महत्त्व है और उन्होंने ...जी उसकी क्या सेवा की और अब महात्मा जी के कामों को ...से क्या सहायता मिल रही है।

"मैं यह बखूबी जानता हूँ कि स्वर्गीय प्रियजन के लिए ये ...सूचक शब्द चाहे जैसी हार्दिक भावना, या सहानुभूति क्यों ...दिखलाने की कोशिश करें, मगर आपके जैसे शोक को कम नहीं ...सकते। मैं आपको यह याद जरूर दिलाऊँगा कि मगनलाल भाई ...आत्माओं की मंगलकारिणी शक्ति की उपयोगिता देह के नाश ...ही बिलकुल खत्म नहीं हो सकती। शरीर भले ही नष्ट हो ...किन्तु वह शक्ति तो हजारों रूपों में आपको आश्वासन ...के लिए वहां है ही। किन्तु सबसे अधिक सच्चे ...पर तो वह आपके साथ आपके बालकों के रूप में—आपकी ...सुन्दर कन्याओं और पुत्र के रूप में होगी ही। और आपके ...बालक जो अपने स्वर्गीय पिता का वह काम लेकर चलाते जायँगे, ...जिसके लिए उन्होंने अपना जीवन बलिदान कर दिया था।

(यं. इ.)

मो॰ क॰ गांधी

संयम किसे चाहिए?

विवाद करने के लिए एक उमेदवार भाई लिख रहे हैं:

"आप लिखते हैं, 'संयम के पालन में एक को दूसरे की ...ति की जरूरत नहीं होती।' क्या यह जरूरत से अधिक नहीं ...है? पत्नी को भी जब तक अपने ज्ञान में भागी न बना सकें, ...तब तक तो राह देखनी चाहिए न? हिन्दुस्तान में, जहाँ कि ...ज्ञान घट घट में भरा है, और उसमें भी स्त्रियों के लिए ...अध्ययन का द्वार बंद है, वहाँ तो सभी सत्कर्म तुरत समझ कर काम ...में लेना चाहिए, यह मानने से कैसे चलेगा? पति का कर्त्तव्य बार ...बार पढने पर भी अभी और खुलासा चाहिए। मैं अभी अविवाहित ...हूँ। थोडे दिनों बाद विवाह होनेवाला है। अब आप से यह ...खुलासा कराने की जरूरत जान पडने से यह लिखता हूँ।"

यह मेरा अनुभव है कि जिस संयम को दूसरे की संमति की ...आवश्यकता हो वह संयम टिक नहीं सकता। संयम को जरूरत ...अंतर्नाद की ही होती है। संयम का जोर हृदय–बल पर रहता है ...और जो संयम ज्ञानमय और प्रेममय होता है, उसकी छाप आसपास ...के वातावरण पर पड़े पड़े बिना नहीं रह सकती। अंत में विरोध करनेवाला भी अनुकूल बनता है। ऐसा पतिपत्नी के बारे में भी है। अगर पत्नी जब तक तैयार न हो, तब तक पति रुके और जब तक पति तैयार न हो, पत्नी रास्ता देखे तो बहुत कर के दोनों ही भोग पाश में से नहीं छूट सकेंगे। बहुत से उदाहरणों में देखा गया है कि जहां संयम के लिए एक दूसरे पर आधार रक्खा जाता है, वहां वह संयम टूट पडता है और उसका कारण ही यह कचाई है। और गहरे उतर कर हम देखें तो जान पडेगा कि जहांपर एक दूसरे की सम्मति की राह देखी जाती है, वहां पर संयम की सच्ची तैयारी नहीं है या उसके लिए सच्ची लगन नहीं है। इसी लिए निष्कुलानंद ने लिखा हैं कि, 'त्याग न टिके रे वैराग्य विना!' वैराग्य को अगर राग के साथ की जरूरत हो सके तो संयम पालने की इच्छा रखनेवाले को, इच्छा न रखनेवाले की सम्मति की जरूरत हो सकती है।

इस पत्र के लेखक का मार्ग तो सीधा है। ये अभी अविवाहित हैं, और अगर ब्रह्मचर्य पालन करने का उनका सच्चा निश्चय हो तो ये विवाह के झगडे में पडें ही क्यों? माता पिता, और दूसरे सगे संबंधी तो अपने अनुभव से अवश्य ही कहेंगे कि किसी युवक के लिए ब्रह्मचर्य समुद्र–मंथन करने के समान है; और यों कह कर धमकी देकर, क्रोध कर के, और दंड देकर भी, ब्रह्मचर्य की शुभेच्छा से डिगाने का प्रयत्न करेंगे। किन्तु जिस के लिए ब्रह्मचर्य का भंग ही बड़ा से बडा दंड है, और जो साम्राज्य मिलने की की लालच से भी ब्रह्मचर्य का भंग करने को तैयार न हो, वह किसीकी भी धमकी के वश होकर ही क्यों विवाह करें? जिसका आग्रह ऐसा तीव्र नहीं है और जिसने ब्रह्मचर्य आदि संयमों की कीमत इतनी बडी नहीं आंकी है उसके लिए जिस लेख में से मेरा वाक्य ऊपर उतार कर दिया है, वह लेख नहीं था।

(नवजीवन)

मो॰ क॰ गांधी

छुट्टियों में खादी–सेवा

[बंबई राष्ट्रीय विद्यालय के तकलीमंडल के संचालकों ने आचार्य श्री गोकुलभाई की साक्षी के साथ नीचे का लेख भेजा है। उसमें जरा भी काटछपट किये विना मैं सारा का सारा दे रहा हूँ। मैं हर एक शाला के अध्यापकों का ध्यान इस ओर खींचता हूँ। छुट्टी का ऐसा अच्छा उपयोग करने के लिए मैं तकलीमंडल को धन्यवाद देता हूँ। राष्ट्रीय शाला में पढनेवाले सभी विद्यार्थियों को तकली-मंडल में शामिल होना चाहिए। उसमें और अधिक दिलचस्पी लेने से अधिक काम होना संभव है। **मो॰ क॰ गांधी**]

श्री बंबई राष्ट्रीय शाला के कताईकार्य को व्यवस्थित करने के लिए चौदह महीने हुए तकलीमंडल की स्थापना हुई थी। थोडे समय तक शाला के अध्यापकों के यह काम चलाने बाद, विद्यार्थी-मंडल ने यह काम हाथ में ले लिया। जैसे कि तकली छोटी सी दिखलायी पडती है, उसी तरह इस मंडल के सभ्य भी छोटे बडे विद्यार्थी ही हैं। उनके काम भी छोटे हों तो इसमें कुछ नवीनता नहीं है। कताई के अलावा, खादी की फेरी का काम भी यह मंडल तभीसे करता आया है। सामान्यतः रविवार को या किसी दूसरी छुट्टी के दिन हम बंबई के परों में खादी की फेरी करने निकलते हैं। गत वर्ष के छुटेछवाये २२ दिनों के ९६ घंटों हमने ७९१) रु. की खादी बेंची 'इस रकम में, फेरी से, राष्ट्रीय शाला के उत्सव में, किये गये छोटे से खादी–बाजार में, सायमन कमिशन के विरोध की गयी सभा में हुई खादी की बिक्री भी शामिल है।

परंतु इस बार तो गर्मी की लंबी छुट्टियों में हमने अधिक गंभीरता से काम करने का निश्चय किया और शाला के बंद होने

के पहले ही इसमें हाथ बँटानेवाले विद्यार्थियों की संख्या ठीक कर ली । कम से कम एक महीने तो खादी जरूर बेंचने का निश्चय किया और १४ आदमियों के नाम ठीक किये ।

घर घर खादी बेंचने फिरने का निश्चय होने के कारण हम सारे परे में घूम जाते । इतने समय में हम पूरे पाँच परे घूम सके हैं । जुदा जुदा परों में हुई खादी–बिक्री के आँकडे नीचे दिये जाते हैं:

परे का नाम	समय तारीख (१९२८)	घंटा	दिवस	स्वयंसेवकों की संख्या	फेरी के बाजार	कुल बिक्री रु. आ. पा.
मलाड	एप्रिल २५ से ३०	१४	६	१०	फेरी	१३८–०–३
कांदीवली	मे १ से ५	८॥	५	८	फेरी	६९५–९–९
बोरीवली	मे ६ से १०	१२	५	८	फेरी	२६७-१४-०
माटुंगा	मे १२ से १६	११॥	५	८	फेरी	१०४-१५-६
बोरीवली	मे १९ से २०	१४	२	११	खादी बाजार	४५०-१३-०
वीलेपारले	मे २६ से २८	१७	३	१५	बाजार	१,०२२–४–३
सान्ताक्रुझ					प्रासंगिक	३२-१३-३
कुल परे ६		७७	२६	१० (औसत)		२,७१२–६–०

इस हिसाब से रु. २७१२–६–० की बिक्री २६ दिन के ७७ घंटों में हुई । रोज सबेरे ७–३० से १०–३० या ११–० बजे तक हम घूमते थे । फेरी शुरू करने के पहले हम में से एकाध आदमी को लगा कि रोज सबेरे धूप में बोझा लेकर फिरने से विद्यार्थियों का उत्साह शायद कम हो जायगा । किन्तु परि
अच्छा ही आया । ज्यों ज्यों खादी की बिक्री ठीक होती
त्यों त्यों विद्यार्थियों का उत्साह उलटे बढता ही जाता
थकावट या निरुत्साह के कारण एक भी स्वयंसेवक गैरहाजिर
रहा है ।

लोगों का उत्साह भी अच्छा जान पडा । खादी की
मतभेद रखनेवाले लोगों ने भी हमारा ठीक सत्कार किया ।
देखने का मजा मिलता था कि छोटे छोटे विद्यार्थियों से
दलील करते थे, और कितने दिनों से इस काम में अभ्यस्त
विद्यार्थियों के उत्तर सुन कर खुश हो कर हँसते थे । कहीं
खरीदनेवालों में खूब उत्साह दिखलायी पडा तो कहीं कहीं
जवाब भी सुनने पडे । तौभी कुल मिला कर परिणाम बहुत
अच्छा ही आया । इसके बाद हमें प्रदर्शन या खादी–बाजार
का विचार सूझा । बोरीवली और विलेपारले में दो बाजार किये ।
फेरी की बनिस्बत बाजारों का परिणाम बहुत अच्छा आया ।
परिणाम संगठन और विज्ञापन का प्रसाद है । इन बाजारों
संबन्ध में पडे खर्च के लिए हम बम्बई खादी–भंडार की ओर
भाईश्री जेराजाणी, बोरीवली ग्राम्य महासमिति और विलेपार्ले
महासमिति की दी मदद के लिए उनके ऋणी हैं ।

हमें खादी प्रवृत्ति में अपना हिस्सा देने का उत्साह तो बहुत
दिनों से था ही । किन्तु हमें तो खादी–उत्पत्ति के लिए बम्बई
जैसा शहर प्रतिकूल लगता है । इससे हमें खादी प्रचार का
बहुत अनुकूल लगा और एक वर्ष के अनुभव से हममें यह श्रद्धा
और भी बढती जाती है कि राष्ट्रीय शालाओं के विद्यार्थी और
अध्यापक अपने फाजिल समय में खादी बेंचने का काम बहुत अच्छी
तरह कर सकते हैं ।

बिलकुल सच्ची बात तो यह है कि क्रिकेट या फुटबॉल के
रसिया को जितना रस उसके खेल में मिलता है, उससे कहीं अधिक
रस, हममें से किसीको खादी–बिक्री में बढती देख कर मिलता
था । हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हमारा यह रस दिनों दिन
बढता ही जाय । (नवजीवन)

खादी की उत्पत्ति और बिक्री का ब्यौरा

प्रान्त		उत्पत्ति मार्च '२८	उत्पत्ति मार्च '२७	उत्पत्ति फरवरी '२८	बिक्री मार्च '२८	बिक्री मार्च '२७	बिक्री फरवरी '२८
अजमेर	रु.	७,८१३	१०,५३०	४,५४५	१२,१४८	७,६०६	१५,५१४
आन्ध्र	„	९,६०३	२८,९०२	१७,१२२	२१,५३७	३९,६५१	२६,६०४
बिहार	„	२०,८४१	१९,७८६	२२,५०५	२७,७८३	२७,३०२	२५,३०३
बंगाल	„	२२,८४८	१३,०६७	१५,२१७	३९,२१०	२७,८६३	२८,३४७
बम्बई	„	. .	. .	. .	२०,७५३	३६,६६७	१८,५५३
ब्रह्मा	„		. . .	. .	२,३८८	२,७९०	२,४५१
दिल्ली	„	९०२	१,०६७	१,५५३	१,३९७	२,५९७	१,३१८
गुजरात	„	+	२,८२०	+	+	३,०५२	+
कर्णाटक	„	३,०५३	४,०७०	३,९१३	८,०२१	७,६९६	७,०९४
महाराष्ट्र	„	३,८०८	१,३६८	२,९७४	१५,१५१	१४,८९५	१३,३२६
पंजाब	„	५,१९६	७,८२१	८,५०६	८,६४३	११,५७३	७,०८३
तामिलनाड	„	५७,४३०	८५,२५८	५८,०४९	६७,४७७	९३,२२६	७२,३३०
केरल	„	१,०४९	१,१००	९३०	४,५६१	२,९८९	३,४८१
युक्त प्रान्त	„	६,२४८	११,६५०	८,४७५	१४,०४५	१८,३११	१६,५४०
उत्कल	„	३,६५९	२,४२८	४,३०४	४,७४३	५,९७८	३,७६०
कुल	रु.	१,४३,४५०	१,८७,६७९	१,४८,०९३	२,४७,८७५	३,०३,०१६	२,४०,५३५

+ अंक नहीं मिले हैं ।

विदेशी माध्यम

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ४६

मुद्रक-प्रकाशक मोहनलाल मगनलाल भट्ट | अहमदाबाद, श्रावण वदी २ संवत् १९८४ गुरुवार, ५ जुलाई, १९२८ ई० | मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय १२

नील का दाग

चंपारण राजा जनक की भूमि है। चंपारण में जैसे आम के वन हैं, वैसे ही सन् १९१७ में नील के भी खेत थे। वहांके किसान अपनी ही जमीन के [illegible] हिस्से में, जमींदार के लिए नील की [illegible] को कानून से बंधे हुए थे। इसका नाम तिनकठिया था। बीस कट्ठे का एक बीघा और बीघे में तीन कट्ठे की नील की फसल बोने का नाम तिनकठिया का रिवाज।

मुझे यह कबूल करना चाहिए कि वहां जाने के पहले मैं चंपारण का नाम निशान भी नहीं जानता था। यह ख्याल भी नहीं के ही समान था कि नील की फस्ल होती है। नील की गोटियाँ देखी थीं, मगर इसका कुछ भी पता नहीं था कि वे चंपारण में बनती थीं और उनकी बदौलत हजारों किसानों को दुःख उठाना पडता था।

राजकुमार शुक्ल चंपारण के एक किसान थे। उनपर दुःख पड़ा था। यह दुःख उन्हें सालता था। किन्तु अपने दुःख में से ही सबकी नील की जलन दूर करने का उत्साह उन्हें हो आया था।

लखनऊ की महासभा में मैं गया था। वहां इस किसान ने मेरा पल्ला पकडा। मुझे ये यों कहते जायँ कि, "वकील बाबू, आपको सब हाल बतायेंगे," और चंपारण जाने के लिए न्यौता भी देते जायँ।

वकील बाबू थे चंपारण के मेरे प्रिय साथी, बिहार के सेवा-जीवन के प्राण ब्रजकिशोर बाबू। उन्हें राजकुमार शुक्ल मेरे तंबू में ले आये। वे काली अचकन, और पायजामा वगैरह पहने हुए थे। मुझपर कोई अच्छी छाप न पडी। मैंने मान लिया कि भोले किसान को लूटनेवाले कोई वकील साहेब होंगे।

मैंने चंपारण का किस्सा थोडा सा उनसे सुना। अपने रिवाज के मुताबिक मैंने जवाब दिया, "खुद देखे बिना, इस विषय पर मैं कोई राय नहीं दे सकता। आप महासभा में बोलिएगा। मुझे तो अभी छोड ही दीजिएगा।" राजकुमार शुक्ल को महासभा की मदद तो चाहिए ही थी। चंपारण के बारे में महासभा में ब्रजकिशोर बाबू बोले और सहानुभूति का प्रस्ताव पास हुआ।

राजकुमार शुक्ल खुश हुए, किन्तु इतने से ही उन्हें संतोष न हुआ। वे तो मुझे स्वयं चंपारण के किसानों का दुःख दिखलाना चाहते थे। मैंने कहा, "अपने भ्रमण में मैं चंपारण को भी लूँगा और एक दो दिन दूँगा।" उन्होंने कहा, "एक दिन काफी होगा, नजरों से देखिए तो सही।"

मैं लखनऊ से कानपुर गया। वहां राजकुमार शुक्ल तो हाजिर थे ही और बोले, "यहां से चंपारण बहुत नजदीक है। एक दिन दे दीजिए।" मैंने कहा, "अभी तो मुझे माफ करो। किन्तु मैं वचन देता हूँ कि आऊँगा।" इससे मैं और अधिक बँधा।

मैं आश्रम गया तो राजकुमार शुक्ल मेरे पीछे ही लगे हुए थे। "अब तो दिन मुकर्रर कीजिए।" मैंने कहा, "जाओ, मुझे फलां तारीख को कलकत्ते जाना है। वहां आना और मुझे ले जाना।" कहां जाना, क्या करना, क्या देखना—मुझे कुछ भी पता नहीं था। कलकत्ते में मैं जब भूपेन बाबू के यहां पहुंचा, उसके पहले से ही राजकुमार शुक्ल ने उनके यहां डेरा डाला था। इस अपढ, अनघड किन्तु निश्चयवान किसान ने मुझे जीत लिया।

कलकत्ते से हम दो जनें रवाना हुए। दोनों की एक सरीखी जोडी थी। दोनों किसान जैसे लगते थे। राजकुमार शुक्ल जिस गाडी में ले गये, उसमें हम दोनों घुसे। सबेरे पटने उतरे। पटने की यह मेरी पहली ही मुसाफिरी थी। पटने में मेरी किसीके साथ ऐसी पहचान न थी कि उसके घर पर जा ठहरूँ। मेरे मनमें ऐसा था कि जोकि राजकुमार शुक्ल अनघड किसान हैं, मगर किसी न किसी के यहां इनका कुछ सिलसिला तो होगा ही। ट्रेन में मुझे उनकी कुछ और खबर मिलने लगी। पटने में बात खुल गयी। राजकुमार शुक्ल की बुद्धि निर्दोष थी। उन्होंने जिनको मित्र माना था, वे उनके मित्र नहीं थे, मगर राजकुमार शुक्ल उनके आश्रित के समान थे। किसान मुवक्किल और वकील के बीच अंतर तो चौमासे की गंगा की चौडी पाट के बराबर था।

मुझे वे राजेन्द्र बाबू के यहां ले गये । राजेन्द्र बाबू पुरी गये हुए थे। बँगले पर एक दो नौकर थे । खाने का सामान मेरे पास कुछ था । मुझे खजूर की जरूरत थी । सो बेचारे राजकुमार शुक्र बाजार में से लाये ।

किन्तु बिहार में तो छुआछूत का रिवाज सख्त था । मेरी डोल के पानी की छींटों से नौकर को छूत लगती थी । नौकर क्या जाने कि मैं कौन जाति हूंगा । राजकुमार ने अंदर के पायखाने का उपयोग करने को कहा । नौकर ने बाहर के पायखाने की ओर उंगली दिखलायी । मेरे लिए इसमें घबराने या रोष करने का कोई कारण नहीं था । ऐसे अनुभवों में मैं पक्का हुआ था । नौकर तो अपना धर्म पालता था और राजेन्द्र बाबू के प्रति अपना फर्ज बजाता था । इन मजेदार अनुभवों से राजकुमार शुक्र के बारे में जिस तरह मेरा मान बढा, उसी तरह ज्ञान भी बढा । पटने से मैंने लगाम अपने हाथों ली ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

शिक्षा–विषयक प्रश्न

४

प्र० गुजरात विद्यापीठ के ध्येयों में लिखा है कि भारतवर्ष का उत्कर्ष गांवों पर निर्भर है, शहरों पर नहीं । अगर बात ऐसी हो तो हमारे शहर के लडकों को आप किस लिए पतित करते हैं? गांव के लडकों को आप भले ही गांव की शिक्षा देवें । शहर के लडके शहरी जीवन बिताना चाहते हैं । इन्हें इनके लायक शिक्षा आप क्यों नहीं देते हैं? और विद्यापीठ के लिए धन तो शहरों में से ही मिलता है न? विद्यापीठ को आप किसी आदर्श गांव में ही ले जायँ और गांवों में से ही रुपये या अनाज और कपास मांगें तो हमें कुछ नहीं कहना है?

उ०—सद्भाग्य से ऐसा प्रश्न बहुत से शहरियों या शहर में रहनेवाले विद्यार्थियों के दिल में नहीं उठता । गांवों के विद्यार्थियों को उनके खर्च से शिक्षा दो—यह बात प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार शहरी मंडल के मुँह से कैसे निकलेगी? विद्यापीठ की तो उत्पत्ति ही इस से हुई कि शहरियों का ध्यान गांवों की ओर गया । शहरी लोग ही अपनी आंख खुलने बाद विद्यापीठ को चलाने लगे । अगर वह मुख्य कर के गावों की सेवा के लिए ही चले तो उसे चलाने का खर्च गांववाले ही क्यों देवें? गांवों में चलने वाली शिक्षा की व्यवस्था भी तो अभी शहरियों को ही चलानी है। जो इल्जाम शहरी लोग सरकार के विरुद्ध लगाते हैं, वही गांव वाले शहरी लोगों पर भी लगा सकते हैं, "तुम शहरवालों ने तो हमें लूटा है, अब भी लूट रहे हो । महज लूटना ही बंद कर दो तो तुम्हारी कृपा। हम गयी गुजरी बिसार देंगे।" हममें से कई शहरी यह वस्तुस्थिति समझ गये, इस लिए हम चेते । हमने गांववालों के प्रति किया हुआ अपना भारी अन्याय समझा और इस लिए प्रायश्चित्त करने का निश्चय किया । उसमें पहला भाग तो था, उस सरकार से असहयोग करना, जिसकी सहायता तथा बल से गांवों का सत्व हरण करने का काम संभव हो सका था, और अभी हो सकता है । और दूसरा यह था कि 'असहयोग' का गूढार्थ हम ज्यों ज्यों समझते गये त्यों त्यों, सहयोग के परिणामों से बचने का रास्ता सीखते गये । अगर हम असहयोग करने बाद हाथ पर हाथ रख कर ही बैठ रहते तो कहा जाता कि हमने असहयोग का अर्थ ही नहीं समझा है । अगर कोई हमारे घर में से माल लूट ले जाता हो तो सिर्फ उसकी मदद न करनी ही भर बस नहीं है, बल्कि उसके लूट का विरोध करना पडता है, उससे होनेवाले परिणामों को त्यागना भी पडता है । तभी लुटेरे के साथ सच्चा असहयोग सधा हुआ कहा जायगा । यह असहयोग या तो हिंसक या अहिंसक, शान्त या अशान्त, पशुबलवाला या आत्मबलवाला हो सकता है । हमने अहिंसक, शान्त, और आत्मवाला पसंद किया है और उससे सीखा है कि हम कितने शहरी गांवों में से जो द्रव्य चूस लाकर जीते हैं और मजे उडाते हैं उसके लिए प्रायश्चित्त के रूप में हमें गांवों की कुछ सेवा करनी चाहिए, उनका कुछ बदला देना चाहिए। इसी विचार श्रेणी में से विद्यापीठ की उत्पत्ति हुई और हममें से कितने जागृत हैं, सत्य के पुजारी हैं, इस लिए दिनों दिन असहयोग का भेद समझते जाते हैं और उस हद तक विद्यापीठ का स्वरूप शुद्ध करते जाते हैं । अब यह बात समझ में आ सकेगी कि शहरियों के दिये हुए धन का मुख्य भाग गांवों को शिक्षा देने में ही क्यों खर्च होना चाहिए । और वह शिक्षा अभी तो विद्यापीठ के तैयार किये हुए शहरी स्नातकों के ही जरिए दी जा सकती है।

मेरी मान्यता तो यहां तक है कि हम अगर विद्यापीठ के लिए मिले धन का कोई दूसरा उपयोग करें तो लोगों को दिये हुए विश्वास का यह घात होगा । धन देनेवालों ने इस मान्यता से धन दिया है कि उसका उपयोग चालू प्रथा से दूसरे ही तौर की, और जैसी कि मैंने वर्णन की है वैसी शिक्षा के देने में होगा ।

प्र० विद्यापीठ ने आठ वर्ष से अस्पृश्यता–निवारण का आग्रह रक्खा है । इस के फल स्वरूप अब तक कितने अछूत स्नातक या विनीत तैयार हुए हैं?

उ० मुझे यह प्रश्न विचित्र और अज्ञान–मूलक जान पडता है क्योंकि अस्पृश्यता–निवारण का यह अर्थ कभी नहीं है और न होना चाहिए कि हम अस्पृश्य कहे जानेवाले युवकों को स्नातक अथवा विनीत बनावें । यह संभव है, योग्य है कि समय पाकर उनमें से कितने स्नातक अथवा विनीत बनें । यह भी योग्य है कि ऐसों को मदद करने के लिए विद्यापीठ हमेशे तैयार रहता है । किन्तु अंत्यज स्नातक बनाना अस्पृश्यता-निवारण का अंग किसी तरह नहीं है। विद्यापीठ ने अपने अस्तित्व को ही जोखम में डाल कर, लाखों नहीं तो हजारों रुपयों की सहायता से हाथ धोकर, और दूसरी सभी तरह से अपनी व्यवस्था में सहायता करने लायक कितने सज्जनों की सेवा से बाज आकर अस्पृश्यता–निवारण का अपना आग्रह और पक्षपात सिद्ध किया है ।

प्र० अब्रह्मचर्य से राष्ट्र में शारीरिक और मानसिक दुर्बलता आ गयी है और सतत उद्योग तथा पराक्रम ढीले पड गये हैं । यह हम स्पष्ट देखते हैं । तौभी आपने विद्यापीठ के ध्येयों की अंतिम कलम में ब्रह्मचर्य शब्द क्यों नहीं आने दिया?

उ० यह प्रश्न ठीक पूछा गया है । यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि राष्ट्र में अब्रह्मचर्य से ही शारीरिक और मानसिक दुर्बलता आ गयी है और सतत उद्योग तथा पराक्रम ढीले पडे हैं। यह भी नहीं सिद्ध किया जा सकता कि ब्रह्मचर्य से शारीरिक दुर्बलता का नाश हो ही जाता है । इस लिए व्यायाम के साथ ब्रह्मचर्य को जोड कर, इस अलौकिक वस्तु को चाहे जितनी ही सरस किन्तु क्षणिक वस्तु के साथ जोड कर, क्यों हलकी करें, पतित बनावें । पश्चिम के लोग ब्रह्मचारी नहीं हैं, किन्तु वे इसलिए मन से या शरीर से दुर्बल नहीं हैं । उनका सतत उद्योग और उनका पराक्रम अनुकरणीय हैं । गुरखे, पठान, सिख, डोंगरा और अँगरेजी सिपाही जो शरीर से मजबूत और हट्टे कट्टे होते हैं, कुछ ब्रह्मचारी नहीं कहे जा सकते । वे व्यायाम में हमारी व्यायामशालाओं के विद्यार्थियों को हरा देंगे । ऐसे अनेक दृष्टान्त दे कर हम सिद्ध कर सकते हैं कि यह बात सच्ची नहीं है कि शारीरबल, एक प्रकार का मानसिक बल, सतत उद्योग, और पराक्रम, ये चारों वस्तुएँ ब्रह्मचर्य के बिना प्राप्त हो ही नहीं सकतीं । मेरी कल्पना का ब्रह्मचर्य ब्रह्म को दिलाने-

…, ऊपर की वस्तुओं से परे है। यह आप ही साधन और … है, इसलिए उसके पालन के लिए मैं शरीर का होम कर देने को तैयार हो जाऊँगा। जिसे शरीर का मोह है, वह अविच्छिन्न ब्रह्मचर्य का पालन शायद ही कर सके। यहां भीष्मादि के ब्रह्मचर्य के उदाहरण लेना भूल में पडने के समान है। महाभारत, …आदि में वर्णित वस्तुओं के अक्षर को पकडे रहने से हम असत्य के रास्ते चलेंगे और खाई में गिरेंगे। उनके मर्म को समझ कर, …का पालन करने से और उसके अनुभव में उतरने से हम …ही ऊँचे चढेंगे।

शरीर फेंक देने लायक वस्तु नहीं है। यह अगर रावण के … का स्थान बना है, तो राम की अयोध्या भी बना है। यह …क्षेत्र है तो धर्मक्षेत्र भी है। इसलिए हमें उसकी अवगणना नहीं …ी है। उसे आरोग्यवान, बलवान रखने की जरूरत है। इस … यह कहने में व्यायाम की कहां कम स्तुति होती है कि उसे …त की पूरी जरूरत है। और इतना कहने में सत्य का पालन … है तथा विद्यार्थी को व्यायाम प्रिय बनाने के लिए इतना … बस है और हुआ है। इससे उलटे, व्यायाम और ब्रह्मचर्य के … अनिवार्य संबंध जोडने जाकर हम न सिर्फ अतिशयता के ही … में पडेंगे किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाला विद्यार्थी व्यायाम …से हटे तो भूल में पड कर अपना विचारदोष सुधारने के …, ब्रह्मचर्य की निंदा कर, उसके उसे त्याग कर बैठने का पूरा … भय है।

ब्रह्मचर्य को शरीर बल के आश्रय या ओट की जरूरत नहीं है। …चर्य की आवश्यकता और बहुत अधिक अच्छी तरह से सिद्ध की … सकती है। पश्चिम के पास शारीरिक बल, मानसिक बल इत्यादि …त भले ही हों, मगर उसके पास आत्मबल कहां है? जो घडी … में विकार के वश हो सकता है, जो अपना विरोध जरा भी … सह सकता, जिसका मनोबल, उद्योग और पराक्रम दूसरी प्रजा …टने में, उसका नाश करने में इस्तैमाल होता है, उसकी इस …त का द्वेष ही क्या? उसका अनुकरण ही किस लिए? क्यों कि …रा सारा बल अब्रह्मचर्य के साथ संबंध रखनेवाला है, इस लिए … जगत की शुद्ध उन्नति का घातक सिद्ध हुआ है और इसी लिए …उसे राक्षसी कहा है। यहां मैं पश्चिम की अवगणना करना … चाहता। पश्चिम में बहुत लोग नीति की, सत्य की पूजा …वाला पडे हुए हैं। बहुत से ब्रह्मचारी भी पडे ही हुए हैं। … दुःखद वेग का वर्णन कर रहा हूँ, उसे वे समझते हैं। इस … पश्चिम की समग्र प्रवृत्ति का परिणामों का वर्णन हम जानबूझ … उनके प्रति मान और प्रेम रख कर भी कर सकते हैं। …की सभ्यता अगर ब्रह्मचर्य के आदर्श पर रची गयी होती तो आज …की स्थिति दूसरे ही प्रकार की और दयाजनक होने के बदले सुन्दर …यों जगत के अंदर अब्रह्मचर्य के दुःसह परिणामों को पहचान कर, ब्रह्मचर्य का आदर्श स्वतंत्र रूप से प्रजा के आगे रखना चाहिए। … के बिना आत्मा का पूर्ण विकास असंभव है। ब्रह्मचर्य के … मनुष्य वे लगाम के हृष्ट पुष्ट किन्तु जंगली घोडे के समान … रहे, मगर सभ्य नहीं बन सकता। ब्रह्मचर्य के बिना … सतत उद्योग और सात्विक पराक्रम असंभव है। ब्रह्मचर्य … मन बलवान् सा भले ही लगे, मगर वह हजारों तरह के … और प्रलोभनों का गुलाम हो कर चलेगा। और ब्रह्मचर्य … शरीर भले ही पुष्ट हो जाय किन्तु वह वैद्यक की दृष्टि से आरोग्य तो कभी पा ही नहीं सकता। शरीर में चर्बी बढाना, …शां मजबूत करना आवश्यक नहीं है। जो शरीर सूखी …सा होने पर भी सर्दी, गर्मी, वर्षा सभी सहन कर सकता हैं और जो संपूर्णता से नीरोग रह सकता है, ऐसा आरोग्यवान् शरीर ब्रह्मचर्य के बिना असंभवित है। यह मेरा थोडे दिनों का अनुभव नहीं है किन्तु दीर्घ काल का अनुभव है। मैं इसके असंख्य दृष्टान्त अपने जीवन में से, अपने साथियों के जीवन में से दे सकता हूँ कि किस तरह एक एक मनोविकार से मनुष्य-शक्ति का, उसकी आत्मा का हनन होता है। इस लिए मैं तो कहूँगा कि शरीर क्षीण हो तो हो जाय, नष्ट हो जाय, तब भी आत्मार्थी को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

हमारे विद्यार्थियों के शरीर की और मन की दुर्बलता के कारण जुदा ही हैं। उनमें बाल-विवाह, हम सबके खुद बाल-विवाह की प्रसादी होना, कुटुंबजाल का बोझा, गरीबी के कारण सात्त्विक खूराक की अपूर्णता या अभाव वगैरह कारण हैं। बाल-विवाह को अब्रह्मचर्य में गिन कर निकाल डालने की भूल में पाठक न पडें। विद्यार्थियों में बचपन से जो कुटेव घर कर गये हैं, उन कुटेवों को निकालने के लिए महाप्रयत्न की जरूरत है। समाज के घातक रिवाज सुधारने चाहिए, शिक्षा का कृत्रिम जोझ कम करना चाहिए। किन्तु यह विषय ही दूसरा है। इस लिए इसकी चर्चा यहां नहीं करूँगा। इतना ही कह दूँगा कि केवल व्यायाम से ही हमारे विद्यार्थियों का शरीर घड नहीं सकता। सभी दिशाओं में एक सा प्रयत्न जब हो तभी हम यथेच्छ परिणाम पैदा कर सकते हैं।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

शुद्ध व्यवहार

बंबई खादी भंडार से भाई विट्ठलदास जेरांजाणी लिखते हैं!

"कोई मराठा मजदूर, महीने दिन हुए हमारे भंडार से खादी का अधबँहिया कुर्त्ता खरीद ले गया था। इस कुर्त्ते की बिक्री की रसीद उसने अपने पास संभाल रक्खी। फिर एक दिन उस रसीद के साथ वही कुर्त्ता लेकर वह भंडार पर पहुँचा। यह कुर्त्ता महीने भर के भीतर ही फट गया था। (फटने के अनेक कारण हो सकते हैं) कुर्त्तेकी कीमत रु. १) थी। मैं ने तुरत ही फटे कुर्त्ते के बदले, उसे नया कुर्त्ता दे दिया। अब उसके आनंद का तो कोई पार ही नहीं रहा और वह बहुत संतोष पूर्वक गया। यही भाई आज फिर आया और खादी की थोक खरीद ले गया। अगर कुर्त्ता बदल न दिया होता तो दूसरी खरीदी तो यह भाई कभी नहीं करता। खादी बिक्री करते समय जब कभी ऐसी अचानक घटनाएँ हों तब भंडार की प्रतिष्ठा की खातिर नुकसान आवे उसे सह लेने से नुकसान नहीं होता, बल्कि आखिर में फायदा ही होता है। यह बात हमारे सारे हिन्दुस्तान के सभी भंडारों के जानने लायक है।"

ऐसे दृष्टान्त बहुत से दिये जा सकते हैं। ऐसे व्यवहार से अंत में व्यापारी को फायदा ही होता है। यह सिद्ध कर दिखाया जा सकता है। बहुत से व्यापारी अनीति के मार्ग से ही चलते हैं। इसका कारण धनी बनने के अधैर्य के सिवाय दूसरा नहीं है। किन्तु खादी सेवक या खादी बेचनेवाले को तो अटूट धैर्य रखना है। खादी का सत्य, धैर्य और श्रद्धा के सिवाय दूसरा सांहारा नहीं है। इस लिए खादी भंडारों को भाई जेराजाणी की सूचना याद कर लेनी चाहिए।

(नवजीवन) **मो० क० गांधी**

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, श्रावण वदी २ संवत् १९८४

विदेशी माध्यम का अभिशाप

रियासत हैदराबाद के शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष नवाब मसूद जंग बहादुर ने कर्वे महिला विद्यापीठ में, हाल में ही, देशी भाषाओं के जरिए ही शिक्षा देने का बहुत जबर्दस्त समर्थन किया था। उसका जवाब 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने दिया है। मुझे, एक मित्र उसका नीचे का उतारा, जवाब देने के लिए भेजते हैं:

"उनके लेखों में जो कुछ मूल्यवान और काम का अंश है, वह पश्चिमीय संस्कृति का ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष फल है। . . . . पढ़ गया, बल्कि हम सौ वर्ष पीछे तक देख सकते हैं कि राजा राममोहन राय से ले कर महात्मा गांधी तक, किसी हिन्दुस्तानी ने जो कुछ भी किसी दिशा में कोई उल्लेखनीय काम किया है तो वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पश्चिमीय शिक्षा का ही फल है या था।"

इन उतारों में इसपर विचार नहीं किया गया है कि हिन्दुस्तान में उच्च शिक्षा के लिए अँगरेजी के माध्यम की क्या कीमत है, बल्कि ऊपर लिखे पुरुषों पर पश्चिमीय संस्कृति के प्रभाव पर तथा उनके लिए उसके महत्त्व पर विचार किया गया है। न तो नवाब साहेब ने, न और किसीने ही पश्चिमीय संस्कृति के महत्त्व या प्रभाव का इनकार किया है। विरोध तो इसका किया जाता है कि पश्चिमीय संस्कृति की वेदी पर पूर्वीय या भारतीय संस्कृति की बलि चढ़ा दी जाय। अगर यह साबित भी किया जा सके कि पश्चिमीय संस्कृति पूर्वीय से ऊँची है, तौभी कुल मिला कर भारतवर्ष के लिए यह हानिकर ही होगा कि उसके अत्यन्त होनहार पुत्र और पुत्रियाँ पश्चिमीय संस्कृति में पाली जायँ और यों अ-राष्ट्रीय बना कर, अपने साधारण लोगों से उनका संबंध तोड़ दिया जाय।

मेरी राय में ऊपर लिखे हुए पुरुषों का प्रजा पर जो कुछ भी अच्छा प्रभाव पड़ा, उसका मुख्य कारण यह था कि पश्चिमीय संस्कृति का विरोधी दबाव होते हुए भी वे अपने में कुछ न कुछ पूर्वीय संस्कृति को बचाये रख सके थे। इस संबंध में, इस अर्थ में कि पूर्वीय संस्कृति की अच्छी से अच्छी बातें उनमें पूरी पूरी खिल न सकीं, उनपर अपना प्रभाव पूरा पूरा डाल न सकीं, पश्चिमीय संस्कृति को विरोधिनी या हानिकारक समझता हूँ। अपने बारे में तो, जब कि मैंने पश्चिमीय संस्कृति का ऋण भलीभाँति स्वीकार किया है, यह कह सकता हूँ कि जो कुछ राष्ट्र की सेवा मैं कर सका हूँ, उसका एक मात्र कारण यह है, कि जहाँ तक मेरे लिए संभव हो सका है, वहाँ तक मैंने पूर्वीय संस्कृति अपने में बचायी है। अँगरेजी बना हुआ, अ-राष्ट्रीय रूप में तो मैं जनता के लिए उनके बारे में कुछ भी नहीं जानता हुआ, उनके तौर तरीकों की कुछ भी पर्वा न करता हुआ, शायद उनके ढंग, आदतों और अभिलाषाओं से घृणा भी करता हुआ, उनके लिए बिलकुल ही बेकार होता। आज राष्ट्र के इतने लड़कों के, अपनी संस्कृति में दृढ़ हो जाने के पहले ही, पश्चिमीय संस्कृति के, जो अपने स्थान पर ही जितनी भली क्यों न हो, मगर यहाँ तो, दबाव से छूटने के प्रयत्नों में जाया जानेवाली राष्ट्रीय शक्ति के माप का अनुमान लगाना कठिन है।

जरा इस प्रश्न को हम छोड़ कर विचार करें। क्या चैतन्य, नानक कबीर, तुलसीदास और कई दूसरे ऐसे ही लोगों ने जो काम किया है, उससे वे अच्छा कर सकते थे, अगर वे अपने बचपन से ही किसी अत्यन्त सुव्यवस्थित अँगरेजी शाला में भर्ती कर दिये गये होते? क्या इस लेख में उल्लिखित पुरुषों ने इन महान् सुधारकों से ज्यादह अच्छा काम किया है? दयानंद क्या किसी भारतीय विश्व विद्यालय के एम. ए. होने से कुछ और अच्छा काम कर लेते? इन आराम-तलब अँगरेजीदाँ राजे महाराजों में, जो अपने बचपन से ही पश्चिमीय संस्कृति के प्रभाव में रख कर पाले गये हैं, कौन सा ऐसा है जिसका नाम शिवाजी के साथ एक साँस में लिया जा सके, जिन्होंने अपने कष्टसहिष्णु आदमियों के साथ उनके खतरों और कष्ट के जीवन में उनका दुःख बँटाया? क्या वे सिंह प्रताप से अच्छे शासक हैं? क्या ये बहादुर लोग पश्चिमीय संस्कृति के भी अच्छे नमूने हैं, जब कि ये लंडन या पेरिस में बैठे तानारीरी कर मजे उड़ाते रहते हैं और इधर इनके राज्यों में आग लगी हुई है? इनकी संस्कृति में गर्व करने की कोई बात नहीं है कि ये अपने ही देश में विदेशी बन गये हैं, और अपनी जिस प्रजा पर शासन करने के लिए इन्हें नियति ने बैठाया है, उसके दुख दुःखों में शामिल होने के बदले ये उसका धन तथा अपनी आत्माएँ यूरोप में नष्ट किया करते हैं।

मगर प्रश्न तो पश्चिमीय संस्कृति का नहीं है। सवाल यह है कि किस भाषा के जरिए शिक्षा दी जाय। अगर यह बात भी होती कि हमें जो थोड़ी सी उच्च शिक्षा मिली है, या जो ही उल्लेखनीय शिक्षा मिली है, वह अँगरेजी के ही द्वारा मिली है तो ऐसी स्वयंसिद्ध बात को सिद्ध करने की कोई जरूरत न होती कि किसी देश के बच्चों को, अपनी राष्ट्रीयता बचाये रखने के लिए अपनी ही स्वदेशी भाषा या भाषाओं के जरिए, ऊँची से ऊँची, सभी शिक्षाएँ मिलनी चाहिए। निश्चय ही, यह तो स्वयं—स्पष्ट है कि किसी देश के युवक वहाँ की प्रजा से न तो जीवंत संबन्ध पैदा कर सकते हैं और न कायम ही रख सकते हैं, जब तक कि वे ऐसी भाषा के ही जरिए शिक्षा पाकर उसे अपने में जज्ब न कर लें, जिसे प्रजा समझ सके। आज इस देश के हजारों नवयुवक एक ऐसी विदेशी भाषा और उसके मुहावरों को सीखने में जो उनके दैनिक जीवन के लिए बिलकुल बेकार है और जिसे सीखने में उन्हें अपनी मातृभाषा या उसके साहित्य की उपेक्षा करनी पड़ती है, कई साल नष्ट करने को लाचार किये जाते हैं। इससे होनेवाली राष्ट्र की बे हिसाब हानि का अंदाजा कौन लगा सकता है? इससे बढ़ कर कोई वहम कभी था ही नहीं कि फलां भाषा का विस्तार हो ही नहीं सकता या उसके जरिए गूढ़ या वैज्ञानिक बातें समझायी ही नहीं जा सकतीं। भाषा तो अपने बोलनेवालों के चरित्र तथा विकास की सच्ची छाया है।

विदेशी शासन के कई दोषों में, देश के बच्चों पर विदेशी भाषा का मारक छापा डालना, सबसे बड़े दोषों में से एक गिना जायगा। इसने राष्ट्र की शक्ति हर ली है, विद्यार्थियों की आयु घटा दी है, उन्हें प्रजा से दूर कर दिया है और बेजरूरत ही शिक्षा खर्चीली कर दी है। अगर यह क्रिया अब भी जारी रही तो, ज्ञान पड़ता है कि यह राष्ट्र की आत्मा को नष्ट कर देगी। इसलिए जितनी जल्दी शिक्षित भारतवर्ष विदेशी माध्यम के वशीकरण से निकल जाय, प्रजा को तथा उसको उतना ही अधिक लाभ होगा।

(य. इं.)

मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियाँ

प्रोफेसर का बाल-विवाह

एक पाठक लिखते हैं:

"आप वृद्धों के बाल-विवाह के बारे में लिखा करते हैं। ... बाला इससे बच भी जाती है। किन्तु इस विवाह के बारे में आप क्या कहिएगा? ——के प्रोफेसर हैं। उनका नाम——। एम. ए. पास हैं। उम्र ४५ वर्ष से ऊपर है। उन्हें पांच सन्तानें हैं। उनमें एक पुत्र भी है। एक पुत्री का विवाह हो चुका है। इन प्रोफेसर साहेब ने कुछ ही दिन पहले अपनी लडकी होने लायक ... वर्ष की लडकी से विवाह किया है। जब कि हमारे शिक्षक और पढे लिखे लोग ऐसा करते हैं, तब अपढ व्यापारी और दूसरे लोग विवाह करें तो उनका क्या दोष?"

इन प्रोफेसर महाशय के नाम ठाम वगैरह लेखक ने मेरे पास लिख भेजे हैं। यह सुधार सहज नहीं है। शिक्षित अशिक्षित का भेद किये बिना, जहां तक हो सके, सुधारक को वातावरण को शुद्ध करना ही होगा। पढे लिखे जब तक न समझें, तब तक हम उनकी बातों के बारे में उदासीन न बनें। जिस हद तक और जहां जहां बाल विवाह के बारे में लोक मत जाग्रत किया जा सके, वहां वहां करना चाहिए। हमारी आजकल की शिक्षा का आत्म-विकास के साथ बहुत कम संबंध है। यह हम ऐसे उदाहरणों से रोज ही देखते आते हैं। और गहरे उतरने पर हम यह भी देखते हैं कि ऐसी बातों में लोकमत शिथिल है, और कुछ हद तक ऐसे बुरे विवाहों को पसंद भी करता है। बात अगर ऐसी न हो तो अपनी लडकी बनने लायक, बाला को ब्याह लानेवाले को कोई संस्था रखेगी ही क्यों? प्रोफेसर क्यों बनावेगी? वैसे प्रोफेसर के पास विद्यार्थी पढे ही क्यों? ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जब कि किसी विद्यार्थी का अपमान करनेवाले प्रोफेसर का बहिष्कार विद्यार्थियों ने किया है। जो प्रोफेसर बाल-विवाह कर लाता है, वह अपने विद्यार्थियों का और अपने समाज का अपमान करता है। किन्तु इस अपमान को प्रजा और विद्यार्थी वगैरह सभी सहते हैं। जिस पाप को समाज सहने के लिए तैयार नहीं है, वह पाप करना प्रायः अशक्य हो पडता है। इस लिए बाल-विवाह इत्यादि दुष्ट रिवाजों के विरुद्ध धीरजपूर्वक लोकमत तैयार करना और जहां शान्त बहिष्कार संभव हो, वहाँ उस अस्त्र का उपयोग करके प्रजामत को तैयार करना चाहिए और ये काम करने में युवक वर्ग अगर आप शुद्ध और संयमी हो, या बन जाय तो बहुत बडी सहायता दे सकता है।

'शब्दकोष'

एक आश्रमवासी, आश्रम नियमावलि पढ कर व्रतों की नीचे ऐसी टीका करते हैं और फिर खुद 'शब्दकोष' शीर्षक देकर अपनी बनायी व्याख्या देते हैं:—

"आश्रम के व्रतों की व्याख्या संपूर्ण होने पर भी वे झट समझ में नहीं आते हैं। यह साफ दिखलायी नहीं पडता है कि करना क्या है, इसलिए मैंने अपनी समझ के अनुसार उनके अर्थ किये हैं या यों कहिए कि शब्दकोष बनाया है।

"**सत्य**—चाहे जहाँ हो, कृत्रिमता का त्याग करना। अपने शुद्ध स्वभाव की खोज करनी।

अहिंसा—क्या मनुष्य, और क्या पशु, किसीको कष्ट नहीं पहुँचाना। जब जब घर्षणों से क्लेश पैदा हो, तब तब क्लेश में दूसरों को शामिल करने का प्रयत्न न करते हुए, अपने पर ही सब क्लेश ओढ लेना।

ब्रह्मचर्य—स्थूल और सूक्ष्म सभी आवेगों को उभरते ही जला डालना, दवा लेना। सदैव प्रसन्न रहना। पवित्र वस्तुओं में चौबीसों घंटे एकाग्र रहना।

अस्वाद—कडकती हुई भूख में खाने बैठना और आधे पेट ही उठ जाना। जिस खुराक को तैयार करने में बहुतों की मिहनत लगी हो, ऐसे भोजन के पास फटकना भी नहीं।

अस्तेय—अपनी जरूरतें दिनों दिन कम से कम करते जाना। कल्ह से आज की जरूरियतें कम होनी चाहिए।

अपरिग्रह—हर होली या दीवाली को रु. २५) से अधिक जितने रुपये हों, वे सब अपने पास से निकाल देने। एक साल से अधिक की खर्ची किसीके पास न रहे। [एक साल की भी खर्ची किस लिए? मा० क० गांधी]

शारीरिक परिश्रम—देह न चुरानी।

स्वदेशी—पडौसियों के प्रति बेवफा न बनना।

अभय— यस्मान्नो द्विजते लोको, लोकान्नो द्विजते च यः।

अस्पृश्यता निवारण—पामर, हीन दीन जैसे लगने और गिने जानेवाला आदमी भी मुझसे अधिक हीन दीन और पामर नहीं है - ऐसी तीव्र भावना।

सहिष्णुता—इस अभिमान का त्याग कि जिसे मैं नहीं देखता वह हो ही नहीं सकता।

स्वयंसेवक की कठिनाई

बारडोली सत्याग्रह छावनी से एक भाई लिखते हैं:

"मान लीजिए कि कोई आदमी राष्ट्रीय कार्य में काम कर के मुशाहरा लेता हो, मगर वेतन लेने पर भी घर का खर्च पूरा न पडता हो, जिसके कारण जंगम और स्थावर मिल्कियत भी दिनों दिन घटती जाती हो। अब वह बारडोली जैसी लडाई छिडने पर वह वेतन छोड कर लडाई में जाता है। तब घर का क्या हो? मान लीजिए कि ईश्वर के आधार पर वह छोड कर जाता है और वहाँ घर वाले दलील करते हैं: 'तुम तो जहाँ जाओगे, वहाँ पेट भरने का तो मिलेगा ही। मगर हम सब क्या भूखे ही रहें?' क्या यह दलील सुननेवाला भी लडाई में जाय?

"आप कहेंगे कि घरवालों को भी लडाई में ले जाय। मगर कुटुंब बडा हो, लडाई के लिए निरुपयोगी हो, जिससे प्रजा के लिए भार रूप हो पडे। इसलिए उसे नहीं ले जाया जा सके। तब क्या किया जाय?

"अगर उस आदमी का विचार वेतन ले कर, चाहे कोई न कोई राष्ट्रीय काम ही करने का हो। बहुत पढा लिखा न हो। तब उसके लिए वेतन ले कर राष्ट्रीय काम करना उत्तम या बिना वेतन के लडाई में जाना उत्तम है? योग्य रास्ता बतलाने की कृपा कीजिएगा।"

इस भाई की जैसी स्थिति जान पडती है, वैसी इस देश में बहुतों की होती है। न्याय तो यह है कि जिसने सेवा को धर्म माना है, वह उसकी खातिर कुटुंब को बलिदान कर देगा। किन्तु यों शुद्ध न्याय जानते हुए भी हमारे व्यवहार के लिए हमेशे सीधी रेखा खिंची हुई नहीं होती है। सामान्य तौर पर आदमी कुटुंबधर्म और देशधर्म के बीच झूला करता है। आदर्श स्थिति में ये दो धर्म विरोधी नहीं होते किन्तु बाह्य स्थिति में दोनों के बीच बहुत बार विरोध ही देखने में आता है। क्योंकि कुटुंब प्रेम स्वार्थ पर रचा हुआ होता है, कुटुंबीजन स्वार्थ के पूजनेवाले होते हैं, इस लिए सामान्य व्यवहार यह बतलाया जा सकता है कि कुटुंब की साधारण, यानी हिन्दुस्तान की कंगालियत में जो चल सके ऐसी ही, जरूरतें पूरी करने के बाद ही देश-सेवा में पडना चाहिए। कुटुंब को रोता छोड कर कोई देश-सेवा नहीं कर सकता। किन्तु कुटुंब किसे

कहना? उसमें भी किसका निर्वाह करना हो? एक गोत्र के सभी आदमियों को कुटुंब कह कर जो मन को भुलाता है, उसके लिए यह लेख नहीं है। और न यह लेख उनके लिए है जो कुटुंब के सशक्त लोगों को घर बैठे खिलाने की अभिलाषा रक्खें। जो देश-सेवा करना चाहते हैं, वे तो ऐसी बावतों में पूर्ण शुद्ध रह कर अपना अपना काम चलावेंगे। मेरा अनुभव ऐसा है कि ऐसे आदमियों के कुटुंबों को भूखों नहीं मरना पडता। राष्ट्र सेवा में लगे हुए को अपनी सच्ची जरूरतें पूरी करने लायक लेने का अधिकार है और इस अधिकार से आज सैकडों सेवक अपना और अपने आश्रितों का पोषण करते हैं।

(नवजीवन) मो॰ क॰ गांधी

क्या यह चलता भी है?

किसी आर्थिक प्रस्ताव की परीक्षा उसके चलने पर ही होती है। मगर शुरुआत तो सभी चीजों की थोडे से ही होती है। और तो और हिन्दुस्तान में कपडे की पहली मिल सन् १८३८ ई. में खुली थी तो दूसरी मिल उसके १५ साल बाद खुली। मगर फिर बाईस वर्ष के भीतर ही ४६ नयी मिलें और खुल गयीं। खादी के बारे में ७ वीं मार्च १९२७ के यं. इं. में गांधीजी ने लिखा था, "गत वर्ष सन् १९२० की बनिस्बत बीस गुणा अधिक खादी का काम हुआ है। आज चर्खा संघ की ओर से १५०० गांवों में ५०,००० कतवैयों की सेवा हो रही है। बुन कर, धोबी, छपेरे, रंगरेज और दर्जी इतने अलावा हैं।"* इसके साथ यह भी याद रखना चाहिए कि शुरू के दो वर्षों में खादी को जिस राजनीतिक उत्साह का सहारा मिला था, वह भी अब नहीं रहा है। यह मिलान तो अवश्य ही खादी की उन्नति के बारे में उत्साहप्रद है।

इसके बाद ग्रेग साहेब अ॰ भा॰ चर्खा-संघ के प्रकाशित आंकडों से यह दिखलाते हैं कि खादी ने गत ४, वर्षों में कितनी उन्नति की है। उनके आंकडों को जहां तक संपूर्ण बनाया जा सका है बनाने का प्रयत्न किया गया है।

खेद है कि इन आंकडों में खादी का परिमाण वर्ग गजों में या वजन में नहीं दिखलाया गया है। दर में फर्क पडने के कारण यह कहना कठिन हो गया है कि दर असल कितनी खादी बनी।

सभी प्रान्तों में खादी की कुल पैदावार

(कीमत रुपयों में)

महीना	वर्ष १९२८	१९२७	१९२६	१९२५
जनवरी	१,८१,९४०	१,३७,९२६	१,८४,०६७	
फ़रवरी	१,४१,८६८	१,६८,६२०	१,६०,०६८	...
मार्च	१,४२,४५०	१,९३,५३२	१,५२,४४५	...
अप्रैल	१,४२,६३१	१,६४,४७३	१,४४,७४२	...
मई		१,७९,९७६	१,५८,९४१	...
जून		१,८९,१७०	१,३२,२०४	
जुलाई		२,२९,४९३	२,०३,५२०	
अगस्त		२,३३,३८५	१,९५,१९५	सितम्बर तक
सितम्बर		२,२४,८३९	२,१३,७३२	के पूरे १९,०३,०३४
अक्तूबर		२,४२,३६९	१,९८,३३८	१,८८,५७२
नवम्बर		२,०३,६६६	१,७२,२६८	१,८६,०८५
दिसम्बर		१,७८,१६५	१,७१,४८३	२,३४,८१२
कुल	६,०८,८८९	२३,४५,६१४	२०,८७,००३	२५,१२,५१०

* अब यह संख्या १ लाख से अधिक की समझी जाती है।

उप॰ स॰ 'हि॰ नवजीवन'

सन् १९२४ में कुल पैदावार रु. ९,४९,३४८) की हुई। उस साल के महीनेवार आँकडे नहीं मिलते हैं।

विशेष—इससे पहले के सही अंक सुलभ नहीं हैं।

सभी प्रान्तों में खादी को कुल बिक्री

(क़ीमत रुपयों में)

महीना	वर्ष १९२८	१९२७	१९२६	१९२५
जनवरी	२,६९,२४०	२,७७,२६१	२,४५,७०९	
फरवरी	२,३७,०३१	२,३९,०५४	२,३२,८३९	...
मार्च	२,४७,८७५	३,०७,३२६	२,४५,६३४	...
अप्रैल	३,१८,१३३	३,१४,१६२	२,७२,३७३	...
मई		२,७४,३२२	२,२८,८७९	...
जून		२,८६,२०६	२,२१,५१६	
जुलाई		२,४२,२६९	२,३५,१६९	सितम्बर तक
अगस्त		२,६१,१६४	१,७७,३९८	के कुल
सितम्बर		३,३८,१००	२,२०,१२३	३,३६,१०,६१*
अक्तूबर		३,२३,११२	३,२८,२५३	२,१२,९९४
नवम्बर		२,४५,३४२	२,६०,६१८	२,१४,९८२
दिसम्बर		२,५२,४५६	२,५९,८१४	३,१४,८०५
कुल	१०,७२,२७९	३३,७०,७७४	२९,२८,२७५	४१,०३,८४२

सन् १९२४ में कुल विक्री रु. १९,१६,८११ की हुई। मासिक हिसाब नहीं मिलता है।

*इन अंकों में एक बिक्री एक भंडार से दूसरे भंडार में होकर फिर ग्राहकों के हाथ होने के कारण कई बार जोड ली गयी है।

विशेष—इससे पहले के सही अंक सुलभ नहीं हैं।

बिक्री के भंडार

प्रान्त	बडे शहरों में	छोटे शहरों में	गांवों में
आंध्र	९	१०	१७
अजमेर	२	२	४
बिहार	१०	१२	६
बंगाल	१७	२३	१०
बंबई	४	—	—
बर्मा	१	—	—
मध्य भारत	२	—	—
दिल्ली	१	१	—
कर्णाटक	६	१४	४
केरल	१	३	—
महाराष्ट्र	८	१०	२
पंजाब	१०	८	—
तामिल नाड	११	२४	१७
संयुक्त प्रांत	७	५	—
उत्कल	४	१	३
गुजरात	८	५	११
कुल	९५	११८	७४

ये अंक बहुत पुराने हैं। संभवतः अब ये संख्याएँ बहुत बढ गयी होंगी मगर हाल की संख्याएँ सुलभ नहीं हैं।

इनके अलावा बहुत से फेरीवाले, खास कर आंध्र और तामिलनाड में, कमीशन लेकर खादी बेंचते हैं। कुछ फेरीवाले अपने ही नफे घटी के लिए भी बेंचते हैं।

कई केन्द्रों में सूत की परीक्षा के लिए वैज्ञानिक यंत्र भी रक्खे हुए हैं। अ॰ भा॰ चर्खा संघ के शिक्षण विभाग ने सूत की परीक्षा

के लिए खास नियम भी बना कर तैयार किये हैं। इसके अलावा चर्खा संघ की ओर से सत्याग्रहाश्रम, साबरमती में खद्दर तैयार करने की सभी क्रियाएँ कपास चुनने से लेकर खादी की बुनाई, रँगाई, खादी के उत्पत्ति केन्द्र और बिक्री भंडार की व्यवस्था, हिसाब किताब रखना, वगैरह सभी कुछ सिखलाने के लिए तीन साल का पाठ्यक्रम रक्खा गया है। कई वर्ष से ऐसा ही पाठ्यक्रम साबरमती आश्रम में चला आ रहा है, मगर पहले वह ऐसा सुसंगठित नहीं था। और कई दूसरी जगहों में भी खादी–शास्त्र सिखलाया जाता है। संघ की ओर से इस विषय की विज्ञप्तियाँ, सूचनाएँ तथा पुस्तकें भी छपा करती हैं। हर साल अ० भा० राष्ट्रीय महासभा की बैठक के अवसर पर एक खादी–प्रदर्शिनी भी की जाती है। कई प्रान्तीय प्रदर्शिनियां भी होती रहती हैं।

इसके अलावा ग्रेग साहेब इस अध्याय में कुछ और ऐसी हकीकतें देते हैं, मगर वे सब इस पत्र में इतनी बार आ चुकी हैं कि उनका सारांश भी अब देने की जरूरत नहीं रह जाती है।

[**मि. रिचार्ड बी. ग्रेग** की 'खद्दर का अर्थशास्त्र' नामक अंग्रेजी किताब में से।]

आत्म–निवेदन

माहिष्मक राष्ट्र के सकुलनगर में सकुल नाम का धर्मिष्ठ राजा राज्य करता था। उस नगर के बगल में ही एक व्याधा जाल में चिड़ियों को पकड़ता और उन्हें नगर में बेंच कर अपनी आजीविका चलाता था। नगर के पास ही बारह योजन के घेरेवाला मानस नामक कमल सरोवर था। उसमें पाँच रंग के कमल उगते थे। वहां जाति जाति के पक्षी आया करते थे। इस लिए व्याधा वहीं जाल फैलाया करता था। उस समय छन्नु लाख हंस के परिवार का हंसराजा चित्रकूट पर्वत पर सुवर्ण गुहा में रहता था। अब एक दिन उनमें से कई एक सुवर्ण–हंस मानससरोवर में आकर, वहाँ के विशाल चरण में स्वेच्छा से चर कर चित्रकूट पहुँचे। उन्होंने हंसराज से कहा, "महाराज, मानस सरोवर में चरने की बड़ी अच्छी सुविधा है। वहाँ हम चरने चलें।"

राजा ने कहा, "मनुष्य जाति के समागम का परिणाम हितकारी नहीं होता। इस लिए वहाँ जाने को जी नहीं चाहता है। तौभी अगर तुम्हारी बहुत इच्छा हो तो चलो एक बार यह रस भी चख आवें।" हंसराज ने परिवार के साथ इस सरोवर की ओर प्रयाण किया।

अब हंसराज के आकाश से सरोवर में उतरते ही, उनके पैर जाल में फँस गये। पैर खींचने की कोशिश की तो पैर का चमड़ा कट गया, लहू निकला, पीडा हुई मगर पैर न निकला।

हंसराज ने विचार किया, "अगर इसी समय शोर करूँगा तो यह सारा समाज भूखे ही उठ जायगा, और तब अशक्ति के कारण सरोवर में गिर पड़ेगा।" इसलिए उन्होंने चुपचाप दुःख सहा। और जब सभी चर चुके तब धीरे से अपने बँध जाने का शोर किया। वह सुनकर मरने के डर से सभी हंस चित्रकूट की ओर भागे।

सभी भागे मगर हंसों का सेनापति सुमुख न भागा। यह वितर्क करता हुआ कि महाराज के माथे कोई आपदा तो न आयी, वह उन्हें सभी ओर ढूँढने लगा जब पाया तो उन्हें जाल में फँसा पाया। लहू लुहान हो रहे हैं, वेदना सह रहे हैं और कीचड़ में गिरे पड़े हुए हैं।

हंसराज से सुमुख ने कहा, "महाराज, डरियेगा मत! मैं अपने प्राण देकर भी आपको जाल से छुडाऊंगा।' यह कह कर वह नीचे उतरा और राजा को आश्वासन देने लगा। और कीचड में बैठ गया।

हंसराज कहते हैं:

एते भुत्वा पिवित्वा च पक्कमन्ति विहङ्गमा।
हरित्तच्च हेमवण्ण कामं सुमुख पक्कम॥

"खा पीकर ये हंस भागे जा रहे हैं। हे हेमवर्ण सुमुख तू भी सुख से चला जा।

ओहाय मां अतिगणा एकं पासवसं गतम्।
अनपेक्खमाना गच्छन्ति किमेको अवहिय्यसि॥

"मुझ पाश में पड़े हुए को अकेला छोड़ कर, सगे संबंधी निश्चिन्त मन से जाते हैं। तू अकेला क्यों ठहरता है?

पतेव पततं सेट्ठ नत्थि बद्धे सहायता।
मा अनीघाय हापेसी कामं सुमुख पक्कम॥

"हे पक्षिश्रेष्ठ, उड़ जा। जाल में बँधे हुए के साथ सगाई कैसी? अवसर मत चूको और जाओ।"

सुमुखः

गच्छेवाहं न वा गच्छे न तेन अमरो सियम्।
सुखितं तं उपासित्वा दुक्खितं तं कथं जहे॥

"मैं जाऊँ या न जाऊँ, मगर कुछ भार तो बनना नहीं है। आज भागूँ भी तो यमराज मुझे थोड़े ही छोड़ देने वाले हैं? आपके अच्छे दिनों में आपकी सेवा कर के मैंने आपका नमक खाया अब दुःख के दिनों में आपको कैसे छोड़ दूँ?

नाहं दुक्खपरेतो पि धतरट्ठ तवं जहे।
जीवितं मरणं वा मे तया सद्धिं भविस्सति॥

"चाहे कैसा ही दुःख क्यों न भोगना पड़े, मगर आपको मैं न छोड़ूँगा। जीना, मरना, मेरा जो कुछ हो, आपके साथ ही हो लेवे।

मरणं वा तया सद्धिं जीवितं वा तया विना।
तदेव मरणं सेय्यो यञ्चे जीवे तया विना॥

"आपके साथ मरना, अथवा आपके बिना जाना—इन दो में से मुझे आप के साथ मरना ही अधिक प्रिय तथा सुख कर है।

नेस धम्मो महाराज यं तं एवंगतं जहे।
या गति तुय्हं सा मय्हं रुचते विहगाधिप॥

"ऐसी दशा में आपका त्याग करना धर्म नहीं है। हे पक्षिराज, मेरी इच्छा है कि जो आपकी गति हो, वही मेरी भी हो।"

का नु पासेन बद्धस्स गति अञ्ञा महानसा।
सा कथं चेतयानस्स मुतस्स रुच्चति॥

"मैं जाल में पड़ा हूँ, किसीके घर पकने के लिए। मेरी क्या कोई दूसरी भी गति है? किन्तु तू तो स्वतंत्र है, समझदार है, फिर तुझे यह गति क्यों पसंद पड़ती है?

कं वा त्वं पस्ससे अत्थं मम तुय्हं च पक्खिमं।
ञातीनं वावसिट्ठानं उभिन्नं जीवितक्खये॥

"तू कदाचित् मेरे साथ मर जायगा। पर इसमें तेरा या मेरा क्या काम सरेगा अथवा हम दोनों ही मरें तो इससे हंस मात्र को क्या लाभ होगा?"

कथं नु पततं सेट्ठ धम्मे अत्थं न बुज्झसि।
धम्मो अपचितो सन्तो अत्थं दासेति पाणीनम्॥

"महाराज धर्म से स्वतंत्र अर्थ जैसा कोई पदार्थ ही नहीं है। धर्म की सेवा करनेवाले को तो अर्थ आप ही आ मिलता है।

सोहं धम्मं अपेक्खानो धम्मा चत्थं समुट्ठितम् ।
भत्तिं च तयि सम्पस्सं नावकङ्खामि जीवितम् ॥

"मुझे उसी धर्म की अपेक्षा है, और धर्म से ही अर्थ की उत्पत्ति है, इसलिए आपपर अपनी भक्ति के कारण, जीव देना तो मेरे मन में तुच्छ बात है ।

अद्धा एसो सतं धम्मो यो मित्तो मित्तमापदे ।
नचजे जीवितस्सापि हेतु धम्ममनुस्सरम् ॥

"जी बचाने के लिए भी मित्र को आपत्ति में न छोड़ना सज्जनों का धर्म है ।"

स्वायं धम्मो च ते चिण्णो भत्ति च विदिता मयि ।
कामं करस्सु मय्हेतं गच्छेवानुमतो मया ॥

"तूने अपना धर्म ठीक बजाया । यह भी जान लिया कि मुझपर तेरा स्नेह है । अब मेरा एक कहना कर और यहाँसे चल् जा ।

अपि त्वेवं गते काले यं बन्धं ञातिनं मया ।
तथा तं बुद्धिसम्पन्नमस्स परम संवुतम् ॥

"तू बुद्धिशाली है, इसलिए संभव है कि तू एक दिन मेरा स्थान यथायोग्य पूरा करेगा ।"

पन्नु पासेन महता बद्धो न कुरुते दिशम् ।
अथ कस्मा अबद्धो त्वं बली पक्खी न गच्छसि ॥

यह भव्य संवाद चलता था । इसी बीच में रोगी के पास जैसे यमराज आते हैं, उस तरह व्याधा वहाँ आ पहुँचा । उसने देखा कि एक जाल में पकड़ा हुआ है, और दूसरा छुट्टा होने पर भी उसकी चौकी कर रहा है । छुट्टे हंस को संबोधन करके व्याधे ने कहा:

किं नु तायं दिजो होत्ति मुत्तो बद्धमुपाससि ।
ओहाय सकुणा यन्ति किमेको अवहीयसि ॥

"यह हंस तो जाल में पड़ा है, और भागता नहीं, सो ठीक है । मगर तू तो छुट्टा है, बलवान् है, तौभी क्यों नहीं भागता ?

"यह पक्षी तेरा कौन होता है, जिससे सब सभी पक्षी इसे छोड़ भागे तब भी, और छुट्टा होने पर भी तू भागा नहीं, और इस बँधे हुए पक्षी के पास अकेला बैठा है ?"

सुमुख ने उत्तर दिया,

राजा मे सो दिजामित्र सखा पाणसमो च मे ।
नेव नं विजहिस्सामि याव कालस्स पर्यायम् ॥

"हे पक्षीशत्रु, ये मेरे राजा हैं और प्राण के समान प्रिय सखा हैं । इन्हें मैं मरणपर्यन्त छोड़नेवाला नहीं हूँ ।"

पीछे तो सुमुख ने व्याधे के साथ बातें शुरू कीं । व्याधा पूछता कि तेरे राजा को पाश क्यों नहीं दिखलायी पड़ा होगा । सुमुख समझाता कि विनाश काल के आने बाद किसीको कुछ नहीं सूझता । ऐसी ऐसी बातें कर के उसने व्याधे का हृदय पिघलाया । और फिर कहा,

अपि नायं तया सद्धिं सम्भासस्स सुखुद्रयो ।
अपि नो अनुमञ्ञसि अपि नो जीवितं ददे ॥

"तुम्हारे साथ इतना संभाषण हुआ सो उसका तो अच्छा ही फल होना चाहिए न ? हमें जीवित-दान दो और घर जाने दो ।"

सुमुख की मधुर बातों पर मुग्ध बना व्याधा बोला,

'न चेव मे त्वं बद्धो सि न पि इच्छामि ते वधम् ।
कामं खिप्पं इतो गन्त्वा जीव त्वमनिघो चिरम् ॥

"तू तो जाल में पड़ा नहीं है, और तुझे मारना भी नहीं है । तू अपनी स्वेच्छा से तुरत जा और चिरंजीव हो ।"

सुमुख बोला,

नेवाहमेतमिच्छामि अञ्ञत्रेतस्स जीविता ।
सचे एकेन तुट्ठो सि मुञ्चेतं मं च भक्खय ॥

"अगर मेरा यह मित्र मरे, तो मुझे जीना नहीं है । तेरी तृप्ति एक से हो तो इन्हें छोड़ दे और मुझे खा ।

आरोहपरिणाहेन तुल्यस्मा वयसा उभो ।
न ते लाभेन जीवत्थि एतेन निमिना तुवम् ॥

"लंबाई, मोटाई, उम्र, सभी तरह से हम दोनों एक से हैं इनके बदले मुझे लेने में तुझे घटी नहीं है ।

स तुम्हे बन्ध पासेन पच्छा मुञ्च दिजाधिपम् ॥

"पहले मुझे जाल में बाँध और पीछे से हंसराज को छोड़ देना ।"

यह सुन कर व्याधे का हृदय पानी पानी हो गया । वह हंसराज के बंधन खोलता खोलता बोला,

न च ते तादिसा मित्ता बहुन्नमिध विज्जति ।
यथा त्वं धतरट्ठस्स पाणसाधारणो सखा ॥

"तुम्हारे जैसे मित्र जो मित्र के दुःख में शामिल हों, शायद ही किसीके भाग्य में होंगे,

यो च त्वं सखिनो हेतु पाणं चजितुमिच्छसि ।
सो ते सहायं मुञ्चामि होतु राजा तवानुगो ।
कामं खिप्पमितो गन्त्वा ञातिमज्झे विरोचथ ॥

"तू अपने मित्र के लिए प्राणत्याग भी करने को तैयार है इसलिए तेरे मित्र को मैं छोड़ता हूँ । हंसराज तेरे साथ भले तुरत जाय । खाओ, पिओ और राज करो ।"

सुमुख ने कहा,

'एवं लुद्दक नन्दस्सु सह सब्बेहि ञातिभि ।
यथाहमज्ज नन्दामि मुत्तं दिस्वा दिजाधिपम् ॥

"हे व्याधा, जिस तरह अपने राजा को छूटा हुआ देख कर मैं आज आनन्दित हुआ, उसी तरह तू अपने परिवार के साथ आनन्द कर ।"

(जातक २१-१)

(नवजीवन) वेणाभाई वालजी गोविन्दजी

मगनलाल गांधी स्मारक कोष

पहले स्वीकार किया गया		६११-०-०
नन्दलाल गुप्त		१-०-०
भगवानजी पुरुषोत्तम		५०-०-०
अंबाराम मंगलजी		५-०-०
तुलसीराम	उज्जैन	५-०-०
श्रीमती सोमदेवी	लुधियाना	५-०-०
'नवजीवन' कार्यालय की मारफत		
एल. बी. कोटी	भंडारा	२-६-०
कान्तिलाल नाथालाल	अहमदाबाद	५-०-०
मणिलाल वाडीलाल कॉन्ट्रैक्टर	बंबई	२५-०-०
विनायकराव बालाशंकर वैद्य	राजपीपला	३-०-०
चुनीलाल मणिलाल दवे	महुवा	३-०-०
आइ. सूर्यनारायण	अट्टीली	५-०-०

कुल रु. ७३०-६-०

विद्यार्थियों में जागृति

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का ,, २)
एक प्रति का ,, -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ४६

मुद्रक–प्रकाशक
मोहनलाल मगनलाल भट्ट

अहमदाबाद, श्रावण बदी १० संवत् १९८४
गुरुवार, १२ जुलाई, १९२८ ई०

मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय
सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

विरोधी का प्रमाण–पत्र

नींद खुली

हिन्दुस्तान में आज शायद ही दो चार ऐसे अखबार होंगे जिन्हें बारडोली के लिए जरा भी सहानुभूति न हो। उन्हींमें से बम्बई का अधगोरा पत्र 'टाइम्स औफ इंडिया' भी है। अब तक उसने बारडोली के बारे में सच्ची खबरें न छाप कर तथा झूठी खबरें फैलाकर और एक दो लेख लिख कर अपना सहानुभूति का अभाव दिखलाया है। मगर अपने इस रंग ढंग से खुद इसीको असंतोष हुआ और आखिर इसने पिछले हफ्ते अपना एक संवाद दाता बारडोली ताल्लुके में भ्रमण करके वहांकी स्थिति पर लेख लिखने को भेजा। ये काले साहेब के रूप में मि० ऐयर बारडोली स्वराज आश्रम में पहुँचे। जहांपर जप्ताअफसरों की भी खातिर की जाती है, वहांपर भला मि० ऐयर का तिरस्कार कौन करता? इस लिए मि० ऐयर को खिला पिला कर, संतुष्ट कर के बारडोली की लडाई देखने की पूरी सुविधा कर दी गयी। आप ताल्लुका देख भी आये और इसके फल स्वरूप कुछ सच्ची और आधी झूठी और कुछ सरासर झूठी बातों से भरा लेख 'टाइम्स' में छपा भी चुके।

सरकार को लकवा मार गया है

इनके लेखों की एक ध्वनि, एक बात, एक मतलब यही है कि सरकार को लकवा मार गया है। वल्लभभाई के सामने उसकी एक नहीं चलती है, किसान महीनों तक घर में बंद रहे, लाखों का नुकसान सहते रहे, उनके ढोर मरने मरने हो रहे हैं, उनकी कोई गति बाकी नहीं रही मगर तौभी वे न झुके, न झुके। इस लिए 'टाइम्स'के रिपोर्टर की नजर में बारडोली में आज 'बोलशेविज्म' यानी रूस का साम्यवाद विराज रहा है, और बोल्शेविज्म के प्रधान आचार्य लेनिन की जगह पर वल्लभभाई विराजमान हैं।

मगर अब हम जरा इन बातों की सचाई और 'टाइम्स' के संवाददाता के ऐसा वर्णन देने के कारण का विचार करें।

बारडोली में न तो अब तक एक भी खून हुआ है, न एक भी लाठी चली है, और न जमीन के लगान विभाग को छोड कर, सरकार का एक भी विभाग बंद हुआ है। सरकारी कचहरी, सरकारी शालाएँ सरकारी डाकखाना, तारघर वगैरह सभी जैसे के वैसे सही सालिम हैं। तब हुआ क्या है कि इसे बोल्शेविज्म कहा जाता है? हां, यह जरूर सही है कि गो सरकार ने हर एक विभाग से मदद लेकर कर वंदी के इस सत्याग्रह को तोडना चाहा, मगर न तो वह आबकारी विभाग के जरिए शराब खाने के ठीकेदारों को तोड सकी, न डाक पिउन को दबा सकी, न दबा सकी शाला के शिक्षकों को, और न कुछ कर सकी वह अस्पतालों के जरिए। सरकार की एक भी न चली। इस लिए अगर 'टाइम्स' का संवाद दाता कहता हो कि सरकार को लकवा हुआ है तो भले ही कहे। बाकी सरकार को जितना जुल्म अभी और करना हो, वह करने के लिए मुक्त है। 'टाइम्स'का रिपोर्टर यह कबूल करता है कि चौरासी पटेलों और उन्नीस तलाटियों ने इस्तीफा दी है, मगर आप इसका कारण बतलाते हैं, सामाजिक बहिष्कार की धमकी। ऐसा बयान लेने के लिए बारडोली–स्थित डेप्युटी मैजिस्ट्रेट लाख कूदफान करते रहे और अब भी करते हैं मगर वे एक भी ऐसा बयान ले कर छाप न सके। इन चार महीनों की लडाई में किसानों को पूरी विजय मिली है, और सरकार हाथ मलती रही है—यह भी ये जनाब कबूल करते हैं। संसार के इतिहास में क्या कहीं ऐसी विजय धमकी से मिली है? क्या कहीं धमकी से सरकार के हाथ पैर टूटे हैं? चाहे कुछ भी हो, मगर गला फाड कर यों चिल्लाने का भी कुछ मतलब है जरूर। सरकार को 'टाइम्स' यह चेतावनी दे रहा है कि सँभलो, गोलाबारूद का प्रबंध करो, नहीं तो गया तुम्हारा राज्य।

स्तब्ध रह गया

पापी को पुण्य अखरता है, स्वच्छंदी को संयम कडवा लगता है, अव्यवस्थित को व्यवस्था बुरी लगती है और स्वार्थी को त्याग देख कर जूडी चढ आती है। इसी भांति 'टाइम्स' के इस संवाद-दाता को अपनी टेक के लिए मरने को तैयार बैठे किसानों का निश्चय खटकता है, नियम और व्यवस्था के साथ सारा काम कर लेने की स्वयंसेवकों की तालीम और ढंग अखरते हैं, अपने सरदार की आंखों में प्रेम देख कर मतवाली बनी वीर बहिनों की भक्ति कसकती है। उसने तो माना होगा कि बारडोली के ढाई सौ स्वयंसेवक बारडोलीवालों के पैसे पर तागडधिन्ना करते होंगे, स्वराज आश्रम में पडे पडे मजे में खर्राटे लेते होंगे, मगर बारडोली में आ कर उनकी आंख खुल गयी। वह लिखता है कि वल्लभभाई की गैर हाजिरी में भी आश्रम में तो उसे काम, काम और काम ही

दिखलायी पडा । स्वयंसेवक मँजे हुए मिहनती और कठिन जीवन बितानेवाले मिले, पुराने जोगी भी दिखलायी पडे, विद्यापीठ के भी विद्यार्थी वहां थे । उसे यह भी ख्याल होगा कि आश्रम में तो 'माले मुत्फ दिले बेरहम' के न्यायानुसार लोग पूरी मिठाई ही कचरते होंगे, मगर यहां तो मोटी, पतली किसी तरह की रोटियाँ और भात दाल भर से भेट होती है । शाक तो सिर्फ रात की ही रात । और तो और गांधी का लडका रामदास भी उसे कचा पका कुछ न कुछ जल्दी जल्दी पेट में भर कर दूसरी छावनी पर जाने की तैयारी करता जान पडा । हर रोज बँटने वाली सत्याग्रह पत्रिकाओं का जो खर्च हम बतलाते हैं उससे कुछ अधिक इनको जान पडा। बेचारा यह सब देख कर क्या करे? आंखें ही मले न?

गांवों में स्त्रियों की अकृत्रिम, निर्व्याज भक्ति देख कर, उनके मधुर गीत सुन कर ये भाई चकित रह गये । इन्हें उनमें का राजद्रोह खटका, मगर उन बहिनों की आवाज में और उनके प्रफुल्लवदन पर जो वीरता की चमक थी, उसका वर्णन किये बिना इनसे भी न रहा गया ।

तीसरा दृश्य लोगों के कष्ट सहने का है । इसे देख कर ये कहते हैं कि 'बेशक, बारडोलीवालों ने बहुत कष्ट सहा है ।' लोगों के कष्ट देख कर, मवेशियों के शरीरों पर धाव देख कर ये कांप उठे । इसका अर्थ समझने की शक्ति तो इनमें है नहीं, इस लिए ये जडता से आलोचना करते हैं कि श्री. वल्लभभाई ने ढोरों पर अत्याचार किया है ।

लेखों का हेतु

ऊपर जैसा कि मैं बतला गया हूँ ये लेख सरकार के लिए धमकी और चेतावनी रूप हैं । इसके अलावा एक और भी हेतु है । ऐसा भयंकर चित्र देने से, 'रायटर' वाले विलायत में बहुत ही भयावनी खबरें भेजेंगे और फिर यहां अगर गोला वारी वगैरह शुरू हो तो 'टाइम्स' के समान पत्र इसके बचाव का ढोंग यह कह कर कर सकें कि हमने तो पहले ही कहा था कि ऐसी भयंकर स्थिति है सो बहुत बडा बलवा शुरू हो जाने पर सरकार ने दमन शुरू किया, और इसमें थोडी और सुस्ती की जाती, तो आज ब्रिटिश साम्राज्य का हिन्दुस्तान में नाम निशान नहीं मिलता इत्यादि ।

किन्तु लेखक ने जिसकी आशा भी न की होगी, एक ऐसा भी परिणाम इन लेखों से आये बिना नहीं रहेगा । जो आदमी इन लेखों को संवाद-दाता के दिमाग की उपज अनुमानों को छोड कर केवल वस्तु स्थिति का अध्ययन करेगा, वह प्रजा के पक्ष में ही अपना मत देगा । सरकार कहती है कि बारडोली वालों ने कोई कष्ट नहीं उठाया है, और उधर उसी दिन भयंकर कष्टों का वर्णन 'टाइम्स' का संवाददाता देता है । 'टाइम्स' की सांझ की आवृत्ति में छपता है कि बारडोली के सत्याग्रही चंदे के धन पर गुल छर्रे उडा रहे हैं, जब कि 'टाइम्स' का ही रिपोर्टर खर्च के हिसाब देता है । अनिच्छा से भी की गयी सही, मगर 'टाइम्स' की इस सेवा के लिए हमें उसे धन्यवाद देना चाहिए ।

किन्तु सरकार क्या करेगी? क्या 'टाइम्स' के उत्तेजन के वश होगी या सत्याग्रह और असहयोग से साढे सतरह कोस दूर रहनेवाले, भारत-सेवक-संघ के श्री कुंजरू और श्री वजे की तटस्थता से लिखी रिपोर्ट में दी गयी सलाह को मानेगी?

चेम्बर ऑफ कौमर्स ने समझौते के लिए खूब ही पर असफल कोशिश की । धारासभा में उसके प्रतिनिधि श्री लालजी नारायण जी ने धारासभा से इस्तीफा दी है और सरकार को कहा है कि तुम्हारे पक्ष में जरा भी सत्य या न्याय का नाम नहीं रहा है । अब देखना है कि सरकार इस व्यवहारदक्ष व्यापारी-मण्डल की सलाह मानती है या और ही कुछ निश्चय करती है । खैर, वह चाहे जो कुछ निश्चय करे, पर बारडोली के किसान तो सभी कुछ के लिए तैयार ही बैठे हैं ।

(नवजीवन)

महादेव देसाई

शिक्षा-विषयक प्रश्न

६

प्र० जब से आपने हिन्दुस्तान के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया है, तभी से आपसे शास्त्रार्थ के निर्णय माँगने की प्रथा शुरू हुई है । लोग आप से यह पूछना चाहते हैं कि अमुक प्रसंग पर अमुक काम योग्य है या नहीं । इससे वस्तुस्थिति प्रकट होती है कि आपके आन्दोलन धार्मिक स्वरूप के हैं । क्या आपकी अनुपस्थिति में ऐसे फैसलों का बहुमत से दिया जाना योग्य गिना जायगा? और अगर यह योग्य न हो तो क्या धर्मविद लोगों की परंपरा खडी न करनी पडेगी?

उ० मुझसे से शास्त्रार्थ के जो निर्णय माँगे जाते हैं, इसे मैं संतोषकारक स्थिति नहीं मानता हूँ । मेरा एक भी आन्दोलन ऐसा नहीं है, जिसका स्वरूप चाहे कैसा भी क्यों न मालूम हो, मगर जो स्वयं धार्मिक स्वरूपवाला न होवे । किन्तु मुझसे हरएक विषय में निर्णय माँगा जाता है, इससे मैं देखता हूँ कि जिन सिद्धान्तों के अनुसार मैं चलता हूँ, या तो वे समझ में नहीं आते, या उनकी योग्यता के बारे में शंका रहती है या मैं महात्मा कहलाता हूँ, या भला आदमी समझा जाता हूँ, इसलिए, और हमारे लोग श्रद्धालु हैं, और विचार करने में कंजूस हैं इसलिए भी मुझसे सवाल पूछे जाया करते हैं । इससे मेरा अभिमान भले ही संतुष्ट होता हो, मेरा काम भी भले ही कुछ चल जाता हो, मगर मुझे ऐसा नहीं लगता है कि इससे प्रजा को या पूछनेवाले को बहुत लाभ होता है । बहुत बार मुझे ऐसा हो आता है कि अगर मैं फतवे देना बंद कर दूँ और मुझे जो काम सूझे या आवे, चुप-चाप किया करूँ तो क्या ही अच्छा हो । किन्तु ऐसा करूँ तो जो अखबार मैं निकालता हूँ, उन्हें बंद करना चाहिए । बहुत से पत्र-व्यवहार बंद करना चाहिए । मगर इतनी हिम्मत अभी नहीं आयी है । जब वह आवे तो दूसरी बात । और अगर ऐसी हिम्मत नहीं आवे तो सबके परममित्र यमराज मौत की भेट भेज कर मेरी अनिच्छा से भी फतवा बंद करेंगे । मेरी गैरहाजिरी में, और हाजिरी में भी मेरे सिद्धान्तों को स्वीकार करनेवाला मंडल बहुमत से निर्णय देवे तो इसमें मैं कुछ अयोग्य नहीं देखता । किन्तु जैसे व्यक्ति में, वैसे मंडलों में भी धर्म की भावना होनी चाहिए ।

प्र० विद्यापीठ में प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा की तीन कक्षाएँ हैं । इन्हींको क्रमानुसार अगर हम गांवों की, शहरों की और समाज सेवा की शिक्षा का नाम देवें तो यह कहां तक उचित होगा?

उ० मुझे तो प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा के ये अर्थ जरा भी नहीं रुचते हैं । हम यह क्यों चाहें कि गांवों के रहनेवाले प्राथमिक शिक्षा ले कर ही संतुष्ट हो जायँ? उनमें से भी जो लोग माध्यमिक और उच्च शिक्षा लेना चाहें, उन्हें लेने का अधिकार है । शहर के लोगों के बालकों का प्राथमिक शिक्षा के बिना नहीं चल सकता । तीनों का उद्देश्य गांवों की वृद्धि होना चाहिए ।

प्र० किस उद्देश्य से आप संगीत को हमेशे इतना महत्त्व देते हैं?

उ० यह दुःख की बात है कि आज इस देश में सामान्य पर संगीत की अवगणना होती है। संगीत के तो सारी शिक्षा अधूरी ही लगती है। संगीत गत और सामाजिक जीवन को मधुर बनाता है। को काबू में लाने के लिए जैसे प्राणायाम की जरूरत है, तरह कंठ को संगीत की जरूरत है। जो सामाजिक संगीत वार लोगों में बहुत हो तो, सभाओं में होनेवाले कोलाहल न्त करने में संगीत बहुत मददगार बन जाय। संगीत क्रोध ान्त कराता है और उसका सदुपयोग ईश्वर का दर्शन कराने हुत सहायता देता है। संगीत का यह अर्थ कभी नहीं है कि तान आ जाय या नाटक के गीत गाये जायँ। संगीत का त्य अर्थ तो ऊपर कह चुका, या उससे गहरा अर्थ यह है कि सारा जीवन संगीतमय, सुरीला होना चाहिए। सत्यादि गुणों आराधना किये बिना जीवन ऐसा बनता ही नहीं। जीवन को तमय करने के मानी हैं उसे ईश्वर के साथ एकतार करना। ने रागद्वेष का शमन नहीं किया है, जिसने सेवा-रस को चखा है, वह इस दिव्य संगीत को पहचानता ही नहीं। जिस त की शिक्षा में इस गूढ अर्थ का समावेश नहीं होता, उस त की कीमत मेरे पास बहुत कम या कुछ नहीं है।

प्र० चित्रकला है चित्रकार के हृदय में उठनेवाली लहरों की रेखा और उसे रंग द्वारा व्यक्त करना। अगर यह व्याख्या ार न करें तो आप क्या राष्ट्रीय शिक्षण में चित्रकला को सार्वत्रिक आवश्यक स्थान दीजिएगा?

उ० मैंने कभी चित्रकला का विरोध नहीं किया है। किन्तु कला के नाम प्रचलित धाँधली की अवगणना हमेशे की है। इसमें शंका है कि इस प्रश्न में दी गयी व्याख्या के अनुसार कला सार्वजनिक हो सकती है। संगीत और चित्रकला का बहुत बडा भेद है — चित्रकला कोई व्यक्ति-विशेष सीख सकता है, जब कि संगीत सार्वत्रिक होना चाहिए और हो ता है। चित्रकला के अंग में रही हुई, सीधी रेखाएँ खींचने र जंगम वस्तुओं के नमूने उतारने की कला सब को सिखलायी सकती है। उसकी आवश्यकता है और मैं हरएक बालक को रकला सिखलाने के पहले ही यह कला सिखलाने का लोभ ता हूँ।

प्र० व्याकरण, चक्रवृद्धि व्याज, उच्च भूमिति वगैरह जो विषय चल कर भूल ही जाने हैं, उन्हें राष्ट्रीय सिक्षा में नहीं रखने सलाह कितने आदमी देते हैं। आप भी इस में सहमत होंगे। बात ऐसी हो तो फिर उर्दू को भी इसी कोटि में क्यों न? हिन्दू, मुसलमान, जब एक दूसरे से परिचय करने उत्सुक , और एक दूसरे की संस्कृति समझने की जब उत्कंठा होगी, संस्कृत या उर्दू का ज्ञान काम आनेवाला या टिकनेवाला है का अनुभव भी ऐसा है कि विद्यार्थी थोडी सी उर्दू सीखते हैं फिर भूल जाते हैं। उर्दू के जरिए व्यक्त होनेवाली संस्कृति के जब आदर और शिष्य भाव पैदा होंगे, तभी उर्दू का ज्ञान माल में रहेगा और बढेगा। तब तक तो यह गणेशपूजा के समान मक विधि ही रहेगा।

उ० व्याकरण, चक्रवृद्धि व्याज और उच्च भूमिति — इन तीनों एक साथ क्यों रक्खा गया है? यह मैं नहीं समझा। मैं यह मानता आया हूँ कि भाषा के ज्ञान के लिए व्याकरण अत्यावश्यक और व्याकरण तथा उच्च भूमिति बहुत दिलचस्प विषय हैं। नों बुद्धि के निर्दोष विनोद हैं। इस लिए उच्च शिक्षा लेने वाले लिए और भाषाशास्त्र जानने वाले के लिए इन दोनों विषयों को मैं राष्ट्रीय शिक्षा में स्थान दूँगा। जिन्हें हिसाब वगैरह से काम है, उनका तो चक्रवृद्धि व्याज के बिना चल ही नहीं सकता। इस लिए प्रश्न में सुझाये तीनों विषयों का अपना अपना स्थान राष्ट्रीय शिक्षा में है ही इसपर से यह निकाल जा सकता है सही कि कितने विषय तो शिक्षा के लिए सामान्य होने चाहिए और वे हैं भी। आज सरकारी और राष्ट्रीय नामक शिक्षा के दो भेद करने पडते हैं क्योंकि सरकारा शिक्षा का झुकाव राष्ट्र के विकास के लिए विघातक है। किन्तु सरकारी शाला में बहुत कुछ ऐसा है जो हमारी शाला में हो सकता है और होना चाहिए। ऐसा होने पर भी इन सरकारी शालाओं का वातावरण पराधीनता का पोषक है और गाढे समयों पर उसका उपयोग राष्ट्र को दबाने में होता है। इस लिए वे सर्वथा त्याज्य हैं और यह तो हम देख ही गये हैं कि उसमें कितनी एक शिक्षा तो महज अनावश्यक और कितना बोझा रूप है किन्तु मैं अप्रस्तुत विषय में उतर गया। इस प्रश्न के पीछे क्या है, उसे मैं ने शायद ठीक समझा नहीं, इस भय से इतना कहना जरूरी समझा है।

उर्दू का मिलान इन तीन विषयों के साथ नहीं किया जा सकता। हिन्दूमुसलमान को जब एक होना होगा, वे तब हो लेंगे, किन्तु राष्ट्रीय शालाओं में तो हमें एक दूसरे के प्रति प्रेम का ही पोषण करना चाहिए। यह करने के लिए एक दूसरे के धर्म का ज्ञान पैदा करना आवश्यक है। विद्यार्थी अगर थोडी सी उर्दू सीख कर भूल जाते हों तो वे बेगार टालते हैं। मगर यह तो हिन्दी के लिए भी (गुजरात विद्यापीठ में) कहा जायगा। हिन्दी अथवा उर्दू के बारे में दिलचस्पी उत्पन्न करने का उपाय तो परमात्मा जाने, मगर मुझे इसमें जरा भी शंका नहीं है कि राष्ट्रवृद्धि के लिए यह ज्ञान अत्यावश्यक है।

प्र० विद्यार्थियों का स्वातंत्र्य संपूर्ण रूप से रक्षित रहे और उनके स्वाभाविक झुकाव में किसी तरह की रुकावट न आवे, इस लिए शिक्षकों को तटस्थ, निराग्रही रहना चाहिए। किसी तरह के नियम टेव, सिद्धान्त या सद्गुण का आग्रह न रखते हुए, मानों आप ही तोहमतदार हों, और अपनी तटस्थता साबित करने को बँधे हुए हों, इस तरह उन्हें शिक्षा देनी चाहिए। कई जगह यह आदर्श बँधता जाता है। आप यह आदर्श कहां तक स्वीकार करते हैं?

उ० ऊपर के प्रश्न में दिये गये आदर्श का समर्थन और विरोध दोनों संभव हैं। अगर मूल बात की रक्षा न हो तो प्रश्न में रही हुई बात का विरोध करना ही चाहिए और अगर मूल बात की रक्षा हो सके तो विद्यार्थियों का स्वातंत्र्य बावन तोला पाव रत्ती रक्षित हो और शिक्षक इतना तटस्थ रहे कि वर्ग में आकर सो जाय। विद्यार्थियों के स्वातंत्र्य की रक्षा करनेवाला शिक्षक विद्यार्थी में ओतप्रोत हो जाने की शर्त से जैसा चाहे करे। शिक्षक को अखा की भाषा में कहूँगा:

'सूतर आवे त्यम तुं रह, ज्यम त्यम करीने हरीने लह'

यानी 'जैसी सुविधा हो, वैसे रह, मगर किसी तरह हरि को प्राप्त तो कर।'

आदर्श शिक्षक के पास इसके सिवाय दूसरा आदर्श था नहीं, होना चाहिए नहीं।

(संपूर्ण)

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, श्रावण वदी १० संवत् १९८४

विद्यार्थियों में जागृति

बारडोली का संदेश अभी पूरा पूरा लोगों तक पहुँच नहीं पाया है। मगर अपूर्ण होने पर भी इसने हमें ऐसे पाठ पढाये हैं जो हम सहज ही भूल नहीं सकते। इसने हमारे मुर्दा दिलों में जान फूँक दी है, नयी आशा दी है, इसने दिखला दिया है कि सार्वजनिक रूप से, विश्वास नहीं बल्कि केवल नीति के तौर पर, जैसे कि और कई सद्गुणों का हम पालन करते हैं, अहिंसा के पालन से कौन कौन से और कैसे कैसे महान् कार्य हो सकते हैं। बंबई में श्रीयुत वल्लभभाई पटेल के सम्मान में किये गये महान् प्रदर्शन का जो आंखों देखा वर्णन मैंने सुना है, और उन्हें खुद ब खुद २५,०००, रु. की भेट चढानी, प्रेम से उनकी गाडी घेर लेनी, भीड में से जाते हुए वल्लभभाई पर रुपये और गिन्नियों तथा नोटों की वर्षा करनी, सभा में प्रवेश करने पर उनका गगन भेदी जयजयकार होना आदि बातें इसका प्रमाण हैं कि बारडोली ने अपनी हिम्मत और कष्ट सहिष्णुता से कैसा परिवर्त्तन कर डाला है। इससे सर्वत्र खूब जागृति हुई है, मगर विशेष उल्लेखनीय बंबई में, और वहां भी विद्यार्थियों में हुई है।

श्रीयुत नरीमैन, और उन बहादुर लडकों और लडकियों को मैं बधाई देता हूँ, जिनपर इनका ऐसा आश्चर्यजनक प्रभाव है। और विद्यार्थियों में से भी दर्शकों ने तीन पारसी लडकियों का नाम अलग चुन लिया है जिन्होंने अपने अटूट उत्साह और साहस से बंबई के विद्यार्थी जगत् में जोश की बिजली दौडा दी। महादेव देशाई के पास पूने के किसी कौलेज के एक लडके का पत्र आया है कि वहाँके विद्यार्थियों ने अपने आप ही गत ४ थी जुलाई को विद्यार्थियों का बारडोली दिवस मनाया और सब कामकाज बंद रक्खा और चंदे जमा किये जो स्वेच्छा पूर्वक मिलते गये। परमात्मा करें कि सरकारी कौलेजों और स्कूलों के विद्यार्थियों का यह साहस कभी जाता न रहे, और न ऐन मौके पर ही टूट जाय। विद्यार्थियों ने बारडोली कोष के लिए जो आत्म-त्याग किये हैं, उनके बारे में आये हुए पत्र अत्यन्त हृदय-स्पर्शी हैं। गुरुकुल कांगडी, वैश्य विद्यालय सासवणें, नवसारी के निकट सूपा गुरुकुल, और घाटकोपर में एक छात्रालय के तथा और कई संस्थाओं के विद्यार्थी, जिनके नाम मुझे अभी याद नहीं हैं, बारडोली कोष के लिए कुछ रुपये पैदा करने को या तो मिहनत मजदूरी कर रहे हैं या एक महीने या कमो बेश मुद्दत के लिए घी, दूध छोड रहे हैं।

बारडोली के अनघड किसान और अनपढ स्त्रियाँ, जिन्हें अब तक हम स्वातंत्र्य युद्ध को लडनेवालियाँ मानते ही नहीं थे, हमें जो पाठ अपनी कष्ट सहिष्णुता और धीर साहस से पढा रही हैं, उन्हें अगर हम भूल जायँ तो यह महा अनुचित कहा जायगा। चीन देश के बारे में यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि वहांके विद्यार्थियों ने ही स्वातंत्र्ययुद्ध चलाया था। मिसर के सच्ची स्वतंत्रता के प्रयत्नों में वहांके विद्यार्थी ही सबसे आगे हैं।

हिन्दुस्तान के भी विद्यार्थियों से इससे कम की आशा नहीं की जाता है। वे स्कूलों और कौलेजों में सिर्फ अपने ही लिए नहीं, बल्कि सेवा के लिए पढते हैं या उन्हें पढना चाहिए। उन्हें तो राष्ट्र का हीर—महामूल्यवान् सत्त्व—होना चाहिए। विद्यार्थियों के रास्ते में सबसे बडी बाधा होती है, परिणामों के भय जो कि अधिकांश में काल्पनिक ही होते हैं। इसलिए विद्यार्थियों को पहला पाठ पढना है भय के त्याग का। जो लोग शाला से निकाल दिये जाने, या गरीब हो जाने या मौत से डरते हैं, वे स्वतंत्रता की लडाई कभी नहीं जीत सकते। सरकारी शालाओं के लडकों के लिए सब से बडा डर 'रस्टिकेशन'—यानी किसी सरकारी शाला में न पढने देने — का है। वे समझ लेवें कि साहस के बिना विद्या मोम के पुतले के समान है जो देखने में तो सुंदर लगता है मगर किसी गर्म वस्तु से छुआ नहीं कि पानी पानी हो बह गया।

(यं. इ.) मोहनदास करमचंद गांधी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय १३

बिहारी सरलता

मौलाना मजहर-उल हक और मैं किसी समय लंडन में साथ ही पढते थे। उसके बाद हम बंबई में १९१५ की महासभा में मिले थे। उस साल वे मुस्लिम लीग के प्रमुख थे। उन्होंने पुरानी पहचान ढूँढ निकाल कर मुझे निमंत्रण दिया कि, "जब कभी आप पटने आवें तो मेरे यहां ठहरें।" इस आमंत्रण के आधार पर मैंने उन्हें पत्र लिखा और अपना काम बतलाया। वे तुरत अपनी मोटर ले आये, और अपने यहां जाने का उन्होंने आग्रह किया। मैंने उनका उपकार माना और कहा कि, "मुझे तो पहली ही गाडी से चंपारण रवाना कर दीजिए।" रेलवे गाइड से मैं कुछ पता नहीं लगा सकता था। उन्होंने राजकुमार शुक्ल से बात की और फिर कहा कि मुझे पहले तो मुजफ्फरपुर जाना चाहिए। उसी दिन सांझ को मुजफ्फरपुर जो गाडी जाती थी, उससे उन्होंने रवाना मुझे किया।

मुजफ्फरपुर में उस समय आचार्य कृपलानी रहते थे। मैं उन्हें पहचानता था। जब मैं हैदराबाद (सिंध) गया था, तब डाक्टर चोइथराम के मुँह से उनके महात्याग की, उनके जीवन की, तथा उनकी सहायता से चलनेवाले आश्रम की बात सुनी थी। वे मुजफ्फरपुर कालेज में प्रोफेसर थे। वहांसे काम छोड बैठे थे। मैंने उन्हें तार किया। ट्रेन आधी रात को पहुँचती थी। वे अपने शिष्य मंडल को लेकर हाजिर हुए थे। मगर उन्हें घरबार नहीं थे। वे अध्यापक मलकानी के यहां रहते थे। मुझे उनके यहां ले गये। मलकानी वहांके कौलेज में प्रोफेसर थे। और उस समय के वातावरण में सरकारी कौलेज के प्रोफेसर का मुझे टिकाना बहुत बडी बात गिनी जायगी।

कृपलानी जी ने विहार की और उसमें भी तिरहुत की दीन दशा की बात की और मेरे काम की कठिनाई का ख़याल कराया। कृपलानी जी ने विहारियों के साथ गाढा संबंध बाँध लिया था। उनसे मेरे काम की बात कृपलानी जी ने कर ली थी। सबेरे मेरे पास छोटा सा वकील मंडल आया। उनमें मुझे रामनवमीप्रसाद याद रह गये हैं। उन्होंने अपने आग्रह से मेरा ध्यान खींचा।

"आप जो काम करने आये हैं, वह इस जगह से नहीं हो सकता। आप को तो हमारे जैसों के यहां रहना चाहिए। गया बाबू यहां के नामी वकील हैं। उनकी ओर से मैं आपसे उनके यहां ठहरने का आग्रह करता हूँ। हम सब सरकार से डरते तो हैं ही। किन्तु हमसे जितनी हो सकेगी, हम आपकी मदद करेंगे। राजकुमार शुक्ल की बहुत सी बातें सच्ची ही हैं। दुःख यह है कि हमारे नेता आज यहां नहीं हैं। बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद और राजेन्द्रप्रसाद को मैं ने तार किया है। दोनों यहां तुरत आ जायँगे और आपको

वस्तुस्थिति बतला सकेंगे और मदद करेंगे । मिहरबानी करके गया बाबू के यहां चलें ।"

इस भाषण से मैं लुभाया । मुझे इस भय से संकोच होता कि मुझे ठहराने से शायद गया बाबू की स्थिति खराब होवे । गया बाबू ने मुझे निश्चित कर दिया ।

मैं गया बाबू के यहां गया । उन्होंने और उनके कुटुम्बियों ने प्रेम की वर्षा की ।

व्रजकिशोर बाबू दरभंगे से आये । राजेन्द्र बाबू पुरी से आये । देखा तो लखनौ के व्रजकिशोरप्रसाद नहीं थे । उनमें बिहारी नम्रता, सादगी, भलमनसाहत और असाधारण श्रद्धा देख कर हृदय हर्ष से उमड आया । व्रजकिशोर बाबू के प्रति बिहारी वकील मण्डल का, मान देख कर मैं सानन्द आश्चर्यित हुआ ।

इस मण्डल और मेरे बीच जन्म की गांठ बँधी ।

व्रजकिशोर बाबू ने मुझे सारी वस्तुस्थिति से वाकिफ किया । गरीब किसान के लिए मुकद्दमे लडते थे । ऐसे दो मुकद्दमे चल रहे थे । ऐसे मुआमले कर के कुछ व्यक्तिगत आश्वासन पाते थे । कभी कभी उसमें भी निष्फल होते थे । इन भोले किसानों से फीस तो लेते ही थे । त्यागी होने पर भी व्रजकिशोर बाबू या राजेन्द्रबाबू फीस लेने में संकोच नहीं रखते थे । दलील यह थी कि धन्धे के संबन्ध में फीस न लेवें तो उनका घर-खर्च न चले, और वे लोगों की मदद भी न कर सकें । उनकी फीस की रकमें और बंगाल और बिहार के बारिस्टरों की अकल्पनीय फीस की बातें सुन कर मैं तो चकित रह गया ।

'——साहेब को हमने 'ओपिनियन' (राय) के लिए १०,०००) दिये ।' हजार के अलावा तो मैंने बात ही नहीं सुनी ।

इस मित्र मंडल ने इस संबंध में मेरा मीठा उलाहना स्नेहपूर्वक लिया । उसका गलत अर्थ उन्होंने नहीं किया ।

मैंने कहा, "ये कागज पढने बाद यह है कि अब हम ये मुकद्दमे लडने बंद ही कर देवें । ऐसे मुकद्दमों से लाभ बहुत ही थोडा होता है । जो रैयतवर्ग इतना कुचला हुआ है, जहाँ सभी इतने भयभीत रहते हैं, वहाँ भला कचहरियों के जरिए इलाज थोडे ही हो सकता है ? सच्ची दवा तो लोगों का डर दूर करना है । ये तीन-कठिया प्रथा, जब तक न जाय, तब तक हम सुख से नहीं बैठ सकते । मैं तो उतना ही देखने आया हूँ, जितना दो दिनों में देख सकूँ । पर अब देखता हूँ कि यह काम तो दो वर्ष भी ले सकता है । अगर इतना समय जाय, तौभी मैं देने को तैयार हूँ । मुझे यह सूझता है कि इस काम में क्या करना चाहिए । मगर आपकी मदद चाहिए ।"

व्रज किशोर बाबू को मैंने बहुत ही ठंढे दिमाग का आदमी पाया । उन्होंने शान्ति से जवाब दिया, "हमसे जो हो सकेगा, हम आपकी मदद करेंगे । किन्तु वह किस तरह की हो, वह आप समझाइए ।"

हमने इन बातों में ही रात बिता दी । मैंने कहा, "मुझे आपकी वकालत की शक्ति की थोडी ही जरूरत पडेगी । आप लोगों के पास से तो मैं केवल लेखक और दुभाषिए का ही काम लूँगा । इसमें जेल जाने की भी संभावना देखता हूँ । अगर आप इस जोखिम में पडें तो यह मुझे पसंद पडेगा । पर इसमें न पडना हो तो, भले ही मत पडिए । किन्तु वकील से बदल कर लेखक बनिए, और अनिश्चित काल के लिए वकालत बंद कर रखिए । मैं यही कुछ कम नहीं माँगता हूँ । यहांकी हिन्दी बोली समझने में मुझे मुश्किल पडती है । कागज सभी कैथी में या उर्दू में लिखे होंगे । उन्हें मैं नहीं पढ सकूँगा । आपसे इनके तर्जुमे की आशा रक्खूँगा । अगर हम यह काम मजदूरी देकर करावें तो नहीं कर सकेंगे । यह सब सेवा-भाव से और बिना रुपये पैसे के होना चाहिए ।"

व्रजकिशोर बाबू समझे, मगर उन्होंने मेरी, और अपने साथियों की जाँच शुरू की । मेरे वचनों के फलितार्थ पूछे । मेरी अटकल से, वकीलों को कब तक काम करना होगा, कितने आदमी चाहिए, अगर थोडे थोडे आदमी थोडी थोडी मुद्दत के लिए आवें तो चलेगा या नहीं—वगैरह प्रश्न मुझसे पूछे । वकीलों से पूछा कि उनमें त्याग की कितनी शक्ति है ।

अंत में उन्होंने यह निश्चय सुनाया, "हम इतने आदमी, आप जो काम सौंपेंगे, करने को तैयार रहेंगे । इनमें से जितने को, आप जितने दिनों के लिए बुलावेंगे, वे आपके पास रहेंगे । जेल जाने की बात नयी है । उस बारे में हम शक्ति पैदा करने की कोशिश करेंगे ।"

(नवजीवन) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

टिप्पणियां

काशी विद्यापीठ

काशी विद्यापीठ, बनारस छावनी, के आचार्य नरेन्द्र देव लिखते हैं:

"वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली में राष्ट्रीयता की दृष्टि से उचित परिवर्त्तन करने के लिए मातृ भाषा द्वारा हर प्रकार की शिक्षा देने तथा सरकारी और अर्द्ध-सरकारी शिक्षा-पद्धति में जो त्रुटियाँ अनुभव की जा रही हैं उनका यथाशक्ति निवारण करने के हेतु से अब से ७ वर्ष पूर्व जिस समय समाज के और अंगों में क्रान्ति हो रही थी, शिक्षा-पद्धति में क्रान्ति लाने के विचार से महात्मा गांधीजी के हाथों से काशी विद्यापीठ की स्थापना हुई थी ।

"वर्त्तमान ग्रीष्मावकाश के बाद काशी विद्यापीठ आगामी १ श्रावण १९८५ (१७ जुलाई १९२८) को खुलेगा । विद्यालय का पाठ्यक्रम चार वर्षों का रखा गया है । प्रथम वर्ष में हिन्दी, संस्कृत तथा अँग्रेजी का अध्ययन करना पडेगा और इनके अतिरिक्त अर्थ-शास्त्र शरीर-रचना तथा शरीर-विज्ञान और भारतवर्ष की आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक अवस्था पर साधारण व्याख्यान होंगे । शेष तीन वर्षों में अँग्रेजी तथा (क) दर्शन (ख) इतिहास, अर्थशास्त्र और राजशास्त्र तथा (ग) प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति—इन वैकल्पिक विषयों में से कोई एक विषय लेना पडेगा । द्वितीय वर्ष में हिन्दी सब विद्यार्थियों को तथा संस्कृत उन विद्यार्थियों को जो दर्शन और भारतीय संस्कृति लेना चाहते हैं, पढनी होगी । अन्तिम वर्ष में विद्यार्थी को उस वैकल्पिक विषय से संबन्ध रखनेवाले किसी विषय पर जिसे उसने लिया हो एक निबन्ध लिखना पडता है जिसमें उत्तीर्ण होना अनिवार्य है । प्रत्येक वर्ष की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर उसके ऊपर की परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति मिलती है । पढाई हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों द्वारा होगी ।

"विद्यापीठ को विशारद अथवा किसी शिक्षा-संस्था की मैट्रिक अथवा उसकी समकक्ष परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही विद्यार्थी विद्यालय में प्रवेश कर सकता है । विद्यार्थियों के रहने का प्रबन्ध छात्रावास में किया जाता है । सब विद्यार्थियों को प्रार्थना, सहभोज, सूत कातना और व्यायाम में संमिलित होना अनिवार्य होगा । विद्यापीठ में रहने और पढने का प्रबन्ध निःशुल्क है । निर्धन, योग्य और सदाचारी विद्यार्थियों को १०) मासिक छात्रवृत्ति मिल सकती है । पर छात्रवृत्ति चाहनेवाले विद्यार्थियों को हिंदी, अंग्रेजी और संस्कृत में परीक्षा देनी होगी । केवल उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों को

ही वृत्ति दी जायगी। विद्यापीठ का खर्च १५) मासिक से कम नहीं हो सकता। पाठक्रम तथा अन्य बातों के लिये पीठस्थविर से पत्रव्यवहार करें।"

काशी विद्यापीठ भी उन इन गिनी राष्ट्रीय संस्थाओं में से एक है, जो आज तक बची हुई हैं और इसके लिए बाबू शिवप्रसाद गुप्त की श्रद्धा और उदारता प्रशंसनीय है।

अखिल भारतीय गोरक्षा-परिषद्

इस मंडल की सामान्य सभा की एक बैठक सत्याग्रहाश्रम, साबरमती में आगामी २५ जुलाई को साढे तीन बजे सेपहर में निम्न लिखित प्रस्ताव पर विचार करने के लिए होगी:

"अपने आप धारण किये हुए व्यापक स्वरूप के प्रमाण के अनुरूप अखिल भारत गोरक्षा परिषद्, अपनी ओर प्रजा का ध्यान और सहानुभूति नहीं खींच सकी है। अपने उद्देश्यों के धीमे प्रचार और विशेष कर परिषद् के उद्देश्यानुसार सत्याग्रहाश्रम, साबरमती में चलते हुए दुग्धालय और चर्मालय से अधिक कुछ इसका काम बढ नहीं सका है। परिषद् के लिये हुए दान तथा शुल्क भी मुख्यतः इसके प्रयोगों में दिलचस्पी लेनेवालों की ओर से ही मिले हैं। जितना कि खयाल था, उस हिसाब से यथेष्ट संख्या में गोशालाएँ और पिंजरापोल परिषद् में शामिल नहीं हुए हैं।

इसलिए परिषद् के वर्तमान सभ्य इसे विसर्जन करते हैं और गोरक्षामंडली का छोटा सा नाम धारण करते हैं। इस मंडली के नीचे लिखे सभ्यों की स्थायी समिति बनायी जाती है . . . .। इस समिति को अपने काम, काज, व्यवस्था और धन तथा माल मिल्कियत सभी कुछ पर यह परिषद् अपने अधिकार सौंपती है। धन खर्च करने, उक्त प्रयोग चलाने, अपनी संख्या बढाने, दूसरी तरह से परिषद् के नियमों पर अमल करने, मंडली की व्यवस्था के लिए नियम घडने और समयानुसार उनमें फेरफार करने के सभी अधिकार इस मंडली को होंगे।"

इस प्रस्ताव को लाने के कारणों के बारे में मुझे और अधिक लिखने की जरूरत नहीं है। श्रीयुत जमनालालजी को तथा मुझे यह बराबर लगता रहा है कि हम इतने बडे नाम के अनुसार काम न दिखला कर भी इसी बडे नाम से इसे चलाये जाने में न तो परिषद् के, न प्रजा के प्रति ही न्याय कर रहे हैं। मुख्यतः मददें भी वही मिली हैं जो जमनालालजी को उनके व्यक्तिगत मित्रों ने दी हैं या जो मैंने प्रयोगों के लिए मांगी हैं। अगर गाय के नष्ट हो जाने से बचाना है तो मेरा विश्वास है कि ये प्रयोग परमावश्यक हैं। इस लिए मुझे ऐसा लगता है कि परिषद् को उन लोगों की एक छोटी मंडली बनानी ज्यादह उचित और ईमानदारी की बात होगी, जो इन पृष्ठों में बतलाये गोरक्षा के उपायों में दिलचस्पी रखते हैं, और उन्हें पसंद करते हैं। आज इसके कोष में कोई १७,०००) रुपये हैं और माल मिल्कियत के नाम से थोडी सी किताबें भर हैं जो मुख्यतः मुझ को भेंट में मिली थीं। चालू मासिक खर्च प्रायः ५५) रु. का है। परिषद् की जिम्मेवरी केवल वे ही खर्च चुकाने की है जो उक्त प्रयोगों को चलाने में आश्रम की ओर से किये गये हों। (यं इं)

मो० क० गांधी

खादी की फेरी

वर्धा खादी भंडार के भाई ऋषभदास खादी फेरी का अपना अनुभव यों लिखते हैं:

"महाराष्ट्र में खादी की बिक्री बढाने के लिए फेरी करने की बहुत दिनों की इच्छा अब पूरी हुई है। वर्धा वस्त्रागार में आने से मेरे काम का बोझा पूज्य जाजू जी ने ले लिया है। इस लिए यह निश्चय किया कि मैं १५ दिन फेरी करूँ।

"पहले अमरावती गया। ४ बजे यहाँ आया। पाँच बजे फेरी के लिए निकला। १४ वीं तारीख को १७) रुपये की बिक्री हुई; १५ वीं को १४२) रु. की; १६ वीं को १५९) रु. की; १७ वीं को १४९) रु. की; और अब १८ वीं का किस्सा यह रहा:

"सबेरे ठीक सात बजे निकलने का नियम किया है। आज भी समय पर निकल गया। मेरे साथ वर्धे से दो भाई आये हैं, वे और शिक्षण के लिए आया हुआ एक विद्यार्थी, कुल तीन आदमी थे। मैं इस शहर में अनजान हूँ। कोई जानकार आदमी साथ में न होने से हम उलटे रास्ते चले, और आत्मा को बेंचनेवाली बहिनों के मुहल्ले में पहुँचे। मेरे साथ के भाई घबराये। ये बहनें हमें बुलाने लगीं और उन्होंने मा देखने की इच्छा जाहिर की। मुझे यह उचित न जान पडा कि मैं उन्हें माल न दिखलाऊँ। मैं उन्हें माल दिखलाने लगा और थोडी खादी देकर आगे चला। कल्ह ही जाजू जी का पत्र मिला। उन्होंने लिखा था, "बरार में खादी के विरुद्ध वातावरण है और इसीलिए आपको वहाँ भेजा है। कष्ट तो होगा ही मगर काम करते जाना।" मैंने लिखा कि वातावरण का भय नहीं है। मुझे आत्म-विश्वास है। मगर आज का तो रंग बदला। जहाँ जाऊँ वहीं आवाज आवे, "खादी नहीं चाहिए।" मगर मैं भी तो ऐसा नहीं था कि इसी आवाज से हार मान लूँ कि खादी नहीं चाहिए। मैं कहता 'भाई माल तो देखो। फिर लेना न हो तो मत लेना।' माल देखकर लोग थोडी खादी लेते और फिर कहते कि और अब आपकी दूकान से लेंगे। कितने ही मध्यम वर्ग के लोगों को खादी लेने की इच्छा थी, मगर हमीं ऐसे समय पहुँचे जब उनके हाथ में रुपये नहीं होते। नौकरी करनेवाले भाइयों के हाथ तो १० तारीख तक ही रुपये रहते हैं। साढे ग्यारह बजे तक सिर्फ १९) रु. की खादी बिकी। मेरे साथी मुझपर खूब चिढे। मगर मैं क्या करूँ? मेरा प्रयत्न चालू ही था। फिर दो पहर को दो बजे निकले। शहर में के एक गृहस्थ पन्नालाल गांधी हमारी फजीहत में शामिल हो गये। हम चलने लगे। तीन मील तक गये। तब तक सिर्फ १४) रु. की खादी बिकी। सबके सिर पर खादी के गट्ठर थे। आठ बजे थे। मैं आगे चला। एक भाई ने मेरी परीक्षा करने के लिए मेरे लिए बहुत वजनदार गट्ठर तैयार कर रक्खा था। अंत में आठ बजे एक ग्राहक मिले। उन्होंने १३८) रु. की खादी ली। ये भाई सिंधी हैं। कृपलानी जी के मित्र हैं। इनकी पत्नी भी सच्ची देवी हैं। इनके स्वागत से मेरे साथियों की थकावट बहुत कुछ दूर हुई और बिक्री के आँकडे से तो वे एकदम बिलकुल ताजे हो गये। आज फेरी से पौने ग्यारह बजे के बाद लौटे। एक भाई को मेरा कहना ठीक जँचा कि परमेश्वर निष्काम कर्म को निष्फल नहीं ही करता है। यों दिनों दिन परमेश्वर के अस्तित्व की हमारी मान्यता दृढ होती जाती है।"

ऐसे अनुभव सभी खादी फेरी करनेवालों को मिलते ही होंगे। श्री मलकानी लिखते हैं कि मेरे लिए खादी फेरी तो भारी राजनीतिक शिक्षा हो रही है। दूसरे के लिए वह धीरज की तालीम है। ऋषभदास जैसों को ईश्वर पर अधिक विश्वास बैठानेवाली हो पडती है। किन्तु ईश्वर का विश्वास सस्ती चीज नहीं है। ऋषभदास को और उनके साथियों को तुरत सफलता मिली मगर बहुत भक्तों को तो ईश्वर मरण पर्यंत जाँचता है। ईश्वर भक्त को चाहिए कि वह सफलता के साथ ईश्वर के अस्तित्व का संबंध न जोडे। सफलता, निष्फलता उसके लिए समान होगी।

व्याख्या की पूर्ति

एक पाठक सत्याग्रहाश्रम की नियमावलि की टीका करते हुए अहिंसा की निम्नलिखित व्याख्या सुझाते हैं:

अहिंसा—अहिंसा हैं सूक्ष्म जंतुओं से लेकर परमात्मा तक किसी भी दुःख न पहुँचाने की भावना। 'नवजीवन' में प्रकाशित से कहीं अधिक विशाल अर्थ ऊपर का है। क्योंकि परमात्मा अयोग्य व्यवहार—बुरे विचारों से दुःखी करना भी—हिंसा है, महाहिंसा है और इसे अनेक अहिंसाधारी भूल जाते हैं।

"फिर आत्मघात भी महाहिंसा है। तौभी हमारे आसपास मघात की हृदय-बेधक घटनाएँ बरावर होती ही रहती हैं। द वे ऐसा समझते होंगे आत्मघात में स्वतंत्रता है, और इसमें ह जैसा तो कुछ है ही नहीं। अथवा आ पडे अन्याय या दुःख धीरज से सहन कर सकने की शक्ति की कमी से ऐसी नाएँ घटती होंगी। इसलिए अहिंसा के नियम में आत्मघात के में भी स्पष्ट उल्लेख होवे तो जन-समाज का अधिक हित की आशा है।"

और शारीरिक श्रम के बारे में वे लिखते हैं:

"**शारीरिक श्रम**—दूसरे की सेवा बिना कारण न लेनी हिए के साथ यह भी जोड दना चाहिए कि 'दूसरे को बिना ण सेवा देनी भी नहीं। अगर यह सूत्र हिन्दुस्तान समझ जाय काम बिना मारे मारे फिरने वाले भिखारियों को तो मर ही ना पडे।"

अहिंसा की व्याख्या विचार करने लायक है। और शारीरिक के बारे में जो लिखा है, वह प्रस्तुत न होने पर भी समय को ते हुए योग्य है। दूसरे को बिना कारण सेवा देने की इच्छा डे ही लोगों को होती है, और इसके प्रसंग बहुत नहीं आया ते। तौभी जहां धर्म-भावना के वश होकर पुण्य के नाम पर क तरह के दान दिये जाते हैं, वहां उसे और ऐसी दूसरी ी सेवाओं को रोकने का आशय यही है और यह योग्य ता है।

बाल-विधवा

पाठकों को याद होगा कि कोई तीन महीने पहले मैंने एक े लिखे विलायत से लौटे हुए और गायकवाडी राज्य में किसी य ऊँचा पद पाये हुए बूढे गृहस्थ के विवाह के बारे में लिखा । उसके बाद 'नवजीवन' के लेख के असर से, तथा अपनी रादरी ब्रह्मभट्ट लोगों के निंदा करने से, उनके विवाह का इरादा ड देने पर उन्हें धन्यवाद भी दिया था। अब उसके बाद मेरे पत्र आये थे कि विवाह का इरादा छोडने की बात केवल दगा थी और इस तरह जाति को ठग कर मूलजीभाई वारोट (यही नाम था) ने चुपके से विवाह कर लिया था। अब खबर मिलती है कि मूलजीभाई की मृत्यु हुई है और वह बाला बाल-विधवा बन गयी है। भले ये बुरे किसी तरह के आदमी की मृत्यु हम न चाहें। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के न्याय से हम यही मनावें कि बुरे आदमी को सुमति मिले। मगर इस बाल-विधवा का क्या किया जाय? यह प्रश्न समाज को विचारना रहा। चौदह वर्ष की बाला अगर आप भी विधवा रहने की इच्छा करे तो इसका कोई अर्थ नहीं हो सकता। अगर बाल-विधवा के विरुद्ध घातकी लोकमत न हो तो ऐसी बाला जरूर पुनर्विवाह करना चाहेगी। ब्रह्मभट्ट जाति के अगुओं को इस गाय को सँभालने के लिए आगे दौडना चाहिए। अगर मुखियों ने अपना धर्म न समझा हो तो इस जाति के नवयुवकों को उन्हें धैर्य से समझा-बुझा कर इस बाला को मुक्ति दिलानी चाहिए। मुखिया न समझें और इस लडकी के सगे संबन्धी समझें, तब भी इस मसले का हल निकाला जा सकता है। किन्तु ऐसे प्रश्नों के हल के लिए, हल निकालने की इच्छा करनेवाले में योग्यता होनी चाहिए, पवित्रता होनी चाहिए। जिन गुणों की आवश्यकता शान्तिमय स्वराज के लिए है, उन्हीं गुणों की आवश्यकता बाल-विधवा के विवाह इत्यादि के बारे में भी है।

(नवजीवन) **मो० क० गांधी**

पर्दा तोडो

विगत ८ वीं जुलाई को पर्दे के विरोध में बिहार के शहर शहर में सभाएँ को गयी होंगी। छपरे की सभा की रिपोर्ट हमारे पास माननीय श्रीयुत महेन्द्रप्रसाद ने भेजी है। उसमें लिखा है कि पुराने विचार के भी, प्रतिष्ठित घरानों की कुल ७५ महिलाओं और कुछ सज्जनों की एक सभा हुई थी। श्रीमती मौलाना मजहर-उल हक सभाध्यक्षा थीं। श्रीमती शैल कुमारीदेवी ने पर्दे के विरुद्ध एक निबंध पढा और उपस्थित सभ्यों के पर्दा तोडने तथा पर्दे के विरुद्ध आन्दोलन करने के संबंध में प्रस्ताव किया। जिसका समर्थन श्रीमती कलावती वर्मा, श्रीमती भगवती देवी, श्रीमती सावित्री रानी सेवल, श्रीमती इंद्रासनी देवी, और श्रीमती श्यामा देवी ने किया। इस आन्दोलन के लिए श्रीयुत चंद्रदेव नारायण, जलेश्वर प्रसाद, सुखदेव प्रसाद, गुणराजसिंह, बच्चा प्रसाद, मौलाना मजहर-उल हक, मथुरा प्रसाद, हजारीलाल साहु, फूलदेव सहाय वर्मा इत्यादि सज्जन काम कर रहे हैं।

खादी की उत्पत्ति और बिक्री का ब्यौरा

		उत्पत्ति			विक्रय		
प्रान्त	रु.	अप्रिल '२८	अप्रिल '२७	मार्च '२८	एप्रिल '२८	एप्रिल '२७	मार्च '२८
अजमेर	,,	५,३१४	७,६४१	७,८३१	५,८९४	६,५१९	१२,१४८
आन्ध्र	,,	१३,७३३	३२,२१८	१०,४९४	१९,५८८	४९,६७५	२५,७८५
बिहार	,,	१५,५३१	८,३६९	२१,८३९	२५,१०४	२१,८१८	२८,७८८
बंगाल	,,	३०,३३४	१३,५७९	२४,१९८	४३,८१४	३५,७३२	४१,४९०
बम्बई	,,	. .	. .	. .	४५,५९४	३६,६५८	२०,७५३
ब्रह्मा	,,	. .	. .	. .	२,७१७	२,९७४	२,३८८
दिल्ली	,,	७६०	९२६	९०२	१,९९२	२,१९७	१,३९७
गुजरात	,,	७,५५३*	५,०९५	. .	२६,४५४*	१४,२६४	. .
कर्णाटक	,,	३,६५५	२,००१	३,०५३	१२,९६६	५,११३	८,०२१
महाराष्ट्र	,,	४,१०३	१,५६१	३,८०८	२७,८७५	१९,३२५	१५,१५९
पंजाब	,,	३,१४६	५,८०१	५,१९६	११,६९५	१०,५८७	८,६४३
तामिलनाड	,,	४८,४१३	७१,७११	५७,४३०	६५,४६४	७४,३३१	६७,४८७
केरल	,,	१,१७८	७६२	१,०४९	४,३५६	४,७२७	४,५६१
युक्त प्रान्त	,,	३,२००	७,११३	६,२४८	२१,४७०	१९,००४	१४,०४५
उत्कल	,,	५,७११	४,१५२	३,६५९	३,१५०	३,२८४	४,७४३
कुल	रु.	१,४२,६३१	१,६०,९२९	१,४५,६८९	३,१८,१३३	३,०६,२०८	२,५५,४०८

* इन अंकों में मार्च और फरवरी के अंक भी शामिल है।

निरक्षर बाल-शिक्षण

३

कितने लोग यह मानने की भूल करते हैं कि निरक्षर शिक्षा के मानी साहित्य-विहीन शिक्षा है। किन्तु ऐसी कोई बात नहीं है। हम तो महज इतना ही कहते हैं कि ध्वनि-प्रधान भाषा, आकृति-प्रधान अक्षरों के वाहन पर से उतर कर, अपने पैरों चले। बालकों की अभिरुचि एक बार हाथ में आ जाने पर हमें अनुभव होता है कि बालक स्वभाव से ही साहित्य-प्रिय होता है। गद्य और पद्य दोनों में छिपा हुआ ताल बालक का मन उसके अनजाने ही पकड लेता है। और उसकी मस्ती में अधिक समय तक रहने के लिए बालक हमारे बिना कहे भी उसीका रटन बार बार किया करता है। यह व्यापार कभी कभी उसकी इच्छा के विरुद्ध भी हुआ करता है। कितने ही पद्य या जोडती हम बालकों को गाने से मने करते हैं, और वह मानता भी है, मगर तौभी अजाने, अनिच्छा से भी उनका रटन मुँह से चलता ही रहता है। ताल और प्रास का औचित्य बालक के मन के लिए सुंदर खूराक है। ऐसा साहित्य अक्षरबद्ध कर के बालक के आगे रखने से बालक उसे ग्रहण नहीं कर सकता और इसलिए उसका आधा रस मारा जाता है। ये ही पद्य बालकों के आगे दो चार बार गा सुनाइए। फिर परिणाम देखिए। पवन में जैसे फूल डोलता है, इस तरह बालक नाचना शुरू कर देते हैं। और अनेक तरह से अपनी कृतज्ञता दिखलाते हैं।

साहित्य में बालकों के लिए अर्थ जानने का आनंद जितना महत्त्वपूर्ण है, उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण आनंद उसका संगीत, उसकी तालबद्धता, और उसके गुंजन में है। इससे पहले अर्थ बतला कर, फिर पीछे से कविता या तालबद्ध गद्य याद कराने से कहीं अच्छा है, अर्थ बतलाने के पहले ही उन्हें याद करा देना। इस वाचन या गायन का नशा चढने बाद अर्थ करना, अथवा भाव स्पष्ट करना, बहुत सहज हो जाता है। बहुत बहुत तो, अगर पाठ्य विषय कठिन हो तो, उसका वातावरण खडा कर लेने लायक प्रस्तावना बात बात में करनी चाहिए। अनुभव यह है कि कंठस्थ किये गये फिकरों या काव्यों के अर्थ की ओर बालक का ध्यान जल्दी एकाग्र होता है। कितने एक आदमी आधुनिक शिक्षा की, अर्थ के पहले कंठस्थ कराने की पद्धति को, 'घोख विद्या चोख' बना कर चौपट कर देते हैं। नीरस नियमों और याद करने के पाठों के बारे में यह नियम भले ही सच्चा हो, किन्तु जीवंत साहित्य के बारे में इसकी टीका अनुभव बिना गिनी जायगी।

इससे आगे जा कर यह कहा जा सकता है कि मंत्र, स्तोत्र और उपासना के शब्दों के बारे में अर्थ के पहले ही भक्तिभाव पैदा करना शक्य है, इतना ही नहीं बल्कि इष्ट भी है। भक्ति का कीमिया, शिक्षाशास्त्र की सभी कठिनाइयों को लांघ जाने में समर्थ होता है। इस लिए ऐसी व्यवस्था करनी अत्यंत आवश्यक है कि बचपन में अभिजात, संस्कारी साहित्य के साथ बालक का परिचय कराया जाय, ऐसा साहित्य जबान पर चढा रहे। अरविंद घोष जैसे साहित्याचार्यों का भी अनुभव यही है। जिस तरह खूराक का रासायनिक पृथक्करण बतलाये बिना, हम बालकों को अन्न देते हैं, उस तरह उतनी ही निश्चिंतता से बाल सुलभ, बालग्राह्य साहित्य बालकों को देना चाहिए। जैसे भाषा का उच्चारण और बोलने की छटा, बालक अनजाने भी बडों के पास से लेते हैं, उसी तरह शुद्ध, संस्कारी और परंपरागत साहित्य बालकों को मिलना चाहिए। कॉलेज में कीमती शिक्षा के लिए दिये जाने वाले वर्षों की बनिस्बत बचपन में दिये गये ऐसे साहित्य का असर अधिक रहता है बालकों के आगे उत्तम साहित्य खूब पढ जाओ, याद हो तो बार बार सुना डालो, फिर फिर गाओ, और बालकों से गवाओ— इतना होने बाद तुरत ही उनके अर्थ का स्वाद दो और फिर देखोगे कि उनकी आंखों में दिया जलाने लायक जैसा तेज आ गया है।

मैं ने ऐसी कई संस्कारी लडकियां और प्रौढ विधवाएँ देखी हैं, जिन्हें लिखना पढना नहीं आता है, मगर तौ भी जिन्हें प्रसंगानुसार सुंदर शिष्ट कविताएँ बनानी आती है। क्या कोई यह भरोसा दे सकता है कि अक्षर लिखना, पढना सीखने का बोझा इनके सिर आ जाता तौ भी इनकी यह प्रसन्नता और शक्ति मारी न जाती? बालपन में जिन्हें वाणी द्वारा शुद्ध साहित्य की खूराक मिलती है, उनका सहज भाषण भी मोर के बच्चों के स्वाभाविक नृत्य के समान रमणीय होता है।

मुख्य वस्तु ऐसा साहित्य पसंद करने की योग्यता में रही है। बात यह नहीं है कि ऐसा साहित्य शुरू से अखीर तक खेल संबंधी, हास्यरस और छोकरवाद ही होना चाहिए। यह मानने की भूल बहुत से शिक्षक और मावाप करते हैं कि बालकों का रस केवल खेल और हास्यरस में ही रहता है। ऐसी मान्यता पर रची गयी शिक्षा बालकों का स्वभाव बिगाड डालती है। लडके बाहर से छिछोर, मसखरे और भीतर ही भीतर दुःखी बन जाते हैं। यह भी अनुभव की ही बात है। साहित्य का भाव भले ही गंभीर हो, गहरा हो, मगर बालक की समझ के बाहर न हुआ तो बस है। और आग्रह भी न रक्खा जाय कि हम जितना समझते हैं, बालक भी उतना ही समझे। संस्कार का बीज मानसक्षेत्र में पहुँच गया तो बस है। यह श्रद्धा रखनी चाहिए कि यथा समय वह उगेगा ही। परीक्षा-पद्धति में यह भी एक दोष छिपा रहता है कि दिये गये ज्ञान की प्राप्ति के साथ साथ काम करने का अवकाश देने के पहले ही, उसकी जाँच शुरू हो जाती है। मानों यह कह कर कि ला हमारा ज्ञान लौटा दे, दिया हुआ सब कुछ छीन ही लेना हो।

कितना साहित्य बालकों के आगे धरोहर के रूप में रक्खा हो तौभी चल सकता है। आगे जाते हुए ज्यों ज्यों उसका उपयोग दिखलायी पडता है, त्यों त्यों बालक आनंद और कृतज्ञता का अनुभव करता है।

इसका अर्थ यह नहीं करना है कि सारा काम 'घोख विद्या चोख' बना कर ही करना है। शिक्षा में आज तक जैसा चलता आया है, वैसे साहित्य को प्रधान स्थान में रखना ही नहीं है। साहित्य की कीमत चाहे जितनी हो, मगर उससे भी कीमती दूसरी वस्तुएँ हैं। इन्द्रियों का विकास, और खास कर कर्मेन्द्रियों की कुशलता और व्यवहारोपयोगी सुव्यवस्थित ज्ञान ही शिक्षा का मुख्य भाग है। इसके साथ चारित्र्य को दृढ करनेवाली टेवें और जीवन के रहस्य का और कर्त्तव्य का आकलन घुसावें तो शिक्षा लगभग पूरी हो गयी। साहित्य का शृंगार उपयोगी है, आवश्यक है, किन्तु यह कुछ शिक्षा का सर्वस्व नहीं है।

पुराने जमाने में जब 'अमुक' शिक्षा की व्यवस्था कर्मकाण्डी ब्राह्मणों के हाथों में थी, तब उन्होंने पंडों को कर्मकाण्ड आने लायक ही शिक्षा की रचना की। आज साहित्याचार्यों के हाथों में शिक्षा फँस गयी है। इसलिए उन्होंने अक्षर-ज्ञान और साहित्य के परिचय को शिक्षा का मुख्य अंग माना है। शिक्षा में साहित्य की मदद असाधारण है। किन्तु उसीसे शिक्षा का सारा क्षेत्र व्याप्त नहीं कर डालना चाहिए।

(नवजीवन)

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

मच्छर पर तोप

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ४८

मुद्रक–प्रकाशक मोहनलाल मगनलाल भट्ट

अहमदाबाद, श्रावण सुदी २ संवत् १९८४
गुरुवार, १९ जुलाई, १९२८ ई०

मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियाँ

असहयोग या सविनय विरोध

सरकारी मंडलों में यह आशंका पायी गयी है कि बारडोली का आन्दोलन असहयोग आन्दोलन है। इस लिए सविनय विरोध और असहयोग का फर्क बतला देना जरूरी है। दोनों का ही समावेश सत्याग्रह के बडे शब्द में हो जाता है। और सत्य और अहिंसा के आधार पर किये गये हर एक काम को सत्याग्रह कह सकते हैं। और कई वस्तुओं के साथ, कलकत्ते की विशेष महासभा में स्वराज्य–प्राप्ति के लिए स्वीकृत कार्यक्रम का, जिसे नागपुर महासभा ने पक्का किया था, समावेश करने के लिए, असहयोग शब्द की रचना की गयी थी। इसके अनुसार स्वराज्य–प्राप्ति के उद्देश्य को छोड कर और किसी काम के लिए भी, सरकार से पत्रव्यवहार या प्रार्थना करनी असंभव थी। बारडोली का आन्दोलन और चाहे जो कुछ भी क्यों न हो, मगर यह स्वराज्य–प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष आन्दोलन तो नहीं है। यह भी बेशक सही है कि ऐसी हर एक लडाई, हर एक जागृति स्वराज्य को और भी निकट लाती है, बल्कि स्वराज्य–प्राप्ति के लिए किये गये प्रत्यक्ष प्रयत्नों से भी अधिक निकट लाती है। मगर बारडोली का संग्राम तो एक खास शिकायत को दूर कराने के लिए है। वह शिकायत दूर हुई नहीं कि यह लडाई भी बंद हुई। पहले तो नियमित प्रार्थनाएँ और अर्जियाँ की गयीं। और जब ये नियमित उपाय बिलकुल ही बेकार रहे, तब बारडोलीवालों ने श्रीयुत वल्लभभाई पटेल को, अपने सविनय विरोध का नेतृत्व करने के लिए आमंत्रित किया। इस सविनय विरोध का अर्थ सरकार के बनाये कानूनों और नियमों की सविनय अवज्ञा तक भी नहीं है। इसके मानी तो महज एक कर का कुछ अंश भर न देना है, जो रैयत की दृष्टि में अनुचित और अन्याय्य है। यह तो इसीके समान है कि महाजन जितने पावने का दावा करता है, कर्जदार उतना नहीं देता है। अगर यह किसी साधारण आदमी का अधिकार है कि वह उस कर्ज को चुकाने से इनकार करे, जिसका लेना वह स्वीकार ही नहीं करता हो तो रैयत को भी उस कर को देने से इनकार करने का हक है, जिसे वह अन्याय्य समझती हो। मगर यहां मेरा उद्देश्य, बारडोली की रैयत के काम को सही सिद्ध करना नहीं है। मेरा उद्देश्य है स्वराज्य–प्राप्ति के लिए किये गये असहयोग तथा किसी खास शिकायत को दूर करने के लिए किये गये बारडोली के समान आन्दोलन का फर्क दिखलाना। मुझे आशा है कि अब यह बिलकुल स्पष्ट हो गया है। यह तो बात ही अलग है कि श्रीयुत वल्लभभाई और उनके अधीनस्थ अधिकांश कार्यकर्त्ता पक्के असहयोगी हैं। वे जिनके प्रतिनिधि हैं, उनमें अधिकांश असहयोगी नहीं हैं। राष्ट्रीय रूप में असहयोग आन्दोलन मुल्तवी कर दिया गया है। किसी असहयोगी का व्यक्तिगत सिद्धान्त, उसे उन लोगों को सहायता पहुँचाने से नहीं रोकता है जो लोग लाचार सरकार के सहयोगी बने बैठे हैं।

द० अफ्रिका प्रवासियों को

द० अफ्रिका की हिन्दुस्तानी महासभा के मंत्री जोहान्सबर्ग से मेरे पास इस आशय का तार भेजते हैं:

"माफी की योजना स्वीकृत हो गयी है। दक्षिण अफ्रिका के यूनियन में जिन हिन्दुस्तानियों ने गैर कानूनी तौर पर पहले प्रवेश किया था और जो अभी हिन्दुस्तान में हैं, या तो ३० वीं सितंबर के पहले लौट आवें या एशियाटिक अफेयर्स के कमिश्नर, प्रिटोरिया के पास दरखास्त भेजें जो ३० सितंबर के पहले पहुँच जाय। दरखास्त भेजने के बाद उन्हें ३० मार्च १९२९ के पहले वहां लौट जाना होगा। कृपया इस समाचार को अखबारों में सर्वत्र प्रकाशित करा दीजिए।"

इससे माफ़ी योजना के संबंध में वह आन्दोलन समाप्त हो गया जो कि दक्षिण अफ्रिका में चल रहा था, और श्री माननीय शास्त्री जी की स्थिति मुश्किल किये हुए था और हिन्दुस्तान में और वहां, दोनों जगह लोगों को चिन्ता में डाले हुए था। इस लिए वे हिन्दुस्तानी, जिन्हें वहां के बाशिन्दों के अधिकार मिल गये हैं, जिनके पास सर्टिफिकेट हों और जो वहां लौटने के अधिकार को इस्तेमाल करना चाहते हों, अपनी दरखास्तें भेजने में उतावली करें, जिसमें वे ३० सितंबर तक या उसके पहले 'कमिश्नर ऑफ इंडियन अफेयर्स, प्रिटोरिया' के पास पहुँच जायँ अगर वे खुद इस तारीख के पहले वहां चले जाना चाहते हों तो दरखास्त भेजने की कोई

जरूरत नहीं है। वे अपनी दरखास्तों में सभी तफसील, जैसे कि नाम, पता, पेशा, कब दरखास्त दी थी, वगैरह तथा इस संबंध की और सभी बातें लिखें। दरखास्तें रजिस्ट्री कर के, काफी समय पहले भेजी जायँ और दरखास्त भेजने के बाद उन्हें ३० वीं मार्च १९२९ के पहले जरूर वहां लौट जाना होगा।

मैं इससे अधिक और निश्चित बातें बतलाना चाहता था। मगर मेरे सामने न तो दरखास्त का फारम है, और न है योजना की ही नकल। इस लिए अधिक बातें बतलाने में असमर्थ हूँ। और फिर और बातें जितनी जल्दी मालूम होंगी, मैं प्रकाशित करूँगा मगर कोई उनके भरोसे बैठा न रहे।

खादी के परोक्ष लाभ

गत १४ जून को तिरुचेनगोड्ड में श्रीयुत चक्रवर्त्ती राजगोपालाचारी द्वारा संचालित गांधी आश्रम ने एक दातव्य औषधालय आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय के हाथों खुलवाया। उस सभा में पढी गयी रिपोर्ट से जान पडता है कि खादी के केन्द्र के चारों ओर, अस्पृश्यता-निवारण, मद्य-निवारण, ग्राम-स्वच्छता और डाक्टरी सहायता की बातें भी पैदा हो गयी है। आश्रम के जरिए १८५ गांवों में काम होता है, जिनमें खादी के जरिए ४५,०००) रुपये सालाना बाँटते हैं। अस्पृश्यता का निवारण होता है, अछूतों से भी उन्हीं शर्त्तों पर व्यक्तिगत सेवाएँ लेकर, जिन पर कि सछूतों से लेते हैं। आश्रम का विचार है कि पैसे होते ही उनके लिए पांच कुएँ खोदे जायँ और झोपडियाँ बनायी जायँ। उन्हें १०,०००) रुपयों की जरूरत है, जिसमें से ५,०००) रु. कुओं पर खर्च होंगे। कुओं की जरूरत बहुत सख्त है क्योंकि अछूतों को दूर दूर से पानी लाना पडता है और एक घडे पानी के लिए कितनी ही जलालतें और मुश्किलें बरदाश्त करनी पडती हैं। १९ महीनों में आश्रम से २६,०९५ स्त्री पुरुषों को दवा दी गयी। औषधालय को बढाने की इतनी अधिक जरूरत पडी कि उन्हें एक खास औषधालय ५,०००) रु. में बनाना पडा। उसीको खोलने के लिए आचार्य राय बंगाल से आश्रम तक गये। औषधालय में २००) रु. का माहवारी खर्च था जो कि खादी काम से मिलता था। मगर अब दान की जरूरत महसूस हो रही है। सफाई के काम का वर्णन मैं रिपोर्ट से ही देता हूँ:

"लोग अपनी आदतों को जल्दी बदलनेवाले नहीं हैं। नयी बातों का उनपर असर नहीं पडता है। इस हालत में हमने सोचा कि सफाई संबंधी हमारा काम शुरु होना चाहिए लडकों से। गत १८ फरवरी १९२८ से बच्चों के स्नान की एक योजना शुरु की गयी, जिस में १२ साल से कम उम्र के पास पडोस के सभी बच्चों को हर शनिवार को तेल और रीठे से तथा हर मंगलवार को केवल तेल से स्नान कराना स्वीकार किया गया। आश्रम के डाक्टर तथा दूसरे आदमी खुद इस काम को करते हैं। वे बच्चों के बालों में से जुओं को निकालते, उनमें तेल मलते, उन्हें रगड रगड कर धो कर साफ करते हैं। इस योजना से केवल अछूतों ने ही लाभ उठाया है। शुरु में बहुत से लडके आते थे और उन्हें नहला धुला कर साफ सूफ किये जाना देखना बडा ही भला लगता था। मगर उसका नयापन मिटते ही, बहुतों ने आना बंद कर दिया। अब तो हर हफ्ते नियमित रूप से केवल २० ही लडके आते हैं। मगर हमें तो आशा है कि अगर हम इसके पीछे लगे रहे, तो फिर बहुतेरे लडके इस योजना से लाभ उठावेंगे।"

खादी के परोक्ष लाभ में से ये थोडे से है। हँसनेवाले लोग ये बातें गांठ बांध लेवें। और मित्रगण आश्रम को सहायता देवें, जो कि अपनी सच्ची और निःस्वार्थ सेवा से और जनता को स्वावलंबी, और स्वाश्रयी बना कर, जनता में धीरे धीरे मगर निश्चय ही प्रवेश कर रहा है।

(यं. इ.)

मो० क० गांधी

स्वावलंबन पद्धति

खादी प्रचार के मार्ग में स्वावलंबन पद्धति का हिस्सा कुछ जैसा तैसा नहीं है। इसमें भी शंका नहीं है कि वह लोकप्रिय हो सकती है और सीधे में सीधा रास्ता वही है। बिजोलिया में काम करनेवाले भाई जेठालाल गोविंदजी, उसी पद्धति के चुस्त हिमायती हैं। वे लिखते हैं:

"एक आदमी को साल में औसतन बारह वर्ग गज कपडा चाहिए। एक कुटुम्ब में औसतन पांच आदमी गिन कर, ६० वर्ग गज कपडा चाहिए। इस कपडे के लिए अधिक से अधिक ६० × ११०० (ताने के तार) × २ गज (भरनी के तार) = १,३२,००० गज सूत चाहिए। इसे कातने में अधिक से अधिक, ३०० गज फी घंटे की चाल से, ४४० घंटे चाहिए। इसमें लगभग १९ सेर रुई लगेगी, जिसे धुनने और पूनी बनाने में लगभग ७६ घंटे लगेंगे। फिर यह साठ गज कपडा बुनने में ३०० घंटे लगेंगे। यानी कुल मिला कर (४४० + ७६ + ३०० घंटे=)८१६ घंटे लगेंगे। ऊपर के गिने घर के पांच आदमियों में से ढाई आदमी रोज काम करें तो ८१६ घंटा ÷ २½=लगभग ३२६½ घंटे फी आदमी पडेंगे।

"किसानों और खेती पर आधार रखनेवाले मजदूरों को मिला कर २० करोड आदमियों को समझ, शिक्षा और सुविधा देने से वे उसी तरह अपने घर कपडे बना लेंगे, जैसे कि वे आज अपनी रोटी पका लिया करते हैं। एक आदमी के १२ गज कपडे की कीमत ५) रु. मान लेवें तो ये २० करोड आदमी एक अर्ब रुपयों की खादी तैयार कर लेवें। पैसे के लेनदेन का सवाल इसमें न हो कर मिल की या विलायती कपडे को चढा ऊपरी का भी सवाल नहीं हो सकता है। उत्पत्ति के अनर्थ (पूंजी रोक कर, सूत कता बुना कर फेरी द्वारा बेंचने इत्यादि में कार्यकर्त्ताओं की शक्तियों के अस्वाभाविक, अमर्यादित कार्य में होनेवाले ह्रास) से हम बच जायँगे।"

इस दृष्टि के अनुसार दूसरी पद्धतियाँ भी साथ साथ चलनी ही चाहिए। किन्तु स्वावलंबन पद्धति का शास्त्रीय अभ्यास थोडों ने ही किया है, उसका अनुभव तो उनसे भी कम लोगों ने लिया है। इसलिए जहां यह चलती हो, वहांके खादी कार्यकर्त्ता अपने अनुभव लिख भेजें तो वह उपयोगी होगा। स्वावलंबन पद्धति का प्रचार सभी अपने पडोसियों में तो कर सकते हैं, किन्तु 'आप मरे बिना स्वर्ग नहीं दीखता' के न्याय से जो अपनी खादी आप ही उत्पन्न नहीं कर लेते वे तो इसका प्रचार कर ही नहीं सकते।

विकार-विच्छू

कलकत्ते का एक विद्यार्थी लिखता है:

"क्या कोई अपनी पत्नी के साथ शुद्ध व्यवहार रख कर यानी ब्रह्मचर्य का पालन कर दम्पति जीवन सुखी कर सकता है? वह अशिक्षित पत्नी को ब्रह्मचर्य की महिमा किस तरह बतला सकता है? उसे संयम धर्म किस तरह सिखला सकता है? ऐसा करने में वह कहां तक सफलता पा सकता है? समाज के आज के दूषित वातावरण में पत्नी को भ्रष्ट होने से कहां तक बचा सकता है?"

मेरा और मेरे साथियों का अनुभव तो ऐसा है कि अगर पति पत्नी स्वेच्छा से ब्रह्मचर्य का पालन करें तो आत्यन्तिक सुख पा सकते हैं, अपने सुख की वृद्धि का अनुभव नित्य करते हैं

क्षित पत्नी को ब्रह्मचर्य की महिमा बतलाने में अड़चन नहीं है। अथवा यों कह सकते हैं कि ब्रह्मचर्य शिक्षित, अशिक्षित द नहीं जानता है। ब्रह्मचर्य केवल हृदय-बल की बात है। जानते हुए, अशिक्षित स्त्रियां, विवाहित हो कर भी ब्रह्मचर्य पालन कर रही हैं। समाज के गँदले वातावरण में भी ब्रह्मचर्य पालन करनेवाला पति अपनी पत्नी के 'सत' की रक्षा करने अधिक समर्थ बनता है। ब्रह्मचर्य का अभाव पत्नी को भ्रष्ट से बचाता नहीं है, मगर पत्नी के भ्रष्टाचार का आवरण बनने कितने उदाहरण दिये जा सकते हैं।

ब्रह्मचर्य की शक्ति अमाप है। बहुत उदाहरणों में मेरा अनुभव के ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाला पति स्वयं विकारों से मुक्त होता है, इस लिए वह अपने प्रयत्नों का प्रभाव पत्नी पर नहीं सकता है। विकार चतुर महाशय है। इस लिए उसे अपने बंधु को पहचान लेने में देर नहीं लगती। जो विकार रहित बनी है, जो विकार को छोडने को अभी तैयार भी नहीं हुई वह पत्नी अपने पति के हृदय में छिपी हुई विकार-वासना को पहचान लेती है, और उसके नम्र प्रयत्नों की अपने मन में उडाती है, और स्वयं निर्भय रहती है। इसमें कोई शंका न कि जो ब्रह्मचर्य अचलित है, और जिसके साथ शुद्ध प्रेम भरा है, वह अपने साथियों के विकार को जला कर राख कर है।

बेलुर (रामकृष्ण मठ) में कई सुंदर मूर्त्तियों में एक मूर्त्ति ऐसी देखी जिसमें शिल्पकार ने काम का बिच्छू की उपमा है। उसने एक कामिनी को डंक मारा है। उसके जहर के ने उस स्त्री को नग्न कर डाला है। और फिर पीछे वह बिच्छू, ने डंक को टेढा किये हुए, अपने विजय के अभिमान में उस के पैरों के पास पडा पडा उसकी हँसी कर रहा है। बिच्छू ऊपर जिस पति ने विजय प्राप्त कर लिया है, उसकी आंख में, के स्पर्श में, उसकी वाचा में, ब्रह्मचर्य की शीतलता होती है। अपने समीप रहनेवाली पत्नी के विकारों को क्षण भर में ही करके शान्त करता है।

द्ध बाल विवाह या व्यभिचार?

एक बहिन के पत्र में से मैं कुछ उतारे यहां देता हूँ:

"आपने 'नवजीवन' के अपने लेख में यह सलाह दी है कि प्रोफेसर के समाना ऐसी बडी उम्र में बालिका के साथ विवाह वाले का बहिष्कार समाज को करना चाहिए।

"यह पढ कर मेरे मन में ये विचार आते हैं। वृद्ध विवाह बहिष्कार समाज किस तरह करे? समाज में के ९० आदमी ऐसे विवाहों को शास्त्रीय और वाजबी ही मानने वाले हैं और! विवाह की बात तो ताख पर रही, किन्तु अपने घर में स्त्री र होते हुए भी पुरुष परस्त्री के साथ गुप्त व्यवहार रखते हैं। सी आगे बढ कर, कितने आदमी तो विवाह के लिए स्त्री न ने से खुले आम रखेली रखते हैं। कितने पुरुष घर में स्त्री हुए भी रखेली रखते हैं।

"फिर कितने आदमी बहुत दिनों तक किसी स्त्री के साथ व्यवहार रखते हैं और फिर कुछ दिनों बाद अगर कोई दूसरी सूरत औरत मिल जाय तो पहले की स्त्री को छोड कर, फिर रूपवती को रखेली रखते हैं। इसका एकमात्र कारण है, थोडा मौज शौक, और मन की ऐसी निर्बलता जो छोडी न जा सके। तु ऐसे लोगों का बहिष्कार तो समाज नहीं करता है। ऐसे ज को वृद्ध विवाह रोकने या उसका बहिष्कार करने का क्या अधिकार है? क्या हक है? मेरी समझ में तो जो साधु हो, वही पापियों पर हँस सकता है। अगर चोर ही चोर पर हँसे, तो उसका क्या असर होगा?"

इस बहिन की दलील में जड है। किन्तु औषध तो वही है जो मैंने बतलाया है। जो पुरुष ~~बहिष्कार~~ व्यभिचार करता है, समाज उसका बहिष्कार भले करे। किन्तु जब तक व्यभिचारी का बहिष्कार न करे तब तक उस वृद्ध का भी बहिष्कार न किया जाय, जो बालकन्या से विवाह करता है तो, फिर ऐसे बेमेल विवाहों को रोकने में बहुत दिन लग जायेंगे। इसमें शक नहीं है कि व्यभिचार में बहुत दोष है मगर मैं मानता हूँ कि वृद्ध-बाल विवाह में उससे भी अधिक दोष है। व्यभिचार में दोनों पक्ष सम्मत होते हैं और जब जो पाप से छूटना चाहे, छूट सकता है। वृद्ध-बाल विवाह में तो सुधार का, प्रायश्चित्त का अवकाश ही नहीं है, क्योंकि उस अधर्म को तोडने में धर्म की ही बाधा पडती है। फिर अधर्म जब धर्म का वेश धारण करता है, तब वह और अधिक दूषित बनता है क्योंकि उस में पाखंड का मिश्रण होता है।

दुःख की बात तो यह है कि आज व्यभिचार के बारे में समाज जैसा उदासीन है, वैसा ही वृद्ध-बाल विवाह के भी बारे में है। इस लिए दोनों सवालों को एक में न मिलाते हुए यह बहिन, तथा दूसरी बहिनें और नवयुवक, वृद्ध-बाल विवाह के प्रश्न को अपने हाथ में लेवें और लोकमत तैयार करें। इतना सही है कि जो लोग ये पवित्र सुधार करना चाहते हैं, उन्हें स्वयं शुद्ध होना चाहिए। कानून का नियम है कि 'जो न्याय माँगने जाते हैं, उन्हें स्वयं शुद्ध होकर न्यायमंदिर में प्रवेश करना चाहिए।' अनुभव इस नियम का पूरा समर्थन करता है।

वृद्ध बाल-विवाह

पिछले हफ्ते एक प्रोफेसर के बाल-विवाह का किस्सा मुझे देना पडा था। इस हफ्ते भाटिया मित्रों ने मेरे पास एक धनिक भाटिया गृहस्थ के विवाह का किस्सा लिख भेजा है यह कहना कठिन है कि इस भाटिया गृहस्थ के ८० साल की उम्र में पांचवीं बार एक बाला के साथ विवाह करने का दोष बडा है या धन लोभी बाप का कसाई के हाथ रुपये के लिए गरीब गाय को बेंच देने का पाप बडा है। सुनता हूँ कि इस लोभ को रोकने के लिए कई भाटिया भाइयों ने तजवीज भी की मगर इस धनमद से मतवाले ८० वर्ष के बूढे दूल्हे ने समझाने के लिए गये हुए लोगों को रास्ता देखने को कहा।

ऐसी निर्दयता को रोकने का तरीका मैं पिछले ही हफ्ते विचार गया। शुद्ध लोकमत और शुद्ध बहिष्कार पैदा करने के सिवाय मुझे दूसरा रास्ता सूझ नहीं सकता है। और बहिष्कार का अर्थ केवल अपनी बिरादरी का ही किया बहिष्कार नहीं है, बल्कि सारे समाज को बहिष्कार करना चाहिए। ऐसे आदमियों के साथ आवश्यक यानी भोजन की, बीमारी और मरण समय के अलावा और सभी संबंध तोड डालने चाहिए। इसके बिना काम की मस्ती में पडे हुओं की जागृति असंभवित नहीं तो मुश्किल है।

मो० क० गांधी

(नवजीवन)

अखिल भारत चर्खा संघ की सन् १९२६-२७ की वार्षिक रिपोर्ट अब हिन्दी में तैयार हो गयी है। मूल्य डाक खर्च समेत चार आना है। जो मँगाना चाहें उन्हें "मंत्री अ० भा० चर्खा संघ, मिर्जापुर, अहमदाबाद" को लिखना चाहिए।

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, श्रावण सुदी २ संवत् १९८४

मच्छर पर तोप

एक ओर से पंडित हृदयनाथ कुंजरू, श्री वझे और श्री अमृतलाल ठक्कर की बारडोली की जाँच ने, रहे सहे नेताओं का भी संशय दूर कर दिया है तो दूसरी ओर यह अफवाह गर्म है कि सरकार मच्छर पर तोप चलाने की महान तैयारियाँ कर रही है। कोई कहता है, लार्ड बर्केनहेड लंडन से सारा प्रबंध करते हैं। तो कोई कहता है कि श्री वल्लभभाई के हाथ में बारडोली की सरदारी चले जाने देने के कारण शिमला पहाडी पर विराजमान् भारत सरकार, बंबई सरकार को नालायक कह कर धमका रही है और वहींसे हुक्म चला रही है। मानों, जैसे कि बंबई की सरकार ने साम, दाम, आदि चारों नीतियों का उपयोग करने में कुछ उठा रक्खा हो! अफवाह तो यह भी है कि अभी जो पुलिस और जप्ती अफसरों का काम बंद है सो तो सिर्फ तूफान के पहले की अशुभ शान्ति का चिह्न है। यह तो सरकार की नयी और अधिक उग्र व्यूह रचना की तैयारियों की दूर से सुनायी पडनेवाली भनक है।

किन्तु बारडोली के सत्याग्रहियों का इन सभी अफवाहों के साथ कोई संबंध नहीं होना चाहिए। अफवाह झूठी हो तो सरकार की इतनी कम बुराई और सत्याग्रहियों की इतनी कम कसौटी होगी और अगर सच्ची हो तो सरकारी पाप के घडे में जो कमी होगी, वह पूरी हो जायगी और सत्याग्रहियों को अपनी परीक्षा करने का इच्छित संयोग मिलेगा।

कोई कहता है, 'सचेत नर सदा सुखी।' इस न्याय से सत्याग्रहियों को अधिक सावधान होना चाहिए। अफवाह सच्ची हो और कहीं सरकार अचानक छापा मार कर, कुछ ऐसा काम कर बैठे जिसकी हमने कल्पना भी न की हो, और सत्याग्रहियों को घबराहट में डाल कर, सत्याग्रह दल को तोड डाले, और हमारी की करायी कमाई पल भर में नष्ट कर डाले तो!

जहां सेनापति चौबीसों घन्टे जागृत है, वहां चेतावनी क्या देनी? जगे हुए को जगाना क्या? निरंतर जागृति तो सत्याग्रह की अनेक अनिवार्य शर्तों में से एक है। फिर सत्याग्रही को जुदी जुदी व्यूह-रचना के जंजाल में पडना भी नहीं रहता है। उसकी व्यूह-रचना सभी काल में, सभी स्थल में एक ही होती है। सत्याग्रही अपना पहला और अंतिम पाठ अपनी प्रतिज्ञा के साथ ही पढ लेता है। इस लिए सेनापति और उसकी सेना का काम सरल, सीधा और सहज होता है। सत्याग्रह एक तरह की जडी बूटी है। इस लिए उस में घटी बढी का अवकाश ही नहीं है। सत्याग्रही का एक टोटका छत्तीस रोगों को हरनेवाला होता है। जप्ती करे तौभी भला, जमीन खालसा करे तौभी भला, कैद करे तौभी भला, देशनिकाला करे तौभी भला, तलवार के घाट उतारे तौभी भला या तोप पर उडावे तौभी भला। इनमें से एक कसौटी पर भी जो न चढ सके, वह सत्याग्रही नहीं गिना जा सकता। सत्याग्रही की प्रतिज्ञा के टुकडे नहीं किये जा सकते क्योंकि सत्य के टुकडे नहीं हो सकते। सत्य एक ही है, अविभक्त है, अविभाज्य है, और तीनों काल में उसकी यही स्थिति रहती है। सत्य को मकान की खिलान या कमान की उपमा दी जा सकती है। खिलान की एक ईंट टूटी कि सारी खिलान टूटी। खोटा रुपया निन्यानबे दूकानों में चल सकने के कारण सौवीं दूकान में चलने की शक्ति नहीं पा सकता। वह तो उत्पत्ति काल से ही खोटा था। महज कसौटी देर से हुई।

इसी तरह जो अंतिम कसौटी पर भी न चढ सका, वह सत्याग्रही न था। दूसरा और कुछ भले ही हो। उसके मर्यादित दुःख सहन करने से भले प्रजा ऊँचे चढी हो, भले ही उसे भी उसका लाभ मिला हो, किन्तु वह सत्याग्रही की पंक्ति में नहीं खपता, उसे सत्याग्रही होने का प्रमाणपत्र नहीं मिलता। सत्याग्रही के बारे में सोलन की भाषा में कह सकते हैं, "किसीको उसके मरण के पहले सत्याग्रही मत गिनना।"

बारडोली के सत्याग्रही इस वचन को घोखें और हृदय में धारण करें।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

बारडोली

पार्लामेन्ट में

बारडोली के बारे में लार्ड बर्केनहेड, और अर्ल विन्टरटन को भी कुछ जानने की जरूरत जान पडी है। इस जाँच पडताल के परिणाम में अर्ल विन्टरटन ने जाहिर किया है कि श्री. वल्लभभाई को अपनी लडाई में थोडी सफलता मिली है। किन्तु किसानों के साथ कानूनी कार्रवाई की जा रही है और फिर बंबई सरकार को भारत सरकार से राय मशविरा करने की सलाह दी गयी है। यह नहीं पता चलता है कि इस सलाह का कारण हमारे किसानों की दृढता और कष्ट सहिष्णुता है, या 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के सरकार के उलट जाने के बारे में लेख हैं। किन्तु पांच पांच महीनों तक कष्ट सहने बाद किसान अगर अपनी लडाई के बारे में विलायत वालों की आंखें खुलवानी शुरू करें तो यह आश्चर्य की बात नहीं होगी। फिर इस बारे में तो अब भी कोई चर्चा होती नहीं दीखती है कि अब तक श्री. वल्लभभाई को सफलता कैसे मिली, उन्हें लडाई किस लिए शुरू करनी पडी, इसमें सरकार की फजीहत एक के बाद एक कैसे होती गयी, और सरकार का हठ देश के हर एक पक्ष को कैसा विचित्र लगता है।

इस बीच सरकार के रेवेन्यू मेंबर जो अभी ताजे ही विलायत से आये हैं, गुजरात के कमिश्नर से मिल गये। इधर गवर्नर साहेब भी शिमले में वायसराय से बातें कर आये। अब देखना है कि क्या होता है। कलक्टर ने लोगों को नोटिस दी है कि जो जमीन खालसा जाहिर हो चुकी है, वह सरकार की है, और उसमें खेती करनेवाला अपनी जोखिम पर खेती करता है। और वह जमीन फस्ल के साथ सरकार की गिनी जायगी। किसान जो कुछ कर रहे हैं और सरकार चाहे जो कहे, मगर वे जमीन जोतते हैं, और इस विश्वास से जोतते हैं कि जमीन हमारी है।

बेवफा कौन?

पटेल तलाटियों के त्यागपत्रों पर देश में वाह वाह हो रहा है। पर सरकार त्यागपत्र स्वीकार कैसे करे? पहले तो उसने प्रकट किया —या बकौल 'टाइम्स' के संवाददाता के सरकार को भ्रम में डालनेवाले उस नादान डेप्युटी कलक्टर ने जाहिर कराया— कि ये सभी सरकार के भक्त हैं, महज असहयोगियों के दबाव से त्यागपत्र दे रहे हैं फिर उनकी खुशामद शुरू हुई। 'जरूर आना भाई' कह कह कर उन्हें न्योते दिये जाने लगे। वे न गये। इसलिए अब तलाटियों को नोटिस मिली है तुमने सरकार की कानूनी कार्रवाइयों की अनुचित आलोचना की और वसूली के काम में मदद न की। तुम्हारी बेवफाई के लिए तुम्हें नौकरी से बरतरफ क्यों न किया जाय, और तुम्हारे खिलाफ और कर्रवाई क्यों न की जाय? इसका कारण

जावे। मानों बरतरफ करने से इन लोगों की अधिक बदनामी होगी न ! सरकार जो चाहे, भले मानती रहे, पर प्रजा में तो बरतरफ किये गये तलाटियों का उलटे और भी अधिक मान होगा। और सरकार की बदनामी थोडी और बढ जायगी। इस नोटिस का जवाब तलाटियों की ओर से जाने लगा है। उनमें गोविंदराम तलाटी के जवाब का थोडा सा हिस्सा यहां देने लायक है। वह यह रहा।

"आप अपनी नोटिस में मुझपर यह इल्जाम लगाते हैं कि मैंने अपने त्यागपत्र में, अधिक कर वसूल करने की सरकार की अपनी कार्रवाइयों की अनुचित टीका की है, और इस समय सरकार के विरुद्ध चलनेवाली हलचल में शामिल हो उसका समर्थन किया है। और इस तरह सरकार के प्रति गैरवाजबी और बेवफा बरताव करने के लिए मुझे बरतरफ क्यों न किया जाय इसका कारण बतलाने को अपने रुबरू ११-७-२८ के रोज हाजिर होने को आपने लिखा है। इस लिए इस संबंध में मेरा फर्ज हो गया है कि मैं अब अपनी सच्ची स्थिति बतला दूँ।

"मेरे जमीन नहीं है, इसलिए जमीन का कर भरना नहीं है। इसलिए कर न देने के आन्दोलन में मेरे शामिल होने का कारण नहीं है।

"मेरी नौकरी २२ वर्ष की हुई है, और ४५ वर्ष की उम्र। मुझे बडे छोटे कुल ११ आदमियों का पोषण करना है। इस उम्र में नया धंधा ढूंढना मुश्किल है, और इतने बडे कुटुंब का पालन करना भी मुश्किल सवाल है। ऐसी स्थिति में इतनी पुरानी नौकरी और जब कि पेन्शन मिलने में थोडे ही दिन बाकी हैं, छोडने के लिए तैयार होकर इस्तीफा देने में मुझे जो कष्ट हुआ होगा, उसका अनुमान आपको नहीं हो सकता। नहीं तो आप यह नोटिस देकर, जले पर नोन छिडकने का विचार ही नहीं करते।

"२२ वर्ष मैंने वफादारी से नौकरी बजायी है। इस बीच कभी किसीका उलाहना नहीं सुना है। १९२१ में जब कि असहयोग आन्दोलन चल रहा था, तब भी मैंने इस ताल्लुके में नौकरी बजायी, और इसबार भी, जमीन महसूल का आन्दोलन चलने बाद आजतक मामलतदार साहेब की ओर से मैंने कोई उलाहना नहीं सुना और उन्हें संतोष ही दिया है। मगर तौभी जब ईमान्दारी से काम करने का अवकाश न रहा और यह स्थिति हुई कि प्रजा का दुःख किसी तरह से देखा न जा सके, तब मैं ने लाचार होकर नौकरी की मर्यादा बचाये रखकर, त्यागपत्र दिया, और उसमें भी केवल जरूरी शब्दों भर में ही नौकरी छोडने के कारण दिखलाये। इसे आप बेवफा बरताव लिखते हैं। इससे मुझे बहुत खेद हुआ है, और दुःखी दिल से खरी बात कहने का मेरा कर्तव्य हो जाता है कि सरकार को सच्ची स्थिति से अनजान रखकर, प्रजा पर जो असह्य दुःख पडा है, और प्रजा पर जो अन्याय हुआ है, उसे सरकार से छिपा रखने से ही सरकार मुश्किल में पडी है और प्रजा भी दुःख में पडी है। और अगर ये ही बातें चलती रहीं तो इस ताल्लुके में तलाटी की नौकरी करने के लिए एक भी आदमी नहीं मिल सकेगा। इसलिए अपने त्यागपत्र में मैंने जो सच्ची बात लिखी है सो कोई गुनाह नहीं किया है, परंतु मैं मानता हूँ कि जिन लोगों ने सरकार से सच्ची स्थिति छिपा रक्खी होगी, वे ही गुनहगार हैं।

"आपके अभी के विचारों को देखते हुए, अगर आप मेरा त्यागपत्र मंजूर करने के बदले, मुझे बरतरफ करें तो इससे मेरा कोई नुकसान नहीं है। इसलिए इस बारे में मैं बेपर्वा हूँ। आपको अगर यही योग्य लगता हो तो भले ही मुझे बरखास्त करके खुश होवें। आपके सामने हाजिर होकर मुझे कुछ भी खुलासा करना नहीं है। इस संबंध में तो ईश्वर के ही यहाँ निर्णय हो सकेगा कि इस संबंध में कौन बेवफा है।"

यह तो देखना है कि अब और क्या कार्रवाई की जाती है। ऊपर का मर्यादाभरा जवाब देनेवाले ने और दूसरी कार्रवाइयों के लिए भी तो तैयारी कर ही रक्खी होगी न !

आत्मशुद्धि का सुंदर नमूना

कुछ दिन हुए सेठ वीरचंद चेनाजी के दो घोडे जप्त होकर नीलाम किये गये। उन्हें खानदेश के शहादा गांव का एक मुसलमान १४५) रु. में खरीद ले गया। यह बात शहादावालों को बहुत ही नागवार गुजरी। क्योंकि कहां तो वे बारडोली के साथ अपनी सहानुभूति दिखलाना चाहते थे और कहां उन्हींमें से एक आदमी जप्त माल को नीलाम में से खरीद लाया! इस घटना के बाद वहांपर बारडोली की सहायता करने के संबंध में और भी आन्दोलन चलने लगा और शहादा के कई प्रतिष्ठित मुसलमानों ने घोडा खरीद लानेवाले की निंदा की और श्री. वल्लभभाई के पास माफी का पत्र लिखा। उनकी तथा और कई दूसरे भाइयों की मिहनत से अखीर में तै पाया कि जप्ती के घोडे बारडोली लौटा दिये जायँ। घोडे खरीदने वाले ने भी बारडोली भेजने के लिए घोडे उन्हें सौंप दिये, और वे बारडोली भेज दिये गये।

यह आत्मशुद्धि का नमूना तो है ही, पर साथ ही हिन्दू-मुसलिम ऐक्य का भी नमूना है। श्री वल्लभभाई के पास माफी का पत्र लिख कर घोडा भेजनेवाले पटेल हिन्दू हैं और आत्मशुद्धि का आन्दोलन करनेवाले हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं। सरकारी अफसरों के फुसलाने से जिनके हाथ, इस लडाई के संबंध में काले हुए हैं, वैसे दूसरे लोगों को भी इस उदारण से आत्मशुद्धि करने की प्रेरणा होवे तो कुछ नवीनता नहीं है।

सार्व्वदेशिक समर्थन

श्रीयुत कुंजरू और वजे की समिति की इस रिपोर्ट के बाद कि सत्य तो बारडोली की प्रजा के पक्ष में है, और बेशक प्रजा का यह दावा सही है कि नयी जाँच जरूर होनी ही चाहिए, और भी कई प्रमुख नेताओं ने अपनी जोरदार सम्मति प्रकट की है और इन लोगों पर दलबंदी या पक्षपात का दोष नहीं लगाया जा सकता। भारतीय व्यापारी संघ के प्रतिनिधि श्री लालजी नारायण जी ने स्पष्टतः इसी बिना पर धारासभा की सदस्यता का त्याग-पत्र दिया था कि सरकार ने प्रजा की इस नम्र माँग को हठधर्मी से इनकार किया था कि फिर से जाँच की जाय और वह भी तब जब कि वे पुराना लगान भर देने को तैयार हैं। पंडित मोतीलाल ने सरकार के इस कथन को कि किसान पहले बढती लगान चुका देवें और तब बाद में सरकार उनकी प्रार्थना पर विचार करेगी, बिलकुल अतार्किक और अनुचित समझते हैं। सर अली इमाम ने भी कहा है कि इतना तो सिद्ध हो चुका है कि जाँच की जरूरत है। इसी तरह का दृढ और इनसे भी ज्यादह बा असर मत श्रीयुत सी. वाई. चिन्तामणि ने प्रकट किया है। उनके विचार का आधार मनुष्य स्वभाव है। वे कहते हैं: "मनुष्य स्वभाव ऐसा विपरीत नहीं है कि एक दो नहीं बल्कि बहुत से आदमी एक ऐसी महाबली सरकार का विरोध करना शुरू करें, जिसकी इच्छा कानून के समान मान्य है, और वह कानून प्रायः ही स्वेच्छाचार का रूप धारण करता है, और खास कर तब जब कि ऐसे विरोध से प्रजा को हानि ही हानि हो, लाभ कुछ भी न हो। अपने कार्य की न्याय्यता के लिए जो लोग इतने भयंकर कष्ट सह रहे हैं, वे अगर इस बढती को ही मंसूख करने की भी माँग करते तो यह उचित ही होता। मगर उनका केवल सरकारी जाँच के बदले एक स्वतंत्र जाँच के लिए माँग करना तो उनकी शक्ति और नम्रता का चिह्न है। साथ ही सरकार इसे भी जो स्वीकार नहीं करती सो सरकार के खोखलेपन और असमर्थनीय

स्थिति को प्रकट करता है। फिर सरकार का यह कहना कि विरोधी रैयत पहले लगान भर देवें और तब बाद में सरकार जाँच के प्रश्न पर विचार करेगी, महज हास्यजनक है।" और तो और, 'पायोनियर' जैसा अधगोरा अखबार भी लिखता है, "असल बात जो समझने की है, और जो तुरत ही स्पष्ट होनी चाहिए, वह यह है कि बारडोली के झगडे की वस्तुस्थिति को जाननेवाला कोई आदमी इस निर्णय पर आये बिना नहीं रह सकता कि न्याय तो प्रजा के पक्ष में है, और बढती लगान की जाँच स्वतंत्र समिति द्वारा करवाने की उनकी माँग न्याय्य, तर्कयुक्त और उचित है।"

जान पडता है कि इस तरह सभी दल के लोगों की एक ही राय देख कर आखिर सरकार की आंखें खुलीं हैं और तभी बंबई के गवर्नर साहेब वायसराय से मिलने शिमले गये हैं।

(यं० इं० और नवजीवन में से) **महादेव देशाई**

स्नातक के प्रश्न

रेशम और बाघछाला

विद्यापीठ का एक स्नातक लिखता है:

"यह समझ में नहीं आता है कि हमारे हिन्दू शास्त्रों में रेशम को पवित्र गिनने के क्या उद्देश्य होंगे। कीडों को मार कर रेशम बनाया जाता है, और हम सभी जानते हैं कि उसमें बहुत हिंसा है। तौभी स्नान कर के पूजा करने के समय ब्राह्मण पंडित रेशमी वस्त्र पहन कर भक्ति करते हैं। समझ में नहीं आता कि इसमें आशय क्या होगा? और भला इस में भी क्या आशय होगा कि ब्राह्मण, बनिया वगैरह उच्च ज्ञाति के कहे जानेवाले लोग, जब कभी बिरादरी में कोई भोज होता है तो रेशमी वस्त्र पहन कर जाते हैं?

"फिर जैन धर्मी तो अपने को चुस्त अहिंसावादी कहते हैं न? तब उनमें भी कितने आदमी रेशमी वस्त्र पहन कर जब पूजा पर बैठते हैं तो उनका अहिंसा धर्म कहां चला जाता है?

"प्राचीन काल में ऋषि मुनि बाघछाला के आसन पर बैठते थे। इसमें क्या हिंसा नहीं है?"

अहिंसा की दृष्टि से रेशम का और बाघछाला का त्याग होना चाहिए। और इसी दृष्टि से मोती तथा दूसरी बहुत सी वस्तुओं का भी त्याग होना चाहिए। जान पडता है कि जिस युग में रेशम और बाघछाला पहिनने का रिवाज चला, उस युग में लोग अहिंसा धर्म मानते थे और तौभी ऐसी वस्तुएँ काम में लाते थे। क्योंकि उस समय उन्होंने बाघ के चमडे और रेशम का उपयोग देखा और उसकी आवश्यकता मानी। इस लिए अहिंसा धर्म के माननेवाले होने पर भी, उन्होंने दोनो वस्तुएँ इस्तैमाल कीं। अहिंसा को मानते हुए भी हमारे पूर्वज यज्ञ में पशुओं की बलि चढाते थे और हम देखते हैं कि आज भी कितने चढाते हैं। पशुओं की बलि चढानेवाले शास्त्र के वचन टाँक कर कहते हैं कि यज्ञार्थ की गयी हिंसा, कभी हिंसा नहीं है। इसी तरह हम दूसरे आदमी जो केवल वनस्पति इत्यादि का निरामिषाहार ही करते हैं, वे वनस्पति इत्यादि में जीव होने पर भी, उनका नाश करते हैं और मानते हैं कि इससे हमारी अहिंसा को जरा भी बाधा नहीं पहुँचती।

इन सबसे हमें यह सार मिलता है कि देहधारी सर्व्वांश में अहिंसा से मुक्त नहीं रह सकता। सिर्फ पानी और हवा पर रहेनेवाला भी तो थोडी बहुत हिंसा करता ही है। इससे हम ऐसा नियम घटा सकते हैं कि जिसके उपयोग में जरा भी हिंसा है, उसका त्याग जहां तक संभव हो, करना चाहिए। ऐसा त्याग करते हुए भी त्याग न करनेवाले की निंदा हम न करें, और उसके प्रति उदार भाव रक्खें।

किन्तु जो कि ऊपर के हिसाब से खाने पीने में अत्यन्त सादगी की जरूरत है, और मनुष्य-प्राणी से उतरते हुए जीवों को बचा लेने का हमारा धर्म है, किन्तु तौभी हमें समझ लेना चाहिए कि इनमें पाली जानेवाली अहिंसा थोडी सी ही है, सर्वस्व नही है। हम रोज देखते हैं कि ऐसी अहिंसा का अतिशय सूक्ष्मता से पालन करनेवाला आदमी बहुत बडा हिंसक हो सकता है, और उसमें अहिंसा की लगन तो जरा भी नहीं हो सकती है। वारसे में चली आती हुई रूढि के वश हो कर हम अमुक वस्तुओं का उपयोग खाने, पीने में न करें तो इससे यह दावा नहीं कर सकते कि इन वस्तुओं के संबंध में हम अहिंसक है। रूढि या आवश्यकता के कारण पली जानेवाली अहिंसा में भौतिक परिणाम भले ही आवें किन्तु खुद अहिंसा एक ऊँचे प्रकार की भावना है, और उसका आरोपण तो उसी आदमी के संबंध में किया जा सकता है, जिसका मन अहिंसक है और जो प्राणीमात्र के प्रति करुणा से, प्रेम से उभरा पडता है। खुद किसी दिन मांसाहार किया नहीं, इस लिए आज भी नहीं करता है, किन्तु क्षण क्षण में क्रोध करता है, दूसरों को लूटता है, लूटने में नीति, अनीति की पर्वा नहीं करता, जिसे लूटता है, उसके सुख दुःख की फिक्र नहीं रखता, वह आदमी किसी तरह अहिंसक मानने लायक नहीं है किन्तु यह कहना चाहिए कि वह घोर हिंसा करनेवाला है। इसके उलटे मांसाहार करनेवाला वह आदमी जो प्रेम से उभरा पडता है, रागद्वेषादिसे मुक्त है, सबके प्रति समभाव रखता है, वह अहिंसक है, पूजा करने योग्य है। अहिंसा का ख्याल करते हुए हम हमेशे, केवल खान पानादि का ही विचार करते हैं। यह अहिंसा नहीं कही जायगी। यह तो मूर्च्छा है। जो मोक्षदायी है, जो परम धर्म है, जिसके निकट हिंसक प्राणी अपना हिंसा छोड देते हैं, दुश्मन वैर भाव का त्याग करते हैं, कठोर हृदय पिघल जाते हैं, वह अहिंसा कोई अलौकिक शक्ति है, और वह बहुत प्रयत्न के बाद, बहुत तपश्चर्या के बाद किसी किसीका ही वरण करती है।

पूँजी और मजूरी

स्नातक का दूसरा प्रश्न यह रहा:

"इस जमाने में यंत्र से चलनेवाले सभी धंधों में पूँजीवाले दूसरे लोगों की मजूरी भाडे पर लेकर खूब नफे कमाते हैं और आमवर्ग की मिहनत पर ऐशो आराम करते हैं। कृपा कर बतलाइए कि यह स्थिति संसार को आगे ले जाती है या पीछे गिराती है। चीन के एक राजा ने कहा था कि अगर मेरे राज्य में एक आदमी बेकार बैठ जाय तो दूसरे किसी आदमी को उसके बदले उसका निर्वाह होने लायक, मजदूरी करनी पडेगी। इसमें संदेह नहीं है। इस हिसाब से तो पूँजीवाले सामान्यवर्ग की मजदूरी पर ही जीते हैं और इसलिए उनके गुजरान के लिए उनके बदले सामान्यवर्ग को अधिक मजूरी करनी पडती है।"

पूँजी और मजूरी का भेद इसी जमाने का नहीं है। यह भेद प्राचीन काल से चला आया है। इस युग में उसने तीव्र स्वरूप धारण किया है क्योंकि मजूरवर्ग में भारी जागृति आयी है। और फिर इस युग में पूँजीवालों की संख्या बहुत बढ गयी है और पूँजीवाद ने बहुत उग्र स्वरूप धारण किया है। पहले पूँजीवालों में मुख्य कर के राजा होते थे, और दूसरे थोडे से उनके सरोकारी, जब कि अभी तो पूँजीवालों के काफिले ही टूट पडे हैं। तब यह कहा ही कैसे जा सकता है कि ऐसी स्थिति में दुनिया आगे बढती है? किन्तु इस स्थिति को सुधारने का उपाय पूँजीवालों से द्वेष करने से यानी उनपर अत्याचार करने से नहीं निकलनेवाला है। मेरी मान्यता है कि कम वा अधिक प्रमाण में पूँजी और मजूरी, दोनों रहेंगी ही। मैं यह मानता हूँ कि मनुष्य के प्रयत्न से दोनों के बीच का

…त बहुत कुछ टाला जा सकता है। चीन के राजा का जो …न स्नातक ने उतारा है, वह सोने के समान कीमती है। जगत् …क भी आदमी बेकार बैठा रहे तो उसका बोझा किसी न किसी …तो उठाना ही पडता है। इसलिए एक क्षण भी बेकार बैठे …में पाप है। हम अगर यही बात समझ लेवें तो बहुत सी …राइयों से निकल जायँ। और जिस तरह बेकार बैठे रहना पाप …सी तरह अपनी हाजत से अधिक लेना या संग्रह करना भी पाप …जहां तहां जो भूखमरी वर्त्तमान है, उसका भी कारण यही है।

खादी का आशय

स्नातक का तीसरा प्रश्न यह है :

"आपके खादी के आन्दोलन का यही आशय है क्या कि …आदमी जितनी मजदूरी करे, उसे उतना पैसा मिले और वह …योग्य रीति से सबमें बराबर बँटे ? क्या कोई दूसरे भी …य हैं ? कृपया इस शंका का निवारण कीजिए।

"क्या आप कह सकते हैं कि बहुत दिनों बाद आपके खादी …दोलन से कारखाना युग का नाश होगा ?"

खादी का यह एक आशय है सही, मगर दूसरे तो कई आशय …। जैसे कि किसान वर्ग को अपने फालतू समय में घरेलू और …क धंधा मिलेगा। विदेशी कपडे का बहिष्कार होगा, प्रजा की …शक्ति बढेगी, हजारों मध्यमवर्ग के लोगों को प्रामाणिक आजीविका …गी, और जो करोडों आदमी खादी का मंत्र समझ जायँ तो …में स्वराज्य-प्राप्ति की शक्ति तो सहज ही पडी हुई है।

खादी की सफलता से कारखाने का साम्राज्य तो जरूर ही टलेगा।

स्नातक को दो बातें

स्नातक ने और कई प्रश्न पूछे हैं, मगर उनके उत्तर देने की …श्यकता मुझे नहीं जान पडती है। वे प्रश्न पूर्वजन्म और …र्म तथा दैव के विषय में हैं। ये प्रश्न अनादिकाल से चले …हैं। स्नातक को मेरी सलाह है कि ऐसे प्रश्नों के उत्तर के …वे धीरज रखें। मैं जो कुछ उत्तर दूँगा, उसके जवाब में …बातें और लिखी जा सकती हैं और यों बुद्धिबल की आज- …चला ही करेगी। हमारे लिए सीधा मार्ग यह है कि हम सब …आगे पडे हुए कर्त्तव्य में लगे रहें, और अपनी आध्यात्मिक …नों के लिए आशा रखें कि उन्हें परमात्मा सुलझा देंगे। पाप …पुण्य की प्रतीति हमें होती है और प्राचीनकाल से यह धर्म …आया है कि पुण्य करना, और पाप छोडना चाहिए। इतने से हमें संतुष्ट रहना चाहिए। दैव और पुरुषार्थ का द्वंद्व चला ही करता है। भला काम करने में हम पुरुषार्थ की ओर ढलें। गीता ने सुगम मार्ग बता दिया है। वह है फलेच्छा छोड कर काम करना।

अंत में, स्नातक को मेरी सलाह है कि वह अपने अक्षर सुधारें। सुंदर अक्षर लिखना एक सुंदर कला है। वह बाह्य शिष्टता का लक्षण होना चाहिए। स्नातक का पत्र पढने में मुझे बहुत कुछ मुश्किल हुई थी। खुद मैंने सुंदर अक्षर लिखना न सीखा। विद्या-काल में मुझे न किसी ने टोका, न सिखलाया और बाद में अक्षर सुधारने लायक समय ही न मिला। लेकिन अपने अक्षर पढने का कष्ट मैं बहुतों को देता हूँ। इसीसे अपने ऊपर तरस खाकर मैंने स्नातक का पत्र पढने का कष्ट उठाया है। स्नातक — विद्यार्थी मात्र — मेरी भूल से बोध लेकर चेत जायँ और अपने मित्रों के लिए भी मोती के दाने जैसे अक्षर लिखना सीखें।

(नवजीवन) — **मोहनदास करमचंद गांधी**

आप भले तो जग भला

जब कि मैं दूसरों की निंदा सुन सुन कर दुःखी हो रहा था, एक मित्र ने अचानक नीचे की कडियाँ गा सुनायीं। मुझे वे बहुत ही पसंद पडी और इस लिए इस निर्दोष विनोद में पाठक को भी हिस्सेदार बनाने का मन हुआ।

न थी हाल की जब हमें अपने खबर,
रहे देखते औरों के ऐब ओ हुनर।
पडी अपनी बुराइयों पै जब की नजर,
तो निगाहों में कोई बुरा न रहा॥
'जफर' आदमी उसको न मानियेगा,
गो हो कैसा ही साहेबे फहम ओ जका।
जिसे ऐश में यादे खुदा न रही,
जिसे तैश में खौफे खुदा न रहा॥

किन्तु यह काव्य देने की धृष्टता मैंने की है, इस लिए, मुझे आशा है कि, "कविगण" मुझपर कविताओं की वर्षा नहीं करेंगे। सुंदर काव्यों से हम आंतर शुद्धि नहीं कर सकते। यह मैं जानता हूँ। इस लिए शायद ही कभी काव्यों को 'नवजीवन' में स्थान मिलता है। किन्तु ऊपर के काव्य के उपयोग का इतिहास है, इस लिए उसे पाठकों के आगे, इस आशा में रक्खा है कि कोई तो अपने दोषों का दर्शन करने बाद, पर-निंदा से बचेगा।

(नवजीवन) — **मो० क० गांधी**

खादी की उत्पत्ति और बिक्री का ब्यौरा

…न्त		उत्पत्ति			बिक्री		
	रु.	मई '२८	मई '२७	अप्रिल '२८	मई '२८	मई '२७	एप्रिल '२८
…जमेर	,,	५,५०२	४,४११	५,३१४	७,११९	१७,४०७	५,८९४
…न्ध्र	,,	९,२६७	२७,५२७	१४,२३९	१८,८४५	४८,३६९	२२,८७३
…हार	,,	१५,४२६	८,६५३	१५,१९९	२५,३३९	१५,०२३	१९,७०२
…गाल*	,,	२१,३०६	१६,८३८	३०,३३४	२०,०३२	२६,३९९	४३,८१४
…बई	,,	. .	. .	. .	३६,७८१	२४,३५९	४५,५९४
…मा	,,	. .	. .	. .	१,८०४	२,२१९	२,७१७
…ली	,,	१,००८	१,३१९	७६०	१,४९३	१,६६१	१,९९२
…जरात	,,	अंक नहीं मिले	५,९१९	७,५५६	अंक नहीं मिले	६,०१३	२६,४५४
…र्नाटक	,,	३,६०१	४,२१५	३,६५५	७,७२०	५,५१८	१२,९६६
…राष्ट्र	,,	३,२२९	१,७७१	४,१०३	१६,३७३	११,१७२	२७,८७५
…जाब	,,	३,६८४	४,५८४	३,१४६	१०,५१०	६,४०९	११,६९५
…मिलनाड	,,	५७,७५६	६९,७३९	४८,४१३	७९,६४५	७१,९०२	६५,९२८
…ल	,,	१,०६३	७३१	१,१७८	३,७५९	३,८०९	४,३५६
… प्रान्त	,,	२,४३४	७,८००	३,२००	१२,६१३	२१,९२९	२१,४७०
…कल	,,	अंक नहीं मिले	३,९४२	५,७११	अंक नहीं मिले	२,२१६	३,१५०
	कुल रु.	१,२५,२७६	१,५७,४४९	१,४२,८०८	२,४२,०४०	२,६४,००५	३,१६,४८०

* आंकडे अधूरे हैं। अभय आश्रम और प्रवर्तक संघ के अंक अभी नहीं मिले हैं।

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय १४

अहिंसा देवी का साक्षात्कार

मुझे तो किसानों की हालत की जाँच करनी थी और यह देखना था कि नील की कोठी रखनेवालों के विरुद्ध फिरयादों में कितनी सचाई है। इस काम के लिए हजारों किसानों से मिलना चाहिए। किन्तु उनके साथ इस तरह सरोकार करने के पहले मैंने निलहा साहेबों की बातें सुनने और कमिश्नर से मिलने की आवश्यकता देखी। दोनों को चिट्ठी लिखी। नील के मालिकों की सभा के मंत्री ने अपनी मुलाकात में साफ बतलाया कि आप तो परदेशी हैं, आपको हमारे और किसानों के बीच में नहीं पडना चाहिए, मगर तौभी अगर आपको कुछ कहना हो तो खत लिख कर कह सकते हैं। मैंने उन्हें विवेकपूर्वक कहा कि मैं अपने को परदेशी नहीं गिनता हूँ और अगर किसान चाहें तो उनकी स्थिति की जाँच पडताल करने का मुझे पूरा हक है। कमिश्नर साहेब से मिला। उन्होंने तो धमकाना ही शुरू किया और मुझे सलाह दी कि आगे बढे बिना ही, आप तिरहुत छोड दीजिए।

मैंने साथियों से सभी बातें कर के कहा कि संभव है कि सरकार मुझे रोके, और जितनी जल्दी मुझे जेल यात्रा का खयाल था, संभव है कि उससे जल्दी ही उसका मौका आ जाय। अगर पकडाना ही चाहिए तो मुझे मोतीहारी और हो सके तो भर सक बेतिया में ही पकडाना चाहिए। इसलिए जितनी उतावली से हो, वहां पहुँचना चाहिए। चंपारण तिरहुत विभाग का एक जिला है, और मोतीहारी उसकी राजधानी। बेतिया के पास राजकुमार शुक्ल का घर था और उसके पास पडोस के किसान अधिक से अधिक गरीब थे। उनकी हालत दिखलाने का लोभ राजकुमार शुक्ल को था, और मुझे थी देखने की इच्छा।

इसलिए सथियों को लेकर मैं उसी दिन मोतीहारी को रवाना हुआ। मोतीहारी में गोरखबाबू ने आश्रय दिया और उनका घर धर्मशाला बन गया। हम सब ज्यों त्यों कर के उसमें मुश्किल से समा सकते थे। जिस दिन पहुँचे, उसी दिन सुना कि मोतीहारी से कोई पांच मील दूर रहनेवाले किसी किसान पर अत्याचार हुआ था। यह निश्चय किया कि श्रीयुत धरणीधर प्रसाद वकील को लेकर दूसरे दिन सबेरे हम उसे देखने जायँगे। हम सबेरे हाथी पर सवार होकर निकल पडे। गुजरात में बैलगाडी का जो उपयोग होता है, लगभग वही, चंपारण में हाथी का होता है। आधे रास्ते पहुँचे होंगे कि इसी बीच पुलिस सुप्रिन्टेन्डेन्ट का आदमी आ पहुँचा और मुझसे बोला, "आप को सुप्रिन्टेन्डेन्ट साहेब सलाम बोलते हैं।" मैं समझा। धरणीधर बाबू को मैंने आगे जाने को कहा। मैं उस जासूस के साथ, उसकी गाडी में बैठा। उसने मुझे चंपारण छोडने की नोटिस दी। मुझे घर ले गया और मेरी सही माँगी। मैंने जवाब लिख दिया कि मैं चंपारण छोडना नहीं चाहता। और मुझे तो आगे बढना है, और जाँच करनी है। बहिष्कार के इस हुक्म का अनादर करने के लिए दूसरे ही दिन अदालत में हाजिर होने का समन मिला।

सारी रात जग कर, मुझे जो जो पत्र लिखने थे, मैंने लिख डाले और जो जो सूचनाएँ देनी थीं, ब्रज किशोर बाबू को दीं। समन की बात एक ही क्षण में सर्वत्र फैल गयी। और लोग कहते थे कि जैसा कभी नहीं देखा था, वैसा दृश्य मोतीहारी में देखने को मिला। गोरखबाबू का घर, और कचहरी आदमियों से ठसाठस भर उठे। सौभाग्य से मैंने अपना सारा काम रात को ही खत्म कर लिया था, इस लिए इस भीड को मैं संभाल सका। साथियों की कीमत मुझे पूरी पूरी जान पडी। वे लोगों को नियम में रखने में लग गये। कचहरी में जहां जाऊँ, वहीं टोल के टोल लोग मेरे पीछे आवें। कलक्टर, मैजिस्ट्रेट, सुप्रिन्टेन्डेन्ट वगैरह और मेरे बीच भी एक तरह की गांठ बँधी। सरकारी नोटिसों वगैरह का कानूनी विरोध करना होता तो मैं कर सकता था। उसके बदले उनकी सभी नोटिसों के मेरे स्वीकार से और अफसरों के साथ व्यक्तिगत परिचय में इस्तेमाल की गयी मिठास से वे समझ गये कि मुझे उनका विरोध नहीं करना है किन्तु उनके हुक्म का विनयी विरोध करना है। इससे उन्हें एक तरह की निर्भयता मिली। मुझे सताने के बदले उन्होंने लोगों को नियम में रखने के लिए मेरी और मेरे साथियों की मदद का उपयोग खुशी से किया। किन्तु साथ ही वे यह भी समझ गये कि हमारी सत्ता आज से ही लोप हो गयी। लोग क्षणभर दंड का भय छोड कर अपने नये मित्र के प्रेम की सत्ता के वश हुए। याद रखना है कि चंपारण में मुझे कोई पहचानता न था। किसानवर्ग बिलकुल अनपढ था। चंपारण है, गंगा के उस पार ठेठ हिमालय की तराई में नैपाल के पास—यानी नयी ही दुनिया है। यहां महासभा का नाम नहीं मिल सकता था। महासभा के सभ्य भी न मिलें। जिन्होंने नाम सुना भी हो वे नाम लेने या उसमें शामिल होने में डरें। आज महासभा का नाम लिये बिना, महासभा के सेवकों ने प्रवेश किया और महासभा की आन निबाही।

साथियों के साथ मस्लहत कर के मैंने निश्चय किया था कि महासभा के नाम पर कुछ भी नहीं करना है। नाम का नहीं, पर काम का काम है। कथनी का नहीं पर करनी का काम है। महासभा का नाम अखरता है। इस प्रदेश में महासभा का अर्थ था वकीलों की मारामारी, कानून के छेदों से सरक जाने का प्रयत्न। महासभा यानी बंबगोला, महासभा के मानी कहना और, और करना और। ऐसी समझ सरकार में, और सरकार की सरकार नील के मालिकों में थी। मुझे सिद्ध करना था कि यह महासभा नहीं है, महासभा तो दूसरी ही वस्तु है। इसलिए हमने महासभा का नाम कहीं न लेने और लोगों को महासभा की भौतिक देह का परिचय न कराने का निश्चय किया था। हमने यों विचार किया था कि उसके अक्षर को न जानकर, उसकी आत्मा को जानें, और उसका अनुसरण करें तो बस है। यही सच्चा काम है।

इसलिए महासभा की ओर से किन्हीं छिपे या जाहिर जासूसों ने भूमिका तैयार नहीं की थी। राजकुमार शुक्ल में हजारों आदमियों में प्रवेश करने की शक्ति नहीं थी। उनमें किसीने आज तक राजनीतिक काम किया ही नहीं था। वे चंपारण के बाहर की दुनिया को नहीं जानते थे। तौभी उनका और मेरा मिलाप पुराने मित्रों के समान लगा। इसलिए यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं है कि, मैंने ईश्वर का, अहिंसा का और सत्य का साक्षात्कार किया। इस साक्षात्कार का अपना अधिकार ढूँढता हूँ तो मुझे लोगों के प्रति अपने प्रेम के सिवाय कुछ नहीं मिलता। यह प्रेम, वह प्रेम है या अहिंसा के बारे में रही हुई मेरी अचलित श्रद्धा। चंपारण का यह दिन मेरे जीवन में कभी भूलने लायक नहीं है। यह, मेरे लिए और किसानों के लिए एक उत्सव का दिन था। सरकारी कानून के अनुसार मुझपर मुकद्दमा चलाना था किन्तु सच पूछिए तो मुकद्दमा तो सरकार पर था। कमिश्नर ने मेरे लिए जो जाल रचा उसमें सरकार को फँसा लिया।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

र्ष ७] [अंक ४९

मुद्रक-प्रकाशक
नलाल मगनलाल भट्ट

अहमदाबाद, श्रावण सुदी ९ संवत् १९८४
गुरुवार, २६ जुलाई, १९२८ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय
सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

टिप्पणियाँ

ों का ताज

हासभा का सभापतित्व अब फूलों का कोमल ताज नहीं रह है। फूल के दल तो दिनों दिन गिरते जाते हैं और कांटे उघडते । स कांटों के ताज को कौन धारण करेगा? बाप या बेटा? सैकडों यों के लडाका पंडित मोतीलाल नेहरू इस कांटों के ताज को या संयम नियम के पक्के जवान सिपाही पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी योग्यता और महत्ता से देश के युवकों के हृदयों पर र कर लिया है? श्रीयुत वल्लभभाई पटेल का नाम स्वभावत: बके मुँह में है। पंडित जी एक खानगी पत्र में लिखते इस घडी में तो श्री वल्लभभाई पटेल को ही उनकी वीरता के सभापति चुनना चाहिए और सरकार को यह दिखला देना कि उनपर सारे राष्ट्र का विश्वास है। खैर, मगर अभी तो ल्लभभाई का कोई सवाल ही नहीं हो सकता। इस समय उनके काम भी इतना पडा हुआ है कि वे बारडोली छोड कर दूसरी ध्यान ही नहीं दे सकते। और फिर दिसंबर आने के पहले ही है कि वे सरकार के अनेक कैदखानों में से किसी एक में उस हमान बन कर पहुँच जायँ। मेरा अपना खयाल तो यह है ह कांटों का ताज पंडित जवाहिरलाल को ही मिलना चाहिए। य तो देश के युवकों के ही हाथ में होना चाहिए। मगर तो अगले साल में जब कि बहुत सी तूफानों का भय है, मोतीलाल के ही हाथों में महासभा की पतवार देना चाहता हम लोगों आपस में फूट है, और चारों ओर से हमें एक शत्रु घेरे हुए है जो जितना शक्तिशाली है, उतना ही नीति ति से लापर्वा भी। बंगाल को इस समय किसी बडे बूढे की खास त है, और वह भी ऐसे आदमी की, जिसने उसके गाढे अवसर उसे सँभाला हो। अगर सारे हिन्दुस्तान के लिए आगे सुख का नहीं आनेवाला है, तो बंगाल के लिए तो और भी नहीं। तो हजारों कारण हैं कि पंडित मोतीलाल जी को ही क्यों कांटों का ताज धारण करना चाहिए। वे वीर हैं, उदार हैं, र सभी दलों का विश्वास है, मुसलमान उन्हें अपना मित्र मानते उनके विरोधी भी उनका आदर करते हैं, और अपनी जोरदार दलीलों से वे उन्हें प्रायः ही अपनी राय से सहमत कर लेते हैं। फिर इसके अलावा उनके स्वभाव में संधि और समझौते की भावना की ऐसी पुट भरी हुई है, जिससे वे किसी ऐसे राष्ट्र के अत्यंत योग्य दूत होने लायक हैं, जिसे सम्मानित समझौते की जरूरत है, और जो उसे करने के लिए तैयार है। इन्हीं बातों पर खयाल करके, अत्यंत साहसी बंगाली देशभक्त पंडित मोतीलाल नेहरू को ही अगले वर्ष के लिए राष्ट्र का कर्णधार बनाना चाहते हैं। देश के अधीर युवक जरा और सब्र करें। यों सब्र करने से उनकी ताकत बढेगी ही।

विहार में पर्दा

एक विहारी मित्र के पत्र से जान पडता है कि गत ८ जुलाई को विहार के कई मुख्य मुख्य स्थानों में पर्दे के विरुद्ध जो प्रदर्शन हुए, वे इतने सफल हुए, जितने की आशा प्रबन्धकों ने कभी नहीं की थी। पटने की सभा की रिपोर्ट 'सर्चलाइट' में यों छपी है:

"गत रविवार को महिलाओं और पुरुषों की सम्मिलित सभा का अपूर्व दृश्य राधिकासिंह इन्स्टीट्यूट में दिखायी पडा था। गोकि पानी बरस रहा था, जो सौभाग्य से ठीक सभा के समय रुक गया, मगर तौभी उपस्थिति आशा से अधिक थी। सच पूछो तो इन्स्टीट्यूट का बडा सा सभाभवन आधा तो केवल स्त्रियों से खचाखच भरा था, जिनमें हर चार में कम से कम तीन तो एक दिन पहले तक, बल्कि घडी भर पहले तक पर्दे के पिंजडे में बंद थीं।"

उस सभा में यह पहला प्रस्ताव स्वीकार किया गया था:

"(क) स्त्री और पुरुष पटने की इस सभा में इकट्ठे होकर घोषणा करते हैं कि हम लोग आज से पर्दे के गन्दे रिवाज को हटा रहे हैं, जिससे देश, समाज और खास कर स्त्रियों की हालत हर तरह से खराब हो चुकी है और दिन ब दिन खराब हो रही है।

"(ख) साथ ही हम लोग उन बहिनों और भाइयों से अनुरोध करते हैं जो, अभी तक मिथ्या संकोच में पडे हुए हैं, कि जितनी जल्दी हो सके इस कुप्रथा को अपने घर से हटा कर देश में शिक्षा और स्वास्थ्य की वृद्धि करें।

"(ग) पर्दा हटाने वाली बहिनों तथा भाइयों का ध्यान भारत के महाराष्ट्र, कर्णाटक, गुजरात, मद्रास आदि प्रान्तों की भारतीय सभ्यता

के आधार पर प्रचलित प्रथा की ओर दिलाया जाता है और उनसे अनुरोध किया जाता है कि अपनी वेश भूषा में सरलता और सादगी रखते हुए परिवार के भीतर ससुर और पतोहू, भवहु (छोटे भाई की पत्नी) और भसुर (पति के बडे भाई) आदि के बीच जो अन्दरूनी पर्दा है, उसको तथा बाहरी पर्दे को हटावें।"

विहार प्रान्त में पर्दे के विरुद्ध और स्त्रियों की शिक्षा के लिए प्रचार करने के लिए एक अस्थायी समिति बनायी गयी है। तीसरे प्रस्ताव से प्रान्त के हर शहर और गांव में एक एक महिला आश्रम खोलने की सलाह दी गयी। चौथे प्रस्ताव में यह निश्चय किया गया कि कई स्थानों पर महिला आश्रम खोले जायँ, जिनमें कुछ दिनों के लिए स्त्रियाँ आकर रह सकेंगी तथा 'अच्छी पत्नी', 'योग्य माताएँ' और देश की 'उपयोगी सेविकाएँ' बनने की शिक्षा प्राप्त कर सकेंगी। सभा में ही ५०००) रु. से अधिक के चंदे के वचन मिल गये और दाताओं में मैं कई स्त्रियों के भी नाम देखता हूँ जिन्होंने २५०) रु. से ले कर २५) रु. तक दिये हैं। अगर यह आन्दोलन ठीक ठीक चला, और आन्दोलकों ने पूरा उत्साह दिखलाया तो फिर विहार में पर्दा नहीं, पर्दे की कहानी भर रह जायगी। यह बात याद रखनी चाहिए कि यह आन्दोलन अँगरेजी रंग से रँगा हुआ नहीं है। यह तो बाहर का नहीं बल्कि आन्तरिक प्रयत्न है, और वह भी ऐसे नेताओं का जो स्वभाव से ही पुरानी प्रथाओं के प्रेमी हैं, और तौभी हिन्दू समाज में घुसे हुए सभी दोषों को भली भाँति पहचानते हैं। बाबू राजेन्द्र प्रसाद जोकि सुदूर लंडन में भी बैठे हुए इस आन्दोलन का बडी सावधानी से अध्ययन कर रहे हैं और इसका समर्थन कर रहे हैं, और बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद कुछ यूरोपियन रंग में रँगे हुए हिन्दुस्तानी नहीं हैं। वे चुस्त हिन्दू हैं और भारतीय संस्कृति तथा परंपरा के सच्चे प्रेमी हैं। वे पश्चिम के अंधे नक्काल नहीं हैं, और तौभी यूरोपीय सभ्यता की अच्छी चीजें लेने में उन्हें कोई झिझक नहीं है। इसलिए भीरु और शंकाशील लोग यह डर मत रक्खें कि इस आन्दोलन से भारतीय संस्कृति और खास कर भारतीय स्त्रियों के शील, विनय, सभ्यता और मर्यादा की विशेषता की जो अमूल्य संपत्ति है, उसको किसी रूप में हानि पहुँचेगी।

न्याय की विजय

वर्धा में श्री लक्ष्मीनारायण का एक सुंदर, सजा हुआ, और प्रसिद्ध मंदिर है। इसे सेठ जमना लाल के दादा ने बनाया था। यह मंदिर है तो व्यक्तिगत, पर जनता के लिए खुला हुआ है। जमना लाल जी जिस तरह अछूत कहे जानेवालों के लिए वर्धे में कुँओं पर पानी खींचने का अधिकार दिलाने के लिए, तथा उन्हें और सब तरह की सुविधाएँ दिलाने की कोशिश कर रहे हैं—और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है—उसी तरह वे इस मंदिर में भी अछूतों को प्रवेशाधिकार दिलाने की कोशिश करते रहे हैं। उन्हें ट्रस्टियों को इस राय से सहमत करने में कठिनाई पडी थी कि इस खास मंदिर का द्वार उनके लिए भी खोल दिया जाय, जिन्हें अंधी रूढि ने दबाये रक्खा है। आखिर इस प्रयत्न को भी सफलता मिली है। गत १७ ता: की सभा में ट्रस्टियों ने सर्वानुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार किया:

"चूंकि अस्पृश्य गिने जाने वाले लोगों को श्री लक्ष्मीनारायण देवस्थान, वर्धा में अंदर आकर दर्शन करने देने का प्रश्न इस कमेटी के सामने बहुत दिनों से है, और कई बार उपस्थित किया जा चुका है, परन्तु उसका निर्णय अबतक नहीं हुआ है, और चूंकि देश की सबसे बडी राष्ट्रीय संस्था राष्ट्रीय महासभा, अस्पृश्यता दूर करने का आग्रह-पूर्वक आदेश कर रही है एवं हिन्दू महासभा भी अस्पृश्यों को देव मंदिरों में दर्शन के लिए प्रवेश करने देना आवश्यक और न्याय्य समझती है, और चूंकि भारत के सर्वमान्य नेताओं का अभिप्राय भी इसी अनुसार है, इसलिए उपयुक्त बातों का भले प्रकार विचार कर और भविष्य में देश की धार्मिक, सामाजिक आदि बातों का विचार कर निश्चय किया जाता है कि श्री लक्ष्मीनारायण देवस्थान वर्धा अस्पृश्य लोगों के लिए खोल दिया जावे।

"इस ठहराव का अमल मंदिर के व्यवस्थापक श्री. जमनालाल जी जिस प्रकार उचित समझें उस प्रकार करें।"

तदनुसार एक छपी हुई विज्ञप्ति वर्धे में बांटी गयी कि १९ से यानी प्रस्ताव के दो दिनों बाद से ही अछूतों के लिए मंदिर का द्वार खोल दिया जायगा। कहा जाता है कि इस विज्ञप्ति के सिवाय और कोई संगठित उद्योग नहीं किया गया था मगर तौभी कोई १,२०० आदमियों ने मंदिर आकर दर्शन किया और किसी किस्म का कोई विघ्न नहीं पडा। यह बात बहुत ही सार्थक है कि वर्धे के समान महत्वपूर्ण स्थान में भी 'अछूतों' के लिए मंदिर का दरवाजा खोला जा सका और तौभी रूढिपंथियों ने कुछ भी विरोध नहीं किया या कुछ लोगों ने सनातन धर्म के नाम पर 'अछूतों' के एक पवित्र और उनके लिए अब तक बंद हिन्दू मंदिर का चौखट नाँघते समय कोई विघ्न उपस्थित नहीं किया। यह तो इस बात का स्पष्ट उदाहरण है कि अस्पृश्यता-निवारण के आन्दोलन ने कितनी उन्नति की है इससे यह भी दिखलायी पडता है कि शान्त निश्चय से किसी काम के पीछे लगे ही रहने से किसी सच्चे सुधार के आन्दोलन के पक्ष में किस तरह भला लोकमत तैयार किया जा सकता है। मैं सेठ जमना लाल जी तथा उनके दूसरे साथी ट्रस्टियों को इस साहस के लिए बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि इस उदाहरण का अनुकरण सारे भारतवर्ष में किया जायगा। (यं. इं.)

मो० क० गांधी

चर्खे का प्रभाव

वढवाण राष्ट्रीय शिक्षा मंडल के प्राण भाई फूलचंद बारडोली के संग्राम में शुरू से ही दाखिल हुए हैं। वे अभी वेडछी में काम कर रहे हैं। वहांसे लिखते हैं:

"भाई चुन्नीलाल तथा उनकी धर्मपत्नी सूरज बहिन ने अपनी पांच वर्ष की अखंड तपश्चर्या से वेडछी को पुण्यभूमि बना डाला है। यह सब मैं आंखों से देख रहा हूँ कि चर्खा दाखिल होते ही दुर्गुण नष्ट होते हैं, सद्गुणों का जन्म होता है, और उनकी जड जमती है, कायरता, और डर चले जाते हैं और निर्भयता आती है। भजन मंडली पर तो मुग्ध हो गया हूँ। मुझे ऐसा लगा है कि शराब-बंदी का, निर्भयता का, सादगी का, खादी का प्रचार करने और कुप्रथाएँ दूर करने का एक प्रचंड साधन भजन मंडलियां हैं, मेरे मन में भी खूब लहर आती है और उनके लिए ऐसे गीत तैयार कर देता हूँ जो वे सहज ही गा सकें और समझ सकें। भजन की धुन ऐसी जमती है कि हर कोई मंडली के साथ डोलने लगता है। शराब पीने वाले प्रदेश में जाने का विचार, मंडली कर रही है। आज तक वेडछी के हर मकान में रात को मंडली भजन करती और घरवाले तथा दूसरे लोग भी भजन में शामिल होते और धुन जमती है। मकान मालिक की ओर से मंडली को चार आने की भेट मिलती है। इस तरह मंडली को तीन रुपये मिले हैं। सरभोण के स्वयंसेवक भाइयों ने दो रुपये भेट किये हैं। इस तरह जमा हुई रकम, मंडली की अग्रणी बहिन रामनी बहिन पूज्य वल्लभभाई के चरणों में अर्पण करेगी।"

...र पर जिन्हें अविश्वास है, वे यह टीका कर सकते हैं कि ...फूलचंद ने चर्खे की ओर से जो दावे किये हैं, वे सभी ...र लागू हैं। जो कि शुभ उद्यम का शुभ ही फल आता ... मगर तौभी उद्यम उद्यम में कुछ न कुछ फर्क तो होता ही ...सी उद्यम से आदमी का शरीर कसता है तो किसी से मन, ... शान्ति पैदा होती है तो किसी से आदमी धाँधलिया है। स्कौटलैंड के एक अनुभवी आदमी की यह राय मैं ...भी लिख चुका हूँ कि अगर अशान्त और चंचल आदमी ...लेकर बैठे तो उसका चित्त शान्त और स्थिर हो जायगा, इससे क्रोध को छोडता है। फिर जिस उद्यम के पीछे जैसी भावना ...उसमें वैसे गुण उत्पन्न किये जा सकते हैं। चर्खे का आन्दोलन ...वाले साधु दंपति हों और वे लोगों में साधुता की भावना ...करने के लिए चर्खे को निमित्त बनावें तो उसमें वे गुण ...यी पडेंगे। जो गुण चर्खे में वेडछी में देखने में आते हैं, ...भी जगह नहीं दिखलायी पडते हैं। इस लिए यह कहा जा ... है कि वेडछी के आसपास जो निर्भयता, निखालसता, वगैरह फूलचंद देखते हैं, उसका सच्चा मूल चर्खा नहीं है, बल्कि चुन्नीलाल और उनकी पत्नी हैं। उन्होंने अपने गुणों को ... में गूँथा है। हां, यह दावा अवश्य किया जा सकता है कि ...नी सुलभता से वे इन गुणों का प्रचार चर्खे के जरिए कर सकीं, ...नी सुलभता से और किसी साधन से नहीं कर सकतीं।

भजन मंडली के बारे में भी यही बात है। भजन मंडली के ... पाखंड भी फैलाया जा सकता है। और पवित्रता के प्रचार ...तो ये मंडल सनातन उपाय हैं। इसमें संदेह नहीं कि भजन ...लियों ने बारडोली की लडाई में बहुत बडी सहायता दी है। ... इन दोनों प्रवृत्तियों का मूल धर्म में है। धर्मभावना के बल ... अगर बारडोली की लडाई न चली होती तो जो सफलता आज ... देखने में आयी है, वह कभी दिखलायी न पडती। लोग जाने अजाने धर्म के भूखे हैं। उन्होंने सत्याग्रह तथा सत्याग्रह के ...पति में धर्म देखा। इस लिए उनके पीछे चले और अंत तक ...ने का चिह्न हम देख रहे हैं।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

रेशम का निषेध

['नवजीवन' में रेशम और व्याघ्रचर्म के बारे में मैं जो ... लिख गया हूँ उसी के संबंध में काका साहेब कालेलकर रेशम निषेधात्मक निम्नलिखित प्रमाण भेजते हैं। वे विचार करने ...क हैं। (नवजीवन) मो० क० गांधी]

आपने 'नवजीवन' के गतांक में रेशम और बाघछाला के ...रे में लिखा है। चमडा तो दुनिया भर के आदमी प्राचीन काल ... ही इस्तैमाल करते आये हैं। वेदकाल में यज्ञ के प्रसंग पर चमडा ...छा कर ऋत्विज बैठते थे। जब तक खेती और मवेशी की रक्षा ... लिए प्रजा-पालक राजा और क्षत्रिय हरिण अथवा बाघ का ...शिकार करते थे, तबतक चमडे के प्रति लोगों के मन में ...द्वेष का पैदा न होना समझ में आने लायक बात है। मरे हुए ... आहार के लिए मारे गये ढोर के चमडे फेंक देना लाभदायक ...हीं है। इसलिए परोक्ष उपज के रूप में इनका इस्तैमाल छूटसे होना ...चाहिए। आज जब सिर्फ चमडे के लिए ही जानवर मारे जाते हैं, ...ब अहिंसा की दृष्टि से कत्ल किये गये जानवरों के चमडे का सर्वथा ...त्याग होना चाहिए।

किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि रेशम के बारे में हमारे ...पूर्वज जागृत नहीं थे। मैं मानता हूँ कि हमारे यहां पहले रेशम ...होता ही नहीं था। आज रेशम के लिए जो शब्द संस्कृत में ...प्रयुक्त होते हैं, उनमें 'क्षौम' एक पुराना शब्द है। क्षौम का मूल अर्थ रेशम नहीं है। क्षौम शब्द क्षुमा से बना है। और क्षुमा कहते हैं सन या पाट को। संस्कृत में रेशम के लिए दूसरा शब्द है 'दुकूल'। यह भी एक जाति के पेड की छाल से बनता है। सच्चे रेशम को संस्कृत में 'चीनांशुक' कहते हैं। यही बतलाता है कि हमारे यहां पहले रेशम चीन देश से आता होगा। संभवतः लोगों को यह पता नहीं होगा कि यह कपडा कीडे के बनाये धागे से बनता है। इस लिए क्षौम और दुकूल के समान इसे भी सम्मान मिला हुआ होना चाहिए। कोई वस्तु एक बार पसंद पड गयी, रूढि हो गयी, तब बाद में उसका त्याग होना मुश्किल है। लोगों ने जाना नहीं कि तुरत ही इसका विरोध किया। गृहस्थाश्रमी के लिए उपदेश निरर्थक था। इस लिए संन्यासियों को उपदेश दे कर स्मृतिकारों ने संतोष माना। कात्यायन स्मृति में नीचे के श्लोक मिलते हैः

ऊर्णा तु रोमसंभूता कृमेर्मलयुतं पटः ।
कस्तूरी रोचनं रक्तं प्राण्यंगं अस्थिसंनिभम् ॥

[प्राणी के बाल से ऊन बनती है, कीडे के मल से रेशम पैदा होता है। कस्तूरी और गोरोचन तो लहू ही हैं। ये सभी वस्तुएँ प्राणियों के शरीर में से पैदा हुई होने के कारण हाड के समान अपवित्र हैं।]

ऊर्णा केशोद्भवा ज्ञेया मलकीटोद्भवः पटः ।
कस्तूरी रोचनं रक्तं वर्जयेत् आत्मवान् यतिः ॥
हिंसोद्भवं पट्टकूलं कस्तूरी रोचनं तथा ।
प्राण्यंगं च तथोर्णा च यतीनां पतनं ध्रुवम् ॥

[ये वस्तुएँ यति को गिराये बिना नहीं रहेंगी। इसलिए आत्मवान् यति को इनका त्याग करना चाहिए।]

अंत में स्मृतिकार कात्यायन कहते हैः

वस्त्रं कार्पासजं ग्राह्यं ।

[इसलिए केवल कपास का ही कपडा पहनना चाहिए।]

इतना कह कर भी संतोष न हुआ इसलिए फिर कहते हैंः

अन्यद् वस्त्रादिकं सर्वं त्यजेद् मूत्रपुरीषवत् ।

[कपास से बने हुए कपडों के सिवाय अन्य वस्त्रों का त्याग मल के समान करना चाहिए।]

जमदग्नि भी कहते हैंः

तथा कीटोद्भवं चीर्णं त्यजेत् शुनकसंघवत् ।

जब सनातनी स्मृतिकारों ने रेशम के प्रति इतनी अरुचि प्रकट की है तब जैन ग्रंथों में इससे भी विशेष होना चाहिए।

आश्रम-नियमावलि

सत्याग्रहाश्रम की नियमावलि के मस्विदे के छपने के बाद से बराबर ही उनको बडी माँग आ रही है। मगर इसमें डाक का खर्च भी कुछ कम नहीं पडता है। इस लिए जो लोग नियमावलि की नकल चाहते हों वे कृपा कर पैकिंग और डाक खर्च के लिए एक आने के डाक टिकट भेजा करें। (यं. इ.) मो० क० गांधी

अखिल भारत गोरक्षा मंडल

दान का सूत

गोपालजी केशवजी पटेल	रंगून गज	६,००२
छीबुभाई केशवजी पटेल	,,	२,१२३
एम. आर. एन. स्वामी	बंबई	५,०००
जीवराम के. कोठारी	कच्छ-कोटडा	४,०००
डुंगरदास रामचंद्र नायक	कलकत्ता	१२,०००
विजयालक्ष्मी नायक	,,	२४,६००
रामेश्वरदास झवेरमल्ल	वर्धा	६४०
गंगाबाई अग्रवाल	,,	२,५६०
बापुभाई कीलाभाई पटेल	नडियाद	१,२००
वल्लभभाई भाणाभाई पटेल	रंगून	७,०००
[illegible]	कलकत्ता	१२,०००

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, श्रावण सुदी ९ संवत् १९८४

सरकार और सत्याग्रहियों से

इस लेख के प्रकाशित होने के समय तक संभवतः बंबई सरकार बारडोली प्रश्न पर अपना अंतिम निश्चय कर चुकी होगी। मैं यह अपील सोमवार को तीसरे पहर लिख रहा हूँ, जिस समय संभवतः गवर्नर साहेब काउन्सिल के सामने पेश करने के लिए अपना वक्तव्य लिख रहे होंगे। मैं यह भी जानता हूँ कि मेरे इस निवेदन से सरकार के कान पर जूँ भी नहीं रेंगेगी। मगर सत्याग्रही के रूप में मेरे लिए अपनी शंकाओं के वशीभूत होना योग्य नहीं है। इस आन्दोलन से बहुत ही निकट संबंध होने के कारण शायद मेरा यह धर्म भी है कि मैं सरकार से ऐसे रास्ते से चलने से बाज आने का अनुरोध करूँ, जिसकी निंदा सभी ओर से की जा रही है और जहां तक मैं निष्पक्षपात होकर विचार कर सकता हूँ, उसका किसी तरह समर्थन नहीं किया जा सकता।

गवर्नर साहेब ने शिमले में बडे लाट से मिल कर सूरत लौट कर जो शर्त्तें पेश कीं, वे तो उनसे भी कम हैं जिनकी अफवाह विश्वस्त सूत्रों से उडती रही है। किसी किस्म का समझौता हो लेने के पहले श्री वल्लभभाई को आवश्यक शर्त्तें तो वही हैं जिनका विचार वे हमेशे से करते रहे हैं और तरह तरह से सरकार के सामने रखते रहे हैं। वे ये हैं:

१. सत्याग्रही कैदी छूटने चाहिए।

२. जप्त की गयी जमीन (चाहे वह बेंच दी गयी हो या नहीं) उनके मालिकों को लौटा दी जाय।

३. भैंसें, शराब, इत्यादि की जो नुकसानी हुई है, वह बाजार भाव से पूरी करनी चाहिए।

४. जिन तलाटी, पटेलों वगैरह को बरतर्फ किया गया हो, उन्हें उनकी जगह फिर से मिलनी चाहिए और जिन्होंने त्यागपत्र दिये हों, उन्हें त्यागपत्र लौटा लेने देना चाहिए।

५. सत्याग्रह के ही संबंध में जो दूसरी सजाएँ की गयी हों वे रद होनी चाहिए।

उन्होंने ऐसी कोई बात नहीं माँगी जो सम्मानजनक समझौते में नहीं की जाती।

यह बात, जैसी कि वे लोग भी स्वीकार कर रहे हैं, जिनसे इसकी आशा नहीं रक्खी जाती थी, स्वीकार कर ली जाय कि बारडोली और वालोड वालों ने अपनी दृष्टि में सिद्धान्तों के लिए भयानक कष्ट उठाये हैं तो फिर उन्होंने यह सब महज रेवेन्यु विभाग के किसी छोटे से अफसर से कुछ व्यक्तिगत शिकायतों की जांच कराने के लिए तो नहीं ही उठाये हैं, और सरकार की सुझायी जांच दर असल इसीके बराबर हो जाती है, और यह भी नहीं कहा जा सकता है कि वे अपनी ऐसी जमीनों से बाज आवें जिनके बारे में उनका दावा है कि वे अन्याय से छीनी गयी हैं; और न वे अपनी बात के पक्के स्त्री पुरुष होकर उन्हीं लोगों का साथ छोड दे सकते हैं जिनपर अत्याचार किया गया है। सरकार की शर्तों के तो यही मानी हैं कि गोकि रैयतों ने लगान-वृद्धि न भरने में भूल की है मगर सरकार दया करके व्यक्तिगत शिकायतों की जांच करावेगी बशर्ते कि लोग ऐसी भूल करना बंद कर देवें और वही रकम जमा कर देवें, जो वे कहते हैं कि उनपर अन्याय से लादी गयी है। यह तो ऐसी बात है कि जिसे कोई नेता यह विश्वास रखते हुए कि लोगों ने कोई भूल नहीं की है, और इसके उलटे वे न्याय पर हैं और सरकार ही महा अन्याय कर रही है, स्वीकार नहीं कर सकता।

मगर श्रीयुत वल्लभभाई तो सरकार के समान असंभव शर्त्तें नहीं पेश करते हैं। वे सरकार से भूल स्वीकार करने को भी नहीं कहते। गवर्नर के नाम उनके पत्र का सारांश एक वाक्य में पूछो तो यह है कि वे सही, गलत के सवाल का निर्णय एक समिति के हाथों में देना चाहते हैं, और इसमें उनकी एक मात्र शर्त्त यह है कि समिति में प्रजा के यथेष्ट प्रतिनिधि हों और यह प्रस्ताव रखते समय वे सरकार को ऐसी निष्पक्ष समिति बैठाने का यही स्वाभाविक और तार्किक परिणाम मानने को कहते हैं कि फिर से वही स्थिति कर दी जाय जो पहले थी। मैं तो यह भी कहूँगा कि अगर वे इससे कम मांगें या स्वीकार कर लेवें तो वे बहुत बडा विश्वासघात करेंगे। उनके प्रस्ताव में न तो सरकार की कोई जलालत करने की नीयत है और न वह उसमें है ही। इस चिन्ता में कि कोई सम्मानित समझौता होना चाहिए, और अपने विवेक के कारण वे कम से कम बातों पर संतुष्ट होने को तैयार हैं। क्योंकि सरकार की सारी लगान नीति को ही सुधरवाने और गत चार महीनों में लोगों की जो अकारण ही भयंकर हानि हुई है, उसकी क्षतिपूर्त्ति कराने का भी वे दावा सहज ही कर सकते हैं।

सरकार के लिए दो ही रास्ते खुले हैं—या तो वह सारे भारतवर्ष के सर्वसम्मत लोकमत के आगे सिर झुका लेवे और श्रीयुत वल्लभभाई का प्रस्ताव स्वीकार कर लेवे या झूठी प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लोभ में दमननीति का चक्र चलावे। अगर अब तक इसका मौका बीत न गया हो तो मैं बंबई सरकार से अनुरोध करता हूँ कि 'सत्य का मार्ग लो।'

सत्याग्रहियों का मार्ग स्पष्ट है। उन्हें हमेशे न्यायी समझौते के लिए तैयार रहना चाहिए, और वह न हो सके तो निराश नहीं होना चाहिए और उसके लिए लडने को नित्य तत्पर रहना चाहिए। सत्याग्रह की लडाई का सुख यह है कि उसे गोली बारूद की जरूरत नहीं होती और न किसी दूसरे ही बाह्य शस्त्र की। इसलिए जब कभी जिसके भाग्य में लडाई आवे वह तभी तैयार रह सकता है।

सरकार का बयान देखते हुए तो श्री. वल्लभभाई के लिए समझौते की बात बढाने की जरूरत भी नहीं रही। किन्तु सत्याग्रही लडने के लिए तैयार रहते हुए होने पर भी समझौते की आशा कभी नहीं छोडता। इसलिए वह समझौते का एक भी मौका खाली नहीं जाने देता। पत्थर जैसे हृदय को भी पिघलाना सत्याग्रही का काम है।

बारडोली के किसानों को सूरत, बंबई या शिमले का रंग ढंग देखकर कुछ नहीं करना है। उन्हें तो ईश्वर को देख कर, अपनी अन्तरात्मा को देख कर, ली हुई प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए मौत से भेट करने को, पायमाल हो जाने को तैयार रहना है। उनके प्राण भले ही जायँ, पर वचन न जाने चाहिए।

(यं. इं. और नवजीवन से संग्रहीत)

मोहनदास करमचंद गांधी

स्वावलंबन ही स्वाभिमान है

इन पृष्ठों में यह सूचना कई बार दी जा चुकी है कि शिक्षा [पा]नेवाले हर एक लडके और लडकी को शिक्षा दे सकने के लिए [हमें] अपने विद्यालयों को अगर बिलकुल नहीं तो, करीब करीब [स्व]ावलंबी जरूर बना देना चाहिए। यह बात दानों, या सरकारी [सहा]यता या लडकों की दी हुई फीस से नहीं, बल्कि लडकों से ही कुछ [उत्पाद]न का काम करा कर करनी चाहिए। यह तो केवल औद्योगिक [शि]क्षा को अनिवार्य बना कर ही हो सकता है। यह बात दिनों [दि]न अधिक जरूरी समझी जा रही है कि साहित्यिक शिक्षा के साथ [सा]थ लडकों को औद्योगिक शिक्षा भी देनी चाहिए। मगर इसके [अ]लावा भी इस देश में तो शिक्षा को ही स्वावलंबी बनाने के लिए [य]ह बात जरूरी है। यह तो तभी हो सकता है, जब हमारे लडके [श]ारीरिक परिश्रम का महत्त्व समझने लगें, और अपने हाथों काम [क]रना न आना ही अपमान की बात समझने की चाल चल जाय। [अ]मेरिका संसार में सबसे धनी देश है। वहांपर तो शिक्षा को [स्वा]वलंबी बनाने की कम से कम जरूरत है। वहांके विद्यार्थियों [के] लिए अपना पूरा खर्च या उसका कुछ हिस्सा खुद पैदा कर [लेना] आम बात है। हिन्दुस्तानी ऐसोसिएशन, ५०० सीसाइड [ड्राइ]व, न्यूयॉर्क सिटी, का मुखपत्र 'हिन्दुस्तानी स्टूडेन्ट' लिखता है:

"अमेरिका के प्रायः आधे विद्यार्थी गर्मी की छुट्टियां और [पढा]ई के दिनों में भी थोडा बहुत समय, धन पैदा करने में खर्च [कर]ते हैं। कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी की एक नोटिस में लिखा है 'स्वावलम्बी विद्यार्थियों की इज्जत होती है।' परिश्रमी विद्यार्थी [पढा]ई के दिनों में जब कि हर हफ्ते ३६ से ४८ घण्टे तक पढाई [कर]ता है, अपनी पढाई में विशेष हर्ज किये बिना हर हफ्ते १२ से [..] घण्टे तक बाहर मजदूरी कर सकता है। . . . . विद्यार्थी [को] नीचे लिखे उद्योगों में से कुछ का ज्ञान होना चाहिए: बढई-[गिर]ी, सर्वेइंग, ड्राफ्टिंग, ईंट चुनना, पलस्तर लगाना, मोटर हाँकना, [स्टे]नोग्राफी, कलपुर्जों का कुछ ज्ञान, रंगरेजी, खेती, मामूली कृषि, [बाज]ा बजाना, इत्यादि। ऐसे मामूली काम जैसे कि लोगों के खाने [के सम]य दो घण्टे तक टेबुल पर खाना परसने का काम कर लेने से [अप]ने खाने का खर्च निकल जाता है। जो विद्यार्थी अपना थोडा सा [खर्च] खुद पैदा कर लेता है, वह गर्मी की छुट्टियों में काम कर के [आसान]ी ही १५० से २०० डालर (१ डालर=३ रु. २ आने) बचा [स]कता है। कंसास, न्यूयॉर्क, यूनिवर्सिटी, ऐन्टिओक कौलेज की [तरफ] से औद्योगिक इन्जीनियरिंग में 'सहयोग' कोर्स खुले हैं, [जि]नमें पढ कर विद्यार्थी किसी कारखाने में काम कर के साल भर [की] फीस कमा सकता है और साथ ही उसके काम करने के दिन [व्य]ावहारिक अनुभव के रूप में पढाई के दिनों में ही जोडे [जाते] हैं।

"मिचिगन यूनिवर्सिटी भी सिविल और एलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग [में] ही कोर्स खोलने का विचार कर रही है। ऐसे 'सहयोगी' [कोर्स] लेकर पढने से अन्त में एक साल बाद पदवी मिलती है।"

[अ]गर अमेरिका को अपने विद्यार्थियों को अपनी पढाई का [खर्च क]मा लेने की सुविधा देने की दृष्टि से अपना पाठ्य क्रम बनाना [पड़ता] है तो फिर हमारे विद्यालयों और कौलेजों के लिए यह [तो] अधिक जरूरी होगा। अपने गरीब विद्यार्थियों की फीस [माफ क]र भिखमंगे बनाने से कहीं अच्छा क्या यह नहीं होगा कि [उ]नके लिए काम ढूँढ देवें। हिन्दुस्तान के युवकों के मन में [यह ग]लत भावना भरने से कि अपनी पढाई या रोजी के लिए [अपने] हाथों काम करना अयोग्य है, देश की इतनी बडी हानि हो रही है कि वह चाहे जितनी कहा जाय कम ही होगा। यह हानि नैतिक और आर्थिक है, मगर आर्थिक से अधिक नैतिक है। आत्मवान् लडके के माथे पर फीस की माफी का दान भार के तौर पर पडा रहता है, और जिंदगी भर पडा रहना चाहिए। कोई यह नहीं चाहता कि स्याना होने पर यह कहा जाय कि फलां आदमी को तो अपनी पढाई के लिए लोगों की खैरात पर निर्भर रहना पडा था। इसके उलटे वैसा आदमी बशर्त्ते कि उसने यह काम किया हो, कहां मिलेगा, यह सोच कर जिसकी छाती गज भर की न हो जाती हो कि मैंने बचपन में अपने पढने के लिए, अपने दिमाग, शरीर और आत्मा को सुधारने के लिए, बढई खाने में काम कर धन कमाया था।

(यं. इ.)

मोहनदास करमचंद गांधी

स्व० मगनलाल भाई के पत्र

[स्व० मगनलाल भाई के पत्रों में एक तरह की विशेषता होती थी। उनके अधिकांश पत्र तो गांधीजी के नाम थे, किन्तु वे तो बहुत कुछ नष्ट हो गये हैं। बहुत करके तो गांधीजी देश में घूमते फिरते रहते थे, और मगनलाल भाई आश्रम की रखवाली करते थे। ऐसी हालत में दूसरों के पास पत्र लिखने का अवसर ही उन्हें कहाँ से मिलता? किन्तु अगर कभी किसी काम के लिए उन्हें बाहर जाना पडता तो घर पर बालकों को पत्र लिखा करते थे। उनमें से कई अभी मिले हैं। उनकी थोडी बानगी पाठकों को भी देता हूँ।
(नवजीवन)

महादेव देशाई]

मैं कैसे घडा गया

[यह पत्र १९२५ में, जब वे पढने गये थे तब छोटी लडकी के नाम लिखा था। इसमें उन्होंने अपने गठन पर थोडा प्रकाश डाला है और लडकी के लिए ज्ञान का मार्ग खोला है।]

× × × ×

तुम्हारे पत्र में जहाँ मात्रा या अनुस्वार रह गये हैं, और जहां अधिक स्पष्ट करने की जरूरत है, उन सब को सुधार कर पत्र लौटा दिया है उसे तुम ध्यानपूर्वक पढ कर सभी सुधारों को देख लेना कि जिसमें फिर वैसी भूलें न रहें।

तुम्हारी विचार प्रकट करने की जितनी शक्ति का मेरा अनुमान था, उससे कहीं अधिक देखता हूँ और इससे संतुष्ट हुआ हूँ। तुमने इतनी खुलासगी से मुझे यह पहला ही पत्र लिखा है।

तुम इसी तरह अगर लिखती रहोगी, तो थोडे समय में तुम्हारी विचार शक्ति और विचार करने का वाहन जिसे हम भाषा कहते हैं, खिल उठेंगे। मैं जब तक सातवें दर्जे तक अँगरेजी पढ चुका था, तब तक मुझमें लिखने या विचार करने की शक्ति नहीं जगी थी। पीछे पूज्य बापू के साथ दक्षिण अफ्रिका गया। और वहां उन्होंने बहुत स्नेह के साथ पत्र लिखना शुरू किया और यह आज्ञा की कि हर हफ्ते टॉंगाट से जोहान्सबर्ग में एक पत्र लिखा करना। वहां पर उनके सिवाय मेरा कोई दूसरा अपना नहीं था, इसलिए इस आज्ञा का पालन मैंने निखालिसपने के साथ किया। हर्ष, शोक, अभिलाषा, महत्वाकांक्षा यानी खूब ऊँचे चढने की आकांक्षा के समान लहरें मेरे बालक मन में जैसे जैसे उठतीं मैं उन्हें वैसे वैसे लंबे लंबे पत्र लिखकर बतलाता था। वे भी लगभग हर हफ्ते मुझे पत्र लिख कर कभी दिलासा, कभी उत्साह और कभी सिखावन देकर मुझे यह आभास देते थे कि मैं मानों वहां अकेले नहीं हूँ। अर्थात् (यानी) वे मुझे ऐसी प्रतीति कराते थे कि मानों वे मेरे साथ ही हों। जैसे कि कोई आदमी अपने प्रेमी गुरुजन के पास अथवा तो मां के पास अथवा मित्र के पास अंतर खोल कर बातें करता है, उसी

तरह मैं उनसे पत्रों के जरिए अंतर खोल कर बातें करता था। पीछे वे लिखते कि तुम फलां किताब पढ जाओ। फिर मैं तो वह किताब पढ जाता। पढ कर उन्हें लिखता था कि इस पुस्तक में से मुझे क्या क्या पसंद पडा, और उसमें से मैंने क्या सार लिया। कभी कभी पुस्तक पढने समय मैं लिखता कि अमुक प्रसंग बहुत सुंदर है या तो ठीक नहीं है। फिर पूज्य बापू मुझे दूसरी किताब पढने को कहते। यों करते करते मैं बापू का भक्त बना। मैं तो एक जंगली उन्मत्त युवक था। उस स्थिति में से उन्होंने पत्र-व्यवहार के जरिए मुझे विचारशील और आसपास का दुनिया का भान करनेवाला, बनाया। और फिर तो उन्होंने पत्रों से ही मुझे अँगरेजी पढानी भी शुरू की। मैं स्कूल से इतना ही पढ कर निकला था कि मुझे थोडा सा लिखना और पढना आता था। पर यह बात तो जानता ही नहीं था कि जो जो पढना उसका रस समझना और फिर उसपर विचार करना चाहिए। बापू मुझे जो अँगरेजी पक्ष कविता देते थे, मैं उसका अनुवाद कर के उनके पास भेजता था। बापू उसे सुधार कर फिर मुझे लौटाते और उसपर योग्य टीका करते थे। कई बार अँगरेजी कविता का रूपान्तर अँगरेजी गद्य में करना पडता था। तब अगर बापू को फुरसत न होती तो वे उसे मिस श्लेशिन से सुधरवा कर मुझे भेजा करते थे। इस तरह मैं जो महज तोते के समान घोख घाख कर पढ निकला था, उसे पूज्य बापू ने काम का बना डाला।

यह सब वर्णन मैंने तुम्हें यह समझाने के लिए लिखा है कि चिट्ठी पत्री से कितना हो सकता है। इसमें तुम जरा भी अतिशयोक्ति मत मानना।

तुमने मा के संबंध में कहा है कि उनका मन है कि काम करते करते जितना पढ सको तुम्हें उतना पढना चाहिए। और इस कारण तुम्हें जान पडता है कि जितनी तुम्हारी प्रगति होनी चाहिए, उतनी नहीं हुई है। तुम्हारे यह बात लिखने से मैं बहुत खुश हुआ हूँ। किन्तु उसमें एक रहस्य है जो मैं तुम्हें समझाता हूँ।

तुम्हारी मा की इस बात में जरा भी भूल नहीं है। यह बात तुम विश्वास पूर्वक मानना कि उन्हें राजी रखने के लिए या उनके प्रेम के लिए तुमने पढना कम कर, काम में अधिक समय जो दिया, उससे तुम्हारा अणुमात्र भी अहित नहीं हुआ है। जो बालक मा बाप की नीतियुक्त या प्रेममयी इच्छा के अधीन (जिसमें नीति का विरोध न हो) अपनी इष्ट प्रवृत्ति को दबा रखते हैं, ईश्वर सदा उनका कल्याण ही करता है। ऐसे बालक को ऐसी रीति से भगवान बोधी ज्ञान देते हैं, जो बालक की समझ में नहीं आता है और जब वह बोधी ज्ञान परीपक्व होता है तब वह बालक—

(दोपहर बारह बजे।)

(इतना लिखा था कि श्री राजेन्द्र बाबू ने आकर पूछा कि लायब्रेरी देखने चलना है? मैं पत्र रख कर उठा और बापूजी तथा राजेन्द्र बाबू के साथ गया। इस लायब्रेरी में पांच, पांच, सात, सातसौ वर्ष की पुरानी हस्तलिखित पुस्तकें तथा चित्र देखे। चित्रों में रंग की और रेखाओं की जो नजाकत देखी वह तो अवर्णनीय ही थी, फिरदौसी का हस्तलिखित शाहनामा, और उसके हर किस्से पर बनाये चित्रों को देख कर हैरत होती थी। नख को कलम बना कर लिखी हुई एक पुस्तक तो अजब थी। अंगूठे के नख को बढा कर, उसका खत काट कर, उर्स से उर्दू या अरबी भाषा में लिखी है। यह लायब्रेरी केशुभाई ने देखी है। गयाजी की महासभा से लौटते समय काका साहेब के साथ वे यहां आये थे।)

मानता है कि हमारे पूर्वजों के पुण्य से सद्बोध हुआ। यह ऐसी तो अनोखी बात है। तुम यह न मानना कि इससे तुम्हारा

कुछ अकल्याण हुआ है। गुजराती में एक कहावत है 'वहेलं उठये सवार के मोडुं उठये सवार' (जभी उठे तभी से सवेरा समझो)। इसका पता आदमी को नहीं लगता है, यह ज्ञान तो ईश्वर को ही होता है। और अक्षर या साहित्य-ज्ञान तो एक अदनी यानी बिना महत्त्व की सडक भर है। अंतर में से जब जिज्ञासा का तेज प्रकट होता है तब अक्षर-ज्ञान की कमी उसके रास्ते में नहीं आ सकती है। आज तक तुमने जो कुछ पाया होगा, वह शायद राधा बहिन को न मिला हो, और उसे अभी मिलना बाकी हो। और राधाबहिन के मनमें ऐसा तो कभी होगा ही नहीं कि तुम न पढो तो इससे उन्हें खुशी होगी।

* * *

[अब साथ के दो छोटे पत्र देखने लायक हैं। ये भी दोनों लडकियों के नाम लिखे गये थे। पहला पत्र राधा बहन को उनकी बीमारी के समय मन बहलाव के लिए लिखा था, और दूसरा बीमारी से उठी हुई रुक्मिनी बहिन के नाम है।]

१

आज मेरे पास नवीन एक अतिशय बारीक मलमल का टुकडा लाया है। मैंने यहां सबसे पूछा है कि इसमें सूत कितने नंबर का होगा।

१. हाथ में कपडे का कोई टुकडा हो तो उसके सूत का अंक निकालने के लिए क्या वस्तुएँ पहले ढूँढनी चाहिए?

२. उन वस्तुओं को ढूँढ लेने बाद अंक कैसे निकालना होगा? पहले प्रश्न का उत्तर सोच कर तुम नीचे लिखा सवाल बनाना।

कपडा १ फुट लंबा है; १ फुट चौडा है; ताने में इंच पीछे ६० तार हैं; बाने में भी उतने ही हैं; इस टुकडे का वजन ३ रत्ती है (जौहरियों की रत्ती यानी ६४ रत्ती = ३ तोला); अब यह निकालो कि सूत कितने अंक का होगा।

यह सवाल प्रभुभाई और देवदास तो तुरंत ही बना लेंगे। पर वसुमती बहिन, रुखी, बा और अगर मणिबहिन की तबीअत कर सकने लायक हो तो उनसे भी पूछना।

हमारा स्वयंपाक ठीक चलता है। कल्ह माधवदास ने अच्छी खिचडी बनायी थी। अपने लिए पापड भी सेंके थे। केशु ने साथ साथ भाखरी बनायी। वह बहुत अच्छी बनी थी। इसलिए आज सवेरे मैंने ही उसे भाखरी जैसा बना दिया थो। आज ११ बजे हमने भाखरी, खजूर, और इमली का रस खाया था। माधवदास अब अच्छा है। और उसने खाया भी खूब प्रेम से।

२

. . . . . मैं ईश्वर की बहुत बहुत कृपा मानता हूँ कि तुम्हारा शरीर नीरोगी बना। तुम क्या रोज उसका उपकार मानती हो? हम दोनों बेला प्रार्थना जो करते हैं, वह ईश्वर का उपकार मानने के लिए ही। किन्तु हमेशे जीते रहने के लिए ही उपकार नहीं माना जाता। किसी दिन उनके कार्य के लिए गरदन देने का अवसर मिलने के लिए भी उपकार मानना होता है, और ऐसा अवसर तो उसके (परमात्मा के) चुने हुए भक्त को ही मिलता है।

× × ×

सावंतवाडी में सूतकताई

[निम्नलिखित रिपोर्ट श्रीयुत एस. पी. पटवर्धन ने तैयार की है। यह बहुत दिनों से मेरे पत्रों में पडी हुई थी। मुझे आशा है कि सामान्य पाठक इसे दिलचस्पी से पढ़ेंगे और खादी कार्यकर्त्ता इसे पढ कर लाभ उठावेंगे।

(यं. इं.) मो० क० गांधी]

१

हमारा काम

दूसरे खादी-उत्पत्ति-केन्द्रों की बनिस्बत हमारा काम कुछ भिन्न और कुछ मुश्किल भी है। सावंतवाडी रियासत रत्नागिरी जिले के दक्षिण में है। दूसरी तीन ओर से यह कोल्हापुर रियासत, बेलगांव जिला, और गोआ से घिरी हुई है। यह छोटी सी रियासत है। इसकी आबादी दो लाख की तथा आमदनी लगभग छ लाख रुपये सालाना की है। इधर कोंकण में देवकपास के सिवाय और दूसरी कपास होती नहीं हैं। यह देवकपास बारहमासी है तो मगर होती बहुत कम है। इसके कुछ चिह्न मिलते हैं,— बल्कि बडे बूढे कहते हैं—कि किसी जमाने में यहां पर भी कहीं कहीं चर्खे चला करते थे। मगर यहां घर घर तो चर्खा कभी नहीं चला था। सदर्न मराठा रेलवे के बनने के पहले कोंकण के छोटे २ बंदरगाहों से हो कर ही रुई जाती थी। इस तरह कुछ रुई कोंकण में भी ठहर जाती थी, जिससे कोई चालीस वर्ष पहले कहीं कहीं स्त्रियां — हमें जहां तक पता है मुसलमान औरतें — अपनी फुरसत की घडियों में रुई धुन कर सूत कातती और उसे स्थानिक बुनकरों के हाथ बेंचा करती थीं। मगर रेलवे बनने बाद बेलगांव, सतारा आदि स्थानों से रुई सीधे बंबई चली जाती है और यहाँ नहीं पहुँचती, जिससे चर्खे का चलना बंद हो गया। यह कोई चालीस वर्ष पहले की बात है। यह कला जो कभी बहुतों को आती थी, अब बिलकुल भूल गयी है। इसलिए खादी कार्यकर्त्ता के सामने पुरानी परंपरा को जिलाने के बदले, नयी ही परंपरा खडी करने का सवाल है।

मगर इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि कोंकण के आर्थिक जीवन में चर्खे का वह स्थान है जिसे दूसरी कोई चीज पूरी नहीं कर सकती। यह देश बहुत ही गरीब है और लोगों को फुर्सत बहुत है। लोग होशियार और उद्यमी हैं तथा देवकपास हर घर की जरूरियात पूरी कर सकती है। इसके अलावा कपास बाहर से भी लायी जा सकती है। जरूरत है लोगों को ओटाई, धुनाई, कताई और शायद बुनाई की भी कला सिखलाने की क्योंकि जुलाहे यहां पर बहुत कम हैं। ये क्रियाएँ केवल सीखनी ही नहीं होंगी, बल्कि लोगों के दैनिक जीवन का एक अंश बनानी होंगी। यह तो कठिन परिश्रम का काम है, जिसमें आगे कई वर्षों तक लगातार काम करना होगा।

काम की पद्धतियां

इस लिए कताई को लोकप्रिय बनाने के प्रयत्न, तरह तरह से सरदेशाई चर्खालय कर रहा है। पिछले दश महीनों से ये तरीकें काम में लाये गये हैं और इनमें थोडी बहुत सफलता मिली भी है—शाला के लडकों को धुनना और कातना सिखलाना, मजदूरवर्ग को दोचार पैसे कमा लेने के लिए सूत कातने को उत्तेजित करना, मध्यम वर्ग के लोगो को अपने घरखर्च के कपडे के लिए कातने को कहना, उच्चवर्ग के लोगों को यज्ञार्थ कातने को समझाना, किसानों को अपनी कपास आप बोने के लाभ समझाना, दीहाती मेलों में हजारों आदमियों के सामने सूत-कताई की भिन्न २ क्रियाएँ समझाना इत्यादि।

स्कूलों में कताई

हमें पहले सलाह दी गयी थी कि कमलेर में चर्खालय का काम शुरू करो। कमलेर सावंतवाडी से ७ मील पर है। वहांकी मुख्य विशेषता यह थी कि पिछले १०, १२ वर्षों से वहां कुछ किसान जो जाति के जुलाहे नहीं हैं, बुनाई के कारखाने चला रहे हैं। वे सभी मिल का सूत बुनते हैं, मगर विश्वास यह किया जाता था कि उन्होंने चर्खे के लिए जमीन तैयार कर रक्खी होगी। हमें जो ही कुछ थोडा अनुभव हुआ है, वह इस विश्वास को गलत ही सिद्ध करता है।

पास पडोस के गांवों की पांच प्राथमिक शालाओं में कताई शुरू की गयी। विचार यह था कि शाला में लडकों के कातने का असर साधारण जनता पर पडेगा, और दूसरा कुछ नहीं तो कम से कम इतने लडके तो कातना सीख जायँगे। महाराजा साहेब की आज्ञा से फिर पीछे से सभी कन्याशालाओं में कताई शुरू कर दी गयी और शाला के शिक्षकों अथवा गांववालों की माँग से कुछ और शालाओं में कताई शुरू की गयी।

अधिकांश शालाओं में इतनी जगह है कि तकली के अलावा दश बारह चर्खें चल सकें। हमारा विचार 'विद्यार्थियों के जरिए चर्खे चल सकें। हमारा विचार विद्यार्थियों के जरिए चर्खे का प्रचार करने का है, इसलिए २५०० गज तकली पर कात चुकने बाद लडके को चर्खा चलाना सिखलाया जाता है। निम्नलिखित आंकडों से शाला का नाम, उसमें कताई शुरू करने की तारीख, तथा चर्खा या तकली पर कातनेवाले लडकों की तायदाद मालूम होगी :

शाला	कब कताई शुरू हुई	कातनेवाले लडकों की संख्या तकली	चर्खा
१. अकेरी	अगस्त १९२७	१६	३०
२. झरप	सितंबर ,,	२५	कोई नही
३. वजरत	अक्तूबर ,,	२१	८
४. मनगांव	नवंबर ,,	३३	१५
५. सावंतवाडी कन्या अंगरेजी शाला	मार्च १९२८	२८	५
६. सावंतवाडी कन्या मराठी शाला	,, ,,	४४	५
७. सावंतवाडी कन्या उर्दू शाला	,, ,,	२४	कोई नहीं
८. कुडल	,, ,,	३७	२
९. बंडेन	अप्रिल ,,	२५	कोई नहीं
१०. मनगांव(तालीवाडा)	,, ,,	१६	,,
११. मल	,, ,,	१९	,,
१२. हुमरस	,, ,,	२०	,,
१३. मडुरेन अंगरेजी स्कूल	,, ,,	८	,,
	कुल	३१६	६५

नियमानुसार रोज आधे घंटे तक लडके कातते हैं गोकि अपने आप ही लडके शिक्षक से पूछकर घर पर कातने के लिए तकली ले जाते हैं। इस तरह अप्रिल १९२८ तक कोई ५० पाउंड सूत कता था। तीन स्कूलों में स्याने लडके रुई धुन भी लेते हैं।

अपने काम के इस पहलू में हमें सफलता मिली है और यह आशातीत लोकप्रिय सिद्ध हुआ है। सभी लडके इस काम में खूब रुचि दिखलाते हैं और कातना तो दो दिनों में ही सीख लेते हैं। यह रुचि केवल दो दिन की नवीनता की ही नहीं है। यह कई महीनों तक जारी रहा है। अगले वर्ष अधिकारियों ने अगर संभव हुआ तो रियासत की प्राथमिक शालाओं में कताई शुरू करने और इसके लिए कुछ हफ्तों के भीतर ही शिक्षकों के लिए कताई सिखलाने का एक वर्ग खोलने का निश्चय किया है।

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय १५

मुकद्दमा उठा लिया

मुकद्दमा चला। सरकारी वकील, मैजिस्ट्रेट, वगैरह घबराये हुए थे। उन्हें यह सूझता ही नहीं था कि करना क्या चाहिए। सरकारी वकील मुकद्दमे की सुनवाई मुल्तवी करने की प्रार्थना कर रहे थे। मैंने विरोध किया और कहा कि मुल्तवी रखने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि चंपारण छोडने की नोटिस का अनादर करने का गुनाह मैं कबूल करनेवाला हूँ। यह कह कर मैंने एक बहुत ही छोटासा बयान जो तैयार किया था, पढ सुनाया।* अब तो मुकद्दमे की सुनवाई मुल्तबी रखने की कोई बात ही न रही, मगर मैजिस्ट्रेट या वकील ने इस परिणाम की आशा नहीं रक्खी थी, इस लिए सजा के वास्ते अदालत ने फैसला मुल्तबी रक्खा। मैंने वायसराय को सारी स्थिति का तार भेज दिया। पटने भी तार दिया था। भारत-भूषण पंडित मालवीयजी वगैरह को भी वस्तुस्थिति के बारे में तार भेज दिये थे। सजा के लिए अदालत में जाने का समय आने के पहले ही मेरे पास मजिस्ट्रेट का हुक्म आ गया कि गवर्नर साहेब के हुक्म से मुझपर से मुकद्दमा उठा लिया जाता है। और कलक्टर की चिट्ठी आयी कि आपको जो जाँच करनी हो, आप करें और उसमें अफसरों से जिस मदद की जरूरत हो, माँगें। ऐसे तात्कालिक और शुभ परिणाम की आशा हममें किसीने नहीं रक्खी थी।

मैं कलक्टर मि० हेकौक से मिला। वे खुद भले और इंसाफ करने को तत्पर दिखलायी पडे। उन्होंने कहा कि आपको जो कागजात देखने हों, माँग लीजिएगा और जब कभी मुझसे मिलना हो, मिल सकिएगा।

दूसरी ओर सारे हिन्दुस्तान को सत्याग्रह का अथवा कानून के सविनय-भंग का पहला स्थानिक पदार्थपाठ मिला। अखबारों में इस बात पर खूब चर्चा हुई और चंपारण को तथा मेरी जाँच को आशातीत विज्ञापन मिला।

अपनी जाँच के लिए गो कि मुझे सरकार की ओर से निष्पक्षपातता की जरूरत थी, तौभी अखबारों की चर्चा की और उनके संवाददाताओं की जरूरत न थी। इतना ही नहीं, बल्कि उनकी अतिशय टीका और जाँच की बडी बडी रिपोर्टों से हानि होने का भी भय था। इसलिए मैंने मुख्य अखबारों के संपादकों से विनय की थी कि आप रिपोर्टर भेजने के खर्च में न पडें। जितना छापने की जरूरत होगी, उतना भर मैं स्वयं भेजता रहूँगा, और आपको खबर देता रहूँगा।

चंपारण के नीलवर खूब ही चिढे हुए थे। यह मैं समझता था। सरकारी अफसर भी मन में खुश न होंगे। यह भी मैं समझता था।

अखबारों में सच्ची झूठी खबरें आतीं, इससे वे और भी चिढते और उनकी खीज की असर मुझपर भला क्या उतरे, मगर गरीब भयभीत किसानों पर तो उतरे बिना नहीं रहता और ऐसा होने से, जिस सच्ची वस्तुस्थिति की खोज करनी मैं चाहता था, उसमें विघ्न पडता था। नीलवरों की ओर से जहरीली हलचल शुरू हो गयी। उनकी ओर से अखबारों में मेरे विषय में और मेरे साथियों के विषय में झूठी बातें खूब फैलायी गयीं। किन्तु मेरी अतिशय सावधानी और महीन से महीन, छोटी से छोटी बात में भी सत्य पर दृढ रहने की आदत की बदौलत उनके तीर खाली गये।

ब्रजकिशोर बाबू की निंदा अनेक प्रकार करने में नीलवरों ने कुछ भी उठा नहीं रक्खा। किन्तु ज्यों ज्यों उनकी निंदा करते गये त्यों त्यों ब्रजकिशोर बाबू की प्रतिष्ठा बढती ही गयी।

ऐसी नाजुक स्थिति में रिपोर्टरों को आने का जरा भी उत्तेजन न दिया। नेताओं को न बुलाया। मालवीय जी ने मुझे कहला भेजा था कि "जब मेरी जरूरत जान पडे, मुझे बुला भेजना। मैं आने को तैयार हूँ।" उन्हें भी कष्ट नहीं दिया। इस लडाई को कभी राजनीतिक स्वरूप न लेने दिया। जो कुछ होता था, उसके बारे में मैं अखबारों में प्रसंगोपात्त रिपोर्टें मुख्य पत्रों को भेजा करता था। राजनीतिक काम के लिए भी जहां राजनीति को अवकाश न हो, वहां राजनीति का स्वरूप देने से दोनों के दोनों ही बिगडते हैं और यों विषय का स्थानान्तर न करने से दोनों सुधरते हैं। यह बात मैंने बहुत अनुभव से देखी थी। येन केन प्रकारेण शुद्ध लोकसेवा में राजनीति तो रही हुई है ही। चंपारण की लडाई यह बात सिद्ध कर रही थी।

(नवजीवन) मोहनदास करमचन्द गांधी

* [उस बयान का अक्षरशः अनुवाद नीचे दिया जाता है:
उप. सं. हिं. नवजीवन]

"अदालत की आज्ञा ले कर मैं संक्षेप में यह बतलाना चाहता हूँ कि, नोटिस द्वारा मुझे जो आज्ञा दी गयी है, उसकी अवज्ञा मैंने क्यों की। मेरी समझ में यह स्थानीय अधिकारियों और मेरे बीच मतभेद का प्रश्न है। मैं इस देश में राष्ट्रीय तथा मानवीय सेवा करने के विचार से आया हूँ। यहां आ कर उन रैयतों की सहायता करने के लिए मुझसे बहुत आग्रह किया गया था, जिनके साथ कहा जाता है कि, नीलवर साहेब अच्छा व्यवहार नहीं करते, पर जब तक मैं सब बातें अच्छी तरह जान न लेता, तब तक उन लोगों की कोई सहायता नहीं कर सकता था। इसलिए यदि हो सके तो, अधिकारियों और नीलवरों की सहायता से, मैं सब बातें जानने के लिए आया हूँ। मैं किसी दूसरे उद्देश से यहां नहीं आया हूँ। मुझे यह विश्वास नहीं होता कि, मेरे यहां आने से किसी प्रकार शान्ति-भंग या प्राण-हानि हो सकती है। मैं कह सकता हूँ कि, ऐसी बातों का मुझे बहुत कुछ अनुभव है। अधिकारियों को जो कठिनाइयाँ होती हैं, उनको मैं समझता हूँ और मैं यह भी मानता हूँ, कि उन्हें जो सूचना मिलती है, वे केवल उसीके अनुसार काम कर सकते हैं। कानून माननेवाले व्यक्ति की तरह मेरी प्रवृत्ति यही होनी चाहिए थी और ऐसी प्रवृत्ति हुई भी, कि मैं इस आज्ञा का पालन करूँ। पर मैं उन लोगों के प्रति, जिनके कारण मैं यहां आया हूँ, अपने कर्त्तव्य का उल्लंघन नहीं कर सकता था। मैं समझता हूँ कि मैं उन लोगों के बीच में रह कर ही उनकी भलाई कर सकता हूँ। इस कारण मैं स्वेच्छा से इस स्थान से नहीं जा सकता था। दो कर्त्तव्यों के परस्पर विरोध की दशा में मैं केवल यही कर सकता था कि अपने हटाने की सारी जिम्मेवारी शासकों पर छोड दूं। मैं भली भांति जानता हूँ कि भारत के सार्वजनिक जीवन में मेरी जैसी स्थितिवाले लोगों को आदर्श उपस्थित करने में बहुत ही सचेत रहना पडता है। मेरा दृढ विश्वास है, कि जिस स्थिति में मैं हूँ उस स्थिति में प्रत्येक प्रतिष्ठित व्यक्ति को वही काम करना सबसे अच्छा है, जो इस समय मैंने करना निश्चय किया है और वह यह है कि, बिना किसी प्रकार का विरोध किये आज्ञा न मानने का दण्ड सहने के लिये तैयार हो जाऊँ। मैंने जो बयान किया है, वह इस लिए नहीं कि, जो दण्ड मुझे मिलने वाला है, वह कम किया जाय, पर इस बात को दिखलाने के लिए कि, मैंने सरकारी आज्ञा की अवज्ञा इस कारण से नहीं की है कि, मुझे सरकार के प्रति श्रद्धा नहीं है, बल्कि इस कारण से कि मैंने उससे भी उच्चतर आज्ञा — अपनी विवेक बुद्धि की आज्ञा — का पालन करना उचित समझा है।"

सत्याग्रह की मर्यादा

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)॥

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ५०

मुद्रक–प्रकाशक मोहनलाल मगनलाल भट्ट | अहमदाबाद, द्वितीय श्रावण वदी १ संवत् १९८४ गुरुवार, २ अगस्त, १९२८ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

बारडोली

क्यों, याद है?

"सरकार के लिए यह अफसोस की बात है कि इस आन्दोलन ने ऐसा रंग पकडा कि बहुत से गलत रास्ते पर चलाये गये लोगों को कैद करना पडा है, मगर जब संगठित रूप से कानून की अवज्ञा की जाय, तब सजा देने के सिवाय दूसरा रास्ता ही नहीं रहता है। स्थानिक सरकार इस आन्दोलन को स्पष्ट ही सविनय भंग, सरकार की सत्ता पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न मानती और इस पर तुली हुई है कि उसे अपनी सारी शक्ति लगाकर इसका विरोध करना ही होगा। अपनी इस नीति में सरकार विश्वासपूर्वक आशा रखती है कि कानून को माननेवाले सभी नागरिक, जिनमें धारासभा के सभ्य भी आ जाते हैं, सरकार को, उसकी इस नीति के पालन में, सहायता देंगे।"

बारडोली के संबंध में बंबई के गवर्नर का भाषण जिसने सरसरी नजर पर पढा होगा वह क्या यह नहीं कह उठेगा कि यह उसीके टुकडे का अनुवाद है? नहीं साहेब, सच मानिए, यह उसमें से उतारा गया है। हां, अलबत्ते, उससे हूबहू मिल जरूर रहा है। दोनों में भी वही धमकी, वही भावना भरी हुई है, मगर दोनों के बोलनेवाले दो हैं। इसके भी बोलनेवाले, शहनशाह जॉर्ज पंचम के एक और प्रतिनिधि परलोक गत सर फ्रैंक स्लाइ थे जो उस समय मध्य प्रदेश के गवर्नर थे और यह भाषण नागपुर झंडा सत्याग्रह के कारण १००० सत्याग्रहियों की कैद से उपस्थित परिस्थिति पर वहांकी धारासभा में दिया गया था। यह कथा सन १९२३ के अगस्त के महीने की किसी तरीख की है। मगर इसके कुछ ही दिनों बाद सर फ्रैंक स्लाई के चीफ सेक्रेटरी ने पटेलबंधुओं को लिखा कि गवर्नर साहेब आप लोगों से मिलना चाहते हैं। इस मुलाकात के एक सप्ताह के भीतर ही सारे देश में झंडा सत्याग्रह की विजय घोषित की गयी। १,००० से भी अधिक कैदियों को—जिनमें कुछ को तो डेढ वर्ष तक की सख्त कैद की सजा मिली थी,—एक साथ ही छोड देने में भारत सरकार को जरा झिझक होती थी, मगर सर फ्रैंक स्लाई ने यही कहा कि जब एक बार झंडे के साथ जुलूस को निकल जाने दिया, तब इसका तर्क–प्राप्त परिणाम यही निकलता है कि सब कैदियों को छोड देना चाहिए और दश दिनों के भीतर ही सब जेल से छोड दिये गये। इसमें न कुछ अवैध था और न कानून की सर्वोपरिता को ही इससे कोई धक्का पहुँचा।

'देखि शरासन गवहिं सिधारे'

मगर याददाश्त की कमजोरी तो कुछ सरकार का ही इजारा नहीं है। हमारे कुछ सहयोगी जो अब तक इस लडाई का समर्थन कर रहे थे, अब जान पडता है कि वे बोरसद और नागपुर की कथाओं को भूल गये हैं और जलियानवाला बाग के दृश्य के सपने देख रहे हैं। 'इंडियन डेली मेल' को पूरा विश्वास है कि सरकार की आज्ञा न मानने की वृत्ति का यही अंतिम फल होगा कि सैनिक शासन शुरू हो जायगा और इसके जितने दोष हैं सभी आ जायँगे और इस लिए श्री वल्लभभाई को सलाह देता ह कि हिम्मत एक चीज है, और हठ धर्मी दूसरी, अतएव इस बार आप हठ धर्मों न कीजिए, सरकारे आला के फरमान को सिर आंखों पर रख लीजिए। 'सोशल रिफार्मर'—और इसके भी वही संपादक हैं जो डेलीमेल के हैं—की भी एक टिप्पणी में कहा गया है कि लोगों का दावा सही है जरूर मगर "सरकार की बात मान लेने से प्रजा का कुछ भी बिगडेगा नहीं, हाँ लाभ बहुत कुछ होगा," यानी गवर्नर साहेब के भाषण में जो आत्म समर्पण माँगा गया है, वह भी करने से लोगों की कोई हानि नहीं होगी। समझ में नहीं आता कि एक सप्ताह पहले जो सरकार को उसकी अयुक्त स्थिति के लिए उसकी कडी आलोचना करता था, वही क्यों इतनी जल्दी अपना रंग बदल रहा है, बल्कि मुहडा ही फेर चुका है? क्या सैनिक शासन के भय से? ये मित्र जरा सब्र क्यों नहीं करते, और जो होना है उसे होने क्यों नहीं देते? जिन किसानों पर सरकार की सारी दमन शक्ति का प्रहार होनेवाला है, वे तो भला बेफिक्र बने अपनी खेती गृहस्थी करते चले जा रहे हैं, तब हमीं लोग क्यों सिर की पर्वा न कर, बाल की रक्षा के लिए महना मथ मचाये रहें। किसानों की इज्जत ही उनका सिर है, धनमाल और जान तो महज बाल भर हैं। उन्होंने इस इज्जत के लिए बहुत महँगा दाम दिया है और आगे वे जान भी देने को तैयार बैठे हैं।

मगर हमें कहा जाता है कि आखिर जाँच ही क्यों नहीं स्वीकार कर लेते? 'अगर जाँच से कोई संतोषजनक फल न निकला तो

फिर भी लडाई शुरू की जा सकेगी।"—और उसके बाद फिर वही सैनिक-शासन आवेगा न? मगर सैनिक-शासन ही अगर किसी दिन आना है तो बारडोली के किसान उसके लिए रास्ता देखते रहने के बदले उसे शीघ्र ही निपट लेना चाहते हैं।

(यं० इं०) **महादेव देशाई**

स्व० मगनलाल भाई के पत्र

सूर्यचंद्र के समान नियमित बनो

[अपना जीवन सूर्यचंद्र के समान नियमित बनाने का जिनका सतत प्रयत्न रहता था, वे पुत्र को भी पत्र लिखते समय यही इच्छा प्रकट करते हैं कि उसका भी ऐसा ही जीवन बने। यह पत्र गत वर्ष महमदाबाद के संकटनिवारण के काम में जब वे लगे हुए थे, तब वहींसे लिखा गया था।]

बंबई में—से जरूर मिलना और उन्हें आनंद देने का प्रयत्न करना। मैं मानता हूँ कि तुम में यह जानने की जिज्ञासा तो नहीं ही होगी कि उनसे क्या दोष हुआ होगा। किन्तु उनके दोष या दूसरों के दोष तुम अपने लिए समुद्र में तैरनेवाली हलकी लकडी के समान समझना और अपनी छोटी सी नाव इस संसार समुद्र में खेते हुए तुम इन लकडियों को देख इनके नीचे पडी चट्टानरूपी दोषों को त्याग कर दूर ही दूर रहना। मैं ईश्वर से माँगता हूँ कि तुम सदा खेलते रहो। निर्दोष, निर्मल होकर खेलते रहो, मलिनता का तुमसे स्पर्श भी न होवे। और अगर यों तुम अपने पूर्व के महान् तप के बल पर जी गये तो तुम्हारा स्थान निःसंदेह उस सर्वशक्तिमान् प्रभु के आंगन में ही होगा। इससे अधिक तुम्हारे लिए मैं और क्या इच्छा करूँ? किन्तु यह सब शक्य करने के लिए तुम्हें तलवार की धार पर खेलना होगा। और इसी लिए मैं चाहता हूँ कि तुम ४ बजे की प्रार्थना में शामिल रहो। नियमित रूप से, सूर्य और चंद्र की नियमितता से शामिल रहो। उसमें गीता-पारायण होता है। उसमें मन लगा कर भाग लो। और गीता का मनन करने के लिए रोज नियमित रूप से समय दो। उसमें तुम इस तरह ओतप्रोत हो जाओ कि तुम्हारा सारा जीवन गीता रूप बने। तुम गीता का आचरण करनेवाले बन जाओ। पूज्य बापूजी की भारी तपश्चर्या का पुण्य तुमपर और दूसरे लडकों पर कांति, रसिक, धीरू, नवीन पर व्याज के सहित उतरे। शाला के दूसरे लडकों को मैं बाद करना नहीं चाहता। मेरी अभिलाषा है कि बाल, पृथ्वीराज, महावीर वगैरह भी इस बारसे को भोगें। इसी लिए मैं तुम्हें वारंवार सवेरे की प्रार्थना के बारे में, तथा मनन में थोडा समय देने के लिए समझाता रहा हूँ। यह तुम्हारे लिए दुष्कर नहीं है। तुम्हारा बालक-हृदय उसका महत्त्व, उसका सुंदरत्व जब तक नहीं देख सका है, तभी तक वह तुम्हारे गले नहीं उतरता है। वह गले उतरेगा तब चर्खे के समान साध्य बन जायगा।

× × ×

मोक्ष में ही पेन्शन मिलेगी

[मृत्यु होने के पूर्व कोई तीन चार वर्ष पहिले आश्रम के एक भाई को मगनलाल भाई ने पत्र लिखा था, वह यहाँ प्रकट करने योग्य है। २४ वर्ष पर्यन्त गान्धी जी की सेवा में एक दिन भी बिना आराम लिए ही मृत्यु के साथ ही उन्होंने शाश्वत आराम प्राप्त किया।]

बालकोबा,

लक्ष्मी अभी तक नहीं आयी है। किन्तु आने पर उसे सँभालने में मुझे और तुम्हें ध्यान देना होगा। यदि मैं इस विषय पर विवेचन करने बैठूँ तो सफे के सफे लिख जा सकता हूँ। संक्षेप में इतना ही, लिखता हूँ कि काम काफी है और वह तुम्हारे जैसे की निगरानी न होने से वैसे ही पडा रहता है। तुम्हें उसकी जानकारी हो जा[य] बस यही देर है। हमने अडोस पडोस के देहातियों से मित्रा[चार] बहुत कम किया है। जिस किसीसे काम पडा है उसीके सा[थ] परिचय हुआ है। दवाखाना तो ऐसे ही झूलता है। ऐ[सी] कई एक बातें गिनायी जा सकती हैं और हरएक वस्तु के लि[ए] विस्तार किया जाय तब भी बहुत होता है। य[ह] उमीद करता हूँ कि तुम उसमें दिलचस्पी रखने लगोगे। तु[म] ठीक भ्रमण कर चुके हो, तुमने अनुभव भी ठीक लिया है अ[ब] कार्य में दत्तचित्त हो जाओ। अब यही चाहता हूँ। मेरे जै[से] को अब फारिग करना चाहिए। सरकारी मुलाजमत के लिहाज तो अब मैं पेन्शनयाफ्ता होने का हकदार हो गया हूँ। मुझे बी[स] वर्ष हो चुके लेकिन बापू की 'सर्विस' में तो 'मोक्ष' ही पेन्श[न] है। अतः मैं काम से मुक्त होने की आशा या इच्छा कैसे रक्खूँ? सिर्फ यही इच्छा रही है कि हमारे कामों का उनके सभी अंगों के साथ विकास होवे तुम्हें बहुत कुछ लिखने का दिल होता है किन्तु यह नहीं हो सकता।

तुमको यह होता होगा कि "मेरा आश्रम में क्या काम है?" उसी विषय पर इतना लिखने के लिए कल से तडप रहा था आखिर आज लिख सका।

(क्रमशः)

ईश्वरः सर्वभूतानाम्

[वर्धे के श्री. लक्ष्मीनारायण देवस्थान में अछूतों को प्रवेशाधिकार देने के प्रसंग में वहींपर श्रीयुत विनोबा ने निम्न लिखित भाषण दिया था।]

मैं कल प्रथम ही यहांके श्री लक्ष्मीनारायण जी के मंदिर में गया था, और आज सबेरे फिर आया था। किन्तु आज मुझे जो बात वहां दिखायी पडी उसे मैं कल वहां न देख सका। आज मुझे श्री लक्ष्मी और श्री विष्णु की मूर्तियों में ईश्वर का दर्शन हो सका था जो कल नहीं हुआ था। संभव है कि यह मेरी दृष्टि का दोष हो या उसकी कम ताकत हो। पर मुझे जो प्रतीति हुई सो आप से कह रहा हूँ। इस संबंध में मुझे एक पिछले प्रसंग की याद आती है। कुछ दिनों पहले मैं एक बार कोल्हापूर गया था। वहां एक बहुत बडा और पवित्र देवालय है। वहांकी देवी को जगदंबा कहते हैं। जगदंबा का अर्थ है जगत की माता। मैं देवी के दर्शनों से वापिस आ रहा था। एका एक मेरे मुँह से इस प्रकार उद्गार निकल गये कि यद्यपि इस देवी का नाम जगदंबा है—तौभी यह सचमुच जगदंबा नहीं है। क्या कहीं ऐसी माता भी देखी गयी है जो अपने कुछ बच्चों को तो अपने पास आने दे और कुछ बच्चों को अपने से एकदम दूर रक्खे? परन्तु यह माता तो कुछ बच्चों को अपने पास आने देती है और कुछ बच्चों को दूर रखती है; इसलिए इसे जगदंबा कहना भूल है। उसी प्रकार कल भी मुझे यहांके विष्णु और लक्ष्मी जगत के सच्चे पिता माता प्रतीत न होते थे, परन्तु आज मैं जब श्री विष्णु जी के चरणों पर दृष्टि लगाये हुए था, तब मुझे जो आनंद हुआ वह मैं शब्दों में नहीं प्रकट कर सकता।

संभव है यह मेरी भावना ही हो। परन्तु धर्म कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो केवल बुद्धि से जाना जा सके। तर्कशास्त्र धार्मिक मामलों की बाबत में लूला बन जाता है। धर्म का ज्ञान केवल हृदय को ही हो सकता है। श्री गंगाजी के जल और नल के पानी का पृथक्करण यदि शास्त्रीय दृष्टि से किया जाय तो दोनों में एक ही प्रकार के पदार्थ प्राप्त होंगे, परन्तु गंगाजल हिन्दू के लिए जितना पवित्र है, उतना नल का जल नहीं। यह क्यों? आपके सामने यदि आपकी, कुरूप ही सही पर, माता का एक चित्र और

किसी दूसरी सुंदर स्त्री का अत्यंत सुंदर चित्र रक्खा जाय तो अपनी माता का कैसा भी चित्र देख कर फडक उठेंगे दूसरा सुंदर चित्र देख कर आपका हृदय उतनी हिलोरें नहीं ; इसका क्या कारण है? इसका एक मात्र कारण है हृदय की त। उस पहिचान के कारण पहिला चित्र आनंद की उमंगें है और दूसरा चित्र नहीं।

अस्पृश्यों के मंदिर-प्रवेश का प्रश्न भी इसी प्रकार का है। वह के तमाम उपस्थित सज्जनों के हृदय में आनंद उमडाता है, मानता है कि इसमें कोई अयोग्य बात नहीं है; परन्तु पुरानी का दबाव बुरा होता है। हृदय जिस बात को मानता है वह बात सत्य है उसका भी सिर रूढि के सामने झुक जाता यह बहुत शोक की बात है। अत एव अस्पृश्यों को मंदिरों क्यों जाने देना चाहिए—इसके बहुत से कारण बतलाने में मैं का समय लेना नहीं चाहता। हिन्दू धर्म के एक ही मुख्य न्त का मैं आज विवरण करूँगा। हिन्दू धर्म के सब सिद्धान्तों शिरोमणि 'ईश्वरः सर्वभूतानाम्' ही है। अत्यंत प्राचीन काल से मुनियों ने इसे स्थिर कर रक्खा है। और अनेक संत महंतों ने की प्रतीति भी पायी है। इस लिए इस विषय में किसी को हो सो नहीं। एक और दृष्टि से अबोध हिंदू बालक बात किसी के न सिखाते हुए भी कह सकेगा कि ईश्वर सब ह है। मैं मानता हूँ यह बात समझने में जितनी सरल है नी ही आचरण के लिए कठिन है। सांप या बिच्छू या शेर को कर यह विश्वास कि 'यह मेरा भाई है' बहुत देर से होता है। मान्यतः तो हम उसे शत्रु ही मान बैठते हैं और उसे कुचलने प्रयत्न करते हैं। यह हमारी नितान्त भूल है। उसी प्रकार स्पृश्यों का हाल जानिये। हिन्दू-धर्म कहता है 'ईश्वरः सर्वभूतानाम्,' क्या अस्पृश्यों में ईश्वर नहीं है? अवश्य है; लेकिन हम यह बात से गये हैं अथवा गये थे। इसलिए इसका अंशतः परिमार्जन ने के लिए आज का यह उपक्रम किया गया है। आप निश्चय नें कि इससे हिन्दू-धर्म अधिक उज्वल और सच्चा हिन्दू-धर्म न गया है।

मंदिर परमात्मा का, उस चित् शक्ति का निवासस्थान है जिसके रा सब प्राणियों के व्यवहार काबू में रक्खे जाते हैं। मौत का मय आता है तो गाय और शेर, हाथी और चींटी, पापी और ज्ञानी भी अनन्यगतिक हो जाते हैं। यह उस महाशक्ति का, जिसे हम 'ईश्वर' कहते हैं, प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसे कोई चाहे माने या न माने, पर यह अपनी हुकूमत सब पर बराबर चलाती है। ऐसी शक्ति निवासस्थान में क्या हम इस भावना से जा सकते हैं कि मैं उच्चवर्ण का हूँ, यह हीनवर्ण का है; मैं ब्राह्मण हूँ, यह ढेड भंगी ; मैं धनिक हूँ, यह दरिद्र है; मैं बुद्धिमान हूँ, यह मूर्ख है? यह अहंकार बिलकुल मिथ्या है। सब अच्छे गुणों का जो निधान है और जिसकी कृपा से ही उस गुण का अत्यंत छोटासा कण हमें प्राप्त उसी के सन्मुख हम उस विशिष्ट गुण का अभिमान करें तो यह कितनी बडी मूर्खता की बात होगी। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध साधु रामदास क्या कम बुद्धिवाले थे? परन्तु उन्होंने ईश्वर से क्या प्रार्थना की—बुद्धि दे रघुनायका—अर्थात् हे रघुनायक मुझे बुद्धिप्रदान करो। प्रख्यात अद्वैतवादी भगवान शंकराचार्य महाज्ञानी और 'अहं ब्रह्मास्मि' के प्रतिपादन करने वाले थे। उन्होंने भी आखिर भगवान से क्या कहा?

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।

अर्थात हे प्रभो यद्यपि आपमें और मुझमें कोई भेद नहीं है फिर भी मैं आपका दासानुदास ही हूँ। कहां इतने बड़े बडे व्यक्तियों की उस महाशक्तिशाली प्रभु के सन्मुख प्रकट की हुई दीनता और कहां हमारा अहंकार! हम तो आज तक यही मान बैठे थे कि हम उच्च हैं। उस उच्चातिउच्च के सामने मैं उच्च हूँ ऐसा समझना कितनी बडी मूर्खता है सो आप समझ ही गये होंगे। और फिर कोई मंदिर में आता है, तो वह इस भाव से तो आता ही नहीं कि मैं ब्राह्मण हूँ, मैं धनिक हूँ, मैं बडा अफसर हूँ या और कोई हूँ। वहां तो वास्तव में जैसा कि तुकाराम महाराज ने कहा है—

या रे या रे ल्हान थोर
भलते याती नारी नर

अर्थात हे भाई! आप की कोई भी जाति क्यों न हो आप यहां अवश्य आइये—इस प्रकार की वृत्ति चाहिए।

अब रही ईश्वर को ताले के अंदर बंद करने की बात। सो तालाचावी से तो नेक भी बंद हुए ही नहीं। उन्हें बंद करने के लिए किसी दूसरी चीज की जरूरत है।

नामदेव कीर्तन करी
तेथें रे बा नाचे पांडुरंग।

अर्थात् जहां नामदेव कीर्तन करते हैं वहां प्रत्यक्ष भगवान आकर नाचते हैं। जनाबाई ने भगवान से चक्की पिसाई, महासाधु एकनाथ तो भगवान से पूरे बारह वर्षों तक घर का काम लेते रहे। इन लोगों ने क्या ताले चाबियों से भगवान को कैद कर रक्खा था? कदापि नहीं। भगवान को यदि पकड रखना है तो ऐसी उत्कट भक्ति करो कि आपको छोड जाने की उसीकी हिम्मत न हो। प्रसिद्ध साधु तुकाराम का कथन है—

नम्र झाला भूतां तेणें कोंडिलें अनन्ता

अर्थात् भगवान उसीके ताबेदार हैं जो प्राणि मात्र से नम्रता धारण करता है। इसलिए आप यदि भगवान को अपने ही पास रखना चाहते हैं तो उनकी उत्कट भक्ति कीजिए।

यह सोचने की बात है। आज कई बरसों से जिन लोगों को हमने अस्पृश्य मान कर दूर रक्खा है उनकी हिंदू धर्म के प्रति कैसी उत्कल श्रद्धा और भक्ति है। मैंने एक बार एक अस्पृश्य से पूछा कि 'तेरी लडकी का नाम क्या है?' उसने उत्तर दिया 'एकादशी'। सोचिये तो सही इस नाम में कैसा काव्य है। हिंदू धर्म और हिंदू संस्कृति के प्रति उसकी कैसी तीव्र भावना है। महाराष्ट्र में जो पंढरपुर की यात्रा होती है उसके लिए भावना पूर्ण अंतःकरणों से जानेवाले हीन वर्ण के लोग ही अधिक संख्या में पाये जाते हैं। पंढरपूर के यात्री बनने पर मरते दम तक उनका यह नियम अटूट चलता है। यह व्रत स्वीकार कर लेने पर वे मद्य, मांस का सेवन बंद कर देते हैं। इन सब बातों से यही पता चलता है कि ये लोग हिंदू धर्म के प्रश्न खूब श्रद्धा रखनेवाले हैं इस लिए इनकी अब काफी परीक्षा हो चुकी। अब इनको अपनाने में विलंब न लगाना चाहिए।

अब रही बात कुछ लोगों के अस्पृश्यों के मंदिर प्रवेश के लिए विरोध की। संभव है ऐसे कई लोग हों जिनको यह बात सचमुच अधार्मिक मालूम होती हो। और इस लिए शायद वे मारपीट करने पर भी तुल जायँ। परन्तु हमारा तो इस समय कर्तव्य होगा कि ऐसे भाइयों से कहें 'भाइयो! आप यह नितान्त अधार्मिक कृत्य करने पर उठ खडे हुए हैं। आप लट्ठ लेकर आये हैं तो हम अपनी पीठ उघार देते हैं। आप जितने चाहें लट्ठ जमा लें। इसमें हमारा कुछ बिगडता नहीं है। विष्णु भगवान ने भृगु की लातें सहन की तो हमारे लिए लट्ठ सहना कोई बडी बात नहीं है।' और इस प्रकार यदि लोगों ने सत्व परीक्षा भी की तो उसमें हर्ज ही क्या है? हिंदूधर्म और अधिक उज्ज्वल ही होगा। यूरोप में लोगों ने क्रैनमर को जिंदा जला दिया परन्तु उसके धर्म की ज्वाला और भी

ऊंची उठी, सोक्रेटीस को विष पिलाया गया और वह भी उसे दूध के समान पी गया और आत्मा का अमरत्व सिद्ध कर गया, ईसू ख्रीस्त को क्रूस पर चढाया गया, परन्तु उसका धर्म बढता ही चला गया। हिन्दुस्तान के लोग स्वभाव से ही दयालु होते हैं, इस लिए यूरोप जैसी कडी परीक्षा तो नहीं देनी पडेगी। जो परीक्षा देनी होगी वह बहुत सौम्य होगी और हर एक उसमें अवश्य उत्तीर्ण होगा। इस लिए हर एक नम्र अहिंसावादी व्यक्ति को अवसर पडने पर इस परीक्षा से मुँह न मोडना चाहिए। ईश्वर आपको अविच्छिन्न सहन-शक्ति प्रदान करें।

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, द्वितीय श्रावण वदी १ संवत् १९८४

सत्याग्रह की मर्यादा

सरदार शार्दूलसिंह सम्मान्य कार्यकर्त्ता हैं। उन्होंने एक खुली चिट्ठी के द्वारा मुझे सलाह दी है कि मैं बारडोली की सहानुभूति में दूसरे लोगों को सत्याग्रह करने को कहूँ। इस पत्र का जवाब देना जरूरी है और खास कर इसलिए कि इस जवाब से मुझे खास अपनी स्थिति स्पष्ट करने का मौका मिलता है। जैसा कि गवर्नर साहेब कहते हैं, अगर बारडोली सत्याग्रह कानून-विरोध का आन्दोलन होता तो सहानुभूति में औरों से सत्याग्रह कराने से—और वह भी सरदार साहेब के पत्र में बतलायी मर्यादाओं के बिना—अधिक लुभावनी या स्वाभाविक बात दूसरी न होती। मगर सरदार साहेब ठीक ही कहते हैं, "मैं गुजरात के मुख्य कार्यकर्त्ताओं में यह वृत्ति देखता हूँ कि वे बारडोली के किसानों को अलग रखना चाहते हैं। श्रीयुत वल्लभभाई के भाषणों की रिपोर्टों से और आपके लेखों से मुझपर यह छाप पडी है। मित्रों का यह खयाल है कि अब इस बात में और अधिक उग्र करना व्यावहारिक राजनीति के बाहर की बात होगी।"

सरदार साहेब का खयाल सही है। श्रीयुत वल्लभभाई इस लडाई को बिलकुल ही स्थानिक और आर्थिक प्रश्न का ही और राजनीति से अलग बनाये रखने के लिए ही श्रीयुत राजगोपालचारी और दूसरे नेताओं को बारडोली नहीं जाने देते थे। जब सरकार ने इसे राजनीतिक रंग दिया और अपने जुल्मी कामों से इस प्रश्न को अखिल भारतीय बना दिया, तभी और नेताओं को बारडोली जाने से वल्लभभाई रोक नहीं सके, मगर जहाँ कहीं उनकी सलाह या अनुमति माँगी गयी, उन्होंने यही कहा कि, 'अभी नहीं।'

मैं नहीं जानता कि सरदार साहेब की सूचना का वल्लभभाई क्या जवाब देंगे, मगर मैं कह सकता हूँ कि 'अभी नहीं।' सहानुभूति के मर्यादित सत्याग्रह का भी समय अभी नहीं आया है। बारडोली को अपना पानी अभी दिखलाना बाकी है। अगर बारडोली अखीरी चोट सह सका, और सरकार भी सीमोल्लंघन कर गयी तो फिर मैं या वल्लभभाई लाख प्रयत्न करके भी न तो उस विराट् सत्याग्रह के प्रचारको और न अ.ज जो सत्याग्रह का जो मर्यादित उद्देश्य है—यानी लगान बढती की जाँच फिरसे हो, कैदियों को छुटकारा मिले, और जब्त की गयी जमीन लौटा दी जाय,—उसको ही बढ कर विराट् रूप धारण करने से रोक सकेंगे। उस सत्याग्रह की मर्यादा नियत होगी व्यक्तियों या सारे हिन्दुस्तान की कष्ट सहने और आत्मत्याग की शक्ति की मर्यादा से ही। अगर वह विराट् सत्याग्रह होना है, तो उसे कोई शक्ति, चाहे वह कितनी ही बडी क्यों न हो, रोक नहीं सकती। मगर जहां तक मैं सत्याग्रह की भावना और प्रयोग को समझता हूँ, यह मेरा और श्रीयुत वल्लभभाई का धर्म है कि सरकार के उत्तेजित करने पर भी जो अब इतना अधिक है कि मूल मर्यादा का उल्लंघन करना अनुचित नहीं होगा, हम लोग मूल प्रश्नों पर ही अडे रहें।

बात यह है कि सत्याग्रह म यह बात पहले से ही मान ली गयी है कि परमात्मा बराबर उपस्थित है और रास्ता बतला रहा है। नेता अपने बल का नहीं बल्कि परमात्मा के बल का भरोसा रखता है। वह वही करता है जो कि उसे अंतर से आज्ञा मिलती है। बहुत बार तो जिसे व्यावहारिक राजनीति कहते हैं वह उसे असत्य जान पडती है, गोकि अंत में उसीकी बात सबसे अधिक व्यावहारिक राजनीति साबित होती है। हिन्दुस्तान को आज तक जितनी लडाइयाँ लडनी पडी हैं, उन सबसे यह अधिक कठिन होनेवाली जान पडती है। इस लडाई के शुरू होने के समय ये सब बातें बेकार और दिन का सपना जान पड सकती हैं। मगर मैं जिसे सबसे गहरा सत्य समझता हूँ, उसे न कहूँ तो अपने प्रति और राष्ट्र के प्रति झूठा होऊँगा। अगर बारडोलीवाले वैसे ही हैं जैसा कि वल्लभभाई का विश्वास है, सरकार के अपने सारे शस्त्र चला चुकने पर भी अंत में भला ही होगा। हम जरा सब्र करके देखें। सिर्फ धारासभा के सभ्य लोग जो समझौता कराना चाहते हैं, बारडोलीवालों को बचाने की आशा में कोई कमजोरी न दिखलावें। बारडोली के किसान परमात्मा के हाथों में सुरक्षित हैं।

(यं इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी

गवर्नर की धमकी

हिन्दुस्तान की नौकरशाही अनुभव से भी कोई बात सीखने से इनकार करती हुई जान पडती है। वह ऐसा व्यवहार करती है मानों वह जानती ही न हो कि लोगों पर से धमकी का असर जाता रहा। लाखों पर तो धमकी कोई असर करती ही नहीं है, और इतना ही नहीं बल्कि अब एक ऐसा मरने पर तुला हुआ वर्ग पैदा हुआ है, जिसपर धमकी की बातें पूरी करने का भी कोई असर नहीं होता। जिसने मौत का डर छोडा है, जिसने धनमाल का मोह त्यागा है, भला राजदंड उसका क्या बिगाड लेगा? जिसकी सबसे प्यारी वस्तु स्वमान हो, उसपर धमकी का असर क्या होगा? अर्थात् गवर्नर साहेब की धमकी, और विंटरटन साहेब का उसका संपूर्ण अनुमोदन बारडोली के लोगों पर कोई असर नहीं कर सकेंगे। उलटे सुनता तो यह हूँ कि इस धमकी ने लोगों को और भी दृढ बनाया है।

किन्तु हमें सरकारी धमकी का विश्लेषण नहीं करना है। हमें इसका पता है कि अपनी धमकी सच्ची कर दिखलाने की शक्ति सरकार में है और इसे हम भूलना भी चाहें तो सरकार भूलने देनेवाली नहीं है। हमारा भूषण इसीमें है कि हम मान लेवें कि सरकार धमकी के अनुसार ही काम करेगी, और सरकारी कोप का स्वागत करने को तैयार रहें। 'सावधान नर सदा सुखी'— कहावत को बारडोली के भाई बहिन अपने नोटों पर सा. लेवें और बराबर सावधान रहें। लडत के आरंभ से ही श्री. वल्लभभाई ने लोगों को सचेत कर रक्खा है, "तुम्हें लडना हो तो संकट सहन करने पडेंगे। सरकार जब्ती लावेगी, जमीन कुर्क करेगी, तुम्हारा माल पानी के मोल बेंच डालेगी, तुम्हें तुम्हारी जमीन से निकाल देगी, मगर तुमपर गोलियों की बाड दगे तब भी तुम पीठ मत दिखलाना, गोली की बाढें छाती पर फूल के समान सहना।" ये वचन जिन्होंने याद रक्खे होंगे, उन्हें अधिक चेतावनी की जरूरत नहीं है।

किन्तु सरकार के कोप के साथ हमारा संबंध नहीं है। राजा को क्रोध करने का इजारा होता है। सरकार के क्रोध के जवाब में हमें क्रोध नहीं करना है, सत्याग्रही को क्रोध करने का अधिकार ही नहीं है। क्रोध को हमें अक्रोध से जीतना है। सरकार के क्रोध के वचन बोलने से ही हमें सत्य का मार्ग नहीं छोडना है। क्रोध करे या न करे, हमारी माँग तो एक ही हो सकती है। सरकार ने ज्वालामुखी के रस के समान ज्वलंत भाषण किया है। सूरत की समझ में न आने लायक सरकारी विज्ञप्ति ही गोकि उसका अंतिम वचन समझी जाती है तौभी समझौते की बातों की भनक हमारे कानों में अभी आया ही करती है। इस बारे में भी हम निश्चिन्त हैं कि उसमें सरकार का हाथ है या नहीं। किन्तु समझौते का अगर एक भी द्वार अभी खुला हुआ हो तो उसमें से होकर जाने के लिए हम तैयार रहें। मरने के लिए जो तैयार है, वह अगर विवेक छोडे तो वह शहीद नहीं किन्तु विवेकहीन मूढ है। बेजरूरत ही जो अपने शरीर को नष्ट कर देता है, वह पागला या मूर्ख समझा जाता है और उस मरण में वीरता नहीं है, इस लिए वह किसी का उपकार भी नहीं कर रहा है।

इसलिए जो कि बारडोली वालोड के लोगों को अधिक माँगें पेश करने का अधिकार है, तौभी उन्होंने उस अधिकार से काम नहीं लिया है और अब क्योंकि सरकार ने मर्यादा नियत कर दी है, इसलिए वे और अधिक माँगें नहीं कर सकते। सत्याग्रहियों को ये बातें चाहिए:

१. उनकी फिरयाद सुन कर न्याय देनेवाली स्वतंत्र निष्पक्षपात समिति नियत की जाय;

२. और इस जाँच समिति के गर्भ में जो शर्तें हों उनका पालन किया जाय यानी

क. जो लोग सत्याग्रह के संबन्ध में कैद हुए हैं, उनको छोड दिया जाय,

ख. सत्याग्रह के संबन्ध में जितनी जमीन जब्त हुई है, वह लौटा दी जाय

ग. लोगों की या उनके लिए जिन लोगों की जो प्रत्यक्ष हानि हुई हो, वह पूरी कर दी जाय।

जो अप्रत्यक्ष नुकसान लोगों को ढोर माल की हुई है, उसका भी बदला माँगने का अधिकार सत्याग्रहियों को है, मगर तौभी उसे वे नहीं माँगते। माँगें तो यह समझौते का लक्षण नहीं गिना जायगा। सत्याग्रही हमेशे जानमाल खोने की तैयारी से ही सत्याग्रह शुरू करता है। इस लिए जो अप्रत्यक्ष नुकसान जब्ती वगैरह से नहीं हुआ था, उसका बदला सत्याग्रही न माँगें।

ऊपर की दी हुई लोगों की माँग को सरकार स्वीकार करे कि पुराना कर भर देना लोगों का धर्म हो जाता है। यह मैं मान लेता हूँ कि लोगों ने पुराना लगान भरने की तैयारी हमेशे रक्खी है। कभी न कभी तो यह लगान भरना रहता ही। अखबारों में आया है कि जिसकी अधिकता के कारण सत्याग्रह शुरू हुआ है, लगान की वह बढती बंबई के कोई गृहस्थ दे रहे हैं। इन्होंने अगर इतनी भेट सरकार को करने का विचार रक्खा हो तो इन्हें कोई रोक नहीं सकता। ऐसी भेट से सरकारी मन का समाधान हो तो हमें इसमें द्वेष नहीं हो सकता। आज इसका न्याय नहीं किया जा सकता कि बारडोली ताल्लुके के इस बंबई वासी गृहस्थ ने यह रकम देकर अपना या प्रजा का अहित किया है या नहीं। सरकार के लिए इसके अत्यंत छोटी रकम होने पर भी, अगर इस इजाफे की रकम की ऐसी भरपाई से समझौता हो सके तो उसे होने देना सत्याग्रही का धर्म है।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दुस्तान के दारिद्र्य का प्रश्न

१.

नीचे लिखे चार सवाल गांधी जी के इच्छानुसार कई अर्थशास्त्रियों के पास जवाब देने के लिए भेजे गये थे। सवाल ये रहे:

१. दरिद्रता की कसौटी क्या है?

२. २५ वर्ष पहले से या उससे अधिक दिनों पहले की अपेक्षा हिन्दुस्तान आज गरीब है या धनी?

३. हिन्दुस्तान की कंगालियत सर्वव्यापी है या कुछ खास खास समाजों भर में ही परिमित है?

४. दरिद्रता के कारण और इलाज।

मुझे यह तो कबूल करना ही होगा कि इन सवालों का जवाब देना बहुत मुश्किल है। इनका अगर पूरा पूरा जवाब दिया जाय तो भारतीय अर्थशास्त्र के हर एक पहलू और बाजू पर विचार करना होगा और इसके लिए तो कई बडे बडे ग्रंथ लिखने पडेंगे। मगर, चूंके ये जवाब 'यंग इंडिया' में छापे जाने वाले हैं, इस लिए ये जितने संक्षेप में लिखे जा सकें, लिखे जाने चाहिए। मेरे जवाब, इस लिए, संपूर्ण तो नहीं होंगे मगर मेरा ख्याल है कि मुख्य मुख्य विषयों पर, इस विषय के जानकारों का ध्यान खींच सकेंगे और आगे बहस के लिए आधार का काम देंगे।

१. दारिद्र्य की कसौटी क्या है?

विपन्नता और संपन्नता तो सापेक्ष शब्द हैं। दर दर टुकडे माँगने वाले भिखारी से मैं धनी हो सकता हूँ, मगर किसी लखपति से तो गरीब ही हूँ। यही बात देशों पर भी लागू है। इँग्लैण्ड आज हिन्दुस्तान से धनी है, मगर अमेरिका से गरीब है। देशों के बारे में यह कहने का अर्थ यह है कि इँग्लैण्ड का सामान्य (औसत दर्जे का) आदमी हिन्दुस्तान के वैसे ही सामान्य आदमी से धनी है, और अमेरिका के औसत दर्जे के आदमी से गरीब है। यह फर्क समझना जरूरी है, क्योंकि कोई यह भले ही साबित कर देवें कि सभी हिन्दुस्तानियों का कुल धन मिला कर, सभी अँगरेजों के कुल धन से अधिक है। मगर तौभी हम तो कहेंगे कि हिन्दुस्तान गरीब ही है क्योंकि यहां सबकी कुल सालाना आमदनी जोड कर, एक आदमी की जो औसत आमदनी पडती है, वह एक अँगरेज की ऐसी ही औसत आमदनी से कम है।

यह कहना कि हिन्दुस्तान में लोगों का रहन सहन बहुत गरीबी का है, उसी बात को तरह तरह से घुमा फिराकर कहना है कि हिन्दुस्तान गरीब है। फर्क इतना ही है कि हिन्दुस्तान इस लिए गरीब नहीं है कि उसका रहन सहन गरीबी का है, बल्कि वह गरीब है, इसी लिए उसका रहन सहन गरीबी का है। उसका यथार्थ तो यह है कि इस देश की सालाना आमदनी इतनी कम है कि हर एक आदमी का हिस्सा उसकी जरूरियात से बहुत कम पडता है। मगर जरूरियात की बात भी तो सापेक्ष ही है। मेरा काम आध पाव चावल और पाव भर रोटी से चल सकता है, मगर किसी मजदूर का, जो मुझसे अधिक शारीरिक श्रम करता है, इतने भोजन से नहीं चलेगा। और शायद जितना मैं खाता हूँ, उतना भी किसी मोटे ताजे, बडी तोंदवाले, जमीन पर पांव न रखनेवाले, अजीर्ण के रोगी सेठ के लिए जरूरत से अधिक होगा।

इस लिए हमें पहले इस पर विचार करना होगा कि हम किस दृष्टि से कहते हैं कि हिन्दुस्तानियों का रहन सहन गरीबी का है। इस दृष्टि को समझ लेने से यह भी लाभ होगा कि फिर हम यह विचार भी कर सकेंगे कि उन्हें खुश हाल बनाने के लिए

किस दृष्टि से हिन्दुस्तानियों का रहन सहन आज की परिस्थिति में सुधारना चाहिए । आज की परिस्थिति को याद रखना जरूरी है क्योंकि आज जिस स्थिति में हम हैं, उसको देख कर ही हम आगे पग बढा सकेंगे ।

सरसरी निगाह से भी देखनेवाले को इतना तो दिखलायी पडेगा ही कि देश के भिन्न २ भागों में हजारों आदमियों को न पेट भर खाने को मिलता है, न पहनने को पूरे वस्त्र, और न रहने को अच्छी कुटिया । ऐसे लोगों का जीवन तो वेशक ही गरीबी का है, बल्कि जिन्दगी के लिए जितनी चीजें जरूरी हैं, उतनी भी इन्हें मयस्सर नहीं होती हैं । इसके साथ ही कुछ वर्ग ऐसे भी हैं जिन्हें कम से कम जीने भर के लिए जितना चाहिए, उससे कुछ अधिक मिल जाता है । इनका काम अच्छी तरह चला जाता है । दूसरे शब्दों में कहेंगे कि इन लोगों के पास काफी खाने पीने, और पहनने के लिए है, तथा रहने को घर भी है और इनके अलावा भी थोडी दूसरी जरूरतें पूरी करने के भी साधन हैं जिनसे ये जो काम करते हैं, या करना चाहते हैं, भली भांति या संतोषजनक रीति से कर सकते हैं, मगर जिन्हें जिन्दगी के और बहुत से सुख भी प्राप्त हैं, वे बहुत कम हैं । उन्हें अपने आपको स्वस्थ रखने के लिए जरूरी से कहीं अधिक साधन प्राप्त हैं । उन्हींको लोग समाज में धनी कहते हैं और जो उनसे कम सुखी होते हैं, वे उनसे डाह करते हैं ।

इस लिए लोगों को हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं: (१) जिन्हें किसी तरह जी सकने के भी साधन मुश्किल से प्राप्त हैं, या उतने भी नहीं; (२) या जो भली भाँति अपना काम चलाये जाते हैं और (३) वे जो खुशहाली की जिन्दगी बसर कर सकते हैं । किसी देश में गरीबी की कसौटी ये ही बातें होंगी । हर एक देश में जरूरियातें घटती, बढती और बदलती हुई होंगी । कभी कभी तो भिन्न २ दृष्टियों से संसार को देखनेवालों की भी जरूरतें एक सी न होंगी । मगर सर्व सामान्य कसौटी तो एक ही रहती है । उदाहरण के लिए, जब हम कहते हैं कि हिन्दुस्तान के लोगों का रहन सहन गरीबी का है, तब हमारा मतलब यह होता है कि अधिकांश लोग पहले वर्ग में आते हैं । ऐसी हालत में यह असंभव है कि हम तुरत ही लोगों को तीसरे खुशहाल वर्ग में पहुँचा देवें । यही बहुत बडी क्रान्ति होगी, अगर हम इस देश का आर्थिक जीवन इतना भर भी बदल सकें कि अधिकांश लोगों को भर पेट तो खाने को मिल जाया करे यानी वे दूसरे दर्जे में आ सकें ।

२. पचीस वर्ष पहले से आज हिन्दुस्तान गरीब है या धनी ?

इस सवाल का जवाब देने के लिए आँकडे देने होंगे जिनकी खोज बहुत ही मुश्किल है और जो बडे ही पेचीदा हैं । सर एम. विश्वेश्वरय्या की अध्यक्षता में हाल में ही जो 'इंडियन इकानोमिक इन्क्वायरी कमीशन' बैठा था, उसने भी रिपोर्ट की है कि अगर हाल की ही स्थिति का विचार किया जाय तौभी इसका सही जवाब देने के लिए काफी आँकडे नहीं मिलते । उन्होंने आँकडे इकट्ठे करने के तरीकों में बहुत बडे बडे परिवर्तन सुझाये मगर उनकी सलाहें तो उठा कर ताख पर रख दी गयीं । हुआ हवाया कुछ भी नहीं ।

मगर तौभी समय समय पर, एक हिन्दुस्तानी की औसत आमदनी के अंदाजे लगाने की कोशिश तो की ही जाती रही है । इन अनुमानों को बिलकुल सही मानना बडी भारी भूल होगी, क्योंकि ये बहुत ही नाकाफी आंकडों के आधार पर बाँधे गये हैं, और हर एक का तरीका अलग अलग है । दूसरे अच्छे अनुमानों के न होने से, हम इन्हींको आधार मान कर चलेंगे । इनसे कम से कम इतना पता तो चलता है कि हवा का रुख किधर है ।

ये अनुमान ऐसे हैं:

साल	ब्रिटिश भारत में फी आदमी औसत सालाना आमदनी	कर्ता
१८७१	२०) रुपये	दादाभाई नौरोजी
१८८१	२७) ,,	सर डेविड बारवर
१९०१	३०) ,,	लॉर्ड कर्जन
१९११	५०) ,,	फिन्डले शिरास
१९२१	७४) ,,	मि. के. जे. खंबाता

इस कोष्ठक में औसत आमदनी में वृद्धि दिखलायी गयी है, मगर हम यह जानना चाहते हैं कि लोगों की खुशहाली में कितनी तरक्की हुई है, न कि रुपयों की आमदनी में कितनी । इस के लिए यह जानना पडेगा कि कब कितने रुपयों में कितनी अत्यंत आवश्यक वस्तुएँ मिल सकती थीं । इस हिसाब से देखना होगा कि लोगों को अब पहले से अधिक आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हैं या कम । यानी तात्कालिक साधारण बाजार भाव के हिसाब से असल आमदनी का पता लगाना पडेगा । इसके लिए कुछ खास आंकडे तैयार किये गये हैं जिन्हें 'इन्डेक्स नंबर' या 'द्योतक संख्याएँ' कह सकते हैं । इनसे जान पडता है कि फलां साल में १००) रुपये में इतनी अत्यन्त जरूरी चीजें मिलती थीं, तो फलां वर्ष में उन्हींके लिए कितना खर्च करना पडता । इस तरह रुपये की क्रयशक्ति का पता चलता है ।

नीचे के कोष्ठक में औसत आमदनी और द्योतक संख्याएँ साथ साथ दी जाती हैं:

वर्ष	औसत आमदनी	द्योतक संख्याएँ
१८७१	२०	९३
१८८१	२७	१००
१८९१	पता नहीं	११०
१९०१	३०	१२०
१९११	५०	१४०
१९२१	७४	३७८ (सन् १९२०में)

हम जानते हैं कि सन् १९२१ के बाद बाजार दर गिरा है, और इस लिए हाल के किसी वर्ष की, जैसे कि १९२७ की द्योतक संख्या कुछ छोटी होगी । मगर उसी हिसाब से आमदनी भी तो घट गयी होगी क्योंकि सारे देश में कुल सभी माल जितना उत्पन्न हुआ सबकी कीमत घटी है । इसलिए जो थोडा सा फर्क होगा भी वह इसका होगा कि कितना माल तैयार हुआ है और उसे हम सहज ही भूल जा सकते हैं क्योंकि वह बहुत ही कम होगा । इस लिए हम बेधडक कह सकते हैं कि इन आंकडों से जो प्रवृत्ति दिखलायी पडती है, वही आज भी होगी ।

सन् १८८१ का अंदाजा पहले पहल सरकार की ओर से लगाया गया था, इस लिए अगर उसीको हम मिलान का आधार मान लेवें तो भूल होने की संभावना बहुत कम हो जायगी । इस हिसाब से हम देखते हैं कि सन् १८८१ से १९२१ तक में औसत आमदनी २७) रु. से बढ कर ७४) रु. हो गयी है अथवा १०० से २७४ के अनुपात में बढी है । इसी बीच रुपये की कीमत ३७८ से १०० के अनुपात में घट गयी है, यानी सन् १८८१ में जितना सामान १००) रु. में मिल सकता था, उसी की कीमत सन् १९२१ में बढ कर ३७८) रु. हो गयी । अब अगर लोगों की माली हालत में कोई

बदीली न हुई होती तो आमदनी १०० से ३७८ के अनुपात में बढ़नी चाहिए थी। मगर हम तो देखते हैं कि दर असल वह बढी १०० से २७४ के ही अनुपात में है। इस लिए आज एक हिन्दुस्तानी की औसत आमदनी सन् १८८१ की अपेक्षा १-२७४/३७८ यानी तकरीबन २/७ कम हुई है। अर्थात् हम पिछले ४०, या ५० वर्षों में जितने खुश हाल थे, उससे आज बहुत गरीब हैं। क्रमशः

(यं. इं.) **अध्यापक सी. एन. वकील**

बंबई विश्वविद्यालय

गोसेवा संघ

अखिल भारत गोरक्षा मंडल की साधारण सभा के सभी सभ्यों को, जिन्होंने अपना सूत का या पैसे का वार्षिक चंदा नहीं दिया था, उनको भी, डाक से सभा की सूचना देने पर, और सामान्य तौर पर तीनों अखबारों, 'यंग इंडिया', 'हिन्दी नवजीवन' और 'नवजीवन' में सूचना छापने पर भी ता: २५ वीं को शायद ही १२ आदमी हाजिर थे। इनमें से भी आधे से अधिक तो आश्रम में ही रहने -वाले हैं। यह बात हो 'नवजीवन' में गोरक्षा के सुझाये साधनों के प्रति पढे लिखे लोगों की उदासीनता दिखलाती है। इससे अश्रद्धावान आदमी निराश होगा। किन्तु मेरी श्रद्धा अटूट है। धैर्य भी उतना ही है। इस लिए सेवा का सहज ही प्राप्त काम मुझसे छूटनेवाला तो था नहीं। इसलिए आये हुए सभ्यों के सामने 'नवजीवन' में प्रकाशित किया हुआ प्रस्ताव रक्खा और अखिल-भारत गोरक्षामंडल से बदल कर कोई बीस आदमियों का गोसेवा संघ बना। मूल मस्विदे में नया सुझाया हुआ नाम गोरक्षा मण्डल था। उसके बदले जमनालाल जी की तीक्ष्ण और वस्तुस्थिति को समझनेवाली बुद्धि ने गोसेवा संघ का नाम सुझाया और यह उपस्थित सभ्यों को पसंद पडा। बुद्धि में, बल में, संख्या में छोटा समुदाय गोरक्षा का दावा ही क्यों करे? इससे सेवा का नम्र धर्म पालन करने का ही प्रयत्न हो सकता है। इससे गोरक्षा-मण्डल के बदले गोसेवा संघ का छोटा नाम ज्यादह योग्य था। पाठक देखेंगे कि सत्याग्रहाश्रम में जो गोसेवा के काम में दिलचस्पी लेते हैं और इस काम में लगे हैं, मुख्यतः वे ही इस संघ में हैं, और दूसरे वे हैं जिन्हें दुग्धालय, चर्मालय वगैरह, साधनों के बारे में पूरी श्रद्धा है और जो इस काम में खास तौर पर लगे हुए हैं। इस संघ का विधान अभी पीछे बनेगा। मुझे उम्मेद है कि अब तक जो लोग धन से या सूत कात कर मजदूरी के जरिए सहायता करते आये हैं, वे आगे भी करते ही जायँगे। जिन्हें दुग्धालय चर्मालय का ज्ञान है, वे सज्जन अपने अनुभव की मदद देंगे। इस संघ में मोची, चमार, भरवाड और ग्वाल लोगों को लाने की कोशिश होनी चाहिए। उनको मदद मिले, वे गोसेवा का शास्त्र समझें तो असंख्य गायें बचेंगी, और भारतवासी के ही समान दीन, हीन, दुर्बल बना हुआ गोवंश बलवान और तेजस्वी बनेगा। आज हमारे गाढे अज्ञान के कारण भारतभूमि पर गाय बोझारूप हो रही है, उसके और आदमी के बीच यह लडाई चल रही है कि जमीन का मालिक कौन होगा, और जोकि मनुष्य में परमार्थ साधने की अशेष शक्ति छिपी हुई है, मगर तौभी उतना ही स्वार्थीपना भी भरा हुआ है, और प्रसंग प्रसंग पर बढता ही जाता है, इसलिए जो गाय के बोझारूप बनने के बदले हिन्दुस्तानी उसे शुद्ध गोधन न बना सकें तो वे राक्षसरूप धारण करके गाय को खा जायँगे। इस महापाप से बचने का एक ही रामबाण इलाज है गोसेवा शास्त्र का अमल करना। इसमें कोई शंका न करे। और मैं आशा रखता हूँ कि जिसे यह विश्वास है, वह गोसेवा संघ को मदद करता ही रहेगा।

संशोधन आदि के साथ निम्नलिखित आशय का प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

"ता. १२-७-१९२८ के 'यंग इंडिया' और 'हिन्दी नवजीवन' में और ता. १६-७-१९२८ के 'नवजीवन' में प्रकाशित की गयी नोटिस के अनुसार अखिलभारत गोरक्षामंडल की एक साधारण सभा सत्याग्रहाश्रम साबरमती में ता. २६-७-१९२८ के दिन साढे तीन बजे सेपहर में हुई थी। उस सभा ने निम्न लिखित प्रस्ताव सर्वानुमत से स्वीकार किया:

"अपने आप धारण किये हुए व्यापक स्वरूप के परिमाण के अनुरूप अखिलभारत गोरक्षामंडल अपनी ओर प्रजा का ध्यान और सहानुभूति नहीं खींच सका है। अपने उद्देश्यों के धीमे प्रचार और विशेषकर मंडल के उद्देश्यानुसार सत्याग्रहाश्रम साबरमती में चलते हुए दुग्धालय और चर्मालय को मदद देने से अधिक कुछ इसका काम बढ नहीं सका है। जो कुछ दान तथा शुल्क मिले हैं वह भी मुख्यतः उपर्युक्त प्रयोगों में दिलचस्पी लेने वाले मित्रों की ओर से ही मिले हैं। ऐसा कहा जा सकता है कि जितना कि ख्याल था उस हिसाब से कुछ भी परिमाण में गोशालाएँ और पिंजरा पोल मंडल में शामिल नहीं हुए हैं।

"इस लिए मंडल के वर्तमान सभ्य इसे विसर्जन करते हैं और किसी प्रकार से अपने अस्तित्व को न रखते हुए गोसेवा संघ का छोटा नाम धारण करते हैं और इस संघ के निम्न लिखित स्थायी सभ्य नियत करते हैं:

"मोहनदास करमचंद गांधी (अध्यक्ष)
रेवाशंकर जगजीवन झवेरी (कोषाध्यक्ष)
जमनालाल जी बजाज
बैजनाथ जी केडिया
मणिलाल वल्लभजी कोठारी
महावीर प्रसाद पोद्दार
शिवलाल मूलचन्द शाह
परमेश्वरी प्रसाद गुप्त
दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर
छगनलाल खुशालचन्द गांधी
छगनलाल नथुभाई जोशी
नारणदास खुशालचन्द गांधी
सुरेन्द्रनाथ
चिमनलाल नरसिंहदास शाह
पन्नालाल बालाभाई झवेरी
यशवन्त महादेव पारनेरकर
वालजी गोविंदजी देसाइ (मंत्री)

"इस संघ के हाथों अपने कामकाज, व्यवस्था और धन तथा माल मिल्कियत सभी कुछ पर यह मंडल अपने अधिकार हमेशा के लिए सौंपता है। धन खर्च करने, उक्त प्रयोग चलाने, अपनी संख्या बढाने, किसी सभ्य के निकल जाने अथवा मृत्यु होने पर दूसरों को नियत करने, किसी सभ्य को बहुमति से दूर करने, दूसरी तरह से मण्डल के उद्देश्यों पर अमल करने, संघ की व्यवस्था के लिए विधान तथा नियमावलि घडने और समयानुसार उनमें फेरफार करने के सभी अधिकार इस संघ को होंगे।"

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय १६

कार्य-पद्धति

चंपारण की जाँच का वर्णन देना तो चंपारण के किसानों का इतिहास देने के समान है । इस तरह का वर्णन इन पृष्ठों में नहीं दिया जा सकता । फिर चंपारण की जाँच अहिंसा और सत्य का बड़ा प्रयोग कहलायगी । इस संबंध की जितनी बात मुझे हर हफ्ते सूझती है, मैं देता हूँ । इसकी और अधिक ब्योरेवार बातें तो पाठक को बाबू राजेन्द्रप्रसाद के लिखे इस लड़ाई के इतिहास* में ही मिलेंगी ।

अब इस प्रकरण के विषय पर लौटता हूँ । गोरख बाबू के यहाँ रहकर जाँच का काम करूँ तो गोरख बाबू को अपना घर खाली करना पड़े । लोगों में ऐसी निर्भयता अभी आयी नहीं थी कि भाड़े पर माँगते ही कोई अपना घर झट खाली कर देवे । किन्तु चतुर व्रजकिशोर बाबू ने एक मकान जिसके सामने खाली लंबा मैदान था भाड़े पर ठीक किया ही और उसमें हम लोग गये ।

ऐसी स्थिति नहीं थी कि अंत तक द्रव्य बिना चल सके । आज तक सार्वजनिक काम के लिए प्रजा से कभी कुछ माँगा नहीं गया था । व्रजकिशोर बाबू का मंडल मुख्य करके वकीलों का मंडल था । इस लिए वे लोग प्रसंग पड़ने पर अपने पास से ही खर्च कर लेते या मित्रों से कुछ माँग लेते थे । पैसे टके से सुखी लोग, स्वयं दूसरों से क्यों भीख माँगें ? उनकी यह भावना थी । मेरा यह दृढ निश्चय था कि चंपारण की रैयत से एक कौड़ी भी न लूँगा । अगर वहाँसे कुछ लिया जाय तो इसका उलटा ही अर्थ लगेगा । यह भी निश्चय था कि इस जाँच के लिए हिन्दुस्तान में सार्वजनिक चंदा नहीं किया जायगा । सारे हिन्दुस्तान से चंदा माँगने पर यह जाँच राष्ट्रीय और राजनीतिक रूप धारण करती । बंबई से मित्रों ने १५,०००) रु. तार से भेजे । उनकी मदद को साभार अस्वीकार किया । यह निश्चय किया कि चंपारण के बाहर की, मगर बिहार की ही सुखी जनता से व्रजकिशोर बाबू का मंडल जो कुछ मदद माँग ला सके उसीसे काम चलाया जाय, और जो कुछ घटे वह मैं डाक्टर प्राणजीवनदास मेहता के यहाँसे मँगा लूँ । डाक्टर मेहता ने लिखा कि "आपको जितने रुपये चाहिए, मँगा लीजिएगा ।" इस लिए द्रव्य के बारे में हम निश्चिन्त हुए । गरीबी से कम से कम खर्च पर रहकर लड़ाई करनी थी, इस लिए बहुत अधिक द्रव्य की जरूरत भी नहीं थी । सचमुच में पड़ी भी नहीं । मेरा खयाल है कि कुल मिलाकर दो या तीन हजार से अधिक खर्च नहीं हुआ था । मुझे ऐसा याद है कि जो इकट्ठा किया था, उसमें से भी ५००) या १,०००) रुपये बच गये थे ।

हमारा शुरू शुरू का रहन सहन विचित्र था, और मेरे लिए रोज के विनोद का विषय था । वकील मंडल में हर एक आदमी के पास नौकर रसोइया होते, हर एक के लिए अलग रसोई बनती और वे कभी कभी रात को बारह बजे भी खाते होते थे । ये महाशय लोग रहते तो अपने खर्च पर थे, मगर मेरे लिए तो यह रहन सहन उपद्रव रूप था । मेरे, और मेरे साथियों के बीच प्रेम की गांठ ऐसी मजबूती से बँधी थी कि हमारे बीच गलत-फहमी नहीं हो सकती थी । वे मेरे शब्दबाण प्रेम से सह लेते थे । अंत में हमने निश्चय किया कि नौकरों को तो छुट्टी दे दी जाय और सभी कोई साथ ही भोजन करें और भोजन के नियमों का पालन करें । सभी निरामिषाहारी नहीं थे । और दो रसोड़े चलाने में खर्च बढ़ता, इस लिए निरामिष भोजन ही बनाने और एक ही रसोड़ा चलाने का निश्चय हुआ । भोजन भी सादा ही रखने का आग्रह था । इस लिए खर्च में बहुत कमी हुई । काम करने की शक्ति बढ़ी और समय बचा ।

और अधिक शक्ति की बहुत जरूरत थी । क्योंकि किसानों के टोल पर टोल अपनी कहानी लिखाने को आने लगे । बयान लिखानेवाले के पीछे लश्कर तो होती ही । इस लिए मकान का मैदान भर जाता । मुझे दर्शनाभिलाषियों से बचाने के लिए साथी बहुत प्रयत्न करते, और वे निष्फल जाते थे । खास खास समयों पर दर्शन देने के लिए मुझे बाहर निकालने पर ही जान छूटे । बयान लिखनेवालों की संख्या भी बराबर पाँच पाँच सात सात रहे, मगर तौभी दिन के अंत में सबके बयान न लिखे जा सकते थे इतनी अधिक बातों की जरूरत नहीं होती, मगर तौभी बयान लेने से लोगों को संतोष होता और मुझे उनकी भावना का पता मिल जाता था ।

बयान लिखनेवालों को कई नियमों का पालन करना पड़ता था । उन्हें हर एक लिखानेवाले से जिरह करनी चाहिए और जिरह में जो टूट जाय, उसका बयान नहीं लेना चाहिए । जिसकी बात मूल में ही बेजड़ की जान पड़े, वह नहीं लिखनी चाहिए । यों नियमों की पाबंदी से गोकि समय कुछ ज्यादह लगता था, मगर तौभी बयान तो ऐसे मिलते थे जिनमें अधिकांश सच्चे सिद्ध किये जा सकते थे ।

ये बयान लिखते समय खुफिया पुलिस के कोई न कोई अफसर तो हाजिर होते ही । इन अफसरों को चाहते तो हम रोक सकते थे, किन्तु हम लोगों ने मूल से ही निश्चय किया था कि इन अफसरों को आने से रोकना नहीं चाहिए और इतना ही नहीं बल्कि उनके साथ विनय का बरताव करना और जो दे सकें, वे खबरें देनी चाहिए । इससे लाभ यह हुआ कि लोगों में अधिक निर्भयता आयी । खुफिया पुलिस से लोगों को जो बहुत डर रहता था, वह गया और अगर उनके सामने बयान लिये जायँ तो उन में अतिशयोक्ति का डर बहुत कम रहता है । इस डर से कि झूठ बोलने पर ये लोग हमें फँसा लेंगे, उन्हें बहुत सावधानी से बोलना पड़ता था । मुझे नीलवरों को खिझाना नहीं था, किन्तु उन्हें प्रेम से जीतने का प्रयत्न करना था । इस लिए जिनके विरुद्ध विशेष फिर्याद होती, उन्हें पत्र लिखता, और उनसे मिलने की भी कोशिश करता था । नीलवर मंडल से भी मैंने भेंट की थी, और उनकी बातें भी सुन ली थीं । उनमें से कितने एक मेरा तिरस्कार करते, कितने उदासीन थे, और कोई विनय भी दिखलाते थे ।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

*इस पुस्तक का नाम 'चंपारण में महात्मा गांधी' है और यह सवा दो रुपयों में 'देश' कार्यालय, पटना-बांकीपुर, पटना (बिहार) से शायद मिल सकेगी ।

समझौता हो गया

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)॥

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ५१

मुद्रक-प्रकाशक मोहनलाल मगनलाल भट्ट | अहमदाबाद, द्वितीय श्रावण वदी ८ संवत् १९८४ गुरुवार, ९ अगस्त, १९२८ ई० | मुद्रणस्थान--नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

बारडोली-समाचार

बारडोली में गांधीजी

पिछले बुधवार की रात को गांधी जी श्री वल्लभभाई का तार पा कर बारडोली गये। उस दिन आश्रम की सायं प्रार्थना में गांधी जी ने कहा था कि "मैं गोकि वल्लभभाई का बडा भाई हूँ, मगर इस समय तो उनकी सेना का एक अदना सिपाही हूँ। मैं बारडोली में कुछ नेता बन कर नहीं, बल्कि सेनापति की आज्ञा पा कर सैनिक के नियम-पालन का खयाल रख कर जा रहा हूँ। इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। सार्वजनिक जीवन में तो पुत्र भी पिता का सरदार बन सकता है, मैं तो महज बडा भाई भर ही गिना जाता हूँ। इसीलिए तो कृष्ण भगवान भी अर्जुन के सारथि बने थे। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उन्होंने सबके चरण पखारे थे।" बारडोली पहुँचने पर भी उन्होंने यही भाव रक्खा। लोग गांधी जी को कई गांवों में बुला कर दिखलाना चाहते थे। मगर उन्होंने साफ कह दिया कि "मुझे वल्लभभाई की आज्ञा के बिना कहीं नहीं जाना है। वे जहां भेजेंगे, जाऊँगा, जहां नहीं भेजेंगे वहां नहीं जाऊँगा।" श्री वल्लभभाई की ही इच्छा से उन्होंने दो तीन गांवों में जा कर वहांकी हालत देखी।

दूर दूर से किसानों के झुंड पानी हेलते हुए गांधी जी के पास पहुँचे। उन्होंने कहा, "हमने वल्लभभाई को अपनी जान सौंपी है, नाक नहीं।" गांधी जी ने हँस कर जवाब दिया, "क्यों, वल्लभभाई के भी तो नाक है न? उनके हाथों ऐसा काम नहीं होगा, जिससे तुम्हारा सिर झुके। मगर अभी तो तुम्हारी सच्ची कसौटी बाकी ही है। तुम जब अंतिम आंच सह लोगे, तब तुम्हारी जीत निश्चित होगी। मगर यह तो कहो, अगर वल्लभभाई पकड लिये गये तो तुम क्या डर नहीं जाओगे?" उनमें से एक ने दृढता-पूर्वक जवाब दिया, "जी नहीं। वल्लभभाई ने हमपर पानी चढा कर, हमें फौलाद सा कडा बना दिया है। हम तो बस यही जानते हैं कि चाहे कुछ भी हो जाय, हमें अपने वचन से डिगना नहीं है।"

पूने में श्री वल्लभभाई

इसी बीच श्री वल्लभभाई के नाम पूने से श्री दादूभाई देसाई का तार आया कि, "आपसे धारासभा के गुजराती सभ्य पूना आने की प्रार्थना करते हैं। सर चुनीलाल आपको अपने यहाँ ठहराना चाहते हैं।" श्री वल्लभभाई को पूना और बंबई का इतना धर्मधक्का सहना पडा है कि इसबार उधर जाने का उनका जरा भी मन नहीं होता था। मगर जिसमें उनकी अश्रद्धा या आलस से होता हुआ समझौता टूट न जाय इस लिए वे पूने गये। कितनों को यह शंका होती रही कि सर चुनीलाल के ही घर पर कहीं श्री वल्लभभाई गिरफ्तार न किये जायँ। एक इसीसे लोगों की आशाओं और आशंकाओं का पता चलता है। असहयोग की बदौलत हमारे सार्वजनिक जीवन में इतनी निठास तो आ ही गयी है कि सर चुनीलाल के भी घर में श्री वल्लभभाई जैसे 'बलवाई' की गिरफ्तार की संभवना हो! लौटते समय स्टेशन पर विद्यार्थियों और स्थानिक महासभा के सभ्यों की भीड तो थी ही।

जाँच

इस लडाई का परिणाम और दूसरा चाहे जो कुछ हो मगर इसमें तो कोई शक ही नहीं है कि प्रजा के लिए दूसरा रास्ता बंद है। और प्रजा सरकार से यह बात कुबूल कराने के लिए लड रही है कि कोई बंदोबस्त अफसर (सेट्लमेन्ट अफसर) ही लोगों का भाग्य-विधाता नहीं हो सकता। उसके ऊपर भी कोई विचारक चाहिए ही। ठेठ सन् १८७३ में ही शासन-विभाग और न्याय विभाग को अलग अलग करने का आन्दोलन शुरू हो गया था। उस समय एक मुकद्दमे में अपील करने पर हाईकोर्ट ने सेट्लमेन्ट अफसर का बंदोबस्त रद्द कर दिया था। फिर से इसके बाद बंबई सरकार ने एक कानून बना कर के न्यायालयों से बंदोबस्त अफसरों के फैसलों पर अपील सुनने का अधिकार ही छीन लिया और इस तरह किसी बंदोबस्त अफसर की भूलों से अपनी रक्षा कराने, अपील करने का प्रजा को कोई अधिकार ही नहीं रह गया।

(यं० इं०) महादेव देशाई

बहिष्कार या असहकार

एक मित्र लिखते हैं:

"आपके कथन का यह तात्पर्य मैं समझ लेता हूँ कि समाज वृद्ध-बाल-विवाह करनेवाले का बहिष्कार करे। किन्तु इसका अनर्थ होना संभव है। बहिष्कार का सीधा और सादा अर्थ तो लोग ऐसा करेंगे कि बहिष्कृत के साथ खानापीना बंद किया जाय और उसकी संतान और उसके कुटुंब के साथ कोई विवाह-संबंध न करे, और करे तो उसका भी बहिष्कार हो। अब आप ही कहिए कि विवाह करनेवाले की संतान को, उसके कुटुंब को क्यों कर दंड दिया जा सकता है? इस लिए आप जैसा कि चाहते हैं, हम वैसा ही सुधार कर रहे हैं और व्यक्तिगत असहकार का प्रचार करते हैं। आप कृपा कर यह भेद स्पष्ट कर दीजिए। जिसमें किसी कारण से भी मेरा बतलाया बहिष्कार न किया जाय।"

आज कल जब कि लोगों के मन में अशान्ति, हिंसा और अधर्य भरे हैं तब अच्छी से भी अच्छी वस्तु का भी दुरुपयोग होता है। ऐसे समय में हम बहिष्कार शब्द लिखें या असहकार, दोनों के पहले व्यक्तिगत या सामुदायिक विशेषण लगावें या न लगावें, मगर हर हालत में उसका अनर्थ तो होगा ही। इस लिए हम प्रत्येक वस्तु की मर्यादा सूचित कर देवें और अमल करने में उस मर्यादा का पालन करें और संतोष मानें। व्यक्तिगत बहिष्कार या असहकार में भी हिंसा की गंध भी नहीं होनी चाहिए। जो वृद्ध-बाल-विवाह करे उसका भी तिरस्कार करने को मैं नहीं कहता। वह तो दयापात्र है। मनुष्य को जब कामरूपी शत्रु घेर लेता है, तब अवस्था का भान भूल जाता है। पवित्र से भी पवित्र संबंध नष्ट हो जाता है। यह नशा मद्यपान से भी अधिक बुरा है। इस लिए हम खास अपनी निर्बलता, अपनी भूलों का विचार करके भी विषयासक्त वृद्ध पुरुष पर तरस खावें। किन्तु उसकी दया खाना और उसके साथ सहकार करना दो अलग अलग वस्तुएँ हैं। सच्ची दया में अंध प्रेम को स्थान नहीं है। इस लिए जिसने भूल की है, उसने समाज का अपराध किया है। उसे इस भूल का भान कराना अत्यावश्यक है। यह ज्ञान या तो गुनहगार को दंड देकर कराया जा सकता है अथवा समाज ने अमुक शर्तों के साथ उसे जो अधिकार दिये थे, उन्हें छीन कर करा सकता है। अधिकार ले लेने और दंड देने में भेद है। किसी आदमी को ईमान्दार समझ कर मैं उसे अपना प्रतिनिधि बनाऊँ और वह बेईमान साबित हो तो उससे वह हक छीन लूँ तो यह एक बात है, और उसे शारीरिक दंड दूँ, या उसका घरबार लूट लूँ या सरकार में जा कर फरियाद कर उसे दंड दिलाऊँ—यह दूसरी ही बात है। और जो मैं खुद उसीको दंड न दूँ, न दिलवाऊँ तो उसके कुटुम्बी जनों की तो बात ही दूर है। सच पूछो तो असहकार या बहिष्कार में जब दंड अथवा हिंसा दाखिल हो जाती है, तब वह प्रचंड प्रभावशाली अस्त्र नहीं रहता क्योंकि दंड देनेवाला खुद ही अपराधी के समान बन जाता है और अपराधी स्वयं अपने अपराध का प्रायश्चित्त पूरा हुआ मान कर, अपने किये कृत्य के संबन्ध में अधिक दृढ बनता है और प्रसंग आने पर वैसा ही करने को फिर तैयार हो जाता है। और ऐसे ही कारणों से आज तक दंडनीति अथवा हिंसा से पाप अथवा गुनाह का होना बन्द नहीं हुआ है और इसीलिए मैंने अपने सभी लेखों में कहा है कि सुधारक को शुद्ध, मर्यादाशील होना चाहिए और उसके प्रत्येक काम में अहिंसा अथवा प्रेम होना चाहिए। मेरे सुझाये बहिष्कार का यह अर्थ हुआ कि बहिष्कृत से हम कोई सेवा न लेवें। खुद असुविधा उठावें, और उसे जो विशेष अधिकार दिये हों, वे छीन लेवें। किन्तु अब जब उसकी सेवा करने का प्रसंग आवे, तब तब उसकी सेवा जरूर करें। इस तरह बहिष्कृत आदमी बिरादरी के भोजन में नहीं आ सकता। उसे अध्यापक बनाया हो तो यह पद उससे हम ले लेवें, वह अध्यापक हो और हम अगर उसके नीचे पढते हों तो न पढें। वह हमारा भाडेदार हो तो भाडेदार नहीं रह सकता है, मगर बीमार हो तो हमारी सेवा ले सकता है। वह बिना कारण ही भूखों मरता हो तो हम उसकी भूख मिटावें। ये तो मैंने महज दृष्टान्त के रूप में गिनाये। थोडे में बात यह है कि हम अमूर्च्छित स्थिति में विचार कर के जो अपने बारे में न पसंद करें, वह दूसरे किसी के बारे में न चाहें, न करें।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचन्द गांधी**

हिन्दुस्तान के दारिद्र्य का प्रश्न

२.

२. क्या हिन्दुस्तान पिछले २५ वर्षों में गरीब हुआ है?

पिछले लेख में मैंने लोगों की औसत आमदनी और द्योतक संख्याओं के जरिए यह दिखलाने की कोशिश की थी कि हिन्दुस्तान पहले से अब गरीब है। मगर इन संख्याओं के मूल में ही कुछ कठिनाइयाँ हैं। इस लिए अगर किसी दूसरी पद्धति से भी इस प्रश्न पर विचार किया जाय तो और भी अच्छा होगा।

यह कहने का मानी कि गत ४० या ५० वर्ष पहले से आज हिन्दुस्तान गरीब है, यह नहीं है कि हिन्दुस्तानियों की औसत आमदनी रुपयों में घटी है, या उनके पास रुपये कम हो गये हैं, बल्कि यह है कि आर्थिक दृष्टि से जीवन-संग्राम अब कठिन हो गया है। इससे जान पडता है कि देश में जीवन के लिए जितनी आवश्यक वस्तुएँ आज सुलभ हैं, उनके हिसाब से आबादी कहीं अधिक है।

फिर यह सवाल भी आंकडों से नहीं हल किया जा सकता कि किसी देश की जन-संख्या बहुत अधिक है। मगर हमारे पास अगर सब कुछ देखते हुए ऐसे कई कारण हों, जो यही बात दिखलाते हों तो हम एक साधारण निर्णय कर सकते हैं। इस लिए अगर हम देख सकें कि हिन्दुस्तान में जितनी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उनकी अपेक्षा आदमी अधिक हैं तो औसत आमदनीवाला परिणाम बहुत कुछ सही माना जायगा।

माल्थुस साहेब का निकाला एक साधारण नियम यह है कि किसी देश में खाद्य-सामग्री की उत्पत्ति में जितनी वृद्धि किसी खास काल में होती है, उससे कहीं अधिक वृद्धि जन-संख्या में उसी काल में होती है। यह नियम अब तक गलत नहीं सिद्ध किया जा सका है। हमें इससे कोई मतलब नहीं है कि आबादी किस वेग से बढती है और खाद्य-सामग्री की उत्पत्ति किस वेग से। इतना खुलासा है कि जब तक जन-संख्या में वृद्धि को रोकने के लिए कुछ खास कारण न हों, एक दिन आबादी जरूरत से अधिक हो ही जायगी। इस आपत्ति से बचने के प्रसिद्ध तरीके हैं एक ओर ब्रह्मचर्य और कृत्रिम उपायों से संतति-निरोध और दूसरी ओर खाद्य-सामग्री की उत्पत्ति में वृद्धि के वेग को बढाने के उपाय। अगर लोग ऐसे कोई उपाय काम में न लावें तो लाचार प्रकृति को अपने उपायों से काम लेना पडता है। प्रकृति तभी दस्तंदाजी करती है, जब कि स्थिति बहुत ही गंभीर हो गयी हो। अधिकांश आदमियों को भर पेट भी खाना न मिलता हो। मगर चाहे जब कभी प्रकृति का हस्तक्षेप हो, न तो उसका ढंग ही और न परिणाम ही इष्ट हो सकते हैं।

पद्धति इसलिए इष्ट नहीं है कि वह अकाल या रोगों का रूप धारण करती है। परिणाम भी इसीलिए अनिष्ट है कि रोग का मूल तो जाता नहीं है। महामारियों या अकालों के जरिए भले ही फाजिल आबादी भर दूर हो जाय, मगर बचे हुए लोगों को भी तो महज किसी तरह सिर्फ पेट भरने तक को ही मिल पाता है। फिर उनकी संख्या बढती है और फिर प्रकृति को हस्तक्षेप करना पडता है यानी समय समय पर बारंबार अकालों और महामारियों का आगमन शुरू हो जाता है और इनके साथ जो महाकष्ट होते हैं, उनका तो पूछना ही क्या!

अब किसी देश में अगर हम यह हालत यानी आबादी की वृद्धि में ऐसे स्वाभाविक रोक, देखें तो केवल एक यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इस देश में अधिकांश लोग बहुत कष्ट से पेट भर पाते हैं या आधे ही पेट खा कर रहते हैं और प्रकृति को समय समय पर आबादी घटा कर, जितने मुँह उतने भोजन का हिसाब ठीक करना पडता है। फिर अगर बहुत दिनों का हिसाब देख कर हम पावें कि ऐसी घटनाओं की संख्या बढती ही जाती है तो यह निष्कर्ष और भी पक्का हो जायगा कि जितने मुँह होते हैं उस हिसाब से भोजन घटता जाता है, यानी देश दिनों दिन अधिक गरीब बनता जाता है। अब आइए इस दृष्टि से हम इस प्रश्न पर विचार करें।

ब्रिटिश भारत में आबादी की वृद्धि में रोक

निम्न लिखित आंकडों से जान पडता है कि किस काल में कितने आदमी किन मुख्य मुख्य कारणों से मरेः

काल	मृत्यु का कारण	संख्या (लाखों में)
सन् १८७१-१९२१ (५० वर्ष)	अकाल	२,८८
,, १८९६-१९२१ (२५ वर्ष)	प्लेग	१,००
,, १९०१-१९२१ (२० वर्ष)	मलेरिया	१,८३
,, १९१८-१९१९ (९ मास)	इन्फ्लुएँजा (युद्धज्वर)	१,३३

अकाल से होनेवाली मौतों में अधिकांश तो सन् १९०० के पहले हुई थीं। प्लेग से होनेवाली मौतों में अधिकांश सन् १९११ के पहले हुई थीं। मलेरिया से सन् १९०१-१९११ तक ८६ लाख मरे थे, जब कि सन् १९११-१९२१ तक में ९७ लाख मरे।

यों हम देखते हैं कि जब कि १९वीं शताब्दि के पिछले भाग में आबादी की वृद्धि को रोकने के मुख्य कारण ये अकाल और प्लेग, तो इस शताब्दि में उससे भी अधिक जानें ली हैं प्लेग, मलेरिया और युद्धज्वर ने। और न सिर्फ इन कारणों से मृत्यु-संख्या में बढती ही होती गयी है, बल्कि यह भी ध्यान देने लायक है कि इधर हाल में जो कारण हुए हैं, वे पहले से कहीं अधिक मारक हुए हैं, बल्कि सब से अधिक जबर्दस्त कारण तो सिर्फ ९ महीनों में ही १ करोड ३३ लाख को मारनेवाली बीमारी इन्फ्लुएंजा रही है।

इन रोकों के परिणाम स्वरूप ऊपर की संख्याओं से भी ज्यादह आबादी घटी है। एक ओर ये मृत्यु-संख्या बढाती हैं तो दूसरी ओर जन्म-संख्या घटाती हैं। क्योंकि बहुत आदमियों के मरने बाद कुछ लोग बच रहते हैं। मगर बचे हुए लोगों की उत्पादिका शक्ति बहुत घट जाती है। इस प्रकार जन्म-संख्या घटती है। जिन लोगों ने मलेरिया से पीडित आदमियों की निर्बलता देखी है, उनके आगे यह साबित करने की जरूरत नहीं है कि रोगों के कारण लोगों की जीवनी-शक्ति कितनी घट जाती है।

मगर निम्न लिखित आंकडे दिखलाते हैं कि आबादी की वृद्धि को रोकने के इतने सबल कारण होते हुए भी आबादी बढती पर ही है। मगर इसमें भी यह देखने लायक है कि जिस दशाब्दि में आबादी बहुत बढ जाती है, उसके बाद के दश वर्षों में किसी न किसी महामारी या अकाल का ऐसा प्रकोप होता है कि वृद्धि में बहुत कुछ कमी हो जाती है।

(जन-संख्या—१० लाखों में)

वर्ष	ब्रिटिश भारत	देशी राज्य	कुल
१८७१	१९०	५०	२४१
१८८१	१९९	५५	२५४
१८९१	२२१	६६	२८७
१९०१	२३१	६३	२९४
१९११	२४४	७१	३१५
१९२१	२४७	७२	३१९

जन-संख्या में इस वृद्धि के साथ साथ क्या इसी अनुपात में खाद्य-सामग्री तथा जीवन की और आवश्यकताओं की उत्पत्ति भी बढी है? यही मुख्य सवाल है। विश्वसनीय आंकडे नहीं मिलते हैं, इसलिए हमें इस सवाल के सामान्य पहलुओं पर ही नजर दौडा कर संतोष करना होगा। मुख्य खाद्य-द्रव्यों की खेती का हिसाब देखने पर यह जान पडता है कि चावल और गहूँ की खेती अब पहले से अधिक एकडों में होती है, मगर एकडों में जितनी वृद्धि हुई है, उतनी वृद्धि तो इनकी कुल उपज में नहीं हुई है। इससे यही बात सिद्ध होती है कि खेती में वृद्धि करने से अब उतना लाभ नहीं होता है, जितना कि पहले के हिसाब से होना चाहिए था यानी हम उस सीमा पर पहुँच गये हैं, जिसके बाद क्रमागत ह्रास का नियम काम करता है।

सारे देश में खेतों का दिनों दिन छोटे छोटे टुकडों में बँटते जाना यही सिद्ध करता है कि अधिक लोगों को खेती पर ही निर्भर रहना पडता है जब कि जमीन में या उसकी उपज में उसी अनुपात से वृद्धि नहीं हो रही है।

यह बात कि अब दिनों दिन लोग अधिक लगान देकर भी खेत जोतना चाहते हैं, यह नहीं सिद्ध करती है कि अब पहले से समृद्धि अधिक है, बल्कि यही बतलाती है कि खेत कम हैं, और लेनेवाले अधिक, जिससे लोगों में चढा ऊपरी बहुत अधिक हो गयी है। और दूसरा धंधा पास में न होने के कारण जो ही आधे पेट खा कर भी खेती से गुजर हो सकेगा, उसीके लिए लोग मरे जाते हैं। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है कि खेती पर निर्भर लोगों का सामान्य जन-संख्या से अनुपात दिनों दिन बढता ही जाता है। नीचे के आंकडे देखिए:

वर्ष	सौ में कितने आदमी केवल खेती पर ही निर्भर थे
१८९१	६१.१
१९०१	६६.५
१९११	७२.२७
१९२१	७२.७८

बाकी लोगों को मर्दुम-शुमारी में दूसरे साधनों पर निर्भर बतलाया गया है। मगर कुछ और ब्योरेवार विचार करने पर जान पडता है कि उनमें से भी अधिकांश आदमी बहुत कुछ खेती पर ही निर्भर हैं। और यों हम निःसंकोच कह सकते हैं कि फी सदी ८५ आदमी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खेती पर ही निर्भर हैं।

दिनों दिन आबादी की बढती को रोकने के प्राकृतिक उपायों के बढते जाने से, और मुख्य धंधा खेती में यह हालत होने से कि अधिकाधिक लोग खेती पर ही निर्भर होते जाते हैं, खेतों के इतने छोटे छोटे टुकडे होने लगे हैं कि उनमें खेती करने से कोई

लाभ नहीं होता और क्रमागत ह्रास का नियम काम करने लगा है, यही बात सिद्ध होती है कि हमारा यह निष्कर्ष कि हिन्दुस्तान पहले से अब गरीब है बहुत कुछ सही है। (क्रमशः)

(यं. इं.) अध्यापक सी. एन. वकील

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, द्वितीय श्रावण वदी ८ संवत् १९८४

समझौता हो गया

यह सच्ची खुशी की बात है कि बारडोली सत्याग्रह में आखिर समझौता हो ही गया। अंत भले का ही भला होता है। मैं सरकार को, बारडोली और वालोड के निवासियों को और श्रीयुत वल्लभभाई को, जिनकी दृढता और नम्रता के बिना यह समझौता ही असंभव होता, बधाई देता हूँ। पाठक देखेंगे कि सत्याग्रहियों की प्रायः सभी माँगें स्वीकार कर ली गयी हैं। जाँच समिति को उन सभी प्रश्नों पर विचार करने का अधिकार दिया गया है, जिनकी चाहना हम कर सकते थे। हां, यह सच है कि लोगों से कर वसूल करने के लिए सरकार की ओर से जो तरह तरह के दबाव डाले गये थे, उनकी शिकायतों की जाँच नहीं होगी। मगर यह देखते हुए कि जब्त की गयी जमीनें लौटायी जा रही हैं, तलाटियों और पटेलों को उनकी नौकरी फिर से दी जा रही है और दूसरी छोटी छोटी बातों का भी खयाल रक्खा जा रहा है, श्री वल्लभभाई ने यह शर्त्त उठा लेने में उदारता दिखलायी है। उन गडे मुर्दों को न उखाडना ही अच्छा है, जिनके लिए, जो क्षति-पूर्ति अभी की जा रही है, उसके अलावा और कोई इलाज नहीं है। सरकारी दबावों की जाँच का दावा उठा लेने के कारण, यह जाँच ज्यादह शान्त वातावरण में हो सकेगी।

मगर सत्याग्रही लोग तो जीत के बाद कानों में तेल डाल कर सो न रहें। उन्हें तो लगान बंदोबस्ती के बारे में अपनी शिकायतें सच्ची साबित करने के लिए सुबूत इकट्ठे कर के तैयार करने हैं।

और सबसे बडी बात तो यह है कि उन्हें अगर अपना संगठन पक्का करना है तो दुगुने जोरों से रचनात्मक काम करना होगा। इस कठिन, धीमे और शान्त काम को करने की इच्छा और योग्यता में ही उनकी शक्ति घुसी हुई है। उन्हें कई एक सामाजिक कुरीतियाँ दूर करनी हैं। चर्खे पर ध्यान देकर अपनी आर्थिक स्थिति उन्हें सुधारनी ही होगी। उनमें इस जागृति को लानेवाला चर्खा ही है। शराबखोरी की शिकायत तो दूर करनी ही होगी। गांवों की सफाई पर भी उन्हें ध्यान देना होगा और हर गांव में एक सुव्यवस्थित पाठशाला खोलनी होगी। ऊँची जाति के कहे जानेवालों को दलित और नीच कही जानेवाली जातियों से मित्राचार करना ही होगा। इन बातों पर वे जितना ही अधिक ध्यान देंगे, इस जैसी कठिनाइयों का सामने वे उतनी ही ज्यादह अच्छी तरह कर सकने की शक्ति प्राप्त करेंगे।

श्रीयुत वल्लभभाई के अधीन काम करने का सौभाग्य जिन स्वयंसेवकों को मिला था, उनकी निष्ठा और नियम-पालन की जितनी प्रशंसा की जाय, कम ही है। अभी उनका काम खत्म नहीं हो गया है। जो समय निकाल सकें, उन्हें रचनात्मक कार्य में सरदार की मदद जरूर करनी ही होगी।

(यं० इं०) मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणियाँ

मरहूम जस्टिस अमीरअली

सन् १९०६-१९१४ के लंबे सत्याग्रह-संग्राम में बहुत कुछ सहायता करनेवाले मरहूम जस्टिस अमीरअली के परिवार के साथ उनकी मृत्यु पर मैं अपनी ससम्मान समवेदना प्रकट करता हूँ।

द० अफ्रिका की माफी-योजना

अखबार छपते समय मुझे 'इंडियन ओपीनियन' की एक प्रति मिली है जिसमें माफी-योजना संबंधी पूरी खबरें दी हुई हैं। अभी तो मुझे उस फारम की नकल (तर्जुमा) भर ही देने का समय है, जिसे (अँगरेजी में) भर कर डिपार्टमेन्ट आफ इन्टीरियर (इमिग्रेशन ऐन्ड एशियाटिक अफेयर्स) को इतना पहले भेज देना चाहिए जिसमें वह १ ली अक्तूबर के पहले मिल जाय।

नाम .... हिंदुस्तान में व्यवहार का नाम....................... पता (दक्षिण अफ्रिका के यूनियनवाला) .... पेशा.....................

१. रजिस्ट्री सर्टिफिकेट, डोमीसाइल सर्टिफिकेट या दरख्वास्त करनेवाले को और कोई जो सर्टिफिकेट मिला हो...............

२. जन्म का मौजे और देश.......................................

३. बाप का नाम.......................................

४. दक्षिण अफ्रिका के यूनियन में पहले पहल प्रवेश करने की तारीख.......................................

५. अगर विवाहित हो तो पत्नी का नाम और हाल पता.......

....

६. संतान (अगर कोई हो).......................................

माता	संतान का नाम	लडका या लडकी	कहां पैदा हुआ	उम्र	हाल पता
...	...	...	...	...	...
...	...	...	...	...	...
...	...	...	...	...	...

मैं......................................नियमानुसार सावधान कर दिये जाने बाद, यहां सच्चे दिल से इजहार करता हूँ कि मुझे इन सवालों का तर्जुमा...........................भाषा में समझा दिया गया है और मैं इजहार करता हूँ कि इन सवालों को मैंने ठीक ठीक समझा है और उनका सचाई से जवाब दिया है।

दस्तखत (अँगरेजी लिपि में या अँगूठे का निशान)......

पूरा पता.......................................

मैंने ये सवाल समझाये हैं.......................................

हस्ताक्षर.......................................

मेरे सामने.................................स्थान पर ....मास की...............तारीख को इजहार किया।

दरख्वास्त करनेवाले के अँगूठे का निशान.......................

बाँया.........................दहना.......................

.......................मैजिस्ट्रेट या इमिग्रेशन अफ़सर जैसे कि हलफ लिवाने का अधिकार है।

जो दक्षिण अफ्रिका लौट जाने को उत्सुक हों, वे लोग अपनी अपनी दरख्वास्तें समय रहते हुए रवाना कर देवें। मैं अगले हफ्ते और कागजात और खबरें छापने की आशा रखता हूँ।

(यं. इं.) मो० क० गांधी

[अभ]ाव रुई का है या उद्यम का

[...] विहार में एक जिला मानभूम है । उसी जिले के कुसुंडा ग्राम के [...]-सम्मेलन के मंत्री लिखते हैं:

"अत्यंत ही खेद के साथ कहना पडता है कि सिर्फ रुई के [अभा]व से हमें यहां पर चर्खा बंद करना पडता है । मुजफ्फरपुर [...] झरिया में खादीभंडार हैं, मगर वहांसे पूनी नहीं मिलती । [इसलि]ए हमें कई हफ्तों से चर्खा बंद करना पडा है। 'नवजीवन' में [कृप]ा करके लिख दीजिए की विहार में पूनी कहां मिलती है ।"

[...] यह पत्र लिखनेवाले भाई गुजराती हैं । ये विहार के बालकों [के] जीवन में और खादी में जो दिलचस्पी लेते हैं, उसके लिए मैं [उन्हें] धन्यवाद देता हूँ । किन्तु इनके यह लिखने से मुझे दुःख [होत]ा है कि पूनी या रुई के अभाव से चर्खा बंद करना पडता [है] । जिसमें चर्खों का प्रबंध करने की शक्ति है, वह रुई तो चाहे [जहां]से पैदा कर ले सकता है, और पूनियाँ तो बाहर से मँगाने की [ज़रूरत] ही नहीं हैं । मैंने 'नवजीवन' में कई बार लिखा है कि [जिसे] रुई धुननी और पूनी बनानी नहीं आती है, उसे कातनेवाला [कह]ना ही नहीं चाहिए। रोटी बनानेवाले को आटा गूँद कर रोटी [बेल]नी और सेकनी आवे, तभी वह रोटी बनानी जाननेवाला कहा जा [सक]ता है । इसी तरह जो रुई धुनकर, पूनी बनाकर कातना जानता [है], वही कातना जाननेवाला कहा जायगा । ये तीनों चीजें, सच [पूछ]ो तो एक ही क्रिया हैं । पूनी को अगर हम मोटा से मोटा [सू]त कहें तौभी शायद अयोग्य नहीं कहा जायगा । धुनने की क्रिया [सह]ज और सुंदर है। इसे सीखने में देर नहीं लगती है । इसलिए [इस] पत्र के लेखक को मेरा जवाब यह है कि विहार प्रान्त में [पूनि]याँ कसुंडा गांव में ही मिलनी चाहिए और चर्खों को जो बंद [कर]ना पडा है, वह रुई के अभाव से नहीं, बल्कि उद्यम के अभाव [से] और इस उद्यम के अभाव में मैं तो चर्खे के प्रति सच्चे प्रेम का [अभ]ाव भी देख रहा हूँ । मैं आशा रखता हूँ कि जहां जहां यज्ञार्थ [चर्]खें चलते हैं, वहां वहां कातनेवाले शीघ्रता से धुनना और पूनी [ब]नानी सीख लेंगे ।

(नवजीवन) मो० क० गांधी

रेशम के बारे में

'नवजीवन' के किसी पिछले अंक में मैंने रेशम के त्याग के [बा]रे में हिन्दू स्मृतिकारों के वचन दिये थे । उसके साथ अनुमान [भी] किया था कि हमारे यहां चीन देश से ही रेशम आता होगा, [औ]र इस लिए शुरुआत में लोगों को पता न होगा कि रेशम कीडे [से] तैयार होता है, और इसी लिए उन्होंने रेशम का निषेध पहले [...] नहीं किया है । मगर इस अनुमान का समर्थन करना अब मुश्किल [मा]न पडता है । पाणिनि के सूत्रों में कीडों के कोश में से तैयार [हो]नेवाले रेशम (कौशेय) का उल्लेख है । और पाणिनि के समय [में] चीन देश से हमारा व्यापार चलता होना मानने के काफी कारण [न]हीं हैं । और बौद्ध-ग्रंथ विनय पिटक में तो ऐसी बात है कि [बौ]द्ध संघ के कई प्रमादी भिक्षुक नर्म बिस्तर बिछाने के लिए [रे]शम बनानेवालों के पास से रेशम के कीडों के कोये (कोश) [मां]गते थे । इस लिए बुद्ध भगवान् ने नियम किया कि कोशों का [बि]स्तर कभी नहीं करना चाहिए । अगर कोशों को उबाल कर [रे]शम बनाया जाता तो बौद्ध भिक्षु ऐसे कोश कभी लेते ही नहीं । [इ]स लिए मेरे स्नेही श्री धर्मानंद कोसंबी यह अनुमान करते हैं कि [उ]स समय कोशों में से कीडों के उड जाने बाद ही रेशम तैयार [कि]या जाता होगा । आज भी बंगाल में कोशों में से कीडों के [उ]ड जाने बाद तैयार किया गया रेशम मिलता है । उसे 'केटे' [क]हते हैं । वहांके चुस्त वैष्णव पूजा में हिंसा-शून्य केटे ही बिछाना ज्यादह पसंद करते हैं । मैंने यह टिप्पणी महज यही बतलाने के लिए लिखी है कि मेरे लगाये अनुमान के पीछे काफी ऐतिहासिक प्रमाण नहीं हैं । किन्तु यह बात तो निर्विवाद ही है कि स्मृतिकारों ने संन्यासियों के आगे रेशम के उपयोग के प्रति अपनी अरुचि जाहिर की है ।

(नवजीवन) द० बा० कालेलकर

मगनकाका

[इस शीर्षक से प्रभुदास गांधी ने स्व० मगनलाल गांधी के जीवन की उम्दा, विस्तीर्ण और तौभी बहुत छोटी सी जीवनी लिखी है । उसमें सत्य है, भाषा पर काबू है, और सत्य तथा सरल भाषा का मेल हुआ है । अतः इस वृत्तांत के कला की दृष्टि से भी शोभन होने की संभावना है । ऐसा मेरा मन्तव्य है । स्व० मगनलाल गांधी के जीवन में से भी सबोंको बहुत कुछ सीखने को मिलता है और उनका जीवन 'जैसा कहना वैसा करना' का नमूना था । इसीसे यह वृत्तांत गुजरातियों (हिन्दुस्तानियों) को अवश्य लाभप्रद होगा । यह समझ कर उसे यहाँ स्थान दिया गया है ।

मो० क० गांधी]

१

सब पाठकों के वे कुछ चाचा नहीं थे, फिर भी मैं मानता हूँ कि मैं इस लेख में 'मगनलालभाई' शब्द के बजाय 'मगनकाका' शब्द का प्रयोग करूँ तो इसमें कुछ अविनय नहीं समझा जायगा ।

'मधपूडा' (आश्रम के विद्यार्थियों का हस्तलिखित मासिक पत्र) के श्रद्धांजलि अंक के लिए कुछ लिख देने का तकाजा हुआ था। यह नहीं सूझा कि तुरत ही क्या लिख डालूँ । 'मधपूडे' में 'फिनिक्स की बातें' और 'उग्र शासन मगनकाका' आदि विषयों पर एक दो मर्तबा लिखा था । तब तो मेरे मन में निर्भयता थी कि लिखावट में जहां कहीं अतिशयोक्ति या अयोग्यता होगी वहां मगनकाका स्वयं विनोद करते हुए मुझसे वे भूलें सुधरवा लेंगे। किन्तु अब वे मेरी लिखावट सुनाने पर भी सुननेवाले नहीं हैं, छोटी छोटी गलतियाँ सुधारनेवाले नहीं है । इस स्थिति में उनके सम्बन्ध में क्यों कर कुछ लिखा जाय?

इच्छा तो यह होती है कि मगनकाका की क्रमागत जीवनी लिखूँ परन्तु बात यह है कि उसके लिए आवश्यक साधन नहीं हैं और लिखने की हिम्मत भी नहीं पडती । 'नवजीवन' में महादेवभाई ने संक्षेप में जो जीवन दिया है वही इतना सुन्दर और सम्पूर्ण है कि अब ज्यादे लिखने की कोई जरूरत प्रतीत नहीं होती ।

लेकिन मुझे भी तो कुछ श्रद्धांजलि चढानी चाहिए । मगनकाका ने अपनी कडी और जाग्रत निगरानी के नीचे मुझे पाला है । हाथ कैसे धोना, चाकू कहां से पकडना, दँतुवन कैसे करना, कुल्ला कैसे करना और इकाई दहाई कैसे बोलना — यह सब व्यावहारिक ज्ञान दिया । दूसरी ओर शरीर मन और बर्ताव से बिलकुल शुद्ध रहने के लिए क्या करना चाहिए, राष्ट्रीय जीवन में राष्ट्रीय शिक्षा की बुनियाद की आवश्यकता का भान, और सच्चे राष्ट्रीय शिक्षण में उद्योग की प्राण प्रतिष्ठा करने की आवश्यकता और उसकी रीति का ज्ञान, नये नये मनुष्यों के परिचय में आने पर उनकी सेवा की जिम्मेवारी और आवश्यक अवलोकन, चारों ओर की चहल पहल से हैरत में न आते हुए जब कभी एकान्त मिल जाय तब गीता, उपनिषद्, संध्या वगैरह में गहरे उतरने की विधि — यह तमाम शिक्षा वे मुझे आजतक देते ही रहे थे ।

मेरे लिए उनकी स्मृति यही है कि उनकी बातें व उपदेश जितने हाथ लगें उतने एकत्र कर के उनके प्यारे विद्यार्थी भाई बहिनों के आगे ला धरूँ ।

सिखानेवालों की यह आदत तो होती ही है लेकिन मगन काका में यह आदत विशेष रूप से थी कि जब कभी मौका मिलता वे सुनने वालों के सामने अपने बाल्य जीवन की बातें और अनुभव बडे प्रेम से ला रखते थे । उनकी इन आदतों का फायदा उठा कर मैं उन बातों को ऐसे क्रम से रखने की कोशिश करूँगा कि जिसमें मगन काका की आत्म कथा हमें संक्षेप में मिल जाय ।

बचपन की बातें करते हुए वे कहते थे: "मैं तो भारी तूफानी लडका था । घर में सब कोई मुझ से डरते थे । माता पिता को मैंने आराम नहीं लेने दिया । पिताजी की नौकरी इन्सपेक्टर (फौजदार) की थी । राजकोट में उनका रहना ही नहीं होता था । सरधार कुवाडवा में उनका तबादला होता ही रहता था । जब पिताजी घर में नहीं होते तब तो माताजी को यहां तक परेशान करता कि माता जी पिताजी से कहतीं: 'इस मगन को साथ ले जाइए । मैं सबको सँभालूँगी पर इस मगन का सँभालना मुझ से नहीं बनेगा ।' मेरे तूफान भी वैसे ही थे । नये जूते मिले नहीं कि दूसरे रोज गँवाना ही है । छाता मिला कि गया ही समझो । नये कपडे कुछ मैले हुए कि हाथ से फाड डालता ताकि दूसरे नये मिल सकें । एक मर्तबा पिताजी ने नये बिस्तरे और तकिये बनवाये । मेरे हाथ में नया चाकू आ गया । बिस्तरों पर ही चाकू की तेजी आजमायी गयी । हर एक नये से नये बिस्तरे व तकिये को चीरा । और फिर हाथ जोड माताजी, बडे भाई, बहिन सबों के पैरों पड कर प्रार्थना करता फिरा कि पिताजी को यह बात मत कहना क्योंकि पिताजी से मैं बहुत डरता था । वे जब गुस्से में आते तो मुझे खूब पीटते थे । मैंने बडे होने पर बच्चों को पीटा है किन्तु बचपन में मार खाने में कोई कसर नहीं रक्खी है । जब पिताजी कुपित होते तब तो माता जी भी उन्हें शान्त नहीं कर सकती थीं । पुत्र को पीटे जाते देख माता जी कोने में खडी खडी आँसू बहातीं और पछताती कि मैंने 'क्यों कुछ कहा ?' एक मर्तबा पिताजी बाहर देहात में गये हुए थे । बडे भाई के साथ मदरसा (पाठशाला) जाने को माता जी ने कहा । बडे भाई तो सीधे, सादे और नियमित पाठशाला जानेवाले थे । किन्तु मुझे पाठशाला का नाम तक पसन्द नहीं था । मैं तो भाग खडा हुआ । बडे भाई में इतनी ताकत कहां थी कि मुझे पकड लें । थोडी दूर तो मेरे पीछे पडे लेकिन बाद में माता जी से जाकर कहने लगे कि मगन तो भाग निकला । माता जी ने पुरुषोत्तम को भेजा । पुरुषोत्तम घर का पुराना खैर ख्वाह नौकर था । जंगी और बडा हुशियार था । सयाना भी वैसा ही था । वह मेरे पीछे पडा । मैं आगे सीधे मुंह भागता चला । गांव के बाहर पीपल का एक बडा वृक्ष आया । मैं उसपर चढ गया । पुरुषोत्तम भी वृक्ष पर चढा । मैं पतली डाली पर जा बैठा । वह भी वहां आया तब तो मैं सब से ऊँची डाली पर जा पहुँचा । पुरुषोत्तम वहां चढ ही नहीं सकता था । आधे घन्टे तक उसने मुझे पकडने की कोशिश की और मैं ऊपर बैठे बैठे उसके मुँह पर पीपल के गोंदे (फल) फेंक कर मारता रहा । आखिर वह थक गया और घर लौट गया । मैं भी थोडी देर में नीचे उतरा और घर गया । बडे भाई पाठशाला को चले गये थे और माताजी ने फिर मुझसे कुछ नहीं कहा ।"

"पाठशाला से यहां तक घबराता था कि स्वयं बुखार बुलाने की भी कोशिश करता । यदि बुखार चढ आवे तो कोई घर में से पाठशाला जाने को न कहे । किन्तु मेरा शरीर भी इतना कसा हुआ था कि किसी भी उपाय से बुखार आता ही नहीं था । एक मर्तबा दही खाया, कच्चे आम जितने खाये जा सके उतने खाये, ठण्डे पानी में खूब नहाया और फिर धूप में घण्टों तक बैठा रहा, फिर भी बुखार तो नहीं ही आया । और पाठशाला की झन्झट से दो दिनों के लिए भी छुट्टी न मिली । इसके पहले एक मर्तबा ऐसा मौका पडा कि मैं भाग न जाऊँ इसलिए मेरे भोजन करते समय ही मास्टर साहब आ धमके । मैंने आराम से भोजन किया । पट्टी व दफतर तैयार किये और मास्टर के हाथ सौंप कर मैं पेशाब करने को गया और वहां से चहार दिवारी लांघ कर नौ दो ग्यारह हो गया ।"

इस माफिक पाठशाला से भागते फिरने पर भी मगनकाका को सीखने का बेहद प्रेम था । कुछ देखने या करने को मिलता तो वे कोई मौका हाथ से जाने ही नहीं देते और खेल कसरत के लिए तो उनका एक मित्र मंडल ही जम गया था । आखिर तक मगनकाका का खेल कसरत और साहस की तरफ इतना प्रेम था कि कोई लडका या नौजवान अगर आश्रम में आकर खूब तूफान मचाता हो, मगनकाका को शान्ति से बैठने नहीं देता हो, तब भी यदि वह सच्चा खिलाडी हो तो मगनकाका से अपने तमाम गुनाह माफ करवा ही लेता ।

ऐसे एक भाई के विषय में उन्होंने कहा था: "किन्तु इसके विषय में मुझे कुछ चिन्ता नहीं है । इस मनुष्य में क्षत्रीत्व भरा है, इसके तमाम कामों में और बातों में शहूर भरा है । इसलिए मुझे इसके प्रति खूब आदर है । इसके खून में ऐसी झनझनाहट है जो जवान के लोहू को शोभाप्रद हो । यह अनुभव होने पर शान्त होगा ही । यही कारण है कि यदि यह आश्रम के नियमों से भिन्न बर्ताव रक्खे और अपनी टुकडी अलग तय्यार करे तो उसमें आश्रम को कुछ हानि होने की संभावना नहीं है । मेरी इच्छा है कि हमारे यहाँ ऐसे युवक एकत्र हों । कायर प्रमादी और बातों से काम में हर्ज करनेवालों से ही मैं घबराता हूँ । सारे देश के लडकों में क्षत्रीत्व और खिलाडीपना जब आवेगा तभी कहीं देश का तेज चमकेगा ।"

इसका खयाल कि यह कहनेवाले मगनकाका बचपन में कैसे खिलाडी रहे होंगे और दूसरों से न दबने में कितने बहादुर होंगे, उनकी निम्न लिखित बातों से आता है ।

"पिताजी के साथ मैं देहात में गया हुआ था । इसकी शर्त हुई कि देखें कौन ज्यादह मिर्चें खा जाता है । मिर्चें भी कौन तो लवंगी थे । एक के बाद दूसरा, २० मिर्चें चबा गया । मुँह में तो मानों आग सुलग रही थी किन्तु कोई हारने वाला थोडा ही था । मुँह से सिसकारी तक नहीं की । आँखों से पानी बहता था । दो घण्टे बाद पिताजी डेरे पर आये । तब तक आँखें सूज गयी थीं, असह्य कष्ट हो रहा था । इस घटना के बाद पिताजी के साथ देहात में मेरा जाना बन्द हो गया, और राजकोट में जब पिताजी न हों तब तो मानों घर में मैं राजा ही था ।

"पिताजी थे इन्सपेक्टर, इससे घरमें घोडे तो रहते ही थे । दो एक तमंचे भी रखते थे । उन सबोंका उपयोग मैं ठीक ठीक करता था । घोडा जितना ही बदमाश होता, उसपर सवारी करने में मुझे उतना ही अधिक आनन्द आता था । दो एक मर्तबा घोडे पर से गिरा भी तो अच्छी तरह से । फिर भी घोडे की सवारी कौन छोडनेवाला था । घरमें माता जी और दूसरों को मेरे घोडे पर घूमने जाने का भय बना ही रहता था । उस वक्त मुझे आजादी से घोडों की सवारी की अनुकूलता मिल गयी होती तो मैं आज बहुत हुशियार घुड सवार हुआ होता ।

"दिवाली पर सब कोई पटाखे फोडते थे, मुझे छोटे पटाखे फोडना पसन्द आता ही नहीं था, मेरे लिए तो बडे पटाखे चाहिए ।

अलावा बाजार से बारूद ला उसे पीस कर पोटाश बनाता फोडता । सारा घर उसकी आवाज से धमधमा उठता और के म्युनिसिपल चिराग गुल हो जाते । बडे पटाखे से मुझे ोष नहीं हुआ तो मैंने पिताजी का तमंचा ढूंढ निकाला और बारूद भर कर आवाज की । तमंचा चलाना मालूम तो था इस लिए हाथ ऊँचा रक्खा । आवाज होते ही मेरे कन्धे पर से तमंचे का धक्का लगा । मैं उस समय तो डरा । लेकिन तो चाँद मारी सीखता था ।

"मैं,——भाई,——सबके सब कसरत बाज जवान थे । हाईस्कूल ऊँचा कूदने में और लम्बा कूदने में, कबड्डी खेलने में और दूसरी रतों में शाम के दो घण्टे तक शरीर बनाते थे और फिर वहां सीधे अहीर टोले में पहुँच कर ताजा दुहा हुआ दूध लोटा भर चढा जाते थे । तब तो दूध भी इतना सस्ता था कि दो पैसे दूध से लोटा भर जाता था । इससे हमारे शरीर लोहे के समान मजबूत बने थे । आज कल के विद्यार्थियों के अस्थिचर्मावशेष शरीर जब तब देखता हूँ मेरे दिल में विचार हुआ ही करता है कि के लिए नियमित कसरत व ताजे दूध की व्यवस्था कैसे कर । उस जमाने में मेरा शरीर इतना मजबूत न गठा होता तो ज मुझे कई एक काम छोड देने पडते ।

खेल का अंत ही नहीं आता था । पतंग के दिनों में तो डोर मांझा मलने, उसकी डोर सुलझाने में ही दिन बीतता । इन मों के पीछे न दिन सूझता था न रात, न खाने का ठिकाना न ने का । उसकी डोर दुरुस्त करने में घण्टे व्यतीत हो जाते थे । नाई सीखने में वह अनुभव खूब काम आया । बचपन में वे ल न खेले होते तो आज बुनाई की बारीक बारीक उलझनों से हैरान हो जाता । मेरा पतंग का शौक तो इतना था कि पतंग डती हुई बाँध कर रात को सो जाता था । एक समय हम सब ादनी में छत पर सोये हुए थे और मैं गाढी नींद में से जाग र पतंग पकडने दौडा । उसी समय यदि पिताजी ने जागृत होकर मुझे कठहरे पर से पकड न लिया होता तो मेरी हड्डियाँ टूट ही ातीं । हम लुक्का छिप्पी खूब खेलते और वह साधारण खेल नहीं होता ा । एक आदमी पर दाव चढता तो वह घण्टों तक नहीं उतरता । र की ड्योढी में खेल होता । पैर से जरा सी भी आवाज नहीं ोती थी और सांस भी एक दम साध कर लेते थे । अन्धा ढता ही रहता था । ड्योढी में से हम छत पर चढ जाते थे । ाख में पट्टी होते हुए भी वह अन्धा छत पर चढता और हमारे ूद पडने पर वह भी कूद पडता था । यह खेल खतर नाक अवश्य था लेकिन हमें कोई नुकसान नहीं पहुँचा । इसमें से भी बहुत सीखने को मिला ।"

यह तो मगनकाका के बचपन के खिलवाड की बात हुई । लेकिन जब वे बडे हुए तब भी फिनिक्स में इतवार का सारा मध्याह्न खेल में ही गुजरता । इमली पिपली (जिसे उत्तर में डोलपाती कहते हैं) के खेल में उनके खेलने की चतुराई का मुझे पूरा पूरा ख्याल है । झूले को भी पेंग मार कर चढाने में भी वे ऐसे ही चतुर थे । मुझे तो यह लगता था कि चाचा अभी आकाश में से मुट्ठी भर आकाश तोड लायेंगे । आश्रम में भी किसी अनिवार्य कार्य को छोड कर इतना कार्य होते हुए भी कभी विद्यार्थियों के खेल के आमंत्रण को उन्होंने अस्वीकार नहीं किया । जब खेलने आते तब ढीले ढाले लडकों को भी खेल का रंग चढाने के लिए वे यथाशक्ति प्रयत्न किया ही करते थे ।

(नवजीवन) प्रभुदास गांधी

साबंतवाडी में सूतकताई

२

पिछले अप्रिल महीने में लडकों का एक चर्खा दंगल और लडकियों की तकली प्रतियोगिता की गयी थीं । नीचे के एक घंटे के काते सूत के आकडों से जान पडेगा कि लडकों ने प्रशंसनीय काम कर दिखलाया था:

जीतनेवाला लडका	उम्र	गज	अंक	मजबूती
प्रथम	२०	४८०	१८॥	५०
द्वितीय	११	३८५	१८	५०
तृतीय	६	४८५	९।	३५

सबसे छोटे लडके ने काता तो सबसे तेज मगर अंक और मजबूती के आंकडे बहुत कम आगये जिससे उसका स्थान बहुत नीचे आया । तकुवे पर से सूत उतारने के लिए अलग समय दिया गया ।

लडकियों में से भी आठ वर्ष की एक लडकी ने तकली पर छै ही हफ्ते के अभ्यास के बाद एक घंटे में १३४ गज कात दिखलाया । दूसरी भी और पाँच लडकियों ने १०० गज से अधिक काता और उन सब में इतना काम फर्क या कि दूसरा इनाम सब में बाँट देना पडा ।

मजदूरी के लिए कातना

खैर, मगर गरीबों की सेवा के रूप में हम कोई विशेष काम नहीं कर सके हैं । कठिनाई यह है कि इस गांव में कर्घों को ही बदौलत कोई सौ आदमियों को तीस दिनों का काम मिला हुआ है और फुरसत की घडियों में दर्जनों दूसरों को । मगर इन बुनाई घरों में अछूतों का प्रवेश मना है । इसलिए उन्हें हम काम दे सके हैं । हम अछूत लडकों को बाजार भाव से कुछ अधिक यानी फी पाँचसौ गज की आँटी के लिए आध आना देते हैं । इसके अलावा जो और परिश्रम कर के रुई धुनते हैं, उन्हें एक रतल अच्छी पूनियों की धुनाई और बुनाई के दो आने दिये जाते हैं । इधर मलेरिया ज्वर का बहुत प्रकोप रहने के कारण पिछले कई हफ्तों से सभी काम बन्द है क्योंकि सभी अछूत लडके बीमार हैं । ऊँची जाति के भी कुछ लोग मजदूरी के लिए कातते हैं, मगर इनमें अछूतों के समान नियमितता नहीं है ।

मध्यम वर्ग में कताई

मध्यम वर्ग में हमने घर-खर्च की खादी के लिए कातने का आदर्श रक्खा है । २० परिवारों ने काता भी है । सात परिवारों के लिए १६० गज खादी बुनी जा चुकी है और ७ का और सूत आया है । हम इनसे आधी बुनाई यानी १८ गज के ताने के लायक काफी सूत लाने पर १६० तार की फी बीसी पर १½ पाई या ½ पैसा के दर से बुनाई लेते हैं ।

उच्च वर्ग में कताई

शुरू शुरू में ही रेवेन्यू मेंबर साहेब ने अपने घर में दो चर्खे चलवाने शुरू किये । गांधीजी ने श्रीमती महारानी साहिबा को एक सुंदर पेटी चर्खा भेंट किया । मगर उसके पहले ही उन्होंने हम से एक मामूली चर्खा खरीद कर हमारे प्रतिनिधि से कातना सीख लिया था । इसके बाद तो फिर बहुतों ने चलाना शुरू किया । आजकल रियासत के तीन सरदारों और कई ऊँचे अफसरों के यहां चर्खे चल रहे हैं और चर्खालय में उनके सूत नियमित रूप से आते हैं ।

पहला वार्षिक प्रदर्शन

मुख्यतः महाराजा साहेब, राज्य के अफसरों और इसमें सहानुभूति रखनेवाले लोगों को अपने कामों का कुछ खयाल देने के लिए ही गत १ली मई को चर्खालय की ओर से एक खादी

प्रदर्शन किया गया था। उसे महाराजा साहेब ने खोला था। उनके भाषण में से यह अंश देने लायक है:

"मि० पटवर्धन और उनके सहकारियों को, उनके शान्त, अखंड, लगनवाले, और नियमित काम पर हमें उनको बधाई देनी चाहिए। अगर दूसरी संस्थाओं के संचालक भी इनका अनुकरण करें तो फिर हमें आज खुलने और कल्ह बंद होनेवाली संस्थाओं का दुःखद दृश्य न देखना पडे। हम आशा रक्खें कि श्री पटवर्धन के त्याग, सचाई और कार्य-पद्धति से राज्य के दूसरे नागरिक भी लाभ उठावेंगे।

(यं. इं.)

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय १७

मेरे साथी

व्रजकिशोर बाबू और राजेन्द्र बाबू की तो अद्वितीय जोडी थी। उन्होंने अपने प्रेम से मुझे ऐसा अपंग बना डाला था कि मैं उनके बिना एक पग भी नहीं चल सकता था। उनके शिष्य कहो या साथी, ऐसे शंभु बाबू, अनुग्रह बाबू, धरणी बाबू और रामनवमी बाबू थे। ये वकील लगभग हमेशे साथ ही रहते थे। विन्ध्या बाबू और जनकधारी बाबू भी समय समय पर रहते थे। यह तो हुआ विहारी संघ। उनका मुख्य काम था लोगों के बयान लिखना।

अध्यापक कृपलानी से भला इसमें शामिल हुए बिना कब रहा जाता? खुद सिंधी होते हुए भी वे विहारियों से भी अधिक विहारी थे। ऐसे थोडे ही सेवकों को मैंने देखा है जो जिस प्रान्त में जायँ, उसी प्रान्त में मिल जाने की उनकी शक्ति हो, वे किसीको मालूम भी न होने देवें कि ये दूसरे प्रान्त के हैं। इनमें कृपलानी एक हैं। उनका मुख्य धंधा द्वारपाल का था। इस समय उन्होंने दर्शन करनेवालों से मुझे बचाने में ही जिंदगी की सार्थकता मान ली थी। मेरे पास आने से वे किसीको विनोद से रोकते तो किसीको अहिंसक धमकी से रोकते थे। रात होने पर अध्यापक का धंधा शुरु करें और सबको हँसावें और अगर कोई डरपोंक आदमी पहुँच जाय तो उसे शूर बनावें।

मौलाना मजहर-उल हक ने मेरे मददगार के रूप में अपना हक लिखा लिया था; और महीने में वे एक दो बार चक्कर लगा जाते थे। उस समय के उनके ठाट बाट और दमाम में तथा आज की उनकी सादगी के बीच जमीन आसमान का अंतर है। हममें आकर वे अपना हृदय हमें दे जाते, मगर बाहर के आदमियों को तो अपनी साहिबी के कारण हम से अलग ही जान पडते थे।

जैसे जैसे मुझे अनुभव मिलता गया, वैसे वैसे मुझे लगा कि चंपारण में अगर ठीक ठीक काम करना हो तो गांवों में शिक्षा का प्रवेश होना चाहिए। लोगों का अज्ञान दयाजनक था। गांवों में लडके मारे मारे फिरते थे। जो हो दो तीन पैसे मिल जायँ उसीके लिए मावाप उनसे दिन दिन भर नील के खेतों में काम कराते थे। उस समय पुरुषों की मजदूरी दिन में दश पैसे से अधिक नहीं थी, स्त्रियों की छै पैसे और बालकों की तीन। जिसे चार आने की मजदूरी मिल जाय वह तो भाग्य-शाली गिना जाता था।

साथियों के साथ विचार करके पहले तो छै गांवों में बालकों के लिए पाठशालाएँ खोलने का निश्चय हुआ। शर्त यह थी कि गांव के अगुआ लोग मकान देवें और शिक्षकों को भोजन देवें। बाकी खर्च का प्रबंध हम लोग खुद ही कर लेंगे। यहां के गांवों में धन की अधिकता तो थी नहीं, परन्तु लोग अन्न दे सकते थे और इस लिए लोगों ने कच्चा अन्न देना स्वीकार किया।

अब यह महा-प्रश्न उठा कि शिक्षक कहांसे लाये जायँ? बिहार में ऐसे शिक्षक मिलने मुश्किल थे जो कम वेतन लें या कुछ भी न लेवें। मेरी कल्पना यह थी कि सामान्य शिक्षकों के हाथ में बालकों को कभी न देना चाहिए। शिक्षक को पुस्तकी ज्ञान भले ही कम हो, मगर उनमें चारित्रबल चाहिए।

इस काम के लिए स्वयंसेवकों की मैंने सार्वजनिक माँग की। उसके जवाब में गंगाधर राव देशपांडे ने बाबासाहेब सोमण और पुन्डरीक को भेजा। बंबई से अवंतिका बाई गोखले आयीं। दक्षिण से आनन्दी बाई आयीं। मैंने छोटेलाल, सुरेन्द्रनाथ और अपने लडके देवदास को बुला लिया। इसी अर्से में मुझे महादेव देसाई और नरहरि परीख मिल गये थे। महादेव देशाई की पत्नी दुर्गा बहिन और नरहरि परीख की पत्नी मणी बहिन भी आयीं। कस्तूर बाई को भी मैंने बुला लिया था। इतने शिक्षकों और शिक्षिकाओं का संघ काफी था। श्री अवंतिका बाई और आनंदी बाई तो पढी लिखी गिनी जायँगी, किन्तु मणिबहिन परीख और दुर्गाबहिन देशाई को गुजराती का थोडा सा ही ज्ञान था। कस्तूरबाई को तो नहीं के बराबर ही। ये बहिनें हिन्दी बालकों को किस तरह पढावें?

दलीलें करके मैंने बहिनों को समझाया कि उन्हें तो लडकों को व्याकरण नहीं परन्तु रहन सहन सिखलाना है, पढने लिखने के बदले उन्हें स्वच्छता के नियम सिखलाने हैं। यह भी बतलाया कि हिन्दी, गुजराती, मराठी के बीच बहुत भेद नहीं है। और फिर पहले वर्ग में गिनती ही सिखलायी जा सकती है, इस लिए मुश्किल पडेगी ही नहीं। परिणाम यह आया कि बहिनों का वर्ग खूब अच्छे तौर पर चला। बहिनों को आत्मविश्वास आया और उन्हें अपने काम में रस भी मिला। श्री अवंतिका बाई की शाला आदर्श शाला बनी। उन्होंने अपनी शाला में जीजान लगा दी। उन्हें ज्ञान भी बहुत था। इन बहिनों के जरिए गांवों के स्त्री वर्ग में भी प्रवेश हो सका था।

किन्तु मुझे शिक्षा पर ही जाकर रुक न जाना था। गांवों में गंदगी का पार न था। हालत यह थी कि गलियों में कूडा करकट होता, कुँओं के पास होता कांदो, कीचड और बदबू, और आंगनों में तो पैर न डाला जाय। बडों को स्वच्छता की शिक्षा की जरूरत थी। चंपारण के लोग रोगों से पीडित दिखलाते थे। वृत्ति यह थी कि जहां तक हो सके सुधार का काम किया जाय और इस तरह लोगों के जीवन के हर एक विभाग में प्रवेश किया जाय। इस काम में डाक्टर की मदद की जरूर थी। इस लिए मैंने गोखले की समाज से डाक्टर देव को माँगा। उनके साथ मेरी स्नेहगांठ तो बँधी थी ही। छै मास के लिए उनकी सेवाओं का लाभ मिला। उनकी देखरेख के नीचे शिक्षकों और शिक्षिकाओं को काम करना था।

सब के साथ यह समझ थी कि कोई नीलवरों के खिलाफ मुआमला न चलावे, राजनीति के फेर में न पडे, फिरयादं करनेवालों को मेरे पास भेज देवे। किसी को अपने क्षेत्र को बाहर एक पग भी नहीं जाना चाहिए। चंपारण के इन साथियों का नियम पालन अद्भुत था। ऐसा प्रसंग मुझे याद नहीं आता है, जब कि किसीने मेरी दी हुई सूचनाओं का उल्लंघन किया हो।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

'निर्बल के बल राम'

वार्षिक मूल्य ४)
छः मास का „ २)
एक प्रति का „ -)।

हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ७] [अंक ५२

मुद्रक–प्रकाशक मोहनलाल मगनलाल भट्ट | अहमदाबाद, द्वितीय श्रावण सुदी १ संवत् १९८४ गुरुवार, १६ अगस्त, १९२८ ई० | मुद्रणस्थान–नवजीवन मुद्रणालय सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ५

अध्याय १८

ग्राम प्रवेश

बहुत करके हर एक शाला में एक स्त्री और एक पुरुष को रखने की व्यवस्था की गयी थी। उन्हीं के द्वारा दवा और सुधार के काम कराने थे। स्त्रियों की मार्फत स्त्री वर्ग में प्रवेश करना था। दवा का काम बहुत सहज कर रक्खा था। हर एक पाठशाला में केवल तीन ही दवाएँ रक्खी जाती थीं — क्निनाइन, एरेंडी का तेल, और घाव का एक तरह का मलहम। जीभ देखने पर मैली जान पडे और कब्ज की शिकायत हो तो एरंडी का तेल पिला दिया जाता। ज्वर की शिकायत हो तो तेल पिला कर क्निनाइन खिलायी जाता और किसी किस्म का जख्म होने पर उसे धोकर मलहम लगा दिया जाता और ऊपर से पट्टी बांध दी जाती। शायद ही किसीको खाने की दवा या मलहम घर ले जाने के लिए दिया जाता। अगर कभी कोई खतरनाक या न समझ में आने लायक रोग दिखलायी पडता, तो डाक्टर देव को दिखलाने के लिए दवा मुल्तबी रहती। डाक्टर देव निश्चित तारीख को जुदा जुदा स्थानों पर घूम आते थे। ऐसी सादी सुविधा का लाभ लोग पूरा पूरा लेते थे। अगर यह बात ध्यान में रक्खी जाय कि व्यापक रोग थोडे से ही हैं और उनके लिए बडे भारी डाक्टर की जरूरत नहीं है तो यह ऊपर दी गयी योजना किसीको हास्य–जनक नहीं लगेगी। लोगों को तो नहीं ही लगी।

सुधार का काम कठिन था। लोग गंदगी दूर करने को तैयार न थे। जो खुद खेतों में रोज मजदूरी करते थे, वे भी अपने हाथों मैला साफ करने को तैयार न थे। इधर डाक्टर देव भी सहज ही हार माननेवाले न थे। खुद डाक्टर देव और स्वयंसेवकों ने अपने आप ही एक गांव का रास्ता साफ किया, लोगों के आंगनों में में से कूडा निकाला, कुँए के आसपास के गढ्ढे भरे, कीचड निकाला और गांव के आदमियों को स्वयंसेवक देने के लिए प्रेम-पूर्वक समझाते रहे। कितनी जगह लोगों ने शर्म के मारे काम करना शुरु किया और कितनी जगह तो लोगों ने मेरी मोटर के जाने के लिए अपनी मिहनत से सडकें भी तैयार कर दीं। ऐसे मीठे अनुभवों के साथ ही लोगों की लापर्वाई के कडवे अनुभव भी मिलते थे। मुझे याद है कि सुधार की बातें सुन कर कितनी जगह लोगों को बुरा भी लगा।

इन अनुभवों के बीच एक खास अनुभव का वर्णन यहां करना अनुचित नहीं होगा। इसका वर्णन मैंने स्त्रियों की अनेकों सभाओं में किया है। भितहरवा एक छोटा सा गांव है। उसके पडोस में एक गांव उससे भी छोटा है। वहां कितनी एक बहिनों के कपडे बहुत ही मैले जान पडे। मैंने इन बहिनों को कपडा धोने, बदलने की बात समझाने का काम कस्तूरबाई को सौंपा। इनमें से एक बहिन उन्हें अपनी झोंपडी में ले गयी और बोली, "देख लो यहां कुछ झांपी (एक तरह का गोल बकस) पिटारा (पेटी) नहीं है कि जिसमें कपडा धरा हो। मेरे पास तो यही एक साडी है जिसे मैं पहने हुए हूँ। भला, इसे मैं कैसे धोऊँ? महात्माजी से कहो कि वे मुझे कपडा दिलावें। तब मैं रोज नहाने और कपडा बदलने को तैयार होऊँगी।" ऐसे झोंपडे हिन्दुस्तान में अपवाद रूप नहीं हैं। असंख्य झोंपडों में ठाटबाट, झांपी पिटारा, कपडालत्ता नहीं होते और असंख्य आदमी केवल उन्हीं कपडों पर निर्वाह करते हैं जो उनके बदन पर होते हैं।

एक और अनुभव लिखने लायक है। चंपारण में बांस और घास का टोटा नहीं था। लोगों ने भितहरवा में पाठशाला का जो छप्पर बनाया था, वह बांस और घास का ही था। किसीने उसे रात को जला डाला। शक तो आसपास के नीलवरों के आदमियों पर गया। फिर से बांस और घास का मकान बनाना योग्य न जँचा। यह पाठशाला श्री बाबासाहेब सोमण और कस्तूरबाई के अधीन था। सोमण ने ईंटों का पक्का मकान बनाने का निश्चय किया और उनके अपने आप काम करने की छूत दूसरों को भी लगी और इसलिए बात की बात में ईंटों का मकान बन कर खडा हो गया और तब से मकान के जलने का भय न रहा।

इस प्रकार पाठशाला, सुधार और दवा के कामों से स्वयंसेवकों के बारे में लोगों के मन में विश्वास और आदर बढे, और उनपर अच्छा असर पडा।

किन्तु मुझे खेद के साथ यह बतलाना चाहिए कि इस काम को स्थायी करनेकी मेरी मुराद बर न आयी। जो स्वयंसेवक मिले थे वे खास मुद्दत के लिए ही मिले थे। दूसरे नये स्वयंसेवकों मिलने में मुश्किल पडी और बिहार में से इसकाम के लिए योग्य तथा स्थायी स्वयंसेवक न मिल सके। चंपारण का काम खत्म होते ही

मेरे सिर भी दूसरा काम आगया जो इस बीच तैयार हो रहा था। ऐसा होने पर भी, सिर्फ छै महीनों के काम ने भी इतनी जड पकडी कि एक नहीं तो दूसरे स्वरूप में उसका असर आज तक चला ही जा रहा है।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

यंत्रों का उपयोग

स्व० मगनलाल ने मुझे बहुत से प्रजोपयोगी पत्र लिखे थे। किन्तु अपने स्वभावानुसार मैंने उन्हें फाड डाला। मैंने यह सोचा ही नहीं था कि मुझसे पहले उन्हींको मरना होगा। किन्तु मरने के कोई १५ दिन पहले का लिखा हुआ एक पत्र अब तक बचा रह गया है। उसका उपयोगी भाग नीचे देता हूँ:

"बंबई में पारनेरकर भाई के साथ गोशाला के लिए और उसके संबंध में खेती के लिए कितने एक सामान खरीदने के वास्ते घूमना पडा। इसमें यंत्रों के व्यापारियों की बहुत सी पेढियां देखीं। सुना कि ये लोग इस साल के अंत में अहमदाबाद में कृषि-प्रदर्शन करनेवाले हैं और उसके लिए तैयारी कर रहे हैं। सुना जाता है कि पूने में जो कृषि-प्रदर्शन हुआ था, उसमें बहुत से सांचे और यांत्रिक औजार बिके थे। इस बार पिछले चौमासे के कारण लोगों के हाथ खाली हो गये हैं और अब उससे भी अधिक खाली होना संभव है। इस बारे में बहुत ही शक है कि लोगों की जरूरतें इन औजारों के व्यापारी समझते होंगे। जैसे कि हमें आदमी के चलाने के लिए तीन तरह की पत्थर की चक्कियां दिखलायी गयीं। ऐसा जरा भी न लगा कि इनके बेंचनेवाले यह कहते हुए कि ये तीनों चक्कियां मनुष्य-शक्ति से चल सकती हैं, जरा भी विचार करते होंगे। इन्होंने कभी देशी चक्की चलायी नहीं होगी। इन्हें इसका कुछ पता तो होगा नहीं कि वह कैसा काम होता है, कितना प्रमाण आता है, और उसे चलाने में कितनी शक्ति चाहिए। अगर उन्होंने इसका अभ्यास किया होता कि उसमें घटी बढी करने के लिए मूल चक्की में क्या क्या सुभीते हैं और क्या क्या त्रुटियां हैं, तो वे समझ सकते कि ये नयी चक्कियाँ हिन्दुस्तान में लाने लायक हैं वा नहीं। किन्तु ऐसा कुछ तो था नहीं। उन्हें न तो देश में प्राचीन काल से काम में आती हुई वस्तु का अनुभव है और न है नयी बनी यांत्रिक चीज का अनुभव। और दूकानों में या प्रदर्शनों में इन वस्तुओं को खपानेवाले ऐसे ही व्यापारी या एजेन्ट होते हैं। और ऐसा दिखलायी पडता है कि मानों सरकार भी ये प्रदर्शन ऐसी ऐसी चीजों की खपत के लिए ही सजाती हो। जहां ऐसी परिस्थिति है, वहां प्रजा इन प्रदर्शनों का बहिष्कार करे तभी अच्छा है।

"सरकार की नीति की एक दूसरी बात भी जानने लायक है। जो यंत्र मनुष्य-बल से अथवा बैल से चल सकते हैं उनकी आमदनी पर सैकडे १५ या उससे भी अधिक चुंगी लगती है और जो भाप, तेल या कोयले से चलाने के लिए हैं उन पर ५ फी सैकडे से अधिक चुंगी नहीं ली जाती है। इस नीति में प्रजा पर दुहरी मार पडती है। भाप वगैरह से चलनेवाले यंत्रों पर चुंगी का बोझा हलका करने से विदेशी कारखानेवालों की खपत हो सकती है। और मनुष्य तथा बैल से चल सकनेवाले यंत्रों का बोझा भारी करने से वे लोगों के हाथ में कम जायँगे और संभवतः वे स्वाश्रयी बनने से रुक कर, बडे यंत्र-वालों के एजेन्ट बन सकते हैं। यह विचित्र बात लगती है कि इस तरह की नीति के विरुद्ध कोई पुकार नहीं हुई है।"

वे दोनों टीकाएँ विचार करने लायक हैं। चाहे जिस प्रदर्शन में कूद पडने की आवश्यकता हमें नहीं होनी चाहिए। प्रदर्शन में आनेवाली प्रत्येक चीज के बारे में ज्ञान और विवेकबुद्धि होने पर ही लोग प्रदर्शन का सदुपयोग करेंगे। यह हिसाब कौन लगा सकता है कि हमारे अनेकों घरेलू यंत्रों के पूरे अनुभव के बिना ही उनका त्याग करने से हमारा कितना नुकसान हुआ है? जैसे कि यह कहना बेहूदा गिना जायगा कि पुराना सभी कुछ अच्छा ही था, उसी तरह यह कहना भी बहुत बुरा है कि पुराना सभी कुछ बेकार है। यंत्र का विरोध कोई नहीं करता। विरोध यंत्र के दुरुपयोग का, अति उपयोग का है। चेतनमय शक्ति से चलनेवाले यंत्रों पर सैकडे १५ चुंगी और जड शक्ति से चलनेवाले यंत्रों पर सैकडे ५ चुंगी का होना मुझे तो मालूम था ही नहीं, बहुत से पाठकों को भी न होगा। किन्तु इस भेद के ज्ञान से आश्चर्य नहीं होता है। क्योंकि जब मैंने सरकार के हर एक काम में भेदनीति देखी, तभी मुझे असहयोग सूझा।

(नवजीवन) **मोहनदास करमचंद गांधी**

मगनकाका

२

बाल्य काल में मगन काका ने संगीत सीखने का भी काफी प्रयत्न किया था। "आज तुम्हें संगीत सीखने की जो सुविधा प्राप्त है, यह मुझे मिली होती तो मैंने कुछ न कुछ सीख ही लिया होता। दूसरा कुछ न मिलने से हम नाटक के गायन सीखते थे। तबला बजाना सीखने का खूब उत्साह था किन्तु पिता जी की कम तन्ख्वाह में ऐसे साधन कैसे मिल सकते थे? संगीत मास्टर कैसे रख सकता था? पिता जी बडी मुश्किल से तीन पाई के कागज पेन्सिल और पाठशाला की फीस पूरी करते थे। उनका वेतन था ४५) माहवार, और उसमें हम चार भाई, दो बहनें और गृहस्थी के कई एक दूसरे खर्च थे। उन सबोंको पूरा तो करना ही चाहिए न? हम 'धा धा धी धा' चौकी और पीछे पीढे पर किया करते थे। आखिर कुछ समय बाद एक जोड तबले की भी लायी और जाडे के दिनों में सुबह के वक्त कडी ठण्ढ में उस पर मसक्कत शुरू की। उँगलियाँ टूटने टूटने हो जाती थीं।" वे संगीत के अपने शौक को अन्त तक पूरा न कर सके।

परन्तु उनमें संगीत के अलावा बढई और लुहार वगैरह का धंधा सीखने की और उनके औजारों से काम करने की जो ख्वाहिश थी वह उनके पिछले दिनों में नित्य का कर्म हो गयी थी। वे कहतेः "गुली डंडा खेलने की गुल्ली मैं ही गढता था। बढई के यहाँ जा कर उसका बसूला उठा लेता। घण्टों तक उसका काम देखता रहता था।"

बातों बातों में मैंने एक मर्तबा पूछा कि जब आप इतने खिलाडी थे तो फिर पढे कैसे और एन्ट्रेंस कैसे पास हुए? उन्होंने समझाया, "मैं खिलाडी अवश्य था और घण्टों तक पाठशाला में बैठे रहने से भी घबरा जाता था, फिर भी दूसरे लडकों की भाँति घर पर अभ्यास करने की जरूरत मेरे लिए बिलकुल न थी। कारण यह था कि कक्षा में जब मास्टर पढाते तभी मैं पहले ही बार पाठ को खूब ध्यान से सुन लेता था। गणित, भूमिति और दूसरे सब विषय पहले हो बार में दिमाग में भर लेता था, अतः मेरे खिलाडीपने से मेरे अध्ययन में कोई हानि नहीं पहुँचती थी। और पाँचवे अँगरेजी दर्जे में आने तक तो मैं बेपरवा था। पाँचवे में आते ही मुझ में एकदम परिवर्तन होगया। मैं पक्का विद्यार्थी बन गया और उत्तरोत्तर पास होता गया। एन्ट्रेंस में एक वक्त नापास हुआ। उस दिन खूब ही रोया। नापास होना मेरे लिए असह्य था। फिर दूसरा वर्ष गँवाना पडा। संक्षेप में मुझे पढने में खूब मजा आता था।"

अपने विद्यार्थी जीवन से हम कुछ फायदा उठायँ इस उम्मीद से उन्होंने ये सब बातें अनेक वक्त कही हैं। उसी माफिक उन पर बीती हुई आफतों में से हम बच जायँ इस हेतु से भी गदगद् कण्ठ से करुण रस से भरी हुई अपनी आप बीती भी हम सब से उन्होंने कही है। उसमें से विद्यार्थी जीवन में नाटक देखने की बुरी आदत से उनको कैसे नुकसान पहुँचा वह यहां देता हूँ:

"तुम भाइयों से मुझे बडी बडी आशाएँ हैं। तुम्हें तो अब ऐसा तैयार हो जाना चाहिए कि इन तमाम कामों को मानों खेल ही समझो। ये काम तुम पर बोझा न हो जायँ और हम बुजुर्गों में जो कमजोरी है वह तुममें न रहने पाये। आश्रम का सारा कार्य तुम करते रहो और हम अब वाणप्रस्थ हो करके तुम्हारे कार्य पर देख भाल मात्र रक्खें। इतना कहते २ वे गंभीर बन गये और फिर आगे कहने लगे, "किन्तु तुम भविष्य कैसा उज्ज्वल करते हो यह अब देखना है। गृहस्थाश्रम के मोह से तुम बच जाने वाले हो या नहीं इस विषय में आज कैसे कहा जा सकता है! तुम्हारा, केशु का, कृष्ण का आज से जीवन कैसा होगा? विनोबा के संस्कार तुम कहां तक अपनायेगे? अगर तुम ब्रह्मचर्य साध लोगे तो फिर मुझे इस आश्रम के विषय में कुछ चिन्ता नहीं रहेगी। तुम इसे, हम माता पिताओं को और विशेषतः बापूजी को अवश्य सुशोभित करोगे। मुझे इसमें निराशा प्रतीत नहीं होती क्योंकि तुम्हारी उम्र में जो मेरी दशा थी उसकी याद जब आती है तो मेरी उम्मीद बढती जाती है।

"तुम तो कहां तक आगे बढे हुए हो। तुम्हारी उम्र में तो मैं कभी का विवाहित हो चुका था। और नाटकों ने तो मेरा विनाश ही कर डाला था। इन्सपेक्टर के बेटे को मुफ्त में नाटक देखने को मिलते थे। मगर यह मेरे लिए जहर हो पडा। मैंने अनेक नाटक देखे। हर तीसरे रोज जागरण ही पडता था। मन और शरीर दोनों विह्वल हो चुके। समाज में से नाटक जैसे जहरी तत्वों को एकदम दफना ही देना चाहिए, समाज को, विशेषतः युवकों को नीरोग बनाना हो तो इन नाटकों में उपदेश और सत्य की थोडी बहुत बातों के मिस कितना घोरतम पाप भरा पडा है इसका ख्याल तुम नहीं कर सकते। इस अनुभव से तुम बच गये हो इसके लिए प्रभु और बापूजी के हम क्या कम आभारी हैं? यदि बापूजी ने मुझे हाथ में नहीं लिया होता तो मैं कितना नृशंस बन जाता? मेरा दिमाग तो चक्कर खा गया था।"

"मैं १९०२ एन्ट्रेन्स की परीक्षा देने अहमदाबाद आया था। बम्बई देखने की मुझे बहुत बडी इच्छा थी अतः परीक्षा देकर मैं बम्बई गया। बापूजी ने मुझे बुलाया था। इसलिए बम्बई जाने का और विशेष कारण मिल गया। मेरे बम्बई पहुँचते ही बापू जी ट्रान्सवाल जानेवाले थे, और बडे भाई तो अगले वर्ष से ही एन्ट्रेन्स पास कर के वहीं काम पर लग गये थे। बापूजी ने मुझसे पूछा, 'क्यों तुम्हें चलना है?' मैं तुरत ही तैयार हो गया। राजकोट वापस लौटने का समय ही नहीं था अतः बापूजी ने पिताजी को तार देकर अनुमति मँगाली और मैं नेटाल को रवाना हुआ। नेटाल में देशी अखबारों को देखने पर मालूम हुआ कि मैं एन्ट्रेन्स पास हो चुका हूँ। अन्तिम दिनों में महासागर में बहुत हल चल थी। स्टीमर ऐसी डोलती थी कि मानों अभी डूबेगी। मैंने मरने के भय से जहाज के कटहरे को पकड लिया। दूसरे एक भाई ने सन्दूक को पकडा और वही इस ओर से उस ओर और उस तरफ से इस तरफ ढुलकने लगी। जैसे जैसे स्टीमर डोलती वैसे वैसे ये भाई भी घिसटते जाते थे। बापूजी ने अव्वल दर्जे के कमरे में से आकर हमें ढारस दिया। डरबन के बंदर गाह में स्टीमर किसी तरह से स्थिर न हो सकी अतः हम बडे टोकरों में बिठला कर क्रेन द्वारा नीचे उतारे गये। बापूजी कुछ दिन डरबन में ठहर कर ट्रान्सवाल गये, और मुझे स्टॅंगर की ओर जंगली वस्ती में दूकान का काम कर देखने को भेजा। वहां हमारे कुनबे-वालोंने नयासया ही व्यापार शुरू किया था।

"मैं गोरे लोगों से डरबन में खूब ही डरता था। हबशी लोग रिक्शा खींचते और सिर पर सींग बाँध कर हाउ हाउ करते हुए नाचते थे। यह देख कर मेरी छाती दहल जाती थी। पाँच सात रोज तो यही अफसोस हुआ कि 'मैं कहां यहां आ पडा।' फिर तो डर निकल गया। बापूजी भी मुझे खूब तैयार करते थे। मुझे अकेले ही बाजार भेजते थे। एक मर्तबा बाजार से काम कर के वापस आ रहा था कि गली में से बाहर फुट पाथ पर आते ही दो गोरे लडकों ने मुझे देखा। 'कुली कुली' आवाज लगाते हुए वे मेरे समीप आये और मेरे सिरपर से टोपी उतार कर फुट बॉल की भाँति उससे खेलने लगे। मेरा शरीर था तो मजबूत लेकिन उनके सामने मेरा क्या बस चल सकता था? मुझे बहुत गुस्सा आया किन्तु चुप चाप उनके पीछे चलता रहा। इतने में कोई बडे गोरे आदमी वहाँ आ निकले और उन्होंने मुझे मेरी टोपी दिला दी। यदि ऐसे मौके पर बॉक्सींग (मुक्के बाजी) आती होती तो नाक पर घूसा लगा कर उन लडकों को सीधा किया जा सकता था।

"हमारी दूकान निराले जंगल में थी। वहां हम सिर्फ तीन आदमी थे। चारों ओर हबशियों की बस्ती थी। पल भर के लिए भी हम तीनों एक दूसरे से अलहिदा नहीं होते थे। मुझे तो भाषा भी नहीं आती थी और पर्वत जैसे काले शरीर वाले ग्राहक दूकान पर आ खडे होते कि मेरी तबियत घबरा जाती। वहांपर कुछ महीनों तक बडी कठिनाई से रहा और परिस्थिति से परिचित हो गया। बाद में बापूजी ने फीनिक्स आश्रम बसाया और मुझे वहां बुला लिया।

फीनिक्स में भी थी सिर के बराबर ऊँची ऊँची घास, वृक्षों पर लटकते सर्प और सिर्फ एक झोंपडी। इस लिए और दूसरी अनेक असुबिधाओं के कारण स्वस्थ होने में बहुत समय व्यतीत हो गया। प्रारंभ में मुझे यही लगता था कि छापाखाने का यह काम मुझे कैसे आवेगा? टाइप बैठानेवालों (कंपोजिटरों) की फुर्ती देख कर तो मैं, दंग रह गया। मुझे तो यही प्रतीत होता था कि 'यह काम मुझे आवेगा ही नहीं,' लेकिन जब मुझे आ गया तब मेरे दिल में विश्वास हो गया कि सीखने से और करने से सब कुछ आ जाता है।

"फीनिक्स में आने के समय तक मुझे इन बातों का पता ही नहीं था कि जीवन क्या है, मनुष्यत्व क्या है? मैं तो निरा पशु था। फिर तो बापूजी ने मुझे अपनाया और तैयार करना शुरू किया। एक के बाद दूसरी किताबें मुझे पढने को देने लगे। मैं जो कुछ पढता था उस विषय में प्रश्न पूछते रहते थे। इससे मैं दिलचस्पी से अध्ययन करने लगा। एकांत और शांति भी काफी, मिलती थीं। छापाखाने के कार्य को छोड कर अन्य कोई विशेष काम नहीं था। शुरू में काश्तकारी व बगीचे का काम नहीं जैसा ही था। थोडा बहुत पढ लिया कि बापूजी ने टॉल्स्टॉय की छोटी छोटी किताबें मुझे भाषान्तर करने को देनी शुरू कीं। 'जीवन डोर' 'मनुष्य कितनी जमीन का मालिक हो सकता है,' 'मूर्खराज' इन सबका मैं भाषान्तर करता था और बापूजी उसमें, संशोधन करते थे। ऐसी मिहनत के सादे जीवन का सुख और उसकी उच्चता के खयाल मेरे मन में घर कर गये। और फिर तो बापूजी अपने जीवन में जो कुछ परिवर्तन करते थे उसमें मुझे भी खींचते थे।"

(नवजीवन)

(क्रमशः)

प्रभुदास गांधी

हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, द्वितीय श्रावण सुदी १ संवत् १९८४

'निर्बल के बल राम'

यह कहने में अतिशयोक्ति है कि सत्याग्रही जीते। सत्याग्रही की तो हार होती ही नहीं है। सत्य का आग्रह तो उससे मरने पर ही छूटेगा। मगर तौभी व्यवहार दृष्टि से कहना चाहिए कि बारडोली के सत्याग्रही जीते। मरते दम तक जूझनेवाले की स्तुति सभी करेंगे, मगर कोई यह नहीं कहेगा कि वे जीते। बारडोली के सत्याग्रहियों ने जो माँगा, सो पाया। इसलिए उनकी जीत हुई कही जा सकती है।

इस जीत का यश व्यवहार-दृष्टि से भले ही चाहे किसी को हो। सत्याग्रहियों की दृष्टि में और वल्लभभाई की दृष्टि में इसका यश केवल परमात्मा को ही हो सकता है। वल्लभभाई ने भी उन्हीं को यश दिया है। सत्याग्रही ईश्वर को सर्व्वार्पण करके रण में उतरता है। इस लिए सुयश अपयश का भागी वह नहीं रहता है। लौकिक दृष्टि से सत्याग्रही निर्बल दिखलायी पडता है। उसके पास शरीर बल नहीं होता, इस लिए हथियार भी नहीं हो सकता। कहां बारडोली के आदमी और कहां ब्रिटिश साम्राज्य? एक चींटी तो दूसरा हाथी है। किन्तु सत्याग्रही जब चींटी सा छोटा बनता है, तभी हाथी के पैरों तले पडे हुए चींटी-रूप उसको ईश्वर बचा लेता है। बारडोली में यही हुआ है।

इस तरह पहले ईश्वर को धन्यवाद देकर हम आगे बढें।

बारडोली तो समय का एक चिह्न है। इससे सरकार और प्रजा दोनों को पाठ मिलते हैं। सरकार को यह पाठ लेना है कि वह प्रजा की उस समय की शक्ति को पहचान लेवे, जब प्रजा के पक्ष में सत्य हो, और वह उसे प्राप्त करने के लिए अहिंसक समाज का संगठन कर सके। इसे पहचानने से कोई बुद्धिमान सरकार अपनी शक्ति और भी बढाती है, क्योंकि तब उसकी जड लोगों की सदिच्छा और सहयोग पर होती है। वह सदिच्छा और सहयोग तब महज पशुबल से जब्रन कार्यरूप में परिणत किये हुए नहीं होते, किन्तु शब्द और विचार में भी होते हैं। अहिंसक शक्ति का संग्रह अगर ठीक ठीक किया जाय तो उससे एक ऐसी शक्ति निकलती है, जिसे कोई रोक नहीं सकता। जहाँ तक मैं देख सका हूँ, इसमें तो कोई शक ही नहीं है कि यह समझौता दिन दूने रात चौगुने बढनेवाले लोकमत के दबाव से अनिच्छुक सरकार के द्वारा जब्रन करवाया गया है। कहा जाता है कि गवर्नर साहेब तो शुरू से ही सत्याग्रहियों की माँगें स्वीकार करने को तैयार थे, मगर उनके सलाहकार भी अपने विरोध में उतने ही दृढ थे। अगर बात ऐसी है तो यह गवर्नर के लिए प्रशंसा की बात है, मगर सरकार के लिए अशुभ-लक्षण है। क्योंकि ब्रिटिश सरकार कुछ एक तंत्र राज्य नहीं है। यह तो बडा जबर्दस्त संगठन है जोकि व्यक्तियों के न होने पर भी चल सकता है। यह सरकार ग्लेडस्टन और डिजरायली के बिना, किचनर और रौबर्ट्स के बिना भी चल सकी है। हिन्दुस्तान में सरकार का सहारा सिविल सर्विसवालों का संगठन है। बारडोली के सरदार तो सिविल सर्विसवालों में हृदय का परिवर्त्तन चाहते थे। मगर हमें कहा जाता है, और हम देखते हैं कि सिविल सर्विसवालों को इस समझौते से संतोष नहीं हुआ है। अगर वे संतुष्ट होते तो सरदार और उनके कामों के बारे में जो झूठी बातें हठपूर्वक फैलायीं जाती रही हैं, वे बंद हो जातीं। जब मैं बारडोली में था, तब मैं बराबर ही कुछ पत्रों में दूसरों की प्रेरणा से लिखे गये लेख देखा करता था कि श्री वल्लभभाई ने समझौते का अपने हिस्से का काम पूरा नहीं किया है और मैं जानता था कि वे अपनी शक्ति भर शीघ्रता-पूर्वक उस काम को कर रहे हैं, और उस शिकायत के छपने के पहले ही उतना भर तो वे पूरा कर भी चुके हैं। मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि अगर सिविल सर्विसवाले इस समझौते का विरोध करते हैं तो, बशर्त्ते कि बारडोली की अहिंसा, एक ऐसा संगठन है जो कुछ खास व्यक्तियों के बिना भी टिका रह सकता है तो इस सरकार का नाश निश्चित है, अटल है, ध्रुव है।

अब हम बारडोलीवालों की ओर देखें। उन्हें यह पाठ सीखना है कि जब वे अहिंसाभाव को धारण किये हुए एक बने रहेंगे, उन्हें कोई भय नहीं है, अनिच्छुक अफसरों का भी कोई भय नहीं है। मगर क्या उन्होंने यह पाठ पढ लिया है? क्या उन्होंने अहिंसा की अदृश्य शक्ति को जान लिया है? क्या वे यह बात समझ गये हैं कि अगर उन्होंने एक भी हिंसा का काम किया होता तो उनका काम ही चौपट हो जाता? अगर उन्होंने ये बातें समझ ली हैं तो वे दिनों दिन यह बात अधिकाधिक जानते जायँगे कि वे तब तक अहिंसक समाज नहीं बन सकते, जब तक कि वे निरंतर सामाजिक शुद्धि न करते रहें। यह तभी हो सकता है जब वे कोई भली भांति सोचे हुए रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने में लग जायँ जिसमें समुदायिक प्रयत्न की जरूरत पडे और जिससे सामुदायिक लाभ होवे। दूसरे शब्दों में इसके पहले कि वे अहिंसक होने का दावा कर सकें, उन्हें अहिंसा की शिक्षा लेनी होगी, और वह शिक्षा लेखों और भाषणों के जरिए नहीं मिलेगी, चाहे वे कितने ही आवश्यक क्यों न हों, किन्तु निरंतर कुछ न कुछ ऐसे सामाजिक काम करने से ही मिलेगी जो अहिंसा की भावना को जागृत करते रहें। स्त्रियों में जो अद्भुत जागृति आयी है, उसका लाभ लेकर स्त्रियों में फैले हुए वहमों और हानिकारक रिवाजों को दूर किया जाय। पुरुषों में जो एकता पैदा हुई है उसका उपयोग उनके संगठन के लिए उनमें आये हुए खराब रिवाजों को निकालने के के लिए होना चाहिए। रानीपरज, दुबला, अंत्यज आदि के प्रति वर्त्ताव में परिवर्तन होना चाहिए। शराब की रोक सहज ही हो गयी है। उसे स्थायी करने के प्रयत्न करने चाहिए। विदेशी कपडे का बहिष्कार संपूर्णता से करने के लिए महाप्रयास की आवश्यकता है। इस रुई के प्रदेश में चर्खा अभी घर घर नहीं चलता है यह स्थिति बदलनी चाहिए। ये, और ऐसे ही काम किये जायँ, तभी प्रजा में पैदा हुई जागृति स्थायी होगी और लोग स्वावलंबी बनेंगे।

इस युद्ध में बहिष्कार का बहुत बडा भाग है। शांत, अहिंसक बहिष्कार को सत्याग्रह में पूर्ण स्थान है। हिंसक जहरी बहिष्कार को जरा भी स्थान नहीं है। इसलिए जहां जहां बहिष्क.र किया गया है, वहां वहां उसे बंद करने की अब जरूरत है। शुद्ध बहिष्कार के अंत में जहर नहीं फैलता, किन्तु प्रेम की वृद्धि होती है। जिन्होंने निर्बलता दिखलायी, उनपर कटाक्ष किया ही नहीं जा सकता। जिन अफसरों ने गैरकानूनी व्यवहार चलाया उनके प्रति क्रोध नहीं हो सकता, उसीतरह खुशामद भी नहीं हो सकती। अपनी स्वतंत्रता को बचाये रख कर लोग अफसरों से मिठास का बरताव करें। तलाटियों ने बहादुरी दिखलायी है। अब वे अपनी नौकरी फिर पावेंगे। किन्तु प्रजा आशा रक्खेगी कि अपनी नौकरी वफादारी से बजाते हुए भी वे लोगों के प्रति सम्मान का बरताव करेंगे।

श्री वल्लभभाई अपने धंधे को भली भांति पहचानते हैं। भगवान् उन्हें इस रचनात्मक काम में वही सफलता देवे, जो उसने उन्हें सरकार के साथ लडाई में दी है।

(नवजीवन और यं. इं. से संकलित) मोहनदास करमचंद गांधी

१९२१ को याद रक्खो

[बारडोली के विजयोत्सव पर सूरत में गांधी जी ने जो भाषण दिया उसका सारांश नीचे दिया जा रहा है।]

सत्याग्रही के लिए इससे अधिक सच्ची बात कोई नहीं कि बारडोली सत्याग्रह के लिए और किसी का नहीं, परमात्मा का ही यश गाना चाहिए, एक उसीको धन्यवाद देना चाहिए। मगर मैं जानता हूँ कि इससे हमें संतोष नहीं होता है, क्योंकि हमें यह विश्वास नहीं हुआ है कि हम कुछ नहीं, हम तो केवल उसके हाथ के साधन भर हैं और वह चाहता है। हमसे काम लेता है। हमने अब तक परमात्मा को आत्मसमर्पण करने का महत्त्व नहीं समझा है। आदमी कुछ अंश तक मनुष्य और पशु दोनों है, बल्कि अभी तो मनुष्यता की बनिस्बत पशुता ही अधिक है और इसलिए परमात्मा का ही यश गाने से उसका अहंकार संतुष्ट नहीं होता। सच पूछो तो ऐसे अवसरों पर परमात्मा याद करके हम कहें कि मानों हम उन्हींपर कृपा कर रहे हों। इसलिए पशु-स्वभाव के अनुसार हम अपने सरदार, उनके सहायकों बारडोली के स्त्री पुरुषों को भले ही बधाई दे लेवें। अपने साथियों के सहयोग के बिना वल्लभभाई अकेले लड़ाई नहीं जीत सकते थे। मगर उसी तरह से हमें गवर्नर साहेब, उनके अफसरों और कौन्सिल के सभ्यों को भी सुखद समझौता कराने में मदद देने के लिए धन्यवाद देना चाहिए। अगर हम अपने विरोधियों को यथायोग्य धन्यवाद देने के अपने कर्त्तव्य के पालन में पीछे रहे, तो हममें नम्रता की कमी होगी, उस हद तक हमारे सत्याग्रही बनने में त्रुटि रहेगी।

गीली जमीन में इतनी तकलीफ से बैठा हुआ सूरत के नागरिकों का इतना बड़ा समूह मुझे सन् १९२१ की याद दिलाता है। मुझे आज भी वे शब्द याद हैं जो मैंने आपको इसी ठौर पर सन् १९२१ में कहे थे। संभवतः आपमें से भी कुछ लोगों को उस वक्त के मेरे शब्द याद होंगे, और मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि हमने सात वर्ष पहले जो काम करने का निश्चय किया था, उन्हें करने में हम किस तरह चूके हैं। अगर केवल उत्सव मनाने और मिठाइयाँ बाँटने के बाद सूरत और बारडोली के आदमी कान में तेल डाल कर सो रहें तो बारडोली से जो पाठ हमें सीखना है, उसे हम नहीं सीख सकेंगे। वल्लभभाई लोगों को कहते रहते हैं कि सरकार से लड़ना सहज है, मगर अपने आदमियों से लड़ना सहज नहीं है क्योंकि हम स्वभावतः ही सरकार की राई के समान भूल को पर्वत बना डालते हैं। मगर जैसे ही हमें अपनी त्रुटियाँ नजर आती हैं, हम उनका सामना करने से भाग चलते हैं। इसलिए मैंने बारडोलीवालों को याद दिलाया कि तुमने अपने व्रत का पहला भाग पूरा कर लिया है, अब दूसरा भाग भी—यानी पुराना लगान देना—पूरा करो। मैं जानता हूँ कि यह थोड़े दिनों में हो जायगा। मगर इसके बाद? सत्याग्रह आन्दोलन में अत्यन्त बड़ी शक्ति और उत्साह का जो संग्रह हुआ है, उसे कैसे काम में लाया जायगा? बारडोली की स्त्रियों में पैदा हुई अपूर्व जाग्रति से क्या लाभ उठाया जायगा? आप कैसे उनकी सेवा करोगे, किस तरह उनके साथ एक बन कर उनके दुःख दूर करने में उन्हें सहायता दोगे? सत्याग्रह में अन्धे अधिकार के अत्याचार का सविनय विरोध, उसकी सविनय अवज्ञा शामिल हैं, मगर विरोध करने की शक्ति में ही आत्म-शुद्धि और रचनात्मक काम छिपे हुए हैं। अगर मैं आपसे पूछने बैठूँ कि सन १९२१ से आपने अब तक रचनात्मक काम और आत्म-शुद्धि के संबन्ध में क्या काम किया है तो मैं जानता हूँ कि आपको और मुझको, दोनों को रोना पड़ेगा।

मैं आपको कहना चाहता हूँ कि मैं वही गांधी हूँ जो सन् १९२१ में था। जिस शान्ति, समृद्धि, स्वराज्य, रामराज्य या धर्मराज्य के लिए हम कोशिश कर रहे हैं, उसके लिए मेरे पास अब भी वे ही अनिवार्य शर्त्ते हैं जो तब थीं। सूरत के आराम तलब हिन्दू मुसलमानों को तब तक स्वराज्य का नाम लेने का क्या हक है, जब तक कि वे खुदा के नाम पर एक दूसरे का गला काटने को दौड़ते हैं और फिर न्याय के लिए अदालतों का दरवाजा झांकते हैं? अगर तुम सचमुच में बहादुर हो तो भले ही बराबरी की लड़ाई लड़ो, मगर अदालतों की शरण में रक्षा के लिए दौड़े न जाओ। अँगरेजों और जर्मनों ने लड़ाई के मैदान में लड़ाई की मगर वे अदालतों में दौड़े न गये। खुल कर न्यायपूर्वक लड़ने में कुछ बहादुरी है, मगर अदालतों में दौड़ जाने में कुछ भी बहादुरी नहीं है। अगर लड़ना है तो हिन्दू और मुसलमान जम कर, खुल कर लड़ लेवें और अपने झगड़े फैसल कर लेवें। तब उनके नाम इतिहास में लिखे जावेंगे। मगर अदालतों में लंबे मुकद्दमे चला कर लड़ना कुछ बहादुरी नहीं है। हमारे वर्त्तमान तरीके बहादुरी के नहीं बल्कि कायरता के हैं। सच्ची बहादुरी तो धर्म के लिए जान देने में, और जो बातें धार्मिक दृष्टि से परमावश्यक नहीं हैं उन्हें अपने आप ही छोड़ देने में है। यही बारडोली का पाठ है। और अगर हम विजयोल्लास में अपने आपको भूल जायँ तो बारडोली का यह पाठ भी हम भूल जायँगे। जब तक हम लोग जो एक ही जमीन में से पैदा हुए हैं, एक ही मातृभूमि की संतान हैं, एक दूसरे को सगा भाई समझना नहीं सीखते, बारडोली के समान विजयों से कुछ नहीं होगा।

दूसरा काम है हिन्दू धर्म की शुद्धि करनी। क्या आपने उसका सबसे बड़ा कलंक धो लिया है? मैं फिर भी कहता हूँ कि आत्म-शुद्धि के बिना सच्चा स्वराज्य असंभव है। मुझे कोई दूसरा नहीं मालूम है। भले ही आप इसे मेरी मर्यादा, मेरी निर्बलता कहें, मगर तब यह सत्याग्रह की मर्यादा, सत्याग्रह की निर्बलता कही जायगी। अगर दूसरा कोई रास्ता है तो मैं उसे नहीं जानता हूँ और आत्म-शुद्धि के सिवाय, दूसरे उपायों से जीती गयी कोई वस्तु, और चाहे जो कुछ हो, मगर स्वराज्य नहीं हो सकती।

हमारे कार्यक्रम की तीसरी और अंतिम वस्तु है, इस देश के नर-कंकालों के प्रति हमारे कर्त्तव्य का पालन। चाहे सुनते सुनते कोई भले ही ऊब जाय मगर मैं फिर भी कहूँगा कि इसकी एक मात्र दवा चर्खा ही है। अभी मुझे चर्खे की उपयोगिता का एक विचित्र प्रमाण मिला है। सर लल्लूभाई शामलदास ने कृषि कमीशन की विशाल रिपोर्ट की अपनी आलोचना में दिखलाया है कि अपनी रिपोर्ट के सहायक धंधोंवाले अध्याय में कमीशन के सभ्यों ने चर्खा शब्द तक से अछूते रहने की कोशिश की है। मैं पूछता हूँ कि उस एक मात्र धंधे का नाम लेने से भी, जो करोड़ों भुक्खड़ों को रोजी देता है, भागने के क्या मानी हैं? मेरा दावा है कि खास बात में चर्खे की संभवता छिपी हुई है। वे इसकी टीका कर सकते थे, इसका मजाक भी उड़ा सकते थे, इसे हँसी में भी उड़ा दे सकते थे। मगर नहीं, वे शान्त चित्त से इसकी अनंत संभवताओं पर विचार भी कर सकते थे। (इतने में जोरों से पानी बरसने लगा।) खैर मेरा भाषण भी समाप्त हो गया और मुझे और कुछ कहने की जरूरत नहीं है।

(यं० इं०)

स्व० मगनलाल भाई के पत्र

खद्दर के आंकडे

[गांधी जी को लिखे गये आत्म निरीक्षण से भरपूर पत्रों में से तो अब एक भी नहीं मिलता है किन्तु खद्दर आन्दोलन के आरंभ में खद्दर संबंधी कई एक आंकडे निकाल कर भेजे हुए दो पत्र फाइल में मिल आये हैं, उन्हें दे रहा हूँ ।]

आपके सिपुर्द किये हुए हिसाब यहां देता हूँ । पूज्य नारणदास पटवारी घर पर नहीं हैं अतः यह काम खुद कर लेता हूँ । संख्याएँ किशोरलालभाई के पास वाले 'इयर बुक' से ली हैं ।

१५ गज फी आदमी के हिसाब से ३२ करोड हिन्दुस्तानियों को ४ अर्ब ८० करोड कपडा चाहिए । इतना कपडा बुनने के लिए रोजाना ८ गज के हिसाब से यदि ८ माह काम के गिने जायँ तो २५ लाख जुलाहों की जरूरत है ।

(कपडा) ४,८०,००,००,०००(गज)÷८×२४०(दि)=२५,००,००० (आदमी.)

यदि प्रत्येक कर्घे पर दो सहायक आदमी गिने जायँ तो ७५ लाख मनुष्य उसमें लगाये जाने चाहिए । तीन गज कपडे का वजन एक सेर गिना जाय तो (खद्दर का यह वजन गिना जा सकता है, बारीक कपडे का वजन कम होता है) ४ करोड मन रुई चाहिए ।

और प्रति दिन ४ घण्टे काम करने से पाव भर (१० तोला) काता जाता है । इस हिसाब से ३२० दिन में दो मन रुई काती जा सकती है । यानी सारे हिन्दुस्तान के लिए २ करोड कातने वाली बहिनें काफी होंगी ।

मरदुम शुमारी में स्त्रियों की गिनती १६ करोड के करीब दी गई है । उनमें से १४ करोड देहातों में बसनेवाली और दो करोड के भीतर शहरों की बाशिन्दा हैं । बुनाई से तआल्लुक रखने वाले कामों में काम करने वालों की संख्या ८३ लाख से कुछ ज्यादे है । पुतली घरों में काम करने वालों की भी गिनती इसीमें होगी । हिन्दुस्तान के लिए सिर्फ ७५ लाख मनुष्यों को हाथ की बुनाई के काम में लगानेवाला यदि कोई हो तो ऊपर बतलायी गयी गिनती काफी है

खेती करने वालों की संख्या २१ करोड के ऊपर दी गयी है । यदि प्रत्येक व्यक्ति ४ माह बुनाई के लिए दे और निपुण जुलाहे के आधा काम करे तो ऊपर बतलायी गयी संख्या से चौगुनी संख्या अर्थात् ३ करोड मनुष्य बुनाई के कार्य के लिए चाहिए ।

आपके माँगे आंकडे पालनपुर से मैंने भेजे हैं ।

उनमें कर्घों की संख्या २५ लाख की होना आवश्यक माना गया है । अभी काठियावाड व गुजरात में चलनेवाले कर्घों के आंकडे प्राप्त करना बहुत लाभकारी है । यदि 'नवजीवन' में ये आंकडे भेजने को लिखा जाय तो संभव है कि देहात के गांवों के नाम व वहांके जुलाहों की संख्या मिल सके । नीचे दी गयी कैफियत माँगी जाय तो बहुत ठीक होगा ।

१. पेशेवर जुलाहे कितने हैं ?

२. इनके अलावा और कितने बुनकर हैं ?

३. जुलाहों में खादी बुननेवाले कितने, कम्बल बुननेवाले कितने और पिछोरी व चौतारी बारीक खादी बुननेवाले कितने हैं ?

४. और दूसरे बुनकर कितने हैं और क्या बुनते हैं ?

उनकी हालत कैसी है ? जैसी कि वे अपनी गुजर औकात पैदा कर लेते हैं या मोहताज रहते हैं । कोरी कैफियत भी उपयोगी हो सकती है ।

एक साल बाद हमें पता लगा सकता है कि किस गांव में पुराने जुलाहे कितने थे और कितने किस जाति के बढ़े ?

कातनेवालों के आंकडे प्राप्त करना आज फिजूल है, किन्तु वर्ष बाद उनकी भी तायदाद लिखनी जरूरी है ।

उसके बाद कपास संबंधी ब्यौरे लिखना भी मुझे आवश्यक प्रतीत होता है । कहां, कितने किसानों ने अपनी जमीन में से कितने बीघे जमीन में किस किस्म की कपास बोयी और उसकी पैदावार किस हिसाब से हुई । ये बातें मालूम करना जरूरी है । काम बहुत मुश्किल नहीं है । जहां कहीं स्वयंसेवक काम कर रहे हैं वहां जितने हालात मिलें उतने ही 'नवजीवन' में प्रकट किये जायँ जिसके उदाहरण से अन्य युवकगण भी अपने गांव की स्थिति देखेंगे और हमें आंकडे लिख भेजेंगे ।

मैं इसमें बहुत फायदे देखता हूँ । जगह जगह पर स्वयंसेवक कारीगरों पर निगरानी रखने लग जायँगे और उन्हें मदद देने का खयाल भी पैदा होगा और पिछडे हुए गांवों को अपनी तरक्की करने का मौका मिलेगा ।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मनचाहा नतीजा तुरन्त नहीं ला सकते फिर भी बहुत सी उपयोगी बातें प्रकट होंगी ।

ऐसी बातों को तरतीब से सज कर हम संग्रह कर रक्खेंगे । आंकडे भेजनेवालों को चाहिए कि नामवार ब्यौरे लिख भेजें । बस यही । बाकी के समाचार छगनभाई के पत्र में ।

× × ×

[यह पत्र गंगा भागीरथी संतोक बहन को लिखा गया था । 'पूज्य संतोक' इस संबोधन से संबोधित कर के सारे पत्र में अपने आश्रम के काम का ही ब्यौरा दिया है । प्रलय निवारण के काम में जुते हुए होने पर भी आश्रम की कपास की खेती के विषय में अपने घर के पत्र में सूचनाएँ करते हैं । दूसरा उन्हें लिखना ही क्या हो ?]

मैं वहां एकाध रोज के लिए आ जाने वाले था । किन्तु यहां किसी जिम्मेवार मनुष्य के हाजिर न होने से मैं नहीं आ सका । और कल नडियाद में मुख्य कार्यकर्त्ताओं की सभा होने वाली है उसमें मुझे शरीक होना है, अतः मैं रुक गया हूँ । भाई मही से तुम काम लेती ही होंगी ।

१. पिछले वक्त जहां पायखाना गाडा गाया है (नारंगी वाले टुकडे के बाद वाले हिस्से में) और जहां कोबी बोयी गयी थी और पीछे से अच्छी नहीं हुई थी, वहां साफ करा के खाकी कपास बोवा देना ।

२. पायखाने के पीछे जो गढ्ढे वाला हिस्सा है, जहां बारिश की मौसिम में पहले पायखाना गाडा जाता था वहां मठिया कपास बोवा देना । उसके बिनौले भाई अब्बास से मिलेंगे ।

३. खाकी देव कपास के जो बिनौले तुम्हें दिये थे वे सँभाल कर रक्खे होंगे । वे बिनौले ऊपर बतलाये गये टुकडे के नीचे जो पाल है उसके सहारे बहुत सावधानी से बोवा देना और उसपर निगरानी रखना ।

४. आन्ध्र से पट्टुशाली कपास के बिनौले या कपास यदि आयी हो तो चि० भाई नारणदास से माँग लेना और उसे अलग रखना । उसमें से बिनौले निकाल कर हौज के बाजू पर वाले टुकडे में जहां आलू बोये गये थे वहां जगह साफ करा के अच्छी तरह खुदवा कर बोवा देना ।

५. मेंहँदी के पीछे रहट के पास वाले टुकडे में जहां भिंडी थी उसे अब निकलवा लेना, और वहां हीरवणी ४ फीट के अंतर से बोवा देना ।

इतना तो मुझे याद आता है । बाकी तुम्हें जो सूझे और ठीक मालूम हो करवाते रहना ।

चाहता हूँ कि गोशाला के मार्ग की तरफ जो जँगला है उसके [illegible]म जगह साफ करा के वहां हीरवणी बोयी जाय। इसी पिछले साल जहां लाल एरंडी बोयी थी, वहां चार चार दूरी पर हीरवणी बोओ तो अच्छा है।

[illegible]ते मालूम होता है कि अब काफी हो गया। मट्टी की ठीक होगी। यदि उसका जुकाम न मिटा हो तो उसे लेने को कहना। तुम्हारी तबीअत अच्छी होगी। मेरी अच्छी रहती है।

(नवजीवन)

हमारे जेल

[illegible]गो कि मैं दो साल हिन्दुस्तान के जेलों का मिहमान रह चुका मगर मैं देखता हूँ कि जो लोग मुझ से बहुत कम दिनों कैद रहे हैं, वे जेलों की व्यवस्था मुझसे अधिक जानते हैं। सत्याग्रही कैदी अभी हाल में ही छूटे हैं वे बहुत सी तकलीफों कठिनाइयों का वर्णन करते हैं जो सहज ही दूर की जा सकती बशर्ते की कैदियों के साथ भी आदमी के समान व्यवहार किया। सूरत जेल के एक सत्याग्रही कैदी का अनुभव है कि कैदी एक छोटे से कमरे में घुसेड दिये जाते है जिसमें न [illegible]ी हवा जाती है, और न रौशनी ही। खाना भी ऐसा मिलता जो बहुत कठिनाई से पचे और सफाई वफाई करने की सुविधाएँ दी जातीं।

साबरमती सेन्ट्रल जेल के कैदी कुछ और अधिक ब्यौरे बतलाते। आटे में चोकर और बालू मिली होती है। दाल में कंकड और [illegible]ी कभी कीडे मकोडे भी पडे रहते हैं। सत्याग्रही तो यह कहते कि इसमें आटा पीसनेवाले और दाल साफ करनेवाले कैदियों दोष है, वे जेल के अफसरों को कम दोष देना चाहते। मगर मैं इस राय से सहमत नहीं हो सकता। मुझे लगता है [illegible] खाने की चीजों की सफाई का ध्यान रखना, अफसरों का कर्तव्य और या तो वे बाहर से ही साफ चीजें मँगावें या पूरी निगरानी [illegible]ख कर सफाई का काम करावें। यह आशा रखनी बेकार है कि, खास [illegible]र आज जिस हालत में कैदी रक्खे जाते हैं, वे यह या कोई दूसरा [illegible]ाम ठीक ठीक या ईमान्दारी से करेंगे। खाना तैयार कराने का अत्यंत [illegible]हत्त्वपूर्ण काम उनके हाथों लेने के बदले, यह ज्यादह अच्छा और [illegible]स्ता होगा कि खाना पकाने, और अन्न साफ करने इत्यादि का काम [illegible]ाहरी और विश्वासी लोगों से लिया जाय और कैदियों से कोई [illegible]सरा ऐसा काम लिया जाय, जिसमें इससे ज्यादह मजदूरी मिल [illegible]के और स्वास्थ्य को कोई खतरा न हो।

मगर इस संबंध में, उनकी शिकायत केवल यहीं नहीं समाप्त हो जाती कि गंदे सामान जैसे तैसे पका कर रख दिये जाते थे। एक तरह का सूखा, दुर्गंधित शलजम हरे शाक के नाम पर दिया जाता था। [illegible]न मित्रों के वर्णन से मैं यही समझ सका कि जिस तरह मवेशी के लिए हरे चारे को बडे हौज में भर कर और सब ओर से बंद कर के साइलेज तैयार करते हैं जो कई महीनों बाद पशु को खिलाते हैं, उसीकी नकल पर आदमियों के लिए यह साइलेज तैयार किया गया था और इसमें खूब जोश डाल कर ताजा किया जाता था। मुझे दी गयी खबरें सच्ची हैं तो मैं यही कह सकता हूँ कि जेल के अधिकारी कैदियों के जीवन के साथ खेल कर रहे हैं। और उनके जीवन का भार इन्हीं अफसरों के हाथ है।

जेल से छोडे गये कैदियों में तीन रोगी थे। एक तो विद्यार्थी था जो अपनी कैद पूरी करने पर अब तब की हालत में छोडा गया था कि महाविद्यालय के अध्यापकों और विद्यार्थियों के जी जान से प्रेमपूर्ण सेवा करने और अच्छी से अच्छी चिकित्सा होने पर भी, अभी तक उसकी जान खतरे में ही है। मुझे कहा गया था कि कई दिनों तक ज्वर आते रहने पर भी, उसे मोटी, भद्दी जुवारी की रोटियों पर ही रक्खा गया था। अगर इस अपाच्य रोटी के कारण उसकी आंतें सूज गयी हों तो मुझे जरा भी आश्चर्य नहीं होगा।

इन आरोपों की सफाई में अधिकारी गण जो कुछ लिखना चाहेंगे, मैं खुशी से छापूँगा।

मैं जानता हूँ कि आज जैसी हालत है, कैदी घर के से आराम की आशा नहीं रख सकते। मैं यह भी जानता हूँ कि सत्याग्रही अपनी तकलीफों का रोना भी नहीं रो सकते, जो कि एक तरह से उनकी अपनी मुँह माँगी ही वस्तु है। मगर, चाहे कोई सत्याग्रही शिकायत करे या न करे, उसके साथ भी मनुष्योचित व्यवहार करना चाहिए और उसे ऐसा खाना देना चाहिए जो उसके स्वास्थ्य के अनुकूल हो, और सबसे बडी बात तो यह है कि जो स्वच्छ हो, और स्वच्छता से तैयार किया गया हो।

(यं. इं.) **मोहनदास करमचंद गांधी**

कन्याओं का त्याग

देहरादून कन्यागुरुकुल से श्री विद्यावती देवी निम्नलिखित पत्र भेजती हैं:

"बहुत दिनों से कन्यागुरुकुल की ब्रह्मचारिणियां बारडोली के दुःखी कृषकों के सत्याग्रह आन्दोलन में सहानुभूति अनुभव कर रही थीं और अब उन्होंने अपने हृदय के उद्गार को प्रगट करके मुझे प्रेरित किया है कि उनकी तुच्छ भेंट आपके श्री चरणों में अर्पित करूँ अतः इस पत्र के साथ यह द्रव्य प्रेषित किया है कृपया इसे स्वीकार कर अनुग्रहीत करें।

"आपको कदाचित विदित ही है कि कन्यागुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों को द्रव्य पास रखने का नियम नहीं हैं अतः उन्होंने अपने घी, फल मिष्टान्न आदि को एक मास के लिये परित्याग कर यह धन भिजवाने का आग्रह किया है। ऊँची श्रेणी की कन्याओं ने कुछ २ निज धन से भी दिया है। उनका आग्रह है कि जो प्रस्ताव उन्होंने अपनी सभा में पास किया है उसकी प्रतिलिपि आपकी सेवा में भेजी जाय। अतः उन्हें उत्साह दिलाने के हेतु प्रतिलिपि भेजी जा रही है:

"'निश्चय हुआ कि हम कन्यागुरुकुल की ब्रह्मचारिणियां एक मास के लिये घी, फल और मिठाइयां छोड दें और जो कुछ इस पर व्यय होना था वह बारडोली के देशभक्त कृषकों की सहायतार्थ भेज देवें। और यदि यह धर्मयुद्ध और भी आगे बढें तो और भी जो त्याग हमसे हो सकेगा वह हम करेंगी।

"'श्री आचार्या जी से प्रार्थना की जाय कि वह इस प्रस्ताव को स्वीकृत करें और इसकी प्रतिलिपि श्री बापूजी के चरणों में भेज देवें।'

"इनके उत्साह से प्रेरित होकर यहां के अन्य सेवक-भृत्य लेखक, चिकित्सक, अध्यापिका वर्ग भी इसीके साथ अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहे हैं जिसकी सूची साथ है। कृपया स्वीकार हो।"

यह हुंडी ३००) रु. से अधिक की है और इसमें २००) रु. तो ब्रह्मचारिणियों के बलिदान के हैं। इन बालाओं को मैं धन्यवाद देता हूँ। परमात्मा उनकी सेवाभावना को कायम करें।

मो० क० गांधी

हमारी जडता

एक युवक लिखते हैं:

" हमारे शहर में लगभग एक हजार जैन होंगे । उनमें से १५० विधवाएँ, और २५० कुँवारे हैं । इनमें ४० कुँवारे तो ४० से ६० वर्ष तक के होंगे । वे जब तक हजारों रुपये खर्च न कर सकें, तब तक विवाह कर ही नहीं सकते । कन्या प्राप्त करने के लिए ५ से २० हजार रुपयों तक का खर्च करना पडता है । इससे दुराचार बढता है । जैन साधु इन विषयों में कुछ भी नहीं करते । कहने पर जवाब देते हैं, " यह तो संसारी काम है । उसमें पडें तो महावीर की आज्ञा का उलंघन होगा । " क्या आप इस संबंध में कुछ न लिखिएगा ? "

एक दूसरे पाठक लिखते हैं:

' मेरे एक मित्र लगभग ४२ वर्ष की उम्र के हैं । विवाहित हैं, किन्तु उन्हें संतान नहीं है । इस लिए फिर विवाह करना चाहते हैं और बारह चौदह वर्ष की कन्या का जीवन बिगाडना चाहते हैं । यह मोह कैसे दूर किया जाय ? "

ये दोनों पत्र मैंने साथ लिये हैं क्योंकि दोनों स्थिति के मूल में हमारी जडता छिपी हुई है । कितने मानते हैं कि जो चलता है, ठीक ही है । उसकी योग्यता, अयोग्यता के बारे में हमें कुछ भी विचार करने की जरूरत नहीं है और चलते आये हुए रिवाज में शका करना पाप है । इस वृत्ति में जब विषय-वृत्ति मिली, फिर पीछे तो वह कुरिवाज सुरिवाज बनता है ।

ऐसी दयावनी स्थिति में से निकलने के लिए युवकवर्ग में बहुत शक्ति और शक्ति के साथ शुद्धि की आवश्यकता रहती है । वे अपनी तपश्चर्या से अपने सत्याग्रह से लोकमत तैयार कर सकते हैं, और विषयासक्त को शरमा सकते हैं । जैन जैसी छोटी बिरादरी के और भी छोटे बने रहने की कोई जरूरत नहीं है । जैन युवकों को, जैनेतर कन्याओं के साथ विवाह करने का आग्रह रखना चाहिए । जैन बहुत करके वणिकवर्ग ही हैं या वैश्यवर्ण हैं । उन्हें वर्णान्तर करने की जरूरत नहीं है । वैश्यवर्ण के करोडों आदमी भारतवर्ष में हैं और उनमें से लायक वर को कन्या मिलने में देर नहीं लग सकती । ऐसे वर को एक कौडी भी न लेने देने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए । फिर उन १५० विधवा बहिनों में से, जो बाल-विधवाएँ हों, उनके साथ विवाह करने की जैनयुवकों की तैयारी रहनी चाहिए । इतना ही नहीं, किन्तु जहां तक ऐसी विधवा मिले, वहां तक कुँवारी कन्या को ढूँढने का प्रयत्न न करना ही इष्ट है ।

जैन और दूसरे साधुओं, धर्मगुरुओं की अभी बहुत आशा रखनी मैं बेकार मानता हूँ । उनके पास भी पेट का महा प्रश्न है अथवा उन्होंने उसे महा प्रश्न बना डाला है । इस लिए लोकमत के विरुद्ध जाकर सुधार करने की सलाह वे एकाएक नहीं देते । कितने अपवाद रूप में सुधार करने के लिए मथ रहे हैं, तो उनकी बात सुनने को लोग तैयार नहीं होते । सुधार करने वाले साधुओं में इतना चारित्र-बल नहीं होता कि उनका प्रभाव लोगों पर पडे । बात ऐसी है कि इस साधुवर्ग का उद्धार हो तो, इनके जरिए ही दूसरों का उद्धार होगा । किन्तु उस वर्ग में आज साधु के बदले असाधु ने प्रवेश किया है और बहुत से तो धर्म के नाम पर अधर्म या वहम का प्रचार करते हैं ।

उस ४२ वर्ष के आदमी को जो एक पत्नी की जीवितावस्था में दूसरी से विवाह करना चाहता है, समझाने का काम मुश्किल है । उसे कौन समझावे कि संततिजनन का धर्म नहीं है । मनुष्य का धर्म एक स्त्री से संतुष्ट रहना है । पुत्र की उम्र के जितने बालक दिखलायी पडें, उन्हें पुत्र मानने की भावना पैदा करनी चाहिए । हिन्दुस्तान के समान कंगाल देश में तो अनेकों बालक मा[illegible] बिना मारे मारे फिरते हैं । ऐसी स्थिति में बिना पुत्रवाले अ[illegible] एक एक बालक को अपना कर पालें और पोसें तो वे पु[illegible] करेंगे और विषय किये बिना पुत्र पाने का लाभ उठावेंगे । [illegible] लेने की प्रथा हिन्दू धर्म में प्रचलित और प्रसिद्ध है ।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचन्द [illegible]

बारडोली-कोष के दाताओं से

बारडोली सत्याग्रह के लिए जो उदार और स्वेच्छापूर्वक स[illegible] दी गयी है, वह सारे हिन्दुस्तान में बारडोली सत्याग्रह की लोक[illegible] का सच्चा चिह्न है । बारडोली के मसले के हल हो जाने से [illegible] उसके बाद सत्याग्रह के बंद हो जाने से अब सत्याग्रह को[illegible] और अधिक दिनों तक खोले रखना बेजरूरत हो जाता है [illegible] लिए जनता से प्रार्थना की जाती है कि वे अब और नये चं[illegible] भेजें । मगर इसका मतलब यह नहीं है कि अब और अधिक [illegible] की जरूरत नहीं पडेगी । जाँच के संबंध में अभी काम व[illegible] बाकी ही है और इसमें कुछ खर्च भी पडेगा । और सत्[illegible] आन्दोलन से जो महान् शक्ति पैदा हुई है, उसे यों ही जाया [illegible] जाने देना है तो रचनात्मक काम दुगुने उत्साह से करना हो[illegible] इस लिए बारडोली-कोष में जो धन बच गया है, पहले तो [illegible] जांच के संबंध में खर्च होगा, और फिर दूसरे, मगर साथ ही [illegible] बारडोली ताल्लुके में रचनात्मक काम के लिए खर्च किया जाय[illegible] इसमें तो कोई शक ही नहीं है कि यह आन्दोलन इसीसे सं[illegible] हो सका कि बारडोली में पिछले सात वर्षों से रचनात्मक काम हो[illegible] आ रहा था । मुझे यह पता है कि कई स्थानों पर कांग्रेस कमिटि[illegible] और व्यक्तियों ने अधिक धन इकट्ठा किया है, मगर वे कई कि[illegible] में उसे भेजते रहे हैं । उन्हें यह कहने की कोई जरूरत तो न[illegible] है कि उनके पास इस समय जो कुछ धन जमा हो, उसे [illegible] सत्याग्रहाश्रम, साबरमती, या स्वराज आश्रम बारडोली या नवजी[illegible] कार्यालय, या गुजरात प्रान्तिक कांग्रेस समिति अहमदाबाद के न[illegible] तुरत भेज देवें । मुझे खयाल आता है कि श्रीयुत वल्लभभाई प[illegible] ने हिसाब किताब की जाँच करा कर, उसे छपवाने की व्यवस्था [illegible] ली है । (यं. इं.)

मो० क० गांधी

अखिल भारत गोरक्षा मंडल

चंदा और दान

पहले स्वीकार किया गया		रु. ७,६१३-९-[illegible]
जुपिटर मिल के कर्मचारी	अहमदाबाद	३०-०-०
एन. एस. बाइद	दारे-इस्लाम	९-१५-०
चौधरी छुतनलालजी	दिल्ही	२०-०-०
नानालाल कालिदास	रंगुन	१०१-०-०
कृष्णदासजी जाजु	वर्धा	५-०-०
रामेश्वर झवेरमल	,,	६०-०-०
मगनलाल नगीनदास सेठ	चोपडा	५-०-०
हरीलाल गुलाबचंद पारेख	बंबई	२-०-०
नारायणजी गोविन्दजी	खडगपुर	१०-०-०
हरनारायण रस्तोगी	आबुनगर	५-०-०
गुप्तदान		१०१-०-०
मगनलाल भाईलाल पटेल	ब्यावर	१०-०-०
डाह्याभाई मयाचन्द	पालनपूर	५१-०-०
नंदलाल गुप्ता	जगाधरी	२-०-०
ठाकुरप्रसाद सिबा	बलरामपुर	१-०-०
		कुल रु. ८,०२६-८-६

